संख्या ३७-४२ ["समागत" से "ह्रिप" तक] शब्द १४७१०

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

[सातवां खंड]

संपादक

श्यामसुन्दरदास बी० ए०

सहायक सम्पादक

रामचंद्र शुक्ल रामचंद्र वर्म्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

मूल्य ६) १९३० डाक व्यय अतिरिक्त

संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेजी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या=अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्ध मागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित = उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक० = कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि० वि० = क्रियाविशेषण
क्रि० स० = क्रिया सकर्मक
क्व०=क्वचित् अर्थात् इसका प्रयोग बहुत कम देखने में आया है।
खानखाना=अब्दुर्रहीम खानखाना
गि० दा० वा गि० दास=गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर =गिरिधरराय (कुंडलियावाले)
गुज० = गुजराती भाषा
गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत=छीतस्वामी
जायसी=मलिक मुहम्मद जायसी
जावा०=जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं०=डिंगल भाषा
तु०=तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष–कवि तोष
दादू=दादूदयाल
दीनदयालु = दीनदयालु गिरि
दूलह=कवि दूलह
दे०=देखो
देव=देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुल्लिंग
पु० हिं० = पुरानी हिन्दी
पुर्त्त० = पुर्त्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी
प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ० = फ़रासीसी भाषा
फा० = फ़ारसी भाषा
बँग० = बँगला भाषा
बरमी० = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंडी बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव० = भाववाचक
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मला० = मलायलम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहाविरे
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखानाँ
लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू = लल्लूलाल
लश० = लशकरी भाषा अर्थात् हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
लैं० = लैटिन भाषा
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया
स० = सकर्मक
सबल = सबलसिंह चौहान
सभा वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन=सूदनकवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

---

* यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त होता है।

† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।

‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

[सातवाँ खंड]

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल रामचंद्र वर्म्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारणी सभा

१९२८

गणपति कृष्ण गुर्जर द्वारा श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी में मुद्रित।

मूल्य ६) डाकव्यय अतिरिक्त

संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेज़ी भाषा

अ० = अरबी भाषा

अनु० = अनुकरण शब्द

अने० = अनेकार्थनाममाला

अप० = अपभ्रंश

अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय

अर्द्धमा० = अर्द्धमागधी

अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग

अव्य० = अव्यय

आनंदघन = कवि आनंदघन

इब० = इबरानी भाषा

उ० = उदाहरण

उत्तरचरित = उत्तररामचरित

उप० = उपसर्ग

उभ० = उभयलिंग

कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्

कबीर = कबीरदास

केशव = केशवदास

कोंक० = कोंकण देश की भाषा

क्रि० = क्रिया

क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक

क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग

क्रि० वि० = क्रियाविशेषण

क्रि० स० = क्रिया सकर्मक

क० = कचित्, अर्थात् इस का प्रयोग बहुत कम देखने में आया है

खानखाना = अब्दुर्रहीम खानखाना

गि० दा० वा गि० दास = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)

गिरिधर = गिरिधरराय (कुंडलियावाले)

गुज० = गुजराती भाषा

गुमान = गुमान मिश्र

गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)

चरण = चरणचंद्रिका

चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी

छीत = छीतस्वामी

जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी

जावा० = जावा द्वीप की भाषा

ज्यो० = ज्योतिष

डिं० = डिंगल भाषा

तु० = तुरकी भाषा

तुलसी = तुलसीदास

तोष = कवि तोष

दादू = दादूदयाल

दीनदयालु = कवि दीनदयालु गिरि

दूलह = कवि दूलह

दे० = देखो

देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)

देश० = देशज

द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी

नागरी = नागरीदास

नाभा = नाभादास

निश्चल = निश्चलदास

पं० = पंजाबी भाषा

पद्माकर = पद्माकर भट्ट

पर्या० = पर्याय

पा० = पाली भाषा

पुं० = पुल्लिंग

पु० हिं० = पुरानी हिंदी

पुर्त्त० = पुर्त्तगाली भाषा

पू० हिं० = पूर्वी हिंदी

प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र

प्रत्य० = प्रत्यय

प्रा० = प्राकृत भाषा

प्रिया = प्रियादास

प्रे० = प्रेरणार्थक

प्रे० सा० = प्रेमसागर

फ़० = फ़रासीसी भाषा

फ़ा० = फ़ारसी भाषा

बँग० = बँगला भाषा

बरमी० = बरमी भाषा

बहु० = बहुवचन

बिहारी = कवि बिहारीलाल

बुं० खं० = बुंदेलखंड बोली

बेनी = कवि बेनी प्रवीन

भाव = भाववाचक

भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी

मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी

मला० = मलायम भाषा

मलूक = मलूकदास

मि० = मिलाओ

मुहा० = मुहाविरा

यू० = यूनानी भाषा

यौ० = यौगिक तथा दो वा अधिक शब्दों के पद

रघु० दा० = रघुनाथदास

रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन

रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश

रसखान = सैयद इब्राहीम

रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह

रहीम = अब्दुर्रहीम खानखाना

लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह

लल्लू = लल्लूलाल

लश० = लशकरी भाषा अर्थात् हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली

लाल = लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)

लै० = लैटिन भाषा

वि० = विशेषण

विश्राम = विश्रामसागर

व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी

व्या० = व्याकरण

व्यास = अंबिकादत्त व्यास

शं० दि० = शंकर दिग्विजय

शृं० सत० = शृंगार सतसई

सं० = संस्कृत

संयो० = संयोजक अव्यय

संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया

स० = सकर्मक

सबल = सबलसिंह चौहान

सभा० वि० = सभाविलास

सर्व० = सर्वनाम

सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी

सूदन = सूदन कवि (भरतपुरवाले)

सूर = सूरदास

स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त

स्त्री० = स्त्रीलिंग

स्पे० = स्पेनी भाषा

हिं० = हिंदी भाषा

हनुमान = हनुमन्नाटक

हरिदास = स्वामी हरिदास

हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

※ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त है।

† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।

‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।

समागत-वि० [सं०] जिसका आगमन हुआ हो। आया हुआ। जैसे,—उन्होंने समस्त समागत सज्जनों की यथेष्ट अभ्यर्थना की।

समागम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आगमन। आना। जैसे—इस बार यहाँ बहुत से विद्वानों का समागम होगा। (२) मिलना। मिलन। भेंट। जैसे—इसी बहाने आज सब लोगों का समागम हो गया। (३) स्त्री के साथ संभोग करना। मैथुन।

समाघात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) युद्ध। लड़ाई। (२) जान से मार डालना। हत्या। बध।

समाचार-संज्ञा पुं० [सं०] संवाद। खबर। हाल। जैसे,—कहिए, क्या नया समाचार है।

यौ०—समाचारपत्र।

समाचारपत्र-संज्ञा पुं० [सं० समाचार + पत्र] वह पत्र जिसमें सब देशों के अनेक प्रकार के समाचार रहते हों। खबर का कागज। अखबार।

समाज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। संघ। गरोह। दल। (२) सभा। (३) हाथी। (४) एक ही स्थान पर रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसाय आदि करनेवाले वे लोग जो मिलकर अपना एक अलग समूह बनाते हैं। समुदाय। जैसे,—शिक्षित समाज, ब्राह्मण समाज। (५) वह संस्था जो बहुत से लोगों ने एक साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्थापित की हो। सभा। जैसे,—संगीत समाज, साहित्य समाज।

समाज्ञा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यश। कीर्त्ति। बड़ाई।

समाता-संज्ञा स्त्री० [सं० समातृ] (१) वह जो माता के समान हो। (२) माता की विपत्नी। विमाता। सौतेली माँ।

समादर-संज्ञा पुं० [सं०] आदर। सम्मान। खातिर।

समादरणीय-वि० [सं०] समादर करने के योग्य। आदर सत्कार करने के लायक।

समादान-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का सौगताह्निक नामक नित्यकर्म। संज्ञा पुं० दे० "शमादान"।

समादृत-वि० [सं०] जिसका अच्छी तरह आदर हुआ हो। सम्मानित।

समादेय-वि० [सं०] (१) आदर या प्रतिष्ठा करने के योग्य। (२) स्वागत या अभ्यर्थना करने योग्य।

समादेश-संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा। हुकुम।

समाधा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निराकरण। निपटारा। (२) विरोध दूर करना। (३) सिद्धांत। (४) दे० "समाधान"।

समाधान-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० समाधनीय] (१) चित्त को सब ओर से हटाकर ब्रह्म की ओर लगाना। मन को एकाग्र करके ब्रह्म में लगाना। समाधि। प्रणिधान। (२) किसी के शंका या प्रश्न करने पर दिया जानेवाला वह उत्तर जिससे जिज्ञासु या प्रश्नकर्त्ता का संतोष हो जाय। किसी के मन का संदेह दूर करनेवाली बात। (३) इस प्रकार कोई बात कहकर किसी को संतुष्ट करने की क्रिया। (४) किसी प्रकार का विरोध दूर करना। (५) निष्पत्ति। निराकरण। (६) नियम। (७) तपस्या। (८) अनुसंधान। अन्वेषण। (९) ध्यान। (१०)। मत की पुष्टि। समर्थन। (११) नाटक की मुखसंधि के उपक्षेप, परिकर आदि १२ अंगों में से एक अंग। बीज को ऐसे रूप में पुनः प्रदर्शित करना जिससे नायक अथवा नायिका का अभिमत प्रतीत हो।

समाधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समर्थन। (२) नियम। (३) ग्रहण करना। अंगीकार। (४) ध्यान। (५) आरोप। (६) प्रतिज्ञा। (७) प्रतिशोध। बदला। (८) विवाद का अंत करना। झगड़ा मिटाना। (९) कोई असंभव या असाध्य कार्य्य करने के लिये उद्योग करना। (१०) चुप रहना। मौन। (११) निद्रा। नींद। (१२) योग। (१३) योग का चरम फल, जो योग के आठ अंगों में से अंतिम अंग है और जिसकी प्राप्ति सब के अंत में होती है। इस अवस्था में मनुष्य सब प्रकार के क्लेशों से मुक्त हो जाता है, चित्त की सब वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, बाह्य जगत् से उसका कोई संबंध नहीं रहता, उसे अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं और अंत में कैवल्य की प्राप्ति होती है। योग दर्शन में इस समाधि के चार भेद बतलाए हैं—संप्रज्ञात समाधि, सवितर्क समाधि, सविचार समाधि और सानंद समाधि। समाधि की अवस्था में लोग प्रायः पद्मासन लगाकर और आँखें बंद करके बैठते हैं। उनके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं होती; और ब्रह्म में उनका अवस्थान हो जाता है। वि० दे० "योग" (३६)।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(१४) किसी मृत व्यक्ति की अस्थियाँ या शव जमीन में गाड़ना।

क्रि० प्र०—देना।

(१५) वह स्थान जहाँ इस प्रकार शव या अस्थियाँ आदि गाड़ी गई हों। छतरी। (१६) काव्य का एक गुण जिसके द्वारा दो घटनाओं का दैव संयोग से एक ही समय में होना प्रकट होता है और जिसमें एक ही क्रिया का दोनों कर्त्ताओं के साथ अन्वय होता है। (१७) एक प्रकार का अर्थालंकार जो उस समय माना जाता है जब किसी आकस्मिक कारण से कोई कार्य्य बहुत ही सुगमतापूर्वक हो जाता है। उ०—(क) हरि-प्रेरित तेहि अवसर चले पवन उनचास। (ख) मीत गमन अवरोध हित सोचत कछू उपाय। तब ही आकस्मात तें उठी घटा घहराय। (ग) रामचंद्र सोचत रहे रावण बधन उपाय। सूपनखा ताही समय करी ठठोली आय।

समाधिक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ योगियों आदि के मृत शरीर गाड़े जाते हों। (२) साधारण मुर्दे गाड़ने की जगह । कबिस्तान ।

समाधिगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम ।

समाधित-वि० [सं०] जिसने समाधि लगाई हो। समाधि अवस्था को प्राप्त ।

समाधित्व-संज्ञा पुं० [सं०] समाधि का भाव या धर्म्म ।

समाधिदशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दशा जब योगी समाधि में स्थित होता है और परमात्मा में प्रेमबद्ध होकर निमग्न और तन्मय होता है और अपने आप को भूलकर चारों ओर ब्रह्म ही ब्रह्म देखता है ।

समाधि समानता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार ध्यान का एक भेद ।

समाधिस्थ-वि० [सं०] जो समाधि में स्थित हो । जो समाधि लगाए हुए हो ।

समाधिस्थल संज्ञा पुं० दे० "समाधि-क्षेत्र" ।

समाधेय-वि० [सं०] समाधान करने के योग्य । जिनका समाधान हो सके ।

समान-वि० [सं०] जो रूप, गुण, मान, मूल्य महत्व आदि में एक से हों। जिनमें परस्पर कोई अंतर न हो । सम। बराबर । तुल्य । जैसे,—वे दोनों समान विद्वान हैं; उनमें कोई अंतर नहीं है ।

मुहा०—एक समान = एक सा । एक सा ।

यौ०—समान वर्ण = वे वर्ण जिनका उच्चारण एक ही स्थान से होता हो । जैसे,—क ख, ग, घ समान वर्ण हैं ।

संज्ञा पुं० (१) सत् । (२) शरीर के अंतर्गत पाँच वायुओं में से एक वायु जिसका स्थान नाभि माना गया है ।

समानकर्म्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वे जो एक ही तरह का काम करते हों । एक ही तरह का व्यवसाय या कार्य्य करनेवाले । हम-पेशा ।

समानकालीन-संज्ञा पुं० [सं०] वे जो एक ही समय में उत्पन्न हुए या अवस्थित रहे हों । समकालीन ।

समानगोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वे जो एक ही गोत्र में उत्पन्न हुए हों । सगोत्र ।

समानजन्म-संज्ञा पुं० [सं० समानजन्मन्] वे जो प्रायः एक साथ ही, अथवा एक ही समय में उत्पन्न हुए हों । जो अवस्था या उम्र में बराबर हों । समवयस्क ।

समानतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वे जो एक ही काम करते हों । समानकर्म्म । हम-पेशा । (२) वे जो वेद की किसी एक ही शाखा का अध्ययन करते हों और उसी के अनुसार यज्ञ आदि कर्म्म करते हों ।

समानता-संज्ञा स्त्री० [सं०] समान होने का भाव । तुल्यता । बराबरी । जैसे —इन दोनों में बहुत कुछ समानता देखने में आती है ।

समानत्व-संज्ञा पुं० [सं०] समान होने का भाव । तुल्यता । बराबरी ।

समाननाम-संज्ञा पुं० [सं० समाननामन्] वे जिनके नाम एक से ही हों । एक ही नामवाले । नामरासी ।

समानयन-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह अथवा आदरपूर्वक ले आने की क्रिया ।

समानयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] वे जो एक ही योनि या स्थान से उत्पन्न हुए हों ।

समानर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वे जो एक ही ऋषि के गोत्र या वंश में उत्पन्न हुए हों ।

समानस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दिन और रात दोनों बराबर होते हों ।

समानाधिकरण-संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में वह शब्द या वाक्यांश जो वाक्य में किसी समानार्थी शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिये आता है । जैसे,—लोगों से लड़ते फिरना, यही आपका काम है । इसमें "यही" शब्द "लड़ते फिरना" का समानाधिकरण है ।

समानार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] वे शब्द आदि जिनका अर्थ एक ही हो । पर्य्याय ।

समानोदक-संज्ञा पुं० [सं०] जिनकी ग्यारहवीं से चौदहवीं पीढ़ी तक के पूर्वज एक हों ।

समानोदर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] वे जिनका जन्म एक ही माता के गर्भ से हुआ हो । सहोदर ।

समापक-संज्ञा पुं० [सं०] समाप्त करनेवाला । खतम करनेवाला। पूरा करनेवाला ।

समापत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ही समय में और एक ही स्थान पर उपस्थित होना । मिलना ।

समापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समाप्त करने की क्रिया । खतम करना । पूरा करना । (२) मार डालना । हत्या करना । वध । (३) समाधान ।

समापनीय-वि० [सं०] (१) समाप्त करने योग्य । खतम करने के लायक । (२) मार डालने के योग्य ।

समापन्न-संज्ञा पुं० [सं०] मार डालना । हत्या करना । वध ।

वि० (१) खतम किया हुआ । समाप्त किया हुआ । (२) मिला हुआ । प्राप्त । (३) क्लिष्ट । कठिन ।

समापिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण में दो प्रकार की क्रियाओं में से एक प्रकार की क्रिया जिससे किसी कार्य्य का समाप्त हो जाना सूचित होता है । जैसे,—वह परसों यहाँ से चला गया । इस वाक्य में "चला गया" समापिका क्रिया है ।

समापित-वि० [सं०] समाप्त किया हुआ। खतम या पूरा किया हुआ।

समापी-संज्ञा पुं० [सं० समापिन] वह जो समाप्त करता हो। खतम करनेवाला।

समाप्त-वि० [सं०] जिसका अंत हो गया हो। जो खतम या पूरा हो गया हो। जैसे,—(क) जब आप अपनी सब बातें समाप्त कर लीजिएगा, तब मैं भी कुछ कहूँगा। (ख) आपका यह ग्रंथ कब तक समाप्त होगा ?

क्रि० प्र०—करना।—होना।

समाप्तलंभ-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

समाप्ताल-संज्ञा पुं० [सं०] पति। स्वामी। मालिक। स्वाविंद।

समाप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी कार्य्य या बात आदि का अंत होना। उस अवस्था को पहुँचना जब कि उस संबंध में और कुछ भी करने को बाकी न रहे। खतम या पूरा होना। (२) प्राप्त होने या मिलने का भाव। प्राप्ति।

समाप्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो समाप्त करता हो। खतम या पूरा करनेवाला। (२) वह जो वेदों का अध्ययन समाप्त कर चुका हो।

समाप्य-वि० [सं०] समाप्त करने के योग्य। खतम या पूरा करने के लायक।

समाप्लव-संज्ञा पुं० [सं०] स्नान करने की क्रिया। नहाना।

समाम्नाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शास्त्र। (२) समूह। समष्टि।

समाम्नायिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे शास्त्रों का अच्छा ज्ञान हो। शास्त्रवेत्ता।

वि० शास्त्र संबंधी। शास्त्र का।

समायोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयोग। (२) बहुत से लोगों का एक साथ एकत्र होना।

समारंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह आरंभ होना। (२) समारोह। (क्व०)

समारंभण-संज्ञा पुं० [सं०] गले लगाना। आलिंगन।

समारभ्य-वि० [सं०] समारंभ करने के योग्य।

समाराधन-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह आराधना या उपासना करना।

समारोप-संज्ञा पुं० दे० "आरोप"।

समारोपण-संज्ञा पुं० दे० "आरोपण"।

समारोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आडंबर। तड़क भड़क। धूम-धाम। (२) कोई ऐसा कार्य्य या उत्सव जिसमें बहुत धूम-धाम हो। (३) दे० "आरोह"।

समार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] समान अर्थवाला शब्द। पर्याय।

समार्थक-संज्ञा पुं० [सं०] समान अर्थवाला शब्द। पर्याय।

समालंब-संज्ञा पुं० [सं०] रोहिष तृण। रूसा नामक घास।

समालंबी-संज्ञा पुं० [सं० समालंबिन्] भू-तृण।

समालंभ, समालंभन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर पर केसर आदि का लेप करना। (२) मार डालना। हत्या करना। वध।

समालाप-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह बात चीत करना।

समालोकन-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह देखना।

समालोकी-संज्ञा पुं० [सं० समालोकिन] वह जो किसी चीज को अच्छी तरह देखता हो।

समालोचक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी चीज के गुण और दोष देखकर बतलाता हो। समालोचना करनेवाला।

समालोचन-संज्ञा पुं० दे० "समालोचना"।

समालोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया। खूब देखना भालना। (२) किसी पदार्थ के दोषों और गुणों को अच्छी तरह देखना। यह देखना कि किसी चीज में कौन सी बातें अच्छी और कौन सी बातें खराब हैं; विशेषतः किसी पुस्तक के गुण और दोष आदि देखना। (३) वह कथन, लेख या निबंध आदि जिसमें इस प्रकार गुणों और दोषों की विवेचना हो। आलोचना।

समालोची-संज्ञा पुं० [सं० समालोचिन्] वह जो किसी चीज के गुण और दोष देखता हो। समालोचना करनेवाला।

समावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वापस आना। लौटना। (२) दे० "समावर्त्तन"।

समावर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० समावर्त्तनीय] (१) वापस आना। लौटना। (२) प्राचीन वैदिक काल का एक प्रकार का संस्कार। यह संस्कार उस समय होता था, जब बालक या ब्रह्मचारी नियत समय तक गुरुकुल में रहकर और वेदों तथा अन्यान्य विद्याओं का अच्छी तरह अध्ययन करने के उपरांत स्नातक बनकर घर लौटता था। इस संस्कार के समय कुछ हवन आदि होते थे।

समावर्त्तनीय-वि० [सं०] (१) लौटने योग्य। वापस होने के लायक। (२) जो समावर्त्तन नामक संस्कार करने के योग्य हो गया हो।

समावाय-संज्ञा पुं० दे० "समवाय"।

समाविद्ध-वि० [सं०] जिसका संयोग या संघटन हुआ हो।

समाविष्ट-वि० [सं०] (१) जिसका समावेश हुआ हो। समाया हुआ। (२) जिसका चित्त किसी एक ओर लगा हो। एकाग्र-चित्त।

समावृत-वि० [सं०] अच्छी तरह ढका या छाया हुआ।

समावृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विद्या अध्ययन करके, समावर्त्तन संस्कार के उपरांत, घर लौट आया हो। जिसका समावर्त्तन संस्कार हो चुका हो।

समावृत्ति-संज्ञा स्त्री० दे० "समावर्त्तन"।

समावेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ या एक जगह रहना। (२) एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के अंतर्गत होना। जैसे,—इस एक ही आपत्ति में आपकी सब आपत्तियों का समावेश हो जाता है। (३) चित्त को किसी एक ओर लगाना। मनोनिवेश।

समावेशित-वि० दे० "समाविष्ट"।

समाश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आश्रय। सहारा। (२) सहायता। मदद।

समाश्रित-वि० [सं०] जिसने किसी स्थान पर अच्छी तरह आश्रय ग्रहण किया हो।

समासंग-संज्ञा पुं० [सं०] मिलन। मिलाप। मेल।

समास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संक्षेप। (२) समर्थन। (३) संग्रह। (४) पदार्थों का एक में मिलना। सम्मिलन। (५) व्याकरण में दो या अधिक शब्दों का संयोग। शब्दों का कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार आपस में मिलकर एक होना। जैसे,—"प्रेमसागर" शब्द प्रेम और सागर का, "पराधीन" शब्द पर और अधीन का, "लंबोदर" शब्द लंब और उदर का सामासिक रूप है।

विशेष—शब्दों का यह पारस्परिक संयोग संधि के नियमों के अनुसार होता है। हिंदी में चार प्रकार के समास होते हैं। (१) अव्ययीभाव जिसमें पहला शब्द प्रधान होता है और जिसका प्रयोग क्रियाविशेषण के समान होता है। जैसे,—यथाशक्ति, यावज्जीवन, प्रतिदिन आदि। (२) तत्पुरुष जिसमें पहला शब्द संज्ञा या विशेषण होता है और दूसरे शब्द की प्रधानता रहती है। जैसे,—ग्रंथकर्त्ता, निशाचर, राजपुत्र आदि। (३) समानाधिकरण तत्पुरुष या कर्मधारय जिसमें दोनों शब्द या तो विशेष्य और विशेषण के समान या उपमान और उपमेय के समान रहते हैं और जिनका विग्रह होने पर परवर्त्ती एक ही विभक्ति से काम चलता है। जैसे,—छुटभैया, अधमरा, नवरात्र, चौमासा आदि। (४) द्वंद्व, जिसमें दोनों शब्द या उनका समाहार प्रधान होता है। जैसे,—हरि-हर, गाय-बैल, दाल-भात, चिट्ठी-पत्री, अन्न-जल आदि।

समासपर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जो भोज राज्य में था।

समासोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें समान कार्य्य, समान लिंग और समान विशेषण आदि के द्वारा किसी प्रस्तुत वर्णन से अप्रस्तुत का ज्ञान होता है। जैसे,—कुमुदिनिहू प्रफुलित भई, साँझ कलानिधि जोय। यहाँ प्रस्तुत "कुमुदिनी" से नायिका का और "कलानिधि" से नायक का ज्ञान होता है।

समाहरण-संज्ञा पुं० दे० "समाहार"।

समाहर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० समाहर्त्तृ] (१) समाहार करनेवाला। (२) वह जो किसी चीज का संक्षेप करता हो। (३) मिलनेवाला।

समाहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत सी चीजों को एक जगह इकट्ठा करना। संग्रह। (२) समूह। राशि। ढेर। (३) मिलना। मिलाप।

समाहारद्वंद्व-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का द्वंद्व समास। वह द्वंद्व समास जिससे उसके पादों के अर्थ के सिवा कुछ और अर्थ भी सूचित होता हो। जैसे,—सेठ-साहूकार, हाथ-पाँव, दाल-रोटी आदि। इनमें से प्रत्येक से उनके पादों के अर्थ के सिवा उसी प्रकार के कुछ और व्यक्तियों या पदार्थों का भी बोध होता है।

समाह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोजिया या बनगोभी नाम की घास। गोजिह्वा।

समाह्वान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आह्वान। बुलाना। (२) जूआ खेलने के लिये किसी को बुलाना या ललकारना।

समित्-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। समर। लड़ाई।

समिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत महीन पीसा हुआ आटा। मैदा।

समितिंजय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने युद्ध में विजय प्राप्त की हो। (२) वह जिसने किसी सभा आदि में विजय प्राप्त की हो। (३) यम। (४) विष्णु।

समिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सभा। समाज। (२) प्राचीन वैदिक काल की एक प्रकार की संस्था जिसमें राजनीतिक विषयों पर विचार हुआ करता था। (३) किसी विशिष्ट कार्य्य के लिये नियुक्त की हुई कुछ आदमियों की सभा। (४) युद्ध। समर। लड़ाई। (५) समानता। साम्य। (६) सन्निपात नामक रोग।

समिथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) आहुति। (३) युद्ध। समर। लड़ाई।

समिद्ध-वि० [सं०] जलता हुआ। प्रज्वलित। प्रदीप्त।

समिद्धन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलाने की लकड़ी। ईंधन। (२) जलाने की क्रिया। सुलगाना। (३) उत्तेजना देना। उद्दीपन।

समिध्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आग जलाने की लकड़ी। ईंधन। (२) यज्ञ-कुंड में जलाने की लकड़ी।

समिध-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

समिर-संज्ञा पुं० दे० "समीर"।

समिष्-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

समीक-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। समर। लड़ाई।

समीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समान करने की क्रिया। तुल्य या बराबर करना। (२) गणित में एक विशेष प्रकार की

क्रिया जिससे किसी व्यक्त या ज्ञात राशि की सहायता से किसी अव्यक्त या अज्ञात राशि का पता लगाया जाता है।

समीकार-संज्ञा पु० [सं०] वह जो छोटी बड़ी, ऊँची नीची या अच्छी बुरी चीजों को समान करता हो। बराबर करनेवाला।

समीकृत-वि० [सं०] समान किया हुआ। बराबर किया हुआ।

समीकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] समान या तुल्य करने की क्रिया। समीकरण।

समीक्रिया-संज्ञा स्त्री० दे० "समीकरण"।

समीक्ष-संज्ञा पु० [सं०] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया। (२) दर्शन। (३) अन्वेषण। जाँच पड़ताल। (४) विवेचन। (५) सांख्य शास्त्र जिसके द्वारा प्रकृति और पुरुष का ठीक ठीक स्वरूप दिखाई देता है।

समीक्षण-संज्ञा पु० [सं०] (१) दर्शन। देखना। (२) अनुसंधान। अन्वेषण। जाँच पड़ताल। (३) आलोचना।

समीक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० समीक्षित, समीक्ष्य] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया। (२) आलोचन। समालोचन। समालोचना। (३) बुद्धि। (४) यत्न। कोशिश। (५) मीमांसा शास्त्र। (६) सांख्य में बतलाए हुए पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार आदि तत्व।

समीक्ष्य-वि० [सं०] समीक्षा करने के योग्य। भली भाँति देखने के योग्य।

समीक्ष्यवादी-संज्ञा पु० [सं० समीक्ष्यवादिन्] वह जो किसी विषय को अच्छी तरह जाँच या समझकर कोई बात कहता हो।

समीच-संज्ञा पु० [सं०] समुद्र। सागर।

समीचक-संज्ञा पु० [सं०] मैथुन। संभोग। प्रसंग।

समीची-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तव। गुणगान। वंदना।

समीचीन-वि० [सं०] (१) यथार्थ। ठीक। (२) उचित। वाजिब। (३) न्यायसंगत।

समीचीनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] समीचीन होने का भाव या धर्म्म।

समीनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गौ जो प्रति वर्ष बच्चा देती हो। हर साल ब्यानेवाली गाय।

समीप-वि० [सं०] दूर का उलटा। पास। निकट। नज़दीक।

समीपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] समीप का भाव या धर्म्म।

समीपवर्त्ती-वि० [सं० समीपवर्तिन्] समीप का। पास का। नजदीक का।

समीपस्थ-वि० [सं०] जो समीप में हो। पास का।

समीय-वि० [सं०] सम संबंधी। सम का।

समीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) शमी वृक्ष।

समीरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) गंध-तुलसी। मरुआ। (३) रास्ता चलनेवाला। पथिक। बटोही। (४) प्रेरणा।

समीहन-संज्ञा पु० [सं०] विष्णु का एक नाम।

समीहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उद्योग। प्रयत्न। चेष्टा। कोशिश। (२) इच्छा। ख्वाहिश। (३) अनुसंधान। तलाश। जाँच पड़ताल।

समुंदर-संज्ञा पु० दे० "समुद्र"।

समुंदरफूल-संज्ञा पु० [हिं० समुंदर + फूल] एक प्रकार का विधारा जो वैद्यक के अनुसार मधुर, कसैला, शीतल और कफ, पित्त तथा रुधिर-विकार को दूर करनेवाला और गर्भिणी स्त्री की पीड़ा हरनेवाला होता है।

समुंदरसोख-संज्ञा पु० [हिं० समुंदर + सोखना] एक प्रकार का क्षुप जो प्रायः सारे भारत में थोड़ा बहुत पाया जाता है। इसके पत्ते तीन चार अंगुल लंबे अंडाकार और नुकीले होते हैं। डालियों के अंत में छोटे छोटे सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं, जिनमें बहुत छोटे छोटे बीज होते हैं। वैद्यक में यह वातकारक, मलरोधक, पित्तकारक तथा कफकारक कहा गया है।

समुख-संज्ञा पु० [सं०] वह जो अच्छी तरह बातें करना जानता हो। वाग्मी।

समुचित-वि० [सं०] (१) यथेष्ट। उचित। योग्य। ठीक। वाजिब। (२) जैसा चाहिए, वैसा। उपयुक्त। जैसे,—आपने उनकी बातों का समुचित उत्तर दिया।

समुच्चय-संज्ञा पु० [सं०] (१) बहुत सी चीजों का एक में मिलना। समाहार। मिलन। (२) समूह। राशि। ढेर। (३) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार जिसके दो भेद माने गए हैं। एक तो वह जहाँ आश्चर्य, हर्ष, विषाद आदि बहुत से भावों के एक साथ उदित होने का वर्णन हो। जैसे,—हे हरि तुम बिनु राधिका सेज परी अकुलाति। तरफराति, तमकति, तचति, सुसकति, सूखी जाति। दूसरा वह जहाँ किसी एक ही कार्य्य के लिये बहुत से कारणों का वर्णन हो। जैसे,—गंगा गीता गायत्री गनपति गरुड़ गोपाल। प्रातकाल जे नर भजें ते न परें भव जाल।

समुच्चित-वि० [सं०] (१) ढेर लगाया हुआ। राशि के रूप में रखा हुआ। (२) एकत्र किया हुआ। जमा किया हुआ। संगृहीत।

समुच्छित्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश। बरबादी।

समुच्छेद-संज्ञा पु० [सं०] (१) जड़ से उखाड़ना। उन्मूलन। (२) ध्वंस। नाश। बरबादी।

समुच्छेदन-संज्ञा पु० [सं०] (१) जड़ से उखाड़ना। (२) नष्ट करना। बरबाद करना।

समुज्ज्वल-वि० [सं०] खूब उज्वल। चमकता हुआ।

समुझ*†-संज्ञा स्त्री० दे० "समझ"।

विशेष—इसके यौगिक और क्रियाओं आदि के लिये दे० "समक्ष" के यौगिक और क्रियाएँ।

समुत्कोश-संज्ञा पुं० [सं०] कुरर नाम का पक्षी।

समुत्थ-वि० [सं०] (१) उठा हुआ। (२) उत्पन्न। जात।

समुत्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उठने की क्रिया। (२) उत्पत्ति। (३) आरंभ। (४) रोग का निदान या निर्णय। (५) रोग का शांत होना।

समुदय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उठने या उदित होने की क्रिया। उदय। (२) दिन। (३) युद्ध। समर। लड़ाई। (४) ज्योतिष में लग्न।

वि० समस्त। सब। कुल।

समुदाचार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिष्टाचार। भलमनसत का व्यवहार। (२) नमस्कार, प्रणाम आदि। अभिवादन। (३) आशय। अभिप्राय। मतलब।

समुदाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। ढेर। (२) झुंड। गरोह। जैसे,—विद्वानों का समुदाय। (३) युद्ध। समर। लड़ाई। (४) पीछे की ओर की सेना। (५) उदय। (६) उन्नति। तरक्की।

समुदित-वि० [सं०] (१) उठा हुआ। (२) उन्नत। (३) उत्पन्न। जात।

समुद्गत-वि० [सं०] (१) जो उदय हुआ हो। उदित। (२) उत्पन्न। जात।

समुद्गार-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक वमन होना। ज्यादा के होना।

समुद्धरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अन्न जो वमन करने पर पेट से निकला हो। (२) ऊपर की ओर उठाने या निकालने की क्रिया। (३) उद्धार।

समुद्धर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० समुद्धर्तृ] (१) वह जो ऊपर की ओर उठाता या निकालता हो। (२) उद्धार करनेवाला। (३) ऋण चुकानेवाला। कर्ज अदा करनेवाला।

समुद्धार-संज्ञा पुं० दे० "समुद्धरण"।

समुद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्पत्ति। जन्म। (२) होम के लिये जलाई हुई अग्नि।

समुद्भूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न होने की क्रिया। उत्पत्ति। जन्म।

समुद्भेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्पत्ति। (२) विकास।

समुद्यत-वि० [सं०] जो भली भाँति उद्यत हो। अच्छी तरह से तैयार।

समुद्यम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उद्यम। चेष्टा। (२) आरंभ। शुरू।

समुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जल राशि जो पृथ्वी को चारो ओर से घेरे हुए है और जो इस पृथ्वी तल के प्रायः तीन चतुर्थांश में व्याप्त है। सागर। अंबुधि।

विशेष—यद्यपि समस्त संसार एक ही समुद्र से घिरा हुआ है, तथापि सुभीते के लिये उसके पाँच बड़े भाग कर लिए गए हैं; और इनमें से प्रत्येक भाग सागर या महासागर कहलाता है। पहला भाग जो अमेरिका से युरोप और अफ्रिका के मध्य तक विस्तृत है, एटलांटिक समुद्र (सागर या महासागर भी) कहलाता है। दूसरा भाग जो अमेरिका और एशिया के मध्य में है, पैसिफिक या प्रशांत समुद्र कहलाता है। तीसरा भाग जो अफ्रिका से भारत और आस्ट्रेलिया तक है, इंडियन या भारतीय समुद्र कहलाता है। चौथा समुद्र जो एशिया, युरोप और अमेरिका के उत्तर तथा उत्तरी ध्रुव के चारों ओर है, आर्टिक या उत्तरी समुद्र कहलाता है और पाँचवाँ भाग जो दक्षिणी ध्रुव के चारों ओर है, एण्टार्टिक या दक्षिणी समुद्र कहलाता है। परन्तु आजकल लोग प्रायः उत्तरी और दक्षिणी ये दो ही समुद्र मानते हैं, क्योंकि शेष तीनों दक्षिणी समुद्र से बिलकुल मिले हुए हैं; दक्षिण की ओर उनकी कोई सीमा नहीं है। समुद्र के जो छोटे छोटे टुकड़े स्थल में अंदर की ओर चले जाते हैं, वे खाड़ी कहलाते हैं। जैसे,—बंगाल की खाड़ी। समुद्र की कम से कम गहराई प्रायः बारह हजार फुट और अधिक से अधिक गहराई प्रायः तीस हजार फुट तक है। समुद्र में जो लहरें उठा करती हैं, उनका स्थल की ऋतुओं आदि पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। भिन्न भिन्न अक्षांशों में समुद्र के ऊपरी जल का ताप-मान भी भिन्न होता है। कहीं तो वह ठंढा रहता है, कहीं कुछ गरम और कहीं बहुत गरम। ध्रुवों के आस पास उसका जल बहुत ठंढा और प्रायः बरफ के रूप में जमा हुआ रहता है। परंतु प्रायः सभी स्थानों में गहराई की ओर जाने पर अधिकाधिक ठंढा पानी मिलता है। गुण आदि की दृष्टि से समुद्र के सभी स्थानों का जल बिलकुल एक सा और समान रूप से खारा होता है। समुद्र के जल में सब मिलाकर उन्तीस तरह के भिन्न भिन्न तत्व हैं, जिनमें क्षार या नमक प्रधान है। समुद्र के जल से बहुत अधिक नमक निकाला जा सकता है, परंतु कार्य्यतः अपेक्षाकृत बहुत ही कम निकाला जाता है। चंद्रमा के घटने बढ़ने का समुद्र के जल पर विशेष प्रभाव पड़ता है और उसी के कारण ज्वार भाटा आता है। हमारे यहाँ पुराणों में समुद्र की उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ दी गई हैं और कहा गया है कि सब प्रकार के रत्न समुद्र से ही निकलते हैं; इसी लिये उसे "रत्नाकर" कहते हैं।

पर्य्या०—पारावार। सरित्पति। उदधि। सिंधु। अर्णव। जलनिधि। नदीकांत। मकरालय। नीरधि। अंबुधि।

पाथोधि। निधि। इंदुजनक। तिमिकोष। क्षीराब्धि। मितद्रु। वाहिनीपति। गंगाधर। दारद। तिमि। महाशय। वारिराशि। शैलशिविर। महीप्राचीर। पयोधि। निम्न। आदि आदि।

(२) किसी विषय या गुण आदि का बहुत बड़ा आगार।

(३) एक प्राचीन जाति का नाम।

समुद्रकफ–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन।

समुद्रकांची–संज्ञा स्त्री० [सं० समुद्रकाञ्ची] पृथ्वी जिसकी मेखला समुद्र है।

समुद्रकांता–संज्ञा स्त्री० [सं० समुद्रकान्ता] नदी जिसका पति समुद्र माना जाता है और जो समुद्र में जाकर मिलती है।

समुद्रगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी, जो समुद्र की ओर गमन करती है। (२) गंगा का एक नाम।

समुद्रगुप्त–संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त राजवंश के एक बहुत बड़े, प्रसिद्ध और वीर सम्राट् का नाम जिनका समय सन ३३५ से ३७५ ई० तक माना जाता है। अनेक बड़े बड़े राज्यों को जीतकर गुप्त साम्राज्य की स्थापना इन्हींने की थी। इनका साम्राज्य हुगली से चंबल तक और हिमालय से नर्म्मदा तक विस्तृत था। पाटलिपुत्र में इनकी राजधानी थी; परंतु अयोध्या और कौशांबी भी इनकी राजधानियाँ थीं। इन्होंने एक बार अश्वमेध यज्ञ भी किया था।

समुद्रचुलुक–संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि जिन्होंने चुल्लुओं से समुद्र पी डाला था।

समुद्रज–वि० [सं०] समुद्र से उत्पन्न। समुद्रजात।

संज्ञा पुं० मोती, हीरा, पन्ना आदि रत्न जिनकी उत्पत्ति समुद्र से मानी जाती है।

समुद्रझाग–संज्ञा पुं० दे० "समुद्रफेन"।

समुद्रदयिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी। दरिया।

समुद्रनवनीत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमृत। (२) चंद्रमा।

समुद्रनेमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

समुद्रपत्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी। दरिया।

समुद्रपात–संज्ञा पुं० [सं० समुद्र + हिं० पात = पत्ता] एक प्रकार की झाड़दार लता जो प्रायः सारे भारत में पाई जाती है। इसके डंठल बहुत मजबूत और चमकीले होते हैं और पत्ते प्रायः पान के आकार के होते हैं। पत्ते ऊपर की ओर चिकने और सफेद तथा नीचे की ओर हरे और मुलायम होते हैं। इन पत्तों में एक विशेष गुण यह होता है कि यदि घाव आदि पर इनका ऊपरी चिकना तल रखकर बाँधा जाय, तो वह घाव सूख जाता है। और यदि नीचे का रोएँदार भाग रखकर फोड़े आदि पर बाँधा जाय, तो वह पककर बह जाता है। वसंत के अंत में इसमें एक प्रकार के गुलाबी रंग के फूल लगते हैं जो नली के आकार के लंबे होते हैं। ये फूल प्रायः रात के समय खिलते हैं और इनमें से बहुत मीठी गंध निकलती है। इसमें एक प्रकार के गोल, चिकने, चमकीले और हलके भूरे रंग के फल भी लगते हैं। वैद्यक के अनुसार इसकी जड़ बलकारक और आमवात तथा स्नायु संबंधी रोगों को दूर करनेवाली मानी गई है; और इसके पत्ते उत्तेजक, चर्म्मरोगनाशक और घाव को भरनेवाले कहे गए हैं। समुंदर का पत्ता। समुंदरसोख।

समुद्रफल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सदाबहार वृक्ष जो अवध, बंगाल, मध्य भारत आदि में नदियों के किनारे और तर भूमि में तथा कोंकण में समुद्र के किनारे बहुत अधिकता से पाया जाता है। यह प्रायः ३० से ५० फुट तक ऊँचा होता है। इसकी लकड़ी सफेद और बहुत मुलायम होती है और छाल कुछ भूरी या काली होती है। इसके पत्ते प्रायः तीन इंच तक चौड़े और दस इंच तक लंबे होते हैं। शाखाओं के अंत में दो ढाई इंच के घेरे के गोलाकार सफेद फूल लगते हैं। फल भी प्रायः इतने ही बड़े होते हैं जो पकने पर नीचे की ओर से चिपटे या चौपहल हो जाते हैं। वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, गरम, कड़वा और त्रिदोषनाशक होता तथा सन्निपात, भ्रांति, सिर के रोग और भूतबाधा आदि को दूर करता है।

समुद्रफेन–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र के पानी का फेन या झाग जो उसके किनारे पर पाया जाता है और जिसका व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। समुंदरफेन। समुंदरझाग।

विशेष—समुद्र में लहरें उठने के कारण उसके खारे पानी में एक प्रकार का झाग उत्पन्न होता है जो किनारे पर आकर जम जाता है। यही झाग समुद्रफेन के नाम से बाजारों में बिकता है। देखने में यह सफेद रंग का, खरखरा, हलका और जालीदार होता है। इसका स्वाद, फीका, तीखा और खारा होता है। कुछ लोग इसे एक प्रकार की मछली की हड्डियों का पंजर भी मानते हैं। वैद्यक के अनुसार यह कसैला, हलका, शीतल, सारक, रुचिकारक, नेत्रों को हितकारी, विष तथा पित्त विकार नाशक और नेत्र तथा कंठ आदि के रोगों को दूर करनेवाला होता है।

समुद्रमंडूकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सीप। सीपी।

समुद्रमथन–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

समुद्रमालिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी जो समुद्र को अपने चारों ओर माला की भाँति धारण किए हुए है।

समुद्रमेखला–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी जो समुद्र को मेखला के समान धारण किए हुए है।

समुद्रयात्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र के द्वारा दूसरे देशों की यात्रा।

समुद्रयान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्रयात्रा। (२) समुद्र पर चलने की सवारी। जैसे,—जहाज, स्टीमर आदि।

समुद्ररसना-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

समुद्रलवण-संज्ञा पुं० [सं०] करकच नाम का लवण जो समुद्र के जल से तैयार किया जाता है। वैद्यक के अनुसार यह लघु, हृद्य, पित्तवर्धक, विदाही, दीपन, रुचिकारक और कफ तथा वात का नाशक माना जाता है।

समुद्रवसना-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

समुद्रवह्नि-संज्ञा पुं० [सं०] बड़वानल।

समुद्रवास-संज्ञा पुं० [सं० समुद्रवासस] अग्नि।

समुद्रवासी-संज्ञा पुं० [सं० समुद्रवासिन] (१) वह जो समुद्र में रहता हो। (२) वह जो समुद्र के तट पर रहता हो।

समुद्रसार-संज्ञा पुं० [सं०] मोती।

समुद्रसुभगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

समुद्रस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जो समुद्र के तट पर था।

समुद्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र का किनारा। (२) जायफल।

समुद्रांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुरालभा। (२) कार्पासी। (३) पृक्का। (४) जवासा।

समुद्रांबरा-संज्ञा स्त्री० [सं० समुद्राम्बरा] पृथ्वी।

समुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी।

समुद्राभिसारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कल्पित देवबाला जो समुद्र देव की सहचरी मानी जाती है।

समुद्रायणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

समुद्रार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंभीर नामक जल जंतु। (२) सेतुबंध। (३) एक प्रकार की मछली जिसे तिमिंगिल कहते हैं।

समुद्रार्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

समुद्रावरणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

समुद्रिय-वि० [सं०] (१) समुद्र संबंधी। समुद्र का। (२) समुद्र से उत्पन्न। समुद्र-जात।

समुद्रीय-वि० [सं०] समुद्र संबंधी। समुद्र का।

समुद्रोन्मादन-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

समुद्वह-वि० [सं०] (१) श्रेष्ठ। उत्तम। बढ़िया। (२) वहन करनेवाला। ढोनेवाला।

समुद्वाह-संज्ञा पुं० [सं०] विवाह। शादी। पाणिग्रहण।

समुन्नत-वि० [सं०] (१) जिसकी यथेष्ट उन्नति हुई हो। खूब बढ़ा चढ़ा। (२) बहुत ऊँचा।

संज्ञा पुं० वास्तु विद्या के अनुसार एक प्रकार का स्तंभ या खंभा।

समुन्नति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यथेष्ट उन्नति। काफी तरक्की। (२) महत्व। बड़ाई। (३) उच्चता।

समुन्नद-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम।

समुन्नद्ध-वि० [सं०] (१) जो अपने आपको बड़ा पंडित समझता हो। (२) अभिमानी। घमंडी। (३) उत्पन्न। उद्भूत। जात।

संज्ञा पुं० प्रभु। स्वामी। मालिक।

समुन्नयन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊपर की ओर उठाने या ले जाने की क्रिया। (२) प्राप्ति। लाभ।

समुपवेशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह बैठने की क्रिया। (२) अभ्यर्थना।

समुपह्वव-संज्ञा पुं० [सं०] होम आदि के द्वारा देवताओं का आमंत्रण करना।

समुल्लास-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० समुल्लसित] (१) उल्लास। आनंद। प्रसन्नता। खुशी। (१) ग्रंथ आदि का प्रकरण या परिच्छेद।

समूढ़-वि० [सं०] (१) ढेर लगाया हुआ। (२) एकत्र किया हुआ। संचित। संगृहीत। (३) पकड़ा हुआ। (४) भोगा हुआ। भुक्त। (५) जिसका विवाह हो चुका हो। विवाहित। (६) जो अभी उत्पन्न हुआ हो। सद्यः जात। (७) संगत। ठीक।

समूर, समूरु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग। शंबर या साबर नामक हिरन।

समूल-वि० [सं०] (१) जिसमें मूल या जड़ हो। (२) जिसका कोई हेतु हो। कारण सहित।

क्रि० वि० जड़ से। मूल सहित। जैसे,—किसी का कार्य्य समूल नष्ट कर देना।

समूह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ही तरह की बहुत सी चीजों का ढेर। राशि। (२) समुदाय। झुंड। गरोह।

समूहगंध-संज्ञा पुं० [सं०] मोतिया नामक फूल। गंधराज।

समूहनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] झाड़ू। बुहारी।

समूह्य-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की अग्नि।

वि० तर्क करने के योग्य। ऊहा करने के योग्य।

समृद्ध-वि० [सं०] (१) जिसके पास बहुत अधिक संपत्ति हो। संपन्न। धनवान। (२) उत्पन्न। जात।

संज्ञा पुं० महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

समृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत अधिक संपन्नता। ऐश्वर्य्य। अमीरी। (२) कृतकार्य्यता। सफलता। (३) प्रभाव।

समृद्धी-संज्ञा पुं० [सं० समृद्धिन] वह जो बराबर अपनी समृद्धि बढ़ाता रहता हो।

संज्ञा स्त्री० दे० "समृद्धि"।

समेटना-क्रि० स० [हिं० सिमटना] (१) बिखरी हुई चीज़ों को इकट्ठा करना। (२) अपने ऊपर लेना। जैसे,—किसी का सब समेटना।

समेड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातका का नाम।

समेत-वि० [सं०] संयुक्त। मिला हुआ।

अव्य० सहित। साथ।

संज्ञा पुं० पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

समेध-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मेरु के अंतर्गत एक पर्वत का नाम।

समोह-संज्ञा पुं० [सं०] समर। युद्ध। लड़ाई।

सम्मंत्रय-वि० [सं०] (१) मंत्रणा करने योग्य। (२) भली भाँति मनन करने योग्य।

सम्मत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राय। सम्मति। सलाह। (२) अनुमति।

वि० जिसकी राय मिलती हो। सहमत। अनुमत।

सम्मति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सलाह। राय। (२) अनुमति। आदेश। अनुज्ञा। (३) मत। अभिप्राय। (४) सम्मान। प्रतिष्ठा। (५) इच्छा। वासना। (६) आत्मबोध। आत्म-ज्ञान।

सम्मद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हर्ष। आमोद। आह्लाद। (२) एक प्रकार की मछली। विष्णुपुराण में लिखा है कि यह मछली अधिक जल में रहती है और बहुत बड़ी होती है। इसके बहुत बच्चे होते हैं।

वि० सुखी। आनंदित। हर्षयुक्त। प्रसन्न।

सम्मर्द-संज्ञा पुं० [सं०] (१) युद्ध। लड़ाई। (२) समूह। भीड़। (३) परस्पर का विवाद। लड़ाई झगड़ा।

सम्मर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली भाँति मर्दन करने का व्यापार। (२) वासुदेव के पुत्रों में एक पुत्र। (३) वह जो भली भाँति मर्दन करता हो। अच्छी तरह मर्दन करनेवाला।

सम्मर्दी-संज्ञा पुं० [सं० सम्मर्दिन्] भली भाँति मर्दन करनेवाला।

सम्मर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] मर्ष। सहन।

सम्महा-संज्ञा पुं० [डिं०] अग्नि। आग। पावक।

सम्मातृ-वि० [सं०] जिसकी माता पतिव्रता हो। सती मातावाला।

सम्माद-संज्ञा पुं० [सं०] उन्माद। पागलपन।

सम्मान-संज्ञा पुं० [सं०] समादर। इज़्ज़त। मान। गौरव। प्रतिष्ठा।

वि० (१) मान सहित। (२) जिसका मान पूरा हो। ठीक मानवाला।

सम्मानना-संज्ञा स्त्री० दे० "सम्मान"।

* क्रि० स० सम्मान करना। आदर करना।

सम्मानित-वि० [सं०] जिसका सम्मान हुआ हो। प्रतिष्ठित। इज़्ज़तदार।

सम्मार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा मार्ग। सन्मार्ग। श्रेष्ठ पद प्राप्त कराने का रास्ता। (२) वह मार्ग जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सम्मार्ज्जक-संज्ञा पुं० [सं०] बुहारन। झाड़ू। कूचा।

सम्मार्जनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] झाड़ू। बुहारी। कूचा।

सम्मित-वि० [सं०] समान। सदृश। अनुरूप। मिलता जुलता।

सम्मिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँची और बड़ी कामना। उच्चाकांक्षा।

सम्मिलन-संज्ञा पुं० [सं०] मिलन। मिलाप। मेल।

सम्मिलित-वि० [सं०] मिला हुआ। मिश्रित। युक्त।

सम्मिश्र-वि० [सं०] मिला हुआ। संयुक्त।

सम्मिश्रण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिलाने की क्रिया। (२) मेल। मिलावट।

सम्मुख-अव्य० [सं०] सामने। समक्ष। आगे। जैसे,—बड़ों के सम्मुख इस प्रकार की बातें नहीं कहनी चाहिएँ।

सम्मुखी-संज्ञा पुं० [सं० सम्मुखिन्] (१) वह जो सामने हो। (२) वह जिसमें मुख देखा जाय। दर्पण। मुकुर। आइना।

सम्मुखीन-वि० [सं०] जो सम्मुख हो। सामने का।

सम्मूढ़-वि० [सं०] (१) मोह-युक्त। मुग्ध। (२) निर्बोध। अज्ञान। (३) टूटा हुआ। भग्न। (४) ढेर लगाया हुआ। राशिकृत।

सम्मूढ़पीड़िका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का शुक्र रोग जिसमें लिंग टेढ़ा हो जाता है और उस पर फुंसियाँ निकल आती हैं। कहते हैं कि वायु के कुपित होने से इसकी उत्पत्ति होती है।

सम्मूर्छन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली भाँति व्याप्त होने की क्रिया। अभिव्याप्ति। (२) मोह। मूर्च्छा। बेहोशी। (३) वृद्धि। बढ़ती। (४) विस्तार।

सम्मृष्ट-वि० [सं०] जिसका संशोधन भली भाँति हुआ हो। अच्छी तरह साफ किया हुआ।

सम्मेलन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्यों का किसी निमित्त एकत्र हुआ समाज। सभा। समाज। (२) जमावड़ा। जमघट। (३) मेल। मिलाप। संगम।

सम्मोद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रीति। प्रेम। (२) हर्ष। प्रसन्नता। आनंद।

सम्मोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोह। प्रेम। (२) भ्रम। संदेह। (३) मूर्च्छा। बेहोशी। (४) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और एक गुरु होता है।

सम्मोहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो मोह लेता हो। मोहक। लुभावना। (२) एक प्रकार का सन्निपात ज्वर, जिसमें वायु अति प्रबल होती है। इसके कारण शरीर में वेदना, कंप, निद्रानाश आदि होता है।

सम्मोहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोहित करने की क्रिया। मुग्ध करना। (२) वह जिससे मोह उत्पन्न होता हो। मोह-

कारक। (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जिससे शत्रु को मोहित कर लेते थे। (४) कामदेव के पाँच बाणों में एक बाण का नाम।

सम्यक्-संज्ञा पुं० [सं०] समुदाय। समूह।

वि० पूरा। सब।

क्रि० वि० (१) सब प्रकार से। (२) अच्छी तरह। भली भाँति।

सम्यक्चारित्र-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार धर्म्मत्रय में से एक धर्म्म। बहुत ही धर्म्म तथा शुद्धता-पूर्वक आचरण करना।

सम्यक्ज्ञान-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के धर्म्मत्रय में से एक। न्याय प्रमाण द्वारा प्रतिष्ठित सात या नौ तत्त्वों का ठीक और पूरा ज्ञान।

सम्यक्दर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार धर्म्मत्रय में से एक। रत्नत्रय, सातो तत्त्वों और आत्मा आदि में पूरी पूरी श्रद्धा होना।

सम्यक्दर्शी-संज्ञा पुं० [सं० सम्यक्दर्शिन] वह जिसे सम्यक्दर्शन प्राप्त हो।

सम्यक्संबुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसे सब बातों का पूरा और ठीक ज्ञान प्राप्त हो गया हो। (२) बुद्ध का एक नाम।

सम्यक्संबोध-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

सम्यक्समाधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक प्रकार की समाधि।

सम्राज्ञी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सम्राट् की पत्नी। (२) साम्राज्य की अधीश्वरी।

सम्राट्-संज्ञा पुं० [सं० सम्राज] वह बहुत बड़ा राजा जिसके अधीन बहुत से राजा महाराज आदि हों। महाराजाधिराज। शाहंशाह।

सयन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंधन। (२) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

सयोनि-वि० [सं०] (१) जो एक ही योनि से उत्पन्न हुए हों। (२) एक ही जाति या वर्ग आदि के।

संज्ञा पुं० इंद्र का एक नाम।

सयोनिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सयोनि होने का भाव या धर्म्म।

सर-संज्ञा पुं० [सं० सरस] बड़ा जलाशय। ताल। तालाब।

†संज्ञा पुं० दे० "शर"।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) सिर। (२) सिरा। चोटी। उच्च स्थान।

यौ०—सरअंजाम। सरपरस्त। सरपंच। सरदार। सरहद।

मुहा०—सर करना = बंदूक छोड़ना। फायर करना।

वि० दमन किया हुआ। जीता हुआ। पराजित। अभिभूत।

मुहा०—सर करना = (१) जीतना। वश में लाना। दबाना। (२) खेल में हराना।

संज्ञा पुं० [अं०] एक बड़ी उपाधि जो अँगरेजी सरकार देती है।

सरअंजाम-संज्ञा पुं० [फा०] सामान। सामग्री। असबाब।

सरई-संज्ञा स्त्री० दे० "सरहरी"।

सरकंडा-संज्ञा पुं० [सं० शरकांड] सरपत की जाति का एक पौधा जिसमें गाँठवाली छड़ें होती हैं।

सरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरकने की क्रिया। खिसकना। चलना। (२) मद्य पात्र। शराब का प्याला। (३) गुड़ की बनी शराब। (४) मद्यपान। शराब पीना। (५) यात्रियों का दल। कारवाँ।

सरकना-क्रि० अ० [सं० सरण, सरक] (१) जमीन से लगे हुए किसी ओर धीरे से बढ़ना। किसी तरफ हटना। खिसकना। जैसे,—थोड़ा पीछे सरको। (२) नियत काल से और आगे जाना। टलना। जैसे,-विवाह सरकना। (३) काम चलना। निर्वाह होना। जैसे,—काम सरकना।

संयो० क्रि०—जाना।

सरकश-वि० [फा०] (१) उद्धत। उद्दंड। अक्खड़। (२) शासन न माननेवाला। विरोध में सिर उठानेवाला। (३) शरारती।

सरकशी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) उद्दंडता। औद्धत्य। (२) नटखटी। शरारत।

सरकार-संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० सरकारी] (१) प्रधान। अधिपति। मालिक। प्रभु। (२) राज्य। राज्य-संस्था। शासन-सत्ता। गवर्नमेंट। (३) राज्य। रियासत। जैसे,—निज़ाम सरकार।

सरकारी-वि० [फा०] (१) सरकार का। मालिक का। (२) राज्य का। राजकीय। जैसे,—सरकारी इंतजाम, सरकारी कागज़।

यौ०—सरकारी कागज़ = (१) राज्य के दफ्तर का कागज़। (२) प्रामिसरी नोट। जैसे,—उसके पास डेढ़ लाख रुपयों के सरकारी कागज हैं।

सरखत-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह कागज या दस्तावेज़ जिस पर मकान आदि किराए पर दिए जाने की शर्त्तें होती हैं। (२) दिए और चुकाए हुए ऋण आदि का ब्योरा।

सरगना-क्रि० अ० [देश०] डींग मारना। शेखी बघारना। बढ़ चढ़ कर बातें करना।

सरगना-संज्ञा पुं० [फा०] सरदार अगुवा। जैसे,—चोरों का सरगना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः बुरे अर्थ में ही होता है।

सरगम-संज्ञा पुं० [हिं० सा, रे, ग, म] संगीत में सात स्वरों के चढ़ाव उतार का क्रम । स्वरग्राम ।

सरगर्दानी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] परेशानी । हैरानी । दिक्कत ।

सरगर्म-वि० [फ़ा०] (१) जोशीला । आवेशपूर्ण । (२) उमंग से भरा हुआ । उत्साही ।

सरगर्मी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) जोश । आवेश । (२) उमंग । उत्साह ।

सरघा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मधुमक्खी ।

सरजा-संज्ञा पुं० [फ़ा० शरज़ाह = उच्च पदवाला; अ० शरज: = सिंह] (१) श्रेष्ठ व्यक्ति । सरदार । (२) सिंह । उ०—सरजा सिवा जी जंग जीतन चलत है ।—भूषण ।

सरजीवन|-वि० [सं० संजीवन] (१) संजीवन । जिलानेवाला । (२) हरा भरा । उपजाऊ ।

सरज़ोर-वि० [फ़ा०] (१) जबरदस्त । (२) उद्दंड । दुर्दमनीय । सरकश ।

सरज़ोरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) ज़बरदस्ती । (२) उद्दंडता ।

सरट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छिपकली । (२) गिरगिट ।

सरण-संज्ञा पुं० [सं०] धीरे धीरे हटना या चलना । आगे बढ़ना । सरकना । खिसकना ।

सरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्ग । रास्ता । (२) पगडंडी । दुर्री । (३) लकीर । (४) दर्रा ।

सरता बरता-संज्ञा पुं० [सं० बर्तन, हिं० बरतना + अनु० सरतना] बाँट । बँटाई ।

मुहा०—सरता बरता करना = आपस में काम चला लेना ।

सरद-वि० दे० "सर्द" ।

सरदई-वि० [फ़ा० सरद:] सरदे के रंग का । हरापन लिए पीला ।

सर दर-क्रि० वि० [फ़ा० सर + दर = भाव] (१) एक सिरे से । (२) सब एक साथ मिला कर । औसत में ।

सरदल-संज्ञा पुं० [देश०] दरवाजे का बाजू या साह । क्रि० वि० दे० "सर दर" ।

सरदा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सर्द:] एक प्रकार का बहुत बढ़िया खरबूजा जो काबुल से आता है ।

सरदार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी मंडली का नायक । अगुवा । श्रेष्ठ व्यक्ति । (२) किसी प्रदेश का शासक । (३) अमीर । रईस । (४) वेश्याओं की परिभाषा में वह व्यक्ति जिसका किसी वेश्या के साथ संबंध हो ।

सरदारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सरदार का पद या भाव ।

सरन-ॐ|- संज्ञा स्त्री० दे० "शरण" ।

सरना-क्रि० अ० [सं० सरण = चलना, सरकना] (१) चलना । सरकना । खिसकना । (२) हिलना । डोलना । (३) काम चलना । पूरा पड़ना । जैसे,—इतने से काम नहीं सरेगा । (४) संपादित होना । किया जाना । निबटना । जैसे,—काम सरना । (५) निर्वाह होना । गुज़ारा होना । निभना ।

सरनाम-वि० [फ़ा०] जिसका नाम हो । प्रसिद्ध । मशहूर । विख्यात ।

सरनामा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी लेख या विषय का निर्देश जो ऊपर लिखा रहता है । शीर्षक । (२) पत्र का आरंभ या संबोधन । (३) पत्र आदि पर लिखा जानेवाला पता ।

सरपंच-संज्ञा पुं० [फ़ा० सर + हिं० पंच] पंचों में बड़ा व्यक्ति । पंचायत का सभापति ।

सरपट-क्रि० वि० [सं० सर्पण] घोड़े की बहुत तेज दौड़ जिसमें वह दोनों अगले पैर साथ साथ आगे फेंकता है ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।—डालना ।—दौड़ना ।—फेंकना ।

सरपत-संज्ञा पुं० [सं० शरपत्र] कुश की तरह की एक घास जिसमें टहनियाँ नहीं होतीं, बहुत पतली (आधे जौ भर) और हाथ दो हाथ लंबी पत्तियाँ ही मध्य भाग से निकलकर चारों ओर घनी फैली रहती हैं । इसके बीच से पतली छड़ निकलती है जिसमें फूल लगते हैं । यह घास छप्पर आदि छाने के काम में आती है ।

सरपरस्त-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) रक्षा करनेवाला श्रेष्ठ पुरुष । (२) अभिभावक । संरक्षक ।

सरपरस्ती-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) संरक्षा । (२) अभिभावकता ।

सरपेच-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पगड़ी के ऊपर लगाने का एक जड़ाऊ गहना । (२) दो ढाई अंगुल चौड़ा गोटा ।

सरपोश-संज्ञा पुं० [फ़ा०] थाल या तश्तरी ढकने का कपड़ा ।

सरफ़राज़-वि० [फ़ा०] (१) उच्च पदस्थ । बड़ाई को पहुँचा हुआ । महत्वप्राप्त । (२) धन्य । कृतार्थ ।

मुहा०—सरफ़राज़ करना = वेश्या के साथ प्रथम समागम करना । (बाजारी)

सरफोका-संज्ञा पुं० दे० "सरकंडा" ।

सरबंधी-ॐ संज्ञा पुं० [सं० शरबंध] तीरंदाज़ । धनुर्धर ।

सरब-ॐ|वि० दे० "सर्व" ।

सरबराह-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) प्रबंधकर्त्ता । इंतज़ाम करनेवाला । कारिंदा । (२) राज-मजदूरों आदि का सरदार ।

सरबराहकार-संज्ञा पुं० [फ़ा० सरबराह + कार] किसी कार्य का प्रबंध करनेवाला । कारिंदा ।

सरबराही-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) प्रबंध । इंतजाम । (२) माल असबाब की निगरानी । (३) सरबराह का पद या कार्य्य ।

सरबस-ॐ|संज्ञा पुं० दे० "सर्वस्व" ।

सरमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की एक कुतिया ।

विशेष—ऋग्वेद में यह इंद्र की कुतिया यमराज के चार आँखवाले कुत्तों की माता कही गई है । पणि लोग जब इंद्र की या आर्यों की गौएँ चुरा ले गए थे, तब यह उन्हें जाकर ढूँढ़

लाई थी। महाभारत में इसका उल्लेख देवशुनी के नाम से हुआ है। सरमा देवशुनी ऋग्वेद के एक मंत्र की द्रष्टा भी है। (२) कुतिया। (३) कश्यप की एक स्त्री का नाम। (अग्नि पु०)

सरया-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा धान जिसका चावल लाल होता है और जो कुआर में तैयार हो जाता है। सारो।

सरयू-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर भारत की एक प्रसिद्ध नदी जिसके किनारे पर प्राचीन अयोध्या नगरी बसी थी। सरस्वती, सिंधु और गंगा आदि नदियों के साथ ऋग्वेद में इसका भी नाम आया है।

सरर-संज्ञा पुं० [हिं० सरकंडा] बाँस या सरकंडे की पतली छड़ी जो ताना ठीक करने के लिये जुलाहे लगाते हैं। सथिया। सतगारा।

सरराना†-क्रि० अ० [अनु० सरसर] हवा बहने या हवा में किसी वस्तु के वेग से चलने का शब्द होना। उ०—धररान कूर लागे। नररान सूर आगे। चररान बाल उट्ठी। सररान तीर मुट्ठी।—सूदन।

सरल-वि० [सं०] [स्त्री० सरला] (१) जो सीधा चला गया हो। (२) जो टेढ़ा न हो। सीधा। (३) जो कुटिल न हो। जो चालबाज़ न हो। निष्कपट। सीधा सादा। भोलाभाला। (४) जिसका करना कठिन न हो। सहज। आसान। (५) ईमानदार। सच्चा। (६) असली।

संज्ञा पुं० (१) चीड़ का पेड़ जिससे गंधा बिरोज़ा निकलता है। (२) एक चिड़िया। (३) अग्नि। (४) एक बुद्ध का नाम। (५) सरल का गोंद। गंधा बिरोज़ा।

सरलकद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] चिरौंजी। पियाल वृक्ष।

सरलकाष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] चीड़ की लकड़ी।

सरलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टेढ़ा न होने का भाव। सीधा-पन। (२) निष्कपटता। सिधाई। (३) सुगमता। आसानी। (४) सादगी। सादापन। भोलापन। (५) सत्यता। सचाई।

सरलतृण-संज्ञा पुं० [सं०] भूतृण। गंधतृण।

सरलद्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोज़ा। (२) तारपीन का तेल। श्रीवेष्ट।

सरल निर्यास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोजा। (२) तारपीन का तेल। श्रीवेष्ट।

सरलपुंठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पहिना मछली।

सरलरका-संज्ञा स्त्री० [सं०] विकंकत। कँटाई।

सरलरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोजा। (२) तारपीन का तेल।

सरलस्यंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोज़ा। (२) तारपीन का तेल।

सरलांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोज़ा। (२) तारपीन का तेल।

सरला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चीड़ का पेड़। (२) काली तुलसी। कृष्ण तुलसी। (३) मल्लिका। मोतिया। (४) सफेद निसोथ।

सरलित-वि० [सं०] सीधा या सहज किया हुआ।

सरवन-संज्ञा पुं० [सं० श्रमण] अंधक मुनि के पुत्र जो अपने पिता को एक बहँगी में बैठाकर ढोया करते थे।

विशेष—इनकी कथा रामायण के अयोध्या कांड में उस समय आई है जब दशरथ राम के बन जाने के शोक में प्राण-त्याग कर रहे थे। दशरथ ने कौशल्या से अंधक मुनि के शाप की कथा इस प्रकार कही थी। एक बार दशरथ ने जंगली हाथी के धोखे में सरयू नदी के किनारे जल लेते हुए एक तापस-कुमार पर बाण चला दिया। जब वे पास गए, तब तापस-कुमार ने बतलाया कि मैं अपने अंधे माता पिता को एक जगह रख उनके लिये पानी लेने आया था। जब तापस-कुमार मर गया, तब राजा दशरथ शोक करते हुए अंधक मुनि के पास गए और सब वृत्तांत कह सुनाया। मुनि ने शाप दिया कि जिस प्रकार मैं पुत्र के शोक से प्राणत्याग कर रहा हूँ, उसी प्रकार तुम भी प्राणत्याग करोगे। ठीक यही कथा बौद्धों के शाम जातक में भी है। केवल दशरथ का नाम नहीं है; और ऊपर से इतना और जोड़ा गया है कि अंधे मुनि ने जब बुद्ध भगवान् और धर्म की दुहाई दी, तब एक देवी ने प्रकट होकर तापस-कुमार को जिला दिया। सरवन की पितृभक्ति के गीत गानेवाले भिक्षुकों का एक संप्रदाय अब भी अवध तथा उसके आस पास के प्रदेशों में पाया जाता है। जान पड़ता है कि यह संप्रदाय पहले बौद्ध भिक्षुओं का ही एक दल था, जैसा कि "सरवन" या श्रमण नाम से स्पष्ट प्रतीत होता है। वाल्मीकि रामायण में केवल तापस-कुमार कहा गया है, कोई नाम नहीं आया है।

क्षि†-संज्ञा पुं० दे० "श्रवण"।

सरवर-संज्ञा पुं० दे० "सरोवर"।

संज्ञा पुं० [फा०] सरदार। अधिपति।

सरवरिक्षि†-संज्ञा स्त्री० [सं० सदृश, प्रा० सरिस + बर] बराबरी। तुलना। समता। उ०—(क) शशि जो होइ नहिं सरवरि छाजै। होइ सो अमावस दिनमन लाजै।—जायसी। (ख) हमहिं तुमहिं सरवरि कस नाथा।—तुलसी।

सरवा†-संज्ञा पुं० दे० "साला"।

सरवाक-संज्ञा पुं० [सं० शरावक = प्याला] (१) संपुट। प्याला। (२) दीया। कसोरा। उ०—राम की रजाय तें रसायनी समीर सुनु उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो। जातुधान पुट

तुट पुटपाक लंक जात रूप रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो।—तुलसी।

सरविस–संज्ञा स्त्री० [अं० सर्विस] (१) नौकरी। (२) खिदमत। सेवा।

सरवे–संज्ञा पुं० [अं० सर्वे] (१) जमीन की पैमाइश। (२) वह सरकारी विभाग जो जमीन की पैमाइश किया करता है।

सरसंप्रत–संज्ञा पुं० [सं०] तिधारा थूहर। पत्रगुप्त वृक्ष।

सरस्–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० सरसी] सरोवर। तालाब।

सरस–वि० [सं०] (१) रसयुक्त। रसीला। (२) गीला। भीगा। सजल। (३) जो सूखा या मुरझाया न हो। हरा। ताजा। (४) सुंदर। मनोहर। (५) मधुर। मीठा। (६) जिसमें भाव जगाने की शक्ति हो। भावपूर्ण। जैसे,—सरस काव्य। उ०—निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होहु अथवा अति फीका।—तुलसी। (७) छप्पय छंद के ३५ वें भेद का नाम जिसमें ३६ गुरु, ८० लघु, कुल ११६ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (८) रसिक। सहृदय। भावुक।

सरसई–संज्ञा स्त्री० [सं० सरस्वती, प्रा० सरस्सई] सरस्वती नदी या देवी। उ०—सरसइ ब्रह्म-विचार-प्रचारा।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [सं० सरस] (१) सरसता। रसपूर्णता। (२) हरापन। ताजापन। उ०—नित्य निज हिय जु लगी चलत पिय लख रेख खरोंट। सूखन देति न सरसई खोंटि खोंटि खत खोंट।—बिहारी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सरसों] फल के छोटे अंकुर या दाने जो पहले दिखाई पड़ते हैं। जैसे,—आम की सरसई।

सरसठ–वि० संज्ञा पुं० दे० "सड़सठ"।

सरसठवाँ–वि० दे० "सड़सठवाँ"।

सरसना–क्रि० अ० [सं० सर+ना (प्रत्य०)] (१) हरा होना। पनपना। (२) वृद्धि को प्राप्त होना। बढ़ना। उ०—सुफल होत मन कामना मिटत विघन के द्वंद। गुन सरसत बरषत हरष सुमिरत लाल मुकुंद। (३) शोभित होना। सोहाना। उ०—वाको विलोकिये जो मुख इंदु लगै यह इंदु कहूँ लव लेस मैं। बेनी प्रवीन महा सरसै छबि जो परसै कहँ स्यामल केस मैं।—बेनी। (४) रसपूर्ण होना। (५) भाव की उमंग से भरना।

सरसब्ज़–वि० [फ़ा०] (१) हरा भरा। जो सूखा या मुरझाया न हो। लहलहाता। (२) जहाँ हरियाली हो। जो घास और पेड़ पौधों से हरा हो। जैसे,—सरसब्ज़ मैदान।

सर सर–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) ज़मीन पर रेंगने का शब्द। (२) वायु के चलने से उत्पन्न ध्वनि। जैसे,—हवा सर सर चल रही है।

सरसराना–क्रि० अ० [अनु० सर सर] (१) सर सर की ध्वनि होना। (२) वायु का सर सर की ध्वनि करते हुए बहना। वायु का तेजी से चलना। सनसनाना। उ०—सरसराती हुई हवा केले के पत्तों को हिलाती है।—रत्नावली। (३) साँप या किसी कीड़े का रेंगना।

सरसराहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० सरसर+आहट (प्रत्य०)] (१) साँप आदि के रेंगने से उत्पन्न ध्वनि। (२) शरीर पर रेंगने का सा अनुभव। खुजली। सुरसुराहट। (३) वायु बहने का शब्द।

सरसरी–वि० [फा० सरासरी] (१) जम कर या अच्छी तरह नहीं। जल्दी में। जैसे,—सरसरी नज़र से देखना। (२) चलते ढंग पर। काम चलाने भर को। स्थूल रूप से। मोटे तौर पर। जैसे,—अभी सरसरी तौर से कर जाओ।

सरसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद निसोथ। शुक्ल त्रिवृता।

सरसाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सरस+आई (प्रत्य०)] (१) सरसता। (२) शोभा। सुंदरता। (३) अधिकता।

सरसाना–क्रि० स० [हिं० सरसना] (१) रसपूर्ण करना। (२) हरा भरा करना।

क्रि० अ० दे० "सरसना"।

–क्रि० अ० शोभित होना। शोभा देना। सजना। उ०–(क) लै आए निज अंक में शोभा कही न जाई। जिमि जलनिधि की गोद में शशि शिशु शुभ सरसाई।—गोपाल। (ख) सुंदर सुधी सुगोल रची विधि कोमलता अति ही सरसात है।—हरिऔध।

सरसाम–संज्ञा पुं० [फ़ा०] सन्निपात। त्रिदोष। बाई।

सरसार–वि० [फ़ा० सरशार] (१) डूबा हुआ। मग्न। (२) गड़ाप। चूर। मदमस्त। (नशे में)

सरसिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिंगुपत्री। (२) छोटा ताल। (३) बावली।

सरसिज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो ताल में होता हो। (२) कमल।

सरसिजयोनि–संज्ञा पुं० [सं०] कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा।

सरसिरुह–संज्ञा पुं० [सं०] (सर में उत्पन्न) कमल।

सरसी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा ताल। छोटा सरोवर। तलैया। (२) पुष्करिणी। बावली। उ०—कठुला कंठ बघनहा नीके। नयन सरोज मयन सरसी के।—सूर। (३) एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में न, ज, भ, ज, ज, ज, र होते हैं।

सरसीक–संज्ञा पुं० [सं०] सारस पक्षी।

सरसीरुह–संज्ञा पुं० [सं०] (सर में उत्पन्न होनेवाला) कमल।

सरसुल गोरंटी–संज्ञा स्त्री० [देश०] सफेद कटसरैया। श्वेत झिंटी।

सरसेटना–क्रि० स० [अनु०] खरी खोटी सुनाना। फटकारना। भला बुरा कहना।

सरसों-संज्ञा स्त्री० [सं० सर्षप] एक धान्य या पौधा जिसके गोल गोल छोटे बीजों से तेल निकलता है। एक तेलहन।

विशेष—भारत के प्रायः सभी प्रांतों में इसकी खेती तेल के लिये होती है। इसका डंठल दो तीन हाथ ऊँचा होता है। पत्ते हरे और कटे किनारेवाले होते हैं। ये चिकने होते और डंठी से सटे रहते हैं। फूल चमकीले पीले रंग के होते हैं। फलियाँ दो तीन अंगुल लंबी पतली और गोल होती हैं जिनमें महीन बीज के दाने भरे होते हैं। कार्त्तिक में गेहूँ के साथ तथा अलग भी इसे बोते हैं। माघ तक यह तैयार हो जाता है। सरसों दो प्रकार की होती है—लाल और पीली या सफेद। इसे लोग मसाले के काम में भी लाते हैं। इसका तेल, जो कड़ुआ तेल कहलाता है, नित्य के व्यवहार में आता है। इसके पत्तों का साग बनता है।

सरस्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्राचीन नदी जो पंजाब में बहती थी और जिसकी क्षीण धारा कुरुक्षेत्र के पास अब भी है। (२) विद्या या वाणी की देवी। वाग्देवी। भारती। शारदा।

विशेष—वेदों में इस नदी का उल्लेख बहुत है और इसके तट का देश बहुत पवित्र माना गया है। पर वहाँ यह नदी अनिश्चित सी है। बहुत से स्थलों में तो सिंधु नदी के लिये ही इसका प्रयोग जान पड़ता है। कुरुक्षेत्र के पास से होकर बहनेवाली मध्यदेशवाली सरस्वती के लिये इस शब्द का प्रयोग थोड़ी ही जगहों में हुआ है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि पारसियों के आवस्ता ग्रंथ में अफगानिस्तान की जिस "हरख्वैती" नदी का उल्लेख है, वास्तव में वही मूल सरस्वती है। पीछे पंजाब की नदी को यह नाम दिया गया। ऋग्वेद में इस नदी के समुद्र में गिरने का उल्लेख है। पर पीछे की कथाओं में इसकी धारा लुप्त होकर भीतर भीतर प्रयाग में जाकर गंगा से मिलती हुई कही गई है। वेदों में सरस्वती नदियों की माता कही गई है और उसकी सात बहिनें बताई गई हैं। एक स्थान पर वह स्वर्ण मार्ग से बहती हुई और वृत्रासुर का नाश करनेवाली कही गई है। वेद मंत्रों में जहाँ देवता रूप में इसका आह्वान है, वहाँ पूषा, इंद्र और मरुत आदि के साथ इसका संबंध है। कुछ मंत्रों में यह इड़ा और भारती के साथ तीन यज्ञ-देवियों में रखी गई है। वाजसनेयी संहिता में कथा है कि सरस्वती ने वाचा देवी के द्वारा इंद्र को शक्ति प्रदान की थी। आगे चलकर ब्राह्मण ग्रंथों में सरस्वती वाग्देवी ही मान ली गई है। पुराणों में सरस्वती देवी ब्रह्मा की पुत्री और स्त्री दोनों कही गई है और उसका वाहन हंस बताया गया है। महाभारत में एक स्थान पर सरस्वती को दक्ष-प्रजापति की कन्या लिखा है। लक्ष्मी और सरस्वती देवी का वैर भी प्रसिद्ध है।

(३) विद्या। इल्म। (४) एक रागिनी जो शंकराभरण और नट नारायण के योग से उत्पन्न मानी जाती है। (५) ब्राह्मी बूटी। (६) मालकँगनी। ज्योतिष्मती लता। (७) सोम लता। (८) एक छंद का नाम। (९) गाय।

सरस्वती कंठाभरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। (२) भोज कृत अलंकार का एक ग्रंथ। (३) एक पाठशाला जिसे धार के परमारवंशी राजा भोज ने स्थापित किया था।

सरस्वती-पूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती का उत्सव जो कहीं वसंतपंचमी को और कहीं आश्विन में होता है।

सरहंग-संज्ञा पुं० [फा०] (१) सेना का अफसर। नायक। कप्तान। (२) मल्ल। पहलवान। (३) जबरदस्त। बलवान। (४) पैदल सिपाही। (५) चोबदार। (६) कोतवाल।

सरहंगी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) सिपहगिरी। सेना की नौकरी। (२) वीरता। (३) पहलवानी।

सरह-संज्ञा पुं० [सं० शलभ, प्रा० सरह] (१) पतंग। फतिंगा। (२) टिड्डी। उ०—कटक सरह अस छूट।—जायसी।

सरहज-संज्ञा स्त्री० [सं० श्यालजाया] साले की स्त्री। पत्नी के भाई की स्त्री।

सरहटी-संज्ञा स्त्री० [सं० सर्पाक्षी] सर्पाक्षी नाम का पौधा। नकुलकंद।

विशेष—यह पौधा दक्षिण के पहाड़ों, आसाम, बरमा और लंका आदि में बहुत होता है। इसके पत्ते समवर्ती, २ से ५ इंच तक लंबे तथा १ से १॥ इंच तक चौड़े, अंडाकार, अनीदार और नुकीले होते हैं। टहनियों के अंत में छोटे छोटे सफेद रंग के फल आते हैं। बीज बारीक तथा तिकोने होते हैं। सरहटी स्वाद में कुछ खट्टी और कड़वी होती है। कहते हैं कि जब साँप और नेवले में युद्ध होता है, तब नेवला अपना विष उतारने के लिये इसे खाता है। इसी से हिंदुस्तान और सिंहल आदि में इसकी जड़ साँप का विष उतारने की दवा समझी जाती है। इसकी छाल, पत्ती और जड़ का काढ़ा पुष्ट होता है और पेट के दर्द में भी दिया जाता है।

सरहत‡-संज्ञा पुं० [देश०] खलिहान में फैला हुआ अनाज बुहारने का झाड़ू।

सरहतना‡-क्रि० स० [देश०] अनाज को साफ करने के लिये फटकना। पछोड़ना।

सरहद-संज्ञा स्त्री० [फा० सर + अ० हद] (१) सीमा। (२) किसी भूमि की चौहद्दी निर्धारित करनेवाली रेखा या चिह्न। (३) सीमा पर की भूमि। सीमांत। सिवान।

सरहद्दी-वि० [फा० सरहद + ई (प्रत्य०)] सरहद संबंधी। सीमा संबंधी। जैसे,—सरहद्दी झगड़े।

सरहना संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली के ऊपर का छिलका । चूई ।

सरहद–संज्ञा पुं० [सं० शर] भद्रमंजु । रामशर । सरपत ।

सरहरा–वि० [सं० सरल + धड़] सीधा ऊपर को गया हुआ । जिसमें इधर उधर शाखाएँ न निकली हों । (पेड़)

वि० [सं० सरण] जिस पर हाथ पैर रखने से न जमे । फिसलाव वाला । चिकना ।

सरहरी–संज्ञा स्त्री० [सं० शर] (१) मूँज या सरपत की जाति का एक पौधा जिसकी छड़ पतली, चिकनी और बिना गाँठ की होती है । (२) गंडनी । सर्पाक्षी ।

सरहिंद–संज्ञा पुं० [फा० सर + हिंद] पंजाब का एक स्थान ।

सराँग†–संज्ञा स्त्री० [सं० शलाका] लोहे की एक मोटी छड़ जिस पर पीटकर लोहार बरतन बनाते हैं ।

सरा*–संज्ञा स्त्री० [सं० शर] चिता । उ०—चंदन अगर मलयगिर काढ़ा । घर घर कीन्ह सरा रचि ठाढ़ा ।—जायसी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सराय" ।

सराई†–संज्ञा स्त्री० [सं० शलाका] (१) शलाका । सलाई । (२) सरकंडे की पतली छड़ी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० शराव = प्याला] मिट्टी का प्याला या दीया । सकोरा ।

सराग†–संज्ञा पुं० [सं० शलाक] (१) लोहे की सीख । पतला सीखचा । नुकीली छड़ । (२) वह लकड़ी जो कुलाबे के बीच में लगाई जाती है और जिसके ऊपर कुलाबा घूमता है ।

सराजाम‡–संज्ञा पुं० [फ़ा० सरअंजाम] सामग्री । असबाब । सामान ।

सराध*‡–संज्ञा पुं० दे० "श्राद्ध" ।

सराना*†–क्रि० स० [हिं० सारना का प्रेर०] पूर्ण कराना । संपादित कराना । (काम) कराना । उ०—तैं ही उनकौ मूड़ चढ़ायो । भवन बिपिन सँग ही सँग डोलै ऐसेहि भेद लखायो । पुरुष भँवर दिन चारि आपुनो अपनो चाउ सरायो ।—सूर ।

सराप–संज्ञा पुं० दे० "शाप" ।

सरापना*†–क्रि० स० [सं० शाप, हिं० सराप + ना (प्रत्य०)] (१) शाप देना । बददुआ देना । अनिष्ट मनाना । कोसना । (२) बुरा भला कहना । गाली देना ।

सराफ़–संज्ञा पुं० [अ० सर्राफ़] (१) रुपए पैसे या चाँदी सोने का लेन देन करनेवाला महाजन । (२) सोने चाँदी का व्यापारी । (३) सोने चाँदी के बरतन, जेवर आदि का लेन देन करनेवाला । (४) बदले के लिये रुपए पैसे रखकर बैठनेवाला दूकानदार ।

सराफा–संज्ञा पुं० [अ० सर्राफ़ः] (१) सराफी का काम । रुपए पैसे या सोने चाँदी के लेन देन का काम । (२) वह स्थान जहाँ सराफों की दूकानें अधिक हों । सराफों का बाजार । जैसे,—अभी सराफा नहीं खुला होगा । (३) कोठी । बंक ।

क्रि० प्र०—खोलना ।

सराफी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सराफ + ई (प्रत्य०)] (१) सराफ का काम । चाँदी सोने या रुपए पैसे के लेन देन का रोजगार । (२) वह वर्णमाला जिसमें अधिकतर महाजन लोग लिखते हैं । महाजनी । मुंडा । (३) नोट, रुपए आदि भुनाने का बट्टा जो भुनानेवाले को देना पड़ता है ।

सराब–संज्ञा पुं० [अ०] (१) मृगतृष्णा । (२) धोखा देनेवाली वस्तु । (३) धोखा ।

‡ संज्ञा पुं० दे० "शराब" ।

सराबोर–वि० [सं० स्राव + हिं० बोर] बिल्कुल भीगा हुआ । तरबतर । नहाया हुआ । आप्लावित ।

सराय–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) रहने का स्थान । घर । मकान । (२) यात्रियों के ठहरने का स्थान । मुसाफिरखाना ।

मुहा०—सराय का कुत्ता = अपने मतलब का यार । स्वार्थी । मतलबी । सराय की भठियारी = लड़ाकी और निर्लज्ज स्त्री ।

संज्ञा पुं० [देश०] गुल्ला नाम का पहाड़ी पेड़ ।

विशेष—यह वृक्ष बहुत ऊँचा होता है और हिमालय पर अधिक होता है । इसके हीर की लकड़ी सुगंधित और हलकी होती है और मकान आदि बनाने के काम में आती है ।

सराव*†–संज्ञा पुं० [सं० शराव] (१) मद्यपात्र । प्याला (शराब पीने का) । (२) कसोरा । कटोरा । (३) दीया । उ०—हरि जू की आरती बनी । अति विचित्र रचना रचि राखी परति न गिरा गनी । कच्छप अध आसन अनूप अति डाँड़ी शेष फनी । मही सराव सप्त सागर घृत बाती शैल घनी ।—सूर । (४) एक तौल जो ६४ तोले की होती थी ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की पहाड़ी बकरी ।

सरावग–संज्ञा पुं० [सं० श्रावक] जैन । सरावगी । उ०—ईस सीस बिलसत बिमल तुलसी तरल तरंग । स्वान सरावग के कहे लघुता लहै न गंग ।—तुलसी ।

सरावगी–संज्ञा पुं० [सं० श्रावक] श्रावक धर्मावलंबी । जैन धर्म माननेवाला । जैन ।

विशेष—प्रायः इस मत के अनुयायी आजकल वैश्य ही अधिक पाए जाते हैं ।

सरावन†–संज्ञा पुं० [सं० सरण, हिं० सरना] जुते हुए खेत की मिट्टी बराबर करने का पाटा । हेंगा ।

सरावसंपुट–संज्ञा पुं० [सं० शराव + संपुट] रसौषध फूँकने के लिये मिट्टी के दो कसोरों का मुँह मिलाकर बनाया हुआ एक बरतन ।

सराविका–संज्ञा स्त्री० दे० "शरावक" ।

सरासन*–संज्ञा पुं० दे० "शरासन" ।

सरासर–अव्य० [फ़ा०] (१) एक सिरे से दूसरे सिरे तक । यहाँ से वहाँ तक । (२) बिल्कुल । पूर्णतया । जैसे,—तुम सरासर झूठ कहते हो । (३) साक्षात । प्रत्यक्ष ।

सरासरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) आसानी। फुरती। (२) शीघ्रता। जल्दी। (३) मोटा अंदाज। स्थूल अनुमान। (४) बकाया लगान का दावा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

क्रि० वि० (१) जल्दी में। हड़बड़ी में। जमकर नहीं। इतमीनान से नहीं। (२) मोटे तौर पर। स्थूल रूप से।

सराह–संज्ञा स्त्री० [सं० श्लाघा] बड़ाई। प्रशंसा। तारीफ़। श्लाघा।

सराहना–क्रि० स० [सं० श्लाघन] (१) तारीफ़ करना। बड़ाई करना। प्रशंसा करना। उ०—(क) ऊँचे चितै सराहियत गिरह कबूतर लेत। दग झलकित मुकलित बदन तन पुलकित हित हेत।—बिहारी। (ख) जे फल देखी सोइय फीका। ताकर काह सराहै नीका।—जायसी। (ग) सबै सराहत सीय लुनाई।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० प्रशंसा। तारीफ़। उ०—श्रीमुख जासु सराहना कीन्ही श्रीहरिचंद।—प्रतापनारायण।

सराहनीय–वि० [हिं० सराहना + ईय (प्रत्य०)] (१) प्रशंसा के योग्य। तारीफ़ के लायक। श्लाघनीय। (२) अच्छा। बढ़िया। उम्दा।

सरि संज्ञा स्त्री० [सं०] झरना। निर्झर।

संज्ञा स्त्री० [सं० सरित्] नदी।

संज्ञा स्त्री० [सं० सदृश, प्रा० सरिस] बराबरी। समता। उ०—दाड़िम सरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरकि।—जायसी।

वि० सदृश। समान। बराबर।

सरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हींगपत्री। हिंगुपत्री। (२) मोतियों की लड़ी। (३) मुक्ता। मोती। (४) रत्न। (५) छोटा ताल या सरोवर। (६) एक तीर्थ।

सरिगम–संज्ञा पुं० दे० "सरगम"।

सरित्–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

सरिता–संज्ञा स्त्री० [सं० सरित् = बहा हुआ] (१) धारा। (२) नदी। दरिया।

सरित्कफ–संज्ञा पुं० [सं०] नदी का फेन।

सरित्पति–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

सरित्सुत–संज्ञा पुं० [सं०] (गंगा के पुत्र) भीष्म।

सरिदिही–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सर = सरदार + देह = गाँव] वह नजर या भेंट जो जमींदार या उसका कारिंदा किसानों से हर फसल पर लेता है।

सरिद्वरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (उत्तम नदी) गंगा।

सरिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) ऊँची भूमि। (२) पैसा या और कोई छोटा सिक्का। (सोनार)

संज्ञा पुं० [सं० शर] (१) सरकंडे की छड़ जो सुनहले या रुपहले तार बनाने में काम आती है। सरई। (२) पतली छड़।

सरियाना–क्रि० स० [?] (१) तरतीब से लगा कर इकट्ठा करना। बिखरी हुई चीज़ें ढंग से समेटना। जैसे,—लकड़ी सरियाना, कागज सरियाना। (२) मारना। लगाना। (बाजारू)

सरिल–संज्ञा पुं० [सं०] सलिल। जल।

सरिवन–संज्ञा पुं० [सं० शालपर्णी] शालपर्णी नाम का पौधा। त्रिपर्णी। अंशुमती।

विशेष—यह क्षुप जाति की वनौषधि है और भारत के प्रायः सभी प्रांतों में होती है। इसकी ऊँचाई तीन चार फुट होती है। यह जंगली झाड़ियों में पाई जाती है। इसका कांड सीधा और पतला होता है। पत्ते बेल के पत्तों की भाँति एक सींके में तीन तीन होते हैं। ग्रीष्म ऋतु को छोड़ प्रायः सभी ऋतुओं में इसके फल फूल देखे जाते हैं। फूल छोटे और आसमानी रंग के होते हैं। फलियाँ चिपटी, पतली और प्रायः आध इंच लंबी होती हैं। सरिवन औषध के काम में आती है।

सरिवरि–संज्ञा स्त्री० [हिं० सरि + सं० प्रति, प्रा० पडि, वरि] बराबरी। समता। उ०—तुम्हहिं हमहिं सरिवरि कस नाथा।—तुलसी।

सरिश्ता–संज्ञा पुं० [फ़ा० सरिश्तः] (१) अदालत। कचहरी। (२) शासन या कार्यालय का विभाग। महकमा। दफ्तर। आफिस।

सरिश्तेदार–संज्ञा पुं० [फ़ा० सरिश्तःदार] (१) किसी विभाग का प्रधान कर्मचारी। (२) अदालतों में देशी भाषाओं में मुकदमों की मिसलें रखनेवाला कर्मचारी।

सरिश्तेदारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) सरिश्तेदार होने का भाव। (२) सरिश्तेदार का काम या पद।

सरिस–वि० [सं० सदृश, प्रा० सरिस] सदृश। समान। तुल्य। उ०—(क) जल पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति क रीति यह।—तुलसी। (ख) उठिकै निज मस्तक भयो चालत असुर महान। बात वेग ते फल सरिस महि मैंह गिरे बिमान।—गिरधरदास।

सरीक–वि० दे० "शरीक"।

सरीकत–संज्ञा स्त्री० दे० "शिराकत"।

सरीकता–संज्ञा स्त्री० [अ० शरीक + सं० ता (प्रत्य०)] साझा। हिस्सा। शिरकत। उ०—निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि मानी त्रास औनिपन मानो मौनता गही। रोपे माखे लखन अकन अनखौहीं बातैं तुलसी बिनीत बानी बिहँसि ऐसी कही। सुजस तिहारो भरे भुवन भृगु तिलक प्रबल

प्रताप आपु कही सो सबै कही। टूट्यौ सो न जुरैगो सरासन महेस जू को रावरी पिनाक में सरीकता कहा रही ?—तुलसी।

सरीका†–वि० दे० "सरीखा"।

सरीखा–वि० [सं० सदृश, प्रा० सरिस] सदृश। समान। तुल्य।

सरीफा–संज्ञा पुं० [सं० श्रीफल] एक छोटा पेड़ जिसके फल खाए जाते हैं।

विशेष—इसकी छाल पतली खाकी रंग की होती है और पत्ते अमरूद के पत्तों के से होते हैं। फूल तीन दलवाले, चौड़े और कुछ अनीदार होते हैं। फल गोलाई लिए हरे रंग का होता है और उस पर उभरे हुए दाने होते हैं जो देखने में बड़े सुंदर लगते हैं। बीज-कोशों का गूदा बहुत मीठा होता है। इस फल में बीज अधिक होते हैं। सरीफा गरमी के दिनों में फूलता है और कातिक अगहन तक फल पकते हैं। विंध्य पर्वत पर बहुत से स्थानों में यह आप से आप उगता है। वहाँ इसके जंगल के जंगल खड़े हैं। जंगली सरीफे के फल छोटे और गूदा बहुत कम होता है।

सरीरॐ†–संज्ञा पुं० दे० "शरीर"।

सरीसृप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेंगनेवाला जंतु। जैसे,—साँप, कनखजूरा आदि। (२) सर्प। साँप। (३) विष्णु का एक नाम।

सरुच्–वि० [सं०] शोभायुक्त। कांतिमान्।

सरुज–वि० [सं०] रोगी। रोग-युक्त। रुग्ण।

सरुष–वि० [सं०] क्रोध-युक्त। कुपित।

सरूप–वि० [सं०] (१) रूप-युक्त। आकारवाला। (२) एक ही रूप का। सदृश। समान। (३) रूपवान्। सुंदर।

†संज्ञा पुं० दे० "स्वरूप"।

सरूपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] भूत की स्त्री जो असंख्य रुद्रों की माता कही गई है।

सरूर–संज्ञा पुं० [फा० सुरूर] (१) आनंद। खुशी। प्रसन्नता। (२) हलका नशा। नशे की तरंग। मादकता।

सरेख–†ॐवि० [सं० श्रेष्ठ] [स्त्री० सरेखी] अवस्था में बड़ा और समझदार। श्रेष्ठ। चतुर। चालाक। सयाना। उ०—(क) तन खन बोला सुआ सरेखा। अगुवा सोई पंथ जेहि देखा।—जायसी। (ख) हँसि हँसि पूछैं सखी सरेखी। जनहु कुमुदचंदन मुख देखी।—जायसी।

सरेखा–संज्ञा पुं० दे० "श्लेषा"।

सरेखना–क्रि० स० दे० "सहेजना"।

सरेदस्त–क्रि० वि० [फा०] (१) इस समय। अभी। (२) फिलहाल। अभी के लिये। इस समय के लिये।

सरे बाज़ार–क्रि० वि० [फा०] (१) बाज़ार में। जनता के सामने। (२) खुले आम। सब के सामने।

सरेरा, सरेला–संज्ञा पुं० [देश०] (१) पाल में लगी हुई रस्सी जिसे ढीला करने से पाल की हवा निकल जाती है। (२) मछली की बंसी की डोरी। शिस्त।

सरेस–संज्ञा पुं० [फा० सरेश] एक लसदार वस्तु जो ऊँट, गाय, भैंस आदि के चमड़े या मछली के पोटे को पकाकर निकालते हैं। सहरेस। सरेश।

विशेष—यह कागज, कपड़े, चमड़े आदि को आपस में जोड़ने या चिपकाने के काम में आता है। जिल्दबंदी में इसका व्यवहार बहुत होता है।

वि० चिपकनेवाला। लसीला।

सरेसमाही–संज्ञा पुं० [फा० सरेश-माही] सफेद या काले रंग का गोंद के समान एक द्रव्य।

विशेष—यह एक प्रकार की मछली के पेट से निकलता है जिसकी नाक लंबी होती है और जिसे नदी का सूअर कहते हैं। यह दुर्गंधयुक्त और स्वाद में कड़ुवा होता है।

सरोटॐ†–संज्ञा पुं० [सं० शाट+वर्त, हिं० सिलवट] कपड़ों में पड़ी हुई सिलवट। शिकन। वली। उ०—नट न सीस साबित भई लुटी सुखन की मोट। चुप करिये चारी करति सारी परी सरोट।—बिहारी।

सरो–संज्ञा पुं० [फा० सर्व] एक सीधा पेड़ जो बगीचों में शोभा के लिये लगाया जाता है। वनझाऊ।

विशेष—इस पेड़ का स्थान काश्मीर, अफगानिस्तान और फारस आदि एशिया के पश्चिमी प्रदेश हैं। फारसी की शायरी में इसका उल्लेख बहुत अधिक है। ये शायर नायिका के सीधे डील डौल की उपमा प्रायः इसी से दिया करते हैं। यह पेड़ बिलकुल सीधा ऊपर को जाता है। इसकी टहनियाँ पतली पतली होती हैं और पत्तियों से भरी होने के कारण दिखाई नहीं देतीं। पत्तियाँ टेढ़ी रेखाओं के जाल के रूप में बहुत घनी और सुंदर होती हैं। यह पेड़ झाऊ की जाति का है, और उसी के से फल भी इसमें लगते हैं।

सरोई–संज्ञा पुं० [हिं० सरो ?] एक प्रकार बड़ा पेड़।

विशेष—यह वृक्ष बहुत ऊँचा होता है। इसकी लकड़ी ललाई लिए सफेद होती है और चारपाइयाँ आदि बनाने के काम में आती है। इसकी छाल से रंग भी निकाला जाता है।

सरोकार–संज्ञा पुं० [फा०] (१) परस्पर व्यवहार का संबंध। (२) लगाव। वास्ता। प्रयोजन। मतलब।

सरोज–संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

सरोजमुखी–वि० स्त्री० [सं०] कमल के समान मुखवाली। सुंदरी।

सरोजिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कमलों से भरा हुआ ताल। कमलपूर्ण सरसी। (२) कमलों का समूह। कमलवन। (३) कमल का फूल।

सरोजी–वि० [सं० सरोजिन्] [स्त्री० सरोजिनी] (१) कमलवाला । (२) जहाँ कमल हों ।
संज्ञा पुं० (१) (कमल से उत्पन्न) ब्रह्मा । (२) बुद्ध का एक नाम ।

सरोत्सव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बकुला । बक पक्षी । (२) सारस ।

सरोद–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बीन की तरह का एक प्रकार का बाजा ।
विशेष—इसमें ताँत और लोहे के तार लगे रहते हैं और इसके आगे का हिस्सा चमड़े से मढ़ा रहता है ।
(२) नाचने गाने की क्रिया । गान और नृत्य ।

सरोधा–संज्ञा पुं० [सं० स्वरोदय] श्वास का दाहिने या बाएँ नथने से निकलना देखकर भविष्य की बातें कहने की विद्या ।

सरोबिंदु–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक गीत ।

सरोरुह–संज्ञा पुं० [सं०] कमल ।

सरोला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मिठाई ।
विशेष—यह पोस्ते, छुहारे, बादाम आदि मेवों के साथ मैदे को घी और चीनी में पकाकर बनाई जाती है ।

सरोवर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तालाब । पोखरा (२) झील । ताल ।

सरोष–वि० [सं०] क्रोधयुक्त । कुपित ।

सरोसामान–संज्ञा पुं० [फ़ा० सर + व + सामान] सामग्री । उपकरण । असबाब ।

सरोही–संज्ञा स्त्री० दे० "सिरोही" ।

सरौ–संज्ञा पुं० [सं० शराव] (१) कटोरी । प्याली । (२) ढक्कन । ढकना ।
संज्ञा पुं० दे० "सरो" ।

सरौता–संज्ञा पुं० [सं० सार = लोहा + पत्र, प्रा० सारवत्त] [स्त्री० अल्पा० सरौती] सुपारी काटने का औजार ।
विशेष—यह लोहे के दो खंडों का होता है । ऊपर का खंड गँड़ासी की भाँति धारदार होता है और नीचे का मोटा, जिस पर सुपारी रखते हैं । दोनों खंडों के सिरे ढीली कील से जुड़े रहते हैं, जिससे वे ऊपर नीचे घूम सकते हैं । इन्हीं दोनों खंडों के बीच में रखकर और ऊपर से दबाकर सुपारी काटी जाती है ।

सरौती–संज्ञा स्त्री० [हिं० सरौता] छोटा सरौता ।
संज्ञा स्त्री० [सं० शरपत्र] एक प्रकार की ईख जिसकी छड़ पतली होती है ।
विशेष—इस ऊख की गाँठें काली होती हैं और सब तना सफ़ेद होता है ।

सर्क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन । चित्त । (२) वायु । (३) एक प्रजापति का नाम ।

सर्कस–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह स्थान जहाँ जानवरों का खेल दिखाया जाता है । (२) वह मंडली जो पशुओं तथा नटों को साथ रखती है और खेलकूद के तमाशे दिखाती है ।

सर्क़ा–संज्ञा पुं० [अ० सर्क़ः] (१) चोरी । (२) दूसरे के भाव या लेख को चुरा लेने की क्रिया । साहित्यिक चोरी ।

सर्कार–संज्ञा स्त्री० दे० "सरकार" ।

सर्कारी–वि० दे० "सरकारी" ।

सर्क्युलर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) गश्ती चिट्ठी । (२) सरकारी आज्ञापत्र जो सब दफ्तरों में घुमाया जाता है । (३) वह पत्र जिसमें किसी विषय की आवश्यक सूचनाएँ रहती हैं ।

सर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गमन । गति । चलना या बढ़ना । (२) संसार । सृष्टि । जगत् की उत्पत्ति । (३) बहाव । झोंक । प्रवाह । (४) छोड़ना । चलाना । फेंकना । (५) छोड़ा हुआ अस्त्र । (६) मूल । उद्गम । उत्पत्ति स्थान । (७) प्राणी । जीव । (८) संतति । संतान । औलाद । (९) स्वभाव । प्रकृति । (१०) प्रवृत्ति । झुकाव । रुझान । (११) प्रयत्न । चेष्टा । (१२) संकल्प । (१३) किसी ग्रंथ (विशेषतः काव्य) का अध्याय । प्रकरण । परिच्छेद । (१४) मोह । मूर्च्छा । (१५) शिव का एक नाम ।

सर्गपताली–संज्ञा पुं० [सं० स्वर्ग + पाताल + ई (प्रत्य०)] (१) जिसकी आँखें ऐंची हों । ऐंचा ताना । (२) वह बैल जिसका एक सींग ऊपर की ओर उठा हो और दूसरा नीचे की ओर झुका हो ।

सर्गपुट–संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध राग का एक भेद ।

सर्गबंध–वि० [सं०] जो कई अध्यायों में विभक्त हो । जैसे,—सर्गबंध काव्य ।

सर्गुन‡–वि० दे० "सगुण" ।

सर्जंट–संज्ञा पुं० [अं० सार्जेन्ट] (१) हवलदार । जमादार । (२) नाज़िर । (३) प्रथम श्रेणी का वकील ।

सर्ज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ी जाति का शाल वृक्ष । अजकर्ण वृक्ष । (२) राल । धूना । करायल । (३) शल्लकी वृक्ष । सलई का पेड़ । (४) विजयसाल का पेड़ । असन वृक्ष ।
संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार का बढ़िया मोटा ऊनी कपड़ा जो प्रायः कोट आदि बनाने के काम में आता है ।

सर्जक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा शाल वृक्ष । (२) विजयसाल । (३) सलई का पेड़ । (४) मट्ठा छोड़ने पर गरम दूध का फटाव ।

सर्जन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सर्जनीय, सर्जित] (१) छोड़ना । त्याग करना । फेंकना । (२) निकालना । (३) सृष्टि का उत्पन्न होना । सृष्टि । (४) सेना का पिछला भाग । (५) साल का गोंद ।
संज्ञा पुं० [अं०] अस्त्र चिकित्सा करनेवाला । चीर फाड़ करनेवाला डाक्टर । जर्राह ।

सर्जनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुदा की वलियों में से बीचवाली वली जो मल, पवनादि निकालती है ।

सर्जमणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोचरस। सेमल का गोंद। (२) राल। धूना। करायल।

सर्जरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] चीर फाड़ करके चिकित्सा करने की क्रिया या विद्या।

सर्जि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी।

सर्जिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी खार।

सर्जिक्षार-संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी खार।

सर्जु-संज्ञा पुं० [सं०] वणिक। व्यापारी।
संज्ञा स्त्री० विद्युत्। बिजली।

सर्जू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वणिक। व्यापारी। (२) गले का हार।
संज्ञा स्त्री० दे० "सरयू"।

सर्जूर-संज्ञा पुं० [सं०] दिन।

सर्टिफ़िकेट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रमाणपत्र। सनद। (२) चाल चलन, स्वास्थ्य, योग्यता आदि का प्रमाणपत्र।

सर्त-संज्ञा स्त्री० दे० "शर्त्त"।

सर्ता-संज्ञा पुं० [सं० सर्त्] घोड़ा।

सर्द-वि० [फ़ा०] (१) ठंढा। शीतल। (२) सुस्त। काहिल। ढीला। (३) मंद। धीमा।
मुहा० — **सर्द होना** = (१) ठंढा पड़ना। शीतल होना। (२) मरकर तमाम हो जाना। (३) मंद हो जाना। धीमा हो जाना। (४) उत्साह-रहित होना। चुप हो जाना। दब जाना।
(४) नपुंसक। नामर्द। (५) बेस्वाद। बेमज़ा।

सर्दबाई-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सर्द + हिं० बाई] हाथी की एक बीमारी जिसमें उसके पैर जकड़ जाते हैं।

सर्दमिज़ाज-वि० [फ़ा० + अ०] (१) मुर्दा दिल। जिसमें उत्साह न हो। (२) जिसमें शील न हो। बेमुरौवत। रूखा।

सर्दा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बढ़िया जाति का लंबोतरा खरबूज़ा जो काबुल से आता है।

सर्दार-संज्ञा पुं० दे० "सरदार"।

सर्दाबा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सर्दाबः] क़ब्र। समाधि।

सर्दी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) सर्द होने का भाव। ठंढ। शीतलता। (२) जाड़ा। शीत।
मुहा०—**सर्दी पड़ना** = जाड़ा होना। **सर्दी खाना** = ठंढ सहना। शीत सहना।
(३) ज़ुकाम। नज़ला।
क्रि० प्र०—होना।

सर्प-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सर्पिणी] (१) रेंगना। (२) साँप। (३) ज्योतिष में एक प्रकार का बुरा योग। (४) नागकेसर। (५) ग्यारह रुद्रों में से एक। (६) एक म्लेच्छ जाति।

सर्पकंकालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्प लता।

सर्पकाल-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़। उ०—सर्पकाल कालीगृह आए। खगपति बलि बलान सो खाए।—गोपाल।

सर्पगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंध नाकुली। (२) नकुल कंद। नाकुली। (३) नागदवन नामक जड़ी।

सर्पगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सर्प की गति। (२) कुटिल गति। कपट की चाल।

सर्पगृह-संज्ञा पुं० [सं०] साँप का घर। बाँबी।

सर्पघातिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरहँटी। सर्पाक्षी।

सर्पच्छत्र-संज्ञा पुं० [सं०] छत्राक। खुमी। कुकुरमुत्ता।

सर्पछिद्र-संज्ञा पुं० [सं०] साँप का बिल। बाँबी।

सर्पण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सर्पित, सर्पणीय] (१) रेंगना। धीरे धीरे चलना। (२) छोड़े हुए तीर का भूमि से लगा हुआ जाना।

सर्पतनु-संज्ञा पुं० [सं०] बृहती का एक भेद।

सर्पतृण-संज्ञा पुं० [सं०] नकुलकंद।

सर्पदंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंहली पीपल।

सर्पदंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोरक्षी। गोरख इमली। (२) गँगेरन। नागबला।

सर्पदंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंहली पीपल।

सर्पदंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती। हाथी शुंडी।

सर्पदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप का दाँत। (२) जमालगोटा।

सर्पदंष्ट्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती। उदुंबर पर्णी।

सर्पदंष्ट्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृश्चिकाली। (२) दंती। उदुंबरपर्णी। (३) बिछुआ। वृश्चिका।

सर्पद्विष-संज्ञा पुं० [सं०] मोर। मयूर।

सर्पनेत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सर्पाक्षी। (२) गंधनाकुली।

सर्पपति-संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग।

सर्पपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदंती। (२) बाँझ खेखसा।

सर्पप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

सर्पफणज-संज्ञा पुं० [सं०] सर्पमणि।

सर्पफेन-संज्ञा पुं० [सं०] अफ़ीम। अहिफेन।

सर्पबंध-संज्ञा पुं० [सं०] कुटिल या पेचीली चाल।

सर्पबेलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली। पान।

सर्पभक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नकुलकंद। नाकुली कंद। (२) मोर। मयूर पक्षी।

सर्पभुक्, सर्पभुज्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नकुल कंद। (२) मोर। मयूर। (३) सारस पक्षी।

सर्पमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरहँटी। सर्पाक्षी।

सर्पयज्ञ, सर्पयाग-संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ जो नागों के संहार के लिये जनमेजय ने किया था।

सर्पराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्पों के राजा, शेषनाग। (२) वासुकि।

सर्पलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली। पान।

सर्पवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली। पान।

सर्पविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप को पकड़ने या वश में करने की विद्या।

सर्पव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का एक प्रकार का व्यूह जिसकी रचना सर्प के आकार की होती थी।

सर्पशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की ईंट जो यज्ञ की वेदी बनाने के काम में आती थी। (२) तांत्रिक पूजा में हाथ और पंजे की एक मुद्रा।

सर्पसत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सर्पयज्ञ।

सर्पसत्री-संज्ञा पुं० [सं० सर्पसत्रिन्] राजा जनमेजय का एक नाम, जिन्होंने सर्पयज्ञ किया था।

सर्पसुगंधा, सर्पसुगंधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधनाकुली। सर्पगंधा।

सर्पसहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरहँटी। सर्पाक्षी।

सर्पहा-संज्ञा पुं० [सं० सर्पहन्] सर्प को मारनेवाला, नेवला।
संज्ञा स्त्री० [सं०] सरहँटी। सर्पाक्षी। गंडिनी।

सर्पांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरहँटी। (२) सिंहली पीपल। (३) नकुल कंद।

सर्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साँपिन। सर्पिणी। (२) फणिलता।

सर्पाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुद्राक्ष। शिवाक्ष। (२) सर्पाक्षी। सरहँटी।

सर्पाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरहँटी। (२) गंध नाकुली। (३) सर्पिणी। (४) श्वेत अपराजिता। (५) शंखिनी।

सर्पाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

सर्पादनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंध नाकुली। गंध रास्ना। रास्ना। (२) नकुल कंद।

सर्पारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्पों का शत्रु, गरुड़। (२) नेवला। (३) मयूर।

सर्पावास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्पों के रहने का स्थान। (२) चंदन। मलयज। संदल।

सर्पाशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मयूर। मोर। (२) गरुड़।

सर्पास्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप के समान मुखवाला। (२) खर नामक राक्षस का एक सेनापति जिसे राम ने युद्ध में मारा था।

सर्पि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घृत। घी। (२) एक वैदिक ऋषि का नाम।

सर्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा साँप। (२) एक नदी का नाम।

सर्पिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साँपिन। मादा साँप। (२) भुजगी लता।
विशेष—यह सर्प के आकार की होती है और इसमें विष का नाश करने और स्तनों को बढ़ाने का गुण होता है।

सर्पित-संज्ञा पुं० [सं०] साँप के काटने का क्षत। सर्पदंश।

सर्पिष्क-संज्ञा पुं० दे० "सर्पिस्"।

सर्पिस्-संज्ञा पुं० [सं०] घृत। घी।

सर्पी-वि० [सं० सर्पिन्] [स्त्री० सर्पिणी] रेंगनेवाला। धीरे धीरे चलनेवाला।
*संज्ञा पुं० दे० 'सर्पि' या 'सर्पिस्'।

सर्पेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

सर्पोन्माद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद जिसमें मनुष्य सर्प की भाँति लोटता, जीभ निकालता और क्रोध करता है। इसमें गुड़, दूध आदि खाने की अधिक इच्छा होती है।

सर्फ़-संज्ञा पुं० [अ०] व्यय किया हुआ। खपा हुआ। खर्च किया हुआ। जैसे,—इस काम में सौ रुपए सर्फ़ हो गए।

सर्फ़ा-संज्ञा पुं० [अ० सर्फ़:] खर्च। व्यय।

सर्बस-वि० दे० "सर्वस्व"।

सर्म-संज्ञा पुं० दे० "शर्म"। उ०—देहि अवलंब न विलंब अंभोज-कर चक्रधर तेज बल सर्म रासी।—तुलसी।

सर्रा-संज्ञा पुं० [अनु० सर सर] लोहे या लकड़ी की छड़ जिस पर गराड़ी घूमती है। धुरी। धुरा।

सर्राफ़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) सोने चाँदी या रुपए पैसे का व्यापार करनेवाला। (२) बदले के लिये पैसे, रुपए आदि लेकर बैठनेवाला।
मुहा०—सर्राफ़ के से टके = वह सौदा जिसमें किसी प्रकार की हानि न हो।
(३) धनी। दौलतमंद। (४) पारखी। परखनेवाला।

सर्राफ नानुआ-संज्ञा पुं० [अ० सर्राफ + ?] विवाह आदि शुभ अवसरों पर कोठीवालों या महाजनों का नौकरों को मिठाई, रुपया पैसा आदि बाँटना।

सर्राफ़ा-संज्ञा पुं० दे० "सराफ़ा"।

सर्राफी-संज्ञा स्त्री० दे० "सराफ़ी"।

सर्व-वि० [सं०] सारा। सब। समस्त। तमाम। कुल।
संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम। (२) विष्णु का एक नाम। (३) पारा। पारद। (४) रसौत। (५) शिलाजतु। सिलाजीत।

सर्वकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० सर्वकर्तृ] ब्रह्मा।

सर्वकाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब इच्छाएँ रखनेवाला। (२) सब इच्छाएँ पूरी करनेवाला। (३) शिव का एक नाम। (४) एक बुद्ध या अर्हत् का नाम।

सर्वकामद-वि० [सं०] [स्त्री० सर्वकामदा] सब कामनाएँ पूरी करनेवाला।

सर्वकाल-क्रि० वि० [सं०] हर समय। सब दिन। सदा।

सर्वकेसर-संज्ञा पुं० [सं०] वकुल वृक्ष या पुष्प। मौलसिरी।

सर्वक्षार-संज्ञा पुं० [सं०] मोरवा । मुष्कक वृक्ष ।

सर्वगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दालचीनी । गुड़त्वक् । (२) एला । इलायची । (३) तेजपात । (४) नागकेसर । नागपुष्प । (५) शीतल चीनी । (६) लौंग । लवंग । (७) अगर । अगरु । (८) शिलारस । (९) केसर ।

सर्वग वि० [सं०] [स्त्री० सर्वगा] जिसकी गति सब जगह हो। जो सब जगह जा सके । सर्वव्यापक ।

संज्ञा पुं० (१) पानी । जल । (२) जीव । आत्मा । (३) ब्रह्म । (४) शिव का एक नाम ।

सर्वगण-संज्ञा पुं० [सं०] खारी मिट्टी । रेह ।

सर्वगत-वि० [सं०] जो सब में हो । सर्वव्यापक ।

सर्वगति-वि० [सं०] जिसकी शरण सब लोग लें । जिसमें सब आश्रय लें ।

सर्वगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु वृक्ष ।

सर्वगामी-वि० दे० "सर्वग" ।

सर्वग्रंथि, सर्वग्रंथिक-संज्ञा पुं० [सं०] पीपलामूल ।

सर्वग्रहापहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदमनी । नागदौन ।

सर्वग्रास-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्र या सूर्य्य का वह ग्रहण जिसमें उनका मंडल पूर्ण रूप से छिप जाता है । पूर्ण ग्रहण । खग्रास ग्रहण ।

सर्वचक्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक तांत्रिक देवी ।

सर्वचारी-वि० [सं० सर्वचारिन्] [स्त्री० सर्वचारिणी] सब में रमनेवाला । व्यापक ।

संज्ञा पुं० शिव का एक नाम ।

सर्वजनप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि ।

सर्वजनीन-वि० [सं०] सब लोगों से संबंध रखनेवाला । सब का । सार्वजनिक ।

सर्वजया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सबजय नाम का पौधा जो बगीचों में फूलों के लिये लगाया जाता है । देवकली । (२) मार्गशीर्ष महीने में होनेवाला स्त्रियों का एक प्राचीन पर्व ।

सर्वजित्-वि० [सं०] (१) सब को जीतनेवाला । (२) सब से बढ़ा चढ़ा । उत्तम ।

संज्ञा पुं० (१) साठ संवत्सरों में से इक्कीसवाँ संवत्सर । (२) मृत्यु । काल । (३) एक प्रकार का एकाह यज्ञ ।

सर्वजीवी-वि० [सं० सर्वजीविन्] जिसके पिता, पितामह और प्रपितामह तीनों जीते हों ।

सर्वज्ञ-वि० [सं०] [स्त्री० सर्वज्ञा] सब कुछ जाननेवाला । जिसे कुछ अज्ञात न हो ।

संज्ञा पुं० (१) ईश्वर । (२) देवता । (३) बुद्ध या अर्हत् । (४) शिव ।

सर्वज्ञता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्वज्ञ होने का भाव ।

सर्वज्ञत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सर्वज्ञ होने का भाव । सर्वज्ञता ।

सर्वज्ञा-वि० स्त्री० [सं०] सब कुछ जाननेवाली ।

संज्ञा स्त्री० (१) दुर्गा देवी । (२) एक योगिनी ।

सर्वज्ञानी-संज्ञा पुं० [सं०] सब कुछ जाननेवाला । सर्वज्ञ ।

सर्वज्यानि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सब वस्तुओं की हानि । सर्वनाश ।

सर्वतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सब प्रकार के शास्त्र सिद्धांत ।

वि० जिसे सब शास्त्र मानते हों । सर्वशास्त्र-सम्मत । जैसे,—सर्व-तंत्र सिद्धांत ।

सर्वतः-अव्य० [सं०] (१) सब ओर । चारो तरफ । (२) सब प्रकार से । हर तरह से । (३) पूरी तरह से । पूर्ण रूप से ।

सर्वतःशुभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कँगनी नाम का अनाज । काकुन ।

सर्वतापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (सबको तपानेवाला) सूर्य्य । (२) कामदेव ।

सर्वतिक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भंटाकी । बरहंटा । (२) मकोय । काकमाची ।

सर्वतोभद्र-वि० [सं०] (१) सब ओर से मंगल । सर्वांश में शुभ या उत्तम । (२) जिसके सिर, दाढ़ी, मूँछ आदि सब के बाल मुँड़े हों ।

संज्ञा पुं० (१) वह चौखूँटा मंदिर जिसके चारो ओर दरवाज़े हों । (२) युद्ध में एक प्रकार का व्यूह । (३) एक प्रकार का चौखूँटा मांगलिक चिह्न जो पूजा के वस्त्र पर बनाया जाता है । (४) एक प्रकार का चित्रकाव्य । (५) एक प्रकार की पहेली जिसमें शब्द के खंडाक्षरों के भी अलग अलग अर्थ लिए जाते हैं । (६) विष्णु का रथ । (७) बाँस । (८) एक गंध-द्रव्य । (९) वह मकान जिसके चारो ओर परिक्रमा का स्थान हो । (१०) हठ योग में बैठने का एक आसन या मुद्रा । (११) नीम का पेड़ ।

सर्वतोभद्रकच्छेद-संज्ञा पुं० [सं०] भगंदर की चिकित्सा के लिये अस्त्र से लगाया हुआ चौकोर चीरा । (सुश्रुत)

सर्वतोभद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काश्मरी वृक्ष । गंभारी । (२) अभिनय करनेवाली । नटी ।

सर्वतोभद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी । काश्मरी वृक्ष । गम्हार वृक्ष ।

सर्वतोभाव-अव्य० [सं०] सब प्रकार से । संपूर्ण रूप से । अच्छी तरह । भली भाँति ।

सर्वतोमुख-वि० [सं०] (१) जिसका मुँह चारो ओर हो । (२) जो सब दिशाओं में प्रवृत्त हो । (३) पूर्ण । व्यापक ।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार की व्यूह-रचना । (२) जल । पानी । (३) आत्मा । जीव । (४) ब्रह्मा (जिनके चार मुँह हैं) । (५) शिव । (६) अग्नि । (७) स्वर्ग । (८) आकाश ।

सर्वतोवृत्त-वि० [सं०] सर्वव्यापक ।

सर्वत्र-अव्य० [सं०] सब कहीं । सब जगह । हर जगह ।

सर्वत्रग-वि० [सं०] सर्वगामी । सर्वव्यापक ।

संज्ञा पुं० (१) वायु। (२) मनु के एक पुत्र का नाम। (३) भीमसेन के एक पुत्र का नाम।

सर्वत्रगामी-संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

सर्वथा-अव्य० [सं०] (१) सब प्रकार से। सब तरह से। (२) बिलकुल। सब।

सर्वद-वि० [सं०] सब कुछ देनेवाला।

संज्ञा पुं० शिव का एक नाम।

सर्वदर्शी-संज्ञा पुं० [सं० सर्वदर्शिन्] [स्त्री० सर्वदर्शिणी] सब कुछ देखनेवाला।

सर्वदा-अव्य० [सं०] सब काल में। हमेशा। सदा।

सर्वद्वारिक-वि० [सं०] जिसकी विजय-यात्रा के लिये सब दिशाएँ खुली हों। दिग्विजयी।

सर्वधातुक-संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा। ताम्र।

सर्वधारी-संज्ञा पुं० [सं० सर्वधारिन] (१) साठ संवत्सरों में से बाईसवाँ संवत्सर। (२) शिव का एक नाम।

सर्वनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र।

सर्वनाम-संज्ञा पुं० [सं० सर्वनामन्] व्याकरण में वह शब्द जो संज्ञा के स्थान में प्रयुक्त होता है। जैसे,—मैं, तू, वह।

सर्वनाश-संज्ञा पुं० [सं०] सत्यानाश। विध्वंस। पूरी बरबादी।

सर्वनाशी-संज्ञा पुं० [सं०] सर्वनाश करनेवाला। विध्वंसकारी। चौपट करनेवाला।

सर्वनिधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब का नाश या बध। (२) एक प्रकार का एकाह यज्ञ।

सर्वनियंता-संज्ञा पुं० [सं० सर्वनियन्तृ] सब को अपने नियम के अनुसार ले चलनेवाला। सब को वश में करनेवाला।

सर्वपा-वि० [सं०] सब कुछ पीनेवाला।

संज्ञा स्त्री० दैत्यराज बलि की स्त्री का नाम।

सर्वपाचक-संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा। टंकण क्षार।

सर्वपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

सर्वप्रिय-वि० [सं०] सब को प्यारा। जिसे सब चाहें। जो सब को अच्छा लगे।

सर्वबल-संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत बड़ी संख्या। (बौद्ध)

सर्वबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध करने की एक विधि।

सर्वभद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरी। छागी।

सर्वभक्षी-संज्ञा पुं० [सं० सर्वभक्षिन्] [स्त्री० सर्वभक्षिणी] सब कुछ खानेवाला।

संज्ञा पुं० अग्नि।

सर्वभवोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

सर्वभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संपूर्ण सत्ता। सारा अस्तित्व। (२) संपूर्ण आत्मा। (३) पूर्ण तुष्टि। मन का पूरा भरना।

सर्वभावन-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

सर्वभूत-संज्ञा पुं० [सं०] सब प्राणी या सृष्टि। चराचर।

वि० जो सब कुछ हो या सब में हो। सर्वस्वरूप।

सर्वभूतहित-संज्ञा पुं० [सं०] सब प्राणियों की भलाई।

सर्वभूमिक-संज्ञा पुं० [सं०] दारचीनी। गुड़त्वक्।

सर्वभोगी-वि० [सं० सर्वभोगिन्] [स्त्री० सर्वभोगिनी] (१) सब का आनंद लेनेवाला। (२) सब कुछ खानेवाला।

सर्वमंगला-वि० [सं०] सब प्रकार का मंगल करनेवाली।

संज्ञा स्त्री० (१) दुर्गा। (२) लक्ष्मी।

सर्वमूल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौड़ी। कपर्दक। (२) कोई छोटा सिक्का।

सर्वमूषक-संज्ञा पुं० [सं०] (सब को मूसने या ले जानेवाला) काल।

सर्वमेध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सार्वजनिक सत्र। (२) एक प्रकार सोम याग जो दस दिनों तक होता था।

सर्वयोगी-संज्ञा पुं० [सं० सर्वयोगिन्] शिव का एक नाम।

सर्वरत्नक-संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार नौ निधियों में से एक।

सर्वरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राल। धूना। करायल। (२) लवण। नमक। (३) एक प्रकार का बाजा। (४) सब विद्याओं में निपुण व्यक्ति।

सर्वरसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाजा का माँड़। धान की खीलों का माँड़।

सर्वरसोत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] नमक। लवण।

सर्वरी*-संज्ञा स्त्री० दे० "शर्वरी"।

सर्वरूप-वि० [सं०] जो सब रूपों का हो। सर्वस्वरूप।

संज्ञा पुं० एक प्रकार की समाधि।

सर्वला-संज्ञा स्त्री० [सं०] लोहे का डंडा।

सर्वलिंगी-वि० [सं० सर्वलिंगिन] [स्त्री० सर्वलिंगिनी] सब प्रकार के ऊपरी आडंबर रखनेवाला। पाखंडी।

संज्ञा पुं० नास्तिक।

सर्वलोकेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) ब्रह्मा। (३) विष्णु। (४) कृष्ण।

सर्वलोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो औषध के काम में आता है।

सर्वलोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताँबा। ताम्र। (२) बाण। तीर।

सर्ववर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गँभारी का पेड़।

सर्ववल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा स्त्री।

सर्ववादी-संज्ञा पुं० [सं० सर्ववादिन्] शिव का एक नाम।

सर्ववास-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सर्वविग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सर्ववित्-वि० [सं०] सर्वज्ञ।

संज्ञा पुं० (१) ईश्वर। (२) ओंकार।

सर्ववीर-वि० [सं०] जिसके बहुत से पुत्र हों।

सर्ववेद–वि० [सं०] सब वेदों का जाननेवाला ।

सर्ववेदस्–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपनी सारी संपत्ति यज्ञ में दान कर दे ।

सर्ववेदस-संज्ञा पुं० [सं०] सारी संपत्ति । सारा माल मता ।

सर्ववैनाशिक–संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा आदि सब को नाशवान् माननेवाला । क्षणिकावादी । बौद्ध ।

सर्वव्यापक–संज्ञा पुं० दे० "सर्वव्यापी" ।

सर्वव्यापी–वि० [सं० सर्वव्यापिन्] [स्त्री० सर्वव्यापिनी] सब में रहनेवाला । सब पदार्थों में रमणशील ।

संज्ञा पुं० (१) ईश्वर । (२) शिव ।

सर्वशः–अव्य० [सं०] (१) पूरा पूरा । (२) समूचा । पूर्ण रूप से ।

सर्वशक्तिमान्–वि० [सं० सर्वशक्तिमत्] [स्त्री० सर्वशक्तिमती] सब कुछ करने की सामर्थ्य रखनेवाला ।

संज्ञा पुं० ईश्वर ।

सर्वशून्यवादी–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध ।

सर्वशूर–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम ।

सर्वश्रेष्ठ–वि० [सं०] सब में बड़ा । सब से उत्तम ।

सर्वश्वेता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का विषैला कीड़ा । सर्पपिक । (सुश्रुत)

सर्वसंगत–संज्ञा पुं० [सं०] साठी धान । षष्टिक धान्य ।

सर्वरूस्थान–वि० [सं०] सब रूपों में रहनेवाला । सर्वरूप ।

सर्वसंहार–संज्ञा पुं० [सं०] काल ।

सर्वस–वि० दे० "सर्वस्व" ।

सर्वसर-संज्ञा पुं० [सं०] मुँह का एक रोग जिसमें छाले से पड़ जाते हैं तथा खुजली तथा पीड़ा होती है ।

विशेष—यह तीन प्रकार का होता है—वातज, पित्तज और कफज । वातज में मुख में सूई चुभने की सी पीड़ा होती है । पित्तज में पीले या लाल रंग के दाहयुक्त छाले पड़ते हैं । कफज में पीड़ा रहित खुजली होती है ।

सर्वसह–संज्ञा पुं० [सं०] गूगल । गुग्गुल ।

सर्वसाक्षी–संज्ञा पुं० [सं० सर्वसाक्षिन्] (१) ईश्वर । परमात्मा । (२) अग्नि । (३) वायु ।

सर्वसाधन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना । स्वर्ण । (२) धन । (३) शिव का एक नाम ।

सर्वसाधारण-संज्ञा पुं० [सं०] साधारण लोग । जनता । आम लोग ।

वि० जो सब में पाया जाता हो । आम । सामान्य ।

सर्वसामान्य–वि० [सं०] जो सब में एक सा पाया जाय । मामूली ।

सर्वसारंग–संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम ।

सर्वसिद्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी ये तीन तिथियाँ ।

सर्वसिद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सब कार्यों और कामनाओं का पूरा होना । (२) पूर्ण तर्क । (३) बिल्व वृक्ष । श्रीफल । बेल ।

सर्वस्तोम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का एकाह यज्ञ ।

सर्वस्व–संज्ञा पुं० [सं०] जो कुछ अपना हो वह सब । किसी की सारी संपत्ति । सब कुछ । कुल माल मता ।

सर्वस्वार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का एकाह यज्ञ ।

सर्वस्वी–संज्ञा पुं० [सं० सर्वस्विन्] [स्त्री० सर्वस्विनी] नापित पिता और गोप माता से उत्पन्न एक संकर जाति । (ब्रह्मवैवर्त्त पुराण)

सर्वहर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब कुछ हर लेनेवाला । (२) वह जो किसी की सारी संपत्ति का उत्तराधिकारी हो । (३) महादेव । शंकर । (४) यमराज । (५) काल ।

सर्वहारी–वि० [सं० सर्वहारिन्] [स्त्री० सर्वहारिणी] सब कुछ हरण करनेवाला ।

सर्वहित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाक्य मुनि । गौतम बुद्ध । (२) मरिच । मिर्च ।

सर्वांग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संपूर्ण शरीर । सारा बदन । जैसे,—सर्वांग में तैल मर्दन । (२) सब अवयव या अंश । (३) सब वेदांग ।

सर्वांगरूप–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम ।

सर्वांत्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह पद्य जिसके चारों चरणों के अंत्याक्षर एक से हों ।

सर्वाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] रुद्राक्ष । शिवाक्ष ।

सर्वाक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुग्धिका । दुधिया घास । दुद्धी ।

सर्वाख्य–संज्ञा पुं० [सं०] पारद । पारा ।

सर्वाणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा । पार्वती ।

सर्वातिथि–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सब का आतिथ्य करे । वह जो सब आए गए लोगों का सत्कार करे ।

सर्वात्मा–संज्ञा पुं० [सं० सर्वात्मन्] (१) सब की आत्मा । सारे विश्व की आत्मा । संपूर्ण विश्व में व्याप्त चेतन सत्ता । ब्रह्म । (२) शिव का एक नाम । (३) जिन । अर्हत् ।

सर्वाधिकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब कुछ करने का अधिकार । पूर्ण प्रभुत्व । पूरा इख्तियार । (२) सब प्रकार का अधिकार ।

सर्वाधिकारी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूरा अधिकार रखनेवाला । वह जिसके हाथ में पूरा इख्तियार हो । (२) हाकिम ।

सर्वाभिसंधक–संज्ञा पुं० [सं०] सब को धोखा देनेवाला । (मनु०)

सर्वाभिसार–संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ाई के लिये संपूर्ण सेना की तैयारी या सजाव ।

सर्वामात्य–संज्ञा पुं० [सं०] किसी परिवार या गृहस्थी में रहनेवाले घर के प्राणी, नौकर चाकर आदि सब लोग । (स्मृति)

सर्वायनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद निसोथ।

सर्वार्थसाधन–संज्ञा पुं० [सं०] सब प्रयोजन सिद्ध होना। सारे मतलब पूरे होना।

सर्वार्थसिद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धार्थ। शाक्य मुनि गौतम बुद्ध।

सर्वावसर–संज्ञा पुं० [सं०] आधी रात।

सर्वावसु–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की एक किरण का नाम।

सर्वाशय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब का शरण या आधार स्थान। (२) शिव का एक नाम।

सर्वाशी–वि० [सं० सर्वाशिन्] [स्त्री० सर्वाशिनी] सब कुछ खानेवाला। सर्वभक्षी। (स्मृति)

सर्वास्तिवाद–संज्ञा पुं० [सं०] यह दार्शनिक सिद्धांत कि सब वस्तुओं की वास्तव सत्ता है, वे असत नहीं हैं।

विशेष—यह बौद्ध मत की वैभाषिक शाखा के चार भिन्न भिन्न मतों में से एक है जिसके प्रवर्त्तक गौतम बुद्ध के पुत्र राहुल माने जाते हैं।

सर्वास्तिवादी–वि० [सं० सर्वास्तिवादिन्] सर्वास्तिवाद मत को माननेवाला। बौद्ध।

सर्वास्त्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों की सोलह विद्या-देवियों में से एक।

सर्वे–संज्ञा पुं० [अं०] (१) भूमि की नाप जोख। पैमाइश। (२) वह सरकारी विभाग जो भूमि को नापकर उसका नकशा बनाता है।

सर्वेश, सर्वेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब का स्वामी। सब का मालिक। (२) ईश्वर। (३) चक्रवर्त्ती राजा। (४) शिव। (५) एक प्रकार की ओषधि।

सर्वौघ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्वांगपूर्ण सेना। (२) एक प्रकार का मधु या शहद।

सर्वौषधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद में ओषधियों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत दस जड़ी बूटियाँ हैं।

सर्शफ–संज्ञा पुं० दे० "सर्षप"।

सर्षप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरसों। (२) सरसों भर का मान या तौल। (३) एक प्रकार का विष।

सर्षपकंद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ विष होती है।

सर्षपक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

सर्षपकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विषैला कीड़ा।

सर्षप तैल–संज्ञा पुं० [सं०] सरसों का तेल।

सर्षपनाल–संज्ञा पुं० [सं०] सरसों का साग।

सर्षपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद सरसों।

सर्षपारुण–संज्ञा पुं० [सं०] पारस्कर गृह्य सूत्र के अनुसार असुरों का एक गण।

सर्षपिक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला कीड़ा जिसके काटने से आदमी मर जाता है।

सर्षपिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का लिंग रोग।

विशेष—इस रोग में लिंग पर सरसों के समान छोटे छोटे दाने निकल आते हैं। यह रोग प्रायः दुष्ट मैथुन से होता है।

(२) मसूरिका रोग का एक भेद। (३) सर्षपिक नाम का ज़हरीला कीड़ा। वि० दे० "सर्षपिक"।

सर्षपी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खाविका। (२) सफेद सरसों। (३) ममोला। खंजन पक्षी। (४) एक प्रकार के छोटे दाने जो शरीर पर निकल आते हैं।

ससों–संज्ञा स्त्री० दे० "सरसों"।

सहद–संज्ञा स्त्री० दे० "सरहद"।

सलंबा नोन–संज्ञा पुं० [सलंबा ? + हिं० नोन] कचिया नोन। काच लवण।

सल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) सरल वृक्ष। (३) एक प्रकार का कीड़ा जो प्रायः घास में रहता है। इसे बोंट भी कहते हैं।

सलई–संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] (१) शलकी वृक्ष। चीढ़। वि० दे० "चीढ़"। (२) चीढ़ का गोंद। कुंदुर।

सलक–संज्ञा पुं० [अ०] चुकन्दर। कन्दशाक।

सलखपात–संज्ञा पुं० [?] कछुआ। कच्छप।

सलगम–संज्ञा पुं० दे० "शलजम"।

सलगा†–संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] शल्लकी। सलई। चीढ़।

सलज–संज्ञा पुं० [सं० सल = जल] पहाड़ी बरफ का पानी।

सलजम–संज्ञा पुं० दे० "शलजम"।

सलज्ज–वि० [सं०] जिसे लज्जा हो। शर्म और हयावाला। लज्जा-शील।

सलटुक–संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

सलतनत–संज्ञा स्त्री० [अ० सल्तनत] (१) राज्य। बादशाहत। (२) साम्राज्य। (३) इंतजाम। प्रबंध।

मुहा०—सलतनत बैठना = प्रबंध ठीक होना। इंतजाम बैठना।

(४) सुभीता। आराम। जैसे,—पहले जरा सलतनत से बैठ लो, तब बातें होंगी।

सलना–क्रि० अ० [सं० शल्य] (१) साला जाना। छिदना। भिदना। (२) किसी छेद में किसी चीज का डाला या पहनाया जाना।

संज्ञा पुं० लकड़ी छेदने का बरमा।

संज्ञा पुं० [सं०] मोती।

सलपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] दाल चीनी। गुड़त्वक्।

सलब–वि० [अ० सल्ब] नष्ट। बरबाद। जैसे,—साल ही भर में उन्होंने बाप दादा की सारी कमाई सलब कर दी।

सलमह-संज्ञा पुं० [फा०] बथुआ नाम का साग।

सलमा-संज्ञा पुं० [अ० सलम ?] सोने या चाँदी का बना हुआ चमकदार गोल लपेटा हुआ तार जो टोपी, साड़ी आदि में बेल बूटे बनाने के काम में आता है। बादला।

सलवट-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलवट"।

सलवन-संज्ञा पुं० [सं० शालिपर्णी] सरिवन।

सलवात-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बरकत। (२) रहमत। मेहरबानी। (३) गाली। दुर्वचन। कुवाच्य।

क्रि० प्र०—सुनाना।

सलसलबोल-संज्ञा पुं० [अ०] बहुमूत्र रोग या मधुप्रमेह नामक रोग।

सलसलाना-क्रि० अ० [अनु०] (१) धीरे धीरे खुजली होना। सरसराहट होना। (२) गुदगुदी होना। (३) कीड़ों का पेट के बल चलना। सरसराना। रेंगना।

क्रि० स० (१) खुजलाना। (२) गुदगुदाना। (३) शीघ्रता से कोई कार्य्य करना।

सलसलाहट-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) सलसल शब्द। (२) खुजली। खारिश। (३) गुदगुदी। कुलकुली।

सलसी-संज्ञा स्त्री० [देश०] माजूफल की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो बूक भी कहलाता है। वि० दे० "बूक"।

सलहज-संज्ञा स्त्री० [हिं० साला] साले की स्त्री। सरहज।

सलाई-संज्ञा स्त्री० [सं० शलाका] (१) धातु की बनी हुई कोई पतली छोटी छड़। जैसे,—सुरमा लगाने की सलाई। घाव में दवा भरने की सलाई। मोजा या गुलूबंद बुनने की सलाई।

मुहा०—सलाई फेरना =(१) आँखों में सुरमा या औषध लगाना। (२) सलाई गरम करके अंधा करने के लिये आँखों में लगाना। आँखें फोड़ना।

(२) दिया सलाई।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सालना] (१) सालने की क्रिया या भाव। (२) सालने की मजदूरी।

संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] (१) सलई। शलकी। (२) चीड़ की लकड़ी।

सलाकना-क्रि० अ० [सं० शलाका + ना (प्रत्य०)] सलाई या इसी तरह की और किसी चीज से किसी दूसरी चीज पर लकीर खींचना। सलाई की सहायता से चिह्न करना।

सलाख-संज्ञा स्त्री० [फा० सलाख, मि० सं० शलाका] (१) धातु की बनी हुई छड़। शलाका। सलाई। (२) लकीर। खत।

सलाजीत-संज्ञा स्त्री० दे० "शिलाजीत"।

सलाद-संज्ञा पुं० [अं० सैलाड] (१) गाजर, मूली, राई, प्याज आदि के पत्तों का अँगरेजी ढंग से सिरके आदि में डाला हुआ अचार। (२) एक विशिष्ट जाति के कन्द के पत्ते जो प्रायः कच्चे खाए जाते हैं और बहुत पाचक होते हैं। इसके कई भेद होते हैं।

सलाम-संज्ञा पुं० [अ०] प्रणाम करने की क्रिया। प्रणाम। बंदगी। आदाब।

मुहा०—दूर से सलाम करना = किसी बुरी वस्तु के पास न जाना। किसी बुरे आदमी से दूर रहना। जैसे,—उनको तो हम दूर ही से सलाम करते हैं। सलाम है = हम दूर रहना चाहते हैं। बाज आए। जैसे,—अगर उनका यही रंग ढंग है, तो फिर हमारा तो यहीं से उनको सलाम है। सलाम लेना = सलाम का जवाब देना। सलाम कबूल करना। सलाम देना = (१) सलाम करना। (२) सलाम कहलाना। सलाम करके चलना = किसी से नाराज होकर चलना। अप्रसन्न होकर विदा होना। सलाम फेरना = (१) नमाज खतम करना। (२) किसी से अप्रसन्न होकर उसका प्रणाम न स्वीकार करना।

यौ०—सलाम अलैक या सलाम अलैकम = सलाम। अभिवादन।

सलाम कराई-संज्ञा स्त्री० [अ० सलाम + हिं० कराई] (१) सलाम करने की क्रिया या भाव। (२) वह धन जो कन्या पक्षवाले मिलनी के समय वर पक्ष के लोगों को देते हैं। (मुसल०)

सलामत-वि० [अ०] (१) सब प्रकार की आपत्तियों से बचा हुआ। रक्षित। जैसे,—घर तक सलामत पहुँचे, तब समझना।

यौ०—सही सलामत।

(२) जीवित और स्वस्थ। तंदुरुस्त और जिंदा। जैसे,—आप सलामत रहें; हमें बहुतेरा मिला करेगा। (३) कायम। बरकरार। जैसे,—सिर सलामत रहे, टोपियाँ बहुत मिलेंगी।

क्रि० वि० कुशलपूर्वक। खैरियत से।

संज्ञा स्त्री० सालिम या पूरा होने का भाव। अखंडित और संपूर्ण होने का भाव।

सलामती-संज्ञा स्त्री० [अ० सलामत + ई (प्रत्य०)] (१) तंदुरुस्ती। स्वस्थता। (२) कुशल। क्षेम। जैसे,—हम तो हमेशा आपकी सलामती चाहते हैं।

मुहा०—सलामती से = ईश्वर की कृपा से। परमात्मा के अनुग्रह से।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग प्रायः स्त्रियाँ और विशेषतः मुसलमान स्त्रियाँ, कोई बात कहते समय, शुभ भावना से करती हैं। जैसे,—सलामती से उनके दो दो लड़के हैं।

(३) एक प्रकार का मोटा कपड़ा। (४) जीवन। जिंदगी।

सलामी-संज्ञा स्त्री० [अ० सलाम + ई (प्रत्य०)] (१) प्रणाम करने की क्रिया। सलाम करना। जैसे,—दूल्हे को सलामी में १०) मिले थे। (२) शस्त्रों से प्रणाम करने की क्रिया। सैनिकों की प्रणाम करने की प्रणाली। सिपाहियाना सलाम। जैसे,—सिपाहियों की सलामी, तोपखाने की सलामी।

(३) तोपों या बन्दूकों की बाढ़ जो किसी बड़े अधिकारी या माननीय व्यक्ति के आने पर दागी जाती है।

मुहा०—सलामी उतारना = किसी के स्वागतार्थ बन्दूकों या तोपों की बाढ़ दागना।

क्रि० प्र०—दगना।—दागना।—होना।

सलाह-संज्ञा स्त्री० [अ०] सम्मति। परामर्श। राय। मशवरा।

क्रि० प्र०—पूछना।—देना।—बताना।—लेना।

मुहा०—सलाह ठहरना = राय पक्की होना। सम्मति निश्चित होना। जैसे,—सब लोगों की सलाह ठहरी है कि कल बाग चलें।

सलाहकार-संज्ञा पुं० [अ० सलाह + फा० कार (प्रत्य०)] वह जो परामर्श देता हो। राय देनेवाला।

सलिल-संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

सलिलकुंतल-संज्ञा पुं० [सं०] शैवल। सिवार।

सलिलक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेत का तर्पण। जलांजलि। उदक क्रिया। वि० दे० "उदकक्रिया"।

सलिलचर-वि० [सं०] जल में विचरण करनेवाला। जलचर।

सलिलज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। पद्म। (२) वह जो जल से उत्पन्न हो। जलजात।

सलिलजन्मा-संज्ञा पुं० [सं० सलिलजन्मन्] (१) कमल। पद्म। (२) वह जो जल से उत्पन्न हो। जलजात।

सलिलद-वि० [सं०] सलिल देनेवाला। जल देनेवाला। जो जल दे।

संज्ञा पुं० मेघ। बादल।

सलिलधर-संज्ञा पुं० [सं०] मोथा। मुस्तक।

सलिलनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलनिधि। समुद्र। (२) सरसी छंद का एक नाम।

सलिलपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल के स्वामी, वरुण। (२) समुद्र। सागर।

सलिलप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] सूअर। शूकर।

सलिलमुच्-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

सलिलयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) वह वस्तु जो जल में उत्पन्न होती हो।

सलिलराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल का स्वामी, वरुण। (२) समुद्र। सागर।

सलिलस्थलचर-वि० [सं०] जो जल और स्थल दोनों में विचरण करता हो। जैसे,—हंस, साँप आदि।

सलिलांजलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृतक के उद्देश्य से दी जानेवाली जलांजलि।

सलिलाकर-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

सलिलाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] जल के अधिष्ठाता देवता, वरुण।

सलिलार्णव-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

सलिलालय-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

सलिलाशन-वि० [सं०] केवल जल पीकर रहनेवाला।

सलिलाशय-संज्ञा पुं० [सं०] जलाशय। तालाब।

सलिलाहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो केवल जल पीकर रहता हो। (२) केवल जल पीकर रहने की क्रिया।

सलिलेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] जल के अधिष्ठाता देवता, वरुण।

सलिलेंधन-संज्ञा पुं० [सं०] बाड़वानल।

सलिलेचर-संज्ञा पुं० [सं०] जल में रहनेवाला जीव। जलचर।

सलिलेश-संज्ञा पुं० [सं०] जल के अधिष्ठाता देवता, वरुण।

सलिलेशय-वि० [सं०] जल में सोनेवाला। जलशायी।

सलिलोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) जल में उत्पन्न होनेवाली कोई चीज। जैसे,—शंख, घोंघा आदि।

सलिलोपजीवी-वि० [सं० सलिलोपजीविन्] केवल जल पर निर्भर रहनेवाला। जलोपजीवी।

सलिलौका-संज्ञा पुं० [सं० सलिलौकस्] जोंक। जलौका।

सलिलौदन संज्ञा पुं० [सं०] पकाया हुआ अन्न।

सलीका-संज्ञा पुं० [अ०] (१) काम करने का ठीक ठीक या अच्छा ढंग। शऊर। तमीज़। (२) हुनर। लियाकत। (३) चाल चलन। बरताव। (४) तहज़ीब। सभ्यता।

क्रि० प्र०—आना।—सिखाना।—सीखना।—होना।

सलीकामंद-वि० [अ० सलीका + फा० मंद (प्रत्य०)] (१) जिसे सलीका हो। शऊरदार। तमीज़दार। (२) हुनरमंद। (३) सभ्य।

सलीखा-संज्ञा पुं० [?] तज। त्वक्पत्र।

सलीता-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत मोटा कपड़ा जो प्रायः मारकीन या गजी की तरह का होता है।

सलीपर-संज्ञा पुं० [अं० स्लिपर] (१) एक प्रकार का हलका जूता जिसके पहनने पर पंजा ढँका रहता है और एड़ी खुली रहती है। आराम पाई। सलपट जूती। (२) वह लकड़ी का तख्ता जो रेल की पटरियों के नीचे बिछाया रहता है। वि० दे० "स्लीपर"। (३) हाल जो पहिए पर चढ़ाई जाती है।

सलीमी-संज्ञा स्त्री० [अ० सलीम] एक प्रकार का कपड़ा।

सलीलगजगामी-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम।

सलीस-वि० [अ०] (१) सहज। सुगम। आसान। (२) जिसका तल बराबर हो। समतल। हमवार। (३) मुहावरेदार और चलती हुई (भाषा)।

सलूक-संज्ञा पुं० [अ०] (१) तौर। तरीका। ढंग। (क्व०) (२) बरताव। व्यवहार। आचरण। जैसे,—अपने साथियों के साथ उनका सलूक अच्छा नहीं होता। (३) मिलाप। मेल। सद्भाव। जैसे,—उनके घर में सब लोग सलूक से रहते हैं। (४) भलाई। नेकी। उपकार। जैसे,—जहाँ तक हो, गरीबों के साथ कुछ न कुछ सलूक करते रहना चाहिए।

सलूग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शार्ङ्गधर संहिता के अनुसार एक प्रकार के बहुत छोटे कीड़े। (२) जूँ। लीख।

सलूना-संज्ञा पुं० [हिं० स+नन=नमक] पकी हुई तरकारी या भाजी। (पश्चिम)

वि० दे० "सलोना"।

सलूनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० स+लोन=नमक] चूका शाक। चुक्रिका।

सलेक-संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय संहिता के अनुसार एक आदित्य का नाम।

सलैया†-संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] शलकी। सलई।

सलोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नगर। शहर। (२) वह जो नगर में रहता हो। नागरिक।

सलोतर-संज्ञा पुं० [सं० शालिहोत्री] पशुओं विशेषतः घोड़ों की चिकित्सा का विज्ञान।

सलोतरी-संज्ञा पुं० [सं० शालिहोत्री] पशुओं विशेषतः घोड़ों की चिकित्सा करनेवाला। शालिहोत्री।

सलोना-वि० [हिं० स+लोन=नमक] [स्त्री० सलोनी] (१) जिसमें नमक पड़ा हो। नमक मिला हुआ। नमकीन। (२) जिसमें नमक या सौंदर्य्य हो। रसीला। सुंदर। जैसे,—तोरे नैनों श्याम सलोने, जादू भरी कि कटारी। (गीत)

सलोनापन-संज्ञा पुं० [हिं० सलोना+पन (प्रत्य०)] सलोना होने का भाव।

सलोनो-संज्ञा पुं० [सं० श्रावणी ?] हिंदुओं का एक त्योहार जो श्रावण मास में पूर्णिमा के दिन पड़ता है। इस दिन लोग राखी बाँधते और बँधवाते हैं। रक्षा बंधन। राखी पूनो।

सल्ल-संज्ञा पुं० [सं० सरल] सरल वृक्ष। सरलद्रुम।

सल्लकी-संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] (१) शल्लकी वृक्ष। सलई। (२) कुंदुरु। शल्लकी-निर्यास।

सल्लक्षणतीर्थ†-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

सल्लम-संज्ञा पुं० स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा कपड़ा। गजी। गाढ़ा।

सल्लाह-संज्ञा स्त्री० दे० "सलाह"।

सल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] शल्लकी। सलई।

सल्लू†-वि० [देश०] मूर्ख। बेवकूफ़।

संज्ञा पुं० [हिं० सलना] चमड़े की डोरी।

सल्व-संज्ञा पुं० दे० "शल्व"।

सवंशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

सव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) पुष्परस। पुष्पद्रव। (३) यज्ञ। (४) सूर्य। (५) संतान। औलाद। (६) चंद्रमा।

वि० अज्ञ। अनाड़ी।

* संज्ञा पुं० दे० "शव"।

सवगात-संज्ञा स्त्री० दे० "सौगात"।

सवजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बर्बरी। अजगन्धा।

सवत-संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"।

सवत्स-वि० [सं०] बच्चे के सहित। जिसके साथ बच्चा हो। जैसे,—दान में सवत्स गौ दी जाती है।

सवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसव। बच्चा जनना। (२) श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा। (३) यज्ञस्नान। (४) सोमपान। (५) यज्ञ। (६) चंद्रमा। (७) पुराणानुसार भृगु के एक पुत्र का नाम। (८) वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम। (९) रोहित मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम। (१०) स्वायंभुव मनु के एक पुत्र का नाम। (११) अग्नि का एक नाम।

सवनकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सवनकर्मन्] यज्ञकार्य।

सवनमुख-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का आरंभ।

सवनिक-वि० [सं०] सवन संबंधी। सवन का।

सवयस्क-वि० [सं०] समान अवस्थावाले। बराबर की उम्रवाले।

सवया-संज्ञा स्त्री० [सं०] सखी। सहचरी। सहेली।

सवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। (२) शिव का एक नाम।

सवरलोध्र-संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध। सफेद लोध।

सवर्ण-वि० [सं०] (१) समान। सदृश। (२) समान वर्ण का। समान जाति का।

सवर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पत्नी छाया का एक नाम।

सवहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ। त्रिवृत।

सवाँग-संज्ञा पुं० दे० "स्वाँग"।

सवा-संज्ञा स्त्री० [सं० स+पाद] चौथाई सहित। संपूर्ण और एक का चतुर्थांश। चतुर्थांश सहित। जैसे,—सवा चार; अर्थात् चार और एक का चतुर्थांश=४¼।

सवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सवा+ई (प्रत्य०)] (१) ऋण का एक प्रकार जिसमें मूल धन का चतुर्थांश ब्याज में देना पड़ता है। (२) जयपुर के महाराजाओं की एक उपाधि। (३) मूत्र यंत्र संबंधी एक प्रकार का रोग।

वि० एक और चौथाई। सवा।

सवागी-संज्ञा पुं० [?] सुहागा। टंकण क्षार।

सवाद-संज्ञा पुं० दे० "स्वाद"।

सवादिक*†-वि० [हिं० सवाद+इक (प्रत्य०)] खाने में जिसका स्वाद अच्छा हो। स्वाद देनेवाला। स्वादिष्ट।

सवाब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) शुभ कृत्य का फल जो स्वर्ग में मिलेगा। पुण्य।

मुहा०—सवाब कमाना=ऐसा काम करना जिसमें पुण्य हो। पुण्य-कार्य करना।

(२) भलाई। नेकी।

सवार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह जो घोड़े पर चढ़ा हो। अश्वारोही। (२) अश्वारोही सैनिक। रिसाले का सिपाही। (३) वह जो किसी चीज पर चढ़ा हो।

वि० किसी चीज पर चढ़ा या बैठा हुआ। जैसे,—वे गाड़ी पर सवार होकर घूमने निकलते हैं।

सवारना–क्रि० स० दे० "सँवारना"।

सवारी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) किसी चीज पर विशेषतः चलने के लिये चढ़ने की क्रिया। (२) वह चीज जिस पर यात्रा आदि के लिये चढ़ते हों। सवार होने की वस्तु। चढ़ने की चीज। जैसे,—घोड़ा, हाथी, मोटर, रेल आदि।

मुहा०—सवारी लेना = सवारी के काम में लाना। सवार होना।

(३) वह व्यक्ति जो सवार हो। जैसे,—एक्केवाले चार आने फी सवारी माँगते हैं। (४) जलूस। जैसे,—राजा साहब की सवारी बहुत धूम से निकली थी। (५) कुश्ती में अपने विपक्षी को जमीन पर गिराकर उसकी पीठ पर बैठना और उसी दशा में उसे चित करने का प्रयत्न करना।

क्रि० प्र०—कसना।

(६) संभोग या प्रसंग के लिये स्त्री पर चढ़ने की क्रिया। (बाजारू)

क्रि० प्र०—कसना।—गाँठना।

सवाल–संज्ञा पुं० [अ०] (१) पूछने की क्रिया। (२) वह जो कुछ पूछा जाय। प्रश्न। (३) दरखास्त। माँग। याचना।

मुहा०—(किसी पर) सवाल देना = (किसी पर) नालिश करना। फरियाद करना।

(४) विनती। निवेदन। प्रार्थना। (५) भिक्षा की याचना। (६) गणित का प्रश्न जो उत्तर निकालने के लिये दिया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—देना।

सवाल जवाब–संज्ञा पुं० [अ०] (१) बहस। वादविवाद। जैसे,—सब बातों में सवाल जवाब मत किया करो; जो कहा जाय, वह किया करो। (२) तकरार। हुज्जत। झगड़ा।

सविकल्प–वि० [सं०] (१) विकल्प सहित। संदेह युक्त। संदिग्ध। (२) जो किसी विषय के दोनों पक्षों या मतों आदि को, कुछ निर्णय न कर सकने के कारण, मानता हो।

संज्ञा पुं० (१) दो प्रकार की समाधियों में से एक प्रकार की समाधि। वह समाधि जो किसी आलंबन की सहायता से होती है। (२) वेदांत के अनुसार ज्ञाता और ज्ञेय के भेद का ज्ञान।

सविचार–संज्ञा पुं० [सं०] चार प्रकार की सविकल्प समाधियों में से एक प्रकार की समाधि।

सविद्यालंभ–संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का परिहास या मजाक।

सवितर्क–संज्ञा पुं० [सं०] चार प्रकार की सविकल्प समाधियों में से एक प्रकार की समाधि।

सविता–संज्ञा पुं० [सं० सवितृ] (१) सूर्य्य। दिवाकर। (२) बारह की संख्या। (३) आक। अर्क। मदार।

सवितातनय–संज्ञा पुं० [सं० सवितृतनय] सूर्य्य के पुत्र हिरण्यपाणि।

सवितादैवत–संज्ञा पुं० [सं० सवितृदैवत] हस्त नक्षत्र जिसके अधिष्ठाता देवता सूर्य्य माने जाते हैं।

सवितापुत्र–संज्ञा पुं० [सं० सवितृपुत्र] सूर्य्य के पुत्र, हिरण्यपाणि।

सविताफल–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मेरु के उत्तर के एक पर्वत का नाम।

सवितासुत–संज्ञा पुं० [सं० सवितृसुत] सूर्य्य के पुत्र, शनैश्चर।

सवित्र–संज्ञा पुं० [सं०] प्रसव करना। लड़का जनना।

सवित्रिय–वि० [सं०] सूर्य्य संबंधी। सविता या सूर्य्य का।

सवित्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रसव करानेवाली, धाई। धात्री। दाई। (२) प्रसव करनेवाली, माता। माँ। (३) गौ।

सविद्य–वि० [सं०] विद्वान्। पंडित।

सविध–वि० [सं०] निकट। पास। समीप।

सविभाल–संज्ञा पुं० [सं०] नखी या हट्टविलासिनी नामक गंध द्रव्य।

सविभास–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य का एक नाम।

सविलास–वि० [सं०] भोग विलास करनेवाला। विलासी।

सवीर्य्या संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावर। शतावरी।

सवेरा–संज्ञा पुं० [हिं० स + सं० वेला] (१) सूर्य्य निकलने के लगभग का समय। प्रातःकाल। सुबह। (२) निश्चित समय के पूर्व का समय। (क्व०)

सवेश–वि० [सं०] निकट। समीप।

सवेशीय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

सवैया–संज्ञा पुं० [हिं० सवा + ऐया (प्रत्य०)] (१) तौलने का एक बाट जो सवा सेर का होता है। (२) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण और एक गुरु होता है। इसे मालिनी, और दिवा भी कहते हैं।

विशेष—इस अर्थ में कुछ लोग इसे स्त्रीलिंग भी बोलते हैं।

(३) वह पहाड़ा जिसमें एक, दो, तीन आदि संख्याओं का सवाया रहता है। (४) दे० "सवाई"।

सव्य–वि० [सं०] (१) वाम। बायाँ। (२) दक्षिण। दाहिना।

विशेष—सव्य शब्द का वाम और दक्षिण दोनों अर्थ होता है। पर साधारणतः यह वाम के ही अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(३) प्रतिकूल। विरुद्ध। खिलाफ।

संज्ञा पुं० (१) यज्ञोपवीत। (२) चंद्र या सूर्य ग्रहण के दस प्रकार के ग्रासों में एक प्रकार का ग्रास। (३) अंगिरा के पुत्र का नाम जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा थे। कहते हैं कि

अंगिरा के तपस्या करने पर इंद्र ने उनके घर पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया था, जिनका नाम सव्य पड़ा। (४) विष्णु।

सव्यचारी-संज्ञा पुं० [सं० सव्यचारिन्] (१) अर्जुन का एक नाम। वि० दे० "सव्यसाची"। (२) अर्जुन वृक्ष। कौह वृक्ष।

सव्यसाची-संज्ञा स्त्री० [सं० सव्यसाचिन] अर्जुन।

विशेष—कहते हैं कि अर्जुन दाहिने हाथ से भी तीर चला सकते थे और बाएँ हाथ से भी; इसी लिये उनका यह नाम पड़ा।

सव्येष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] सारथी।

सव्रणशुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें आँख की पुतली पर सूई से किए हुए छोटे छेद के समान गहरी फूली पड़ती है और आँखों से गरम आँसू निकलते हैं।

सशंक-वि० [सं०] (१) जिसे शंका हो। शंका युक्त। शंकित। (२) भयभीत। डरा हुआ। (३) भयकारी। भयानक। (४) शंका उत्पन्न करनेवाला। भ्रामक।

सशंकना॥-क्रि० अ० [सं० सशंक + ना (प्रत्य०)] (१) शंका युक्त होना। शंकित होना। (२) भयभीत होना। डरना।

सशल्य-संज्ञा पुं० [सं०] रीछ। भालू।

सशल्यव्रण-संज्ञा पुं० [सं०] व्रण रोग का एक भेद।

विशेष—काँटे आदि के चुभ जाने से यह व्रग उत्पन्न होता है। इसमें विद्धस्थान में सूजन होती है और वह पक जाता है।

सशल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती। हाथी शुंडी।

सशवी-संज्ञा पुं० [?] काला जीरा। कृष्ण जीरक।

सशाक-संज्ञा पुं० [सं०] अदरक। आदी।

सशोथपाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नेत्र रोग। इस रोग में आँखों में से आँसू निकलते हैं और उनमें खुजली तथा शोथ होता है। आँखें लाल भी हो जाती हैं।

सस॥-संज्ञा पुं० [सं० शशि] चंद्रमा। शशि।

ससक।-संज्ञा पुं० [सं० शशक] खरहा। खरगोश।

ससत्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री। गर्भिणी।

ससरना।-क्रि० अ० [सं० सरण] सरकना। खिसकना।

ससा।-संज्ञा पुं० [सं० शशा] (१) खरगोश। शशक। (२) खीरा।

ससि॥-संज्ञा पुं० [सं० शशि] शशि। चंद्रमा।

ससिब-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा शाल। सर्ज वृक्ष।

ससिधर॥-संज्ञा पुं० [सं० शशिधर] शशि। चंद्रमा।

ससी॥-संज्ञा पुं० [सं० शशि] शशि। चंद्रमा।

ससुर-संज्ञा पुं० [सं० श्वशुर] जिसके पुत्री या पुत्र से ब्याह हुआ हो। पति या पत्नी का पिता। श्वशुर। वि० दे० "श्वसुर"।

ससुराल-संज्ञा स्त्री० [सं० श्वशुरालय] (१) श्वसुर का घर। पति या पत्नी के पिता का घर। (२) जेल खाना। बंदी गृह। (बदमाश)

सस्ता-वि० [सं० स्वस्थ] [स्त्री० सस्ती] (१) जो महँगा न हो। जिसका मूल्य साधारण से कुछ कम हो। थोड़े मूल्य का। जैसे,—उन्हें यह मकान बहुत सस्ता मिल गया। (२) जिसका भाव बहुत उतर गया हो। जैसे,—आजकल सोना सस्ता हो गया है।

यौ०—सस्ता समय = ऐसा समय जब कि सब चीजें सस्ती हों।

मुहा०—सस्ता लगना = कम दाम पर बेचना। दाम या भाव कम कर देना। **सस्ते छूटना** = जिस काम में अधिक व्यय, परिश्रम या कष्ट आदि होने को हो, वह काम थोड़े व्यय, परिश्रम या कष्ट में हो जाना।

(३) जो सहज में प्राप्त हो सके। जिसका विशेष आदर न हो। (४) घटिया। साधारण। मामूली। (क्व०)

सस्ताना।-क्रि० अ० [हिं० सस्ता + ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु का कम दाम पर बिकना। सस्ता हो जाना।

क्रि० स० किसी चीज का भाव सस्ता करना। सस्ते दामों पर बेचना।

सस्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० सस्ता + ई (प्रत्य०)] (१) सस्ता होने का भाव। सस्तापन। अल्पमूल्यता। महँगी का अभाव। (२) वह समय जब कि सब चीजें सस्ते दाम पर मिला करती हों। जैसे,—सस्ती में यही कपड़ा तीन आने गज मिला करता था।

सस्त्रीक-वि० [सं०] जिसके साथ स्त्री हो। स्त्री या पत्नी के सहित। जैसे,—वे सस्त्रीक यहाँ आनेवाले हैं।

सस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धान्य। (२) शस्त्र। (३) गुण। (४) वृक्षों का फल। (५) दे० "शस्य"।

विशेष—"सस्य" के यौगिक आदि शब्दों के लिये दे० "शस्य" के यौगिक शब्द।

सस्यक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार की मणि। (२) तलवार। (३) शालि। (४) साधु।

सस्यमारी-संज्ञा पुं० [सं० सस्यमारिन्] मूसा। चूहा।

वि० शस्य या अनाज का नाश करनेवाला।

सस्यसंवत्सर-संज्ञा पुं० [सं०] शाल। साखू।

सस्यसंवर-संज्ञा पुं० [सं० सस्यसम्वर] (१) सलई। शल्लकी। (२) शाल का वृक्ष।

सस्यसंवरण-संज्ञा पुं० [सं० सस्यसम्वरण] शाल या अश्वकर्ण वृक्ष। साखू।

सहया संज्ञा स्त्री० [सं०] अरनी। गणिकारिका। गनियल।

सहंडुक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मांस का रसा या शोरबा।

विशेष—बकरे आदि पशुओं के मांस भरे अंगों के टुकड़ों को धोकर घी में हींग आदि का तड़का देकर धीमी आँच में

भून ले। अनंतर उसे छानकर पानी, नमक, मसाला आदि डाले और पक जाने पर उतार ले। भावप्रकाश में यह शोरबा शुक्रवर्द्धक, बलकारक, रुचिकर, अग्निप्रदीपक, त्रिदोष शांति के लिये श्रेष्ठ और धातुपोषक बताया गया है।

सह–अव्य० [सं०] सहित। समेत।
वि० [सं०] (१) विद्यमान। उपस्थित। मौजूद। (२) सहिष्णु। सहनशील। (३) समर्थ। योग्य।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) सादृश्य। समानता। बराबरी। (२) सामर्थ्य। बल। शक्ति। (३) अगहन का महीना। (४) महादेव का एक नाम। (५) रेह का नोन। पांशु लवण।
संज्ञा स्त्री० समृद्धि।

सहकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुगंधि युक्त पदार्थ। (२) आम का पेड़। (३) कलमी आम। (४) सहायक। मददगार। (५) साथ मिलकर काम करना। सहयोग।

सहकारता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहायता। मदद।

सहकारभंजिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की क्रीड़ा या अभिनय।

सहकारिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहकारी होने का भाव। सहायक होने का भाव। (२) सहायता। मदद।

सहकारी–संज्ञा पुं० [सं० सहकारिन्] [स्त्री० सहकारिणी] (१) साथ काम करनेवाला। साथी। सहयोगी। (२) सहायक। मददगार। सहायता करनेवाला।

सहगमन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साथ जाने की क्रिया। (२) पति के शव के साथ पत्नी के सती होने का व्यापार। सती होने की क्रिया।

सहगामिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जो पति के शव के साथ सती हो जाय। पति की मृत्यु पर उसके साथ जल मरनेवाली स्त्री। (२) स्त्री। पत्नी। सहचरी। साथिन।

सहगामी–संज्ञा पुं० [सं० सहगामिन्] [स्त्री० सहगामिनी] (१) साथ चलनेवाला। साथी। (२) अनुकरण करनेवाला। अनुयायी।

सहगौन*–संज्ञा पुं० दे० "सहगमन"।

सहचर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सहचरी] (१) वह जो साथ चलता हो। साथ चलनेवाला। साथी। हमराही। (२) सेवक। दास। भृत्य। नौकर। (३) दोस्त। सखा। मित्र। (४) कटसरैया।

सहचरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली कटसरैया।

सहचराद्य तैल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल।
विशेष—यह तैल बनाने के लिये नीले फूलवाली कटसरैया, धमास, कत्था, जामुन की छाल, आम की छाल, मुलेठी, कमलगट्टा सब एक एक टके भर लेते हैं और उनका चूर्ण बनाकर १६ सेर जल में डालकर औटाते हैं। जब चौथाई रह जाता है, तब उसे तेल या बकरी के दूध में पकाते हैं। कहते हैं कि इसके सेवन से दाँत मजबूत हो जाते हैं।

सहचरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहचर का स्त्री० रूप। (२) पत्नी। भार्य्या। जोरू। (३) सखी। सहेली।

सहचार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सदा साथ रहता हो। सहचर। संगी। साथी। (२) साथ। संग। सोहबत।

सहचार उपाधि लक्षणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें जड़ सहचारी के कहने से चेतन सहचारी का बोध होता है। जैसे,—"गद्दी को नमस्कार करो" यहाँ गद्दी शब्द से गद्दी पर बैठनेवाले का बोध होता है।

सहचारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साथ में रहनेवाली। सहचरी। सखी (२) पत्नी। स्त्री। जोरू।

सहचारिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहचारी होने का भाव।

सहचारित्व–संज्ञा पुं० [सं०] सहचारी होने का भाव।

सहचारी–संज्ञा पुं० [सं० सहचारिन्] [स्त्री० सहचारिणी] (१) संगी। सहचर। साथी। (२) सेवक। नौकर।

सहज–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सहजा] (१) सहोदर भाई। सगा भाई। एक माँ का जाया भाई। (२) निसर्ग। स्वभाव। (३) ज्योतिष में जन्म लग्न से तृतीय स्थान। भाइयों और बहनों आदि का विचार इसी स्थान को देखकर किया जाता है।
वि० (१) स्वाभाविक। स्वभावोत्पन्न। प्राकृतिक। जैसे,—काटना तो साँपों का सहज स्वभाव है। (२) साधारण। (३) सरल। सुगम। आसान। जैसे,—जब तुम से इतना सहज काम भी नहीं हो सकता, तब तुम और क्या करोगे। (४) साथ उत्पन्न होनेवाला।

सहजकृति–संज्ञा पुं० [सं०] सोना। स्वर्ण।

सहजक्लैव्य–संज्ञा पुं० [सं०] नपुंसकता रोग का एक भेद। वह नपुंसकता जो जन्म से ही हो।

सहजता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहज होने का भाव। (२) सरलता। स्वाभाविकता।

सहजन–संज्ञा पुं० दे० "सहिजन"।

सहजन्मा–वि० [सं० सहजन्मन्] (१) एक गर्भ से एक साथ ही होनेवाली दो संतानें। यमज। यमल। जोड़ा। (२) एक ही गर्भ से उत्पन्न। सहोदर। सगा (भाई आदि)।

सहजन्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम।

सहजन्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

सहज पंथ–संज्ञा पुं० [हिं० सहज + पंथ] गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय का एक निम्न वर्ग। इस संप्रदाय के प्रवर्त्तकों के मतानुसार भजन साधन के लिये पहले एक एक नवयौवन संपन्न सुंदर परकीया रमणी की आवश्यकता होती है। बाद रसिक भक्त या गुरु से सम्यक् रूप से उपदेश लेकर उस नायिका के प्रति तन मन अर्पण कर साधन भजन करने से अविलंब ब्रजनंदन

रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण की प्राप्ति होती है। सहजियों का कहना है कि इस प्रकार की लीला महाप्रभु सर्वसाधारण को न दिखाकर गुप्त रूप से राय रामानन्द और स्वरूप दामोदर आदि कई मार्मिक भक्तों को बता गए हैं।

सहजा मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] स्वाभाविक मित्र। शास्त्र में भानजा, मौसेरा भाई और फुफेरा भाई सहजमित्र और वैमात्रेय तथा चचेरे भाई सहज शत्रु बताए गए हैं। भानजे आदि से संपत्ति का कोई संबंध नहीं होता, इसी से ये सहज मित्र हैं। परंतु चचेरे भाई संपत्ति के लिये झगड़ा कर सकते हैं, इससे वे सहज शत्रु कहे गए हैं।

सहज शत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रों के अनुसार वैमात्रेय या चचेरा भाई जो संपत्ति के लिये झगड़ा कर सकता है। वि० दे० "सहज मित्र"।

सहजात-वि० [सं०] (१) सहोदर। (२) यमज।

सहजाधिनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार जन्म कुंडली के तीसरे या सहज स्थान का अधिपति ग्रह।

सहजानि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी। स्त्री। जोरू।

सहजारि-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रों के अनुसार वैमात्रेय या चचेरा भाई जो समय पड़ने पर संपत्ति आदि के लिये झगड़ा कर सकता है। सहज शत्रु।

सहजार्श-संज्ञा पुं० [सं०] वह अर्श या बवासीर जिसके मस्से कठोर, पीले रंग के और अंदर की ओर मुँहवाले हों।

सहजिया-संज्ञा पुं० [हिं० सहज पंथ] वह जो सहज पंथ का अनुयायी हो। सहज पंथ को माननेवाला। वि० दे० "सहजपंथ"।

सहजीवी-वि० [सं० सहजीविन] एक साथ जीवन धारण करनेवाले। साथ रहनेवाले।

सहजेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म कुंडली के तीसरे या सहज स्थान के अधिपति ग्रह।

सहत-संज्ञा पुं० दे० "शहद"।

सहत महत-संज्ञा पुं० दे० "श्रावस्ति"।

सहतरा-संज्ञा पुं० [फा० शाहतरह] पित्त पापड़ा। पर्पटक।

सहताना‡-क्रि० अ० [हिं० सुसताना] श्रम मिटाना। थकावट दूर करना। विश्राम करना। आराम करना। सुसताना।

उ०—सहतात कहाँ नर ते जग में जिन मीत के कारज सीस धरे।—लक्ष्मणसिंह।

सहतूत-संज्ञा पुं० दे० "शहतूत"।

सहत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) "सह" का भाव। (२) एक होने का भाव। एकता। (३) मेल जोल।

सहदइया संज्ञा स्त्री० दे० "सहदेई"।

सहदान-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से देवताओं के उद्देश्य से एक साथ ही या एक में किया जानेवाला दान।

सहदानी‡-संज्ञा स्त्री० [सं० संज्ञान] निशानी। पहचान। चिह्न।

उ०—सारँगपाणि मूँदि मृगनैनी मणि मुख माँह समानी। चरण चापि महि प्रगट करी पिय शेष शीश सहदानी।—सूर

सहदेई-संज्ञा स्त्री० [सं० सहदेवा] क्षुप जाति की एक वनौषधि जो पहाड़ी भूमि में अधिक उपजती है। यह तीन चार फुट ऊँची होती है। इसके पत्ते बथुए के पत्तों के समान होते हैं। वर्षा ऋतु में यह उगती है। बढ़ने के साथ साथ इसके पत्ते छोटे होते जाते हैं। पत्तों की जड़ में फूलों की कलियाँ निकलती हैं। ये फूल बरियारे के फूलों की भाँति पीले रंग के होते हैं। इसके पौधे चार प्रकार के पाए जाते हैं।

सहदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा पांडु के पाँच पुत्रों में से सब से छोटे पुत्र। कहते हैं कि माद्री के गर्भ और अश्विनीकुमारों के औरस से इनका जन्म हुआ था। द्रौपदी के गर्भ से इन्हें श्रुतसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ये बड़े विद्वान् थे। वि० दे० "पांडु"। (२) जरासंध का पुत्र। महाभारत के युद्ध में इसने पांडवों के विपक्षियों का साथ दिया था। यह अभिमन्यु के हाथ से मारा गया था। (३) हरिवंश के अनुसार हर्यश्व के एक पुत्र का नाम।

सहदेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहदेई। पीतपुष्पी। वि० दे० "सहदेई"। (२) बरियारा। बला। (३) दंडोत्पल। (४) अनंतमूल। शारिवा। (५) सरहँटी। सर्पाक्षी। (६) प्रियंगु। (७) नील। (८) सोनबल्ली नामक वनस्पति जो भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में पाई जाती है। यह क्षुप जाति की वनस्पति है। इसकी ऊँचाई दो फुट तक होती है। इसकी डंडी के नीचे के भाग में पत्ते नहीं होते। पत्ते दो से चार इंच तक चौड़े, गोल और सिरे पर कुछ तिकोने होते हैं। इनकी डंडियाँ १-२ इंच लंबी होती हैं। फूल छोटे छोटे होते हैं। यह औषध के काम में आती है। (९) भागवत के अनुसार देवक की कन्या और वसुदेव की पत्नी का नाम।

सहदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहदेई। पीतपुष्पी। वि० दे० "सहदेई"। (२) सर्पाक्षी। सरहँटी। (३) महानीली। (४) प्रियंगु।

सहदेवीगण-संज्ञा पुं० [सं०] सहदेई, बला, शतमूली, शतावर, कुमारी, गुडुच, सिंही और व्याघ्री आदि ओषधियों का समूह जिनसे देवप्रतिमाओं को स्नान कराया जाता है।

सहधर्मचरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। पत्नी। जोरू।

सहधर्मचारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। पत्नी। भार्य्या।

सहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहने की क्रिया। बरदाश्त करना। (२) क्षमा। क्षांति। तितिक्षा। (३) दे० "सहनशील"।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) मकान के बीच में या सामने का

खुला छोड़ा हुआ भाग। आँगन। चौक। (२) एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा। (३) एक प्रकार का मोटा, गफ़, चिकना सूती कपड़ा जो मगहर में अच्छा बनता है। गाढ़ा।

सहनक–संज्ञा पुं० [अ०] (१) एक प्रकार की छिछली रकाबी जिसका व्यवहार प्रायः मुसलमान लोग करते हैं। तबक। (२) बीबी फातिमा की निमाज या फातिहा। (मुसल०)

सहनभंडार–संज्ञा पुं० [सहन? सं० भंडार] (१) कोप। खजाना। निधि। (२) धन राशि। दौलत। उ०—दानिन दिये बसन मनि भूपण राजा सहन भँडार। मागध सूत भाट नट जाचक जहँ जहँ करहिं कवार।—तुलसी।

सहनशील–वि० [सं०] (१) जिसका स्वभाव सहन करने का हो। जो सरलता से सह लेता हो। बरदाश्त करनेवाला। सहिष्णु। (२) संतोषी। सब्र करनेवाला।

सहनशीलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहनशील होने का भाव। (२) संतोष। सब्र।

सहना–क्रि० स० [सं० सहन] (१) बरदाश्त करना। झेलना। भोगना। जैसे,—(क) अपने पाप के कारण ही तुम इतना दुःख सहते हो। (ख) अब तो यह कष्ट नहीं सहा जाता। (ग) तुम क्यों उसके लिये बदनामी सहते हो? (२) परिणाम भोगना। अपने ऊपर लेना। फल भोगना। जैसे,—इस काम में जो घाटा होगा, वह सब तुम्हें सहना पड़ेगा। (३) बोझ बरदाश्त करना। भार वहन करना। जैसे,—भला यह लकड़ी इतना बोझ कहाँ से सहेगी।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

सहनाई–संज्ञा स्त्री० दे० "शहनाई"।

सहनायन†–संज्ञा स्त्री० [फा० शहनाई + आयन (प्रत्य०)] शहनाई बजानेवाली स्त्री। उ०—नटनी डोमिनि ढारिन सहनायन परकार। निरतत नाद बिनोद सों बिहसत खेलत नार।—जायसी।

सहनीय–वि० [सं०] सहन करने के योग्य। जो सहा जा सके। सह्य।

सहपति–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा का एक नाम।

सहपाठी–संज्ञा पुं० [सं० सहपाठिन] वह जो साथ में पढ़ा हो। वह जिसने साथ में विद्या का अध्ययन किया हो। सहाध्यायी।

सहपिंड–संज्ञा पुं० [सं०] सपिंड नाम की क्रिया। वि० दे० "सपिंडी"।

सहभावी–संज्ञा पुं० [सं० सहभाविन] (१) वह जो सहायता करता हो। सहायक। मददगार। (२) सहोदर। (३) वह जो साथ रहता हो। सखा। सहचर।

सहभू–वि० [सं०] एक साथ उत्पन्न। सहज।

सहभोजन–संज्ञा पुं० [सं०] एक साथ बैठकर भोजन करना। साथ खाना।

सहभोजी–संज्ञा पुं० [सं० सहभोजिन] वे जो एक साथ बैठकर खाते हों। साथ भोजन करनेवाले।

सहम–संज्ञा पुं० [फा०] (१) डर। भय। खौफ।

मुहा०—सहम चढ़ना = डर होना। भय होना।

(२) संकोच। लिहाज। मुलाहजा।

सहमत–वि० [सं०] जिसका मत दूसरे के साथ मिलता हो। एक मत का। जैसे,—मैं इस विषय में आप से सहमत हूँ कि वह बड़ा भारी झूठा है।

सहमना–क्रि० अ० [फा० सहम + ना (प्रत्य०)] भय खाना। भयभीत होना। डरना। उ०—सहमी सभा सकल जनक भए विकल राम लखि कौशिक असीस आज्ञा दई है।—तुलसी।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

सहमरण–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का पति के साथ मरने का व्यापार। सती होने की क्रिया।

सहमान–संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर का एक नाम।

सहमाना–क्रि० स० [हिं० सहमना का सक०] किसी को सहमने में प्रवृत्त करना। भयभीत करना। डराना।

संयो० क्रि० - देना।

सहमृता–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो अपने मृत पति के शव के साथ जल मरे। सहमरण करनेवाली स्त्री। सती।

सहयोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साथ मिलकर काम करने का भाव। सहयोगी होने का भाव। (२) साथ। संग। (३) मदद। सहायता। (४) आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सरकार के साथ मिलकर काम करने, उसकी काउन्सिलों आदि में सम्मिलित होने और उसके पद आदि ग्रहण करने का सिद्धांत।

सहयोगी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहायक। मददगार। (२) वह जो किसी के साथ मिलकर कोई काम करता हो। सहयोग करनेवाला। साथ काम करनेवाला। (३) हम उमर। समवयस्क। (४) वह जो किसी के साथ एक ही समय में वर्तमान हो। समकालीन। (५) आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सब कामों में सरकार के साथ मिले रहने, उसकी काउन्सिलों आदि में सम्मिलित होने और उसके पद तथा उपाधियाँ आदि ग्रहण करनेवाला व्यक्ति।

सहर–संज्ञा पुं० [अ०] प्रातः काल। सवेरा।

संज्ञा पुं० [अ० सेह] जादू। टोना।

संज्ञा पुं० दे० "शहर"।

संज्ञा पुं० दे० "सिहोर" (वृक्ष)।

†क्रि० वि० [हिं० सहारना = सहना या सहताना = सुसताना]

धीरे। मंद गति से। रुक रुक कर। जैसे,—तुम तो सब काम सहर सहर कर करते हो।

सहरगही-संज्ञा स्त्री० [अ० सहर + फा० गह] वह भोजन जो किसी दिन निर्जल व्रत करने के पहले बहुत तड़के या कुछ रात रहे ही किया जाता है। सहरी।

विशेष—इस प्रकार का भोजन प्रायः मुसलमान लोग रमजान के दिनों में रोजा रखने पर करते हैं। वे प्रायः ३ बजे रात को उठकर कुछ भोजन कर लेते हैं; और तब दिन भर निर्जल और निराहार रहते हैं। हिंदुओं में स्त्रियाँ प्रायः हरतालिका तीज का व्रत रखने से पहले भी इसी प्रकार बहुत तड़के उठकर भोजन कर लिया करती हैं।

क्रि० प्र०—खाना।

सहरना-क्रि० अ० दे० "सिहरना"।

सहरसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन मूँग। जंगली मूँग। मुद्गपर्णी।

सहरा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) जंगल। बन। अरण्य। (२) सियाहगोश नामक जंतु।

सहराना‡†-क्रि० स० [हिं० सहलाना] धीरे धीरे हाथ फेरना। सहलाना। मलना। उ०—बाघ बछानि को।गाइ जिआवत बाघिन पै सुरभी सुत चोपै। न्योरनि को सहरावत साँप अहारनि दै बेडहै प्रतिपोपै।—गुमान।

‡† क्रि० अ० [हिं० सिहरना] डर से काँपना।

सहरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) वृष। साँड़।

सहरिया-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का गेहूँ।

सहरी-संज्ञा स्त्री० [सं० शफरी] सफरी मछली। शफरी। उ०—पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे केवट की जाति कछु वेद न पढ़ाइहौं। सब परिवार मेरो याही लागे राजा जू हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [अ०] व्रत के दिन बहुत तड़के किया जानेवाला भोजन। सहरगही। वि० दे० "सहरगही"।

सहरुए-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के एक घोड़े का नाम।

सहल-वि० [अ० मि० सं० सरल] जो कठिन न हो। सरल। सहज। आसान। उ०—टहल सहल जन महल महल जागत चारिउ जुग जाम सो। देखत दोष न खीझत रीझत सुनि सेवक गुनग्राम सो।—तुलसी।

सहलगी‡-संज्ञा पुं० [हिं० साथ + लगना] वह जो साथ हो ले। रास्ते का साथी। हमराही।

सहलाना-क्रि० स० [हिं० सहर = धीरे या अनु०] (१) धीरे धीरे किसी वस्तु पर हाथ फेरना। सहराना। सुहराना। जैसे,—तलवा सहलाना, पैर सहलाना। उ०—वारी फेरी होके तलवे सहलाने लगी।—इंशाअल्ला खाँ। (२) मलना। (३) गुदगुदाना।

संयो० क्रि०—देना।

क्रि० अ०—गुदगुदी होना। खुजलाना। जैसे,—बड़ी देर से पैर का तलुआ सहला रहा है।

सहलोकधातु-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक लोक का नाम।

सहवन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का तेलहन जिसमें तेल निकाला जाता है।

सहवसु-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम जिसका उल्लेख ऋग्वेद में है।

सहवाद-संज्ञा पुं० [सं०] आपस में होनेवाला तर्क वितर्क। वाद विवाद। बहस।

सहवास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साथ रहने का व्यापार। संग। साथ। (२) मैथुन। रति। संभोग।

सहवासी-संज्ञा पुं० [सं० सहवासिन्] साथ रहनेवाला। संगी। साथी। मित्र। दोस्त।

सहव्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी। भार्य्या। जोरू।

सहसंभव-वि० [सं०] जो एक साथ उत्पन्न हुए हों। सहज।

सहस-वि० दे० "सहस्र"।

सहसकिरन-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रकिरण] सूर्य्य। मरीचिमाली। उ०—सहसकिरनि रूप मन भूला। जहँ जहँ दृष्टि कमल जनु फूला।—जायसी।

सहसगो‡-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रगु] सूर्य्य। सहस्रांशु।

सहसजीभ-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रजिह्व] शेषनाग।

सहसदल-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रदल] कमल। शतपत्र।

सहसनयन-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रनयन] सहस्र आँखोंवाला, इंद्र।

सहसफण-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रफण] हजार फणोंवाला, शेषनाग।

सहसबदन-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रवदन] हजार मुखोंवाला, शेषनाग।

सहसबाहु-संज्ञा पुं० दे० "सहस्रबाहु"।

सहसमुख-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रमुख] शेषनाग।

सहसवदन-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रवदन] शेषनाग।

सहससीस-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रशीर्ष] शेषनाग।

सहसा-अव्य० [सं०] एक दम से। एकाएक। अचानक। अकस्मात्। जैसे,—सहसा आँधी आई और चारों ओर अंधकार छा गया।

सहसाखि‡-संज्ञा पुं० [सं० सहस्राक्ष] सहस्र आँखोंवाला, इंद्र।

सहसाखी‡-संज्ञा पुं० [सं० सहस्राक्ष] इंद्र। सहस्राक्ष।

सहसादृष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] दत्तक पुत्र। गोद लिया हुआ लड़का।

सहसान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मयूर। मोर पक्षी। (२) यज्ञ।

सहसानन‡-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रानन] सहस्र मुखोंवाला, शेषनाग।

सहस्य-संज्ञा पुं० [सं०] पूस का महीना। पौष मास।

सहस्र-संज्ञा पुं० [सं०] दस सौ की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१०००।
वि० जो गिनती में दस सौ हो। पाँच सौ का दूना।

सहस्रकर-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

सहस्रकांडा-संज्ञा स्त्री० [सं० सहस्र काण्ड] सफ़ेद दूब। श्वेत दूर्वा।

सहस्रकिरण-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य। सहस्ररश्मि।

सहस्रगु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

सहस्रचक्षु-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रचक्षस्] हजार आँखोंवाला, इंद्र।

सहस्रचरण-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सहस्रचित्त-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सहस्रजित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृगमद। कस्तूरी। (२) कृष्ण की पटरानी जांबवती के दस पुत्रों में से एक। (३) विष्णु का एक नाम।

सहस्रणी-संज्ञा पुं० [सं०] हजार रथियों की रक्षा करनेवाले, भीष्म।

सहस्रदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] पाठीन मछली।

सहस्रद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत बड़ा दानी। हजारों गौएँ आदि दान करनेवाला। (२) बोआरी मछली। पाठीन। पहिना।

सहस्रदक्षिण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें हजार गौएँ या हजार मोहरें दान दी जाती हैं।

सहस्रदल-संज्ञा पुं० [सं०] पद्म। कमल।

सहस्रदृश्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) इंद्र।

सहस्रधारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं आदि को स्नान कराने का एक प्रकार का पात्र जिसमें हजार छेद होते हैं। इन्हीं छेदों में से जल निकलकर देवता पर पड़ता है।

सहस्रधी-वि० [सं०] बहुत बड़ा बुद्धिमान्। खूब समझदार।

सहस्रधौत-वि० [सं०] हजार बार धोया हुआ (घृत आदि जो ओषधि के काम में आता है।)

सहस्रनयन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) इंद्र।

सहस्रनाम-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्तोत्र जिसमें किसी देवता के हजार नाम हों। जैसे,—विष्णु सहस्रनाम, शिव सहस्रनाम आदि।

सहस्रनामा-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रनामन्] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) अमलबेंत।

सहस्रनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) विष्णु।

सहस्रपति-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो हजार गाँवों का स्वामी और शासक हो।

सहस्रपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कमलपत्र।

सहस्रपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शर। तीर। (२) एक प्रकार का वृक्ष।

सहस्रपर्व्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब। श्वेत दूर्वा।

सहस्रपाद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है।

सहस्रपाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) विष्णु। (३) सारस। कारण्डव पक्षी।

सहस्रबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) कार्त्तवीर्य्यार्जुन, जिसके विषय में पुराणों में कई कथाएँ हैं। यह क्षत्रिय राजा कृतवीर्य्य का पुत्र था। इसका दूसरा नाम हैहय था। इसकी राजधानी माहिष्मती में थी। एक बार यह नर्मदा में स्त्रियों सहित जलक्रीड़ा कर रहा था। उस समय इसने अपनी सहस्र भुजाओं से नदी की धारा रोक दी जिसके कारण समीप में शिवपूजा करते हुए रावण की पूजा में विघ्न पड़ा। उसने क्रुद्ध होकर इससे युद्ध किया, पर परास्त हुआ। एक बार यह अपनी सेना सहित जमदग्नि मुनि के आश्रम के निकट ठहरा था। मुनि के पास कपिला कामधेनु थी। उन्होंने कार्त्तिकेय का अच्छी तरह से आदर किया। राजा ने लालच में आकर मुनि से कामधेनु छीन ली। जमदग्नि ने राजा को रोका और वे मारे गए। कार्त्तिकेय गौ लेकर चला; पर वह स्वर्ग चली गई। परशुराम उस समय आश्रम में नहीं थे। लौटने पर जब उन्होंने अपने पिता के मारे जाने का हाल सुना, तो उन्होंने कार्त्तिकेय को मार डालने की प्रतिज्ञा की और अंत में उन्हें मार भी डाला। (३) राजा बलि के सब से बड़े पुत्र का नाम।

सहस्रभागवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी की एक मूर्त्ति का नाम।

सहस्रभित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमलबेंत। (२) कस्तूरी। मृगमद।

सहस्रभुज-संज्ञा पुं० दे० "सहस्रबाहु"।

सहस्रभुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी का वह रूप जो उन्होंने महिषासुर को मारने के लिये धारण किया था। उस समय उनकी हजार भुजाएँ हो गई थीं, इसी से उनका यह नाम पड़ा था।

सहस्रमूर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सहस्रमूर्द्धा-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रमूर्द्धन्] (१) विष्णु। (२) शिव।

सहस्रमूलिका, सहस्रमूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कांडपत्री। (२) बड़ी दंती। (३) मूसाकानी। (४) बड़ी शतावर। (५) बनमूँग। मुद्गपर्णी।

सहस्रमौलि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) अनंतदेव का एक नाम।

सहस्ररश्मि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

सहस्रलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

सहस्रवाच्‌-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

सहस्रवीर्य्य-वि० [सं०] बहुत बड़ा बलवान्‌। बहुत ताकतवर।

सहस्रवीर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूब। (२) बड़ी शतावर।

सहस्रवेध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूक नामक खटाई। (२) काँजी। (३) हींग।

सहस्रवेधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी।

सहस्रवेधी-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रवेधिन] (१) हींग। (२) अम्लबेंत। (३) कस्तूरी।

सहस्रशाख-संज्ञा पुं० [सं०] वेद, जिनकी हजार शाखाएँ हैं।

सहस्रशिखर-संज्ञा पुं० [सं०] विंध्य पर्वत का एक नाम।

सहस्रशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रशीर्षन] विष्णु।

सहस्रश्रवण-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सहस्रश्रुति-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार जंबू द्वीप के एक वर्ष-पर्वत का नाम।

सहस्रसाव-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ।

सहस्रसाध्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अयन।

सहस्रस्तुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी का नाम।

सहस्रस्रोत-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक वर्ष-पर्वत का नाम।

सहस्रहर्यश्व-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का रथ।

सहस्रांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मोरशिखा। मयूरशिखा। (२) मधुपीलु वृक्ष। पीलू।

सहस्रांशु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

सहस्रांशुज-संज्ञा पुं० [सं०] शनि ग्रह।

सहस्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मात्रिका। अंबष्ठा। मोइया। (२) मोरशिखा। मयूरशिखा।

सहस्राक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहस्र आँखोंवाला, इंद्र। (२) विष्णु। (३) देवीभागवत के अनुसार एक पीठ-स्थान। इस स्थान की देवी उत्पलाक्षी कही गई हैं।

सहस्रात्मा-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रात्मन] ब्रह्मा।

सहस्राधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी राजा की ओर से एक हज़ार गाँवों का शासन करने के लिये नियुक्त हो।

सहस्रानन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सहस्रानीक-संज्ञा पुं० [सं०] राजा शतानीक के पुत्र का नाम।

सहस्रायुतीय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

सहस्रार-संज्ञा पुं० [सं०] हजार दलोंवाला एक प्रकार का कल्पित कमल। कहते हैं कि यह कमल मनुष्य के मस्तक में उलटा लगा रहता है; और इसी में सृष्टि, स्थिति तथा लयवाला परबिंदु रहता है।

सहस्रारज-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक देवता का नाम।

सहस्रार्चिस्‌-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) सूर्य्य।

सहस्रावर्त्तक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

सहस्रावर्त्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी की एक मूर्त्ति का नाम।

सहस्री-संज्ञा पुं० [सं० सहस्रिन्‌] वह वीर या नायक जिसके पास हजार योद्धा, घोड़े या हाथी आदि हों।

सहा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घीकुआर। ग्वारपाठा। (२) बनमूँग। (३) दंडोत्पल। (४) सफेद कटसरैया। (५) ककही या कंघी नाम का वृक्ष। (६) सर्पिणी। (७) रासना। (८) सत्यानाशी। (९) सेवती। (१०) हेमंत ऋतु। (११) अगहन मास। (१२) मषवन। (१३) देवताड़ वृक्ष। (१४) मेंहदी। नखरंजक।

सहाइ‡-संज्ञा पुं० [सं० सहाय] सहायक। मददगार।

संज्ञा स्त्री० सहायता। मदद।

सहाई‡-संज्ञा पुं० [सं० सहाय] सहायक। मददगार।

संज्ञा स्त्री० सहायता। मदद।

सहाउ-संज्ञा पुं० दे० "सहाय"।

सहाचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीली कटसरैया। पीली झिंटी। (२) दे० "सहचर"।

सहाद्य-संज्ञा पुं० [सं०] बन मूँग। जंगली मूँग।

सहाध्यायी-संज्ञा पुं० [सं० सहाध्यायिन] वह जो साथ पढ़ा हो। सहपाठी।

सहाना-संज्ञा पुं० [सं० शोभन] एक प्रकार का राग। वि० दे० "शहाना"।

सहानी-वि० [फा० शहाना] एक प्रकार का रंग जो पीलापन लिए हुए लाल रंग का होता है। जैसे,—सहानी चूड़ियाँ। वि० दे० "शहानी"।

सहानुगमन-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का अपने मृत पति के शव के साथ जल मरना। सती होना। सहगमन।

सहानुभूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी को दुःखी देखकर स्वयं दुःखी होना। दूसरे के कष्ट से दुःखी होना। हमदर्दी।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।—रखना।

सहाब-संज्ञा पुं० दे० "शहाब"।

सहाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहायता। मदद। सहारा। (२) आश्रय। भरोसा। (३) सहायक। मददगार। (४) एक प्रकार की वनस्पति। (५) एक प्रकार का हंस।

सहायक-वि० [सं०] (१) सहायता करनेवाला। मददगार। (२) (वह छोटी नदी) जो किसी बड़ी नदी में मिलती हो। जैसे,—यमुना भी गंगा की सहायक नदियों में से एक है। (३) किसी की अधीनता में रहकर काम में उसकी सहायता करनेवाला। जैसे,—सहायक संपादक।

सहायता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी के कार्य्य-संपादन में शारीरिक या और किसी प्रकार योग देना। ऐसा प्रयत्न

करना जिसमें किसी का काम कुछ आगे बढ़े। मदद। सहाय्य। जैसे,—मकान बनाने में सहायता देना, किताब लिखने में सहायता देना। (२) वह धन जो किसी का कार्य्य आगे बढ़ाने के लिये दिया जाय। मदद। जैसे,—उन्हें लड़की के व्याह में कई जगहों से सौ सौ रुपए की सहायता मिली।

क्रि॰ प्र॰—करना।—पाना।—देना।—मिलना।—होना।

सहायी-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सहाय + ई (प्रत्य॰)] (१) सहायक। मददगार। सहायता करनेवाला। (२) सहायता। मदद। सहाय।

सहार-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) आम का पेड़। आम्र वृक्ष। सहकार। (२) महाप्रलय।

संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सहना] (१) बर्दाश्त। सहनशीलता। (२) सहन करने की क्रिया।

सहारना†-क्रि॰ स॰ [सं॰ सहन या हिं॰ सहार] (१) सहन करना। बर्दाश्त करना। सहना। उ॰—कठिन बचन सुनि श्रवन जानकी सकी न बचन सहार। तृण अंतर दै दृष्टि तिरौंछी दई नैन जलधार।—सूर। (२) अपने ऊपर भार लेना। सँभालना। (३) गवारा करना।

सहारा-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सहाय] (१) मदद। सहायता।

क्रि॰ प्र॰—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

(२) जिस पर बोझ डाला जा सके। आश्रय। आसरा। (३) भरोसा। (४) इतमीनान।

मुहा॰—**सहारा पाना** = मदद पाना। **सहारा देना** = (१) मदद देना। (२) टेक देना। (३) आसरा देना। (४) रोकना। **सहारा ढूँढ़ना** = आसरा ताकना। वसीला ढूँढ़ना।

सहालग-संज्ञा पुं॰ [सं॰ साहित्य = संबंध] (१) वह वर्ष जो हिंदू ज्योतिषियों के कथनानुसार शुभ माना जाता है। (२) वे मास या दिन जिनमें विवाह के मुहूर्त्त हों। ब्याह शादी के दिन।

सहावल-संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ शाकूल] लोहे या पत्थर का वह लटकन जिसे तागे से लटकाकर दीवार की सिधाई नापी जाती है। शाकूल। लटकन। सनसाल। वि॰ दे॰ "साहुल"।

सहिंजन-संज्ञा पुं॰ दे॰ "सहिजन"।

सहिजन-संज्ञा पुं॰ [सं॰ शोभांजन] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो भारत के प्रायः सभी प्रांतों में उत्पन्न होता है, पर अवध में अधिक देखा जाता है। इसकी छाल मोटी होती है, पर लकड़ी अधिक कड़ी नहीं होती। पत्ते गुलतुर्रा के पत्तों की तरह होते हैं। कार्त्तिक मास से वसंत ऋतु के आरंभ तक इसमें फूल रहते हैं। इसके फूल एक इंच के घेरे में गोलाकार सफ़ेद रंग के होते हैं और बहुत से एक साथ गुच्छे में लगते हैं। इसके फल दस इंच से बीस इंच तक लंबी फलियों के आकार के होते हैं जिनकी मोटाई एक अंगुल से अधिक नहीं होती। ये फल तरकारी के काम में आते हैं। इसके बीज सफ़ेद रंग के और तिकोने होते हैं। बीजों से उत्पन्न होने के अतिरिक्त यह डाल लगा देने से भी लग जाता है और शीघ्र फलने लगता है। यह ओषधि के काम में भी लाया जाता है। कहीं कहीं नीले रंग के फूलोंवाला सहिजन भी पाया जाता है। शोभांजन। मुनगा।

सहिजानी‡†-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ संज्ञान] निशानी। चिह्न। पहचान।

सहित-अव्य॰ [सं॰] साथ। समेत। संग। युक्त। जैसे,—सीता और लक्ष्मण सहित रामजी वन गए थे।

सहितत्व-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सहित का भाव या धर्म्म।

सहितव्य-वि॰ [सं॰] सहन करने के योग्य। जो सहा जा सके।

सहिदान‡†-संज्ञा पुं॰ [सं॰ संज्ञान] चिह्न। पहचान। निशान।

सहिदानी‡†-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ संज्ञान] चिह्न। पहचान। निशान। उ॰—(क) सुनो अनुज इह बन इतननि मिलि जानकि प्रिया हरी। कछु इक अंगनि की सहिदानी मेरी दृष्टि परी। कटि केहरि कोकिल वाणी अरु शशि मुख प्रभा खरी। मृग मूसी नैनन की शोभा जाति न गुप्त करी।—सूर। (ख) जारि वारि कै विधूम वारिधि बुताइ लूम नाइ माथो पगनि भो ठाढो कर जोरि कै। 'मातु कृपा कीजै सहिदानी दीजै' सुनि सिय दीन्ही है असीस चारु चूड़ामनि छोरि कै।—तुलसी।

सहिबाला†-संज्ञा पुं॰ दे॰ "शहबाला"।

सहिरिया†-संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] बसंत की वह फसल जो बिना सींचे होती है, सींची नहीं जाती।

सहिष्ठ-वि॰ [सं॰] बलवान्। ताकतवर।

सहिष्णु-वि॰ [सं॰] जो कष्ट या पीड़ा आदि सहन कर सके। सहनशील। बरदाश्त करनेवाला।

सहिष्णुता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सहिष्णु होने का भाव। सहनशीलता।

सही-वि॰ [फ़ा॰ सहीह] (१) सत्य। सच। (२) प्रामाणिक। ठीक। यथार्थ। (३) जो गलत न हो। शुद्ध। ठीक।

मुहा॰—**सही पड़ना** = ठीक उतरना। सच होना। प्रमाणित होना। **सही भरना** = तसलीम करना। मान लेना। उ॰—बानी बिधि गौरि हर सेसहूँ गनेस कही सही भरी लोमस भुसुंडिबहु बारिषो।—तुलसी।

(४) हस्ताक्षर। दस्तखत।

क्रि॰ प्र॰—करना।—लेना।

सही सलामत-वि॰ (१) स्वस्थ। आरोग्य। भला चंगा। तंदुरुस्त। (२) जिसमें कोई दोष या न्यूनता न आई हो।

सहुरि-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सूर्य्य।

संज्ञा स्त्री॰ पृथ्वी।

सहूलियत–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) आसानी। सुगमता। जैसे,—अगर आप आ जायँगे, तो मुझे अपने काम में और सहूलियत हो जायगी। (२) अदब। कायदा। शऊर। जैसे,—अब तुम बड़े हुए कुछ सहूलियत सीखो।

सहृदय–वि० [सं०] (१) जो दूसरे के दुःख सुख आदि समझने की योग्यता रखता हो। समवेदना युक्त पुरुष। (२) दयालु। दयावान। (३) रसिक। (४) सज्जन। भला आदमी। (५) सुस्वभाव। अच्छे मिजाजवाला। (६) प्रसन्न-चित्त। खुशदिल।

सहृदयता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहृदय होने का भाव। (२) सौजन्य। (३) रसिकता। (४) दयालुता।

सहेजा†–संज्ञा पुं० [देश०] वह दही जो दूध को जमाने के लिये उसमें छोड़ा जाता है। जामन।

सहेजना–क्रि० स० [अ० सही ?] (१) भली भाँति जाँचना। अच्छी तरह से देखना कि ठीक या पूरा है या नहीं। सँभालना। जैसे,—रुपए सहेजना। कपड़े सहेजना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(२) अच्छी तरह कह सुनकर सपुर्द करना।

क्रि० प्र०—देना।

सहेजवाना–क्रि० स० [हिं० सहेजना का प्रेर०] सहेजने का काम दूसरे से कराना।

सहेत*†–संज्ञा पुं० [सं० संकेत] वह निर्दिष्ट स्थान जहाँ प्रेमी प्रेमिका मिलते हैं। अभिसार का पूर्व निर्दिष्ट स्थान। मिलने की जगह।

सहेतुक–वि० [सं०] जिसका कोई हेतु हो। जिसका कुछ उद्देश्य या मतलब हो। जैसे,—यहाँ यह पद सहेतुक आया है, निरर्थक नहीं है।

सहेरवा†–संज्ञा पुं० [देश०] हरसिंगार या पारिजात का वृक्ष।

सहेल†–संज्ञा पुं० [देश०] वह सहायता जो असामी या काश्तकार अपने ज़मींदार को उसके ख़ुदकाश्त खेत को काश्त करने के बदले में देता है। यह सहायता प्रायः बेगारी और बीज आदि के रूप में होती है।

सहेलवाल–संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

सहेली–संज्ञा स्त्री० [सं० सह = हिं० एली (प्रत्य०)] (१) साथ में रहनेवाली स्त्री। संगिनी। (२) अनुचरी। परिचारिका। दासी।

सहैया*†–संज्ञा पुं० [हिं० सहाय] सहायता करनेवाला।

वि० [सं० सहन] सहनेवाला। सहन करनेवाला।

सहोक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का काव्यालंकार जिसमें 'सह' 'संग' 'साथ' आदि शब्दों का व्यवहार होता है और अनेक कार्य्य साथ ही होते हुए दिखाए जाते हैं। प्रायः इन अलंकारों में क्रिया एक ही होती है। उ०—बल प्रताप वीरता बड़ाई। नाक, पिनाकी संग सिधाई।—तुलसी।

सहोजा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) इंद्र।

सहोटज–संज्ञा पुं० [सं०] ऋषियों आदि के रहने की पर्णकुटी।

सहोढ़–संज्ञा पुं० [सं०] बारह प्रकार के पुत्रों में से एक प्रकार का पुत्र। गर्भ की अवस्था में ब्याही हुई कन्या का पुत्र। जिसकी माता विवाह के पूर्व ही से गर्भवती रही हो।

सहोदर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सहोदरा] एक ही उदर से उत्पन्न संतान। एक माता के पुत्र।

वि० सगा। अपना। खास। (क०)

सहोर–संज्ञा पुं० [सं० शाखोट] एक प्रकार का वृक्ष जो प्रायः जंगली प्रदेशों में होता और विशेषतः शुष्क भूमि में अधिक उत्पन्न होता है। इसका वृक्ष अत्यंत गठीला और झाड़दार होता है। प्रायः यह सदा हरा भरा रहता है। पतझड़ में भी इसके पत्ते नहीं गिरते। इसकी छाल मोटी होती है और रंग भूरा खाकी होता है। इसकी लकड़ी सफेद और साधारणतः मजबूत होती है। इसके पत्ते हरे, छोटे और खुर्दुरे होते हैं। फाल्गुन मास तक इसका वृक्ष फूलता फलता है और वैशाख से आषाढ़ तक फल पकते हैं। फूल आध इंच लंबे, गोल और सफेद या पीलापन लिए होते हैं। इसके गोल फल गूदेदार होते और बीज गोलाकार होते हैं। इसकी टहनियों को काटकर लोग दातुन बनाते हैं। चिकित्साशास्त्र के अनुसार यह रक्तपित्त, बवासीर, वात, कफ और अतिसार का नाशक है। सिहोर।

पर्य्या०—शाखोट। भूतावास। पीतफलक। पिशाचद्रु।

सहोवर†–संज्ञा पुं० [सं० सहोदर] सगा भाई। एक माता के पुत्र।

सह्य–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण देश में स्थित एक पर्वत। वि० दे० "सह्याद्रि"।

वि० (१) सहने योग्य। सहने लायक। बर्दाश्त करने लायक। (२) आरोग्य। (३) प्रिय। प्यारा।

संज्ञा पुं० साम्य। समानता। बराबरी।

सह्याद्रि–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध पर्वत जो बंबई प्रांत में है।

विशेष—पश्चिमीय घाट का वह भाग जो मलयाचल पर्वत के उत्तर नीलगिरी तक है, सह्याद्रि कहलाता है। पूने से बंबई जानेवाली रेल इसी को पार करती हुई गई है। शिवाजी प्रायः अपने शत्रुओं से बचने के लिये इसी पर्वत माला में रहा करते थे।

साँई–संज्ञा पुं० [सं० स्वामी] (१) स्वामी। मालिक। (२) ईश्वर। परमात्मा। परमेश्वर। उ०—गुर गौरीस साँई सीतापति हित हनुमानहिं जाइ कै। मिलिहौं मोहिं कहाँ की वे अब अभिमत अवधि अघाइ कै।—तुलसी। (३)

पति। शौहर। भर्ता। उ०—(क) चल्यो धाय कमरी चढ़ाय फुरकाय आँख बाँई जग साँई बात कछू न तनक को।—हृदयराम। (ख) पूस मास सुनि सखिन पै साँई चलत सवार। गहि कर बीन प्रवीन तिय राग्यौ राग मलार।—बिहारी। (४) मुसलमान फकीरों की एक उपाधि।

साँकड़†–संज्ञा पुं० [सं० शृंखल] (१) शृंखला। जंजीर। साँकड़। (२) सिकड़ी जो दरवाजे में लगाई जाती है। (३) चाँदी का बना हुआ एक प्रकार का गहना जो पैर में पहना जाता है। साँकड़ा।

साँकड़ा–संज्ञा पुं० [सं० शृंखला] एक प्रकार का आभूषण जो पैर में पहना जाता है। यह मोटी चपटी सिकड़ी की भाँति होता है। प्रायः मारवाड़ी स्त्रियाँ इसे पहनती हैं।

साँकर*†–संज्ञा स्त्री० [सं० शृंखल] शृंखला। जंजीर। साँकड़। उ०—कौड़ा आँसू बूँद, करि साँकर बरुनी सजल। कीने बदन नमूद, दृग मलंग डारे रहैं।—बिहारी।

वि० [सं० संकीर्ण] (१) संकीर्ण। तंग। सँकरा। (२) दुःखमय। कष्टमय। उ०—सिंहल दीप जो नाहिं निबाहू। यही ठाव साँकर सब काहू।—जायसी।

साँकरा†–वि० दे० "सँकरा"।

संज्ञा पुं० दे० "साँकड़ा"।

साँकाहुली–संज्ञा स्त्री० दे० "शंखाहुली"।

सांख्य–संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के छः दर्शनों में से एक दर्शन जिसके कर्त्ता महर्षि कपिल हैं। इस दर्शन में सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम दिया है। इसमें प्रकृति को ही जगत् का मूल माना है और कहा गया है कि सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों के योग से सृष्टि का और उसके सब पदार्थों आदि का विकास हुआ है। इसमें ईश्वर की सत्ता नहीं मानी गई है; और आत्मा को ही पुरुष कहा गया है। इसके अनुसार आत्मा अकर्त्ता, साक्षी और प्रकृति से भिन्न है। आत्मा या पुरुष अनुभवात्मक कहा गया है; क्योंकि इसमें प्रकृति भी नहीं है और विकृति भी नहीं है। इसमें सृष्टि के मुख्य चार विधान माने गए हैं—प्रकृति, विकृति, विकृति-प्रकृति और अनुभव। इसमें आकाश आदि पाँचों भूत और ग्यारह इंद्रियाँ प्रकृति हैं। विकृति या विकार सोलह प्रकार के माने गये हैं। इसमें सृष्टि को प्रकृति का परिणाम कहा गया है; इसलिये इसका मत परिणामवाद भी कहलाता है। वि० दे० "दर्शन"।

सांख्यायन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य्य जिन्होंने ऋग्वेद के सांख्याय ब्राह्मण की रचना की थी। इनके कुछ श्रौत्र सूत्र भी हैं। सांख्यायन कामसूत्र इन्हीं का बनाया हुआ है।

साँग–संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) एक प्रकार की बरछी जो भाले के आकार की होती है; पर इसकी लंबाई कम होती है और यह फेंककर मारी जाती है। शक्ति। (२) एक प्रकार का औजार जो कुँआ खोदते समय पानी फोड़ने के काम में आता है। (३) भारी बोझ उठाने का डंडा।

सांग–वि० [सं० साङ्ग] सब अंगों सहित। संपूर्ण।

यौ०—सांगोपांग।

सांगम–संज्ञा पुं० दे० "संगम"।

साँगरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का रंग जो कपड़े रँगने के काम में आता है। यह जंगार से निकलता है।

साँगी–संज्ञा स्त्री० [सं० शंकु] (१) बरछी। साँग। (२) बैलगाड़ी में गाड़ीवान के बैठने का स्थान। जुआ। (३) जाली जो एक्के या गाड़ी के नीचे लगी रहती है और जिसमें मामूली चीजें रखी जाती हैं।

सांगुष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं० साङ्गुष्ठ] (१) गुंजा। (२) करंजनी।

सांगोपांग–अव्य० [सं० साङ्गोपाङ्ग] अंगों और उपांगों सहित। संपूर्ण। समस्त। पूर्ण। जैसे,—(क) विवाह के कृत्य सांगोपांग होने चाहिएँ। (ख) यज्ञ सांगोपांग पूरा हो गया।

सांग्राम–संज्ञा पुं० दे० "संग्राम"।

सांघाटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जो प्रेमी और प्रेमिका का संयोग कराती हो। कुटनी। दूती। (२) स्त्री-प्रसंग। मैथुन। (३) एक प्रकार का वृक्ष।

सांघात–संज्ञा पुं० [सं०] समूह। दल।

साँच*†–वि० पुं० [सं० सत्य] [स्त्री० साँच] सत्य। यथार्थ। ठीक। जैसे,—साँच को आँच नहीं। (कहा०)

साँचला†–वि० [हिं० साँच+ला (प्रत्य०)] [स्त्री० साँचली] जो सच बोलता हो। सच्चा। सत्यवादी।

साँचा–संज्ञा पुं० [सं० स्थाता] (१) वह उपकरण जिसमें कोई तरल पदार्थ ढालकर अथवा गीली चीज़ रखकर किसी विशिष्ट आकार प्रकार की कोई चीज़ बनाई जाती है। फरमा। जैसे,—ईंटों का साँचा, टाइप का साँचा।

विशेष—जब कोई चीज़ किसी विशिष्ट आकार प्रकार की बनानी होती है, तब पहले एक ऐसा उपकरण बना लेते हैं जिसके अंदर वह आकार बना होता है। तब उसी में वह चीज़ ढाल या भर दी जाती है, जिससे अभीष्ट पदार्थ बनाना होता है। जब वह चीज़ जम जाती है, तब उसी उपकरण के भीतरी आकार की हो जाती है। जैसे,—ईंटें बनाने के लिये पहले उनका एक साँचा तैयार किया जाता है; और तब उसी साँचे में सुरखी, चूना आदि भरकर ईंटें बनाते हैं।

मुहा०—साँचे में ढला होना = अंग प्रत्यंग से बहुत ही सुंदर

होना। रूप और आकार आदि से बहुत सुंदर होना। **साँचे में ढालना** = बहुत सुंदर बनाना।

(२) वह छोटी आकृति जो कोई बड़ी आकृति बनाने से पहले नमूने के तौर पर तैयार की जाती है और जिसे देखकर वही बड़ी आकृति बनाई जाती है।

विशेष—प्रायः कारीगर जब कोई बड़ी मूर्ति आदि बनाने लगते हैं, तब वे उसके आकार की मिट्टी, चूने, प्लैस्टर आफ़ पेरिस आदि की एक आकृति बना लेते हैं; और तब उसी के अनुसार पत्थर या धातु की आकृति बनाते हैं।

(३) कपड़े पर बेल बूटा छापने का ठप्पा जो लकड़ी का बनता है। छापा। (४) एक हाथ लंबी एक लकड़ी जिस पर सटक बनाने के लिये सल्ला बनाते हैं। (५) जुलाहों की वे दो लकड़ियाँ जिनके बीच में कूँच के साल को दबाकर कसते हैं।

साँचिया—संज्ञा पुं० [हिं० साँचा + इया (प्रत्य०)] (१) किसी चीज़ का साँचा बनानेवाला। (२) धातु गलाकर साँचे में ढालनेवाला।

साँची—संज्ञा पुं० [साँची नगर ?] एक प्रकार का पान जो खाने में ठंढा होता है। वि० दे० "पान"।

संज्ञा पुं० [?] पुस्तकों की छपाई का वह प्रकार जिसमें पंक्तियाँ सीधे बल में न होकर बेड़े बल में होती हैं। इसमें पुस्तकें चौड़ाई के बल में नहीं बल्कि लंबाई के बल में लिखी या छापी जाती हैं। प्राचीन काल के जो लिखे हुए ग्रंथ मिलते हैं, वे अधिकांश ऐसे ही होते हैं। इनमें पृष्ठ लंबा अधिक और चौड़ा कम रहता है; और पंक्तियाँ लंबाई के बल में होती हैं। प्रायः ऐसी पुस्तकें बिना सिली हुई ही होती हैं; और उनके पन्ने बिलकुल एक दूसरे से अलग अलग होते हैं।

साँझ—संज्ञा स्त्री० [सं० संध्या] संध्या। शाम। सायंकाल।

साँझला—संज्ञा पुं० [सं० संध्या, हिं० साँझ + ला (प्रत्य०)] उतनी भूमि जितनी एक हल से दिन भर में जोती जा सकती है। दिन भर में जुत जानेवाली भूमि।

साँझा—संज्ञा पुं० [सं० सार्द्ध] व्यापार, व्यवसाय आदि में होनेवाला हिस्सा। पत्ती। वि० दे० "साझा"।

साँझी—संज्ञा स्त्री० [?] देव-मंदिरों आदि में देवताओं के सामने जमीन पर की हुई फूल-पत्तों आदि की सजावट जो प्रायः सावन के महीने में होती है।

साँट—संज्ञा स्त्री० [सट से अनु०] (१) छड़ी। साँटी। पतली कमची। (२) कोड़ा। (३) शरीर पर का वह लंबा गहरा दाग जो कोड़े या बेंत आदि का आघात पड़ने से होता है।

क्रि० प्र०—उभड़ना।—पड़ना।

संज्ञा स्त्री० [?] लाल गदहपूरना।

साँटा—संज्ञा पुं० [हिं० साँट = छड़ी] (१) करघे के आगे लगा हुआ वह डंडा जिसे ऊपर नीचे करने से ताने के तार ऊपर नीचे होते हैं। (२) कोड़ा। (३) पेंड़। (४) ईख। गन्ना।

साँटी—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टिका या सट से अनु०] (१) पतली छोटी छड़ी। (२) बाँस की पतली कमची। शाखा।

क्रि० प्र०—सटकारना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सटना] (१) मेल मिलाप। उ०—निकस्यो मान गुमान सहित वह मैं यह होत न जानो। नैननि साँटि करी मिली नैननि उनही सों रुचि मानो।—सूर। (२) बदला। प्रतिकार। प्रतिहिंसा।

साँठ—संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का कड़ा जिसे प्रायः राजपूताने के किसान पैर में पहनते हैं। (२) दे० "साँकड़ा"। (३) ईख। गन्ना। (४) सरकंडा। (५) वह लंबा डंडा जिससे अन्न पीटकर दाने निकालते हैं।

साँठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ ?] पूँजी। धन।

संज्ञा स्त्री० [देश०] पुनर्नवा। गदहपूरना।

संज्ञा पुं० दे० "साठी" (धान)।

साँड़—संज्ञा पुं० [सं० षंड] (१) वह बैल (या घोड़ा) जिसे लोग केवल जोड़ा खिलाने के लिये पालते हैं। ऐसा जानवर बधिया नहीं किया जाता और न उससे कोई काम लिया जाता है। (२) वह बैल जो मृतक की स्मृति में हिंदू लोग दागकर छोड़ देते हैं। वृषोत्सर्ग में छोड़ा हुआ वृषभ।

मुहा०—**साँड़ की तरह घूमना** = आज़ाद और बेफ़िक्र घूमना। **साँड़ की तरह डकरना** = बहुत ज़ोर से चिल्लाना।

वि० (१) मज़बूत। बलिष्ठ। (२) आवारा। बदचलन।

साँड़नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० साँड़ ?] ऊँटनी या मादा ऊँट जिसकी चाल बहुत तेज़ होती है। वि० दे० "ऊँट"।

साँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० साँड़] छिपकली की जाति का पर आकार में उससे कुछ बड़ा एक प्रकार का जंगली जानवर। इसकी चरबी निकाली जाती है जो दवा के काम में आती है।

साँड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० साँड़ ?] (१) तेज चलनेवाला ऊँट। (२) साँड़नी पर सवारी करनेवाला।

साँढ़ियो—संज्ञा पुं० [डिं०] ऊँट। क्रमेलक।

सांत—वि० दे० "शांत"।

वि० [सं० सांत] जिसका अंत हो। अंतयुक्त। जैसे,—संसार का प्रत्येक पदार्थ सांत है।

सांतपनकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें व्रत करनेवाला प्रथम दिवस भोजन त्यागकर गोमूत्र, गोमय, दूध, दही और घी को कुश के जल में मिलाकर पीता है और दूसरे दिन उपवास करता है।

सांतानिक—वि० [सं०] संतान संबंधी। संतान का। औलाद का।

सांतापिक—वि० [सं०] संताप देनेवाला। कष्ट देनेवाला।

सांत्वन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी दुःखी को सहानुभूतिपूर्वक शांति देने की क्रिया। आश्वासन। ढारस। (२) स्नेहपूर्वक कुशल मंगल पूछना और बात चीत करना। (३) प्रणय। प्रेम। (४) संधि। मिलन।

सांत्वना-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुःखी व्यक्ति को उसका दुःख हलका करने के लिये समझाने बुझाने और शांति देने की क्रिया। शांति देने का काम। ढारस। आश्वासन। (२) चित्त की शांति। सुख। (३) प्रणय। प्रेम।

सांत्ववाद-संज्ञा पुं० [सं०] वह वचन जो किसी को सांत्वना देने के लिये कहा जाय। सांत्वना का वचन।

साँथड़ा-संज्ञा पुं० [?] बादिया का वह हिस्सा जो पेंच बनाने के लिये घुमाया जाता है। (लुहार)

साँथरी-संज्ञा स्त्री० [सं० संस्तर] (१) चटाई। (२) बिछौना। आसन।

साँथा-संज्ञा पुं० [देश०] लोहे का एक औजार जो चमड़ा कूटने के काम में आता है।

साँथी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) वह लकड़ी जो ताने के तारों को ठीक रखने के लिये करघे के ऊपर लगी रहती है। (२) ताने के सूतों के ऊपर नीचे होने की क्रिया।

साँद, साँदा-संज्ञा पुं० [देश०] वह लकड़ी आदि जो पशुओं के गले में इसलिये बाँध दी जाती है, जिसमें वे भागने न पावें। लंगर। ठेका।

सांदीपनि-संज्ञा पुं० [सं० सान्दीपनि] सांदीपन के गोत्र के एक प्रसिद्ध मुनि जो बहुत बड़े धनुर्धर थे और जिन्होंने श्रीकृष्ण तथा बलराम को धनुर्वेद की शिक्षा दी थी। विष्णुपुराण, हरिवंश, भागवत आदि में इनके संबंध में कई कथाएँ मिलती हैं।

सांदृष्टिक-वि० [सं०] एक ही दृष्टि में होनेवाला। देखते ही होनेवाला। तात्कालिक।

सांदृष्टिक न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय जिसका प्रयोग उस समय किया जाता है, जब कोई चीज देखकर उसी तरह की, पहले देखी हुई, कोई दूसरी चीज याद आ जाती है।

सांद्र-संज्ञा पुं० [सं०] वन। जंगल।

वि० (१) घना। गहरा। घोर। (२) मृदु। कोमल। (३) स्निग्ध। चिकना। (४) सुंदर। ख़ूबसूरत।

सांद्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सांद्र होने का भाव।

सांद्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] विभीतक। बहेड़ा।

सांद्रप्रसाद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कफज प्रमेह जिसमें कुछ मूत्र तो गाढ़ा और कुछ पतला निकलता है। यदि ऐसे रोगी का मूत्र किसी बरतन में रख दिया जाय, तो उसका गाढ़ा अंश नीचे बैठ जाता है और पतला अंश ऊपर रह जाता है।

सांद्रमणि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सांद्रमेह-संज्ञा पुं० दे० "सांद्रप्रसाद"।

साँध-संज्ञा पुं० [सं० संधान] वह वस्तु जिस पर निशाना लगाया जाय। लक्ष्य। निशाना।

सांध-वि० [सं०] संधि संबंधी। संधि का।

संज्ञा पुं० एक प्राचीन ऋषि का नाम।

साँधना-क्रि० स० [सं० संधान] निशाना साधना। लक्ष्य करना। संधान करना। उ०—(क) अगिन बान दुइ जानी साँधे। जग बेधे जो होहिं न बाँधे।—जायसी। (ख) जनु घुघुची वह तिलकर मूहाँ। बिरह बान साँधो सामूहाँ।—जायसी।

क्रि० स० [सं० साधन] पूरा करना। साधना। उ०—सीस काटि के पैरी बाँधा। पावा दाँव बैर जस साँधा।—जायसी।

क्रि० स० [सं० संधि] (१) एक में मिलाना। मिश्रित करना। उ०—बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महँ बिप्रमासु खल साँधा।—तुलसी। (२) रस्सियों आदि में जोड़ लगाना। (लश०)

साँधा संज्ञा पुं० [सं० संधि] दो रस्सियों आदि में दी हुई गाँठ। (लश०)

मुहा०—साँधा मारना = दो रस्सियों आदि में गाँठ लगाकर उन्हें जोड़ना। (लश०)

सांधिक संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो मद्य बनाता या बेचता हो। शौंडिक। (२) वह जो संधि करता हो। संधि करनेवाला।

सांधिविग्रहिक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का राज्यों का वह अधिकारी जिसे संधि और विग्रह करने का अधिकार हुआ करता था।

सांध्य-वि० [सं०] संध्या संबंधी। संध्या का।

सांध्यकुसुमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वे वृक्ष, पौधे और बेलें आदि जो संध्या के समय फूलती हों।

साँप-संज्ञा पुं० [सं० सर्प, प्रा० सप्प] [स्त्री० साँपिन] (१) एक प्रसिद्ध रेंगनेवाला लंबा कीड़ा जिसके हाथ पैर नहीं होते और जो पेट के बल ज़मीन पर रेंगता है। केवल थोड़े से बहुत ठंढे देशों को छोड़कर शेष प्रायः समस्त संसार में यह पाया जाता है। इसकी सैकड़ों जातियाँ होती हैं जो आकार और रंग आदि में एक दूसरी से बहुत अधिक भिन्न होती हैं। साँप आकार में दो ढाई इंच से २५-३० फुट तक लंबे होते हैं और मोटे सूत से लेकर प्रायः एक फुट तक मोटे होते हैं। बहुत बड़ी जातियों के साँप "अजगर" कहलाते हैं। कुछ साँपों के सिर पर फन होता है। ऐसे साँप "नाग" कहलाते हैं। साँप पीले, हरे, लाल, काले,

भूरे आदि अनेक रंगों के होते हैं। साँपों की अधिकांश जातियाँ बहुत डरपोक और सीधी होती हैं; पर कुछ जातियाँ ज़हरीली और बहुत ही घातक होती हैं। भारत के गेहुअन, धामिन, नाग और काले साँप बहुत अधिक ज़हरीले होते हैं; और उनके काटने पर आदमी प्रायः नहीं बचता। इनके मुँह में साधारण दाँतों के अतिरिक्त एक बहुत बड़ा नुकीला खोखला दाँत होता है जिसका संबंध ज़हर की एक थैली से होता है। काटने के समय वही दाँत शरीर में गड़ाकर ये विष का प्रवेश करते हैं। सब साँप मांसाहारी होते हैं और छोटे छोटे जीव जंतुओं को निगल जाते हैं। इनमें यह विशेषता होती है कि ये अपने शरीर की मोटाई से कहीं अधिक मोटे जंतुओं को निगल जाते हैं। प्रायः छोटी जाति के साँप पेड़ों पर और बड़ी जाति के जंगलों, पहाड़ों आदि में योंहीं ज़मीन पर रहते हैं। इनकी उत्पत्ति अंडों से होती है; और मादा हर बार में बहुत अधिक अंडे देती है। साँपों के छोटे बच्चे प्रायः रक्षित रहने के लिये अपनी माता के मुँह में चले जाते हैं; इसी लिए लोगों में यह प्रवाद है कि साँपिन अपने बच्चों को आप ही खा जाती है। इस देश में साँपों के काटने की चिकित्सा प्रायः जंतर मंतर और झाड़ फूँक आदि से की जाती है। भारतवासियों में यह भी प्रवाद है कि पुराने साँपों के सिर में एक प्रकार की मणि होती है जिसे वे रात में अंधकार के समय बाहर निकाल कर अपने चारों ओर प्रकाश कर लेते हैं।

मुहा०—कलेजे पर साँप लोटना = बहुत अधिक व्याकुलता या पीड़ा होना। अत्यंत दुःख होना। (ईर्ष्या आदि के कारण) **साँप सूँघ जाना** = साँप का काट खाना। मर जाना। निर्जीव हो जाना। जैसे,—ऐसे सोए हैं मानों साँप सूँघ गया है। **साँप खेलाना** = मंत्र बल से या और किसी प्रकार साँप को पकड़ना और उससे क्रीड़ा करना। **साँप की तरह केंचुली झाड़ना** = पुराना भद्दा रूप रंग छोड़कर नया सुंदर रूप धारण करना। **साँप की लहर** = साँप काटने का कष्ट। **साँप की लकीर** = पृथ्वी पर का चिह्न जो साँप के निकल जाने पर होता है। **साँप के मुँह में** = बहुत जोखिम में। **साँप छछूँदर की दशा** = भारी असमंजस की दशा। दुबिधा। उ०—सकल सभा की भइ मति भोरी। भइ गति साँप छछूँदर केरी।—तुलसी।

विशेष—कहते हैं कि यदि साँप छछूँदर को पकड़ने पर खा जाय, तो वह तुरंत मर जाता है; और यदि न खाय और उसे उगल दे, तो अंधा हो जाता है।

पर्य्या०—भुजग। भुजंग। अहि। विषधर। व्याल। सरीसृप। कुंडली। चक्षुश्रवा। फणी। बिलेशय। उरग। पन्नग। पवनाशन। फणधर। व्याड़। दंष्ट्री। गोकर्ण। गूढ़पाद। हरि। द्विजिह्व।

(२) बहुत दुष्ट आदमी। (क्व०)

सांपत्तिक-वि० [सं० साम्पत्तिक] संपत्ति से संबंध रखनेवाला। आर्थिक। माली।

सांपद-वि० [सं० साम्पद] संपत्ति संबंधी। संपत्तिक का। आर्थिक। माली।

साँपधरन&-संज्ञा पुं० [हिं० साँप + धारण] सर्प धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

सांपरायिक-वि० [सं० साम्परायिक] (१) परलोक संबंधी। पारलौकिक। (२) युद्ध में काम आनेवाला। (३) युद्ध संबंधी। युद्ध का।

संज्ञा पुं० युद्ध। समर।

साँपा-संज्ञा पुं० दे० "सियापा"।

सांपातिक-वि० [सं० साम्पातिक] संपात संबंधी। संपात का।

साँपिन-संज्ञा स्त्री० [हिं० साँप + इन (प्रत्य०)] (१) साँप की मादा। (२) घोड़े के शरीर पर की एक प्रकार की भौंरी जो अशुभ समझी जाती है।

साँपिया-संज्ञा पुं० [हिं० साँप + इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का काला रंग जो प्रायः साधारण साँप के रंग से मिलता जुलता होता है।

सांप्रत-अव्य० [सं० साम्प्रत] इसी समय। सद्यः। अभी। तत्काल।

वि० युक्त। मिला हुआ।

सांप्रतिक-वि० [सं० साम्प्रतिक] वर्तमान काल से संबंध रखनेवाला। वर्तमान कालिक। इस समय का। आधुनिक।

सांप्रदायिक-वि० [सं० साम्प्रदायिक] किसी संप्रदाय से संबंध रखनेवाला। संप्रदाय का।

सांबंधिक-वि० [सं० साम्बन्धिक] (१) संबंध का। (२) विवाह संबंधी।

संज्ञा पुं० स्त्री का भाई, साला।

सांब-संज्ञा पुं० [सं० साम्ब] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जो जाम्बवती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। बाल्यावस्था में इन्होंने बलदेव से अस्त्र-विद्या सीखी थी। बहुत अधिक बलवान् होने के कारण ये दूसरे बलदेव माने जाते थे। भविष्यपुराण में लिखा है कि ये बहुत सुंदर थे; और अपनी सुंदरता के अभिमान में किसी को कुछ न समझते थे। एक बार इन्होंने दुर्वासा ऋषि का शुष्क और कृश शरीर देखकर उनका कुछ परिहास किया था, जिससे दुर्वासा ने इन्हें शाप दिया था कि तुम कोढ़ी हो जाओगे। इसके उपरांत एक अवसर पर रुक्मिणी, सत्यभामा और जांबवती को छोड़कर श्रीकृष्ण की और सब रानियाँ आदि इनके रूप पर इतनी मुग्ध हुई थीं कि उनका रेत स्खलित हो गया था। इस पर श्रीकृष्ण ने भी इन्हें शाप दिया था कि तुम कोढ़ी

हो जाओ। इसी लिए ये कोढ़ी हो गए थे। अंत में इन्होंने नारद के परामर्श से सूर्य्य की मित्र नामक मूर्त्ति की उपासना आरंभ की जिससे अंत में इनका शरीर नीरोग हो गया। कहते हैं कि जिस स्थान पर इन्होंने मित्र की उपासना की थी, उस स्थान का नाम "मित्रवण" पड़ा। इन्होंने अपने नाम से सांबपुर नामक एक नगर भी, चंद्रभागा के तट पर, बसाया था। महाभारत के युद्ध में ये जरासंध और शाल्व आदि से बहुत वीरतापूर्वक लड़े थे।

सांबपुर–संज्ञा पुं० [सं० साम्बपुर] पंजाब के मुलतान नगर का प्राचीन नाम। यह नगर चंद्रभागा नदी के तट पर है। कहते हैं कि इसे श्रीकृष्ण के पुत्र सांब ने बसाया था।

सांबपुराण–संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण का नाम।

सांबर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँभर हरिन। वि० दे० "साँभर"। (२) साँभर नमक।

संज्ञा पुं० [सं० संबल] पाथेय। संबल। राह खर्च।

सांबरी–संज्ञा स्त्री० [सं० साम्बरी] माया। जादूगरी।

विशेष—कहते हैं कि इस विद्या का आविष्कार श्रीकृष्ण के पुत्र संबर ने किया था; इसी से इसका यह नाम पड़ा।

साँभर–संज्ञा पुं० [सं० सम्भल या साम्भल] (१) राजपूताने की एक झील जहाँ का पानी बहुत खारा है। इसी झील के पानी से साँभर नमक बनाया जाता है। (२) उक्त झील के जल से बना हुआ नमक। (३) भारतीय मृगों की एक जाति।

विशेष—इस जाति का मृग बहुत बड़ा होता है। इसके कान लंबे होते हैं और सींग बारहसिंगों के सींगों के समान होते हैं। इसकी गरदन पर बड़े बड़े बाल होते हैं। अक्तूबर के महीने में यह जोड़ा खाता है।

सांभवी–संज्ञा स्त्री० [सं० साम्भवी] लाल लोध।

सांभाष्य–संज्ञा पुं० [सं० साम्भाष्य] संभाषण। बात-चीत।

साँमुहे†–अव्य० [सं० सम्मुखे] सामने। सम्मुख।

साँवक–संज्ञा पुं० [देश०] वह ऋण जो हलवाहों को दिया जाता है और जिसके सूद के बदले में वे काम करते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० श्यामक] साँवाँ नामक अन्न।

साँवत†–संज्ञा पुं० [सं० सामन्त] सुभट। योद्धा। सामंत। वि० दे० "सामंत"।

संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का राग।

साँवती†–संज्ञा स्त्री० [देश०] बैलगाड़ी या घोड़ा गाड़ी के नीचे लगी हुई जाली जिसमें घास आदि रखते हैं।

साँवर†–वि० दे० "साँवला"।

साँवलताई†–संज्ञा स्त्री० [सं० श्यामल, हिं० साँवला] साँवला होने का भाव। श्यामता। श्यामलता।

साँवला–वि० [सं० श्यामल] [स्त्री० साँवली] जिसके शरीर का रंग कुछ कालापन लिये हुए हो। श्याम वर्ण का।

संज्ञा पुं० (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। (२) पति या प्रेमी आदि का बोधक एक नाम। (इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग प्रायः गीतों आदि में होता है।)

साँवलापन–संज्ञा पुं० [हिं० साँवला + पन (प्रत्य०)] साँवला होने का भाव। वर्ण की श्यामता।

साँवाँ–संज्ञा पुं० [सं० श्यामाक] कँगनी या चेना की जाति का एक अन्न जो प्रायः सारे भारत में बोया जाता है। यह प्रायः फागुन चैत में बोया जाता है और जेठ में तैयार होता है। यह अन्न बहुत सुपाच्य और बलवर्द्धक माना जाता है और प्रायः चावल की भाँति उबालकर खाया जाता है। कहीं कहीं रोटी के लिये इसका आटा भी तैयार किया जाता है। इसकी हरी पत्तियाँ और डंठल पशुओं के लिये चारे की भाँति काम में आती हैं; और पंजाब में कहीं कहीं केवल चारे के लिये भी इसकी खेती होती है। अनुमान है कि यह मिस्र या अरब से इस देश में आया है।

साँस–संज्ञा स्त्री० [सं० श्वास] (१) नाक या मुँह के द्वारा बाहर से हवा खींचकर अंदर फेफड़ों तक पहुँचाने और उसे फिर बाहर निकालने की क्रिया। श्वास। दम।

विशेष—यद्यपि यह शब्द संस्कृत "श्वास" (पुल्लिंग) से निकला है और इसलिये पुल्लिंग ही होना चाहिए, परंतु प्रायः लोग इसे स्त्रीलिंग ही बोलते हैं। परंतु कुछ अवसरों पर कुछ विशिष्ट क्रियाओं आदि के साथ यह केवल पुल्लिंग भी बोला जाता है। जैसे,—इतनी दूर से दौड़े हुए आए हैं, साँस फूलने लगा।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—लेना।

मुहा०—**साँस अड़ना** = दे० "साँस रुकना"। **साँस उखड़ना** = मरने के समय रोगी का देर देर पर और बड़े कष्ट से साँस लेना। साँस टूटना। दम टूटना। **साँस ऊपर नीचे होना** = साँस का ठीक तरह से ऊपर नीचे न आना। साँस रुकना। **साँस खींचना** = (१) नाक के द्वारा वायु अंदर की ओर खींचना। साँस लेना। (२) वायु अंदर खींचकर उसे रोक रखना। दम साधना। जैसे,—हिरन साँस खींचकर पड़ गया। **साँस चढ़ना** = अधिक वेग से या बहुत परिश्रम का काम करने के कारण साँस का जल्दी जल्दी आना और जाना। **साँस चढ़ाना** = दे० "साँस खींचना"। **साँस छोड़ना** = नाक द्वारा अंदर खींची हुई वायु को बाहर निकालना। **साँस टूटना** = दे० "साँस उखड़ना"। **साँस तक न लेना** = बिलकुल चुपचाप रहना। कुछ न बोलना। जैसे,—उनके सामने तो यह लड़का साँस तक नहीं लेता। **साँस फूलना** = बार बार साँस आना और जाना। साँस चढ़ना। **साँस भरना** = दे० "ठंढी साँस लेना"। **साँस रहते** = जीते जी। जीवन पर्य्यंत। **साँस रुकना** = साँस के आने और जाने में बाधा होना। श्वास की क्रिया में बाधा होना। जैसे,—यहाँ हवा की इतनी कमी है

कि साँस रुकता है। **साँस लेना** = नाक के द्वारा वायु खींचकर अंदर लेना और फिर उसे बाहर निकालना। **उलटी साँस लेना** = (१) दे० "गहरी साँस लेना"। (२) मरने के समय रोगी का बड़े कष्ट से अंतिम साँस लेना। **गहरी साँस भरना या लेना** = बहुत अधिक दुःख आदि के आवेग के कारण बहुत देर तक अंदर की ओर वायु खींचते रहना और उसे कुछ देर तक रोक कर बाहर निकालना। **ठंढी या लंबी साँस लेना** = दे० "गहरी साँस लेना"।

(२) अवकाश।

मुहा०—**साँस लेना** = थक जाने पर विश्राम लेना। ठहर जाना। जैसे,—(क) घंटों से काम कर रहे हो; जरा साँस ले लो। (ख) वह जब तक काम पूरा न कर लेगा, तब तक साँस न लेगा।

(३) गुंजाइश। दम। जैसे, अभी इस मामले में बहुत कुछ साँस है। (४) वह संधि या दरार जिसमें से होकर हवा जा या आ सकती है।

(किसी पदार्थ का) साँस लेना = किसी पदार्थ में संधि या दरार पड़ जाना। (किसी पदार्थ का) बीच में से फट या नीचे की ओर धँस जाना। जैसे,—(क) इस भूकंप में कई मकानों और दीवारों ने साँस ली है। (ख) इस भाथी में कहीं न कहीं साँस जरूर है; इसी से पूरी हवा नहीं लगती।

(५) किसी अवकाश के अंदर भरी हुई हवा।

मुहा०—**साँस निकलना** = किसी चीज के अंदर भरी हुई हवा का किसी प्रकार बाहर निकल जाना। जैसे,—टायर की साँस निकलना, फुटबाल की साँस निकलना। **साँस भरना** = किसी चीज के अंदर हवा भरना।

(६) वह रोग जिसमें मनुष्य बहुत जोरों से, पर बहुत कठिनता से साँस लेता है। दम फूलने का रोग। श्वास। दमा।

क्रि० प्र०—फूलना।

साँसत-संज्ञा स्त्री० [हिं० साँस + त (प्रत्य०)] (१) दम घुटने का सा कष्ट। (२) बहुत अधिक कष्ट या पीड़ा। (३) झंझट। बखेड़ा। उ०—तब तात न मात न स्वामी सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बटैया। साँसति घोर पुकारत आरत कौन सुनै चहुँ ओर डटैया।—तुलसी।

यौ०—साँसतघर।

साँसतघर-संज्ञा पुं० [हिं० साँसत + घर] (१) कारागार में एक प्रकार की बहुत तंग और अँधेरी कोठरी जिसमें अपराधियों को विशेष दंड देने के लिये रखा जाता है। काल कोठरी। (२) बहुत तंग और छोटा मकान जिसमें हवा या रोशनी न आती हो।

साँसना*†-क्रि० स० [सं० शासन] (१) शासन करना। दंड देना। (२) डाँटना। डपटना। (३) कष्ट देना। दुःख देना।

साँसल-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का कंबल। (२) बीज बोने की क्रिया।

साँसा†-संज्ञा पुं० [सं० श्वास] (१) साँस। श्वास। जैसे,—जब तक साँसा, तब तक आसा। (कहा०) (२) जीवन। जिंदगी। (३) प्राण।

संज्ञा पुं० [हिं० साँसत] (१) घोर कष्ट। भारी पीड़ा। तकलीफ़। (२) चिंता। फिक्र। तरद्दुद।

मुहा०—**साँसा चढ़ना** = फिक्र होना। चिंता होना।

संज्ञा पुं० [सं० संशय] (१) संशय। संदेह। शक। (२) डर। भय। दहशत।

मुहा०—**साँसा पड़ना** = संशय होना। संदेह होना।

साँसारिक-वि० [सं०] संसार संबंधी। इस संसार का। लौकिक। ऐहिक। जैसे,—अब आप सब सांसारिक झगड़ों से अलग होकर भगवद् भजन में लीन रहते हैं।

सा-अव्य० [सं० सदृश, सम] (१) समान। तुल्य। सदृश। बराबर। जैसे,—उनका रंग तुम्हीं सा है। (२) एक प्रकार का मानसूचक शब्द। जैसे,—बहुत सा, थोड़ा सा, ज़रा सा।

साइक*-संज्ञा पुं० दे० "शायक"।

साइक्लोपीडिया-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह बड़ा ग्रंथ जिसमें किसी एक विषय के सब अंगों और उपांगों आदि का पूरा पूरा वर्णन हो। (२) वह बड़ा ग्रंथ जिसमें संसार भर के सब मुख्य मुख्य विषयों और विज्ञानों आदि का पूरा पूरा विवेचन हो। विश्वकोष। इन्साइक्लोपीडिया।

साइत-संज्ञा स्त्री० [अ० साअत] (१) एक घंटे या ढाई घड़ी का समय। (२) पल। लहमा। (३) मुहूर्त्त। शुभ लग्न।

क्रि० प्र०—देखना।—निकलना।—निकलवाना।

साइनबोर्ड-संज्ञा पुं० [अं०] वह तख्ता या टीन आदि का टुकड़ा जिस पर किसी व्यक्ति, दूकान या व्यवसाय आदि का नाम और पता आदि अथवा सर्वसाधारण के सूचनार्थ इसी प्रकार की और कोई सूचना बड़े बड़े अक्षरों में लिखी हो। ऐसा तख्ता मकान या दूकान आदि के आगे अथवा किसी ऐसी जगह लगाया जाता है, जहाँ सब लोगों की दृष्टि पड़े।

साइन्स संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) किसी विषय का विशेष ज्ञान। विज्ञान। शास्त्र। वि० दे० "विज्ञान"। (२) रासायनिक और भौतिक विज्ञान।

साइबड़ी† संज्ञा स्त्री० [?] वह धन जो किसान फसल के समय धार्मिक कार्य्यों के निमित्त देते हैं।

साइबान-संज्ञा पुं० दे० "सायबान"।

साइयाँ-संज्ञा पुं० दे० "साईं"। उ०—जाको राखे साइयाँ मारि न सकिहै कोइ। बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होइ।—कबीर।

साइर†-संज्ञा पुं० [अ०] आमदनी के वह साधन जिन पर जमींदारों को लगान नहीं देना पड़ता ।—जैसे,—जंगल, नदी, बाग, ताल आदि जो कहीं कहीं सरकारी कर से मुक्त रहते हैं । वि० दे० "सायर" ।

साई-संज्ञा पुं० [सं० स्वामी] (१) स्वामी । मालिक । प्रभु । (२) ईश्वर । परमात्मा । (३) पति । खाविंद । (४) एक प्रकार का पेड़ ।

साई-संज्ञा स्त्री० [हिं० साइत ?] वह धन जो गाने बजानेवाले या इसी प्रकार के और पेशेकारों को, किसी अवसर के लिये उनकी नियुक्ति पक्की करके, पेशगी दिया जाता है । पेशगी । बयाना ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना । लेना ।

मुहा०—साई बजाना = जिसमें साई ली हो, उसके यहाँ नियत समय पर जाकर गाना बजाना ।

†संज्ञा स्त्री० [सं० सहाय] वह सहायता जो किसान एक दूसरे को दिया करते हैं ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार का कीड़ा जिसके घाव पर बीट कर देने से घाव में कीड़े पैदा हो जाते हैं । (२) वे छड़ जो गाड़ी के अगले हिस्से में बेड़े बल में एक दूसरे को काटते हुए रखे जाते हैं और जिनके कारण उनकी मजबूती और भी बढ़ जाती है ।

संज्ञा स्त्री० दे० "साईकाँटा" ।

साईकाँटा-संज्ञा पुं० [हिं० साई (जंतु) + काँटा] एक प्रकार का वृक्ष जो बंगाल, दक्षिण भारत, गुजरात और मध्य प्रदेश में पाया जाता है । इसकी लकड़ी सफेद होती है और छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है । इसमें से एक प्रकार का कत्था भी निकलता है । साई । मोगली ।

साईस-संज्ञा पुं० [हिं० रईस का अनु०] वह आदमी जो घोड़े की खबरदारी और सेवा करता है, उसे दाना घास आदि देता, मलता और टहलाता तथा इसी प्रकार के दूसरे काम करता है ।

साईसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० साईस + ई (प्रत्य०)] साईस का काम, भाव या पद ।

साकंभरी-संज्ञा पुं० [सं० शाकंभरी] साँभर झील या उसके आस पास का प्रांत जो राजपूताने में है ।

साक-संज्ञा पुं० [सं० शाक] शाक । साग । सब्जी । तरकारी । भाजी ।

संज्ञा पुं० दे० (१) "सागौन" । (२) दे० "धाक" ।

साकचेरि†-संज्ञा स्त्री० [सं० शाक = चेरी ?] मेहँदी । नखरंजन । हिना ।

साकट-संज्ञा पुं० [सं० शाक्त] (१) शाक्त मत का अनुयायी । (२) वह जो मद्य मांस आदि खाता हो । (३) वह जिसने किसी गुरु से दीक्षा न ली हो । गुरु रहित । (४) दुष्ट । पाजी । शरीर ।

साकर†-वि० [सं० संकीर्ण] संकीर्ण । सँकरा । तंग ।

संज्ञा स्त्री० दे० "साँकल" ।

†संज्ञा स्त्री० दे० "शक्कर" ।

साकल-संज्ञा स्त्री० दे० "साँकल" ।

साकल्य-संज्ञा पुं० दे० "शाकल्य" ।

साकवर†-संज्ञा पुं० [?] बैल । वृषभ ।

साका-संज्ञा पुं० [सं० शाका] (१) संवत् । शाका ।

क्रि० प्र०—चलना ।—चलाना ।

(२) ख्याति । प्रसिद्धि । शोहरत । (३) यश । कीर्त्ति । (४) कीर्त्ति का स्मारक । (५) धाक । रोब ।

मुहा०—साका चलना = प्रभाव माना जाना । उ०—हृदय मुकुतामाल निरखत बारि अवलि बलाक । करज कर पर कमल वारत चलति जहँ तहँ साक ।—सूर । साका चलाना = रोब जमाना । धाक जमाना । साका बाँधना = दे० "साका चलाना" ।

(६) कोई ऐसा बड़ा काम जो सब लोग न कर सकें और जिसके कारण कर्त्ता की कीर्त्ति हो । उ०—गीध मानो गुरु, कपि भालु मानो मीत कै, पुनीत गीत साके सब साहब समत्थ के ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

साकार-वि० [सं०] (१) जिसका कोई आकार हो । जिसका स्वरूप हो । जो निराकार न हो । आकार या रूप से युक्त । (२) मूर्त्तिमान । साक्षात् । (३) स्थूल ।

संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर का वह रूप जो साकार हो । ब्रह्म का मूर्त्तिमान रूप ।

साकारता-संज्ञा स्त्री० [सं०] साकार होने का भाव । साकार-पन ।

साकारोपासना-संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर की वह उपासना जो उसका कोई आकार या मूर्त्ति बनाकर की जाती है । ईश्वर की मूर्त्ति बनाकर उसकी उपासना करना ।

साकिन-वि० [अ०] निवासी । रहनेवाला । बाशिंदा । जैसे,—रामलाल साकिन मौजा रामनगर ।

साकी-संज्ञा पुं० [देश०] कपूर कचरी । गंध पलाशी ।

साक़ी-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह जो लोगों को मद्य पिलाता हो । शराब पिलानेवाला । (२) वह जिसके साथ प्रेम किया जाय । माशूक ।

साकुच-संज्ञा पुं० [सं०] सकुची मछली । शकुल मत्स्य ।

साकुरुंड-संज्ञा पुं० दे० "सकुरुंड" ।

साकुश-संज्ञा पुं० [डिं०] घोड़ा । अश्व । वाजि ।

साकेत-संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या नगरी । अवध पुरी ।

साकेतक-संज्ञा पुं० [सं०] साकेत का निवासी । अयोध्या का रहनेवाला ।

साकेतन-संज्ञा पुं० [सं०] साकेत । अयोध्या ।

साकोह†-संज्ञा पुं० [सं० शाल] साखू । शाल वृक्ष ।

साकुक-संज्ञा पुं० [सं०] जौ, जिससे सत्तू बनता है ।
वि० सत्तू संबंधी । सत्तू का ।

साक्षर-वि० [सं०] जिसे अक्षरों का बोध हो । जो पढ़ना लिखना जानता हो । शिक्षित ।

साक्षात्-अव्य० [सं०] सामने । सम्मुख । प्रत्यक्ष ।
वि० मूर्त्तिमान् । साकार । जैसे,—आप तो साक्षात् सत्य हैं।
संज्ञा पुं० भेंट । मुलाकात । देखा देखी ।

साक्षात्कार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेंट । मुलाकात । मिलन । (२) पदार्थों का इंद्रियों द्वारा होनेवाला ज्ञान ।

साक्षात्कारी-संज्ञा पुं० [सं० साक्षात्कारिन्] (१) साक्षात करनेवाला । (२) भेंट या मुलाकात करनेवाला ।

साक्षिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] साक्षी का काम । साक्षित्व । गवाही ।

साक्षिभूत-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।

साक्षी-संज्ञा पुं० [सं० साक्षिन्] [स्त्री० साक्षिणी] (१) वह मनुष्य जिसने किसी घटना को अपनी आँखों देखा हो । चश्मदीद गवाह । (२) वह जो किसी बात की प्रामाणिकता बतलाता हो । गवाह । (३) देखनेवाला । दर्शक ।
संज्ञा स्त्री० किसी बात को कहकर प्रमाणित करने की क्रिया । गवाही । शहादत ।

साक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साक्षी का काम । गवाही । शहादत । (२) दृश्य ।

साख-संज्ञा पुं० [हिं० साखी] (१) साक्षी । गवाह । (२) गवाही । प्रमाण । शहादत । उ०—(क) तुम बसीठ राजा की ओरा । साख होहु यह भीख निहोरा ।—जायसी । (ख) जैसी भुजा कलाईं तेहि बिधि जाय न भाख । कंकन हाथ होव जेहि तेहि दरपन का साख ।—जायसी ।
संज्ञा पुं० [सं० शाका, हिं० साका] (१) धाक । रोब । (२) मर्य्यादा । उ०—प्रीति बेल उरझइ जब तब सुजान सुख साख ।—जायसी । (३) बाजार में वह मर्य्यादा या प्रतिष्ठा जिसके कारण आदमी लेन देन कर सकता हो । लेन देन का खरापन या प्रामाणिकता । जैसे,—जब तक बाजार में साख बनी थी, तब तक लोग लाखों रुपए का माल उन्हें उठा देते थे ।
क्रि० प्र०—बनना ।—बिगड़ना ।
संज्ञा स्त्री० दे० "साख" या "साखा" ।

साखना‡-क्रि० स० [सं० साक्षि, हिं० साख + ना (प्रत्य०)] साक्षी देना । गवाही देना । शहादत देना । उ०—जन की और कौन पत राखै । जात पाँति कुल कानि न मानत वेद पुराणनि साखै ।—सूर ।

साखर‡†-वि० [सं० साक्षर] जिसे अक्षरों का ज्ञान हो । पढ़ा लिखा । साक्षर ।

साखा‡†-संज्ञा स्त्री० [सं० शाखा] (१) वृक्ष की शाखा । डाली । टहनी । (२) वंश या जाति की शाखा । उपभेद । (३) दे० "शाखा" । (४) वह कीली जो चक्की के बीच में लगी होती है । चक्की का धुरा ।

साखी-संज्ञा पुं० [सं० साक्षि] साक्षी । गवाह ।
संज्ञा स्त्री० (१) साक्षी । गवाही ।
मुहा०—साखी पुकारना = साक्षी का कुछ कहना । साखी देना । गवाही देना । उ०—याते योग न आवै मन में तू नीके करि राखि । सूरदास स्वामी के आगे निगम पुकारत साखि ।—सूर ।
(२) ज्ञान संबंधी पद या दोहे । वह कविता जिसका विषय ज्ञान हो । जैसे,—कबीर की साखी ।

साखू-संज्ञा पुं० [सं० शाख] शाल वृक्ष । सखुआ । अश्वकर्ण वृक्ष ।

साखोचारन‡†-संज्ञा पुं० [सं० शाखोच्चारण] विवाह के अवसर पर वर और वधू के वंश गोत्रादि का चिल्ला चिल्लाकर परिचय देने की क्रिया । गोत्रोच्चार ।

साखोट-संज्ञा पुं० [सं० शाखोट] सिहोर वृक्ष । सिहोरा । भूतावास ।
वि० दे० "सिहोर" ।

साग-संज्ञा पुं० [सं० शाक] (१) पौधों की खाने योग्य पत्तियाँ । शाक । भाजी । जैसे,—सोए, पालक, सरसों या बथुए आदि का साग । (२) पकाई हुई भाजी । तरकारी । जैसे,—आलू का साग । कुम्हड़े का साग । (वैष्णव)
यौ०—साग पात = कंद मूल । रूखा सूखा भोजन । जैसे,—जो कुछ साग पात बना है, कृपा करके भोजन कीजिए ।
मुहा०—साग पात समझना = बहुत तुच्छ समझना । कुछ न समझना ।

सागर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र । उदधि । जलधि । वि० दे० "समुद्र" । (२) बड़ा तालाब । झील । जलाशय । (३) संन्यासियों का एक भेद । (४) एक प्रकार का मृगा ।

सागरगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी । दरिया । (२) गंगा ।

सागरज-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र लवण ।

सागरजमल-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन । अब्धिकफ ।

सागरधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । भूमि ।

सागरनेमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी ।

सागरमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्यान या आराधना करने की एक प्रकार की मुद्रा ।

सागरमेखला-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी ।

सागरलिपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ललित विस्तर के अनुसार एक प्राचीन लिपि ।

सागरवासी-संज्ञा पुं० [सं० सागरवासिन्] (१) वह जो समुद्र में रहता हो । समुद्र में रहनेवाला । (२) वह जो समुद्र के तट पर रहता हो । समुद्र के किनारे रहनेवाला ।

सागरव्यूहगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सागरांबरा-संज्ञा स्त्री० [सं० सागराम्बरा] पृथ्वी।

सागरालय-संज्ञा पुं० [सं०] सागर में रहनेवाले, वरुण।

सागरेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम।

सागरोत्थ-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र लवण।

सागवन-संज्ञा पुं० दे० "सागौन"।

सागू-संज्ञा पुं० [अं० सेगो] (१) ताड़ की जाति का एक प्रकार का पेड़ जो जावा, सुमात्रा, बोर्निओ आदि में अधिकता से पाया जाता है और जो बंगाल तथा दक्षिण भारत में भी लगाया जाता है। इसके कई उपभेद हैं जिनमें से एक को माड़ भी कहते हैं। इसके पत्ते ताड़ के पत्तों की अपेक्षा कुछ लंबे होते हैं और फल सुडौल गोलाकार होते हैं। इसके रेशों से रस्से, टोकरे और बुरुश आदि बनते हैं। कहीं कहीं इसमें से पाछकर एक प्रकार का मादक रस भी निकाला जाता है; और उस रस से गुड़ भी बनाया जाता है। जब यह पंद्रह वर्ष का हो जाता है, तब इसमें फल लगते हैं और इसके मोटे तने में आटे की तरह का एक प्रकार का सफेद पदार्थ उत्पन्न होकर जम जाता है। यदि यह पदार्थ काटकर निकाल न लिया जाय, तो पेड़ सूख जाता है। यही पदार्थ निकालकर पीसते हैं और तब छोटे छोटे दानों के रूप में बनाकर सुखाते हैं। कुछ वृक्ष ऐसे भी होते हैं जिनके तने के टुकड़े टुकड़े करके उनमें से गूदा निकाला जाता है और पानी में कूटकर दानों के रूप में सुखा लिया जाता है। इन्हीं दानों को सागूदाना या साबूदाना कहते हैं। इस वृक्ष का तना पानी में जल्दी नहीं सड़ता; इसलिये उसे खोखला करके उससे नाली का काम लेते हैं। यह वृक्ष वर्षा ऋतु में बीजों से लगाया जाता है। (२) दे० "सागूदाना"।

सागूदाना-संज्ञा पुं० [हिं० सागू+दाना] सागू नामक वृक्ष के तने का गूदा जो पहले आटे के रूप में होता है और फिर कूटकर दानों के रूप में सुखा लिया जाता है। यह बहुत जल्दी पच जाता है, इसलिये यह दुर्बलों और रोगियों को पानी या दूध में उबाल कर, पथ्य के रूप में दिया जाता है। इसे साबूदाना भी कहते हैं। वि० दे० "सागू"।

सागो-संज्ञा पुं० दे० "सागू"।

सागौन-संज्ञा पुं० दे० "शाल" (१)।

साग्निक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके पास यज्ञ या हवन की अग्नि रहती हो। वह जो बराबर अग्निहोत्र आदि किया करता हो।

साग्र-वि० [सं०] समस्त। कुल। सब।

साचक-संज्ञा स्त्री० [तु०] मुसलमानों में विवाह की एक रस्म जिसमें विवाह से एक दिन पहले वर पक्षवाले अपने यहाँ से कन्या के लिये मेहँदी, मेवे, फल तथा कुछ सुगंधित द्रव्य आदि भेजते हैं।

साचरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो कुछ लोगों के मत से भैरव राग की पत्नी है।

साचिवारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद पुनर्नवा। गदहपूरना।

साचिव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सचिव का भाव या धर्म्म। सचिवता। (२) सहायता। मदद।

साची कुम्हड़ा-संज्ञा पुं० [देश० साची+कुम्हड़ा] भतुआ कुम्हड़ा। सफेद कुम्हड़ा। पेठा।

साचीगुण-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक देश का नाम।

साज-संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व भाद्रपद नक्षत्र।

साज़-संज्ञा पुं० [फा० मि० सं० सज्जा] (१) सजावट का काम। तैयारी। ठाट बाट। (२) वह उपकरण जिसकी आवश्यकता सजावट आदि के लिये होती हो। वे चीजें जिनकी सहायता से सजावट की जाती है। सजावट का सामान। उपकरण। सामग्री। जैसे,—घोड़े का साज (जीन, लगाम, तंग, दुमची आदि), लहँगे का साज (गोटा, पट्ठा, किनारी आदि) नाव का साज (खंभे, पटरे, जँगले आदि) बरामदे का साज (खंभे, घुड़िया आदि)।

यौ०—साज सामान।

(३) वाद्य। बाजा। जैसे,—तबला, सारंगी, जोड़ी, सितार, हारमोनियम आदि।

मुहा०—साज छेड़ना = बाजा बजाना आरंभ करना। साज मिलाना = बाजा बजाने से पहले उसका सुर आदि ठीक करना।

(४) लड़ाई में काम आनेवाले हथियार। जैसे,—तलवार, बंदूक, ढाल, भाला आदि। (५) बढ़इयों का एक प्रकार का रंदा जिससे गोल गलता बनाया जाता है। (६) मेल जोल। घनिष्टता।

यौ०—साज बाज = मेल जोल। घनिष्ठता।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

वि० बनानेवाला। मरम्मत या तैयार करनेवाला। काम करनेवाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे,—घड़ीसाज, रंगसाज आदि।

साजक-संज्ञा पुं० [सं०] बाजरा। बजरा।

साजगिरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

साजड़-संज्ञा पुं० [देश०] गुलू नामक वृक्ष जिससे कतीरा गोंद निकलता है। वि० दे० "गुलू" (१)।

साजन-संज्ञा पुं० [सं० सज्जन] (१) पति। भर्ता। स्वामी। (२) प्रेमी। वल्लभ। (३) ईश्वर। (४) सज्जन। भला आदमी।

साजना‡†–क्रि० स० [सं० सज्जा] (१) दे० "सजाना"। उ०—चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।—जायसी। (२) छोटे बड़े पानों को उनके आकार के अनुसार आगे पीछे या ऊपर नीचे रखना। (तमोली)

संज्ञा पुं० दे० "साजन"।

साज बाज–संज्ञा पुं० [सं० साज+बाज (अनु०)] (१) तैयारी। (२) मेल जोल। घनिष्टता।

संयो० क्रि०—करना।—बढ़ाना।—रखना।—होना।

साजर–संज्ञा पु० [देश०] गुल्लू नामक वृक्ष जिससे कतीरा गोंद निकलता है। वि० दे० "गुल्लू" (१)।

साज सामान–संज्ञा पुं० [फा०] (१) सामग्री। उपकरण। असबाब। जैसे,—बारात का सब साज सामान पहले से ही ठीक कर लेना चाहिए। (२) ठाठ बाट।

साजात्य–संज्ञा पुं० [सं०] सजाति होने का भाव जो वस्तु के दो प्रकार के धर्म्मों में से एक है। (वस्तुओं का दूसरे प्रकार का धर्म्म वैजात्य कहलाता है।)

साजिंदा–संज्ञा पु० [फा० साजिन्दः] (१) वह जो कोई साज (बाजा) बजाता हो। साज या बाजा बजानेवाला। (२) वेश्याओं की परिभाषा में तबला, सारंगी या जोड़ी बजानेवाला। सपरदाई। समाजी।

साज़िश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) मेल। मिलाप। (२) किसी के विरुद्ध कोई काम करने में सहायक होना। किसी को हानि पहुँचाने में किसी को सलाह या मदद देना। जैसे,—इतना बड़ा मामला बिना उनकी साजिश के हो ही नहीं सकता।

साजुज्य‡–संज्ञा पु० दे० "सायुज्य"।

साझा–संज्ञा पुं० [सं० सहार्घ्य] (१) किसी वस्तु में भाग पाने का अधिकार। शराकत। हिस्सेदारी। जैसे,—बासी रोटी में किसी का क्या साझा? (कहा०)

क्रि० प्र०—लगाना।

(२) हिस्सा। भाग। बाँट। जैसे,—उनके गल्ले के रोजगार में हमारा आधा साझा है।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

साझी–संज्ञा पुं० [हिं० साझा+ई (प्रत्य०)] वह जिसका किसी काम या चीज़ में साझा हो। साझेदार। भागी। हिस्सेदार।

साझेदार–संज्ञा पुं० [हिं० साझा+दार (प्रत्य०)] शरीक होनेवाला। हिस्सेदार। साझी।

साझेदारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० साझेदार+ई (प्रत्य०)] साझेदार होने का भाव। हिस्सेदारी। शराकत।

साट–संज्ञा स्त्री० दे० "साँट"।

साटक–संज्ञा पुं० [?] (१) भूसी। छिलका। (२) बिलकुल तुच्छ और निरर्थक वस्तु। निकम्मी चीज़। उ०—गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता सुत भौंह तकैं सब वै। धरनी धन धाम सरीर भलो, सुर लोकहु चाहि इहै सुख स्वै। सब फोकट साटक है तुलसी, अपनो न कछू सपनो दिन द्वै। जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ! जियै जग में तुम्हरो बिन ह्वै।—तुलसी। (३) एक प्रकार का छंद।

साटन–संज्ञा पु० [अं० सैटिन] एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्रायः एकरुखा और कई रंगों का होता है।

साटना‡|–क्रि० स० [हिं० सटाना] (१) दो चीज़ों को इस प्रकार मिलाना कि उनके तल आपस में मिल जायँ। सटाना। जोड़ना। मिलाना। (२) दे० "सटाना"।

साटनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] कलंदरों की परिभाषा में भालू का नाच।

साटमार|–संज्ञा पु० [हिं० सोट+मारना] वह जो हाथियों को (साँटे मार मारकर) लड़ाता हो। हाथियों को लड़ानेवाला।

साटी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) पुनर्नवा। गदहपूर्ना। (२) सामान। सामग्री। वि० दे० "सौंठी"। (३) कमची। सोंटी।

साटे|–अव्य० [देश०] बदले में। परिवर्त्तन में।

साठ–वि० [सं० षष्ठि] पचास और दस। जो पचपन से पाँच ऊपर हो।

संज्ञा पु० पचास और दस के योग की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६०।

संज्ञा स्त्री० दे० "साठी"।

साठनाठ–वि० [हिं० साठि+नाठ (नष्ट)] (१) जिसकी पूँजी नष्ट हो गई हो। निर्धन। दरिद्र। उ०—साठनाठ लग बात को पूँछा। बिन जिय फिरै मूँज तन छूँछा।—जायसी। (२) नीरस। रूखा। (३) इधर उधर। तितर बितर। उ०—चेटक लाइ हरहिं मन जब लहि होइ गथ फेंट। साठ-नाठ उठि भए बटाऊ, ना पहिचान न भेंट।—जायसी।

साठसाती–संज्ञा स्त्री० दे० "साढ़ेसाती"।

साठा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) ईख। गन्ना। ऊख। (२) एक प्रकार का धान जिसे साठी कहते हैं। वि० दे० "साठी"। (३) वह खेत जो बहुत लंबा चौड़ा हो। (४) एक प्रकार की मधुमक्खी जिसे सठपुरिया भी कहते हैं।

वि० [हिं० साठ] जिसकी अवस्था साठ वर्ष की हो गई हो। साठ वर्ष की उम्रवाला। जैसे,—साठा सो पाठा। (कहा०)

साठी–संज्ञा पुं० [सं० षष्टिक] एक प्रकार का धान। कहते हैं कि यह धान ६० दिन में तैयार हो जाता है, इसी से इसे साठी कहते हैं। इसके दाने दो प्रकार के होते हैं—काले और सफेद। काले की अपेक्षा सफेद दानेवाला अधिक अच्छा होता है। इसमें गुण अधिक होता है।

साड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] (१) घोड़ों का एक प्राणघातक रोग। (२) बाँस का वह टुकड़ा, जो नाव में मल्लाहों के बैठने के स्थान के नीचे, लगा रहता है।

साड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० शाटिका] स्त्रियों के पहनने की धोती जिसमें चौड़ा किनारा या बेल आदि बनी होती है। सारी। संज्ञा स्त्री० दे० "साढ़ी"।

साढ़साती-संज्ञा स्त्री० दे० "साढ़ेसाती"। उ०—अवध साढ़साती जनु बोली।—तुलसी।

साढ़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० असाढ़] वह फसल जो असाढ़ में बोई जाती है। असाढ़ी।
संज्ञा स्त्री० [सं० सार ?] दूध के ऊपर जमनेवाली बालाई। मलाई। उ०—सब हरि धरीहै साढ़ी। लै उपर उपरते काढ़ी।—सूर।
संज्ञा स्त्री० [सं० शाल] शाल वृक्ष का गोंद।
संज्ञा स्त्री० दे० "साड़ी"।

साढ़ू-संज्ञा पुं० [सं० श्यालिवोढा] साली का पति। पत्नी की बहन का पति।

साढ़ेचौहारा-संज्ञा पुं० [हिं० साढ़े + चौ (चार) + हारा (प्रत्य०)] एक प्रकार की बाँट जिसमें फसल का $\frac{5}{16}$ अंश जमींदार को मिलता है और शेष $\frac{11}{16}$ अंश काश्तकार को।

साढ़ेसाती-संज्ञा स्त्री० [हिं० साढ़े + सात + ई (प्रत्य०)] शनि ग्रह की साढ़े सात वर्ष, साढ़े सात मास या साढ़े सात दिन आदि की दशा, फलित ज्योतिष के अनुसार जिसका फल बहुत बुरा होता है।
मुहा०—साढ़ेसाती आना या चढ़ना = दुर्दशा या विपत्ति के दिन आना।

सात-वि० [सं० सप्त] पाँच और दो। छः से एक अधिक।
संज्ञा पुं० पाँच और दो के योग की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—७।
मुहा०—सात पाँच = चालाकी। मक्कारी। धूर्तता। जैसे,—वह बेचारा सात पाँच नहीं जानता; सीधा आदमी है। सात पाँच करना = (१) बहाना करना। (२) झगड़ा करना। उपद्रव करना। (३) चालबाजी करना। धूर्तता करना। सात परदे में रखना = (१) अच्छी तरह छिपाकर रखना। (२) बहुत सँभालकर रखना। सात समुद्र पार = बहुत दूर। सातों भूल जाना = होश हवाश चला जाना। इंद्रियों का काम न करना। (पाँच इंद्रियाँ, मन और बुद्धि ये सब मिलकर सात हुए।) सात राजाओं की साक्षी देना = बहुत दृढ़तापूर्वक कोई बात कहना। किसी बात की सत्यता पर बहुत जोर देना। उ०—मनसि बचन अरु कर्मना कछु कहति नाहिन राखि। सूर प्रभु यह बोल हिरदय सात राजा साखि।—सूर। सात सींकें बनाना = शिशु जन्म के छठे दिन की एक रीति जिसमें सात सींकें रखी जाती हैं। उ०—साथिये बनाइकै देहिं द्वारे सात सींक बनाय। नव किसोरी मुदित ह्वै ह्वै गहति यशुदा जी के पाँय।—सूर।

सातपूती-संज्ञा स्त्री० दे० "सतपुतिया"।

सात फेरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सात + फेरी] विवाह की भाँवर नामक रीति जिसमें वर और वधू अग्नि की सात बार परिक्रमा करते हैं।

सातभाई-संज्ञा स्त्री० दे० "सतभइया"।

सातला-संज्ञा पुं० [सं० सप्तला] एक प्रकार का थूहर जिसका दूध पीले रंग का होता है। सप्तला। भूरिफेना। स्वर्णपुष्पी।
विशेष—शालग्राम निघंटु में लिखा है कि यह एक प्रकार की बेल है जो जंगलों में पाई जाती है। इसके पत्ते खैर के पत्तों की भाँति और फूल पीले होते हैं। इसमें पतली चिपटी फली लगती है जिसे सीकाकाई कहते हैं। इसके बीज काले होते हैं जिनमें पीले रंग का दूध निकलता है। परंतु इंडियन मेडिकल प्लान्ट्स के मतानुसार यह क्षुप जाति की वनस्पति है। इसकी डाल एक से तीन फुट तक लंबी होती है जिसमें रोएँ होते हैं। इसके पत्ते एक इंच लंबे और चौथाई इंच चौड़े अंडाकार अनीदार होते हैं। डाल के अंत में बारीक फूलों के घने गुच्छे लगते हैं जो लाल रंग के होते हैं। फल चिकने और छोटे होते हैं। यह वनस्पति सुगंधयुक्त होती है। इसका तेल सुगंधित और उत्तेजक होता है जो मिरगी रोग में काम आता है।

साती-संज्ञा स्त्री० [देश०] साँप काटने की एक प्रकार की चिकित्सा जिसमें साँप काटे हुए स्थान को चीरकर उस पर नमक या बारूद मलते हैं।

सात्मक-वि० [सं०] आत्मा के सहित। आत्मायुक्त।

सात्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारूप्य। सरूपता। (२) वैद्यक के अनुसार वह रस जिसके सेवन से शरीर का किसी प्रकार का उपकार होता हो और जिसके फल-स्वरूप प्रकृति-विरुद्ध कोई कार्य्य करने पर भी शरीर का अनिष्ट न होता हो। (३) ऋतु, काल, देश आदि के अनुकूल पड़नेवाला आहार विहार आदि।

सात्यकि-संज्ञा पुं० [सं०] एक यादव जिसका दूसरा नाम युयुधान था। इसके पिता का नाम सत्यक था। महाभारत के युद्ध में इसने पांडवों का पक्ष लिया था। इसने कौरव भूरिश्रवा को मारा था। श्रीकृष्ण और अर्जुन से इसने अस्त्र विद्या सीखी थी।

सात्यकी-संज्ञा पुं० दे० "सात्यकि"।

सात्यदूत-संज्ञा पुं० [सं०] वह होम जो सरस्वती आदि देवियों या देवताओं के उद्देश्य से किया जाय।

सात्ययज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य्य का नाम।

सात्यरथि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सत्यरथ के वंश में उत्पन्न हुआ हो।

सात्यवत, सात्यवतेय-संज्ञा पुं० [सं०] सत्यवती के पुत्र वेदव्यास।

सात्यहव्य-संज्ञा पुं० [सं०] वशिष्ठ के वंश के एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सात्रव-संज्ञा पुं० [?] गंधक।

सात्राजित-संज्ञा पुं० [सं०] राजा शतानीक जो सत्राजित के वंशज थे।

सात्राजिती-संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्यभामा का एक नाम।

सात्त्व-वि० [सं०] सत्त्व गुण संबंधी। सात्त्विक।

सात्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बलराम। (२) श्रीकृष्ण। (३) विष्णु। (४) यदुवंशी। यादव। (५) मनुसंहिता के अनुसार एक वर्णसंकर जाति। (६) एक प्राचीन देश का नाम।

सात्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिशुपाल की माता का नाम। (२) सुभद्रा का एक नाम।

सात्वती वृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के अनुसार एक प्रकार की वृत्ति जिसका व्यवहार वीर, रौद्र, अद्भुत और शांत रसों में होता है। यह वृत्ति उस समय मानी जाती है जब कि नायक द्वारा ऐसे सुंदर और आनंदवर्धक वाक्यों का प्रयोग होता है, जिनसे उसकी शूरता, दानशीलता, दाक्षिण्य आदि गुण प्रकट होते हैं।

सात्विक-वि० [सं०] (१) सत्त्वगुण से संबंध रखनेवाला। सतोगुणी। (२) जिसमें सत्त्वगुण की प्रधानता हो। (३) सत्त्वगुण से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० (१) सतोगुण से उत्पन्न होनेवाले निसर्गजात अंग विकार। ये आठ प्रकार के होते हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय। केशव के अनुसार आठवाँ प्रलय नहीं बल्कि प्रलाप होता है। (२) साहित्य के अनुसार एक प्रकार की वृत्ति जिसका व्यवहार अद्भुत, वीर, शृंगार और शांत रसों में होता है। सात्वती वृत्ति। (३) ब्रह्मा। (४) विष्णु।

सात्विकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

वि० स्त्री० सत्त्व गुण से संबंध रखनेवाली। सत्त्व गुण की।

साथ-संज्ञा पुं० [सं० सह या सहित] (१) मिलकर या संग रहने का भाव। संगत। सहचार।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—लगना।—होना।

मुहा०—**साथ छूटना** = संग छूटना। अलग होना। जुदा होना। **साथ देना** = किसी काम में संग रहना। सहानुभूति करना या सहायता देना। जैसे,—इस काम में हम तुम्हारा साथ देंगे। **साथ लेना** = अपने संग रखना या ले चलना। जैसे,—जब तुम चलने लगना, तो हमें भी साथ ले लेना। **साथ सोना** = समागम करना। संभोग करना। **साथ सोकर मुँह छिपाना** = बहुत अधिक घनिष्ठता होने पर भी संकोच या दुराव करना। **साथ का या साथ को** = तरकारी, भाजी आदि जो रोटी के साथ खाई जाती है। **साथ का खेला** = बाल्यावस्था का मित्र। बचपन का साथी।

(२) वह जो संग रहता हो। बराबर पास रहनेवाला। साथी। संगी। (३) मेल मिलाप। घनिष्ठता। जैसे,—आजकल उन दोनों का बहुत साथ है। (४) कबूतरों का झुंड या टुकड़ी। (लखनऊ)

अव्य० (१) एक संबंधसूचक अव्यय जिससे प्रायः सहचार का बोध होता है। सहित। से। जैसे,—(क) तुम भी साथ चले जाओ। (ख) वह बड़े आराम के साथ सब काम करता है।

मुहा०—**साथ ही** = सिवा। अतिरिक्त। जैसे,—साथ ही यह भी एक बात है कि आप वहाँ नहीं जा सकेंगे। **साथ ही साथ** = एक साथ। एक सिलसिले में। जैसे,—साथ ही साथ दोहराते भी चलो। **एक साथ** = एक सिलसिले में। जैसे,—(क) एक साथ दोनों काम हो जायँगे। (ख) जब एक साथ इतने आदमी पहुँचेंगे तो वे घबरा जायँगे।

(२) विरुद्ध। से। जैसे,—सब के साथ लड़ना ठीक नहीं। (३) प्रति। से। जैसे,—(क) उनके साथ हँसी मजाक मत किया करो। (ख) बड़ों के साथ शिष्टतापूर्वक व्यवहार किया करो। (४) द्वारा। उ०—नखन साथ तब उदर बिदार्यो।—सूर।

साथरा†-संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० साथरी] (१) बिछौना। बिस्तर। (२) चटाई। (३) कुश की बनी चटाई। उ०—रघुपति चंद्र विचार कर्यो। नातो मानि सगर सागर सों कुश साथरे पर्यो।—सूर।

साथी-संज्ञा पुं० [हिं० साथ + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० साथिन] (१) वह जो साथ रहता हो। साथ रहनेवाला। हमराही। संगी। (२) दोस्त। मित्र।

सादगी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) सादा होने का भाव। सादापन। सरलता। (२) सीधापन। निष्कपटता।

सादा-वि० [फा० सादः] [स्त्री० सादी] (१) जिसकी बनावट आदि बहुत संक्षिप्त हो। जिसमें बहुत अधिक अंग, उपांग, पेच या बखेड़े आदि न हों। जैसे,—चरखा सूत कातने का सब से सादा यंत्र है। (२) जिसके ऊपर कोई अतिरिक्त काम न बना हो। जैसे,—सादा दुपट्टा, सादी जिल्द, सादा खिलौना। (३) जिसमें किसी विशेष प्रकार का मिश्रण न हो। बिना मिलावट का। खालिस। जैसे,—सादा पानी या सादी भाँग, (जिसमें चीनी आदि न मिली हो)। सादी पूरी (जिसमें पीठी आदि न भरी हो)। सादा भोजन (जिसमें अधिक मसाले या मेद आदि न हों)। (४) जिसके ऊपर

कुछ अंकित न हो। जैसे,—सादा कागज, सादा किनारा (जिसमें बेल बूटे आदि न बने हों)। (५) जिसके ऊपर कोई रंग न हो। सफेद। जैसे,—सादे किनारे की धोती। (६) जो कुछ छल कपट न जानता हो। जिसमें किसी प्रकार का आडंबर या अभिमान आदि न हो। सरल हृदय। सीधा। जैसे,—वे बहुत ही सादे आदमी हैं।

यौ०—सीधा सादा = सरल हृदय।

(७) बेवकूफ। मूर्ख। (क्व०) जैसे,—(क) वह सादा क्या जाने कि दर्शन किसे कहते हैं। (ख) यहाँ ऐसा कौन सादा है जो तुम्हारी बातें मान ले।

सादापन-संज्ञा पुं० [फा० सादा + पन (प्रत्य०)] सादा होने का भाव। सादगी। सरलता।

सादी-संज्ञा स्त्री० [फा० सादः] (१) लाल की जाति की एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसका शरीर भूरे रंग का होता है और जिसके शरीर पर चित्तियाँ नहीं होतीं। बिना चित्ती की मुनियाँ। सदिया। (२) वह पूरी जिसमें पीठी आदि नहीं भरी होती।

संज्ञा पुं० [?] (१) शिकारी। उ०—सहरुज सादी संग सिधारे। शूकर मृगा सबन बहु मारे।—रघुराज। (२) घोड़ा। (डिं०)

संज्ञा स्त्री० दे० "शादी"।

सादूर-संज्ञा पुं० [सं० शार्दूल] (१) शार्दूल। सिंह। उ०—चौथ दीन्ह सावक सादूरू। पाँचौ परस जो कंचन मुरू।—जायसी। (२) कोई हिंसक पशु।

सादृश्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सदृश होने का भाव। समानता। एक-रूपता। (२) बराबरी। तुलना। समान धर्म। (३) कुरंग। मृग।

सादृश्यता-संज्ञा स्त्री० दे० "सादृश्य"।

साध-संज्ञा पुं० [सं० साधु] (१) साधु। महात्मा। (२) योगी। (३) अच्छा आदमी। सज्जन।

संज्ञा स्त्री० [सं० उत्साह] (१) इच्छा। ख्वाहिश। कामना। उ०—जेहि अस साध होइ जिव खोवा। सो पतंग दीपक नस रोवा।—जायसी। (२) गर्भ धारण करने के सातवें मास में होनेवाला एक प्रकार का उत्सव। इस अवसर पर स्त्री के मायके से मिठाई आदि आती है।

संज्ञा पुं० फर्रुखाबाद और कन्नौज के आस पास पाई जानेवाली एक जाति। इस जाति के लोग मूर्त्तिपूजा आदि नहीं करते, किसी के सामने सिर नहीं झुकाते और केवल एक परमात्मा की अराधना करते हैं।

साधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधना करनेवाला। साधनेवाला। सिद्ध करनेवाला। (२) योगी। तप करनेवाला। तपस्वी। (३) जिससे कोई कार्य्य सिद्ध हो। करण। वसीला। जरिया। (४) भूत प्रेत आदि को साधने या अपने वश में करनेवाला। ओझा। (५) वह जो किसी दूसरे के स्वार्थ-साधन में सहायक हो। जैसे,—दोनों सिद्ध साधक बनकर आए थे। (६) पुत्रजीव वृक्ष। (७) दौना। (८) पित्त।

साधका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम जिसे स्मरण करने से सब कार्य्यों की सिद्धि होती है।

साधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी काम को सिद्ध करने की क्रिया। सिद्धि। विधान। (२) वह जिसके द्वारा कोई उपाय सिद्ध हो। सामग्री। सामान। उपकरण। जैसे,—साधन के अभाव से मैं यह काम न कर सका। (३) उपाय। युक्ति। हिकमत। (४) उपासना। साधना। (५) सहायता। मदद। (६) धातुओं को शोधने की क्रिया। शोधन। (७) कारण। हेतु। सबब। (८) अचार। संधान। (९) मृतक का अग्नि संस्कार। दाह कर्म्म। (१०) जाना। गमन। (११) धन। दौलत। द्रव्य। (१२) पदार्थ। चीज। (१३) घोड़े, हाथी और सैनिक आदि जिनकी सहायता से युद्ध होता है। (१४) उपाय। तरकीब। (१५) सिद्धि। (१६) प्रमाण। (१७) तपस्या आदि के द्वारा मंत्र सिद्ध करना। साधना।

साधनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साधन का भाव या धर्म्म। (२) साधन करने की क्रिया। साधना। उ०—कहि आचार भक्त विधभाषी हंस धर्म प्रकटायो। कही विभूति सिद्ध साधनता आश्रम चार कहायो।—सूर।

साधनहार*-संज्ञा पुं० [सं० साधन + हार (प्रत्य०)] (१) साधनेवाला। जो सिद्ध करता हो। (२) जो साधा जा सके। सिद्ध होने के योग्य।

साधना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोई कार्य्य सिद्ध या संपन्न करने की क्रिया। सिद्धि। (२) किसी देवता या यंत्र आदि को सिद्ध करने के लिये उसकी आराधना या उपासना करना। (३) दे० "साधन"।

क्रि० स० [सं० साधन] (१) कोई कार्य्य सिद्ध करना। पूरा करना। (२) निशाना लगाना। संधान करना। (३) नापना। पैमाइश करना। जैसे,—लकड़ी साधना। कुरता साधना। जूता साधना। टोपी साधना। (४) अभ्यास करना। आदत डालना। स्वभाव डालना। जैसे,—योग साधना। तप साधना। उ०—जब लगि पीउ मिले तुहि साधि प्रेम की पीर। जैसे सीप स्वाति कहँ तपै समुँद मँझ नीर।—जायसी। (५) शोधना। शुद्ध करना। (६) सच्चा प्रमाणित करना। (७) पक्का करना। ठहराना। (८) एकत्र करना। इकट्ठा करना। उ०—वैदिक विधान अनेक लौकिक आचरन सुनि जान कै। बलिदान पूजा मूलि कामनि साधि राखी आनि कै।—तुलसी।

साधनी–संज्ञा स्त्री० [सं० साधन] लोहे या लकड़ी का एक प्रकार का लंबा औज़ार जिससे जमीन चौरस करते हैं।

साधनीय–वि० [सं०] (१) साधना करने के योग्य। साधने लायक। (२) जो हो सके। जो साधा जा सके।

साधयितव्य–वि० [सं०] साधन करने के योग्य। साधने या सिद्ध करने लायक।

साधयिता–संज्ञा पुं० [सं० साधयितृ] वह जो साधन करता हो। साधन करनेवाला। साधक।

साधर्म्य–संज्ञा पुं० [सं०] समान धर्म होने का भाव। एक धर्मता। समान धर्मता। तुल्य धर्मता। जैसे,—इन दोनों में कुछ भी साधर्म्य नहीं है।

साधारण–वि० [सं०] (१) जिसमें कोई विशेषता न हो। मामूली। सामान्य। जैसे,—साधारण बात, साधारण काम, साधारण उपाय। (२) आसान। सरल। सहज। (३) सार्वजनिक। आम। (४) समान। सदृश। तुल्य।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) भावप्रकाश के अनुसार वह प्रदेश जहाँ जंगल अधिक हों, पानी अधिक हो, रोग अधिक हों, और जाड़ा तथा गरमी भी अधिक पड़ती हो। (२) ऐसे देश का जल।

साधारण गांधार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विकृत स्वर जो वज्रिका नामक श्रुति से आरंभ होता है। इसमें तीन श्रुतियाँ होती हैं।

साधारणतः–अव्य० [सं०] (१) मामूली तौर पर। आम तौर पर। सामान्यतः। (२) बहुधा। प्रायः।

साधारणता–संज्ञा स्त्री० [सं०] साधारण होने का भाव या धर्म्म। मामूली-पन।

साधारण देश–संज्ञा पुं० दे० "साधारण" (१)।

साधारण धर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह धर्म जो सब के लिये हो। सार्वजनिक धर्म। (२) वह धर्म जो साधारणतः एक ही प्रकार के सब पदार्थों में पाया जाय। (३) चारों वर्णों के कर्त्तव्य कर्म्म।

साधारण-स्त्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

साधारणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। उ०—ग्रहण कियो नहिं तिन्हैं सुरासुर साधारण जिय जानी। ताते साधारणी नाम तिन लह्यो जगत छबिखानी।—रघुराज। (२) कुंजी। ताली। चाभी।

साधारण्य–संज्ञा पुं० [सं०] साधारण होने का भाव या धर्म्म। साधारणता। मामूलीपन।

साधिका–वि० स्त्री० [सं०] सिद्ध करनेवाली। जो सिद्ध करे।

संज्ञा स्त्री० गहरी नींद।

साधित–वि० [सं०] (१) सिद्ध किया हुआ। जो सिद्ध किया गया हो। जो साधा गया हो। (२) जिसे किसी प्रकार का दंड दिया गया हो। (३) शुद्ध किया हुआ। शोधित। (४) जिसका नाश किया गया हो। (५) (ऋण आदि) जो चुकाया गया हो।

साधु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका जन्म उत्तम कुल में हुआ हो। कुलीन। आर्य्य। (२) वह धार्मिक, परोपकारी और सद्गुणी पुरुष जो सत्योपदेश द्वारा दूसरों का उपकार करे। धार्मिक पुरुष। परमार्थी। महात्मा। संत। (३) वह जो शांत, सुशील, सदाचारी वीतराग और परोपकारी हो। भला आदमी। सज्जन।

मुहा०—**साधु साधु कहना** = किसी के कोई अच्छा काम करने पर उसकी बहुत प्रशंसा करना।

(४) वह जिसकी साधना पूरी हो गई हो। (५) साधु धर्म का पालन करनेवाला। जैन साधु। (६) दौना नामक पौधा। दमनक। (७) वरुण वृक्ष। (८) जिन। (९) मुनि। (१०) वह जो सूद ब्याज से अपनी जीविका चलाता हो।

वि० (१) अच्छा। उत्तम। भला। (२) सच्चा। (३) प्रशंसनीय। (४) निपुण। होशियार। (५) योग्य। उपयुक्त। (६) उचित। मुनासिब।

साधुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कदम। कदंब वृक्ष। (२) वरुण वृक्ष।

साधुकारी–संज्ञा पुं० [सं० साधुकारिन्] वह जो उत्तम कार्य्य करता हो। अच्छा काम करनेवाला।

साधुज–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका जन्म उत्तम कुल में हुआ हो। कुलीन।

साधुजात–वि० [सं०] (१) सुंदर। खूबसूरत। (२) उज्वल। साफ। स्वच्छ।

साधुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साधु होने का भाव या धर्म्म। (२) साधुओं का धर्म। साधुओं का आचरण। (३) सज्जनता। भलमनसाहत। (४) भलाई। नेकी। (५) सीधापन। सिधाई।

साधुधर्म–संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार साधुओं का धर्म। यति धर्म।

विशेष—यह दस प्रकार का कहा गया है—क्षांति, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तप, संयम, सत्य, शौच, अकिंचन और ब्रह्म।

साधुश्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी या पति की माता। सास।

साधुपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] स्थल कमल। स्थल पद्म।

साधुभवन–संज्ञा पुं० [सं०] साधुओं के रहने की जगह। कुटीर। कुटी।

साधुमती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तांत्रिकों की एक देवी का नाम। (२) बौद्धों के अनुसार दसवीं पृथ्वी का नाम।

साधुवाद–संज्ञा पुं० [सं०] किसी के कोई उत्तम कार्य्य करने पर "साधु साधु" कहकर उसकी प्रशंसा करने का काम।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—मिलना।

साधुवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कदम का पेड़। कदंब। (२) वरुण वृक्ष।

साधुवृत्त-वि० [सं०] उत्तम स्वभाव और चरित्रवाला। साधु आचरण करनेवाला।

साधुवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम और श्रेष्ठ वृत्ति।

साधु साधु-अव्य० [सं०] एक पद जिसका व्यवहार किसी के बहुत उत्तम कार्य्य करने पर किया जाता है। धन्य धन्य। वाह वाह। बहुत खूब। उ०—स्तुति सुनि मन हर्ष बढ़ायो। साधु साधु कहि सुरनि सुनायो।—सूर।

साधू-संज्ञा पुं० [सं० साधु] (१) धार्मिक पुरुष। साधु। संत। महात्मा। (२) सज्जन। भला आदमी। (३) सीधा आदमी। भोला भाला। (४) दे० "साधु"।

साधो-संज्ञा पुं० [सं० साधु] धार्मिक पुरुष। संत। साधु।

साध्य-वि० [सं०] (१) सिद्ध करने योग्य। साधनीय। (२) जो सिद्ध हो सके। पूरा हो सकने के योग्य। जैसे,—यह कार्य्य साध्य नहीं जान पड़ता। (३) सहज। सरल। आसान। (४) जो प्रमाणित करना हो। जिसे साबित करना हो। (५) प्रतिकार करने के योग्य। (६) जानने के योग्य।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार के गणदेवता जिनकी संख्या बारह है और जिनके नाम इस प्रकार हैं—मन, मंता, प्राण, नर, अपान, वीर्य्यवान्, विनिर्भय, नय, दंस, नारायण, वृष और प्रभु। शारदीय नवरात्र में इन गणों के पूजन का विधान है। (२) देवता। (३) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों में से इक्कीसवाँ योग जो बहुत शुभ माना जाता है। कहते हैं कि इस योग में जो काम किया जाता है, वह भली भाँति सिद्ध होता है। जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह असाध्य कार्य्य भी सहज में कर लेता है और बहुत वीर, धीर, बुद्धिमान् तथा विनयशील होता है। (४) तंत्र के अनुसार गुरु से लिए जानेवाले चार प्रकार के मंत्रों में से एक प्रकार का मंत्र। (५) न्याय में वह पदार्थ जिसका अनुमान किया जाय। जैसे,—पर्वत से धूआँ निकलता है; अतः वहाँ अग्नि है। इसमें "अग्नि" साध्य है। (६) कार्य्य करने की शक्ति। सामर्थ्य। जैसे,—यह काम हमारे साध्य के बाहर है। (बोल चाल)

साध्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] साध्य का भाव या धर्म्म। साध्यत्व।

साध्यवसानिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्यदर्पण के अनुसार एक प्रकार की लक्षणा।

साध्यसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह हेतु जिसका साधन साध्य की भाँति करना पड़े। जैसे,—पर्वत से धूआँ निकलता है; अतः वहाँ अग्नि है। इसमें "पर्वत" पक्ष है, "धूआँ" हेतु है और "अग्नि" साध्य है। धूएँ की सहायता से अग्नि का होना प्रमाणित किया जाता है। परंतु यदि पहले यही प्रमाणित करना पड़े कि धूआँ निकलता है, तो इसे साध्यसम कहेंगे।

साध्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

साध्वस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भय। डर। (२) व्याकुलता। घबराहट। (३) प्रतिभा।

साध्वाचार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधुओं का सा आचार। (२) शिष्टाचार।

साध्वी-वि० स्त्री० [सं०] (१) पतिव्रता। पतिपरायणा। (स्त्री) (२) शुद्ध चरित्रवाली (स्त्री)। सच्चरित्रा।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुग्ध पाषाण। (२) मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

सानंद-संज्ञा पुं० (१) गुच्छ करंज। स्निग्धदल। (२) एक प्रकार की संप्रज्ञात समाधि। (३) संगीत में १६ प्रकार के ध्रुवकों में से एक प्रकार का ध्रुवक जिसका व्यवहार प्रायः वीर रस के वर्णन के लिये होता है।

वि० आनंद के साथ। आनंदपूर्वक।

सानंदनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

सानंदुरी-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

सान-संज्ञा पुं० [सं० शाण] वह पत्थर की चक्की जिस पर अस्त्रादि तेज किए जाते हैं। शाण। कुरंड।

मुहा०—सान देना = धार तीक्ष्ण करना। धार तेज करना। सान धरना = अस्त्र तेज करना। चोखा करना।

संज्ञा स्त्री० दे० "शान"।

साननाा†-क्रि० स० [हिं० सनना का सक०] (१) दो वस्तुओं को आपस में मिलाना; विशेषतः चूर्ण आदि को तरल पदार्थ में मिलाकर गीला करना। गूँधना। जैसे,—आटा सानना। (२) सम्मिलित करना। शामिल करना। उत्तरदायी बनाना। जैसे,—आप मुझे तो व्यर्थ ही इस मामले में सानते हैं। (३) मिलाना। लपेटना। मिश्रित करना। संयुक्त करना। जैसे,—तुमने अपने दोनों हाथ मिट्टी में सान लिए। उ०—यह सुनि धावत धरनि चरन की प्रतिमा खगी पंथ में पाई। नैन नीर रघुनाथ सानिकै शिव सों गात चढ़ाई।—सूर।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

†क्रि० स० [हिं० सान + ना (प्रत्य०)] सान पर चढ़ाकर धार तेज करना। (क०)

सानिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशी। मुरली।

सानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सानना] (१) वह भोजन जो पानी में सानकर पशुओं को खिलाया जाता है।

विशेष—नाँद में भूसा भिगो देते हैं और उसमें खली, दाना,

नमक आदि छोड़कर उसे पशुओं को खिलाते हैं। इसी को सानी कहते हैं।

(२) अनुचित रीति से एक में मिलाए हुए कई प्रकार के खाद्य पदार्थ। (व्यंग्य) (३) गाड़ी के पहिए में लगाने की गिट्टक।

संज्ञा स्त्री० दे० "सनई"।

वि० [अ०] (१) दूसरा। द्वितीय। जैसे,—औरंगजेब सानी। (२) बराबरी का। समानता रखनेवाला। मुकाबले का। जैसे,—इन बातों में तो तुम्हारा सानी और कोई नहीं है।

यौ०—लासानी = जिसके समान और कोई न हो। अद्वितीय।

सानु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्वत की चोटी। शिखर। (२) अंत। सिरा। (३) समतल भूमि। चौरस जमीन। (४) बन। जंगल। विशेषतः पहाड़ी जंगल। (५) मार्ग। रास्ता। (६) पल्लव। पत्ता। (७) सूर्य्य। (८) विद्वान्। पंडित।

सानुज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रपौंड्रीक वृक्ष। पुंडेरी। (२) तुंबुरु नामक वृक्ष।

सानुमानक-संज्ञा पुं० [सं०] पुंडेरी। प्रपौंड्रीक।

सानुप्रि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

सानोक†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास।

सान्नत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

सान्नाय-संज्ञा पुं० [सं०] मंत्रों से पवित्र किया हुआ वह घी जिससे हवन किया जाता है।

सान्नाहिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सन्नाह पहने हो। कवचधारी।

सान्निध्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समीपता। सामीप्य। सन्निकटता। (२) एक प्रकार की मुक्ति जिसमें आत्मा का ईश्वर के समीप पहुँच जाना माना जाता है। मोक्ष।

सान्निध्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सान्निध्य का धर्म्म या भाव।

सान्निपातकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का योनि रोग जो त्रिदोष से उत्पन्न होता है।

सान्निपातिक-वि० [सं०] (१) सन्निपात संबंधी। सन्निपात का। (२) त्रिदोष संबंधी। त्रिदोष से उत्पन्न होनेवाला (रोग)।

सान्न्यासिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने संन्यास ग्रहण किया हो। संन्यासी।

सान्यपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक वैदिक आचार्य्य।

साप*-संज्ञा पुं० दे० "शाप"।

सापत्न्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सपत्नी का भाव या धर्म्म। सौतपन। (२) सपत्नी का पुत्र। सौत का लड़का। (३) शत्रु। दुश्मन।

सापन-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का रोग जिसमें सिर के बाल गिर जाते हैं।

सापना*†-क्रि० स० [सं० शाप, हिं० साप + ना (प्रत्य०)] (१) शाप देना। बद्दुआ देना। उ०—चहत महामुनि जाग गयो। नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तनु ताप तयो। सापे पाप नये निदरत खल तब यह मंत्र ठयो। विप्र साधु सुर-धेनु धरनि हित हरि अवतार लयो। (२) दुर्वचन कहना। गाली देना। कोसना।

सापिंड्य-संज्ञा पुं० [सं०] सपिंड होने का भाव या धर्म्म।

साप्ततंतव-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक धार्म्मिक संप्रदाय।

साप्तपदीन-वि० [सं०] सप्तपदी संबंधी। सप्तपदी का।

संज्ञा पुं० मित्रता। दोस्ती।

साप्तमिक-वि० [सं०] सप्तमी संबंधी। सप्तमी का।

साप्तरथवाहनि-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन ऋषि का नाम।

साफ़-वि० [अ०] (१) जिसमें किसी प्रकार का मैल या कूड़ा करकट आदि न हो। मैला या गँदला का उलटा। स्वच्छ। निर्मल। जैसे,—साफ कपड़ा, साफ कमरा, साफ रंग। (२) जिसमें किसी और चीज की मिलावट न हो। शुद्ध। खालिस। जैसे,—साफ पानी। (३) जिसकी रचना या संयोजक अंगों में किसी प्रकार की त्रुटि या दोष न हो। जैसे,—साफ लकड़ी। (४) जो स्पष्टतापूर्वक अंकित या चित्रित हो। जो देखने में स्पष्ट हो। जैसे,—साफ लिखाई, साफ छपाई, साफ तसवीर। (५) जिसका तल चमकीला और सफेदी लिए हो। उज्वल। जैसे,—साफ कपड़ा। (६) जिसमें किसी प्रकार का भद्दापन या गड़बड़ी आदि न हो। जिसे देखने में कोई दोष न दिखाई दे। जैसे,—साफ खेल (इंद्रजाल या व्यायाम आदि के), साफ कुदान। (७) जिसमें किसी प्रकार का झगड़ा, पेच या फेर फार न हो। जिसमें कोई बखेड़ा या झंझट न हो। जैसे,—साफ मामला, साफ बरताव। (८) जिसमें धुँधलापन न हो। स्वच्छ। चमकीला। जैसे,—साफ शीशा, साफ आसमान। (९) जिसमें किसी प्रकार का छल कपट न हो। निष्कपट। जैसे,—साफ दिल, साफ आदमी।

मुहा०—साफ साफ सुनाना = बिलकुल स्पष्ट और ठीक बात कहना। खरी बात कहना।

(१०) जो स्पष्ट सुनाई पड़े या समझ में आवे। जिसके समझने या सुनने में कोई कठिनता न हो। जैसे,—साफ आवाज, साफ लिखावट, साफ खबर। (११) जिसका तल ऊबड़ खाबड़ न हो। समतल। हमवार। जैसे,—साफ जमीन, साफ मैदान। (१२) जिसमें किसी प्रकार की विघ्न-

बाधा आदि न हो। (१३) जिसके ऊपर कुछ अंकित न हो। सादा। कोरा। (१४) जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो। बे-ऐब। (१५) जिसमें से अनावश्यक या रद्दी अंश निकाल दिया गया हो। (१६) जिसमें से सब चीजें निकाल ली गई हों। जिसमें कुछ तत्व न रह गया हो।

मुहा०—साफ करना = (१) मार डालना। वध करना। हत्या करना। (२) नष्ट करना। चौपट करना। बरबाद करना। न रहने देना। (३) खा जाना।

(११) लेन देन आदि का निपटना। चुकता होना। जैसे,—हिसाब साफ होना।

क्रि० वि० (१) बिना किसी प्रकार के दोष, कलंक या अपवाद आदि के। बिना दाग लगे। जैसे,—साफ छूटना। (२) बिना किसी प्रकार की हानि या कष्ट उठाए हुए। बिना किसी प्रकार की आँच सहे हुए। जैसे,—साफ बचना, साफ निकलना। (३) इस प्रकार जिसमें किसी को पता न लगे या कोई बाधक न हो। जैसे,—(माल या स्त्री आदि) साफ उड़ा लाना। (४) बिलकुल। नितांत। जैसे,—साफ इनकार करना, साफ बेवकूफ बनाना। (५) बिना अन्न जल के। निराहार।

साफल्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफल होने का भाव। सफलता। कृतकार्यता। (२) सिद्धि। लाभ।

साफा—संज्ञा पुं० [अ० साफ़] (१) सिर पर बाँधने की पगड़ी। मुरेठा। मुड़ासा। (२) शिकारी जानवरों को शिकार के लिये या कबूतरों को दूर तक उड़ने के लिये तैयार करने के उद्देश्य से उपवास कराना।

मुहा०—साफा देना = उपवास कराना। भूखा रखना।

(३) नित्य के पहनने या ओढ़ने के वस्त्रों आदि को साबुन लगाकर साफ करना। कपड़े धोना।

क्रि० प्र०—देना। —लगाना।

साफी—संज्ञा स्त्री० [अ० साफ़] (१) हाथ में रखने का रूमाल। दस्ती। (२) वह कपड़ा जो गाँजा पीनेवाले चिलम के नीचे लपेटते हैं। (३) भाँग छानने का कपड़ा। छनना। (४) एक प्रकार का रंदा जो लकड़ी को बिलकुल साफ कर देता है।

साबत—संज्ञा पुं० [सं० सामंत] सामंत। सरदार। (डिं०)

वि० दे० "साबूत"।

साबन—संज्ञा पुं० दे० "साबुन"।

साबर—संज्ञा पुं० [सं० शंबर] (१) दे० "साँभर"। (२) साँभर मृग का चमड़ा जो बहुत मुलायम होता है। (३) शबर जाति के लोग। (४) थूहर वृक्ष। (५) मिट्टी खोदने का एक औजार। सबरी। (६) एक प्रकार का सिद्ध मंत्र, जो शिव कृत माना जाता है। उ०—स्वारथ के साथी मेरे हाथ सो न लेवा देई काहू तो न पीर रघुबीर दीन जन की। साप सभा साबर लबार भये देव दिव्य दुसह साँसति कीजै आगे ह्वै या तन की।—तुलसी।

साबल—संज्ञा पुं० [सं० शबर] बरछी। भाला।

साबस—संज्ञा पुं० [फ़ा० शाबाश] वाह वाही देने की क्रिया। दाद। वि० दे० "शाबाश"।

अव्य० वाह वाह। धन्य। साधु साधु।

साबिक—वि० [अ० साबिक़] पूर्व का। पहले का। पुराने समय का। उ०—प्रभु जू मैं ऐसो अमल कमायो। साबिक जमा हुती जो जोरी मीजाँकुल तल लायो।—सूर।

यौ०—साबिक दस्तूर = जैसा पहले था, वैसा ही। पहले की ही तरह। जिसमें कुछ परिवर्तन न हुआ हो। जैसे,—उसका हाल वही साबिक दस्तूर है।

साबिका—संज्ञा पुं० [अ०] (१) जान पहचान। मुलाकात। भेंट। (२) संबंध। सरोकार। व्यवहार।

मुहा०—साबिका पड़ना = (१) काम पड़ना। वास्ता पड़ना। (२) लेन देन होना। (३) मेल मिलाप होना।

साबित—वि० [फ़ा०] जिसका सबूत दिया गया हो। प्रमाणित। सिद्ध।

संज्ञा पुं० वह नक्षत्र या तारा जो चलता न हो, एक ही स्थान पर सदा ठहरा रहता हो।

वि० [अ० सबूत] (१) साबूत। पूरा। (२) दुरुस्त। ठीक। उ०—द्वै लोचन साबित नहिं तेऊ।—सूर।

साबुत—वि० [फ़ा० सबूत] (१) जिसका कोई अंग कम न हो। साबूत। संपूर्ण। (२) दुरुस्त। (३) स्थिर। निश्चल।

साबुन—संज्ञा पुं० [अ०] रासायनिक क्रिया से प्रस्तुत एक प्रसिद्ध पदार्थ जिससे शरीर और वस्त्रादि साफ किए जाते हैं। यह सज्जी, चूने, सोडे, तेल और चर्बी आदि के संयोग से बनाया जाता है। देशी साबुन में चर्बी नहीं डाली जाती; पर विलायती साबुन में प्रायः चर्बी का मेल रहता है। शरीर में लगाने के विलायती साबुनों में अनेक प्रकार की सुगंधियाँ भी रहती हैं।

साबूदाना—संज्ञा पुं० दे० "सागूदाना"।

साब्दी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाख। द्राक्षा।

सामंजस्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) औचित्य। (२) उपयुक्तता। (३) अनुकूलता। (४) वैषम्य या विरोध आदि का अभाव।

सामंत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वीर। योद्धा। (२) किसी राज्य का कोई बड़ा जमींदार या सरदार। (३) पड़ोसी। (४) श्रेष्ठ प्रजा। (५) समीपता। सामीप्य। नजदीकी।

सामंत भारती—संज्ञा पुं० [सं०] राग मल्लार और सारंग के मेल से बना हुआ एक प्रकार का संकर राग।

सामंत सारंग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सारंग राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

सामंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी जो मेघ राग की प्रिया मानी जाती है।
संज्ञा स्त्री० [सं० सामंत + ई० (प्रत्य०)] (१) सामंत का भाव या धर्म्म। (२) सामंत का पद।

सामंतेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सामंतेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवर्त्ती सम्राट। शाहंशाह।

साम-संज्ञा पुं० [सं० सामन्] (१) वे वेद मंत्र जो प्राचीन काल में यज्ञ आदि के समय गाए जाते थे। (२) चारों वेदों में से तीसरा वेद। वि० दे० "सामवेद"। (३) मीठी बातें करना। मधुर भाषण। (४) राजनीति के चार अंगों या उपायों में से एक। अपने वैरी या विरोधी को मीठी बातें करके प्रसन्न करना और अपनी ओर मिला लेना। (शेष तीन अंग या उपाय दाम, दंड और भेद हैं।)
संज्ञा पुं० दे० "स्याम" और "शाम" (देश)।
संज्ञा स्त्री० दे० "शाम" और "शामी"।

सामक-संज्ञा पुं० [सं० श्यामक] साँवाँ नामक अन्न। वि० दे० "साँवाँ"।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मूल धन जो ऋण स्वरूप लिया या दिया गया हो। कर्ज का असल रुपया। (२) सान धरने का पत्थर। (३) वह जो साम-वेद का अच्छा ज्ञाता हो।

सामकपुंख-संज्ञा पुं० [सं०] सरफोंका घास।

सामकारी-संज्ञा पुं० [सं० सामकारिन्] (१) वह जो मीठे वचन कहकर किसी को ढारस देता हो। सांत्वना देनेवाला। (२) एक प्रकार का साम गान।

सामग-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सामगी] (१) वह जो सामवेद का अच्छा ज्ञाता हो। (२) विष्णु का एक नाम।

सामगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सामगान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का साम। (२) वह जो सामवेद का अच्छा ज्ञाता हो।

सामगाय-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सामगान का अच्छा ज्ञाता हो।

सामग्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वे पदार्थ जिनका किसी विशेष कार्य्य में उपयोग होता है। जैसे,—यज्ञ की सामग्री। (२) असबाब। सामान। (३) आवश्यक द्रव्य। जरूरी चीज। (४) किसी कार्य्य की पूर्त्ति के लिये आवश्यक वस्तु। साधन।

सामग्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अस्त्र-शस्त्र। हथियार। (२) भांडार। खजाना।

सामज-वि० [सं०] जो सामवेद से उत्पन्न हुआ हो।
संज्ञा पुं० हाथी (जिसकी उत्पत्ति ब्रह्मा के सामगान से मानी जाती है)।

सामत-संज्ञा पुं० दे० "सामंत"।
संज्ञा स्त्री० दे० "शामत"।

सामत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] हर्रे, सोंठ और गिलोय इन तीनों का समूह।

सामत्व-संज्ञा पुं० [सं०] साम का भाव या धर्म्म। सामता।

सामना-संज्ञा पुं० [हिं० सामने, पु० हिं० सामुहे] (१) किसी के समक्ष होने की क्रिया या भाव। जैसे,—जब हमारा उनका सामना होगा, तब हम उनसे बातें करेंगे।
मुहा०—सामने आना = आगे आना। सम्मुख आना। जैसे,—अब तो वह कभी हमारे सामने ही नहीं आता। सामने का = (१) जो समक्ष हो। (२) जो अपने देखने में हुआ हो। जो अपनी उपस्थिति में हुआ हो। जैसे,—(क) यह तो हमारे सामने का लड़का है। (ख) यह तो हमारे सामने की बात है। सामने करना = किसी के समक्ष उपस्थित करना। आगे लाना। सामने की बात = आँखों देखी बात। वह बात जो अपनी उपस्थिति में हुई हो। सामने पड़ना = दृष्टि के आगे आना। सामने होना = (स्त्रियों का) परदा न करके समक्ष आना। जैसे,—उनके घर की स्त्रियाँ किसी के सामने नहीं होतीं।
(२) भेंट। मुलाकात। (३) किसी पदार्थ का अगला भाग। आगे की ओर का हिस्सा। आगा। जैसे,—उस मकान का सामना तालाब की ओर पड़ता है। (४) किसी के विरुद्ध या विपक्ष में खड़े होने की क्रिया या भाव। मुकाबला। जैसे,—(क) वह किसी बात में आपका सामना नहीं कर सकता। (ख) युद्ध-क्षेत्र में दोनों दलों का सामना हुआ।
मुहा०—सामना करना = धृष्टता करना। सामने होकर जवाब देना। गुस्ताखी करना। जैसे,—जरा सा लड़का, अभी से सब का सामना करता है।

सामने-क्रि० वि० [सं० सम्मुख, प्रा० सम्मुहे, पु० हिं० सामुहे] (१) सम्मुख। समक्ष। आगे। (२) उपस्थिति में। मौजूदगी में। जैसे,—तुम्हारे सामने उन्हें कौन पूछेगा। (३) सीधे। आगे। जैसे,—सामने जाने पर एक मोड़ मिलेगा। (४) मुकाबले में। विरुद्ध।

सामपुष्पि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

सामयिक-वि० [सं०] (१) समय संबंधी। समय का। (२) वर्त्तमान समय से संबंध रखनेवाला।
यौ०—समसामयिक। सामयिकपत्र।
(३) समय की दृष्टि से उपयुक्त। समय के अनुसार।
यौ०—सामयिकपत्र = समाचारपत्र।

सामयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) हाथी।

सामर-संज्ञा पुं० दे० "समर"।
वि० [सं०] समर संबंधी। समर का। युद्ध का।
सामरथ†-संज्ञा स्त्री० दे० "सामर्थ्य"।
सामराधिप-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का प्रधान अधिकारी। सेनापति।
सामरिक-वि० [सं०] समर संबंधी। युद्ध का। जैसे,—सामरिक समाचार।
सामरेय-वि० [सं०] समर संबंधी। युद्ध का।
सामर्थ-संज्ञा स्त्री० दे० "सामर्थ्य"।
सामर्थी-संज्ञा पुं० [सं० सामर्थ्य+ई (प्रत्य०)] (१) सामर्थ्य रखनेवाला। जिसे सामर्थ्य हो। (२) जो किसी कार्य्य के करने की शक्ति रखता हो। (३) पराक्रमी। बलवान।
सामर्थ्य-संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० सामर्थ्य] (१) समर्थ होने का भाव। किसी कार्य्य के संपादन करने की शक्ति। बल। (२) शक्ति। ताकत। (३) योग्यता। (४) शब्द की व्यंजना शक्ति। शब्द की वह शक्ति जिससे वह भाव प्रकट करता है। (५) व्याकरण में शब्दों का परस्पर संबंध।
सामवायिक-वि० [सं०] समवाय संबंधी। (२) समूह या झुंड संबंधी।
संज्ञा पुं० मंत्री। वजीर।
सामविद्-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सामवेद का अच्छा ज्ञाता हो।
सामविप्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो अपने सब कर्म्म सामवेद के विधानों के अनुसार करता हो।
सामवेद-संज्ञा पुं० [सं० सामन्] भारतीय आर्य्यों के चार वेदों में से प्रसिद्ध तीसरा वेद। पुराणों में कहा है कि इस वेद की एक हजार संहिताएँ थीं; परंतु आजकल इनमें से केवल एक ही संहिता मिलती है। यह संहिता दो भागों में विभक्त है, जिनमें से एक "आर्चिक" और दूसरा "उत्तरार्चिक" कहलाता है। इन दोनों भागों में जो १८१० ऋचाएँ हैं, उनमें से अधिकांश ऋग्वेद में आई हुई हैं। ये सब ऋचाएँ प्रायः गायत्री छंद में ही हैं। यज्ञों के समय जो स्तोत्र आदि गाए जाते थे, उन्हीं स्तोत्रों का इस वेद में संग्रह है। भारतीय संगीतशास्त्र का आरंभ इन्हीं स्तोत्रों से होता है। इस वेद का उपवेद गांधर्ववेद है।
सामवेदिक, सामवेदीय-वि० [सं०] सामवेद संबंधी।
संज्ञा पुं० सामवेद का ज्ञाता या अनुयायी ब्राह्मण।
सामश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० सामश्रवस्] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।
सामसर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गन्ना जो डुमरावँ में होता है।
सामसाली-संज्ञा पुं० [सं० साम+शाली] राजनीति के साम, दाम, दंड और भेद नामक अंगों को जाननेवाला। राजनीतिज्ञ। उ०—जयति राज राजेंद्र राजीव-लोचन राम-नाम-कलि कामतरु, सामसाली। अनय अंभोधि कुंभज निसाचर-निकर तिमिर घनघोर वर किरिनिमाली।—तुलसी।
सामसावित्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सावित्री मंत्र।
सामसुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम गान।
सामस्तंबि-संज्ञा पुं० [सं० सामस्तम्बि] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।
सामस्त-वि० दे० "समस्त"।
सामहिं⊛-अव्य० [सं० सम्मुख] सामने। सम्मुख। समक्ष। उ०—(क) तिन सामहिं गोरा रन कोपा। अंगद सरिस पाउँ भुइँ रोपा।—जायसी। (ख) कोप सिंह सामहिं रन मेला। लाखन सों ना मरै अकेला।—जायसी।
सामाँ-संज्ञा पुं० दे० "साँवाँ"।
संज्ञा पुं० दे० सामान"।
संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामा"।
सामाजिक-वि० [सं०] (१) समाज से संबंध रखनेवाला। समाज का। जैसे,—सामाजिक कुरीतियाँ, सामाजिक झगड़े, सामाजिक व्यवहार। (२) सभा से संबंध रखनेवाला। (३) सहृदय। रसज्ञ।
संज्ञा पुं० सभासद। सदस्य। सभ्य।
सामाजिकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सामाजिक का भाव। लौकिकता।
सामाधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शमन करने की क्रिया। शांति। (२) शंका का निवारण। (३) किसी कार्य को पूर्ण करने का व्यापार। संपादन।
सामान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी कार्य्य के लिये साधन स्वरूप आवश्यक वस्तुएँ। उपकरण। सामग्री। (२) माल। असबाब।
मुहा०—सामान बाँधना = माल असबाब बाँधकर चलने की तैयारी करना।
(३) औजार। (४) बंदोबस्त। इंतजाम।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
सामानग्रामिक-वि० [सं०] एक ही ग्राम में रहनेवाले। एक ही गाँव के निवासी।
सामान्य-वि० [सं०] जिसमें कोई विशेषता न हो। साधारण। मामूली। वि० दे० "समान"।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) समान होने का भाव। सादृश्य। समानता। बराबरी। (२) वह एक बात या गुण जो किसी जाति या वर्ग की सब चीजों में समान रूप से पाया जाय। जाति-साधर्म्य। जैसे,—मनुष्यों में मनुष्यत्व या गौओं में गोत्व। (वैशेषिक में जो छः पदार्थ माने गए हैं, सामान्य उनमें से एक है। इसी को जाति भी कहते हैं।) (३) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार। यह उस समय

माना जाता है जब एक ही आकार की दो या अधिक ऐसी वस्तुओं का वर्णन होता है जिनमें देखने में कुछ भी अंतर नहीं जान पड़ता। जैसे,—(क) एक रूप तुम भ्राता दोऊ। (ख) नाहिं फरक श्रुतिकमल अरु हरिलोचन अभिसेष। (ग) जानी न जात मसाल और बाल गोपाल गुलाल चलावत चूकैं।

सामान्य छल-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का छल जिसमें संभावित अर्थ के स्थान में अति सामान्य के योग से असंभूत अर्थ की कल्पना की जाती है। जब वादी किसी संभूत अर्थ के विषय में कोई वचन कहे, तब सामान्य के संबंध से किसी असंभूत अर्थ के विषय में उस वचन की कल्पना करने की क्रिया। वि० दे० "छल" (६)।

सामान्य ज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] साधारण ज्वर। मामूली बुखार।

सामान्यतः-अव्य० [सं०] सामान्य रूप से। साधारण रीति से। साधारणतः। जैसे,—राजनीति में सामान्यतः अपना ही स्वार्थ देखा जाता है।

सामान्यतया-अव्य० [सं०] सामान्य रूप से। मामूली तौर से। सामान्यतः। साधारणतया।

सामान्यतोदृष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तर्क और न्याय शास्त्र के अनुसार अनुमान संबंधी एक प्रकार की भूल जो उस समय मानी जाती है जब किसी ऐसे पदार्थ के द्वारा अनुमान करते हैं जो न कार्य्य हो और न कारण। जैसे कोई आम को बौरते देख यह अनुमान करे कि अन्य वृक्ष भी बौरते होंगे। (२) दो वस्तुओं या बातों में ऐसा साधर्म्य जो कार्य्य कारण संबंध से भिन्न हो। जैसे बिना चले कोई दूसरे स्थान पर नहीं पहुँच सकता। इसी प्रकार दूसरे को भी किसी स्थान पर भेजना बिना उसके गमन के नहीं हो सकता।

सामान्य भविष्यत्-संज्ञा पुं० [सं०] भविष्य क्रिया का वह काल जो साधारण रूप बतलाता है। जैसे,—आवेगा, जायगा, खायगा।

सामान्य भूत-संज्ञा पुं० [सं०] भूत क्रिया का वह रूप जिसमें क्रिया की पूर्णता होती है और भूत काल की विशेषता नहीं पाई जाती। जैसे,—खाया, गया, उठा।

सामान्य लक्षणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गुण जिसके अनुसार किसी एक सामान्य को देखकर उसी के अनुसार उस जाति के और सब पदार्थों का ज्ञान होता है। किसी पदार्थ को देखकर उस जाति के और सब पदार्थों का बोध करानेवाली शक्ति। जैसे,—किसी एक गौ या घड़े को देखकर समस्त गौओं या घड़ों का जो ज्ञान होता है, वह इसी सामान्य लक्षणा के अनुसार होता है।

सामान्य वर्तमान-संज्ञा पुं० [सं०] वर्तमान क्रिया का वह रूप जिसमें कर्त्ता का उसी समय कोई कार्य्य करते रहना सूचित होता है। जैसे,—खाता है, जाता है।

सामान्य विधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] साधारण विधि या आज्ञा। आम हुकुम। जैसे,—हिंसा मत करो, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, किसी का अपकार मत करो आदि सामान्य विधि के अंतर्गत हैं। परंतु यदि यह कहा जाय कि यज्ञ में हिंसा की जा सकती है, अथवा ब्राह्मण की प्राण रक्षा के लिये झूठ बोल सकते हो, तो इस प्रकार की विधि विशेष विधि होगी और वह सामान्य विधि की अपेक्षा अधिक मान्य होगी।

सामान्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के अनुसार वह नायिका जो धन लेकर किसी से प्रेम करती है। गणिका।

विशेष—इस नायिका के भी उतने ही भेद होते हैं जितने अन्य नायिकाओं के होते हैं।

सामायिक-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार एक प्रकार का व्रत या आचरण जिसमें सब जीवों पर सम भाव रखकर एकांत में बैठकर आत्मचिंतन किया जाता है।

वि० माया-युक्त। माया सहित।

सामाश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] वह भवन या प्रासाद आदि जिसके पश्चिम ओर वीथिका या सड़क हो।

सामासिक-वि० [सं०] समास से संबंध रखनेवाला। समास का।

सामि-संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा। शिकायत।

सामिग्री-संज्ञा स्त्री० दे० "सामग्री"।

सामित्य-संज्ञा पुं० [सं०] समिति का भाव या धर्म्म।

वि० समिति का। समिति संबंधी।

सामिधेनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का ऋक् मंत्र जिसका पाठ होम की अग्नि प्रज्वलित करने के समय किया जाता है।

सामिधेन्य-संज्ञा पुं० दे० "सामिधेनी"।

सामियाना-संज्ञा पुं० दे० "शामियाना"।

सामिल-वि० दे० "शामिल"।

सामिष-वि० [सं०] आमिष सहित। मांस, मत्स्य आदि के सहित। निरामिष का उलटा। जैसे,—सामिष भोजन, सामिष श्राद्ध।

सामिष श्राद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] पितरों आदि के उद्देश्य से किया जानेवाला वह श्राद्ध जिसमें मांस, मत्स्य आदि का भी व्यवहार होता हो। जैसे,—मांसाष्टका आदि सामिष श्राद्ध हैं।

सामी‡-संज्ञा पुं० दे० "स्वामी"।

संज्ञा स्त्री० दे० "शामी"।

सामीची-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंदना। प्रार्थना। स्तुति।

सामीप्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समीप होने का भाव। निकटता। (२) एक प्रकार की मुक्ति जिसमें मुक्त जीव का भगवान के समीप पहुँच जाना माना जाता है।

सामीर–संज्ञा पुं० [सं० समीर] समीर। पवन। (डिं०)

सामीर्य–वि० [सं०] समीर संबंधी। समीर का। हवा का।

सामुझि†–संज्ञा स्त्री० दे० "समझ"।

सामुदायिक–वि० [सं०] समुदाय संबंधी। समुदाय का।

संज्ञा पुं० बालक के जन्म समय के नक्षत्र से आगे के अठारह नक्षत्र जो फलित ज्योतिष के अनुसार अशुभ माने जाते हैं और जिनमें किसी प्रकार का शुभ कार्य्य करने का निषेध है।

सामुद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र से निकला हुआ नमक। वह नमक जो समुद्र के खारे पानी से निकाला जाता है। (२) समुद्रफेन। (३) वह व्यापारी जो समुद्र के द्वारा दूसरे देशों में जाकर व्यापार करता हो। (४) नारियल। (५) शरीर में होनेवाले चिह्न या लक्षण आदि जिन्हें देखकर शुभाशुभ का विचार किया जाता है। वि० दे० "सामुद्रिक"।

वि० (१) समुद्र से उत्पन्न। समुद्र से निकला हुआ। (२) समुद्र संबंधी। समुद्र का।

सामुद्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह ग्रंथ जिसमें मनुष्य के शरीर के चिह्नों या लक्षणों आदि के शुभाशुभ फलों का विवेचन हो। (२) दे० "सामुद्र"।

वि० समुद्र संबंधी। समुद्र का।

सामुद्रनिष्कुट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम। (२) इस जनपद का निवासी।

सामुद्र मत्स्य–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र में होनेवाली बड़ी बड़ी मछलियाँ जिनका मांस सुश्रुत के अनुसार भारी, चिकना, मधुर, वातनाशक, कफवर्धक, उष्ण और वृष्य होता है।

सामुद्रस्थलक–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र तट का प्रदेश। समुद्र के आस पास का देश।

सामुद्राद्य चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का चूर्ण जो साँभर, सोंचर और सेंधा नमक, अजवायन, जवाखार, बायविड़ंग, हींग, पीपल, चीतामूल और सोंठ को बराबर मिलाने से बनता है। कहते हैं कि इस चूर्ण का घी के साथ सेवन करने से सब प्रकार के उदर रोग दूर होते हैं। यदि भोजन के आरंभ में इसका सेवन किया जाय तो यह बहुत पाचक होता है और इससे कोष्टबद्धता दूर होती है।

सामुद्रिक–वि० [सं०] समुद्र से संबंध रखनेवाला। समुंदरी। सागर संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) फलित ज्योतिष का एक अंग जिसके अनुसार हथेली की रेखाओं, शरीर पर के तिलों तथा अन्यान्य लक्षणों आदि को देखकर मनुष्य के जीवन की घटनाएँ तथा शुभाशुभ फल बतलाए जाते हैं; यहाँ तक कि कुछ लोग केवल हाथ की रेखाओं को देखकर जन्मकुंडली तक बनाते हैं। (२) वह जो इस शास्त्र का ज्ञाता हो। हाथ की रेखाओं तथा शरीर के तिलों और लक्षणों आदि को देखकर जीवन की घटनाएँ और शुभाशुभ फल बतलानेवाला पंडित।

सामुहाँ†–अव्य० [सं० सम्मुख] सामने। सम्मुख। उ०—जनु घुँघची वह तिल कर मूहाँ। बिरहबान साँधो सामूहाँ।—जायसी।

संज्ञा पुं० आगे का भाग या अंश। सामना। (क०)

सामूहिक–वि० [सं०] समूह संबंधी। समूह का।

सामुहें†–अव्य० [सं० सम्मुख] सामने। सम्मुख।

सामृद्धय–संज्ञा पुं० [सं०] समृद्धि का भाव या धर्म्म। समृद्धिता।

सामोद्भव–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

सामोपनिषद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

साम्नी अनुष्टुप–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १४ वर्ण होते हैं।

साम्नी उष्णिक्–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १४ वर्ण होते हैं।

साम्नी गायत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १२ वर्ण होते हैं।

साम्नी जगती–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें २२ संपूर्ण वर्ण होते हैं।

साम्नी त्रिष्टुप–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें २२ संपूर्ण वर्ण होते हैं।

साम्नी पंक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें २० संपूर्ण वर्ण होते हैं।

साम्नी बृहती–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १८ संपूर्ण वर्ण होते हैं।

साम्मत्य–संज्ञा पुं० [सं०] सम्मति का भाव।

साम्मुखी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो सायंकाल तक रहती हो।

साम्मुख्य–संज्ञा पुं० [सं०] सम्मुख का भाव। सामना।

साम्य–संज्ञा पुं० [सं०] समान होने का भाव। तुल्यता। समानता। जैसे,—इन दोनों पुस्तकों में बहुत कुछ साम्य है।

साम्यता–संज्ञा स्त्री० दे० "साम्य"।

साम्यवाद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पाश्चात्य सामाजिक सिद्धांत जिसका आरंभ इधर सौ डेढ़ सौ वर्षों से हुआ है। इस सिद्धांत के प्रचारक समाज में बहुत अधिक साम्य स्थापित करना चाहते हैं और उसका वर्तमान वैषम्य दूर करना चाहते हैं। वे लोग चाहते हैं कि समाज से व्यक्तिगत प्रतियोगिता उठ जाय और भूमि तथा उत्पादन के समस्त साधनों पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार न रह जाय, बल्कि सारे समाज का अधिकार हो जाय। इस प्रकार सब लोगों में धन आदि का बराबर बराबर वितरण हो; न तो कोई बहुत गरीब रह जाय और न कोई बहुत अमीर रह जाय। समष्टि-वाद।

साम्यावस्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अवस्था जिसमें सत्व, रज और तम तीनों गुण बराबर हों, उनमें किसी प्रकार का विकार या वैषम्य न हो। प्रकृति।

साम्राज्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह राज्य जिसके अधीन बहुत से देश हों और जिसमें किसी एक सम्राट् का शासन हो। सार्वभौम राज्य। सलतनत। (२) आधिपत्य। पूर्ण अधिकार।

साम्राज्यलक्ष्मी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी जो साम्राज्य की अधिष्ठात्री मानी जाती है।

साम्राणिकर्दम–संज्ञा पुं० [सं०] गंधमार्जार या गंध बिलाव का वीर्य्य जो गंध द्रव्यों में माना जाता है। जवादि नामक कस्तूरी।

साम्राणिज–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा पारेवत।

साम्हने–अव्य० दे० "सामने"।

साम्हर–संज्ञा पुं० (१) दे० "शाकंबर"। (२) दे० "साँभर"।

सायं–वि० [सं०] संध्या संबंधी। सायंकालीन। संध्याकालीन। संज्ञा पुं० (१) दिन का अंतिम भाग। संध्या। शाम। (२) बाण। तीर।

सायंकाल–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सायंकालीन] दिन का अंतिम भाग। दिन और रात की संधि। संध्याकाल। संध्या। शाम।

सायंकालीन–वि० [सं०] संध्या के समय का। शाम का।

सायंगृह–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संध्या समय जहाँ पहुँचता हो, वहीं अपना घर बना लेता हो।

सायंतन–वि० [सं०] सायंकालीन। संध्या संबंधी। संध्या का।

सायंतनी–वि० दे० "सायंतन"।

सायंभव वि० [सं०] संध्या का। शाम का।

सायंसंध्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह संध्या (उपासना) जो सायंकाल में की जाती है। (२) सरस्वती देवी जिसकी उपासना संध्या के समय की जाती है।

सायंसंध्या देवता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती का एक नाम।

सायंस–संज्ञा स्त्री० [अं० साइन्स] (१) विज्ञान। शास्त्र। (२) वह शास्त्र जिसमें भौतिक तथा रासायनिक पदार्थों के विषय में विवेचन हो। वि० दे० "विज्ञान"।

साय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संध्या का समय। शाम। (२) बाण। तीर।

सायक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाण। तीर। शर। (२) खड्ग। उ०—धीर सिरोमनि वीर बड़े बिजई बिनई रघुनाथ सोहाए। लायकहीं भृगुनायक से धनु सायक सौंपि सुभाय सिधाए।—तुलसी। (३) एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक पाद में सगण, भगण, तगण, एक लघु और एक गुरु होता है। (IIS, SII, SSI, I, S) (४) भद्रमुंज। रामसर। (५) पाँच की संख्या। (कामदेव के पाँच बाणों के कारण)

सायकपुंखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शरपुंखा। सरफोका।

सायका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंजदह। लाई।

सायण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध आचार्य जिन्होंने चारों वेदों के बहुत उत्तम और प्रसिद्ध भाष्य लिखे हैं। इनके पिता का नाम मायण था। पहले ये राजमंत्री थे, पर पीछे से संन्यासी होकर शृंगेरी मठ के अधिष्ठाता हुए थे। उस समय इनका नाम विद्यारण्य स्वामी हुआ था। इनका समय ईसवी चौदहवीं शताब्दी है। इनके नाम से और भी बहुत से संस्कृत ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

सायणवाद संज्ञा पुं० [सं०] आचार्य्य सायण का मत या सिद्धांत।

सायणीय–वि० [सं०] सायण संबंधी। सायण का।

सायत–संज्ञा स्त्री० [अ० साअत] (१) एक घंटे या ढाई घड़ी का समय। (२) दंड। पल। लमहा। (३) शुभ मुहूर्त। अच्छा समय।

†अव्य० दे० "शायद"।

सायन–संज्ञा पुं० दे० "सायण"।

वि० [सं०] अयन युक्त। जिसमें अयन हो। (ग्रह आदि) उ०—(क) गोविंद ने मुहूर्त्तचिंतामणि के संक्रांति प्रकरण में सायन संक्रांति के ऊपर लिखा है।—सुधाकर द्विवेदी। (ख) भारतवर्ष के ज्योतिषाचार्यों ने जब देखा कि सायन दूसरे नक्षत्र में गया......।—ठाकुरप्रसाद।

संज्ञा पुं० सूर्य्य की एक प्रकार की गति।

सायब–संज्ञा पुं० [फ़ा० साहब] पति। स्वामी। (डिं०)

सायबान–संज्ञा पुं० [फ़ा० सायःबान] (१) मकान के सामने धूप से बचने के लिये लगाया हुआ ओसारा। बरामदा। (२) मकान के आगे की ओर बढ़ी या निकली हुई वह छाजन या छप्पर आदि जो छाया के लिये बनाई गई हो।

सायमाहुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आहुति जो संध्या के समय दी जाय।

सायर†–संज्ञा पुं० [सं० सागर] (१) सागर। समुद्र। उ०—(क) सायर उबट सिखिर की पाटी। चढ़ी पानि पाहन हिय फाटी। (ख) जँह लग चंदन मलय गिरि औ सायर सब नीर। सब मिलि आय बुझावहिं बुझै न आग सरीर।—जायसी। (२) ऊपरी भाग। शीर्ष।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह भूमि जिसकी आय पर कर नहीं लगता। (२) मुतफर्रकात। फुटकर।

† संज्ञा पुं० [देश०] (१) वह पटरा जिससे खेत की मिट्टी बराबर करते हैं। हेंगा। (२) एक देवता जो चौपायों का रक्षक माना जाता है।

सायल–संज्ञा पुं० [अ०] (१) सवाल करनेवाला। प्रश्नकर्ता। (२) माँगनेवाला। याचना करनेवाला। (३) भिखारी। फकीर। (४) दरख्वास्त करनेवाला। प्रार्थना करनेवाला। (५)

उम्मीदवार। आकांक्षी। (६) न्यायालय में फरियाद करने या किसी प्रकार की अरजी देनेवाला। प्रार्थी।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो सिलहट में होता है।

सायवस—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

साया संज्ञा पुं० [फा० सायः] (१) छाया। छाँह।

मुहा०—साये में रहना = शरण में रहना। संरक्षण में रहना।

(२) परछाईं।

मुहा०—साये से भागना = बहुत दूर रहना। बहुत बचना।

(३) जिन, भूत, प्रेत, परी आदि।

मुहा०—साये में आना = भूत, प्रेत आदि से प्रभावान्वित होना।

(४) असर। प्रभाव।

मुहा०—साया पड़ना = किसी की संगत का असर होना। साया डालना = (१) कृपा करना। (२) प्रभाव डालना।

संज्ञा पुं० [अं० शेमीज़] (१) घाँघरे की तरह का एक पहनावा जो प्रायः पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ पहनती हैं। (२) एक प्रकार का छोटा लहँगा जिसे स्त्रियाँ प्रायः महीन साड़ियों के नीचे पहनती हैं।

सायाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फा० सायः बंदी] मुसलमानों में विवाह के अवसर पर मंडप बनाने की क्रिया।

सायाह्न—संज्ञा पुं० [सं०] दिन का अंतिम भाग। संध्या का समय। शाम।

सायी संज्ञा पुं० [सं० सायिन] घोड़े का सवार। अश्वारोही।

सायुज्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक में मिल जाना। ऐसा मिलना कि कोई भेद न रह जाय। (२) पाँच प्रकार की मुक्तियों में से एक प्रकार की मुक्ति जिसमें जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। उ०—हरि मे कहत गरीयसि मेरी। भक्ति होइ सायुज्य चेरी।—गर्ग संहिता।

सायुज्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सायुज्य का भाव या धर्म्म। सायुज्यत्व।

सायुज्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] सायुज्य का भाव या धर्म्म। सायुज्यता।

सारंग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का मृग। (२) कोकिल। कोयल। उ०—बयन वर सारंग सम।—सूर। (३) श्येन। बाज़। (४) सूर्य्य। उ०—जलसुत दुखी दुखी है मधुकर द्वै पंछी दुख पावत। सूरदास सारँग केहि कारण सारंग कुलहि लजावत।—सूर। (५) सिंह। उ०—सारँग सम कटि हाथ माथ बिच सारँग राजत। सारँग लाये अंग देखि छबि सारँग लाजत। सारंग भूषण पीत पट सारँग पद सारंगधर। रघुनाथदास वंदन करत सीतापति रघुवंशवर।—विश्राम। (६) हंस पक्षी। (७) मयूर। मोर। (८) चातक। (९) हाथी। (१०) घोड़ा। अश्व। (११) छाता। छत्र। (१२) शंख। उ०—सारँग अधर सधर कर सारँग सारँग जाति सारँग मति भोरी। सारँग दसन बसन पुनि सारँग बसन पीतपट डोरी।—सूर। (१३) कमल। कंज। उ०—(क) सारंग वदन विलास विलोचन हरि सारंग जानि रति कीन्ही।—सूर। (ख) सारँग दृग मुख पाणि पद सारँग कटि वपुधार। सारँगधर रघुनाथ छबि सारँग मोहनहार।—विश्राम। (१४) स्वर्ण। सोना। उ०—सारँग से दृग लाल माल सारँग की सोहन। सारँग ज्यों तनु श्यामवदन लखि सारँग मोहत।—विश्राम। (१५) आभूषण। गहना। (१६) सर। तालाब। उ०—मानहु उमँगि चल्यो चाहत है सारँग सुधा भरे।—सूर। (१७) भ्रमर। भौंरा। उ०—नचत हैं सारंग सुंदर करत शब्द अनेक।—सूर। (१८) एक प्रकार की मधुमक्खी। (१९) विष्णु का धनुष। उ०—(क) एकहू बाण आयो न हरि के निकट तब गह्यो धनुष सारंगधारी।—सूर। (ख) सबै परथमा जोबन सोहैं। नयन बान औ सारँग मोहैं।—जायसी। (२०) कर्पूर। कपूर। उ०—सारँग लाये अंग देखि छबि सारँग लाजत।—विश्राम। (२१) लवा पक्षी। (२२) श्रीकृष्ण का एक नाम। उ०—गिरिधर ब्रजधर मुरलीधर धरनीधर पीतांबरधर मुकुटधर गोपधर उरगधर शंखधर सारंगधर चक्रधर गदाधर रस धरैं अधर सुधाधर।—सूर। (२३) चंद्रमा। शशि। उ०—नासहि सारँग सुत सोभित है ठाढ़ी सारंग सँभारि।—सूर। (२४) समुद्र। सागर। (२५) जल। पानी। (२६) बाण। शर। तीर। (२७) दीपक। दीया। (२८) पपीहा। (२९) शंभु। शिव। उ०—जनु पिनाक की आश लागि शशि सारँग शरन बचे।—सूर। (३०) सुगंधित द्रव्य। (३१) सर्प। साँप। उ०—सारँग चरन पीठ पर सारंग कनक खंभ अहि मनहुँ चढोरी।—सूर। (३२) चंदन। (३३) भूमि। जमीन। (३४) केश। बाल। अलक। उ०—शीश गंग सारँग भस्म सर्वांग लगावत।—विश्राम। (३५) दीप्ति। ज्योति। चमक। (३६) शोभा। सुंदरता। (३७) स्त्री। नारी। उ०—सूरदास सारँग केहि कारण सारँग कुलहिं लजावत।—सूर। (३८) रात्रि। रात। विभावरी। (३९) दिन। उ०—सारँग सुंदर को कहत रात दिवस बड़ भाग।—नंददास। (४०) तलवार। खड्ग। (डिं०) (४१) कपोत। कबूतर। (४२) एक प्रकार का छंद जिसमें चार तगण होते हैं। इसे मैनावली भी कहते हैं। (४३) छप्पय के २६ वें भेद का नाम।

विशेष—इसमें ४५ गुरु, ६२ लघु कुल १०७ वर्ण या १५२ मात्राएँ अथवा ४५ गुरु, ५८ लघु, कुल १०३ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं।

(४४) मृग। हिरन। उ०—(क) श्रवण सुयश सारँग नाद

विधि चातक विधि मुख नाम।—सूर। (ख) भरि थार आरति सजहिं सब सारँग सायकलोचना।—तुलसी। (४५) मेघ। बादल। घन। उ०—(क) कारी घटा देखि अँधियारी सारँग शब्द न भावै।—सूर। (ख) सारँग ज्यों तनु श्याम बदन लखि सारँग मोहत।—विश्राम। (४६) मोती। (डिं०) (४७) कुच। स्तन। (४८) हाथ। कर। (४९) वायस। कौआ। (५०) ग्रह। नक्षत्र। (५१) खंजन पक्षी। सोनचिड़ी। (५२) हल। (५३) मेंढक। (५४) गगन। आकाश। (५५) पक्षी। चिड़िया। (५६) वस्त्र। कपड़ा। (५७) सारँगी नामक वाद्य यंत्र। (५८) ईश्वर। भगवान। (५९) काजल। नयनांजन। (६०) कामदेव। मन्मथ। (६१) विद्युत्। बिजली। (६२) पुष्प। फूल। (६३) संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। शास्त्रों में यह मेघ राग का सहचर कहा गया है; पर कुछ लोग इसे संकर राग मानते और नट मल्लार तथा देवगिरि के संयोग से बना हुआ बतलाते हैं। इसकी स्वर-लिपि इस प्रकार कही गई है—स रे ग म प ध नि स। स नि ध प म ग रे स। स रे ग म प प ध प प म ग म प म ग म म ग रे स। स रे ग रे स।

वि० (१) रँगा हुआ। रंजित। रंगीन। उ०—सारँग दशन वसन पुनि सारँग वसन पीतपट डोरी।—सूर। (२) सुंदर। सुहावना। उ०—सारँग बचन कहत सारँग सों सारँग रिपु है राखति झीनी।—सूर। (३) सरस। उ०—सारँग नैन बैन वर सारँग सारँग वदन कहै छवि कोरी।—सूर।

सारंगचर-संज्ञा पुं० [सं०] काँच। शीशा।

सारंग नट-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में सारंग और नट के संयोग से बना हुआ एक प्रकार का संकर राग।

सारंगनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] काशी के समीप स्थित एक स्थान जो सारनाथ कहलाता है। यही प्राचीन मृगदाव है। यह बौद्धों, जैनियों और हिंदुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है।

सारंगपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] सारंग नामक धनुष धारण करनेवाले, विष्णु।

सारंगपानि-संज्ञा पुं० दे० "सारंगपाणि"। उ०—सुमिरत श्री सारंगपानि छन मैं सब सोचु गयो। चले मुदित कौसिक कोसलपुर सगुन निसाधु दयो।—तुलसी।

सारंगलोचना-वि० स्त्री० [सं०] जिसकी आँखें हिरन की सी हों। मृगनयनी।

सारंगा-संज्ञा स्त्री० [सं० सारंग] (१) एक प्रकार की छोटी नाव जो एक ही लकड़ी की बनती है। (२) एक प्रकार की बड़ी नाव जिसमें ६००० मन माल लादा जा सकता है। (३) एक रागिनी का नाम जो कुछ लोगों के मत से मेघ राग की पत्नी है।

सारंगिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो पक्षियों को पकड़कर अपना निर्वाह करता हो। चिड़ीमार। बहेलिया। (२) एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक पद में नगण, यगण और सगण (न य स) होते हैं। कवि भिखारीदास ने इसे मात्रिक छंद माना है।

सारंगिका-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "सारंगिक"। (२) दे० "सारंगी"।

सारंगिया-संज्ञा पुं० [हिं० सारंगी+इया (प्रत्य०)] सारंगी बजानेवाला। साजिंदा।

सारंगी-संज्ञा स्त्री० [सं० सारंग] एक प्रकार का बहुत प्रसिद्ध बाजा जिसका प्रचार इस देश में बहुत प्राचीन काल से है। यह काठ का बना हुआ होता है और इसकी लंबाई प्रायः डेढ़ हाथ होती है। इसका सामने का भाग, जो परदा कहलाता है, पाँच छः अंगुल चौड़ा होता है; और नीचे का सिरा अपेक्षाकृत कुछ अधिक चौड़ा और मोटा होता है। इसमें ऊपर की ओर प्रायः ४ या ५ खूँटियाँ होती हैं जिन्हें कान कहते हैं। उन्हीं खूँटियों से लगे हुए लोहे और पीतल के कई तार होते हैं जो बाजे की पूरी लंबाई में होते हुए नीचे की ओर बँधे रहते हैं। इसे बजाने के लिये लकड़ी का एक लंबा और दोनों ओर कुछ झुका हुआ एक टुकड़ा होता है जिसमें एक सिरे से दूसरे सिरे तक घोड़े की दुम के बाल बँधे होते हैं। इसे कमानी कहते हैं। बजाने के समय यह कमानी दाहिने हाथ में ले ली जाती है; और उसमें लगे हुए घोड़े के बाल से बाजे के तार रेते जाते हैं। उधर बाएँ हाथ की उँगलियाँ तारों पर रहती हैं जो बजाने के लिये स्वरों के अनुसार ऊपर नीचे और एक तार से दूसरे तार पर आती जाती रहती हैं। इस बाजे का स्वर बहुत ही मधुर और प्रिय होता है; इसलिये नाचने गाने का पेशा करनेवाले लोग अपने गाने के साथ प्रायः इसी का व्यवहार करते हैं। उ०—विविध पखावज आवज संचित बिच बिच मधुर उपंग। सुर सहनाई सरस सारँगी उपजत तान तरंग।—सूर।

सारंड-संज्ञा पुं० [सं०] साँप का अंडा।

सार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ में का मूल, मुख्य, काम का या असली भाग। तत्व। सत्त। (२) कथन आदि से निकलनेवाला मुख्य अभिप्राय। निष्कर्ष। (३) किसी पदार्थ में से निकला हुआ निर्यास या अर्क आदि। रस। (४) चरक के अनुसार शरीर के अंतर्गत आठ स्थिर पदार्थ जिनके नाम इस प्रकार हैं—त्वक्, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और सत्व (मन)। (५) जल। पानी। (६) गूदा।

मग़ज़। (७) वह भूमि जिसमें दो फसलें होती हों। (८) गोशाला। बाड़ा। (९) स्वाद। (१०) दूहने के उपरांत तुरंत औंटाया हुआ दूध। (११) औंटाए हुए दूध पर की साढ़ी। मलाई। (१२) लकड़ी का हीर। (१३) परिणाम। फल। नतीजा। (१४) धन। दौलत। (१५) नवनीत। मक्खन। (१६) अमृत। (१७) लोहा। (१८) वन। जंगल। (१९) बल। शक्ति। ताकत। (२०) मज्जा। (२१) वज्र क्षार। (२२) वायु। हवा। (२३) रोग। बीमारी। (२४) जूआ खेलने का पासा। (२५) अनार का पेड़। (२६) पियाल वृक्ष। चिरौंजी का पेड़। (२७) वंग। (२८) मुद्ग। मूँग। (२९) क्वाथ। काढ़ा। (३०) नीली वृक्ष। नील का पौधा। (३१) साल सार। (३२) पना। पतला शरबत। (३३) कपूर। (३४) तलवार। (डिं०) (३५) द्रव्य। (डिं०) (३६) हाड़। अस्थि। (डिं०) (३७) एक प्रकार का मात्रिक छंद जिसमें २८ मात्राएँ होती हैं और सोलहवीं मात्रा पर विराम होता है। इसके अंत में दो गुरु होते हैं। प्रभाती नामक गीत इसी छंद में होता है। (३८) एक प्रकार का वर्ण वृत्त जिसमें एक गुरु और एक लघु होता है। इसे "ग्वाल" और "शानु" भी कहते हैं। वि० दे० "ग्वाल"। (३९) एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें उत्तरोत्तर वस्तुओं का उत्कर्ष या अपकर्ष वर्णित होता है। इसे "उदार" भी कहते हैं। उ०—(क) सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब ते अधिक मनुज मोहि भाये। तिन महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन महँ निगम नीति अनुसारी। तिन महँ पुनि विरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहु ते अति प्रिय विज्ञानी। तिनतें मोहि अति प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। (ख) हे करतार बिनै सुनो 'दास' की लोकनि को अवतार कर्यो जनि। लोकनि को अवतार कर्यो तो मनुष्यन को तो सँवार कर्यो जनि। मानुष हू को सँवार कर्यो तो तिन्हें बिच प्रेम पसार कर्यो जनि। प्रेम पसार करयो तो दयानिधि केहूँ बियोग बिचार करयो जनि।

वि० (१) उत्तम। श्रेष्ठ। (२) दृढ़। मजबूत। (३) न्याय्य।

✻ संज्ञा पुं० [सं० सारिका] सारिका। मैना। उ०—गहबर हिय शुक सों कहँ सारो।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० सारना] (१) पालन। पोषण। रक्षा। उ०—जड़ पंच मिलै जिहिं देह करी करनी देखु धौं धरनीधर की। जन को कहु क्यों करिहैं न सँभार जो सार करै सचराचर की।—तुलसी। (२) शय्या। पलंग। उ०—रची सार दोनों इक पासा। होय जुग जुग आवहिं कैलासा।—जायसी।

† संज्ञा पुं० [सं० श्याल, हिं० साला] पत्नी का भाई। साला।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाली के रूप में किया जाता है।

सारखदिर—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गंध खदिर। बबुरी।

सारखा†—वि० [सं० सदृश, हिं० सरीखा] सदृश। समान। तुल्य।

सारगंध—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन। संदल।

सारगंधि—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

सारगर्भित—वि० [सं०] जिसमें तत्व भरा हो। सार-युक्त। तत्व-पूर्ण। जैसे,—सारगर्भित पुस्तक, सारगर्भित व्याख्यान।

सारघ—संज्ञा पुं० [सं०] वह मधु जो मधुमक्खी तरह तरह के फूलों से संग्रह करती है। वैद्यक में यह लघु, रूक्ष, शीतल, कमल और अर्श रोग का नाशक, दीपन, बलकारक, अतिसार, नेत्र रोग तथा घाव में हितकर कहा गया है।

सारजंट—संज्ञा पुं० [अं०] पुलिस के सिपाही का जमादार; विशेषतः गोरा या युरेशियन जमादार।

सारज—संज्ञा पुं० [सं०] नवनीत। मक्खन।

सारजासव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आसव जो धान, फल, फूल, मूल, सार, टहनी, पत्ते, छाल और चीनी इन नौ चीजों से बनता है। वैद्यक में यह आसव मन, शरीर और अग्नि को बल देनेवाला, अनिद्रा, शोक और अरुचि का नाश करनेवाला तथा आनंदवर्द्धक बतलाया गया है।

सारटिफिकट—संज्ञा पुं० [अं०] प्रशंसापत्र। सनद। सर्टिफिकेट।

सारण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का गंध द्रव्य। (२) आम्रातक वृक्ष। अमड़ा। (३) अतिसार। दस्त की बीमारी। (४) भद्रबला। (५) पारा आदि रसों का संस्कार। दोष-शुद्धि। (६) रावण के एक मंत्री का नाम जो रामचंद्र की सेना में उनका भेद लेने गया था। (७) आँवला। (८) गंधप्रसारिणी। (९) नवनीत। मक्खन। (१०) गंध। महक।

सारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पारद आदि रसों का एक प्रकार का संस्कार। सारण।

सारणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंधप्रसारिणी। (२) पुनर्नवा। गदहपूरना। (३) छोटी नदी।

सारणिक—संज्ञा पुं० [सं०] पथिक। राहगीर। बटोही।

सारणिकघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] पथिकों का विनाश करनेवाला, डाकू।

सारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंधप्रसारिणी। (२) छोटी नदी। (३) दे० "सारिणी"।

सारणेश—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

सारतंडुल—संज्ञा पुं० [सं०] चावल।

सारतरु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) केले का पेड़। (२) खैर का पेड़।

सारता†—संज्ञा स्त्री० [सं०] सार का भाव या धर्म। सारत्व।

सारतैल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार अशोक, अगर,

सरल, देवदारु आदि का तेल जिसका व्यवहार क्षुद्र रोगों में होता है।

सारथि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथादि का चलानेवाला। सूत। रथवागर। (२) समुद्र। सागर। उ०—आपने बाण को काटि ध्वज रुक्म के असुर औ सारथी तुरत मारयो।—सूर।

सारथित्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारथि का कार्य। (२) सारथि का भाव या धर्म्म। (३) सारथि का पद।

सारथ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ आदि का चलाना। गाड़ी आदि हाँकना। (२) सवारी। (३) सहायता।

सारद॥-संज्ञा स्त्री० [सं० शारदा] सरस्वती। शारदा। उ०—सुक से मुनी सारद सेवकता चिरजीवन लोमस ते अधिकाने। ऐसे भए तो कहा तुलसी जौ पै राजिवलोचन राम न जाने।—तुलसी।

वि० शारद। शरद संबंधी। उ०—सोहनि धोती सेत में, कनक बरन तन बाल। सारद वारद बीजुरी, भा रद कीजत लाल।—बिहारी।

संज्ञा पुं० [सं० शरद] शरद ऋतु।

सारदा-संज्ञा स्त्री० दे० "शारदा"।

संज्ञा पुं० [सं० शरद ?] स्थल कमल।

वि० स्त्री० [सं०] सार देनेवाली। जो सार दे।

सारदातीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ।

सारदारु-संज्ञा पुं० [सं०] वह लकड़ी जिसमें सार भाग अधिक हो।

सारदासुंदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

सारदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जल पीपल।

वि० दे० "शारदीय"।

सारदूल-संज्ञा पुं० दे० "शार्दूल"।

सारद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खैर का पेड़। (२) वह वृक्ष जिसकी लकड़ी में सार भाग अधिक हो।

सारधाता-संज्ञा पुं० [सं० सारधातृ] वह जो ज्ञान उत्पन्न करता हो। बोध करानेवाला।

सारधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम धान। बढ़िया चावल।

सारधू-संज्ञा स्त्री० [डिं०] पुत्री। बेटी। कन्या।

सारना-क्रि० स० [हिं० सरना का सक०] (१) पूर्ण करना। समाप्त करना। संपूर्ण रूप से करना। उ०—धनि हनुमंत सुग्रीव कहत है रावण को दल मार्‍यो। सूर सुनत रघुनाथ भयो सुख काज आपनो सारयो।—सूर। (२) साधना। बनाना। दुरुस्त करना। (३) सुशोभित करना। सुंदर बनाना। (४) देख रेख करना। रक्षा करना। सँभालना। (५) आँखों में अंजन आदि लगाना।

सारनाथ-संज्ञा पुं० [सं० सारंगनाथ] बनारस से उत्तर पश्चिम चार मील पर एक प्रसिद्ध स्थान जो हिंदुओं, बौद्धों और जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ है। यही प्राचीन मृगदाव है जहाँ से भगवान् बुद्ध ने अपना उपदेश आरंभ (धर्म्म-चक्र प्रवर्त्तन) किया था। यहाँ खुदाई होने पर कई बौद्ध स्तूप, बौद्ध मंदिरों का ध्वंसावशेष तथा कितनी ही हिंदू, बौद्ध और जैन मूर्त्तियाँ पाई गई हैं। इसके अतिरिक्त अशोक का एक स्तंभ भी यहाँ पाया गया है।

सारपद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पक्षी जो चरक के अनुसार विष्किर जाति का है। (२) वह पत्ता जिसमें सार अर्थात् खाद हो।

सारपाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विषैला फल जिसका उल्लेख सुश्रुत ने किया है।

सारपाद-संज्ञा पुं० [सं०] धन्वंग वृक्ष। धामिन।

सारफल-संज्ञा पुं० [सं०] जँबीरी नीबू।

सारबंधका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी।

सारभांड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यापार की बहुमूल्य वस्तु। (२) खजाना। (३) कस्तूरी।

सारभाटा-संज्ञा पुं० [हिं० ज्वार का अनु० + भाटा] ज्वारभाटा का उलटा। समुद्र की वह बाढ़ जिसमें पानी पहले बढ़कर समुद्र के तट से आगे निकल जाता है और फिर कुछ देर बाद पीछे लौटता है।

सारभुक्-संज्ञा पुं० [सं०] लोहे को खानेवाली, अग्नि। आग।

सारभूत-वि० [सं०] (१) सारस्वरूप। (२) श्रेष्ठ। सर्वोत्तम।

सारभृत-वि० [सं०] सार ग्रहण करनेवाला। सारग्राही।

सारमंडूक-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा जो मेढक की तरह का होता है।

सारमहत्-वि० [सं०] अत्यंत मूल्यवान। बहुत कीमती।

सारमिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रुति। वेद।

सारमूषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली। घघर बेल। बंदाल।

सारमेय-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सारमेयी] (१) सरमा की संतान। (२) कुत्ता। (३) सफलक के पुत्र और अक्रूर के एक भाई का नाम।

सारमेयादन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ते का भोजन। (२) भागवत के अनुसार एक नरक का नाम।

सारलोह-संज्ञा पुं० [सं०] लोहसार। इस्पात। लोहा।

विशेष—वैद्यक में यह ग्रहणी, अतिसार, अर्द्धांग, वात, परिणाम-शूल, सर्दी, पीनस, पित्त और श्वास का नाशक बताया गया है।

सारल्य-संज्ञा पुं० [सं०] सरल होने का भाव। सरलता।

सारवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छंद जिसमें तीन भगण और एक गुरु होता है।

सारवत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सार ग्रहण करने का भाव। सारग्राहिता।

सारवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] वे वृक्ष या वनस्पतियाँ आदि जिनमें

से किसी प्रकार का दूध या सफेद तरल पदार्थ निकलता हो। क्षीर-वृक्ष।

सारवर्जित-वि० [सं०] जिसमें कुछ भी सार न हो। साररहित। निःसार।

सारवाला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली घास जो तर जगहों में होती है। यह प्रायः बारह वर्ष तक सुरक्षित रहती है। मुलायम होने पर यह पशुओं को खिलाई जाती है।

सारवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] धामिन। धन्वंग वृक्ष।

सारशल्य-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद खैर का पेड़। श्वेत खदिर।

सारस-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सारसी] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध सुंदर पक्षी जो एशिया, अफ्रिका, आस्ट्रेलिया और युरोप के उत्तरी भाग में पाया जाता है। इसकी लंबाई पूँछ के आखिरी सिरे तक चार फुट होती है। पर भूरे होते हैं; सिर का ऊपरी भाग लाल और पैर काले होते हैं। यह एक स्थान पर नहीं रहता, बराबर घूमा करता है। किसानों के नए बीज बोने पर यह वहाँ पहुँच जाता है और बीजों को चट कर जाता है। यह मेंढक, घोंघा आदि भी खाता है। यह प्रायः घास फूस के ढेर में घोंसला बनाकर या खँडहरों में रहता है। यह अपने बच्चों का लालन पालन बड़े यत्न से करता है। कहीं कहीं लोग इसे पालते हैं। बाग बगीचों में छोड़ देने पर यह कीड़े-मकोड़ों को खाकर उनसे पेड़ पौधों की रक्षा करता है। कुछ लोग भ्रमवश हंस को ही सारस मानते हैं। वैद्यक में इसके मांस का गुण मधुर, अम्ल, कषाय तथा महातिसार, पित्त, ग्रहणी और अर्श रोगनाशक बताया गया है।

पर्य्या०—पुष्कराह्व। लक्ष्मण। सरसीक। सरोद्भव। रसिक। कामी।

(२) हंस। (३) गरुड़ पुत्र। (४) चंद्रमा। (५) स्त्रियों का एक प्रकार का कटिभूषण। (६) झील का जल। नदी का जल पहाड़ आदि के कारण रुक कर जहाँ जमा होता है, उसे सरस और उसके जल को सारस जल कहते हैं। ऐसा जल बलकारी, प्यास बुझानेवाला, लघु, रुचिकारक और मल मूत्र रोकनेवाला माना गया है। (७) कमल। जलज। उ०—(क) सारस रस अचवन को मानो तृपित मधुप जुग जोर। पान करत कहुँ तृप्ति न मानत पलक न देत अकोर।—सूर। (ख) मंजु अंजन सहित जलकन चुवत लोचन चारु। स्याम सारस मग मनो ससि श्रवत सुधा सिंगारु।—तुलसी। (८) छप्पय का ३७ वाँ भेद। इसमें ३४ गुरु, ८४ लघु, कुल ११८ वर्ण या १५२ मात्राएँ अथवा ३४ गुरु, ८० लघु कुल ११४ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं।

सारसक-संज्ञा पुं० [सं०] सारस।

सारसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्रियों का कमर में पहनने का मेखला नामक आभूषण। चंद्रहार। (२) तलवार की पेटी। कमरबंद।

सारसा-संज्ञा पुं० दे० "सालसा"।

सारसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आर्य्या छंद का २३वाँ भेद जिसमें ५ गुरु और ४८ लघु मात्राएँ होती हैं। (२) सारस पक्षी की मादा।

सारसुता-संज्ञा स्त्री० [सं० सूरसुता] यमुना। उ०—निरखति बैठि नितंबिनि पिय सँग सारसुता की ओर।—सूर।

सारसुती†-संज्ञा स्त्री० दे० "सरस्वती"।

सारसैंधव-संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक।

सारस्य-वि० [सं०] जिसमें बहुत अधिक रस हो। बहुत रसवाला।

संज्ञा पुं० रसदार होने का भाव। रसीलापन।

सारस्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिल्ली के उत्तर पश्चिम का वह भाग जो सरस्वती नदी के तट पर है और जिसमें पंजाब का कुछ भाग सम्मिलित है। प्राचीन आर्य्य पहले यहीं आकर बसे थे और इसे बहुत पवित्र समझते थे। (२) इस देश के निवासी ब्राह्मण। (३) सरस्वती नदी के पुत्र एक मुनि का नाम। (४) एक प्रसिद्ध व्याकरण। (५) बिल्वदंड। (६) वैद्यक में एक प्रकार का चूर्ण जिसके सेवन से उन्माद, वायु-जनित विकार तथा प्रमेह आदि रोगों का दूर होना माना जाता है। (७) वैद्यक में एक प्रकार का औषधयुक्त घृत जो पुष्टिकारक माना जाता है।

वि० (१) सरस्वती संबंधी। सरस्वती का। (२) सारस्वत देश का।

सारस्वत व्रत-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का व्रत जो सरस्वती देवता के उद्देश्य से किया जाता है। कहते हैं कि इस व्रत का अनुष्ठान करने से मनुष्य बहुत बड़ा पंडित, भाग्यवान् और कुशल हो जाता है और उसे पत्नी तथा मित्रों आदि का प्रेम प्राप्त होता है। यह व्रत बराबर प्रति रविवार या पंचमी को किया जाता है और इसमें किसी अच्छे ब्राह्मण की पूजा करके उसे भोजन कराया जाता है।

सारस्वतीय-वि० [सं०] सरस्वती संबंधी। सरस्वती का।

सारस्वतोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] वह उत्सव जिसमें सरस्वती देवी का पूजन किया जाता है।

सारस्वत्य-वि० [सं०] सरस्वती संबंधी। सरस्वती का।

सारांभस-संज्ञा पुं० [सं०] नींबू का रस।

सारांश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खुलासा। संक्षेप। सार। निचोड़। (२) तात्पर्य्य। मतलब। अभिप्राय। (३) नतीजा। परिणाम। (४) उपसंहार। परिशिष्ट।

सारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काली निसोथ । कृष्णत्रिवृत्ता । (२) दूब । दूर्वा । (३) शातला । (४) थूहर । (५) केला । (६) तालिसपत्र ।
संज्ञा पुं० एक प्रकार का अलंकार जिसमें एक वस्तु दूसरी से बढ़कर कही जाती है । जैसे,—ऊखहु ते मधुर पियूषहु ते मधुर प्यारी तेरे ओठ मधुरता को सागर हैं ।
† संज्ञा पुं० दे० "साला" ।
वि० [स्त्री० सारी] समस्त । संपूर्ण । समूचा । पूरा ।

साराम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जँबीरी नींबू । (२) धामिन ।

साराल-संज्ञा पुं० [सं०] तिल ।

सारावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छंद जिसे सारावली भी कहते हैं ।

सारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पासा या चौपड़ खेलनेवाला । (२) जूआ खेलने का पासा । उ०—ढारि पासा साधु संगति केरि रसना सारि । दाँव अब के परयो पूरो कुमति पिछली हारि ।—सूर । (३) गोटी ।

सारिक-संज्ञा पुं० दे० "सारिका" ।

सारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैना नामक पक्षी । वि० दे० "मैना" । उ०—बन उपवन फल फूल सुभग सर शुक सारिका हंस पारावत ।—सूर ।

सारिकामुख-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा ।

सारिखा॰†-वि० दे० "सरीखा" ।

सारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहदेई । सहदेवी । महाबला । पीतपुष्पा । (२) कपास । (३) धमासा । दुरालभा । कपिल शिंशपा । काला सीसो । (४) गंध प्रसारिणी । (५) रक्त पुनर्नवा ।
संज्ञा स्त्री० दे० "सारणी" ।

सारीफलक-संज्ञा पुं० [सं०] चौपड़ की गोटी या पासा ।

सारिव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान ।

सारिवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनंतमूल ।
पर्य्या०—शारदा । गोपी । गोपकन्या । गोपवल्ली । प्रतानिका लता । आस्फोता । काष्ठ शारिवा । गोपा । उत्पल सारिवा । अनंता । शारिवा । श्यामा ।
(२) काला अनंतमूल ।
पर्य्या०—कृष्णमूली । कृष्णा । चंदन सारिवा । भद्रा । चंदन-गोपा । चंदना । कृष्णवल्ली ।

सारिवाद्वय-संज्ञा पुं० [सं०] अनंतमूल और श्यामा लता इन दोनों का समूह ।

सारिष्ठ-वि० [सं०] (१) सब से सुंदर । (२) सब से श्रेष्ठ ।

सारिसृक्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि जो ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के द्रष्टा थे ।

सारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सारिका पक्षी । मैना । (२) पासा । गोटी । (३) सातला । सप्तला । थूहर ।
संज्ञा स्त्री० दे० "साड़ी" ।
संज्ञा पुं० [सं० सारिन्] अनुकरण करनेवाला । जो अनुसरण करे ।

सारु॰†-संज्ञा पुं० दे० "सार" ।

सारूप-संज्ञा पुं० [सं०] समान रूप होने का भाव । सरूपता ।

सारूप्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाँच प्रकार की मुक्तियों में से एक प्रकार की मुक्ति जिसमें उपासक अपने उपास्य देव के रूप में रहता है और अंत में उसी उपास्य देवता का रूप प्राप्त कर लेता है । (२) समान रूप होने का भाव । एकरूपता । सरूपता ।

सारूप्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सारूप्य का भाव या धर्म्म ।

सारो†-संज्ञा पुं० [सं० शालि] एक प्रकार का धान जो अगहन मास में तैयार हो जाता है ।
॰†संज्ञा स्त्री० दे० "सारिका" ।

सारोदक-संज्ञा पुं० [सं०] अनंतमूल का रस ।

सारोपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में एक प्रकार की लक्षणा जो उस स्थान पर होती है जहाँ एक पदार्थ में दूसरे का आरोप होने पर कुछ विशिष्ट अर्थ निकलता है । जैसे,—गरमी के दिनों में पानी ही जान है । यहाँ "पानी" में "जान" का आरोप किया गया है; पर अभिप्राय यह निकलता है कि यदि थोड़ी देर भी पानी न मिले तो जान निकलने लगती है ।

सारोष्ट्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष ।

सार्गिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सृष्टि करने में समर्थ हो ।

सार्जंट-संज्ञा पुं० दे० "सर्जंट" ।

सार्ज-संज्ञा पुं० [सं०] राल । धूना ।

सार्जनाद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

सार्टिफिकेट-संज्ञा पुं० दे० "सर्टिफिकेट" ।

सार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंतुओं का समूह । (२) वणिकों का समूह । (३) समूह । गरोह । झुंड ।
वि० अर्थ सहित । जिसका कुछ अर्थ हो ।

सार्थक-वि० [सं०] (१) अर्थ सहित । (२) सफल । सिद्ध । पूर्ण मनोरथ । (३) उपकारी । गुणकारी । मुफीद ।

सार्थकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सार्थक होने का भाव । (२) सफलता । सिद्धि ।

सार्थपति-संज्ञा पुं० [सं०] व्यापार करनेवाला । वणिक । रोजगारी ।

सार्थवत्-वि० [सं०] (१) जिसका कुछ अर्थ हो । अर्थ युक्त । (२) यथार्थ । ठीक ।

सार्थिक-वि० [सं०] (१) सार्थक । (२) सफल ।

सार्थी—संज्ञा पुं० [सं० सारथिन] रथ हाँकनेवाला । कोचवान ।

सार्दूल—संज्ञा पुं० [सं० शार्दूल] सिंह । केसरी । वि० दे० "शार्दूल" ।

सार्द्ध—वि० [सं०] (१) जिसमें पूरे के अतिरिक्त आधा भी मिला या लगा हो । अर्ध युक्त । (२) सहित ।

सार्द्र—वि० [सं०] भीगा हुआ । आर्द्र । गीला ।

सार्प्य—संज्ञा पुं० [सं०] अश्लेषा नक्षत्र ।

वि० सर्प संबंधी । साँप का ।

सार्व—संज्ञा पुं० [सं० सार्व] (१) बुद्ध । (२) जिन ।

वि० सब से संबंध रखनेवाला । जैसे,—सार्वजनिक, सार्वकालीन, सार्व राष्ट्रीय ।

सार्वकालिक वि० [सं०] जो सब कालों में होता हो । सब समयों का ।

सार्वगुण—वि० [सं०] सर्वगुण संबंधी ।

संज्ञा पुं० खारी नमक ।

सार्वजनिक—वि० [सं०] सब लोगों से संबंध रखनेवाला । सर्व साधारण संबंधी ।

सार्वजनीन—वि० [सं०] सब लोगों से संबंध रखनेवाला । सब लोगों का ।

सार्वजन्य—वि० [सं०] (१) सब लोगों से संबंध रखनेवाला । (२) जिससे सब लोगों को लाभ हो । लोक हितकर ।

सार्वज्ञ्य—संज्ञा पुं० [सं०] सर्वज्ञ होने का भाव । सर्वज्ञता ।

सार्वत्रिक—वि० [सं०] सब स्थानों में होनेवाला । सर्वत्रव्यापी ।

सार्वदेशिक—वि० [सं०] संपूर्ण देशों का । सर्वदेश संबंधी ।

सार्वभौतिक—वि० [सं०] सर्व भूत संबंधी । सब भूतों से संबंध रखनेवाला ।

सार्वभौम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समस्त भूमि का राजा । चक्रवर्ती राजा । (२) पुरुवंशी अहंयाति का पुत्र (३) भागवत के अनुसार विदूरथ के पुत्र का नाम । (४) हाथी ।

वि० समस्त भूमि संबंधी । संपूर्ण भूमि का । जैसे,—सार्वभौम राजा ।

सार्वरुह—संज्ञा पुं० [सं०] शोरा । मृत्तिकासार । सूर्यक्षार ।

सार्षप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरसों । (२) सरसों का तेल । (३) सरसों का साग ।

वि० सरसों संबंधी । सरसों का ।

सार्ष्टि—संज्ञा पुं० दे० "सार्ष्टि" ।

सार्ष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की मुक्तियों में से एक प्रकार की मुक्ति ।

सालंक—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में तीन प्रकार के रागों में से एक प्रकार का राग । वह राग जो बिलकुल शुद्ध हो, जिसमें किसी और राग का मेल न हो; पर फिर भी किसी राग का आभास जान पड़ता हो ।

साल—संज्ञा पुं० स्त्री० [हिं० सलना या सालना] (१) सालने या सलने की क्रिया या भाव । (२) छेद । सूराख । (३) चारपाई के पावों में किया हुआ वह चौकोर छेद जिसमें पाटी आदि बैठाई जाती है । (४) घाव । जख्म । (५) दुःख । पीड़ा । वेदना ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) जड़ । मूल । (२) कूचबंदों की परिभाषा में खस की जड़ जिससे कूच बनती है । (३) राल । धूना । (४) वृक्ष । पेड़ । (५) प्राकार । परकोटा । (६) दीवार । (७) एक प्रकार की मछली जो भारत, लंका और चीन में पाई जाती है । (८) सियार । (९) कोट । किला । (डिं०)

संज्ञा पुं० [फा०] वर्ष । बरस । बारह महीने ।

संज्ञा पुं० दे० "शालि" ।

संज्ञा स्त्री० दे० "शाला" ।

संज्ञा पुं० दे० "शाल" (वृक्ष) ।

साल अमोनिया—संज्ञा पुं० [अं०] नौसादर ।

सालई†—संज्ञा स्त्री० दे० "सलई" ।

सालक—वि० [हिं० सालना + क (प्रत्य०)] सालनेवाला । दुःख देनेवाला ।

सालकि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

सालगा†—संज्ञा पुं० दे० "सलई" ।

सालगिरह—संज्ञा स्त्री० [फा०] बरस गाँठ । जन्म दिन ।

सालग्राम—संज्ञा पुं० दे० "शालग्राम" ।

सालग्रामी—संज्ञा स्त्री० [सं० शालग्राम] गंडक नदी । इसका यह नाम इसलिये पड़ा कि उसमें शालग्राम की शिलाएँ पाई जाती हैं ।

सालज—संज्ञा पुं० [सं०] सर्जरस । राल । धूना ।

सालजक—संज्ञा पुं० दे० "सालज" ।

सालद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] सागौन ।

सालन—संज्ञा पुं० [सं० सलवण] मांस, मछली या साग सब्जी की मसालेदार तरकारी ।

संज्ञा पुं० [सं०] सर्जरस । धूना । राल ।

सालना—क्रि० अ० [सं० शल] (१) दुःख देना । खटकना । कसकना । (२) चुभना । गड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

क्रि० स० (१) दुःख पहुँचाना । व्यथित करना । (२) चुभाना । गड़ाना ।

सालनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] राल । धूना । सर्जरस । करायल ।

सालपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिवन । शालपर्णी ।

सालपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थल कमल । (२) पुंडेरी ।

सालभंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुतला । मूर्त्ति ।

सालम मिश्री–संज्ञा स्त्री० [अ० मालब + मिस्री = मिस्र देश का] सुधामूली। अमृतोत्था। वीरकंदा।

विशेष—यह एक प्रकार का क्षुप है जिसकी ऊँचाई प्रायः डेढ़ फुट तक होती है। इसके पत्ते प्याज के पत्ते के समान और फैले हुए होते हैं। डंडी के अंत में फूलों का गुच्छा होता है। फल पीले रंग के होते हैं। इसका कंद कसेरू के समान पर चिपटा सफेद और पीले रंग का तथा कड़ा होता है। इसमें वीर्य के समान गंध आती है और यह खाने में लसीली और फीकी होती है। इसके पौधे भारत के कितने ही प्रांतों में होते हैं, पर काबुल, बलख, बुखारा आदि देशों की अच्छी होती है। यह अत्यंत पौष्टिक है। पुष्टिकर ओषधियों में इसका विशेष प्रयोग होता है। वैद्यक के अनुसार यह स्निग्ध, उष्ण, वाजीकरण, शुक्रजनक, पुष्टिकर और अग्नि प्रदीपक मानी जाती है।

सालर†–संज्ञा पुं० दे० "सलई"।

सालरस–संज्ञा पुं० [सं०] राल। धूना।

सालशृंग–संज्ञा पुं० [सं०] दीवार के आगे का हिस्सा।

सालस–संज्ञा पुं० [अ०] वह जो दो पक्षों के झगड़े का निपटारा करे। पंच।

सालसा–संज्ञा पुं० [अं०] खून साफ करने का एक प्रकार का अँगरेजी ढंग का काढ़ा जो अनंतमूल आदि से बनता है।

सालसी–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सालस होने की क्रिया या भाव। दूसरों का झगड़ा निपटाना। (२) पंचायत।

सालहज–संज्ञा स्त्री० दे० "सलहज"।

साला–संज्ञा पुं० [सं० श्यालक] [स्त्री० साली] (१) पत्नी का भाई। (२) एक प्रकार की गाली।

संज्ञा पुं० [सं० सारिका] सारिका। मैना। उ०—देखत होंगे सोइ कृपाला। लखि प्रभात बोला तब साला।—विश्राम।

संज्ञा स्त्री० दे० "शाला"।

सालाना–वि० [फा०] साल का। वर्ष का। वार्षिक। जैसे,—सालाना मेला, सालाना चंदा।

सालावृक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ता। (२) गीदड़। सियार। (३) भेड़िया।

सालि–संज्ञा पुं० दे० "शालि"।

सालिग्राम–संज्ञा पुं० दे० "शालग्राम"।

सालिनी–संज्ञा स्त्री० दे० "शालिनी"।

सालिब मिश्री–संज्ञा स्त्री० दे० "सालम मिस्री"।

सालिम–वि० [अ०] जो कहीं से खंडित न हो। पूर्ण। संपूर्ण। पूरा।

सालियाना–वि० दे० "सालाना"।

सालिहोत्री–संज्ञा पुं० दे० "शालिहोत्री"।

साली–संज्ञा स्त्री० [फा० साल + ई (प्रत्य०)] (१) वह जमीन जो सालाना देन के हिसाब से ली जाती है। (२) खेती बारी के औजारों की मरम्मत के लिये बढ़ई को सालाना दी जानेवाली मजूरी।

संज्ञा पुं० दे० "शालि"।

सालु‡†–संज्ञा पुं० [हिं० सालना] (१) ईर्ष्या। (२) कष्ट।

सालू–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का लाल कपड़ा जो मांगलिक कार्यों में उपयोग में आता है। (पश्चिम) (२) सारी। (डिं०)

सालेया–संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ।

साले गुग्गुल–संज्ञा पुं० [फा० साले, सं० गुग्गुल] गुग्गुल का गोंद या राल। वि० दे० "गुग्गुल"।

सालोक्य–संज्ञा पुं० [सं०] पाँच प्रकार की मुक्ति में से एक जिसमें मुक्त जीव भगवान के साथ एक लोक में वास करता है। सलोकता।

साल्मली–संज्ञा पुं० दे० "शाल्मली"।

साल्व–संज्ञा पुं० दे० "शाल्व"।

साल्वेय–वि० [सं०] साल्व या शाल्व संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देश का रहनेवाला।

सावँकरन–संज्ञा पुं० [सं० श्यामकर्ण] श्याम कर्ण घोड़ा, जिसके सब अंग श्वेत, पर कान काले होते हैं। (साईस)

सावंत–संज्ञा पुं० [सं० सामंत] (१) वह भूस्वामी या राजा जो किसी बड़े राजा के अधीन हो और उसे कर देता हो। करद राजा। (२) योद्धा। वीर। (३) अधिनायक। (४) उत्तम प्रजा।

साव संज्ञा पुं० [सं० शावक = शिशु] बालक। पुत्र। (डिं०)

संज्ञा पुं० दे० "साहु"।

सावक–संज्ञा पुं० (१) दे० "शावक"। (२) दे० "श्रावक"।

सावकाश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अवकाश। फुर्सत। छुट्टी। (२) मौका। अवसर।

क्रि० वि० फुर्सत से। सुभीते से।

सावगी–संज्ञा पुं० दे० "सरावगी"।

सावचेत‡†–[सं० सा + हिं० चेत] सावधान। सतर्क। होशियार। चौकस।

सावचेती–संज्ञा स्त्री० [हिं० सावचेत + ई (प्रत्य०)] सावधानी। सतर्कता। खबरदारी। चौकसापन।

सावणिक–संज्ञा पुं० [सं० श्रावण] श्रावण मास। सावन का महीना। (डिं०)

सावद्य–वि० [सं०] निंदनीय। दूषणीय। आपत्तिजनक।

संज्ञा पुं० तीन प्रकार की योग शक्तियों में से एक शक्ति जो योगियों को प्राप्त होती है। अन्य दो शक्तियों के नाम निरवद्य और सूक्ष्म हैं।

सावधान–वि० [सं०] सचेत। सतर्क। होशियार। खबरदार। सजग। चौकस।

सावधानता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सावधान होने का भाव। सतर्कता। होशियारी। खबरदारी।

सावन-संज्ञा पुं० [सं० श्रावण] (१) श्रावण का महीना। आषाढ़ के बाद का और भाद्रपद के पहले का महीना। श्रावण। (२) एक प्रकार का गीत जो श्रावण महीने में गाया जाता है। (पूरब) (३) कजली नामक गीत।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ कर्म का अंत। यज्ञ की समाप्ति। (२) यजमान। (३) वरुण। (४) पूरे एक दिन और एक रात का समय। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय। ६० दंड का समय।

विशेष—इस प्रकार के ३० दिनों का एक सावन मास होता है; और ऐसे बारह सावन मासों का एक सावन वर्ष होता है।

सावनी-संज्ञा पुं० [हिं० सावन + ई (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार का धान जो भादों में काटा जाता है। (२) तंबाकू जो सावन भादों में बोया जाता है, कार्त्तिक में रोपा जाता है और फागुन में काटा जाता है। (३) एक प्रकार का फूल।

संज्ञा स्त्री० (१) वह बायन जो सावन महीने में वर-पक्ष से वधू के यहाँ भेजा जाता है। (२) दे० "श्रावणी"।

वि० सावन संबंधी। सावन का।

संज्ञा स्त्री० दे० "सावन" (२) और (३)।

सावर-संज्ञा पुं० [सं० शावर] (१) शिव कृत एक तंत्र का नाम। इसके संबंध में इस प्रकार की कथा है—एक बार जब शिव पार्वती किरात देश में वन में विचरण कर रहे थे, तब पार्वती जी ने प्रश्न किया कि प्रभो! अपने संपूर्ण मंत्र कील दिए हैं; पर अब कलिकाल है, इस समय के जीवों का उपकार कैसे होगा। तब शिव जी ने उसी वेश में नए मंत्रों की रचना की जो शावर या सावर कहाते हैं। इन मंत्रों को जपने या सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं; ये स्वयं सिद्ध हैं। न इनके कुछ अर्थ ही हैं। (२) एक प्रकार का लोहे का लंबा औजार जिसका एक सिरा नुकीला और गुलमेख की तरह होता है। इस पर खुरपा रखकर हथौड़े से पीटा जाता है जिससे खुरपा पतला और तेज हो जाता है।

संज्ञा पुं० [सं० शबर] एक प्रकार का हिरन। उ०—चीते सुरोझ सावर दवंग। गैंडा गलीनु डोलत अभंग। —सूदन।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोध। (२) पाप। अपराध। गुनाह। (३) एक प्रकार का मृग।

सावरक-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद लोध।

सावरणी संज्ञा स्त्री० [सं० सम्मार्जनी] वह बुहारी जो जैन यति अपने साथ लिए रहते हैं।

सावरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना जहरवाली जोंक।

सावर्ण-वि० [सं०] सवर्ण संबंधी। समान वर्ण संबंधी।

संज्ञा पुं० दे० "सावर्णि"।

सावर्णक-संज्ञा पुं० दे० "सावर्णि"।

सावर्णलक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा।

सावर्णि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आठवें मनु जो सूर्य्य के पुत्र थे।

विशेष—कहते हैं कि सूर्य्य की पत्नी छाया अपने पति सूर्य्य का तेज सहन न कर सकने के कारण अपने वर्ण की (सवर्णा) एक छाया बनाकर और उसे पति के घर छोड़कर अपने पिता के घर चली गई थी। उसी के गर्भ से सावर्णि मनु की उत्पत्ति हुई थी।

(२) एक मन्वंतर का नाम। (३) एक गोत्र का नाम।

सावष्टंभ-संज्ञा पुं० [सं० सावष्टम्भ] वह मकान जिसके उत्तर-दक्षिण दिशा में सड़क हो। ऐसा मकान बहुत शुभ माना गया है।

वि० (१) दृढ़। मजबूत। (२) आत्मनिर्भर। स्वावलंबी।

सावाँ-संज्ञा पुं० दे० "साँवाँ"।

सावित्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) शिव। (३) वसु। (४) ब्राह्मण। (५) सूर्य के पुत्र। (६) कर्ण। (७) गर्भ। (८) यज्ञोपवीत। (९) उपनयन संस्कार। यज्ञोपवीत। (१०) एक प्रकार का अस्त्र।

वि० (१) सविता संबंधी। सविता का। जैसे,—सावित्र होम। (२) सूर्यवंशी।

सावित्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेदमाता गायत्री। (२) सरस्वती। (३) ब्रह्मा की पत्नी जो सूर्य की पृश्नि नाम की पत्नी से उत्पन्न हुई थी। (४) वह संस्कार जो उपनयन के समय होता है और जिसके न होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य व्रात्य या पतित हो जाते हैं। (५) धर्म की पत्नी और दक्ष की कन्या। (६) कश्यप की पत्नी। (७) अष्टावक्र की कन्या। (८) मद्र देश के राजा अश्वपति की कन्या और सत्यवान की सती पत्नी।

विशेष—पुराणों में इसकी कथा यों है—मद्र देश के धर्मनिष्ठ प्रजाप्रिय राजा अश्वपति ने कोई संतान न होने के कारण ब्रह्मचर्यपूर्वक कठिन व्रत धारण किया। वह सावित्री मंत्र से प्रति दिन एक लाख आहुति देकर दिन के छठे भाग में भोजन करता था। इस प्रकार अठारह वर्ष बीतने पर सावित्री देवी ने प्रसन्न होकर राजा को दर्शन दिए और इच्छानुसार वर माँगने को कहा। राजा ने बहुत से पुत्रों की कामना की। देवी ने कहा कि ब्रह्मा की कृपा से तुम्हारे एक कन्या होगी जो बड़ी तेजस्विनी होगी। कुछ दिनों बाद बड़ी रानी के गर्भ से एक कन्या हुई। सावित्री की कृपा से यह कन्या हुई थी, इसलिये राजा ने इसका नाम भी सावित्री ही रखा। सावित्री अद्वितीय सुंदरी थी; पर किसी को इसका वर-प्रार्थी होते न देखकर अश्वपति ने सावित्री से स्वयं अपने इच्छानुसार वर ढूँढ़कर वरण करने को कहा। तदनुसार सावित्री वृद्ध मंत्रियों के साथ तपोवन में भ्रमण करने

लगी। कुछ दिनों बाद वह तीर्थों और तपोवनों का भ्रमण कर लौट आई और उसने अपने पिता से कहा—शाल्व देश में द्युमत्सेन नामक एक प्रसिद्ध धर्मात्मा क्षत्रिय राजा थे। वे अंधे हो गए हैं। उनका एक पुत्र है, जिसका नाम सत्यवान् है। एक शत्रु ने उनका राज्य हस्तगत कर लिया है। राजा अपनी पत्नी और पुत्र सहित वन में निवास कर रहे हैं। मैंने उन्हीं सत्यवान को अपने उपयुक्त वर समझकर उन्हीं को पति वरण किया है। नारदजी ने कहा—सत्यवान् में और सब गुण तो हैं, पर वह अल्पायु है। आज से एक वर्ष पूरा होते ही वह मर जायगा। इस पर भी सावित्री ने सत्यवान् से ही विवाह करना निश्चित किया। विवाह हो गया। एक वर्ष बीतने पर सत्यवान् की मृत्यु हो गई। यमराज जब उसका सूक्ष्म शरीर ले चला, तब सावित्री ने उसका पीछा किया। यमराज ने उसे बहुत समझा बुझाकर लौटाना चाहा, पर उसने उसका पीछा न छोड़ा। अंत को यमराज ने प्रसन्न होकर उसकी मनस्कामना पूर्ण की। मृत सत्यवान् जीवित होकर उठ बैठा। सावित्री ने मन ही मन जो कामनाएँ की थीं, वे पूरी हुईं। राजा द्युमत्सेन को पुनः दृष्टि प्राप्त हो गई। उसके शत्रुओं का विनाश हुआ और राज्य पुनः उसे प्राप्त हुआ। सावित्री के सौ पुत्र हुए। साथ ही उसके वृद्ध ससुर के भी सौ पुत्र हुए। उसने यह भी वर प्राप्त किया था कि पति के साथ ही मैं वैकुंठ जाऊँ। (९) यमुना नदी। (१०) सरस्वती नदी। (११) प्लक्ष द्वीप की एक नदी। (१२) धार के राजा भोज की स्त्री। (१३) सधवा स्त्री। (१४) आँवला।

सावित्री तीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

सावित्री व्रत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो स्त्रियाँ पति की दीर्घायु की कामना से ज्येष्ठ कृष्ण १४ को करती हैं। कहते हैं कि यह व्रत करने से स्त्रियाँ विधवा नहीं होतीं।

सावित्री सूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञोपवीत जो सावित्री दीक्षा के समय धारण किया जाता है।

साशिव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम। अर्जुन के दिग्विजय के प्रकरण में यह उत्तर दिशा में बतलाया गया है। इसे जीतकर अर्जुन यहाँ से आठ घोड़े लाया था। (२) ऋषीक। ऋषिपुत्र।

साश्रुधी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी या पति की माता। सास।

साश्वत-वि० दे० "शाश्वत"।

साष्टांग-वि० [सं०] आठों अंग सहित।

यौ०—साष्टांग प्रणाम = मस्तक, हाथ, पैर, हृदय, आँख, जाँघ, वचन और मन से भूमि पर लेटकर प्रणाम करना।

मुहा०—साष्टांग प्रणाम करना = बहुत बचना। दूर रहना। (व्यंग्य) जैसे,—हम यहीं से उन्हें साष्टांग प्रणाम करते हैं।

साष्टांग योग-संज्ञा पुं० [सं०] वह योग जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठो अंग हों। वि० दे० "योग"।

साष्टी-संज्ञा पुं० [देश०] एक टापू जो बंबई प्रदेश के थाना जिले में है। वहाँवाले इसे फालता और शास्तर तथा अँगरेज सालसीट कहते हैं। यह बंबई से बीस मील ईशान कोण में उत्तर को झुकता हुआ समुद्र के तट पर बसा है। यहाँ एक किला भी बना है।

सास-संज्ञा स्त्री० [सं० श्वश्रू] पति या पत्नी की माँ।

सासण-संज्ञा पुं० [डिं०] दे० "शासन"।

सासत-संज्ञा स्त्री० दे० "साँसत"।

सासनलेट-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का सफेद जालीदार कपड़ा।

सासरा†-संज्ञा पुं० दे० "ससुराल"।

सासा*†-संज्ञा स्त्री [सं० संशय] संदेह। शक। उ०—आई बतावन हौं तुम्है राधिके लीजिये जानि न कीजिये सासा।—रसकुसुमाकर।

संज्ञा पुं० स्त्री० दे० "श्वास" या "साँस"।

सासु-वि० [सं०] प्राणयुक्त। जीवित।

†संज्ञा स्त्री० दे० "सास"।

सासुर†-संज्ञा पुं० [हिं० ससुर] (१) पति या पत्नी का पिता। ससुर। (२) ससुराल।

सास्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] गौओं आदि का गलकंबल।

सास्मित-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध सत्व को विषय बनाकर की जानेवाली भावना।

साह-संज्ञा पुं० [सं० साधु] (१) साधु। सज्जन। भला आदमी। जैसे,—वह चोर है और तुम बड़े साह हो। (२) व्यापारी। साहूकार। (३) धनी। महाजन। सेठ। (४) लकड़ी या पत्थर का वह लंबा टुकड़ा जो दरवाजे के चौखटे में देहलीज के ऊपर दोनों पार्श्वों में लगा रहता है।

संज्ञा पुं० दे० "शाह"।

साहचर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहचर होने का भाव। साथ रहने का भाव। सहचरता। (२) संग। साथ।

साहना†-क्रि० स० [सं० साहित्य = मिलन] भैंसों का जोड़ा खिलाना। बुहाना।

साहनी-संज्ञा स्त्री० [सं० सेनानी ?] (१) सेना। फौज। उ०—(क) आयकै आपने आश्रम में कियो यज्ञ अरंभ प्रमोद प्रफुल्ला। आय निशाचर साहनी साजे मरीच सुबाहु सुने मख गुल्ला।—रघुराज। (ख) करत बिहार द्विरद मतवारे। गिरि सम वपुष झूलते कारे। कोटिन बाजि साहनी आवैं। नीर पियाइ नदी अन्हवावैं।—सबल। (२) साथी। संगी। उ०—(क) हम खेलब तव साथ, होइ नीच सब भाँति

जो। कह्यो बचन कुरुनाथ, शकुनी तो शिरमौर मम। (ख) धरहु भार निज सीस, बैठारहु किन साहनी। हमहिं न ओछि महीश में खेलब नृप सदसि महँ।—सबल। (३) पारिषद। उ०—भरत सकल साहनी बोलाए।—तुलसी।

साहब-संज्ञा पुं० [अ० साहिब] [स्त्री० साहिबा] (१) मित्र। दोस्त। साथी। (२) मालिक। स्वामी। (३) परमेश्वर। ईश्वर। (४) एक सम्मानसूचक शब्द जिसका व्यवहार नाम के साथ होता है। महाशय। जैसे,—मुं० कालिका प्रसाद साहब।

यौ०—साहबजादा। साहब सलामत।

(५) गोरी जाति का कोई व्यक्ति। फिरंगी।

वि० वाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे,—साहब इकबाल, साहब तदबीर, साहब दिमाग।

साहबजादा-संज्ञा पुं० [अ० साहिब + फा० जादा] [स्त्री० साहबजादी] (१) भले आदमी का लड़का। (२) पुत्र। बेटा। जैसे,—आज आपके साहबजादा कहाँ हैं?

साहब सलामत—संज्ञा स्त्री० [अ०] परस्पर मिलने के समय होनेवाला अभिवादन। बंदगी। सलाम। जैसे,—जब कभी वे रास्ते में मिल जाते हैं, तब साहब सलामत हो जाती है।

साहबी-वि० [अ० साहिब + ई० (प्रत्य०)] साहब का। साहब संबंधी। जैसे,—साहबी चाल, साहबी रंग ढंग।

संज्ञा स्त्री० (१) साहब होने का भाव। (२) प्रभुता। मालिकपन। (३) बड़ाई। बड़प्पन। महत्व।

साह बुलबुल-संज्ञा पुं० [फा० शाह + फा० बुलबुल] एक प्रकार का बुलबुल जिसका सिर काला, सारा शरीर सफेद और दुम एक हाथ लंबी होती है।

साहस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मानसिक गुण या शक्ति जिसके द्वारा मनुष्य यथेष्ट बल के अभाव में भी कोई भारी काम कर बैठता है या दृढ़तापूर्वक विपत्तियों तथा कठिनाइयों आदि का सामना करता है। हिम्मत। हियाव। जैसे,—वह साहस करके डाकुओं पर टूट पड़ा।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।—होना।

(२) जबरदस्ती दूसरे का धन लेना। लूटना। (३) कोई बुरा काम। दुष्ट कर्म्म। (४) द्वेष। (५) अत्याचार। (६) क्रूरता। बेरहमी। (७) पर-स्त्री गमन। (८) बलात्कार। (९) दंड। सजा। (१०) जुर्माना। (११) वह अग्नि जिस पर यज्ञ के लिये चरु पकाया जाता है।

साहसिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसमें साहस हो। साहस करनेवाला। हिम्मतवर। पराक्रमी। (२) डाकू। चोर। (३) मिथ्यावादी। (४) कर्कश वचन बोलनेवाला। (५) परस्त्री गामी।

विशेष—शास्त्रों में डाका, चोरी, झूठ बोलना, कठोर वचन कहना और परस्त्री गमन ये पाँचों कर्म करनेवाले साहसिक कहे गए हैं और अत्यंत पापी बताए गए हैं। धर्म्मशास्त्रों में इन्हें यथोचित दंड देने का विधान है। स्मृतियों में लिखा है कि 'साहसिक व्यक्ति' की साक्षी नहीं माननी चाहिए, क्योंकि ये स्वयं ही पाप करनेवाले होते हैं।

(६) वह जो हठ करता हो। हठीला। (७) निर्भीक। निर्भय। निडर।

साहसी-वि० [सं० साहसिन्] (१) वह जो साहस करता हो। हिम्मती। दिलेर। (२) बलि का पुत्र जो शाप के कारण गधा हो गया था। इसे बलराम ने मारा था।

साहस्र-वि० [सं०] सहस्र संबंधी। हजार का।

संज्ञा पुं० सहस्र का समूह।

साहस्रवेधी-संज्ञा पुं० [सं० साहस्रवेधिन्] कस्तूरी।

साहस्रिक-वि० [सं०] सहस्र संबंधी। हजार का।

संज्ञा पुं० किसी पदार्थ के एक सहस्र भागों में से एक भाग। [illegible]।

साहा-संज्ञा पुं० [सं० साहित्य] (१) वह वर्ष जो हिंदू ज्योतिष के अनुसार विवाह के लिये शुभ माना जाता है। (२) विवाह आदि शुभ कार्यों के लिये निश्चित लग्न या मुहूर्त्त।

साहाय्य-संज्ञा पुं० [सं०] सहायता। मदद।

साहि†-संज्ञा पुं० [फा० शाह] (१) राजा। (२) दे० "साहु"।

साहिती-संज्ञा स्त्री० दे० "साहित्य"।

साहित्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एकत्र होना। मिलना। मिलन। (२) वाक्य में पदों का एक प्रकार का संबंध जिसमें वे परस्पर अपेक्षित होते हैं और उनका एक ही क्रिया से अन्वय होता है। (३) किसी एक स्थान पर एकत्र किए हुए लिखित उपदेश, परामर्श या विचार आदि। लिपिबद्ध विचार या ज्ञान। (४) गद्य और पद्य सब प्रकार के उन ग्रन्थों का समूह जिनमें सार्वजनीन हित संबंधी स्थायी विचार रक्षित रहते हैं। वे समस्त पुस्तकें जिनमें नैतिक सत्य और मानव भाव बुद्धिमत्ता तथा व्यापकता से प्रकट किए गए हों। वाङ्मय। इस अर्थ में यह शब्द बहुत अधिक व्यापक रूप में भी बोला जाता है (जैसे,—समस्त संसार का साहित्य) और देश, काल, भाषा, या विषय आदि के विचार से परिमित रूप में भी। (जैसे,—हिंदी साहित्य, वैज्ञानिक साहित्य, बिहारी का साहित्य आदि।)

साहिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "साहनी"।

साहिब-संज्ञा पुं० दे० "साहब"।

साहिबी-संज्ञा स्त्री० दे० "साहबी"।

साहियाँ‡-संज्ञा पुं० दे० "साँई"।

साहिली-संज्ञा स्त्री० [अ० साहिल = समुद्र तट] (१) एक प्रकार का पक्षी जिसका रंग काला और लंबाई एक बालिश्त से अधिक होती है। यह प्रायः उत्तरी भारत और मध्य प्रदेश में पाया जाता है। यह पेड़ की टहनियों पर प्याले के आकार का घोंसला बनाता है। इसके अंडों का रंग भूरा होता है। (२) बुलबुल चश्म।

साही-संज्ञा स्त्री० [सं० शल्यकी] एक प्रसिद्ध जंतु जो प्रायः दो फुट लंबा होता है। इसका सिर छोटा, नथुने लंबे, कान और आँखें छोटी और जीभ बिल्ली के समान काँटेदार होती है। ऊपर नीचे के जबड़े में चार दाँतों के अतिरिक्त कुतरनेवाले दो दाँत ऐसे तीक्ष्ण होते हैं कि लकड़ी के मोटे तख्ते तक को काट डालते हैं। इसका रंग भूरा, सिर और पाँव पर काले काले सफेदी लिए छोटे छोटे बाल और गर्दन पर के बाल लंबे और भूरे रंग के होते हैं। पीठ पर लंबे नुकीले काँटे होते हैं। काँटे बहुधा सीधे और नोकें पूँछ की भाँति फिरी रहती हैं। जब यह क्रुद्ध होता है, तब काँटे सीधे खड़े हो जाते हैं। यह अपने शत्रुओं पर अपने काँटों से आक्रमण करता है। इसका किया हुआ घाव कठिनता से आराम होता है। इन काँटों से लिखने की कलम बनाई जाती है और चूड़ाकर्म्म में भी कहीं कहीं इनका व्यवहार होता है। ये जंतु आपस में बहुत लड़ते हैं; इसलिये लोगों का विश्वास है कि यदि इसके दो काँटे दो आदमियों के दरवाजों पर गाड़ दिए जायँ, तो दोनों में बहुत लड़ाई होती है। यह दिन में सोता और रात को जागता है। यह नरम पत्ती, साग, तरकारी और फल खाता है। शीत काल में यह बेसुध पड़ा रहता है। यह प्रायः उष्ण देशों में पाया जाता है। स्पेन, सिसिली आदि प्रायद्वीपों और अफ्रिका के उत्तरी भाग, एशिया के उत्तर, तातार, ईरान तथा हिंदुस्थान में बहुत मिलता है। इसे कहीं कहीं सेई भी कहते हैं।

वि० दे० "शाही"।

साहु-संज्ञा पुं० [सं० साधु] (१) सज्जन। भलामानस। (२) महाजन। धनी। साहूकार। चोर का उलटा।

विशेष—प्रायः वणिकों के नाम के आगे यह शब्द आता है। इसको कुछ लोग भ्रम से फारसी "शाह" का अपभ्रंश समझते हैं। पर यथार्थ में यह संस्कृत "साधु" का प्राकृत रूप है।

साहुल-संज्ञा पुं० [फा० शाकूल] दीवार की सीध नापने का एक प्रकार का यंत्र जिसका व्यवहार राज और मिस्त्री लोग मकान बनाने के समय करते हैं। यह पत्थर की एक गोली के आकार का होता है और इसमें एक लंबी डोरी लगी रहती है। इसी डोरी के सहारे से इसे लटकाकर दीवार की टेढ़ाई या सिधाई नापते हैं।

साहू-संज्ञा पुं० दे० "साहु"।

साहूकार-संज्ञा पुं० [हिं० साहु + कार (प्रत्य०)] बड़ा महाजन या व्यापारी। कोठीवाल। धनाढ्य।

साहूकारा-संज्ञा पुं० [हिं० साहूकार + आ (प्रत्य०)] (१) रुपयों का लेन देन। महाजनी। (२) वह बाजार जहाँ बहुत से साहूकार या महाजन कारबार करते हों।

वि० साहूकारों का। जैसे,—साहूकारा व्यवहार या ब्याज।

साहूकारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० साहूकार + ई (प्रत्य०)] साहूकार होने का भाव। साहूकारपन।

साहेब-संज्ञा पुं० दे० "साहब"।

साहैं‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँह] भुजदंड। बाजू। उ०—सकल भुअन मंगल मंदिर के द्वार बिसाल सुहाई साहैं।—तुलसी।

अव्य० [हिं० सामुहे] सामने। सम्मुख।

सिउँ‡-प्रत्य० दे० "स्यों"। उ०—रतन जनम अपनो तैं हारयो गोविंद गत नहिं जानी। निमिष न लीन भयो चरनन सिउँ बिरथा अउध सिरानी।—तेग बहादुर।

सिंकना-क्रि० अ० [सं० शृत = पका हुआ + करण, हिं० सेंकना] आँच पर गरम होना या पकना। सेंका जाना। जैसे,—रोटी सिंकना।

सिंकोना-संज्ञा पुं० [अं०] कुनैन का पेड़।

सिंग-संज्ञा पुं० दे० "सींग"।

सिंगड़ा-संज्ञा पुं० [सं० शृंग + ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० सिंगड़ी] सींग का बना हुआ बारूद रखने का एक प्रकार का बरतन।

सिंगरफ-संज्ञा पुं० [फा० शिंगरफ] ईंगुर।

सिंगरफी-वि० [फा० शिंगरफ] ईंगुर का। ईंगुर से बना।

सिंगरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सींग] एक प्रकार की मछली जिसके सिर पर सींग से निकले होते हैं।

सिंगरौर-संज्ञा पुं० [सं० शृंगवेर] प्रयाग के पश्चिमोत्तर नौ दस कोस पर एक स्थान जो प्राचीन शृंगवेरपुर माना जाता है। यहाँ निषादराज गुह की राजधानी थी।

सिंगल-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बड़ी मछली जो भारत और बरमा की नदियों में पाई जाती है। यह छः फुट तक लंबी होती है।

संज्ञा पुं० दे० "सिगनल"।

सिंगा-संज्ञा पुं० [हिं० सींग] फूँककर बजाया जानेवाला सींग या लोहे का बना एक बाजा। तुरही। रणसिंगा।

सिंगार-संज्ञा पुं० [सं० शृंगार] (१) सजावट। सज्जा। बनाव। (२) शोभा। (३) शृंगार रस। उ०—ताही ते सिंगार रस बरनि कह्यो कवि देव। जाको है हरि देवता सकल देव अधिदेव।—देव।

सिंगारदान-संज्ञा पुं० [हिं० सिंगार + सं० आधान या फा० दान (प्रत्य०)] वह पात्र या छोटा संदूक जिसमें शीशा, कंघी आदि शृंगार की सामग्री रखी जाती है।

सिंगारना-क्रि० स० [हिं० सिंगार + ना (प्रत्य०)] वस्त्र, आभूषण, अंगराग आदि से शरीर सुसज्जित करना। सजाना। सँवारना। उ०—(क) सुरभी वृषभ सिंगारे बहु बिधि हरदी तेल लगाई।—सूर। (ख) कटे कुंड कुंडल सिंगारे गंड पुंडन पै कटि मैं भुसुंड सुंड दंडन की मंडनी।—गि० दास।

सिंगारमेज-संज्ञा स्त्री० [सं० शृंगार + फा० मेज] एक प्रकार की मेज जिस पर दर्पण लगा रहता है और शृंगार की सामग्री सजी रहती है। इसके सामने बैठकर लोग बाल सँवारते और वस्त्र आभूषण आदि पहनते हैं।

सिंगारहार-संज्ञा पुं० [सं० हारशृंगार] हरसिंगार नामक फूल। परजाता। उ०—नागेसर सदबरग नेवारी। औ सिंगारहार फुलवारी।—जायसी।

सिंगारिया-वि० [सं० शृंगार + इया (प्रत्य०)] किसी देवमूर्त्ति का सिंगार करनेवाला, पुजारी।

सिंगारी-वि० पुं० [हिं० सिंगार + ई] शृंगार करनेवाला। सजानेवाला। उ०—समर बिहारी सुर सम बलधारी धरि मल्लजुद्धकारी औ सिंगारी भट भेरु के।—गोपाल।

सिंगाल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी बकरा जो कुमायूँ से नेपाल तक पाया जाता है।

सिंगाला-वि० [हिं० सींग + आला (प्रत्य०)] [स्त्री० सिंगाली] सींगवाला। जैसे गाय, बैल।

सिंगासन-संज्ञा पुं० दे० "सिंहासन"।

सिंगिया संज्ञा पुं० [सं० शृंगिक] एक प्रसिद्ध स्थावर विष।

विशेष—इसका पौधा अदरक या हलदी का सा होता है और शिकिम की ओर नदियों के किनारे की कीचड़वाली जमीन में उगता है। इसकी जड़ ही विष होती है जो सूखने पर सींग के आकार की दिखाई पड़ती है। लोगों का विश्वास है कि यह विष यदि गाय के सींग में बाँध दिया जाय, तो उसका दूध रक्त के समान लाल हो जाय।

सिंगी-संज्ञा पुं० [हिं० सींग] (१) सींग का बना बना हुआ फूँककर बजाया जानेवाला एक प्रकार का बाजा। तुरही।

विशेष—इसे शिकारी लोग कुत्तों को शिकार का पता देने के लिये बजाते हैं।

(२) सींग का बाजा जिसे योगी लोग फूँककर बजाते हैं। उ०—सिंगी नाद न बाजहीं किन गए सो जोगी।—दादू।

क्रि० प्र०—फूँकना।—बजाना।

(३) घोड़ों का एक बुरा लक्षण।

संज्ञा स्त्री० (१) एक प्रकार की मछली जो बरसाती पानी में अधिकता से होती है। इसके काटने या सींग गड़ाने से एक प्रकार का विष चढ़ता है। यह एक फुट के लगभग लंबी होती है और खाने के योग्य नहीं होती। (२) सींग की नली जिससे धूमनेवाले देहाती जर्राह शरीर का रक्त चूसकर निकालते हैं।

क्रि० प्र०—लगाना।

सिंगी मोहरा-संज्ञा पुं० [हिं० सिंगी + मुहरा] सिंगिया विष।

सिंगौटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सींग + औटी (प्रत्य०)] (१) सींग का आकार। (२) बैल के सींग पर पहनाने का एक आभूषण। (३) सींग का बना हुआ घोंटना। (४) तेल आदि रखने के लिये सींग का पात्र। (५) जंगल में मरे हुए जानवरों के सींग।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सिंगार + औटी] सिंदूर, कंघी आदि रखने की स्त्रियों की पिटारी।

सिंघ-संज्ञा पुं० दे० "सिंह"।

सिंघल-संज्ञा पुं० दे० "सिंहल"।

सिंघली-वि० दे० "सिंहली"।

सिंघाड़ा-संज्ञा पुं० [सं० शृंगाटक] (१) पानी में फैलनेवाली एक लता जिसके तिकोने फल खाए जाते हैं। पानी फल।

विशेष—यह भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत में तालों और जलाशयों में रोप कर लगाया जाता है। इसकी जड़ें पानी के भीतर दूर तक फैलती हैं। इसके लिये पानी के भीतर कीचड़ का होना आवश्यक है, कँकरीली या बलुई ज़मीन में यह नहीं फैल सकता। इसके पत्ते तीन अँगुल चौड़े कटावदार होते हैं जिनके नीचे का भाग ललाई लिए होता है। फूल सफेद रंग के होते हैं। फल तिकोने होते हैं जिनकी दो नोकें काँटे या सींग की तरह निकली होती हैं। बीच का भाग खुरदुरा होता है। छिलका मोटा पर मुलायम होता है जिसके भीतर सफेद गूदा या गिरी होती है। ये फल हरे खाए जाते हैं। सूखे फलों की गिरी का आटा भी बनता है जो व्रत के दिन फलाहार के रूप में लोग खाते हैं। अबीर बनाने में भी यह आटा काम में आता है। वैद्यकमें सिंघाड़ा शीतल, भारी, कसैला, वीर्य्यवर्द्धक, मलरोधक, वातकारक तथा रुधिर विकार और त्रिदोष को दूर करनेवाला कहा गया है।

पर्य्या०—जलफल। वारिकंटक। त्रिकोणफल।

(२) सिंघाड़े के आकार की तिकोनी सिलाई या बेल बूटा। (३) सोनारों का एक औजार जिससे वे सोने की माला बनाते हैं। (४) एक प्रकार की मुनिया चिड़िया। (५) समोसा नाम का नमकीन पकवान जो सिंघाड़े के आकार का तिकोना होता है। (६) एक प्रकार की आतिशबाज़ी। (७) रहट की लाट में ठोंकी हुई लकड़ी जो लाट को पीछे की ओर घूमने से रोकती है।

सिंघाड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिंघाड़ा] वह तालाब जिसमें सिंघाड़ा रोपा जाता है।

सिंघाण-संज्ञा पुं० दे० "सिंहाण"।

सिंघासन-संज्ञा पुं० दे० "सिंहासन"। उ०—(क) दसरथ राउ सिंघासन बैठि बिराजहिं हो।—तुलसी। (ख) तहाँ

सिंघासन सुभग निहारा। दिव्य कनकमय मनि दुति-
कारा।—मधुसूदन।

सिंघिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका। नाक।
संज्ञा स्त्री० दे० "सिंहिनी"

सिंघिया-संज्ञा पुं० दे० "सिंगिया"।

सिंघी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सींग] (१) एक प्रकार की छोटी मछली जिसका रंग सुर्खी लिए हुए होता है। इसके गलफड़े के पास दोनों तरफ दो काँटे होते हैं। (२) सोंठ। शुंठी।

सिंघू-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जीरा जो कुल्लू और बुशहर (फारस) से आता है और काले जीरे के स्थान पर बिकता है।

सिंचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल छिड़कना। पानी के छींटे डालकर तर करना। (२) पेड़ों में पानी देना। सींचना।

सिंचना--क्रि० अ० [हिं० सींचना] सींचा जाना।

सिंचाई-संज्ञा स्त्री० [सं० सिंचन] (१) पानी छिड़कने का काम। जल के छींटों से तर करने की क्रिया। (२) सींचने का काम। वृक्षों में जल देने का काम। उ०—निज कर पुनि पत्रिका बनाई। कुंकुम मलयज बिंदु सिंचाई।—रघुराज। (३) सींचने का कर या मज़दूरी।

सिंचाना-क्रि० स० [हिं० सींचना का प्रे०] (१) पानी छिड़काना। (२) सींचने का काम कराना।

सिंचित-वि० [सं०] (१) जल छिड़का हुआ। (२) पानी के छींटों से तर किया हुआ। सींचा हुआ।

सिंचिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिप्पली। पीपर।

सिंचौनी†-संज्ञा स्त्री० दे० "सिंचाई"।

सिंजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अलंकार ध्वनि। वि० दे० "शिंजा"।

सिंजाल पारी-संज्ञा स्त्री० दे० "गावलीन"।

सिंजित-संज्ञा स्त्री० [सं० सिंजा] शब्द। ध्वनि। झनक। झंकार। उ०—घुटुनुन चलत घूँघुरू बाजै। सिंजित सुनत हंस हिय लाजै।—लाल कवि।

सिंदन‡-संज्ञा पुं० दे० "स्यंदन"।

सिंदरखानी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की हलदी जिसकी जड़ से एक प्रकार का तीखुर निकलता है जो असली तीखुर में मिला दिया जाता है।

सिंदुक-संज्ञा पुं० [सं०] सिंदुवार वृक्ष। संभालू।

सिंदुर रसना-संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा। शराब। (अनेका०)

सिंदुरी-संज्ञा स्त्री० [सं० सिंदूर] बलूत की जाति का एक छोटा पेड़ जो हिमालय के नीचे के प्रदेश में चार साढ़े चार हजार फुट तक पाया जाता है।

सिंदुवार-संज्ञा पुं० [सं०] सँभालू वृक्ष। निर्गुंडी।

सिंदूर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईंगुर को पीसकर बनाया हुआ एक प्रकार का लाल रंग का चूर्ण जिसे सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ अपनी माँग में भरती हैं। यह सौभाग्य का चिह्न माना जाता है। गणेश और हनुमान की मूर्त्तियों पर भी यह घी में मिलाकर पोता जाता है।

विशेष—आयुर्वेद में यह भारी, गरम, टूटी हड्डी को जोड़नेवाला, घाव को शोधने और भरनेवाला तथा कोढ़, खुजली और विष को दूर करनेवाला माना गया है। यह घातक और अभक्ष्य है।

पर्य्या०—नागरेणु। वीररज। गणेशभूषण। संध्याराग। शृंगारक। सौभाग्य। अरुण। मंगल्य।

(२) बलूत की जाति का एक पहाड़ी पेड़ जो हिमालय के निचले भागों में अधिक पाया जाता है।

सिंदूरकारण-संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

सिंदूरतिलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंदूर का तिलक। (२) हाथी।

सिंदूरतिलका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सधवा स्त्री।

सिंदूरदान-संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के अवसर की एक प्रधान रीति। वर का कन्या की माँग में सिंदूर डालना।

सिंदूरपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जिसमें लाल रंग के फूल लगते हैं। वीरपुष्पी। सदा सुहागिन।

पर्य्या०—सिंदूरी। तृणपुष्पी। करच्छदा। शोणपुष्पी।

सिंदूरबंदन-संज्ञा पुं० [सं०] विवाह-संस्कार में एक प्रधान रीति जिसमें वर कन्या की माँग में सिंदूर डालता है। उ०—सिंदूरबंदन, होम लावा होन लागी भाँवरी। सिल पोहनी करि मोहनी मन हरयो मूरति साँवरी।—तुलसी।

सिंदूररस-संज्ञा पुं० [सं०] रस सिंदूर।

विशेष—यह पारे और गंधक को आँच पर उड़ाकर बनाया जाता है और चंद्रोदय या मकरध्वज के स्थान पर दिया जाता है।

सिंदूरिया-वि० [सं० सिंदूर + इया (प्रत्य०)] सिंदूर के रंग का। खूब लाल। जैसे,—सिंदूरिया आम।
संज्ञा स्त्री० [सं० सिंदूर (पुष्पी)] सिंदूरपुष्पी। सदा सुहागिन नाम का पौधा।

सिंदूरी-वि० [सं० सिंदूर + ई (प्रत्य०)] सिंदूर के रंग का। उ०—भली सँझोखी मैल सिंदूरी छाये बादर।—अंबिकादत्त।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धातकी। धव। (२) रोचनी। हल्दी। लाल हल्दी। (३) सिंदूरपुष्पी। (४) कबीला। (५) लाल वस्त्र।

सिंदोरा-संज्ञा पुं० [हिं० सिंदूर] लकड़ी की एक डिबिया जिसमें स्त्रियाँ सिंदूर रखती हैं। (यह सौभाग्य की सामग्री मानी जाती है।)

सिंध-संज्ञा पुं० [सं० सिंधु] (१) भारत के पश्चिम प्रांत का एक प्रदेश जो आजकल बंबई प्रांत के अंतर्गत है। संज्ञा स्त्री० (२) पंजाब की एक प्रधान नदी। (३) भैरव राग की एक रागिनी।

सिंधव–संज्ञा पुं॰ दे॰ "सैंधव"। उ॰—(क) सिंधव, फटिक पषान का, ऊपर एकइ रंग। पानी माहिं देखिये, न्यारा न्यारा अंग।—दादूदयाल। (ख) सिंधव क्षप आराम मधि तें आज हेरायो स्याम।—सूर।

सिंधवी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ सिंधु] एक रागिनी जो आभीरी और आशावरी के मेल से बनी मानी जाती है। इसका स्वरूप कान पर कमल का फूल रखे, लाल वस्त्र पहने, क्रुद्ध और हाथ में त्रिशूल लिए कहा गया है। हनुमत के मत से इस रागिनी का स्वर ग्राम यह है—सा रे ग म प ध नि सा अथवा सा ग म प ध नि सा।

सिंधसागर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] पंजाब में एक दोआब। झेलम और सिंधु नदी के बीच का प्रदेश।

सिंधारा–संज्ञा पुं॰ [देश॰] श्रावण मास के दोनों पक्षों की तृतीया को लड़की की ससुराल में भेजा हुआ पकवान आदि।

सिंधी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सिंध + ई (प्रत्य॰)] सिंध देश की बोली।

विशेष—यह समस्त सिंध प्रांत और उसके आस पास लास बेला, कच्छ और बहावलपुर आदि रियासतों के कुछ भागों में बोली जाती है। इसमें फारसी और अरबी भाषा के बहुत अधिक शब्द मिल गए हैं। यह लिखी भी एक प्रकार की अरबी-फारसी लिपि में ही जाती है। इसमें सिरैकी, लारी और थरेली तीन मुख्य बोलियाँ हैं। पश्चिमी पंजाब की भाषा के समान इसमें भी दो स्वरों के बीच में कहीं कहीं 'त' पाया जाता है।

वि॰ सिंध देश का। सिंध देश संबंधी।

संज्ञा पुं॰ (१) सिंध देश का निवासी। (२) सिंध देश का घोड़ा जो बहुत तेज और मजबूत होता है। अत्यंत प्राचीन काल से सिंध घोड़े की नस्ल के लिये प्रसिद्ध है।

सिंधु–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) नद। नदी। (२) एक प्रसिद्ध नद जो पंजाब के पश्चिम भाग में है। (३) समुद्र। सागर। (४) चार की संख्या। (५) सात की संख्या। (६) वरुण देवता। (७) सिंध प्रदेश। (८) सिंध प्रदेश का निवासी। (९) ओठों का गीलापन। ओष्ठ की आर्द्रता। (१०) हाथी के सूँड़ से निकला हुआ पानी। (११) हाथी का मद। गजमद। (१२) श्वेत टंकण। खूब साफ सोहागा। (१३) सिंदुवार का पौधा। निर्गुंडी। (१४) संपूर्ण जाति का एक राग जो मालकोश का पुत्र माना जाता है। इसमें गांधार और निषाद दोनों स्वर कोमल लगते हैं। इसके गाने का समय दिन को १० दंड से १६ दंड तक है। (१५) गंधर्वों के एक राजा का नाम।

संज्ञा स्त्री॰ दक्षिण की एक छोटी नदी जो यमुना में मिलती है।

सिंधुक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] निर्गुंडी। सँभालू वृक्ष।

सिंधुकन्या–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] लक्ष्मी।

सिंधुकफ–संज्ञा पुं॰ [सं॰] समुद्रफेन।

सिंधुकर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] श्वेत टंकण। सोहागा।

सिंधुकालक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] नैर्ऋत्य कोण के एक प्रदेश का प्राचीन नाम।

सिंधुखेल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] सिंध प्रदेश।

सिंधुज–वि॰ [सं॰] (१) समुद्र में उत्पन्न। (२) सिंध देश में होनेवाला।

संज्ञा पुं॰ (१) सेंधा नमक। (२) शंख। उ॰—जाके कोप भूमि जल पटके कहा कहैगो सिंधुज-पानी।—सूर। (३) पारा। (४) सोहागा।

सिंधुजन्मा–संज्ञा पुं॰ [सं॰ सिंधुजन्मन] (१) चंद्रमा। (२) सेंधा नमक।

सिंधुजा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) (समुद्र से उत्पन्न) लक्ष्मी। उ॰—चौंर ढारत सिंधुजा जय शब्द बोलत सिद्ध। नारदादिक विप्र मान अशेष भाव प्रसिद्ध।—केशव। (२) सीप, जिसमें से मोती निकलता है।

सिंधुजात–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) सिंधी घोड़ा। (२) मोती।

सिंधुड़ा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ सिन्धु] एक रागिनी जो मालव राग की भार्या मानी जाती है।

सिंधुनंदन–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (समुद्र का पुत्र) चंद्रमा।

सिंधुपर्णी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गंभारी वृक्ष।

सिंधुपिब–संज्ञा पुं॰ [सं॰] अगस्त्य ऋषि (जो समुद्र पी गए थे)।

सिंधुपुत्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) चंद्रमा। (२) तिंदुक की जाति का एक पेड़।

सिंधुपुष्प–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) शंख। (२) कदंब। कदम। (३) मौलसिरी। बकुल।

सिंधुमंथज–संज्ञा पुं॰ [सं॰] सेंधा नमक।

सिंधुमाता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ सिंधुमातृ] नदियों की माता, सरस्वती।

सिंधुर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ सिंधुरा] (१) हस्ती। हाथी। उ॰—चली संग बन राज के, रसे एक बन आहिं। सिंधुर यूथप बहुत तहँ, निकसे तेहि बन माहिं।—सबलसिंह। (२) आठ की संख्या।

सिंधुरमणि–संज्ञा पुं॰ [सं॰] गजमुक्ता। उ॰—पीत बसन कटि कलित कंठ सुंदर सिंधुरमनि माल।—तुलसी।

सिंधुरवदन–संज्ञा पुं॰ [सं॰] गजवदन। गणेश। उ॰—गुरु सरसइ सिंधुरवदन, ससि सुरसरि सुरगाइ। सुमिरि चलहु मग मुदित मन होइहि सुकृत सहाइ।—तुलसी।

सिंधुरागामिनी–वि॰ स्त्री॰ [सं॰] गजगामिनी। हाथी की सी चालवाली। उ॰—गावत चलीं सिंधुरागामिनि।—तुलसी।

सिंधुराव–संज्ञा पुं॰ [सं॰] निर्गुंडी। सँभालू।

सिंधुलताम्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] मूँगा। प्रवाल।

सिंधुलवण–संज्ञा पुं॰ [सं॰] सेंधा नमक।

सिंधुवार–संज्ञा पुं॰ [सं॰] सिंदुवार। निर्गुंडी।

सिंधुविष-संज्ञा पुं० [सं०] हलाहल विष जो समुद्र मथने पर निकला था। उ०—आसीविष, सिंधुविष पावक सों तो कछू हुतो प्रहलाद सों पिता को प्रेम छूट्यो है।—केशव।

सिंधुवृष-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सिंधुवेषण-संज्ञा पुं० [सं०] गंभारी वृक्ष।

सिंधुशयन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सिंधुसंभवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकिरी।

सिंधुसर्ज-संज्ञा पुं० [सं०] शाल वृक्ष। साखू।

सिंधुसहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी। सिंदुवार।

सिंधुसुत-संज्ञा पुं० [सं०] जलंधर नामक राक्षस जिसे शिव जी ने मारा था। उ०—सिंधुसुत गर्व गिरि वज्र गौरीस भव दक्ष मख अखिल विध्वंस-कर्त्ता।—तुलसी।

सिंधुसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) सीप।

सिंधुसुतासुत-संज्ञा पुं० [सं०] सीप का पुत्र अर्थात् मोती। उ०—सिंधु सुतासुत ता रिपु गमनी सुन मेरी तू बात —सूर।

सिंधूरा-संज्ञा पुं० [सं० सिंधुर] संपूर्ण जाति का एक राग जो हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है। यह वीर रस का राग है। इसमें ऋषभ और निषाद स्वर कोमल लगते हैं। गाने का समय दिन में ११ दंड से १५ दंड तक है।

सिंधूरी-संज्ञा स्त्री० [सं० सिंधुर] एक रागिनी जो हिंडोल राग की पुत्र-वधू मानी जाती है।

सिंधोरा-संज्ञा पुं० [हिं० सिंदूर + ओरा (प्रत्य०)] सिंदूर रखने का लकड़ी का पात्र जो कई आकार का बनता है। उ०—गृहि ते निकरी सती होन को देखन को जग दौरा। अब तो जरे मरे बनि आई लीन्हा हाथ सिंधोरा।—कबीर।

सिंब-संज्ञा पुं० दे० "शिंब"।

सिंबा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिंबी धान। शमी धान्य। (२) नखी नामक गंध द्रव्य। हट्टविलासिनी। (३) सोंठ।

सिंबी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छीमी। फली। (२) सेम। निष्पावी। (३) बन मूँग।

सिंभालू-संज्ञा पुं० [सं० संभालु] सिंदुवार। निर्गुंडी।

सिंसपा-संज्ञा स्त्री० दे० "शिंशपा"।

सिंह-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सिंहनी] (१) बिल्ली की जाति का सब से बलवान्, पराक्रमी और भव्य जंगली जंतु जिसके नरवर्ग की गरदन पर बड़े बड़े बाल या केसर होते हैं। शेर बबर।

विशेष—यह जंतु अब संसार में बहुत कम स्थानों में रह गया है। भारतवर्ष के जंगलों में किसी समय सर्वत्र सिंह पाए जाते थे, पर अब कहीं नहीं रह गए हैं। केवल गुजरात या काठियावाड़ की ओर कभी कभी दिखाई पड़ जाते हैं। उत्तरी भारत में अंतिम सिंह सन् १८३९ में दिखाई पड़ा था। आज कल सिंह केवल अफ्रिका के जंगलों में मिलते हैं। इस जंतु का पिछला भाग पतला होता है, पर सामने का भाग अत्यंत भव्य और विशाल होता है। इसकी आकृति से विलक्षण तेज टपकता है और इसकी गरज बादल की तरह गूँजती है, इसी से सिंह का गर्जन प्रसिद्ध है। देखने में यह बाघ की अपेक्षा शांत और गंभीर दिखाई पड़ता है और जल्दी क्रोध नहीं करता। रंग इसका ऊँट के रंग का सा और सादा होता है। इसके शरीर पर चित्तियाँ आदि नहीं होतीं। मुँह व्याघ्र की अपेक्षा कुछ लंबोतरा होता है, बिलकुल गोल नहीं होता। पूँछ का आकार भी कुछ भिन्न होता है। वह पतली होती है और उसके छोर पर बालों का गुच्छा सा होता है। सारे धड़ की अपेक्षा इसका सिर और चेहरा बहुत बड़ा होता है जो केसर या बालों के कारण और भी भव्य दिखाई पड़ता है। कवि लोग सदा से वीर या पराक्रमी पुरुष की उपमा सिंह से देते आए हैं। यह जंगल का राजा माना जाता है।

पर्य्या०—मृगराज। मृगेंद्र। केसरी। पंचानन। हरि।

(२) ज्योतिष में मेष आदि बारह राशियों में से पाँचवीं राशि।

विशेष—इस राशि के अंतर्गत मघा, पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा-फाल्गुनी के प्रथम पाद पड़ते हैं। इसका देवता सिंह और वर्ण पीत धूम्र माना गया है। फलित ज्योतिष में यह राशि पित्त प्रकृति की, पूर्व दिशा की स्वामिनी, क्रूर और शब्दवाली कही गई है। इस राशि में उत्पन्न होनेवाला मनुष्य क्रोधी, तेज चलनेवाला, बहुत बोलनेवाला, हँसमुख, चंचल और मत्स्यप्रिय बतलाया गया है।

(३) वीरता या श्रेष्ठता-वाचक शब्द। जैसे,—पुरुष-सिंह। (४) छप्पय छंद का सोलहवाँ भेद जिसमें ५५ गुरु, ४२ लघु कुल ९७ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (५) वास्तु-विद्या में प्रासाद का एक भेद जिसमें सिंह की प्रतिमा से भूषित बारह कोने होते हैं। (६) रक्त शिग्रु। लाल सहिंजन। (७) एक राग का नाम। (८) वर्तमान अवसर्पिणी के २४वें अर्हत् का चिह्न जो जैन लोग रथयात्रा आदि के समय झंडों पर बनाते हैं। (९) एक आभूषण जो रथ के बैलों के माथे पर पहनाते हैं। (१०) एक कल्पित पक्षी। (११) वेंकट गिरि का एक नाम।

सिंहकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाण चलाने में दाहिने हाथ की एक मुद्रा।

सिंहकर्मा-संज्ञा पुं० [सं० सिंहकर्मन्] सिंह के समान वीरता से काम करनेवाला। वीर पुरुष।

सिंहकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सिंहकेलि-संज्ञा पुं० [सं०] प्रसिद्ध बोधिसत्व मंजुश्री का एक नाम।

सिंहकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह की गरदन के बाल। (२) मौलसिरी। बकुल वृक्ष। (३) एक प्रकार की मिठाई। सूत फेनी। काता।

सिंहग—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सिंहघोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

सिंहचित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मषवन। मापपर्णी।

सिंहच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद दूब।

सिंहतुंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेहुँड़। स्नुही। थूहर। (२) एक प्रकार की मछली।

सिंहदंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बाण। (२) शिव का एक नाम।

सिंहद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] सदर फाटक जहाँ सिंह की मूर्ति बनी हो। उ०—सिंहद्वार आरती उतारत यशुमति आनँद-कंद।—सूर।

सिंहध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

सिंहनंदन—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

सिंहनाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह की गरज। (२) युद्ध में वीरों की ललकार। (३) सत्यता के निश्चय के कारण किसी बात का निःशंक कथन। ज़ोर देकर कहना। ललकार के कहना। (४) एक प्रकार का पक्षी। (५) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सगण, जगण, सगण, सगण और एक गुरु होता है। कलहंस। नंदिनी। उ०—सजि सी सिंगार कलहंस गती सी। चलि आइ राम छबि मंडप दीसी। (६) संगीत में एक ताल। (७) शिव का एक नाम। (८) रावण के एक पुत्र का नाम।

सिंहनादक—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघा नामक बाजा।

सिंहनाद गुग्गुल—संज्ञा पुं० [सं०] एक यौगिक औषध जिसमें प्रधान योग गुग्गुल का रहता है।

सिंहनादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवासा। धमासा। दुरालभा। हिंगुआ।

सिंहनादी—वि० [सं० सिंहनादिन्] [स्त्री० सिंहनादिनी] सिंह के समान गरजनेवाला।

संज्ञा पुं० एक बोधिसत्व का नाम।

सिंहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिंह की मादा। शेरनी। (२) एक छंद का नाम। इसके चारों पदों में क्रम से १२, १८, २० और २२ मात्राएँ होती हैं। अंत में एक गुरु और २०, २० मात्राओं पर १ जगण होता है। इसके उलटे को गाहिनी कहते हैं।

सिंहपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मापपर्णी।

सिंहपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मापपर्णी।

सिंहपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सैंहली।

सिंहपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

सिंहपुच्छी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रपर्णी। माषपर्णी।

सिंहपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के नौ वासुदेवों में से एक वासुदेव।

सिंहपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

सिंहपौर—संज्ञा पुं० [सं० सिंह + हिं० पौर] सिंहद्वार। सदर फाटक जिस पर सिंह की मूर्त्ति बनी हो। उ०—भोर जानि सिंहपौर त्रियन की यशुमति भवन दुराई।—सूर।

सिंहमल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की धातु या पीतल। पंचलौह।

सिंहमुख—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक गण का नाम।

सिंहमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बाँस। (२) अड़ूसा। वासक। (३) बन उड़दी। (४) खारी मिट्टी। (५) कृष्ण निर्गुंडी। काला सँभालू।

सिंहयाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (सिंह जिसका वाहन हो) दुर्गा।

सिंहल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक द्वीप जो भारतवर्ष के दक्षिण में है और जिसे लोग रामायणवाली लंका अनुमान करते हैं।

विशेष—जान पड़ता है कि प्राचीन काल में इस द्वीप में सिंह बहुत पाए जाते थे; इसी से यह नाम पड़ा। रामेश्वर के ठीक दक्षिण पड़ने के कारण लोग सिंहल को ही प्राचीन लंका अनुमान करते हैं। पर सिंहलवासियों के बीच न तो यह नाम ही प्रसिद्ध है और न रावण की कथा ही। सिंहल के दो इतिहास पाली भाषा में लिखे मिलते हैं—महावंसो और दीपवंसो, जिनमे वहाँ किसी समय यक्षों की बस्ती होने का पता लगता है। रावण के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि उसने लंका से अपने भाई यक्षों को निकालकर राक्षसों का राज्य स्थापित किया था। वंग देश के विजय नामक एक राजकुमार का सिंहल विजय करना भी इतिहासों में मिलता है। ऐतिहासिक काल में यह द्वीप स्वर्णभूमि या स्वर्णद्वीप के नाम से प्रसिद्ध था, जहाँ दूर देशों के व्यापारी मोती और मसाले आदि के लिए आते थे। प्राचीन अरब स्वर्णद्वीप को "सरनदीब" कहते थे। रत्न-परीक्षा के ग्रंथों में सिंहल-मोती, मानिक और नीलम के लिए प्रसिद्ध पाया जाता है। भारतवर्ष के कलिंग, ताम्रलिप्ति आदि प्राचीन बंदरगाहों से भारतवासियों के जहाज़ बराबर सिंहल, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों की ओर जाते थे। गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त (सन् ४०० ईसवी) के समय फ़ाहियान नामक जो चीनी यात्री भारतवर्ष में आया था, वह हिंदुओं के ही जहाज़ पर सिंहल होता हुआ चीन को लौटा था। उस समय भी यह द्वीप स्वर्णद्वीप या सिंहल ही कहलाता था, लंका नहीं। इधर की कहानियों में सिंहलद्वीप पद्मिनी स्त्रियों के लिए प्रसिद्ध है। यह प्रवाद विशेषतः गोरखपंथी साधुओं

में प्रसिद्ध है जो सिंहल को एक प्रसिद्ध पीठ मानते हैं। उनमें कथा चली आती है कि गोरखनाथ के गुरु मत्स्येंद्रनाथ (मछंदरनाथ) सिद्ध होने के लिए सिंहल गए, पर पद्मिनियों के जाल में फँस गए। जब गोरखनाथ गए तब उनका उद्धार हुआ। वास्तव में सिंहल के निवासी बिलकुल काले और भद्दे होते हैं। वहाँ इस समय दो जातियाँ बसती हैं—उत्तर की ओर तो तामिल जाति के लोग हैं और दक्षिण की ओर आदिम सिंहली निवास करते हैं।

(२) सिंहल द्वीप का निवासी।

सिंहलक-वि० [सं०] सिंहल संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) पीतल। (२) दारचीनी।

सिंहलद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल नाम का टापू जो भारत के दक्षिण में है। वि० दे० "सिंहल"।

सिंहलद्वीपी-वि० [सं०] (१) सिंहल द्वीप में होनेवाला। (२) सिंहल द्वीप का निवासी। उ०—कनक हाट सब कुहकुह लीपी। बैठ महाजन सिंहलद्वीपी।—जायसी।

सिंहलस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] सैंहली। सिंहली पीपल।

सिंहलांगुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

सिंहला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिंहल द्वीप। लंका। (२) राँगा। (३) पीतल। (४) छाल। बकला। (५) दारचीनी।

सिंहलास्थान-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताड़ जो दक्षिण में होता है।

सिंहली-वि० [हिं० सिंहल+ई (प्रत्य०)] (१) सिंहल द्वीप का। (२) सिंहल द्वीप का निवासी।

विशेष—सिंहली काले और भद्दे होते हैं। वे अधिकांश हीनयान शाखा के बौद्ध हैं। पर बहुत से सिंहली मुसलमान भी हो गए हैं।

संज्ञा स्त्री० सिंहली पीपल।

सिंहली पीपल-संज्ञा स्त्री० [सं० सिंहपिप्पली] एक लता जिसके बीज दवा के काम में आते हैं।

विशेष—यह सिंहल द्वीप के पहाड़ों पर उत्पन्न होती है। इसका रंग और रूप साँप के समान होता है और बीज लंबे होते हैं। यह चरपरी, गरम तथा कृमि रोग, कफ, श्वास और वात की पीड़ा को दूर करनेवाली कही गई है।

सिंहलील-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत में एक ताल। (२) (२) काम शास्त्र में एक रतिबंध।

सिंहवदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अड़ूसा। (२) माषपर्णी। बन उड़दी। (३) खारी मिट्टी।

सिंहवक्त्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अड़ूसा।

सिंहवाहना-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा देवी।

सिंहवाहिनी-वि० स्त्री० [सं०] सिंह पर चढ़नेवाली।

संज्ञा स्त्री० दुर्गा देवी। उ०—रूप रस एवी महादेवी देवदेवन की सिंहासन बैठी सोहैं सोहैं सिंहवाहिनी।—देव।

सिंहविक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) संगीत में एक ताल।

सिंहविक्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह की चाल। (२) घोड़ा। (३) दो नगण और सात या सात से अधिक यगणों के दंडक का एक नाम।

सिंहविक्रांतगामिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध के अस्सी अनुव्यंजनों (छोटे लक्षणों) में से एक।

सिंहविक्रीड़-संज्ञा पुं० [सं०] दंडक का एक भेद जिसमें ९ से अधिक यगण होते हैं।

सिंहविक्रीडित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत में एक ताल। (२) एक प्रकार की समाधि। (३) एक बोधिसत्व का नाम। (४) एक छंद का नाम।

सिंहविजृंभित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समाधि। (बौद्ध)

सिंहविन्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी।

सिंहवृंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बन उड़दी। माषपर्णी।

सिंहस्थ-वि० [सं०] (१) सिंह राशि में स्थित (बृहस्पति)। (२) एक पर्व जो बृहस्पति के सिंह राशि में होने पर होता है।

विशेष—सिंहस्थ में विवाह आदि शुभ कार्य्य वर्जित हैं।

सिंहस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

सिंहहनु-संज्ञा पुं० [सं०] सिंह के समान दाढ़ या दाढ़ की हड्डी जो कि बुद्ध के बत्तीस प्रधान लक्षणों में से एक है।

वि० जिसकी दाढ़ सिंह के समान हो।

संज्ञा पुं० गौतम बुद्ध के पितामह का नाम।

सिंहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाड़ी शाक। करेमू। (२) भटकटैया। कटाई। कंटकारी। (३) बृहती। बनभंटा।

संज्ञा पुं० (१) नाग देवता। (२) सिंह लग्न। (३) वह समय जब तक सूर्य्य इस लग्न में रहता है।

सिंहाण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाक का मल। नकटी। रेंट। (२) लोहे का मुरचा। जंग।

सिंहाणक-संज्ञा पुं० [सं०] नाक का मल। नकटी। रेंट।

सिंहान-संज्ञा पुं० दे० "सिंहाण"।

सिंहानन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृष्ण निगुंडी। काला सँभालू। (२) वासक। अड़ूसा।

सिंहाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंहली पीपल।

सिंहावलोकन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह के समान पीछे देखते हुए आगे बढ़ना। (२) आगे बढ़ने के पहले पिछली बातों का संक्षेप में कथन। (३) पद्य-रचना की एक युक्ति जिसमें पिछले चरण के अंत के कुछ शब्द या वाक्य लेकर अगला चरण चलता है। उ०—गाय गोरी मोहनी सुराग

बाँसुरी के बीच कानन सुहाय मार-मंत्र को सुनायगो। नायगो री नेह डोरी मेरे गर में फँसाय हिरदै थल बीच चाय-बेलि को बँधायगो।—दीनदयाल।

सिंहावलोकित-संज्ञा पुं० दे० "सिंहावलोकन"।

सिंहासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा या देवता के बैठने का आसन या चौकी।

विशेष—यह प्रायः काठ, सोने, चाँदी, पीतल आदि का बना होता है। इसके हत्थों पर सिंह का आकार बना होता है। (२) कमल के पत्ते के आकार का बना हुआ देवताओं का आसन। (३) सोलह रतिबंधों के अंतर्गत चौदहवाँ बंध। (४) मंडूर। लौहकिट्ट। (५) दोनों भौंहों के बीच में बैठकी के आकार का चंदन या रोली का तिलक।

सिंहासनचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में मनुष्य के आकार का सत्ताइस कोठों का एक चक्र जिसमें नक्षत्रों के नाम भरे रहते हैं।

सिंहास्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वासक। अडूसा। (२) कोविदार। कचनार। (३) एक प्रकार की बड़ी मछली।

सिंहिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक राक्षसी जो राहु की माता थी।

विशेष—यह राक्षसी दक्षिण समुद्र में रहकर उड़ते हुए जीवों की परछाईं देखकर ही उनको खींचकर खाती थी। इसको लंका जाते समय हनुमान ने मारा था। उ०—जलधि लंघन सिंह, सिंहिका मद मथन, रजनिचर नगर उत्पात-केतु।—तुलसी। (२) शोभन छंद का एक नाम। इसके प्रत्येक पद में १४,१० के विराम से २४ मात्राएँ और अंत में जगण होता है। (३) दाक्षायणी देवी का एक रूप। (४) टेढ़े घुटनों की कन्या जो विवाह के अयोग्य कही गई है। (५) अडूसा। (६) बनभंटा। (७) कंटकारी।

सिंहिकासुनु-संज्ञा पुं० [सं०] सिंहिका का पुत्र, राहु। उ०—ललित श्री गोपाल लोचन स्याम सोभा दून। मनहु मयंकहि अंक दीन्ही सिंहिका के सून।—सूर।

सिंहिकेय-संज्ञा पुं० [सं०] (सिंहिका का पुत्र) राहु।

सिंहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा सिंह। शेरनी। उ०—श्वान संग सिंहनी रति अजगुत बेद विरुद्ध असुर करें आइ। सूरदास प्रभु बेगि न आवहु प्राण गए कहा लैहौ आइ।—सूर।

सिंही-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिंह की मादा। शेरनी। (२) अडूसा। (३) स्नुही। थूहर। (४) मुद्गपर्णी। (५) चंद्र-शेखर के मत से आर्य्या का पचीसवाँ भेद। इसमें ३ गुरु और ५१ लघु होते हैं। (६) बृहती लता। (७) सिंघा नाम का बाजा। (८) पीली कौड़ी। (९) नाड़ी शाक। करेमू। (१०) राहु की माता सिंहिका।

सिंहीलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बैंगन। भंटा।

सिंहेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

सिंहोड़-संज्ञा पुं० दे० "सेंहुड़" या "थूहर"।

सिंहोदरी-वि० स्त्री० [सं०] सिंह के समान पतली कमरवाली। उ०—सकल सिंगार करि सोहै आजु सिंहोदरी सिंहासन बैठी सिंहवाहिनी भवानी सी।—देव।

सिंहोन्नता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वसंततिलका वृत्त का दूसरा नाम।

सिअरा†-वि० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़] ठंढा। शीतल। उ०—सिअरे बदन सूखि गए कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे।—तुलसी।

संज्ञा पुं० छाया। छाहँ। उ०—सिरसि टेपारो लाल नीरज नयन बिसाल सुंदर बदन ठाढ़े सुर तरु सिअरे।—तुलसी।

† संज्ञा पुं० दे० "सियार"।

सिआना-क्रि० स० दे० "सिलाना"।

सिआमंग-संज्ञा पुं० [?] सुमात्रा द्वीप में पाया जानेवाला एक प्रकार का बंदर।

सिआर-संज्ञा पुं० [सं० शृगाल] [स्त्री० सिआरी] शृगाल। गीदड़। उ०—भयो चलत असगुन अति भारी। रवि के आछत फेंकर सिआरी।—सबलसिंह।

सिउरना†-क्रि० स० [देश०] छाजन के लिए मुट्ठों को कोंड़ियों पर बिछाकर रस्सी से बाँधना।

सिकंजबीन-संज्ञा स्त्री० [फा०] सिरके या नीबू के रस में पका हुआ शरबत। (यह सफरा और बलगम के लिए हितकर है)

सिकंजा-संज्ञा पुं० दे० "शिकंजा"।

सिकंदरा-संज्ञा पुं० [फा० सिकंदर] रेल की लाइन के किनारे ऊँचे खंभे पर लगा हुआ हाथ या डंडा जो झुककर आती हुई गाड़ी की सूचना देता है। सिगनल।

विशेष—कथा प्रसिद्ध है कि सिकंदर बादशाह जब सारी दुनिया जीत कर समुद्र पर भ्रमण करने गया, तब बड़वानल के पास पहुँचा। वहाँ उसने जहाजियों को सावधान करने के लिये खंभे के ऊपर एक हिलता हुआ हाथ लगवा दिया जो उधर जाने से यात्रियों को बराबर मना करता रहता है और "सिकंदरी भुजा" कहलाता है। इसी कहानी के अनुसार लोग सिगनल को भी 'सिकंदरा' कहने लगे।

सिकटा-संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० सिकटी] खपड़े या मिट्टी के टूटे बरतनों का छोटा टुकड़ा।

सिकड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० शृंखला] (१) किवाड़ की कुंडी। साँकल। जंजीर। (२) ज़ंजीर के आकार का सोने का गले में पहनने का गहना। (३) करधनी। तागड़ी। (४) चारपाई में

लगी हुई वह दावँनी जो एक दूसरी में गूँथ कर लगाई जाती है।

सिकड़ी पनवाँ†-संज्ञा पुं० [हिं० सिकड़+पान] गले में पहनने की वह सिकड़ी जिसके बीच में पान सी चौकी होती है।

सिकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बालू। रेत। उ०—बारि मथे घृत होइ बरु सिकता तें बरु तेल। बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।—तुलसी। बलुई ज़मीन। (३) प्रमेह का एक भेद। पथरी। (४) चीनी। शर्करा। (५) लोणिका शाक।

सिकतामेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें पेशाब के साथ बालू के से कण निकलते हैं।

सिकतावर्त्म-संज्ञा पुं० [सं० सिकतावर्त्मन्] आँख की पलक का एक रोग।

सिकतिल-संज्ञा स्त्री० [सं०] रेतीला।

सिकत्तर-संज्ञा पुं० [अं० सेक्रेटरी] किसी संस्था या सभा का मंत्री। सेक्रेटरी।

सिकरवार-संज्ञा पुं० [देश०] क्षत्रियों की एक शाखा। उ०—वीर बड़गूजर जसाउत सिकरवार, हाल असवार जे करत निरवार हैं।—सूदन।

सिकरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सिकड़ी"।

सिकली-संज्ञा स्त्री० [अ० सैकल] धारदार हथियारों को माँजने और उन पर सान चढ़ाने की क्रिया। उ०—सकल कबीरा बोलै बीरा अजहूँ हो हुसियारा। कह कबीर गुरु सिकली दरपन हर दम करौ पुकारा।—कबीर।

सिकलीगढ़-संज्ञा पुं० दे० "सिकलीगर"।—बढ़ई संगतराम बिसाती। सिकलीगढ़ कहार की पाती।—गिरधरदास।

सिकलीगर-संज्ञा पुं० [अ० सैकल+फ़ा० गर] तलवार और छुरी आदि पर बाढ़ रखनेवाला। सान धरनेवाला। चमक देनेवाला। उ०—यों छबि पावत है लखौ अंजन आँजे नैन। सरस बाढ़ सैफन धरी जनु सिकलीगर मैन।—रसनिधि।

सिकसोनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] काकजंघा।

सिकहर-संज्ञा पुं० [सं० शिक्य+घर] छींका। झींका।

सिकहुली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सीक+औली] मूँज, कास आदि की बनी छोटी डलिया।

सिकाकोल-संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण की एक नदी।

सिकार‡-संज्ञा पुं० दे० "शिकार"।

सिकारी-वि० संज्ञा पुं० दे० "शिकारी"।

सिकुड़न-संज्ञा स्त्री० [सं० संकुचन] (१) दूर तक फैली वस्तु का सिमटकर थोड़े स्थान में होना। संकोच। आकुंचन। (२) वस्तु के सिमटने से पड़ा हुआ चिह्न। आकुंचन का चिह्न। बल। शिकन। सिलवट।

सिकुड़ना-क्रि० अ० [सं० संकुचन] (१) दूर तक फैली वस्तु का सिमटकर थोड़े स्थान में होना। सुकड़ना। आकुंचित होना। बटुरना। (२) संकीर्ण होना। तंग होना। (३) बल पड़ना। शिकन पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

सिकुरना‡-क्रि० अ० दे० "सिकुड़ना"।

सिकोड़ना-क्रि० स० [हिं० सिकुड़ना] (१) दूर तक फैली हुई वस्तु को समेटकर थोड़े स्थान में करना। संकुचित करना। (२) समेटना। बटोरना। (३) संकीर्ण करना। तंग करना।

संयो० क्रि०—देना।

सिकोरना‡-क्रि० स० दे० "सिकोड़ना"। उ०—सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी।—तुलसी।

सिकोरा-संज्ञा पुं० दे० "सकोरा" या "कसोरा"।

सिकोली-संज्ञा स्त्री० [देश०] बाँस के फट्टों, कास, मूँज, बेंत आदि की बनी डलिया। उ—प्रसादी जल की मथनी में झारी ढलाय सिकोली में बीड़ा ढलाय, कसेंड़ी में चरणामृत ढलाय, पाछे पात्र सब धोय साजि के ठिकाने धरिये।—वल्लभपुष्टि मार्ग।

सिकोही-वि० [फ़ा० शिकोह=तड़क भड़क] (१) आनबानवाला। गर्वीला। दर्पवाला। (२) वीर। बहादुर। उ०—तरवार सिरोही सोहती। लाख सिकोही कोहती।—गोपाल।

सिक्कक-संज्ञा पुं० [सं०] बाँसुरी में लगाने की जीभी या उसके स्वर को मधुर बनाने के लिए लगाया हुआ तार।

सिक्कड़-संज्ञा पुं० दे० "सीकड़"।

सिक्कर-संज्ञा पुं० दे० "सीकड़"। उ०—अकरि अकरि करि डकरि डकरि वर पकरि पकरि कर सिक्कर फिरावते।—गोपाल।

सिक्का-संज्ञा पुं० [अ० सिक्कः] (१) मुहर। मुद्रा। छाप। ठप्पा। (२) रुपए, पैसे आदि पर की राजकीय छाप। मुद्रित चिह्न। (३) राज्य के चिह्न आदि से अंकित धातु खंड जिसका व्यवहार देश के लेन देन में हो। टकसाल में ढला हुआ धातु का टुकड़ा जो निर्दिष्ट मूल्य का धन माना जाता है। रुपया, पैसा, अशरफी आदि। मुद्रा।

मुहा०—**सिक्का बैठना या जमना**=(१) अधिकार स्थापित होना। प्रभुत्व होना। (२) आतंक जमना। प्रधानता प्राप्त होना। रोब जमना। धाक जमना। **सिक्का बैठाना या जमाना**=(१) अधिकार स्थापित करना। प्रभुत्व जमाना। (२) आतंक जमाना। प्रधानता प्राप्त करना। रोब जमाना। **सिक्का पड़ना**=सिक्का ढलना।

(४) पदक। तमगा। (५) माल का वह दाम जिसमें दलाली न शामिल हो। (दलाल) (६) मुहर पर अंक बनाने का ठप्पा। (७) नाव के मुँह पर लगी एक हाथ लंबी लकड़ी। (८) लोहे की गावदुम पतली नली जिससे जलती हुई मशाल पर तेल टपकाते हैं। (९) वह धन जो

लड़की का पिता लड़के के पिता के पास सगाई पक्की होने के लिए भेजता है।

सिक्की-संज्ञा स्त्री० [अ० सिक्कः] (१) छोटा सिक्का। (२) आठ आने का सिक्का। अठन्नी।

सिक्ख-संज्ञा पुं० दे० "सिख"।

सिक्त-वि० [सं०] (१) सिंचित। सींचा हुआ। (२) भीगा हुआ। तर। गीला।

सिक्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उबाले हुए चावल का दाना। भात का एक दाना। सीथ। (२) भात का ग्रास या पिंड। (३) मोम। (४) मोतियों का गुच्छा (जो तौल में एक धरण हो। ३२ रत्ती तौल का मोतियों का समूह। (५) नील।

सिक्थक-संज्ञा पुं० दे० "सिक्थ"।

सिखंडी-संज्ञा पुं० दे० "शिखंडी"।

सिख-संज्ञा स्त्री० [सं० शिक्षा] सीख। शिक्षा। उपदेश। उ०—(क) राधा जू सों कहा कहौं ऐसिन की सुनै सिख, साँपिनि सहित विष रहित फननि की।—केशव। (ख) किती न गोकुल कुल बधू, काहि न किहि सिख दीन। कौने तजी न कुल गली ह्वै मुरली सुर लीन—बिहारी।

ॐ संज्ञा स्त्री० [सं० शिखा] शिखा। चोटी। जैसे,—नख सिख।

संज्ञा पुं० [सं० शिष्य] (१) शिष्य। चेला। (२) गुरु नानक तथा गुरु गोविंदसिंह आदि दस गुरुओं का अनुयायी संप्रदाय। नानकपंथी।

विशेष—इस संप्रदाय के लोग अधिकतर पंजाब में हैं।

सिख इमलो-संज्ञा पुं० [हिं० सिख+अ० इल्म या इमला] भालू को नाचना सिखाने की रीति।

विशेष—कलंदर लोग पहले हाथ में एक लोहे की चूड़ी पहनते हैं और उसे एक लकड़ी से बजाते हैं। इसी के इशारे पर भालू को नाचना सिखाते हैं।

सिखना†ॐ-क्रि० स० दे० "सीखना"।

सिखर-संज्ञा पुं० दे० "शिखर"।

संज्ञा पुं० दे० "सिकहर"।

सिखरन-संज्ञा स्त्री० [सं० श्रीखंड] दही मिला हुआ चीनी का शरबत जिसमें केसर, गरी आदि मसाले पड़े हों। उ०—(क) बासौंधी सिखरन अति सोभी। मिलै मिरच मेटत चकचौंधी।—सूर। (ख) सिखरन सौंध छनाई काढ़ी। जामा दही दूधि सों साढ़ी।—जायसी।

सिखलाना-क्रि० स० दे० "सिखाना"।

सिखा-संज्ञा स्त्री० दे० "शिखा"।

सिखाना-क्रि० स० [सं० शिक्षण] (१) शिक्षा देना। उपदेश देना। बतलाना। (२) पढ़ाना। (३) धमकाना। दंड देना। ताड़ना करना।

यौ०—सिखाना पढ़ाना = चालें बताना। चालाकी सिखाना। जैसे,—उसने गवाहों को सिखा पढ़ाकर खूब पक्का कर दिया है।

सिखापन-संज्ञा पुं० [सं० शिक्षा+हिं० पन] (१) शिक्षा। उपदेश। उ०—(क) साजिकै सिंगार ससिमुखी काज, सजनी वै ल्याई केलि मंदिर सिखापन सिखायै सी।—प्रतापनारायण। (ख) सचिव सिखापन मधुर सुनायौ। मुदित सबहुँ परनाम सुहायौ।—पद्माकर। (२) सिखाने का काम।

सिखावन-संज्ञा पुं० [सं० शिक्षण] सीख। शिक्षा। उपदेश। उ०—(क) का मैं मरन सिखावन सिखी। आयो मरै मीच हति लिखी।—जायसी। (ख) उनको यह मैं दीन्ह सिखावन। थाहहु मध्यम कांड सुहावन।—विश्राम।

सिखावनाॐ†-क्रि० स० दे० "सिखाना"।

सिखिरॐ-संज्ञा पुं० (१) दे० "शिखर"। (२) पारसनाथ पहाड़ जो जैनों का तीर्थ है।

सिखी-संज्ञा पुं० दे० "शिखी"। उ०—(क) धुनि सुनि उतै सिखी नाचैं, सिखी नाचैं इते, पी करैं पपीहा उतै इते प्यारी सी करैं।—प्रतापनारायण। (ख) सिखी सिखिर तनु धातु विराजति सुमन सुगंध प्रवाल।—सूर।

सिगनल-संज्ञा पुं० दे० "सिकंदरा"।

सिगराॐ†-वि० [सं० समग्र] [स्त्री० सिगरी] सब। संपूर्ण। सारा। उ०—(क) त्यों पद्माकर साँझही ते सिगरी निसि केलि कला परगासी।—पद्माकर। (ख) सिगरे जग माँझ हँसावत हैं। रघुबंसिन पाप नसावत हैं।—केशव।

सिगरेट-संज्ञा पुं० [अं०] तंबाकू भरी हुई कागज़ की बत्ती जिसका धुआँ लोग पीते हैं। छोटा सिगार।

सिगरो, सिगरौॐ†-वि० दे० "सिगरा"। उ०—(क) सिगरोई दूध पियो मेरे मोहन बलहि न देवहु बाटी। सूरदास नँद लेहु दोहनी दुहहु लाल की नाटी।—सूर। (ख) कुल मंडन छत्रसाल बुँदेला। आपु गुरु सिगरौ जग चेला।—लाल कवि।

सिगा-संज्ञा स्त्री० [फा० सेहगाह] चौबीस शोभाओं में से एक। (संगीत)

सिगार-संज्ञा पुं० [अं०] चुरुट।

सिगोती-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

सिगोन-संज्ञा स्त्री० [सं० सिगता, सिकता] नालों के पास पाई जानेवाली लाल रेत मिली मिट्टी।

सिचानॐ-संज्ञा पुं० [सं० संचान] बाज पक्षी। उ०—निति संसौ हंसौ बचतु, मानौ इहि अनुमान। बिरह अगनि लपटनि सकै, झपट न मीच सिचान।—बिहारी।

सिच्छा-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "शिक्षा"। उ॰—सैन बैन सब साथ है मन में सिच्छा भाव। तिल आपन श्रृंगार रस सकल रसन को राव।—मुबारक।

सिजदा-संज्ञा पुं॰ [अ॰] प्रणाम। दंडवत। माथा टेकना। सिर झुकाना। (मुसल॰)

सिजल-वि॰ [हिं॰ सजीला] जो देखने में अच्छा लगे। सुंदर।

सिजली-संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार का पौधा जो दवा के काम में आता है।

सिजादर-संज्ञा पुं॰ [देश॰] पाल के चौखूँटे किनारे मे बँधा हुआ रस्सा, जिसके सहारे पाल चढ़ाया जाता है।

सिझना-क्रि॰ अ॰ [सं॰ सिद्ध] आँच पर पकना। सिझाया जाना।

सिझाना-क्रि॰ स॰ [सं॰ सिद्ध, प्रा॰ सिज्झ + आना (प्रत्य॰)] (१) आँच पर गलाना। पकाकर गलाना। (२) पकाना। राँधना। उबालना। (३) मिट्टी को पानी देकर पैर से कुचल और साफ करके बरतन बनाने योग्य बनाना। (४) शरीर को तपाना या कष्ट देना। तपस्या करना। उ॰—लेत घूँट भरि पानि सु-रस सुरदानि रिझाई। पपीहरगो तप साधि जपी तन तपन सिझाई।—सुधाकर।

सिटकिनी-संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] किवाड़ों के बंद करने या अड़ाने के लिए लगी हुई लोहे या पीतल की छड़। अगरी। चटकनी। चटखनी।

सिटनल-संज्ञा पुं॰ दे॰ "सिगनल"।

सिटपिटाना-क्रि॰ अ॰ [अनु॰] (१) दब जाना। मंद पड़ जाना। (२) किंकर्तव्य-विमूढ़ होना। स्तब्ध हो जाना। (३) सकुचाना। उ॰—पहले तो पंच जी बहुत सिटपिटाये, किंतु सबों का बहुत कुछ आग्रह देख सभापति की कुर्सी पर जा डटे।—बालमुकुंद।

सिटी-संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] नगर। शहर।

सिट्टी-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सीटना] बहुत बढ़ बढ़कर बोलना। वाक्पटुता।

मुहा॰—सिट्टी भूलना = घबरा जाना। सिटपिटा जाना।

सिट्टी-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "सीठी"।

सिठनी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अशिष्ट] विवाह के अवसर पर गाई जानेवाली गाली। सीठना।

सिठाई-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सीठा] (१) फीकापन। नीरसता। (२) मंदता।

सिड़-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सिड़ी] (१) पागलपन। उन्माद। बावलापन। (२) सनक। धुन।

क्रि॰ प्र॰—चढ़ना।

मुहा॰—सिड़ सवार होना = सनक होना। धुन होना।

सिड़पन, सिड़पना-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सिड़ + पन (प्रत्य॰)] (१) पागलपन। बावलापन। (२) सनक। धुन।

सिड़बिल्ला-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सिड़ी + बिल्ला] [स्त्री॰ सिड़बिल्ली] (१) पागल। बावला। (२) बेवकूफ। भोंदू। बुद्धू।

सिड़िया-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सीढ़ी] डेढ़ हाथ लंबी लकड़ी जिसमें बुनते समय बादला बँधा रहता है।

सिड़ी-वि॰ [सं॰ सृणीक] [स्त्री॰ सिड़िन] (१) पागल। दीवाना। बावला। उन्मत्त। (२) सनकी। धुनवाला। (३) मनमौजी। मनमाना काम करनेवाला।

सितंबर-संज्ञा पुं॰ [अं॰] अँगरेजी नवाँ महीना। अक्तूबर से पहले और अगस्त के पीछे का महीना।

सित-वि॰ [सं॰] (१) श्वेत। सफेद। उजला। शुक्ल। उ॰—अरुण असित सित वपु उनहार। करत जगत में तुम अवतार।—सूर। (२) उज्ज्वल। शुभ्र। दीप्त। चमकीला। (३) स्वच्छ। साफ। निर्मल।

संज्ञा पुं॰ (१) शुक्र ग्रह। (२) शुक्राचार्य्य। (३) शुक्ल पक्ष। उजाला पाख। (४) चीनी। शक्कर। (५) सफ़ेद कचनार। (६) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (७) मूली। मूलक। (८) चंदन। (९) भोजपत्र। (१०) सफ़ेद तिल। (११) चाँदी।

सितकंगु-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] राल। सर्जनिर्यास।

सितकंठ-वि॰ [सं॰] जिसकी गर्दन सफेद हो। सफेद गर्दनवाला।

संज्ञा पुं॰ मुर्गाबी। दात्यूह पक्षी।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ शितिकंठ] महादेव। शिव। उ॰—नीलकंठ सितकंठ शंभु हर। महाकाल कंकाल कृपाकर।—सबलसिंह।

सितकटभी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार का पेड़।

सितकर-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) भीमसेनी कपूर। (२) चंद्रमा।

सितकरा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नीली दूब।

सितकर्णी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] अडूसा। वासक।

सितकाच-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) हलब्बी शीशा। (२) बिल्लौर।

सितकारिका-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बला या बरियारा नामक पौधा।

सितकुंजर-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) ऐरावती हाथी। (२) (ऐरावत हाथीवाले) इंद्र।

सितकुंभी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] श्वेत पाटल। सफेद पाँड़र का पेड़।

सितक्षार-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सुहागा।

सितक्षुद्रा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सफेद फूल की भटकटैया। श्वेत कंटकारी।

सितचिह्न-संज्ञा पुं॰ [सं॰] खैरा मछली। छिपुआ मछली।

सितच्छत्र-संज्ञा पुं॰ [सं॰] श्वेत राजछत्र।

सितच्छत्रा, सितच्छत्री-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) सौंफ। (२) सोआ।

सितच्छद-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) हंस। मराल। (२) लाल सहिंजन। रक्त शोभांजन।

सितच्छदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब ।
सितजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मधुखंड । मधुशर्करा ।
सितजफल-संज्ञा पुं० [सं०] मधु नारियल ।
सितजाम्रक-संज्ञा पुं० [सं०] कलमी आम ।
सितता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेदी । श्वेतता ।
सिततुरग-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन ।
सितदर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कुश ।
सितदीधिति-संज्ञा पुं० [सं०] (सफेद किरनवाला) चंद्रमा ।
सितदीप्य संज्ञा पुं० [सं०] सफेद जीरा ।
सितद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लता ।
सितद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्लवर्ण वृक्ष । अर्जुन । (२) मोरट । क्षीर मोरट ।
सितद्विज-संज्ञा पुं० [सं०] हंस ।
सितधातु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्ल वर्ण की धातु । (२) खरी । खरिया मिट्टी । दुद्धी ।
सितपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] हंस ।
सितपच्छ‡-संज्ञा पुं० दे० "सितपक्ष" ।
सितपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्कपुष्पी । अंधाहुली ।
सितपुंखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा ।
सितपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तगर का पेड़ या फूल । गुल चाँदनी । (२) एक प्रकार का गन्ना । (३) सिरिस का पेड़ । श्वेत रोहित । (४) पिंड खजूर ।
सितपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बला । बरियारा । (२) कंघी का पौधा । (३) एक प्रकार की चमेली । मल्लिका ।
सितपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दागवाला कोढ़ । श्वेत कुष्ठ । फूल । चरक ।
सितपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्वेत अपराजिता । (२) कैवर्त मुस्तक । केवटी मोथा नाम की घास । (३) काँस नामक तृण । (४) नागदंती । (५) नागवल्ली । पान ।
सितप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी ।
सितभानु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा । उ०—सुखहि अलक को छूटिबो अवसि करै दुतिमान । बिन विभावरी के नहीं जगमगात सितभान ।—रामसहाय ।
सितम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) गजब । अनर्थ । आफत । (२) अनीति । जुल्म । अत्याचार ।
सितमगर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] ज़ालिम । अन्यायी । दुःखदायी ।
सितमणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्फटिक । बिल्लौर ।
सितमरिच-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद मिर्च । (२) शिग्रु बीज । सहिंजन के बीज ।
सितमाष-संज्ञा पुं० [सं०] राजमाष । लोबिया । बोड़ा ।
सितरंज-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर । कपूर ।
सितरंजन-संज्ञा पुं० [सं०] पीत वर्ण । पीला रंग ।
सितरश्मि-संज्ञा पुं० [सं०] (सफेद किरनोंवाला) चंद्रमा ।
सितराग-संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी । रजत । रौप्य ।
सितरुचि-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।
सितरुती-संज्ञा स्त्री० [देश०] गंध पलाशी । कपूर कचरी ।
विशेष—पहाड़ी लोग इसकी पत्तियों की चटाइयाँ बनाते हैं ।
सितलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] अमृतवल्ली नामक लता ।
सितली-संज्ञा स्त्री० [सं० शीतल] वह पसीना जो बेहोशी या अधिक पीड़ा के समय शरीर से निकलता है ।
क्रि० प्र०—छूटना ।
सितवराह-संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत वराह ।
सितवराहपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । धरती । उ०—सित वराह तिय ख्यात सुजस नरसिंह कोप धर । सँग भट बावन सहस सबै भृगुपति सम धनुधर ।—गोपाल ।
सितवर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] खिरनी । क्षीरिणी ।
सितवर्षाभू-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद पुनर्नवा ।
सितवल्लरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली जामुन । कठ जामुन ।
सितवल्लीज-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मिर्च ।
सितवाजी-संज्ञा पुं० [सं० सितवाजिन्] अर्जुन ।
सितवार, सितवारक-संज्ञा पुं० [सं०] शालिंच शाक । शांति शाक ।
सितवारिक-संज्ञा पुं० [सं०] सैंहली । सिंहली पीपल ।
सितशिंबिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गेहूँ ।
सितशिव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेंधा नमक । (२) शमी का पेड़ ।
सितशूक-संज्ञा पुं० [सं०] जौ । यव ।
सितशूरण-संज्ञा पुं० [सं०] बन सूरण । सफेद जमींकंद ।
सितशृंगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतीस । अतिविषा ।
सितसप्ति-संज्ञा पुं० [सं०] (सफेद घोड़ेवाले) अर्जुन ।
सितसागर-संज्ञा पुं० [सं०] क्षीर सागर । उ०—सित सागर ते छबि उज्ज्वल जा की । जनु बैठक सोहत है कमला की ।—गुमान ।
सितसार, सितसारक-संज्ञा पुं० [सं०] शालिंच शाक । शांति शाक । लोह मारक ।
सितसिंधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षीर समुद्र । (२) गंगा ।
सितसिंही-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद भटकटैया । श्वेत कंटकारी ।
सितसिद्धार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद या पीली सरसों जो मंत्र या झाड़ फूँक में काम आती है ।
सितसूर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर । आदित्यभक्ता ।
सितहूण-संज्ञा पुं० [सं०] हूणों की एक शाखा ।
सितांक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली । बालुकागड़ मत्स्य ।

सितांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्वेत रोहितक वृक्ष। रोहिड़ा सफेद। (२) बेला। वार्षिकी पुष्प वृक्ष।

सितांबर-वि० [सं०] श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले।
संज्ञा पुं० जैनों का श्वेतांबर संप्रदाय।

सितांशु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

सिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चीनी। शकर। शर्करा। उ०—दूध औटि तेहि सिता मिलाऊँ। मैं नारायण भोग लगाऊँ।—रघुराज। (२) शुक्ल पक्ष। उ०—चैत चारु नौमी सिता मध्य गगन गत भानु। नखत जोग ग्रह लगन भल दिन मंगल मोद विधानु।—तुलसी। (३) मल्लिका। मोतिया। (४) श्वेत कंटकारी। सफेद भटकटैया। (५) बकुची। सोमराजी। (६) विदारीकंद। (७) श्वेतदूर्वा। (८) चाँदनी। चंद्रिका। (९) कुटुंबिनी का पौधा। (१०) मद्य। शराब। (११) पिंगा। (१२) त्रायमाणा लता। (१३) अर्कपुष्पी। अंधाहुली। (१४) बच। (१५) सिंहली पीपल। (१६) आमड़ा। आम्रातक। (१७) गोरोचन। (१८) वृद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (१९) चाँदी। रजत। रूपा। (२०) श्वेत निसोथ। (२१) त्रिसंधि नामक पुष्प वृक्ष। (२२) पुनर्नवा। सफेद गदहपूरना। (२३) पहाड़ी अपराजिता। (२४) सफेद पाड़र। पाटला वृक्ष। (२५) सफेद सेम। (२६) मूर्वा। गोकर्णी लता। मुरा।

सिताइश-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) तारीफ़। प्रशंसा। (२) धन्यवाद। शुक्रिया। (३) वाहवाही। शाबाशी।

सिताखंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मधु शर्करा। शहद से बनाई हुई शक्कर। (२) मिस्री।

सिताख्य-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मिर्च।

सिताख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब।

सिताग्र-संज्ञा पुं० [सं०] काँटा। कंटक।

सिताजाजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद मिर्च।

सितादि-संज्ञा पुं० [सं०] शकर आदि का कारण या पूर्व रूप, गुड़।

सितानन-वि० [सं०] सफेद मुँहवाला।
संज्ञा पुं० (१) गरुड़। (२) बेल। बिल्व वृक्ष।

सितापांग-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

सिताब†-क्रि० वि० [फ़ा० शिताब] जल्दी। तुरंत। झटपट। उ०—प्रीतम आवत जानि कै भिस्ती नैन सिताब। हित मग मैं कर देत हैं अँसुवन को छिरकाव।—रसनिधि।

सिताभ-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

सिताभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तका। तक्राह्वा क्षुप।

सिताभ्र सिताभ्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद बादल। (२) कपूर। कर्पूर।

सितांभोधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद पाँडर। श्वेत पाटला।

सितायुध-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

सितार-संज्ञा पुं० [सं० सप्त + तार, फ़ा० सेहतार] एक प्रकार का प्रसिद्ध बाजा जो लगे हुए तारों को उँगली से झनकारने से बजता है। एक प्रकार की वीणा।
विशेष—यह काठ की दो ढाई हाथ लंबी और ४-५ अंगुल चौड़ी पटरी के एक छोर पर गोल कद्दू की तूँबी जड़कर बनाया जाता है। इसका ऊपर का भाग समतल और चिपटा होता है और नीचे का गोल। समतल भाग पर तीन से लेकर सात तार लंबाई के बल में बँधे रहते हैं।

सितारबाज-संज्ञा पुं० [हिं० सितार + फ़ा० बाज] सितार बजानेवाला। सितारिया।

सितारा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सितारः] (१) तारा। नक्षत्र। (२) भाग्य। प्रारब्ध। नसीब।
मुहा०—सितारा चमकना = भाग्योदय होना। अच्छी किस्मत होना। सितारा बलंद होना = दे० 'सितारा चमकना'। सितारा मिलना = (१) फलित ज्योतिष में ग्रह मैत्री मिलना। गणना बैठना। (२) मन मिलना। परस्पर प्रेम होना।
(३) चाँदी या सोने के पत्तर की बनी हुई छोटी गोल बिंदी के आकार की टिकिया जो कामदार टोपी, जूते आदि में टाँकी जाती है या शोभा के लिये चेहरे पर चिपकाई जाती है। चमकी।
संज्ञा पुं० दे० "सितार"। उ०—जलतरंग कानून अमृत कुंडली सुबीना। सारंगी रु रबाब सितारा महुवर कीना।—सूदन।

सितारापेशानी-वि० [फ़ा०] (घोड़ा) जिसके माथे पर अँगूठे से छिप जाने योग्य सफेद टीका या बिंदी हो। (ऐसा घोड़ा बहुत ऐबी समझा जाता है।)

सितारिया-संज्ञा पुं० [फ़ा० सितार + इया] सितार बजानेवाला।

सितारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सितार] छोटा सितार। छोटा तंबूरा।

सितारेहिंद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार की उपाधि जो सरकार की ओर से सम्मानार्थ दी जाती है।
विशेष—यह शब्द वास्तव में अंगरेजी वाक्य "स्टार आफ़ इंडिया" का अनुवाद है।

सितालर्क, सितालक-संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत अर्क। सफेद मदार।

सितालता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अमृतवल्ली। अमृतस्रवा। (२) सफेद दूब।

सितालि कटभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] किंकिणी वृक्ष। सफेद कटभी।

सितालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ताल की सीपी। जल सीप। शुक्ति। सितुहा।

सिताव-संज्ञा स्त्री० [देश०] बरसात में उगनेवाला एक पौधा जो दवा के काम में आता है। सर्पदंष्ट्रा। पीतपुष्पा। विषाग्रह। दूर्वपत्रा। त्रिकोणबीजा।

विशेष—यह पौधा हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा और झाड़दार होता है। इसकी पत्तियाँ दूब से मिलती जुलती होती हैं। इसके डंठल भी हरे रंग के होते हैं। इसका मूसला कत्थई रंग का और बहुत बारीक रेशों से युक्त होता है। इसमें अंगुल डेढ़ अंगुल घेरे के गोल पीले फूल लगते हैं। इसके फलों की नोक पर बैंगनी रंग का लंबा सूत सा निकला होता है। फलों के भीतर तिकोने कत्थई रंग के बीज होते हैं। यही बीज विशेषतः औषध के काम में आते हैं और सिताव के नाम से बिकते हैं। ये बहुत कड़वे और गंधयुक्त होते हैं। इस पौधे की जड़ और पत्तियाँ भी दवा के काम में आती हैं। वैद्यक में सिताव गरम, कड़वी, दस्तावर तथा वात कफ को नाश करनेवाली, रुधिर को शुद्ध करनेवाली, बल-वीर्य और दूध को बढ़ानेवाली तथा पित्त के रोगों में लाभकारी कही गई है।

सितावभेद–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जिसके सब अंग औषध के काम में आते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ लंबी, गँठीली और कटावदार होती हैं और उनमें से तेल की सी कटु गंध आती है। फूल पीला-पन लिए होते हैं। फलों में चार बीजकोश होते हैं जिनमें से प्रत्येक में ७ या ८ बीज होते हैं।

सितावर–संज्ञा पुं० [सं०] सिरियारी। सुनिष्णक शाक। सुसना का साग।

सितावरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमराजी।

सिताश्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्जुन का एक नाम। (२) चंद्रमा।

सितासित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्वेत और श्याम। सफेद और काला। उ०—कुच तें श्रम जलधार चलि मिलि रोमावलि रंग। मनो मेरु की तरहटी भयो सितासित संग।—मतिराम। (२) बलदेव। (३) शुक्र के सहित शनि। (४) जमुना के सहित गंगा।

सितासित रोग–संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग।

सितासिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमराजी।

सिताह्वय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्र ग्रह। (२) श्वेत रोहित वृक्ष। (३) सफेद फूलों का सहिंजन। (४) सफेद या हरे डंठल की तुलसी।

सिति–वि० दे० "शिति"।

सितिकंठ–संज्ञा पुं० [सं० शितिकंठ] नीलकंठ। शिव। महादेव।

सितिमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेतता। सफेदी।

सितिवार, सितिवारक–संज्ञा पुं० [सं० शितिवार] (१) शिरियारी शाक। सुसना का साग। (२) कुड़ा। कुटज वृक्ष। कोरैया।

सितिवास–संज्ञा पुं० [सं० शितिवासस्] (नीले वस्त्रवाले) बलराम।

सितिसारक–संज्ञा पुं० [सं०] शांति शाक। शालिंच शाक।

सितुई–संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्ति] ताल की सीपी। सुतुही। सितुही।

सितुही–संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्तिका] ताल की सीपी। सुतुही।

सितून–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) स्तंभ। खंभा। थूनी। (२) लाट। मीनार।

सितेतर–वि० [सं०] (श्वेत से भिन्न) काला या नीला।
संज्ञा पुं० (१) कृष्ण धान्य। काला धान। (२) कुलथी। कुरथी।

सितेतरगति–संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि। आग।

सितोत्पल–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कमल।

सितोदर–संज्ञा पुं० [सं०] (श्वेत उदरवाला) कुबेर।

सितोदरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (श्वेत उदरवाली) एक प्रकार की कौड़ी।

सितोद्भव–संज्ञा पुं० [सं०] चंदन। संदल।
वि० चीनी से उत्पन्न या बना हुआ।

सितोपल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कठिनी। खड़ी। खरिया मिट्टी। दुद्धी। (२) बिल्लौर। स्फटिक मणि।

सितोपला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मिस्त्री। (२) चीनी। शक्कर।

सिथिल‡–वि० दे० "शिथिल"।

सिद–संज्ञा पुं० [देश०] बाकली।

सिदका–संज्ञा पुं० दे० "सदक़ा"।

सिदरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सेहदरी] तीन दरवाजोंवाला कमरा या बरामदा। तिदुवारी दालान। उ०—बहु बेलिन बूटन संयुत सोहैं। परदा सिदरीन लगे मन मोहैं।—गुमान।

सिदामा–संज्ञा पुं० दे० "श्रीदामा"।

सिदिक–वि० [अ० सिद्क] सच्चा। सत्य। उ०—अबा बकर सिदीक सयाने। पहिले सिदिक दीन वै आने।—जायसी।

सिद्गुंड–संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्णसंकर पुरुष जिसका पिता ब्राह्मण और माता पराजकी हो।

सिद्ध–वि० [सं०] (१) जिसका साधन हो चुका हो। जो पूरा हो गया हो। जो किया जा चुका हो। संपन्न। संपादित। निबटा हुआ। अंजाम दिया हुआ। जैसे,—कार्य्य सिद्ध होना। (२) प्राप्त। सफल। हासिल। उपलब्ध। जैसे,—मनोरथ सिद्ध होना, प्रयत्न सिद्ध होना, उद्देश्य सिद्ध होना। (३) प्रयत्न में सफल। कृतकार्य्य। जिसका मतलब पूरा हो चुका हो। कामयाब। (४) जिसका तप या योग-साधन पूरा हो चुका हो। जिसने योग या तप द्वारा अलौकिक लाभ या सिद्धि प्राप्त की हो। पहुँचा हुआ। जैसे,—बाबा जी बड़े सिद्ध महात्मा हैं। (५) करामाती। योग की विभूतियाँ दिखानेवाला। (६) मोक्ष का अधिकारी। (७) लक्ष्य पर पहुँचा हुआ। निशाने पर बैठा हुआ। (८) जो ठीक घटा हो। जिस (कथन) के अनुसार कोई बात हुई हो। जैसे,—वचन सिद्ध होना, आशीर्वाद सिद्ध होना। (९) जो तर्क या प्रमाण द्वारा निश्चित हो।

प्रमाणित। साबित। निरूपित। जैसे,—अपराध सिद्ध करना। कथन को सत्य सिद्ध करना। व्याकरण का प्रयोग सिद्ध करना। (१०) जिसका फैसला या निबटारा हो गया हो। फैसल। निर्णीत। (११) शोधित। अदा किया हुआ। चुकता। (ऋण आदि) (१२) संघटित। अंतर्भूत। जैसे,—स्वभाव-सिद्ध बात। (१३) जो अनुकूल किया गया हो। कार्य्य-साधन के उपयुक्त बनाया हुआ। गौं पर चढ़ा हुआ। जैसे,—उसको हम कुछ रुपए देकर सिद्ध कर लेंगे। (१४) आँच पर मुलायम किया हुआ। सीझा हुआ। पका हुआ। उबला हुआ। जैसे,—सिद्ध अन्न। (१५) प्रसिद्ध। विख्यात। (१६) बना हुआ। तैयार। प्रस्तुत।

संज्ञा पुं० (१) वह जिसने योग या तप में सिद्धि प्राप्त की हो। योग या तप द्वारा अलौकिक शक्ति-प्राप्त पुरुष। जैसे,—यहाँ एक सिद्ध आए हैं। (२) कोई ज्ञानी या भक्त महात्मा। मोक्ष का अधिकारी पुरुष। (३) एक प्रकार के देवता। एक देवयोनि।

विशेष—सिद्धों का निवास स्थान भुवर्लोक कहा गया है। वायुपुराण के अनुसार उनकी संख्या अठासी हज़ार है और वे सूर्य्य के उत्तर और सप्तर्षि के दक्षिण अंतरिक्ष में वास करते हैं। वे अमर कहे गए हैं, पर केवल एक कल्प भर तक के लिए। कहीं कहीं सिद्धों का निवास गंधर्व, किन्नर आदि के समान हिमालय पर्वत भी कहा गया है।

(४) अर्हत। जिन। (५) ज्योतिष का एक योग। (६) व्यवहार। मुक़दमा। मामला। (७) काला धतूरा। (८) गुड़। (९) ज्योतिष में विष्कंभ आदि २७ योगों में से इक्कीसवाँ योग। (१०) कृष्ण सिंदुवार। काली निर्गुंडी। (११) सफेद सरसों।

सिद्धक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सँभालू। सिंदुवार वृक्ष। (२) शाल वृक्ष। साखू।

सिद्धकाम-वि० [सं०] (१) जिसकी कामना पूरी हुई हो। जिसका प्रयोजन सिद्ध हो चुका हो। (२) सफल। कृतार्थ।

सिद्धकामेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामाख्या अर्थात् दुर्गा की पंचमूर्ति के अंतर्गत प्रथम मूर्ति।

सिद्धकारी-संज्ञा पुं० [सं० सिद्धकारिन्] [स्त्री० सिद्धकारिणी] धर्म-शास्त्र के अनुसार आचरण करनेवाला।

सिद्धक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ योग या तंत्र प्रयोग जल्दी सिद्ध हो। (२) दंडक वन के एक विशेष भाग का नाम।

सिद्धगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदाकिनी। आकाश गंगा। स्वर्ग गंगा।

सिद्ध गति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मतानुसार वे कर्म जिनसे मनुष्य सिद्ध हो।

सिद्धगुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मंत्र-सिद्ध गोली जिसे मुँह में रख लेने से अदृश्य होने आदि की अद्भुत शक्ति आ जाती है।

सिद्धग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रेत जो उन्माद रोग उत्पन्न करता है।

सिद्धजल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कांजी। (२) औटा हुआ जल।

सिद्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिद्ध होने की अवस्था। (२) प्रमाणिकता। सिद्धि। (३) पूर्णता।

सिद्धत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धता।

सिद्धदेव-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

सिद्धधातु-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

सिद्धनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिद्धेश्वर। महादेव। (२) गुलतुर्रा।

सिद्धनामक-संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक वृक्ष। आवुटा।

सिद्धपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी प्रतिज्ञा या बात का वह अंश जो प्रमाणित हो चुका हो। (२) प्रमाणित बात। साबित बात।

सिद्धपथ-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश। अंतरिक्ष।

सिद्धपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद के एक अनुचर का नाम।

सिद्धपीठ-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ योग, तप या तांत्रिक प्रयोग करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त हो। उ०—साहसी समीरसूनु नीरनिधि लंघि लखि लंक सिद्धपीठ निसि जागो है मसान सो।—तुलसी।

सिद्धपुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित नगर जो किसी के मत से पृथ्वी के उत्तरी छोर पर और किसी के मत से दक्षिण या पाताल में है। (ज्योतिष)

सिद्धपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] करवीर। कनेर का पेड़।

विशेष—यह सिद्ध लोगों को प्रिय और यंत्रसिद्धि में प्रयुक्त किया जाता है।

सिद्धप्रयोजन-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सरसों। श्वेत सर्षप।

सिद्धभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिद्धपीठ। सिद्धक्षेत्र।

सिद्धमंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सिद्ध किया हुआ मंत्र।

सिद्धमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक देवी का नाम। (२) एक प्रकार की लिपि।

सिद्धमोदक-संज्ञा पुं० [सं०] तुरंजबीन की खाँड़। तवराजखंड।

सिद्धयामल-संज्ञा पुं० [सं०] एक तंत्र का नाम।

सिद्धयोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष का एक योग। (२) एक यौगिक रसौषध।

सिद्धयोगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक योगिनी का नाम।

सिद्धयोगी-संज्ञा पुं० [सं० सिद्धयोगिन्] शिव। महादेव।

सिद्धर-संज्ञा पुं० [?] एक ब्राह्मण जो कंस की आज्ञा से कृष्ण

को मारने आया था। उ०—सिद्ध बाँभन करम कसाई। कहौं कंस सों बचन सुनाई।—सूर।

सिद्धरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारा। पारद। (२) रसेंद्र दर्शन के अनुसार वह योगी जिसमे पारा सिद्ध हो गया हो। सिद्ध रसायनी।

सिद्धरसायन-संज्ञा पुं० [सं०] वह रसौषध जिससे दीर्घ जीवन और अद्भुत शक्ति प्राप्त हो।

सिद्धलक्ष-वि० [सं०] जिसका निशाना खूब सधा हो। जो कभी न चूके।

सिद्धवस्ति-संज्ञा पुं० [सं०] तैल आदि की वस्ति या पिचकारी। (आयुर्वेद)

सिद्धविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक महाविद्या का नाम।

सिद्धविनायक-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश की एक मूर्ति।

सिद्धशिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के अनुसार ऊर्ध्वलोक का एक स्थान।

विशेष—कहते हैं कि यह शिला स्वर्गपुरी के ऊपर ४५ लाख योजन लंबी, इतनी ही चौड़ी तथा ८ योजन मोटी है। मोती के श्वेतहार या गो-दुग्ध से भी उज्ज्वल है; सोने के समान दमकती हुई और स्फटिक से भी निर्मल है। यह चौदहवें लोक की शिखा पर है और इसके ऊपर शिवपुर धाम है। यहाँ मुक्त पुरुष रहते हैं। यहाँ किसी प्रकार का बंधन या दुःख नहीं है।

सिद्धसंकल्प-वि० [सं०] जिसकी सब कामनाएँ पूरी हों।

सिद्धसरित्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश गंगा। (२) गंगा।

सिद्धसलिल-संज्ञा पुं० [सं०] काँजी। सिद्धजल।

सिद्धसाधक-संज्ञा पुं० [सं०] सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला, कल्प वृक्ष।

सिद्धसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिद्धि के लिये योग या तंत्र की क्रिया का अनुष्ठान। (२) सफेद सरसों। (३) प्रमाणित बात को फिर प्रमाणित करना।

सिद्धसाधित-वि० [सं०] जिसने व्यवहार द्वारा ही चिकित्सा का अनुभव प्राप्त किया हो, शास्त्र के अध्ययन द्वारा नहीं।

सिद्ध साध्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मंत्र।

वि० (१) जो किया जानेवाला काम पूरा कर चुका हो। (२) प्रमाणित। साबित।

सिद्धसिंधु-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश गंगा।

सिद्धसुसिद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मंत्र।

सिद्धसेन-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

सिद्धसेवित-संज्ञा पुं० [सं०] शिव या भैरव का एक रूप।

सिद्धस्थाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिद्ध योगियों की बटलोई जिसमें से आवश्यकतानुसार जितना चाहे उतना भोजन निकाला जा सकता है।

विशेष—कहते हैं कि इस प्रकार की एक बटलोई व्यास जी ने पांडवों के वनवास के समय द्रौपदी को दी थी।

सिद्धहस्त-वि० [सं०] (१) जिसका हाथ किसी काम में मँजा हो। (२) कार्य्य कुशल। प्रवीण। निपुण।

सिद्धांगना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिद्ध नामक देवताओं की स्त्रियाँ।

सिद्धांजन-संज्ञा पुं० [सं०] वह अंजन जिसे आँख में लगा लेने से भूमि के नीचे की वस्तुएँ (गड़े खज़ाने आदि) भी दिखाई देने लगती हैं।

सिद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली भाँति सोच विचार कर स्थिर किया हुआ मत। वह बात जिसके सदा सत्य होने का निश्चय मन में हो। उसूल। (२) प्रधान लक्ष्य। मुख्य उद्देश्य या अभिप्राय। ठीक मतलब। (३) वह बात जो विद्वानों या उनके किसी वर्ग या संप्रदाय द्वारा सत्य मानी जाती हो। मत।

विशेष—न्याय शास्त्र में सिद्धांत चार प्रकार के कहे गए हैं—सर्वतंत्रसिद्धांत, प्रतितंत्रसिद्धांत, अधिकरणसिद्धांत और अभ्युपगम सिद्धांत। सर्वतंत्र वह सिद्धांत है जिसे विद्वानों के सब वर्ग या संप्रदाय मानते हों अर्थात् जो सर्वसम्मत हो। प्रतितंत्र वह सिद्धांत है जिसे किसी शाखा के दार्शनिक मानते हों और किसी शाखा के जिसका विरोध करते हों। जैसे,—पुरुष या आत्मा असंख्य हैं, यह सांख्य का मत है, जिसका वेदांत विरोध करता है। अधिकरण वह सिद्धांत है जिसे मान लेने पर कुछ और सिद्धांत भी साथ मानने ही पड़ते हों—जैसे, यह मान लेने पर कि आत्मा केवल द्रष्टा है, कर्त्ता नहीं, यह मानना ही पड़ता है कि आत्मा मन आदि इंद्रियों से पृथक् कोई सत्ता है। अभ्युपगम वह सिद्धांत है जो स्पष्ट रूप से कहा न गया हो, पर सब स्थलों को विचार करने से प्रकट होता हो। जैसे, न्यायसूत्रों में कहीं यह स्पष्ट नहीं कहा गया है कि मन भी एक इंद्रिय है, पर मन-संबंधी सूत्रों का विचार करने पर यह बात प्रकट हो जाती है।

(४) सम्मति। पक्की राय। (५) निर्णीत अर्थ या विषय। नतीजा। तत्व की बात।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।—पर पहुँचना।

(६) पूर्व पक्ष के खंडन के उपरांत स्थिर मत। (७) किसी शास्त्र (ज्योतिष, गणित आदि) पर लिखी हुई कोई विशेष पुस्तक। जैसे,—सूर्य्य सिद्धांत, ब्रह्म सिद्धांत।

सिद्धांतज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धांत को जाननेवाला। तत्वज्ञ। विद्वान्।

सिद्धांताचार-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का आचार। एकाग्र चित्त से शक्ति की उपासना।

सिद्धांतित-वि० [सं०] तर्क द्वारा प्रमाणित। निर्णीत। निरूपित। साबित।

सिद्धांती-संज्ञा पुं० [सं० सिद्धान्तिन्] (१) तार्किक। (२) शास्त्र के तत्व को जाननेवाला।

सिद्धांतीय-वि० [सं०] सिद्धांत संबंधी।

सिद्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिद्ध की स्त्री। देवांगना। (२) एक योगिनी का नाम। (३) ऋद्धि नाम की जड़ी। (४) चंद्रशेखर के मत से आर्य्या छंद का १५वाँ भेद, जिसमें १३ गुरु और ३१ लघु होते हैं।

सिद्धाई-संज्ञा स्त्री० [सं० सिद्ध+हिं० आई] सिद्धपन। सिद्ध होने की अवस्था। उ०—झूठ मूठ जटा बढ़ाकर सिद्धाई करते और जप पुरश्चरण आदि में फँसे रहते हैं।—दयानंद।

सिद्धापगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश गंगा। (२) गंगा नदी।

सिद्धारि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मंत्र।

सिद्धार्थ-वि० [सं०] जिसकी कामनाएँ पूर्ण हो गई हों। सफल मनोरथ। पूर्णकाम।

संज्ञा पुं० (१) गौतम बुद्ध। (२) स्कंद के गणों में से एक। (३) राजा दशरथ का एक मंत्री। उ०—धृष्ट जयंतौ अरु विजय, सिद्धारथ पुनि नाम। तथा अर्थ साधक अपर, त्यों अशोक मतिधाम।—रघुराज। (४) साठ संवत्सरों में से एक। (५) जैनों के २४वें अर्हन् महावीर के पिता का नाम। (६) वह भवन जिसमें पश्चिम और दक्षिण ओर बड़ी शालाएँ (कमरे या हाल) हों।

सिद्धार्थक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्वेत सर्षप। सफ़ेद सरसों। (२) एक प्रकार का मरहम।

सिद्धार्थमति-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सिद्धार्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जैनों के चौथे अर्हत की माता का नाम। (२) सफ़ेद सरसों। (३) देशी अंजीर। (४) साठ संवत्सरों में से ५३वें संवत्सर का नाम।

सिद्धार्थी-संज्ञा पुं० [सं० सिद्धार्थिन्] साठ संवत्सरों में से ५३वें संवत्सर का नाम।

सिद्धासन-संज्ञा पुं० [सं०] हठ योग के ८४ आसनों में से एक प्रधान आसन।

विशेष—मलेंद्रिय और मूत्रेंद्रिय के बीच में बाएँ पैर का तलुवा तथा शिश्न के ऊपर दाहिना पैर और छाती के ऊपर चिबुक रखकर दोनों भौंहों के मध्य भाग को देखना 'सिद्धासन' कहलाता है।

सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काम का पूरा होना। पूर्णता। प्रयोजन निकलना। जैसे,—कार्य्य सिद्ध होना। (२) सफलता। कृतकार्य्यता। कामयाबी। (३) लक्ष्यवेध। निशाना मारना। (४) परिशोध। बेबाकी। चुकता होना। (ऋण का) (५) प्रमाणित होना। साबित होना। (६) किसी बात का ठहराया जाना। निश्चय। पक्का होना। (७) निर्णय। फैसला। निबटारा। (८) हल होना। (९) परिपक्वता। पकना। सीझना। (१०) वृद्धि। भाग्योदय। सुख-समृद्धि। (११) तप या योग के पूरे होने का अलौकिक फल। योग द्वारा प्राप्त अलौकिक शक्ति या संपन्नता। विभूति।

विशेष—योग की अष्टसिद्धियाँ प्रसिद्ध हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। पुराणों में ये आठ सिद्धियाँ और बतलाई गई हैं—अंजन, गुटका, पादुका, धातुभेद, बेताल, वज्र, रसायन और योगिनी। सांख्य में सिद्धियाँ इस प्रकार कही गई हैं—तार, सुतार, तारतार, रम्यक, आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक।

(१२) मुक्ति। मोक्ष। (१३) अद्भुत प्रवीणता। कौशल। निपुणता। कमाल। दक्षता। (१४) प्रभाव। असर। (१५) नाटक के छत्तीस लक्षणों में से एक जिसमें अभिमत वस्तु की सिद्धि के लिये अनेक वस्तुओं का कथन होता है। जैसे,—कृष्ण में जो नीति थी, अर्जुन में जो विक्रम था, सब आपकी विजय के लिये आप में आ जाय। (१६) ऋद्धि या वृद्धि नाम की ओषधि। (१७) बुद्धि। (१८) संगीत में एक श्रुति। (१९) दुर्गा का एक नाम। (२०) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म की पत्नी थी। (२१) गणेश की दो स्त्रियों में से एक। (२२) मेदासिंगी। (२३) भाँग। विजया। (२४) छप्पय छंद के ४१वें भेद का नाम जिसमें ३० गुरु और ९२ लघु कुल १२२ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (२५) राजा जनक की पुत्रवधू। लक्ष्मीनिधि की पत्नी।

सिद्धिद-वि० [सं०] सिद्धि देनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) वटुक भैरव। (२) पुत्रजीव वृक्ष। (३) बड़ा शाल वृक्ष।

सिद्धिदाता-संज्ञा पुं० [सं० सिद्धिदातृ] [स्त्री० सिद्धिदात्री] (सिद्धि देनेवाले) गणेश।

सिद्धिप्रद-वि० [सं०] [स्त्री० सिद्धिप्रदा] सिद्धि देनेवाला।

सिद्धिभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ योग या तप शीघ्र सिद्ध होता हो।

सिद्धियात्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह यात्री जो योग की सिद्धि प्राप्त करने के लिये यात्रा करता हो।

सिद्धियोग-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का शुभ योग।

सिद्धियोगनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक योगिनी का नाम।

सिद्धिरस-संज्ञा पुं० दे० "सिद्धरस"।

सिद्धिराज-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

सिद्धिली-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी पिपीलिका। छोटी चींटी।

सिद्धिसाधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद सरसों। (२) दमनक। दौने का पौधा।

सिद्धिस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुण्य स्थान। तीर्थ। (२) आयुर्वेद के ग्रंथ में चिकित्सा का प्रकरण।

सिद्धीश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) एक पुण्य क्षेत्र का नाम।

सिद्धेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सिद्धेश्वरी] (१) बड़ा सिद्ध। महायोगी। उ०—मत्स्यनाथ आदिक सिद्धेश्वर। श्री शैलादि बसैं श्री शंकर।—शंकरदिग्विजय। (२) शिव। महादेव। (३) गुलतुर्रा। शंखोदरी।

सिद्धोदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काँजी। कांजिक। (२) एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

सिद्धौघ-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के गुरुओं का एक वर्ग। मंत्र-शास्त्र के आचार्य।

विशेष—इस वर्ग के अंतर्गत ये पाँच योगी या ऋषि हैं—नारद, कश्यप, शंभु, भार्गव और कुलकौशिक।

सिध-वि० दे० "सिद्ध"।

संज्ञा स्त्री० चार हाथ की एक लंबी लकड़ी जिसमें सीढ़ी बँधी रहती है।

सिधरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

सिधवाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सीधा, सिधवाना] गाड़ी के पहिए निकालने के समय गाड़ी को उठाए रखने के लिये लगाई हुई टेक।

सिधवाना†-क्रि० स० [हिं० सीधा] सीधा कराना।

सिधाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सीधा] सीधापन। सरलता।

सिधानाऋ-क्रि० अ० [सं० सिद्ध = पूरा किया हुआ, हटाया हुआ + आना (प्रत्य०)] सिधारना। जाना। गमन करना। प्रस्थान करना। चलना। उ०—(क) लायक है भृगुनायक सो धनु सायक सौंपि सुभाय सिधाए।—तुलसी। (ख) चाहैं न चंप कली की थली मलिनी नलिनी की दिशान सिधावैं।—केशव। (ग) उग्रसेन सब कुटुम लै ता ठौर सिधायो।—सूर।

सिधारना-क्रि० अ० [हिं० सिधाना] (१) जाना। गमन करना। प्रस्थान करना। विदा होना। रवाना होना। उ०—(क) हरि बैकुंठ सिधारे पुनि ध्रुव आये अपने धाम। कीन्हों राज सीस पट वर्षन कीन्हे भक्तन काम।—सूर। (ख) मुदित नयन फल पाइ गाइ गुन सुर सानंद सिधारे।—तुलसी। (ग) सूकर श्वान समेत सबै हरिचन्द के सत्य सदेह सिधारे।—केशव। (२) मरना। स्वर्गवास होना। जैसे,—वे तो कल रात्रि में ही सिधार गए।

संयो० क्रि०—जाना।

†ऋक्रि० स० दे० "सुधारना"। उ०—आँगन हीरन सौं जि सँवारो। छज्जनि में करि दंत सिधारो।—गुमान।

सिधिऋ†-संज्ञा स्त्री० दे० "सिद्धि"।

सिधि गुटका-संज्ञा स्त्री० दे० "सिद्ध गुटिका"।

सिधु-संज्ञा पुं० दे० "सीधु"।

सिधोई†-संज्ञा स्त्री० दे० "सिधवाई"।

सिध्म-वि० [सं०] (१) सफेद दागवाला। (२) श्वेत कुष्ठवाला।

सिध्मपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेंहुआ। छीप। किलास।

सिध्मल-वि० [सं०] छीप रोगवाला। सेहुँएवाला।

सिध्मला-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूखी मछली।

सिध्य-संज्ञा पुं० [सं०] पुष्य नक्षत्र।

सिध्र-वि० [सं०] (१) साधु। (२) सफल। असर करनेवाला।

संज्ञा पुं० वृक्ष। पेड़।

सिध्रक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

सिन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर। देह। (२) वस्त्र। पहनावा। (३) ग्रास। कौर। (४) कुंभी का पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है और जिसकी छाल का काढ़ा आम और अतीसार में दिया जाता है।

वि० (१) काना। एक आँख का। (२) सित। श्वेत।

संज्ञा पुं० [अ०] उम्र। अवस्था। वयस।

सिनक-संज्ञा स्त्री० [सं० सिंघाणक] कपाल के केशों आदि का मल जो नाक से निकलता हो। रेंट। नेटा।

सिनकना-क्रि० अ० [सं० सिंघाणक + ना] जोर से हवा निकालकर नाक का मल बाहर फेंकना। साँस के झोंके से नाक से रेंट निकालना।

संयो० क्रि०—देना।

सिनट-संज्ञा पुं० [अं० सेनेट] (१) शासन का समस्त अधिकार रखनेवाली सभा। (२) विश्व-विद्यालय का प्रबंध करनेवाली सभा।

सिनि-संज्ञा पुं० [सं० शिनि] (१) एक यादव का नाम जो सात्यकि का पिता था। उ०—सिनि स्यंदन चढ़ि चलेउ लाइ चंदन जदुनंदन।—गोपाल। (२) क्षत्रियों की एक प्राचीन शाखा।

सिनी-संज्ञा पुं० दे० "शिनि"। उ०—चलेउ सिनी-पति विदित धरि धरनीपति अति मति।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० [सं०] सिनीवाली।

सिनीत-संज्ञा स्त्री० [देश०] सात रस्सियों को बटकर बनाई गई चिपटी रस्सी। (लश्करी)

सिनीवाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वैदिक देवी, मंत्रों में जिसका आह्वान सरस्वती आदि के साथ मिलता है।

विशेष—ऋग्वेद में यह चौड़ी कटिवाली, सुंदर भुजाओं और उँगलियोंवाली कही गई है और गर्भप्रसव की अधिष्ठात्री देवी मानी गई है। अथर्व वेद में सिनीवाली को विष्णु की पत्नी कहा है। पीछे की श्रुतियों में जिस प्रकार राका शुक्ल पक्ष की द्वितीया की अधिष्ठात्री देवी कही गई है, उसी प्रकार सिनीवाली शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा की, जब कि नया चंद्रमा प्रत्यक्ष निकला नहीं दिखाई देता, देवी बताई गई है। (२) शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा। (३) अंगिरा की एक पुत्री का नाम। (४) दुर्गा। (५) एक नदी का नाम (मार्कंडेय

पुराण) उ०—सिनिवाली, रजनी, कुहू, मंदा, राका, जानु। सरस्वती अरु अनुमती सातो नदी बखानु।—केशव।

सिनो—संज्ञा पुं० [देश०] खेत की पहली जोताई।

सिनी|—संज्ञा स्त्री० [फा० शीरीनी] (१) मिठाई। (२) बताशे या मिठाई जो किसी खुशी में बाँटी जाय। (३) बताशे या मिठाई जो किसी पीर या देवता को चढ़ाकर प्रसाद की तरह बाँटी जाय।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—बाँटना।

सिपर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वार रोकने का हथियार। ढाल। उ०—तूल शूल लाल तूल काल तल तूल नील झील, तूल नील मैल माथ पै सिपर है।—गिरधर।

सिपरा—संज्ञा स्त्री० दे० "सिप्रा"।

सिपहगरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सिपाही का काम। युद्ध व्यवसाय।

सिपहसालार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] फौज का सब से बड़ा अफसर। सेनापति। सेनानायक।

सिपाई‡—संज्ञा पुं० दे० "सिपाही"। उ०—कह्यो सिपाई अबहिं चोराई। इतै भागि अब कह सिर नाई।—रघुराज।

सिपारस‡—संज्ञा स्त्री० दे० "सिफ़ारिश"।

सिपारसी‡—वि० दे० "सिफ़ारशी"।

सिपारा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] क़ुरान के तीस भागों में से कोई एक। (क़ुरान तीस भागों में विभक्त किया गया है जिनमें से प्रत्येक सिपारा कहलाता है।)

सिपाव—संज्ञा पुं० [फ़ा० सेहपाव] लकड़ी की एक प्रकार की टिकठी या तीन पायों का ढाँचा जो छकड़े आदि में आगे की ओर अड़ान के लिये दिया जाता है।

सिपावा भाथी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सेहपाव + हिं० भाथी] लोहारों की हाथ से चलाई जानेवाली धौंकनी।

सिपास—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) धन्यवाद। शुक्रिया। कृतज्ञता-प्रकाशन। (२) प्रशंसा। स्तुति।

सिपासनामा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बिदाई के समय या अभिनंदनपत्र।

सिपाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फौज। सेना। कटक। लश्कर। उ०—अरि जय चाह चले संगर उछाह रेल विविध सिपाह हमराह जदुनाह के।—गोपाल।

सिपाहगिरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सिपाही का काम या पेशा। अस्त्र व्यवसाय।

सिपाहियाना—वि० [फ़ा०] सिपाहियों का सा। सैनिकों का सा। जैसे,—सिपाहियाना ढंग, सिपाहियाना ठाट।

सिपाही—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सैनिक। लड़नेवाला। शूर। योद्धा। फौजी आदमी। (२) कांस्टेबिल। तिलंगा। (३) चपरासी। अरदली।

सिपुर्द‡—संज्ञा पुं० दे० "सुपुर्द"।

सिप्पर—संज्ञा स्त्री० दे० "सिपर"। उ०—झम झमत सिप्पर सेल साँगरु जिरह जग्गो दीसियं। मनु सहित उडुगन नव ग्रहनु मिल जुद्ध रक्कि बरीसियं।—सुजान।

सिप्पा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) निशाने पर किया हुआ वार। लक्ष्य बेध। (२) कार्य्य साधन का उपाय। डौल। युक्ति। तदबीर। टिप्पस।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—सिप्पा भिड़ना या लड़ना = (१) युक्ति या तदबीर होना। अभिसंधि होना। (२) युक्ति सफल होना। इधर उधर की कोशिश कामयाब होना। **सिप्पा भिड़ाना या लड़ाना** = युक्ति या तदबीर करना। लोगों से मिलकर उन्हें कार्य्य साधन में सहायक बनाना। इधर उधर कह सुनकर कोशिश करना। जैसे,—जगह के लिये उसने बहुत सिप्पा लड़ाया, पर न मिली।

(३) डौल। सूत्रपात। प्रारंभिक कार्रवाई।

मुहा०—सिप्पा जमाना = डौल खड़ा करना। किसी काम की नींव देना। किसी कार्य्य के अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करना। भूमिका बाँधना।

(४) रंग। प्रभाव। धाक।

क्रि० प्र०—जमना।—जमाना।

सिप्पी|—संज्ञा स्त्री० दे० "सीपी"।

सिप्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक सरोवर का नाम। (२) चंद्र। (३) पसीना। घर्म्म।

सिप्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महिषी। भैंस। (२) एक झील। (३) स्त्रियों का कटिबंध। (४) मालवा की एक नदी जिसके किनारे उज्जैन (प्राचीन उज्जयिनी) बसा है।

सिफ़त—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) विशेषता। गुण। (२) लक्षण। (३) स्वभाव। (४) सूरत। शक्ल।

सिफर—संज्ञा पुं० [अं० साइफ़र] शून्य। सुन्ना। बिन्दी।

सिफलगी—संज्ञा स्त्री० [अ० + सिफलः] ओछापन। कमीनापन।

सिफ़ला—वि० [अ०] (१) नीच। कमीना। (२) छिछोरा। ओछा।

सिफलापन—संज्ञा पुं० [अ० सिफलः + हिं० पन (प्रत्य०)] (१) छिछोरापन। ओछापन। (२) पाजीपन।

सिफ़ा—संज्ञा स्त्री० दे० "शिफ़ा"।

सिफ़ारिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) किसी के दोष क्षमा करने के लिये किसी से कहना सुनना। (२) किसी के पक्ष में कुछ कहना सुनना। किसी का कार्य्य सिद्ध करने के लिये किसी से अनुरोध। (३) नौकरी देनेवाले से किसी नौकरी चाहनेवाले की तारीफ़। नौकरी दिलाने के लिये किसी की प्रशंसा। जैसे,—नौकरी तो सिफारिश से मिलती है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सिफ़ारिशी—वि० [फ़ा०] (१) सिफारशवाला। जिसमें सिफारिश हो। जैसे,—सिफारिशी चिट्ठी। (२) जिसकी सिफारिश की गई हो। जैसे,—सिफारिशी टट्टू।

सिफ़ारिशी टट्टू-संज्ञा पुं० [फ़ा० + सिफ़ारिशी हिं० टट्टू] वह जो केवल सिफ़ारिश या खुशामद से किसी पद पर पहुँचा हो।

सिबिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शिविका"।

सिमंत संज्ञा पुं० दे० "सीमंत"। उ०—स्याम के सीस सिमंत सराहि सनाल सरोज फिराइ कै मारो।—मन्नालाल।

सिमई-संज्ञा स्त्री० दे० "सिवँई", "सिवैयाँ"।

सिमट-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिमटना] सिमटने की क्रिया या भाव।

सिमटना-क्रि० अ० [सं० समित - एकत्र + ना] (१) दूर तक फैली हुई वस्तु का थोड़े स्थान में आ जाना। सुकड़ना। संकुचित होना। (२) शिकन पड़ना। सलवट पड़ना। (३) इधर उधर बिखरी हुई वस्तु का एक स्थान पर एकत्र होना। बटोरा जाना। बटुरना। इकट्ठा होना। उ०—(क) सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा।—तुलसी। (ख) गोपी ग्वाल सिमिटि सब सुंदर सज्यो सिंगार नमो।—सूर। (४) व्यवस्थित होना। करीने से लगना। (५) पूरा होना। निबटना। जैसे,—सारा काम सिमट गया। (६) संकुचित होना। लज्जित होना। (७) सहमना। सिटपिटा जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

सिमटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कपड़ा जिसकी बुनावट खेस के समान होती है।

सिमरख-संज्ञा पुं० दे० "शिंगरफ़"।

सिमरगोला-संज्ञा पुं० [सिमर ? + गोला] एक प्रकार की मेहराब।

सिमरना-क्रि० स० दे० "सुमिरना"। उ०—(क) राम नाम का सिमरनु छोड़िआ माजा हाथ बिकाना।—तेगबहादुर। (ख) सिमरे जो एक बार ताको राम बार बार बिसरे बिसारे नाहीं सो क्यों बिसराइये।—हृदयराम।

सिमरिख-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

सिमल-संज्ञा पुं० [सं० सीर = हल + माला] (१) हल का जूआ। (२) जूए में पड़ी हुई खूँटी।

सिमला आलू-संज्ञा पुं० [हिं० शिमला + आलू] एक प्रकार का पहाड़ी बड़ा आलू। मरबुली।

सिमाना-संज्ञा पुं० [सं० सीमान्त] सिवाना। हद।

क्रि० स० दे० "सिलाना"। उ०—लाओ बेगि याही छन मन की प्रबीन जानि लायो दुख मानि ब्योंत लई सो सिमाइ कै।—नाभा।

सिमिटना-क्रि० अ० दे० "सिमटना"। उ०—(क) यह सुनि जहाँ तहाँ ते सिमिटि आइ होइ इक ठौर।—सूर। (ख) जलचर बृंद जाल अंतरगत सिमिटि होत एक पास। एकहि एक खात लालच बस नहिं देखत निज नास।—तुलसी।

सिमृति-संज्ञा स्त्री० दे० "स्मृति"। उ०—द्रुपद सुता की लज्जा राखी। वेद पुरान सिमृति सब साखी।—लाल कवि।

सिमेंट-संज्ञा पुं० [अं० सीमेन्ट] एक प्रकार का लसदार गारा जो सूखने पर बहुत कड़ा और मज़बूत हो जाता है।

सिमेटना-क्रि० स० दे० "समेटना"।

सिय-संज्ञा स्त्री० [सं० सीता] सीता। जानकी। उ०—उपदेस यह जेहि तात तुम तें राम सिय सुख पावहीं।—तुलसी।

सियना-क्रि० अ० [सं० सृजन] उत्पन्न करना। रचना। उ०—जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी औ रामहिं ऐसो रूप दियो री। तुलसिदास तेहि चतुर बिधाता निज कर यह संजोग सियो री।—तुलसी।

क्रि० अ० दे० "सीना"।

सियरा-वि० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़] [स्त्री० सियरी] (१) ठंढा। शीतल। उ०—(क) श्याम सुपेत कि राता पियरा। अवरण वरण कि ताता सियरा।—कबीर। (ख) सियरे बदन सूखि गए कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे।—तुलसी। (२) कच्चा।

सियराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सियरा + ई (प्रत्य०)] शीतलता। ठंढक। उ०—मुकुलित कुसुम नयन निद्रा तजि रूप सुधा सियराई।—सूर।

सियराना-क्रि० अ० [हिं० सियरा + ना] ठंढा होना। जुड़ाना। शीतल होना। उ०—(क) हारन सों हहरात हियो मुकुता सियरात सुबेसर ही को।—पद्माकर। (ख) पादप पुहुमि नव पल्लव ते पूरि आये हरि आये सियराये भाए ते गुमारना।—रघुराज।

सियरी-वि० दे० "सियरा"। उ०—(क) लोचे परी सियरी पर्यंक पै बीती घरीन खरी खरी सोचै।—पद्माकर। (ख) खरे उपचार खरी सियरी सियरे तें खरोई खोरा तन छीजैं।—केशव।

सिया-संज्ञा स्त्री० [सं० सीता] सीता। जानकी। उ०—तब अंगद इक बचन कह्यो। तो करि सिंधु सिया सुधि लावै किहि बल इतो कह्यो।—सूर।

सियाना-वि० दे० "सयाना"।

क्रि० स० दे० "सिलाना"।

सियानोब-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

सियापा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सियाहपोश] मरे हुए मनुष्य के शोक में कुछ काल तक बहुत सी स्त्रियों के प्रति दिन इकट्ठा होकर रोने की रीति। (यह रिवाज पंजाब आदि पश्चिमी प्रांतों में पाया जाता है।)

सियार-संज्ञा पुं० [सं० शृगाल, प्रा० सिआल] [स्त्री० सियारी सियारिन] गीदड़। जंबुक।

सियार लाठी-संज्ञा पुं० [देश०] अमलतास।

सियारा-संज्ञा पुं० [सं० सीता, प्रा० सीआ + रा] जुती हुई जमीन बराबर करने का लकड़ी का फावड़ा।

संज्ञा पुं० दे० "सियाला"।

सियारी-संज्ञा स्त्री० दे० "सियार"।

सियाल-संज्ञा पुं० [सं० शृगाल] शृगाल। गीदड़। उ०—चहुँ दिसि सूर सोर करि धावै ज्यों केहरिहि सियाल।—सूर।

सियाला-संज्ञा पुं० [सं० शीतकाल] शीतकाल। जाड़े का मौसिम।

सियाला पोका-संज्ञा पुं० [हिं० सीप + पोका = कीड़ा] एक बहुत छोटा कीड़ा जो सफेद चिपटे कोश के भीतर रहता है और पुरानी लोनी मिट्टीवाली दीवारों पर मिलता है। लोना पोका।

सियाली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार विदारीकंद।

वि० जाड़े के मौसिम की फसल। खरीफ।

सियावड़-संज्ञा पुं० दे० "सिआवड़ी"।

सियावड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) अनाज का वह हिस्सा जो खेत कटने पर खलिहान में से साधुओं के निमित्त निकाला जाता है। (२) वह काली हाँडी जो खेतों में चिड़ियों को डराने और फसल को नज़र से बचाने के लिये रखी जाती है।

सियासत-संज्ञा स्त्री० [अ०] देश का शासन प्रबंध तथा व्यवस्था।

संज्ञा स्त्री० [सं० शासित] (१) दंड। पीड़न। (२) कष्ट। यंत्रणा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सियाह-वि० दे० "स्याह"।

सियाहगोश-संज्ञा पुं० [फा०] (१) काले कानवाला। (२) बिल्ली की जाति का एक जंगली जानवर। बनबिलाव।

विशेष—इसके अंग लंबे होते हैं। पूँछ पर बालों का गुच्छा होता है और रंग भूरा होता है। खोपड़ी छोटी और दाँत लंबे होते हैं। कान बाहर की ओर काले और भीतर की ओर सफेद होते हैं। इसकी लंबाई प्रायः ४० इंच होती है। यह घास की झाड़ियों में रहता और चिड़ियों को मारकर खाता है। इसकी कुदान ५ से ६ फुट तक की होती है। यह सारस और तीतर का शत्रु है। यह बड़ी सुगमता से पाला और चिड़ियों का शिकार करने के लिये सिखाया जा सकता है। इसे अमीर लोग शिकार के लिये रखते हैं। बनबिलाव।

सियाहा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) आय व्यय की बही। रोजनामचा। बही खाता। (२) सरकारी खज़ाने का वह रजिस्टर जिसमें जमींदारों से प्राप्त मालगुज़ारी लिखी जाती है। (३) वह सूची जिसमें काश्तकारों से प्राप्त लगान दर्ज होता है।

मुहा०—स्याहा करना = हिसाब की किताब मे लिखना। टाकना। चढ़ाना।

सियाहानवीस-संज्ञा पुं० [फा०] सियाहा का लिखनेवाला। सरकारी खजाने में सियाहा लिखने के लिये नियुक्त कर्मचारी।

सियाही-संज्ञा स्त्री० दे० "स्याही"।

सिर-संज्ञा पुं० [सं० शिरस्] (१) शरीर के सब से अगले या ऊपरी भाग का गोल तल जिसके भीतर मस्तिष्क रहता है। कपाल। खोपड़ी। (२) शरीर का सब से अगला या ऊपर का गोल या लंबोतरा अंग जिसमें आँख, कान, नाक और मुँह ये प्रधान अवयव होते हैं और जो गरदन के द्वारा धड़ से जुड़ा रहता है।

मुहा०—सिर आँखों पर होना = सहर्ष स्वीकार होना। माननीय होना। जैसे,—आपकी आज्ञा सिर आँखों पर है। सिर आँखों पर बैठाना = बहुत आदर सत्कार करना। बहुत आवभगत करना। (भूत प्रेत या देवी देवता का) सिर आना = आवेश होना। प्रभाव होना। मिलना। सिर उठाना (१) काम आदि से कुछ फुरसत पाना। जैसे,—जब से बच्चा पड़ा है, तब से सिर नहीं उठाया है। (२) विरोध में खड़ा होना। शत्रुता के लिये सन्नद्ध होना। मुकाबिले के लिये तैयार होना। जैसे,—बागियों ने फिर सिर उठाया। (३) ऊधम मचाना। दंगा फसाद करना। शरारत करना। उपद्रव करना। (४) इतराना। अकड़ दिखाना। घमंड करना। (५) सामने मुँह करना। बराबर ताकना। लज्जित न होना। जैसे,—ऊँची नीची सुनता रहा, पर सिर न उठाया। (६) प्रतिष्ठा के साथ खड़ा होना। इज्ज़त के साथ लोगों से मिलना। जैसे,—जब तक भारतवासियों की यह दशा है, तब तक सभ्य जातियों के बीच वे कैसे सिर उठा सकते हैं? सिर उठाने की फुरसत न होना = जरा सा काम छोड़ने की छुट्टी न मिलना। कार्य्य की अधिकता होना। सिर उठाकर चलना = इतरा कर चलना। घमंड दिखाना। अकड़ कर चलना। सिर उतरवाना = सिर कटाना। मरवा डालना। सिर उतारना = सिर काटना। मार डालना। (किसी का) सिर ऊँचा करना = सम्मान का पात्र बनाना। इज्ज़त देना। (अपना) सिर ऊँचा करना = प्रतिष्ठा के साथ लोगों के बीच खड़ा होना। दस आदमियों मे इज्ज़त बनाए रखना। सिर औंधाकर पड़ना = चिंता और शोक के कारण सिर नीचा किए पड़ा या बैठा रहना। सिर काढ़ना = प्रसिद्ध होना। प्रसिद्धि प्राप्त करना। सिर करना = (स्त्रियों के) बाल सँवारना। चोटी गूँधना। (कोई वस्तु) सिर करना = जबरदस्ती देना। इच्छा के विरुद्ध सपुर्द करना। गले मढ़ना। सिर काटना = सिर उतारना। मार डालना। सिर का बोझ टलना = निश्चिंतता होना। संकट टलना। सिर का बोझ टालना = बेगार टालना। अच्छी तरह न करना। जी लगाकर न करना। सिर के बल चलना = बहुत अधिक आदरपूर्वक किसी के पास जाना। सिर खाली करना = (१) बकवाद करना। (२) माथा पच्ची करना। सोच विचार में हैरान होना। सिर खाना = बकवाद करके जी उबाना। व्यर्थ की बातें करके तंग करना। सिर खपाना = (१) सोचने विचारने में हैरान होना। (२) कार्य्य में

व्यग्र होना। **सिर खुजलाना** = मार खाने को जी चाहना। शामत आना। नटखटी सूझना। **सिर चकराना** = दे० "सिर घूमना"। **सिर चढ़ा** = मुँह लगा। लाड़ला। धृष्ट। **सिर चढ़ाना** = (१) माथे से लगाना। पूज्य भाव दिखाना। (२) बहुत बढ़ा देना। मुँह लगाना। गुस्ताख बनाना। (३) किसी देवी देवता के सामने सिर काटकर बलि चढ़ाना। **सिर घूमना** = (१) सिर में दर्द होना। (२) घबराहट या मोह होना। बेहोशी होना। **सिर चढ़कर बोलना** = (१) भूत प्रेत का सिर पर आकर बोलना। (२) स्वयं प्रकट हो जाना। छिपाए न छिपना। **सिर चढ़कर मरना** = किसी को अपने खून का उत्तरदायी ठहराना। किसी के ऊपर जान देना। **सिर चला जाना** = मृत्यु हो जाना। **सिर जोड़कर बैठना** = मिलकर बैठना। **सिर जोड़ना** = (१) एकत्र होना। पंचायत करना। (२) एका करना। षड्यंत्र रचना। **सिर झाड़ना** = बालों में कंघी करना। **सिर झुकाना** = (१) सिर नवाना। नमस्कार करना। (२) लज्जा से गरदन नीची करना। (३) सादर स्वीकार करना। चुप चाप मान लेना। **सिर टकराना** = सिर पटकना। अत्यंत परिश्रम करना। **(किसी के) सिर डालना** = सिर मढ़ना। दूसरे के ऊपर कार्य्य का भार देना। **सिर टूटना** = (१) सिर फटना। (२) लड़ाई झगड़ा होना। **सिर तोड़ना** = (१) सिर फोड़ना। (२) खूब मारना पीटना। (३) वश में करना। **सिर देना** = प्राण निछावर करना। जान देना। **सिर धरना** = सादर स्वीकार करना। मान लेना। अंगीकार करना। **(किसी के) सिर धरना** = आरोप करना। लगाना। मढ़ना। उत्तरदायी बनाना। **सिर धुनना** = शोक या पछतावे से सिर पीटना। पछताना। हाथ मलना। शोक करना। **सिर नंगा करना** = (१) सिर खोलना। (२) इज्जत उतारना। **सिर नवाना** = (१) सिर झुकाना। नमस्कार करना। (२) विनीत बनना। दीन बनना। आजिजी करना। **सिर भिन्नाना** = सिर चकराना। **(अपना सिर) नीचा करना** = लज्जा से सिर झुकाना। शर्माना। **(दूसरे का) सिर नीचा करना** = प्रतिष्ठा खोना। मर्यादा नष्ट करना। **सिर नीचा होना** = (१) अप्रतिष्ठा होना। इज्जत बिगड़ना। मान भंग होना। (२) पराजय होना। हार होना। (३) लज्जा होना। **सिर पचाना** = (१) परिश्रम करना। उद्योग करना। (२) सोचने विचारने में हैरान होना। **सिर पटकना** = (१) सिर पीटना। सिर धुनना। (२) बहुत परिश्रम करना। (३) अफसोस करना। हाथ मलना। **सिर पर आ पड़ना** = अपने ऊपर घटित होना। ऊपर आ बनना। **सिर पर आ जाना** = बहुत समीप आ जाना। थोड़े ही दिन और रह जाना। **सिर पर उठा लेना** = ऊधम जोतना। धूम मचाना। **(अपने) सिर पर पाँव रखना** = बहुत जल्द भाग जाना। हवा होना। **(किसी के) सिर पर पाँव रखना** = किसी के साथ बहुत उद्दंडता का व्यवहार करना। **सिर पर पृथ्वी उठाना** = बहुत उत्पात करना। **सिर पर पड़ना** = (१) जिम्मे पड़ना। (२) अपने ऊपर घटित होना। गुजरना। **सिर पर खेलना** = जान को जोखो में डालना। **सिर पर खून चढ़ना या सवार होना** = (१) जान लेने पर उतारू होना। (२) हत्या के कारण आपे में न रहना। **सिर पर रखना** = प्रतिष्ठा करना। मान करना। **सिर पर छप्पर रखना** = बोझ से दबाना। दबाव डालना। **सिर पर मिट्टी डालना** = शोक करना। **सिर पर लेना** = ऊपर लेना। जिम्मे लेना। **सिर पर शैतान चढ़ना** = गुस्सा चढ़ना। **सिर पर पर जूँ न रेंगना** = ध्यान न होना। चेत न होना। होश न आना। **सिर रहना** = मान रहना। प्रतिष्ठा बनी रहना। **(किसी के) सिर डालना** = माथे मढ़ना। आरोपण करना। **सिर पर बीतना** = सिर पर पड़ना। **सिर पर होना** = थोड़े ही दिन रह जाना। बहुत निकट होना। **(किसी का किसी के) सिर पर होना** = संरक्षक होना। रक्षा करनेवाला होना। **सिर पर हाथ धरना या रखना** = (१) संरक्षक होना। सहायक होना। (२) शपथ खाना। **सिर पड़ना** = (१) जिम्मे पड़ना। भार ऊपर दिया जाना। (२) हिस्से में आना। **सिर पर हाथ फेरना** = प्यार करना। आश्वासन देना। ढारस बँधाना। **सिर फिरना** = (१) सिर घूमना। सिर चकराना। (२) पागल हो जाना। उन्माद होना। (३) बुद्धि नष्ट होना। **सिर फोड़ना** = (१) लड़ाई झगड़ा करना। (२) कपाल क्रिया करना। **सिर फेरना** = कहा न मानना। अवज्ञा करना। अस्वीकार करना। **सिर बाँधना** = (१) सिर पर आक्रमण करना। (पटेबाजी) (२) चोटी करना। सिर गूँथना। (३) घोड़े की लगाम इस प्रकार पकड़ना कि चलते समय घोड़े की गर्दन सीधी रहे। **सिर बेचना** = सिर देना। फौज की नौकरी करना। **सिर भारी होना** = सिर में पीड़ा होना। सिर घूमना। **सिर मारना** = (१) समझाते समझाते हैरान होना। (२) सोचने विचारने में हैरान होना। सिर खपाना। (३) चिल्लाना। पुकारना। (४) बहुत प्रयत्न करना। अत्यंत श्रम करना। **सिर मुँड़ाना** = (१) बाल बनवाना। (२) जोगी बनना। फकीरी लेना। संन्यासी होना। **सिर मुड़ाते ही ओले पड़ना** = प्रारंभ में ही कार्य्य बिगड़ना। कार्य्यारंभ होते ही विघ्न पड़ना। **सिर मढ़ना** = जिम्मे करना। इच्छा के विरुद्ध सपुर्द करना। **सिर रँगना** = सिर फोड़ना। सिर लोहू लोहान करना। **सिर रहना** = (१) किसी के पीछे पड़ना। (२) रात दिन परिश्रम करना। **सिर सफेद होना** = वृद्धावस्था आ जाना। **सिर पर सेहरा होना** = किसी कार्य्य का श्रेय प्राप्त होना। वाहवाही मिलना। **सिर सहलाना** = खुशामद करना। प्यार करना। **सिर से बला टालना** = बेगार टालना। जी लगाकर काम न करना। **सिर से बोझ उतरना** = (१) झंझट दूर होना। (२) निश्चिंतता होना। **सिर से पानी गुजरना** = सहन की पराकाष्ठा होना। असह्य हो जाना। **सिर घोटाना** = सिर मुड़ाना। **सिर से पैर तक** = आरंभ से अंत

तक। चोटी से एड़ी तक। सर्वांग में। पूर्णतया। **सिर से पैर तक आग लगना** = अत्यंत क्रोध चढ़ना। **सिर से चलना** = बहुत सम्मान करना। सिर के बल चलना। **सिर से सिरवाहा है** = सिर के साथ पगड़ी है। सरदार के साथ फौज अवश्य रहेगी। मालिक के साथ उसके आश्रित अवश्य रहेंगे। **सिर से कफ़न बाँधना** = मरने के लिये उद्यत होना। **सिर से खेलना** = सिर पर भूत आना। **सिर से खेल जाना** = प्राण दे देना। **सिर पर सींग होना** = कोई विशेषता होना। सुर्खाब का पर होना। **सिर का पसीना पैर तक आना** = बहुत परिश्रम होना। **(किसी का किसी के) सिर होना** = (१) पीछे पड़ना। पीछा न छोड़ना। साथ साथ लगा रहना। (२) बार बार किसी बात का आग्रह करके तंग करना। (३) उलझ पड़ना। झगड़ा करना। **(किसी बात के) सिर होना** = ताड़ लेना। समझ लेना। **(दोष आदि किसी के) सिर होना** = जिम्मे होना। ऊपर पड़ना। जैसे,—यह अपराध तुम्हारे सिर है।

(२) ऊपर का छोर। सिरा। चोटी।

संज्ञा पुं० [सं० शिर] पिपरामूल। पिप्पलीमूल।

सिरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० सिर + ई (प्रत्य०)] चारपाई में सिरहाने की पट्टी।

सिरकटा—वि० [हिं० सिर + कटना] [स्त्री० सिरकटी] (१) जिसका सिर कट गया हो। जैसे,—सिरकटी लाश। (२) दूसरों के सिर काटनेवाला। अनिष्ट करनेवाला। बुराई करनेवाला। अपकारी।

सिरका—संज्ञा पुं० [फ़ा०] धूप में पकाकर खट्टा किया हुआ ईख, अंगूर, जामुन आदि का रस।

विशेष—ईख, अंगूर, खजूर, जामुन आदि के रस को धूप में पकाकर सिरका बनाया जाता है। यह स्वाद में अत्यंत खट्टा होता है। वैद्यक में यह तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारी पाचक, हलका, रूखा, दस्तावर, रक्त पित्तकारक तथा कफ, कृमि और पांडु रोग का नाश करनेवाला कहा गया है। यूनानी मतानुसार यह कुछ गरमी लिए ठंढा और रूक्ष, स्निग्धताशोषक, नसों और छिद्रों में शीघ्र ही प्रवेश करनेवाला, गाढ़े दोषों को छाँटनेवाला, पाचक, अत्यंत क्षुधाकारक तथा रोध का उद्घाटक है। यह बहुत से रोगों के लिये परम उपयोगी है। उ०—भई मिथौरी सिरका बरा। सोंठ लाय के खरसा धरा।—जायसी।

सिरकाकश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] अरक खींचने का एक प्रकार का यंत्र।

सिरकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सरकंडा] (१) सरकंडा। सरई। सरहरी। (२) सरकंडे या सरई की पतली तीलियों की बनी हुई टट्टी जो प्रायः दीवार या गाड़ियों पर धूप और वर्षा से बचाव के लिये डालते हैं। उ०—विदित न सनमुख ह्वै सकैं अँखिया बड़ी लजोर। बरुनी सिरकिन ओट ह्वै हेरत मोहन ओर।—रसनिधि। (३) बाँस की पतली नली जिसमें बेल बूटे काढ़ने का कलाबत्तू भरा रहता है।

सिरखप—वि० [हिं० सिर + खपना] (१) सिर खपानेवाला। (२) परिश्रमी। (३) निश्चय का पक्का।

सिरखपी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सिर + खपना] (१) परिश्रम। हैरानी। (२) जोखिम। साहसपूर्ण कार्य।

सिर खिली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जिसका संपूर्ण शरीर मटमैला, पर चोंच और पैर काले होते हैं।

सिरखिस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० शीरखिस्त] एक प्रसिद्ध पदार्थ जो कुछ पेड़ों की पत्तियों पर ओस की तरह जम जाता है और दवा के काम में आता है। यव शर्करा। यवास शर्करा।

सिरगा—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़े की एक जाति। उ०—सिरगा समँदा स्याह सेलिया सूर सुरंगा। मुसकी पँचकल्यान कुमेता केहरि रंगा।—सूदन।

सिरगिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सिर + गिरि = चोटी] (१) कलगी। शिखा। (२) चिड़ियों के सिर की कलगी।

सिरगोला—संज्ञा पुं० [?] दुग्ध पाषाण।

सिरघुरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० सिर + घुरना = घूमना] उत्रांकुश तृण।

सिरचंद—संज्ञा पुं० [हिं० सिर + चंद] एक प्रकार का अर्द्ध चंद्राकार गहना जो हाथी के मस्तक पर पहनाया जाता है। उ०—सिरचंद चंद दुचंद दुति आनंद कर मनिमय बने।—गोपाल।

सिरजक*—संज्ञा पुं० [सं० सृज, हिं० सिरजना] बनानेवाला। रचनेवाला। सृष्टिकर्त्ता। उ०—अब बंदौं कर जोरि कै, जग सिरजक करतार। रामकृष्ण पद कमल युग, जाको सदा अधार।—रघुराज।

सिरजनहार*—संज्ञा पुं० [सं० सृजन + हिं० हार = वाला] (१) रचनेवाला। बनानेवाला। सृष्टिकर्त्ता। कर्त्तार। उ०—हे गुसाइँ तू सिरजनहारू। तुइ सिरजा एहि समुँद अपारू।—जायसी। (२) परमेश्वर। उ०—माया सगी न मन सगा, सगा न यह संसार। परशुराम यह जीव को, सगा सो सिरजनहार।—रघुराज।

सिरजना*—क्रि० स० [सं० सर्जन] रचना। उत्पन्न करना। सृष्टि करना। उ०—जग सिरजत पालत संहारत पुनि क्यों बहुरि करयो।—सूर।

क्रि० स० [सं० संचय] संचय करना। हिफ़ाज़त से रखना।

सिरजित*—वि० [सं० सर्जित] सिरजा हुआ। रचा हुआ। उ०—तुम जदुनाथ अनन्य उपासी। नहिं मम सिरजित लोक बिलासी।—रघुराज।

सिरताज—संज्ञा पुं० [सं० सिर + फ़ा० ताज] (१) मुकुट। (२) शिरोमणि। सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति या वस्तु। सब से उत्कृष्ट व्यक्ति या वस्तु। उ०—(क) राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज रे। राम नाम महामनि, फनि जगजाल रे।—

तुलसी। (ख) कुंजन में क्रीड़ा करै मनु वाही को राज। कंस सकुच नहिं मानई रहन भयो सिरताज।—सूर। (३) सरदार। अग्रगण्य। अगुआ। मुखिया। उ०—सूर सिरताज महाराजनि के महाराज, जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।—तुलसी।

सिरतान-संज्ञा पुं० [हिं० सीर + तान ?] (१) असामी। काश्तकार। (२) मालगुजार।

सिर ता पा क्रि० वि० [फ़ा० सर + ता + पा = पैर] (१) सिर से पाँव तक। नख से लेकर शिख तक। उ०—केस मेघावरि सिर ता पाहिं।—जायसी। (२) आदि से अंत तक। संपूर्ण। बिलकुल। सरासर।

सिरती-संज्ञा स्त्री० [हिं० सीर] जमा जो असामी जमींदार को देता है। लगान।

सिरत्राण-संज्ञा पुं० दे० "शिरस्त्राण"।

सिरदार‡-संज्ञा पुं० दे० "सरदार"। उ०—(क) व्रज पर गन सिरदार महरि तू ताकी करत नन्हाई। सूर। (ख) सिरदार जूझत खेत मैं। भजि गए बहुत अचेत मैं।—सूदन।

सिरदारी‡-संज्ञा स्त्री० दे० "सरदारी"। उ०—साहिजहाँ यह चित्त बिचारी। दारा कौं दीन्हीं सिरदारी।—लाल कवि।

सिरदुआली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिर + फ़ा० दुवाल] लगाम के कड़ों में लगा हुआ कानों के पीछे तक का घोड़ों का एक साज जो चमड़े या सूत का बना होता है।

सिरनामा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सर + नामा = पत्र] (१) लिफाफे पर लिखा जानेवाला पता। (२) पत्र के आरंभ में पत्र पानेवाले का नाम, उपाधि, अभिवादन आदि। (३) किसी लेख के विषय का निर्देश करनेवाला शब्द या वाक्य जो ऊपर लिख दिया जाता है। शीर्षक। हेडिंग। सुर्खी।

सिरनेत-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + सं० नेत्र = पट्टा या नेता] (१) पगड़ी। पटा। चीरा। उ०—(क) रे नेही मत डगमगै बाँध प्रीति सिरनेत।—रसनिधि। (ख) अधम उधारन विरद कौ तुम बाँधौ सिरनेत।—रसनिधि। (२) क्षत्रियों की एक शाखा जो अपना मूल स्थान श्रीनगर (गढ़वाल) बताती है। उ०—पुनि सिरनेतन्ह देस सिधारा। कीन्हो ब्याह, उछाह अपारा।—रघुराज।

सिरपाव-संज्ञा पुं० दे० "सिरोपाव"। उ०—कीरतसिंह भी घोड़े और सिरपाव पाकर अपने बाप के साथ रुखसत हुआ।—देवीप्रसाद।

सिरपेच-संज्ञा पुं० [फ़ा० सर + पेच] (१) पगड़ी। (२) पगड़ी के ऊपर का छोटा कपड़ा। (३) पगड़ी पर बाँधने का एक आभूषण। उ०—कलगी, तुर्रा और जग सिरपेच सुकुंडल—सूदन।

सिरपोश-संज्ञा पुं० [फ़ा० सरपोश] (१) सिर पर का आवरण। टोप। कुलाह। (२) बंदूक के ऊपर का कपड़ा। (लश्करी)

सिरफूल-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + फूल] सिर पर पहना जानेवाला स्त्रियों का एक आभूषण। उ०—(क) छतियाँ पर लोल लुरैं अलकैं सिरफूल अरुझि सो यौं दुति दै।—पन्नालाल। (ख) बेनी चुनी चमकै किरनैं सिर फूल लख्यो रवि तूल अनूपमै।—मन्नालाल।

सिरफेंटा-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + फेंटा] साफा। पगड़ी। मुरेठा। उ०—पीरो झगा पटुका बिन छोर छरी कर लाल जरी सिरफेंटा।—मन्नालाल।

सिरबंद-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + फ़ा० बंद] साफा।

सिरबंदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिर + फ़ा० बंदी] माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक आभूषण।

संज्ञा पुं० [हिं० सिर + बंद] रेशम के कीड़े का एक भेद।

सिरबोझी-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + बोझ] एक प्रकार के पतले बाँस जो पाटन के काम में आते हैं।

सिरमनि‡-संज्ञा पुं० दे० "शिरोमणि"।

सिरमौर-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + मौर] (१) सिर का मुकुट। (२) सिरताज। शिरोमणि। प्रधान या श्रेष्ठ व्यक्ति। उ०—सहज सलोने राम लखन ललित नाम जैसे सुने तैसेई कुँअर सिरमौर हैं।—तुलसी।

सिररुह-संज्ञा पुं० दे० "शिरोरुह"। उ०—बिथुरित सिररुह-बरुथ कुंचित बिच सुमन जूथ, मनिजुत सिसु-फनि-अनीक ससि समीप आई।—तुलसी।

सिरवा-संज्ञा पुं० [हिं० सिर ?] वह कपड़ा जिससे खलियान में अनाज बरसाने के समय हवा करते हैं। ओसाने में हवा करने का कपड़ा।

मुहा०—सिरवा मारना = भूसा उड़ाने के लिये कपड़े आदि से हवा करना।

सिरवार-संज्ञा पुं० दे० "सिवार"।

संज्ञा पुं० [हिं० सीर + कार] जमींदार का वह कारिंदा जो उसकी खेती का प्रबंध करता है।

सिरस-संज्ञा पुं० [सं० शिरीष] शीशम की तरह का लंबा एक प्रकार का ऊँचा पेड़।

विशेष—इसका वृक्ष बड़ा किंतु अ-चिरस्थायी होता है। इसकी छाल भूरापन लिए हुए खाकी रंग की होती है। लकड़ी सफ़ेद या पीले रंग की होती है, जो टिकाऊ नहीं होती। हीर की लकड़ी कालापन लिए भूरी होती है। पत्तियाँ इमली की पत्तियों के समान परंतु उनसे लंबी चौड़ी होती हैं। चैत-बैसाख में यह वृक्ष फूलता फलता है। इसके फूल सफेद, सुगंधित, अत्यंत कोमल तथा मनोहर होते हैं। कवियों ने इसके फूल की कोमलता का वर्णन किया है। इसके वृक्ष से बबूल के समान गोंद निकलता है। इसकी छाल, पत्ते, फूल और बीज औषध के काम में आते हैं। इसके

तीन भेद होते हैं—काला, पीला और लाल। आयुर्वेद के अनुसार यह चरपरा, शीतल, मधुर, कड़वा, कसैला, हलका तथा वात, पित्त, कफ, सूजन, विसर्प, खाँसी, घाव, विष-विकार, रुधिर-विकार, कोढ़, खुजली, बवासीर, पसीने और त्वचा के रोगों को हरण करनेवाला है। यूनानी मतानुसार यह ठंढा और रूखा है। उ०—(क) वाम विधि मेरो सुख सिरस सुमन ताको छल छुरी कोह कुलिस लै टेई है।—तुलसी। (ख) फूलों ही के काम-बाण हैं, यह सब कहते आते हैं। सिरस फूल से भी मृदुतर, हम उसके बाहु बनाते हैं।—महावीरप्रसाद द्विवेदी।

सिरसा-संज्ञा पुं० दे० "सिरस"।

सिरसी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तीतर।

सिरहाना-संज्ञा पुं० [सं० शिरस् + आधान] चारपाई में सिर की ओर का भाग। खाट का सिरा। मुँड़वारी। उ०—छूटी लटैं लटकैं सिरहाने है, फैलि रह्यो मुखस्वेद को पानी।

सिराँचा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पतला बाँस जिससे कुरसियाँ और मोढ़े बनते हैं।

सिरा-संज्ञा पुं० [हिं० सिर] (१) लंबाई का अंत। लंबाई के दो छोरों में से कोई एक। छोर। टोंक। जैसे,—एक सिरे से दूसरे सिरे तक। (२) ऊपर का भाग। शीर्ष भाग। (३) अंतिम भाग। आखिरी हिस्सा। (४) आरंभ का भाग। शुरू का हिस्सा। जैसे,—(क) सिरे से कहो, मैंने सुना नहीं। (ख) अब यह काम नए सिरे से करना पड़ेगा। (ग) सिरे से आखीर तक। (५) नोक। अनी। (६) अग्र भाग। अगला हिस्सा।

मुहा०—सिरे का = अव्वल दरजे का। पल्ले सिरे का। सिरे का रंग = सब से प्रधान रंग। जेठा रंग। (रँगरेज)

संज्ञा स्त्री० [सं० शिरा] (१) रक्त-नाड़ी। (२) सिंचाई की नाली। (३) खेत की सिंचाई। (४) पानी की पतली धारा। (५) गगरा। कलसा। डोल।

सिराना‡†-क्रि० अ० [हिं० सीरा + ना] (१) ठंढा होना। शीतल होना। (२) मंद पड़ना। हतोत्साह होना। उमंग न रह जाना। हार जाना। उ०—वज्रायुध जल बरषि सिराने। परयो चरन तब प्रभु करि जाने।—सूर। (३) समाप्त होना। खतम होना। अंत को पहुँचना। जैसे,—काम सिराना। (४) शांत होना। मिटना। दूर होना। उ०—अब रघुनाथ मिलाऊँ तुमको सुंदरि सोग सिराइ।—सूर। (५) व्यतीत होना। बीत जाना। गुज़र जाना। उ०—वेई चिरजीवी अमर निधरक फिरौ कहाइ। छिन बिछुरे जिनके न इहि पावस आयु सिराइ।—बिहारी।

† (६) काम से छुट्टी मिलना। फुरसत मिलना।

क्रि० स० (१) ठंढा करना। शीतल करना। (२) समाप्त करना। खतम करना। (३) व्यतीत करना। बिताना।

सिरापत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वत्थ वृक्ष। पीपल का वृक्ष। (२) एक प्रकार की खजूर।

सिरामूल संज्ञा पुं० [सं०] नाभि।

सिरामोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] फ़सद खुलवाना। शरीर का दूषित रक्त निकलवाना।

सिरार-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिरा] वह लकड़ी जो पाई के सिरे पर लगाई जाती है। (जुलाहे)

सिराल-वि० [सं०] जिसमें बहुत नसें या रेशे हों।

सिरालक संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अंगूर।

सिराला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का पौधा। (२) कमरख का फल। कर्मरंग फल।

सिराली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिर] मयूर-शिखा। मोर की कलगी।

सिरावन-संज्ञा पुं० [सं० सीर = हल] जुता हुआ खेत बराबर करने का पाटा। हेंगा।

सिरावना‡-क्रि० स० दे० "सिराना"। उ०—जोइ जोइ भावे मेरे प्यारे। सोइ सोइ देहौं जु दुलारे। कह्यौ है सिरावन सीरा। कछु हठ न करौ बलबीरा।—सूर।

सिरावृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

सिराहर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुलक। रोमांच। (२) आँख के डोरों की लाली।

सिरिन-संज्ञा पुं० [देश०] रक्त शिरीष वृक्ष। लाल सिरस।

सिरियारी-संज्ञा स्त्री० [सं० शिरियारी] सुनिष्णक शाक। सुसना का साग। हाथीशुंडी।

सिरिश्ता-संज्ञा पुं० [फ़ा० सरिश्तः] विभाग। मुहकमा।

सिरिश्तेदार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] अदालत का वह कर्मचारी जो मुकदमे के कागज पत्र रखता है।

सिरिश्तेदारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सरिश्तेदार का काम या पद।

सिरिस-संज्ञा पुं० दे० "सिरस"।

सिरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करघा। (२) कलिहारी। लांगली।

‡† संज्ञा स्त्री० [सं० श्री] (१) लक्ष्मी। (२) शोभा। कांति। (३) रोली। रोचना। उ०—(क) धधकी है गुलाल की धूँधुर में धारी गोरी लला मुख मीड़ि सिरी।—शंभु। (ख) सोन रूप भल भएउ पसारा। धवल सिरी पोतहिं घर बारा।—जायसी।

विशेष—'श्री' का लाल चिह्न तिलक में रोली से बनाते हैं; इसी से रोली को भी 'श्री' या 'सिरी' कहते हैं।

(४) माथे पर का एक गहना। उ०—मुंडा दंड लसै जैसो तैसो रद दरसावै सोहै ससी सीस भारी सिरी कुंभ पर है।—गोपाल।

सिरीज़-संज्ञा पुं० [अं०] मंगल और बृहस्पति के बीच का एक ग्रह जिसका पता आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिषियों ने लगाया है।

विशेष—यह सूर्य्य से प्रायः साढ़े अट्ठाइस कोटि मील की दूरी पर है। इसका व्यास १०६० मील का है। इसे निज कक्षा में सूर्य के चारों तरफ फिरने में १६८० दिन लगते हैं। १९वीं शताब्दी में सिसली नामक उपद्वीप में यह ग्रह पहले देखा गया था। इसका वर्ण लाल है और यह आठवें परिमाण के तारों के समान दिखाई पड़ता है।

सिरी पंचमी-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रीपंचमी"।

सिरीस-संज्ञा पुं० दे० "सिरस"।

सिरोना-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + ओना] रस्सी का बना हुआ मेंडरा जिस पर घड़ा रखते हैं। इँडुरी। बिड़वा।

सिरोपाव-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + पाव] सिर से पैर तक का पहनावा (अंगा, पगड़ी, पाजामा, पटका और दुपट्टा) जो राजदरबार से सम्मान के रूप में दिया जाता है। खिलअत।

सिरोमनि-संज्ञा पुं० दे० "शिरोमणि"।

सिरोरुह-संज्ञा पुं० दे० "शिरोरुह"।

सिरोही-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जिसकी चोंच और पैर लाल और शेष शरीर काला होता है।

संज्ञा पुं० (१) राजपूताने में एक स्थान जहाँ की बनी हुई तलवार बहुत ही लचीली और बढ़िया होती है। उ०—तरवार सिरोही सोहती लाख सिकोही बोहती। जिमि सेना द्रोही जोहती लाज अरोही मोहती।—गोपाल। (२) तलवार।

सिर्का-संज्ञा पुं० दे० "सिरका"।

सिर्फ़-क्रि० वि० [अ०] केवल। मात्र।

वि० (१) एक मात्र। अकेला। (२) शुद्ध। खालिस।

सिर्री†-वि० दे० "सिड़ी"।

सिल-संज्ञा स्त्री० [सं० शिला] (१) पत्थर। चट्टान। शिला। (२) पत्थर की चौकोर पटिया जिस पर बट्टे से मसाला आदि पीसते हैं।

यौ०—सिल बट्टा।

(३) पत्थर का गढ़ा हुआ चौकोर टुकड़ा जो इमारतों में लगता है। चौकोर पटिया। (४) काठ की पटरी जिस पर दबाकर रूई की पूनी बनाई जाती है।

संज्ञा पुं० [सं० शिल] कटे हुए खेत में गिरे अनाज चुनकर निर्वाह करने की वृत्ति।

वि० दे० "शिल", "शिलोंछ"।

संज्ञा पुं० [देश०] बलूत की जाति का एक पहाड़ी पेड़ जो हिमालय पर होता है। बंज। मारू।

संज्ञा पुं० [अ०] तपेदिक। राजयक्ष्मा। क्षय रोग।

सिलक-संज्ञा स्त्री० [हिं० सलग = लगातार] (१) लड़ी। हार। (२) पंक्ति।

संज्ञा पुं० तागा। धागा।

सिलकी-संज्ञा पुं० [देश०] बेल। उ०—सुरभी सिलकी सदाफल बेल ताल मालूर।—अनेकार्थ।

सिलखड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिल + खड़िया] (१) एक प्रकार का चिकना मुलायम पत्थर जो बरतन बनाने के काम में आता है।

विशेष—इसकी बुकनी चीजों को चमकाने के लिये पालिश व रोगन बनाने के भी काम में आती है।

(२) सेत खड़ी। खरिया मिट्टी। दुद्धी।

सिलखरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलखड़ी"।

सिलगना-क्रि०अ० दे० "सुलगना"। उ०—(क) बिरहिन पै आयौ मनौ मैन दैन तरवाह। जुगनू नाहीं जामुगी सिलगत व्याहमि व्याह।—रसनिधि। (ख) आग भी आतिशदान में सिलग रही है। हवा उस समय सर्द चल रही थी।—शिवप्रसाद।

सिलप‡†-संज्ञा पुं० दे० "शिल्प"। उ०—विश्वकर्मा सुतिहार श्रुति धरि सुलभ सिलप दिखावनो। तेहि देखे त्रय ताप नाशै ब्रज वधू मन भावनो।—सूर।

सिलपची-संज्ञा स्त्री० दे० "चिलमची"।

सिलपट-वि० [सं० शिलापट्ट] (१) साफ। बराबर। चौरस।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) घिसा हुआ। मिटा हुआ। (३) चौपट। सत्तानाश।

संज्ञा पुं० [अं० स्लिपर] एड़ी की ओर खुली हुई जूती। चट्टी। चप्पल।

सिलपोहनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिल + पोहना] विवाह की एक रीति। उ०—सिंदूर वंदन होम लावा होन लागीं भाँवरी। सिल पोहनी करि मोहनी मन हर्‌यौ मूरति साँवरी।—तुलसी।

विशेष—विवाह में मातृकापूजन के समय वर और कन्या के माता पिता सिल पर थोड़ी सी भिगोई हुई उरद की दाल रखकर पीसते हैं। इसी को सिलपोहनी कहते हैं।

सिलफ़ची-संज्ञा स्त्री० दे० "चिलमची"।

सिलफोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० सिल + फोड़ना] पाषाण भेद। पत्थरचूर नाम का पौधा।

सिलबरुआ-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो पूरबी बंगाल की ओर होता है।

सिलमाकुर-संज्ञा पुं० [अं० सेल-मेकर] पाल बनानेवाला। (लश्करी)

सिलवट-संज्ञा स्त्री० [देश०] सुकड़ने से पड़ी हुई लकीर। चुनट। बल। शिकन। सिकुड़न। वली।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

सिलवाना-क्रि० स० [हिं० सीना का प्रेर०] किसी को सीने में प्रवृत्त करना । सिलाना ।

सिलसिला-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बँधा हुआ तार । क्रम । परंपरा । (२) श्रेणी । पंक्ति । जैसे,—पहाड़ों का सिलसिला । (३) शृंखला । जंजीर । लड़ी । (४) व्यवस्था । तरतीब । जैसे,—कुरसियों को सिलसिले से रख दो । (५) कुल परंपरा । वंशानुक्रम ।

वि० [सं० सिक्त] (१) भींगा हुआ । आर्द्र । गीला । (२) जिस पर पैर फिसले । रपटनवाला । (३) चिकना । उ०—बेंदी भाल तमोल मुख, सीस सिलसिले बार । दग आँजे राजे खरी, येही सहज सिंगार ।—बिहारी ।

सिलसिलाबंदी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० + अ०] (१) क्रम का बंधान । तरतीब । (२) कतारबंदी । पंक्ति बँधाई ।

सिलसिलेवार-वि० [अ० + फ़ा०] तरतीबवार । क्रमानुसार ।

सिलह-संज्ञा पुं० [अ० सिलाह] हथियार । शस्त्र । उ०—न्हाय गुसल करि सिलह करि हुवैं नगारे दोइ । देत नगारें तीसरे है सवार सब कोइ ।—सूदन ।

सिलहखाना-संज्ञा पुं० [अ० सिलाह + फ़ा० खानः] अस्त्रागार । हथियार रखने का स्थान ।

सिलहट-संज्ञा पुं० [देश०] (१) आसाम का एक नगर । (२) एक प्रकार का अगहनी धान । (३) एक प्रकार की नारंगी जो सिलहट (आसाम) में होती है ।

सिलहटिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव जिसके आगे पीछे दोनों तरफ के सिरे ऊँचे होते हैं ।

सिलहार, सिलहारा-संज्ञा पुं० [सं० शिलकार] खेत में गिरा हुआ अनाज बीननेवाला ।

सिलहिला-वि० [हिं० सील, सीड + हीला = कीचड़] [स्त्री० सिलहिली] जिस पर पैर फिसले । रपटनवाला । कीचड़ से चिकना । उ०—घर कबीर का शिखर पर, जहाँ सिलहली गैल । पाँव न टिकै पिपीलिका, खलक न लादे बैल ।—कबीर ।

सिलही-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी ।

सिला-संज्ञा स्त्री० दे० "शिला" । उ०—हैहै सिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे । कीन्ही भली रघुनंदन जू करुना करि कानन को पग धारे ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [सं० शिल] (१) खेत से कटी फसल उठा ले जाने के पश्चात् गिरा हुआ अनाज । कटे खेत में से चुना हुआ दाना । उ०—करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत सिला बटोरि । पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अजोरि ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—चुनना ।—बीनना ।

(२) पछोड़ने या फटकने के लिये रखा हुआ अनाज का ढेर । (३) कटे हुए खेत में गिरे अनाज के दाने चुनने की क्रिया । शिलवृत्ति ।

संज्ञा पुं० [अ० सिलह] बदला । एवज । पलटा । प्रतीकार ।

मुहा०—सिले में = बदले में । उपलक्ष में ।

सिलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सीना + आई (प्रत्य०)] (१) सीने का काम । सूई का काम । (२) सीने का ढंग । जैसे,—इस कोट की सिलाई अच्छी नहीं है । (३) सीने की मजदूरी । (४) टाँका । सीवन ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कीड़ा जो प्रायः ऊख या ज्वार के खेतों में लग जाता है । इसका शरीर भूरापन लिए हुए गहरा लाल होता है ।

सिलाजीत-संज्ञा पुं० [सं० शिलाजतु] पत्थर की चट्टानों का लसदार पसेव जो बड़ी भारी पुष्टई माना जाता है । वि० दे० "शिलाजतु" ।

सिलाना-क्रि० स० [हिं० सीना का प्रे०] सीने का काम दूसरे से कराना । सिलवाना ।

॥ क्रि० स० दे० "सिराना" ।

सिलापाक-संज्ञा पुं० [हिं० शिला + पाक] पथरफूल । छरीला । शैलज ।

सिलाबी-वि० [हिं० सीड़, सील + फ़ा० आब = पानी] सीड़वाला । तर ।

सिलारस-संज्ञा पुं० [सं० शिलारस] (१) सिल्हक वृक्ष । (२) सिल्हक वृक्ष का निर्य्यास या गोंद जो बहुत सुगंधित होता है ।

विशेष—यह पेड़ एशियाई कोचक के दक्खिन के जंगलों में बहुत होता है । इसका निर्य्यास 'सिलारस' के नाम से बिकता है और औषध के काम में आता है ।

सिलावट-संज्ञा पुं० [सं० शिला + पट्ट] पत्थर काटने और गढ़नेवाला । संगतराश । उ०—अली मरदान खाँ को लिखा कि खाती बेलदार और सिलावट भेज कर रस्ता चौड़ा करे ।—देवीप्रसाद ।

सिलासार-संज्ञा पुं० [सं० शिलासार] लोहा ।

सिलाह-संज्ञा पुं० [अ०] (१) जिरह बकतर । कवच । उ०—जाली की आँगी कसी यों उरोजनि मानो सिपाही सिलाह किये है ।—मन्नालाल । (२) अस्त्र-शस्त्र । हथियार ।

सिलाहखाना-संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] हथियार रखने का स्थान । शस्त्रालय । अस्त्रागार ।

सिलाहबंद-वि० [अ० + फ़ा०] सशस्त्र । हथियारबंद । शस्त्रों से सुसज्जित ।

सिलाहर-संज्ञा पुं० [सं० शिल + हर] (१) खेत में से एक एक दाना अन्न बीनकर निर्वाह करनेवाला मनुष्य । सिला बीननेवाला । (२) अकिंचन । दरिद्र ।

सिलाहसाज़-संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] हथियार बनानेवाला ।

सिलाही-संज्ञा पुं० [अ० सिलाह + ई (प्रत्य०)] शस्त्र धारण करनेवाला। सैनिक। सिपाही।

सिलिंगिया-संज्ञा स्त्री० [शिलांग] पूरबी हिमालय के शिलांग प्रदेश में पाई जानेवाली एक प्रकार की भेड़।

सिलिप†‡-संज्ञा पुं० दे० "शिल्प"। उ०—खेती, वनि, विद्या, बनिज, सेवा सिलिप सुकाज। तुलसी सुरतरु, सुरधेनु महि, अभिमत भोग विलास।—तुलसी।

सिलिया-संज्ञा स्त्री० [सं० शिला] एक प्रकार का पत्थर जो मकान बनाने के काम में आता है।

सिलियार, सिलियारा-संज्ञा पुं० दे० "सिलाहर"।

सिलिसिलिक-संज्ञा पुं० [सं०] गोंद। लासा।

सिलींध्र-संज्ञा पुं० दे० "शिलींध्र"।

सिलीमुख-संज्ञा पुं० दे० "शिलीमुख"।

सिलेट-संज्ञा स्त्री० दे० "स्लेट"।

सिलोंध-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बड़ी मछली जो भारत और बर्मा की नदियों में पाई जाती है। यह छ फुट तक लंबी होती है।

सिलोच्च-संज्ञा पुं० [सं० शिलोच्च] एक पर्वत जो गंगा तट पर विश्वामित्र के सिद्धाश्रम से मिथिला जाते समय राम को मार्ग में मिला था। उ०—यह हिमवंत सिलोच्चै नामा। श्रेत गंग तट अति अभिरामा।—रघुराज।

सिलौआ-संज्ञा पुं० [देश०] सन के मोटे रेशे जिनसे टोकरी बनाई जाती है।

सिलौट, सिलौटा-संज्ञा पुं० [हिं० सिल + बट्टा] (१) सिल। (२) सिल तथा बट्टा।

सिलौटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिल + औटी (प्रत्य०)] भाँग, मसाला आदि पीसने की छोटी सिल।

सिल्क-संज्ञा पुं० [अं०] (१) रेशम। (२) रेशमी कपड़ा।

सिल्प-संज्ञा पुं० दे० "शिल्प"।

सिल्लकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शल्लकी वृक्ष। सलई का पेड़।

सिल्ला-संज्ञा पुं० [सं० शिल] (१) अनाज की बालियाँ या दाने जो फसल कट जाने पर खेत में पड़े रह जाते हैं और जिन्हें चुनकर कुछ लोग निर्वाह करते हैं।

मुहा०—सिल्ला बीनना या चुनना = खेत में गिरे अनाज के दाने चुनना। उ०—कविता खेती उन लई, सिल्ला बिनत मजूर।

(२) खलियान में गिरा हुआ अनाज का दाना। (३) खलियान में बरसाने के स्थान पर लगा हुआ भूसे का ढेर जिसमें कुछ दाने भी चले जाते हैं।

सिल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० शिला] (१) पत्थर का सात आठ अंगुल लंबा छोटा टुकड़ा जिस पर घिसकर नाई उस्तरे की धार तेज करते हैं। हथियार की धार चोखी करने का पत्थर। सान। (२) आरे से चीरकर पेड़ी से निकाला हुआ तख्ता। फलक। पटरी। (३) पत्थर की छोटी पतली पटिया। (४) नदी में वह स्थान जहाँ पानी कम और धारा बहुत तेज होती है। (मांझी)

संज्ञा स्त्री० [हिं० सिल्ला] फटकने के लिये लगाया हुआ अनाज का ढेर।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का जलपक्षी जिसका शिकार किया जाता है।

विशेष—यह हाथ भर के लगभग लंबा होता है और तालों के किनारे दलदलों के पास पाया जाता है। यह मछली पकड़ने के लिये पानी में गोता लगाता है।

सिल्ह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिलारस नामक गंध द्रव्य। (२) सिलारस का पेड़।

सिल्हक-संज्ञा पुं० [सं०] सिलारस नामक गंध द्रव्य। कपितैल। कपिचंचल।

सिल्हकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह पेड़ जिससे शिलारस निकलता है। (२) कुंदुरु। शल्लकी निर्यास।

सिव‡†-संज्ञा पुं० दे० "शिव"।

सिवई-संज्ञा स्त्री० [सं० समिता = गेहूँ का गुँधा हुआ आटा] गुँधे हुए आटे के सूत के से सूखे लच्छे जो दूध में पकाकर खाए जाते हैं। सिवैयाँ।

मुहा०—सिवैयाँ बटना या तोड़ना = गीले आटे को हथेलियों के बीच में रगड़ते हुए सूत के से लच्छे बनाना। सिवैयाँ बनाना। सिवई पूरना = दे० "सिवैयाँ बटना"।

सिवक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीनेवाला। (२) दरजी।

सिवर-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी। हस्ती। गज।

सिवलिंगी-संज्ञा,स्त्री० दे० "शिवलिंगी"।

सिवस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वस्त्र। कपड़ा। (२) पद्य। श्लोक।

सिवा-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवा"।

अव्य० [अ०] अतिरिक्त। छोड़कर। अलावा। बाद देकर। जैसे,—तुम्हारे सिवा और यहाँ कोई नहीं आया।

वि० अधिक। ज्यादा। फालतू।

सिवाइ-अव्य० दे० "सिवाय", "सिवा"।

सिवाई-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मिट्टी।

† संज्ञा स्त्री० दे० "सिलाई"।

सिवान-संज्ञा पुं० [सं० सीमांत] (१) किसी प्रदेश का अंतिम भाग जिसके आगे दूसरा प्रदेश पड़ता हो। हद। सरहद। सीमा। (२) किसी गाँव के छोर पर की भूमि। गाँव की हद। सीमा। (३) गाँव के अंतर्गत भूमि। (४) फ़सल तैयार हो जाने पर ज़मींदार और किसान में अनाज का बँटवारा।

सिवाय-क्रि० वि० [अ० सिवा] अतिरिक्त। अलावा। छोड़कर। बाद देकर।

वि० (१) आवश्यकता से अधिक। ज़रूरत से ज्यादा। बेशी। (२) अधिक। ज्यादा। (३) ऊपरी। बालाई। मामूली से अतिरिक्त और।

संज्ञा पुं० वह आमदनी जो मुक़र्रर वसूली के ऊपर हो।

सिवार-संज्ञा स्त्री० पुं० [सं० शैवाल] पानी में बालों के लच्छों की तरह फैलनेवाला एक तृण।

विशेष—यह नदियों में प्रायः होता है। इसका रंग हलका हरा होता है। यह चीनी साफ करने तथा दवा के काम में आता है। वैद्यक में यह कसैला, कड़ुवा, मधुर, शीतल, हलका, स्निग्ध, नमकीन, दस्तावर, घाव को भरनेवाला तथा त्रिदोष को नाश करनेवाला कहा गया है। उ०—(क) पग न इत उत धरत पावत उरझि मोह सिवार।—सूर। (ख) चलती लता सिवार की, जल तरंग के संग। बड़वानल को जनु धरयो, धूम धूमरो रंग।—तुलसी।

सिवाल-संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "सिवार"। उ०—नीलाम्बर नील जाल बीच हो उरझि सिवाल लट जाल में लपटि परयो।—देव।

सिवाला-संज्ञा पुं० [सं० शिवालय] शिव का मंदिर।

सिवाली-संज्ञा पुं० [सं० शैवाल] एक प्रकार का मरकत या पन्ना जिसका रंग कुछ हलका होता है और जिसमें कभी कभी ललाई की भी कुछ आभा रहती है।

सिवि-संज्ञा पुं० दे० "शिवि"।

सिविका-संज्ञा स्त्री० दे० "शिविका"। उ०—राजा की रजाइ पाइ सचिव सहेली धाइ सतानंद ल्याए सिय सिविका चढ़ाइ कै।—तुलसी।

सिविर-संज्ञा पुं० दे० "शिविर"। उ०—बसत सिविर मधि मगध अंध सुत। जिमि उडुगन मधि रवि ससि छवि जुत। —गि० दास।

सिविल-वि० [अं०] (१) नगर संबंधी। नागरिक। (२) नगर की शांति के समय देख रेख या चौकसी करनेवाला। जैसे,—सिविल पुलिस। (३) मुल्की। माली। (४) शालीन। सभ्य। मिलनसार।

सिविल सर्जन-संज्ञा पुं० [अं०] सरकारी बड़ा डाक्टर जिसे जिले भर के अस्पतालों, जेलखानों तथा पागलखानों को देखने का अधिकार होता है।

सिविल सर्विस-संज्ञा स्त्री० [अं०] अँगरेजी सरकार की एक विशेष परीक्षा जिसमें उत्तीर्ण व्यक्ति देश के प्रबंध और शासन में ऊँचे पद पर नियुक्त होते हैं।

सिवीलियन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) सिविल-सर्विस-परीक्षा पास किया हुआ मनुष्य। (२) मुल्की अफसर। देश के शासन और प्रबंध-विभाग का कर्मचारी।

सिवैयाँ-संज्ञा स्त्री० दे० "सिवई"।

सिश्त-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शिस्त] बंसी की डोरी। उ०—हस्ती लाय सिष्ट सब ढीला। दौड़ आय इक चाल्हहिं लीला।—जायसी।

*† वि० दे० "शिष्ट"।

सिष्य*†-संज्ञा पुं० दे० "शिष्य"। उ०—राय रजायसु राय को ऋषिराज बोलाए। सिष्य सचिव सेवक सखा सादर सिर नाए।—तुलसी।

सिसकना-क्रि० अ० [अनु० या सं० सी + करना] (१) भीतर ही भीतर रोने में रुक रुककर निकलती हुई साँस छोड़ना। जैसे,—लड़का सिसक सिसककर रोता है। (२) रोक रोककर लंबी साँस छोड़ते हुए भीतर ही भीतर रोना। शब्द निकालकर न रोना। खुलकर न रोना।

मुहा०—सिसकती भिनकती = मैली कुचैली और रोनी सूरत का (स्त्री)।

(३) जी धड़कना। धकधकी होना। बहुत भय लगना। जैसे,—वहाँ जाते हुए जी सिसकता है। (४) उलटी साँस लेना। हिचकियाँ भरना। मरने के निकट होना। (५) तरसना (प्राप्ति के लिये) रोना। (पाने के लिये) व्याकुल होना। उ०—प्रभुहिं बिलोकि मुनिगन पुलके कहत भूरि भाग भए सब नीच नारि नर हैं। तुलसी सो सुख लाहु लूटत किरात कोल जाको सिसकत सुर बिधि हरि हर हैं। —तुलसी।

सिसकारना-क्रि० प्र० [अनु० सी सी + करना] (१) जीभ दबाते हुए वायु मुँह से छोड़ना। सीटी का सा शब्द मुँह से निकालना। सुसकारना। (२) इस प्रकार के शब्द से कुत्ते को किसी ओर लपकाना। लहकारना।

संयो० क्रि०—देना।

(३) जीभ दबाते हुए मुँह से साँस खींचकर सी सी शब्द निकालना। अत्यंत पीड़ा या आनंद के कारण मुँह से साँस खींचना। शीत्कार करना।

सिसकारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिसकारना] (१) सिसकारने का शब्द। जीभ दबाते हुए मुँह से वायु छोड़ने का शब्द। सीटी का सा शब्द। (२) कुत्ते को किसी ओर लपकाने के लिये सीटी का शब्द। (३) जीभ दबाते हुए मुँह से साँस खींचने का शब्द। अत्यंत पीड़ा या आनंद के कारण मुँह से निकला हुआ 'सी सी' शब्द। शीत्कार।

क्रि० प्र०—देना।—भरना।

सिसकी-संज्ञा स्त्री० [अनु० सी सी या सं० शीत्कार] (१) भीतर ही भीतर रोने में रुक रुककर निकलती हुई साँस का शब्द। खुलकर न रोने का शब्द। रुकती हुई लंबी साँस भरने का शब्द।

क्रि० प्र०—भरना।—लेना।

(२) सिसकारी। शीत्कार।

सिसियाँद—संज्ञा स्त्री० [?+गंध] मछली की सी गंध। बिसायँध।

सिसिर॥—संज्ञा पुं० दे० "शिशिर"। उ०—(क) चलत चलत लौ ले चले, सब सुख संग लगाय। ग्रीषम बासर सिसिर निसि, पिय मो पास बसाय।—बिहारी। (ख) पावस परपि रहे उघरारे। सिसिर समै बसि नीर मझारे।—पद्माकर।

सिसु॥—संज्ञा पुं० दे० "शिशु"। उ०—(क) लोचनाभिराम घनस्याम राम रूप सिसु, सखी कहै सखी सों तू प्रेम पय पालि री।—तुलसी। (ख) देवर फूल हने जु सिसु उठी हरषि अँग फूल। हँसी करत औषध सखिनि देह ददोरनि भूल।—बिहारी।

सिसुता॥—संज्ञा स्त्री० दे० "शिशुता"। उ०—(क) स्याम के संग सदा बिलसी सिसुता में सुता में कछू नहीं जान्यो।—देव। (ख) छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अंग। दीपति देहि दुहून मिलि, दिपति ताफता रंग।—बिहारी।

सिसुपाल॥†—संज्ञा पुं० दे० "शिशुपाल"।

सिसुमारचक्र—संज्ञा पुं० दे० "शिशुमारचक्र"। उ०—एक एक नग देखि अनेकन उडुगन वारिय। बसत मनहुँ सिसुमार-चक्र तन इमि निरधारिय।—गि० दास।

सिसृक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सृष्टि करने की इच्छा। रचने या बनाने की इच्छा।

सिसृक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्ट करने की इच्छा रखनेवाला। रचना का इच्छुक। उ०—जाको मुमुक्षु जे प्रेम बुभुक्षु गुणै यह विश्व सिसृक्षु सदा ही। काल जिघृक्षु सरुक्षु कृपा की स्वपानम स्वक्ष स्वपक्ष प्रिया ही।—रघुराज।

सिसोदिया—संज्ञा पुं० [सिसोद (स्थान)] गुहलौत राजपूतों की एक शाखा जिसकी प्रतिष्ठा क्षत्रिय कुलों में सब से अधिक है और जिसकी प्राचीन राजधानी चित्तौड़ और आधुनिक राजधानी उदयपुर है।

विशेष—क्षत्रियों में चित्तौड़ या उदयपुर का घराना सूर्य्य-वंशीय महाराज रामचन्द्र की वंश परंपरा में माना जाता है। इन क्षत्रियों का पहले गुजरात के वल्लभीपुर नामक स्थान में आना कहा जाता है। वहाँ से बाप्पारावल ने आकर चित्तौड़ को तत्कालीन मोरी शासक से लेकर अपनी राजधानी बनाया। मुसलमानों के आने पर भी चित्तौड़ स्वतंत्र रहा और हिन्दू शक्ति का प्रधान स्थान माना जाता था। चित्तौड़ में बड़े बड़े पराक्रमी राणा हो गए हैं। राणा समरसिंह, राणा कुंभा, राणा साँगा आदि मुसलमानों से बड़ी वीरता से लड़े थे। प्रसिद्ध वीर महाराणा प्रताप किस प्रकार अकबर से अपनी स्वाधीनता के लिये लड़े, यह प्रसिद्ध ही है। सिसोद नामक स्थान में कुछ दिन बसने के कारण गुहिलौतों की यह शाखा सिसोदिया कहलाई।

सिस्न—संज्ञा पुं० दे० "शिश्न"।

सिस्य—संज्ञा पुं० दे० "शिष्य"।

सिहद्दा—संज्ञा पुं० [फ़ा० सिह+अ० हद] वह स्थान जहाँ तीन हदें मिलती हों।

सिहपर्णी—संज्ञा पुं० [सं०] अडूसा। वासक वृक्ष।

सिहरना†—क्रि० अ० [सं० शीत+ना] (१) ठंढ से काँपना। (२) काँपना। कंपित होना। (३) भयभीत होना। दहलना। उ०—छनक बियोग कु याद परे अतिसै हिय सिहरत।—व्यास। (४) रोंगटे खड़े होना।

सिहरा—संज्ञा पुं० दे० "सेहरा"।

सिहराना†—क्रि० स० [हिं० सिहरना] (१) सरदी से कँपाना। शीत से कंपित करना। (२) कँपाना। कंपित करना। (३) भयभीत करना। दहलाना।

क्रि० स०, क्रि० अ० दे० "सहलाना"।

सिहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सिहरना] (१) शीत-कंप। ठंढ के कारण कँपकँपी। (२) कंप। कँपकँपी। (३) भय। दहलना। (४) जूड़ी का बुखार। (५) रोंगटे खड़े होना। लोमहर्ष।

सिहरू—संज्ञा पुं० [देश०] संभालू। सिंदुवार।

सिहलाना†—क्रि० अ० [सं० शीतल] (१) सिराना। ठंढा होना। (२) शीत खा जाना। सीड़ खाना। नम होना। (३) ठंढ पड़ना। सरदी पड़ना।

सिहलावन†—संज्ञा पुं० [हिं० सिहलाना] सरदी। ठंढ। जाड़ा।

सिहली—संज्ञा स्त्री० [सं० शीतला] शीतली जटा। शीतली लता।

सिहान—संज्ञा पुं० [सं० सिंहाण] मंडूर। लोहकिट्ट।

सिहाना†—क्रि० अ० [सं० ईर्ष्या] (१) ईर्ष्या करना। डाह करना। (२) किसी अच्छी वस्तु को देखकर इस बात से दुखी होना कि वैसी वस्तु हमारे पास नहीं है। स्पर्द्धा करना। उ०—द्वारिका की देखि छबि सुर असुर सकल सिहात।—सूर। (३) पाने के लिये ललचना। लुभाना। उ०—सूर प्रभु को निरखि गोपी मनहि मनहि सिहाति।—सूर। (४) मुग्ध होना। मोहित होना। उ०—(क) सूर स्याम मुख निरखि जसोदा मनही मनहि सिहानी।—सूर। (ख) लाल अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति।—बिहारी।

क्रि० स० (१) ईर्ष्या की दृष्टि से देखना। (२) अभिलाष की दृष्टि से देखना। ललचना। उ०—समउ समाज राज दसरथ को लोकप सकल सिहाहीं।—तुलसी।

सिहारना॥†—क्रि० स० [देश०] (१) तलाश करना। ढूँढना। (२) जुटाना। उ०—हम कन्यन को ब्याह विचारौ। इनहि जोग बर तुमहु सिहारौ।—पद्माकर।

सिहिकना—क्रि० अ० [सं० शुष्क] सूखना। (फ़सल का)

सिहुंड—संज्ञा पुं० [सं०] सेहुँड का पेड़। स्नुही। थूहर।

सिहोड़, सिहोर–संज्ञा पुं० [सं० सिहुंट] थूहर। सेहुँड़। स्नुही। उ०—बेगि बोलि, बलि, बरजिए करतूति कठोरे। तुलसी दलि रूँध्यो चहै सठ साखि सिहोरे।—तुलसी।

सींक–संज्ञा स्त्री० [सं० इषीका] (१) मूँज या सरपत की जाति के एक पौधे के बीच का सीधा पतला कांड जिसमें फूल या घूआ लगता है। मूँज आदि की पतली तीली।

विशेष—इस कांड का घेरा मोटी सूई के बराबर होता है और यह कई कामों में आता है। बहुत सी तीलियों को एक में बाँधकर झाड़ू बनाते हैं। उ०—सींक धनुष हित सिखन सकुचि प्रभु लीन। मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन।—तुलसी।

(२) किसी तृण का सूक्ष्म कांड। किसी घास का महीन डंठल। (३) किसी घास फूस के महीन डंठल का टुकड़ा। तिनका। (४) शंकु। तीली। सूई की तरह पतला लंबा खंड। (५) नाक का एक गहना। लौंग। कील। उ०—जटित नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नाक। मनौ अली चंपक कली बसि रस लेत निसाँक।—बिहारी। (६) कपड़े पर की खड़ी महीन धारी।

सींकपार–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बत्तख।

सींकर–संज्ञा पुं० [हिं० सींक] सींक में लगा फूल या घूआ।

सींका–संज्ञा पुं० [हिं० सींक] पेड़ पौधों की बहुत पतली उपशाखा या टहनी जिसमें पत्तियाँ गुछी रहती या फूल लगते हैं। डाँड़ी। जैसे,—नीम का सींका।

सींकिया–संज्ञा पुं० [हिं० सींक + इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंगीन कपड़ा जिसमें सींक सी महीन सीधी धारियाँ बिलकुल पास पास होती हैं। जैसे,—सींकिये का पायजामा।

वि० सींक सा पतला।

मुहा०—**सींकिया पहलवान** = दुबला पतला आदमी जो अपने को बड़ा बली समझता हो।

सींग–संज्ञा पुं० [सं० शृंग] (१) खुरवाले कुछ पशुओं के सिर के दोनों ओर शाखा के समान निकले हुए कड़े नुकीले अवयव जिनसे वे आक्रमण करते हैं। विषाण। जैसे,—गाय के सींग, हिरन के सींग।

विशेष—सींग कई प्रकार के होते हैं और उनकी योजना भी भिन्न भिन्न उपादानों की होती है। गाय, भैंस आदि के पोले सींग ही असली सींग हैं जो अंडधातु और चूने आदि से संघटित तंतुओं के योग से बने होते हैं और बराबर रहते हैं। बारहसिंगों के सींग हड्डी के होते हैं और हर साल गिरते और नए निकलते हैं।

क्रि० प्र० —निकलना।—मारना।

मुहा०—**(किसी के सिर पर) सींग होना** = कोई विशेषता होना। कोई खसूसियत होना। श्रेष्ठ से बढ़कर कोई बात होना (व्यंग्य)। **सींग कटाकर बछड़ों में मिलना** = बूढ़े होकर बच्चों में मिलना। किसी सयाने का बच्चों का साथ देना। **सींग दिखाना** = अँगूठा दिखाना। कोई वस्तु न देना और चिढ़ाना। **सींग निकलना** = (१) चौपाए का जवान होना। (२) इतराना। पागलपन करना। सनकना। **कहीं सींग समाना** = कहीं ठिकाना मिलना। शरण मिलना। **सींग पर मारना** = कुछ न समझना। तुच्छ समझना। कुछ परवा न करना।

(२) सींग का बना एक बाजा जो फूँक कर बजाया जाता है। सिंगी। उ०—सींग बजावत देखि सुकवि मेरे दृग अँटके।—व्यास। (३) पुरुष की इन्द्रिय। (बाजारू)

सींगड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० सींग + ड़ा (प्रत्य०)] (१) बारूद रखने का सींग का चोंगा। बारूददान। (२) एक प्रकार का बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। सिंगी।

सींगना–क्रि० स० [हिं० सींग] सींग देखकर चोरी के पशु पकड़ना। चोरी के चौपायों की शिनाख्त करना।

सींगरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का लोबिया या फली जिसकी तरकारी होती है। मोगरे की फली। सींगर। उ०—सूरन करि तरि सरस तोरई। सेमि सींगरी छमकि झोरई।—सूर।

सींगी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सींग] (१) हरिन के सींग का बना बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। सिंगी। उ०—सींगी संख सेग डफ बाजे। बंसकार महुआ सुर साजे।—जायसी। (२) वह पोला सींग जिससे जर्राह शरीर से दूषित रक्त खींचते हैं।

मुहा०—**सींगी लगाना या तोड़ना** = (१) सींगी से रक्त खींचना। (२) चुंबन करना। (बाजारू)

(३) एक प्रकार की मछली जिसके मुँह के दोनों ओर सींग से निकले रहते हैं। तोमड़ी। उ०—सींगी, भाकुर बिनि सब धरी।—जायसी।

सींघन–संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों के माथे पर दो या अधिक भौंरीवाला टीका।

सींच–संज्ञा स्त्री० [हिं० सींचना] (१) सींचने की क्रिया या भाव। सिंचाई। (२) छिड़काव।

सींचना–क्रि० स० [सं० सिंचन] (१) पानी देना। पानी से भरना। आबपाशी करना। पटाना। जैसे,—खेत सींचना, बगीचा सींचना। उ०—अति अनुराग सुधाकर सींचत दाड़िम बीज समान।—सूर। (२) पानी छिड़ककर तर करना। भिगोना। (३) छिड़कना। (पानी आदि) डालना या छितराना। उ०—(क) मार सुमार करी खरी अरी भरी हित मारि। सींच गुलाब घरी घरी अरी बरोहि न बारि।—बिहारी। (ख) आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ।—तुलसी।

सांची–संज्ञा स्त्री० [हिं० सांचना] सांचने का समय ।

सींवँꕥ–संज्ञा पुं० [सं० सीमा] सीमा । हद । मर्य्यादा । उ०—(क) आवत देखि अतुल बल सींवाँ ।—तुलसी । (ख) सुखनि की सींव सोहै सुजस समूह फैलो मानो अमरावती को देखि कै हँसतु है ।—गुमान । (ग) सुख की सींव अवधि आनँद की अवध बिलोकिहौं जाइहौं ।—तुलसी ।

मुहा०—सींव चरना या काँड़ना = अधिकार दिखाना । दबाना । जबरदस्ती करना । उ०—है काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीव चरै ।—तुलसी ।

सी–वि० स्त्री० [सं० सम, हिं० सा] सम । समान । तुल्य । सदृश । जैसे, वह स्त्री बावली सी है । उ०—(क) मूरति की मूरति कहा न परै तुलसी पै जानै सोई जाके उर कसकै करक सी ।—तुलसी । (ख) दुरै न निघर घटो दिए ए रावरी कुचाल । विष सी लागति है बुरी हँसी खिसी की लाल ।—बिहारी । (ग) सरद चंद की चाँदनी मंद परति सी जाति ।—पद्माकर ।

मुहा०—अपनी सी = अपने भरसक, जहाँ तक अपने से हो सके, वहाँ तक । उ०—मैं अपनी सी बहुत करी, री ।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो अत्यंत पीड़ा या आनंद-रसास्वाद के समय मुँह से निकलता है । शीत्कार । सिसकारी । उ०—'सी' करनवारी स्वेद-सीकरन-वारी रति सी करन वारी सो वसीकरनवारी है ।—पद्माकर ।

संज्ञा स्त्री० [सं० सीत] बीज की बोआई ।

सीउꕥ–संज्ञा पुं० [सं० शीत] शीत । ठंढ । उ०—(क) कीन्हेसि धूप सीउ औ छाहाँ ।—जायसी । (ख) जहाँ भानु तहँ रहा न सीऊ ।—जायसी ।

सीकचा–संज्ञा पुं० [फा० सीख] लोहे की छड़ ।

सीकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल कण । पानी की बूँद । छींट । उ०—(क) श्रम स्वेद सीकर गुंड मंडित रूप अंबुज कोर ।—सूर । (ख) राम नाम रति स्वाति सुधा सुभ सीकर प्रेम पियासा ।—तुलसी । (२) पसीना । स्वेद । कण । उ०—आनन सीकर सी कहिए धक सोवत ते अकुलाय उठी क्यों ।—केशव ।

ꕥ† संज्ञा स्त्री० [सं० शृंखला] जंजीर । सिकड़ी । उ०—भट भरे असी का में चढ़े सीकर सुंडन में लसत ।—गि० दास ।

सीकल–संज्ञा पुं० [देश०] डाल का पका हुआ आम ।

संज्ञा स्त्री० [अ० सैकल] हथियारों का मोरचा छुड़ाने की क्रिया । हथियार की सफाई ।

सीकस–संज्ञा पुं० [देश०] ऊसर । उ०—सिंह शार्दुल यक हर जोतिनि सीकस बोइनि धाना ।—कबीर ।

सीका–संज्ञा पुं० [सं० शीर्षक] सोने का एक आभूषण जो सिर पर पहना जाता है ।

संज्ञा पुं० [सं० शिक्या] ऊपर टाँगने की सुतली आदि की जाली जिस पर दूध दही आदि का बरतन रखते हैं । छीका । सिकहर ।

सीकाकाई–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का वृक्ष जिसकी फलियाँ रीठे की भाँति सिर के बाल आदि मलने के काम में आती हैं । कुछ लोग इसे सातला भी मानते हैं ।

सीकी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सीका] छोटा सीका या छींका । छोटा सिकहर ।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) छेद । सूराख । (२) मुँह । मुहँड़ा ।

सीकुर–संज्ञा पुं० [सं० शूक] गेहूँ, जौ आदि की बाल के ऊपर निकले हुए बाल के से कड़े सूत । शूक । उ०—गड़त पौंह जब आइ, बड़ी बिथा सीकुर करत । क्यों न पीर सरसाइ याके हिय भूपति चुभ्यो ।—गुमान ।

सीको†–संज्ञा पुं० दे० "सीका" ।

सीख–संज्ञा स्त्री० [सं० शिक्षा, प्रा० सिक्खा] (१) सिखाने की क्रिया या भाव । शिक्षा । तालीम । (२) वह बात जो सिखाई जाय । (३) परामर्श । सलाह । मंत्रण । उपदेश । उ०—याकी सीख सुनै ब्रज को रे ।—सूर ।

सीख़–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) लोहे की लंबी पतली छड़ । शलाका । तीली । (२) वह पतली छड़ जिसमें गोद कर मांस भूनते हैं । (३) बड़ी सूई । सूआ । शंकु । (४) लोहे की छड़ जिससे जहाज के पेंदे में आया हुआ पानी नापते हैं । (लश०)

सीखचा–संज्ञा पुं० [फा०] (१) लोहे की सीख जिस पर मांस लपेटकर भूनते हैं । (२) लोहे की छड़ ।

सीखनꕥ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० सीखना] शिक्षा । सीख ।

सीखना–क्रि० स० [सं० शिक्षण, प्रा० सिक्खण] (१) ज्ञान प्राप्त करना । जानकारी प्राप्त करना । किसी से कोई बात जानना । जैसे,—विद्या सीखना, कोई बात सीखना । (२) किसी कार्य्य के करने की प्रणाली आदि समझना । काम करने का ढंग आदि जानना । जैसे,—सितार सीखना, शतरंज सीखना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।

सीग़ा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) साँचा । ढाँचा । (२) व्यापार । पेशा । (३) विभाग । महकमा ।

यौ०—सीगेवार = ब्योरेवार ।

(४) एक प्रकार के वाक्य जो मुसलमानों के विवाह के समय कहे जाते हैं ।

संज्ञा पुं० दे० "सिगार" ।

सीगारा–संज्ञा पुं० [देश०] मोटा कपड़ा ।

संज्ञा पुं० दे० "सिगार" ।

सीचन–संज्ञा पुं० [देश०] खारी पानी से मिट्टी निकालने का एक ढंग ।

सीचापू–संज्ञा स्त्री० [सं०] यक्षिणी ।

सीज–संज्ञा स्त्री० दे० "सीझ" ।

संज्ञा पुं० [देश०] थूहर । सेहुँड़।

सीजना–क्रि० अ० दे० "सीझना" ।

सीझ–संज्ञा स्त्री० [सं० सिद्धि, प्रा० सिज्झि] सीझने की क्रिया या भाव । गरमी से गलाव ।

सीझना–क्रि० अ० [सं० सिद्ध, प्रा० सिज्झ + ना] (१) आँच या गरमी पाकर गलना । पकना । चुरना । जैसे,—दाल सीझना, रसोई सीझना । (२) आँच या गरमी से मुलायम पड़ना । ताव खाकर नरम पड़ना । (३) सूखे हुए चमड़े का मसाले आदि में भीग कर मुलायम होना । (४) ताप या कष्ट सहना । क्लेश झेलना । (५) कायक्लेश सहना । तप करना । तपस्या करना । उ०—(क) एइ वहि लागि जनम भरि सीझा । चहै न औरहि, ओही रीझा ।—जायसी । (ख) गनिका गीध अजामिल आदिक ले कासी प्रयाग कब सीझे ।—तुलसी । (६) सरदी से गलना । बहुत ठंढ खाना । (७) ऋण का निबटारा होना ।

सीट–संज्ञा स्त्री० [अं०] बैठने का स्थान । आसन ।

संज्ञा स्त्री० सीटने की क्रिया या भाव । जीट ।

सीटना–क्रि० स० [अनु०] डींग मारना । शेखी मारना । बढ़ बढ़कर बातें करना ।

सीट पटाँग–संज्ञा स्त्री० [हिं० सीटना + (अनु०) पटाँग] बढ़ बढ़कर की जानेवाली बातें । घमंड भरी बात ।

सीटी–संज्ञा स्त्री० [सं० शीत्] (१) वह पतला महीन शब्द जो ओठों को गोल सिकोड़कर नीचे की ओर आघात के साथ वायु निकालने से होता है ।

क्रि० प्र०—बजाना ।

मुहा०—सीटी देना = सीटी के शब्द से बुलाना या और कोई संकेत करना ।

(२) इसी प्रकार का शब्द जो किसी बाजे या यंत्र आदि के भीतर की हवा निकालने से होता है । जैसे,—रेल की सीटी ।

मुहा०—सीटी देना = (१) सीटी का शब्द निकालना । जैसे,—रेल सीटी दे रही है । (२) सीटी से सावधान करना ।

(३) वह बाजा या खिलौना जिसे फूँकने से उक्त प्रकार का शब्द निकले ।

सीठ–संज्ञा स्त्री० दे० "सीठी" ।

सीठना–संज्ञा पुं० [सं० अशिष्ट, प्रा० असिट्ठ + ना] अश्लील गीत जो स्त्रियाँ विवाहादि मांगलिक अवसरों पर गाती हैं । सीठनी । विवाह की गाली ।

सीठनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सीठना] विवाह की गाली ।

सीठा–वि० [सं० शिष्ट, प्रा० सिट्ठ = बचा हुआ] नीरस । फीका । बिना स्वाद का । बेजायका ।

सीठापन–संज्ञा पुं० [हिं० सीठा + पन] नीरसता । फीकापन ।

सीठी–संज्ञा स्त्री० [सं० शिष्ट, प्रा० सिट्ठ = बचा हुआ] (१) किसी फल, फूल, पत्ते आदि का रस निकल जाने पर बचा हुआ निकम्मा अंश । वह वस्तु जिसका रस या सार निचुड़ गया हो । खूद । जैसे,—अनार की सीठी, भाँग की सीठी, पान की सीठी । (२) निस्सार वस्तु । सारहीन पदार्थ । (३) नीरस वस्तु । फीकी चीज ।

सीड़–संज्ञा स्त्री० [सं० शीत] सील । तरी । नमी ।

सीढ़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० श्रेणी] (१) किसी ऊँचे स्थान पर क्रम क्रम से चढ़ने के लिये एक के ऊपर एक बना हुआ पैर रखने का स्थान । निसेनी । जीना । पैड़ी । (२) बाँस के दो बल्लों का बना लंबा ढाँचा, जिसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर रखने के लिये डंडे लगे रहते हैं और जिसे भिड़ाकर किसी ऊँचे स्थान तक चढ़ते हैं । बाँस की बनी पैड़ी ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

यौ०—सीढ़ी का डंडा = पैर रखने के लिये बाँस की सीढ़ी में जड़ा हुआ डंडा ।

मुहा०—सीढ़ी सीढ़ी चढ़ना = क्रम क्रम से ऊपर की ओर बढ़ना । धीरे धीरे उन्नति करना ।

(३) उत्तरोत्तर उन्नति का क्रम । धीरे धीरे आगे बढ़ने की परंपरा । (४) हैंड प्रेस का एक पुर्जा जिस पर टाइप रखकर छापने का प्लेटन लगा रहता है । (५) घुड़िया के आकार का लकड़ी का पाया जो खंडसाल में चीनी साफ करने के काम में आता है । (६) एक गराड़ीदार लकड़ी जो गिरदानक की आड़ के लिये लपेटन के पास गड़ी रहती है । (जुलाहे)

सीत‡–संज्ञा पुं० दे० "शीत" ।

सीतपकड़–संज्ञा पुं० [हिं० शीत + पकड़ना] एक रोग जो हाथी को शीत से होता है ।

सीतल‡–वि० दे० "शीतल" ।

सीतलचीनी–संज्ञा स्त्री० दे० "शीतलचीनी" ।

सीतलपाटी–संज्ञा स्त्री० [सं० शीतल + हिं० पाटी] (१) एक प्रकार की बढ़िया चिकनी चटाई । (२) पूर्व बंगाल और आसाम के जंगलों में होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी जिससे चटाई या सीतलपाटी बनती है । (३) एक प्रकार का धारीदार कपड़ा ।

सीतल बुकनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० शीतल + बुकनी] (१) सत्तू । सतुआ । (२) संतों की बानी । (साधु)

सीतला–संज्ञा स्त्री० दे० "शीतला" ।

सीता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह रेखा जो जमीन जोतते समय हल की फाल के धँसने से पड़ती जाती है । कूँड़ ।

विशेष—वेदों में सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी और कई मंत्रों की देवता है । तैत्तिरीय ब्राह्मण में सीता ही सावित्री और पाराशर गृह्यसूत्र में इन्द्र-पत्नी कही गई है ।

(२) मिथिला के राजा सीरध्वज जनक की कन्या जो श्रीरामचंद्र जी की पत्नी थीं ।

विशेष—इनकी उत्पत्ति की कथा यों है कि राजा जनक ने संतति के लिये एक यज्ञ की विधि के अनुसार अपने हाथ से भूमि जोती। जुती हुई भूमि की कूँड़ (सीता) से सीता उत्पन्न हुई। सयानी होने पर सीता के विवाह के लिये जनक ने धनुर्यज्ञ किया, जिसमें यह प्रतिज्ञा थी कि जो कोई एक विशेष धनुष को चढ़ावे, उससे सीता का विवाह हो। अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र कुमार रामचंद्र ही उस धनुष को चढ़ा और तोड़ सके, इससे उन्हीं के साथ सीता का विवाह हुआ। जब विमाता की कुटिलता के कारण रामचंद्र जी ठीक अभिषेक के समय पिता द्वारा १४ वर्षों के लिये वन में भेज दिए गए, तब पतिपरायणा सती सीता उनके साथ वन में गईं और वहाँ उनकी सेवा करती रहीं। वन में ही लंका का राजा रावण उन्हें हर ले गया, जिस पर राम ने बंदरों की बड़ी भारी सेना लेकर लंका पर चढ़ाई की और राक्षसराज रावण को मारकर वे सीता को लेकर १४ वर्ष पूरे होने पर फिर अयोध्या आए और राजसिंहासन पर बैठे।

जिस प्रकार महाराज रामचंद्र विष्णु के अवतार माने जाते हैं, उसी प्रकार सीता देवी भी लक्ष्मी का अवतार मानी जाती हैं और भक्त जन राम के साथ बराबर इनका नाम भी जपते हैं। भारतवर्ष में सीता देवी सतियों में शिरोमणि मानी जाती हैं। जब राम ने लोक मर्य्यादा के अनुसार सीता की अग्निपरीक्षा की थी, तब स्वयं अग्निदेव ने सीता को लेकर राम को सौंपा था।

पर्य्या०—वैदेही। जानकी। मैथिली। भूमिसंभवा। अयोनिजा।

यौ०—सीता की मचिया = एक प्रकार का गोदना जो स्त्रियाँ हाथ में गुदाती हैं। सीता की रसोई = (१) एक प्रकार का गोदना। (२) बच्चों के खेलने के लिए रसोई के छोटे छोटे बरतन। सीता की पँजीरी = कर्पूरवल्ली नाम की लता।

(३) वह भूमि जिस पर राजा की खेती होती हो। राजा की निज की भूमि। सीर। (४) दाक्षायणी देवी का एक रूप या नाम। (५) आकाश गंगा की उन चार धाराओं में से एक जो मेरु पर्वत पर गिरने के उपरांत हो जाती हैं।

विशेष—यह नदी या धारा भद्राश्व वर्ष या द्वीप में मानी गई है। (पुराण)

(६) मदिरा। (७) ककड़ी का पौधा। (८) पाताल गारुड़ी लता। (९) एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में रगण, तगण, मगण, यगण और रगण होते हैं। उ०—राम सीता राम सीता राम सीता गाव रे।

सीताकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] वह कुंड जो सीता देवी के संबंध से पवित्र तीर्थ माना जाता हो।

विशेष—इस नाम के अनेक कुंड और झरने भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं। जैसे,—(१) मुँगेर से ढाई कोस पर गरम पानी का एक कुंड है। इसके विषय में प्रसिद्ध है कि जब देवताओं ने सीता जी की पूजा नहीं स्वीकार की, तब वे फिर अग्निपरीक्षा के लिये अग्निकुंड में कूद पड़ीं। आग बुझ गई और उसी स्थान पर पानी का एक सोता निकल आया। (२) भागलपुर जिले में मंदार पर्वत पर एक कुंड। (३) चंपारन जिले में मोनिहारी से ६ कोस पूर्व एक कुंड। (४) चटगाँव जिले में एक पर्वत की चोटी पर एक कुंड। (५) मिरजापूर जिले में विंध्याचल के पास एक झरना और कुंड।

सीताजानि—संज्ञा पुं० [सं०] (वह जिसकी पत्नी सीता हैं) श्रीरामचंद्र।

सीतातीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ। (वायु पुराण)

सीताद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] खेती के उपादान। काश्तकारी का सामान।

सीताधर—संज्ञा पुं० [सं०] हलधर। बलराम जी।

सीताध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह राज-कर्मचारी जो राजा की निज की भूमि में खेती बारी आदि का प्रबंध करता हो।

सीतानवमीव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत।

सीतानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

सीतापति—संज्ञा पुं० [सं०] (सीता के स्वामी) श्रीरामचंद्र।

सीता पहाड़—संज्ञा पुं० [सं० सीता + हिं० पहाड़] एक पर्वत जो बंगाल के चटगाँव जिले में है।

सीताफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीफा। (२) कुम्हड़ा।

सीतायज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] हल जोतने के समय होनेवाला एक यज्ञ।

सीतारमण—संज्ञा पुं० [सं०] (सीता के पति) रामचंद्रजी।

सीतारवन, सीतारौन⊛‡—संज्ञा पुं० दे० "सीतारमण"।

सीतालोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] जुते हुए खेत का मिट्टी का ढेला। (गोभिल श्राद्धकल्प)

सीतावट—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग और चित्रकूट के बीच एक स्थान जहाँ वट वृक्ष के नीचे राम और सीता दोनों ठहरे थे।

सीतावर—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

सीतावल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] सीतापति, रामचंद्र।

सीताहार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

सीतीनक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मटर। (२) दाल।

सीतीलक—संज्ञा पुं० [सं०] मटर।

सीत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जो अत्यंत पीड़ा या आनंद के समय मुँह से साँस खींचने से निकलता है। सी सी शब्द। सिसकारी।

सीत्कार बाहुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] वंशी के छः दोषों में से एक दोष।

विशेष—छः दोष ये हैं—सीत्कार बाहुल्य, स्तब्ध, विस्वर, खंडित, लघु और अमधुर।

सीरध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धान्य। धान। (२) खेत।

सीथ-संज्ञा पुं० [सं० सिक्थ] पके हुए अन्न का दाना। भात का दाना। उ०—लहि संतन की सीथ प्रसादी। आयो भुक्ति मुक्ति मरयादी।—रघुराज।

सीदंतीय-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम गान।

सीद-संज्ञा पुं० [सं०] ब्याज पर रुपया देना। सूदखोरी। कुसीद।

सीदना-क्रि० अ० [सं० सीदति] दुःख पाना। कष्ट झेलना। उ०—(क) जद्यपि नाथ उचित न होत, अस प्रभु सों करौं ढिठाई। तुलसिदास सीदत निसु दिन देखत तुम्हार निठुराई।—तुलसी। (ख) सीदत साधु, साधुता सोचति, बिलसत खल, हुलसति खलई है।—तुलसी।

सीद्री-संज्ञा पुं० [देश०] शक जाति का मनुष्य।

सीद्य-संज्ञा पुं० [सं०] आलस्य। काहिली। सुस्ती।

सीध-संज्ञा स्त्री० [हिं० सीधा] (१) ठीक सामने की स्थिति। सम्मुख विस्तार या लंबाई। वह लंबाई जो बिना कुछ भी इधर उधर मुड़े एक तार चली गई हो। जैसे,—नाक की सीध में चले जाओ। (२) लक्ष्य। निशाना।

मुहा०—सीध बाँधना = (१) सड़क, क्यारी आदि बनाने में पहले रेखा डालना। (२) निशाना साधना। लक्ष्य ठीक करना।

सीधा-वि० [सं० शुद्ध, ब्रज० सूधा, सूधो] [स्त्री० सीधी] (१) जो बिना कुछ भी इधर उधर मुड़े लगातार किसी ओर चला गया हो। जो टेढ़ा न हो। जिसमें फेर या घुमाव न हो। अवक्र। सरल। ऋजु। जैसे,—सीधी लकड़ी, सीधा रास्ता। (२) जो किसी ओर ठीक प्रवृत्त हो। जो ठीक लक्ष्य की ओर हो।

मुहा०—सीधा करना = लक्ष्य की ओर लगाना। निशाना साधना (बंदूक आदि का)। **सीधी राह** = सुमार्ग। अच्छा आचरण। **सीधी सुनाना** = (१) साफ साफ कहना। खरा खरा कहना। लगी लिपटी न रखना। (२) भला बुरा कहना। दुर्वचन कहना। गालियाँ देना। **सीधा आना** = सामना करना। भिड़ जाना।

(३) जो कुटिल या कपटी न हो। जो चालबाज़ न हो। सरल प्रकृति का। निष्कपट। भोला भाला। (४) शांत और सुशील। शिष्ट। भला। जैसे,—सीधा आदमी।

मुहा०—सीधी तरह = शिष्ट व्यवहार से। नरमी से। जैसे,—(क) सीधी तरह बोलो। (ख) वह सीधी तरह न मानेगा।

(५) जो नटखट या उग्र न हो। जो बदमाश न हो। अनुकूल। शांत प्रकृति का। जैसे,—सीधा जानवर, सीधा लड़का।

यौ०—सीधा सादा = (१) भोला भाला। निष्कपट। (२) जिसमें बनावट या तड़क भड़क न हो।

मुहा०—(किसी को) सीधा करना = दंड देकर ठीक करना। शासन करना। रास्ते पर लाना। शिक्षा देना। **सीधा दिन** = अच्छा दिन। शुभ दिन या मुहूर्त्त। जैसे,—सीधा दिन देखकर यात्रा करना।

(६) जिसका करना कठिन न हो। सुकर। आसान। सहल। जैसे,—सीधा काम, सीधा सवाल, सीधा ढंग। (७) जो दुर्बोध न हो। जो जल्दी समझ में आवे। जैसे,—सीधी सी बात नहीं समझ में आती। (८) दहिना। बायाँ का उलटा। जैसे,—सीधा हाथ।

क्रि० वि० ठीक सामने की ओर। सम्मुख।

संज्ञा पु० [सं० असिद्ध] (१) बिना पका हुआ अन्न। जैसे,—दाल, चावल, आटा। (२) वह बिना पका हुआ अनाज जो ब्राह्मण या पुरोहित आदि को दिया जाता है। जैसे,—एक सीधा इस ब्राह्मण को भी दे दो।

क्रि०प्र०—छूना।—देना।—निकालना।—मनसना।

सीधापन-संज्ञा पुं० [हिं० सीधा + पन(प्रत्य०)] सीधा होने का भाव। सिधाई। सरलता। भोलापन।

सीधु-संज्ञा पुं० [सं०] गुड़ या ईख के रस से बना मद्य। गुड़ की शराब।

सीधुगंध-संज्ञा पुं० [सं०] मौलसिरी। बकुल।

सीधुपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गँभारी। काश्मरी वृक्ष।

सीधुपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कदंब। कदम। (२) मौलसिरी। बकुल।

सीधुपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] धातकी। धव। धौ।

सीधुरस-संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

सीधुराख-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू। मातुलुंग वृक्ष।

सीधुराविक-संज्ञा पुं० [सं०] कसीस।

सीधुवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] थूहर। स्नुही वृक्ष।

सीधुसंज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] बकुल का पेड़। मौलसिरी।

सीधे-क्रि० वि० [हिं० सीधा] (१) सीध में। बराबर सामने की ओर। सम्मुख। (२) बिना कहीं मुड़े या रुके। जैसे,—सीधे वहीं जाओ। (३) बिना और कहीं होते हुए। जैसे,—सीधे राजा साहब के पास जाकर कहो। (४) मुलायमियत से। नरमी से। शिष्ट व्यवहार से। जैसे,—वह सीधे रुपया न देगा। (५) शिष्टता के साथ। शांति के साथ। जैसे,—सीधे बैठो।

सीध्र-संज्ञा पुं० [सं०] गुदा। मलद्वार।

सीन-संज्ञा पु० [अं०] (१) दृश्य। दृश्यपट। (२) थियेटर के रंगमंच का कोई परदा जिस पर नाटकगत कोई दृश्य चित्रित हो।

सीनरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] प्राकृतिक दृश्य।

सीना-क्रि० स० [सं० सीवन] (१) कपड़े, चमड़े आदि के दो टुकड़ों को सूई के द्वारा तागा पिरोकर जोड़ना। टाँकों से मिलाना या जोड़ना। टाँका मारना। जैसे,—कपड़े सीना, जूते सीना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

यौ०—सीना पिरोना = सिलाई तथा बेलबूटे आदि का काम करना।

संज्ञा पुं० [फ़ा० सीनः] छाती। वक्षस्थल।

यौ०—सीनाजोर। सीनाबंद। सीनातोड़।

मुहा०—सीने से लगाना = छाती से लगाना। आलिंगन करना।

संज्ञा पुं० [सं० सीमिक] (१) एक प्रकार का कीड़ा जो ऊनी कपड़ों को काट डालता है। सीवाँ।

क्रि० प्र०—लगना।

(२) एक प्रकार का रेशम का कीड़ा। छोटा पाट।

सीनातोड़-संज्ञा पुं० [फ़ा० सीनः + हिं० तोड़ना] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब पहलवान अपने जोड़ की पीठ पर रहता है, तब एक हाथ से वह उसकी कमर पकड़ता है और दूसरे हाथ से उसके सामने का हाथ पकड़ और खींचकर झटके से गिराता है।

सीनापनाह-संज्ञा पुं० [फ़ा०] जहाज के निचले खंड में लंबाई के बल दोनों ओर का किनारा। (लश०)

सीनाबंद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) अँगिया। चोली। (२) गरेबान का हिस्सा। (३) वह घोड़ा जो अगले पैरों से लँगड़ाता हो।

सीनाबाँह-संज्ञा पुं० [फ़ा० सीनः + हिं० बाँह] एक प्रकार की कसरत जिसमें छाती पर थाप देते हैं।

सीनियर-वि० [अं०] (१) बड़ा। वयस्क। (२) श्रेष्ठ। पद में ऊँचा। जैसे,—सीनियर मेंबर। सीनियर परीक्षा।

सीनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तश्तरी। थाली।

सीप-संज्ञा पुं० [सं० शुक्ति, प्रा० सुत्ति] (१) कड़े आवरण के भीतर बंद रहनेवाला शंख, घोंघे आदि की जाति का एक जलजंतु जो छोटे तालाबों और झीलों से लेकर बड़े बड़े समुद्रों तक में पाया जाता है। शुक्ति। मुक्तामाता। मुक्तागृह। सीपी। सितुही।

विशेष—तालों के सीप लंबोतरे होते हैं और समुद्र के चौखूँटे, विषम आकार के और बड़े बड़े होते हैं। इनके ऊपर दोहरे संपुट के आकार का बहुत कड़ा आवरण होता है जो खुलता और बंद होता है। इसी संपुट के भीतर सीप का कीड़ा (जो बिना अस्थि और रीढ़ का होता है) जमा रहता है। ताल के सीपों का आवरण ऊपर से कुछ काला या मैला तथा समतल होता है, यद्यपि ध्यान से देखने से उस पर महीन महीन धारियाँ दिखाई पड़ती हैं। इस पर आवरण का भीतर की ओर रहनेवाला पार्श्व बहुत ही उज्वल और चमकीला होता है, जिस पर प्रकाश पड़ने से कई रंगों की आभा भी दिखाई पड़ती है। समुद्र के सीपों के आवरण के ऊपर पानी की लहरों के समान टेढ़ी धारियाँ या लहरिया होती है। समुद्र के सीपों में ही मोती उत्पन्न होते हैं। जब इन सीपों की भीतरी खोली और कड़े आवरण के बीच कोई रोगोत्पादक बाहरी पदार्थ का कण पहुँच जाता है, तब जंतु की रक्षा के लिये उस कण के चारो ओर आवरण ही की शंख धातु का एक चमकीला उज्वल पदार्थ जमने लगता है जो धीरे धीरे कड़ा पड़ जाता है। यही मोती होता है। समुद्री सीप प्रायः छिछले पानी में चट्टानों में चिपके हुए पाए जाते हैं। ताल के सीपों के संपुट भी कीड़ों को साफ करके काम में लाए जाते हैं। बहुत से स्थानों में लोग छोटे बच्चों को इसी से दूध पिलाते हैं।

(२) सीप नामक समुद्री जलजंतु का सफेद कड़ा, चमकीला आवरण या संपुट जो बटन, चाकू के बेंट आदि बनाने के काम में आता है। (३) ताल के सीप का संपुट जो चम्मच आदि के समान काम में लाया जाता है। (४) वह लंबोतरा पात्र जिसमें देवपूजा या तर्पण आदि के लिये जल रखा जाता है।

सीपर‡-संज्ञा पुं० [फ़ा० सिपर] ढाल। उ०—मेरे पन की लाज इहाँ लौ हठि प्रिय प्रान दये हैं। लागत साँगि बिभीषण ही, पर सीपर आपु भये हैं।—तुलसी।

सीपसुत-संज्ञा पुं० [हिं० सीप + सं० सुत] मोती।

सीपिज-संज्ञा पुं० [हिं० सीपी + सं० ज] मोती। उ०—लाला हौं वारी तेरे मुख पर कुटिल अलक मोहन मन बिहँसत भृकुटी बिकट नैननि पर। दमकति द्वै द्वै दँतुलिया बिहँसति मानो सीपिज घर कियो बारिज पर।—सूर।

सीपी-संज्ञा स्त्री० दे० "सीप"।

सीबी-संज्ञा स्त्री० [अनु० सी सी] वह शब्द जो पीड़ा या अत्यंत आनंद के समय मुँह से साँस खींचने से उत्पन्न होता है। सी सी शब्द। सिसकारी। शीत्कार। उ०—नाक चढ़ै सीबी करै जितै छबीली छैल। फिरि फिरि भूलि वहै गहै पिय कँकरीली गैल।—बिहारी।

सीभा-संज्ञा पुं० [देश०] दहेज।

सीमंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्रियों की माँग। (२) अस्थि-संघात। हड्डियों का संधि स्थान। हड्डियों का जोड़। सुश्रुत के अनुसार इनकी संख्या १४ है। यथा—जाँघ में १, वंक्षण अर्थात् मूत्राशय तथा जंघा के संधिस्थान में १, पैर में ३, दोनों बाँहों में ३-३, त्रिक या रीढ़ के नीचे के भाग में १ और मस्तक में १। भावप्रकाश के अनुसार हड्डियों का संधिस्थान सीया रहता है; इसलिये

इसे सीमंत कहते हैं। (३) हिन्दुओं में एक संस्कार जो प्रथम गर्भस्थिति के चौथे, छठे या आठवें महीने में किया जाता है। दे० "सीमंतोन्नयन"।

सीमंतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) माँग निकालने की क्रिया। (२) ईंगुर। सिंदूर (जो स्त्रियाँ माँग के बीच में लगाती हैं)। (३) जैनों के सात नरकों में से एक नरक का अधिपति। (४) नरकावास। (५) एक प्रकार का मानिक या रत्न।

सीमंतवान्-वि० [सं० सीमंतवत्] [स्त्री० सीमंतवती] जिसे माँग हो। जिसकी माँग निकली हो।

सीमंतित-वि० [सं०] माँग निकाला हुआ। जैसे,—सीमंतित केश।

सीमंतिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। नारी। (स्त्रियाँ माँग निकालती हैं, इससे उन्हें सीमंतिनी कहते हैं।)

सीमंतोन्नयन-संज्ञा पुं० [सं०] द्विजों के दस संस्कारों में तीसरा संस्कार।

विशेष—गर्भस्थिति के तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार करने के पश्चात् चौथे, छठे या आठवें महीने में यह संस्कार करने का विधान है। इसमें वधू की माँग निकाली जाती है। कहते हैं कि इस संस्कार के द्वारा गर्भस्थ संतान के गर्भ में रहने के दोषों का निवारण होता है।

सीम-संज्ञा पुं० [सं० सीमा] सीमा। हद्द। पराकाष्ठा। सरहद्द। मर्यादा।

मुहा०—सीम चरना या काँड़ना = अधिकार दबाना। दबाना। जबरदस्ती करना। उ०— हैं काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीम चरै।—तुलसी।

सीमल‡-संज्ञा पुं० दे० "सेमल"।

सीमलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] सीमा का चिह्न। हद का निशान।

सीमांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीमा का अंत। वह स्थान जहाँ सीमा का अंत होता हो। जहाँ तक हद पहुँचती हो। सरहद। (२) गाँव की सीमा। (३) गाँव के अंतर्गत दूर की जमीन। सिवाना।

सीमांतपूजन-संज्ञा पुं० [सं०] वर का पूजन या अगवानी जब वह बरात के साथ गाँव की सीमा के भीतर पहुँचता है।

सीमांतबंध-संज्ञा पुं० [सं०] आचरण का नियम या मर्य्यादा।

सीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माँग। (२) किसी प्रदेश या वस्तु के विस्तार का अंतिम स्थान। हद। सरहद। मर्य्यादा।

मुहा०—सीमा से बाहर जाना = उचित से अधिक बढ़ जाना। मर्य्यादा का उल्लंघन करना। हद से ज्यादा बढ़ना।

सीमातिक्रमणोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] युद्धयात्रा में सीमा पार करने का उत्सव। विजय यात्रा। विजयोत्सव।

विशेष—प्राचीन काल में विजयादशमी को क्षत्रिय राजा अपने राज्य की सीमा लाँघते थे।

सीमापाल-संज्ञा पुं० [सं०] सीमा रक्षक। सीमा की रखवाली करनेवाला।

सीमाब-संज्ञा पुं० [फा०] पारा।

सीमाबद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] रेखा से घिरा हुआ। हद के भीतर किया हुआ।

सीमाविवाद-संज्ञा पुं० [सं०] सीमा संबंधी विवाद। सरहद का झगड़ा। अठारह प्रकार के व्यवहारों में या मुकदमों में से एक।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि यदि दो गाँवों में सीमा संबंधी झगड़ा हो, तो राजा को सीमा निर्देश करके झगड़ा मिटा डालना चाहिए। इस काम के लिये जेठ का महीना श्रेष्ठ बताया गया है। सीमा स्थल पर बड़, पीपल, साल, पलास आदि बहुत दिन टिकनेवाले पेड़ लगाने चाहिएँ। साथ ही तालाब कूआँ आदि बनवा देना चाहिए; क्योंकि ये सब चिह्न शीघ्र मिटनेवाले नहीं हैं।

सीमावृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वह वृक्ष जो सीमा पर लगा हो। हद बतानेवाला पेड़।

विशेष—मनुसंहिता में सीमा स्थान पर बहुत दिन टिकनेवाले पेड़ लगाने का विधान है। बहुधा सीमा विवाद सीमा पर का वृक्ष देखकर मिटाया जाता था।

सीमासंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] दो सीमाओं का एक जगह मिलान।

सीमासेतु-संज्ञा पुं० [सं०] वह पुश्ता या मेंड़ जो सीमा निर्देश करता है। हदबंदी।

सीमिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का वृक्ष। (२) दीमक। एक प्रकार का छोटा कीड़ा। (३) दीमकों का लगाया हुआ मिट्टी का ढेर।

सीमोल्लंघन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीमा का उल्लंघन करना। सीमा को लाँघना। हद पार करना। (२) विजय यात्रा। वि० दे०—"सीमातिक्रमणोत्सव"। (३) मर्य्यादा के विरुद्ध कार्य्य करना।

सीय-संज्ञा स्त्री० [सं० सीता] सीता। जानकी।

सीयक-संज्ञा पुं० [सं०] मालवा के परमार राजवंश के दो प्राचीन राजाओं के नाम जिनमें से पहला दसवीं शताब्दी के आरंभ में और दूसरा ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में था। इसी दूसरे सीयक का पुत्र मुंज था जो प्रसिद्ध राजा भोज का चाचा था।

सीयन†-संज्ञा स्त्री० दे० "सीवन"।

सीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल। (२) हल जोतनेवाले बैल। (३) सूर्य्य। (४) अर्क। आक का पौधा।

संज्ञा स्त्री० [सं० सीर = हल] (१) वह जमीन जिसे भू-स्वामी या ज़मींदार स्वयं जोतता आ रहा हो, अर्थात् जिस पर उसकी

निज की खेती होती आ रही हो। (२) वह जमीन जिसकी उपज या आमदनी कई हिस्सेदारों में बँटती हो। (३) साझा। मेल।

मुहा०—सीर में=एक साथ मिलकर। इकट्ठा। एक में। जैसे,—भाइयों का सीर में रहना।

संज्ञा पुं० [सं० शिरा=रक्त नाड़ी] रक्त की नाड़ी। रक्त की नली।

मुहा०—सीर खुलवाना=नश्तर से शरीर का दूषित रक्त निकलवाना। फ़सद खुलवाना।

*† वि० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़, हिं० सीड़, सीरा] ठंढा। शीतल। उ०—सीर समीर धीर अति सुरभित बहत सदा मन भायो।—रघुराज।

संज्ञा पुं० (१) चौपायों का एक संक्रामक रोग। (२) पानी की काट। (लश०)

सीरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल। (२) शिशुमार। सूस। (३) सूर्य।

* संज्ञा पुं० [हिं० सीरा] ठंढा करनेवाला। उ०—देखियत है करुणा की मूरति सुनियत है परपीरक। सोइ करौ जो मिटे हृदय को दाहु परै उर सीरक।—सूर।

सीरख*-संज्ञा पुं० दे० "शीर्ष"।

सीरधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल धारण करनेवाला। (२) बलराम।

सीरध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा जनक का नाम। (२) बलराम का नाम।

सीरन-संज्ञा पुं० [देश०] बच्चों का पहनावा।

सीरनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शीरीनी] मिठाई।

सीरपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] हलधर। बलदेव।

सीरभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हलधर। बलदेव। (२) हल धारण करनेवाला।

सीरवाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल धारण करनेवाला। हलवाहा। (२) जमींदार की ओर से उसकी खेती का प्रबंध करनेवाला कारिंदा।

सीरवाहक-संज्ञा पुं० [सं०] हलवाहा। किसान।

सीरष*-संज्ञा पुं० दे० "शीर्ष"।

सीरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।

संज्ञा पुं० [फ़ा० शीर] (१) पकाकर मधु के समान गाढ़ा किया हुआ चीनी का रस। चाशनी। (२) मोहनभोग। हलवा।

संज्ञा पुं० [हिं० सिर] चारपाई का वह भाग जिधर लेटने में सिर रहता है। सिरहाना।

*† वि० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़] [स्त्री० सीरी] (१) ठंढा। शीतल। उ०—सीरी पौन अगिनि सी दाहति, कोकिल अति दुखदाई।—सूर। (२) शांत। मौन। चुपचाप। उ०—दुर्जन हँसै न कोय आपु सीरे ह्वै रहिए।—गिरिधर।

सीरी-संज्ञा पुं० [सं० सीरिन्] (हल धारण करनेवाले) बलराम।

वि० स्त्री० दे० "सीरा"।

सीरोसा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मिठाई।

सीलंध-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली।

विशेष—वैद्यक में यह श्लेष्मावर्द्धक, वृष्य, पाक में मधुर और गुरु, वात पित्त हर, हृद्य और आमवातकारक कही गई है।

सील-संज्ञा स्त्री० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़] भूमि में जल की आर्द्रता। सीड़। नमी। तरी।

संज्ञा पुं० [सं० शलाका] लकड़ी का एक हाथ लंबा औजार जिस पर चूड़ियाँ गोल और सुडौल की जाती हैं।

*† संज्ञा पुं० दे० "शील"।

संज्ञा पुं० [अं०] (१) मुहर। मुद्रा। ठप्पा। छाप। (२) एक प्रकार की समुद्री मछली जिसका चमड़ा और तेल बहुत काम आता है।

सीला-संज्ञा पुं० [सं० शिल] (१) अनाज के वे दाने जो फ़सल कटने पर खेत में पड़े रह जाते हैं और जिन्हें तपस्वी या गरीब लोग चुनते हैं। सिल्ला। उ०—(क) कविता खेती उन लई, सीला बिनत मजूर। (ख) विष समान सब विषय बिहाई। बसैं तहाँ सीला बिनि खाई।—रघुराज। (२) खेत में गिरे दानों को चुनकर निर्वाह करने की मुनियों की वृत्ति।

वि० [सं० शीतल] [स्त्री० सीली] गीला। आर्द्र। तर। नम।

सीवक-संज्ञा पुं० [सं०] सीनेवाला। सिलाई करनेवाला।

सीवड़ो-संज्ञा पुं० [सं० सीमांत] ग्राम का सीमांत। सिवाना। (डिं०)

सीवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीने का काम। सिलाई। (२) सीने से पड़ी हुई लकीर। कपड़े के दो टुकड़ों के बीच का सिलाई का जोड़। (३) दरार। दराज। संधि। (४) वह रेखा जो अंडकोश के बीचोबीच से लेकर मलद्वार तक जाती है।

सीवना-संज्ञा पुं० दे० "सिवाना"।

क्रि० स० दे० "सीना"।

सीवनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रेखा जो लिंग के नीचे से गुदा तक जाती है।

विशेष—सुश्रुत में यह चार प्रकार की कही गई है—गोफणिका, तुन्नसीवनी, वेल्लित और ऋजुग्रंथि।

सीवी-संज्ञा स्त्री० दे० "सीबी"।

सीस-संज्ञा पुं० [सं० शीर्ष] (१) सिर। माथा। मस्तक। (२) कंधा। (डिं०) (३) अंतरीप। (लश०)

संज्ञा पुं० दे० "सीसा"।

सीसक-संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

सीसज–संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर ।

सीसताज–संज्ञा पुं० [हिं० सीस + फा० ताज] वह टोपी या ढक्कन जो शिकार पकड़ने के लिये पाले हुए जानवरों के सिर चढ़ा रहता है और शिकार के समय खोला जाता है । कुलहा । उ०—तुलसी निहारि कपि भालु किलकत ललकत लखि ज्यों कंगाल पातरी सुनाज की । राम-रुख निरखि हरष्यो हिय हनुमान मानो खेलवार खोली सीसताज बाज की ।—तुलसी ।

सीसताण–संज्ञा पुं० [सं०] अफगानिस्तान और फारस के बीच का प्रदेश । सीस्तान ।

सीसत्रान–संज्ञा पुं० [सं० शिरस्त्राण] टोप । शिरस्त्राण । उ०—सीसत्रान अवतंसजुत मनिहाटक मय नाह । लेहु हरषि उरसजहु सिर वहु सोभा जिहिं माह ।—रामाश्वमेध ।

सीसपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा धातु ।

सीसपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा धातु ।

सीसफूल–संज्ञा पुं० [हिं० सीस + फूल] सिर पर पहनने का फूल के आकार का एक गहना ।

सीसम–संज्ञा पुं० दे० "शीशम" ।

सीसमहल–संज्ञा पुं० [फा० शीशा + अ० महल] वह मकान जिसकी दीवारों में चारो ओर शीशे जड़े हों ।

सीसर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरमा नाम की देवताओं की कुतिया का पति । (पाराशर गृह्य०) (२) एक बालग्रह जिसका रूप कुत्ते का माना गया है ।

सीसल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो केवड़े या केतकी की तरह का होता है और जिसका रेशा बहुत काम आता है । रामबाँस ।

सीसा–संज्ञा पुं० [सं० सीसक] एक मूल धातु जो बहुत भारी और नीलापन लिये काले रंग की होती है ।

विशेष—आधुनिक रसायन में यह मूल द्रव्यों में माना गया है । यह पीटने से फैल सकता है और तार के रूप में भी हो सकता है, पर कुछ कठिनता से । इसका रंग भी जल्दी बदला जा सकता है । इसकी चद्दरें, नलियाँ और बंदूक की गोलियाँ आदि बनती हैं । इसका घनत्व ११·३७ और परमाणु मान २०६·४ है । सीसा दूसरी धातुओं के साथ बहुत जल्दी मिल जाता और कई प्रकार की मिश्र धातुएँ बनाने में काम आता है । छापे के टाइप की धातु इसी के योग से बनती है ।

आयुर्वेद में सीसा सप्त धातुओं में है और अन्य धातुओं के समान यह भी रसौषध के रूप में व्यवहृत होता है । इसका भस्म कई रोगों में दिया जाता है । वैद्यक में सीसा आयु, वीर्य्य और कांति को बढ़ानेवाला, मेहनाशक, उष्ण तथा कफ और वात को दूर करनेवाला माना जाता है । इसकी उत्पत्ति की कथा भावप्रकाश में इस प्रकार है । वासुकि एक नाग-कन्या देखकर मोहित हुए । उन्हीं के स्खलित वीर्य्य से इस धातु की उत्पत्ति हुई ।

पर्य्या०—सीस । सीसक । गंडपदभव । सिंदूरकारण । वर्द्ध । स्वर्णादि । यवनेष्ट । सुवर्णक । वध्रक । चिच्चट । जड़ । भुजंगम । उरग । कुरंग । परिपिष्टक । बहुमल । चीनपिष्ट । त्रपु । महाबल । मृदु कृष्णायस । पद्म । तारशुद्धिकर । शिरावृत्त । वयोवंग ।

†संज्ञा पुं० दे० "शीशा" ।

सीसी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) पीड़ा या अत्यंत आनंद के समय मुँह से साँस खींचने से निकला हुआ शब्द । शीत्कार । सिसकारी । उ०—सीसी किए तें सुधा सींसी सी ढरकि जाति ।

क्रि० प्र०—करना ।

(२) शीत के कष्ट के कारण निकला हुआ शब्द ।

‡संज्ञा स्त्री० दे० "शीशी" ।

सीसों†–संज्ञा पुं० दे० "शीशम" ।

सीसोपधातु–संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर । इंगुर ।

सीसोदिया–संज्ञा पुं० दे० "सिसोदिया" ।

सीह–संज्ञा स्त्री० [सं० सीधु = मद्य] महक । गंध ।

संज्ञा पुं० [देश०] साही नामक जंतु । सेही ।

‡संज्ञा पुं० दे० "सिंह" ।

सीहगोस–संज्ञा पुं० [फा० सियहगोश] एक प्रकार का जंतु जिसके कान काले होते हैं । उ०—केसव सरभसिंह सीहगोस रोस गति कूकरनि पास ससा सूकर गहाए हैं ।—केशव ।

सीहुंड–संज्ञा पुं० [सं०] सेहुँड़ का पेड़ । स्नुही । थूहर ।

सुं‡–प्रत्य० दे० "सों" ।

सुंखड़–संज्ञा पुं० [देश०] साधुओं का एक संप्रदाय ।

सुंग वंश–संज्ञा पुं० [सं०] मौर्य्य वंश के अंतिम सम्राट् बृहद्रथ के प्रधान सेनापति पुष्यमित्र द्वारा प्रतिष्ठित एक प्राचीन राजवंश ।

विशेष—ईसा से १८४ वर्ष पूर्व पुष्यमित्र ने बृहद्रथ को मारकर मौर्य्य साम्राज्य पर अपना अधिकार जमाया । यह राजा वैदिक या ब्राह्मण धर्म्म का पक्का अनुयायी था । जिस समय पुष्यमित्र मगध के सिंहासन पर बैठा, उस समय साम्राज्य नर्मदा के किनारे तक था और उसके अंतर्गत आधुनिक बिहार, संयुक्त प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि थे । कलिंग के राजा खारवेल तथा पंजाब और काबुल के यवन (यूनानी) राजा मिनांडर (बौद्ध मिलिंद) ने सुंग राज्य पर कई बार चढ़ाइयाँ कीं, पर वे हटा दिए गए । यवनों का जो प्रसिद्ध आक्रमण साकेत (अजोध्या) पर हुआ था, वह पुष्यमित्र के ही राजत्व काल में । पुष्यमित्र के समय का उसी के किसी

सामंत या कर्मचारी का एक शिलालेख अभी हाल में अयोध्या में मिला है जो अशोक लिपि में होने पर भी संस्कृत में है। यह लेख नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हो चुका है। इसी प्रकार के एक और पुराने लेख का पता मिला है, पर वह अभी प्राप्त नहीं हुआ है। इससे जान पड़ता है कि पुष्यमित्र कभी कभी साकेत (अयोध्या) में भी रहता था और वह उस समय एक समृद्धिशाली नगर था।

पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने विदर्भ के राजा को परास्त करके दक्षिण में वरदा नदी तक अपने पिता के राज्य का विस्तार बढ़ाया। जैसा कि कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक से प्रकट है, अग्निमित्र ने विदिशा को अपनी राजधानी बनाया था जो वेत्रवती और विदिशा नदी के संगम पर एक अत्यंत सुंदर पुरी थी। इस पुरी के खँडहर भिलसा (ग्वालियर राज्य में) से थोड़ी दूर पर दूर तक फैले हुए हैं। चक्रवर्ती सम्राट् बनने की कामना से पुष्यमित्र ने इसी समय बड़ी धूमधाम से अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ के समय महाभाष्यकार पतंजलि जी विद्यमान थे। अश्व-रक्षा का भार पुष्यमित्र के पौत्र (अग्निमित्र के पुत्र) वसुमित्र को सौंपा गया जिसने सिंधु नदी के किनारे यवनों को परास्त किया। पुष्यमित्र के समय में वैदिक या ब्राह्मण धर्म का फिर से उत्थान हुआ और बौद्ध धर्म्म दबने लगा। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार पुष्यमित्र ने बौद्धों पर बड़ा अत्याचार किया और वे राज्य छोड़कर भागने लगे। ईसा से १४८ वर्ष पहले पुष्यमित्र की मृत्यु हुई और उसका पुत्र अग्निमित्र सिंहासन पर बैठा। उसके पीछे पुष्यमित्र का भाई सुज्येष्ठ और फिर अग्निमित्र का पुत्र वसुमित्र गद्दी पर बैठा। फिर धीरे धीरे इस वंश का प्रताप घटता गया और वसुदेव ने विश्वासघात करके कण्व नामक ब्राह्मण राजवंश की प्रतिष्ठा की।

सुँघनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूँघना] तंबाकू के पत्ते की खूब बारीक बुकनी जो सूँघी जाती है। हुलास। नस्य। मग़ज़रोशन।

क्रि० प्र०—सूँघना।

सुँघाना-क्रि० स० [हिं० सूँघना का प्रेर०] आघ्राण कराना। सूँघने की क्रिया कराना।

सुंठि-संज्ञा स्त्री० दे० "शुंठि", "सोंठ"।

सुंड-संज्ञा पुं० दे० "शुंड", "सूँड़"।

सुंडदंड-संज्ञा पुं० "शुंडादंड"।

सुंडभुसुंड-संज्ञा पुं० [सं० शुंडभुशुंडि] हाथी जिसका अस्त्र सूँड़ है। उ०—चढ़ि चित्रित सुंडभुसुंड पें, सोभित कंचन कुंड पें। नृप सजेउ चलत जदु झुंड पें, जिमि गज मृग सिर पुंड पें।—गोपाल।

सुंडल-संज्ञा पुं० [देश०] लदुए गधे की पीठ पर रखने की गद्दी।

सुंडा-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूँड़] सूँड़। शुंड।

संज्ञा पुं० [देश०] लदुए गधे की पीठ पर रखने की गद्दी या गद्दा।

सुंडाल-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी। हस्ती। उ०—सुंडाल चलत सुंडनि उठाइ। जिनकैं जँजीर झनझनत पाइ।—सूदन।

सुंडाली-संज्ञा स्त्री० [सं० शुंडाल = सूँड़वाला] एक प्रकार की मछली।

सुंडी बेंत-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बेंत जो बंगाल, आसाम और खसिया की पहाड़ी पर पाया जाता है।

सुंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वानर का नाम। (२) एक राक्षस का नाम। (३) विष्णु। (४) सह्राद का पुत्र। (५) एक असुर जो निसुंद का पुत्र और उपसुंद का भाई था।

विशेष—सुंद और उपसुंद दोनों बड़े बलवान असुर थे। इन्हें कोई हरा नहीं सकता था। तिलोत्तमा नाम की अप्सरा के लिये दोनों आपस में ही लड़कर मर गए थे।

सुंदर-वि० [सं०] [स्त्री० सुंदरी] (१) जो देखने में अच्छा लगे। प्रियदर्शन। रूपवान्। शोभन। रुचिर। खूबसूरत। मनोहर। मनोज्ञ। (२) अच्छा। भला। बढ़िया। (३) श्रेष्ठ। शुभ। जैसे,—सुंदर मुहूर्त्त।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का पेड़। (२) कामदेव। (३) एक नाग का नाम। (४) लंका का एक पर्वत।

सुंदरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक तीर्थ का नाम। (२) एक ह्रद का नाम।

सुंदर कांड-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के पाँचवें कांड का नाम जो लंका के सुंदर-पर्वत के नाम पर रखा गया है।

सुंदरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर होने का भाव। सौंदर्य। खूबसूरती। रूपलावण्य।

सुंदरताई⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "सुंदरता"। उ०—अंग विलोकि त्रिलोक में ऐसी को नारि निहारिन नार नवाई। मूरतिवंत शृंगार समीप शृंगार किये जानो सुंदरताई।—केशव।

सुंदरत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सुंदरता। सौंदर्य।

सुंदरम्मन्य-संज्ञा पुं० [सं०] जो अपने को सुंदर मानता या समझता हो।

सुंदरवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

सुंदरापा-संज्ञा पुं० [सं० सुंदर + हिं० आपा (प्रत्य०)] सुंदरता।

सुंदरी-वि० स्त्री० [सं०] रूपवती। खूबसूरत।

संज्ञा स्त्री० (१) सुंदर स्त्री। (२) हलदी। हरिद्रा। (३) एक प्रकार का बड़ा जंगली पेड़।

विशेष—यह पेड़ सुंदर वन में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और नाव, संदूक, मेज़, कुरसी आदि सामान बनाने के काम में आती और इमारतों में भी लगती है। खारी पानी के पास ही यह पेड़ उग सकता है; मीठा पानी पाने से सूख जाता है।

(४) त्रिपुर सुंदरी देवी। (५) एक योगिनी का नाम। (६) सवैया नामक छंद का एक भेद जिसमें आठ सगण और एक गुरु होता है। उ०—सब सों गहि पानि मिले रघुनंदन भेंटि कियो सब को सुखभागी। (७) बारह अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमें एक नगण, दो भगण और एक रगण होता है। द्रुतविलंबित। (८) तेईस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति। (९) एक प्रकार की मछली। (१०) माल्यवान राक्षस की पत्नी जो नर्मदा नामक गंधर्वी की कन्या थी।

सुंदरेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी की एक मूर्त्ति।

सुंदरौदन–संज्ञा पुं० [सं० सुंदर + ओदन] अच्छा भात। अच्छी तरह पका हुआ चावल।

सुँधावट–संज्ञा स्त्री० [सं० सुगंध, हिं० सोंधा + आवट (प्रत्य०)] सोंधे होने का भाव। सोंधापन। सोंधी महक।

सुँधिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० सोंधा + इया (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार की ज्वार। (२) गुजरात में होनेवाली एक प्रकार की वनस्पति जो पशुओं के चारे के काम में आती है।

सुंपसुंठ–संज्ञा पुं० [सं०] कर्पूरक। कपूर कचरी।

सुंबा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) इस्पंज। (२) दागी हुई तोप या बंदूक की गरम नली को ठंढा करने के लिये उस पर डाला हुआ गीला कपड़ा। पुचारा। (लश०) (३) तोप की नली साफ करने का गज। (लश०) (४) लोहे का एक औजार जिससे लुहार लोहे में सूराख करते हैं।

सुंबी–संज्ञा स्त्री० [देश०] छेनी जिससे लोहे में छेद किया जाता है।

सुंबुल–संज्ञा पुं० दे० "संबुल"।

सुंभ–संज्ञा पुं० (१) दे० "शुंभ"। (२) दे० "सुम"।

सुंभा–संज्ञा पुं० दे० "सुंबा"।

सुंभी–संज्ञा स्त्री० [देश०] लोहा छेदने का एक औजार जिसमें नोक नहीं होती।

सुंसारी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का लंबा काला कीड़ा जो अनाज के लिये हानिकारक होता है।

सु–उप० [सं०] एक उपसर्ग जो संज्ञा के साथ लगकर विशेषण का काम देता है। जिस शब्द के साथ यह उपसर्ग लगता है, उसमें श्रेष्ठ, सुंदर, अच्छा, बढ़िया आदि का भाव आ जाता है। जैसे,—सुनाम, सुपंथ, सुशील, सुवास आदि।

वि० (१) सुंदर। अच्छा। (२) उत्तम। श्रेष्ठ। (३) शुभ। भला।

संज्ञा पुं० (१) उत्कर्ष। उन्नति। (२) सुंदरता। खूबसूरती। (३) हर्ष। आनंद। प्रसन्नता। (४) पूजा। (५) समृद्धि। (६) अनुमति। आज्ञा। (७) कष्ट। तकलीफ।

ॐ अव्य० [सं० सह] तृतीया, पंचमी और षष्ठि विभक्ति का चिह्न।

सर्व० [सं० स] सो। वह।

सुअटा|–संज्ञा पुं० [सं० शुक, प्रा० सुअ, हिं० सुआ] सुग्गा। शुक। तोता। उ०—सुअटा रहै खुरुक जिउ अबहिं काल सो आव। सत्रु अहै जो करिया कबहुँ सो बोरै नाव।

सुअनॐ–संज्ञा पुं० [सं० सुत, प्रा० सुअ] आत्मज। पुत्र। बेटा। लड़का। उ०—बहु दिन धौं कब आइहै ह्वैहै सुअन विवाह। निज नयनन हम देखिहैं हे विधि यहु उत्साह।—स्वामी रामकृष्ण।

सुअनजर्द–संज्ञा पुं० दे० "सोनजर्द"। उ०—कोई सुअनजर्द ज्यों केसर। कोई सिंगारहार नागेसर।—जायसी।

सुअनाॐ–क्रि० अ० [हिं० उगना = उगना या हिं० सुअन] उत्पन्न होना। उगना। उदय होना। उ०—जैसो साँचो ग्यान प्रकाशत पाप दोष सब सुअत। धर्म विराग आदि सनगुन से तनमन के सुख सुअत।—देव स्वामी।

संज्ञा पुं० दे० "सुअटा"।

सुअर–संज्ञा पुं० दे० "सूअर"।

सुअरदंता|–वि० [हिं० सुअर + दंता = दाँतवाला] सूअर के से दाँतोंवाला।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का हाथी जिसके दाँत पृथ्वी की ओर झुके रहते हैं। ऐसा हाथी ऐबी समझा जाता है।

सुअर्ग पताली|–संज्ञा पुं० [सं० स्वर्ग + पाताल] वह बैल जिसका एक सींग स्वर्ग की ओर और दूसरा पाताल की ओर अर्थात् एक आकाश की ओर और दूसरा जमीन की ओर रहता है।

सुअवसर–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा अवसर। अच्छा मौका।

सुआ–संज्ञा पुं० दे० "सूआ"।

सुआद–संज्ञा पुं० [डिं०] स्मरण। याद।

सुआनॐ–संज्ञा पुं० दे० "श्वान"। उ०—सुआन पूछ जिउ भयो न सूधउ बहुत जतन मैं कीनेउ।—तेग बहादुर।

सुआना|–क्रि० स० [हिं० सूना का प्रेरणा०] उत्पन्न कराना। पैदा कराना। सूने में प्रवृत्त करना।

सुआमीॐ–संज्ञा पुं० दे० "स्वामी"। उ०—भुगत मुकति का कारन सुआमी मूढ़ ताहि बिसरावै। जन नानक कोटन मैं कोऊ भजन राम को पावै।—तेग बहादुर।

सुआर|–संज्ञा पुं० [सं० सूपकार] रसोइया। भोजन बनानेवाला। पाककार। उ०—परुसन लगे सुआर विबुध जन जेंवहिं। देहिं गारि बरनारि मोद मन भेवहिं।—तुलसी।

सुआरव–वि० [सं०] उत्तम शब्द करनेवाला। मीठे स्वर से बोलने या बजनेवाला। उ०—नाना सुआरव जंतरी नट चेटकी ज्वारी जिते। तेली तमोली रजक सूची चित्रकारक पुर तिते।—रामाश्वमेध।

सुआसन–संज्ञा पुं० [सं०] बैठने का सुंदर आसन या पीढ़ा।

सुआसिन|–संज्ञा स्त्री० दे० "सुआसिनी"।

सुआसिनी॰|-संज्ञा स्त्री० [सं० सुवासिनी ?] स्त्री, विशेषतः आस पास में रहनेवाली स्त्री। उ०—(क) विप्र वधू सनमानि सुआसिनि जन पुरजन पहिराइ। सनमाने अवनीस असीसत ईसुर में समनाइ।—तुलसी। (ख) देव पितर गुर विप्र पूजि नृप दिए दान रुचि जानी। मुनि बनिता पुरनारि सुआसिनि सहस भाँति सनपाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक जन भये दानी।—तुलसी।

सुआहित-संज्ञा पुं० [सं० सु + आहत ?] तलवार के ३२ हाथों में से एक हाथ। उ०—तिमि सव्य जानु विजानु संकोचित सुआहित चित्र को। धन लवन कुद्दव छिप्र सव्येतर तथा उत्तरत को।—रघुराज।

सुइया|-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूआ] एक प्रकार की चिड़िया।

सुई-संज्ञा स्त्री० दे० "सूई"।

सुकंकवत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम जो मार्कंडेय पुराण के अनुसार मेरु के दक्षिण में है।

सुकंटका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घृत कुमारी। घी कुआर। गुआर पाठा। (२) पिंड खजूर।

सुकंठ-वि० [सं०] (१) जिसका कंठ सुंदर हो। (२) जिसका स्वर मीठा हो। सुरीला।

संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र के सखा, सुग्रीव। उ०—बालि से वीर विदारि सुकंठ थप्यौ हरषे सुर बाजन बाजे। पल में दल्यौ दासरथी दसकंधर लंक विभीषण राज विराजे।—तुलसी।

सुकंद-संज्ञा पुं० [सं०] कसेरू।

सुकंदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाराही कंद। गिवौली कंद। गेंठी। (२) प्याज। (३) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम। (४) इस देश का निवासी।

सुकंदकरण-संज्ञा पुं० [सं०] प्याज। श्वेत पलांडु।

सुकंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैजयंती तुलसी। (२) बर्बरक। बबई तुलसी।

सुकंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मणाकंद। पुत्रदा। (२) बंध्या-कर्कोटकी। बाँझककोड़ा।

सुकंदी-संज्ञा पुं० [सं० सुकंदिन्] सूरन। जमींकंद।

सुक-संज्ञा पुं० [सं० शुक] (१) तोता। शुक। कीर। सुग्गा। (२) व्यास पुत्र। शुकदेव मुनि। (३) एक राक्षस जो रावण का दूत था।

संज्ञा पुं० [सं० सुकटु] शिरीष वृक्ष। सिरस का पेड़।

सुकक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] अंगिरा वंश में उत्पन्न एक ऋषि जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा थे।

सुकचण-संज्ञा पुं० [सं० संकोच] लज्जा। संकोच। (डिं०)

सुकचाना॰-क्रि० अ० दे० "सकुचाना"।

सुकटि-वि० [सं०] अच्छी कमरवाली। जिसकी कमर सुन्दर हो।

सुकटु-संज्ञा पुं० [सं०] शिरीष वृक्ष।

वि० सिरस का पेड़। अत्यंत कटु। बहुत कड़ुआ।

सुकड़ना-क्रि० अ० दे० "सिकुड़ना"।

सुकदेव-संज्ञा पुं० दे० "शुकदेव"।

सुकना|-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो भादों महीने के अंत और आश्विन के आरंभ में होता है।

सुकनासा॰-वि० [सं० शुक + नासिका] जिसकी नाक शुक पक्षी की ठोर के समान हो। सुन्दर नाकवाला।

सुकन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] शर्याति राजा की कन्या और च्यवन ऋषि की पत्नी।

सुकपर्दा-वि० [सं०] (वह स्त्री) जिसने उत्तमता से केश बाँधे हों। जिसने उत्तमता से चोटी की हो।

सुकपिच्छक-संज्ञा पुं० [हिं०] गंधक।

सुकमार|-वि० दे० "सुकुमार"।

सुकमारता|-संज्ञा स्त्री० दे० "सुकुमारता"।

सुकर-वि० [सं०] जो अनायास किया जा सके। सहज में होने-वाला। सुसाध्य।

सुकरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुकर का भाव। सहज में होने का भाव। सुकरत्व। सौकर्य। (२) सुन्दरता। उ०—जहाँ क्रिया की सुकरता बरणत काज विरोध। तहाँ कहत व्याघात हैं औरौ बुद्धि विबोध।—मतिराम।

सुकरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुशील गाय। अच्छी और सीधी गौ।

सुकराना-संज्ञा पुं० दे० "शुकराना"। उ०—अरुन अम्बारे जे भरे अति ही मदन मजेज। देखे तुव दग वारबे रब सुकराना भेज।—रतन हजारा।

सुकरित॰-वि० [सं० सुकृत] शुभ। सत्। अच्छा। भला। उ०—सुकरित मारग चालना बुरा न कबहूँ होइ। अमृत खात परानियाँ मुआ न सुनिवा कोइ।—दादू।

सुकरीहार-संज्ञा पुं० [सुकरी ? + हिं० हार] गले में पहनने का एक प्रकार का हार।

सुकर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] हस्तीकंद। हाथीकंद।

वि० जिसके कान सुन्दर हों। अच्छे कानोंवाला।

सुकर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूषाकर्णी। मूसाकानी नाम की लता। (२) महाबला।

सुकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी। इंद्रायन।

सुकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा काम। सत्कर्म। (२) देवताओं की एक श्रेणि या कोटि।

सुकर्मा-संज्ञा पुं० [सं० सुकर्म्मन्] (१) विषकंभ आदि सत्ताईस योगों में से सातवाँ योग। ज्योतिष में यह योग सब प्रकार के कार्यों के लिये शुभ माना गया है और कहा गया है कि जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह परोपकारी, कला-कुशल, यशस्वी, सत्कर्म करनेवाला और सदा प्रसन्न रहनेवाला

होता है। (२) उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य। (३) विश्वकर्मा। (४) विश्वामित्र।

सुकर्मी-वि० [सं० सुकर्मिन्] (१) अच्छा काम करनेवाला। (२) धार्मिक पुण्यवान्। (३) सदाचारी।

सुकल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो अपनी संपत्ति का उपयोग दान और भोग में करता है। दाता और भोक्ता। (२) मधुर, पर अस्फुट शब्द करनेवाला।

संज्ञा पुं० दे० "शुक्ल"। उ०—दिन दिन बढ़े बढ़ाइ अनंदा। जैसे सुकल पच्छ को चंदा।—लाल कवि।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का आम जो सावन के अंत में होता है।

सुकवाना-क्रि० अ० [?] अचंभे में आना। आश्चर्यान्वित होना। उ०—परदे बालावर लसै, घेरु दाव नहिं पाय। गिरवानहु अमि नीन तकि रीझहुगे सुकवाय।—रामसहाय।

सुकवि-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा कवि। उत्तम काव्यकर्त्ता।

सुकांड-संज्ञा पुं० [सं०] करेले की लता।

वि० सुंदर डालवाला।

सुकांडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] करेले की लता।

सुकांडी-संज्ञा पुं० [सं० सुकांडिन्] भ्रमर। भौंरा।

वि० सुंदर डालवाला।

सुकाज-संज्ञा पुं० [सं० सु + हिं० काज] उत्तम कार्य्य। अच्छा काम। सुकार्य।

सुकातिज-संज्ञा पुं० [सं० शुक्तिज] मोती। (डिं०)

सुकाना॥-क्रि० स० दे० "सुखाना"।

सुकामव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्रत जो किसी उत्तम कामना से किया जाता है। काम्यव्रत।

सुकामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाणा लता। त्रायमान।

सुकार-वि० [सं०] [स्त्री० सुकारा] (१) सहज साध्य। सहज में होनेवाला। (२) सहज में वश में आनेवाला (घोड़ा या गाय आदि)। (३) सहज में प्राप्त होनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) अच्छे स्वभाव का घोड़ा। (२) कुंकुम शालि।

सुकाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुसमय। उत्तम समय। (२) वह समय जो अन्न आदि की उपज के विचार से अच्छा हो। अकाल का उलटा।

सुकालिन-संज्ञा पुं० [सं०] पितरों का एक गण। मनु के अनुसार ये शूद्रों के पितर माने जाते हैं।

सुकालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भटकटैया।

सुकावना॥-क्रि० स० दे० "सुखाना"। उ०—भूमि भार दीबे को कि सुर दाँप लीबे को, समुद्र कीच कीबे को कि पान कै सुकावनो।—हनुमन्नाटक।

सुकाशन-वि० [सं०] अत्यंत दीप्तिमान्। बहुत प्रकाशमान्। बहुत चमकीला।

सुकाष्ठक-संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु।

सुकाष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटकी। (२) काष्ठ कदली। वनकदली। कठकेला।

सुकिज॥-संज्ञा पुं० [सं०] शुभ कर्म। उत्तम कार्य। उ०—सोचत हानि मानि मन गुनि गुनि गये निघटि फल सकल सुकिज के।—तुलसी।

सुकिया॥-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वकीया] वह स्त्री जो अपने ही पति में अनुराग रखती हो। स्वकीया नायिका। उ०—ता नायक की नायका अंथनि तीनि बखान। सुकिया परकीया अवर साभान्या सुप्रमान।—केशव।

सुकी-संज्ञा स्त्री० [सं० शुक] तोते की मादा। सुग्गी। सारिका। तोती। उ०—कूजत हैं कलहंस कपोत सुकी सुक सोरु करैं सुनि ताहू। नैकहू क्यों न लला सकुचौ जिय जागत हैं गुरु लोग लजाहू।—देव।

सुकीउ॥-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वकीया] अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली स्त्री। स्वकीया नायिका। उ०—याही के निहोरे झूठे साँचे राम मारे वाली लोग कहत तीय लै दई सुकीउ है। सुन्यो जाको नाँव मेरो देश देश गाँव सब शाखामृग राउर बिमृशति सुग्रीउ है।—हनुमन्नाटक।

सुकुंतल-संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

सुकुंद-संज्ञा पुं० [सं०] राल। धूना।

सुकुंदक-संज्ञा पुं० [सं०] प्याज।

सुकुंदन-संज्ञा पुं० [सं०] बर्बरी। बबुई तुलसी।

सुकुआर-वि० [स्त्री० सुकुआरी] दे० "सुकुमार"। उ०—इह न होइ जैसे माखन चोरी। तब वह मुख पहचानि मानि सुख देती जान हानि हुति थोरी। उन दिननि सुकुआर हते हरि हौं जानत अपनो मन भोरी।—सूर।

सुकुट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

सुकुड़ना-क्रि० अ० दे० "सिकुड़ना"।

सुकुति॥-संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्ति] सीप। शुक्ति। उ०—पूरन परमानंद वहाँ अहिवदन हलाहल। कदलीगत घनसार सुकुति महँ मुक्ता कोलाहल।—सुधाकर।

सुकुमार-वि० [सं०] [स्त्री० सुकुमारी] जिसके अंग बहुत कोमल हों। अति कोमल। नाजुक।

संज्ञा पुं० (१) कोमलांग बालक। नाजुक लड़का। (२) ऊख। ईख। (३) वनचंपा। (४) अपामार्ग। लटजीरा। (५) साँवाँ धान। (६) कँगनी। (७) एक दैत्य का नाम। (८) एक नाग का नाम। (९) काव्य का एक गुण। (जो काव्य कोमल अक्षरों या शब्दों से युक्त होता है, वह सुकुमार गुण विशिष्ट कहलाता है।) (१०) तंबाकू का पत्ता। (११) वैद्यक में एक प्रकार का मोदक जो निसोथ, चीनी, शहद, इलायची

और काली मिर्च के योग से बनता है और जो विरेचक तथा रक्त पित्त और वायु रोगों का नाशक माना जाता है।

सुकुमारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंबाकू का पत्ता। (२) तेजपत्र। तेजपत्ता। (३) साँवाँ धान। (४) सुंदर बालक।

सुकुमारता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुकुमार होने का भाव या धर्म्म। कोमलता। सौकुमार्य। नजाकत।

सुकुमारवन-संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित वन जो भागवत के अनुसार मेरु के नीचे है। कहते हैं कि इसमें भगवान शंकर भगवती पार्वती के साथ क्रीड़ा किया करते हैं।

सुकुमारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूही। (२) नवमल्लिका। (३) कदली। केला। (४) स्पृक्का। (५) मालती।

सुकुमारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] केले का पेड़।

सुकुमारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नवमल्लिका। चमेली। (२) शंखिनी नाम की ओषधि। (३) वन मल्लिका। (४) एक प्रकार की फली। जैसे मूँग आदि की। (५) बड़ा करेला। (६) ऊख। (७) कदली वृक्ष। केले का पेड़। (८) त्रिसंधि नामक फूलदार पेड़। (९) स्पृक्का नामक गंध द्रव्य। (१०) कन्या। (११) लड़की। बेटी।

वि० कोमल अंगोंवाली। कोमलांगी।

सुकुरना|-क्रि० अ० दे० "सिकुड़ना"। उ०—मुकुर बिलोको लाल रहे क्यों सुकुर सुकुर है। सरमाने हो कहा रहे क्यों अंग मुकुर के।—अंबिकादत्त व्यास।

सुकुर्कुर-संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का एक प्रकार का रोग जिसकी गणना बालग्रहों में होती है।

सुकुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम कुल। श्रेष्ठ वंश। (२) वह जो उत्तम कुल में उत्पन्न हो। कुलीन।

संज्ञा पुं० दे० "शुक्ल"।

सुकुलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुकुल का भाव। कुलीनता।

सुकुलवेद-संज्ञा पुं० [सं० शुक्ल + हिं० बेत] एक प्रकार का वृक्ष।

सुकुवाँर, सुकुवार-वि० दे० "सुकुमार"। उ०—औचक ही घर माँझ माँझ ही अगिनि लागी बड़ो अनुरागी रहि गई सोउ डारिये। कही आयो नाथ सब कीजिये जू अंगीकार हँसे सुकुवार हरि मोहि को निहारिये।—भक्तमाल।

सुकुसुमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद की एक मातृका का नाम।

सुकृत्-वि० [सं०] (१) उत्तम और शुभ कार्य्य करनेवाला। (२) धार्मिक। पुण्यवान्।

सुकृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुण्य। सत्कार्य। भला काम। (२) दान। (३) पुरस्कार। (४) दया। मेहरबानी।

वि० (१) भाग्यवान्। किस्मतवर। (२) धर्म्मशील। पुण्यवान्। (३) जो उत्तम रूप से किया गया हो।

सुकृतकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सुकृतकर्म्मन्] पुण्य कर्म। सत्कार्य। शुभ कार्य्य।

वि० पुण्यात्मा। धर्मात्मा।

सुकृतव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो प्रायः द्वादशी के दिन किया जाता है।

सुकृतात्मा वि० [सं० सुकृतात्मन्] वह जो सुकृत करता हो। धर्मात्मा। पुण्यात्मा।

सुकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुभ कार्य्य। अच्छा काम। पुण्य। सत्कर्म।

सुकृतित्व-संज्ञा पुं० [सं०] सुकृति का भाव या धर्म्म।

सुकृती-वि० [सं० सुकृतिन्] (१) धार्मिक। पुण्यवान्। सत्कर्म करनेवाला। (२) भाग्यवान्। तकदीरवर। (३) बुद्धिमान्। अक्लमंद।

संज्ञा पुं० दसवें मन्वंतर के एक ऋषि का नाम।

सुकृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम कार्य्य। पुण्य। धर्मकार्य। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सुकेत-संज्ञा पुं० [सं०] आदित्य। सूर्य्य।

सुकेतन-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार सुनीथ राजा के पुत्र का नाम। कहीं कहीं इनका नाम निकेतन भी मिलता है।

सुकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्रकेतु राजा का नाम। (२) ताड़का राक्षसी के पिता का नाम। (३) सागर के पुत्र का नाम। (४) नंदिवर्द्धन का पुत्र। (५) केतुमंत के पुत्र का नाम। (६) सुनीथ राजा के पुत्र का पुत्र। (७) वह जो मनुष्यों और पक्षियों की बोली समझता हो।

वि० उत्तम केशोंवाला।

सुकेश-संज्ञा पुं० दे० "सुकेशि"।

वि० [स्त्री० सुकेशा] उत्तम केशोंवाला। जिसके बाल सुंदर हों।

सुकेशि-संज्ञा पुं० [सं०] विद्युत्केश राक्षस का पुत्र तथा माल्यवान्, सुमाली और माली नामक राक्षसों का पिता। कहते हैं कि जब इसका जन्म हुआ था, तब इसकी माता इसे मंदर पर्वत पर छोड़कर अपने पति के साथ विहार करने चली गई थी। उस समय पार्वती के कहने पर महादेव जी ने इसे चिरजीवी होने और आकाश में गमन करने का वरदान दिया था। पीछे से इसने एक गंधर्व कन्या के साथ विवाह किया था, जिससे उक्त तीनों पुत्र हुए थे। इन्हीं पुत्रों से राक्षसों का वंश चला था।

सुकेशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम केशोंवाली स्त्री। वह स्त्री जिसके बाल बहुत सुंदर हों। (२) महाभारत के अनुसार एक अप्सरा का नाम।

संज्ञा पुं० [सं० सुकेशिन्] [स्त्री० सुकेशिनी] वह जिसके बाल बहुत सुंदर हों।

सुकेसर-संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। शेर।

सुकोली-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीर काकोली नामक कंद। पयस्का। पयस्विनी।

सुकोशला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम।

सुकोशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोशातकी। तुरई। तरोई।

सुकड़ि-संज्ञा पुं० [सं० ?] एक प्रकार का सूखा चंदन जो वैद्यक में मूत्रकृच्छ्र, पित्तरक्त और दाह को दूर करनेवाला तथा शीतल और सुगंधिदायक बताया गया है।

सुक्कान-संज्ञा पुं० [?] पतवार। (जहाज की) (लश०)

मुहा०—सुक्कान पकड़ना या मारना = जहाज चलाना। (लश०)

सुक्कानी-संज्ञा पुं० [?] मल्लाह। माझी। (लश०)

सुक्ख-संज्ञा पुं० दे० "सुख"। उ०—जे जन भींजे रामरस विकसित कबहुँ न रुक्ख। अनुभव भाव न दरसै ते नर सुक्ख न दुक्ख।—कबीर।

सुक्त-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की काँजी जो पानी में घी या तेल, नमक और कंद या फल आदि गलाकर बनाई जाती थी। वैद्यक में इसे रक्तपित्त और कफनाशक, बहुत उष्ण, तीक्ष्ण, रुचिकर, दीपन और कृमिनाशक माना है।

सुक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

सुक्ति-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पर्वत का नाम।

संज्ञा स्त्री० दे० "शुक्ति"।

सुक्र-संज्ञा पुं० दे० "शुक्र"।

संज्ञा पुं० अग्नि। (डिं०)

सुक्रतु-वि० [सं०] उत्तम कर्म करनेवाला। सत्कर्म करनेवाला।

सुक्रतूया-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुभ कर्म करने की इच्छा।

सुक्रित-संज्ञा पुं० दे० "सुकृत"। उ०—कहहिं सुमति सब कोय सुक्रित सत जनम क जागै। तौ तुरतहि मिलि जायँ सात रिखि सों सत भागै।—सुधाकर।

सुक्रीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

सुक्क*-वि० दे० "शुक्ल"। उ०—उनइस तेंतालीस की संवत माघ सुमास। सुक्क पंचमी को भयो सुकवि लेख परकास।—अंबिकादत्त व्यास।

सुक्षत्र-वि० [सं०] (१) अत्यंत धनशाली। (२) सुराज्यशाली। (३) शक्तिशाली। बलवान्। दृढ़।

संज्ञा पुं० निरमित्र के पुत्र का नाम।

सुक्षद-संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर यज्ञशाला। बढ़िया यज्ञ-मंडप।

सुक्षम*†-वि० दे० "सूक्ष्म"। उ०—कारण सुक्षम तीन देह धरि भक्ति हेत तृण तोरी। धर्मनि निरखि परखि गुरु मूरति आहि के काज बनोरी।—कबीर।

सुक्षिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदर निवासस्थान। (२) वह जो सुंदर स्थान में रहता हो। (३) वह जिसे यथेष्ट पुत्र पौत्रादि हों। धन धान्य और संतान आदि से सुखी।

सुक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार्कंडेय पुराण के अनुसार दसवें मनु के पुत्र का नाम। (२) वह घर जिसके दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की ओर दीवारें या मकान आदि हों। पूर्व ओर से खुला हुआ मकान जो बहुत शुभ माना जाता है।

सुखंकर-वि० [सं०] सुखकर। सुकर। सहज।

सुखंकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती। डोडी। वि० दे० "जीवंती"।

सुखंडरा-संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

सुखंडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूखना] एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर सूखकर काँटा हो जाता है। यह रोग बच्चों को बहुत होता है।

वि० बहुत दुबला पतला।

सुखंद-वि० [सं० सुखद] सुखदायी। आनंददायक। उ०—घनगन बेली बनबदन सुमन सुरति मकरंद। सुंदर नायक श्रीरवन दच्छिन पवन सुखंद।—रामसहाय।

सुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन की वह उत्तम तथा प्रिय अनुभूति जिसके द्वारा अनुभव करनेवाले का विशेष समाधान और संतोष होता है और जिसके बराबर बने रहने की वह कामना करता है। वह अनुकूल और प्रिय वेदना जिसकी सब को अभिलाषा रहती है। दुःख का उलटा। आराम। जैसे,—(क) वे अपने बाल-बच्चों में बड़े सुख से रहते हैं। (ख) जहाँ तक हो सके, सब को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

विशेष—कुछ लोग सुख को हर्ष का पर्यायवाची समझते हैं; पर दोनों में अंतर है। कोई उत्तम समाचार सुनने अथवा कोई उत्तम पदार्थ प्राप्त करने पर मन में सहसा जो वृत्ति उत्पन्न होती है, वह हर्ष है। परंतु सुख इस प्रकार आकस्मिक नहीं होता; और वह हर्ष की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। अनेक प्रकार की चिंताओं, कष्टों आदि से निरंतर बचे रहने पर और अनेक प्रकार की वासनाओं आदि की तृप्ति होने पर मन में जो प्रिय अनुभूति होती है, वह सुख है। हमारे यहाँ कुछ लोगों ने सुख को मन का और कुछ लोगों ने आत्मा का धर्म्म माना है। न्याय और वैशेषिक के अनुसार सुख आत्मा का एक गुण है। यह सुख दो प्रकार का कहा गया है—(१) नित्य सुख जो परमात्मा के विशेष सुख के अंतर्गत है और (२) जन्य सुख जो जीवात्मा के विशेष सुख के अंतर्गत है। यह धन या मित्र की प्राप्ति, आरोग्य और भोग आदि से उत्पन्न होता है। सांख्य और पातंजल के मत से सुख प्रकृति का धर्म्म है और इसकी उत्पत्ति सत्त्व से होती है। गीता में सुख तीन प्रकार का कहा गया है—(१) सात्त्विक, जो ज्ञान, वैराग्य और ध्यान आदि के द्वारा प्राप्त होता है। (२) राजसिक, जो विषय तथा इंद्रियों के संयोग से उत्पन्न होता है। (जैसे संगीत सुनने, सुंदर रूप देखने, स्वादिष्ट भोजन करने और संभोग

आदि से होता है।) और (३) तामस, जो आलस्य और उन्माद आदि के कारण उत्पन्न होता है।

पर्य्या०—प्रीति। मोद। आमोद। प्रमोद। आनंद। हर्ष। सौख्य।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—भोगना।—मिलना।

मुहा०—**सुख मानना** = परिस्थिति आदि की अनुकूलता के कारण ठीक अवस्था में रहना। जैसे,—यह पेड़ सभी प्रकार की जमीनों में सुख मानता है। **सुख लूटना** = यथेष्ट सुख का भोग करना। मौज करना। आनंद करना। **सुख की नींद सोना** = निश्चिंत होकर आनंद में सोना या रहना। खूब मौज में समय बिताना।

(२) एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ८ सगण और २ लघु होते हैं। (३) आरोग्य। तंदुरुस्ती। (४) स्वर्ग। (५) जल। पानी। (६) वृद्धि नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।

सुखआसन-संज्ञा पुं० [सं० सुख + आसन] सुखपाल। पालकी। डोली। उ०—चढ़ि सुखआसन नृपति सिधायो। तहाँ कहार एक दुख पायो।—सूर।

सुखकंद-वि० [सं० सुख + कंद] सुखमूल। सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। उ०—अहो पवित्र प्रभाव यह रूप नयन सुखकंद। रामायन रचि मुनि दियो बानिहि परम अनंद।—सीताराम।

सुखकंदन-वि० दे० "सुखकंद"। उ०—श्रीवृषभानु सुता दुलही दिन जोरी बनी विधना सुखकंदन। रसखानि न आवत मो पै कह्यो कछु दोऊ फँदे छवि प्रेम के फंदन।—रसखान।

सुखकंदर-वि० [सं० सुख + कंदरा] सुख का घर। सुख का आकर। उ०—सुंदर नंद-महर के मंदिर प्रगट्यो पूत सकल सुखकंदर।—सूर।

सुखक‡-वि० [हिं० सूखा] सूखा। शुष्क। उ०—सुखक वृक्ष एक जक्त उपाया। समुझि न परी विषय कछु माया।—कबीर।

सुखकर-वि० [सं०] (१) सुख देनेवाला। सुखद। (२) जो सहज में सुख से किया जाय। सुकर। (३) हलके हाथवाला। उ०—परम निपुण सुखकर वर नापित लीन्ह्यो तुरत बुलाई। क्रम सों चारि कुमारन को नृप दिय मुंडन करवाई।—रघुराज।

सुखकरण-वि० [सं० सुख + करण] सुख उत्पन्न करनेवाला। आनंद देनेवाला। उ०—सब सुखकरण हरण दुख भारी। जपें जाहि शिव शैलकुमारी।—विश्राम।

सुखकरन-वि० दे० "सुखकरण"। उ०—सुखकरन सब तें परम करपर वेनु वरकर धरत हैं। सुर मधुर तान बधान तें प्रभु मनहुँ को मन हरत हैं।—गिरधरदास।

सुखकारक-वि० [सं०] सुखदायक। सुख देनेवाला। आनंददायक।

सुखकारी-वि० [सं० सुखकारिन्] सुख देनेवाला। आनंददायक।

सुखकृत-वि० [सं०] जो सुख या आराम से किया जाय। सुकर। सहज।

सुखक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुख से किया जानेवाला काम। सहज काम। (२) वह काम जिसे करने से सुख हो। आराम देनेवाला काम।

सुखगंध-वि० [सं०] जिसकी गंध आनंद देनेवाली हो। सुगंधित।

सुखग-वि० [सं०] सुख से जानेवाला। आराम से चलने या जानेवाला।

सुखगम-वि० [सं०] सरल। सुगम। सहज।

सुखगम्य-वि० [सं०] (१) सुख से जाने योग्य। आराम से जाने योग्य। (२) जिसमें सुखपूर्वक गमन किया जा सके।

सुखग्राह्य-वि० [सं०] सुख से ग्रहण योग्य। जो सहज में लिया जा सके।

सुखचर-वि० [सं०] सुख से चलनेवाला। आराम से चलनेवाला।

सुखचार-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम घोड़ा। बढ़िया घोड़ा।

सुखजनक-वि० [सं०] सुखदायक। आनंददायक। सुखद।

सुखजननी-वि० [सं०] सुख उपजानेवाली। सुख देनेवाली। उ०—मदन जीविका सुखजननि मनमोहनी विलास। निपट कृपाणी कपट की रति शोभा सुखवास।—केशव।

सुखजात-वि० [सं०] सुखी। प्रसन्न।

सुखज्ञ-वि० [सं० सुख + ज्ञ] सुख का जाननेवाला। सुख का ज्ञाता। उ०—जागरत भाखि सुत सुखमा भिलाख जे सुखज्ञ सुखभाषी ह्वै तुरीयमय माने हैं। गुणत्रय भेद के अवस्था त्रय खेदहू के लच्छन के लच्छ ते बिलच्छन बखाने हैं।—चरणचंद्रिका।

सुखड़ैना†-संज्ञा पुं० [हिं० सूखना + ऐना (प्रत्य०)] बैलों का एक प्रकार का रोग जो उनका तालू खुल या फूट जाने से होता है। इसमें बैल खाना पीना छोड़ देता है जिससे वह बहुत दुबला हो जाता है।

सुखढरन-वि० [सं० सुख + हिं० ढलना] सुख देनेवाला। सुखदायक। उ०—सज्जन सुखढरन भक्तजन कंठाभरन।—सरस्वती।

सुखता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुख का भाव या धर्म। सुखत्व।

सुखथर‡-संज्ञा पुं० [सं० सुख + स्थल] सुख का स्थल। सुख देनेवाला स्थान। उ०—निपट भिन्न वा सब सों जो पहले हो सुखथर। विविध त्रास सों पूरित हैं वे भूमि भयंकर।—श्रीधर पाठक।

सुखद-वि० [सं०] [स्त्री० सुखदा] सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। सुखदायी। आरामदेह।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु का स्थान। विष्णु का आसन। (२) विष्णु। (३) एक प्रकार का ताल। (संगीत)

सुखदनियाँ॥-वि० दे० "सुखदानी"। उ०—सुंदर स्याम सरोज बरन तन सब अँग सुभग सकल सुखदनियाँ।—तुलसी।

सुखदा-वि० स्त्री० [सं०] सुखदेनेवाली। आनंद देनेवाली। सुखदायिनी।

संज्ञा स्त्री० (१) गंगा का एक नाम। (२) अप्सरा। (३) शमी वृक्ष। (४) एक प्रकार का छंद।

सुखदाइन॥-वि० दे० "सुखदायिनी"। उ०—आइ हुती अन्हवावन नाइनि, सोंधो लिये कर सूधे सुभाइनि। कंचुकि छोरि उतै उपटैबे को ईंगुर से अँग की सुखदाइनि।—देव।

सुखदाई-वि० दे० "सुखदायी"।

सुखदात-वि० दे० "सुखदाता"। उ०—जो सब देव को देव अहै, द्विजभक्ति में जाकी घनी निपुणाई। दासन को सिगरो सुखदात प्रशांत स्वरूप मनोहरताई।—रघुराज।

सुखदाता-वि० [सं० सुखदातृ] सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। आराम देनेवाला। सुखद।

सुखदान-वि० [सं० सुख+देना] [स्त्री० सुखदानी] सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। उ०—(क) खेलति है गुड़ियान को खेल लये संग मैं सजनी सुखदान री।—सुंदरीसर्वस्व। (ख) जब तुम फूलन के दिवस आवत हैं सुखदान। फूली अंग समाति नहिं उत्सव करति महान।—लक्ष्मणसिंह।

सुखदानी-वि० स्त्री० [हिं० सुखदान] सुख देनेवाली। आनंद देनेवाली।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ८ सगण और १ गुरु होता है। इसे सुंदरी, मल्ली और चंद्रकला भी कहते हैं।

सुखदाय-वि० दे० सुखदायक"।

सुखदायक-वि० [सं०] सुख देनेवाला। आराम देनेवाला। सुखद।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का छंद।

सुखदायिनी-वि० स्त्री० [सं०] सुख देनेवाली। सुखदा।

संज्ञा स्त्री० मांसरोहिणी नाम की लता। रोहिणी।

सुखदायी-वि० [सं० सुखदायिन्] [स्त्री० सुखदायिनी] सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। सुखद।

सुखदायो॥-वि० दे० "सुखदायी"। उ०—देखि स्याम मन हरष बढ़ायो। तैसिय शरद चाँदिनी निर्मल तैसोइ रास रंग उपजायो। तैसिय कनकबरन सब सुंदरि यह सोभा पर मन ललचायो। तैसी हंस-सुता पवित्र तट तैसोइ कल्पवृक्ष सुखदायो।—सूर।

सुखदाव॥-वि० दे० "सुखदायी"। उ०—जल दल चंदन चक्रदर घंटशिला हरि ताव। अष्ट वस्तु मिलि होत है चरणामृत सुखदाव।—विश्राम।

सुखदास-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन महीने में तैयार होता है और जिसका चावल बरसों तक रह सकता है।

सुखदेनी-वि० दे० "सुखदायिनी"। उ०—राजत रोमन की तन राजित है रसबीज नदी सुखदेनी। आगे भई प्रतिबिंबित पाछे विलंबित जो मृगनैनी कि बेनी।—सुंदरीसर्वस्व।

सुखदैन-वि० दे० "सुखदायी"। उ०—तिय के मनमंजु मनोरथ आनि कहै हनुमान जगे पै जगे। सुखदैन सरोज कली से भले उभरै ये उरोज लगे पै लगे।—सुंदरीसर्वस्व।

सुखदैनी-वि० [सं० सुखदायिनी] सुख देनेवाली। आनंद देनेवाली। सुखद। उ०—भाल गुही गुन लाल लटैं लपटी लर मोतिन की सुखदैनी।—केशव।

सुखदोह्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसको दुहने में किसी प्रकार का कष्ट न हो। बहुत सहज में दुही जा सकनेवाली गौ।

सुखधाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख का घर। आनंद सदन। (२) वह जो स्वयं सुखमय हो; या जो बहुत अधिक सुख देनेवाला हो। (३) वैकुंठ। स्वर्ग।

सुखना॥-क्रि० अ० दे० "सूखना"।

सुखपर-वि० [सं०] सुखी। खुश। प्रसन्न।

सुखपाल-संज्ञा पुं० [सं० सुख+पाल (की)] एक प्रकार की पालकी जिसका ऊपरी भाग शिवाले के शिखर का सा होता है। उ०—(क) सुखपाल और चंडोलों पर और रथों पर जितनी रानियाँ और महारानी लछमीबास पीछे चली आती थीं।—शिवप्रसाद। (ख) घोड़न के रथ दोइ दिये जरबाफ मढ़ी सुखपाल सुहाई।—रघुनाथ। (ग) हम सुखपाल लिये खड़े हाजिर लगन कहार। पहुँचायों मन मंजिल तक तुहिं लै प्रान अधार।—रतनहजारा।

सुखपूर्वक-क्रि० वि० [सं०] सुख से। आनंद से। आराम के साथ। मजे में। जैसे,—आप यदि उनके यहाँ पहुँच जायँगे तो बहुत सुखपूर्वक रहेंगे।

सुखपेय-वि० [सं०] जिसके पीने में सुख हो। जिसके पान करने से आनंद मिले। सुपेय।

सुखप्रद-वि० [सं०] सुख देनेवाला। सुखदायक। सुखद।

सुखप्रसवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुख से प्रसव करनेवाली स्त्री। आराम से संतान जननेवाली स्त्री।

सुखभंज-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मिर्च।

सुखभक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सहिंजन। श्वेतशिग्रु।

सुखमन॥-संज्ञा स्त्री० [सं० सुषुम्ना] सुषुम्ना नाम की नाड़ी। मध्यनाड़ी। वि० दे० "सुषुम्ना"। उ०—कहाँ पिंगला

सुखमन नारी । सूनि समाधि लागि गइ तारी ।—जायसी ।

सुखमा–संज्ञा स्त्री० [सं० सुषमा] (१) शोभा । छवि । उ०—तिय मुख सुखमा सो दगनि बाँध्यो प्रेम अपार । रही अलक ह्वै लगी मनुं बदुरी पुतरी तार ।—मुबारक अली । (२) एक प्रकार का वृत्त जिसमें एक तगण, एक यगण, एक भगण और एक गुरु होता है । इसे वामा भी कहते हैं ।

सुखमानी–वि० [सं० सुखमानिन्] सुख माननेवाला । हर अवस्था में सुखी रहनेवाला ।

सुखमुख–संज्ञा पुं० [सं०] यक्ष ।

सुखमोद–संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिंजन । शोभांजन वृक्ष ।

सुखमोदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शलकी का वृक्ष । सलई ।

सुखरात्रि–संज्ञा स्त्री० [सं०] दिवाली की रात । कार्त्तिक महीने की अमावस्या की रात ।

सुखरास*–वि० [सं० सुख+राशि] जो सर्वथा सुखमय हो । सुख की राशि । उ०—मंदिर के द्वार रूप सुंदर निहारो करै लख्यो शील गात सकलात दई दास है । सोचे संग जाइये की रीति को प्रमान वहै वैसे सब जानो माधवदास सुखरास है ।—भक्तमाल ।

सुखरासी*–वि० दे० "सुखरास" ।

सुखलाना–क्रि० स० दे० "सुखाना" ।

सुखवंत–वि० [सं० सुखवत्] (१) सुखी । प्रसन्न । खुश । (२) सुखदायक । आनंद देनेवाला । उ०—इसके कुंद कली से दंत । बचन तोतले हैं सुखवंत ।—संगीत शाकुंतल ।

सुखवत्–वि० [सं०] सुखयुक्त । सुखी । प्रसन्न ।

सुखवत्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुख का भाव या धर्म । सुख । आनंद ।

सुखवन†–संज्ञा पुं० [हिं० सूखना] (१) वह फसल जो सूखने के लिये धूप में डाली जाती है । (२) वह कमी जो किसी चीज में उसके सूखने के कारण होती है ।

संज्ञा पुं० [हिं० सुखाना] वह बालू जिसे लिखे हुए अक्षरों आदि पर डालकर उनकी स्याही सुखाते हैं । उ०—किलक ऊग ह्वै जाइ मसीहू होत सुधा सी । खाजा के परतन की सी छवि पत्र प्रकासी । सुखवन की बारूहु तहाँ चीनी सी दरकी । सुकवि करै किमि कविता मधुरे बधू अधर की ।—अंबिकादत्त व्यास ।

सुखवर्च्चक–संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी । सर्जिका क्षार ।

सुखवर्च्चस्–संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी ।

सुखवा†–संज्ञा पुं० [सं० सुख] सुख । आनंद । मोद । उ०—सुखवा सकल बलविरवा के घर, दुख नैहर गवन नाहिं देत ।—रामकृष्ण वर्म्मा ।

सुखवादी–संज्ञा पुं० [सं० सुख+वादिन्] वह जो इंद्रिय सुख को ही सब कुछ समझता या मानता हो । वह जो भोग विलास आदि को ही जीवन का मुख्य उद्देश्य समझता हो । विलासी ।

सुखवार–वि० [सं० सुख+हिं० वार (प्रत्य०)] [स्त्री० सुखवारी] सुखी । प्रसन्न । खुश । उ०—जहाँ दीन, घरहीन परी ठिठुरत वृह नारी । रही कदाचित कबहुँ गाम में सो सुखवारी । गेय चुकी पै निरदोषिन की सुनि मुनि ख्वारी ।—श्रीधर पाठक ।

सुखवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तरबूज । शीर्णवृन्त । (२) वह स्थान जहाँ का निवास सुखकर हो । आनंद का स्थान । सुख की जगह ।

सुखसंदुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जो गाय सुख से दुही जाय । जिस गाय को दुहने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो ।

सुखसंदोहा–संज्ञा स्त्री० दे० "सुखसंदुहा" ।

सुखसलिल–संज्ञा पुं० [सं०] उष्ण जल । गरम पानी ।

विशेष—पानी गरम करने से उसमें कोई दोष नहीं रह जाता। वैद्यक में ऐसा जल बहुत उपकारी बताया गया है, और इसी लिये "सुखसलिल" कहा गया है ।

सुखसाध्य–वि० [सं०] जिसका साधन सुकर हो । जिसके साधन में कोई कठिनाई न हो । सुख से या सहज में होनेवाला । सुकर । सहज ।

सुखांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका अंत सुखमय हो । सुखद परिणामवाला । जिसका परिणाम सुखकर हो । (२) पाश्चात्य नाटकों के दो भेदों में से एक वह नाटक जिसके अंत में कोई सुखपूर्ण घटना (जैसे संयोग, अभीष्ट सिद्धि, राज्य-प्राप्ति आदि) हो । दुःखांत का उलटा ।

सुखांबु–संज्ञा पुं० [सं०] गरम जल । उष्ण जल ।

सुखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वरुण की पुरी का नाम ।

सुखाधार–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग ।

वि० सुख का आधार । जिस पर सुख अवलंबित हो । जैसे,—हमारे तो आप ही सुखाधार हैं ।

सुखाना–क्रि० स० [हिं० सूखना का प्रेर०] (१) किसी गीली या नम चीज को धूप या हवा में अथवा आँच पर इस प्रकार रखना या ऐसी ही और कोई क्रिया करना जिससे उसकी आर्द्रता या नमी दूर हो या पानी सूख जाय । जैसे,—धोती सुखाना, दाल सुखाना, मिर्च सुखाना, जल सुखाना । (२) कोई ऐसी क्रिया करना जिससे आर्द्रता दूर हो । जैसे,—इस चिंता ने तो मेरा सारा खून सुखा दिया ।

†क्रि० अ० दे० "सूखना" ।

सुखानी–संज्ञा पुं० [?] माँझी । मल्लाह । (लश०)

सुखायत–संज्ञा पुं० [सं०] सहज में वश में आनेवाला घोड़ा । सीखा और सधा हुआ घोड़ा ।

सुखारा&-वि० [सं० सुख + हिं० आरा (प्रत्य०)] (१) जिसे यथेष्ट सुख हो। सुखी। आनंदित। प्रसन्न। उ०—(क) इहि विधान निसि रहहिं सुखारे। करहिं कूँच उठि बड़े सकारे।—गिरधरदास। (ख) नित ये मंगल मोद अवध सब विधि सब लोग सुखारे।—तुलसी। (२) सुख देनेवाला। सुखद। उ०—जे भगवान प्रधान अजान समान दरिद्रन ते जन सारा। हेतु विचार हिये जग के भग त्यागि लखैं निज रूप सुखारा।

सुखारि-वि० [सं०] उत्तम हवि भक्षण करनेवाले (देवता आदि)।

सुखारी-वि० दे० "सुखारा"। उ०—(क) सुयो अमुर सुर भये सुखारी।—सूर। (ख) चौरासी लख के अघकारी। भक्त भये मुनि नाद सुखारी।—गिरधरदास।

सुखारो&-वि० दे० "सुखारा"।

सुखार्थी-वि० [सं० सुखार्थिन्] [स्त्री० सुखार्थिनी] सुख चाहनेवाला। सुख की इच्छा करनेवाला। सुखकामी।

सुखाला-वि० [सं० सुख + हिं० आला (प्रत्य०)] [स्त्री० सुखाली] सुखदायक। आनंददायक। उ०—लगैं सुखाली साँझ दिवस की तरुनाई से ताप नसैं।—सरस्वती।

सुखालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जीवंती। डोडी। वि० दे० "जीवंती"।

सुखावत्-वि० दे० "सुखवत"।

सुखावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक स्वर्ग का नाम।

सुखावतीदेव-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव जो सुखावती नामक स्वर्ग के अधिष्ठाता माने जाते हैं। (बौद्ध)

सुखावतीश्वर-संज्ञा पुं० [सं] (१) बुद्ध देव। (२) बौद्धों के एक देवता।

सुखावल संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार नृचक्षु राजा के एक पुत्र का नाम।

सुखावह-वि० [सं०] सुख देनेवाला। आराम देनेवाला। सुखद।

सुखाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो खाने में बहुत अच्छा जान पड़े। (२) तरबूज। (३) वरुण देवता का एक नाम।

वि० जिसे सुख की आशा हो।

सुखाशक-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।

सुखाशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुख की आशा। आराम की उम्मीद।

सुखाश्रय-वि० [सं०] जिस पर सुख अवलंबित हो। सुखाधार।

सुखासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह आसन जिस पर बैठने से सुख हो। सुखद आसन। (२) नाव पर बैठने का उत्तम आसन। (३) पालकी। डोली। उ०—चढ़ि सुख आसन नृपति सिधायो। तहाँ कहार एक दुख पायो।—सूर।

सुखासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वास्थ्य। तंदुरुस्ती। (२) आराम। सुख।

सुखिआ-वि० दे० "सुखिया"। उ०—कहु नानक सोई नर सुखिआ राम नाम गुन गावै। अऊर सकल जगु माया मोहिआ निरभै पद नहिं पावै।—तेगबहादुर।

सुखित-वि० [हिं० सूखना] सूखा हुआ। शुष्क। उ०—पंथ थकित मद मुकित सखित सरसिंदुर जोवत। काकोदर करकोश उदर तर केहरि सोवत।—केशव। वि० दे० "सूखी"। वि० [हिं० सुखी] सुखी। आनंदित। प्रसन्न। खुश। उ०—(क) औरनि के औगुननि तजि कविजन राव होत हैं सुखित तेरो कित्तिवर न्हाय कै।—मतिराम। (ख) दृग थिर कौंहैं अधखुले देह थकौंहैं ढार। सुरत सुखित सी देखियत, दुखित गरभ के भार।—बिहारी।

सुखिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुखी होने का भाव। सुख। आनंद।

सुखित्व-संज्ञा पुं० [सं०] सुखी होने का भाव। सुख। सुखिता। आनंद। प्रसन्नता।

सुखिया-वि० [हिं० सुख + इया (प्रत्य०)] जिसे सब प्रकार का सुख हो। सुखी। प्रसन्न। उ०—लखि के सुंदर वस्तु अरु मधुर गीत सुनि कोइ। सुखिया जनहू के हिये उत्कंठा पुनि होइ।—लक्ष्मणसिंह।

सुखिर-संज्ञा पुं० [देश०] साँप के रहने का बिल। बाँबी। उ०—याकी असि साँपिनि कढ़त म्यान सुखिर सों लहलही श्याम महा चपल निहारी है।—गुमान।

सुखी-वि० [सं० सुखिन्] सुख से युक्त। जिसे किसी प्रकार का कष्ट न हो, सब प्रकार का सुख हो। आनंदित। खुश। जैसे,—जो लोग सुखी हैं, वे दीन दुखियों का हाल क्या जानें।

सुखीन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी पीठ लाल, छाती और गर्दन सफेद तथा चोंच चिपटी होती है।

सुखीनल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार राजा नृचक्षु के एक पुत्र का नाम।

सुखेतर-संज्ञा पुं० [सं०] सुख से भिन्न अर्थात् दुःख। क्लेश। कष्ट।

सुखेन-संज्ञा पुं० दे० "सुषेण"। उ०—(क) सुग्रीव विभीषण जांबवंत। अंगद केदार सुखेन संत।—सूर। (ख) वरुन सुखेन सरत परजन्यहु मारुत हनुमानहिं उतपन्यहु।—पद्माकर।

सुखेलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में न, ज, भ, ज, र आता है। इसे प्रभद्रिका और प्रभद्रक भी कहते हैं।

सुखेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

सुखैना&-वि० [सं० सुख + अयन] सुख देनेवाला। उ०—तो शुंभुद भावै मुनिजन ध्यावै कागभुशुंडि सुखैना।—विश्राम।

सुखोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] पति। स्वामी।
सुखोदक-संज्ञा पुं० [सं०] गरम जल। सुखसलिल।
सुखोद्य-वि० [सं०] सुख से उच्चारण योग्य। जिसके उच्चारण में कोई कठिनाई न हो (शब्द, नाम आदि)।
सुखोर्जिक-संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी। सर्जिका क्षार।
सुख्ख-संज्ञा पुं० दे० "सुख"।
सुख्याति-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसिद्धि। शोहरत। कीर्ति। यश। बड़ाई।
सुगंध-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अच्छी और प्रिय महक। सुवास। सौरभ। खुशबू। वि० दे० "गंध"।
क्रि० प्र०—आना।—उड़ना।—निकलना।—फैलना।
(२) वह पदार्थ जिससे अच्छी महक निकलती हो।
क्रि० प्र०—मलना।—लगाना।
(३) गंध तृण। गंधेज घास। रसघास। अगिया घास। (४) श्रीखंड चंदन। (५) शबर चंदन। (६) गंधराज। (७) नीला कमल। (८) राल। धूना। (९) काला जीरा। (१०) गठेला। ग्रन्थिपर्ण। गठिवन। (११) एलुआ। एलवालुक। (१२) बृहत् गंधतृण। (१३) भूतृण। (१४) चना। (१५) भूपलाश। (१६) लाल सहिंजन। रक्तशिग्रु। (१७) शालिधान्य। बासमती चावल। (१८) मरुआ। मरुवक। (१९) माधवी लता। (२०) कसेरू। (२१) सफेद ज्वार। (२२) शिलारस। (२३) तुंबुरु। (२४) केवड़ा। श्वेत केतकी। (२५) रूसा घास जिससे तेल निकलता है। (२६) एक प्रकार का कीड़ा।
वि० सुगंधित। सुवासित। महकदार। खुशबूदार। उ०—(क) शीतल मंद सुगंध समीर से मन की कली मानों फूल सी खिल जाती थी।—शिवप्रसाद। (ख) अंजलिगत शुभ सुमन, जिमि सम सुगंध कर दोउ।—तुलसी।
सुगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्रोणपुष्पी। गमा। गोमा। (२) रक्त शालिधान्य। साठी धान्य। (३) धरणी कंद। कंदालु। (४) गंधतुलसी। रक्त तुलसी। (५) गंधक। (६) बृहद् गंधतृण। (७) नारंगी। (८) कर्कोटक। ककोड़ा।
सुगंधकेसर-संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिंजन। रक्तशिग्रु।
सुगंधकोकिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गंध द्रव्य। गंधकोकिला।
विशेष—भावप्रकाश में इसका गुण गंधमालती के समान अर्थात् तीक्ष्ण, उष्ण और कफनाशक बताया गया है।
सुगंधगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।
सुगंधगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दारु हलदी। दारु हरिद्रा।
सुगंधगण-संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधित द्रव्यों का एक गण या वर्ग जिसमें कपूर, कस्तूरी, लता कस्तूरी, गंध मार्जारवीर्य, चोरक, श्रीखंडचंदन, पीला चंदन, शिलाजतु, लाल चंदन, अगर, काला अगर, देवदारु, पतंग, सरल, तगर, पद्माक, गूगल, सरल का गोंद, राल, कुंदुरु, शिलारस, लोबान, लौंग, जावित्री, जायफल, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, सुगंधबाला, खस, बालछड़, केसर, गोरोचन, नख सुगंध, वीरन, नेत्रबाला, जटामाँसी, नागरमोथा, मुलेठी, आँबाहलदी, कपूर, कपूरकचरी आदि सुगंधित पदार्थ कहे गए हैं।
सुगंधचंद्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधेज घास। गँधारण। गंधपलाशी। कपूर कचरी।
सुगंधतृण-संज्ञा पुं० [सं०] गंधतृण। रूसा घास।
सुगंधत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] चंदन, बला और नागकेसर इन तीनों का समूह।
सुगंधत्रिफला संज्ञा स्त्री० [सं०] जायफल, लौंग और इलायची अथवा जायफल, सुपारी तथा लौंग इन तीनों का समूह।
सुगंधन-संज्ञा पुं० [सं०] जीरा।
सुगंधनाकुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रासना।
सुगंधपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सतावर। शतावरी। शतमूली। (२) कठजामुन। क्षुद्रजंबू। (३) बनभंटा। कटाई। बृहती। (४) छोटी धमासा। क्षुद्र दुरालभा। (५) अपराजिता। (६) लाल अपराजिता। रक्तापराजिता। (७) जीरा। (८) बरियारा। बला। (९) विधारा। बृद्धदारु। (१०) रुद्र जटा। रुद्रलता। ईश्वरी।
सुगंधपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जावित्री। (२) रुद्रजटा।
सुगंधप्रियंगु-संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलफेन। फूलप्रियंगु। गंध प्रियंगु।
विशेष—वैद्यक में इसे कसैला, कटु, शीतल और वीर्यजनक तथा वमन, दाह, रक्तविकार, ज्वर, प्रमेह, मेद रोग आदि को नाश करनेवाला बताया है।
सुगंधफल-संज्ञा पुं० [सं०] कंकोल। कक्कोल।
सुगंधबाला-संज्ञा स्त्री० [सं० सुगंध + हिं० बाला] क्षुप जाति की एक प्रकार की बनौषधि जो पश्चिमोत्तर प्रदेश, सिंध, पश्चिमी प्रायःद्वीप, लंका आदि में अधिकता से होती है। सुगंधि के लिये लोग इसे बगीचों में भी लगाते हैं। इसका पौधा सीधा, गाँठ और रोएँदार होता है तथा पत्ते ककही के पत्तों के समान २॥–३ इंच के घेरे में गोलाकार, कटे किनारेवाले तथा ३ से ५ नोकवाले होते हैं। पत्र-दंड लंबा होता है और शाखाओं के अंत में लंबे सींकों पर गुलाबी रंग के फूल होते हैं। बीजकोष कुछ लंबाई लिये गोलाकार होता है। वैद्यक में इसका गुण शीतल, रूखा, हलका, दीपक तथा केशों को सुंदर करनेवाला और कफ, पित्त, हुल्लास, ज्वर, अतिसार, घाव, विसर्प, हृद्रोग, आमातिसार, रक्तस्राव, रक्तपित्त, रक्तविकार, खुजली और दाह को नाश करनेवाला बताया गया है।

पर्य्या०—बालक। वारिद। ह्रीवेर। कुंतल। केश्य। वारि। तोय।

सुगंधभूतृण-संज्ञा पुं० [सं०] रूसा घास। अगिया घास। वि० दे० "भूतृण"।

सुगंधमय-वि० [सं०] जो सुगंध से भरा हो। सुगंधित। सुवासित। खुशबूदार।

सुगंधमुख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी। कस्तूरिका। मृगनाभि।

सुगंधमूत्रपतन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बिलाव जिसका मूत गंधयुक्त होता है। मुश्क बिलाव। सुगंध मार्जार।

सुगंधमूल-संज्ञा पुं० [सं०] हरफारेवड़ी। लवलीफल।

विशेष—वैद्यक में इसे रुधिर-विकार, बवासीर, कफ पित्तनाशक तथा हृदय को हितकारी बताया गया है।

पर्य्या०—पांडु। कोमलवल्कला। घना। स्निग्धा।

सुगंधमूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थल कमल। स्थल पद्म। (२) रासना। रासन। (३) आँवला। (४) गंधपलाशी। कपूर कचरी। (५) हरफारेवड़ी। लवली वृक्ष।

सुगंधमूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधपलाशी। गंधशटी। कपूर कचरी।

सुगंधमूषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छछूँदर।

सुगंधरा-संज्ञा पुं० [सं० सुगंध + हिं० रा] एक प्रकार का फूल।

सुगंधरौहिष-संज्ञा पुं० [सं०] रोहिष घास। गंधेज घास। मिरचिया गंध। अगिया घास।

सुगंधवल्कल-संज्ञा पुं० [सं०] दालचीनी। गुडत्वक्।

सुगंधवीरजात्य-संज्ञा पुं० [सं०] गंधेज घास। रोहिष घास। हरद्वारी कुशा।

सुगंधशालि†-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बढ़िया शालिधान। बासमती चावल।

विशेष—वैद्यक में यह चावल बलकारक तथा कफ, पित्त और ज्वरनाशक बताया गया है।

सुगंध षट्क-संज्ञा पुं० [सं०] छः सुगंधि द्रव्य, यथा जायफल, कंकोल (शीतल चीनी) लौंग, इलायची, कपूर और सुपारी।

सुगंधसार-संज्ञा पुं० [सं०] सागौन। शाल वृक्ष।

सुगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रासन। रासना। (२) काला जीरा। कृष्ण जीरक। (३) गंधपलाशी। गंधशटी। कपूर कचरी। (४) रुद्रजटा। शंकरजटा। (५) शतपुष्पी। सौंफ। (६) बाँझ ककोड़ा। बन ककोड़ा। वंध्या कर्कोटकी। (७) नेवारी। नवमल्लिका। (८) पीली जूही। स्वर्णमूषिका। (९) नकुलकंद। नाकुली। (१०) असबरग। स्पृक्का। (११) गंगापत्री। (१२) सलई। शलकी वृक्ष। (१३) माधवीलता। अतिमुक्तक। (१४) काली अनंतमूल। (१५) सफेद अनंतमूल। (१६) बिजौरा नीबू। मातु लुंगा। (१७) तुलसी। (१८) गंध कोकिला। (१९) निर्गुंडी। नील सिंधुवार। (२०) एलुआ। एलवालुक। (२१) वनमल्लिका। सेवती। (२२) बकुची। सोमराजी। (२३) ५२ पीठ स्थानों में से एक पीठ स्थान में स्थित देवी का नाम। देवी भागवत के अनुसार इस देवी का स्थान माधववन में है।

सुगंधाढ्य-वि० [सं०] सुगंधित। सुवासित। सुगंधयुक्त। खुशबूदार।

सुगंधाढ्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) त्रिपुरमाली। त्रिपुरमल्लिका। वृत्त मल्लिका। (२) बासमती चावल। सुगंधित शालिधान्य।

सुगंधि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी महक। सौरभ। सुगंध। सुवास। खुशबू।

विशेष—यद्यपि यह शब्द संस्कृत में पुंलिंग है, पर हिंदी में इस अर्थ में स्त्रीलिंग ही बोला जाता है।

(२) परमात्मा। (३) आम। (४) कसेरू। (५) गंधतृण। अगिया घास। (६) पीपलामूल। पिप्पलीमूल। (७) धनिया। (८) मोथा। मुस्तक। (९) एलुवा। एलवालुक। (१०) फूट। कचरिया। गोरख ककड़ी। भकुर। गुरुभीहुँ। चिर्भिटा। (११) बबई। बर्वरिका। बन तुलसी। (१२) बरबर चंदन। बर्वर चंदन। (१३) तुंबरू। तुंबुरू। (१४) अनंतमूल।

वि० दे० "सुगंधित"।

सुगंधिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाँडर की जड़। खस। वीरन। उशीर। (२) कुँई। कुमुदिनी। लाल कमल। (३) पुष्कर मूल। पुहकर मूल। (४) गौरसुवर्ण शाक। वि० दे० "गौर सुवर्ण"। (५) काला जीरा। कृष्ण जीरक। (६) मोथा। मुस्तक। (७) एलुआ। एलवालुक। (८) माचीपत्र। सुरपर्ण। (९) शिलारस। सिल्हक। (१०) बासमती चावल महाशालि। (११) कैथ। कपित्थ। (१२) गंधक। गंध पाषाण। (१३) सुलतान चंपक। पुन्नाग।

सुगंधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कस्तूरी। मृगनाभि। (२) केवड़ा। पीली केतकी। (३) सफेद अनंत मूल। श्वेत सारिवा। (४) कृष्ण निर्गुंडी। (५) सिंह। केसरी।

सुगंधिकुसुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीला कनेर। पीत करवीर। (२) असबरग। स्पृक्का। (३) वह फूल जिसमें किसी प्रकार की सुगंध हो। सुगंधित फूल।

सुगंधिकृत-संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस। सिल्हक।

सुगंधित-वि० [सं० सुगंधि] जिसमें अच्छी गंध हो। सुगंधयुक्त। खुशबूदार। सुवासित।

सुगंधिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुगंधि। अच्छी महक। खुशबू।

सुगंधितेजन-संज्ञा पुं० [सं०] रूसा या गंधेज नाम की घास। अगिया घास। रोहिष तृण।

सुगंधित्रिफला†-संज्ञा स्त्री० [सं०] जायफल, सुपारी और लौंग इन तीनों का समूह।

सुगंधिमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आरामशीतला नाम का शाक जिसे सुनंदिनी भी कहते हैं। (२) पीली केतकी।

सुगंधिपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धारा कदंब। केलिकदंब। (२) वह फूल जिसमें सुगंधि हो। खुशबूदार फूल।

सुगंधिफल-संज्ञा पुं० [सं०] शीतलचीनी। कबाब चीनी। कंकोल।

सुगंधिमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० सुगंधिमातृ] पृथिवी।

सुगंधिमूल-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

सुगंधिमूषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छछूँदर।

सुगंधी-वि० [सं० सुगंधिन्] जिसमें अच्छी गंध हो। सुवासित। सुगंध युक्त। खुशबूदार।

संज्ञा पुं० एलुआ। एलवालुक।

संज्ञा स्त्री० [सं० सुगंधि] अच्छी महक। खुशबू। सुगंधि।

सुगत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्ध देव का एक नाम। (२) बुद्ध भगवान् के धर्म्म को माननेवाला। बौद्ध।

सुगतदेव-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध भगवान।

सुगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मरने के उपरांत होनेवाली उत्तम गति। मोक्ष। उ०—सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ। नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ।—तुलसी। (२) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सात मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है। इसे शुभगति भी कहते हैं।

सुगन-संज्ञा पुं० [देश०] छकड़े में गाड़ीवान के बैठने की जगह के सामने आड़ी लगी हुई दो लकड़ियाँ, जिनकी सहायता से बैल खोल लेने पर भी गाड़ी खड़ी रहती है।

सुगना†-संज्ञा पुं० [सं० शुक, हिं० सुग्गा] सुग्गा। तोता। सूआ।

संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"।

सुगभस्ति-वि० [सं०] दीप्तिमान। प्रकाशमान। चमकीला।

सुगम-वि० [सं०] (१) जो सहज में जाने योग्य हो। जिसमें गमन करने में कठिनता न हो। (२) जो सहज में जाना, किया या पाया जा सके। आसानी से होने या मिलनेवाला। सरल। सहज। आसान।

सुगमता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुगम होने का भाव। सरलता। आसानी। जैसे,—यदि आप उनकी सम्मति मानेंगे, तो आपके कार्य्य में बहुत सुगमता हो जायगी।

सुगम्य-वि० [सं०] जिसमें सहज में प्रवेश हो सके। सरलता से जाने योग्य। जैसे,—जंगली और पहाड़ी प्रदेश उतने सुगम्य नहीं होते, जितने खुले मैदान होते हैं।

सुगर-संज्ञा पुं० [सं०] शिंगरफ। हिंगुल।

सुगरूप-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की सवारी जो प्रायः रेतीले देशों में काम आती है।

सुगर्भक-संज्ञा पुं० [सं०] खीरा। त्रपुष।

सुगल-संज्ञा पुं० [सं० सु + हिं० गल = गला] बालि का भाई सुग्रीव। उ०—पुनि पावस महँ बसे प्रवर्षण बर्षा वर्णन कीन्ह्यो। सरद सराहि सकोप सुगल पहँ लषन पठै जिमि दीन्ह्यो।—रघुराज।

सुगवि-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार प्रसुश्रुत के एक पुत्र का नाम।

सुगहनावृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घेरा या बाढ़ जो यज्ञस्थल में अस्पृश्यों आदि को रोकने के लिये लगाई जाती है। कुंबा।

सुगाध-वि० [सं०] (नदी) जिसमें सुख से स्नान किया जा सके; अथवा जिसे सहज में पार किया जा सके।

सुगाना॥-क्रि० अ० [सं० शोक] (१) दुःखित होना। (२) बिगड़ना। नाराज होना। उ०—आजुहि ते कहुँ जान न दैहौं मा तेरी कछु अकथ कहानी। सूर स्याम के सँग ना जैहौं जा कारण तू मोहिं सुगानी।—सूर।

क्रि० अ० [?] संदेह करना। शक करना। उ०—जो पावँरू अपनी जड़ताई। तुम्हहिं सुगाइ मातु कुटिलाई।—तुलसी।

सुगीत-संज्ञा पुं० दे० "सुगीतिका"।

सुगीतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १५ + १० के विराम से २५ मात्राएँ और आदि में लघु और अंत में गुरु लघु होते हैं।

सुगुंडा-संज्ञा स्त्री० [सं० सुगुण्डा] गुंडासिनी तृण। गुंडाला। तृणपत्री।

सुगुप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] किवाँच। कौंछ। कपिकच्छु। वि० दे० "कौंछ"।

सुगुरा संज्ञा पुं० [सं० सुगुरु] वह जिसने अच्छे गुरु से मंत्र लिया हो।

सुगृह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बत्तख या हंस।

सुगृही-वि० [सं० सुगृहिन्] (१) सुंदर घरवाला। जिसका घर बढ़िया हो। (२) सुंदर स्त्रीवाला। जिसकी पत्नी सुंदर हो।

संज्ञा पुं० सुश्रुत के अनुसार प्रतुद जाति का एक पक्षी। सुगृह।

सुगैया†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुग्गा] अँगिया। चोली। उ०—मोहिं लखि सोवत बिथोरिगो सुबेनी बनी, तोरिगो हिये को हरा, छोरिगो सुगैया को।—रसकुसुमाकर।

सुगौतम-संज्ञा पुं० [सं०] शाक्य मुनि। गौतम।

सुग्गा†-संज्ञा पुं० [सं० शुक] [स्त्री० सुग्गी] तोता। सूआ। शुक।

सुग्गापंखी-संज्ञा पुं० [हिं० सुग्गा + पंख] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में होता है और जिसका चावल बरसों तक रह सकता है।

सुग्गा साँप-संज्ञा पुं० [हिं० सुग्गा + साँप] एक प्रकार का साँप।

सुग्रंथि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोरक नाम गंध द्रव्य। (२) पीपलामूल। पिप्पलीमूल।

सुग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार शुभ या अच्छे ग्रह। जैसे,—बृहस्पति, शुक्र आदि।

सुग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बालि का भाई, वानरों का राजा और श्रीरामचंद्र का सखा।

विशेष—जिस समय श्रीरामचंद्र सीता को ढूँढ़ते हुए किष्किंधा पहुँचे थे, उस समय मतंग आश्रम में सुग्रीव से उनकी भेंट हुई थी। हनुमानजी ने श्रीरामचंद्रजी से सुग्रीव की मित्रता करा दी। बालि ने सुग्रीव को राज्य से भगा दिया था। उसके कहने से श्रीरामचंद्र ने बालि का वध किया, सुग्रीव को किष्किंधा का राज्य दिलाया और बालि के पुत्र अंगद को युवराज बनाया। रावण को जीतने में सुग्रीव ने श्रीरामचंद्र की बहुत सहायता की थी। सुग्रीव सूर्य के पुत्र माने जाते हैं। वि० दे० "बालि"।

(२) विष्णु या कृष्ण के चार घोड़ों में से एक। (३) शुंभ और निशुंभ का दूत जो भगवती चंडी के पास उन दोनों का विवाह संबंधी सँदेसा लेकर गया था। (४) वर्तमान अवसर्पिणी के नवें अर्हत के पिता का नाम। (५) इंद्र। (६) शिव। (७) पाताल का एक नाग। (८) एक प्रकार का अस्त्र। (९) शंख। (१०) राजहंस। (११) एक पर्वत का नाम। (१२) एक प्रकार का मंडप। (१३) नायक।

वि० जिसकी ग्रीवा सुंदर हो। सुंदर गरदनवाला।

सुग्रीवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

सुग्रीवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की एक पुत्री और कश्यप की पत्नी जो घोड़ों, ऊँटों तथा गधों की जननी कही जाती है।

सुग्रीवेश-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

सुघट-वि० [सं०] (१) अच्छा बना हुआ। सुंदर। सुडौल। उ०—भृकुटि भ्रमर चंचल कपोल मृदु बोल अमृत सम। सुघट ग्रीव रस सीव कंठ मुकता विघटत तम।—हनुमन्नाटक। (२) जो सहज में हो या बन सकता हो।

सुघटित-वि० [सं० सुघट] जिसका निर्माण सुंदर हो। अच्छी तरह से बना हुआ। उ०—धवल धाम मनि पुरट-पट-सुघटित नाना भाँति। सियनिवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति।—तुलसी।

सुघड़-वि० [सं० सुघट] (१) सुंदर। सुडौल। उ०—नील परेव कंठ के रंगा। वृष से कंध सुघड़ सब अंगा।—उत्तर रामचरित। (२) निपुण। कुशल। दक्ष। प्रवीण। जैसे,—सुघड़ बाहू।

सुघड़ई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुघड़ + ई (प्रत्य०)] (१) सुंदरता। सुडौलपन। अच्छी बनावट। उ०—विषय के भोगों में तृप्त हुए बिना ही उस (राजा) को, अधिक सुघड़ई के कारण विलासिनियों के भोगने योग्य को, वृथा ईर्ष्या करनेवाली जरा ने स्त्री व्यवहार में असमर्थ होकर भी हरा दिया।—लक्ष्मणसिंह। (२) चतुरता। निपुणता। कुशलता। उ० इसमें बड़ी बुद्धि और सुघड़ई का काम है।—ठाकुरप्रसाद।

सुघड़ता-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुघड़ + सं० ता (प्रत्य०)] (१) सुघड़ होने का भाव। सुंदरता। मनोहरता। (२) निपुणता। कुशलता। दक्षता। सुघड़पन।

सुघड़पन-संज्ञा पुं० [हिं० सुघड़ + पन (प्रत्य०)] (१) सुघड़ होने का भाव। सुघड़ाई। सुंदरता। (२) निपुणता। दक्षता। कुशलता।

सुघड़ाई-संज्ञा स्त्री० दे० "सुघड़ई"।

सुघड़ापा-संज्ञा पुं० [हिं० सुघड़ + आपा (प्रत्य०)] (१) सुघड़ाई। सुंदरता। सुडौलपन। (२) दक्षता। निपुणता। कुशलता।

सुघर-वि० दे० "सुघड़"। उ०—(क) संयुत सुमन सुबेलि सी सेली सी गुणग्राम। लसत हवेली सी सुघर निरखि नवेली बाम।—पद्माकर। (ख) सुघर सौति बस पिय सुनत दुलहिनि दुगुन हुलास। लखी सखी तन दीठि करि सगरब सलज सहास।—अंबिकादत्त।

सुघरता-संज्ञा स्त्री० दे० "सुघड़ता"।

सुघरपन-संज्ञा पुं० दे० "सुघड़पन"। उ०—छन में जैहै सुघरपनो पीरो परिहै तन। परकर परि कै सुकवि फेर फिरि आवत नहिं मन।—अंबिकादत्त।

सुघराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुघड़ + आई (प्रत्य०)] (१) दे० "सुघड़ई"। उ०—(क) काम नाश करने के कारण जिन्हें न भाई सुघराई। ऐसे शिव को किया चाहती है अपना पति सुखदाई।—महावीरप्रसाद द्विवेदी। (ख) सुघराई सुकाम विरंचिकी है, तिय तेरे नितंबनि की छबि में।—सुंदरीसर्वस्व। (२) संपूर्ण जाति की एक रागिनी। इसके गाने का समय दिन में १० से १६ दंड तक है।

सुघराई कान्हड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० सुघराई + कान्हड़ा] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

सुघराई टोड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुघराई + टोड़ी] संपूर्ण जाति की एक रागिनी।

सुघरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सु + घड़ी] अच्छी घड़ी। शुभ समय। उ०—आनँद की सुघरी उघरी सिगरे मनवांछित काज भए हैं।—व्यंग्यार्थकौमुदी।

वि० स्त्री० [हिं० सुघड़] सुंदर। सुडौल। उ०—(क) भाग सोहाग भरी सुघरी पति प्रेम प्रनाली कथा अपनैना।—सुंदरीसर्वस्व। (ख) सुंदरि हौ सुघरी हौ सलौनी हौ सील भरी रस रूप सनाई।—देव।

सुघोष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौथे पांडव नकुल के शंख का नाम। (२) एक बुद्ध का नाम। (३) एक प्रकार का यंत्र।
वि० जिसका स्वर सुंदर हो। अच्छे गले या आवाजवाला।

सुचंग-संज्ञा पुं० [हिं०] घोड़ा।

सुचंचुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा चंचुक शाक। महाचंचु। दीर्घपर्णा।

सुचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] पतंग या बकम नाम की लकड़ी जिसका व्यवहार औषध और रंग आदि में होता है। रक्तसार। सुरंग।

सुचंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवगंधर्व का नाम। (२) सिंहिका के पुत्र का नाम। (३) इक्ष्वाकुवंशी राजा हेमचंद्र का पुत्र और धूम्राश्व का पिता।

सुचंद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक प्रकार की समाधि।

सुच※-वि० दे० "शुचि"।

सुचक्षु-संज्ञा पुं० [सं० सुचक्षुस्] (१) गूलर। उदुंबर। (२) शिव का एक नाम। (३) विद्वान् व्यक्ति। पंडित।
वि० जिसके नेत्र सुंदर हों। सुंदर आँखोंवाला।
संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

सुचना-क्रि० स० [सं० संचय] संचय करना। एकत्र करना। इकट्ठा करना। उ०—तरुवर फल नहिं खात हैं सरवर पियहिं न पानि। कहि रहीम परकाज हित संपत्ति सुचहिं सुजान।—रहीम।

सुचरित, सुचरित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका चरित्र शुद्ध हो। उत्तम आचरणवाला। नेकचलन।

सुचरित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पति परायणा स्त्री। साध्वी। सती।

सुचर्मा-संज्ञा पुं० [सं० सुचर्मन्] भोजपत्र।

सुचा-वि० दे० शुचि"। उ०—सील सुचा ध्यान धोवती काया कलस प्रेम जल।—दादू।

सुचाना-क्रि० स० [हिं० सोचना का प्रे०] (१) किसी को सोचने या समझने में प्रवृत्त करना। सोचने का काम दूसरे से कराना। (२) दिखलाना। (३) किसी का ध्यान किसी बात की ओर आकृष्ट कराना।

सुचार※-संज्ञा स्त्री० [सं० सु+हिं० चाल] सुचाल। अच्छी चाल। उ०—थाई भाव थिर है विभाव अनुभावनि सों सानुकूल संतत ह्वै संचरि सुचार है।—देव।
वि० [सं० सुचारु] सुचारु। सुंदर। मनोहर। उ०—अजहूँ लौं राजत नीरधि तट करत सांख्य विस्तार। सांख्यापन से बहुत महामुनि सेवत चरण सुचार।—सूर।

सुचारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यदुवंशी श्वफल्क की पुत्री जो अक्रूर की सास थी।

सुचारु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण का एक पुत्र। (२) विश्वकसेन का पुत्र। (३) प्रतीर्थ। (४) बाहु का पुत्र।
वि० अत्यंत सुंदर। अतिशय मनोहर। बहुत खूबसूरत। जैसे वहाँ के सब कार्य्य बहुत ही सुचारु रूप से संपन्न हो गए।

सुचाल-संज्ञा स्त्री० [सं० सु+हिं० चाल] उत्तम आचरण। अच्छी चाल। सदाचार। उ०—कह गिरिधर कविराय बड़न की याही बानी। चलिये चाल सुचाल राखिये अपनो पानी।—गिरधर।

सुचाली-वि० [सं० सु+हिं० चाल+ई (प्रत्य०)] जिसके आचरण उत्तम हों। अच्छे चाल चलनवाला। सदाचारी।
संज्ञा स्त्री० पृथ्वी। (डिं०)

सुचिंतितार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार मार के पुत्र का नाम।

सुचि-वि० दे० "शुचि"। उ०—(क) सहज सचिक्कन स्याम रुचि सुचि सुगंध सुकुमार। गन तन मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार।—बिहारी। (ख) तुलसी कहत बिचारि गुरु राम सरिस नहिं आन। जासु किपा सुचि होत रुचि बिसद विवेक अमान।—तुलसी।
संज्ञा स्त्री० [सं० सूची] सूई। उ०—सुचिबेध ते नाको सकीर्न तहाँ परतीत को टाँडो लदावनो है।—हरिश्चंद्र।

सुचिकरमा-वि० दे० "शुचिकर्मा"। उ०—चलेउ सुभेस नरेस छत्रधरमा सुचिकरमा। बिसुकरमा कृत सुरथ बैठि रव कंचन बरमा।—गोपाल।

सुचित-वि० [सं० सुचित्त] (१) जो (किसी काम से) निवृत्त हो गया हो। उ०—(क) ऐसी आज्ञा कर यमराज जब सुचित भए, तब नारद मुनि ने फिर उनसे पूछा कि किस कारण से तुम इहाँ से भाग गए सो मुझ से कहो।—सदल मिश्र। (ख) अतिथि साधु पति सबनि खवाई। मैं हूँ सुचित भई पुनि खाई।—रघुराज। (२) निश्चित। चिंता रहित। बे-फिक्र। (३) एकाग्र। स्थिर। सावधान। उ०—(क) सुचित सुनहु हरि सुजस कह बहुरि भई जो बात।—गिरिधरदास। (ख) इहि विधान एकादशी करै सुचित चित होइ।—गिरिधरदास।
वि० [सं० शुचि] पवित्र। शुद्ध। (क्व०)

सुचितई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुचित+ई (प्रत्य०)] (१) सुचित होने का भाव। निश्चितता। बे-फिक्री। उ०—(क) इमि देव दुंदुभी हरषि बरसत फूल सुफल मनोरथ भो सुख सुचितई है।—तुलसी। (ख) सुकवि सुचितई पैहैं सब ह्वैहै कवै मरन।—अंबिकादत्त। (२) एकाग्रता। स्थिरता। शांति। (३) छुट्टी। फुरसत। उ०—सुचित न आयो सुचितई कहौ कहाँ ते होइ।—अंबिकादत्त।

सुचिती†-वि० [हिं० सुचित+ई (प्रत्य०)] (१) जिसका चित्त किसी बात पर स्थिर हो। जो दुबिधा में न हो। स्थिरचित्त। शांत। उ०—(क) सुचिती ह्वै औरै सबै ससिहि बिलौकैं आय।

(ख) ससिहिं बिलोकैं आय सबै करि करि मन सुचिती।—अंबिकादत्त। (२) निश्चिंत। चिंता रहित। बे-फिक्र। उ०—धाय सों जाय कै धाय कह्यो कहुँ धाय कै पूछिये कानें ठई है। बैठि रही सुचि ती सी कहा सुनि मेरो सबै सुधि भूलि गई है।—सुंदरीसर्वस्व।

सुचित्त-वि० [सं०] (१) जिसका चित्त स्थिर हो। स्थिर चित्त। शांत। (२) जो (किसी काम से) निवृत्त हो गया हो। जो छुट्टी पा गया हो। निश्चिंत। उ०—(क) ब्राह्मणों को नाना प्रकार के दान दे नित्य कर्म से सुचित्त हो।—लल्लू। (ख) कन्या तो पराया धन है ही, उसको पति के घर भेज दिया; सुचित्त हो गए।—संगीत शाकुंतल।

क्रि० प्र०—होना।

सुचित्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुर्गाबी। मत्स्यरंग पक्षी। (२) चित्रसर्प। चितला साँप।

सुचित्रबीजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बायबिडंग। विडंग।

सुचित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चिभिटा या फूट नामक फल।

सुचिमंत-वि० [सं० शुचि + मत्] शुद्ध आचरणवाला। सदाचारी। शुद्धाचारी। पवित्र। उ०—सो सुकृती सुचिमंत सुसंत सुसील सयान सिरोमनि स्वै। सुरतीरथता सुमनावन आवत पावन होत है तात न छ्वै।—तुलसी।

सुचिर-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक समय। दीर्घ काल।

वि० (१) बहुत दिनों तक रहनेवाला। (२) पुराना। प्राचीन।

सुचिरायु-संज्ञा पुं० [सं० सुचिरायुस्] देवता।

सुची-संज्ञा स्त्री० दे० "शची"। उ०—सोइ सुरपति जाके नारि सुची सी। निस दिन ही रँगराती, काम हेतु गौतम गहि गयऊ निगम देतु है साखी।—कबीर।

सुचीरा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुचारा"।

सुचीर्णध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] कुंभांडों के एक राजा का नाम। (बौद्ध)

सुचुक्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

सुचुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चिमटा। (२) सँड़सी।

सुचेत-वि० [सं० सुचेतस्] चौकन्ना। सावधान। सतर्क। होशियार। उ०—(क) कोई नशे में मस्त हो कोई सुचेत हो। दिलबर गले से लिपटा हो सरसों का खेत हो।—नजीर। (ख) भाई तुम सुचेत रहो, केटो की दृष्टि बड़ी पैनी है।—तोताराम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रहना।

सुचेतन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। (डिं०)

वि० दे० "सुचेत"।

सुचेता-वि० दे० "सुचेत"। उ०—सुंदरता सौभाग्य निकेता। पंकजलोचन अहहिं सुचेता।—शं० दि०।

सुचेलक-संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर और महीन कपड़ा। पट।

वि० जिसका वस्त्र उत्तम हो।

सुचेष्टरूप-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

सुच्छंद*†-वि० दे० "स्वच्छंद"। उ०—(क) बैठि इकंत होय सुच्छंदा। लहिए महा परमानंदा।—निश्चल। (ख) निपट लागत अगम ज्यों जलचरहि गमन सुछंद।—तुलसी। (ग) सकै सताइ न पल इन्हैं बिरहा अनिल सुछंद। न जरैं जे न जरै रहै प्रीतम तुव मुखचंद।—रतनहजारा।

सुच्छ*†-वि० दे० "स्वच्छ"। उ०—(क) सुच्छ पर हत्थ तन सुच्छ अंबर धरे तुच्छ नहिं बीर रस रंग रत्ते।—सूदन। (ख) कही मैं तो नृन तुच्छ बोले हमहूँ ते सुच्छ जाने कोऊ नाहिं तुम्हैं मेरी मति भीजिए।—नाभादास।

सुच्छत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतद्रु या सतलज नदी का एक नाम।

सुच्छम*-वि० दे० "सूक्ष्म"।

संज्ञा पुं० [?] घोड़ा। (डिं०)

सुजंगो†-संज्ञा पुं० [गढ़वाली] भाँग के वे पौधे जिनमें बीज होते हैं। गढ़वाल में इन्हें सुजंगो या कलंगो कहते हैं।

सुजड़-संज्ञा पुं० [डिं०] तलवार।

सुजड़ी-संज्ञा स्त्री० [डिं०] कटारी।

सुजन-संज्ञा पुं० [सं०] सज्जन। सत्पुरुष। भलामानस। भला आदमी। शरीफ।

संज्ञा पुं० [सं० स्वजन] परिवार के लोग। आत्मीय जन। उ०—(क) माँगत भीख फिरत घर घर ही सुजन कुटुंब वियोगी।—सूर। (ख) हरषित सुजन सखा प्रिय बालक कृष्ण मिलन जिय भाए।—सूर। (ग) रामराज नहिं कोऊ रोगी। नहिं दुरभिक्ष न सुजन वियोगी।—पद्माकर।

सुजनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुजन का भाव। सौजन्य। भद्रता। भलमनसत।

सुजनी-संज्ञा स्त्री० [फा० सोज़नी] एक प्रकार की बड़ी चादर जो कई परत की होती और बिछाने के काम आती है। यह बीच बीच में बहुत जगहों में सी हुई रहती है।

सुजन्मा-वि० [सं० सुजन्मन] (१) जिसका उत्तम रूप से जन्म हुआ हो। उत्तम रूप से जन्मा हुआ। सुजातक। (२) विवाहित स्त्री पुरुष का औरस पुत्र। (३) अच्छे कुल में उत्पन्न। उ०—सूतक घर के आस पास फैले हुए उस सुजन्मा के स्वाभाविक तेज से आधी रात के दीपक सहज ही मंद-ज्योति हो गये।—लक्ष्मणसिंह।

सुजल-संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पद्म।

सुजल्प-संज्ञा पुं० [सं०] वह भाषण जो सहृदयता, उत्साह, उत्कंठा तथा भावपूर्ण हो। उत्तम भाषण।

सुजस-संज्ञा पुं० दे० "सुयश"। उ०—सुजस बखानत बाट

चलहिं बहु भाट गुनी गन। अमर राट सम सुरथ राजभट राट प्रबल तन।—गिरधर।

सुजाक-संज्ञा पुं० दे० "सूजाक"।

सुजागर-वि० [सं० सु = अच्छी भाँति + आगर = प्रकाशित होना] जो देखने में बहुत सुंदर जान पड़े। प्रकाशमान। सुशोभित। उ०—मुरली मृदंगन अगाउनी भरत स्वर भाउती मुजागरे भरी है गुन आगरे। —देव।

सुजात-वि० [सं०] [स्त्री० सुजाता] (१) उत्तम रूप से जन्मा हुआ। जिसका जन्म उत्तम रूप से हुआ हो। (२) विवाहित स्त्री पुरुष से उत्पन्न। (३) अच्छे कुल में उत्पन्न। (४) सुंदर।

संज्ञा पुं० (१) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (२) भरत के एक पुत्र का नाम। (३) साँड़। (बौद्ध)

सुजातक-संज्ञा पुं० [सं०] सौंदर्य। सुंदरता।

सुजातका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शालिधान्य। कुंकुमशालि।

सुजातरिपु-संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर।

सुजाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोपीचंदन। सोरठ की मिट्टी। सौराष्ट्र मृत्तिका। (२) उद्दालक ऋषि की पुत्री का नाम। (३) बुद्ध भगवान् के समय की एक ब्राह्मण कन्या जिसने उन्हें बुद्धत्व प्राप्त करने के उपरांत भोजन कराया था।

सुजाति-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम जाति। उत्तम कुल।

संज्ञा पुं० वीतिहोत्र का एक पुत्र।

वि० उत्तम जाति का। अच्छे कुल का।

सुजातिया-वि० [सं० सु + जाति + इया (प्रत्य०)] उत्तम जाति का। अच्छे कुल का।

वि० [सं० स्व + जाति + इया (प्रत्य०)] अपनी जाति का। स्वजाति का। उ०—लखि बढ़वार सुजातिया अनख धरै मन नाहिं। बड़े नैन लखि अपुन पै नैना सही सिहाहिं। —रतनहजारा।

सुजान-वि० [सं० सज्ञान] (१) समझदार। चतुर। सयाना। उ०—(क) करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान। —रहीम। (ख) दोबल कहा देति मोहि सजनी तू तो बड़ी सुजान। अपनी सी मैं बहुतै कीन्हीं रहति न तेरी आन।—सूर। (ग) ब्याही सो मुजान सील रूप वसुदेव जू को, विदित जहान जाकी अतिहि बड़ाई है।—गिरधर। (२) निपुण। कुशल। प्रवीण। (३) विज्ञ। पंडित। (४) सज्जन।

संज्ञा पुं० (१) पति या प्रेमी। उ०—अरी नींद आवै चहै जिहि दृग बसत सुजान। देखी सुनी धरी कहूँ दो असि एक मयान।—रतनहजारा। (२) परमात्मा। ईश्वर। उ०—बार बार सेवक सराहना करत राम, तुलसी सराहैं रीति साहिब सुजान की।—तुलसी।

सुजानता-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुजान + ता (प्रत्य०)] सुजान होने का भाव या धर्म। सुजानपन। उ०—(क) केशोदास सकल सुवास की सी सेज किधौं सकल सुजानता की सखी सुख-दानी है। किधौं मुखपंकज में शक्ति को तो सेवैं द्विज सविता की छवि ताकी कविता निधानी है।—केशव। (ख) किधौं केशौदास कलगानता सुजानता निशंकता सों बचन विचित्रता किशोरी की।—केशव।

सुजानी-वि० [हिं० सुजान] विज्ञ। पंडित। ज्ञानी। उ०—(क) लखि विप्र सुजानी कहि मृदुबानी, अरे पुत्र! यह काह सिख्यो।—विश्राम। (ख) मैं ह्याँ ल्याई सुवन सुजानी। सुनि लखि हँसि भाखत नंदरानी।—गिरधर।

सुजाप-संज्ञा पुं० [सं० सुजात] पुत्र। (डिं०)

सुजावा-संज्ञा पुं० [देश०] बैलगाड़ी में की वह लकड़ी जो पेंजनी और फड़ में जड़ी रहती है। (गाड़ीवान)

सुजिह्व-वि० [सं०] (१) जिसकी जिह्वा या जीभ सुंदर हो। (२) मधुरभाषी। मीठा बोलनेवाला।

सुजीर्ण-वि० [सं०] अच्छी तरह पचा हुआ (अन्न)। (खाना) जो खूब पच गया हो।

सुजीवंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जीवंती। सुनहरी जीवंती। वैद्यक के अनुसार यह बल-वीर्यवर्द्धक, नेत्रों को हितकारी तथा वात, रक्त, पित्त और दाह को दूर करनेवाली है।

पर्या०—स्वर्णलता। स्वर्णजीवंती। हेमवल्ली। हेमपुष्पी। हेमा। सौम्या।

सुजोग‡-संज्ञा पुं० [सं० सु + योग] (१) अच्छा अवसर। उपयुक्त अवसर। सुयोग। (२) अच्छा संयोग। अच्छा मेल।

सुजोधन‡-संज्ञा पुं० दे० "सुयोधन"। उ०—चलत सुजोधन कटक हलत किलि विकल सकल महि। कच्छप भारन छपत नाग चिकरत फुकरत अहि।—गिरधर।

सुजोर-वि० [सं० सु या फा० शह + फा० जोर] दृढ़। मजबूत। उ०—सरल बिसाल बिराजहि बिद्रुम खंभ सुजोर। चारु पाटि पटि पुरट की झरकत मरकत भोर।—तुलसी।

सुज्ञ-वि० [सं०] (१) जो अच्छी तरह जानता हो। भली भाँति जाननेवाला। सुविज्ञ। (२) पंडित। विद्वान्।

सुज्ञान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम ज्ञान। अच्छी जानकारी। (२) एक प्रकार का साम।

सुज्येष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार शुंगवंशी राजा अग्निमित्र के पुत्र का नाम।

सुझाना-क्रि० स० [हिं० सूझना का प्रेर० रूप] ऐसा उपाय करना जिसमें दूसरे को सूझे। दूसरे के ध्यान या दृष्टि में लाना। दिखाना। बताना। जैसे,—आपको यह तरकीब उसी ने सुझाई है।

सुटुकना-क्रि० अ० (१) दे० "सुड़ुकना"। (२) दे० "सिकुड़ना"। क्रि० स० [अनु०] सटका मारना । चाबुक लगाना । उ०—नील महीधर सिखर-सम देखि बिसाल बराहु । चपरि चलेउ हय सटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु ।—तुलसी ।

सुठ-वि० दे० "सुठि"। उ०—राम घनश्याम अभिराम सुठ कामहूते ताते हौ परशुराम क्रोध मत जोरिये ।—हनुमन्नाटक ।

सुठहर†-संज्ञा पुं० [सं० सु + हिं० ठहर = जगह] अच्छा स्थान । बढ़िया जगह । उ०—बालि मुद्रिन कपि बालिधि मिस से देखि पूत को साज सुठहर बन लायो ।—देव स्वामी ।

सुठार*†-वि० [सं० सुष्ठु, प्रा० सुट्ठ] सुडौल । सुंदर । उ —(क) सुठि सुठान ठोढ़ी अति सुंदर सुंदर ताको सार । चितवत चुअत सुधारस मानो रहि गई बूँद मझार ।—सूर । (ख) चपल नैन नासा बिच सोभा अधर सुरंग सुठार । मनों मध्य खंजन शुक बैठ्यो लुब्ध्यो बिंब बिचार ।—सूर ।

सुठि*†-वि० [सं० सुष्ठु] (१) सुंदर । बढ़िया । अच्छा । उ०—(क) तून सरासन बान धरे तुलसी मन मारग में सुठि सोहैं ।—तुलसी । (ख) संग नारि सुकुमारि सुभग सुठि राजति बिन भूषनन बसति ।—तुलसी । (ग) बहुत प्रकार किये सब व्यंजन अनेक बरन मिष्टान । अति उज्वल कोमल सुठि सुंदर महरि देखि मन मान ।—सूर । (२) अतिशय । अत्यंत । बहुत ।

सुठोना*†-वि० दे० "सुठि"। उ०—रसखानि निहारि सकैं जु सम्हारि कै को तिय है वह रूप सुठोनो ।—रसखान ।

सुड़सुड़ाना-क्रि० स० [अनु०] सुड़सुड़ शब्द उत्पन्न करना । जैसे,—नाक सुड़सुड़ाना । हुक्का सुड़सुड़ाना ।

सुडीनक-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों के उड़ने का एक ढंग या प्रकार ।

सुडौल-वि० [सं० सु + हिं० डौल] सुंदर डौल या आकार का । जिसकी बनावट बहुत अच्छी हो । जिसके सब अंग ठीक और बराबर हों । सुंदर ।

सुड्डा†-संज्ञा पुं० [देश०] धोती की वह लपेट जिसमें रुपया पैसा रखते हैं । अंटी । आँट ।

सुड्डी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुड्डा"।

सुढंग-संज्ञा पुं० [सं० सु + हिं० ढंग] (१) अच्छा ढंग । अच्छी रीति । (२) अच्छे रंग का । अच्छी चाल का । सुंदर । सुघड़ । उ०—(क) मिरदंग औ मुहचंग चंग सुढंग संग बजावहीं ।—गिरधर । (ख) अंग उतंग सुढंग अति रंग देखिके दंग । सह उमंग अरि भंग कर जंग संग मातंग ।—गिरधर ।

सुढर-वि० [सं० सु + हिं० ढलना] प्रसन्न और दयालु । जिसकी अनुकंपा हो । उ०—(क) तुलसी सराहैं भाग कौसिक जनक जू के विधि के सुढर होत सुढर सुहाय के ।—तुलसी । (ख) तुलसी सबै सराहत भूपहि, भले पैंत पासे सुढर ढरे री ।—तुलसी ।
वि० [हिं० सुघड़] सुंदर । सुडौल । उ०—मोहन चढ़ाइ कोई कहूँ चित्त चल्यो चढ़ी सुढर सिढ़ीनि मृदु चढ़ी ये सुहाती जे ।—देव ।

सुढार*†-वि० [सं० सु + हिं० ढलना] [स्त्री० सुढारी] (१) सुंदर ढला या बना हुआ । उ०—गृह गृह रचेंहि ढोल नामहि गच काच सुढार । चित्र विचित्र चहूँ दिसि परदा फटिक पगार ।—तुलसी । (२) सुंदर । सुडौल । उ०—हिय मनिहार सुढार चार हय सहित सुरथ चढ़ि । निसित धार तरवार धारि जिय जय बिचार मढ़ि ।—गिरधर । (ख) दीरघ मोल कह्यो व्यापारी रहे ठगे से कौतुकहार । कर ऊपर लै राखि रहे हरि देत न मुक्ता परम सुढार ।—सूर । (ग) पदुमराग मनि मानहु कोमल गातहि हो । जावक रचित अँगुरिअन्ह मृदुल सुढारी हो ।—तुलसी । (घ) लखि बिंदुरी पिय भाल भाल तुअ खौरि निहारि । लखि तुअ जूरा उनकी बेनी गुही सुढारि ।—अंबिकादत्त ।

सुढारु*-वि० दे० "सुढार"। उ०—वर वारन असवार चारु बखतर सुढारु तन । संग लसत चतुरंग करन रनरंग समुद मन ।—गिरधर ।

सुणघड़िया-संज्ञा पुं० [हिं० सोना + गढ़ना = गढ़ना] सुनार । (डिं०)

सुणाना†-क्रि० स० दे० "सुनना"। उ०—महिमा नाँव प्रताप की सुणी सरवण चित लाइ । रामचरण रसना रटौ भ्रम सकल झड़ जाइ ।

सुतंत* वि० [सं० स्वतंत्र] स्वतंत्र । स्वाधीन । बंधनहीन । स्वच्छंद । उ०—बँधुआ कों जैसे लखत कोई मनुप सुतंत ।—लक्ष्मणसिंह ।

सुतंतर*†-वि० दे० "स्वतंत्र"।

सुतंतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) विष्णु । (३) एक दानव का नाम ।

सुतंत्र*-वि० दे० "स्वतंत्र"। उ०—(क) महावृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी ।—तुलसी । (ख) या ब्रज मैं हौं बसन ही हेली आइ सुतंत्र । हेरन मैं कछु पढ़ि दियौ मोहन मोहन मंत्र ।—रतनहजारा ।

सुतंत्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो तार के बाजे (वीणा आदि) बजाने में प्रवीण हो । वह जो तंत्र वाद्य अच्छी तरह बजाता हो । (२) वह जो कोई बाजा अच्छी तरह बजाता हो ।

सुतंभर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वैदिक ऋषि का नाम ।

सुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र । आत्मज । बेटा । लड़का । (२) दसवें मनु का पुत्र । (३) जन्मकुंडली में लग्न से पाँचवाँ घर ।

वि० (१) पार्थिव। (२) उत्पन्न। जात।

†संज्ञा पुं० [?] बीस की संख्या। कोड़ी।

सुतकरी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्रियों के पहनने की जूती।

सुतजीवक-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रजीव वृक्ष। पितवंजिया। वि० दे० "पुत्रजीव"।

सुतत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सुत का भाव या धर्म्म।

सुतदा-वि० स्त्री० [सं०] सुत या पुत्र देनेवाली।

संज्ञा स्त्री० दे० "पुत्रदा" (लता)।

सुतना-संज्ञा पुं० दे० "सूथन"।

क्रि० अ० दे० "सूतना"।

सुतनु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गंधर्व का नाम। (२) उग्रसेन के एक पुत्र का नाम। (३) एक बंदर का नाम।

वि० सुंदर शरीरवाला।

संज्ञा स्त्री० (१) सुंदर शरीरवाली स्त्री। कृशांगी। (२) आहुक की पुत्री और अक्रूर की पत्नी का नाम। (३) उग्रसेन की एक कन्या का नाम। (४) वसुदेव की एक उप-पत्नी का नाम।

सुतनुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुतनु होने का भाव। (२) शरीर की सुंदरता।

सुतप-वि० [सं०] सोम पान करनेवाला।

सुतपस्वी-वि० [सं० सुतपस्विन्] अत्यंत तपस्या करनेवाला। बहुत अच्छा और बड़ा तपस्वी।

सुतपा-संज्ञा पुं० [सं० सुतपस्] (१) सूर्य। (२) एक मुनि का नाम। (३) रौच्य मनु के एक पुत्र का नाम। (४) विष्णु।

सुतपादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी जाति की एक प्रकार की हंसपदी लता।

सुतपेय-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में सोम पीने की क्रिया। सोमपान।

सुतयाग-संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो पुत्र की इच्छा से किया जाता है। पुत्रेष्टि यज्ञ।

सुतर॥†-संज्ञा पुं० दे० "शुतुर"। उ०—(क) सब के आगे सुतर सवार अपार शृंगार बनाये। धरे जमूरक तिन पीठिन पर सहित निसान सुहाये।—रघुराज। (ख) सँग सवालाख सवार। गज त्योंहि अमित तयार। बहु सुतर प्यारे यूह। कवि को कहै करि ऊह।—कबीर।

वि० [सं०] सुख से तैरने या पार करने योग्य। जो सुख या आराम से पार किया जा सके। (नदी आदि)

सुतरनाल-संज्ञा स्त्री० दे० "शुतुरनाल"। उ०—तिमि घरनाल और करनालैं सुतरनाल जंजालैं। गुर गुराव रहँकले भले तहँ लागे विपुल बयालैं।—रघुराज।

सुतरां-अव्य० [सं० सुतराम्] (१) अतः। इसलिये। निदान। (२) अपितु। और भी। किं बहुना। (३) अगत्या। लाचार। (४) अत्यंत। (५) अवश्य।

सुतरी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरही] तुरही। तूर। उ०—नौबत झरत द्वार द्वारन में शंख सुतरि सहनाई। औरहु विविध मनोहर बाजे बजत मधुर सुर छाई।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [देश०] वह बैल जिसका ऊँट का सा रंग हो। यह मध्यम श्रेणी का, मजबूत और तेज माना जाता है।

संज्ञा स्त्री० वह लकड़ी जो पाई में साँथी अलग करने के लिये साँथी के दोनों तरफ लगी रहती है। इसे जुलाहों की परिभाषा में सुतरी कहते हैं।

संज्ञा स्त्री० दे० "सुतारी"।

संज्ञा स्त्री० दे० "सुतली"।

सुतरेशाही-संज्ञा पुं० दे० "सुथरेशाही"।

सुतर्कारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोनैया। घघरबेल। बंदाल। देवदाली। वि० दे० "देवदाली"।

सुतर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल पक्षी। कोयल।

सुतल-संज्ञा पुं० [सं०] सात पाताल लोकों में से एक (किसी पुराण के मत से दूसरा और किसी के मत से छठा) लोक।

विशेष—भागवत के अनुसार इस पाताल लोक के स्वामी विरोचन के पुत्र बलि हैं। देवी भागवत में लिखा है कि विष्णु भगवान् ने बलि को पाताल भेजकर संसार की सारी संपदा दी थी और स्वयं उसके द्वार पर पहरा देते थे। एक बार रावण ने इसमें प्रवेश करना चाहा था, पर विष्णु भगवान् ने उसे अपने पैर के अँगूठे से हजारों योजन दूर फेंक दिया। वि० दे० "लोक"।

सुतली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूत + ली (प्रत्य०)] रूई, सन या इसी प्रकार के और रेशों के सूतों या डोरों को एक में बटकर बनाया हुआ लंबा और कुछ मोटा खंड जिसका उपयोग चीजें बाँधने, कूँए से पानी खींचने, पलंग बुनने तथा इसी प्रकार के और कामों में होता है। रस्सी। डोरी। सुतरी।

सुतवत्-वि० [सं०] पुत्रवाला। जिसके पुत्र हो।

सुतवस्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सात पुत्र प्रसव करनेवाली स्त्री। वह स्त्री जिसके सात पुत्र हों।

सुतवाना†-क्रि० स० दे० "सुलवाना"। उ०—फिर सेज-चतुर को अच्छा बिछौना करवा पलंग पर सुतवाया।—लल्लू।

सुतश्रेणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी। मूषिकपर्णी। वि० दे० "मूसाकानी"।

सुतस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] जन्म-कुंडली में लग्न से पंचम स्थान।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार सुतस्थान पर जितने ग्रहों की दृष्टि रहती है, उतनी ही सन्तानें होती हैं। पुंलिंग ग्रहों की दृष्टि से पुत्र और स्त्री ग्रहों की दृष्टि से कन्याएँ होती हैं।

सुतहर†-संज्ञा पुं० दे० "सुतार"। उ०—सुघरि मुबारक तिय बदन परी अलक अभिराम। मनो सौम पर सूत है राखी सुतहर काम।—मुबारक।

सुतहा-संज्ञा पुं० [हिं० सूत+हा (प्रत्य०)] सूत का व्यापारी। सूत बेचनेवाला।
वि० सूत का। सूत संबंधी।
संज्ञा पुं० दे० "सुतुही"।

सुतहार-संज्ञा पुं० दे० "सुतार"। उ०—कनक रतनमय पालनो रच्यो मनहुँ मार सुतहार। विविध खिलौना किंकिनी लागे मंजुल मुकुताहार।—तुलसी।

सुतहिबुक योग-संज्ञा पुं० [सं०] विवाह का एक योग।
विशेष—विवाह के समय लग्न में यदि कोई दोष हो और सुतहिबुक योग हो, तो सारे दोष दूर हो जाते हैं।

सुतही-संज्ञा स्त्री० दे० "सुतुही"।

सुतहौनिया-संज्ञा पुं० दे० "सुथौनिया"।

सुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लड़की। कन्या। पुत्री। बेटी। (२) सखी। सहेली। (डिं०)

सुतात्मज-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सुतात्मजा] (१) लड़के का लड़का। पोता। (२) लड़की का लड़का। नाती।

सुताना†-क्रि० स० दे० "सुलाना"।

सुतापति-संज्ञा पुं० [सं०] कन्या का पति। दामाद। जामाता।

सुतार-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रकार] (१) बढ़ई। (२) शिल्पकार। कारीगर।
वि० [सं० सु+तार] अच्छा। उत्तम। उ०—कनक रतन मणि पालनो अति गढ़नो काम सुतार। विविध खिलौना भाँति भाँति के गजमुक्ता बहुधार।—सूर।
†संज्ञा पुं० सुभीता।
क्रि० प्र०—बैठना।
वि० [सं०] (१) अत्यंत उज्ज्वल। (२) जिसकी आँख की पुतलियाँ सुंदर हों। (३) अत्यंत उच्च।
संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का सुगंधि द्रव्य। (२) एक आचार्य का नाम। (३) सांख्यदर्शन के अनुसार एक प्रकार की सिद्धि। गुरु से पढ़े हुए अध्यात्मशास्त्र का ठीक ठीक अर्थ समझना।
संज्ञा पुं० [देश०] हुदहुद नामक पक्षी।

सुतारका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की चौबीस शासन देवियों में से एक देवी का नाम।

सुतारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सांख्य के अनुसार नौ प्रकार की तुष्टियों में से एक। (२) सांख्य के अनुसार आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक। वि० दे० "सुतार"।

सुतारी-संज्ञा स्त्री० [सं० सूत्रकार] (१) मोचियों का सूआ जिससे वे जूता सीते हैं। (२) सुतार या बढ़ई का काम।
संज्ञा पुं० [हिं० सुतार] शिल्पकार। कारीगर। उ०—हरिजन मणि की कोठरी आप सुतारी आहि। मुण्हु न त्यागत टेक निज तेहि ते छाँड्यो नाहिं।—विश्राम।

सुतार्थी-वि० [सं० सुतार्थिन्] पुत्र की कामना करनेवाला। जिसे पुत्र की अभिलाषा हो। पुत्रार्थी।

सुताली-संज्ञा स्त्री० दे० "सुतारी"।

सुतासुत-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्री का पुत्र। दौहित्र। नाती।

सुतिक्त-संज्ञा पुं० [सं०] पित्तपापड़ा। पर्पटक।
वि० जो बहुत तिक्त हो। अधिक तीता।

सुतिक्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिरायता। (२) परहद। पारिभद्र। (३) पित्तपापड़ा।

सुतिक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तोरई। कोशातकी। (२) सलई। शल्लकी।

सुतिन*-संज्ञा स्त्री० [सं० सतन] सुंदर बाला। रूपवती स्त्री। (क०) उ०—जो नहिं देतो अतन कहुँ रतन हरवली आय। मन मानस ते सुतिन के को सर करतो जाय।—रतनहजारा।

सुतिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके पुत्र हो। पुत्रवती।

सुतिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने या चाँदी का एक गहना जो स्त्रियाँ गले में पहनती हैं। हँसली।

सुतिहार†-संज्ञा पुं० दे० "सुतार"। उ०—(क) मोतिन झालरि नाना भाँति खिलौना रचे विश्वकर्मा सुतिहार। देखि देखि किलकत दँतिया दो राजत क्रीड़त विविध विहार।—सूर। (ख) विश्वकर्मा सुतिहार श्रुतिधरि सुलभ सिलप दिखावनो। तेहि देखे त्रय ताप नाशै व्रजवधू मनभावनो।—सूर।

सुती-संज्ञा पुं० [सं० सुतिन्] (१) वह जो पुत्र की इच्छा करता हो। (२) वह जिसे पुत्र हो। पुत्रवाला।

सुतीक्षण-संज्ञा पुं० दे० "सुतीक्ष्ण"। उ०—दरशन दियो सुतीक्षण गौतम पंचवटी पगधारे। तहाँ दुष्ट सूर्पनखा नारी करि बिन नाक उधारे।—सूर।

सुतीक्ष्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त्य मुनि के भाई जो वनवास के समय श्रीरामचंद्र से मिले थे। (२) सहिंजन। शोभांजन।
वि० अत्यंत तीक्ष्ण। बहुत तेज।

सुतीक्ष्णक-संज्ञा पुं० [सं०] मुष्कक या मोखा नामक वृक्ष। वि० दे० "मोखा"।

सुतीक्ष्णका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरसों। सर्षप।

सुतीखन*-संज्ञा पुं० दे० "सुतीक्ष्ण"। उ०—तीखन तन को कियो सुतीखन को द्विज तुलसी।—सुधाकर।

सुतीच्छन*-संज्ञा पुं० दे० "सुतीक्ष्ण"।

सुतीर्थराज-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

सुतुंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल का पेड़। (२) ग्रहों का उच्चांश।
विशेष—ज्योतिष के अनुसार ग्रहों के सुतुंग स्थान पर रहने से शुभ फल होता है।

वि० अत्यंत उच्च। बहुत ऊँचा।

सुतुआ†-संज्ञा पुं० दे० "सुतुही"।

सुतुही†-संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्ति] (१) सीपी, जिससे प्रायः छोटे बच्चों को दूध पिलाते हैं। (२) वह सीप जिसके द्वारा पोस्त से अफीम खुरची जाती है। सुतुआ। सुतहा। सूती। (३) वह सीप जिससे अचार के लिये कच्चा आम छीला जाता है। इसे बीच में घिसकर इसके तल में छेद कर लेते हैं; और उसी छेद के चारों ओर के तेज किनारों से आम छीलते हैं। सीपी।

सुतून-संज्ञा पुं० [फा०] खंभा। स्तंभ।

सुतेकर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो यज्ञ करता हो। यज्ञकारी। ऋत्विक्।

सुतेजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धामिन। धन्वन वृक्ष। (२) बहुत नुकीला तीर।

वि० (१) नुकीला। (२) तेज। धारदार।

सुतेजा-संज्ञा पुं० [सं० सुतेजस्] (१) जैनों के अनुसार गत उत्सर्पिणी के दसवें अर्हत का नाम। (२) गृत्समद का का पुत्र। (३) हुरहुर। आदित्यभक्ता।

वि० बहुत तेज या धारदार।

सुतेमन-संज्ञा पुं० [सं० सुतेमनस्] एक वैदिक आचार्य का नाम।

सुतैला-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकंगनी। महाज्योतिष्मती लता।

सुतोष-संज्ञा पुं० [सं०] संतोष। सब्र।

वि० जिसका संतोष हो गया हो। संतुष्ट। प्रसन्न।

सुत्ता†-वि० [हिं० सोना] सोया हुआ। सुप्त। (पश्चिम)

सुत्तर†-संज्ञा पुं० [हिं० सूत या फा० शुतुर ?] जुलाहों के करघे का एक बाँस जिसमें कंघी बँधी रहती है। कलबाँसा।

सुत्थना-संज्ञा पुं० दे० "सूथन"।

सुत्य-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के लिये सोमरस निकालने का दिन।

सुत्रामा-संज्ञा पुं० [सं० सुत्रामन्] (१) इंद्र। (२) पुराणानुसार एक मनु का नाम। (३) वह जो उत्तम रूप से रक्षा करता हो।

सुथना-संज्ञा पुं० दे० "सूथन"।

सुथनिया†-संज्ञा स्त्री० दे० "सुथनी"।

सुथनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का ढीला पायजामा। सूथन। (२) पिंडालु। रतालू।

सुथरा-वि० [सं० स्वच्छ या स्वस्थ] [स्त्री० सुथरी] स्वच्छ। निर्मल। साफ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः "साफ" शब्द के साथ होता है। जैसे,—साफ सुथरा मकान। उ०—(क) लरिकाईं कहुँ नेक न छाँड़त सोई रहो सुथरी सेजरियाँ। आए हरि यह बात सुनत ही धाइ लिये यशुमति महतरियाँ।—सूर। (ख) मोतिन माँग भरी सुथरी लसै कंठ सिरीगर सी अवगाही।—सुंदरीसर्वस्व।

सुथराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुथरा + ई (प्रत्य०)] सुथरापन। स्वच्छता। निर्मलता। सफाई।

सुथरापन-संज्ञा पुं० [हिं० सुथरा + पन (प्रत्य०)] सुथराई। स्वच्छता। निर्मलता। सफाई।

सुथरेशाही-संज्ञा पुं० [सुथराशाह (महात्मा)] (१) गुरु नानक के शिष्य सुथराशाह का चलाया संप्रदाय। (२) इस संप्रदाय के अनुयायी या माननेवाले जो प्रायः सुथराशाह और गुरु नानक आदि के बनाए हुए भजन गाकर भिक्षा माँगते हैं।

सुथौनिया†-संज्ञा पुं० [देश०] मस्तूल के ऊपरी भाग में वह छेद या घर जिसमें पाल लगाने के समय उसकी रस्सी पहनाई जाती है। (लश०)

सुदंड-संज्ञा पुं० [सं०] बेंत। बेत्र।

सुदंडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोरख इमली। गोरक्षी। ब्रह्मदंडी। अजदंडी।

सुदंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो अभिनय करता हो। नट। (२) नर्तक। नाचनेवाला।

वि० सुंदर दाँतोंवाला।

सुदंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक अप्सरा का नाम।

सुदंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हथनी। हस्तिनी। (२) एक दिग्गज की हथनी का नाम।

सुदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृष्ण का पुत्र। (२) सँबर का एक पुत्र। (३) एक राक्षस का नाम।

वि० सुंदर दाँतोंवाला।

सुदंष्ट्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी का नाम।

सुदक्षिण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पौंड्रक राजा का पुत्र। (२) विदर्भ का एक राजा।

सुदक्षिणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा दिलीप की पत्नी का नाम। (२) पुराणानुसार श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम।

सुदग्धिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरुह नामक वृक्ष। दग्धा।

सुदच्छिन-संज्ञा पुं० दे० "सुदक्षिण"। उ०—चलेउ सुदच्छिन दच्छ समर जुध दच्छिन दच्छिन।—गिरधर।

सुदत्-वि० [सं०] [स्त्री० सुदती] सुंदर दाँतोंवाला।

सुदती-वि० [सं०] सुंदर दाँतोंवाली स्त्री। सुदंता। सुंदरी। उ०—(क) धीर धरो सोच न करो मोद भरो यदुराय। सुदति सँदेसे सुनि रही अधरनि में मुसुकाय।—शृं० सत०। (ख) भौन भरी सब संपति दंपति श्रीपति ज्यों सुख सिंधु में सोवै। देव सो देवर प्राण सो पूत सुकौन दशा सुदती जिहि रोवै।—केशव।

सुदमन-संज्ञा पुं० [सं०] आम। आम्रवृक्ष।

सुदरसन-संज्ञा पुं० दे० "सुदर्शन"। उ०—नकुल सुदरसनु दर-

सनु दरसनी क्षेम करी चुपचाप। दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहि मन अभिलाष।—तुलसी।

&संज्ञा पुं० दे० "सुदर्शन"।

सुदरसनपानि-संज्ञा पुं० दे० "सुदर्शनपाणि"। उ०—ज्यों धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि।—तुलसी।

सुदर्भा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तृण जिसे इक्षुदर्भा भी कहते हैं।

सुदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णुभगवान् के चक्र का नाम। (२) शिव। (३) अग्नि का एक पुत्र। (४) एक विद्याधर। (५) मत्स्य। मछली। (६) जंबू वृक्ष। जामुन। (७) नौ बलदेवोंमें से एक। (जैन) (८) वर्त्तमान अवसर्पिणी के अट्ठारहवें अर्हत के पिता का नाम। (जैन) (९) शंखन का पुत्र। (१०) ध्रुवसंधि का एक पुत्र। (११) अर्थसिद्धि का पुत्र। (१२) दधीचि का एक पुत्र। (१३) अजमीढ़ का एक पुत्र। (१४) भरत का एक पुत्र। (१५) एक नाग असुर। (१६) प्रतीक का जामाता। (१७) सुमेरु। (१८) एक द्वीप का नाम। (१९) गिद्ध। (२०) एक प्रकार की संगीत रचना। (२१) संन्यासियों का एक दंड जिसमें छः गाँठें होती हैं। इसे वे भूत प्रेतों से अपना बचाव करने के लिये अपने पास रखते हैं। (२२) मदनमस्त। (२३) सोमवल्ली। वि० दे० "सुदर्शना"।

वि० जो देखने में सुंदर हो। प्रियदर्शन। सुखदर्शन। सुंदर। मनोरम।

सुदर्शन चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार ज्वर का एक प्रसिद्ध औषध।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है—त्रिफला, दारुहल्दी, दोनों कटियाली, कनेर, काली मिर्च, पीपल, पीपलामूल, मूर्वा, गुडुच, धनियाँ, अडूसा, कुटकी, त्रायमान, पित्त पापड़ा, नागरमोथा, कमलतंतु, नीम की छाल, पोहकरमूल, मुँगने के बीज, मुलहठी, अजवायन, इंद्रजव, भारंगी, फिटकरी, बच, तज, कमलगट्टा, पद्माकाठ, चंदन, अतीस, खरेंटी, बायविडंग, चित्रक, देवदारु, चव्य, लवंग, वंशलोचन, पत्रज, सब चीजें बराबर बराबर और इन सब की तौल से आधा चिरायता लेकर सब को कूट पीसकर चूर्ण बनाते हैं। मात्रा एक टंक प्रति दिन सबेरे ठंढे जल के साथ है। कहते हैं कि इसके सेवन से सब प्रकार के ज्वर यहाँ तक कि विषम ज्वर भी दूर हो जाता है। इसके सिवा खाँसी, साँस, पांडु, हृद्रोग, बवासीर, गुल्म आदि रोग भी नष्ट होते हैं।

सुदर्शनदंड-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार ज्वर की एक औषध।

सुदर्शन द्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] जंबू द्वीप का एक नाम।

सुदर्शनपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (हाथ में सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले) श्रीविष्णु।

सुदर्शना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोमवल्ली। चक्रांगी। मधुपर्णिका।

विशेष—यह क्षुप जाति की वनस्पति है। यह रोएँदार होती होती है। पत्ते तीन से छः इंच के घेरे में गोलाकार तथा त्रिकोणकार से होते हैं। इसमें गोल फूलों के गुच्छे लगते हैं जिनका रंग नारंगी का सा होता है। वैद्यक के अनुसार इसका गुण मधुर, गरम और कफ, सूजन, तथा वातरक्त को दूर करनेवाला है।

(२) एक प्रकार की मदिरा। (३) एक गंधर्वी का नाम। (४) पद्म सरोवर। (५) जंबू वृक्ष। (६) इंद्रपुरी। अमरावती। (७) शुक्ल पक्ष की एक रात्रि। (८) आज्ञा। आदेश। हुक्म। (९) एक प्रकार की औषध।

वि० स्त्री० जो देखने में सुंदर हो। सुंदरी।

सुदर्शनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रपुरी। अमरावती।

सुदल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोरट या क्षीर मोरट नाम की लता। (२) मुचकुंद। (३) सेना। दल।

वि० अच्छे दलों या पत्तोंवाला।

सुदला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरिवन। शालपर्णी। (२) सेवती।

सुदशन-वि० [सं०] [स्त्री० सुदशना] सुंदर दाँतोंवाला। जिसके सुंदर दाँत हों। सुदंत।

सुदांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाक्यमुनि के एक शिष्य का नाम। (२) एक प्रकार की समाधि। (३) शतधन्वा का पुत्र।

वि० अति शांत। बहुत सीधा। (घोड़ा)

सुदाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण के सखा एक गोप का नाम। (२) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद। (३) दे० "सुदामा"।

सुदामन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा जनक के एक मंत्री का नाम। (२) एक प्रकार का दैवास्त्र।

सुदामा-संज्ञा पुं० [सं० सुदामन्] (१) एक दरिद्र ब्राह्मण जो श्रीकृष्ण का सहपाठी और परम सखा था और जिसे पीछे श्रीकृष्ण ने ऐश्वर्यवान् बना दिया था। (२) श्रीकृष्ण का एक गोप सखा। (३) कंस का एक माली जो श्रीकृष्ण से उस समय मथुरा में मिला था, जब वे कंस के बुलाने से वहाँ गए थे। (४) एक पर्वत। (५) इंद्र का हाथी। ऐरावत। (६) समुद्र। सागर। (७) मेघ। बादल। (८) एक गंधर्व का नाम।

संज्ञा स्त्री० (१) स्कंध की एक मातृका। (२) रामायण के अनुसार उत्तर भारत की एक नदी का नाम।

वि० उत्तम रूप से दान करनेवाला। खूब देनेवाला।

सुदामिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार शमीक की पत्नी का नाम।

सुदाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम दान। (२) यज्ञोपवीत-संस्कार के समय ब्रह्मचारी को दी जानेवाली भिक्षा। (३) विवाह के अवसर पर कन्या या जामाता को दिया जानेवाला दान। दहेज। (४) वह जो उक्त प्रकार के दान करे। (अर्थात् पिता माता आदि)

सुदारु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु। देवदार। (२) धूप सरल। सरल वृक्ष। (३) विंध्य पर्वत का एक अंश। पारियात्र पर्वत।

सुदारुण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का देवास्त्र।

वि० अत्यंत क्रूर या भयानक।

सुदावन-संज्ञा पुं० दे० "सुदामन"। उ०—जाग सुदावन कह्यो जनक सों आयत रघुकुल नाहा। देवन की भाए पुरवासी भरि उमाह मन मोहा।—रघुराज।

सुदास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिवोदास का पुत्र तथा त्रित्सु का राजा। (२) ऋतुपर्ण का पुत्र। (३) सर्वकाम का पुत्र। (४) च्यवन का पुत्र। (५) बृहद्रथ का एक पुत्र। (६) एक प्राचीन जनपद।

वि० ईश्वर की सम्यक् रूप से पूजा या आराधना करनेवाला।

सुदि-संज्ञा स्त्री० दे० "सुदी"।

सुदिन-संज्ञा पुं० [सं० सु + दिन] शुभ दिन। अच्छा दिन। मुबारक दिन। उ०—(क) मुनि तथास्तु कहि सुदिन विचारी। कारवाई सब साब तयारी।—रघुराज। (ख) तहाँ तुरंत सुमंत गणक गण ल्यायो ललकि लिवाई। गुरु वशिष्ट आज्ञानुसार ते दीन्ह्यो सुदिन बनाई।—रघुराज। (ग) अस कहि कौशिक सुदिन बनायो। तहँ तुरंत प्रस्थान पठायो।—रघुराज।

सुदिनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुदिन का भाव।

सुदिनाह-संज्ञा पुं० [सं०] पुण्य दिन। पुण्याह। शुभ दिन। प्रशस्त दिन।

सुदिव-वि० [सं०] बहुत दीप्तिमान्। उज्वल। चमकीला।

सुदिवातंत-संज्ञा पुं० [सं० सुदिवातन्ति] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सुदिह-वि० [सं०] (१) सुतीक्ष्ण (जैसे दाँत)। (२) बहुत चिकना या उज्वल।

सुदी-संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्ल या शुद्ध] किसी मास का उजाला पक्ष। शुक्ल पक्ष। जैसे,—सावन सुदी ६।

सुदीति-संज्ञा पुं० [सं०] आंगिरस गोत्र के एक ऋषि का नाम।

संज्ञा स्त्री० सुदीप्ति। उज्वल दीप्ति।

वि० बहुत दीप्तिमान्। चमकीला।

सुदीपति-संज्ञा स्त्री० दे० "सुदीप्ति"। उ०—बाजत हैं मृदु हास मृदंग सुदीपति दीपनि को उजियारो।—केशव।

सुदीप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत अधिक प्रकाश। खूब उजाला।

सुदीर्घ-संज्ञा पुं० [सं०] चिचड़ा। चिचिंडक।

वि० बहुत लंबा। अति विस्तृत।

सुदीर्घघर्मा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता। कोयल लता। असनपर्णी।

सुदीर्घफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी। कर्कटी।

सुदीर्घफलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बैंगन।

सुदीर्घराजीवफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

सुदीर्घा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चीना ककड़ी।

वि० स्त्री० अति दीर्घ। बहुत लंबी।

सुदुघ-वि० [सं०] अच्छा दूध देनेवाली। खूब दूध देनेवाली। (गौ)

सुदुघा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छा और बहुत दूध देनेवाली गाय।

सुदूर-वि० [सं०] बहुत दूर। अति दूर। जैसे,—सुदूर पूर्व में।

सुदूरमूल-संज्ञा पुं० [सं०] धमासा। हिंगुआ।

सुदृढ़-वि० [सं०] बहुत दृढ़। खूब मजबूत। जैसे,—सुदृढ़ बंधन।

सुदृढ़त्वचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गम्हार। गंभारी।

सुदृष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] गिद्ध।

संज्ञा स्त्री० उत्तम दृष्टि।

वि० (१) दूरदर्शी। (२) दूरदृष्टि।

सुदेक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सुदेष्ण पर्वत का एक नाम। (महाभारत)

सुदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम देवता। (२) उत्तम क्रीड़ा करनेवाला। (३) एक काश्यप। (४) अक्रूर का एक पुत्र। (५) पौंड्र वासुदेव का एक पुत्र। (६) देवक का एक पुत्र। (७) विष्णु का एक पुत्र। (८) अंबरीष का एक सेनापति। (९) एक ब्राह्मण जिसने दमयंती के कहने से राजा नल का पता लगाया था। (१०) परावसु गंधर्व के नौ पुत्रों में से एक जो ब्रह्मा के शाप से हिरण्याक्ष दैत्य के घर उत्पन्न हुआ था। (११) हर्यश्व का पुत्र और काशी का राजा।

सुदेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अरिह की पत्नी। (२) विकुंठन की पत्नी।

सुदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार नाभि की पत्नी और ऋषभ की माता।

सुदेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुंदर देश। उत्तम देश। अच्छा मुल्क। (२) उपयुक्त स्थान। उचित स्थान। उ०—छूटि जात लाज तहाँ भूषण सुदेश केश टूट जाम हार सब मिटत शृंगार है।—भूषण।

वि० सुंदर। उ०—(क) अति सुदेश मृदु हरत चिकुर मन मोहन मुख बगराइ। मानों प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आइ।—सूर। (ख) श्याम सुंदर सुदेश पीत

पट शीश मुकुट उर माला। जनु घन दामिनि रवि तारागण उदित एक ही काला।—सूर। (ग) लटकन चारु भृकुटिया टेढ़ी मेढ़ी सुभग सुदेश सुभाए।—तुलसी। (घ) सीय स्वयंवरु जनकपुर मुनि सुनि सकल नरेस। आए साज समाज सजि भूषन बसन सुदेस।—तुलसी।

सुदेष्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण का एक पुत्र। (२) एक प्राचीन जनपद का नाम। (३) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

सुदेष्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बलि की पत्नी। (२) विराट की पत्नी और कीचक की बहन।

सुदेष्णु–संज्ञा स्त्री० दे० "सुदेष्णा"।

सुदेस–संज्ञा पुं० दे० "सुदेश"।

सुदेह–संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर देह। सुंदर शरीर।
वि० सुंदर। कमनीय। उ०—चले विदेह सुदेह हृदय हरि नेह बसाए। जरासंध बल अंध सैन सन बंध मिलाए।—गिरधर।

सुदैव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौभाग्य। अच्छा भाग्य। अच्छी किसमत। (२) अच्छा संयोग।

सुदोग्ध्री–वि० [सं०] अधिक दूध देनेवाली। (गौ आदि)

सुदोघ–वि० स्त्री० [सं०] बहुत दूध देनेवाली (गौ)।
वि० पुं० दानशील। उदार।

सुदोह–वि० [सं०] सुख या आराम से दूहने योग्य। जिसे दूहने में कोई कष्ट न हो।

सुद्दी–संज्ञा स्त्री० [अ० सुद्दः] वह पेट का जमा हुआ सूखा मल जो फुलाकर निकाला जाय।

सुद्ध*–वि० दे० "शुद्ध"।

सुद्धाँ†–अव्य० [सं० सह] सहित। समेत। मिलाकर। जैसे,—उसके सुद्धाँ सात आदमी थे।

सुद्धांत–संज्ञा स्त्री० [हिं०] जनाना।

सुद्धा–अव्य० दे० "सुद्धाँ"।

सुद्धि–संज्ञा स्त्री० दे० "सुध"। उ०—(क) हिम्मति गई वजीर की ऐसी कीनी बुद्धि। होनहार जैसी कछू तैसी थै मन सुद्धि।—सूदन। (ख) जैसी हो भवितव्यता तैसी उपजै बुद्धि। होनहार हिरदे बसै बिसर जाय सब सुद्धि।—लल्लू।
संज्ञा स्त्री० दे० "शुद्धि"।

सुद्यु–संज्ञा पुं० [सं०] पुरुवंशी राजा चारुपद के पुत्र का नाम।

सुद्युत–वि० [सं०] खूब प्रकाशमान्। सुदीप्त।

सुद्युम्न–संज्ञा पुं० [सं०] वैवस्वत मनु का पुत्र जो इड़ नाम से प्रसिद्ध है।
विशेष—अग्निपुराण में इसकी कथा इस प्रकार दी है—एक बार हिमालय में महादेवजी पार्वतीजी के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उस समय वैवस्वत मनु का पुत्र इड़ शिकार के लिये वहाँ जा पहुँचा। महादेवजी ने उसे शाप दिया, जिससे वह स्त्री हो गया। एक बार सोम का पुत्र बुध उसे देख कामासक्त हो गया और उसके सहवास से उसके गर्भ से पुरुरवा का जन्म हुआ। अंत को बुध की आराधना करने पर महादेवजी ने उसे शापमुक्त कर दिया और वह फिर पुरुष हो गया।

सुद्रष्ट–वि० [सं० सदृष्ट] दयावान्। कृपालु। (डिं०)

सुधंग–संज्ञा पुं० [हिं० सीधा + अंग या सु + ढंग ?] अच्छा ढंग। उ०—(क) नृत्य करहिं नट नटी नारि नर अपने अपने रंग। मनहुँ मदनरति विविध वेष धरि नटत सुदेह सुधंग।—तुलसी। (ख) कबहुँ चलत सुधंग गति सों कबहुँ उघटत बैन। लोल कुंडल गंडमंडल चपल नैननि सैन।—सूर।

सुध–संज्ञा स्त्री० [सं० शुद्ध (बुद्धि)] (१) स्मृति। स्मरण। याद। चेत।
क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।
मुहा०—सुध दिलाना = याद दिलाना। स्मरण कराना। सुध न रहना = विस्मृत हो जाना। भूल जाना। याद न रहना। जैसे,—तुम्हारी तो किसी को सुध ही नहीं रह गई थी। सुध बिसरना = विस्मृत होना। भूल जाना। सुध बिसराना या बिसारना = किसी को भूल जाना। किसी को स्मरण न रखना। उ०—तुम्हें कौन अनरीत सिखाई, सजन सुध बिसराई।—गीत। सुध भूलना = दे० "सुध बिसरना"। सुध भुलाना = दे० "सुध बिसराना।"
(२) चेतना। होश।
यौ०—सुध बुध = होश हवास।
मुहा०—सुध बिसरना = अचेत होना। होश में न रहना। सुध बिसराना = अचेत करना। होश में न रहने देना। उ०—कान्हा ने कैसी बाँसुरी बजाई, मोरी सुध बुध बिसराई।—गीत। सुध न रहना = होश न रहना। अचेत हो जाना। उ०—सुध न रही देखतु रहै कल न लखै बिनु तोहिं। देखे अनदेखे तुहे कठिन दुहूँ विधि मोहिं।—रतनहजारा। सुध सँभालना = होश सँभालना। होश में आना।
(३) खबर। पता।
मुहा०—सुध लेना = पता लेना। हाल चाल जानना। सुध रखना = चौकसी रखना। उ०—(क) प्रसमन को बिलंब भयो तब सत्राजित सुध लीन्हीं।—सूर। (ख) दरदहि दै जानत लला सुध लै जानत नाहिं। कहौ बिचारे नेहिया तुव घाले कित जाहिं।—रतनहजारा।
वि० दे० "शुद्ध"। उ०—सुकृत नीर में नहाय ले भ्रम भार टरे सुध होय देह।—कबीर।
संज्ञा स्त्री० दे० "सुधा"। उ०—जाके रस को इंद्रहु तरसत सुधहु न पावत दौंज।—देव स्वामी।

सुधन–संज्ञा पुं० [सं०] परावसु गंधर्व के नौ पुत्रों में से एक जो

ब्रह्मा के शाप से (कोलकल्प में) हिरण्याक्ष दैत्य के नौ पुत्रों में से एक हुआ था।

वि० बहुत धनी। बड़ा अमीर।

सुधनु-संज्ञा पुं० [सं० सुधनुस] (१) राजा कुरु का एक पुत्र जो सूर्य की पुत्री तपती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (२) गौतम बुद्ध के एक पूर्वज।

सुधन्वा-वि० [सं० सुधन्वन्] (१) उत्तम धनुष धारण करनेवाला। (२) अच्छा धनुर्धर।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) विश्वकर्मा। (३) आंगिरस। (४) वैराज का एक पुत्र। (५) संभूत का एक पुत्र। (६) कुरु का एक पुत्र। (७) शाश्वत का एक पुत्र। (८) विदुर। (९) एक राजा जिसे मान्धाता ने परास्त किया था। (१०) व्रात्य वैश्य और सवर्णा स्त्री से उत्पन्न एक जाति।

सुधन्वाचार्य-संज्ञा पुं० [सं०] व्रात्य वैश्य और सवर्णा स्त्री से उत्पन्न एक संकर जाति।

सुध बुध-संज्ञा स्त्री० [सं० शुद्ध + बुद्धि] होश हवास। चेत। ज्ञान। वि० दे० "सुध"।

मुहा०—सुध बुध जाती रहना = होश हवास जाता रहना। **सुध बुध ठिकाने न होना** = बुद्धि ठिकाने न होना। होश हवास दुरुस्त न होना। **सुध बुध मारी जाना** = बुद्धि का लोप हो जाना। होश हवास न रहना।

सुधमना‡-वि० [हिं० सुध = होश + मन] [स्त्री० सुधमनी] जिसे होश हो। सचेत। उ०—जब कबहूँ कै सुधमनी होति तब सुनौ एहो रघुनाथ गात तकि पाए परिकै। भावते की मूरति को ध्यान आए ल्यावति है आँखें मूँदि गावति है आँसुन सौं भरिकै—रघुनाथ।

सुधर-संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्हत् का नाम। (जैन)

संज्ञा पुं० [हिं०] बया नामक पक्षी।

सुधरना-क्रि० अ० [सं० शोधन, हिं० सुधना] बिगड़े हुए का बनना। दोष या त्रुटियों का दूर होना। संशोधन होना। संस्कार होना। जैसे,—काम सुधरना, भाषा सुधरना, चाल सुधरना, घर सुधरना।

संयो० क्रि०—जाना।

सुधराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुधरना + आई (प्रत्य०)] (१) सुधरने की क्रिया। सुधारने का काम। सुधार। (२) सुधारने की मजदूरी।

सुधराव-संज्ञा पुं० [हिं० सुधरना + आव (प्रत्य०)] सुधराई। बनाव। संशोधन।

सुधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम धर्म। पुण्य कर्त्तव्य। (२) जैन तीर्थंकर महावीर के एक शिष्यों में से एक। (३) किन्नरों के एक राजा का नाम।

वि० धर्मपरायण। धर्म्मनिष्ठ।

सुधर्मनिष्ठ-वि० [सं०] अपने धर्म पर दृढ़ रहनेवाला। सुधर्मी।

सुधर्मा-वि० [सं० सुधर्म्मन्] अपने धर्म्म पर दृढ़ रहनेवाला। धर्मपरायण।

संज्ञा पुं० (१) गृहस्थ। कुटुंब पालक। कुटुंबी। (२) क्षत्रिय। (३) दशार्णों का एक राजा। (४) दृढ़नेमि का पुत्र। (५) जैनों के एक गणाधिप।

संज्ञा स्त्री० देवसभा।

सुधर्मी-वि० [सं० सुधर्मिन्] धर्मपरायण। धर्मनिष्ठ।

संज्ञा स्त्री० देवसभा।

सुधवाना-क्रि० स० [हिं० सुधरना का प्रेर० रूप] दोष या त्रुटि दूर कराना। शोधन कराना। ठीक कराना। दुरुस्त कराना।

सुधा‡-अव्य० दे० "सुद्धां"। उ०—हाथी सुधौं सब्ब हाथी परगो खेत। संग्राम में स्वामि के काम के हेत।—सूदन।

सुधांग-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

सुधांशु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

सुधांशु तैल संज्ञा पुं० [सं०] कपूर का तेल।

सुधांशुरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] मोती। मुक्ता।

सुधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अमृत। पीयूष। अमी। (२) मकरंद। (३) गंगा। (४) जल। (५) दूध। (६) रस। अर्क। (७) मूर्विका। मरोड़फली। (८) आँवला। आमलकी। (९) हर्रे। हरीतकी। (१०) सेहुँड़। थूहर। (११) सरिवन। शालपर्णी। (१२) बिजली। विद्युत्। (१३) पृथ्वी। धरती। जमीन। (१४) विष। जहर। हलाहल। (१५) चूना। (१६) ईंट। इष्टका। (१७) गिलोय। गुडुची। (१८) रुद्र की स्त्री। (१९) एक प्रकार का वृत्त। (२०) पुत्री। (२१) वधू। (२२) धाम। घर। (२३) मधु। शहद।

सुधाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुधा = सीधा] सीधापन। सिधाई। सरलता। उ०—(क) सूधी सुहाँसी सुधाकर सों मुख शोध लई वसुधा की सुधाई। सूधे स्वभाव बसै सजनी वश कैसे किये अति टेढ़े कन्हाई।—केशव। (ख) सीख सुधाई तीर तें तज गति कुटिल कमान। भावे छिल्ला बैठ तूँ भावै बिच मैदान।—रतनहजारा।

सुधाकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल। कोयल।

सुधाकर-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

सुधाकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूना पोतनेवाला। सफेदी करनेवाला। (२) मिस्तरी। राज। मजूर।

सुधाक्षार-संज्ञा पुं० [सं०] चूने का खार।

सुधाक्षालित-वि० [सं०] सफेदी किया हुआ। जिस पर चूना पुता हुआ हो।

सुधाघट-संज्ञा पुं० [सं० सुधा + घट] चंद्रमा। उ०—मुकता

माल नंदनंदन उर अर्ध सुधापट कांति। तनु श्रीकंठ मेघ उज्ज्वल अति देखि महाबल भाँति।—सूर।

सुधाजीवी-संज्ञा पुं० [सं० सुधाजीविन्] वह जो चूना पोतकर जीविका निर्वाह करता हो। सफेदी करनेवाला मजदूर।

सुधातु-संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

सुधातुदक्षिण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो यज्ञादि में सुवर्ण दक्षिणा देता हो।

सुधादीधिति-संज्ञा पुं० [सं०] सुधांशु। चंद्रमा।

सुधाद्रव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चटनी।

सुधाधर-संज्ञा पुं० [सं० सुधा + धर = धारण करनेवाला] चंद्रमा। उ०—(क) श्रीरघुवीर कह्यो सुन वीर वृक्ष शशी किधौं राहु डरायो। नाउँ सुधाधर है विष को घर ल्याई विरंचि कलंक लगायो।—हनुमन्नाटक। (ख) धार सुधार सुधाधर तें सु मनो बसुधा मैं सुधा ढरकी परै।—सुंदरीसर्वस्व।

वि० [सं० सुधा + अधर] जिसके अधरों में अमृत हो। उ०—वासो मृग अंक कहै तोसों मृगनैनी सबै वासो सुधाधर तोहूँ सुधाधर मानिये।—केशव।

सुधाधरण-संज्ञा पुं० [सं० सुधाधर] चंद्रमा। (डिं०)

सुधाधवल-वि० [सं०] (१) चूने के समान सफेद। (२) चूना पुता हुआ। सफेदी किया हुआ।

सुधाधवलित-वि० दे० "सुधाधवल"।

सुधाधाम-संज्ञा पुं० [सं० सुधा + धाम] चंद्रमा। उ०—धूमपुर के निकेत मानों धूमकेतु की शिखा की धूमयोनि मध्यरेखा सुधाधाम की।—केशव।

सुधाधार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) सुधा का आधार। अमृतपात्र।

सुधाधी-वि० [सं० सुधा] सुधा के समान। अमृत के तुल्य। उ०—या कहि कौशिल्यहि वह आधी। देत भये नृप खीर सुधाधी।—पद्माकर।

सुधाधौत-वि० [सं०] चूना किया हुआ। सफेदी किया हुआ।

सुधानजर-वि० [सं० सुधा या हिं० सूधा = सीधा + नजर] दयावान्। कृपालु। (डिं०)

सुधाना*-क्रि० स० [हिं० सुध] सुध कराना। चेत कराना। स्मरण कराना। याद दिलाना।

क्रि० स० (१) शोधने का काम दूसरे से कराना। दुरुस्त कराना। ठीक कराना। (२) (लग्न या कुंडली आदि) ठीक कराना। उ०—लिय तुरंत ज्योतिषी बुलाई। लग्न घरी सब भाँति सुधाई।—रघुराज।

सुधानिधि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। उ०—मनहुँ सुधानिधि वर्षत घन पर अमृतधार चहुँ ओर।—सूर। (२) समुद्र। उ०—श्रीरामानुज उदार सुधानिधि अवनि कल्पतरु।—नाभादास। (३) दंडक वृत्त का एक भेद। इसमें ३२ वर्ण होते हैं और १६ बार क्रम से गुरु लघु आते हैं।

सुधानिधि रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, गंधक सोना मक्खी और लोहे आदि के योग से बनता है। इसका व्यवहार रक्तपित्त में किया जाता है।

सुधापय-संज्ञा पुं० [सं० सुधापयस्] थूहर का दूध। स्नुही क्षीर।

सुधापाणि-संज्ञा पुं० [सं०] धन्वंतरी। पीयूषपाणि।

विशेष—पुराणों के अनुसार समुद्रमंथन के समय धन्वंतरी जो हाथ में सुधा या अमृत लिए हुए निकले थे; इसी से उनका नाम सुधापाणि या पीयूषपाणि पड़ा।

सुधापाषाण-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद खली।

सुधाभवन-संज्ञा पुं० [सं०] अस्तरकारी किया हुआ मकान।

सुधाभित्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेदी की हुई दीवार।

सुधाभुज्-संज्ञा पुं० [सं०] अमृत भोजन करनेवाले, देवता।

सुधाभृति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) यज्ञ।

सुधाभोजी-संज्ञा पुं० [सं० सुधाभोजिन्] अमृत भोजन करनेवाले, देवता।

सुधाम-संज्ञा पुं० [सं० सुधामन्] (१) चंद्रमा। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (३) रैवतक मन्वंतर के देवताओं का एक गण। (४) पुराणानुसार क्रौंच द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष के राजा का नाम।

सुधामय-वि० [सं०] [स्त्री० सुधामयी] (१) सुधा से भरा हुआ। अमृत स्वरूप। (२) चूने का बना।

संज्ञा पुं० राजभवन। राजप्रासाद।

सुधामयूख-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

सुधामुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

सुधामूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सालम मिस्री। सालब मिस्री।

सुधामोदक-संज्ञा पुं० [सं०] यवास शर्करा। शीरखिश्त।

सुधामोदकज-संज्ञा पुं० [सं०] तुरंजबीन की खाँड़। तबराज खंड।

सुधायोनि-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

सुधार-संज्ञा पुं० [हिं० सुधरना] सुधरने की क्रिया या भाव। दोष या त्रुटियों का दूर किया जाना। संशोधन। संस्कार। इसलाह।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सुधारक-संज्ञा पुं० [हिं० सुधार + क (प्रत्य०)] (१) वह जो दोषों या त्रुटियों का संशोधन या सुधार करता हो। संस्कारक। संशोधक। (२) वह जो धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक सुधार या उन्नति के लिये प्रयत्न या आंदोलन करता हो।

सुधारना-क्रि० स० [हिं० सुधरना] दोष या बुराई दूर करना। बिगड़े हुए को बनाना। दुरुस्त करना। संशोधन करना। संस्कार करना। सँवारना।

वि० [स्त्री० सुधारनी] सुधारनेवाला। ठीक करनेवाला। (क) उ०—भगति गोपाल की सुधारनी है। नर देहँ, जगत अधारनी है जगत उधारनी है।—गिरधर।

सुधारश्मि-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

सुधारा- वि० [हिं० सूधा+आरा (प्रत्य०)] सीधा। सरल। निष्कपट। उ०—आयो घोष बड़ो व्यापारी। लादि खेप गुणगान योग की ब्रज में आनि उतारी। फाटक दै के हाटक माँगत भोरो निपट सुधारो। इनके कहे कौन डहकावै ऐसो कौन अनारी।—सूर।

सुधारू-संज्ञा पुं० [हिं० सुधारना + ऊ (प्रत्य०)] सुधारनेवाला। संशोधक।

सुधालता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की गिलोय।

सुधावर्षी-वि० [सं० सुधावर्षिन्] अमृत बरसानेवाला।

संज्ञा पुं० (१) ब्रह्मा। (२) एक बुद्ध का नाम।

सुधावास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) खीरा। त्रपुषी।

सुधावासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] खीरा। त्रपुषी।

सुधाशर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] खली। खरी।

सुधाश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० सुधा + श्रवण] अमृत बरसानेवाला। उ०—चल्यो तवा सों तम दवा द्युति भूरि श्रवाभट। सुधाश्रवा सिर छत्र हवा जन सुरथ नवा पट।—गोपालचंद्र।

सुधासदन-संज्ञा पुं० [सं० सुधा + सदन] चंद्रमा। उ०—सरद सुधा सदन छविहि निंदे बदन अरुन आयत नव नलिन लोचन चारु।—तुलसी।

सुधासित-वि० [सं०] सफेदी किया हुआ। चूना पुता हुआ।

सुधासू-संज्ञा पुं० [सं०] अमृत उत्पन्न करनेवाला, चंद्रमा।

सुधासूति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) यज्ञ। (३) कमल।

सुधास्पर्धी-वि० [सं० सुधास्पर्धिन्] अमृत की बराबरी करनेवाला। अमृत के समान मधुर। (भाषण आदि)

सुधास्रवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गले के अंदर की घंटी। छोटी जीभ। कौवा। (२) रुद्रवंती। रुदंती।

सुधाहर-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

सुधाहृत-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

सुधि-संज्ञा स्त्री० दे० "सुध"। उ०—(क) वह सुधि आवत तोहिं सुदामा। जब हम तुम बन गये लकरियन पठए गुरु की भामा।—सूर। (ख) रामचंद्र विख्यात नाम यह सुर मुनि की सुधि लीनी।—सूर।

सुधित-वि० [सं०] (१) सुव्यवस्थित। (२) सुधा या अमृत के समान।

सुधिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुठार। कुल्हाड़ी।

सुधी-संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान् व्यक्ति। पंडित। शिक्षक।

वि० (१) उत्तम बुद्धिवाला। बुद्धिमान्। चतुर। (२) धार्मिक।

सुधीर-वि० [सं०] जिसमें यथेष्ट धैर्य हो। धैर्यवान्।

सुधुम्रानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पुष्कर द्वीप के सात खंडों में से एक। उ०—एक सुधुम्रानी कहै और मनोजव जानु। चित्ररेफ है तीसरो चौथो गणि पवमानु। पंचम जानि पुरोजवहि छठो विमल बहु रूप। विश्वधातु है सात जो यह खंडनि को रूप।—केशव।

विशेष—यह शब्द संस्कृत के कोशों में नहीं मिलता।

सुधूपक-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीवेष्ट।

सुधूम्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्वादु नामक गंध द्रव्य।

सुधूम्रवर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम।

सुधृति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राजा का नाम जो मिथिला के महावीर का पुत्र था। (२) राज्यवर्द्धन का पुत्र।

सुधोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] धन्वंतरि।

विशेष—समुद्रमंथन के समय धन्वंतरि सुधा लिए हुए निकले थे; इसी से इन्हें सुधोद्भव कहते हैं।

सुधोद्भवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हर्रे। हड़।

सुनंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवपुत्र। (२) श्रीकृष्ण का एक पार्षद। (३) बलराम का मुषल। (४) कुंभ दैत्य का मुषल जो विश्वकर्मा का बनाया हुआ माना जाता है। (५) बारह प्रकार के राजभवनों में से एक।

विशेष—यह सुनंद नामक राजप्रासाद राजाओं के लिये विशेष शुभकर माना गया है। कहते हैं कि इसमें रहनेवाले राजा को कोई परास्त नहीं कर सकता। युक्ति कल्पतरु के अनुसार इस भवन की लंबाई राजा के हाथ के परिमाण से २१ हाथ और चौड़ाई ४० हाथ होनी चाहिए।

(६) एक बौद्ध श्रावक।

वि० आनंददायक।

सुनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (२) पुरीष भीरु का एक पुत्र। (३) भूनंदन का भाई।

सुनंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उमा। गौरी। (२) उमा की एक सखी। (३) कृष्ण की एक पत्नी। (४) बाहु और बालि की माता। (५) चेदि के राजा सुबाहु की बहन। (६) सार्वभौम की पत्नी। (७) भरत की पत्नी। (८) प्रतीप की पत्नी। (९) एक नदी का नाम। (१०) सर्वार्थसिद्धि नंद की बड़ी स्त्री। (११) सफेद गौ। (१२) गोरोचना। गोरोचन। (१३) अर्कपत्री। इसरौल। (१४) एक तिथि। (१५) नारी। स्त्री। औरत।

सुनंदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आरामशीतला नामक पत्रशाक। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में स ज स ज ग रहते हैं। इसे प्रबोधिता और मंजुभाषिणी भी कहते हैं।

सुन-वि० दे० "सुन्न"।

सुनका-संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग जो उनके कंठ में होता है। गरारा। घुरकवा।

सुनकातर-संज्ञा पुं० [हिं० सोन + कातर ?] एक प्रकार का साँप।

सुनकिरवा-संज्ञा पुं० [हिं० सोना + किरवा = कीड़ा] एक प्रकार का कीड़ा जिसके पर पन्ने के रंग के होते हैं। उ०—गोरी गदकारी परे हँसत कपोलनि गाड़। कैसी लसति गँवारि यह सुनकिरवा की आड़।—बिहारी।

सुनक्षत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम नक्षत्र। (२) एक राजा का नाम जो मरुदेव का पुत्र था। (३) निरमित्र का पुत्र।

वि० उत्तम नक्षत्रवाला।

सुनक्षत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कर्म मास का दूसरा नक्षत्र। (२) कार्त्तिकेय की एक मातृका।

सुनखर्चा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो आश्विन के अंत और कार्त्तिक के प्रारंभ में होता है।

सुनगुन-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुनना + अनु० गुन] (१) किसी बात का भेद। टोह। सुराग।

क्रि० प्र०—मिलना।—लगना।

(२) कानाफूसी।

सुनजर-वि० [सं० सु + फ़ा० नज़र] दयावान्। कृपालु। (डिं०)

सुनत-संज्ञा स्त्री० दे० "सुन्नत"।

सुनति‡-संज्ञा स्त्री० दे० "सुन्नत"। उ०—(क) जो तुरुक तुरुकिनी जाया। पेटै काहे न सुनति कराया।—कबीर। (ख) कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती सिवाजी न होते तो सुनति होत सब की।—भूषण।

सुनना-क्रि० स० [सं० श्रवण] (१) श्रवणेंद्रिय के द्वारा शब्द का ज्ञान प्राप्त करना। कानों के द्वारा उनका विषय ग्रहण करना। श्रवण करना। जैसे,—फिर आवाज दो; उन्होंने सुना न होगा।

संयो० क्रि०—पड़ना।—रखना।

मुहा०—सुनी अनसुनी कर देना = कोई बात सुनकर भी उस पर ध्यान न देना। किसी बात को टाल जाना।

(२) किसी के कथन पर ध्यान देना। किसी की उक्ति पर ध्यानपूर्वक विचार करना। कान देना। जैसे,—कथा सुनना, पाठ सुनना, मुकदमा सुनना। (३) भली बुरी या उलटी सीधी बातें श्रवण करना। जैसे,—(क) मालूम होता है, तुम भी कुछ सुनना चाहते हो। (ख) जो एक कहेगा, वह चार सुनेगा।

सुनफा-संज्ञा स्त्री० [?] ज्योतिष का एक योग।

सुनबहरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुन्न + बहरी ?] एक प्रकार का रोग जिसमें पैर फूल जाता है। श्लीपद। फीलपा।

सुनय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुनीति। उत्तम नीति। (२) परिप्लव राजा का पुत्र। (३) ऋत का एक पुत्र। (४) खनित्र का पुत्र।

सुनयन-संज्ञा पुं० [सं०] मृग। हरिन।

वि० [स्त्री० सुनयना] सुंदर आँखोंवाला। सुलोचन।

सुनयना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा जनक की पत्नी। (२) नारी। स्त्री। औरत।

सुनर-संज्ञा पुं० [सं० सु + नर] अर्जुन। (डिं०)

सुनरिया‡-संज्ञा स्त्री० [सं० सुंदरी] सुंदर नारी। सुंदर स्त्री। उ०—प्यारे की पियरिया जगत से नियरिया, सुनरिया अनूठी तोरी चाल।—बलबीर।

सुनवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुनना + वाई (प्रत्य०)] (१) सुनने की क्रिया या भाव। (२) मुकदमे आदि का पेश होकर सुना जाना। (३) किसी शिकायत या फरियाद आदि का सुना जाना। जैसे,—तुम लाख चिल्लाया करो; वहाँ कुछ सुनवाई ही नहीं होगी।

सुनवैया-वि० [हिं० सुनना + वैया (प्रत्य०)] (१) सुननेवाला। (२) सुनानेवाला। उ०—मंगल सदा ही करैं राम हूँ प्रसन्न सदा राम रसिकावली सुनैया सुनवैया को—रघुराज।

सुनस-वि० [सं०] सुंदर नाकवाला।

सुनसर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गहना।

सुनसान-वि० [सं० शून्य + स्थान] (१) जहाँ कोई न हो। खाली। निर्जन। जनहीन। उ०—(क) ये तेरे वनपंथ परे सुनसान उजारू।—श्रीधर पाठक। (ख) स्वामी हुए बिना सेवक के नगर मनुष्यों बिन सुनसान।—श्रीधर पाठक। (ग) सुनसान कहूँ गभीर बन कहूँ सोर वनपशु करत हैं।—उत्तर रामचरित। (२) उजाड़। वीरान।

संज्ञा पुं० सन्नाटा। उ०—निशा काल अतिशय अँधियारा छाय रहा सुनसान।—श्रीधर पाठक।

सुनह-संज्ञा पुं० [सं०] जह्नु का एक पुत्र।

सुनहरा-वि० दे० "सुनहला"।

सुनहरी-वि० दे० "सुनहला"।

सुनहला-वि० [हिं० सोना + हला (प्रत्य०)] [स्त्री० सुनहली] सोने के रंग का। सोने का सा। जैसे,—सुनहला काम। सुनहला रंग।

सुनाई-संज्ञा स्त्री० दे० "सुनवाई"।

सुनाकृत-संज्ञा पुं० [सं०] काली हलदी। कचूर। कर्पूरक।

सुनाद-संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

वि० सुंदर शब्दवाला।

सुनाना-क्रि० स० [हिं० सुनना का प्रे० रूप] (१) दूसरे को

सुनने में प्रवृत्त करना। कर्णगोचर कराना। श्रवण कराना। (२) खरी खोटी कहना। जैसे,—तुमने भी उसे खूब सुनाया।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

सुनानी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुनावनी"।

सुनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुदर्शन चक्र। (२) मैनाक पर्वत। (३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (४) वरुण का एक मंत्री। (५) गरुड़ का एक पुत्र। (६) एक प्रकार का मंत्र जिसका प्रयोग अस्त्रों पर किया जाता था।

वि० सुंदर नाभिवाला।

सुनाभक-संज्ञा पुं० दे० "सुनाभ"।

सुनाभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कटभी। करही। हरिमल।

सुनाभि-वि० [सं०] सुंदर नाभिवाला।

सुनाम-संज्ञा पुं० [सं०] यश। कीर्त्ति। ख्याति।

सुनाम द्वादशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्रत जो वर्ष की बारहों शुक्ला द्वादशियों को किया जाता है। अगहन महीने की शुक्ला द्वादशी को इस व्रत का आरंभ होता है। अग्निपुराण में इसका बड़ा माहात्म्य लिखा है।

सुनामा-संज्ञा पुं० [सं० सुनामन्] (१) कंस के आठ भाइयों में से एक। (२) सुकेतु के एक पुत्र का नाम। (३) स्कंद का एक पार्षद। (४) वैनतेय का एक पुत्र।

त्रि० यशस्वी। कीर्त्तिशाली।

सुनामिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाणा लता। त्रायमान।

सुनाम्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवक की पुत्री और वसुदेव की पत्नी।

सुनायक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम। (२) एक दैत्य का नाम। (३) वैनतेय के एक पुत्र का नाम।

सुनार-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्णकार] [स्त्री० सुनारिन, सुनारी] सोने, चाँदी के गहने आदि बनानेवाली जाति। स्वर्णकार।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुतिया का दूध। (२) साँप का अंडा। (३) चटक पक्षी। गौरा। गौरैया।

सुनारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुनार+ई (प्रत्य०)] (१) सुनार का काम। (२) सुनार की स्त्री। उ०—धाइ जनी नायन नटी प्रकट परोसिन नारि। मालिन बरइन शिल्पिनी चुरहेरनी सुनारि।—केशव।

सुनाल-संज्ञा पुं० [सं०] रक्त कमल। लाल कमल। लामजक।

सुनालक-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त। वकपुष्प वृक्ष।

सुनावनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुनना+आवनी (प्रत्य०)] (१) कहीं विदेश से किसी संबंधी आदि की मृत्यु का समाचार आना।

क्रि० प्र०—आना।

(२) वह स्नान आदि कृत्य जो परदेस से किसी संबंधी की मृत्यु का समाचार आने पर होता है।

क्रि० प्र०—में जाना।

सुनासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौआ ठोंठी। काकनासा।

सुनासिक-वि० [सं०] जिसकी नाक सुंदर हो। सुंदर नाकवाला। सुनास।

सुनासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौआठोंठी। काकनासा।

सुनासीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) देवता।

सुनाहक*-क्रि० वि० दे० "नाहक"।

सुनिद्र-वि० [सं०] जिसे अच्छी नींद आई हो। अच्छी तरह सोया हुआ। सुनिद्रित।

सुनिनद-वि० [सं०] सुंदर नाद या शब्द करनेवाला।

सुनियाना†-क्रि० अ० [हिं० सुन+इयाना (प्रत्य०)] (फसल का) रोग से सूख जाना या मारा जाना। (रुहेलखंड)

सुनिरुहन-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का वस्तिकर्म।

सुनिर्यास-संज्ञा पुं० [सं०] लिंगिनी नामक वृक्ष।

सुनिश्चित-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

वि० दृढ़ता से निश्चय किया हुआ। भली भाँति निश्चित किया हुआ।

सुनिश्चितपुर-संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर का एक प्राचीन नगर।

सुनिषण्ण-संज्ञा पुं० [सं०] चौपतिया या सुसना नाम का साग। शिरियारी। उटंगन।

विशेष—कहते हैं कि यह साग खाने से अच्छी नींद आती है; इसी से इसका नाम सुनिषण्ण (जिससे अच्छी नींद आवे) पड़ा है।

सुनिषण्णक-संज्ञा पुं० दे० "सुनिषण्ण"।

सुनिस्त्रिंश-संज्ञा पुं० [सं०] तेज धारवाली तलवार।

सुनीच-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार किसी ग्रह का किसी राशि में किसी विशेष अंश का अवस्थान। जैसे,—रवि यदि मेष या तुला राशि में हो तो नीचस्थ कहलाता है; और इसी तुला राशि के किसी विशेष अंश में पहुँच जाने पर सुनीच कहलाता है।

सुनीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्धिमत्ता। समझदारी। (२) नीतिमत्ता। (३) एक राजा का नाम जो सुबल का पुत्र था।

सुनीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम नीति। (२) राजा उत्तानपाद की पत्नी और ध्रुव की माता।

विशेष—विष्णुपुराण में लिखा है कि राजा उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थीं—सुनीति और सुरुचि। सुरुचि को राजा बहुत चाहता था और सुनीति से बहुत घृणा करता था। सुनीति को ध्रुव नामक एक पुत्र हुआ जिसने तप द्वारा भगवान् को प्रसन्न कर राजसिंहासन प्राप्त किया। वि० दे० "ध्रुव"।

संज्ञा पुं० (१) शिव। (२) विदूरथ का एक पुत्र।

सुनीथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृष्ण का एक पुत्र। (२) संतति

का पुत्र। (३) सुषेण का एक पुत्र। (४) सुबल का एक पुत्र। (५) शिशुपाल का एक नाम। (६) एक दानव का नाम। (७) एक प्रकार का वृत्त।

वि० न्यायपरायण। नीतिमान्।

सुनीथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु की पुत्री और अंग की पत्नी।

सुनील-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनार का पेड़। दाड़िम वृक्ष। (२) लामज्जक। लाल कमल।

वि० अत्यंत नील वर्ण। बहुत नीला।

सुनीलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नील भृंगराज। काला भँगरा। (२) नीलकांति मणि। नीलम।

सुनीला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चणिका तृण। चनिका घास। (२) नीलापराजिता। नीली अपराजिता। नीली कोयल। (३) अतसी। तीसी।

सुनु-संज्ञा पुं० [सं०] जल।

सुनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धृतराष्ट्र का एक पुत्र। (२) तेरहवें मनु का एक पुत्र। (३) बौद्धों के अनुसार मार का एक पुत्र। (४) चक्रवाक। चकवा।

वि० सुंदर नेत्रोंवाला। सुलोचन।

सुनेत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सांख्य के अनुसार नौ तुष्टियों में से एक।

सुनैया-वि० [हिं० सुनना + ऐया (प्रत्य०)] सुननेवाला। जो सुने। उ०—द्रौपदी विचारे रघुराज आज जाति लाज सब हैं धरैया पै न टेर को सुनैया है।—रघुराज।

सुनोची-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—जरदा औ जाग जिरही से जग जाहर, जवाहर हुकुम सौं जवाहर झलक के। मंगसी मुजंनस सुनोची स्यामकर्न स्याह, सिरगा सजाये जे न मंदिर अलक के।—सूदन।

सुन्न-वि० [सं० शून्य] निर्जीव। स्पंदन-हीन। निस्तब्ध। जड़वत्। निश्चेष्ट। निश्चल। जैसे,—ठंड के मारे उसके हाथ पैर सुन्न हो गये। उ०—(क) यह बात सुनकर भाग्यवती सुन्न सी हो गई।—श्रद्धाराम। (ख) तहाँ लगी विरहागि नाहिं क्यों चलि कै पेखत। सुकवि सुन्न ह्वै जाय न प्यारी देखत देखत।—अंबिकादत्त। (ग) निरखि कंस की छाती धड़की। सुन्न समान भई गति धड़ की।—गिरधरदास।

संज्ञा पुं० शून्य। सिफर। उ०—(क) यथा सुन्न दस गुन्न बिन अंक गने नहिं जात।—श्रद्धाराम। (ख) अगनित बढ़त उदोत लखऊ इक बेंदी दीने। कह्यो सुन्न को ऐसो गुन को गनित नवीने।—अंबिकादत्त।

वि० दे० "सुनसान"।

सुन्नत-संज्ञा स्त्री० [अ०] मुसलमानों की एक रस्म जिसमें लड़के की लिंगेंद्रिय के अगले भाग का बढ़ा हुआ चमड़ा काट दिया जाता है। खतना। मुसलमानी।

सुन्नसान-वि० दे० "सुनसान"।

सुन्ना-क्रि० स० दे० "सुनना"।

संज्ञा पुं० [सं० शून्य] बिंदी। सिफर। जैसे,—एक (१) पर सुन्ना (०) लगाने से दस (१०) होता है।

सुन्नी-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों का एक भेद जो चारों खलीफाओं को प्रधान मानता है। चारयारी।

सुपंख-वि० [सं०] (१) सुंदर तीरों से युक्त। (२) सुंदर परों से युक्त।

सुपंथ-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम मार्ग। सुमार्ग। सत्पथ। सन्मार्ग।

सुपक-वि० [सं० सुपक्व] अच्छी तरह पका हुआ। सुपक्व। उ०—गोपाल राइ दधि माँगत अरु रोटी। माखन सहित देहि मेरि जननी सुपक समंगल मोटी।—सूर।

सुपक्व-वि० [सं०] अच्छी तरह पका हुआ।

संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधित आम।

सुपक्ष-वि० [सं०] जिसके सुंदर पंख हों। सुंदर पंखोंवाला।

सुपक्ष्मा-वि० [सं० सुपक्ष्मन्] जिसकी पलकें सुंदर हों। सुंदर पलकोंवाला।

सुपच-संज्ञा पुं० [सं० श्वपच] (१) चांडाल। डोम। उ०—तुलसी भगत सुपच भलो भजै रइनि दिन राम। ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम।—तुलसी। (२) भंगी। (डिं०)

सुपट-वि० [सं०] सुंदर वस्त्रों से युक्त। अच्छे वस्त्रोंवाला।

संज्ञा पुं० सुंदर वस्त्र।

सुपड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] लंगर का अँकुड़ा जो जमीन में धँसत जाता है।

सुपत-वि० [सं० सु + हिं० पत = प्रतिष्ठा] प्रतिष्ठायुक्त। मानयुक्त। उ०—वह जूठो शशि जानि वदन विधु रच्यो विरंचि हुहै री। सौंप्यो सुपत विचारि श्याम हित सु तैं रही लुटि लै री।—सूर।

सुपतिक-संज्ञा पुं० [डिं०] रात को पड़नेवाला डाका।

सुपत्थ-संज्ञा पुं० दे० "सुपथ"। उ०—इत अवध में श्रीराम लछमन वृद्ध पितु दशरत्थ की। सेवा करत नित रहत भे गहि रीति निगम सुपत्थ की।—पद्माकर।

सुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेजपत्र। तेजपत्ता। (२) आदित्यपत्र। हुरहुर का एक भेद। (३) पहिवाह नाम की घास। (४) इंगुदी। गोंदी। हिंगोट। (५) एक पौराणिक पक्षी।

वि० (१) सुंदर पत्तों से युक्त। (२) जिसके पंख सुंदर हों। सुंदर पंखोंवाला।

सुपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन। शिग्रु।

सुपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुद्रजटा। (२) शतावरी। सतावर। (३) शालपर्णी। सरिवन। (४) शमी। छोंकर। सफेद कीकर। (५) पालक का साग।

सुपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका । पर्पटी ।

सुपत्रित-वि० [सं०] पंखों या तीरों से युक्त । जिसमें पंख या तीर हों ।

सुपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा । गंगापत्री ।

वि० [सं० सुपत्रिन्] पंखों या तीरों से भली भाँति युक्त ।

सुपथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम पथ । अच्छा रास्ता । सन्मार्ग । सदाचरण । (२) एक वृत्त का नाम जो एक रगण, एक नगण, एक भगण और दो गुरु का होता है ।

वि० [सं० सु+पथ] समतल । हमवार । (जमीन) उ०—किधौं हरि मनोरथ रथ की सुपथ भूमि मीनरथ मनहूँ की गति न सकति छ्वै ।—केशव ।

सुपथ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह आहार या भोजन जो रोगी के लिये हितकर हो । अच्छा पथ्य । (२) आम ।

सुपथ्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद बथुआ । बड़ा बथुआ । श्वेत चिल्ली । (२) लाल बथुआ । लघु वास्तूक ।

सुपद्-वि० [सं०] सुंदर पैरोंवाला ।

सुपद-वि० [सं०] (१) सुंदर पैरोंवाला । (२) तेज चलनेवाला ।

सुपद्मा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बच । वचा ।

सुपन‡-संज्ञा पुं० दे० "स्वप्न" । उ०—(क) नित के जागत मिटि गयो वा सँग सुपन मिलाप । चित्र दरशहू कों लख्यो आँखिन आँसू पाप ।—लक्ष्मणसिंह । (ख) आज मैं निहारे कारे कान्ह कों सुपन बीच उठि कै सकारे जमुना पैं जलकों गई । तबही तें दीनदयाल ह्वै रही मनीखा लट्ट पूरी भट्ट मेरी भटभेटी मग मैं भई ।—दीनदयाल ।

सुपनक-वि० [सं० स्वप्न] स्वप्न देखनेवाला । जिसे स्वप्न दिखाई देता हो ।

सुपना-संज्ञा पुं० दे० "स्वप्न" । उ०—तहाँ भूप देख्यो अस सुपना । पकरयो पैर गादरी अपना ।—निश्चल ।

सुपनाना‡-क्रि० स० [हिं० सुपना] स्वप्न देना । स्वप्न दिखाना । (क०) उ०—विह्वल तन मन चकित भई सुनि सा प्रतच्छ सुपनाये । गदगद कंठ सूर कोशलपुर सोर सुनत दुख पाये ।—सूर ।

सुपरकास-संज्ञा पुं० [सं० सुप्रकाश] ताप । गरमी । (डिं०)

सुपरडंट-संज्ञा पुं० दे० "सुपरिंटेंडेंट" ।

सुपरण-संज्ञा पुं० दे० "सुपर्ण" ।

सुपरन-संज्ञा पुं० दे० "सुपर्ण" ।

सुपरमतुरिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक देवी का नाम ।

सुपर रायल-संज्ञा पुं० [श्रं०] छापेखाने में कागज आदि की एक नाप जो २२ इंच चौड़ी और २९ इंच लंबी होती है ।

सुपरस‡-संज्ञा पुं० दे० "स्पर्श" । उ०—राम सुपरस मय कौतुक निरखि सखी सुख लूटै ।—सूर ।

सुपरिंटेंडेंट-संज्ञा पुं० [श्रं०] निरीक्षण करनेवाला । निगरानी करनेवाला । प्रधान निरीक्षक । जैसे,—पुलिस-विभाग का सुपरिंटेंडेंट, तार-विभाग का सुपरिंटेंडेंट ।

सुपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ । (२) मुरगा । (३) पक्षी । चिड़िया । (४) किरण । (५) विष्णु । (६) एक असुर का नाम । (७) देव गंधर्व । (८) एक पर्वत का नाम । (९) घोड़ा । अश्व । (१०) सोम । (११) १०३ वैदिक मंत्रों की एक शाखा का नाम । (१२) अंतरिक्ष का एक पुत्र । (१३) सेना की एक प्रकार की व्यूह रचना । (१४) नागकेसर । नागपुष्प । (१५) अमलतास । स्वर्णपुष्प । (१६) सुंदर पत्र या पत्ता ।

विशेष—सुंदर किरणों से युक्त होने के कारण इस शब्द का प्रयोग चंद्रमा और सूर्य के लिये भी होता है ।

वि० (१) सुंदर पत्तोंवाला । (२) सुंदर परोंवाला ।

सुपर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ या कोई दिव्य पक्षी । (२) अमलतास । स्वर्णपुष्प । आरग्वध । (३) सतवन । सतोना । सप्तपर्ण ।

वि० (१) सुंदर पत्तोंवाला । (२) सुंदर पंखोंवाला ।

सुपर्णकुमार-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक देवता ।

सुपर्णकेतु संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु ।

विशेष—विष्णु भगवान् की ध्वजा में केतु या गरुड़ जी विराजते हैं, इसी से विष्णु का नाम सुपर्णकेतु पड़ा ।

(२) श्रीकृष्ण ।

सुपर्णयातु-संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य का नाम ।

सुपर्णराज संज्ञा पुं० [सं०] पक्षिराज । गरुड़ ।

सुपर्णसद्-वि० [सं०] पक्षी पर चढ़नेवाला ।

संज्ञा पुं० विष्णु ।

सुपर्णाङ-संज्ञा पुं० [सं०] शूद्रा माता और सूत पिता से उत्पन्न पुत्र ।

सुपर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पद्मिनी । कमलिनी । (२) गरुड़ की माता का नाम । (३) एक नदी का नाम ।

सुपर्णाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर । नागपुष्प ।

सुपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ण जीवंती । पीली जीवंती । (२) रेणुका । रेणुका बीज । (३) पलाशी । (४) शालपर्णी । सरिवन । बाकुची । बकुची ।

सुपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गरुड़ की माता । सुपर्णा । (२) मादा चिड़िया । (३) कमलिनी । पद्मिनी । (४) एक देवी जिसका उल्लेख कद्रु के साथ मिलता है । इसे कुछ लोग छंदों की माता या वाग्देवी भी मानते हैं । (५) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक । (६) रात्रि । रात । (७) पलासी । (८) रेणुका । रेणुक बीज ।

संज्ञा पुं० [सं० सुपर्णिन्] गरुड़ ।

सुपर्णीतनय-संज्ञा पुं० [सं०] सुपर्णी के पुत्र, गरुड़ ।

सुपर्णेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुपर्णी के पुत्र, गरुड़ ।

सुपर्व्व-संज्ञा पुं० [सं० सुपर्व्वन्] (१) देवता । (२) पर्व्व । शुभ मुहूर्त्त । शुभ काल । (३) बाँस । वंश । (४) बाण । तीर । (५) धूम्र । धूआँ ।

वि० (१) सुंदर जोड़ोंवाला । जिसके जोड़ या गाँठें सुंदर हों । (२) सुंदर पर्व्व या अध्यायवाला (ग्रंथ) ।

सुपर्व्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत दूर्वा । सफेद दूब ।

सुपह-संज्ञा पुं० [हिं०] राजा ।

सुपाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आम्रहरिद्रा । आँबा हलदी । अमिया हलदी ।

सुपाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] विड्लवण । बिरिया या साँचर नोन । कटीला नमक ।

सुपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी कार्य्य के लिये योग्य या उपयुक्त हो । अच्छा पात्र । जैसे,—सुपात्र को दान देना, सुपात्र को कन्या देना ।

सुपार-वि० [सं०] सहज में पार होने योग्य । जिसे पार करने में कोई कठिनता न हो ।

सुपारग-संज्ञा पुं० [सं०] शाक्य मुनि ।

वि० उत्तम रूप से पार करनेवाला । अत्यंत पारग ।

सुपारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सांख्य के अनुसार नौ तुष्टियों में से एक ।

सुपारी-संज्ञा स्त्री० [सं० सुप्रिय] (१) नारियल की जाति का एक पेड़ जो ४० से १०० फुट तक ऊँचा होता है । इसके पत्ते नारियल के समान ही झाड़दार और एक से दो फुट तक लंबे होते हैं । सींका ४–६ फुट लंबा होता है । इसमें छोटे छोटे फूल लगते हैं । फल १॥–२ इंच के घेरे में गोलाकार या अंडाकार होते हैं और उन पर नारियल के समान ही छिलके होते हैं । इसके पेड़ बंगाल, आसाम, मैसूर, कनाड़ा, मालाबार तथा दक्षिण भारत के अन्य स्थानों में होते हैं । सुपारी (फल) टुकड़े करके पान के साथ खाई जाती है । यों भी लोग खाते हैं । यह औषध के काम में भी आती है । वैद्यक के अनुसार यह भारी, शीतल, रूखी, कसैली, कफ पित्त नाशक, मोहकारक, रुचिकारक, दुर्गंध तथा मुँह की निरसता दूर करनेवाली है । छालिया । कसैली । डली ।

पर्य्या०—चोंटा । पूग । क्रमुक । गुवाक । खपुर । सुरंजन । पूगवृक्ष । दीर्घपादप । वल्कतरु । दृढ़वल्क । चिक्कण । पूगी । गोपदल । राजताल । छटाफल । क्रमु । क्रमुकी । अकोट । तंतुसार ।

यौ०—चिकनी सुपारी ।

मुहा०—सुपारी लगना = सुपारी का कलेजे में अटकना । सुपारी खाते समय, कभी कभी पेट में उतरते समय अटक जाती है । इसी को सुपारी लगना कहते हैं । उ०—राधिका ज्यों कि झरोखन ह्वै कवि केशव रीझि गिरे सुबिहारी । सोर भयो सकुचे समुझे हरवाहि कह्यो हरि लागि सुपारी ।—केशव । (२) लिंग का अग्र भाग जो प्रायः सुपारी (फल) के आकार का होता है । (बाजारू)

सुपारी का फूल-संज्ञा पुं० [हिं० सुपारी + फूल] मोचरस या सेमर का गोंद ।

सुपारीपाक-संज्ञा पुं० [हिं० सुपारी + सं० पाक] एक पौष्टिक औषध ।

विशेष—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पहले आठ टके भर चिकनी सुपारी का कपड़छान चूर्ण, आठ टके भर गौ के घी में मिलाकर उसे तीन बार गाय के दूध में डालकर धीमी आँच में खोवा बनाते हैं । फिर वंग, नागकेसर, नागरमोथा, चंदन, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, आँवला, कोयल के बीज, जायफल, धनिया, चिरौंजी, तज, पत्रज, इलायची, सिंघाड़ा, वंशलोचन, दोनों जीरे (प्रत्येक पाँच पाँच टंक) इन सब का महीन कपड़छान चूर्ण उक्त खोवे में मिलाकर ५० टंक भर मिस्री की चाशनी में डालकर एक टके भर की गोलियाँ बना ली जाती हैं । एक गोली सबेरे और एक गोली संध्या को खाई जाती है । इसके सेवन से शुक्रदोष, प्रमेह, प्रदर, जीर्णज्वर, अम्लपित्त, मंदाग्नि और अर्श का निवारण होकर शरीर पुष्ट होता है ।

सुपार्श्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परास पीपल । गजदंड । गर्द-भांड । (२) पाकर । प्लक्ष वृक्ष । (३) रुक्मरथ का एक पुत्र । (४) श्रुतायु का पुत्र । (५) दृढ़नेमि का पुत्र । (६) एक पर्वत का नाम । (७) एक राक्षस का नाम । (८) संपाति (गिद्ध) का बेटा । (९) देवी भागवत् के अनुसार एक पीठ स्थान । यहाँ की देवी का नाम नारायणी है । (१०) जैनियों के २४ जिनों या तीर्थंकरों में से सातवें तीर्थंकर ।

वि० सुंदर पार्श्ववाला ।

सुपास-संज्ञा पुं० [देश०] सुख । आराम । सुभीता । उ०—(क) चलीं नसी वृन्दावन माहीं । सकल सुपास सहित सो आहीं ।—विश्राम । (ख) आया ताकी सघन निहारी । बैठा सिमिटि सुपास बिचारी ।—विश्राम । (ग) यात्रियों के लिये सब तरह का सुपास और आराम है ।—गदाधरसिंह ।

सुपासी-वि० [हिं० सुपास + ई (प्रत्य०)] सुख देनेवाला । आनंद-दायक । उ०—(क) बालक सुभग देखि पुरवासी । होत भए सब तासु सुपासी ।—रघुराज । (ख) षोडश भक्त अनन्य उपासी । पयहारी के शिष्य सुपासी ।—रघुराज ।

सुपिंगला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीवंती । डोडी शाक । (२) ज्योतिष्मती । मालकंगनी ।

सुपीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाजर । गर्जर । (२) पीली कटसरैया ।

पीत झिंटी। (३) पीतसार या चंदन। (४) ज्योतिष में पाँचवें मुहूर्त्त का नाम।

वि० (१) उत्तम रूप से पीया हुआ। (२) बिलकुल पीला। गहरा पीला।

सुपीन–वि० [सं०] बहुत मोटा या बड़ा।

सुपुंसी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति सुपुरुष हो।

सुपुट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोलकंद। चमार आलू। (२) विष्णुकंद।

सुपुटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवती। वनमल्लिका।

सुपुत्र–संज्ञा पुं० [सं० (१) जीवक वृक्ष। (२) उत्तम पुत्र।

वि० जिसका पुत्र सुंदर और उत्तम हो। अच्छे पुत्रवाला।

सुपुत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका लता। पपड़ी।

वि० सुंदर या उत्तम पुत्रवाली।

सुपुरुष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुंदर पुरुष। (२) सत्पुरुष। सज्जन। भला मानस।

सुपुर्द–संज्ञा पुं० दे० "सपुर्द"।

सुपुष्करा†–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थल कमलिनी। स्थल पद्मिनी।

सुपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौंग। लवंग। (२) आहुल्य। तरवट। तरवड। (३) प्रपौंडरीक। पुंडेरिया। पुंडेरी। (४) परिपाश्वत्थ। परास पीपल। (५) मुचकुंद वृक्ष। (६) शहतूत। तूत। (७) ब्रह्मदारु। (८) पारिभद्र। फरहद। (९) शिरीष। सिरिस। (१०) हरिद्रु। हलदुआ। (११) बड़ी सेवती। राजतरुणी। (१२) श्वेतार्क। सफेद आक। (१३) देवदारु। देवदार।

वि० सुंदर पुष्पों या फूलोंवाला। जिसमें सुंदर फूल हों।

सुपुष्पक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिरीष वृक्ष। सिरिस। (२) मुचकुंद। (३) श्वेतार्क। सफेद आक। (४) हरिद्रु। हलदुआ। (५) गर्दभांड। परास पीपल। (६) राजतरुणी। बड़ी सेवती।

सुपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोशातकी। तरोई। तुरई (२) द्रोणपुष्पी। गूमा। (३) शतपुष्पा। सौंफ। (४) शतपत्री सेवती।

सुपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का विधारा। जीर्णदारु। (२) शतपुष्पी। सौंफ। (३) मिश्रेया। सोआ। (४) पाटला। पाढ़र। (५) महिषवल्ली। पाताल गारुड़ी। (६) शतपुष्पी। बनसनई।

सुपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्वेत अपराजिता। सफेद कोयल लता। (२) शतपुष्पी। सौंफ। (३) मिश्रेया। सोआ। (४) कदली। केला। (५) द्रोणपुष्पी। गूमा। (६) वृद्ध-दारु। विधारा।

सुपूत–वि० [सं०] अत्यंत पूत या पवित्र।

वि० [सं० सु + हिं० पूत] अच्छा पुत्र। सुपुत्र। सपूत।

सुपूती–संज्ञा स्त्री० [हिं० सपूत + ई (प्रत्य०)] (१) सुपूत होने का भाव। सपूतपन। उ०—करै सुपूती सोइ सुत ठीको।—कबीर। (२) अच्छे पुत्रवाली स्त्री।

सुपूर–संज्ञा पुं० [सं०] बीजपूर। बिजौरा नीबू।

वि० सहज में पूर्ण होने योग्य।

सुपूरक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त। वकवृक्ष। (२) बिजौरा नीबू।

सुपेती*†–संज्ञा स्त्री० दे० "सफेदी"।

सुपेद†–वि० दे० "सफेद"।

सुपेदी†–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सफेदी] (१) सफेदी। उज्ज्वलता। (२) ओढ़ने की रजाई। (३) बिछाने की तोशक। (४) बिछौना। बिस्तर।

सुपेली–संज्ञा स्त्री० [हिं० सूप + एली (प्रत्य०)] छोटा सूप।

सुपैदा–संज्ञा पुं० दे० "सफेदा"।

सुप्त–वि० [सं०] (१) सोया हुआ। निद्रित। शयित। (२) सोने के लिये लेटा हुआ। (३) ठिठुरा हुआ। (४) बंद। मुँदा हुआ। मुद्रित। (जैसे फूल) (५) अकर्मण्य। बेकार। (६) सुस्त।

सुप्तक–संज्ञा पुं० [सं०] निद्रा। नींद।

सुप्तघातक–वि० [सं०] (१) निद्रित अवस्था में हनन या वध करनेवाला। (२) हिंस्र। खूँखार।

सुप्तघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

वि० दे० "सुप्तघातक"।

सुप्तजन–संज्ञा पुं० [सं०] अर्द्धरात्रि। (इस समय प्रायः लोग सोए रहते हैं।)

सुप्तज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] स्वप्न।

विशेष—निद्रितावस्था में जो स्वप्न दिखाई देता है, वह जाग्रत अवस्था के समान ही जान पड़ता है; इसी से उसे सुप्तज्ञान कहते हैं।

सुप्तता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुप्त होने का भाव। (२) निद्रा। नींद।

सुप्तप्रबुद्ध–वि० [सं०] जो अभी सोकर उठा हो।

सुप्तप्रलपित–संज्ञा पुं० [सं०] निद्रितावस्था में होनेवाला प्रलाप। सोए सोए बकना।

सुप्तमाली–संज्ञा पुं० [सं० सुप्तमालिन्] पुराणानुसार तेईसवें कल्प का नाम।

सुप्तवाक्य–संज्ञा पुं० [सं०] निद्रित अवस्था में कहे हुए शब्द या वाक्य।

सुप्तविग्रह–वि० [सं०] निद्रित। सोया हुआ।

सुप्तविज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] स्वप्न। सुपना। ख्वाब।

सुप्तस्थ–वि० [सं०] निद्रित। सोया हुआ।

सुप्तांग–संज्ञा पुं० [सं०] वह अंग जिसमें चेष्टा न हो। निश्चेष्ट अंग।

सुप्तांगता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुप्तांग का भाव । अंगों की निश्चेष्टता ।

सुप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निद्रा । नींद । (२) निंदास । ऊँघाई । (३) अंग की निश्चेष्टता । सुप्तांगता । (४) प्रत्यय । विश्वास । एतबार ।

सुप्तोत्थित-वि० [सं०] निद्रा से जागरित । जो अभी सोकर उठा हो ।

सुप्रकेत-वि० [सं०] ज्ञानवान् । बुद्धिमान् ।

सुप्रचेता-वि० [सं० सुप्रचेतस्] बहुत बुद्धिमान् । बहुत समझदार ।

सुप्रज-वि० दे० "सुप्रजा" ।

सुप्रजा-वि० [सं० सुप्रजस्] उत्तम और बहुत संतान से युक्त । उत्तम और अधिक संतानवाला ।

संज्ञा स्त्री० (१) उत्तम संतान । अच्छी औलाद । (२) उत्तम प्रजा । अच्छी रिआया ।

सुप्रजात-वि० [सं०] बहुत सी संतानोंवाला । जिसके बहुत से बाल बच्चे हों ।

सुप्रज्ञ-वि० [सं०] बहुत बुद्धिमान् ।

सुप्रतर-वि० [सं०] सहज में पार होने योग्य (नदी आदि) ।

सुप्रतार-वि० दे० सुप्रतर" ।

सुप्रतिज्ञ-वि० [सं०] जो अपनी प्रतिज्ञा से न हटे । दृढ़प्रतिज्ञ ।

सुप्रतिभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा । शराब ।

सुप्रतिम-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम ।

सुप्रतिष्ठ-वि० [सं०] (१) उत्तम प्रतिष्ठावाला । जिसकी लोग खूब प्रतिष्ठा या आदर सम्मान करते हों । (२) बहुत प्रसिद्ध । सुविख्यात । मशहूर । (३) सुंदर टाँगोंवाला ।

संज्ञा पुं० (१) सेना की एक प्रकार की व्यूह रचना । (२) एक प्रकार की समाधि । (बौद्ध)

सुप्रतिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में पाँच वर्ण होते हैं । इनमें से तीसरा और पाँचवाँ गुरु तथा पहला, दूसरा और चौथा वर्ण लघु होता है । (२) मंदिर या प्रतिमा आदि की स्थापना । (३) स्कंद की एक मातृका का नाम । (४) अभिषेक । (५) उत्तम स्थिति । (६) सुनाम । प्रसिद्धि । शोहरत ।

सुप्रतिष्ठित-वि० [सं०] (१) उत्तम रूप से प्रतिष्ठित । (२) सुंदर टाँगोंवाला ।

संज्ञा पुं० (१) गूलर । उदुंबर । (२) एक प्रकार की समाधि ।

सुप्रतिष्ठितचरित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम ।

सुप्रतिष्ठिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम ।

सुप्रतीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) कामदेव । (३) ईशान कोण का दिग्गज ।

वि० (१) सुरूप । सुंदर । खूबसूरत । (२) साधु । सज्जन ।

सुप्रतीकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुप्रतीक नामक दिग्गज की स्त्री ।

सुप्रदद्रि-वि० [सं०] बहुत उदार । बड़ा दानी । दाता ।

सुप्रदर्श-वि० [सं०] जो देखने में सुंदर हो । प्रियदर्शन । खूबसूरत ।

सुप्रदोहा-वि० [सं०] सहज में दुही जानेवाली (गाय) । जिस (गाय) को दुहने में कोई कठिनाई न हो ।

सुप्रधृष्य-वि० [सं०] जो सहज में अभिभूत या पराजित किया जा सके । आसानी से जीता जानेवाला ।

सुप्रबुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] शाक्य बुद्ध ।

वि० जिसे यथेष्ट बोध या ज्ञान हो । अत्यंत बोधयुक्त ।

सुप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दानव का नाम । (२) जैनियों के नौ बलों (जिनों) में से एक । (३) पुराणानुसार शाल्मली द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष ।

वि० (१) सुंदर प्रभा या प्रकाशयुक्त । (२) सुंदर । सुरूप । खूबसूरत ।

सुप्रभदेव-संज्ञा पुं० [सं०] शिशुपाल-वध के प्रणेता महाकवि माघ के पितामह का नाम ।

सुप्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बगुची । सोमराजी । (२) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक । (३) स्कंद की एक मातृका का नाम । (४) सात सरस्वतियों में से एक । (५) सुंदर प्रकाश ।

संज्ञा पुं० एक वर्ष का नाम जिसके देवता सुप्रभ माने जाते हैं ।

सुप्रभात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुंदर प्रभात या प्रातःकाल । (२) मंगलसूचक प्रभात । (३) प्रातःकाल पढ़ा जाने-वाला स्तोत्र ।

सुप्रभाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुराणानुसार एक नदी का नाम । (२) वह रात जिसकी प्रभात सुंदर हो ।

सुप्रभाव-संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें सब प्रकार की शक्तियाँ हों । सर्वशक्तिमान् ।

सुप्रयुक्तशर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बाण चलाने में सिद्धहस्त हो । अच्छा धनुर्धर ।

सुप्रयोगविशिख-संज्ञा पुं० दे० "सुप्रयुक्तशर" ।

सुप्रयोगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वायुपुराण के अनुसार दाक्षिणात्य की एक नदी का नाम ।

सुप्रलंभ-वि० [सं०] जो अनायास प्राप्त किया जा सके । सहज में मिल सकनेवाला । सुलभ ।

सुप्रलाप-संज्ञा पुं० [सं०] सुवचन । सुंदर भाषण ।

सुप्रसन्न-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम ।

वि० (१) अत्यंत प्रफुल्ल । (२) अत्यंत निर्मल । (३) हर्षित । बहुत प्रसन्न ।

सुप्रसन्नक-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बर्बरी । वन वर्वरिका । कृष्णार्जक ।

सुप्रसरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी लता । गंधप्रसारिणी । पसरन ।

सुप्रसाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) विष्णु । (३) स्कंद का एक पार्षद । (४) एक असुर का नाम । (५) अत्यंत प्रसन्नता ।

वि० अत्यंत प्रसन्न या कृपालु ।

सुप्रसादा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

सुप्रसारा-संज्ञा स्त्री० दे० सुप्रसरा" ।

सुप्रसिद्ध-वि० [सं०] बहुत प्रसिद्ध । सुविख्यात । बहुत मशहूर ।

सुप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक गंधर्व का नाम ।

वि० अत्यंत प्रिय । बहुत प्यारा ।

सुप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम । (२) सोलह मात्राओं का एक वृत्त जिसमें अंतिम वर्ण के अतिरिक्त शेष सब वर्ण लघु होते हैं । यह एक प्रकार की चौपाई है । यथा—तबहुँ न लखन उतर कछु दयऊ ।

सुप्रीम कोर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] प्रधान या उच्च न्यायालय । सब से बड़ी कचहरी ।

विशेष—ईस्ट इंडिया कंपनी के राजत्व काल में कलकत्ते में सुप्रीम कोर्ट था, जिसमें तीन जज बैठते थे । अनन्तर महारानी विक्टोरिया के राजत्व काल में सुप्रीम कोर्ट तोड़ दिया गया और उसके स्थान पर हाई कोर्ट की स्थापना की गई ।

सुफरा-संज्ञा पुं० [देश०] टेबुल पर बिछाने का कपड़ा ।

सुफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा अमलतास । कर्णिकार । (२) बादाम । (३) अनार । दाड़िम । (४) बैर । बदर । (५) मूँग । मुद्ग । (६) कैथ । कपित्थ । (७) बिजौरा नीबू । मातुलुंग । (८) सुंदर फल । (९) अच्छा परिणाम ।

वि० (१) सुंदर फलवाला । (अस्त्र) (२) सफल । कृतकार्य । कृतार्थ । कामयाब ।

सुफलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक यादव जो अक्रूर का पिता था ।

सुफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रायण । इंद्रवारुणी । (२) पेठा । कुम्हड़ा । कुष्मांड । (३) गंभारी । काश्मरी । (४) केला । कदली । (५) मुनक्का । कपिला द्राक्षा ।

वि० (१) सुंदर या बहुत फल देनेवाली । अधिक फलोंवाली । (२) सुंदर फलवाली । जैसे,—तलवार ।

सुफेद-वि० दे० "सफेद" ।

सुफेन संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन ।

सुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] तिल ।

वि० अच्छी तरह बँधा हुआ ।

सुबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

वि० उत्तम बंधुओंवाला । जिसके अच्छे बंधु या मित्र हों ।

सुबड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] टलही चाँदी । ताँबा मिली हुई चाँदी ।

सुबभ्रु-वि० [सं०] (१) धूसर । (२) चिकनी भौंहवाला ।

सुबरनी-संज्ञा स्त्री० [सं० सुवर्ण ?] छड़ी ।

सुबल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिवजी का एक नाम । (२) एक पक्षी (वैनतेय की संतान) । (३) सुमति के एक पुत्र का नाम । (४) गंधार का एक राजा जो शकुनि का पिता और धृतराष्ट्र का ससुर था । (५) पुराणानुसार भौत्य मनु के पुत्र का नाम । (६) श्रीकृष्ण का एक सखा ।

वि० अत्यंत बलवान् । बहुत मजबूत ।

सुबलपुर-संज्ञा पुं० [सं०] कीकट राज्य का एक प्राचीन नगर ।

सुबह-संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रातःकाल । सबेरा ।

सुबहान-संज्ञा पुं० दे० "सुभान" । उ०—आब आतश अर्श कुरसी सूरते सुबहान । सिर्रः सिफत करदा बूदंद मारफत मुकाम ।—दादू ।

सुबहान अल्ला-अव्य० [अ०] अरबी का एक पद जिसका प्रयोग किसी बात पर हर्ष या आश्चर्य प्रकट करते हुए किया जाता है । वाह वाह ! क्यों न हो ! धन्य है ।

सुबाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवता । (२) एक उपनिषद् का नाम । (३) उत्तम बालक ।

वि० निर्बोध । अबोध । अज्ञान ।

सुबास-संज्ञा स्त्री० [सं० सु + बास] अच्छी महक । सुगंध ।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का धान जो अगहन महीने में होता है और जिसका चावल वर्षों तक रह सकता है । (२) सुंदर निवासस्थान ।

सुबासना-संज्ञा स्त्री० [सं० सु + बास] सुगंध । खुशबू । अच्छी महक । उ०—कहि लहि कौन सकै दुरी सोनजुही में जाइ । तन की सहज सुबासना देती जो न बताइ ।—बिहारी ।

क्रि० स० सुबासित करना । सुगंधित करना । महकाना ।

सुबासिक-वि० [सं० सु + बास] सुवासित । सुगंधित । खुशबूदार । उ०—रहा जो कनक सुबासिक ठाऊँ । कस न होए हीरा मनि नाऊँ ।—जायसी ।

सुबासित-वि० दे० "सुवासित" ।

सुबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नागासुर । (२) स्कंद का एक पार्षद । (३) एक दानव का नाम । (४) एक राक्षस का नाम । (५) एक यक्ष का नाम । (६) धृतराष्ट्र का पुत्र और चेदि का राजा । (७) पुराणानुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम । (८) शत्रुघ्न का एक पुत्र । (९) प्रतिबाहु का एक पुत्र । (१०) कुवलयाश्व का एक पुत्र । (११) एक बोधिसत्त्व का नाम । (१२) एक वानर का नाम ।

वि० दृढ़ या सुंदर बाहोंवाला । जिसकी बाहें अच्छी और मजबूत हों ।

संज्ञा स्त्री० [सं० सुबाहुन्] एक अप्सरा का नाम ।

सुबाहुक-संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम ।

सुबाहुशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र का एक नाम।

सुबिस्ता-संज्ञा पुं० दे० "सुभीता"।

सुबीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) पोस्तदाना। खसखस। (३) उत्तम बीज।

वि० उत्तम बीजवाला। जिसके बीज उत्तम हों।

सुबीता-संज्ञा पुं० दे० "सुभीता"।

सुबुक-वि० [फ़ा०] (१) हलका। कम बोझ का। भारी का उलटा। (२) सुंदर। खूबसूरत। उ०—बसन फटे उपटे सुबुक निबुक ददोर हाय।—रामसहाय।

यौ०—सुबुक रंग = सोना रंगने का एक प्रकार।

संज्ञा पुं० घोड़े की एक जाति। इस जाति के घोड़े मेहनती और हिम्मती होते हैं। इनका कद मझोला होता है। दौड़ने में ये बड़े तेज होते हैं। इन्हें दौड़ाक भी कहते हैं।

सुबुक रंदा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुबुक + हिं० रंदा] लोहे का एक औजार जो बढ़इयों के पेंचकश की तरह का होता है। इसकी धार तेज होती है। इससे बरतनों की कोर आदि छीलते हैं।

सुबुद्धि-वि० [सं०] उत्तम बुद्धिवाला। बुद्धिमान।

संज्ञा स्त्री० उत्तम बुद्धि। अच्छी अक्ल।

सुबुध-संज्ञा पुं० [सं० बुद्धि] बुद्धि। अक्ल। (डिं०)

वि० [सं०] (१) बुद्धिमान। अक्लमंद। (२) सावधान। सतर्क।

सुबू-संज्ञा पुं० दे० "सुबह"। उ०—जो निसि दिवस न हरि भजि पैये। तदपि न साँझ सुबू बिसरैये।—विश्राम।

सुबूत-संज्ञा पुं० दे० "सबूत"।

संज्ञा पुं० [अ०] वह जिससे कोई बात साबित हो। प्रमाण।

सुबोध-वि० [सं०] (१) अच्छी बुद्धिवाला। (२) जो कोई बात सहज में समझ सके। जिसे अनायास समझाया जा सके।

संज्ञा पुं० अच्छी बुद्धि। अच्छी समझ।

सुब्रह्मण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) कार्त्तिकेय। (४) उद्गाता पुरोहित या उसके तीन सहकारियों में से एक। (५) दक्षिण भारत का एक प्राचीन प्रांत।

वि० ब्रह्मण्ययुक्त। जिसमें ब्रह्मण्य हो।

सुब्रह्मण्य क्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ जो मद्रास प्रदेश के दक्षिण कनाड़ा जिले में है।

सुब्रह्मण्य तीर्थ-संज्ञा पुं० दे० "सुब्रह्मण्य क्षेत्र"।

सुब्रह्म वासुदेव-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

सुभंग-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का पेड़। नारिकेल वृक्ष।

सुभ*-वि० दे० "शुभ"।

सुभग-वि० [सं०] (१) सुंदर। मनोहर। मनोरम। (२) ऐश्वर्यशाली। (३) भाग्यवान्। खुशकिस्मत। (४) प्रिय। प्रियतम। (५) सुखद। आनंददायक।

संज्ञा पुं० (१) शिव। (२) सोहागा। टंकण। (३) चंपा। चंपक। (४) अशोक वृक्ष। (५) पीली कटसरैया। पीतझिंटी। लाल कटसरैया। रक्तझिंटी। (७) भूरि छरीला। पत्थर का फूल। शैलेय। शैलाख्य। शिलापुष्प। (८) गंधक। गंध पाषाण। (९) सुबल के एक पुत्र का नाम। (१०) जैनों के अनुसार वह कर्म्म जिससे जीव सौभाग्यवान होता है।

सुभगता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुभग होने का भाव। (२) सुंदरता। सौंदर्य। खूबसूरती। (३) प्रेम। (४) स्त्री के द्वारा होनेवाला सुख।

सुभगदत्त-संज्ञा पुं० [सं०] भौमासुर का पुत्र।

सुभगसेन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन राजा जो सिकंदर के आक्रमण के समय पश्चिम भारत के एक प्रांत में शासन करता था।

सुभगा-वि० [स्त्री०] (१) सुंदरी। खूबसूरत (स्त्री)। (२) (स्त्री) जिसका पति जीवित हो। सौभाग्यवती। सुहागिन।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जो अपने पति को प्रिय हो। प्रियतमा पत्नी। (२) स्कंद की एक मातृका का नाम। (३) पाँच वर्ष की कुमारी। (४) एक प्रकार की रागिनी। (५) कैवटी मोथा। कैवर्त्ती मुस्तक। (६) नीली दूब। नील दूर्वा। (७) हलदी। हरिद्रा। (८) तुलसी। सुरसा। (९) दहिंगना। प्रियंगु। वनिता। (१०) कस्तूरी। मृगनाभि। (११) सोना केला। सुवर्ण कदली। (१२) बेला। मोतिया। वनमल्लिका। (१३) चमेली। जाती पुष्प।

सुभगानंदनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक भैरव का नाम। काली पूजा के समय इनकी पूजा का भी विधान है।

सुभगाह्वया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कैवर्तिका लता। (२) हलदी। (३) सरिवन। (४) तुलसी। (५) नीली दूब। (६) सोना केला।

सुभग्ग-वि० दे० "सुभग"। उ०—मालव भूप उदग्ग चलेउ कर खग्ग जग्ग जित। तन सुभग्ग आभरन मग्ग जगमग्ग नग्ग सित।—गि० दास।

सुभट-संज्ञा पुं० [सं०] महान् योद्धा। अच्छा सैनिक। उ०—रुक्म और कलिंग को राउ मारयो, प्रथम बहुरि तिनके बहुत सुभट मारे।—सूर।

सुभटवंत-वि० [सं० सुभट + वत्] अच्छा योद्धा। उ०—लख्यो बलराम यह सुभटवंत है कोऊ हल मुशल शस्त्र अपना सँभारयो।—सूर।

सुभट वर्मा-संज्ञा पुं० एक हिंदू राजा जो ईस्वी १२वीं शताब्दी के अंत और १३वीं के प्रारंभ में विद्यमान था।

सुभट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत विद्वान व्यक्ति। बहुत बड़ा पंडित।

सुभड़-संज्ञा पुं० [सं० सुभट] सुभट । शूरवीर । (डिं०)

सुभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) सनत्कुमार का नाम । (३) वसुदेव का एक पुत्र जो पौरवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । (४) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम । (५) इध्मजिह्व के एक पुत्र का नाम । (६) प्लक्ष द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष का नाम । (७) सौभाग्य । (८) कल्याण । मंगल ।

वि० (१) भाग्यवान् । (२) भला । सज्जन ।

सुभद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवरथ । (२) बेल । बिल्ववृक्ष ।

सुभद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रीकृष्ण की बहन और अर्जुन की पत्नी ।

विशेष—एक बार अर्जुन रैवतक पर्वत पर सुभद्रा को देखकर मोहित हो गया । यह देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सुभद्रा को बलपूर्वक हरण कर उससे विवाह करने का आदेश दिया । तदनुसार अर्जुन सुभद्रा को द्वारका से हरण कर ले गया ।

(२) दुर्गा का एक रूप । (३) पुराणानुसार एक गौ का नाम । (४) संगीत में एक श्रुति का नाम । (५) दुर्गम की पत्नी । (६) अनिरुद्ध की पत्नी । (७) एक चस्वर का नाम । (८) बलि की पुत्री और अवीक्षित की पत्नी । (९) एक नदी । (१०) सरिवन । अनंतमूल । श्यामलता । (११) गंभारी । काश्मरी । (१२) मकड़ा घास । घृतमंडा ।

सुभद्राणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमान । त्रायमाण लता । त्रायंती ।

सुभद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रीकृष्ण की छोटी बहन । (२) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में न न र ल ग (।।।, ।।।, ऽ।ऽ, ।, ऽ) होता है ।

सुभद्रेश-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन ।

सुभर‡-वि० दे० "शुभ्र" । उ०—सुभर समुँद अस नयन दुइ, मानिक भरे तरंग । आवहिं तीर फिरावहीं, काल भवँर तेहि संग ।—जायसी ।

सुभव-वि० [सं०] उत्तम रूप से उत्पन्न ।

संज्ञा पुं० (१) एक इक्ष्वाकुवंशी राजा का नाम । (२) साठ संवत्सरों में से अंतिम संवत्सर का नाम ।

सुभसत्तरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो पति को अत्यंत प्रिय हो । सुभगा स्त्री ।

सुभांजन-संज्ञा पुं० [सं०] शुभांजन वृक्ष । सहिंजन ।

सुभा-संज्ञा स्त्री० [सं० शुभा] (१) सुधा । (२) शोभा । (३) पर नारी । (४) हरीतकी । हड़ । उ०—सुभा सुधा सोभा सुभा सुभा सिद्ध पर नारि । बहुरी सुभा हरीतकी हरिपद की रजधारि ।—अनेकार्थ० ।

सुभाइ‡-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव" । उ०—कमलनाल सज्जन हियौ दोनौं एक सुभाइ ।—रसनिधि ।

क्रि० वि० सहज भाव से । स्वभावतः । उ०—(क) कंटक सों कंटक काढ्यो अपने हाथ सुभाइ ।—सूर । (ख) अंग सुभाइ सुवास प्रकाशित लोपिहौ केशव क्यों करिकै ।—केशव ।

सुभाउ‡-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव" । उ०—मुख प्रसन्न शीतल सुभाउ, नित देखत नैन सिराइ ।—सूर ।

सुभाग वि० [सं०] भाग्यवान् । खुश किस्मत ।

‡संज्ञा पुं० दे० "सौभाग्य" ।

सुभागा संज्ञा स्त्री० [सं०] रौद्राश्व की एक पुत्री का नाम ।

सुभागी-वि० [सं० सुभाग] भाग्यवान । भाग्यशाली । खुश-किस्मत । उ०—कौन होगा जो न लेगा उस सुधा का स्वाद । छोड़ प्रांतिक गर्व अपना और व्यर्थ विवाद । जो सुभागी चख सकेंगे वह रसाल प्रसाद । वे कदापि नहीं करेंगे नागरी प्रतिवाद ।—सरस्वती ।

सुभागीन-संज्ञा पुं० [सं० सौभाग्य + ईन (प्रत्य०)] [स्त्री० सुभागिन] अच्छे भाग्यवाला । भाग्यवान् । सुभग । उ०—कोक कलान के बेनी प्रवीन चढ़ी अवलानि में एक पढ़ी है । आजु लले विपरीत मैं आँगी, सुभागीन यों मुख ऐसी कढ़ी है ।—सुंदरीसर्वस्व ।

सुभाग्य-वि० [सं०] अत्यंत भाग्यशाली । बहुत बड़ा भाग्यवान् ।

संज्ञा पुं० दे० "सौभाग्य" ।

सुभान-अव्य० [अ० सुब्हान] धन्य । वाह वाह । जैसे,—सुभान तेरी कुदरत ।

यौ०—सुभान अल्ला = ईश्वर धन्य है । (प्रायः इस पद का व्यवहार कोई अद्भुत पदार्थ या अनोखी घटना देखकर किया जाता है ।)

सुभाना‡-क्रि० अ० [हिं० शोभना] शोभित होना । देखने में भला जान पड़ना । (क्व०) उ०—भो निकुंज सुखपुंज सुभाना । मंडप मंडन मंडित नाना ।—गोपाल ।

सुभानु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चतुर्थ हुतास नामक युग के दूसरे वर्ष का नाम । (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

वि० सुंदर या उत्तम प्रकाश से युक्त । सुप्रकाशमान् ।

सुभाय‡-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव" । उ०—फल आए तरुवर झुके झुकत मेघ जल लाय । विभौ पाय सज्जन झुके यह पर-काजि सुभाय ।—लक्ष्मणसिंह ।

सुभायक‡-वि० [सं० स्वाभाविक] स्वाभाविक । स्वभावतः । उ०—अभिराम सचिक्कण श्याम सुगंध के धामहु ते जे सुभायक के । प्रतिकूल भये दुखशूल सबै किधौं शाल शृंगार के घायक के ।—केशव ।

सुभाव‡-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव" । उ०—(क) कहा सुभाव परयो सखि तेरो यह बिनवत हौं तोहिं ।—सूर । (ख) और के हास विलास न भावत साधुन को यह सिद्ध सुभाव ।—केशव ।

सुभावित-वि० [सं०] उत्तम रूप से भावना की हुई (औषध)।

सुभाषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) युयुधान के एक पुत्र का नाम। (२) सुंदर भाषण।

सुभाषित-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।
वि० सुंदर रूप से कहा हुआ। अच्छी तरह कहा हुआ।

सुभाषी-वि० [सं० सुभाषिन्] उत्तम रूप से बोलनेवाला। मिष्टभाषी।

सुभास-संज्ञा पुं० [सं०] सुधन्वा के एक पुत्र का नाम।
वि० सुप्रकाशमान्। खूब चमकीला।

सुभिक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा काल या समय जिसमें भिक्षा या भोजन खूब मिले और अन्न खूब हो। सुकाल। उ०—पुनि पद परत जलद बहु बर्षे। भयो सुभिक्ष प्रजा सब हर्षे।—रघुराज।

सुभिक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] धौ के फूल। धातु पुष्पिका।

सुभिषज्-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम चिकित्सा करनेवाला। अच्छा चिकित्सक।

सुभी-वि० स्त्री० [सं० शुभ] शुभकारक। मंगलकारक। उ०—है जलधार हार मुकुता मनों बक पंगति कुमुदमाल सुभी। गिरा गँभीर गरज मनु सुनि सखी स्यानि के श्रवन देखु भी।—सूर।

सुभीता-संज्ञा पुं० [देश०] (१) सुगमता। आसानी। सहूलियत। (२) सुअवसर। सुयोग। (३) आराम। चैन। (क्व०)

सुभीम-संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य का नाम।
वि० अत्यंत भीषण। बहुत भयावना।

सुभीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम।

सुभीरक-संज्ञा पुं० [सं०] ढाक का पेड़। पलाश वृक्ष।

सुभुज-वि० [सं०] सुंदर भुजाओंवाला। सुबाहु।

सुभुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

सुभूता-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा का नाम जिसमें प्राणी भले प्रकार स्थित होते हैं। (छांदोग्य)

सुभूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुशल। क्षेम। मंगल। (२) उन्नति। तरक्की।

सुभूतिक-संज्ञा पुं० [सं०] बेल का पेड़। बिल्व वृक्ष।

सुभूम-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तवीर्य जो जैनियों के आठवें चक्रवर्त्ती थे।

सुभूमि-संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।

सुभूमिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम जो महाभारत के अनुसार सरस्वती नदी के किनारे था।

सुभूमिप-संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।

सुभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।
वि० सुंदर भूषणों से अलंकृत। जो अच्छे अलंकार पहने हो।

सुभूषित-वि० [सं०] उत्तम रूप से भूषित। भली भाँति अलंकृत।

सुभृष-वि० [सं०] अत्यंत। बहुत अधिक।

सुभोग्य-वि० [सं०] सुख से भोगने योग्य। अच्छी तरह भोगने के लायक।

सुभौटी*|-संज्ञा स्त्री० [सं० शोभा] शोभा। उ०—मौन ते कौन सुभौंटी रहे, बिन बोले खुले घर को न किवारो।—हनुमान।

सुभौम-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक चक्रवर्त्ती राजा का नाम जो कार्त्तवीर्य्य का पुत्र था।

विशेष—जैन हरिवंश में लिखा है कि जब परशुराम ने कार्त्तवीर्यार्जुन का वध किया, तब कार्त्तवीर्य की पत्नी अपने बच्चे सुभौम को लेकर कुशिकाश्रम में चली गई और वहीं उसका लालन पालन तथा शिक्षा दीक्षा हुई। बड़े होने पर सुभौम ने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिये बीस बार पृथ्वी को ब्राह्मण-शून्य किया और इस प्रकार क्षत्रियों का प्राधान्य स्थापित किया।

सुभ्र-वि० दे० "शुभ्र"
संज्ञा पुं० [हिं०] जमीन में का बिल।

सुभ्राज-संज्ञा पुं० [सं०] देवभ्राज के एक पुत्र का नाम।

सुभ्रु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नारी। स्त्री। औरत। (२) स्कंद की एक मातृका का नाम।
वि० सुंदर भौंहोंवाला। जिसकी भवें सुंदर हों।

सुमंगल-वि० [सं०] अत्यंत शुभ। कल्याणकारी। (२) सदाचारी।
संज्ञा पुं० एक प्रकार का विष।

सुमंगला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मकड़ा नामक घास। (२) स्कंद की एक मातृका का नाम। (३) एक अप्सरा का नाम। (४) एक नदी जो कालिकापुराण के अनुसार हिमालय से निकलकर मणिकूट (कामाक्षा) प्रदेश में बहती है।

सुमंगली-संज्ञा स्त्री० [सं० सुमंगल] विवाह में सप्तपदी पूजा के बाद पुरोहित को दी जानेवाली दक्षिणा।

विशेष—सप्तपदी पूजा के बाद कन्या-पक्ष का पुरोहित वर के हाथ में सेंदुर देता है और वर उसे वधू के मस्तक में लगा देता है। इसके उपलक्ष में पुरोहित को जो नेग दिया जाता है, उसे सुमंगली कहते हैं।

सुमंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

सुमंत-संज्ञा पुं० [सं० सुमन्त्र] राजा दशरथ का मंत्री और सारथि। जब रामचंद्र वन को जाने लगे थे, तब यही सुमंत (सुमंत्र) उन्हें रथ पर बैठाकर कुछ दूर छोड़ आया था।

सुमंतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मुनि का नाम जो वेदव्यास के शिष्य, अथर्व्ववेद के शाखाप्रचारक तथा एक स्मृति या धर्म्मशास्त्र के प्रणेता थे। (२) जह्नु के एक पुत्र का नाम।

सुमंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा दशरथ का मंत्री और सारथि। (२) अंतरिक्ष के एक पुत्र का नाम। (३) कल्कि का बड़ा भाई।

सुमंत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] कल्कि का बड़ा भाई।

विशेष—कल्किपुराण में लिखा है कि कल्कि ने अपने तीन बड़े भाइयों (प्राज्ञ, कवि और सुमंत्रक) के सहयोग से अधर्म का नाश और धर्म का स्थापन किया था।

सुमंथन-संज्ञा पुं० [सं० सु+मंथ=पर्वत] मंदर पर्वत। उ०—श्रुति कदंब पय सागर सुंदर। गिरा सुमंथन शैल पुरंधर।—शं० दि०।

सुमंद्र-संज्ञा पुं० दे० "सुमंद्र"।

सुमंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की शक्ति।

सुमंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १६+११ के विराम से २७ मात्राएँ तथा अंत में गुरु लघु होते हैं। यह सरसी नाम से प्रसिद्ध है। (होली में जो 'कबीर' गाए जाते हैं, वे प्रायः इसी छंद में होते हैं।)

सुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुष्प। (२) चंद्रमा। (३) आकाश।
संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोड़े या दूसरे चौपायों के खुर। टाप।
संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो आसाम में होता है और जिस पर 'मूगा' (रेशम) के कीड़े पाले जाते हैं।

सुमखारा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुम+खार] वह घोड़ा जिसकी एक (आँख की) पुतली बेकार हो गई हो।

सुमगधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अनाथपिंडिका की पुत्री का नाम।

सुमणि-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद के एक पार्षद का नाम।

सुमत वि० [सं०] उत्तम ज्ञान से युक्त। ज्ञानवान। बुद्धिमान्।
संज्ञा स्त्री० दे० "सुमति"।

सुमतराश-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुम+तराश] घोड़े के नाखून या खुर काटने का औजार।

सुमतिंजय-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सुमति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दैत्य का नाम। (२) सावर्ण मन्वंतर के एक ऋषि का नाम। (३) सूत के एक पुत्र या शिष्य का नाम। (४) भरत के एक पुत्र का नाम। (५) सोमदत्त के एक पुत्र का नाम। (६) सुपार्श्व के एक पुत्र का नाम। (७) जनमेजय के एक पुत्र का नाम। (८) दृढ़सेन के एक पुत्र का नाम। (९) विदूरथ का एक पुत्र। (१०) वर्तमान अवसर्पिणी के पाँचवें अर्हत् या गत उत्सर्पिणी के तेरहवें अर्हत का नाम। (११) इक्ष्वाकुवंशी राजा ककुत्स्थ के पुत्र का नाम।
संज्ञा स्त्री० (१) सगर की पत्नी का नाम। (पुराणों के अनुसार यह ६०००० पुत्रों की माता थी।) (२) क्रतु की पुत्री का नाम। (३) विष्णुयश की पत्नी और कल्कि की माता। (४) सुंदर मति। सुबुद्धि। अच्छी बुद्धि। (५) मेल। (६) भक्ति। प्रार्थना। (७) मैना। सारिका पक्षी।
वि० अच्छी बुद्धिवाला। अत्यंत बुद्धिमान्।

सुमति बाई-संज्ञा स्त्री० [सं० सुमति+हिं० बाई] एक भक्तिन का नाम जो ओड़छा के राजा मधुकर शाह की रानी गणेश-बाई की सहचरी थी।

सुमतिमेरु-संज्ञा पुं० [सं०] हल का एक भाग।

सुमतिरेणु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक यक्ष का नाम। (२) एक नागासुर का नाम।

सुमद-वि० [सं०] मदोन्मत्त। मतवाला।
संज्ञा पुं० एक वानर जो रामचंद्र की सेना का सेनापति था।

सुमदुम -वि० [अनु० या देश०] मोटा। तोंदल। स्थूल।

सुमदन संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़। आम्र वृक्ष।

सुमदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] कालिकापुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सुमदनात्मजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

सुमधुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शाक। जीव शाक।
वि० अत्यंत मधुर। बहुत मीठा।

सुमध्यमा-वि० स्त्री० [सं०] सुंदर कमरवाली (स्त्री)।

सुमनःपत्र-संज्ञा पुं० दे० "सुमनःपत्रिका"।

सुमनःपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री। जातीपत्री।

सुमनःफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कैथ। कपित्थ। (२) जायफल। जाती फल।

सुमन-संज्ञा पुं० [सं० सुमनस्] (१) देवता। (२) पंडित। विद्वान्। (३) पुष्प। फूल। (४) गेहूँ। (५) धतूरा। (६) नीम। (७) घीकरंज। घृतकरंज। (८) एक दानव का नाम। (९) ऊरु और आग्नेयी के पुत्र का नाम। (१०) उल्मुक के एक पुत्र का नाम। (११) हर्यश्व के पुत्र का नाम। (१२) प्लक्ष द्वीप के अंतर्गत एक पर्वत। (१३) एक नागासुर का नाम (बौद्ध)। (१४) मित्र। (डिं०)
वि० (१) उत्तम मनवाला। सहृदय। दयालु। (२) मनोहर। सुंदर।

सुमनचाप-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव जिसका धनुष फूलों का माना गया है।

सुमनस-संज्ञा पुं० [सं० सुमनस्] (१) देवता। (२) पुष्प। फूल।
वि० प्रसन्न चित्त। उ०—अंधकार तब मिट्यो दिशानन। भए प्रसन्न देव मुनि आनन। बरषहिं सुमनस सुमनस सुमनस। जय जय करहिं भरे आनँद रस।—रघुराज।

सुमनसधुज-संज्ञा पुं० [सं० सुमनस+ध्वज] कामदेव। (डिं०)

सुमनस्क-वि० [सं०] प्रसन्न। सुखी।

सुमना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमेली। जाती पुष्प। (२) सेवती। शतपत्री। (३) कबरी गाय। (४) कैकेयी का

वास्तविक नाम। (५) दम की पत्नी का नाम। (६) मधु की पत्नी और वीरव्रत की माता का नाम।

सुमनामुख-वि० [सं०] सुंदर मुखवाला।

सुमनायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

सुमनास्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम।

सुमनित-वि० [सं० सुमणि+त (प्रत्य०)] सुंदर मणि से युक्त। उत्तम मणियों से जड़ा हुआ। उ०—केशव कमल मूल अलिकुल कुनितकि कैधौं प्रतिधुनित सुमनित निचयके।—केशव।

सुमनोज्ञघोष-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

सुमनोत्तरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजाओं के अंतःपुर में रहनेवाली स्त्री।

सुमनोमुख-संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम।

सुमनौकस-संज्ञा पुं० [सं०] देवलोक। स्वर्ग।

सुमन्यु-संज्ञा पुं० [सं०] एक देवगंधर्व का नाम।

वि० अत्यंत क्रोधी। बहुत गुस्सेवर।

सुमफटा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुम+हिं० फटना] एक प्रकार का रोग जो घोड़ों के खुर के ऊपरी भाग से तलवे तक होता है। यह अधिकतर अगले पाँवों के अंदर तथा पिछले पाँवों के खुरों में होता है। इससे घोड़ों के लँगड़े हो जाने की संभावना रहती है।

सुमर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) सहज मृत्यु।

सुमरनॐ-संज्ञा पुं० दे० "स्मरण"।

संज्ञा स्त्री० दे० "सुमरनी"।

सुमरनाॐ†-क्रि० स० [सं० स्मरण] (१) स्मरण करना। चिंतन करना। ध्यान करना। (२) बार बार नाम लेना। जपना।

सुमरनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुमरना+ई (प्रत्य०)] नाम जपने की छोटी माला जो सत्ताइस दानों की होती है।

सुमरा-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो भारत की नदियों और विशेषकर गरम झरनों में पाई जाती है। यह पाँच इंच तक लंबी होती है। इसे महुवा भी कहते हैं।

सुमरीचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सांख्य के अनुसार पाँच बाह्य-तुष्टियों में से एक।

सुमल्लिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

सुमसायक-संज्ञा पुं० [सं० सुमन+सायक] कामदेव। (डिं०)

सुमसुखड़ा-वि० [फ़ा० सुम+हिं० सूखना] (घोड़ा) जिसके खुर सूखकर सिकुड़ गए हों।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का रोग जिसमें घोड़े के खुर सूखकर सिकुड़ जाते हैं।

सुमह-संज्ञा पुं० [सं०] जह्नु के एक पुत्र का नाम।

सुमहाकपि-संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम।

सुमात्रा-संज्ञा पुं० मलय द्वीपपुंज का एक बड़ा द्वीप जो बोर्नियो के पश्चिम और जावा के उत्तर पश्चिम में है।

सुमाद्रेय-संज्ञा पुं० [सं० माद्रेय] सहदेव। (डिं०)

सुमानस-वि० [सं०] अच्छे मन का। सहृदय।

सुमानिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात अक्षर होते हैं जिनमें से पहला, तीसरा, पाँचवाँ और सातवाँ अक्षर लघु तथा अन्य अक्षर गुरु होते हैं।

सुमानी-वि० [सं० स्वमानिन्] बड़ा अभिमानी। स्वाभिमानी।

सुमाय-वि० [सं०] (१) अत्यंत बुद्धिमान्। (२) मायायुक्त।

सुमार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम मार्ग। अच्छा रास्ता। सुपथ। सन्मार्ग।

सुमार्ह-वि० [सं०] अत्यंत सुंदर।

सुमाल-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

सुमालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में छः वर्ण होते हैं। इनमें से दूसरा और पाँचवाँ वर्ण लघु तथा अन्य वर्ण गुरु होते हैं। (२) एक गंधर्वी का नाम।

सुमाली-संज्ञा पुं० [सं० सुमालिन्] (१) एक राक्षस का नाम जो सुकेश राक्षस का पुत्र था। इसी सुमाली की कन्या कैकसी के गर्भ से विश्रवा से रावण, कुंभकर्ण, शूर्पनखा और विभीषण उत्पन्न हुए थे। (२) एक वानर का नाम।

संज्ञा पुं० [फ़ा० शुमाल] एक अरब जाति। अफ्रिका के पश्चिमी किनारे पर तथा अदन में इस जाति का निवास है। गुलामों का व्यवसाय करनेवाले अफ्रिका से इन्हें ले आए थे। ये असभ्य अवस्था में रहते हैं।

सुमाल्य-संज्ञा पुं० [सं०] महापद्म के एक पुत्र का नाम।

सुमाल्यक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराण के अनुसार एक पर्वत का नाम।

सुमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (२) अभिमन्यु के सारथि का नाम। (३) मगध का एक राजा जो अर्हत सुव्रत का पिता था। (४) गद के एक पुत्र का नाम। (५) श्याम का एक पुत्र। (६) शमीक का एक पुत्र। (७) वृष्णि का एक पुत्र। (८) इक्ष्वाकु वंश के अंतिम राजा सुरथ के पुत्र का नाम। (९) एक दानव का नाम। (१०) सौराष्ट्र के अंतिम राजा का नाम जो कर्नल टाड के अनुसार विक्रमादित्य के समसामयिक थे। इन्होंने राजपूताने में जाकर मेवाड़ के राणा वंश की स्थापना की थी। भागवत में इनका उल्लेख है।

वि० उत्तम मित्रोंवाला।

सुमित्रभू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैनियों के चक्रवर्ती राजा सगर का नाम। (२) वर्त्तमान अवसर्पिणी के बीसवें अर्हत् का नाम।

सुमित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दशरथ की एक पत्नी जो लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न की माता थी। (२) मार्कंडेय की माता का नाम।

सुमित्रानंदन-संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मण और शत्रुघ्न ।

सुमित्र्य-वि० [सं०] उत्तम मित्रोंवाला । जिसके अच्छे मित्र हों ।

सुमिरण*-संज्ञा पुं० दे० "स्मरण" ।

सुमिरना*†-क्रि० स० दे० "सुमरना" । उ०—जेहि सुमिरत सिधि होइ गणनायक करिवर बदन ।—तुलसी ।

सुमिरनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुमरनी" । उ०—अपनी सुमिरनी डारि दीन्ह्यो तुरत ही धारा बही ।—रघुराज ।

सुमिरिनिया†-संज्ञा स्त्री० दे० "सुमरनी" । उ०—पीतम इक सुमिरिनिया मुहि देइ जाहु—रहीम ।

सुमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) गणेश । (३) गरुड़ के एक पुत्र का नाम । (४) द्रोण के एक पुत्र का नाम । (५) एक नागासुर । (६) एक असुर । (७) किन्नरों का राजा । (८) एक ऋषि । (९) एक वानर । (१०) पंडित । आचार्य । (११) एक प्रकार का जल पक्षी । (१२) एक प्रकार का शाक । (१३) एक राजा का नाम । (१४) राई । राजिका । राजसर्षप । (१५) वनबर्बरी । जंगली बर्बरी । (१६) श्वेत तुलसी । (१७) सुंदर मुख ।

वि० (१) सुंदर मुखवाला । (२) सुंदर । मनोरम । मनोहर । (३) प्रसन्न । (४) अनुकूल । कृपालु ।

सुमुखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरी स्त्री ।

सुमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जिसका मुख सुंदर हो । सुंदर मुखवाली स्त्री । (२) दर्पण । आइना । (३) संगीत में एक प्रकार की मूर्छना । (४) एक अप्सरा का नाम । (५) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं । इनमें से पहला आठवाँ तथा ग्यारहवाँ लघु और अन्य अक्षर गुरु होते हैं । (६) नील अपराजिता । नीली कोयल । (७) शंखपुष्पी । शंखाहुली । कौडियाली ।

सुमुष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] बकायन । विषमुष्टि । महानिंब ।

सुमूर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक गण का नाम ।

सुमूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद सहिंजन । श्वेत शिग्रु । (२) उत्तम मूल ।

वि० उत्तम मूलवाला । जिसकी जड़ अच्छी हो ।

सुमूलक-संज्ञा पुं० [सं०] गाजर ।

सुमूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरिवन । शालपर्णी । (२) पिठवन । पृश्निपर्णी ।

सुमृग-संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जहाँ बहुत से जंगली जानवर हों । शिकार खेलने के लिये अच्छा मैदान ।

सुमृत*-संज्ञा स्त्री० दे० "स्मृति" । उ०—श्रुति-गुरु साधु-सुमृत-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी ।—तुलसी ।

सुमृति*-संज्ञा स्त्री० दे० "स्मृति" । उ०—देव कवितान पुण्य कीरति वितान, तेरे सुमृति पुराण गुण गान श्रुति भरिये । —देव ।

सुमेखल-संज्ञा पुं० [सं०] मूँज । मुंजतृण ।

सुमेड़ी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] खाट बुनने का बाध ।

सुमेद्य-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक पर्वत का नाम ।

सुमेध-वि० दे० "सुमेधा" । उ०—ताहि कहत आच्छेप हैं भूषन सुकवि सुमेध ।—भूषण ।

सुमेधा-वि० [सं० सुमेधस] उत्तम बुद्धिवाला । सबुद्धि । बुद्धिमान ।

संज्ञा पुं० (१) चाक्षुष मन्वंतर के एक ऋषि का नाम । (२) वेदमित्र के एक पुत्र का नाम । (३) पाँचवें मन्वंतर के विशिष्ट देवता । (४) पितरों का एक गण या भेद ।

संज्ञा स्त्री० मालकंगनी । ज्योतिषमती लता ।

सुमेध्य-वि० [सं०] अत्यंत पवित्र । बहुत पवित्र ।

सुमेर-संज्ञा पुं० [सं० सुमेरु] (१) सुमेरु पर्वत । उ०—(क) शोभित सुंदर केशव कामिनि जिमि सुमेर पर घन सह-दामिनि ।—गिरिधर । (ख) संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि, तुरत लुटावत विलंब उर धारै ना ।—पद्माकर । (२) गंगाजल रखने का बड़ा पात्र ।

सुमेरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पुराणोक्त पर्वत जो सोने का कहा गया है ।

विशेष—भागवत के अनुसार सुमेरु पर्वतों का राजा है । यह सोने का है । इस भूमंडल के सात द्वीपों में प्रथम द्वीप जंबू द्वीप के—जिसकी लंबाई ४० लाख कोस और चौड़ाई ४ लाख कोस है—नौ वर्षों में से इलावृत्त नामक अभ्यंतर वर्ष में यह स्थित है । यह ऊँचाई में उक्त द्वीप के विस्तार के समान है । इस पर्वत का शिरोभाग १२८ हजार कोस, मूल देश ६४ हजार कोस और मध्य भाग ४ हजार कोस का है । इसके चारों ओर मंदर, मेरु मंदर, सुपार्श्व और कुमुद नामक चार आश्रित पर्वत हैं । इनमें से प्रत्येक की ऊँचाई और फैलाव ४० हजार कोस है । इन चारों पर्वतों पर आम, जामुन, कदंब और बड़ के पेड़ हैं जिनमें से प्रत्येक की ऊँचाई चार सौ कोस है । इनके पास ही चार ह्रद भी हैं जिनमें पहला दूध का, दूसरा मधु का, तीसरा ऊख के रस का और चौथा शुद्ध जल का है । चार उद्यान भी हैं जिनके नाम नंदन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र हैं । देवता इन उद्यानों में सुरांगनाओं के साथ विहार करते हैं । मंदार पर्वत के देवच्युत वृक्ष और मेरु पर्वत के जंबू वृक्ष के फल, बहुत स्थूल और विराट्काय होते हैं । इनसे दो नदियाँ—अरुणोदा और जंबू नदी—बन गई हैं । जंबू नदी के किनारे की जमीन की मिट्टी तो रस से सिक्त होने के कारण सोना ही हो गई है । सुपार्श्व पर्वत के महाकदंब वृक्ष से जो मधुधारा प्रवाहित होती है, उसका पान करने-वाले के मुँह से निकली हुई सुगंध चार सौ कोस तक

जाती है। कुमुद पर्वत का वट वृक्ष तो कल्पतरु ही है। यहाँ के लोग आजीवन सुख भोगते हैं। सुमेरु के पूर्व जठर और देवकूट, पश्चिम में पवन और पारिपात्र, दक्षिण में कैलास और करवीर गिरि तथा उत्तर में त्रिशृंग और मकर पर्वत स्थित हैं। इन सब की ऊँचाई कई हजार कोस है। सुमेरु पर्वत के ऊपर मध्य भाग में ब्रह्मा की पुरी है, जिसका विस्तार हजारों कोस है। यह पुरी भी सोने की है। नृसिंहपुराण के अनुसार सुमेरु के तीन प्रधान शृंग हैं जो स्फटिक, वैदूर्य और रत्नमय हैं। इन शृंगों पर २१ स्वर्ग हैं जिनमें देवता लोग निवास करते हैं।

(२) शिवजी का एक नाम। (३) जप माला के बीच का बड़ा दाना जो और सब दानों के ऊपर होता है। इसी से जप का आरंभ और इसी पर उसकी समाप्ति होती है। (४) उत्तर ध्रुव। वि० दे० "ध्रुव"। (५) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १२ + ५ के विश्राम से १७ मात्राएँ होती हैं, अंत में लघु गुरु नहीं होते, पर यगण अत्यंत श्रुतिमधुर होता है। इसकी १,८ और १५वीं मात्राएँ लघु होती हैं। किसी किसी ने इसके एक चरण में १९ और किसी ने २० मात्राएँ मानी हैं। पर यह सर्वसम्मत नहीं है।

वि० (१) बहुत ऊँचा। (२) बहुत सुंदर।

सुमेरुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुमेरु पर्वत से निकली हुई नदी।

सुमेरुवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह रेखा जो उत्तर ध्रुव से २३॥ अक्षांश पर स्थित है।

सुमेरुसमुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर महासागर।

सुम्नी-वि० [सं० सुम्निन्] (१) दयालु। कृपालु। मेहरबान। (२) अनुकूल।

सुम्मा-संज्ञा पुं० [देश०] बकरा। (बाजारू) (२) दे० "सुंबा"।

सुम्मी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) सुनारों का एक औजार जिससे वे घुंडी और बरेखी की नोक उभाड़ते हैं। (२) दे० "सुंबी"।

सुम्मीदार सबरा-संज्ञा पुं० [हिं० सुम्मी + फा० दार (प्रत्य०) + सबरा (औजार)] वह सबरा जिससे कसेरे परात में बुँदकी निकालते हैं।

सुम्ह-संज्ञा पुं० [सं० सुम्भ] एक जाति का नाम।

संज्ञा पुं० दे० "सुम"।

सुम्हार-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो युक्त-प्रदेश में होता है।

सुयंवर-संज्ञा पुं० दे० "स्वयंवर"।

सुयजु-संज्ञा पुं० [सं० सुयजुस्] महाभारत के अनुसार भूमंजु के पुत्र का नाम।

सुयज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुचि प्रजापति के एक पुत्र का नाम जो आकूति के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (२) वसिष्ठ के एक पुत्र का नाम। (३) ध्रुव के एक पुत्र का नाम। (४) उशीनर के एक राजा का नाम। (५) उत्तम यज्ञ।

वि० उत्तमता या सफलता से यज्ञ करनेवाला। जिसने उत्तमता से यज्ञ किया हो।

सुयज्ञा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभौम की पत्नी का नाम।

सुयत-वि० [सं०] (१) उत्तम रूप से संयत। सुसंयत। (२) जितेंद्रिय।

सुयम-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार देवताओं का एक गण जिनका जन्म सुयज्ञ की पत्नी दक्षिणा के गर्भ से हुआ था।

सुयमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु।

सुयश-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा यश। अच्छी कीर्त्ति। सुख्याति। सुकीर्ति। सुनाम। जैसे,—आजकल चारों ओर उनका सुयश फैल रहा है।

वि० [सं० सुयशस्] उत्तम यशवाला। यशस्वी। कीर्तिमान्।

संज्ञा पुं० भागवत के अनुसार अशोकवर्धन के पुत्र का नाम।

सुयशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दिवोदास की पत्नी का नाम। (२) एक अर्हत् की माता का नाम। (३) परीक्षित की एक स्त्री का नाम। (४) एक अप्सरा का नाम। (५) अवसर्पिणी।

सुयष्टव्य-संज्ञा पुं० [सं०] रैवत मनु के पुत्र का नाम।

सुयाति-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार नहुष के एक पुत्र का नाम।

सुयाम-संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

सुयामुन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) राजभवन। राजप्रासाद। (३) एक प्रकार का मेघ। (४) एक पर्वत का नाम।

सुयुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] धर्मयुद्ध। न्यायसम्मत युद्ध।

सुयोग-संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर योग। संयोग। सुअवसर। अच्छा मौका। जैसे,—बड़े भाग्य से यह सुयोग हाथ आया है।

सुयोग्य-वि० [सं०] बहुत योग्य। लायक। काबिल। जैसे,—उनके दोनों पुत्र सुयोग्य हैं।

सुयोधन-संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के बड़े पुत्र दुर्योधन का एक नाम।

सुरंग-वि० [सं०] (१) जिसका रंग सुंदर हो। सुंदर रंग का। (२) सुंदर। सुडौल। उ०—(क) सब पुर देखि धनुषपुर देख्यो देखे महल सुरंग।—सूर। (ख) अलकावलि मुक्तावलि गूँथी डोर सुरंग बिराजै।—सूर। (ग) गति हेरि कुरंग कुरंग फिरैं चतुरंग तुरंग सुरंग बने।—गि० दास। (३) रसपूर्ण। उ०—रसनिधि सुंदर मीत के रंग चुचौंहैं नैन। मन पट कौं कर देत हैं तुरत सुरँग ये नैन।—रसनिधि।

संज्ञा पुं० (१) शिंगरफ। हिंगुल। (२) पतंग। बक्कम। (३) नारंगी। नागरंग। (४) रंग के अनुसार घोड़ों का एक भेद।

संज्ञा स्त्री० [सं० सुरंगा] (१) जमीन या पहाड़ के नीचे खोदकर या बारूद से उड़ाकर बनाया हुआ रास्ता जो लोगों के आने जाने के काम में आता है। जैसे,—इस पहाड़ में रेल कई सुरंगें पार करके जाती है। (२) किले या दीवार आदि के नीचे जमीन के अंदर खोदकर बनाया हुआ वह तंग रास्ता जिसमें बारूद आदि भरकर और उसमें आग लगाकर किला या दीवार उड़ाते हैं। उ०—भरि बारूद सुरंग लगावैं। पुरी सहित जदु भटन उड़ावैं।—गोपाल।

क्रि० प्र०—उड़ाना।—लगाना।

(३) एक प्रकार का यंत्र जिसमें बारूद से भरा हुआ एक पीपा होता है और जिसके ऊपर एक तार निकला हुआ होता है। यह यंत्र समुद्र में डुबा दिया जाता है और इसका तार ऊपर की ओर उठा रहता है। जब किसी जहाज का पेंदा इस तार से छू जाता है, तो अपनी भीतरी विद्युत्-शक्ति की सहायता से बारूद में आग लग जाती है जिसके फटने से ऊपर का जहाज फटकर डूब जाता है। इसका व्यवहार प्रायः शत्रुओं के जहाज नष्ट करने में होता है। (४) वह सूराख जो चोर लोग दीवार में बनाते हैं। सेंध।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—सेंध मारना = सेंध लगाकर चोरी करना।

सुरंगद—संज्ञा पुं० [सं०] पतंग। बक्कम। आल।

सुरंगधातु—संज्ञा पुं० [सं०] गेरू मिट्टी।

सुरंगयुक—संज्ञा पुं० [सं० सुरंगयुज] सेंध लगानेवाला। चोर।

सुरंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कैवर्त्तिका लता। (२) सेंध।

सुरंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्वा। मुर्हरी। चुरनहार। (२) उपोदिका। पोई का साग। (३) श्वेत काकमाची। सफेद मकोय।

सुरंगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकनासा। कौआठोंठी। (२) पुन्नाग। सुलतान चंपा। (३) रक्त शोभांजन। लाल सहिंजन। (४) आल का पेड़ जिससे आल का रंग बनता है।

सुरंजन—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़।

सुरंधक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जनपद का नाम। (२) इस जनपद का निवासी।

सुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) सूर्य। (३) पंडित। विद्वान्। (४) मुनि। ऋषि। (५) पुराणानुसार एक प्राचीन नगर का नाम जो चंद्रप्रभा नदी के तट पर था। (६) अग्नि का एक विशिष्ट रूप।

संज्ञा पुं० [सं० स्वर] स्वर। ध्वनि। आवाज। वि० दे० "स्वर"।

यौ०—सुरतान। सुरदीप।

क्रि० प्र०—छेड़ना।—देना।—भरना।—मिलाना।

मुहा०—सुर में सुर मिलाना = हाँ में हाँ मिलाना। चापलूसी करना। सुर भरना = किसी गाने या बजानेवाले को सहारा देने के लिये उसके साथ कोई एक सुर अलापना या बाजे आदि से निकालना।

सुरकंत॥—संज्ञा पुं० [सं० सुर + कान्त] इंद्र। उ०—मतिमंत महा छितिकंत मनि चढ़ि द्विदंत सुरकंत सम।—गि० दास।

सुरक—संज्ञा पुं० [सं० सुर] नाक पर का वह तिलक जो भाल की आकृति का होता है। उ०—खौरि-पनिच भ्रकुटी-धनुषु बधिकु समरु, तजि कानि। हतनु तरुन मृग तिलकसर सुरक-भाल, भरि तानि।—बिहारी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सुरकना] सुरकने की क्रिया या भाव।

सुरकना—क्रि० स० [अनु०] (१) किसी तरल पदार्थ को धीरे धीरे हवा के साथ खींचते हुए पीना। (२) हवा के साथ ऊपर की ओर धीरे धीरे खींचना।

सुरकरी—संज्ञा पुं० [सं० सुरकरिन्] देवताओं का हाथी। दिग्गज। सुरराज। उ०—जु नू इच्छा वाके करि विमल पानी पियन की। झुके आधो.लंबे तन गगन में ज्यों सुरकरी।—राजा लक्ष्मणसिंह।

सुरकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० सुर + कली] एक रागिनी का नाम।

सुरकानन—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के बिहार करने का वन।

सुरकारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के शिल्पकार, विश्वकर्म्मा।

सुरकार्म्मुक—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

सुरकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु। देवकाष्ठ।

सुरकुदाव॥—संज्ञा पुं० [सं० सुर = स्वर, सं० कु + हिं० दाँव = धोखा] स्वर के द्वारा धोखा देना। स्वर बदलकर बोलना, जिससे लोग धोखे में आ जायँ। उ०—चौक चारु करि कूप ढारु धरियार बाँधि घर। मुक्ति मोल करि खड्ग खोलि सिंघिहि निचोल वर। हय कुदाव दे सुरकुदाव गुन गाव रंक को। जानु भाव शिवधाम धाव धन ल्याउ लंक को।—केशव।

सुरकुनठ—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार ईशान कोण में स्थित एक देश का नाम।

सुरकुल—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का निवासस्थान।

सुरकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

सुरकृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिलोय। गुडुची।

सुरकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं या इंद्र की ध्वजा (२) इंद्र। उ०—द्वारपाल के वचन सुनत नृप उठे समाज समेतू। लेन चले मुनि की अगुवाई जिमि विधि कहँ सुरकेतू।—रघुराज।

सुरक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोशम। कोशाम्र। (२) सोन गेरू। स्वर्णगैरिक।

सुरक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मुनि का नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वि० उत्तम रूप से रक्षित। जिसकी भली भाँति रक्षा की गई हो।

सुरक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम रूप से रक्षा करने की क्रिया। रखवाली। हिफ़ाज़त।

सुरक्षित-वि० [सं०] जिसकी भली भाँति रक्षा की गई हो। उत्तम रूप से रक्षित। अच्छी तरह रक्षा किया हुआ।

सुरक्षी-संज्ञा पुं० [सं० सुरक्षिन्] उत्तम या विश्वस्त रक्षक। अच्छा अभिभावक या रक्षक।

सुरखंडनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा जो सुरमंडलिका भी कहलाती है।

सुरख-वि० दे० "सुर्ख"। उ०—हरषि हिये पर तिय धरयो सुरख सीप को हार।—पद्माकर।

सुरखा-वि० दे० "सुर्ख"। उ०—सुरखा अरु संजाब सुरमई अबलख भारी।—सूदन।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लंबा पौधा जिसमें पत्ते बहुत कम होते हैं।

सुरख़ाब-संज्ञा पुं० [फ़ा०] चकवा।

मुहा०—सुरख़ाब का पर लगना = विलक्षणता या विशेषता होना। अनोखापन होना। जैसे,—तुम में क्या कोई सुरख़ाब का पर लगा है, जो पहले तुम्हें दें।

संज्ञा स्त्री० एक नदी का नाम जो बलख में बहती है।

सुरखिया-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुर्ख + इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का पक्षी जो सिर से गरदन तक लाल होता है। इसकी पीठ भी लाल होती है, पर चोंच पीली और पैर काले होते हैं।

सुरखिया बगला-संज्ञा पुं० [हिं० सुर्ख + बगला] एक प्रकार का बगला जिसे गाय बगला भी कहते हैं।

सुरखी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सुर्ख] (१) ईंटों का बनाया हुआ महीन चूरा जो इमारत बनाने के काम में आता है। (२) दे० "सुर्खी"।

यौ०-सुरखी चूना।

सुरखुरू-वि० दे० "सुर्खरू"। उ०—अलहदार भल तेहि कर गुरू। दीन दुनी रोसन सुरखुरू।—जायसी।

सुरगंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फोड़ा।

सुरग*†-संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग"। उ०—जीत्यौ सुरग जीति दिसि चारयौ।—लाल कवि।

सुरगज-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं या इंद्र का हाथी।

सुरगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] दैवी गति। भावी।

सुरगबेसौं-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्गवेश्या] अप्सरा। (डिं०)

सुरगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] देव-संतान।

सुरगाय-संज्ञा स्त्री० [सं० सुर + गो] कामधेनु।

सुरगायक-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गायक, गंधर्व।

सुरगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के रहने का पर्वत, सुमेरु।

सुरगी-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्गीय] देवता। (डिं०)

सुरगी नदी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्गीय + नदी] गंगा। (डिं०)

सुरगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु, बृहस्पति।

सुरगुरु दिवस-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पतिवार।

सुरगृह-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का मंदिर। सुरकुल।

सुरगैया-संज्ञा स्त्री० [सं० सुर + गैया] कामधेनु।

सुरग्रामणी-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का नेता, इंद्र।

सुरचाप-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

सुरच्छन*-संज्ञा पुं० दे० "सुरक्षण"। उ०—रन परम बिचच्छन गरम तर धरम सुरच्छन करम कर।—गि० दास।

सुरजःफल-संज्ञा पुं० [सं०] कटहल। पनस।

सुरज-वि० [सं० सुरजस्] (फूल) जिसमें उत्तम या प्रचुर पराग हो।

*†संज्ञा पुं० दे० "सूर्य"।

सुरजन-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का वर्ग। देवसमूह।

वि० (१) सज्जन। सुजन। (२) चतुर। चालाक। उ०—कहो नैक समुझाइ मुहिं सुरजन प्रीतम आप। बस मन मैं मन कौ हरौ क्यों न बिरह संताप।—रसनिधि।

सुरजनपन-संज्ञा पुं० [हिं० सुरजन + पन (प्रत्य०)] (१) सज्जनता। भलमनसत। (२) चालाकी। होशियारी। चतुराई।

सुरजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। (२) पुराणानुसार एक नदी का नाम।

सुरजेठो-संज्ञा पुं० [सं० सुरज्येष्ठ] ब्रह्मा। (डिं०)

सुरज्येष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में बड़े, ब्रह्मा।

सुरझन-संज्ञा स्त्री० दे० "सुलझन"। उ०—गरजन मैं पुनि आप ही बरसन मैं पुनि आप। सुरझन मैं पुनि आप त्यौं उरझन मैं पुनि आप।—रसनिधि।

सुरझना-क्रि० अ० दे० "सुलझना"। अरी करेजै नैन तुव सरसि करेजे वार। अजहूँ सुरझत नाहिं ते सुर हित करत पुकार।—रसनिधि।

सुरझाना-क्रि० स० दे० "सुलझाना"। उ०—क्यों सुरझाऊँ री नँदलाल सों अरुझि रह्यो मन मेरो।—सूर।

सुरझावना*-क्रि० स० दे० "सुलझाना"। उ०—उरझ्यो काहू रूख में कहूँ न वल्कल चीर। सुरझावन के मिस तऊ ठिठकी मोरि शरीर।—लक्ष्मणसिंह।

सुरटीप-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुर + टीप] स्वर का आलाप। सुर की तान।

सुरत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रति क्रीड़ा। कामकेलि। संभोग। मैथुन। उ०—सुरत ही सब रैन बीती कोक पूरण रंग। जलद दामिनि संग सोहत भरे आलस अंग।—सूर। (२) एक बौद्ध भिक्षु का नाम।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] ध्यान। याद। सुध। उ०—(क) धीर मदत मन छन नहीं कढ़त बदन तें बैन। तुरत सुरत की सुरत कै जुरत मुरत हँसि नैन।—शृंगार-सतसई।

(ख) करत महाजग विपिन वधि चलो गयो करतार । तहँ अखंड लागी सुरत यथा तैल की धार—रघुराज ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिलाना ।—होना ।—लगना ।

मुहा०—सुरत बिसारना = भूल जाना । बिस्मृत होना । सुरत सँभालना = होश सँभालना ।

सुरतग्लानि-संज्ञा स्त्री० [सं०] रति या संभोग जनित ग्लानि या शिथिलता ।

सुरतताली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूती । (२) शिरोमाल्य । सेहरा ।

सुरतबंध-संज्ञा पुं० [सं०] संभोग का एक प्रकार ।

सुरतरंगिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

सुरतरु-संज्ञा पुं० [सं०] देवतरु । कल्पवृक्ष ।

सुरतरुवर-संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष ।

सुरतांत-संज्ञा पुं० [सं०] रति या संभोग का अंत ।

सुरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुर या देवता का भाव या कार्य । देवत्व । (२) सुर समूह । देव समूह । देव जाति । (३) संभोग का आनंद । (४) एक अप्सरा का नाम ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बाँस की नली जिसमें से दाना छोड़कर बोया जाता है ।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति, हिं० सुरत] (१) चिंता । ध्यान । (२) चेत । सुध । उ०—छाँड़ि शासना बौध की अरहंत की ना मानि । सुरता छाँड़ि पिशाचता काहे को करि बानि ।

सुरतात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के पिता, कश्यप । (२) देवताओं के अधिपति, इंद्र ।

सुरतान-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुर + तान] स्वर का आलाप । सुर दीप ।

‡संज्ञा पुं० दे० "सुलतान" ।

सुरति-संज्ञा स्त्री० [सं० सु + रति] विहार । भोग-विलास । कामकेलि । संभोग । उ०—विरची सुरति रघुनाथ कुंजधाम बीच, काम बस वाम करे ऐसे भाव थरनो । जवनि सो मसकै सिकोरै नाक, ससकै मरोरै भौंह हंस के ससीर डारे कपनो ।—काव्यकलाधर ।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] स्मरण । सुधि । चेत । उ०—छिन छिन सुरति करत यदुपति की परत न मन समुझायो । गोकुलनाथ हमारे हित लगि लिखिहू क्यों न पठायो ।—सूर ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिलाना ।—लगना ।—होना ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सूरत" । उ०—सोवत जागत सपनबस रस रिस चैन कुचैन । सुरति श्याम घन की सुरति बिसरेहू बिसरै न ।—बिहारी ।

सुरतिगोपना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो रति-क्रीड़ा करके आई हो और अपनी सखियों आदि से यह बात छिपाती हो ।

सुरति-रव-संज्ञा पुं० [सं०] रति-क्रीड़ा के समय होनेवाली भूषणों की ध्वनि ।

सुरतिवंत-वि० [सं० सुरत + वान्] कामातुर । उ०—हरि हँसि भामिनी उर लाइ । सुरतिवंत गुपाल रीझे जानी अति सुखदाइ ।—सूर ।

सुरतिविचित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्या के चार भेदों में से एक । वह मध्या जिसकी रति-क्रिया विचित्र हो । उ०—मध्या आरूढ़ यौवना प्रगलभवचना जान । प्रादुर्भूत मनोभवा सुरतिविचित्रा मान ।—केशव ।

सुरती-संज्ञा स्त्री० [सूरत (नगर)] खाने का तंबाकू के पत्तों का चूरा जो पान के साथ या यों ही चूना मिलाकर खाया जाता है । खैनी ।

विशेष—अनुमान किया जाता है कि पुर्त्तगालवालों ने पहले पहल इसका प्रचार सूरत नगर में किया था; इसी से इसका यह नाम पड़ा ।

सुरतुंग-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपुन्नाग नामक वृक्ष ।

सुरतोषक-संज्ञा पुं० [सं०] कौस्तुभ मणि ।

सुरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना । स्वर्ण । (२) माणिक्य । लाल । वि० (१) सर्वश्रेष्ठ । (२) उत्तम रत्नों से युक्त ।

सुरत्राण-संज्ञा पुं० दे० "सुरत्राता" । उ०—बाजत घोर निसान सान सुरत्रान लजावन ।—गि० दास ।

सुरत्राता-संज्ञा पुं० [सं० सुर + त्रातृ] (१) विष्णु । श्रीकृष्ण । (२) इंद्र ।

सुरथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक चंद्रवंशी राजा जो पुराणों के अनुसार स्वारोचिष मन्वंतर में हुए थे और जिन्होंने पहले पहल दुर्गा की आराधना की थी । दुर्गा के वर से ये सावर्णि मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए । दुर्गा सप्तशती में इनका विस्तृत वृत्तांत है । (२) द्रुपद के एक पुत्र का नाम । (३) जयद्रथ के एक पुत्र का नाम । (४) सुदेव के एक पुत्र का नाम । (५) जनमेजय के एक पुत्र का नाम । (६) अधिरथ के एक पुत्र का नाम । (७) कुंडक के एक पुत्र का नाम । (८) रणक के एक पुत्र का नाम । (९) चंपकपुरी के राजा हंसध्वज का पुत्र । (१०) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम ।

संज्ञा पुं० [सं० सुरथम्] कुश द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष ।

सुरथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम । (२) पुराणानुसार एक नदी का नाम ।

सुरथाकार-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्ष का नाम ।

सुरथान-संज्ञा पुं० [सं० सुर + स्थान] स्वर्ग । (डिं०)

सुरदार-वि० [हिं० सुर + फा० दार] जिसके गले का स्वर सुंदर हो । सुस्वर । सुरीला ।

सुरदारु-संज्ञा पुं० [सं०] देवदार । देवदारु वृक्ष ।

सुरदीर्घिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश गंगा ।

सुरदुंदुभि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं का नगाड़ा । (२) तुलसी ।

सुरदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] योगमाया जिसने यशोदा के गर्भ में अवतार लिया था और जिसे कंस पटकने चला था।

सुरदेश-संज्ञा पुं० [सं० सुर + देश] स्वर्ग। देवलोक।

सुरद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु। सुरद्रुम।

सुरद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कल्पवृक्ष। (२) देवनल। बड़ा नरकट। बड़ा नरसल।

सुरद्विप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का हाथी। देवहस्ती। (२) इंद्र का हाथी। ऐरावत।

सुरद्विष्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का शत्रु। असुर। दानव। राक्षस। (२) राहु।

सुरधनुष-संज्ञा पुं० [सं० सुरधनुष] इंद्रधनुष।

सुरधाम-संज्ञा पुं० [सं० सुरधामन्] देवलोक। स्वर्ग।

मुहा०—सुरधाम सिधारना = मर जाना।

सुरधुनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

सुरधूप-संज्ञा पुं० [सं०] धूना। राल। सर्जरस।

सुरधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं० सुर + धेनु] देवताओं की गाय, कामधेनु।

सुरध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] सुरकेतु। इंद्रध्वज।

सुरनंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

सुरनगर-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

सुरनदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा। (२) आकाश गंगा।

सुरनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

सुरनायक-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति। इंद्र।

सुरनारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवांगना। देवबाला। देववधू।

सुरनाल-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा नरसल। देवनल।

सुरनाह-संज्ञा पुं० [सं० सुरनाथ] देवराज इंद्र। उ०—परिघा कहँ जादव हेरि हयो। सुरनाह तबै गत चेत भयो।—गिरिधर।

सुरनिम्नगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

सुरनिर्गंध-संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता। तेजपत्र। पत्रज।

सुरनिर्झरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश गंगा।

सुरनिलय-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत, जहाँ देवता रहते हैं।

सुरप-संज्ञा पुं० [सं० सुरपति] इंद्र। उ०—या कहि सुरप गयहु सुरधाम।—पद्माकर।

सुरपति-संज्ञा पुं० [सं०] देवराज इंद्र।

सुरपतिगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

सुरपतिचाप-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र-धनुष।

सुरपति-तनय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र का पुत्र, जयंत। (२) अर्जुन।

सुरपतित्व-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति का भाव या पद।

सुरपथ-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

सुरपन-संज्ञा पुं० [सं० सुरपुन्नाग] पुन्नाग। सुरंगी। सुलतान चंपा।

सुरपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सुगंधित शाक।

पर्य्या०—देवपर्ण। सुगंधिक। माचीपत्र। गंधपत्रक।

विशेष—यह क्षुप जाति की सुगंधित वनस्पति है। वैद्यक के अनुसार यह कटु, उष्ण तथा कृमि, श्वास और कास को नाशक तथा दीपन है।

सुरपर्णिक-संज्ञा पुं० [सं०] पुन्नाग वृक्ष।

सुरपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुन्नाग। सुलताना चंपा।

सुरपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पलासी। पलाशी। (२) पुन्नाग। पुलाक।

सुरपर्वत-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु।

सुरपादप-संज्ञा पुं० [सं०] देवद्रुम। कल्पतरु।

सुरपाल-संज्ञा पुं० [सं० सुर + पाल] इंद्र। उ०—सुरन सहित तहँ आइ कै वज्र हन्यो सुरपाल।—गिरिधर।

सुरपालक-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

सुरपुन्नाग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पुन्नाग जिसके गुण पुन्नाग के समान ही होते हैं।

सुरपुर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सुरपुरी] देवताओं की पुरी, अमरावती।

मुहा०—सुरपुर सिधारना = मर जाना। मर जाना।

सुरपुरकेतु संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। उ०—नृप केतु दल के केतु सुरपुरकेतु छन महँ मोहहीं।—गि० दास।

सुरपुरोधा-संज्ञा पुं० [सं० सुरपुरोधस्] देवताओं के पुरोहित, बृहस्पति।

सुरप्रतिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवमूर्ति की स्थापना।

सुरप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) बृहस्पति। (३) एक प्रकार का पक्षी। (४) अगस्त्य। अगस्तिया। (५) एक पर्वत का नाम।

वि० जो देवताओं को प्रिय हो।

सुरप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। (२) चमेली। जाती पुष्प। (३) सोना केला। स्वर्ण रंभा।

सुरफाँक ताल-संज्ञा पुं० [हिं० सुर + फाँक = खाली + ताल] मृदंग का एक ताल। इसमें तीन आघात और एक खाली होता है।

+ ० २ +

जैसे,—धा धेड़े, नागध, घेड़े नाग, गद्दी, घेड़े नाग। धा।

सुरबहार-संज्ञा पुं० [हिं० सुर + फा० बहार] सितार की तरह का एक प्रकार का बाजा।

सुरबाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की स्त्री। देवांगना।

सुरवुली-संज्ञा स्त्री० [सं० सुरवल्ली ?] एक पौधा जो बंगाल और उड़ीसे से लेकर मद्रास और सिंहल तक होता है। इसकी जड़ की छाल से एक प्रकार का सुंदर लाल रंग निकलता है जिससे मछलीपट्टन, नेलोर आदि स्थानों में कपड़े रँगे जाते हैं। चिरवल।

सुरवृच्छ-*संज्ञा पुं० दे० "सुरवृक्ष"। उ०—मुख ससि सर गर अधिक वचन श्री अमृत ऐसी। सुर सुरभी सुरवृच्छ देनि करतल महँ वैसी।—गि० दास।

सुरबेल-संज्ञा स्त्री० [सं० सुर+वल्ली] कल्प लता।

सुरभंग-संज्ञा पुं० [सं० स्वर भंग] प्रेम, आनन्द, भय आदि में होनेवाला स्वर का विपर्य्यास जो सात्विक भावों के अंतर्गत है। उ०—(क) स्तंभ स्वेद रोमांच सुर भंग कंप वैवर्ण। अश्रुप्रलाप बखानिए आठो नाम सुवर्ण।—केशव। (ख) निसि जागे पागे अमल हित को दरसन पाइ। बोल पानरो होत जो सो सुरभंग बताइ।—काव्य कलाधर। (ग) क्रोध हरस मद भीत तें वचन और विधि होय। ताहि कहत सुरभंग हैं कवि कोविद सब कोय।—मतिराम।

सुरभवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का निवासस्थान। मंदिर। (२) सुरपुरी। अमरावती।

सुरभान-संज्ञा पुं० [सं० सुर+भानु] (१) इंद्र। उ०—राधे सो रस बरनि न जाइ। जा रस को सुरभान शीश दियो, सो तैं पियो अकुलाइ।—सूर। (२) सूर्य। उ०—सुनि सजनी सुरभान है अति मलान मतिमंद। पूनो रजनी मैं जु गिलि देत उगिलि यह चंद।—श्रृंगार सतसई।

सुरभि संज्ञा पुं० [सं०] (१) बसंत काल। (२) चैत्रमास। (३) सोना। स्वर्ण। (४) गंधक। (५) चंपक। चंपा। (६) जायफल। (७) कदंब। (८) बकुल। मौलसिरी। (९) शमी। सफेद कीकर। (१०) कण गुग्गुल। (११) गंध तृण। रोहिस घास। (१२) राल। धूना। (१३) गंधफल। (१४) बर्बर चंदन। (१५) वह अग्नि जो यज्ञयूप की स्थापना में प्रज्वलित की जाती है।

संज्ञा स्त्री० (१) पृथ्वी। (२) गौ। (३) गायों की अधिष्ठात्री देवी तथा गो जाति की आदि जननी। (४) कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम। (५) सुरा। शराब। (६) गंगापत्री। (७) वनमल्लिका। सेवती। (८) तुलसी। (९) शल्लकी। सलई। (१०) रुद्रजटा। (११) एलवालुक। एलुवा। (१२) सुगंधि। खुशबू।

वि० (१) सुगंधित। सुवासित। (२) मनोरम। सुंदर। प्रिय। (३) उत्तम। श्रेष्ठ। बढ़िया। (४) सदाचारी। गुणवान्।

सुरभिकांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वासंती पुष्प वृक्ष। नेवारी।

सुरभिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ण कदली। सोना केला।

सुरभिगंध-संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता।

वि० सुगंधित। सुवासित। खुशबूदार।

सुरभिगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली।

सुरभिच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] कैथ। कपित्थ।

सुरभित-वि० [सं०] सुगंधित। सुवासित।

सुरभितनय-संज्ञा पुं० [सं०] बैल। साँड़।

सुरभितनया-संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय।

सुरभिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुरभि का भाव। (२) सुगंधि। खुशबू।

सुरभित्रिफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] जायफल, सुपारी और लौंग इन तीनों का समूह।

सुरभित्वक्-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।

सुरभिदारु-संज्ञा पुं० [सं०] धूप सरल।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह सरल, कटु, तिक्त, उष्ण तथा कफ, वात, त्वचा रोग, सूजन और व्रण का नाशक है। यह कोठे को भी साफ करता है।

सुरभिपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजजंबू वृक्ष। गुलाब जामुन। वि० दे० "गुलाब जामुन"।

सुरभिपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँड़। (२) बैल।

सुरभिमंजरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत तुलसी।

सुरभिमान-वि० [सं० सुरभिमत्] सुगंधित। सुवासित।

संज्ञा पुं० अग्नि।

सुरभिमास-संज्ञा पुं० [सं०] चैत्र मास। चैत का महीना।

सुरभिमुख-संज्ञा पुं० [सं०] वसंत ऋतु का आरंभ।

सुरभिवल्कल-संज्ञा पुं० [सं०] दालचीनी। गुड़त्वक्।

सुरभिवाण-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव का एक नाम।

सुरभिशाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सुगंधित शाक।

सुरभिषक्-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के वैद्य, अश्विनीकुमार।

सुरभिसमय-संज्ञा पुं० [सं०] वसंत।

सुरभिस्रवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शल्लकी। सलई।

सुरभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुगंधि। खुशबू। (२)। गाय। (३) सलई। शल्लकी। (४) किवाँछ। कौंच। कपिकच्छु। (५) बबई तुलसी। बन तुलसी। (६) रुद्रजटा। शंकर जटा। (७) एलुवा। एलवालुक। (८) माचिका शाक। मोइया। (९) सुगंधित शालिधान्य। (१०) मुरामांसी। एकांगी। (११) रासन। रास्ना। (१२) चंदन।

सुरभीगोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल। (२) साँड़।

सुरभीपट्टन-संज्ञा [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नगर का नाम।

सुरभीपुर-संज्ञा पुं० [सं०] गोलोक। उ०—अज विष्णु अनादि मुकुंद प्रभो। सुरभीपुर नायक विश्वविभो।—गिरिधर।

सुरभीमूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] गोमूत्र। गोमूत।

सुरभीरसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सलई। शल्लकी।

सुरभूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) विष्णु। उ०—सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।—तुलसी।

सुरभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के पहनने का मोतियों का हार जो चार हाथ लंबा होता है और जिसमें १००८ दाने होते हैं।

सुरभूरुह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदार। देवदारु। (२) कल्पतरु।

सुरभोग–संज्ञा पुं० [सं०] अमृत। उ०—सोम सुधा पीयूष मधु अगदकार सुरभोग। अमी अमृत जहँ हरि कथा मते रहत सब लोग।—नंददास।

सुरभौन॥–संज्ञा पुं० दे० "सुरभवन"।

सुरमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का मंडल। (२) एक प्रकार का बाजा। इसमें एक तख्ते में तार जड़े होते हैं। इसे जमीन पर रखकर मिजराब से बजाते हैं।

सुरमंडलिका–संज्ञा स्त्री० दे० "सुरखंडनिका"।

सुरमंत्री–संज्ञा पुं० [सं० सुरमंत्रिन्] बृहस्पति।

सुरमंदिर–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का स्थान। मंदिर। देवालय।

सुरमई–वि० [फा०] सुरमे के रंग का। हलका नीला। सफेदी लिए नीला या काला।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का रंग जो सुरमे के रंग से मिलता जुलता या हलका नीला होता है। (२) इस रंग में रँगा हुआ एक प्रकार का कपड़ा जो प्रायः अस्तर आदि के काम में आता है। (३) इस रंग का कबूतर।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया जो बहुत काली होती है और जिसकी गरदन हरे रंग की और चमकदार होती है।

सुरमई कलम–संज्ञा स्त्री० [फा०] सुरमा लगाने की सलाई। सुरमचू।

सुरमचू–संज्ञा पुं० [फा० सुरमः + चू (प्रत्य०)] सुरमा लगाने की सलाई।

सुरमणि–संज्ञा पुं० [सं०] चिंतामणि। उ०—लोयन नील सरोज से भूपर मसि बिंदु विराज। जनु विधु मुखछवि अमिय को रच्छक राख्यो रसराज।—तुलसी।

सुरमण्य–वि० [सं०] बहुत अधिक रमणीय। बहुत सुंदर।

सुरमा–संज्ञा पुं० [फा० सुरमः] एक प्रकार का प्रसिद्ध खनिज पदार्थ जो प्रायः नीले रंग का होता है और जिसका महीन चूर्ण स्त्रियाँ आँखों में लगाती हैं। यह फारस में लहौल, पंजाब में झेलम तथा बरमा में टेनासरिम नामक स्थान में पाया जाता है। यह बहुत भारी, चमकीला और भुरभुरा होता है। इसका व्यवहार कुछ औषधों में तथा कुछ धातुओं को दृढ़ करने में होता है। प्रायः छापे के सीसे के अक्षरों में उन्हें मजबूत करने के लिये इसका मेल दिया जाता है। आज कल बाजारों में जो सुरमा मिलता है, वह प्रायः काबुल और बुखारे के गलोना नामक धातु का चूर्ण होता है।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

यौ०—सफेद सुरमा = दे० "सुरमा सफेद"।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी। वि० दे० "सूरमा"।

संज्ञा स्त्री० एक नदी जो आसाम के सिलहट जिले में बहती है।

सुरमादानी–संज्ञा स्त्री० [फा० सुरमः + दान (प्रत्य०)] लकड़ी या धातु का शीशीनुमा पात्र जिसमें सुरमा रखा जाता है।

सुरमानी–वि० [सं० सुरमानिन्] अपने को देवता समझनेवाला।

सुरमा सफेद–संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक प्रकार का खनिज पदार्थ जो 'जिप्सम' नाम से प्रसिद्ध है। इसका रंग पीलापन लिए सफेद होता है। इससे 'पेरिस प्लास्टर' बनाया जा सकता है जिससे एलक्ट्रो टाइप और रबड़ की मोहर के साँचे बनाए जाते हैं। यह मुख्यतः शीशे और धातु की चीजें जोड़ने के काम में आता है। (२) एक खनिज पदार्थ जो फिटकरी के समान होता है और काबुल के पहाड़ों पर पाया जाता है। आँखों की जलन, प्रमेह आदि रोगों में इसका प्रयोग होता है।

सुरमृत्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपीचंदन। सौराष्ट्र मृत्तिका।

सुरमेदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा।

सुरमै॥–वि० दे० "सुरमई"।

सुरमौर–संज्ञा पुं० [सं० सुर + हिं० मौर] विष्णु। उ०—जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक लहैं सुरलोक सुठौरहि। सो कमला तजि चंचलता अरु कोटि कला रिझवै सुरमौरहि।—तुलसी।

सुरम्य–वि० [सं०] अत्यंत मनोरम। अत्यंत रमणीय। बहुत सुंदर।

सुरया–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की दाँती जो झाड़ी काटने के काम में आती है।

सुरयान–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की सवारी का रथ।

सुरयुवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

सुरयोषित्–संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

सुरराई॥–संज्ञा पुं० [सं० सुरराज] (१) इंद्र। (२) विष्णु। उ०—रानी ते बूझेउ सुरराई। माँगी जो कछु वाको भाई। रमानाथ नारी ते भाषा। माँगहु वर जो मन अभिलाषा।—विश्राम।

सुरराज्, सुरराज–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

सुरराजगुरु–संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

सुरराजता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरराज का भाव या पद। इंद्रत्व। इंद्रपद।

सुरराजवस्ति–संज्ञा पुं० [सं०] पिंडली। इंद्रवस्ति।

सुरराज वृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] पारिजात। परजाता।

सुरराजा–संज्ञा पुं० [सं० सुरराजन्] इंद्र।

सुरराय॥–संज्ञा पुं० दे० "सुरराज"।

सुरराव॥–संज्ञा पुं० दे० "सुरराज"। उ०—नल कृत पुल लखि सिंधु में भये चकित सुरराव।—पद्माकर।

सुररिपु–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के शत्रु, असुर। राक्षस।

सुरकख-संज्ञा पुं० [सं० सुर + हिं० रूख = वृक्ष] कल्पवृक्ष । उ०—राम नाम सज्जन सुरकखा । राम नाम कलि मृतक पियूषा ।—रघुराज ।

सुरर्षभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं में श्रेष्ठ, इंद्र । (२) शिव । महादेव ।

सुरर्षि-संज्ञा पुं० [सं० सुर + ऋषि] देवर्षि । देवर्षि ।

सुरलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकंगनी । महाज्योतिष्मती लता ।

सुरललना-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवबाला । देवांगना ।

सुरला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा । (२) एक नदी का नाम ।

सुरलासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंशी । (२) वंशी की ध्वनि ।

सुरली-संज्ञा स्त्री० [सं० सु + हिं० रली] सुंदर क्रीड़ा । उ० लखि सु उदर रोमावली अली चली यह बात । नाग लली सुरली करै मनु त्रिवली के पात ।—शृंगार सतसई ।

सुरलोक-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग । देवलोक ।

सुरवधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की पत्नी । देवांगना ।

सुरवर-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं मे श्रेष्ठ, इंद्र ।

सुरवर्त्म-संज्ञा पुं० [सं० सुरवर्त्मन्] देवताओं का मार्ग । आकाश ।

सुरवल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत दूर्वा । सफेद दूब ।

सुरवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी ।

सुरवस-संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहों की वह पतली हलकी छड़ी, पतला बाँस या सरकंडा जिसका व्यवहार ताना तैयार करने में होता है ।

विशेष—ताना तैयार करने के लिए जो लकड़ियाँ जमीन में गाड़ी जाती हैं, उनमें से दोनों सिरों पर रहनेवाली लकड़ियाँ तो मोटी और मजबूत होती हैं जिन्हें परिया कहते हैं; और इनके बीच में थोड़ी थोड़ी दूर पर जो चार चार पतली लकड़ियाँ एक साथ गाड़ी जाती हैं, वे सुरवस या सुरस कहलाती हैं ।

सुरवा-संज्ञा पुं० [सं० स्रुवा] छोटी करछी के आकार का लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का पात्र जिससे हवन आदि में घी की आहुति देते हैं । श्रुवा ।

† संज्ञा पुं० दे० **"शोरबा"** ।

सुरवाड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूअर + बाड़ी (प्रत्य०)] सूअरों के रहने का स्थान । सूअरबाड़ा ।

सुरवाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देववाणी । संस्कृत भाषा ।

सुरवाल-संज्ञा पुं० [फ़ा० शल्वार] पायजामा । पैजामा ।

संज्ञा पुं० [?] सेहरा ।

सुरवास-संज्ञा पुं० [सं०] देवस्थान । स्वर्ग ।

सुरवाहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

सुरविटप-संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष ।

सुरवीथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों का मार्ग

सुरवीर-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र । उ०—गने पदाती वीर सब अरि-घाती रनधीर । दोउ अँखैं राती किये लखि मोहे सुरवीर ।—गि० दास ।

सुरवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] कल्पतरु ।

सुरवेला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम ।

सुरवेश्म-संज्ञा पुं० [सं० सुरवेश्मन्] स्वर्ग । देवलोक ।

सुरवैरी-संज्ञा पुं० [सं० सुरवैरिन्] देवताओं के शत्रु, असुर ।

सुरशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] असुर ।

सुरशत्रुहन्-संज्ञा पुं० [सं०] असुरों का नाश करनेवाले, शिव ।

सुरशयनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी । विष्णुशयनी एकादशी ।

सुरशाखी-संज्ञा पुं० [सं० सुरशाखिन्] कल्पवृक्ष ।

सुरशिल्पी-संज्ञा पुं० [सं० सुरशिल्पिन्] विश्वकर्मा ।

सुरश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो देवताओं में श्रेष्ठ हो । (२) विष्णु । (३) शिव । (४) गणेश । (५) धर्म्म । (६) इंद्र ।

सुरश्रेष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी ।

सुरसंभवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर । आदित्यभक्ता ।

सुरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बोल । हीरा बोल । बब्बर रस । (२) दालचीनी । गुड़त्वक् । (३) तेजपत्ता । तेजपत्र । (४) रूसा घास । गंधतृण । (५) तुलसी । (६) सँभालू । सिंदुवार । (७) शाल्मली वृक्ष का निर्यास । मोचरस । (८) पीतशाल ।

वि० (१) सरस । रसीला । (२) स्वादिष्ट । मधुर । (३) सुंदर । उ०—हरि श्याम घन तन परम सुंदर तड़ित बसन बिराजई । अँग अंग भूषण सुरस शशि पूरणकला जनु भ्राजई ।—सूर ।

संज्ञा पुं० दे० **"सुरवस"** ।

सुरसख-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के सखा, इंद्र ।

सुरसंत-संज्ञा स्त्री० [सं० सरस्वती] सरस्वती । (डिं०)

सुरसतजनक-संज्ञा पुं० [सं० सरस्वती + जनक] ब्रह्मा । (डिं०)

सुरसती‡-संज्ञा स्त्री० [सं० सरस्वती] (१) सरस्वती । उ०—उर उरवी सुरसरि सुरसती जमुना मिलहिं प्रयाग जिमि ।—गि० दास । (२) एक प्रकार की नाव जो तीस हाथ लंबी होती है और जिसका आगा तथा पीछा आठ आठ हाथ चौड़ा होता है । इस नाव के पेंदे में एक कुंड बना रहता है जिसमें उतर कर लोग स्नान कर सकते हैं ।

सुरसत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में श्रेष्ठ, विष्णु ।

सुरसदन-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के रहने का स्थान, स्वर्ग ।

सुरसद्म-संज्ञा पुं० [सं० सुरसद्मन्] स्वर्ग ।

सुरसमिध्-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदारु ।

सुरसर-संज्ञा पुं० [सं० सुर+सर] मानसरोवर। उ०—सुर-सर सुभग बनज-बन-चारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसरि"।

सुरसरसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरयू नदी। उ०—तुलसी उर सुर सर-सुता लसत सुथल अनुमानि।—तुलसी।

सुरसरि, सुरसरी-संज्ञा स्त्री० [सं० सुरसरित्] (१) गंगा। उ०—सुरसरि जब भुव ऊपर आवै। उनको अपनो जल परसावै।—सूर। (२) गोदावरी। उ०—सुरसरि ते आगे चले मिलिहैं कपि सुग्रीव। देहैं सीता की खबरि बाढ़े सुख अति जीव।—केशव।

संज्ञा स्त्री० (१) कावेरी नदी। (डिं०) (२) दे० "सुरसुरी"।

सुरसरित्-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

सुरसरिता-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसरित"। उ०—मानहुँ सुरसरिता विमल, जल उछलत जुग मीन।—बिहारी।

सुरसर्षपक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सरसों। देवसर्षप।

सुरसा संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध नागमाता जो समुद्र में रहती थी और जिसने हनुमान जी को समुद्र पार करने के समय रोका था।

विशेष—जिस समय हनुमान् जी सीता जी की खोज में लंका जा रहे थे, उस समय देवताओं ने सुरसा से, जो समुद्र में रहती थी, कहा कि तुम विकराल राक्षस का रूप धारण कर उनको रोको। इससे उनकी बुद्धि और बल का पता लग जायगा। तदनुसार सुरसा ने विकराल रूप धारण कर हनुमान् जी को रोक कर कहा कि मैं तुम्हें खाऊँगी। यह कहकर उसने मुँह फैलाया। हनुमान् जी ने उससे कहा कि जानकी जी की खबर राम जी को देकर मैं तुम्हारे पास आऊँगा। सुरसा ने कहा कि ऐसा नहीं हो सकता। पहले तुम्हें मेरे मुँह में प्रवेश करना होगा, क्योंकि मुझे ऐसा वर मिला है कि सब को मेरे मुँह में प्रवेश करना पड़ेगा। यह कह वह मुँह फैलाकर हनुमान् जी के सामने आई। हनुमान् जी ने अपना शरीर उससे भी अधिक बढ़ाया। ज्यों ज्यों सुरसा अपना मुँह बढ़ाती गई, त्यों त्यों हनुमान् जी भी अपना शरीर बढ़ाते गए। अंत में हनुमान् जी ने बहुत छोटा रूप धारण करके उसके मुँह में प्रवेश किया और बाहर निकलकर कहा—देवि, अब तो तुम्हारा वर सफल हो गया। इस पर सुरसा ने हनुमान् जी को आशीर्वाद दिया और उनकी सफलता की कामना की। (रामायण)

(२) एक अप्सरा का नाम। (३) एक राक्षसी का नाम। (४) तुलसी। (५) रासन। रास्ना। (६) सौंफ। मिश्रेया। (७) ब्राह्मी। (८) बड़ी शतावरी। सतावर। (९) जूही। श्वेत यूथिका। (१०) सफेद निसोथ। श्वेत त्रिवृत्ता। (११) सलई। शल्लकी। (१२) नील सिंधुवार। निर्गुंडी। (१३) कटाई। बनभंटा। बृहती। वार्त्ताकी। (१४) भट-कटैया। कटेरी। कंटकारी। (१५) एक प्रकार की रागिनी। (१६) दुर्गा का एक नाम। (१७) रुद्राश्व की एक पुत्री का नाम। (१८) पुराणानुसार एक नदी का नाम। (१९) अंकुश के नीचे का नुकीला भाग। (२०) एक वृत्त का नाम।

सुरसाइँ-संज्ञा पुं० [सं० सुर+ हिं० साईं=स्वामी] (१) इंद्र। उ०—आपु लसैं जैसे सुरसाईं। सब नरेश जनु सुर समुदाईं।—सबलसिंह। (२) शिव। उ०—सब विद्या के ईश गुसाईं। चरण वंदि विनवौं सुरसाईं।—शंकरदिग्विजय। (३) विष्णु। उ०—बोले मधुर वचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं।—तुलसी।

सुरसाग्र-संज्ञा पुं० [सं०] संभालू की मंजरी। सिंधुवार मंजरी।

सुरसाग्रज-संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत तुलसी।

सुरसाग्रणी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसाग्रज"।

सुरसादिवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में कुछ विशिष्ट ओषधियों का एक वर्ग। यथा—तुलसी (सुरसा), श्वेत तुलसी, गंध-तृण, गंधेज घास, (सुगंधक), काली तुलसी, कसौंधी (कासमर्द), लटजीरा (अपामार्ग), वायबिड़ंग (विडंग), कायफल (कटफल), सम्हालू (निर्गुंडी), ब्रभनेटी (भारंगी), मकोय (काकमाची), बकायन (विषमुष्टिक), मूसाकानी (मूषाकर्णी), नीला सम्हालू (नील सिंधुवार), भुईं कदंब (भूमि कदंब)। वैद्यक के अनुसार यह प्रयोग कफ, क्रमि, सर्दी, अरुचि, श्वास, खाँसी आदि का नाश करनेवाला और व्रणशोधक है।

एक दूसरा वर्ग इस प्रकार है—सफेद तुलसी, काली तुलसी, छोटे पत्तोंवाली तुलसी, बबई (वर्वरी), मूसाकानी, कायफल, कसौंधी, नकछिकनी (छिक्कनी), सम्हालू, भारंगी, भुईं कदंब, गंधतृण, नीला सम्हालू, मीठी नीम (कैडर्य्य) और अतिमुक्त लता (माधवी लता)।

सुरसारी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसरी"।

सुरसालु*-वि० [सं० सुर+हिं० सालना] देवताओं को सतानेवाला। उ०—राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलि काल। जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसालु।—तुलसी।

सुरसाह्व-संज्ञा पुं० [सं०] सम्हालू, तुलसी, ब्राह्मी, बनभंटा, कंटकारी और पुनर्नवा इन सब का समूह।

सुरसाहब-संज्ञा पुं० [सं० सुर+फा० साहब] देवताओं के स्वामी। उ०—ब्रह्म जो व्यापक वेद कहैं गम नाहीं गिरा गुन ज्ञान गुनी को। जो करता भरता, हरता सुर साहिब साहिब दीन दुनी को।—तुलसी।

सुरसिंधु-संज्ञा पुं० [सं०] गंगा।

सुरसुंदर-संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर देवता।
वि० देवता के समान सुंदर। अत्यंत सुंदर।

सुरसुंदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अप्सरा। (२) दुर्गा। (३) देवकन्या। (४) एक योगिनी का नाम।

सुरसुंदरी गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक के अनुसार वाजीकरण या बल वीर्य बढ़ाने की एक औषध जो अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, हीरा, स्वर्ण और पारे को सम भाग में लेकर हिज्जल (समुद्रफल) के रस में घोटकर पुटपाक के द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

सुरसुत-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सुरसुता] देवपुत्र।

सुरसुरभी-संज्ञा स्त्री० [सं० सुर+सुरभी] देवताओं की गाय। कामधेनु। उ०—मुख ससि सर गर अधिक वचन श्री अमृत जैसी। सुर सुरभी सुरवृच्छ देनि करतल महँ वैसी।—गि० दास।

सुरसुराना-क्रि० अ० [अनु०] (१) कीड़ों आदि का रेंगना। (२) खुजली होना।

सुरसुराहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुरसुराना+आहट (प्रत्य०)] (१) सुरसर होने का भाव। (२) खुजलाहट। (३) गुदगुदी।

सुरसुरी-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) दे० "सुरसुराहट"। (२) एक प्रकार का कीड़ा जो चावल, गेहूँ आदि में होता है।

सुरसेनप-संज्ञा पुं० [सं० सुर+सेनापति] देवताओं के सेनापति, कार्त्तिकेय।

सुरसेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की सेना।

सुरसैयाँॐ-संज्ञा पुं० [सं० सुर+हिं० सैयाँ=स्वामी] इंद्र। उ०—तुलसी बाल केलि सुख निरखत बरषत सुमन सहित सुरसैयाँ —तुलसी।

सुरसैनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरशयनी"।

सुरस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

सुरस्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

सुरस्त्रीश-संज्ञा पुं० [सं०] अप्सराओं के स्वामी, इंद्र।

सुरस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के रहने का स्थान। स्वर्ग। सुरलोक।

सुरस्रवंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश गंगा।

सुरस्रोतस्विनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

सुरस्वामी-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के स्वामी, इंद्र।

सुरहरा-वि० [अनु०] जिसमें सुरसुर शब्द हो। सुरसुर शब्द से युक्त। उ०—फेरि दृग फीके मुख लेति फुरहरी देव साँसै सुरहरी भुज चुरी झहरैबे की।—देव।

सुरही†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सोलह] (१) एक प्रकार की सोलह चित्ती कौड़ियाँ जिनसे जूआ खेलते हैं। (२) सोलह चित्ती कौड़ियों से होनेवाला जूआ।

विशेष—इस जूए में कौड़ियाँ मुट्ठी में उठाकर जमीन पर फेंकी जाती हैं और उनकी चित्त-पट की गिनती से हार जीत होती है। प्रायः बड़े जुआरी लोग इसी से जूआ खेलते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० सुरभी] (१) चमरी गाय। (२) एक प्रकार की घास जो पड़ती जमीन में होती है।

सुरहोनी-संज्ञा पुं० [कर्ना० सुरहोनेय] पुन्नाग जाति का एक पेड़ जो पश्चिमी घाट में होता है। यह प्रायः डेढ़ सौ फुट तक ऊँचा होता है।

सुरांगना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवपत्नी। देवांगना। (२) अप्सरा।

सुरांत-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

सुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मद्य। मदिरा। वारुणी। शराब। दारू। वि० दे० "मदिरा"। (२) जल। पानी। (३) पीने का पात्र। (४) सर्प।

सुराईॐ-संज्ञा स्त्री० [सं० शूर+आई (प्रत्य०)] शूरता। वीरता। बहादुरी। उ०—सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई।—तुलसी।

सुराकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भट्ठी जहाँ शराब चुआई जाती है। (२) नारियल का पेड़। नारिकेल वृक्ष।

सुराकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सुराकर्मन्] वह यज्ञ कर्म जो सुरा द्वारा किया जाता है।

सुराकार-संज्ञा पुं० [सं०] शराब चुआनेवाला। शराब बनानेवाला। शौंडिक। कलदार।

सुराकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र या घड़ा जिसमें मद्य रखा जाता है। शराब रखने का घड़ा।

सुराख-संज्ञा पुं० [फ़ा० सूराख] छेद। छिद्र।
संज्ञा पुं० दे० "सुराग"।

सुराग-संज्ञा पुं० [सं० सु+राग] (१) गाढ़ प्रेम। अत्यंत प्रेम। अत्यंत अनुराग। उ०—मुनि बाजति बीन प्रवीन नवीन सुराग हिये उपजावति सी।—केशव। (२) सुंदर राग। उ०—गाय गोरी मोहनी सुराग बसुरी के बीच कानन सुहाय मारमंत्र को सुनायगो।—दीनदयाल।
संज्ञा पुं० [अ० सुराग] सूत्र। टोह। पता।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लगना।—लगाना।

सुरागाय-संज्ञा स्त्री० [सं० सुर+गाय] एक प्रकार की दो नस्ली गाय जिसकी पूँछ गुप्फेदार होती है और जिससे चँवर बनता है। यह एक प्रकार के जंगली साँड़—जो तिब्बत और हिमालय में होते हैं और जिनके बाल लंबे और मुलायम होते हैं—और भारतीय गाय के संयोग से उत्पन्न है। यह प्रायः पहाड़ों पर ही रहती है। मैदान का जल-वायु इसके अनुकूल नहीं होता।

सुरागार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ मद्य बिकता हो। कलवरिया। शराबखाना। (२) देवगृह।

सुरागृह-संज्ञा पुं० दे "सुरागार" (१)।

सुराग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] मद्य पीने का एक प्रकार का पात्र।

सुराग्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।

सुराघट-संज्ञा पुं० दे० "सुराकुंभ"।

सुराचार्य-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के आचार्य्य बृहस्पति।

सुराज-संज्ञा पुं० (१) दे० "सुराज्य"। (२) दे० "स्वराज्य"।

सुराजक-संज्ञा पुं० [सं०] भृंगराज। भँगरा।

सुराजा*-संज्ञा पुं० [सं० सुराजन] उत्तम राजा। अच्छा राजा।

*संज्ञा पुं० दे० "सुराज्य"।

सुराजिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली।

सुराजीव-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सुराजीवी-संज्ञा पुं० [सं० सुराजीविन] शराब चुआने या बेचनेवाला। शौंडिक। कलवार।

सुराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह राज्य जिसमें प्रधानतः शासितों के हित पर दृष्टि रखकर शासन कार्य किया जाता हो। वह राज्य या शासन जिसमें सुख और शांति विराजती हो। अच्छा और उत्तम राज्य।

संज्ञा पुं० दे० "स्वराज्य"।

सुराहत-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ मद्य बिकता हो। शराबखाना। कलवरिया।

सुराथी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सु + रेतना] लकड़ी का वह डंडा या लबेदा जिससे अनाज के दाने निकालने के लिये बाल आदि पीटते हैं।

सुराद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का पर्वत, सुमेरु।

सुराधम-वि० [सं०] देवताओं में निकृष्ट।

सुराधा-वि० [सं० सुराधस्] (१) उत्तम दान देनेवाला। बहुत बड़ा दाता। उदार। (२) धनी। अमीर।

संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम।

सुराधानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कुंभी या छोटा घड़ा जिसमें मदिरा रखी जाती है। शराब रखने की गगरी।

सुराधिप-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के स्वामी, इंद्र।

सुराधीश-संज्ञा पुं० दे० "सुराधिप"।

सुराध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) श्रीकृष्ण। (३) शिव।

सुराध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] मद्यपात्र का वह चिह्न जो प्राचीन काल में मद्य पान करनेवालों के मस्तक पर लोहे से दाग कर किया जाता था।

विशेष—मनु ने मद्य-पान की गणना चार महापातकों में की है; और कहा है कि राजा को उचित है कि मद्य-पान करनेवाले के मस्तक पर मद्य-पात्र का चिह्न लोहे से दागकर अंकित करा दे। यही चिह्न सुराध्वज कहलाता था।

सुरानक-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का नगाड़ा।

सुरानीक-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की सेना।

सुराप-वि० [सं०] (१) सुरा या मद्य-पान करनेवाला। मद्यप। शराबी। (२) बुद्धिमान्। मनीषी।

सुरापगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की नदी। गंगा।

सुरापाण, सुरापान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य-पान करने की क्रिया। शराब पीना। (२) मद्य-पान करने के समय खाए जानेवाले चटपटे पदार्थ। चाट। अवदंश।

सुरापात्र-संज्ञा पुं० [सं०] मदिरा रखने या पीने का पात्र।

सुरापाना-संज्ञा पुं० [सं० सुरापानाः] पूर्व देश के लोग। (सुरापान करने के कारण इस देश के लोगों का यह नाम पड़ा है।)

सुरापी-वि० दे० "सुराप"।

सुरापीथ-संज्ञा पुं० [सं०] सुरापान। मद्यपान। शराब पीना।

सुराब्धि-संज्ञा पुं० [सं०] सुरा का समुद्र।

विशेष—पुराणों के अनुसार यह सात समुद्रों में से तीसरा है। मार्कंडेयपुराण में लिखा है कि लवण समुद्र से दूना इक्षु समुद्र और इक्षु समुद्र से दूना सुरा समुद्र है।

सुराभाग-संज्ञा पुं० [सं०] शराब की माँड़।

सुरामंड-संज्ञा पुं० [सं०] शराब की माँड़।

सुरामत्त-वि० [सं०] शराब के नशे में चूर। मदोन्मत्त। मतवाला।

सुरामुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके मुँह में शराब हो। (२) एक नागासुर का नाम।

सुरामेह-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार प्रमेह रोग का एक भेद।

विशेष—कहते हैं कि इस रोग में रोगी को शराब के रंग का पेशाब होता है। पेशाब शीशी में रखने से नीचे गाढ़ा और ऊपर पतला दिखलाई पड़ता है। पेशाब का रंग मटमैला या लाली लिए होता है।

सुरामेही-वि० [सं० सुरामेहिन] सुरामेह रोग से पीड़ित। जिसे सुरामेह रोग हुआ हो।

सुरायुध-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का अस्त्र।

सुरारणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की माता, अदिति।

सुरारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) असुर। राक्षस। (२) एक दैत्य का नाम।

सुरारिघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] असुरों का नाश करनेवाले, विष्णु।

सुरारिहंता-संज्ञा पुं० [सं० सुरारिहंतृ] असुरों का नाश करनेवाले, विष्णु।

सुरारिहन्-संज्ञा पुं० [सं०] असुरों का नाश करनेवाले, शिव।

सुरारी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास जो राजपूताने और बुंदेलखंड में होती है। यह चारे के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है। इसे लप भी कहते हैं।

सुरार्दन-संज्ञा पुं० [सं०] सुरों या देवताओं को पीड़ा देनेवाले, असुर।

सुराई-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरिचंदन। (२) स्वर्ण। सोना। (३) कुंकुमागरु चंदन।

सुराहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बर्बरक। बबई। (२) वैजयंती। तुलसी।

सुराल-संज्ञा पुं० [सं०] धूना। राल।

सुरालय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने का स्थान। स्वर्ग। (२) सुमेरु। (३) देवमंदिर। (४) वह स्थान जहाँ सुरा मिलती हो। शराबखाना। कलवरिया।

सुरालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सातला या सप्तला नाम की बेल जो जंगलों में होती है। इसके पत्ते खैर के पत्तों के समान छोटे छोटे होते हैं। इसका फल पीला होता है और इसमें एक प्रकार की पतली चिपटी फली लगती है। फली में काले बीज होते हैं जिसमें से पीले रंग का दूध निकलता है। वैद्यक के अनुसार यह लघु, तिक्त, कटु तथा कफ, पित्त, विस्फोट, व्रण और शोथ को नाश करनेवाली है।

सुराव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का घोड़ा। (२) उत्तम ध्वनि।

सुरावती-संज्ञा स्त्री० [सं० सुरावनि] कश्यप की पत्नी और देवताओं की माता, अदिति। उ०—विनता सुत खगनाथ चंद्र सोमावनि केरे। सुरावती के सूर्य रहत जग जासु उजेरे।—विश्राम।

सुरावनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की माता, अदिति। (२) पृथिवी।

सुरावारि-संज्ञा पुं० [सं०] सुरा समुद्र। वि० दे० "सुराब्धि"।

सुरावास-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु।

सुरावृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

सुराश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु।

सुराष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जो भारत के पश्चिम में था। किसी के मत से यह सूरत और किसी के मत से काठियावाड़ है। (२) राजा दशरथ के एक मंत्री का नाम।

वि० जिसका राज्य अच्छा हो।

सुराष्ट्रज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोपीचंदन। सौराष्ट्र मृत्तिका। (२) काली मूँग। कृष्ण मुद्ग। (३) लाल कुलथी। रक्त कुलत्थ। (४) एक प्रकार का विष।

वि० सुराष्ट्र देश में उत्पन्न।

सुराष्ट्रजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपीचंदन।

सुराष्ट्रोद्भवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकरी।

सुरासंधान-संज्ञा पुं० [सं०] शराब चुआने की क्रिया।

सुरासमुद्र-संज्ञा पुं० दे० "सुराब्धि"।

सुरासव-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का आसव जो तीक्ष्ण, बलकारक, मूत्रवर्द्धक, कफ और वायुनाशक तथा मुखप्रिय कहा गया है।

सुरासार-संज्ञा पुं० [सं०] मद्य का सार जो अंगूर या माड़ी के खमीर से बनता है। इसके बिना शराब नहीं बनती। इसी में नशा होता है।

सुरासुर-संज्ञा पुं० [सं०] सुर और असुर। देवता और दानव।

सुरासुरगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) कश्यप।

सुरास्पद-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का घर। देवगृह। मंदिर।

सुराही-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) जल रखने का एक प्रकार का प्रसिद्ध पात्र जो प्रायः मिट्टी का और कभी कभी पीतल या जस्ते आदि धातुओं का भी बनता है। यह बिलकुल गोल हंडी के आकार का होता है, पर इसका मुँह ऊपर की ओर कुछ दूर तक निकला हुआ गोल नली के आकार का होता है। प्रायः गरमी के दिनों में पानी ठंढा करने के लिये इसका उपयोग होता है। इसे कहीं कहीं कुज्जा भी कहते हैं।

यौ०—सुराहीदार।

(२) बाजू, जोशन या बरेखी के लटकते हुए सूत में घुंडी के ऊपर लगनेवाला सोने या चाँदी का सुराही के आकार का बना हुआ छोटा लंबोतरा टुकड़ा। (३) कपड़े की एक प्रकार की काट जो पान के आकार की होती है। इसमें मछली की दुम की तरह कुछ कपड़ा तिकोना लगा रहता है। (दर्जी) (४) नैचे में सब से ऊपर की ओर वह भाग जो सुराही के आकार का होता है और जिस पर चिलम रखी जाती है।

सुराहीदार-वि० [अ० सुराही + फा० दार] सुराही के आकार का। सुराही की तरह का गोल और लंबोतरा। जैसे,—सुराहीदार गरदन। सुराहीदार मोती।

सुराह्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु। (२) मरुआ। मरुवक। (३) हलदुवा। हरिद्रु।

सुराह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पौधा। (२) देवदारु।

सुरि-वि० [सं०] बहुत धनी। बड़ा अमीर।

सुरिंद-संज्ञा पुं० [सं० सुर] इंद्र। (डिं०)

सुरियाखार-संज्ञा पुं० [फा० शोरा + हिं० खार] शोरा।

सुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवपत्नी। देवांगना।

सुरीला-वि० [हिं० सुर + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० सुरीली] मीठे सुरवाला। मधुर स्वरवाला। जिसका सुर मीठा हो। सुस्वर। सुकंठ। जैसे,—सुरीला गला, सुरीला बाजा, सुरीला गवैया, सुरीली तान।

सुरुंग-संज्ञा पुं० [सं०] सहिजन। शोभांजन वृक्ष।

सुरुंगयुक्-संज्ञा पुं० दे० "सुरंगयुक्"।

सुरुंगा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरंग"।

सुरुंगाहि-संज्ञा पुं० [सं०] सेंध लगानेवाला चोर। सेंधिया चोर।

सुरुंदला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम ।

सुरुक्म-वि० [सं०] अच्छी तरह प्रकाशित । प्रदीप्त ।

सुरुख-वि० [सं० सु + फा० रुख = प्रवृत्ति] अनुकूल । सदय । प्रसन्न । उ०—सुरुख जानकी जानि कपि कहे सकल संकेत ।—तुलसी ।

वि० दे० "सुर्ख" । उ०—रंच न देरि करहु सुरुख अब हरि हेरि परें न । विनय बयन मो सुनि भये सुरुख तरुनि के नैन ।—शृंगार सतसई ।

सुरुखुरू-वि० [फा० सुर्खरू] जिसे किसी काम में यश मिला हो । यशस्वी । उ०—अलहदाद भल तेहिकर गुरू । दीन दुनी रोसन सुरुखुरू ।—जायसी ।

सुरुच-संज्ञा पुं० [सं०] उज्ज्वल प्रकाश । अच्छी रोशनी ।

वि० सुंदर प्रकाशवाला ।

सुरुचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा उत्तानपाद की दो पत्नियों में से एक जो उत्तम की माता थी । ध्रुव की विमाता । (२) उत्तम रुचि । (३) अत्यंत प्रसन्नता ।

वि० (१) उत्तम रुचिवाला । जिसकी रुचि उत्तम हो । (२) स्वाधीन । (डिं०)

संज्ञा पुं० (१) एक गंधर्व राजा का नाम । (२) एक यक्ष का नाम ।

सुरुचिर-वि० [सं०] (१) सुंदर । दिव्य । मनोहर । (२) उज्ज्वल । प्रकाशमान् । दीप्तिशाली ।

सुरुज-वि० [सं०] बहुत बीमार । अस्वस्थ । रुग्ण ।

*† संज्ञा पुं० दे० "सूर्य्य" । उ०—तहँ ही से सब ऊपजे चंद सुरुज आकाश ।—दादू ।

सुरुजमुखी†-संज्ञा पुं० दे० "सूर्यमुखी" । उ०—विचारि चहूँ दिसि लखत हैं वर पूजें बृजराज । चंद्रमुखी कों लखि सखी सुरुजमुखी सी आज ।—शृंगार-सतसई ।

सुरुद्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतद्रु या वर्त्तमान सतलज नदी का एक नाम ।

सुरुल-संज्ञा पुं० [देश०] मूँगफली पौधे का एक रोग जिसमें कुछ कीड़ों के खाने के कारण उसके पत्ते और डंठल टेढ़े हो जाते हैं । इस पौधे में यह रोग प्रायः सभी जगहों में होता है और इससे बड़ी हानि होती है ।

सुरुवा-संज्ञा पुं० दे० (१) "शोरवा" । (२) दे० "सुरवा" ।

सुरूप-वि० [सं०] [स्त्री० सुरूपा] (१) सुंदर रूपवाला । रूपवान् । खूबसूरत । (२) विद्वान् । बुद्धिमान् ।

संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम । (२) एक असुर का नाम । (३) कपास । तूल । (४) पलास पीपल । परिपाश्वस्थ । (५) कुछ विशिष्ट देवता और व्यक्ति ।

विशेष—कामदेव, दोनों अश्विनीकुमार, नकुल, पुरुरवा, नलकूबर और शांब ये सुरूप कहलाते हैं ।

* संज्ञा पुं० दे० "स्वरूप" । उ०—रूप सवाई दिन दिन चढ़ा । विधि सुरूप जग ऊपर गढ़ा ।—जायसी ।

सुरूपक-वि० दे० "स्वरूप" ।

सुरूपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरूप होने का भाव । सुंदरता । खूबसूरती ।

सुरूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरिवन । शालपर्णी । (२) बमनेठी । भारंगी । (३) सेवती । वनमल्लिका । (४) बेला । वार्षिकी मल्लिका । (५) पुराणानुसार एक गौ का नाम ।

वि० स्त्री० सुंदर रूपवाली । सुंदरी ।

सुरूहक-संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर । गर्दभाश्व ।

सुरेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुरराज । इंद्र । (२) लोकपाल । राजा ।

सुरेंद्रकंद-संज्ञा पुं० दे० "सुरेंद्रक" ।

सुरेंद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] कटु शूरण । काटनेवाला जमींकंद । जंगली ओल ।

सुरेंद्रगोप-संज्ञा पुं० [सं०] बीर बहूटी । इंद्रगोप नामक कीड़ा ।

सुरेंद्रचाप-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष ।

सुरेंद्रजित्-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र को जीतनेवाला, गरुड़ ।

सुरेंद्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरेंद्र होने का भाव या धर्म्म । इंद्रत्व ।

सुरेंद्रपूज्य-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति ।

सुरेंद्रमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी का नाम ।

सुरेंद्रलोक-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रलोक ।

सुरेंद्रवज्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्ण वृत्त का नाम जिसमें दो तगण, एक जगण और दो गुरु होते हैं । इंद्रवज्रा ।

सुरेंद्रवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] शची । इंद्राणी ।

सुरेंद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी का नाम ।

सुरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदर रेखा । (२) हाथ पाँव में होनेवाली वे रेखाएँ जिनका रहना शुभ समझा जाता है ।

सुरेज्य-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति ।

सुरेज्ययुग-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति का युग जिसमें पाँच वर्ष हैं । इन पाँचों वर्षों के नाम ये हैं—अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा और धाता ।

सुरेज्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तुलसी । (२) ब्राह्मी ।

सुरेणु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रसरेणु । (२) एक प्राचीन राजा का नाम ।

संज्ञा स्त्री० (१) त्वाष्ट्री की पुत्री और विवस्वान् की पत्नी । (२) एक नदी का नाम जो सप्त सरस्वतियों में समझी जाती है ।

सुरेणु पुष्पध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार किन्नरों के एक राजा का नाम ।

सुरेतना†-क्रि० स० [?] खराब अनाज से अच्छे अनाज को अलग करना ।

सुरेतर-संज्ञा पुं० [सं०] असुर ।

सुरेता-वि० [सं० सुरेतस्] बहुत वीर्यवान् । अधिक सामर्थ्यवान् ।

सुरेतोधा-वि० [सं० सुरेतोधस्] वीर्यवान् । पौरुष संपन्न ।

सुरेथ-संज्ञा पुं० [?] सूँस । शिशुमार । उ०—रथ सुरेथ भुज मीन समाना । शिरकच्छप गजग्राह प्रमाना ।—विश्राम ।

सुरेनुका-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरेणु" । उ०—सोमनाथ त्रिरंत ह्वै आल नाथ एकंग । हरिक्षेत्र नैमिष सदा अंशतीशु चित्रंग । प्रगट प्रभासु सुरेनुका हर्म्य जाए उज्जैनि । शंकर पूरनि पुष्करु अरु प्रयाग मृगनैनि ।—केशव ।

सुरेभ-संज्ञा पुं० [सं०] सुरहस्ती । देवहस्ती ।

वि० सुस्वर । सुरीला ।

सुरेवट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सुपारी का पेड़ । रामपूग ।

सुरेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के स्वामी, इंद्र । (२) शिव । (३) विष्णु । (४) कृष्ण । (५) लोकपाल ।

सुरेशलोक-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रलोक ।

सुरेशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

सुरेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के स्वामी, इंद्र । (२) ब्रह्मा । (३) शिव । (४) रुद्र ।

वि० देवताओं में श्रेष्ठ ।

सुरेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की स्वामिनी, दुर्गा । (२) लक्ष्मी । (३) राधा । (४) स्वर्ग गंगा ।

सुरेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफ़ेद अगस्त का वृक्ष । (२) लाल अगस्त । (३) सुर पुन्नाग । (४) शिवमल्ली । बड़ी मौलसिरी । (५) साल वृक्ष । साखू ।

सुरेष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] शाल । साखू । अश्वकर्ण ।

सुरेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी ।

सुरेस-संज्ञा पुं० दे० "सुरेश" ।

सुरै-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की अनिष्टकारी घास जो गर्मी के मौसिम में पैदा होती है ।

संज्ञा स्त्री० [सं० सुरभी] गाय । (डिं०)

सुरैत-संज्ञा स्त्री० [सं० सुरति] वह स्त्री जिससे विवाह संबंध न हुआ हो, बल्कि जो योंही घर में रख ली गई हो। उपपत्नी। रखनी । रखेली । सुरैतिन ।

सुरैतवाल-संज्ञा पुं० [हिं० सुरैत+वाल] सुरैत का लड़का ।

सुरैतवाला-संज्ञा पुं० दे० "सुरैतवाल" ।

सुरैतिन-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरैत" ।

सुरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञबाहु के एक पुत्र का नाम । (२) एक वर्ष का नाम ।

सुरोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

सुरोचि-वि० [सं० सुरुचि] सुंदर । उ०—गिरि जात न जानत पानन खात बिरी कर पंकज के दल की । बिहँसीं सब गोपसुता हरि लोचन मूँदि सुरोचि दगंचल की ।—केशव ।

सुरोची-संज्ञा पुं० [सं० सुरोचिस्] वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम ।

सुरोत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं में श्रेष्ठ, विष्णु । (२) सूर्य्य ।

सुरोत्तमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम ।

सुरोत्तर-संज्ञा पुं० [सं०] चंदन ।

सुरोद-संज्ञा पुं० [सं०] सुरा समुद्र । मदिरा का समुद्र ।

संज्ञा पुं० दे० "सरोद" ।

सुरोदक-संज्ञा पुं० दे० "सुरोद" ।

सुरोदय-संज्ञा पुं० दे० "स्वरोदय" ।

सुरोध-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार तंसु के एक पुत्र का नाम ।

सुरोधा-संज्ञा पुं० [सं० सुरोधस्] एक गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

सुरोमा-वि० [सं० सुरोमन्] सुंदर रोमोंवाला । जिसके रोम सुंदर हों ।

संज्ञा पुं० एक यज्ञ का नाम ।

सुरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के एक सेनापति का नाम ।

सुरौका-संज्ञा पुं० [सं० सुरौकस्] (१) स्वर्ग । (२) देवमंदिर ।

सुर्ख़-वि० [फ़ा०] रक्त वर्ण का । लाल ।

संज्ञा पुं० गहरा लाल रंग ।

सुर्ख़रू-वि० [फ़ा०] (१) जिसके मुख पर तेज हो । तेजस्वी । कांतिवान् । (२) प्रतिष्ठित । सम्मान्य । (३) किसी कार्य्य में सफलता प्राप्त करने के कारण जिसके मुँह की लाली रह गई हो ।

सुर्ख़रूई-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) सुर्ख़रू होने का भाव । (२) यश । कीर्त्ति । (३) मान । प्रतिष्ठा ।

सुर्ख़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुर्ख़] एक प्रकार का कबूतर जो लाल रंग का होता है ।

सुर्ख़ाब-संज्ञा पुं० दे० "सुरख़ाब" ।

सुर्ख़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) लाली । ललाई । अरुणता । (२) लेख आदि का शीर्षक, जो प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में प्रायः लाल स्याही से लिखा जाता था । (३) रक्त । लहू । ख़ून । (४) दे० "सुरख़ी" ।

सुर्ख़ीदार सुरमई-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का सुरमई या बैंजनी रंग जो कुछ लाली लिए होता है ।

सुर्जना-संज्ञा पुं० दे० "सहिजन" ।

सुर्ता-वि० [हिं० सुरति = स्मृति] समझदार । होशियार । बुद्धिमान् । उ०—हीरा लाल की कोठरी मोतिया भरे भँडार । सुर्ता सुर्ता चूनिया मूरख रहे झख मार ।—कबीर ।

सुर्ती-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरती" ।

सुर्मा-संज्ञा पुं० दे० "सुरमा" ।

सुर्रा-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार की मछली । (२) थैली । बटुआ ।

† संज्ञा पुं० [सुर्र से अनु०] तेज हवा ।

क्रि० प्र०—चलना ।

सुलंक-संज्ञा पुं० दे० "सोलंक"। उ०—तब सुलंक नृप आनँद पायो। द्वै सुत निज तिय मँह जनमायो।—रघुराज।

सुलंकी-संज्ञा पुं० दे० "सोलंकी"। उ०—पौरच पुंडीर परिहार औ पँवार बैंस, सेंगर सिसौदिया सुलंकी दितवार हैं।—सूदन।

सुलक्ख-वि० दे० "सुलक्षण"।

सुलक्षण-वि० [सं०] (१) शुभ लक्षणों से युक्त। अच्छे लक्षणों-वाला। (२) भाग्यवान्। किस्मतवर।

संज्ञा पुं० (१) शुभ लक्षण। शुभ चिह्न। (२) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ होती हैं। सात मात्राओं के बाद एक गुरु, एक लघु और तब विराम होता है।

सुलक्षणत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सुलक्षण का भाव। सुलक्षणता।

सुलक्षणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती की एक सखी का नाम।

वि० स्त्री० शुभ लक्षणों से युक्त। अच्छे लक्षणोंवाली।

सुलक्षणी-वि० स्त्री० दे० "सुलक्षणा"।

सुलगना-क्रि० अ० [सं० सु + हिं० लगना] (१) (लकड़ी, कोयले आदि का) जलना। प्रज्वलित होना। दहकना। (२) बहुत अधिक संताप होना।

सुलगाना-क्रि० स० [हिं० सुलगना का स० रूप] (१) जलाना। दहकाना। प्रज्वलित करना। जैसे,—लकड़ी सुलगाना, आग सुलगाना, कोयला सुलगाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—रखना।

(२) संतप्त करना। दुःखी करना।

सुलग्न-संज्ञा पुं० [सं०] शुभ मुहूर्त्त। शुभ लग्न। अच्छी सायत।

वि० [सं०] दृढ़ता से लगा हुआ।

सुलच्छन-वि० दे० "सुलक्षण"। उ०—(क) ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग। होइ कुवस्तु सुवस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग।—तुलसी। (ख) नृप लस्यो ततच्छन भरम हर। परम सुलच्छन वरम धर।—गि० दास।

सुलच्छनी-वि० दे० "सुलक्षणा"। उ०—जाय सुहागिनि बसति जो अपने पीहर धाम। लोग बुरी शंका करें यदपि सती हू वाम। यातें चाहत बंधुजन रहे सदा पतिगेह। प्रमुदा नारि सुलच्छनी बिनहु पिया के नेह।—लक्ष्मणसिंह।

सुलच्छ-वि० [सं० सुलक्ष] सुंदर। उ०—सुलछ लोचन चारु नासा परम रुचिर बनाइ। युगल खंजन लरत अवनित बीच कियो बनाइ।—सूर।

सुलझन-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुलझना] सुलझने की क्रिया या भाव। सुलझाव।

सुलझना-क्रि० अ० [हिं० उलझना] किसी उलझी हुई वस्तु की उलझन दूर होना या खुलना। उलझन का खुलना। गुत्थी का खुलना। जटिलताओं का निवारण होना।

सुलझाना-क्रि० स० [हिं० सुलझना का स० रूप] किसी उलझी हुई वस्तु की उलझन दूर करना। उलझन या गुत्थी खोलना। जटिलताओं को दूर करना।

सुलझाव-संज्ञा पुं० [हिं० सुलझना + आव (प्रत्य०)] सुलझने की क्रिया या भाव। सुलझन।

सुलटा-वि० [हिं० उलटा] [स्त्री० सुलटी] सीधा। उलटा का विपरीत।

सुलतान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बादशाह। सम्राट्।

सुलताना चंपा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुलतान + हिं० चंपा] एक प्रकार का पेड़ जो मद्रास प्रांत में अधिकता से होता है और कहीं कहीं संयुक्त प्रांत तथा पंजाब में भी पाया जाता है। इसके हीर की लकड़ी लाली लिए भूरे रंग की और बहुत मजबूत होती है। यह इमारत, मस्तूल आदि बनाने के काम में आती है। रेल की लाइन के नीचे पटरी की जगह रखने के भी काम में आती है। संस्कृत में इसे पुन्नाग कहते हैं।

सुलतानी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सुलतान] (१) बादशाही। बादशाहत। राज्य। उ०—चढ़ि धौराहर देखहिं रानी। धनि तुइँ अस जाकर सुलतानी।—जायसी। (२) एक प्रकार का बढ़िया महीन रेशमी कपड़ा।

वि० लाल रंग का। उ०—सोई हुती पलँगा पर बाल खुले अँचरानहिं जानत कोऊ। ऊँचे उरोजन कंचुकी ऊपर लालन के चरचे दृग दोऊ। सो छबि पीतम देखि छके कवि तोष कहै उपमा यह होऊ। मानो मढ़े सुलतानी बनात में साह मनोज के गुंबज दोऊ।—तोष।

सुलप*-वि० (१) दे० "स्वल्प"। उ०—नृत्यनि उघटति गति संगीत पद सुनत कोकिला लाजति। सूरश्याम नागर अरु नागरि ललना सुलप मंडली राजति।—सूर। (२) मंद। उ०—चलि सुलप गज हंस मोहति कोक कला प्रवीन।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० सु + आलाप] सुंदर आलाप। (क्व०)

सुलफ-वि० [सं० सु + हिं० लपना] (१) लचीला। लचनेवाला। (२) नाजुक। कोमल। मुलायम। उ०—(क) दीरघ उसास लै लै ससिमुखी सिसकति सुलफ सलोनी लंक लहकै लहकि लहकि।—देव। (ख) मानो सियरात हित जानि कै प्रभात ढिग ढीले करि पीतम के गात सुलफनि के।—देव।

सुलफा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुल्फ़ः] (१) वह तमाकू जो चिलम में बिना तवा रखे भर कर पिया जाता है। (२) सूखा तमाकू जिसे गाँजे की तरह पतली चिलम में भर कर पीते हैं। कंकड़। (३) चरस।

यौ०—सुलफेबाज।

क्रि० प्र०—भरना।—पीना।

सुलफेबाज–वि० [हिं० सुलफा + फा० बाज] गाँजा या चरस पीनेवाला। गँजेड़ी या चरसी।

सुलब–संज्ञा पुं० [हिं०] गंधक।

सुलभ–वि० [सं०] (१) सुगमता से मिलने योग्य। सहज में मिलनेवाला। जिसके मिलने में कठिनाई न हो। (२) सहज। सरल। सुगम। आसान। (३) साधारण। मामूली। (४) उपयोगी। लाभकारी।

संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र की अग्नि।

सुलभता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुलभ का भाव। सुलभत्व। (२) सुगमता। आसानी।

सुलभत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुलभ का भाव। सुलभता। (२) सुगमता। सरलता। आसानी।

सुलभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैदिक काल की एक ब्रह्मवादिनी स्त्री का नाम। (गृह्यसूत्र) (२) तुलसी। (३) मषवन। जंगली उड़द। मांसपर्णी। (४) तमाकू। धूम्रपत्रा। (५) बेला। वार्षिकी मल्लिका।

सुलभेतर–वि० [सं०] (१) जो सहज में प्राप्त न हो सके। दुर्लभ। (२) कठिन। (३) महार्घ। महँगा।

सुलभ्य–वि० [सं०] सुगमता से मिलने योग्य। सहज में मिलनेवाला। जिसके मिलने में कठिनाई न हो।

सुललित–वि० [सं०] अति ललित। अत्यंत सुंदर।

सुलस–संज्ञा पुं० [?] स्वीडेन देश का एक प्रकार का लोहा।

सुलह–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) मेल। मिलाप। (२) वह मेल जो किसी प्रकार की लड़ाई या झगड़ा समाप्त होने पर हो। (३) दो राजाओं या राज्यों में होनेवाली संधि।

यौ०—सुलहनामा।

सुलहनामा–संज्ञा पुं० [अ० सुलह + फा० नामः] (१) वह कागज जिस पर दो या अधिक परस्पर लड़नेवाले राजाओं या राष्ट्रों की ओर से मेल की शर्तें लिखी रहती हैं। संधिपत्र। (२) वह कागज जिस पर परस्पर लड़नेवाले दो व्यक्तियों या दलों की ओर से समझौते की शर्तें लिखी रहती हैं; अथवा यह लिखा रहता है कि अब हम लोगों में किसी प्रकार का झगड़ा नहीं है।

सुलाक–संज्ञा पुं० [फा० सूराख] सूराख। छेद। (लश०)

संज्ञा स्त्री० दे० "सलाख"।

सुलाखना†–क्रि० स० [सं० सु + हिं० लखना = देखना] सोने या चाँदी को तपाकर परखना।

सुलागना*†–क्रि० अ० दे० "सुलगना"। उ०—अगिनि सुलागत मोरगो न अंग मन विकट बनावत बेहु। बकती कहा बाँसुरी कहि कहि करि करि तामस तेहु। —सूर।

सुलाना–क्रि० स० [हिं० सोना का प्रे०] (१) सोने में प्रवृत्त करना। शयन कराना। निद्रित कराना। (२) लिटाना। डाल देना।

सुलाभ–वि० दे० "सुलभ"।

सुलाभी–संज्ञा पुं० [सं० सुलाभिन्] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सुलूक–संज्ञा पुं० दे० "सलूक"।

सुलेक–संज्ञा पुं० [सं०] एक आदित्य का नाम।

सुलेखक–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा लेख या निबंध लिखनेवाला। जिसकी रचना उत्तम हो। उत्तम ग्रंथकार या लेखक।

सुलेमाँ–संज्ञा पुं० दे० "सुलेमान"। उ०—हाथ सुलेमाँ केरि अँगूठी। जग कहँ दान दीन्ह भरि मूठी।—जायसी।

सुलेमान–संज्ञा पुं० [फा०] (१) यहूदियों का एक प्रसिद्ध बादशाह जो पैगंबर माना जाता है। कहते हैं कि इसने देवों और परियों को वश में कर लिया था और यह पशु-पक्षियों तक से काम लिया करता था। इनका जन्म ई० पू० १०३३ और मृत्यु ई० पू० ९७५ माना जाता है। (२) एक पहाड़ जो बलोचिस्तान और पंजाब के बीच में है।

सुलेमानी–संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह घोड़ा जिसकी आँखें सफेद हों। (२) एक प्रकार का दोरंगा पत्थर जिसका कुछ अंश काला और कुछ सफेद होता है।

वि० सुलेमान का। सुलेमान संबंधी। जैसे,—सुलेमानी नमक।

सुलोक–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

सुलोचन–वि० [सं०] [स्त्री० सुलोचना] सुंदर आँखोंवाला। जिसके नेत्र सुंदर हों। सुनेत्र। सुनयन।

संज्ञा पुं० (१) हरिन। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (किसी किसी के मत से दुर्योधन का ही यह एक नाम था।) (३) एक दैत्य का नाम। (४) रुक्मिणी के पिता का नाम। (५) चकोर।

सुलोचना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। (२) राजा माधव की पत्नी का नाम जो आदर्श पत्नी मानी जाती है। (३) वासुकी की पुत्री और मेघनाद की पत्नी का नाम।

सुलोचनी–वि० स्त्री० [सं० सुलोचना] सुंदर नेत्रोंवाली। जिसके नेत्र सुंदर हों। उ०—सुंदरि सुलोचनि सुवचनि सुदति, तैसे तेरे मुख आखर परुष रुख मानिये।—केशव।

सुलोम–वि० [सं०] [स्त्री० सुलोमा] सुंदर लोमों या रोमों से युक्त। जिसके रोएँ सुंदर हों।

सुलोमनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामांसी। बालछड़।

सुलोमश–वि० दे० "सुलोम"।

सुलोमशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकजंघा। (२) जटामांसी।

सुलोमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ताम्रवल्ली। (२) मांस रोहिणी।

वि० दे० "सुलोम"।

सुलोह–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बढ़िया लोहा।

सुलोहक–संज्ञा पुं० [सं०] पीतल।

सुलोहित–संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर रक्त वर्ण। अच्छा लाल रंग।

वि० सुंदर रक्त वर्ण से युक्त। सुंदर लाल रंगवाला।

सुलोहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम।

सुलोही-संज्ञा पुं० [सं० सुलोहित] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सुल्तान-संज्ञा पुं० दे० "सुलतान"।

सुल्फ-संज्ञा पुं० [देश०] (१) बहुत चढ़ी या तेज लय। (२) नाव। किश्ती। (लश०)

सुवंश-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

सुवंशेक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद ईख या ऊख। श्वेतेक्षु।

सुवंस-संज्ञा पुं० दे० "सुवंश"। उ०—गिरिधर अनुज सुवंस चल्यो जदुवंस बढ़ावन।—गोपाल।

सुव-संज्ञा पुं० दे० "सुअन"। उ०—हिंदुवान पुन्य गाहक वनिक तासु निवाहक साहि सुव। बरबाद वान किरवान धरि जस जहाज सिवराज तुव।—भूषण।

सुवक्ता-वि० [सं० सु+वक्तृ] सुंदर बोलनेवाला। उत्तम व्याख्यान देनेवाला। वाक्पटु। व्याख्यान कुशल। वाग्मी।

सुवक्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) स्कंद के एक पारिषद का नाम। (३) दंतवक्त्र के एक पुत्र का नाम। (४) वन तुलसी। वन बर्बरी।

वि० सुंदर मुँहवाला। सुमुख।

सुवक्ष-वि० [सं० सुवक्षस्] सुंदर या विशाल वक्षवाला। जिसकी छाती सुंदर या चौड़ी हो।

सुवक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मय दानव की पुत्री और त्रिजटा तथा विभीषण की माता का नाम।

सुवच-वि० [सं०] सहज में कहा जानेवाला। जिसके उच्चारण में कोई कठिनता न हो।

सुवचन-वि० [सं०] (१) सुंदर बोलनेवाला। सुवक्ता। वाग्मी। (२) मिष्टभाषी।

सुवचनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम। (बंगाल की स्त्रियों में इस देवी की पूजा का अधिक प्रचार है।)

वि० सुंदर वचन बोलनेवाली। मधुर भाषिणी। उ०—सुंदरि सुलोचनि सुवचनि सुदति तैसे तेरे मुख आखर परुष रुख मानिये।—केशव।

सुवचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्वी का नाम।

सुवज्र-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम।

सुवटा-संज्ञा पुं० दे० "सुअटा"। उ०—पिंजर पिंड सरीर का सुवटा सहज समाइ।—दादू।

सुवण-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्ण] सोना। सुवर्ण। (डिं०)

सुवदन-वि० [सं०] [स्त्री० सुवदना] सुंदर मुखवाला। जिसका मुख सुंदर हो। सुमुख।

संज्ञा पुं० वन तुलसी। बर्बरक।

सुवदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरी स्त्री।

सुवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) अग्नि। (३) चंद्रमा।

संज्ञा पुं० (१) दे० "सुअन"। उ०—सुरसरि-सुवन रणभूमि आये।—सूर। (२) दे० "सुमन"। उ०—दामिनि दमक देखी दीप की दिपति देखि देखि शुभ सेज देखि सदन सुवन को।—केशव।

सुवनारा-संज्ञा पुं० दे० "सुअन"। उ०—एक दिना तौ धर्म भुवारा। द्रुपदी हेतु संग सुवनारा।—सबलसिंह।

सुवपु-संज्ञा स्त्री० [सं० सुवपुस्] एक अप्सरा का नाम।

वि० सुंदर शरीरवाला। सुदेह।

सुवया-संज्ञा स्त्री० [सं० सुवयस्] प्रौढ़ा स्त्री। मध्यमा स्त्री।

सुवरकोन्ना-संज्ञा पुं० [सूअर ? + हिं० कोना] वह हवा जिसमें पाल नहीं उड़ता। (मल्लाह)

सुवरण-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्ण"।

सुवर्चक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सज्जी। स्वर्जिकाक्षार। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सुवर्चना-संज्ञा स्त्री० दे० "सुवर्चला"।

सुवर्चल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम। (२) काला नमक। सौवर्चल लवण।

सुवर्चला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य की पत्नी का नाम। (२) परमेष्ठी की पत्नी और प्रतीह की माता का नाम। (३) ब्राह्मी। (४) तीसी। अलसी। (५) हुरहुर। आदित्यभक्ता।

सुवर्चसी-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्चसिन्] शिव का एक नाम।

सुवर्चा-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्चस्] (१) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (२) स्कंद के एक पारिषद का नाम। (३) दसवें मनु के एक पुत्र का नाम। (४) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

वि० तेजस्वी। शक्तिवान्।

सुवर्चिक-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्चक"।

सुवर्चिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सज्जी। स्वर्जिकाक्षार। (२) पहाड़ी लता। जतुका।

सुवर्ची-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्चक"।

सुवर्जिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ी लता। जतुका।

सुवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) धन। संपत्ति। दौलत। (३) प्राचीन काल की एक प्रकार की स्वर्ण-मुद्रा जो दस माशे की होती थी। (४) सोलह माशे का एक मान। (५) स्वर्ण गैरिक। (६) हरिचंदन। (७) नागकेशर। (८) हलदी। हरिद्रा। (९) धतूरा। (१०) कण-गुग्गुल। (११) पीला धतूरा। (१२) पीली सरसों। गौर सर्षप। (१३) एक प्रकार का यज्ञ। (१४) एक वृत्त का नाम। (१५) एक देव गंधर्व का नाम। (१६) दशरथ के

एक मंत्री का नाम। (१७) अंतरीक्ष के एक पुत्र का नाम। (१८) एक मुनि का नाम।

वि० (१) सुंदर वर्ण या रंग का। उज्वल। (२) सोने के रंग का। पीला।

सुवर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। (२) सोने की एक प्राचीन तौल जो सोलह माशे की होती थी। सुवर्ण कर्ष। (३) पीतल जो देखने में सोने के समान होता है। (४) अमलतास। आरग्वध वृक्ष। (५) सुवर्णक्षीरी।

वि० (१) सोने का। (२) सुंदर वर्ण या रंग का।

सुवर्ण कदली-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंपा केला। चंपक रंभा।

सुवर्ण कमल-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल। रक्त कमल।

सुवर्णकरणी-संज्ञा स्त्री० [सं० सुवर्ण + करण] एक प्रकार की जड़ी। इसका गुण यह बताया जाता है कि यह रोगजनित विवर्णता को दूर कर सुवर्ण अर्थात् सुंदर कर देती है। उ०—दक्षिण शिखर द्रोणगिरि माहीं। औषधि चारिहु अहैं तहाँ हीं। एक विशल्यकरनी सुखराई। एक सुवर्णकरनी मनभाई। एक संजीवनकरनी जोई। एक संधानकरन सुदमोई।—रघुराज।

सुवर्णकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्णकर्तृ] सोने के गहने बनानेवाला। सुनार। स्वर्णकार।

सुवर्णकर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सोने की एक प्राचीन तौल जो सोलह माशे की होती थी।

सुवर्णकार-संज्ञा पुं० [सं०] सोने के गहने बनानेवाला, सुनार।

सुवर्णकेतकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल केतकी। रक्त केतकी।

सुवर्णकेश-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक नागासुर का नाम।

सुवर्णक्षीरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कटेरी। सत्यानासी। कटुपर्णी। स्वर्णक्षीरी।

सुवर्ण गणित-संज्ञा पुं० [सं०] बीजगणित का वह अंग जिसके अनुसार सोने की तौल आदि मानी जाती है और उसका हिसाब लगाया जाता है।

सुवर्णगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सुवर्णगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजगृह के एक पर्वत का नाम। (२) अशोक की एक राजधानी जो किसी के मत से राजगृह में और किसी के मत से पश्चिमी घाट में थी।

सुवर्णगैरिक-संज्ञा पुं० [सं०] लाल गेरू।

पर्य्या०—स्वर्णधातु। सुरक्तक। संध्याभ्र। बभ्रुधातु। शिलाधातु।

सुवर्णगोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक प्राचीन राज्य का नाम।

सुवर्णघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] राँगा। बंग।

सुवर्णचूड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (२) एक प्रकार का पक्षी।

सुवर्णचूल-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्णचूड़"।

सुवर्णजीविक संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति जो सोने का व्यापार करती थी।

सुवर्णता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुवर्ण का भाव या धर्म्म। सुवर्णत्व।

सुवर्णतिलका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी। ज्योतिष्मती लता।

सुवर्णदुग्धी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कटेरी। भटकटैया। स्वर्णक्षीरिणी।

सुवर्णद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] सुमात्रा टापू का प्राचीन नाम।

सुवर्णधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] दान देने के लिये सोने की बनाई हुई गौ।

सुवर्णनकुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकंगनी। महाज्योतिष्मती लता।

सुवर्णपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

वि० सोने के पंखोंवाला। जिसके पर सोने के हों।

सुवर्णपत्र संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

सुवर्णपद्म-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल। रक्त कमल।

सुवर्णपद्मा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग गंगा।

सुवर्णपार्श्व-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

सुवर्णपालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सोने का बना हुआ पात्र।

सुवर्णपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी सेवती। राजतरुणी।

सुवर्णप्रभास-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक यक्ष का नाम।

सुवर्णप्रसर-संज्ञा पुं० [सं०] एलुआ। एलवालुक।

सुवर्णप्रसव-संज्ञा पुं० [सं०] एलुआ। एलवालुक।

सुवर्णफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंपा केला। सुवर्ण कदली।

सुवर्णबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सुवर्णभू-संज्ञा पुं० [सं०] ईशान कोण में स्थित एक देश का नाम।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार सुवर्णभू, वसुवन, दिविष्ट, पौरव आदि देश रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रों में अवस्थित हैं।

सुवर्णभूमि-संज्ञा पुं० [सं०] सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) का एक नाम।

सुवर्णमाक्षिक-संज्ञा पुं० [सं०] सोना मक्खी। स्वर्णमाक्षिक।

सुवर्णमाषक-संज्ञा पुं० [सं०] बारह धान का एक मान जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था।

सुवर्णमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा, जिसकी सहायता से सोना जल्दी गल जाता है।

सुवर्ण वणिक्-संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल की एक वणिक जाति। हिंदू राजत्व काल में इस जाति के लोग सोने का कारबार करते थे और अब भी बहुतेरे करते हैं। यह जाति निम्न और पतित समझी जाती है। ब्राह्मण और कायस्थ इनके यहाँ का जल नहीं ग्रहण करते। बंगाल में इन्हें "सोनार बेणे" कहते हैं।

सुवर्णमुखरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम ।

सुवर्णमेखली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम ।

सुवर्णयूथिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोनजुही । पीली जुही । पीतयूथिका ।

सुवर्णरंभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंपा केला । सुवर्ण कदली ।

सुवर्णरूप्यक-संज्ञा पुं० [सं०] सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) का एक प्राचीन नाम ।

सुवर्णरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जो बिहार के राँची जिले से निकलकर मानभूम, सिंहभूम और उड़ीसा होती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है । इसकी कई शाखाएँ हैं ।

सुवर्णरेतस-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

सुवर्णरेता-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्णरेतस] शिव का एक नाम ।

सुवर्णरोमा-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्णरोमन्] (१) भेंड़ । मेष । (२) महारोम के एक पुत्र का नाम ।

वि० सुनहरे रोएँ या बालोंवाला ।

सुवर्णलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी । ज्योतिष्मती लता ।

सुवर्णवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।

वि० सोने के रंग का । सुनहरा ।

सुवर्णवर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी । हरिद्रा ।

सुवर्णशिलेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

सुवर्णश्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] आसाम की एक नदी जो ब्रह्मपुत्र की मुख्य शाखा है ।

सुवर्णष्ठीवी-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्णष्ठीविन्] महाभारत के अनुसार संजय के एक पुत्र का नाम ।

सुवर्णसंक्ष-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्णकर्ष" ।

सुवर्णसिंदूर-संज्ञा पुं० दे० "स्वर्णसिंदूर" ।

सुवर्णसिद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो इंद्रजाल या जादू के बल से सोना बना या प्राप्त कर सकता हो ।

सुवर्णस्तेय-संज्ञा पुं० [सं०] सोने की चोरी (जो मनु के अनुसार पाँच महापातकों में से एक है) ।

सुवर्णस्तेयी-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्णस्तेयिन्] सोना चुरानेवाला जो मनु के अनुसार महापातकी होता है ।

सुवर्णस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जनपद का नाम । (२) सुमात्रा द्वीप का एक प्राचीन नाम ।

सुवर्णहलि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष ।

सुवर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक का नाम । (२) इक्ष्वाकु की पुत्री और सुहोत्र की पत्नी का नाम । (३) हलदी । हरिद्रा । (४) काला अगर । कृष्णागुरु । (५) खिरैंटी । बरियारा । बला । (६) कटेरी । सत्यानासी । स्वर्णक्षीरी । (७) इंद्रायन । इंद्रवारुणी ।

सुवर्णाकर-संज्ञा पुं० [सं०] सोने की खान, जिससे सोना निकलता है ।

सुवर्णाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम ।

सुवर्णाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नागकेसर । (२) धतूरा । धुस्तूर । (३) एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

सुवर्णाभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंखपद के एक पुत्र का नाम । (२) रेवटी । राजावर्त्तमणि ।

सुवर्णार-संज्ञा पुं० [सं०] कचनार । रक्त कांचन वृक्ष ।

सुवर्णावभासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्वी का नाम ।

सुवर्णाह्वा संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जूही । सोनजूही । स्वर्णयूथिका ।

सुवर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जीवंती । स्वर्ण जीवंती ।

सुवर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी । आखुपर्णी ।

सुवर्तुल-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज ।

सुवर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्म्मन्] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

वि० उत्तम कवच से युक्त । जिसके पास उत्तम कवच हो ।

सुवर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (२) एक बौद्ध आचार्य का नाम ।

सुवर्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मोतिया । मल्लिका ।

सुवल्लरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रदात्री लता ।

सुवल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जतुका नाम की लता । (२) सोमराजी ।

सुवल्लिज-संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा । प्रवाल ।

सुवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बकुची । सोमराजी । (२) कुटकी । कटुकी । (३) पुत्रदात्री लता ।

सुवसंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चैत्र पूर्णिमा । चैत्रावली । (२) मदनोत्सव जो चैत्र पूर्णिमा को होता था ।

सुवसंतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मदनोत्सव जो प्राचीन काल में चैत्र पूर्णिमा को होता था । (२) वासंती । नेवारी ।

सुवसंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माधवी लता । (२) चमेली । जातीपुष्प ।

सुवस*-वि० [सं० स्व + वश] जो अपने वश या अधिकार में हो । उ०—वरुण कुबेर अग्नि यम मारुत सुवस कियो क्षण माहँ ।—सूर ।

सुवस्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम ।

सुवह-वि० [सं०] (१) सहज में वहन करने या उठाने योग्य । जो सहज में उठाया जा सके । (२) धैर्यवान् । धीर ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार की वायु ।

सुवहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वीणा । बीन । (२) शेफालिका । (३) रासन । रास्ना । (४) सँभालू । नील सिंधुवार । (५) रुद्रजटा । (६) हंसपदी । (७) मूसली । तालमूली । (८) सलई । शल्लकी । (९) गंधनाकुली । नकुलकंद । (१०) निसोथ । त्रिवृत्त ।

सुवाँग†-संज्ञा पुं० दे० "स्वाँग"।
सुवाँगी†-संज्ञा पुं० दे० "स्वाँगी"।
सुवा-संज्ञा पुं० दे० "सुआ"। उ०—सुवा चलि ता बन को रस पीजै। जा बन राम नाम अमृतरस श्रवणपात्र भरि लीजै।—सूर।
सुवाक्य-वि० [सं०] सुंदर वचन बोलनेवाला। मधुरभाषी। सुवाग्मी।
सुवाग्मी-वि० [सं० सुवाग्मिन्] बहुत सुंदर बोलनेवाला। व्याख्यान-पटु। सुवक्ता।
सुवाजी-वि० [सं० सुवाजिन्] सुंदर पंखों से युक्त (तीर)।
सुवाना‡†-क्रि० स० दे० "सुलाना"। उ०—पांडव न्योते अंधसुत घर के बीच सुवाय। अर्द्ध रात्रि चहुँ ओर ते दीनी आग लगाय।—लल्लूलाल।
सुवामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्त्तमान रामगंगा नदी का प्राचीन नाम।
सुवार‡†-संज्ञा पुं० [सं० सूपकार] रसोइया। भोजन बनानेवाला। पाचक। उ०—सुनु नृप नाम जयंत हमारा। राज युधिष्ठिर केर सुवारा।—सबलसिंह।
संज्ञा पुं० [सं० सु+वार] उत्तम वार। अच्छा दिन। उ०—असाढ़ की अँधियारी अष्टमी मंगलवार सुवारी रामा।—हिंदी प्रदीप।
सुवार्त्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम।
सुवाल‡†-संज्ञा पुं० दे० "सवाल"।
सुवालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।
सुवास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुगंध। अच्छी महक। खुशबू। (२) उत्तम निवास। सुंदर घर। (३) शिव जी का एक नाम। (४) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में न, ज, ल (।।।, ।ऽ।, ।) होता है।
वि० [सं० सुवासस्] [स्त्री० सुवासा] सुंदर वस्त्रों से युक्त।
संज्ञा पुं० [सं० श्वास] श्वास। साँस। (डिं०)
सुवासक-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।
सुवासन-संज्ञा पुं० [सं०] दसवें मनु के एक पुत्र का नाम।
सुवासरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हालों नाम का पौधा। चंसुर। चंद्रशूर।
सुवासिका-वि० [सं० सुवासिक] सुवास करनेवाली। सुगंध करनेवाली। उ०—केशव सुगंध श्वास सिद्धनिके गृहा किधौं परम प्रसिद्ध शुभ शोभत सुवासिका।—केशव।
सुवासित-वि० [सं०] सुवासयुक्त। सुगंधयुक्त। खुशबूदार।
सुवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युवावस्था में भी पिता के यहाँ रहनेवाली स्त्री। चिरंटी। (२) सधवा स्त्री।
सुवासी-वि० [सं० सुवासिन्] उत्तम या भव्य भवन में रहनेवाला।
सुवास्तु-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।
संज्ञा पुं० (१) सुवास्तु नदी के निकटवर्त्ती देश का नाम। (२) इस देश के रहनेवाले।
सुवास्तुक-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।
सुवाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्कंद के एक पारिषद् का नाम। (२) अच्छा घोड़ा।
वि० (१) सहज में उठाने योग्य। (२) सुंदर घोड़ोंवाला।
सुवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन मुनि का नाम।
सुविक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] वत्सप्री के एक पुत्र का नाम।
वि० अत्यंत साहसी, शक्तिशाली या वीर।
सुविक्रांत-वि० [सं०] अत्यंत विक्रमशाली। अतिशय पराक्रमी। अत्यंत साहसी या वीर।
संज्ञा पुं० (१) शूर। वीर। बहादुर। (२) वीरता। बहादुरी।
सुविक्लव-वि० [सं०] अतिशय विह्वल। बहुत बेचैन।
सुविख्यात-वि० [सं०] बहुत प्रसिद्ध। सुप्रसिद्ध। बहुत मशहूर।
सुविगुण-वि० [सं०] (१) जिसमें कोई गुण या योग्यता न हो। गुणहीन। योग्यता रहित। (२) अत्यंत दुष्ट। नीच। पाजी।
सुविग्रह-वि० [सं०] सुंदर शरीर या रूपवाला। सुदेह। सुरूप।
सुविचार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूक्ष्म या उत्तम विचार। (२) अच्छा फैसला। सुंदर न्याय। (३) रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र का नाम।
सुविचारित-वि० [सं०] सूक्ष्म या उत्तम रूप से विचार किया हुआ। अच्छी तरह सोचा हुआ।
सुविज्ञ-वि० [सं०] अतिशय विज्ञ या बुद्धिमान्। बहुत चतुर।
सुविज्ञान-वि० [सं०] (१) जो सहज में जाना जा सके। (२) अतिशय चतुर या बुद्धिमान्।
सुविज्ञेय-वि० [सं०] जो सहज में जाना जा सके। सहज में जानने योग्य।
संज्ञा पुं० शिव जी का एक नाम।
सुवित-वि० [सं०] सहज में पहुँचने योग्य। सहजमें पाने योग्य।
संज्ञा पुं० (१) अच्छा मार्ग। सुपथ। (२) कल्याण। (३) सौभाग्य।
सुवितत-वि० [सं०] अच्छी तरह फैला हुआ। सुविस्तृत।
सुवितल-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु की एक प्रकार की मूर्त्ति।
सुवित्त-वि० [सं०] बहुत धनी। बड़ा अमीर।
सुवित्ति-संज्ञा पुं० [सं०] एक देवता का नाम।
सुविद्-संज्ञा पुं० [सं०] पंडित। विद्वान्।
सुविद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतःपुर या रनिवास का रक्षक। सौविद्। कंचुकी। (२) एक राजा का नाम। (३) तिलक। तिलकपुष्प वृक्ष।
सुविदग्ध-वि० [सं०] बहुत चतुर। बहुत चालाक।
सुविदत्-संज्ञा पुं० [सं०] राजा।
सुविदत्र-वि० [सं०] (१) अतिशय सावधान। (२) सहृदय। (३) उदार। दयालु।

संज्ञा पुं० (१) कृपा । दया । (२) धन । संपत्ति । (३) कुटुंब । (४) ज्ञान ।

सुविदर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम ।

सुविदला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका ब्याह हो गया हो । विवाहिता स्त्री ।

सुविदल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर । जनानखाना । जनाना महल ।

सुविदित-वि० [सं०] भली भाँति विदित । अच्छी तरह जाना हुआ ।

सुविद्य-वि० [सं०] उत्तम विद्वान् । अच्छा पंडित ।

सुविद्युत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम ।

सुविध-वि० [सं०] अच्छे स्वभाव का । सुशील । नेक मिजाज ।

सुविधा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुभीता" ।

सुविधि-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार वर्त्तमान अवसर्पिणी के नवें अर्हत् का नाम ।

सुविनीत-वि० [सं०] (१) अतिशय नम्र । (२) अच्छी तरह सिखाया हुआ । सुशिक्षित (जैसे घोड़ा या और कोई पशु) ।

सुविनीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गौ जो सहज में दूही जा सके ।

सुविभु-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम जो विभु का पुत्र था ।

सुविशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

सुविशुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक लोक का नाम ।

सुविष्टंभी-संज्ञा पुं० [सं० सुविष्टम्भिन्] शिव का एक नाम ।

सुवीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्कंद का एक नाम । (२) शिव जी का एक नाम । (३) शिवजी के एक पुत्र का नाम । (४) द्युतिमान् के एक पुत्र का नाम । (५) देवश्रवा के एक पुत्र का नाम । (६) क्षेम्य के एक पुत्र का नाम । (७) शिवि के एक पुत्र का नाम । (८) वीर । योद्धा । (९) एकवीर वृक्ष । (१०) छाछ की रबड़ी । (डिं०)

वि० अतिशय वीर । महान् योद्धा ।

सुवीरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेर । बदरी । (२) एकवीर वृक्ष । (३) सुरमा ।

सुवीरज-संज्ञा पुं० [सं०] सुरमा । सौवीरांजन ।

सुवीराम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] काँजी । कांजिक ।

सुवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] बेर । बदरी फल ।

वि० महान् शक्तिशाली । बहुत बड़ा बहादुर ।

सुवीर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वन कपास । वन कार्पासी । (२) बड़ी शतावरी । महा शतावरी । (३) कलपत्ती हींग । डिकामाली । नाड़ी हींग ।

सुवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] सूरन । जमींकंद । ओल ।

वि० (१) सच्चरित्र । (२) गुणवान । (३) साधु । (४) सुंदर छंदोबद्ध (काव्य) ।

सुवृत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम । (२) किशमिश । काकोली द्राक्षा । (३) सेवती । शतपत्री । (४) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १९ अक्षर होते हैं, जिनमें १,७,८,९,१०,११,१४ और १७वाँ अक्षर गुरु तथा अन्य अक्षर लघु होते हैं ।

सुवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम वृत्ति । उत्तम जीविका । (२) सदाचार । पवित्र जीवन ।

वि० (१) जिसकी वृत्ति या जीविका उत्तम या पवित्र हो । (२) सदाचारी । सच्चरित्र ।

सुवृद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण दिशा के दिग्गज का नाम ।

वि० (१) बहुत वृद्ध । (२) बहुत प्राचीन ।

सुवेगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मालकंगनी । महाज्योतिष्मती लता । (२) एक गिद्धनी का नाम ।

सुवेणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक नदी का नाम । महाभारत में भी इसका उल्लेख है ।

सुवेद-वि० [सं०] आध्यात्मिक ज्ञान में पारंगत । अध्यात्मशास्त्र का अच्छा ज्ञाता ।

सुवेदा-संज्ञा पुं० [सं० सुवेदस्] एक वैदिक ऋषि का नाम ।

सुवेल-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकूट पर्वत का नाम, जो रामायण के अनुसार समुद्र के किनारे लंका में था और जहाँ रामचंद्र जी सेना सहित ठहरे थे । उ०—कौतुक ही वारिधि बँधाइ उतरे सुवेल तट जाइ । तुलसिदास गढ़ देखि फिरे कपि प्रभु आगमनु सुनाइ ।—तुलसी ।

वि० (१) बहुत झुका हुआ । प्रणत । (२) शांत । नम्र ।

सुवेश-वि० [सं०] (१) भली भाँति या अच्छे कपड़े पहने हुआ । वस्त्रादि से सुसज्जित । सुंदर वेशयुक्त । (२) सुंदर । रूपवान ।

संज्ञा पुं० सफेद ईख । श्वेतेक्षु ।

सुवेशता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुवेश का भाव या धर्म्म ।

सुवेशी-वि० दे० "सुवेश" ।

सुवेष-वि० दे० "सुवेश" ।

सुवेषित-वि० दे० "सुवेश" । उ०—गलीचे पर एक सुवेषित यवन बैठा पान खा रहा था ।—गदाधरसिंह ।

सुवेषी-वि० दे० "सुवेश" ।

सुवेस-वि० दे० "सुवेश" ।

सुवेसल-वि० [सं० सुवेश + हिं० ल (प्रत्य०)] सुंदर । मनोहर । उ०—सुभग सुसम बंधुर रुचिर कांत काम कमनीय । रम्य सुवेसल भव्य अरु दर्शनीय रमणीय ।—अनेकार्थ ।

सुवैण-संज्ञा पुं० [सं० सु + वेन (वचन)] मित्रता । दोस्ती । (डिं०)

सुवैया-वि० [हिं० सोना + ऐया (प्रत्य०)] सोनेवाला ।

सुवो-संज्ञा पुं० [सं० शुक] शुक पक्षी । सुग्गा । तोता । (डिं०)

सुव्यक्त-वि० [सं०] उत्तम रूप से व्यक्त । बहुत स्पष्ट । सुप्रकाशित ।

सुव्यवस्थित-वि० [सं०] उत्तम रूप से व्यवस्थित । जिसकी व्यवस्था भली भाँति की गई हो ।

सुव्यूहमुखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

सुव्यूहा–संज्ञा स्त्री० दे० "सुव्यूहमुखा"।

सुव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (२) एक प्रजापति का नाम। (३) रौच्य मनु के एक पुत्र का नाम। (४) उशीनर के एक पुत्र का नाम। (५) प्रियव्रत के एक पुत्र का नाम। (६) ब्रह्मचारी। (७) वर्त्तमान अवसर्पिणी के २०वें अर्हत् का नाम। इन्हें मुनि सुव्रत भी कहते हैं। (८) भावी उत्सर्पिणी के ११वें अर्हत् का नाम।

विं० (१) दृढ़ता से व्रत पालन करनेवाला। (२) धर्मनिष्ठ। (३) विनीत। नम्र (घोड़ा या गाय आदि पशुओं के लिये)।

सुव्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंधपलाशी। कपूर कचरी। (२) सहज में दुही जानेवाली गाय। (३) गुणवती और पतिव्रता पत्नी। (४) एक अप्सरा का नाम। (५) दक्ष की एक पुत्री का नाम। (६) वर्त्तमान कल्प के १५वें अर्हत् की माता का नाम।

सुशक–वि० [सं०] सहज में होने योग्य। सुकर। आसान।

सुशक्त–वि० [सं०] अच्छी शक्तिवाला। शक्तिशाली। ताकतवर।

सुशक्ति–वि० दे० "सुशक्त"।

सुशब्द–वि० [सं०] अच्छा शब्द या ध्वनि करनेवाला। जिसकी आवाज अच्छी हो।

सुशरण्य–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

सुशरीर–वि० [सं०] जिसका शरीर सुंदर हो। सुडौल। सुदेह।

सुशर्म्मा–संज्ञा पुं० [सं० सुशर्म्मन्] (१) एक मनु के एक पुत्र का नाम। (२) एक वैशालि का नाम। (३) एक काण्व का नाम। (४) निंदित ब्राह्मण।

सुशल्य–संज्ञा पुं० [सं०] खैर। खदिर।

सुशवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला जीरा। कृष्ण जीरक। (२) करेला। कारवेल्ल। (३) काली जीरी। सूक्ष्म कृष्ण जीरक। (४) करंज।

सुशांत–वि० [सं०] अत्यंत शांत। स्थिर। उ०—बहुत काल लौं विचरे जल में तब हरि भये सुशांति। बीस प्रलय विविध नानाकर सृष्टि रची बहु भाँति।—सूर।

सुशांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा शशिध्वज की पत्नी का नाम।

सुशांति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीसरे मन्वंतर के इंद्र का नाम। (२) अजमीढ़ के एक पुत्र का नाम। (३) शांति के एक पुत्र का नाम।

सुशाक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अदरक। आर्द्रक। (२) चौलाई का साग। तंदुलीय शाक। (३) चंचु। चेंच। (४) भिंडी।

सुशाकक–संज्ञा पुं० दे० "सुशाक"।

सुशारद–संज्ञा पुं० [सं०] शालंकायन गोत्र के एक वैदिक आचार्य का नाम।

सुशास्य–वि० [सं०] सहज में शासित या नियंत्रित होने योग्य।

सुशिबिका संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की शिबी।

सुशिक्षित–वि० [सं०] उत्तम रूप से शिक्षित। अच्छी तरह शिक्षा पाया हुआ। जिसने विशेष रूप से शिक्षा पाई हो।

सुशिख–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का एक नाम।

सुशिखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मोर की चोटी। मयूर शिखा। (२) मुर्गे की कलगी। कुक्कुटकेश।

सुशिर–वि० [सं० सुशिरस] सुंदर सिरवाला। जिसका सिर सुंदर हो।

संज्ञा पुं० वह बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता हो। जैसे,—वंशी आदि। (संगीत)

सुशीत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीला चंदन। हरिचंदन। (२) पाकर। ह्रस्वप्लक्ष वृक्ष। (३) जलबेंत। जलवेतस।

वि० अत्यंत शीतल। बहुत ठंढा।

सुशीतल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधतृण। (२) सफेद चंदन। (३) नागदमनी। नागदवन।

वि० अत्यंत शीतल। बहुत ठंढा।

सुशीतला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खीरा। त्रपुष। (२) ककड़ी। कर्कटिका।

सुशीता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेवती। शतपत्री। (२) स्थल कमल।

सुशीम–संज्ञा पुं० दे० "सुषीम"।

सुशील–वि० [सं०] [स्त्री० सुशीला] (१) उत्तम शीलवाला। (२) उत्तम स्वभाववाला। शीलवान्। (३) सच्चरित्र। साधु। (४) विनीत। नम्र। (५) सरल। सीधा।

सुशीलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुशील का भाव। सुशीलत्व। (२) सच्चरित्रता। (३) नम्रता।

सुशीला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम। (२) राधा की एक अनुचरी का नाम। (३) यम की पत्नी का नाम। (४) सुदामा की पत्नी का नाम।

सुशीली–वि० [सं० सुशीलिन्] दे० "सुशील"।

सुशीविका–संज्ञा स्त्री० [सं०] गेंठी। वाराहीकंद।

सुशृंग–वि० [सं०] सुंदर शृंगयुक्त। सुंदर सींगोंवाला।

संज्ञा पुं० शृंगी ऋषि। उ०—कस्यपसुत सुविभांडकै ह्वैहैं सिष्य सुशृंग। ब्रह्मचरजरत बनहि मैं बनचारिन के ढंग।—पद्माकर।

सुशृत–वि० [सं०] अत्यंत तप्त। बहुत गरम।

सुशोभन–वि० [सं०] (१) अत्यंत शोभायुक्त। दिव्य। (२) जो देखने में बहुत भला मालूम हो। बहुत सुंदर। प्रियदर्शन।

सुशोभित–वि० [सं०] उत्तम रूप से शोभित। अत्यंत शोभायमान।

सुश्रम–संज्ञा पुं० [सं०] धर्म्म के एक पुत्र का नाम।

सुश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० सुश्रवस्] (१) एक प्रजापति का नाम। (२) एक ऋषि का नाम (३) एक नागासुर का नाम।
वि० (१) उत्तम हवि से युक्त। (२) प्रसिद्ध। कीर्तिमान्।
संज्ञा स्त्री० एक वैदर्भी का नाम जो जयत्सेन की पत्नी थी।

सुश्राव्य-वि० [सं०] जो सुनने में अच्छा जान पड़े।

सुश्री-वि० [सं०] (१) बहुत सुंदर। शोभायुक्त। (२) बहुत धनी। बड़ा अमीर।

सुश्रीक-संज्ञा पुं० [सं०] सलई। शल्लकी।
वि० दे० "सुश्री"।

सुश्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आयुर्वेदीय चिकित्सा शास्त्र के एक प्रसिद्ध आचार्य्य जिनका रचा हुआ "सुश्रुत संहिता" नामक ग्रंथ बहुत मान्य समझा जाता है। गरुड़ पुराण में लिखा है कि ये विश्वामित्र के पुत्र थे और इन्होंने काशी के राजा दिवोदास से, जो धन्वंतरि के अवतार थे, शिक्षा पाई थी। आयुर्वेद के आचार्यों में इनका और इनके ग्रंथ का भी वही स्थान है, जो चरक और उनके ग्रंथ का है। (२) सुश्रुत का रचा हुआ सुश्रुत संहिता नामक ग्रंथ। (३) गोष्ठी श्राद्ध के अंत में ब्राह्मण से यह पूछना कि आप तृप्त हो गए न !
वि० (१) अच्छी तरह सुना हुआ। (२) प्रसिद्ध। मशहूर।

सुश्रुतसंहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] आचार्य्य सुश्रुत का बनाया आयुर्वेद का एक प्रसिद्ध और सर्वमान्य ग्रंथ।

सुश्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार धर्म्म के एक पुत्र का नाम।

सुश्रूखा※-संज्ञा स्त्री० दे० "शुश्रूषा"।

सुश्रूषा-संज्ञा स्त्री० दे० "शुश्रूषा"।

सुश्रोणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक नदी का नाम।

सुश्रोणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।
वि० सुंदर नितंबवाली।

सुश्लोक-वि० [सं०] (१) पुण्यात्मा। पुण्यकीर्त्ति। (२) सुप्रसिद्ध। मशहूर।

सुषंधि-संज्ञा पुं० [सं० सुषन्धि] (१) रामायण के अनुसार मांधाता के एक पुत्र का नाम। (२) पुराणानुसार प्रसुश्रुत के एक पुत्र का नाम।

सुष※-संज्ञा पुं० दे० "सुख"।

सुषद्वा-संज्ञा पुं० [सं० सुषद्वन्] एक ऋषि का नाम।

सुषम-वि० [सं०] (१) बहुत सुंदर। शोभायुक्त। (२) सम। समान।

सुषमदुःषमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मतानुसार कालचक्र के दो आरे।

सुषमना※-संज्ञा स्त्री० दे० "सुषुम्ना"। उ०—(क) इंगला पिंगला सुषमना नारी। शून्य सहज में बसहिं मुरारी।—सूर। (ख) गंधनाल द्विराह एक सम राखिये। चढ़ो सुषमना घाट अमी रस चाखिये।—कबीर।

सुषमनि-संज्ञा स्त्री० दे० "सुषुम्ना"। उ०—इंगला पिंगला सुषमनि नारी बंक नाल की सुधि पावै।—कबीर।

सुषमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) परम शोभा। अत्यंत सुंदरता। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक अक्षर में दस अक्षर रहते हैं जिनमें ३, ४, ८ और ९वाँ गुरु तथा अन्य अक्षर लघु होते हैं। (३) एक प्रकार का पौधा। (४) जैनों के अनुसार काल का एक नाम।

सुषमाशाली-वि० [सं०] जिसमें बहुत अधिक शोभा या सुंदरता हो।

सुषवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करेला। कारवेल्ल। (२) करेली। क्षुद्र कारवेल्ल। (३) जीरा। जीरक।

सुषाढ़-संज्ञा पुं० [सं०] शिव जी का एक नाम।

सुषाना※-क्रि० अ० दे० "सुखाना"। उ०—श्यामघन सींचिए तुलसी सालि सफल सुपाति।—तुलसी।

सुषारा※-वि० दे० "सुखारा"। उ०—रावन वंश सहित संहारा। सुनत सकल जग भएउ सुषारा।—रामाश्वमेध।

सुषि-संज्ञा स्त्री० [सं०] छिद्र। छेद। सूराख। बिल।

सुषिक-संज्ञा पुं० [सं०] शीतलता। ठंढक।
वि० शीतल। ठंढा।

सुषिनंदि-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार एक राजा का नाम।

सुषिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस। (२) बेत। (३) अग्नि। आग। (४) चूहा। (५) संगीत में वह यंत्र जो वायु के जोर से बजता हो। (६) छेद। सूराख। (७) वायुमंडल। (८) लौंग। लवंग (९) काठ। लकड़ी।
वि० छिद्रयुक्त। छेदवाला। पोला।

सुषिरच्छेद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वंशी।

सुषिरविवर-संज्ञा पुं० [सं०] बिल, विशेषकर साँप का बिल।

सुषिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कलिका। विद्रुम लता। (२) नदी।

सुषिलीका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया।

सुषीम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का सर्प। (२) चंद्रकांत मणि।
वि० (१) शीतल। ठंढा। (२) मनोरम। मनोज्ञ। सुंदर।

सुषुप्सु-वि० [सं० सुषुप्सु] सोने की इच्छा करनेवाला। निद्रातुर।

सुषुप्त-वि० [सं०] गहरी नींद में सोया हुआ। अच्छी तरह सोया हुआ। घोर निद्रित।
संज्ञा स्त्री० दे० "सुषुप्ति"।

सुषुप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घोर निद्रा। गहरी नींद। (२) अज्ञान। (वेदांत) (३) पातंजलदर्शन के अनुसार चित्त की एक वृत्ति या अनुभूति। कहते हैं कि इस अवस्था में जीव नित्य ब्रह्म की प्राप्ति करता है, परन्तु उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि मैंने ब्रह्म की प्राप्ति की है।

सुषुप्सु-वि० [सं०] सोने की इच्छा करनेवाला। निद्रातुर।

सुषुप्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शयन की अभिलाषा। सोने की इच्छा।

सुषुम्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हठ योग और तंत्र के अनुसार शरीर के अंतर्गत तीन प्रधान नाड़ियों में से एक।

विशेष—इस नाड़ियों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन प्रधान नाड़ियाँ मानी गई हैं। कहते हैं कि इड़ा और पिंगला नाड़ियों के मध्य में सुषुम्ना है; अर्थात् नासिका के वाम भाग में इड़ा, दक्षिण भाग में पिंगला और मध्य भाग (ब्रह्मरंध्र) में सुषुम्ना नाड़ी स्थित है। सुषुम्ना त्रिगुणमयी और चंद्र, सूर्य तथा अग्नि स्वरूपिणी है।

(२) वैद्यक के अनुसार चौदह प्रधान नाड़ियों में से एक जो नाभि के मध्य में स्थित है और जिससे अन्य सब नाड़ियाँ लिपटी हुई हैं।

सुषेण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) एक गंधर्व का नाम। (३) एक यक्ष का नाम। (४) एक नागासुर का नाम। (५) दूसरे मनु के एक पुत्र का नाम। (६) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (७) शूरसेन के एक राजा का नाम। (८) परीक्षित के एक पुत्र का नाम। (९) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (१०) वसुदेव के एक पुत्र का नाम। (११) विश्वगर्भ के एक पुत्र का नाम। (१२) शंबर के एक पुत्र का नाम। (१३) एक वानर का नाम। रामायण आदि के अनुसार यह वरुण का पुत्र, बाली का ससुर और सुग्रीव का वैद्य था। इसने राम-रावण के युद्ध में रामचंद्र की विशेष सहायता की थी। (१४) करौंदा। करमर्दक। (१५) बेंत। बेतस लता। नम्रक।

सुषेणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] काली निसोथ। कृष्ण त्रिवृता।

सुषेणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ। त्रिवृता।

सुषोपतिॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "सुषुप्ति"। उ०—सुत्रातमा प्रकाशित भोपति। तस्य अवस्था आहि सुषोपति।—विश्राम।

सुषोप्तिॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "सुषुप्ति"। उ०—जागृत नारी सुषोप्ति तुरिया, भौंर गोफा में घर छावै।—कबीर।

सुषोमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी का नाम।

सुष्कंत-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार धर्मनेत्र के एक पुत्र का नाम।

सुष्ट-संज्ञा पुं० [सं० दुष्ट का अनु०] अच्छा। भला। दुष्ट का उलटा। जैसे,—बादशाह अपनी सेना लेकर सुष्ट अर्थात् तृणचर पशुओं की रक्षा के निमित्त दुष्ट अर्थात् मांसाहारी जीवों के नाश करने को चढ़ता था।—शिवप्रसाद।

सुष्ठु-अव्य० [सं०] (१) अतिशय। अत्यंत। (२) भली भाँति। अच्छी तरह। (३) यथायोग्य। ठीक ठीक।

संज्ञा पुं० (१) प्रशंसा। तारीफ। (२) सत्य।

सुष्ठुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मंगल। कल्याण। भलाई। (२) सौभाग्य। (३) सुंदरता। उ०—शब्दों की अनोखी सुष्ठुता द्वारा मन को चमत्कृत करने की शक्ति।—निबंधमालादर्श।

सुष्मंत-संज्ञा पुं० दे० "सुष्कंत"।

सुष्म-संज्ञा पुं० [सं०] रस्सी। रज्जु।

सुष्मनाॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "सुषुम्ना"। उ०—चंद सूरहि चंद कै मग सुष्मनागत दीश। प्राणशोधन को करै जेहि हेत सर्व ऋषीश।—केशव।

सुसंकुल-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।

सुसंक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सुसंग-संज्ञा पुं० [सं० सु + हिं० संग] उत्तम संगति। सत्संग। अच्छी सोहबत।

सुसंगत-वि० [सं०] उत्तम रूप से संगत। बहुत युक्ति-युक्त। बहुत उचित।

सुसंगति-संज्ञा स्त्री० [सं० सु + हिं० संगत] अच्छी संगत। अच्छी सोहबत। सत्संग। साधुसंग।

सुसंधि-संज्ञा पुं० दे० "सुषंधि"।

सुसंभाव्य-संज्ञा पुं० [सं०] रैवत मनु के एक पुत्र का नाम।

सुस-संज्ञा स्त्री० दे० "सुसा"। उ०—परी कामवश ताकी सुस जाके मुंड दश कीने हाव भाव चित्त चाव एक बंद सों। दीप सुत नैन दै सुनैनन चलाय रही जानकी निहार मन रही न अनंद सों।—हनुमन्नाटक।

सुसकना-क्रि० अ० दे० "सिसकना"। उ०—(क) पालने झूलो मेरे लाल पियारे। सुसकनि की हौं बलि बलि करौं तिल तिल हठ न करहु जे दुलारे।—सूर। (ख) कपिपति काम सँवार, बाली अध सुसकत परयो। तब ताही की नार रघुपति सों बिनती करे।—हनुमन्नाटक। (ग) अति कठोर दोउ काल से भरग्यो अति झसक्यो। जागि परयो तहँ कोउ नहीं जिय ही जिय सुसक्यो।—सूर। (घ) घूँघट मैं सुसकै भरे साँसै ससै मुखनाह के सौंहैं न खोलै।—सुंदरीसर्वस्व।

सुसकल्यो-संज्ञा पुं० [सं० शश] खरगोश। खरहा। शशा। (डिं०)

सुसका-संज्ञा पुं० [अनु०] हुक्का। (सुनार)

सुसज्जित-वि० [सं०] भली भाँति सजा या सजाया हुआ। भली भाँति शृंगार किया हुआ। शोभायमान।

सुसताना-क्रि० अ० [फ़ा० सुस्त + आना (प्रत्य०)] श्रम मिटाना। थकावट दूर करना। विश्राम करना। आराम करना। जैसे,—इतनी दूर से आते आते थक गए हैं; जरा सुस्ता लें, तो आगे चलें।

सुसती-संज्ञा स्त्री० दे० "सुस्ती"।

सुसत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] कालिका पुराण के अनुसार राजा जनक की एक पत्नी का नाम।

सुसबद-संज्ञा पुं० [सं० सुशब्द] कीर्त्ति। यश। (डिं०)

सुसमय-संज्ञा पुं० [सं०] वे दिन जिनमें अकाल न हो। अच्छा समय। सुकाल। सुभिक्ष।

सुसमा-संज्ञा स्त्री० [सं० ऊष्मा] अग्नि। (डिं०)
⊛ संज्ञा स्त्री० दे० "सुषमा"।

सुसमुझि⊛-वि० [सं० सु+हिं० समझ] अच्छी समझवाला। सुबुद्धि। समझदार। उ०—नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।—तुलसी।

सुसर-संज्ञा पुं० दे० "ससुर"। उ०—वधू ने स्वर्गवासी सुसर की दोनों रानियों की समान भक्ति से वंदना की।—लक्ष्मणसिंह।

सुसरण-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सुसरा-संज्ञा पुं० दे० "ससुर"। उ०—कोई कोई दुष्ट राजपूत अपनी लड़कियों को मार डालते हैं कि जिसमें किसी का सुसरा न बनना पड़े।—शिवप्रसाद।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाली में अधिक होता है। जैसे,—(क) सुसरे ने कम तौला है। (ख) सुसरा कहीं का।

सुसरार-संज्ञा स्त्री० दे० "सुसराल"।

सुसरारि-संज्ञा स्त्री० दे० "सुसराल"।

सुसराल-संज्ञा स्त्री० [सं० श्वसुरालय] ससुर का घर। ससुराल।

सुसरित-संज्ञा स्त्री० [सं० सु+सरित] नदियों में श्रेष्ठ, गंगा। उ०—गे मुनि अवध बिलोकि सुसरित नहाएउ। सतानंद दस कोटि नाम फल पाएउ।—तुलसी।

सुसरी-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "ससुरी"। (२) दे० "सुरसुरी"।

सुसर्तु-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋग्वेद के अनुसार एक नदी का नाम।

सुसर्मा-संज्ञा पुं० दे० "सुशर्म्मा"।

सुसह-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।
वि० सहज में उठाने या सहने योग्य। जो सहज में उठाया या सहन किया जा सके।

सुसा⊛†-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वसृ] बहन। भगिनी। स्वसा। उ०—पंचवटी सुंदर लखि रामा। मोहत भई सुपनखा वामा। रावन सुसा राम ते भाषा। पुनि सीता भोजन अभिलाषा। —गिरिधरदास।
संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी। उ०—जे हनत सुसा बुज्जर उतंग।—सूदन।

सुसाइटी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोसाइटी"।

सुसाध्य-वि० [सं०] [संज्ञा सुसाधन] जिसका सहज में साधन किया जा सके। जो सहज में किया जा सके। सुखसाध्य। सहज साध्य।

सुसाना⊛†-क्रि० अ० [हिं० साँस] सिसकना। उ०—रामहिं राज्य विदेश बसे सुत सोच कियो यह बात न चंगी। एक उपाय करौं जु फिरे मत द्वै वर बेलेउँ माँग सुरंगी। भूषण डारन आँचर लेत है जात सुसात सुपाइन नंगी। दौर चली पिय पै वर माँगन मानहु काल कराल भुजंगी।—हनुमन्नाटक।

सुसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीलम। इंद्रनील मणि। (२) लाल खैर। रक्त खदिर वृक्ष।

सुसारवत्-संज्ञा पुं० [सं०] बिलौर। स्फटिक।

सुसिकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी। शर्करा।

सुसिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में एक प्रकार का अलंकार। जहाँ परिश्रम एक मनुष्य करता है, पर उसका फल दूसरा भोगता है, वहाँ यह अलंकार माना जाता है। उ०—साधि साधि औरै मरैं औरै भोगैं सिद्ध। तासों कहत सुसिद्धि। सब, जे हैं बुद्धि समृद्धि।—केशव।

सुसिर-संज्ञा पुं० [सं०] दाँत का एक रोग, जो वाग्भट के अनुसार, पित्त और रक्त के कुपित होने से होता है। दाँतों की जड़ फूल जाती है, उसमें बहुत दर्द होता है, खून निकलता है और मांस कटने या गिरने लगता है।

सुसीतलताई⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "सुशीतलता"।

सुसीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी। शतपत्री।

सुसीम-वि० [?] शीतल। ठंढा। (डिं०)

सुसीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार छठे अर्हत् की माता का नाम।

सुसुकना-क्रि० अ० दे० "सिसकना"।

सुसुड़ी†-संज्ञा स्त्री० [सुर सुर से अनु०] एक प्रकार का कीड़ा जो जौ में लगता है और उसके सार भाग को खा जाता है। सुरसुरी।

सुसुनिया-संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ जो बंगाल प्रदेश के बाँकुड़ा जिले में है। यहाँ चौथी शताब्दी का एक शिला-लेख है जिससे जाना जाता है कि पुष्कर के राजा चंद्र-वर्मा ने इस पहाड़ पर चक्र स्वामी की स्थापना की थी।

सुसुप्ति⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "सुषुप्ति"। उ०—सुख दुख हैं मन के धरम नहीं आतमा माँहिं। ज्यौं सुसुप्ति मैं द्वंद्दुख मन बिन भासैं नाँहिं।—दीनदयाल।

सुसुरप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली। जाती पुष्प।

सुसूक्ष्म-संज्ञा पुं० [सं०] परमाणु।
वि० अत्यंत सूक्ष्म। बहुत बारीक या छोटा।

सुसूक्ष्मपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशमांसी। जटामांसी। बालछड़।

सुसूक्ष्मेश-संज्ञा पुं० [सं०] (परमाणुओं के प्रभु या स्वामी) विष्णु का एक नाम।

सुसेन-संज्ञा पुं० दे० "सुषेन"।

सुसैंधवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंध देश की अच्छी घोड़ी।

सुसो-संज्ञा पुं० [सं० शश] खरगोश। खरहा। (डिं०)

सुसौभग-संज्ञा पुं० [सं०] दांपत्य सुख। पति पत्नी संबंधी सुख।

सुस्कंदन-संज्ञा पुं० [सं०] वर्वर वृक्ष ।

सुस्कंधमार-संज्ञा पुं० [सं] बौद्धों के अनुसार एक मार का नाम ।

सुस्त-वि० [फ़ा०] (१) जिसके शरीर में बल न हो । दुर्बल । कमजोर । (२) चिंता या लज्जा आदि के कारण निस्तेज । उदास । हतप्रभ । जैसे,—उस दिन की बात का जिक्र आते ही वह सुस्त हो गया । (३) जिसका वेग, प्रबलता या गति आदि कम हो, अथवा घट गई हो ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—होना ।

(४) जिसे कोई काम करने में आवश्यकता से अधिक समय लगता हो । जिसमें तत्परता का अभाव हो । आलसी । जैसे, तुम्हारा नौकर बहुत सुस्त है । (५) जिसकी गति मंद हो । धीमी चालवाला । जैसे,—(क) छोटी लाइन की गाड़ियाँ बहुत सुस्त होती हैं । (ख) तुम्हारी घड़ी कुछ सुस्त जान पड़ती है । (६) जिसकी बुद्धि तीव्र न हो । जो जल्दी कोई बात न समझता हो । जैसे,—यह लड़का दरजे भर में सब से ज्यादा सुस्त है । (७) अस्वस्थ । रोगी । बीमार । (लश०)

सुस्तना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदर छातियोंवाली स्त्री । सुंदर स्तनों से युक्त स्त्री । (२) वह स्त्री जो पहली बार रजस्वला हुई हो ।

सुस्तनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुस्तना" ।

सुस्तपाँव-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुस्त + हिं० पाँव] स्लोथ नामक जंतु का एक भेद । इन जंतुओं के कँटीले दाँत नहीं होते, पर जो कुचलनेवाले दाँत होते हैं, वे छोटे छोटे और कुंद होते हैं । ऊपर और नीचे के जबड़ों में आठ आठ डाढ़ें होती हैं, पर उनमें ठोस हड्डी और दाँतों की जड़ नहीं होती ।

सुस्त रीछ-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुस्त + हिं० रीछ] एक प्रकार का रीछ जो पहाड़ों पर पाया जाता है । इसका शरीर खुरखुरा और बेडौल होता है । इसके हाथों में बहुत शक्ति होती है जिससे यह अपना आहार इकट्ठा कर सकता है । इसके पंजे लंबे और मजबूत होते हैं, जिनसे यह अपने रहने के लिये माँद भी खोद लेता है ।

सुस्ताना-क्रि० अ० दे० "सुसताना" ।

सुस्ती-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सुस्त] (१) सुस्त होने का भाव । (२) आलस्य । शिथिलता । काहिली । ढिलाई । (३) बीमारी । (लश०)

सुस्तुत-संज्ञा पुं० [सं०] सुपार्श्व के एक पुत्र का नाम ।

सुस्तैन*-संज्ञा पुं० दे० "स्वस्त्ययन" । उ०—पढ़हिं बिप्र सुस्तैन चैन भरि मंगल साजु सँवारे । कौशल्या कैकेयी सुमित्रा भूपति सँग बैठारे । बैठे भूपति कनकासन पै करन लगे कुल रीती । गौरि गणेश पूजि पृथिवीपति करी श्राद्ध जस नीती ।—रघुराज ।

सुस्थ-वि० [सं०] (१) भला चंगा । नीरोग । स्वस्थ । तंदुरुस्त । (२) सुखी । प्रसन्न । खुश । (३) भली भाँति स्थित । सुस्थित । सुस्थिर । (४) सुंदर ।

सुस्थचित्त-वि० [सं०] जिसका चित्त सुखी या प्रसन्न हो ।

सुस्थता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुस्थ होने का भाव या धर्म्म । (२) नीरोगता । आरोग्य । स्वास्थ्य । तंदुरुस्ती । (३) कुशल क्षेम । (४) प्रसन्नता । आनंद ।

सुस्थत्व-संज्ञा पुं० दे० "सुस्थता" ।

सुस्थमानस-वि० दे० "सुस्थचित्त" ।

सुस्थल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम ।

सुस्थावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक प्रकार की रागिनी का नाम ।

सुस्थित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वास्तु या भवन जिसके चारों ओर वीथिका या मार्ग हों । (२) घोड़े का एक ग्रह जिससे ग्रस्त होने पर वह बराबर हिनहिनाया और अपने आप को देखा करता है । (३) एक जैनाचार्य का नाम ।

वि० [स्त्री० सुस्थिता] (१) उत्तम रूप से स्थित । दृढ़ । अविचल । (२) स्वस्थ । (३) भाग्यवान् ।

सुस्थितत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुस्थित होने का भाव । (२) सुख । प्रसन्नता । (३) निवृत्ति ।

सुस्थिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम स्थिति । अच्छी अवस्था । (२) मंगल । कुशल क्षेम । (३) आनंद । प्रसन्नता ।

सुस्थिर-वि० [सं०] [स्त्री० सुस्थिरा] अत्यंत स्थिर या दृढ़ । अविचल ।

सुस्थिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्तवाहिनी नस । लाल रग ।

सुस्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] खेसारी । त्रिपुट ।

सुस्नात-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने यज्ञ के उपरांत स्नान किया हो ।

सुस्मित-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सुस्मिता] हँसमुख । हँसोड़ ।

सुस्रोता-संज्ञा स्त्री० [सं० सुस्रोतस्] हरिवंश के अनुसार एक नदी का नाम ।

सुस्वध-संज्ञा पुं० [सं०] पितरों की एक श्रेणी या वर्ग ।

सुस्वधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कल्याण । मंगल । (२) सौभाग्य । खुशकिस्मती ।

सुस्वन-संज्ञा पुं० [सं०] शंख ।

वि० (१) उत्तम शब्द या ध्वनियुक्त । (२) बहुत ऊँचा । बुलंद । (३) सुंदर ।

सुस्वप्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुभ स्वप्न । अच्छा सपना । (२) शिव जी का एक नाम ।

सुस्वर-वि० [सं०] [स्त्री० सुस्वरा] सुंदर या उत्तम स्वर युक्त । जिसका सुर या कंठध्वनि मधुर हो । सुकंठ । सुरीला ।

संज्ञा पुं० (१) सुंदर या उत्तम स्वर। (२) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (३) शंख। (४) जैनों के अनुसार वह कर्म्म जिससे मनुष्य का स्वर मधुर और सुरीला होता है।

सुस्वरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुस्वर का भाव या धर्म। (२) वंशी के पाँच गुणों में से एक।

सुस्वादु-वि० [सं०] अत्यंत स्वाद युक्त। बहुत स्वादिष्ट। बहुत जायकेदार। खुश जायका।

सुहंग-वि० [हिं० महँगा का अनु०] कम मूल्य का। सस्ता। महँगा का उलटा।

सुहंगम-वि० [सं० सुगम] सहज। आसान।

सुहँगा-वि० [हिं० महँगा का अनु०] सस्ता। जो मँहगा न हो।

सुहटा-वि० [हिं० सुहावना] [स्त्री० सुहटी] सुहावना। सुंदर। उ०—सुनु ए कपटी दशकंध हठी दोउ राम रटी न कछूक घटी। हर धूरजटी कमठी खपटी सम तारे रटी जनवाचकटी। न ठटी रतिनाथ छटी तिनको नित नाचत मुक्त नटी सुहटी। —हनुमन्नाटक।

सुहड़-संज्ञा पुं० [सं० सुभट] सुभट। योद्धा। शूरवीर। (डिं०)

सुहनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोहनी"।

सुहनु-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

सुहबत-संज्ञा स्त्री० दे० "सोहबत"।

सुहर-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

सुहराना-क्रि० स० दे० "सहलाना"।

सुहव-संज्ञा पुं० दे० "सूहा" (राग)। उ०—सारंग गुंड मलार सोरठ सुहव सुघरनि बाजहीं। बहु भाँति तान तरंग सुनि गंधर्व किन्नर लाजहीं।—तुलसी।

सुहवि-संज्ञा पुं० [सं० सुहविस्] (१) एक आंगिरस का नाम। (२) भुमन्यु के एक पुत्र का नाम।

सुहवी-संज्ञा स्त्री० दे० "सूहा" (राग)। उ०—राग रागी सँचि मिलाई गावैं सुघर मलार। सुहवी सारंग टोडी भैरवी केदार।—सूर।

सुहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।
वि० [सुहस्ता] सुंदर हाथोंवाला।

सुहस्ती-संज्ञा पुं० [सं० सुहस्तिन्] एक जैन आचार्य का नाम।

सुहस्त्य-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

सुहा-संज्ञा पुं० [हिं० सुआ] [स्त्री० सुही] लाल नामक पक्षी।

सुहाग-संज्ञा पुं० [सं० सौभाग्य] (१) स्त्री की सधवा रहने की अवस्था। अहिवात। सौभाग्य।

मुहा०—**सुहाग मनाना** = अखंड सौभाग्य की कामना करना। पति-सुख के अखंड रहने के लिये कामना करना। **सुहाग भरना** = माँग भरना।

(२) वह वस्त्र जो वर विवाह के समय पहनता है। जामा। (३) मांगलिक गीत जो वर पक्ष की स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर गाती हैं।
संज्ञा पुं० दे० "सुहागा"।

सुहागन-संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"।

सुहागा-संज्ञा पुं० [सं० सुभग] एक प्रकार का क्षार जो गरम गंधकी सोतों से निकलता है। यह तिब्बत, लद्दाख और काश्मीर में बहुत मिलता है। यह छींट छापने, सोना गलाने तथा औषध के काम में आता है। इसे घाव पर छिड़कने से घाव भर जाता है। मीना इसी का किया जाता है और चीनी के बर्तनों पर इसी से चमक दी जाती है। वैद्यक के अनुसार यह कटु, उष्ण तथा कफ, विष, खाँसी और श्वास को हरनेवाला है।

पर्य्या०—लोहद्रावी। टंकण। सुभग। स्वर्णपाचक। रस-शोधन। कनकक्षार आदि।

सुहागिन-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुहाग + इन (प्रत्य०)] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा स्त्री। सौभाग्यवती। उ०—(क) मान कियो सपने मैं सुहागिन भौंहैं चढ़ी मति-राम रिसौंहैं।—मतिराम। (ख) तब मुरली नँदलाल पै भई सुहागिन आइ।—रसनिधि।

सुहागिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"। उ०—जाय सुहागिनि बसति जो अपने पीहर धाम। लोग बुरी शंका करैं यदपि सती हू बाम—लक्ष्मणसिंह।

सुहागिल-संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"। उ०—तोसों दुरावति हौं न कछू जिहि तें न सुहागिल सौति कहावै।—व्यंगार्थ-कौमुदी।

सुहाता-वि० [हिं० सहना] जो सहा जा सके। सहने योग्य। सह्य। उ०—(क) वही (वायु) मध्याह्नकालीन सूर्य की तीक्ष्ण तपन को सुहाता करती है।—गोलविनोद। (ख) तेल को तपाकर सुहाता सुहाता कान में डालो।—नूतनामृत-सागर।

सुहान-संज्ञा पुं० [सं० शोभन] (१) वैश्यों की एक जाति। (२) दे० "सोहान"।

सुहाना-क्रि० अ० [सं० शोभन] (१) शोभायमान होना। शोभा देना। उ०—(क) शंकर शैल शिलातल मध्य किधौं शुक की अवली फिरि आई। नारद बुद्धि विशारद हीय किधौं तुलसी-दल माल सुहाई।—केशव। (ख) यज्ञ नाम हरि तब चलि आए। कोटि अर्क सम तेज सुहाए।—गि० दास। (ग) कामदेव कहँ पूजती ऐसी रही सुहाय। नव पल्लव युत पेड़ जनु लता रही लपटाय।—बालमुकुंद गुप्त। (२) अच्छा लगना। भला मालूम होना। उ०—(क) भयो उदास सुहात न कछु ये छन सोवत छन जागे।—सूर। (ख) फूली लता द्रुम कुंज सुहान लगे :—सुंदरीसर्वस्व।
वि० दे० "सुहावना"। उ०—(क) सारी पृथ्वी इस वसंत

की वायु से कैसी सुहानी हो रही है।—हरिश्चंद्र। (ख) सौतिन दियो सुहाग ललन हू आज सयानी। जामिनि कामिनि स्याम काम की समै सुहानी।—व्यास।

सुहाया॥—वि० [हिं० सुहाना] [स्त्री० सुहाई] जो देखने में भला जान पड़ता हो। सुहावना। सुंदर। उ०—(क) सबै सुहाये ही लगें बसे सुहाये ठाम। गोरे मुँह बेंदी लसै अरुन पीत सित स्याम।—बिहारी। (ख) यमुना पुलिन मल्लिका मनोहर शरद सुहाई यामिनि। सुंदर शशि गुण रूप राग निधि अंग अंग अभिरामिनि।—सूर। (ग) भयहु बनावत राह सुहाई। तब तिहि सों बोले दुहु भाई।—पद्माकर। (घ) मेरे तो नाहिंने चंचल लोचन नाहिंने केशव बानि सुहाई। जानों न भूषण भेद के भावन भूलहू नैनहिं भौंहैं चढ़ाई।—केशव।

सुहारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० सु+आहार] सादी पूरी नाम का पकवान जिसमें पीठी आदि नहीं भरी रहती। उ०—(क) कान्ह कुँवर को कनछेदनो है हाथ सुहारी भेली गुर की।—सूर। (ख) घी न लगे, सुहारी होय। (कहा०)

सुहाल—संज्ञा पुं० [सं० सु+आहार] एक प्रकार का नमकीन पकवान जो मैदे का बनता है। यह बहुत मोयनदार होता है; और इसका आकार प्रायः तिकोना होता है।

सुहाली—संज्ञा स्त्री० दे० "सुहारी"।

सुहाव॥—वि० [हिं० सुहाना] सुहावना। सुंदर। भला। अच्छा। उ०—(क) सरवर एक अनूप सुहावा। नाना जंतु कमल बहु छावा।—सबल। (ख) देखि मानसर रूप सुहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा।—जायसी।

संज्ञा पुं० [सं० सु+हाव] सुंदर हाव। उ०—किधौं यह केशव शृंगार की है सिद्धि किधौं भाग की सहेली के सुहाग को सुहाव है।—केशव।

सुहावता†—वि० [हिं० सुहाना] [स्त्री० सुहावती] अच्छा लगनेवाला। सुहावना। भला। उ०—इस समय इसके मनभावती सुहावती बात कहूँ।—लल्लू।

सुहावन॥—वि० दे० "सुहावना"। उ०—जगमगात नृप गात वरम वर परम सुहावन।—गिरिधर।

सुहावना—वि० [हिं० सुहाना] [स्त्री० सुहावनी] जो देखने में भला मालूम हो। सुंदर। प्रियदर्शन। मनोहर। जैसे,—सुहावना समय, सुहावना दृश्य, सुहावना रूप।

क्रि० अ० दे० "सुहाना"। उ०—कछु औरहु बात सुहावत है।—श्रीनिवास।

सुहावनापन—संज्ञा पुं० [हिं० सुहावना+पन (प्रत्य०)] सुहावना होने का भाव। सुंदरता। मनोहरता।

सुहावला॥—वि० दे० "सुहावना"। उ०—पारसी पाँति की पीपर पत्र लिख्यौ किधौं मोहिनी मंत्र सुहावली।—सुंदरी-सर्वस्व।

सुहास—वि० [सं०] [स्त्री० सुहासा] चारु या मधुर हास्ययुक्त। सुंदर या मधुर मुसकानवाला। उ०—उततें नेकु इतै चितै रानि चितै तजि कोह। तेरो बदन सुहास सों ससि प्रकास सों सोह।—शृंगार सतसई।

सुहासी—वि० [सं० सुहासिन्] [स्त्री० सुहासिनी] सुंदर हँसनेवाला। मधुर मुसकानवाला। चारुहासी।

सुहित—वि० [सं०] (१) बहुत लाभकारी। उपयोगी। (२) किया हुआ। संपादित। (३) तृप्त। संतुष्ट। (४) उपयुक्त। ठीक।

सुहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्नि की एक जिह्वा का नाम। (२) रुद्रजटा।

सुहिया†—संज्ञा स्त्री० दे० "सुहा"।

सुहू—संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।

सुहृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छे हृदयवाला। (२) मित्र। सखा। बंधु। दोस्त। (३) ज्योतिष के अनुसार लग्न से चौथा स्थान जिससे यह जाना जाता है कि मित्र आदि कैसे होंगे।

सुहृत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुहृत् होने का भाव या धर्म्म। (२) मित्रता। दोस्ती।

सुहृद्—संज्ञा पुं० दे० "सुहृत्"।

सुहृद—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सुहृदय—वि० [सं०] (१) अच्छे हृदयवाला। उन्नतमना। (२) सहृदय। स्नेहशील।

सुहेलरा॥†—वि० दे० "सुहेला"। उ०—आज सुहेलरो सोहावन सतगुरु आये मोरे धाम।—कबीर।

सुहेला—वि० [सं० शुभ ?] (१) सुहावना। सुंदर। उ०—(क) बिछुरंता जब भेंटै सो जानै जेहि नेह। सुक्ख सुहेला उग्गवै दुःख झरै जिमि मेह।—जायसी। (ख) साँझ समै ललना मिलि आई खरो जहाँ नँदलाल अलबेलो। खेलन को निसि चाँदनी माहँ बनै न मतो मतिराम सुहेलो।—मतिराम। (२) सुखदायक। सुखद। उ०—मरना मीत सुहेला। बिछुरन खरा दुहेला।—दादू।

संज्ञा पुं० (१) मंगल गीत। (२) स्तुति। स्तव।

सुहेस†—वि० [सं० शुभ] अच्छा। सुंदर। भला।

सुहोता—संज्ञा पुं० [सं० सुहोतृ] (१) वह जो उत्तम रूप से हवन करता हो। अच्छा होता। (२) भुमन्यु के एक पुत्र का नाम। (३) वितथ के एक पुत्र का नाम।

सुहोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक ऋषि का नाम। (२) एक बार्हस्पत्य का नाम। (३) एक आत्रेय का नाम। (४) एक कौरव का नाम। (५) सहदेव के एक पुत्र का नाम। (६) भुमन्यु के एक पुत्र का नाम। (७) बृहत्क्षत्र के एक पुत्र का नाम। (८) बृहदिषु के एक पुत्र का नाम। (९) सुधन्वा के एक पुत्र का नाम। (१०) एक दैत्य का नाम।

(११) एक वानर का नाम। (१२) वितथ के एक पुत्र का नाम। (१३) क्षत्रवृद्ध के एक पुत्र का नाम।

सुह्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन प्रदेश जो गौड़ देश के पश्चिम में था। (२) यवनों की एक जाति।

सुह्मक-संज्ञा पुं० दे० "सुह्म"।

सूँ‡†-अव्य० [सं० सह] करण और अपादान का चिह्न। सों। से। उ०—(क) कह्यो द्विजन सूँ सुनहु पियारे।—रघुराज। (ख) कहत थकी ये चरन की नई अरुनई बाल। जाके रँग रँगि स्याम सूँ विदित कहावत लाल।—शृंगार सतसई।

सूँइस-संज्ञा स्त्री० दे० "सूँस"।

सूँघना-क्रि० स० [सं० सं + घ्राण] (१) घ्राणेंद्रिय या नाक द्वारा किसी प्रकार की गंध का ग्रहण या अनुभव करना। आघ्राण करना। बास लेना। महक लेना।

मुहा०—सिर सूँघना = बड़ों का मंगल-कामना के लिये छोटों का मस्तक सूँघना। बड़ों का गदगद होकर छोटों का मस्तक सूँघना। जमीन सूँघना = पिनक लेना। ऊँघना।

(२) बहुत अल्प आहार करना। बहुत कम भोजन करना। (व्यंग्य) जैसे,—आप तो खाली सूँघकर उठ बैठे। (३) (साँप का) काटना। जैसे,—बोलता क्यों नहीं? क्या साँप सूँघ गया है?

सूँघा-संज्ञा पुं० [हिं० सूँघना] (१) वह जो नाक से केवल सूँघकर यह बतलाता हो कि अमुक स्थान पर जमीन के अंदर पानी या खजाना आदि है। (२) सूँघकर शिकार तक पहुँचनेवाला कुत्ता। (३) भेदिया। जासूस। मुखबिर।

सूँठ†-संज्ञा स्त्री० दे० "सोंठ"।

सूँड़-संज्ञा स्त्री० [सं० शुण्ड] हाथी की नाक जो बहुत लंबी होती और नीचे की ओर प्रायः जमीन तक लटकती रहती है। यह लंबाई में प्रायः हाथी की ऊँचाई तक होती है। इसमें दो नथने होते हैं। हाथी इसी से हाथ का भी काम लेता है। यह इतनी मजबूत होती है कि हाथी इससे पेड़ उखाड़ सकता है और भारी से भारी चीज उठाकर फेंक सकता है। इसी से वह खाने के चीजें उठाकर मुँह में रखता और दमकल की तरह पानी फेंकता और पीता है। इससे वह जमीन पर से सूई तक उठा सकता है। शुंड। शुंडादंड।

सूँडदंड-संज्ञा पुं० [हिं० सूँड़ + सं० दंड] हाथी। (डिं०)

सूँडहल-संज्ञा पुं० [सं० शुंड + हल (प्रत्य० ?)] हाथी। (डिं०)

सूँडा-संज्ञा पुं० [सं० शुंड] हाथी की सूँड़ या नाक। (डिं०)

सूँडाल-संज्ञा पुं० दे० "शुंडाल"।

सूँड़ि†-संज्ञा स्त्री० दे० "सूँड़"।

सूँडी-संज्ञा स्त्री० [सं० शुंडी] एक प्रकार का सफेद कीड़ा जो कपास, अनाज, रेंड़ी, ऊख आदि के पौधों को हानि पहुँचाता है।

सूँधी†-संज्ञा स्त्री० [सं० शोधन] सज्जी मिट्टी।

सूँस-संज्ञा स्त्री० [सं० शिशुमार] एक प्रसिद्ध बड़ा जल-जंतु जो लंबाई में ८ से १२ फुट तक होता है और जिसके हर एक जबड़े में तीस दाँत होते हैं। यह पानी के बहाव में पाया जाता है और एक जगह नहीं रहता। साँस लेने के लिये यह पानी के ऊपर आता है और पानी की सतह पर बहुत थोड़ी देर तक रहता है। शीत काल में कभी कभी यह जल के बाहर निकल आता है। इसकी आँखें बहुत कमजोर होती हैं और यह मटमैले पानी में नहीं देख सकता। इसका आहार मछलियाँ और झिंगवा है। यह जाल में फँसाकर या बर्छियों से मार मारकर पकड़ा जाता है। इसका तेल जलाने तथा कई दूसरे कामों में आता है। सूँस। सूस। सूसमार।

सूंह‡†-अव्य० [सं० सम्मुख, पुं० हिं० सौंह] सम्मुख। सामने।

सूअर-संज्ञा पुं० [सं० शूकर सूकर] [स्त्री० सूअरी] (१) एक प्रसिद्ध स्तन्यपायी वन्यजंतु जो मुख्यतः दो प्रकार का होता है—(१) वन्य या जंगली और (२) ग्राम्य या पालतू। ग्राम्य सूअर घास आदि के सिवा विष्ठा भी खाता है, पर जंगली सूअर घास और कंद मूल आदि ही खाता है। यह ग्राम्य शूकर की अपेक्षा बहुत बड़ा और बलवान् होता है। यह प्रायः मनुष्यों पर ही आक्रमण करता, और उन्हें मार डालता है। इसके कई भेद हैं। इसका लोग शिकार करते हैं और कुछ जातियाँ इसका मांस भी खाती हैं। राजपूतों में जंगली सूअरों के शिकार की प्रथा बहुत दिनों से प्रचलित है। इसके शिकार में बहुत अधिक वीरता और साहस की आवश्यकता होती है। कहीं कहीं इसकी चरबी में पूरियाँ पकाई जाती हैं; और इसका मांस पकाकर या अचार के रूप में खाया जाता है। वैद्यक के मत से जंगली सूअर का मांस मेद, बल और वीर्यवर्द्धक है।

पर्य्या०—शूकर। सूकर। दंष्ट्री। भूदार। स्थूलनासिक। दंतायुध। वक्रवक्त्र। दीर्घतर। आखनिक। भूक्षित। स्तब्धरोमा। मुखलांगूल आदि।

(२) एक प्रकार की गाली। जैसे,—सूअर कहीं का।

सूअरबियान†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूअर + बिआना = जनना] (१) वह स्त्री जो प्रति वर्ष बच्चा जनती हो। बरस-बियानी। बरसाइन। (२) हर साल अधिक बच्चे जनने की क्रिया।

सूअरमुखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूअर + मुखी] एक प्रकार की बड़ी ज्वार।

सूआ†-संज्ञा पुं० [सं० शुक, प्रा० सुअ] सुग्गा। तोता। शुक। कीर। उ०—सूआ सरस मिलत प्रीतम सुख सिंधुबीर रस मान्यो। जानि प्रभात प्रभाती गायो भोर भयो दोउ जान्यो।—सूर। संज्ञा पुं० [हिं० सूई] (१) बड़ी सूई। (२) सींख। (लश०)

सूआन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो बरमा, चटगाँव और स्याम में होता है। इसके पत्ते प्रति वर्ष झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी इमारत और नाव के काम में आती है। इससे एक प्रकार का तेल भी निकलता है।

सूई-संज्ञा स्त्री० [सं० सूची] (१) पक्के लोहे का छोटा पतला तार जिसके एक छोर में बहुत बारीक छेद होता है और दूसरे छोर पर तेज नोक होती है। छेद में तागा पिरोकर इससे कपड़ा। सिया जाता है। सूची।

यौ०-सूई तागा। सूई डोरा।

क्रि० प्र०—पिरोना।—सीना।

मुहा०—सूई का भाला या फावड़ा बनाना=जरा सी बात को बहुत बड़ा बनाना। बात का बतंगड़ करना।

(२) पिन। (३) महीन तार का काँटा। तार या लोहे का काँटा जिससे कोई बात सूचित होती है। जैसे,—घड़ी की सूई, तराज़ू की सूई।

(४) अनाज, कपास आदि का अँखुआ। (५) सूई के आकार का एक पतला तार जिससे गोदना गोदा जाता है। (६) सूई के आकार का एक तार जिससे पगड़ी की चुनन बैठाते हैं।

सूई डोरा-संज्ञा पुं० [हिं० सूई+डोरा] मालखंभ की एक कसरत।

विशेष—पहले सीधी पकड़ के समान मालखंभ के ऊपर चढ़ने के समय एक बगल में से पाँव मालखंभ को लपेटते हुए बाहर निकालना और सिर को उठाना पड़ता है। उस समय हाथ छूटने का बड़ा डर रहता है। इसमें पीठ मालखंभ की तरफ और मुँह लोगों की तरफ होता है। जब पाँव नीचे आ चुकता है, तब ऊपर का उलटा हाथ छोड़कर मालखंभ को छाती से लगाए रहना पड़ता है। यह पकड़ बड़ी ही कठिन है।

सूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाण। (२) वायु। हवा। (३) कमल। (४) रुद्र के एक पुत्र का नाम।

॥ संज्ञा पुं० दे० "शुक्र"। उ०—नासिक देखि लजानेउ सूआ। सूक आइ बेसरि होइ ऊआ।—जायसी।

सूकना॥-क्रि० अ० दे० "सूखना"। उ०—(क) माँगी बर कोटि चोट बदरो न चूकत है, भूकत है मुख सुधि आये वहाँ हाल है।—भक्तमाल। (ख) जैसे सूकत सलिल के विकल मीन गति होय।—दीनदयाल।

सूकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूअर। शूकर। (२) एक प्रकार का हिरन। (३) कुम्हार। कुंभकार। (४) सफेद धान। (५) एक नरक का नाम।

सूकरकंद-संज्ञा पुं० [सं०] वाराहीकंद।

सूकरक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शालिधान्य।

सूकरक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जो मथुरा जिले में है और जो अब "सोरों" नाम से प्रसिद्ध है।

सूकरखेत-संज्ञा पुं० दे० "सूकरक्षेत्र"।

सूकरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूअर होने का भाव। सूअर की अवस्था। सूअरपन।

सूकरदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुदभ्रंश (काँच निकलने का) रोग जिसमें खुजली और दाह के साथ बहुत दर्द होता है और ज्वर भी हो जाता है।

सूकरनयन-संज्ञा पुं० [सं०] काठ में किया जानेवाला एक प्रकार का छेद।

सूकरपादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किवाँच। कपिकच्छु। कौंछ। (२) सेम। कोलशिंबी।

सूकरमुख-संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

सूकराक्रांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वराहक्रांता।

सूकराक्षिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नेत्र रोग।

सूकरास्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बौद्ध देवी का नाम जिसे वाराही भी कहते हैं।

सूकराह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] गठिवन। ग्रंथिपर्ण।

सूकरिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

सूकरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया।

सूकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूअरी। शूकरी। मादा सूअर। (२) वराहक्रांता। (३) वाराहीकंद। गेंठी। (४) एक देवी का नाम। वाराही। (५) एक प्रकार की चिड़िया।

सूकरेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसेरू। (२) एक प्रकार का पक्षी।

सूका†-संज्ञा पुं० [सं० सपादक=चतुर्थांश सहित] [स्त्री० सूकी] चार आने के मूल्य का सिक्का। चवन्नी।

वि० दे० "सूखा"।

सूकी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूका=चवन्नी ?] रिश्वत। घूस।

सूक्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदमंत्रों या ऋचाओं का समूह। वैदिक स्तुति या प्रार्थना। जैसे,—देवी सूक्त, अग्नि सूक्त, श्रीसूक्त आदि। (२) उत्तम कथन। उत्तम भाषण। (३) महद्वाक्य।

वि० उत्तम रूप से कथित। भली भाँति कहा हुआ।

सूक्तचारी-वि० [सं० सूक्तचारिन्] उत्तम वाक्य या परामर्श माननेवाला।

सूक्तदर्शी-संज्ञा पुं० [सं० सूक्तदर्शिन्] वह ऋषि जिसने वेदमंत्रों का अर्थ किया हो। मंत्रद्रष्टा।

सूक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैना। शारिका।

सूक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम उक्ति या कथन। सुंदर पद या वाक्य आदि। बढ़िया कथन।

सूक्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का करताल या झाँझ। (संगीत)

सूक्षम&-वि० दे० "सूक्ष्म"। उ०—साँचे की सी ढारी अति सूक्षम सुधारि, कढ़ी केशोदास अंग अंग भाँइ के उतारी सी।—केशव।
संज्ञा पुं० दे० "सूक्ष्म"।

सूक्ष्म-वि० [सं०] [स्त्री० सूक्ष्मा] (१) बहुत छोटा। जैसे,—सूक्ष्म जंतु। (२) बहुत बारीक या महीन। जैसे,—सूक्ष्म बात।
संज्ञा पुं० (१) परमाणु। अणु। (२) परब्रह्म। (३) लिंग शरीर। (४) शिव का एक नाम। (५) एक दानव का नाम। (६) एक काव्यालंकार जिसमें चित्तवृत्ति को सूक्ष्म चेष्टा से लक्षित कराने का वर्णन होता है। यथा—कौनहुँ भाव प्रभाव ते जानैं जिय की बात। इंगित ते आकार ते कहि सूक्षम अवदात।—केशव। (७) निर्म्मली। (८) जीरा। जीरक। (९) छल। कपट। (१०) रीठा। अरिष्टक। (११) सुपारी। पूग। (१२) वह ओषधि जो रोमकूप के मार्ग से शरीर में प्रविष्ट करे। जैसे,—नीम, शहद, रेंडी का तेल, सेंधा नमक आदि। (१३) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (१४) जैनियों के अनुसार एक प्रकार का कर्म्म जिसके उदय से मनुष्य सूक्ष्म जीवों की योनि में जन्म लेता है।

सूक्ष्म कृष्णफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कठ जामुन। छोटा जामुन। क्षुद्र जंबू।

सूक्ष्मकोण-संज्ञा पुं० [सं०] वह कोण जो समकोण से छोटा हो।

सूक्ष्मघंटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सनई। क्षुद्र शणपुष्पी।

सूक्ष्मचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र।

सूक्ष्मतंडुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पोस्त दाना। खसखस। (२) सर्जरस। धूना।

सूक्ष्मतंडुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पीपल। पिप्पली। (२) राल। सर्जरस।

सूक्ष्मता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूक्ष्म होने का भाव। बारीकी। महीनपन। सूक्ष्मत्व।

सूक्ष्मतुंड-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक यंत्र जिसके द्वारा देखने पर सूक्ष्म पदार्थ बड़े दिखाई देते हैं। अणुवीक्षण यंत्र। खुर्दबीन।

सूक्ष्मदर्शिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूक्ष्मदर्शी होने का भाव। सूक्ष्म या बारीक बात सोचने समझने का गुण।

सूक्ष्मदर्शी-वि० [सं० सूक्ष्मदर्शिन्] (१) सूक्ष्म विषय को समझनेवाला। बारीक बात को सोचने-समझनेवाला। कुशाग्र-बुद्धि। (२) अत्यंत बुद्धिमान्।

सूक्ष्मदल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सरसों। देवसर्षप।

सूक्ष्मदला-संज्ञा स्त्री० [सं०] धमासा। दुरालभा।

सूक्ष्मदारु-संज्ञा पुं० [सं०] काठ की पतली पटरी।

सूक्ष्मदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दृष्टि जिससे बहुत ही सूक्ष्म बातें भी दिखाई दें या समझ में आ जायँ।
संज्ञा पुं० वह जो सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें भी देख या समझ लेता हो।

सूक्ष्मदेही-संज्ञा पुं० [सं० सूक्ष्मदेहिन्] परमाणु जो बिना अनुवीक्षण यंत्र के दिखाई नहीं पड़ता।
वि० सूक्ष्म शरीरवाला। जिसका शरीर बहुत ही सूक्ष्म या छोटा हो।

सूक्ष्मनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सूक्ष्मपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनिया। धन्याक। (२) काली जीरी। वनजीरक। (३) देवसर्षप। (४) छोटा बैर। लघु बदरी। (५) माचीपत्र। सुरपर्ण। (६) जंगली बर्बरी। वन बर्बरी। (७) लाल ऊख। लोहितेक्षु। (८) कुकरौंदा। कुकुंदर। (९) कीकर। बबूल। (१०) धमासा। दुरालभा। (११) उड़द। माष। (१२) अर्कपत्र।

सूक्ष्मपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पित्तपापड़ा। पर्पटक। (२) वन तुलसी। वन-बर्बरी।

सूक्ष्मपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वन जामुन। (२) शतमूली। (३) बृहती। (४) धमासा। (५) अपराजिता या कोयल नाम की लता। (६) लाल अपराजिता। (७) जीरे का पौधा। (८) बला।

सूक्ष्मपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौंफ। शतपुष्पा। (२) सतावर। शतावरी। (३) लघु ब्राह्मी। (४) पोई। क्षुद्रपोदकी।

सूक्ष्मपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश मांसी। (२) सतावर। शतावरी।

सूक्ष्मपर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विधारा। वृद्धदारु। (२) छोटी शणपुष्पी। छोटी सनई। (३) बनभंटा। बृहती।

सूक्ष्मपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] राम तुलसी। रामदूती।

सूक्ष्मपाद-वि० [सं०] छोटे पैरोंवाला। जिसके पैर छोटे हों।

सूक्ष्मपिप्पली-संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली पीपल। वनपिप्पली।

सूक्ष्मपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सनई। शणपुष्पी।

सूक्ष्मपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शंखिनी। (२) यवतिक्ता नाम की लता।

सूक्ष्मफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लिसोड़ा। भूकर्बुदार। (२) छोटा बैर। सूक्ष्म बदर।

सूक्ष्मफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भुँई आँवला। भूम्यामलकी। (२) तालीसपत्र। (३) मालकंगनी। महाज्योतिष्मती लता।

सूक्ष्मबदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] झरबेर। भूबदरी।

सूक्ष्मबीज-संज्ञा पुं० [सं०] पोस्तदाना। खसखस।

सूक्ष्मभूत-संज्ञा पुं० [सं०] आकाशादि शुद्ध भूत जिनका पंचीकरण न हुआ हो।

विशेष—सांख्य के अनुसार पंच तन्मात्र अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध तन्मात्र ये अलग अलग सूक्ष्म भूत हैं। इन्हीं पंच तन्मात्र से पंच महाभूतों की उत्पत्ति हुई है। पंचीकृत होने पर आकाशादि भूत स्थूल भूत कहलाते हैं। वि० दे० "तन्मात्र"।

सूक्ष्ममक्षिक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सूक्ष्ममक्षिका] मच्छड़। मशक।

सूक्ष्ममति–वि० [सं०] तीक्ष्ण बुद्धि। जिसकी बुद्धि तेज हो।

सूक्ष्ममूला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जियंती। (२) ब्राह्मी।

सूक्ष्मलोभक–संज्ञा पुं० [सं०] जैन मतानुसार मुक्ति की चौदह अवस्थाओं में से दसवीं अवस्था।

सूक्ष्मवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ताम्रवल्ली। (२) जतुका नाम की लता। (३) करेली। लघु कारवेल।

सूक्ष्म शरीर–संज्ञा पुं० [सं०] पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच सूक्ष्म भूत, मन और बुद्धि इन सत्रह तत्वों का समूह।

विशेष—सांख्य के अनुसार शरीर दो प्रकार का होता है—स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। हाथ, पैर, मुँह, पेट आदि अंगों से युक्त शरीर स्थूल शरीर कहलाता है। परन्तु इस स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर इसी प्रकार का एक और शरीर बच रहता है, जो उक्त सत्रह अंगों और तत्वों का बना हुआ होता है। इसी को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। यह भी माना जाता है कि जब तक मुक्ति नहीं होती, तब तक इस सूक्ष्म शरीर का आवागमन बराबर होता रहता है। स्वर्ग और नरक आदि का भोग भी इसी सूक्ष्म शरीर को करना पड़ता है।

सूक्ष्मशर्करा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बालू। बालुका।

सूक्ष्मशाक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बबुरी जिसे जल बबुरी कहते हैं।

सूक्ष्मशालि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महीन सुगंधित चावल जिसे सोरों कहते हैं।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह मधुर, लघु तथा पित्त, अर्श और दाहनाशक है।

सूक्ष्मषट्चरण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सूक्ष्म कीड़ा जो पलकों की जड़ में रहता है।

सूक्ष्मस्फोट–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ़। विचर्चिका रोग।

सूक्ष्मा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूही। यूथिका। (२) छोटी इलायची। (३) करुणी नाम का पौधा। (४) मुसली। तालमूली। (५) बालू। बालुका। (६) सूक्ष्म जटामांसी। (७) विष्णु की नौ शक्तियों में से एक।

सूक्ष्माक्ष–वि० [सं०] सूक्ष्म दृष्टिवाला। तीव्रदृष्टि। तेज नजर।

सूक्ष्मात्मा–संज्ञा पुं० [सं० सूक्ष्मात्मन्] शिव। महादेव।

सूक्ष्माह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

सूक्ष्मेक्षिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूक्ष्म दृष्टि। तेज नजर।

सूक्ष्मैला–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलाइची।

सूख%‡–वि० दे० "सूखा"। उ०—(क) बन में रूख सूख हर हर ते। मनु नृप सूख बरूथ न करते।—गिरिधर। (ख) धर्मपाश अरु कालपाश पुनि दुव दारन दोउ फाँसी। सूख ओद लीजै असनी युग रघुनंदन सुखरासी।—रघुराज। (ग) सूख सरोवर निकट जिमि सारस बदन मलीन।—शंकर दिग्विजय।

सूखना–क्रि० अ० [सं० शुष्क, हिं० सूखा + ना (प्रत्य०)] (१) आर्द्रता या गीलापन न रहना। नमी या तरी का निकल जाना। रस हीन होना। जैसे,—कपड़ा सूखना। पत्ता सूखना। फूल सूखना। (२) जल का बिलकुल न रहना या बहुत कम हो जाना। जैसे,—तालाब सूखना, नदी सूखना। (३) उदास होना। तेज नष्ट होना। जैसे,—चेहरा सूखना। (४) नष्ट होना। बरबाद होना। जैसे,—फसल सूखना। (५) डरना। सन्न होना। जैसे,—जान सूखना। (६) दुबला होना। कृश होना। जैसे,—लड़का सूख गया।

मुहा०—सूखकर काँटा होना = अत्यंत कृश होना। बहुत दुबला पतला होना। सूखे खेत लहलहाना = अच्छे दिन आना।

संयो० क्रि०—जाना।

सूखर–संज्ञा पुं० [?] एक शैव संप्रदाय।

सूखा–वि० [सं० शुष्क] [स्त्री० सूखी] (१) जिसमें जल न रह गया हो। जिसका पानी निकल, उड़ या जल गया हो। जैसे,—सूखा तालाब, सूखी नदी, सूखी धोती। (२) जिसका रस या आर्द्रता निकल गई हो। रस-हीन। जैसे,—सूखा पत्ता, सूखा फूल। (३) उदास। तेज-रहित। जैसे,—सूखा चेहरा। (४) हृदयहीन। कठोर। रूढ़। जैसे,—वह बड़ा सूखा आदमी है। (५) कोरा। जैसे,—सूखा अन्न, सूखी तरकारी। (६) केवल। निरा। खाली। जैसे,—(क) वह सूखा शेखीबाज है। (ख) उसे सूखी तनख्वाह मिलती है।

मुहा०—सूखा टालना या टरकाना = आकांक्षी या याचक आदि को बिना उसकी कामना पूरी किए लौटाना। सूखा जवाब देना = साफ इनकार करना।

संज्ञा पुं० (१) पानी न बरसना। वृष्टि का अभाव। अवर्षण। अनावृष्टि। उ०—बारह मासउ उपजई तहाँ किया परबेस। दादू सूखा ना पड़इ हम आये उस देस।—दादू।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) नदी के किनारे की जमीन। नदी का किनारा। जहाँ पानी न हो।

मुहा०—सूखे पर लगना = नाव आदि का किनारे लगना।

(३) ऐसा स्थान जहाँ जल न हो। (४) सूखा हुआ तंबाकू का पत्ता जो चूना मिलाकर खाया जाता है। (५) एक प्रकार की खाँसी जो बच्चों को होती है, जिसमें वे प्रायः मर जाते हैं। हब्बा डब्बा। (६) खाना अंग न लगने से या रोग आदि के कारण होनेवाला दुबलापन।

मुहा०—सूखा लगना = ऐसा रोग लगना जिसमें शरीर बिलकुल सूख जाय।

(७) भाँग।

सूघरक्ष-वि० दे० "सुघड़"।

सूच-संज्ञा पुं० [सं०] कुश का अंकुर।

वि० [सं० शुचि] निर्म्मल। पवित्र। (डिं०)

सूचक-वि० [सं०] [स्त्री० सूचिका] सूचना देनेवाला। बतानेवाला। दिखानेवाला। ज्ञापक। बोधक।

संज्ञा पुं० (१) सूई। सूची। (२) सीनेवाला। दरजी। (३) नाटककार। सूत्रधार। (४) कथक। (५) बुद्ध। (६) सिद्ध। (७) पिशाच। (८) कुत्ता। (९) बिल्ली। (१०) कौआ। (११) सियार। गीदड़। (१२) कटहरा। जँगला। (१३) बरामदा। छज्जा। (१४) ऊँची दीवार। (१५) खल। विश्वासघातक। (१६) गुप्तचर। भेदिया। (१७) आयोगव माता और क्षत्रिय पिता से उत्पन्न पुत्र। (१८) एक प्रकार का महीन चावल। सूक्ष्म शालिधान्य। सोरों। (१९) चुगलखोर। पिशुन।

सूचन-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सूचनी] (१) बताने या जताने की क्रिया। ज्ञापन। (२) सुगंधि फैलाने की क्रिया।

सूचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह बात जो किसी को बताने, जताने या सावधान करने के लिये कही जाय। प्रकट करने या जतलाने के लिये कही हुई बात। विज्ञापन। विज्ञप्ति।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—मिलना।

(२) वह पत्र आदि जिस पर किसी को बताने या सूचित करने के लिये कोई बात लिखी हो। विज्ञापन। इश्तहार। (३) अभिनय। (४) दृष्टि। (५) बेधना। छेदना। (६) भेद लेना। (७) हिंसा।

क्षक्रि० प्र० [सं० सूचन] बतलाना। जतलाना। प्रकट करना। उ०—हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।—तुलसी।

सूचनापत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र या विज्ञप्ति जिसके द्वारा कोई बात लोगों को बताई जाय। वह पत्र जिसमें किसी प्रकार की सूचना हो। विज्ञापन। विज्ञप्ति। इश्तहार।

सूचनीय-वि० [सं०] सूचना करने के योग्य। जताने लायक।

सूचयितव्य-वि० दे० "सूचनीय"।

सूचा-संज्ञा स्त्री० दे० "सूचना"।

†संज्ञा स्त्री० [हिं० सुचित] जो होश में हो। सावधान। उ०—नागमती कहँ अगम जनावा। गई तपनि बरषा जनु आवा। रही जो मुइ नागिन जस तूचा। जिउ पाएँ तन कै भइ सूचा।—जायसी।

सूचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूई। (२) एक प्रकार का नृत्य। (३) केवड़ा। केतकी पुष्प। (४) सेना का एक प्रकार का व्यूह जिसमें थोड़े से बहुत तेज और कुशल सैनिक अग्र भाग में रखे जाते हैं और शेष पिछले भाग में होते हैं। (५) कटहरा। जँगला। (६) दरवाजे की सिटकनी। (७) निषाद पिता और वैश्या माता से उत्पन्न पुत्र। (८) एक प्रकार का मैथुन। (९) सूप बनानेवाला। शूर्पकार। (१०) करण। (११) कुशा। श्वेतदर्भ। (१२) दृष्टि। नजर। (१३) दे० "सूची"।

वि० [सं० शुचि] पवित्र। शुद्ध। (डिं०)

सूचिक-संज्ञा पुं० [सं०] सिलाई के द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला, दरजी। सौचिक।

सूचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूई। (२) हाथी की सूँड़। हस्तिशुंड। (३) एक अप्सरा का नाम। (४) केवड़ा। केतकी।

सूचिकाधर-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी। हस्ति।

सूचिकाभरण-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो सन्निपात, विसूचिका आदि प्राणनाशक रोगों की अंतिम औषध मानी गई है। बिलकुल अंतिम अवस्था में ही इसका प्रयोग किया जाता है। यदि इससे फल न हुआ तो, कहते हैं, फिर रोगी नहीं बच सकता। इसके बनाने की कई विधियाँ हैं। एक विधि यह है कि रस, गंधक, सीसा, काष्ठविष और काले साँप का विष इन सब को खरल कर क्रम से रोहित मछली, भैंस, मोर, बकरे और सूअर के पित्त में भावना देकर सरसों के बराबर गोली बनाई जाती है जो अदरक के रस के साथ दी जाती है।

दूसरी विधि यह है कि काष्ठ विष, सर्प विष, दारुमुच प्रत्येक एक एक भाग, हिंगुल तीन भाग, इन सब को रोहित मछली, भैंस, मोर, बकरे और सूअर के पित्त में एक एक दिन भावना देकर सरसों के बराबर गोली बनाते हैं जो नारियल के जल के साथ देते हैं। तीसरी विधि यह है कि विष एक पल और रस चार माशे, इन दोनों को एक साथ शराव पुट में बंद करके सुखाते हैं और बाद दो प्रहर तक बराबर आँच देते हैं। सन्निपात के रोगी को—चाहे वह अचेत हो या मृतप्राय—सिर पर उस्तुरे से क्षत कर सूई की नोक से यह रस लेकर उसमें भर देते हैं। साँप के काटने पर भी इसका प्रयोग किया जाता है। कहते हैं कि इन सब प्रयोगों के कारण रोगी के शरीर में बहुत अधिक

गरमी आने लगती है; इसी लिये इनके उपरांत अनेक प्रकार के शीतल उपचार किए जाते हैं।

सूचिकामुख-संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

सूचित-वि० [सं०] (१) जिसकी सूचना दी गई हो। जताया हुआ। बताया हुआ। कहा हुआ। ज्ञापित। प्रकाशित। (२) बहुत उपयुक्त या योग्य। (३) जिसकी हिंसा की गई हो।

सूचिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का ऊख। (२) शिरियारी। चौपतिया। सिनिवार शाक। (३) दे० "सूचीपत्र"।

सूचिपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का ऊख। (२) शिरियारी। चौपतिया। सिनिवार शाक।

सूचिपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] केवड़ा। केतकी वृक्ष।

सूचिभेद्य-वि० [सं०] (१) सूई से भेदन होने योग्य। (२) बहुत घना। जैसे,—सूचिभेद्य अंधकार।

सूचिमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नेवारी। नवमल्लिका।

सूचिरदन-संज्ञा पुं० [सं०] नेवला।

सूचिरोमा-संज्ञा पुं० [सं० सूचिरोमन्] सूअर। वराह।

सूचिवत्-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

सूचिवदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नेवला। नकुल। (२) मच्छर। मशक।

सूचिशालि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महीन चावल। सूक्ष्म शालिधान्य। सोरों।

सूचिशिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूई की नोक।

सूचिसूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सूई में पिरोने या सीने का धागा।

सूची-संज्ञा पुं० [सं० सूचिन्] (१) चर। भेदिया। (२) पिशुन। चुगुलखोर। (३) खल। दुष्ट।

संज्ञा स्त्री० (१) कपड़ा सीने की सूई। (२) दृष्टि। नजर। (३) केतकी। केवड़ा। (४) सेना का एक प्रकार का व्यूह, जिसमें सैनिक सूई के आकार में रखे जाते हैं। (५) सफेद कुश। (६) एक ही प्रकार की बहुत सी चीजों या उनके अंगों, विषयों आदि की नामावली। तालिका। फेहरिस्त।

यौ०—सूचीपत्र।

(७) साक्षी के पाँच भेदों में से एक भेद। वह साक्षी जो बिना बुलाए स्वयं आकर किसी विषय में साक्ष्य दे। स्वयमुक्ति। (८) पिंगल के अनुसार एक रीति जिसके द्वारा मात्रिक छंदों की संख्या की शुद्धता और उनके भेदों में आदि-अंत लघु या आदि-अंत गुरु की संख्या जानी जाती है। (९) सुश्रुत के अनुसार सूई के आकार का एक प्रकार का यंत्र जिसके द्वारा शरीर के क्षतों में टाँके लगाए जाते थे।

सूचीक-संज्ञा पुं० [सं०] मच्छर आदि ऐसे जंतु जिनके डंक सूई के समान होते हैं।

सूचीकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सूचीकर्मन्] सिलाई या सूई का काम जो ६४ कलाओं में से एक है।

सूचीदल-संज्ञा पुं० [सं०] सितावर या सुनिषण्णक नामक शाक। शिरियारी।

सूचीपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पत्र या पुस्तिका आदि जिसमें एक ही प्रकार की बहुत सी चीजों अथवा उनके अंगों की नामावली हो। तालिका। (२) व्यवसायियों का वह पत्र या पुस्तक आदि जिसमें उनके यहाँ मिलनेवाली सब चीजों के नाम, दाम और विवरण आदि दिए रहते हैं। तालिका। फेहरिस्त।

सूचीपत्रक-संज्ञा पुं० दे० "सूचीपत्र"।

सूचीपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँडर दूब। गंड दूर्व्वा।

सूचीपद्म-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का एक प्रकार का व्यूह।

सूचीपाश-संज्ञा पुं० [सं०] सूई का छेद या नाका जिसमें धागा पिरोया जाता है।

सूचीपुष्प-संज्ञा पुं० दे० सूचिपुष्प"।

सूचीभेद-वि० दे० "सूचिभेद्य"।

सूचीमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूई की नोक या छेद जिसमें धागा पिरोया जाता है। (२) एक नरक का नाम। (३) हीरक। हीरा। (४) कुश।

सूचीरोमा-संज्ञा पुं० दे० "सूचिरोमा"।

सूचीवक्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (२) एक असुर का नाम।

सूचीवक्त्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह योनि जिसका छेद इतना छोटा हो कि वह पुरुष के संसर्ग के योग्य न हो। वैद्यक के अनुसार यह बीस प्रकार के योनि रोगों में से एक है।

सूच्छमॐ-वि० दे० "सूक्ष्म"। उ०—ब्रह्म लौं सूच्छम है कटि राधे कि, देखी न काहू सुनी सुन राखी।—सुंदरीसर्वस्व।

सूच्य-वि० [सं०] सूचना के योग्य। जताने लायक।

सूच्यग्र-संज्ञा पुं० [सं०] सूई का अग्र भाग। सूई की नोक।

सूच्यग्रस्तंभ-संज्ञा पुं० [सं०] मीनार।

सूच्यग्रस्थूलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण। ऊर्णा। उलूक। उलप।

सूच्याकार-वि० [सं० सूची+आकार] सूई के आकार का। लंबा और नुकीला।

सूच्यार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में किसी पद आदि का वह अर्थ जो शब्दों की व्यंजना शक्ति से जाना जाता हो।

सूच्यास्य-संज्ञा पुं० [सं०] चूहा। मूषिक।

सूच्याह्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिरियारी। सितिवर। सुनिषण्णक शाक।

सूछमॐ†-वि० दे० "सूक्ष्म"। उ०—किधौं वासुकी बंधु वासु कीनो रथ ऊपर। आदि शक्ति की शक्ति किधौं सोहति सूछमतर।—गिरिधर।

सूछिम⊛|-वि० दे० "सूक्ष्म"। उ०—जाके जैसी पीर है तैसी करइ पुकार। को सूछिम को सहज में को मिरतक तेहि बार।—दादू।

सूजंध-संज्ञा स्त्री० [सं० सुगंध] सुगंध। खुशबू। (डिं०)

सूजन-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूजना] (१) सूजने की क्रिया या भाव। (२) सूजने की अवस्था। फुलाव। शोथ।

सूजना-क्रि० अ० [फ़ा० सोजिश, मि सं० शोथ] रोग, चोट या वात प्रकोप आदि के कारण शरीर के किसी अंग का फूलना। शोथ होना।

सूजनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सूजनी"।

सूजा-संज्ञा पुं० [सं० सूची, हिं० सूई, सूजी] (१) बड़ी मोटी सूई। सूआ। (२) लोहे का एक औजार जिसका एक सिरा नुकीला और दूसरा चिपटा और छिदा हुआ होता है। इससे कूचबंद लोग कूँचे को छेदकर बाँधते हैं। (३) रेशम फेरनेवालों का सूजे के आकार का लोहे का एक औजार जो मशेरू में लगा रहता है। (४) खूँटा जो छकड़ा गाड़ी के पीछे की ओर उसे टिकाने के लिये लगाया जाता है।

सूज़ाक-संज्ञा पुं० [फ़ा०] मूत्रेंद्रिय का एक प्रदाहयुक्त रोग जो दूषित लिंग और योनि के संसर्ग से उत्पन्न होता है। इस रोग में लिंग का मुँह और छिद्र सूज जाता है; ऊपर की खाल सिमट जाती है तथा उसमें खुजली और पीड़ा होती है। मूत्रनाली में बहुत जलन होती है, और उसे दबाने से सफेद रंग का गाढ़ा और लसीला मवाद निकलता है। यह पहली अवस्था है। इसके बाद मूत्रनाली में घाव हो जाता है, जिससे मूत्रत्याग करने के समय अत्यंत कष्ट और पीड़ा होती है। इंद्रिय के छेद में से पीब के समान पीला गाढ़ा या कभी कभी पतला स्राव होने लगता है। शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में पीड़ा होने लगती है। कभी कभी पेशाब बंद हो जाता है या रक्त स्राव होने लगता है। स्त्रियों को भी इससे बहुत कष्ट होता है, पर उतना नहीं जितना पुरुषों को होता है। इसका प्रभाव गर्भाशय पर भी पड़ता है जिससे स्त्रियाँ वंध्या हो जाती हैं। औपसर्गिक प्रमेह।

सूजी-संज्ञा स्त्री० [सं० शुचि = शुद्ध] गेहूँ का दरदरा आटा जो हलुआ, लड्डू तथा दूसरे पकवान बनाने के काम में आता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० [सूची] (१) सूई। उ०—तादिन सों नेह भरे नित मेरे गेह आइ गूथन न देत कहै मैं ही देऊँगो बनाय। बरज्यो न मानै केहू मोहि लागै डर यही कमल से कर कहूँ सूजी मति गड़ि जाय।—काव्यकलाप (२) वह सूआ जिससे गड़ेरिए लोग कंबल की पट्टियाँ सीते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० सूची] कपड़ा सीनेवाला। दरजी। सूचिक। उ०—एक सूजी ने आय दंडवत कर खड़े हो कर जोड़ के कहा, महराज!......दया कर कहिए तो बागे पहराऊँ।—लल्लू।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का सरेस जो माँड़ और चूने के मेल से बनता है और बाजों के पुर्जे जोड़ने के काम में आता है।

सूझ-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूझना] (१) सूझने का भाव। (२) दृष्टि। नजर।

यौ०—सूझबूझ = समझ। अक्ल।

(३) मन में उत्पन्न होनेवाली अनूठी कल्पना। उद्भावना। उपज। जैसे,—कवियों की सूझ।

सूझना-क्रि० अ० [सं० संज्ञान] (१) दिखाई देना। देख पड़ना। प्रत्यक्ष होना। नजर आना। जैसे,—हमें कुछ नहीं सूझ पड़ता। उ०—आँखि न जो सूझत न कानन तें सुनियत केसोराइ जैसे तुम लोकन में गाये हौ।—केशव। (२) ध्यान में आना। खयाल में आना। जैसे,—(क) इतने में उसे एक ऐसी बात सूझी जो मेरे लिये असंभव थी। (ख) उसे कोई बात ही नहीं सूझती। उ०—असमंजस मन को मिटे सो उपाइ न सूझै।—तुलसी।

क्रि० प्र०—देना।—पड़ना।

(३) छुट्टी पाना। मुक्त होना। उ०—राजा लियो चोर सों गोला। गोला देत चोर अस बोला। जो महि जनम कियों मैं चोरी। दहै दहन तौ मोरि गदोरी। अस कहि सो गोला दै सूझ्यो। साहु सिपाही सों द्रुत बूझ्यो।—रघुराज।

सूझबूझ-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूझना + बूझना] देखने और समझने की शक्ति। समझ। अक्ल।

सूझा-संज्ञा पुं० [देश०] फारसी संगीत में एक मुकाम (राग) के पुत्र का नाम।

सूट-संज्ञा पुं० [अं०] पहनने के सब कपड़े, विशेषतः कोट और पतलून आदि।

यौ०—सूटकेस।

सूटकेस-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का चिपटा बक्स जिसमें पहनने के कपड़े रखे जाते हैं।

सूटा†-संज्ञा पुं० [अनु०] मुँह से तंबाकू, चरस या गाँजे का धूआँ जोर से खींचना।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

सूठरी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] भूसा। सठुरी।

सूड़-संज्ञा स्त्री० दे० "सूँड़"।

सूड़ो-संज्ञा पुं० [सं० शुक] शुक पक्षी। तोता। (डिं०)

सूत-संज्ञा पुं० [सं० सूत्र] (१) रूई, रेशम आदि का महीन तार जिससे कपड़ा बुना जाता है। तंतु। सूता।

क्रि० प्र०—कातना।

मुहा०—सूत सूत = जरा जरा। तनिक तनिक। **सूत बराबर** = बहुत सूक्ष्म। बहुत महीन।

(२) रूई का बटा हुआ तार जिससे कपड़ा आदि सीते हैं। तागा। धागा। डोरा। सूत्र। (३) बच्चों के गले में पहनने का गंडा। (४) करधनी। उ०—कुंजगृह मंजु मधु मधुप अमंद राजैं तामैं काल्हि स्यामैं विपरीत रति राची री। द्विजदेव कीर कलकंठ की धुनि जैसी तैसियै अभूत भाई सूत धुनि माची री।—रसकुसुमाकर।

क्रि० प्र०—पहनना।

(५) नापने का एक मान। (चार सूत की एक पट्टन, चार पट्टन का एक तसू और चौबीस तसू का एक इमारती गज होता है।) (६) पत्थर पर निशान डालने की डोरी। संगतराश लोग इसे कोयला मिले हुए तेल में डुबाकर इससे पत्थर पर निशान कर उसकी सीध में पत्थर काटते हैं। (७) लकड़ी चीरने के लिये उस पर निशान डालने की डोरी।

मुहा०—सूत धरना = निशान करना। रेखा खींचना। बढ़ई लोग जब किसी लकड़ी को चीरने लगते हैं, तब सीधी चिराई के लिये सूत को किसी रंग में डुबाकर उससे उस लकड़ी पर रेखा करते हैं। इसी को सूत धरना कहते हैं। उ०—मनहुँ भानु मंडलहि सवारत, धरयो सूत विधि सुत विचित्र मति।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सूती] (१) एक वर्णसंकर जाति, मनु के अनुसार जिसकी उत्पत्ति क्षत्रिय के औरस और ब्राह्मणी के गर्भ से है और जिसकी जीविका रथ हाँकना था। (२) रथ हाँकनेवाला। सारथि। उ०—कर लगाम लै सूत धूत मजबूत बिराजत। देखि बृहदरथपूत सुरथ सूरज रथ लाजत।—गि० दास। (३) बंदी जिनका काम प्राचीन काल में राजाओं का यशोगान करना था। भाट। चारण। उ०—(क) मागध सूत और बंदीजन ठौर ठौर यश गायो।—सूर। (ख) बहु सूत मागध बंदिजन नृप बचन सुनि हरषित चले।—रामाश्वमेध। (४) पुराणवक्ता। पौराणिक। उ०—बाँचन लागे सूत पुराणा। मागध वंशावली बखाना।—रघुराज।

विशेष—सब से अधिक प्रसिद्ध सूत लोमहर्षण हुए हैं, जो वेदव्यास के शिष्य थे और जिन्होंने नैमिषारण्य में ऋषियों को सब पुराण सुनाए थे।

(५) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (६) बढ़ई। सूत्रकार। सूत्रधार। (७) सूर्य। (८) पारा। पारद।

वि० [सं०] (१) प्रसूत। उत्पन्न। (२) प्रेरणा किया हुआ। प्रेरित।

संज्ञा पुं० [सं० सूत्र] थोड़े अक्षरों या शब्दों में ऐसा पद या वचन जो बहुत अर्थ प्रकाशित करता हो। उ०—केहि बिधि करिय प्रबोध सकल दरसन अरुझाने। सूत सूत महँ सहस सूत किय फल न सुझाने।—सुधाकर।

वि० [सं० सूत्र = सूत] भला। अच्छा। उ०—करम-हीन बाना भगवान। सूत कुसूत लियो पहिचान।—कबीर।

संज्ञा पुं० दे० "सुत"। उ०—उन्यौ सोच कै मनहिं मैं लग्यो आइ धौं भूत। यहै बिचारत हूँ तदपि नृप न लहेहु सुख सूत।—पद्माकर।

सूतक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म। (२) अशौच जो संतान होने पर परिवारवालों को होता है। जननाशौच। (३) मरणाशौच जो परिवार में किसी के मरने पर होता है। (४) सूर्य या चंद्रमा का ग्रहण। उपराग।

क्रि० प्र०—छूटना।—लगना।

संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

सूतक गेह—संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने अभी हाल में प्रसव किया हो। सद्यःप्रसूता। जच्चा।

सूतकागृह—संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतकादि लेप—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में फिरंग वात पर लगाने का लेप जिसमें पारा, हिंगुल, हीरा कसीस तथा आँवलासार गंधक पड़ती है। इसके बनाने की विधि यह है कि उक्त चीजें शुद्ध करके खरल की जाती हैं। अनंतर सूखी बुकनी या पानी आदि में भिगोकर फिरंग वात पर लगाई जाती है।

सूतकान्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह खाद्य पदार्थ जो संतान-जन्म के कारण अशुद्ध हो जाता है। (२) सूतकी के घर का भोजन।

सूतकाशौच—संज्ञा पुं० [सं०] वह अशौच जो संतान होने पर होता है। जननाशौच।

सूतकी—वि० [सं० सूतकिन्] (१) घर या परिवार में संतान-जन्म के कारण जिसे अशौच हो। (२) परिवार में किसी की मृत्यु होने के कारण जिसे सूतक लगा हो।

सूतग्रामणी—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव का मुखिया।

सूतज—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ण।

सूततनय—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ण।

विशेष—अधिरथ सारथि ने कर्ण को पाला था; इसी लिये कर्ण सूत-तनय या सूतपुत्र कहलाते हैं।

सूतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूत का भाव, धर्म्म या कार्य्य। (२) सारथि का कार्य्य।

सूतदार पगरना—संज्ञा पुं० [हिं० सूतदार + पगरना] सोने या चाँदी के नक्काशों की एक छेनी जो तराशने के काम में आती है।

सूतधार—संज्ञा पुं० [सं० सूत्रधार] बढ़ई। उ०—अगर चंदन को पालनो गढ़ई गुर ढार सुढार। लै आयो गढ़ि ढोलनी विश्वकर्मा सो सुतधार।—सूर।

सूतनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उग्रश्रवा। (२) कर्ण।

सूतना†-क्रि० अ० दे० "सोना"। उ०—(क) सूते सपने ही सहै संसृत संताप रे।—तुलसी। (ख) श्रीरघुनाथ बसिष्ठ ते कह्यो स्वप्न के माहिं। देखत हौं मैं दशमुखै भयवश सूतत नाहिं।—विश्राम। (ग) मोर तोर में सबै बिगूता। जननी उदर गर्भ महँ सूता।—कबीर।

सूतपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारथि का पुत्र। (२) सारथि। (३) कर्ण। (४) कीचक।

सूतपुत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] कर्ण।

सूतफूल-संज्ञा पुं० [हिं० सूत + फूल] महीन आटा। मैदा। (क्व०)

सूतराज-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

सूतलड़-संज्ञा पुं० [हिं० सूत + लड़] अरहट। रहँट।

सूतवशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय।

सूतसव-संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

सूता-संज्ञा पुं० [सं० सूत्र] (१) कपास, रेशम आदि का तार जिससे कपड़ा बुना जाता है। तंतु। सूत। (२) एक प्रकार का भूरे रंग का रेशम जो मालदह (बंगाल) मे आता है। (३) जूते में वह बारीक चमड़ा जिसमें टूक का पिछला हिस्सा आकर मिलता है। (चमार)

संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने बच्चा जना हो। प्रसूता।

संज्ञा पुं० [सं० शुक्ति] वह सीपी जिससे डोडे में की अफीम काछते हैं।

सूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जन्म। (२) प्रसव। जनन। (३) उत्पत्ति का स्थान या कारण। उद्गम। (४) फल या फसल की उत्पत्ति। पैदावार। (५) वह स्थान जहाँ सोमरस निकाला जाता था। (६) सोमरस निकालने की क्रिया। (७) सीना। सीवन। (क्व०)

संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (२) हंस।

सूतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जिसने अभी हाल में बच्चा जना हो। सद्यःप्रसूता। जच्चा। (२) वह गाय जिसने हाल में बछड़ा जना हो। (३) दे० "सूतिका रोग"।

सूतिकागार-संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा या कोठरी जिसमें स्त्री बच्चा जने। सौरी। प्रसवगृह। अरिष्ट।

विशेष—वैद्यक के अनुसार सूतिकागार आठ हाथ लंबा और चार हाथ चौड़ा होना चाहिए तथा इसके उत्तर और पूर्व की ओर द्वार होने चाहिएँ।

सूतिकागृह-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतिकागेह-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतिकाभवन-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतिका रोग-संज्ञा पुं० [सं०] प्रसूता को होनेवाले रोग जो वैद्यक के अनुसार अनुचित आहार विहार, क्लेश, विषमासन तथा अजीर्णावस्था में भोजन करने से होते हैं। प्रसूता के अंगों का टूटना, अग्निमांद्य, निर्बलता, शरीर का काँपना, सूजन, ग्रहणी, अतिसार, शूल, खाँसी, ज्वर, नाक मुँह से कफ निकलना आदि सूतिका रोग के लक्षण हैं।

सूतिकाल-संज्ञा पुं० [सं०] प्रसव करने या बच्चा जनने का समय।

सूतिकावल्लभ रस-संज्ञा पुं० [सं०] सूतिका रोग की एक औषध जो पारे, गंधक, सोने, चाँदी, स्वर्णमाक्षिक, कपूर, अभ्रक, हरताल, अफीम, जावित्री और जायफल के संयोग से बनती है। ये सब चीजें बराबर बराबर लेकर इनमें मोथे, खिरैंटी और मोचरस की भावना दी जाती है। अनंतर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनाई जाती हैं। वैद्यक के अनुसार इसके सेवन से सूतिका रोग शीघ्र दूर हो जाता है।

सूतिकावास-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतिका षष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] संतान के जन्म से छठे दिन होनेवाली पूजा तथा अन्य कृत्य। छठी।

सूतिकाहर रस-संज्ञा पुं० [सं०] सूतिका रोग की एक औषध जिसमें हिंगुल, हरताल, शंख-भस्म, लौह, खर्पर, धतूरे के बीज, यवक्षार और सुहागे का लावा बराबर बराबर पड़ता है। इन चीजों में बहेड़े के क्राथ की भावना देकर मटर के बराबर गोली बनाते हैं। कहते हैं कि इसके सेवन से सूतिका रोग दूर हो जाता है।

सूतिगृह-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतिमारुत-संज्ञा पुं० [सं०] प्रसव-पीड़ा। बच्चा जनने के समय की पीड़ा।

सूतिमास-संज्ञा पुं० [सं०] वह मास जिसमें किसी स्त्री को संतान उत्पन्न हो। प्रसवमास। वैजनन।

सूतिवात-संज्ञा पुं० दे० "सूतिमारुत"।

सूती-वि० [हिं० सूत + ई (प्रत्य०)] सूत का बना हुआ। जैसे,—सूती कपड़ा। सूती गलीचा।

संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्ति] (१) सीपी। उ०—सूती में नहिं सिंधु समाई।—विश्राम। (२) वह सीपी जिससे डोडे में की अफीम काछते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० सूत] सूत की पत्नी। भाटिन।

सूतीघर-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूत्कार-संज्ञा पुं० दे० "सीत्कार"।

सूत्तर-वि० [सं०] बहुत श्रेष्ठ। बहुत बढ़कर।

सूत्थान-वि० [सं०] चतुर। होशियार।

सूत्पर-संज्ञा पुं० [सं०] शराब चुवाने की क्रिया। सुरा-संधान।

सूत्पलावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेयपुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सूत्य-संज्ञा पुं० दे० "सुत्य"।

सूत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यज्ञ के उपरांत होनेवाला स्नान।

अवभृत। (२) सोमरस निकालने की क्रिया। (३) सोमरस पीने की क्रिया।

सूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूत। तंतु। तार। तागा। डोरा। (२) यज्ञसूत्र। यज्ञोपवीत। जनेऊ। (३) प्राचीन काल का एक मान। (४) रेखा। लकीर। (५) करधनी। कटि-भूषण। (६) नियम। व्यवस्था। (७) थोड़े अक्षरों या शब्दों में कहा हुआ ऐसा पद या वचन जो बहुत अर्थ प्रकट करता हो। सारगर्भित संक्षिप्त पद या वचन। जैसे,—ब्रह्मसूत्र, व्याकरण सूत्र।

विशेष—हमारे यहाँ के दर्शन आदि शास्त्र तथा व्याकरण सूत्र रूप में ही ग्रथित हैं। ये सूत्र देखने में तो बहुत छोटे वाक्यों के रूप में होते हैं, पर उनमें बहुत गूढ़ अर्थ गर्भित होते हैं। (८) कारण। निमित्त। मूल। (९) पता। सुराग। (१०) एक प्रकार का वृक्ष।

सूत्रकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्राह्मण। (सूत्र कंठस्थ रहने के कारण अथवा गले में यज्ञसूत्र पहनने के कारण ब्राह्मण सूत्रकंठ कहलाते हैं।) (२) कबूतर। कपोत। (३) खंजन। खंजरीट।

सूत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूत। तंतु। तार। (२) हार। (३) आटे या मैदे की बनी हुई सिवईं।

सूत्रकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रकर्त्तृ] सूत्र ग्रंथ का रचयिता। सूत्र-प्रणेता।

सूत्रकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रकर्मन्] (१) बढ़ई का काम। (२) मेमार या राज का काम।

सूत्रकर्म्मकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बढ़ई। (२) गृह-निर्माणकारी। वास्तुशिल्पी। मेमार। राज।

सूत्रकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने सूत्रों की रचना की हो। सूत्र-रचयिता। (२) बढ़ई। (३) जुलाहा। तंतुवाय। (४) मकड़ी।

सूत्रकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूत्र रचयिता। सूत्रकार। (२) बढ़ई। (३) मेमार। राज।

सूत्रकोण-संज्ञा पुं० [सं०] डमरू।

सूत्रकोणक-संज्ञा पुं० दे० "सूत्रकोण"।

सूत्रकोश-संज्ञा पुं० [सं०] सूत की अंटी। पेचक। लच्छा।

सूत्रक्रीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सूत का खेल, जो ६४ कलाओं में से एक है।

सूत्रगंडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का लकड़ी का औजार जिसका उपयोग प्राचीन काल में तंतुवाय लोग कपड़ा बुनने में करते थे।

सूत्रग्रंथ-संज्ञा पुं० [सं०] सूत्र रूप में रचित ग्रंथ। वह ग्रंथ जो सूत्रों में हो। जैसे,—सांख्यसूत्र।

सूत्रग्रह-वि० [सं०] सूत धारण या ग्रहण करनेवाला।

सूत्रण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूत्र बनाने या रचने की क्रिया। (२) सूत बटने की क्रिया।

सूत्रतंतु-संज्ञा पुं० [सं०] सूत। तार।

सूत्रतर्कुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तकला। टेकुआ।

सूत्रदरिद्र-वि० [सं०] (वस्त्र) जिसमें सूत कम हो। सूत्रहीन। झँझरा। झिलड़।

सूत्रधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सूत्रों का पंडित हो। (२) दे० "सूत्रधार" (१)। उ०—विधि हरि वंदित पाय जग-नाटक के सूत्रधर।—शंकर दि०।

वि० सूत्र या सूत धारण करनेवाला।

सूत्रधार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाट्यशाला का व्यवस्थापक या प्रधान नट, जो, भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार, पूर्व रंग अर्थात् नांदी पाठ के उपरांत खेले जानेवाले नाटक की प्रस्तावना करता है। वि० दे० "नाटक"। (२) बढ़ई। सुतार। काष्ठशिल्पी। (३) इंद्र का एक नाम। (४) पुराणानुसार एक वर्णसंकर जाति जो लकड़ी आदि बनाने और चीरने या गढ़ने का काम करती है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति शूद्रा माता और विश्वकर्म्मा पिता से है।

सूत्रधारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूत्रधार अर्थात् नाट्यशाला के व्यवस्थापक की पत्नी। नटी।

संज्ञा पुं० [सं० सूत्रधारिन्] सूत्र धारण करनेवाला।

सूत्रधृक्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "सूत्रधार"। (२) वास्तुशिल्पी। मेमार। राज।

सूत्रपात-संज्ञा पुं० [सं०] प्रारंभ। शुरू। जैसे,—इस काम का सूत्रपात हो गया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सूत्रपिटक-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध सूत्रों का एक प्रसिद्ध संग्रह। वि० दे० "त्रिपिटक"।

सूत्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] कपास का पौधा।

सूत्रभिद्-संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े सीनेवाला। दरजी।

सूत्रभृत्-संज्ञा पुं० दे० "सूत्रधार"।

सूत्रमध्यभू-संज्ञा पुं० [सं०] यक्षधूप। शल्लकी निर्यास। कुंदुरु। धूना।

सूत्रयंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) करघा। ढरकी। (२) सूत का बना जाल।

सूत्रयी-वि० [सं० सूत्र] सूत्र जानने या रचनेवाला। उ०—त्रिदेवः त्रिकालः त्रयी वेदकर्त्ता। त्रिश्रोता कृती सूत्रयी लोकभर्त्ता।—केशव।

सूत्रला-संज्ञा स्त्री० [सं०] तकला। टेकुआ।

सूत्रवाप-संज्ञा पुं० [सं०] सूत बुनने की क्रिया। वयन। बुनाई।

सूत्रविद्-संज्ञा पुं० [सं०] सूत्रों का ज्ञाता या पंडित।

सूत्रवीणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की वीणा जिसमें तार की जगह बजाने के लिये सूत्र लगे रहते थे ।

सूत्रवेष्टन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) करघा । ढरकी । (२) बुनने की क्रिया । वयन ।

सूत्रशाख-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर ।

सूत्रांग-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम काँसा ।

सूत्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध सूत्र ।

सूत्रांतक-वि० [सं०] बौद्ध सूत्रों का ज्ञाता या पंडित ।

सूत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० सूत्रकार] मकड़ी । (अनेकार्थ)

सूत्रात्मा-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रात्मन्] (१) जीवात्मा । (२) एक प्रकार की परम सूक्ष्म वायु जो धनंजय से भी सूक्ष्म कही गई है ।

सूत्रामा-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रामन्] इंद्र का एक नाम ।

सूत्राली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माला । हार (२) गले में पहनने की मेखला ।

सूत्री-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रिन्] (१) कौआ । काक । (२) दे० "सूत्रधार" (१) ।

वि० सूत्रयुक्त । जिसमें सूत्र हो ।

सूत्रीय-वि० [सं०] सूत्र-संबंधी । सूत्र का ।

सूथन-संज्ञा स्त्री० [देश०] पायजामा । सुथना । उ०—बेनी सुभग नितंबनि डोलत मंदगामिनी नारी । सूथन जघन बाँधि नाराबँद तिरनी पर छबि भारी ।—सूर ।

संज्ञा पुं० बरमा, स्याम और मणिपुर के जंगलों में होनेवाला एक प्रकार का पेड़ । इसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है और इसका रस वारनिश का काम देता है । इसे 'खेऊ' भी कहते हैं ।

सूथनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) स्त्रियों के पहनने का पायजामा । सुथना । (२) एक प्रकार का कंद ।

सूधार†-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रकार पु० हिं० सुतार] बढ़ई । सुतार । खाती ।

सूद-संज्ञा पुं० [फा०] (१) लाभ । फायदा । (२) ब्याज । वृद्धि ।

क्रि० प्र०—होना ।—चढ़ना ।—पाना ।—लेना ।—देना ।—लगाना ।

मुहा०—सूद दर सूद = ब्याज पर ब्याज । चक्रवृद्धि । **सूद पर लगाना** = सूद लेकर रुपया उधार देना ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) रसोइया । सूपकार । पाचक । (२) पकी हुई दाल, रसा, तरकारी आदि । व्यंजन । (३) सारथि का काम । सारथ्य । (४) अपराध । पाप । (५) दोष । ऐब । (६) एक प्राचीन जनपद का नाम । (७) लोध । लोध्र ।

सूदक-वि० [सं०] विनाश करनेवाला ।

सूदकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सूदकर्मन्] रसोइए का काम । रंधन । पाक क्रिया । भोजन बनाना ।

सूदकशाला-संज्ञा स्त्री० [सं० सूदशाला] रसोईघर । पाकशाला । (डिं०)

सूदखोर-संज्ञा पुं० [फा०] वह जो खूब सूद या ब्याज लेता हो ।

सूदता-संज्ञा स्त्री० दे० "सूदत्व" ।

सूदत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सूद या रसोइए का पद या काम । रसोईदारी ।

सूदन-वि० [सं०] विनाश करनेवाला । जैसे,—मधुसूदन, रिपुसूदन । उ०—नमो नमस्ते बारंबार । मदन-सूदन गोविंद मुरार ।—सूर ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बध या विनाश करने की क्रिया । हनन । (२) अंगीकार या स्वीकार करने की क्रिया । अंगीकरण । (३) फेंकने की क्रिया । (४) हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम जो मथुरा के रहनेवाले थे और जिनका लिखा "सुजानचरित्र" वीर रस का एक प्रसिद्ध काव्य है ।

सूदर-संज्ञा पुं० [सं० शूद्र] शूद्र । (डिं०)

सूदशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ भोजन बनता हो । रसोईघर । पाकशाला ।

सूदशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] भोजन बनाने की कला । पाकशास्त्र ।

सूदा-संज्ञा पुं० [देश०] ठगों के गरोह का वह आदमी जो यात्रियों को फुसलाकर अपने दल में ले आता है । (ठग०)

सूदाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] रसोइयों का मुखिया या सरदार । पाकशाला का अधिकारी ।

सूदित-वि० [सं०] (१) आहत । घायल । जख्मी । (२) जो नष्ट हो गया हो । विनष्ट । (३) जो मार डाला गया हो । निहत ।

सूदित्-वि० [सं०] बध या विनाश करनेवाला ।

संज्ञा पुं० रसोइया । पाककर्त्ता । पाचक ।

सूदी-वि० [फा० सूद] (१) (पूँजी या रकम) जो सूद या ब्याज पर हो । ब्याजू । (२) ब्याज पर लिया हुआ (रुपया) ।

सूद्र-संज्ञा पुं० दे० "शूद्र" ।

सूधॐ-वि० दे० "सूधा" । उ०—(क) नाथ करहु बालक पर छोहू । सूध दूध मुख करिय न कोहू ।—तुलसी । (ख) काह कराउँ सखि सूध सुभाऊ । दाहिन वाम न जानउँ काऊ ।—तुलसी ।

वि० दे० "शुद्ध" । उ०—माया सों मन बीगड़ा ज्यों काँजी करि दूध । है कोई संसार में मन करि देवइ सूध ।—दादू ।

क्रि० वि० सीधा । उ०—दूसरा मारग सुनु मन लाई । देश विदर्भ सूध यह जाई ।—सबलसिंह ।

सूधनाॐ-क्रि० अ० [सं० शुद्ध] सिद्ध होना । सत्य होना । ठीक होना । उ०—ऐसे सुतहि पिया जो दूधा । गुनि हरि तासु मनोरथ सूधा ।—गिरिधरदास ।

सूधराःः†–वि० दे० "सूधा"।

सूधा–वि० [सं० शुद्ध] [स्त्री० सूधी] (१) सीधा। सरल। भोला। निष्कपट। उ०—को अस दीन दयाल भयो दशरथ के लाल से सूधे सुभायन। दौरे गयंद उबारिबे को प्रभु बाहन छोड़ि उबाहने पायन।—पद्माकर। (२) जो टेढ़ा न हो। सीधा। उ०—इमि कहि सबन सहित तब ऊधो। गए नंद गृह गहि मग सूधो।—गिरिधरदास। (३) इस प्रकार पड़ा हुआ कि मुँह, पेट आदि शरीर का अगला भाग ऊपर की ओर हो। चित। (४) सम्मुख का। सामने का। उ०—मुदित मन वर वदन सोभा उदित अधिक उछाहु। मनहुँ दूरि कलंक करि ससि समर सूधो राहु।—तुलसी। (५) जो उलटा न हो। जो ठीक और साधारण स्थिति में हो। (६) जो सीधी रेखा में चला गया हो। जिसमें वक्रता न हो। उ०—सूधी अँगुरि न निकसै घीऊ।—जायसी।

मुहा०—सूधी सूधी सुनाना = खरी खरी कहना। सूधी सहना = खरी खरी सुनना। उ०—कबहूँ फिर पाँव न दैहौं यहाँ भजि जैहौं तहाँ जहाँ सूधी सहौं।—पद्माकर।

विशेष—और अधिक अर्थों तथा मुहावरों के लिये दे० "सीधा"।

सूधे–क्रि० वि० [हिं० सूधा] सीधे से। उ०—(क) सूधे दान काहे न लेत।—सूर। (ख) हौं बड हौं बड बहुत कहावत सूधे कहत न बात। योग न युक्ति ध्यान नहिं पूजा वृद्ध भये अकुलात।—सूर। (ग) भावै सों तै करि वाको भामिनी भाग बड़े बश चौकड़ि पायो। कान्ह ज्यों सूधे जू चाहत नहिंने चाहति हे अब पाइ लगायो।—केशव।

मुहा०—सूधे सूध = कोरा। साफ साफ। उ०—सूधे सूध जवाब न दीजै।—विश्राम।

सून–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसव। जनन। (२) कली। कलिका। (३) फूल। पुष्प। प्रसून। (४) फल। (५) पुत्र।

वि० [सं०] (१) खिला हुआ। विकसित (पुष्प)। (२) उत्पन्न। जात।

ःः†संज्ञा पुं० दे० "शून्य"। उ०—(क) तुलसी निज मन कामना चहत सून कहँ सेइ। बचन गाय सब के विविध कहहु पयस केहि देइ।—तुलसी। (ख) नाम राम को अंक है सब साधन है सून। अंक गये कछु हाथ नहिं अंक रहे दस गून।—तुलसी।

ःः†वि० [सं० शून्य] (१) निर्जन। जनशून्य। सूना। सुनसान। खाली। उ०—(क) इहाँ देखि घर सून चोर मूसन मन लायो। हीरा हेम निकारि भवन बाहर धरि आयो।—विश्राम। (ख) हनहु सक्र हमको एहि काला। अब मोहिं लगत जगत जंजाला। नहिं कल बिना शेषपद देखे। बिन प्रभु जगत सून मम लेखे।—रघुराज। (ग) मँदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिर फिर डसा।—जायसी। (२) रहित। हीन। उ०—निरखि रावण भयावन अपावन महा जानकी हरण करि चलो शठ जात है। भन्यो अति कोप करि हनन की चोप करि लोप करि धर्म अब क्यों न ठहरात है। जानि थल सून नृप सूत रमणी हरी करी करणी कठिन अब न बचि जात है।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बड़ा सदा बहार पेड़ जो शिमले के आस पास के पहाड़ों पर बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारतों में लगती है। इसे 'चिन' भी कहते हैं।

सूनशर–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

सूनसान–वि० दे० "सुनसान"।

सूना–वि० [सं० शून्य] [स्त्री० सूनी] जिसमें या जिस पर कोई न हो। जनहीन। निर्जन। सुनसान। खाली। जैसे,—सूना घर, सूना रास्ता, सूना सिंहासन। उ०—(क) जात हुती निज गोकुल में हरि आवैं तहाँ लखि के मग सूना। तासों कहीं पद्माकर यों अरे साँवरो बावरे तैं हमैं छू ना।—पद्माकर। (ख) राम कहाँ गए री माता। सून भवन सिंहासन सूनो नाहीं दशरथ ताता।—सूर।

क्रि० प्र०—पड़ना।—करना।—होना।

मुहा०—सूना लगना या सूना सूना लगना = निर्जीव मालूम होना। उदास मालूम होना।

संज्ञा पुं० [सं० शून्य] एकांत। निर्जन स्थान।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुत्री। बेटी। (२) वह स्थान जहाँ पशु मारे जाते हैं। बूचड़खाना। कसाईखाना। (३) मांस विक्रय। मांस की बिक्री। (४) गृहस्थ के यहाँ ऐसा स्थान या चूल्हा, चक्की, ओखली, घड़ा, झाड़ू में से कोई चीज जिससे जीवहिंसा की संभावना रहती है। वि० दे० "पंचसूना"। (५) गलशुंडी। जीभी। (६) हाथी के अंकुश का दस्ता। (७) हत्या। घात।

सूनादोष–संज्ञा पुं० [सं०] चूल्हा, चक्की, ओखली, मूसल, झाड़ू और पानी के घड़े से होनेवाली जीवहिंसा का दोष या पाप। वि० दे० "पंचसूना"।

सूनापन–संज्ञा पुं० [हिं० सूना + पन (प्रत्य०)] (१) सूना होने का भाव। (२) सन्नाटा। एकांत।

सूनिक–संज्ञा पुं० [सं०] मांस बेचनेवाला। व्याध।

सूनी–संज्ञा पुं० [सं० सूनिन्] मांस बेचनेवाला। व्याध। बूचड़।

सूनु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र। संतान। (२) छोटा भाई। अनुज। (३) नाती। दौहित्र। (४) एक वैदिक ऋषि का नाम। (५) सूर्य। (६) आक। अर्क वृक्ष। (७) वह जो सोम रस चुवाता हो।

सूनू–संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। पुत्री। बेटी। लड़की।

सूनृत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्य और प्रिय भाषण (जो जैन

धर्म्मानुसार सदाचरण के पाँच गुणों में से एक है)। (२) आनंद। मंगल।

वि० (१) सत्य और प्रिय। (२) अनुकूल। दयालु।

सूनृता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्य और प्रिय भाषण। (२) सत्य। (३) धर्म की पत्नी का नाम। (४) उत्तानपाद की पत्नी का नाम। (५) एक अप्सरा का नाम।

सून्मद-वि० दे० "सून्माद"।

सून्माद-वि० [सं०] जिसे उन्माद रोग हुआ हो। पागल।

सूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूँग, मसूर, अरहर आदि की पकी हुई दाल। (२) दाल का जूस। रसा। (३) रसे की तरकारी आदि व्यंजन। (४) बरतन। भांडा। भाँड। (५) रसोइया। पाचक। (६) बाण। तीर।

संज्ञा पुं० [सं० शूर्प] अनाज फटकने का बना हुआ पात्र। सरई या सींक का छाज। उ०—(क) देखो अद्भुत अविगति की गति कैसो रूप धरयो है हो। तीन लोक जाके उदर भवन सो सूप के कोन परयो है हो।—सूर। (ख) राजन दीन्हे हाथी रानिन्ह हार हो। भरिगे रतन पदारथ सूप हजार हो।—तुलसी।

क्रि० प्र०—फटकना।

मुहा०—सूप भर = बहुत सा। बहुत अधिक।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) कपड़े या सन का झाड़ू जिससे जहाज के डेक आदि साफ किए जाते हैं। (लश०) (२) एक प्रकार का काला कपड़ा।

सूपक-संज्ञा पुं० [सं० सूप] रसोइया। उ०—धीर सूर विद्वान् जो मिष्ट बनावै अन्न। सूपक कीजै ताहि जो पुत्र पौत्र संपन्न।—सीताराम।

सूपकर्त्ता-संज्ञा पुं० दे० "सूपकार"।

सूपकार-संज्ञा पुं० [सं०] भोजन बनानेवाला। रसोइया। पाचक। उ०—तहाँ सूपकारन मुनिराई। मुनिन हेत किय पाक बनाई।—रामाश्वमेध।

सूपकारी-संज्ञा पुं० दे० "सूपकार"। उ०—आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे।—तुलसी।

सूपकृत्-संज्ञा पुं० दे० "सूपकार"।

सूपच‡-संज्ञा पुं० दे० "श्वपच"। उ०—सूपच रस स्वादै का जानै।—विश्राम।

सूप झरना-संज्ञा पुं० [हिं० सूप + झरना] सूप की तरह का सरई का एक बरतन। सूप से इसमें अंतर इतना ही है कि हर दो सरइयों के बीच में एक सरई नहीं होती जिसके कारण सूप के बीच में ही झरना सा बन जाता है। इससे बारीक अनाज नीचे गिर जाता है और मोटा ऊपर रह जाता है।

सूपड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० सूप] सूप। छाज। (डिं०)

सूपधूपक-संज्ञा पुं० [सं०] हींग।

सूपधूपन-संज्ञा पुं० [सं०] हींग।

सूपनखा-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"। उ०—सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी।—तुलसी।

सूपपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बनमूँग। मुँगवन। मुद्गपर्णी।

सूपशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] भोजन बनाने की कला। पाकशास्त्र।

सूपश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] मूँग। मुद्ग।

सूपस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] पाकशाला। रसोईघर।

सूपांग संज्ञा पुं० [सं०] हींग। हिंगु।

सूपा†-संज्ञा पुं० [हिं० सूप] सूप। छाज। शूर्प।

सूपिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पकी हुई दाल या रसा आदि। (२) सूपकार। रसोइया।

सूपिय-वि० दे० "सूप्य"।

सूपोदन-संज्ञा पुं० [सं० सूप + ओदन] दाल और भात।

सूप्य-वि० [सं०] (१) दाल या रसे के लायक। (२) सूप संबंधी।

संज्ञा पुं० रसेदार खाद्य-पदार्थ।

सूफ़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पशम। ऊन। (२) वह लत्ता जो देशी काली स्याहीवाली दावात में डाला जाता है।

संज्ञा पुं० दे० "सूप"।

सूफ़ी-संज्ञा पुं० [सं०] मुसलमानों का एक धार्मिक संप्रदाय। इस संप्रदाय के लोग एकेश्वरवादी होते हैं और साधारण मुसलमानों की अपेक्षा अधिक उदार विचार के होते हैं।

वि० (१) ऊनी वस्त्र पहननेवाला। (२) साफ। पवित्र। (३) निरपराध। निर्दोष।

सूब-संज्ञा पुं० [देश०] ताँबा। (सुनार)

सूबड़ा-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्ण] वह चाँदी जिसमें ताँबे और जस्ते का मेल हो। (सुनार)

सूबड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] पैसे का आठवाँ भाग। दमड़ी। (सुनार)

सूबा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी देश का कोई भाग या खंड। प्रांत। प्रदेश।

यौ० – सूबेदार।

(२) दे० "सूबेदार"। उ०—कीन्ह्यो समर वीर परिपाटी। लीन्ह्यो सूबा का सिर काटी।—रघुराज।

सूबेदार-संज्ञा पुं० [फ़ा० सूबा + दार (प्रत्य०)] (१) किसी सूबे या प्रांत का बड़ा अफसर या शासक। प्रादेशिक शासक। (२) एक छोटा फौजी ओहदा।

सूबेदार मेजर-संज्ञा पुं० [फ़ा० सूबेदार + अं० मेजर] फौज का एक छोटा अफसर।

सूबेदारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) सूबेदार का ओहदा या पद। (२) सूबेदार का काम। (३) सूबेदार होने की अवस्था।

सूभर‡-वि० [सं० शुभ्र] (१) सुंदर। दिव्य। (२) श्वेत।

सफेद। उ०—हंस सरोवर तहाँ रमैं सूभर हरि जल नीर। प्रानी आप पखालिये निमल सदा हो सरीर।—दादू।

सूम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध। (२) जल। (३) आकाश। (४) स्वर्ग।

संज्ञा पुं० फूल। पुष्प। (डिं०)

वि० [अ० शूम = अशुभ] कृपण। कंजूस। बखील। उ०—मरै सूम जजमान मरै कटखना टट्टू। मरै कर्कसा नारि मरै की खसम निखट्टू।—गिरिधरदास।

सूमलू-संज्ञा पुं० [देश०] चित्रा या चीता नामक पौधा।

सूमाँ†-संज्ञा स्त्री० [देश०] टूटी हुई चारपाई की रस्सी।

सूमी-संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत बड़ा पेड़ जो मध्य तथा दक्षिण भारत के जंगलों में होता है। इसकी लकड़ी इमारतों में लगती और मेज, कुर्सी आदि बनाने के काम में आती है। इसे रोहन और सोहन भी कहते हैं।

सूय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम रस निकालने की क्रिया। (२) यज्ञ।

सूरंजान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] केसर की जाति का एक पौधा जिसका कंद दवा के काम में आता है।

विशेष—यह पश्चिमी हिमालय के सम शीतोष्ण प्रदेशों में पहाड़ों की ढाल पर घासों के बीच उगता है और एक बालिश्त ऊँचा होता है। फ़ारस में भी यह बहुत होता है। इसमें बहुत कम पत्ते होते हैं और प्रायः फूलों के साथ निकलते हैं। फूल लंबे होते हैं और सींकों में लगते हैं। इसकी जड़ में लहसुन के समान, पर उससे बड़ा कंद होता है जो कड़वा और मीठा दो प्रकार का होता है। मीठा कंद फ़ारस से आता है और खाने की दवा में काम आता है। कड़वा कंद केवल तेल आदि में मिलाकर मालिश के काम आता है। इसके बीज विषैले होते हैं, इसमे बड़ी सावधानी से थोड़ी मात्रा में दिए जाते हैं। यूनानी चिकित्सा के अनुसार सूरंजान रूखा, रुचिकर तथा वात, कफ, पांडुरोग, प्लीहा, संधिवात आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।

सूर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सूरी] (१) सूर्य्य। उ०—सूर उदय आये रही दृगन साँझ सी फूलि।—बिहारी। (२) अर्क वृक्ष। आक। मदार। (३) पंडित। आचार्य्य। (४) वर्त्तमान अवसर्पिणी के सत्रहवें अर्हन् कुंथु के पिता का नाम। (जैन) (५) मसूर। (६) दे० "सूरदास"। उ०—कछु संक्षेप सूर बरनत अब लघु मति दुर्बल बाल। (७) अंधा। (सूरदास अंधे थे, इससे 'अंधा' के अर्थ में यह शब्द प्रचलित हो गया।) (८) छप्पय छंद के ७१ भेदों में से ५१वें भेद का नाम जिसमें १६ गुरु, १२० लघु, कुल १३६ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती हैं।

*संज्ञा पुं० [सं० शूर] शूरवीर। बहादुर। उ०—सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आप।—तुलसी।

*†संज्ञा पुं० [सं० शूकर, प्रा० सूअर] (१) सूअर। (२) भूरे रंग का घोड़ा।

संज्ञा पुं० दे० "शूल"। उ०—(क) कर बरछी विष भरी सूरसुत सूर फिरावत।—गोपाल। (ख) दादू सिख स्रवनन सुना सुमिरन लागा सूर।—दादू।

संज्ञा पुं० [देश०] पठानों की एक जाति। जैसे,—शेर शाह सूर। उ०—जानि सूर औ खाँड़ै सूरा।—जायसी।

सूरकंद-संज्ञा पुं० [सं०] जमींकंद। सूरन। ओल।

सूरकांत-संज्ञा पुं० दे० "सूर्यकांत"।

सूरकुमार-संज्ञा पुं० [सं० शूर = शूरसेन + कुमार = पुत्र] वसुदेव। उ०—तेज रूप भे सूर कुमारा। जिमि उदयस्थ सूर उजियारा।—गि० दास।

सूरकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

सूरज-संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्य] (१) सूर्य। वि० "सूर्य्य"।

क्रि० प्र०—अस्त होना।—उगना।—उदय होना।—निकलना।—डूबना।—छिपना।

मुहा०—**सूरज पर थूकना** = किसी निर्दोष या साधु व्यक्ति पर लांछन लगाना जिसके कारण स्वयं लांछित होना पड़े। **सूरज को दीपक दिखाना** = (१) जो स्वयं अत्यंत गुणवान् हो, उसे कुछ बतलाना। (२) जो स्वयं विख्यात हो उसका परिचय देना। **सूरज पर धूल फेंकना** = किसी निर्दोष या साधु व्यक्ति पर कलंक लगाना।

(२) एक प्रकार का गोदना जो स्त्रियाँ दाहिने हाथ में गुदाती हैं। (३) दे० "सूरदास"।

संज्ञा पुं० [सं० सूर + ज] (१) शनि। (२) सुग्रीव। उ०—(क) सूरज मुसल नील पट्टिश परिघ नल जामवंत असि हनु तोमर प्रहारे हैं। परशा सुखेन कुंत केशरी गवय शूल विभीषण गदागज भिंदिपाल तारे हैं।—रामचंद्रिका। (ख) करि आदित्य अदृष्ट नष्ट यम करौं अष्ट वसु। रुद्रनि बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु। वलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इंद्र अब। विद्याधरनि अवद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब। लै करौं अदिति की दासि दिति अनिल अनल मिलि जाहि जल। सुनि सूरज सूरज उगत ही करौं असुर संसार सब।—केशव।

सूरजतनी*†-संज्ञा स्त्री० दे० "सूर्य्यतनया"। उ०—सुंदरि कथा कहै है अपनी। हौं कन्या हौं सूरजतनी। कालिंदी है मेरो नाम। पिता दियो जल में विश्राम।—लल्लूलाल।

सूरज भगत-संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्य + भक्त] एक प्रकार की गिलहरी जो लंबाई में १६ इंच होती है और भिन्न भिन्न ऋतुओं के अनुसार रंग बदलती है। यह नेपाल और आसाम में पाई जाती है।

सूरजमुखी-संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यमुखी] (१) एक प्रकार का पौधा जिसमें पीले रंग का बहुत बड़ा फूल लगता है।

विशेष—यह ४-५ हाथ ऊँचा होता है। इसके पत्ते डंठल की ओर चौड़े और आगे की ओर पतले तथा कुछ खुरदुरे और रोईंदार होते हैं। फूल का मंडल एक बालिश्त के करीब होता है। बीच में एक स्थूल केंद्र होता है जिसके चारो ओर गोलाई में पीले पीले दल निकले होते हैं। सूर्य्यास्त के लगभग यह फूल नीचे की ओर झुक जाता है और सूर्य्योदय होने पर फिर ऊपर उठने लगता है। इसमें कुसुम के से बीज पड़ते हैं। इसके बीज हर ऋतु में बोए जा सकते हैं, पर गरमी और जाड़ा इसके लिये अच्छा है। यह पौधा दूषित वायु को शुद्ध करनेवाला माना जाता है। वैद्यक में यह उष्ण-वीर्य्य, अग्निदीपक, रसायन, चरपरा, कड़ुवा, कसैला, रूखा, दस्तावर, स्वर शुद्ध करनेवाला, तथा कफ, वात, रक्तविकार, खाँसी, ज्वर, विस्फोटक, कोढ़, प्रमेह, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म आदि का नाशक कहा गया है।

पर्य्या०—आदित्यभक्ता। वरदा। सुवर्चला। सूर्य्यलता। अर्ककांता। भास्करेष्टा। विकांता। सुतेजा। सौरि। अर्कहिता। (२) एक प्रकार की आतिशबाजी। (३) एक प्रकार का छत्र या पंखा। (४) वह हलकी बदली जो संध्या सबेरे सूर्य्य-मंडल के आसपास दिखाई पड़ती है।

सूरजसुत-संज्ञा पुं० [हिं० सूरज + सं० सुत] सुग्रीव। उ०—अंगद जौ तुम पै बल होतो। तौ वह सूरज को सुत को तो?।—केशव।

सूरजसुता-संज्ञा स्त्री० दे० "सूर्य्यसुता"।

सूरजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य की पुत्री यमुना।

सूरण-संज्ञा पुं० [सं०] सूरन। जमींकंद।

सूरत-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) रूप। आकृति। शक्ल। उ०—(क) इनकी सूरत तो राजकुमारी की सी है।—बालमुकुंद गुप्त। (ख) मन धन लै दृग जौहरी, चले जात वह बाट। छबि मुकता मुकते मिलै जिहि सूरत की हाट।—रसनिधि।

यौ०—सूरत शक्ल = चेहरा मोहरा। आकृति।

मुहा०—सूरत बिगड़ना = चेहरा बिगड़ना। चेहरे की रंगत फीकी पड़ना। **सूरत बिगाड़ना** = (१) चेहरा बिगाड़ना। कुरूप करना। बदसूरत बनाना। विद्रूप करना। (२) अपमानित करना। (३) दंड देना। **सूरत बनाना** = (१) रूप बनाना। (२) भेस बदलना। (३) मुँह बनाना। नाक भौं सिकोड़ना। अरुचि प्रकट करना। (४) चित्र बनाना। **सूरत दिखाना** = सामने आना।

(२) छवि। शोभा। सौंदर्य्य। उ०—मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै, जानै सोई जाके उर कसकै करक सी।—तुलसी। (३) उपाय। युक्ति। ढंग। तदबीर। ढब। जैसे,—(क) वह उनसे छुटकारा पाने की कोई सूरत नहीं देखता था। (ख) रुपया पैदा करने की कोई सूरत निकालो। उ०—जाड़े में उनके जीने की कौन सूरत थी।—शिवप्रसाद।

क्रि० प्र०—देखना।—निकालना।

(४) अवस्था। दशा। हालत। जैसे,—उस सूरत में तुम क्या करोगे? उ०—आपको खयाल न गुजरे कि हमारी किसी सूरत में तहकीर हुई।—केशवराम।

संज्ञा पुं० [सं० सौराष्ट्र] बंबई प्रदेश के अंतर्गत एक नगर।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जहरीला पौधा जो दक्षिण हिमालय, आसाम, बरमा, लंका, पेराक और जावा में होता है। इसे चोरपट्टा भी कहते हैं। वि० दे० "चोरपट्ट"।

संज्ञा स्त्री० [अ० सूरः] कुरान का कोई प्रकरण।

*संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] सुध। स्मरण। ध्यान। याद। वि० दे० "सुरति"। जैसे,—सब आनंद में ऐसे मग्न थे कि कृष्ण की सूरत किसी को भी न थी।—लल्लू०।

वि० [सं० सुरत] अनुकूल। मेहरबान। कृपालु।

सूरता*-संज्ञा स्त्री० दे० "शूरता"। उ०—विश्वासी के ठगन में नहीं निपुनता होय। कहा सूरता तासु हनि रह्यो गोद जो सोय।—दीनदयाल।

संज्ञा स्त्री० [सं०] सीधी गाय।

सूरताई*-संज्ञा स्त्री० दे० "शूरता"। उ०—गरजन घोर जोर पवन चलत जैसो अंबर सों सोभित रहत मिलि कै अनेक। पुत्र जे धरत तिन्हैं तोपत हैं भली भाँति सूर सूरताई लोप करत सहित टेक।—गोपाल।

सूरति*-संज्ञा स्त्री० दे० "सूरत"। उ०—(क) मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै, जानै सोई जाके उर कसकै करक सी।—तुलसी। (ख) चंद भलो मुखचंद सखी लखि सूरति काम की कान्ह की नीकी। कोमल पंकज के पदपंकज प्राणपियारे की मूरति पी की।—केशव।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] सुध। स्मरण। ध्यान। याद। उ०—तुलसिदास रघुवीर की सोभा सुमिरि भई है मगन नहिं तन की सूरति।—तुलसी।

सूरती खपरा-संज्ञा पुं० [सूरती = सूरत शहर का, सं० खर्पर] खपरिया।

सूरदास-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर भारत के एक प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त महाकवि और महात्मा जो अंधे थे।

विशेष—ये हिंदी भाषा के दो सर्वश्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। जिस प्रकार रामचरित का गान कर गोस्वामी तुलसीदास जी अमर हुए हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण की लीला कई सहस्र पदों में गाकर सूरदास जी भी। ये अकबर के काल में वर्त्तमान थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि बादशाह अकबर ने इन्हें अपने दरबार में फतहपुर सीकरी में बुलाया, पर ये न गए। इन्होंने यह पद कहा—"मो को कहा सीकरी सों काम"।

इस पर तानसेन के साथ अकबर स्वयं इनके दर्शन को मथुरा गया। इनका जन्म संवत् १५४० के लगभग ठहरता है। ये वल्लभाचार्य्य की शिष्यपरंपरा थे और उनकी स्तुति इन्होंने कई पदों में की है; जैसे,—भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो। श्रीवल्लभ नखचंद्र छटा बिनु हो हिय माँझ अँधेरो॥ इनकी गणना 'अष्टछाप' अर्थात् ब्रज के आठ महाकवियों और भक्तों में थी। अष्टछाप में ये कवि गिने गए हैं—कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास और सूरदास। इनमें से प्रथम चार कवि तो वल्लभाचार्य्य जी के शिष्य थे और शेष सूरदास आदि चार कवि उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी के। अपने अष्टछाप में होने का उल्लेख सूरदास जी स्वयं करते हैं।—"थापि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप"। श्री विट्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ जी ने अपनी "चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता" में सूरदास जी को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है और उनके पिता का नाम 'रामदास' बताया है। सूरसारावली में के एक पद में इनके वंश का जो परिचय है, उसके अनुसार ये महाकवि चंद बरदाई के वंशज थे और सात भाई थे। पर उक्त पद के असली होने में कुछ लोग संदेह करते हैं। इनका जन्म-स्थान भी अनिश्चित है। कुछ लोग इनका जन्म दिल्ली के पास सीही गाँव में बतलाते हैं। जनश्रुति इन्हें जन्मांध कहती है, पर ये जन्मांध न थे। ऐसी भी किंवदंती है कि किसी पर-स्त्री के सौंदर्य्य पर मोहित हो जाने पर इन्होंने नेत्रों का दोष समझ उन्हें फोड़ डाला था। भक्तमाल में लिखा है कि आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत हुआ और ये एक बार अपने माता पिता के साथ मथुरा गए। वहाँ से वे घर लौट कर न गए; कहा कि यहाँ कृष्ण की शरण में रहूँगा। चौरासी वार्त्ता के अनुसार ये गऊघाट में रहते थे जो आगरा और मथुरा के बीच में है। यहीं पर ये विट्ठलनाथ जी के शिष्य हुए और उन्हीं के साथ गोकुलस्थ श्रीनाथ जी के मंदिर में बहुत काल तक रहे। इसी मंदिर में रहकर ये पद बनाया करते थे। यों तो पद बनाने का इनका नित्य नियम था, पर मंदिर के उत्सवों पर उसी लीला के संबंध में बहुत से पद बनाकर गाया करते थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये एक बार कूएँ में गिर पड़े और छः दिन तक उसी में पड़े रहे। सातवें दिन स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने हाथ पकड़कर इन्हें निकाला। निकलने पर इन्होंने यह दोहा पढ़ा—"बाहँ छुड़ाए जात हौ निबल जानि कै मोहिं। हिरदै सों जब जायहौ, मरद बदौंगो तोहिं।"

इसमें संदेह नहीं कि ब्रज भाषा के ये सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, क्योंकि इन्होंने केवल ब्रज भाषा में ही कविता की है, अवधी में नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी का दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था और उन्होंने जीवन की नाना परिस्थितिओं पर रसपूर्ण कविता की है। सूरदास में केवल शृंगार और वात्सल्य की पराकाष्ठा है। संवत् १६०७ के पूर्व इनका सूरसागर समाप्त हो गया था; क्योंकि उसके पीछे इन्होंने जो "साहित्य लहरी" लिखी है, उसमें संवत् १६०७ दिया हुआ है।

सूरन—संज्ञा पुं० [सं० सूरण] एक प्रकार का कंद जो सब शाकों में श्रेष्ठ माना गया है। जमींकंद। ओल। शूरण। सूरन।

विशेष—सूरन भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र होता है, पर बंगाल में अधिक होता है। इसके पौधे २ से ४ हाथ तक होते हैं। पत्तों में बहुत से कटाव होते हैं। इसके दो भेद हैं। सूरन जंगली भी होता है जो खाने योग्य नहीं होता और बेतरह कटैला होता है। खेत के सूरन की तरकारी, अचार आदि बनते हैं जिन्हें लोग बड़े चाव से खाते हैं। वैद्यक में यह अग्निदीपक, रूखा, कसैला, खुजली उत्पन्न करनेवाला, चरपरा, विष्टंभकारक, विशद, रुचिकारक, लघु, प्लीहा तथा गुल्मनाशक और अर्श (बवासीर) रोग के लिये विशेष उपकारी माना गया है। दाद, खाज, रक्तविकार और कोढ़वालों के लिये इसका खाना निषिद्ध है।

पर्य्या०—शूरण। सूरकंद। कंदल। अर्शोघ्न आदि।

सूरपनखाॐ†—संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पनखा"। उ०—सूरपनखहु तहँहि चलि आई। काटि श्रवन अरु नाक भगाई।—पद्माकर।

सूरपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (सूर्य के पुत्र) सुग्रीव। उ०—सूरपुत्र तब जीवन जान्यो। बालि जोर बहु भाँति बखान्यो।—केशव।

सूरबार—संज्ञा पुं० [?] पायजामा। सूथन।

सूरबीरॐ—संज्ञा पुं० दे० "शूरवीर"।

सूरमस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद और उसके निवासी।

सूरमा—संज्ञा पुं० [सं० शूरमानी] योद्धा। वीर। बहादुर। उ०—और बहुत उमड़े सुभट कहाँ कहाँ लगि नाउँ। उतै समद के सूरमा भिरे रोप रन पाउँ।—लाल कवि।

सूरमापन—संज्ञा पुं० [हिं० सूरमा+पन] वीरत्व। शूरता। बहादुरी।

सूरमुखीॐ—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यमुखी शीशा। उ०—बहु साँग भल्लगन मधि लसत, सूरमुखी रथ छत्रवर। मनु चले जात मुनि दंड चढि उडगन मैं ससि दिवसकर।—गोपाल।

सूरमुखी मनिॐ—संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यमुखी मणि] सूर्य्यकांत मणि। उ०—मुरछल चारहु ओर अमल बहु भृत्य फिरावहिं। सूरमुखी मनि जटित अनेकन सोभा पावहिं।—गिरिधरदास।

सूरवाँॐ†—संज्ञा पुं० दे० "सूरमा"।

सूरस—संज्ञा पुं० [देश०] परिया की लकड़ी। (जुलाहा)

सूरसागर—संज्ञा पुं० हिंदी के महाकवि सूरदास कृत ग्रंथ का नाम जिसमें श्रीकृष्ण लीला अनेक राग रागिनियों में वर्णित है।

सूर-सावंत-संज्ञा पुं० [सं० शूर + सामंत] (१) युद्धमंत्री। (२) नायक। सरदार। उ०—धनु बिजुरी चमकाय बान जल बरपि अमोलो। गरजि जलद सम जलद सूर सावँत यह बोलो।—गिरिधरदास।

सूरसुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि ग्रह। (२) सुग्रीव।

सूरसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (सूर्य्य की पुत्री) यमुना। उ०—ज्योति जगै जमुना सी लगै जग लोचन ललित पाप विपोहै। सूरसुता शुभ संगम तुंग तरंग तरंग तरंग सी सोहै।—केशव।

सूरसूत-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के सारथि अरुण।

सूरसेनॐ-संज्ञा पुं० दे० "शूरसेन"।

सूरसेनपुरॐ-संज्ञा पुं० [सं० शूरसेन + पुर] मथुरा। उ०—चित्रसेन नृप चल्यो सेन सह सूरसेनपुर। झपटि चलै जिमि सेन लेन जै देन चेन उर।—गोपाल।

सूरा-संज्ञा पुं० [हिं० सुंडी] एक प्रकार का कीड़ा जो अनाज के गोले में पाया जाता है। यह किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता। अनाज के व्यापारी इसको शुभ समझते हैं।
संज्ञा पुं० [अ०] कुरान का कोई एक प्रकरण।

सूराख-संज्ञा पुं० [फा०] (१) छेद। छिद्र। (२) शाला। खाना। घर। (लश०)

सूरिंजान-संज्ञा पुं० दे० "सूरंजान"।

सूरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ करानेवाला। ऋत्विज्। (२) पंडित। विद्वान्। आचार्य। (विशेषकर जैनाचार्यों के नामों के पीछे यह शब्द उपाधि स्वरूप प्रयुक्त होता है।) (३) बृहस्पति का एक नाम। (४) कृष्ण का नाम। (५) यादव। (६) सूर्य्य।

सूरी-संज्ञा पुं० [सं० सूरिन्] विद्वान्। पंडित। आचार्य।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदुषी। पंडिता। (२) सूर्य की पत्नी। (३) कुंती। (४) राई। राजसर्षप।
ॐ‡ संज्ञा स्त्री० दे० "सूली"। उ०—नृप कह देहु चोर कहँ सूरी। संतवेष यह चोर कमूरी। तुरत दूत पुर बाहिर लाई। सूरी महँ दिय मुनिहिं चढ़ाई।—रघुराज।
ॐ‡ संज्ञा पुं० [सं० शूल] भाला। उ०—पटक्यौ कंस ताहि गति रूरी। धेनुक भिरयो तबै गहि सूरी।—गोपाल।

सूरुजॐ‡-संज्ञा पुं० दे० "सूर्य"।

सूरवाँॐ‡-संज्ञा पुं० दे० "सूरमा"। उ०—जीवहि का संसा पड़ा को काको तारहिं। दादू सोई सूरवाँ जो आप उबारहिं।—दादू।

सूरेठ-संज्ञा पुं० [देश०] बाँस की हाथ भर की एक लकड़ी जिससे बहेलिये चोंगे में से लासा निकालते हैं।

सूर्क्षण-संज्ञा पुं० [सं०] अनादर।

सूर्प्य-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द। माष।

सूर्पनखाॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

सूर्मि, सूर्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लोहे की बनी स्त्री की प्रतिमूर्त्ति।
विशेष—मनु ने लिखा है कि गुरुपत्नी से व्यभिचार करनेवाला अपने पाप को कहकर तपी हुई लोहे की शय्या पर शयन करे अथवा तपी हुई लोहे की स्त्री की प्रतिमूर्त्ति का आलिंगन करे। इस प्रकार मरने से उसका पाप नष्ट होता है।
(२) पानी का नल।

सूर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सूर्य्या, सूर्य्याणी] (१) अंतरिक्ष में पृथ्वी, मंगल, शनि आदि ग्रहों के बीच सब से बड़ा ज्वलंत पिंड जिसकी सब ग्रह परिक्रमा करते हैं। वह बड़ा गोला जिससे पृथ्वी आदि ग्रहों को गरमी और रोशनी मिलती है। सूरज। आफ्ताब।
विशेष—सूर्य्य पृथ्वी से चार करोड़ पैंसठ लाख मील दूर है। उसका व्यास पृथ्वी के व्यास से १०८ गुना अर्थात् ४३३००० कोस है। घनफल के हिसाब से देखें तो जितना स्थान सूर्य्य घेरे हुए है, उतने में पृथ्वी के ऐसे ऐसे १२५०००० पिंड आवेंगे। सारांश यह कि सूर्य्य पृथ्वी से बहुत ही बड़ा है। परंतु सूर्य्य जितना बड़ा है, उसका गुरुत्व उतना नहीं है। उसका सापेक्ष गुरुत्व पृथ्वी का चौथाई है। अर्थात् यदि हम एक टुकड़ा पृथ्वी का और उतना ही बड़ा टुकड़ा सूर्य्य का लें तो पृथ्वी का टुकड़ा तौल में सूर्य्य के टुकड़े का चौगुना होगा। कारण यह है कि सूर्य्य पृथ्वी के समान ठोस नहीं है। वह तरल ज्वलंत द्रव्य के रूप में है। सूर्य्य के तल पर कितनी गरमी है, इसका जल्दी अनुमान ही नहीं हो सकता। वह २०००० डिग्री तक अनुमान की गई है। इसी ताप के अनुसार उसके अपरिमित प्रकाश का भी अनुमान करना चाहिए। प्रायः हम लोगों को सूर्य्य का तल बिलकुल स्वच्छ और निष्कलंक दिखाई पड़ता है, पर उसमें भी बहुत से काले धब्बे हैं। इनमें विचित्रता यह है कि एक निश्चित नियम के अनुसार ये घटते बढ़ते रहते हैं, अर्थात् कभी इनकी संख्या कम हो जाती है, कभी अधिक। जिस वर्ष इनकी संख्या अधिक होती है, उस वर्ष में पृथ्वी पर चुंबक शक्ति का क्षोभ बहुत बढ़ जाता है और विद्युत् की शक्ति के अनेक कांड दिखाई पड़ते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इन लांछनों का वर्षा से भी संबंध है। जिस साल ये अधिक होते हैं, उस साल वर्षा भी अधिक होती है। भारतीय ग्रंथों में सूर्य्य की गणना नव ग्रहों में है। आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार सूर्य्य ही मुख्य पिंड है जिसके पृथ्वी, शनि, मंगल आदि ग्रह अनुचर हैं और उसकी निरंतर परिक्रमा किया करते हैं। वि० दे० "खगोल"।

सूर्य्य की उपासना प्रायः सब सभ्य प्राचीन जातियों में प्रचलित थी। आर्य्यों के अतिरिक्त असीरिया के असुर भी 'शम्श' (सूर्य्य) की पूजा करते थे। अमेरिका के मेक्सिको प्रदेश में बसनेवाली प्राचीन सभ्य जनता के भी बहुत से सूर्य्य मंदिर थे। प्राचीन आर्य्य जातियों के तो सूर्य्य प्रधान देवता थे। भारतीय और पारसीक दोनों शाखाओं के आर्य्यों के बीच सूर्य्य को मुख्य स्थान प्राप्त था। वेदों में पहले प्रधान देवता सूर्य्य, अग्नि और इंद्र थे। सूर्य्य आकाश के देवता थे। इनका रथ सात घोड़ों का कहा गया है। आगे चलकर सूर्य्य और सविता एक माने गए और सूर्य्य की गणना द्वादश आदित्यों में हुई। ये आदित्य वर्ष के १२ महीनों के अनुसार सूर्य्य के ही रूप थे। इसी काल में सूर्य्य के सारथि अरुण (सूर्य्योदय की ललाई) कहे गए जो लँगड़े माने गए हैं। सूर्य्य ही का नाम विवस्वत् या विवस्वान् भी था जिनकी कई पत्नियाँ कही गई हैं, जिनमें संज्ञा प्रसिद्ध है।

पर्य्या०—भास्कर। भानु। प्रभाकर। दिनकर। दिनपति। मार्त्तंड। रवि। तरणि। सहस्रांशु। तिग्मदीधिति। मरीचिमाली। चंडकर। आदित्य। सविता। सूर। विवस्वान्।

(२) बारह की संख्या। (३) अर्क। आक। मंदार। (४) बलि के एक पुत्र का नाम।

सूर्य्यकमल-संज्ञा पुं० [सं०] सूरजमुखी फूल।

सूर्य्यकर-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की किरण।

सूर्य्यकांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का स्फटिक या बिल्लौर, सूर्य्य के सामने रखने से जिसमें से आँच निकलती है। सूर्य्यकांतमणि। यथा—चंद्रकांति अमृत उपजावै। सूर्य्यकांति में अग्नि प्रजावै।—रत्नपरीक्षा।

पर्य्या०—सूर्य्यमणि। तपनमणि। रविकांत। सूर्य्याश्मा। ज्वलनाश्मा। दहनोपम। दीप्तोपल। तापन। अर्कोपल। अग्निगर्भ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह उष्ण, निर्म्मल, रसायन, वात और श्लेष्मा को हरनेवाला और बुद्धि बढ़ानेवाला है।

(२) सूरजमुखी शीशा। आतशी शीशा।

विशेष—यह विशेष बनावट का गहरे पेटे का गोल शीशा होता है जो सूर्य्य की किरनों को एक केंद्र पर एकत्र करता है, जिससे ताप उत्पन्न हो जाता है। इसके भीतर से देखने पर वस्तुएँ बड़े आकार की दिखाई पड़ती हैं।

(३) एक प्रकार का फूल। आदित्यपर्णी। (४) एक पर्वत का नाम। (मार्कंडेयपुराण)

सूर्य्यकांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य्य की दीप्ति या प्रकाश। (२) एक प्रकार का पुष्प। (३) तिल का फूल।

सूर्य्यकाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिन का समय। (२) फलित ज्योतिष में शुभाशुभ निर्णय के लिये एक चक्र।

सूर्य्यकालानलचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक ज्योतिष-चक्र जिससे मनुष्य का शुभाशुभ जाना जाता है।

सूर्य्यक्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का ताल। (संगीत) (२) एक प्राचीन जनपद।

सूर्य्यक्षय-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य मंडल।

सूर्य्यगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बोधिसत्व का नाम। (२) एक बौद्ध सूत्र का नाम।

सूर्य्यग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नव ग्रहों में से प्रथम ग्रह सूर्य्य। (२) सूर्य्यग्रहण। (३) राहु और केतु। (४) जलपात्र या घड़े का पेंदा।

सूर्य्यग्रहण-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य का ग्रहण। वि० दे० "ग्रहण"।

सूर्य्यचक्षु-संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यचक्षुस्] रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम।

सूर्य्यज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि ग्रह। (२) यम। (३) सावर्णि मनु। (४) रेवंत। (५) सुग्रीव। (६) कर्ण।

सूर्य्यजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी।

सूर्य्यतनय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि। (२) सावर्णि मनु। (३) रेवंत। (४) सुग्रीव। (५) कर्ण।

सूर्य्यतनया-संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना।

सूर्य्यतापिनी संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

सूर्य्यतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

सूर्य्यदास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संस्कृत के एक प्राचीन कवि का नाम। (२) हिंदी के प्रसिद्ध कवि सूरदास।

सूर्य्यदेव-संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् सूर्य्य।

सूर्य्यध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सूर्य्यनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि। (२) कर्ण।

सूर्य्यनगर-संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन नगर का नाम।

सूर्य्यनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम। (हरिवंश)

सूर्य्यनारायण-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य देवता।

सूर्य्यनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

सूर्य्यपति-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य देवता।

सूर्य्यपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] संज्ञा। छाया।

सूर्य्यपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इसरमूल। अर्कपत्री। (२) हुरहुर। आदित्यभक्ता। (३) मदार का पौधा।

सूर्य्यपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इसरमूल। अर्कपत्री। (२) मखवन। बन उड़दी। माषपर्णी।

सूर्य्यपर्व्व-संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यपर्व्वन्] वह काल जिसमें सूर्य्य किसी नई राशि में प्रवेश करता है।

सूर्य्यपाद-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की किरन।

सूर्य्यपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि । (२) यम । (३) वरुण । (४) अश्विनी कुमार । (५) सुग्रीव । (६) कर्ण ।

सूर्य्यपुत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यमुना । (२) विद्युत् । बिजली । (क०)

सूर्य्यपुर-संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन नगर का नाम ।

सूर्य्यपुराण-संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा ग्रंथ जिसमें सूर्य्य माहात्म्य वर्णित है ।

सूर्य्यप्रदीप-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ध्यान या समाधि । (बौद्ध)

सूर्य्यप्रभ-वि० [सं०] सूर्य्य के समान दीप्तिमान् ।
संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार की समाधि । (२) श्रीकृष्ण की पत्नी । लक्ष्मणा के प्रासाद या भवन का नाम । (३) एक बोधिसत्व का नाम । (बुद्ध) (४) एक नाग का नाम ।

सूर्य्यप्रभाव-वि० [सं०] सूर्य्य से उत्पन्न ।
संज्ञा पुं० (१) शनि । (२) कर्ण ।

सूर्य्यप्रशिष्य-संज्ञा पुं० [सं०] जनक का एक नाम ।

सूर्य्यफणि चक्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक ज्योतिश्चक्र जिससे कोई कार्य प्रारंभ करते समय उसका शुभाशुभ निकालते हैं ।

सूर्य्यबिंब-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य का मंडल ।

सूर्य्यभक्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुपहरिया । बंधूक पुष्प वृक्ष । (२) सूर्य्य का उपासक ।

सूर्य्यभक्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य की उपासना करनेवाला । (२) दुपहरिया । बंधूक ।

सूर्य्यभक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर । आदित्यभक्ता ।

सूर्य्यभा-वि० [सं०] सूर्य्य के समान दीप्तिमान् ।

सूर्य्यभागा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम ।

सूर्य्यभानु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण के अनुसार एक यक्ष का नाम । (२) एक राजा का नाम ।

सूर्य्यभ्राता-संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यभ्रातृ] ऐरावत हाथी का नाम ।

सूर्य्यमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य का घेरा ।
पर्य्या०—परिधि । परिवेश । मंडल । उपसूर्य्यक ।
(२) रामायण के अनुसार एक गंधर्व नाम ।

सूर्य्यमणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्यकांत मणि । (२) एक प्रकार का पुष्पवृक्ष ।

सूर्य्यमाल-संज्ञा पुं० [सं०] (सूर्य्य की माला धारण करनेवाले) शिव । महादेव ।

सूर्य्यमास-संज्ञा पुं० दे० "सौरमास" ।

सूर्य्यमुखी-संज्ञा पुं० दे० "सूरजमुखी" ।

सूर्य्यरश्मि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य की किरन । (२) सविता का एक नाम ।

सूर्य्यर्क्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वह नक्षत्र जिसमें सूर्य्य की स्थिति हो ।

सूर्य्यलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर । हुलहुल । आदित्यभक्ता लता ।

सूर्य्यलोक-संज्ञा पु० [सं०] सूर्य्य का लोक ।
विशेष—कहते हैं कि युद्ध में मरनेवाले और काशी-खंड के अनुसार सूर्य्य के भक्त भी इसी लोक को प्राप्त होते हैं ।

सूर्य्यलोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्वी का नाम ।

सूर्य्यवंश-संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों के दो आदि और प्रधान कुलों में से एक जिसका आरंभ इक्ष्वाकु से माना जाता है ।
विशेष—पुराणानुसार परमेश्वर के पुत्र ब्रह्मा, ब्रह्मा के मरीचि, मरीचि के कश्यप, कश्यप के सूर्य्य, सूर्य्य के वैवस्वत मनु और वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु थे । इक्ष्वाकु का नाम वैदिक ग्रंथों में भी आया है । ये इक्ष्वाकु त्रेतायुग में अयोध्या के राजा थे । त्रेता और द्वापर की संधि में इसी वंश में दशरथ के यहाँ श्रीरामचंद्र ने जन्म लिया था । द्वापर के प्रारंभ में श्रीरामचंद्र के पुत्र कुश हुए । कुश के वंश ने सुमित्र तक, कलियुग में एक हजार वर्ष राज्य किया । इसके बाद इस वंश की विश्रांति हुई ।

सूर्य्यवंशी-वि० [सं० सूर्य्यवंशिन्] सूर्य्यवंश का । जो क्षत्रियों के सूर्य्यवंश में उत्पन्न हुआ हो ।

सूर्य्यवंश्य-वि० [सं०] सूर्य्यवंश में उत्पन्न ।

सूर्य्यवक्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ओषधि ।

सूर्य्यवर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ओषधि ।

सूर्य्यवर्चस्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवगंधर्व का नाम । (२) एक ऋषि का नाम ।
वि० सूर्य्य के समान दीप्तिमान् ।

सूर्य्यवर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यवर्म्मन्] त्रिगर्त्त के एक राजा का नाम । (महाभारत)

सूर्य्यवल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हुरहुर । आदित्यभक्ता । (२) कमलिनी । पद्मिनी ।

सूर्य्यवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दधियार । अंधाहुली । अर्कपुष्पी । (२) क्षीर काकोली ।

सूर्य्यवान्-संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यवत्] रामायण के अनुसार एक पर्वत का नाम ।

सूर्य्यवार-संज्ञा पुं० [सं०] रविवार । आदित्यवार ।

सूर्य्यविग्र-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

सूर्य्यविलोकन-संज्ञा पुं० [सं०] एक मांगलिक कृत्य जिसमें बच्चे को सूर्य्य का दर्शन कराया जाता है । यह बच्चे के चार महीने के होने पर किया जाता है ।

सूर्य्यवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आक । मदार । अर्कवृक्ष । (२) दधियार । अंधाहुली । अर्कपुष्पी ।

सूर्य्यवेश्म-संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यवेश्मन्] सूर्य्य मंडल ।

सूर्य्यव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक व्रत जो सूर्य्य भगवान् के प्रीत्यर्थ रविवार को किया जाता है । (२) ज्योतिष में एक चक्र ।

सूर्य्यशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम । (रामायण)

सूर्य्यशिष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) याज्ञवल्क्य का एक नाम। (२) जनक का एक नाम।

सूर्य्यशोभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य्य का प्रकाश। धूप। (२) एक प्रकार का फूल।

सूर्य्यश्री-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वेदेवा में से एक।

सूर्य्यसंक्रमण-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश। सूर्य की संक्रांति। वि० दे० "संक्रांति"।

सूर्य्यसंक्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश। वि० दे० "संक्रांति"।

सूर्य्यसंज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। अर्क वृक्ष। (३) केसर। कुंकुम। (४) ताँबा। ताम्र। (५) एक प्रकार का मानिक या चुन्नी।

सूर्य्यसदृश-संज्ञा पुं० [सं०] लोलावज्र का एक नाम। (बौद्ध)

सूर्य्यसाम-संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यसामन्] एक साम का नाम।

सूर्य्यसारथि-संज्ञा पुं० (सूर्य्य का सारथि) अरुण।

सूर्य्यसावर्णि-संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेयपुराण के अनुसार आठवें मनु का नाम। (ये सूर्य के औरस हैं और संज्ञा के गर्भ से उत्पन्न माने जाते हैं।)

सूर्य्यसावित्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वेदेवा में से एक। (२) प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम।

विशेष—इसके तत्त्व का उपदेश पहले पहल सूर्य से प्राप्त कहा गया है।

सूर्य्यसुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि। (२) कर्ण। (३) सुग्रीव।

सूर्य्यसूक्त-संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के एक सूक्त का नाम जिसमें सूर्य की स्तुति की गई है।

सूर्य्यसूत-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का सारथि, अरुण।

सूर्य्यस्तुत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

सूर्य्यांशु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की किरण।

सूर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य्य की पत्नी संज्ञा।

विशेष—कई मंत्रों में यह सूर्य्य की कन्या भी कही गई हैं। कहीं ये सविता या प्रजापति की कन्या और अश्विनीकुमारों की स्त्री कही गई हैं और कहीं सोम की पत्नी। एक मंत्र में इनका नाम ऊर्जानी आया है और ये पूषा की भगिनी कही गई हैं। सूर्य्या सावित्री ऋग्वेद के सूर्य्यसूक्त की द्रष्टा मानी जाती हैं।

(२) नवोढ़ा। नवविवाहिता स्त्री। (३) इंद्रवारुणी।

सूर्य्याकर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रचीन जनपद का नाम। (रामायण)

सूर्य्याक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) एक राजा का नाम। (महाभारत) (३) एक बंदर का नाम। (रामायण)

वि० सूर्य्य के समान आँखोंवाला।

सूर्य्याणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य की पत्नी, संज्ञा।

सूर्य्यातप-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की गरमी। धूप। घाम।

सूर्य्यात्मज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि। (२) कर्ण। (३) सुग्रीव।

सूर्य्याद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। (मार्कंडेयपुराण)

सूर्य्यापीड़-संज्ञा पुं० [सं०] परीक्षित के एक पुत्र का नाम।

सूर्य्यायाम-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्यास्त का समय।

सूर्य्यालोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य का प्रकाश। (२) गरमी। आतप।

सूर्य्यावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हुलहुल का पौधा। आदित्य-भक्ता। (२) सूबर्चला। ब्रह्मसोंचली। (३) गज पिप्पली। गजपीपल। (४) एक प्रकार की सिर की पीड़ा। आधासीसी।

विशेष—यह रोग वातज कहा गया है। इसमें सूर्य्योदय के साथ ही मस्तक में दोनों भौंवों के बीच पीड़ा आरंभ होती है और सूर्य्य की गरमी बढ़ने के साथ साथ बढ़ती जाती है। सूरज ढलने के साथ ही पीड़ा घटने लगती है और शांत हो जाती है।

(५) एक प्रकार का ध्यान या समाधि। (बौद्ध) (६) एक प्रकार का जल-पात्र।

सूर्य्यावर्त्त रस-संज्ञा पुं० [सं०] श्वास रोग की एक रसौषध जो पारे, गंधक और ताँबे के संयोग से बनती है।

सूर्य्याश्म-संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्याश्मन्] सूर्य्यकान्त मणि।

सूर्य्याश्व-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का घोड़ा। वाताट। हरित्।

सूर्य्यास्त-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का डूबना। सूर्य के छिपने का समय। सायंकाल।

क्रि० प्र०—होना।

सूर्य्याह्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताँबा। ताम्र। (२) आक। मदार। अर्कवृक्ष। (३) महेंद्रवारुणी। बड़ी इंद्रायन।

सूर्य्येंदुसंगम-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य और चंद्रमा का संगम या मिलन अर्थात् दोनों की एक राशि में स्थिति। अमावस्या।

सूर्योढ़-वि० [सं०] अतिथि (जो सूर्य्यास्त होने पर अर्थात् संध्या समय आता है)।

संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्यास्त का समय।

सूर्योत्थान-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्योदय। सूर्य्य का चढ़ना।

सूर्योदय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य का उदय या निकलना। (२) सूर्य्य के निकलने का समय। प्रातःकाल।

क्रि० प्र०—होना।

सूर्योदयगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] वह कल्पित पर्व्वत जिसके पीछे से सूर्य्य का उदित होना माना जाता है। उदयाचल।

सूर्योद्यान-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्यवन नामक तीर्थ।

सूर्योपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

सूर्योपस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की एक प्रकार की उपासना।

विशेष—प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल को संध्या करते समय

सूर्याभिमुख हो एक पैर से खड़े होकर सूर्य की उपासना करने का विधान है।

सूर्योपासक-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की उपासना करनेवाला। सूर्यपूजक। सौर।

सूर्योपासना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की आराधना या पूजा।

सूल-संज्ञा पुं० [सं० शूल] (१) बरछा। भाला। साँग। उ०—(क) वर्म चर्म कर कृपान सूल सेल धनुषबान, धरनि दलनि दानव दल रन करालिका। (ख) देखि ज्वाला जाल हाहाकार दसकंध सुनि कह्यो धरो धरो धाए वीर बलवान हैं। लिए सूल सेल पास परिघ प्रचंड दंड भाजन सनीर धीर धरे धनुवान हैं।—तुलसी। (२) कोई चुभनेवाली नुकीली चीज। काँटा। उ०—(क) दूर सों समीर लाग्यो सूल सों सहेली सब विष सों विनोद लाग्यो बन सों निवास री।—मतिराम। (ख) ऐती नचाइ कै नाच वा राँड को लाल रिझावन को फल पेती। सेती सदा रसखानि लिये कुबरी के करेजनि सूल सी भेती।

क्रि० प्र०—चुभना।—लगना।

(३) भाला चुभने की सी पीड़ा। कसक। उ०—(क) सूल उठ्यौ तन हूल गयो मन भूल गये सब खेल खिलौना।—सुंदरीसर्वस्व। (ख) बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।—हरिश्चंद्र। (ग) बसिहौं बन लखिहौं मुनिन भखिहौं फल दल मूल। भरत राज करिहैं अवधि मोहि न कछु अब सूल।—पद्माकर। (४) दर्द। पीड़ा। जैसे,—पेट में सूल।

क्रि० प्र०—उठना।—मिटना।

विशेष—इस शब्द का स्त्रीलिंग प्रयोग भी सूर आदि कवियों में मिलता है। जैसे,—मेरे मन इतनी सूल रही।—सूर।

(५) माला का ऊपरी भाग। माला के ऊपर का फुलरा। उ०—मनि फूल रचित मखतूल की झूल न जाके तूल कोउ। सजि सोहे उघारि दुकूल वर सूल सबै अरि शूल सोउ।—गोपाल।

सूलधर-संज्ञा पुं० दे० "शूलधर"।

सूलधारी-संज्ञा पुं० दे० "शूलधर"।

सूलना-क्रि० स० [हिं० सूल+ना (प्रत्य०)] भाले से छेदना। पीड़ित करना।

क्रि० अ० भाले से छिदना। पीड़ित होना। व्यथित होना। दुखना। उ०—फूलि उठ्यो वृंदावन, भूलि उठे खग मृग, सूलि उठ्यो उर, बिरहागि बगराई है।—देव।

सूलपानि⊛-संज्ञा पुं० दे० "शूलपाणि"।

सूली-संज्ञा स्त्री० [सं० शूल] (१) प्राण दंड देने की एक प्राचीन प्रथा जिसमें दंडित मनुष्य एक नुकीले लोहे के डंडे पर बैठा दिया जाता था और उसके ऊपर मुँगरा मारा जाता था। (२) फाँसी।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।—देना।—पाना।—मिलना।

(३) एक प्रकार का नरम लोहा जिसकी छड़ें बनती हैं। (लुहार)

संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण दिशा। (लश०)

⊛संज्ञा पुं० [सं० शूलिन्] महादेव। शिव। उ०—चंदन की वर चौकी पै बैठि जु न्हाई जुन्हाई सी जोति समूली। अंबर के धर अंबर पूजि बरंबर देव दिगंबर सूली।—देव।

सूवना⊛†-क्रि० अ० [सं० स्रवण] बहना। प्रवाहित होना। उ०—कहा करौं अति सूनै नयना उमगि चलत पग पानी। सूर सुमेर समाइ कहाँ धौं बुद्धिवासना पुरानी।—सूर।

संज्ञा पुं० दे० "सूआ"। उ०—सेमर केरा सूवना सिहुले बैठा जाय। चोंच चहोरे सिर धुनै यह वाही को भाय।—कबीर।

सूवर-संज्ञा पुं० दे० "सूअर"।

सूवा-संज्ञा पुं० [?] फारसी संगीत के अनुसार २४ शोभाओं में से एक।

संज्ञा पुं० [सं० शुक] तोता। सुग्गा। सूआ।

सूस-संज्ञा पुं० [अ० मि० सं० शिशुमार] मगर की तरह का एक बड़ा जलजंतु जो गंगा में बहुत होता है। सूँस।

विशेष—इसका रंग काला होता है और यह प्रायः जल के ऊपर आया करता है, पर किनारे पर नहीं आता। यह घड़ियाल या मगर के समान जल के बाहर के जंतु नहीं पकड़ता। उ०—सिर बिनु कवच सहित उतराहीं। जहँ तहँ सुभट ग्राह जनु जाहीं। बिनु सिर ते न जात पहिचाने। मनहुँ सूस जल में उतराने।—सबल।

सूसमार-संज्ञा पुं० [सं० शिशुमार] सूस।

सूसला†-संज्ञा पुं० [सं० शश] खरगोश।

सूसि⊛†-संज्ञा पुं० दे० "सूस"। उ०—फिरत चक्र आवर्त्त अनेका। उछरहिं शीश सूसि ढिग एका।—रघुनाथदास।

सूसी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धारीदार या चारखानेदार कपड़ा।

सूहा-संज्ञा पुं० [हिं० सोहना] (१) एक प्रकार का लाल रंग। (२) संपूर्ण जाति का एक संकर राग।

विशेष—किसी के मत से यह विभास और मालश्री के मेल से और किसी किसी के मत से विभास और वागीश्वरी के मेल से बना है। इसमें गांधार, धैवत और निषाद तीनों कोमल लगते हैं। इसके गाने का समय ६ दंड से १० दंड तक है। हनुमत् के मत से यह दीपक राग का और अन्य मतों से हिंडोल या भैरव राग का पुत्र है। कुछ लोगों ने इसे रागिनी कहा है और भैरव की पुत्रवधू बताया है।

वि० [स्त्री० सूही] विशेष प्रकार के लाल रंग का। लाल। उ०—सजि सूहे दुकूल सबै सुख साधा।—पद्माकर।

सूहा कान्हड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० सूहा + कान्हड़ा] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

सूहा टोड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूहा + टोड़ी] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिणी जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

सूहाबिलावल-संज्ञा पुं० [हिं० सूहा + बिलावल] संपूर्ण जाति का एक संकर राग।

सूहा श्याम-संज्ञा पुं० [हिं० सूहा + श्याम] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

सूही-वि० स्त्री० दे० "सूहा"।

सृंखला॥-संज्ञा स्त्री० दे० "शृंखला"। उ०—तुलसिदास प्रभु मोह सृंखला छूटहि तुम्हरे छोरे।—तुलसी।

सृंग॥-संज्ञा पुं० दे० "शृंग"।

सृंगवेरपुर॥-संज्ञा पुं० दे० "शृंगवेरपुर"। उ०—सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगवेरपुर पहुँचे जाई।—तुलसी।

सृंगी॥-संज्ञा पुं० दे० "शृंगी"।

सृंजय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देववात के एक पुत्र का नाम। (ऋग्वेद) (२) मनु के एक पुत्र का नाम। (३) पुराणोक्त एक वंश जिसमें धृष्टद्युम्न हुए थे और जिस वंश के लोग भारत युद्ध में पांडवों की ओर से लड़े थे। (४) ययातिवंश के कालनर के एक पुत्र का नाम।

सृंजयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भजमान की दो पत्नियों का नाम। (हरि०)

सृंजरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सृंजयी"।

सृकंडू-संज्ञा स्त्री० [सं०] खाज। खुजली। कंडु।

सृक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूल। भाला। (२) बाण। तीर। (३) वायु। हवा। (४) कमल का फूल।

॥संज्ञा पुं० [सं० स्रज, स्रक्] माला। उ०—दरसन हू नासै जम-मैनिक जिमि नह बालक सेनी।......सूर परस्पर करत कुलाहल, गर सृक यह रावैनी।—सूर।

सृकाल-संज्ञा पुं० दे० "शृगाल"। उ०—तुलसिदास हरिनाम सुधा तजि सठ हठि पियत विषय विष मागी। सूकर स्वान सृकाल सरिस जन जनमत जगत जननि दुख लागी।—तुलसी।

सृक्क-संज्ञा पु० दे० "सृक्क"।

सृक्कणी-संज्ञा स्त्री० दे० "सृक्क"।

सृकृथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

सृक्व-संज्ञा पुं० [सं०] ओठों का छोर। मुँह का कोना।

सृक्कणी-संज्ञा स्त्री० दे० "सृक्क"।

सृग॥-संज्ञा पुं० [सं० सृक] (१) बरछा। भाला। (२) बाण। तीर। संज्ञा पु० [सं० स्रग्, स्रक] माला। गजरा। हार। उ०—खेलत टूटि गए मुकता-स्रग मुकुतवृंद छहराने। मनु अपार सुख लेन तारकन द्वार द्वार दरसाने।—रघुराज।

सृगाल-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सृगाली] (१) सियार। शृगाल। (२) एक प्रकार का वृक्ष। (३) एक दैत्य का नाम। (४) करवीरपुर के राजा वासुदेव का नाम। (हरिवंश) (५) प्रतारक। धूर्त्त। धोखेबाज। (६) कायर। भीरु। डरपोक। (७) दुःशील मनुष्य। बदमिजाज आदमी।

सृगालकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] सत्यानासी का पौधा। कटेरी। स्वर्णक्षीरी। भड़भाँड़।

सृगालकोलि-संज्ञा पुं० [सं०] बेर का पेड़ या फल।

सृगालघंटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमखाना। कोकिलाक्ष।

सृगालजंबु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तरबूज। गोडुंब। (२) झड़बेरी। छोटा बेर।

सृगालरूप-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

सृगालवदन-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम। (हरिवंश)

सृगालवास्तुक-संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ साग का एक भेद।

सृगालविन्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

सृगालवृंता-संज्ञा स्त्री० दे० "सृगालविन्ना"।

सृगालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सियारिन। गीदड़ी। (२) लोमड़ी। (३) विदारीकंद। भूमिकुष्मांड। (४) पलायन। भगदड़। (५) दंगाफसाद। हंगामा।

सृगालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सियारिन। गीदड़ी।

सृगाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सियारिन। गीदड़ी। (२) लोमड़ी। (३) पलायन। भगदड़। (४) उपद्रव। हंगामा। (५) तालमखाना। कोकिलाक्ष। (६) विदारीकंद।

सृग्विनी॥†-संज्ञा स्त्री० दे० "स्रग्विणी"।

सृजक॥-संज्ञा पुं० [सं० सृज] सृष्टि करनेवाला। उत्पन्न करनेवाला। सर्जक।

सृजन॥-संज्ञा पुं० [सं० सृज, सर्जन] (१) सृष्टि करने की क्रिया। उत्पादन। (२) सृष्टि। उत्पत्ति। (३) छोड़ना। निकालना।

सृजनहार॥-संज्ञा पुं० [सं० सृज, सर्जन + हिं० हार] सृष्टिकर्त्ता। सृष्टि रचनेवाला। उत्पन्न करनेवाला। बनानेवाला।

सृजना॥-क्रि० स० [सं० सृज् + हिं० ना (प्रत्य०)] सृष्टि करना। उत्पन्न करना। रचना करना। बनाना। उ०—(क) तपबल ते जग सृजइ विधाता। तपबल विष्णु भये परित्राता।—तुलसी। (ख) कत विधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।—तुलसी। (ग) जाके अंश मोर अवतारा। पालत सृजत हरत संसारा—सबलसिंह। (घ) ए महि परहिं डासि कुसपाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता।—तुलसी।

सृजय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

सृजया-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलमक्षिका।

सृज्य-वि० [सं०] (१) जो उत्पन्न किया जानेवाला हो। (२) जो छोड़ा या निकाला जानेवाला हो।

सृणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रु । (२) चंद्रमा ।
संज्ञा पुं० स्त्री० अंकुश ।

सृणिक–संज्ञा पुं० [सं०] अंकुश ।
संज्ञा स्त्री० थूक । निष्ठीवन । लार ।

सृणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दाँती । हँसिया ।

सृणीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु । (२) अग्नि । (३) वज्र । (४) मदोन्मत्त या उन्मत्त व्यक्ति ।

सृणीका–संज्ञा स्त्री० [सं०] थूक । लार ।

सृत–वि० [सं०] (१) जो खिसक गया हो । सरका हुआ । (२) गत । जो चला गया हो ।

सृता–संज्ञा स्त्री० [सं०] गमन । पलायन ।

सृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मार्ग । रास्ता । (२) जन्म । (३) आवागमन । (४) निर्माण ।

सृत्वन्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रजापति । (२) विसर्प । सरकना । (३) बुद्धि ।

सृत्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] माता ।

सृदर–संज्ञा पुं० [सं०] सर्प । साँप ।

सृदाकु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु । (२) अग्नि । (३) वनाग्नि । दावानल । (४) वज्र । (५) गोध । गोह । (६) मृग । (७) नदी ।

सृप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक असुर । (हरिवंश) (२) चंद्रमा ।

सृपमन्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्प । (२) शिशु । (३) तपस्वी ।

सृपाट–संज्ञा पुं० [सं०] फूल के नीचे की छोटी पत्ती ।

सृपाटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चोंच । चंचु ।

सृपाटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चोंच । चंचु ।

सृप्र–वि० [सं०] (१) चिकना । स्निग्ध । (२) जिस पर हाथ या पैर फिसले ।
संज्ञा पुं० (१) चंद्रमा । (२) मधु । शहद ।

सृप्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम । सिप्रा नदी ।

सृबिंद–संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव जिसे इंद्र ने मारा था । (ऋग्वेद)

सृम–संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम ।

सृमर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पशु (किसी के मत से बाल मृग) । (२) एक असुर का नाम ।

सृमल–संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम । (हरिवंश)

सृष्ट–वि० [सं०] (१) उत्पन्न । पैदा । (२) निर्मित । रचित । (३) युक्त । (४) छोड़ा हुआ । निकाला हुआ । (५) त्यागा हुआ । (६) निश्चित । संकल्प में दृढ़ । तैयार । (७) बहुल । (८) अलंकृत । भूषित ।
संज्ञा पुं० तेंदू । तिंदुक ।

सृष्टमारुत–वि० [सं०] पेट की वायु को निकालनेवाला । (सुश्रुत)

सृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पत्ति । पैदाइश । बनने या पैदा होने की क्रिया या भाव । (२) निर्माण । रचना । बनावट । (३) संसार की उत्पत्ति । जगत् का आविर्भाव । दुनिया की पैदाइश । (४) उत्पन्न जगत् । संसार । दुनिया । चराचर पदार्थ । जैसे,—सृष्टि भर में ऐसा कोई न होगा । (५) प्रकृति । निसर्ग । कुदरत । (६) दानशीलता । उदारता । (७) गंभारी का पेड़ । खंभारी । (८) एक प्रकार की ईंट जो यज्ञ की वेदी बनाने के काम में आती थी ।
संज्ञा पुं० उग्रसेन के एक पुत्र का नाम ।

सृष्टिकर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० सृष्टिकर्तृ] (१) सृष्टि या संसार की रचना करनेवाला, ब्रह्मा । (२) ईश्वर ।

सृष्टिकृत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सृष्टिकर्ता । (२) [illegible] पर्पटक ।

सृष्टिदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि ।

सृष्टिपत्तन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मंत्रशक्ति ।

सृष्टिप्रदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भदात्री क्षुप । श्वेत कंटकारी । सफेद भटकटैया ।

सृष्टिविज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] वह विज्ञान या शास्त्र जिसमें सृष्टि की रचना आदि पर विचार किया गया हो ।

सृष्टिशास्त्र–संज्ञा पुं० दे० "सृष्टिविज्ञान" ।

सेंक–संज्ञा स्त्री० [हिं० सेंकना] (१) आँच के पास या दहकते अंगारे पर रखकर भूनने की क्रिया । (२) आँच के द्वारा गरमी पहुँचाने की क्रिया । जैसे,—[illegible] में बहुत लाभ होगा ।
क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।
यौ० —सेंकसाँक ।
संज्ञा स्त्री० लोहे की कमाची जिसका व्यवहार छीपी कपड़े छापने में करते हैं ।

सेंकना–क्रि० स० [सं० श्रेषण = जलाना, तपाना] (१) आँच के पास या आग पर रखकर भूनना । जैसे,—[illegible] सेंकना । (२) आँच के द्वारा गरमी पहुँचाना । [illegible] । आग के पास लेजाकर गरम करना । जैसे, [illegible] सेंकना ।
संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।
मुहा०—आँख सेंकना = सुंदर रूप देखना । [illegible] । धूप सेंकना = धूप में रहकर शरीर में गरमी पहुँचाना । [illegible] ।

सेंकी|–संज्ञा स्त्री० [फा० सीनी, हिं० [illegible]] तश्तरी । रकाबी ।

सेंगर–संज्ञा पुं० [सं० शृंगार] (१) एक पौधा जिसकी फलियों की तरकारी बनती है । (२) इस पौधे की फली । (३) बबूल की फली या छीमी जो भैंस, बकरी, ऊँट आदि को खाने को दी जाती है । (४) एक प्रकार का अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिनों तक रहता है ।
संज्ञा पुं० [सं० शृंगीवर] क्षत्रियों की एक जाति या शाखा । उ०—कूरम, राठौर, गौड़, हाड़ा, चहुवान, गौर, तोमर,

चँदेल, जादौ जंग जितवार हैं। पौरच, पुंडीर, परिहार औ पँवार वैस, सेंगर, सिसोदिया, सुलंकी दितवार हैं।—सूदन।

सेंगरा—संज्ञा पुं० [देश०] वह डंडा जिसमें लटका कर भारी पत्थर या धरन एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं।

सेंजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो पंजाब में को चौपायों खिलाई जाती है।

विशेष—यह कपास के साथ बोई जाती है।

सेंटर—संज्ञा पुं० [अं०] (१) गोलाई या वृत्त के बीच का बिंदु। केंद्र। मध्यबिंदु। (२) प्रधान स्थान। जैसे,—परीक्षा का सेंटर।

सेंठा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) मूँज या सरकंडे के सींके का निचला मोटा मजबूत हिस्सा जो मोढ़े आदि बनाने के काम में आता है। कन्ना। (२) एक प्रकार की घास जो छप्पर छाने के काम में आती है। (३) जुलाहों की वह पोली लकड़ी जिसमें ढरी फँसाई जाती है। डाँड़।

सेंढ़—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का खनिज पदार्थ जिसका व्यवहार सुनार करते हैं।

सेंत—संज्ञा स्त्री० [सं० संहति = (१) किफायत, (२) समूह, राशि] (१) कुछ व्यय का न होना। पास का कुछ न लगना। कुछ खर्च न होना।

यौ०—सेंतमेंत।

मुहा०—सेंत का = (१) जिसमें कुछ दाम न लगा हो। जो बिना मूल्य दिए मिले। जिसके मिलने में कुछ खर्च न हो। मुफ्त का। जैसे,—(क) सेंत का सौदा नहीं है। (ख) सेंत की चीज की कोई परवा नहीं करता। ‡। (२) बहुत सा। ढेर का ढेर। बहुत ज्यादा। उ०—(क) चलहु जु मिलि उनहीं पै जैये, जिन्ह तुम टोकन पंथ पठाए। सखा संग लीने जु सेंति के फिरत रैनि दिन बन में धाए। नाहिंन राज कंस को जान्यो बाट रोकते फिरत पराए।—सूर। (ख) अपनो गाँव लेहु नँदरानी। बड़े बाप की बेटी तातें पूतहि भले पढ़ावति बानी।......सुनु मैया ! याके गुन मोसों, इन मोहिं लियो बुलाई। दधि में परी सेंति की चींटी, मोपै सबै कढ़ाई।—सूर। (यह मुहावरा पूरबी अवधी का है और बस्ती, गोंडे, फैजाबाद आदि जिलों में बोला जाता है)। सेंत में = (१) बिना कुछ दाम दिए। बिना कुछ खर्च किए। बिना मूल्य के। मुफ्त में। जैसे,—यह घड़ी मुझे सेंत में मिल गई। (२) व्यर्थ। निष्प्रयोजन। फजूल। जैसे,—क्यों सेंत में झगड़ा लेते हो।

सेंतना‡—क्रि० स० दे० "सैंतना"।

सेंतमेंत—क्रि० वि० [हिं० सेंत + मेंत (अनु०)] (१) बिना दाम दिए। मुफ्त में। फोकट में। सेंत में। उ०—कलकी और मलीन बहुत में सेंतमेंत बिकाउँ।—सूर। (२) वृथा। फजूल। निष्प्रयोजन। बेमतलब। जैसे,—क्यों सेंतमेंत झगड़ा मोल लेते हो ?

सेंति, सेंती‡—संज्ञा स्त्री० दे० "सेंत"।

प्रत्य० [प्रा० सुंतो; पंचमी विभक्ति] पुरानी हिंदी की करण और अपादान की विभक्ति। से। उ०—(क) तोहि पीर जो प्रेम की पाका सेंती खेल।—कबीर। (ख) हिंदू व्रत एकादसि साधें दूध सिंघाड़ा सेंती।—कबीर। (ग) राजा सेंति कुँवर सब कहहीं। अस अस मच्छ समुद महँ अहहीं।—जायसी। (घ) संजीवनि तब कचहि पढ़ाई। ता सेंती यों कह्यो समुझाई।—सूर।

सेंथा|—संज्ञा पुं० दे० "सेंठा"।

सेंथी|—संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] बरछी। भाला। शक्ति। शर्वला। उ०—इंद्रजीत लीनी जब सेंथी देवन हहा कर्‌यो। छूटी बिज्जु राशि वह मानो भूतल बंधु पर्‌यो।—सूर।

सेंद‡—संज्ञा स्त्री० दे० "सेंध"।

सेंदुर‡—संज्ञा पुं० [सं० सिन्दूर] ईंगुर की बुकनी। सिंदूर। उ०—(क) माँग में सेंदुर सोहि रह्यो गिरधारन है उपमा न तिहूँ पुर। मानो मनोज की लागी कृपान, पर्‌यो कटि बीच ते राहु बहादुर।—सुंदरीसर्वस्व। (ख) बिन सेंदुर जानउँ मैं दिआ। उँजियर पंथ रइनि महँ किआ।—जायसी।

विशेष—सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ इसे माँग में भरती हैं। यह सौभाग्य का चिह्न माना जाता है। विवाह के समय वर कन्या की माँग में सिंदूर डालता है और उसी घड़ी से वह उसकी स्त्री हो जाती है।

क्रि० प्र०—पहनना।—देना।—भरना।—लगाना।

मुहा०—सेंदुर चढ़ना = स्त्री का विवाह होना। सेंदुर देना = विवाह के समय पति का पत्नी को माँग भरना। उ०—राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जात विधि केहीं।—तुलसी।

सेंदुरदानी|—संज्ञा स्त्री० [हिं० सेंदुर + फा० दानी] सिंदूर रखने की डिबिया। सिंदूरा।

सेंदुरा—वि० [हिं० सेंदुर] [स्त्री० सेंदुरी] सिंदूर के रंग का। लाल। जैसे,—सेंदुरी गाय। सेंदुरा आम।

संज्ञा पुं० सिंदूर रखने का डिब्बा। सिंदूरा।

सेंदुरिया—संज्ञा पुं० [सं० सिंदूरिका, सिंदूरी] एक सदाबहार पौधा जिसमें सिंदूर के रंग के लाल फूल लगते हैं।

विशेष—इसके पत्ते ६-७ अंगुल लंबे और ४-५ अंगुल चौड़े नुकीले और अरबी के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। फूल दो ढाई अंगुल के घेरे में पाँच दलों के और सिंदूर के रंग के लाल होते हैं। इस पौधे की गुलाबी, बैंगनी और सफेद फूलवाली जातियाँ भी होती हैं। गरमी के दिनों में यह फूलता है और बरसात के अंत में इसमें फल लगने लगते हैं। फल लंबोतरे, गोल, ललाई लिए भूरे तथा कोमल महीन महीन काँटों से युक्त होते हैं। गूदे का रंग लाल होता है। गूदों के भीतर जो बीज होते हैं, उन्हें पानी में

डालने से पानी लाल हो जाता है। बहुत स्थानों पर रंग के लिये ही इस पौधे की खेती होती है। शोभा के लिये यह बगीचों में भी लगाया जाता है। आयुर्वेद में यह कड़वा, चरपरा, कसैला, हलका, शीतल तथा त्रिपदोष, वातपित्त, वमन, माथे की पीड़ा आदि को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्य्या०—सिंदूरपुष्पी। सिंदूरी। तृणपुष्पी। रक्तबीजा। रक्तपुष्पी। वीरपुष्पा। करच्छदा। शोणपुष्पी।

वि० सिंदूर के रंग का। खूब लाल।

यौ०—सेंदुरिया आम = वह आम का फल जिसका छिलका लाल रंग का हो।

सेंदुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सेंदुर] लाल गाय। उ०—कजरी धुमरी सेंदुरी धौरी मेरी गैया। दुहि ल्याऊँ मैं तुरत ही तू करि दे छैया।—सूर।

सेंद्रिय—वि० [सं०] (१) इंद्रिय-संपन्न। जिसमें इंद्रियाँ हों। सजीव। जैसे,—सेंद्रिय द्रव्य। (२) पुरुषत्वयुक्त। जिसमें मरदानगी हो। पुंसत्वयुक्त।

सेंध—संज्ञा स्त्री० [सं० संधि] चोरी करने के लिये दीवार में किया हुआ बड़ा छेद जिसमें से होकर चोर किसी कमरे या कोठरी में घुसता है। संधि। सुरंग। सेन † नकब।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) गोरख ककड़ी। फूट। मृगेर्व्वारु। (२) पेहँटा। कचरी।

सेंधना—क्रि० स० [हिं० सेंध] सेंध या सुरंग लगाना।

सेंधा—संज्ञा पुं० [सं० सैंधव] एक प्रकार का नमक जो खान से निकलता है। सैंधव। लाहौरी नमक।

विशेष—इसकी खानें खेवड़ा, शाहपुर, कालानाग और कोहाट में हैं। यह सब नमकों में श्रेष्ठ है। वैद्यक में यह स्वादु, दीपक, पाचक, हलका, स्निग्ध, रुचिकारक, शीतल, वीर्यवर्द्धक, सूक्ष्म, नेत्रों के लिये हितकारी तथा त्रिदोषनाशक माना गया है। इसे 'लाहौरी नमक' भी कहते हैं।

सेंधिया—वि० [हिं० सेंध] सेंध लगानेवाला। दीवार में छेद करके चोरी करनेवाला। जैसे,—सेंधिया चोर।

संज्ञा पुं० [सं० सेटु] (१) ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें तीन चार अंगुल के छोटे छोटे फल लगते हैं। कचरी। सेंध। पेहँटा। (२) फूट।

विशेष—यह खेतों में प्रायः आप से आप उपजता है।

(३) एक प्रकार का विष।

संज्ञा पुं० [मरा० शिंदे] ग्वालियर का प्रसिद्ध मराठा राजवंश जिसके संस्थापक रणजी शिंदे थे।

सेंधी—संज्ञा स्त्री० [सिंध (देश) जहाँ खजूर बहुत होता है। मरा० शिंदी] (१) खजूर। (२) खजूर की शराब। मीठी शराब।

संज्ञा स्त्री० [सं० सेटु] (१) खेत की ककड़ी। फूट। (२) कचरी। पेहँटा।

सेंधुर‡—संज्ञा पुं० दे० "सेंदुर"।

सेंभा—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों का एक वात रोग।

सेंवई—संज्ञा स्त्री० [सं० सेविका] मैदे के सुखाए हुए सूत के से लच्छे जो घी में तल कर और दूध में पका कर खाए जाते हैं।

मुहा०—सेंवई पूरना या बटना = गुँधे हुए मैदे को हथेलियों से रगड़ रगड़ कर सूत के आकार में बढ़ाते जाना।

सेंवर⊛‡—संज्ञा पुं० दे० "सेमल"। उ०—(क) बार बार निशि दिन अति आतुर फिरत दशो दिशि धाये। ज्यों शुक सेंवर फूल विलोकत जात नहीं बिन खाये।—सूर। (ख) राजै कहा सत्य कहु सूआ। बिनु सत जस सेंवर कर भूआ।—जायसी।

सेंह‡—संज्ञा स्त्री० दे० "सेंध"।

सेंहा—संज्ञा पुं० [हिं० सेंध] कूआँ खोदनेवाला। कुइँहा।

संज्ञा स्त्री० दे० "सेंधि"।

सेंही‡—संज्ञा स्त्री० दे० "सेंध"।

सेंहुआ—संज्ञा पुं० दे० "सेहुआँ"।

सेंहुड़—संज्ञा पुं० [सं० सेहुण्ड] थूहर। वि० दे० "थूहर"। उ०—छतौ नेह कागद हिये भई लखाइ न टाँक। बिरह तचे उघर्‌यो सु अब सेंहुड़ को सो आँक।—बिहारी।

से—प्रत्य० [प्रा० सुंतो, पु० हिं० सँति] करण और अपादान कारक का चिह्न। तृतीया और पंचमी की विभक्ति। जैसे,—(क) मैं ने अपनी आँखों से देखा। (ख) पेड़ से फल गिरा। (ग) वह तुम से बढ़ जायगा।

वि० [हिं० 'सा' का बहुवचन] समान। सदृश। सम। जैसे,—इसमें अनार से फल लगते हैं। उ०—नासिका सरोज गंधवाह से सुगंधवाह, दार्‌यो से दसन, कैसो बीजुरी सो हास है।—केशव।

⊛ सर्व० [हिं० 'सो' का बहुवचन] वे। उ०—अवलोकिहौं सोच विमोचन को ठगि सी रही, जो न ठगे धिक से।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेवा। खिदमत। (२) कामदेव की पत्नी का नाम।

सेई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० सेर] अनाज नापने का काठ का एक गहरा बरतन।

सेउ⊛‡—संज्ञा पुं० दे० "सेव"। उ०—किसिमिसि सेउ फरे नउ पाता। दारिउँ दाख देखि मन राता।—जायसी।

सेकंड—संज्ञा पुं० [अं०] एक मिनट का ६० वाँ भाग।

वि० दूसरा। जैसे,—सेकंड पार्ट।

सेक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल-सिंचन। सिंचाव। (२) जल प्रक्षेप। सेचन। छिड़काव। छींटा। मार्जन। तर करना।

(३) अभिषेक। (४) तैल-सेचन या मर्दन। तेल लगाना या मलना। (वैद्यक) (५) एक प्राचीन जाति का नाम।

सेकड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] वह चाबुक या छड़ी जिससे हलवाहे बैल हाँकते हैं। पैना।

सेकतव्य-वि० [सं०] (१) सींचने योग्य। (२) जिसे सींचना या तर करना हो।

सेकपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] सींचने का बरतन। डोल। डोलची।

सेकभाजन-संज्ञा पुं० दे० "सेकपात्र"।

सेकमिश्रक-संज्ञा पुं० [सं०] वह खाद्य पदार्थ जिसमें दही ....।

सेकिम-वि० [सं०] सींचा हुआ। तर किया हुआ। (२) ढाला हुआ (सोना)।

संज्ञा पुं० [सं०] मूली। मूलक।

सेकुवा-संज्ञा पुं० [देश०] काठ के दस्ते का लंबा करछा या डौवा जिससे हलवाई दूध औटाते हैं।

सेकुरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] ध्यान। (सुनार)

सेक्ता-वि० [सं० सेक्तृ] [स्त्री० सेक्त्री] (१) सींचनेवाला। (२) बरदानेवाला। जो गाय, घोड़ी आदि को बरदाता है।

संज्ञा पुं० पति। शौहर।

सेक्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] सींचने का बरतन। जल उलीचने का बरतन। डोल। डोलची।

सेक्रेटरी-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह उच्च कर्मचारी या अफसर जिसके अधीन सरकार या शासन का कोई विभाग हो। मंत्री। सचिव। जैसे,—फारेन सेक्रेटरी। स्टेट सेक्रेटरी। (२) वह पदाधिकारी जिस पर किसी संस्था के कार्य संपादन का भार हो। जैसे,—कांग्रेस सेक्रेटरी। (३) वह व्यक्ति जो दूसरे की ओर से उसके आदेशानुसार पत्र व्यवहार आदि करे। मुंशी। जैसे,—महाराज के सेक्रेटरी।

सेक्रेटेरियट-संज्ञा पुं० [अं०] किसी सरकार के सेक्रेटरियों का कार्यालय या दफ्तर। शासक या गवर्नर का दफ्तर।

सेक्शन-संज्ञा पुं० [अं०] विभाग। जैसे,—इस दरजे में दो सेक्शन हैं।

सेख‡-संज्ञा पुं० दे० "शेष" (८)। उ०—महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेख।—तुलसी।

संज्ञा पुं० दे० "शेष" (४)। उ०—पियत बात तन सेख किये दिन रात बिहरि बन। मिटे बासना नाहिं बिना हरि पद रज के तन।—सुधाकर।

संज्ञा पुं० दे० "शेख"। उ०—इनमें इते बलवान हैं। उत सेख मुगल पठान हैं।—सूदन।

सेखर‡-संज्ञा पुं० दे० "शेखर"। उ०—मोर मुकुट की चंद्रिकन यों राजत नँदनंद। मनु ससि-सेखर को अकस किये सेखर सतचंद।—बिहारी।

सेखावत-संज्ञा पुं० [फा० शेख] राजपूतों की एक जाति या शाखा। शेखावत।

विशेष—इनका स्थान राजपूताने का शेखावाटी नाम का कसबा है।

सेखी‡-संज्ञा स्त्री० दे० "शेखी"।

सेगव-संज्ञा पुं० [सं०] केकड़े का बच्चा।

सेगा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) विभाग। महकमा। (२) विषय। पढ़ाई या विद्या का कोई क्षेत्र। जैसे,—वह इम्तहान में दो सेगों में फेल हो गया।

सेगुन‡-संज्ञा पुं० दे० "सागौन"।

सेगोन, सेगौन-संज्ञा पुं० [देश०] मटमैले रंग की लाल मिट्टी जो नालों के पास पाई जाती है।

सेचक-वि० [सं०] सींचनेवाला। छिड़कनेवाला। तर करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

सेचन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सेचनीय, सेचित, सेच्य] (१) जल सिंचन। सिंचाई। (२) मार्जन। छिड़काव। छींटे देना। (३) अभिषेक। (४) ढलाई (धातु की)। (५) (नाव से) जल उलीचने का बरतन। लोहँदी।

सेचनक-संज्ञा पुं० [सं०] अभिषेक।

सेचनघट-संज्ञा पुं० [सं०] वह बरतन जिससे जल सींचा जाता है।

सेचनीय-वि० [सं०] सींचने योग्य। छिड़कने योग्य।

सेचित-वि० [सं०] (१) जो सींचा गया हो। तर किया हुआ। (२) जिस पर छींटे दिए गए हों।

सेच्य-वि० [सं०] (१) सींचने योग्य। जल छिड़कने योग्य। (२) जिसे सींचना हो। जिसे तर करना हो।

सेछागुन-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पक्षी।

सेज-संज्ञा स्त्री० [सं० शय्या, प्रा० सज्जा] शय्या। पलंग और बिछौना। उ०—(क) सेज रुचिर रुचि राम उठाये। प्रेम समेत पलँग पौढ़ाये।—तुलसी। (ख) चाँदनी महल फैल्यो चाँदनी फरस सेज, चाँदनी बिछाय छबि चाँदनी रितै रही।—प्रतापसाहि।

सेजपाल-संज्ञा पुं० [सं० शय्यापाल, हिं० सेज+पाल] राजा की शय्या या सेज पर पहरा देनेवाला। शयन-गृह पर पहरा देनेवाला। शयनगार-रक्षक। शय्यापाल। उ०—राजा उस समय शय्या पर पौढ़े थे और सेजपाल लोग अस्त्र बाँधे पहरा दे रहे थे।—गदाधरसिंह।

सेजरिया‡-संज्ञा स्त्री० दे० "सेज"। उ०—रस रँग पगी है देखो लाल की सेजरिया।—कबीर।

सेजा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो आसाम और बंगाल में होता है और जिस पर टसर के कीड़े पाले जाते हैं।

सेजिया‡-संज्ञा स्त्री० दे० "सेज"।

सेज्या‡-संज्ञा स्त्री० दे० "शय्या"। उ०—सूर स्याम सुख जानि मुदित मन सेज्या पर सँग लै पौढ़ावति।—सूर।

सेझदादि-संज्ञा पुं० दे० "सह्याद्रि"। उ०—सेझदादि तें गिरि बहु रहई। गंगादिक सरिता बहु बहई।—रघुनाथदास।

सेझना-क्रि० अ० [सं० सेधन = दूर करना, हटाना] दूर होना। हटना। उ०—सो दारू किस काम की जातें दरद न जाइ। दादू काटइ रोग को सो दारू ले लाइ। अनुभः काटइ रोग को अनहद उपजइ आइ। सेझे काजर निर्मला पावइ रुचि लव लाइ।—दादू।

सेट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तोल या मान।

संज्ञा पुं० [देश०] काँख, नाक, उपस्थ आदि के बाल या रोएँ।

संज्ञा पुं० [अं०] एक ही प्रकार या मेल की कई चीज़ों का समूह। जैसे—किताबों का सेट, खाने के बरतनों का सेट।

सेटना‡-क्रि० अ० [सं० श्रा = विश्वास करना] (१) समझना। मानना। उ०—जो कलिकाल भुजँग भय मेटन। शरणागत भवरुज लघु सेटन।—रघुराज। (२) कुछ समझना। महत्त्व स्वीकार करना। जैसे,—अपने आगे वह किसी को नहीं सेटता।

सेटु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेत की ककड़ी। फूट। (२) कचरी। पेहँटा।

सेठ-संज्ञा पुं० [सं० श्रेष्ठी] [स्त्री० सेठानी] (१) बड़ा साहूकार। महाजन। कोठीवाल। (२) बड़ा या थोक व्यापारी। (३) धनी मनुष्य। मालदार आदमी। लखपती। (४) धनी और प्रतिष्ठित वणिकों की उपाधि। (५) खत्रियों की एक जाति। (६) दलाल। (डिं०) †(७) सुनार।

सेठन-संज्ञा पुं० [देश०] झाड़ू। बुहारी।

सेठा-संज्ञा पुं० दे० "सेंठा"।

सेड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] भादों में होनेवाला एक प्रकार का धान।

सेड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० चेटि, प्रा० चेडि, हिं० चेरी] सहेली। सखी। (डिं०)

सेढ़-संज्ञा पुं० [अं० सेल] बादबान। पाल। (लश०)

मुहा०—सेढ़ करना = पाल उड़ाना। जहाज खोलना। **सेढ़ खोलना** = पाल उतारना। (लश०) **सेढ़ बजाना** = पाल में से हवा निकालना जिसमें वह लपेटा जा सके। (लश०) **सेढ़ सपटाना** = रस्से को खींचकर पाल तानना।

सेढ़खाना-संज्ञा पुं० [अं० सेल + फा० खाना] (१) जहाज में वह कमरा या कोठरी जिसमें पाल भरे रहते हैं। (२) वह कमरा या कोठरी जहाँ पाल काटे और बनाए जाते हैं। (लश०)

सेढ़ा†-संज्ञा पुं० दे० "सेंढ़ा"।

सेत‡-संज्ञा पुं० दे० "सेतु"। उ०—काज कियो नहिं समै पर पछतानै फिरि काह। सूखी सरिता सेत ज्यौं जोबन बितै विवाह।—दीनदयाल।

‡†वि० दे० "श्वेत"। उ०—पैन्हे सेत सारी बैठी फानुस के पास प्यारी, कहत बिहारी प्राण प्यारी धौं कितै गई।—दूलह।

सेतकुली-संज्ञा पुं० [सं० श्वेतकुलीय] सर्पों के अष्टकुल में से एक। सफेद जाति के नाग। उ०—मोको तुम अब यज्ञ करावहु। तक्षक कुटुँब समेत जरावहु। विप्रन सेतकुली जब जारी। तब राजा तिनसों उच्चारी।—सूर।

सेतदीप‡-संज्ञा पुं० दे० "श्वेतद्वीप"।

सेतदुति‡-संज्ञा पुं० [सं० श्वेतद्युति] चंद्रमा।

सेतना†-क्रि० स० दे० "सेंतना"।

सेतबंध‡-संज्ञा पुं० दे० "सेतुबंध"।

सेतवा-संज्ञा पुं० [सं० शुक्ति, हिं० सितुही] पतले लोहे की करछी जिससे अफीम काछते हैं।

सेतवारी†-संज्ञा स्त्री० [सं० सिकता = बालू + वारी (प्रत्य०)] हरापन लिए हुए बलुई चिकनी मिट्टी।

सेतवाल-संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

सेतवाह‡-संज्ञा पुं० [सं० श्वेतवाहन] (१) अर्जुन। (२) चंद्रमा। (डिं०)

सेतिका-संज्ञा स्त्री० [सं० साकेत ?] अयोध्या।

सेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंधन। बँधाव। (२) मिट्टी का ऊँचा पटाव जो कुछ दूर तक चला गया हो। बाँध। धुस्स। (३) मेंड़। डाँड़। (४) किसी नदी, जलाशय, गड्ढे, खाईं आदि के आरपार जाने का रास्ता जो लकड़ी, बाँस, लोहे आदि बिछाकर या पक्की जोड़ाई करके बना हो। पुल। उ०—आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्ह जनक बँधाए सेतू।—तुलसी।

क्रि० प्र०—बनाना।—बाँधना।

(५) सीमा। हदबंदी। (६) मर्यादा। नियम या व्यवस्था। प्रतिबंध। उ०—असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुतिसेतु। जग बिस्तारहिं बिसद जस, रामजनम कर हेतु।—तुलसी। (७) प्रणव। ओंकार। (८) टीका या व्याख्या। (९) वरुण वृक्ष। बरना। (१०) एक प्राचीन स्थान। (११) द्रुह्यु के एक पुत्र और बभ्रु के भाई का नाम।

‡वि० दे० "श्वेत"।

सेतुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुल। (२) बाँध। धुस्स। (३) वरुण वृक्ष। बरना।

सेतुकर-संज्ञा पुं० [सं०] सेतु-निर्माता। पुल बनानेवाला।

सेतुकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सेतुकर्मन्] सेतु या पुल बनाने का काम।

सेतुज-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणापथ के एक स्थान का नाम।

सेतुपति-संज्ञा पुं० [सं०] रामनद के (जो मद्रास प्रदेश के मदुरा जिले के अंतर्गत है) राजाओं की वंश परंपरागत उपाधि।

सेतुप्रद-संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण का एक नाम।

सेतुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुल की बँधाई। (२) वह पुल जो लंका पर चढ़ाई के समय रामचंद्र जी ने समुद्र पर बँधवाया था।

विशेष—नल नील ने बंदरों की सहायता से शिलाएँ पाटकर यह पुल बनाया था। वाल्मीकि ने यहाँ शिव की स्थापना का कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल लंका से लौटते समय रामचंद्र ने सीता से कहा है—"यहाँ पर सेतु बाँधने के पहले शिव ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया था।" (युद्धकांड १२५वाँ अध्याय।) पर अध्यात्म आदि पिछली रामायणों में शिव की स्थापना का वर्णन है। इस स्थान पर रामेश्वर महादेव का दर्शन करने के लिये लाखों यात्री जाया करते हैं। 'सेतुबंध रामेश्वर' हिंदुओं के चार मुख्य धामों में से एक है। आजकल कन्याकुमारी और सिंहल के बीच के छिछले समुद्र में स्थान स्थान पर जो चट्टानें निकली हैं, वे ही उस प्राचीन सेतु के चिह्न बतलाई जाती हैं।

सेतुबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेतु निर्माण। पुल बाँधना। (२) पुल। (३) बाँध। मेड़।

सेतुबंध रामेश्वर-संज्ञा पुं० दे० "सेतुबंध"(२) और "रामेश्वर"।

सेतुभेद-संज्ञा पुं० [सं०] सेतु भंग। पुल का टूटना। बाँध का टूटना।

सेतुभेदी-संज्ञा पुं० [सं० सेतुभेदिन्] दंती। उदुंबरपर्णी। तिरीफल।

सेतुवा†-संज्ञा पुं० दे० "सूस"। उ०—सोइ भुजाइ सेतुवा बनवायो। तामें चारिउ भाग लगायो।—रघुनाथदास।

सेतुवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वरुण वृक्ष। बरना।

सेतुशैल-संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जो दो देशों के बीच में हो। सर-हद का पहाड़।

सेतुषाम-संज्ञा पुं० [सं० सेतुषामन्] एक साम का नाम।

सेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बेड़ी। जंजीर। शृंखला।

सेथिया-संज्ञा पुं० [तेलगू० चेट्टि, चेट्टिया, हिं० सेठिया] नेत्रों की चिकित्सा करनेवाला। आँखों का इलाज करनेवाला।

सेद*-संज्ञा पुं० दे० "स्वेद"। उ०—कान में कामिनी के यह आनिकै बोल परयो जनु वज्र सो नायो। सूखि गयो अँग पीरो भयो रँग, सेद कपोलन में सँग धायो।—रघुनाथ वंदीजन।

सेदज*-वि० दे० "स्वेदज"। उ०—बिन सनेह दुख होय न कैसे। शुक मूषक सुत सेदज जैसे।—रघुनाथदास।

सेदरा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सेह = तीन + दर = दरवाजा] वह मकान जो तीन तरफ से खुला हो। तिदरी।

सेदुक-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम। (महाभारत)

सेद्धव्य-वि० [सं०] (१) निवारण योग्य। हटाने या दूर करने योग्य। (२) जिसे हटाना या दूर करना हो।

सेध-संज्ञा पुं० [सं०] निषेध। निवारण। मनाही।

सेधक-वि० [सं०] प्रतिरोधक। हटाने या रोकनेवाला।

सेधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साही नाम का जानवर जिसकी पीठ पर काँटे होते हैं। खारपुश्त।

सेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर। (२) जीवन। (३) बंगाल की वैद्य जाति की उपाधि। (४) एक भक्त नाई।

विशेष—इसकी कथा भक्तमाल में इस प्रकार है। यह रीवाँ के महाराज राजाराम की सेवा में था और बड़ा भारी भक्त था। एक दिन साधु-सेवा में लगे रहने के कारण यह समय पर राजसेवा के लिये न पहुँच सका। उस समय भगवान् ने इसका रूप धर कर राजभवन में जाकर इसका काम किया। यह वृत्तांत ज्ञात होने पर यह विरक्त हो गया और राजा भी परम भक्त हो गए।

(५) एक राक्षस का नाम।

वि० [सं०] (१) जिसके सिर पर कोई मालिक हो। सनाथ। (२) आश्रित। अधीन। ताबे।

संज्ञा पुं० [सं० श्येन] बाज पक्षी। उ०—ज्यों गच काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की। टूटत अति आतुर अहारबस, छति बिसारि आनन की।—तुलसी।

*संज्ञा स्त्री० दे० "सेना"। उ०—हय गय सेन चले जग पूरी।—जायसी।

†संज्ञा स्त्री० दे० "सेंध"।

सेनक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंबर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश) (२) एक वैयाकरण का नाम।

सेनजित्-वि० [सं०] सेना को जीतनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) एक राजा का नाम। (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (३) विश्वजित् के एक पुत्र का नाम। (४) बृहत्कर्मा के एक पुत्र का नाम। (५) कृशाश्व के एक पुत्र का नाम। (६) विशद के एक पुत्र का नाम।

संज्ञा स्त्री० एक अप्सरा का नाम।

सेनप-संज्ञा पुं० [सं० सेना + प = पति] सेनापति। उ०—सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे।—तुलसी।

सेनपति*-संज्ञा पुं० दे० "सेनापति"। उ०—कपि पुनि उपवन बारिहु तोरी। पंच सेनपति सेन मरोरी।—पद्माकर।

सेनवंश-संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल का एक हिंदू राजवंश जिसने ११वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक राज्य किया था।

सेनस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] शंबर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश)

सेनांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना का कोई एक अंग। जैसे,—पैदल, हाथी, घोड़े, रथ। (२) फौज का हिस्सा। सिपाहियों का दल या टुकड़ी।

सेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युद्ध की शिक्षा पाए हुए और अस्त्रशस्त्र से सजे मनुष्यों का बड़ा समूह। सिपाहियों का गरोह। फौज। पलटन।

विशेष—भारतीय युद्धकला में सेना के चार अंग माने जाते थे—पदाति, अश्व, गज और रथ। इन अंगों से पूर्ण समूह

सेना कहलाता था। सैनिकों या सिपाहियों को समय पर वेतन देने की व्यवस्था आजकल के समान ही थी। यह वेतन कुछ तो भत्ते या अनाज के रूप में दिया जाता था और कुछ नक़द। महाभारत (सभापर्व) में नारद ने युधिष्ठिर को उपदेश दिया है कि "कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्। सम्प्राप्तकाले दातव्यं ददासि न विकर्षसि" ॥ चतुरंग दल के अतिरिक्त सेना के और चार विभाग होते थे—विष्टि, नौका, चर और देशिक। सब प्रकार के सामान लदाने और पहुँचाने का प्रबंध 'विष्टि' कहलाता था। 'नौका' का भी लड़ाई में काम पड़ता था। चरों के द्वारा प्रतिपक्ष के समाचार मिलते थे। 'देशिक' स्थानीय सहायक हुआ करते थे जो अपने स्थान पर पहुँचने पर सहायता पहुँचाया करते थे। सेना के छोटे छोटे दलों को 'गुल्म' कहते थे।

पर्य्या०—चतुरंग। बल। ध्वजिनी। वाहिनी। पृतना। अनीकिनी। चमू। सैन्य। वरूथिनी। अनीक। चक्र। वाहना। गुल्मिनी। वरचक्षु।

(२) भाला। बरछी। शक्ति। साँग। (३) इंद्र का वज्र। (४) इंद्राणी। (५) वर्त्तमान अवसर्पिणी के तीसरे अर्हत शंभव की माता का नाम। (जैन) (६) एक उपाधि जो पहले अधिकतर वेश्याओं के नामों में लगी रहती थी। जैसे, वसंत सेना।

क्रि० स० [सं० सेवन] (१) सेवा करना। खिदमत करना। किसी को आराम देना या उसका काम करना। नौकरी बजाना। टहल करना। उ०—सेइय ऐसे स्वामि को जो राखै निज मान।—कबीर।

मुहा०—चरण सेना = तुच्छ से तुच्छ चाकरी बजाना।

(२) आराधना करना। पूजना। उपासना करना। उ०—(क) ताते सेइय श्री जदुराई। (ख) सेवत सुलभ उदार कल्पतरु पारबतीपति परम सुजान।—तुलसी। (३) नियमपूर्वक व्यवहार करना। काम में लाना। इस्तेमाल करना। नियम के साथ खाना पीना या लगाना। उ०—(क) आसव सेइ सिखाए सखीन के सुंदरि मंदिर में सुख सोवै।—देव। (ख) निपट लजीली नवल तिय बहँकि बारुनी सेइ। त्यों त्यों अति मीठी लगै ज्यों ज्यों ढीठो देइ।—बिहारी। (४) किसी स्थान को लगातार न छोड़ना। पड़ा रहना। निरंतर वास करना। जैसे—चारपाई सेना, कोठरी सेना, तीर्थ सेना। उ०—(क) सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।—तुलसी। (ख) उत्तम थल सेवैं सुजन, नीच नीच के बंस। सेवत गीध मसान को, मानसरोवर हंस।—दीनदयाल। (५) लिए बैठे रहना। दूर न करना। जैसे,—फोड़ा सेना। (६) मादा चिड़िया का गरमी पहुँचाने के लिये अपने अंडों पर बैठना।

सेनाकक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का पार्श्व। फौज का बाजू।

सेनाकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सेनाकर्मन्] (१) सेना का संचालन या व्यवस्था। (२) सेना का काम।

सेनागोप-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का संरक्षक। सेना का एक विशेष अधिकारी।

सेनाग्र-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का अग्र भाग। फ़ौज का अगला हिस्सा।

सेनाचर-संज्ञा पुं० [सं०] सेना के साथ जानेवाला सैनिक। योद्धा। सिपाही।

सेनाजीव-संज्ञा पुं० दे० "सेनाजीवी"।

सेनाजीवी-संज्ञा पुं० [सं० सेनाजीविन्] वह जो सेना में रहकर अपनी जीविका चलावे। सैनिक। सिपाही। योद्धा।

सेनादार-संज्ञा पुं० [सं० सेना + फा० दार] सेनानायक। फौजदार। उ०—मल्हारराव हुल्कर भाग्य के बल से पेशवा बहादुर की सेना का सेनादार हो गया।—शिवप्रसाद।

सेनाधिकारी-संज्ञा पुं० [सं०] सेनानायक। फौज का अफसर।

सेनाधिनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति। फौज का अफसर। सिपहसालार।

सेनाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] फौज का अफसर। सेनापति।

सेनाधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] फौज का असफर। सेनापति।

सेनाधीश-संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति।

सेनाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] फौज का अफसर। सेनापति।

सेनानायक-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का अफसर। फौजदार।

सेनानी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेनापति। फौज का अफसर। (२) कार्त्तिकेय का एक नाम। (३) एक रुद्र का नाम। (४) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (५) शंबर के एक पुत्र का नाम। (६) एक विशेष प्रकार का पाँसा।

सेनापति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना का नायक। फौज का अफसर। (२) कार्त्तिकेय का एक नाम। (३) शिव का नाम। (४) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का एक नाम। (५) हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम।

सेनापत्य-संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति का कार्य या पद। सेनापति का अधिकार।

सेनापाल-संज्ञा पुं० [सं० सेना + पाल] सेनापति। उ०—हरुये बोल्यो भूप तब सेनापाल बुलाय। धाइ सुशर्मा वीर जे सुरभी लेहु छुड़ाय।—सबलसिंह।

सेनापृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का पिछला भाग।

सेनाप्रणेता-संज्ञा पुं० [सं० सेनाप्रणेतृ] सेनानायक। फौज का मुखिया।

सेनाबेध-संज्ञा पुं० [सं० सेना + बेध] शूरवीर (डिं०)

सेनाभिगोप्ता-संज्ञा पुं० [सं० सेनाभिगोप्तृ] सेना-रक्षक। सेनापति।

सेनामुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना का अग्रभाग। (२) सेना का एक खंड जिसमें ३ या ९ हाथी, ३ या ९ रथ, ९ या

२७ घोड़े और १५ या ४५ पैदल होते थे। (३) नगर-द्वार के सामने का रास्ता।

सेनायोग—संज्ञा पुं० [सं०] सैन्य सज्जा। फौज की तैयारी।

सेनावास—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ सेना रहती हो। छावनी।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार जहाँ राख, कोयला, हड्डी, तुष, केश, गड्ढे न हों; जो स्थान ऊसर न हो; जहाँ केकड़े न हों; जहाँ हिंसक जंतुओं और चूहों के बिल और वल्मीक न हों तथा जिस स्थान की भूमि घनी, चिकनी, सुगंधित, मधुर और समतल हो, ऐसे स्थान पर राजा को सेनावास या छावनी बनानी चाहिए।

(२) डेरा। खेमा। शिविर। कैंप।

सेनावाह—संज्ञा पुं० [सं०] सेनानायक।

सेनाव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध के समय भिन्न भिन्न स्थानों पर की हुई सेना के भिन्न भिन्न अंगों की स्थापना या नियुक्ति। सैन्य विन्यास।

वि० दे० "व्यूह"।

सेनासमुदय—संज्ञा पुं० [सं०] सम्मिलित सेना। एकत्र हुई सेना।

सेनास्थ—संज्ञा पुं० [सं०] सिपाही। फौजी आदमी।

सेनास्थान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छावनी। (२) शिविर। खेमा। डेरा।

सेनाहन—संज्ञा पुं० [सं०] शंबर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश)

सेनि—संज्ञा स्त्री० दे० "श्रेणी"। उ०—जनु कलिंदनंदिनि मनि नील सिखर पर सिध सनि लसति हंस सेनि संकुल अधिकौहैं।—तुलसी।

सेनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० श्येनिका] (१) बाज पक्षी की मादा। मादा बाज पक्षी। उ०—श्यामदेह दुकूल दुति छबि लसत तुलसी माल। तडित घन संयोग मानो सेनिका शुक जाल।—सूर। (२) एक छंद। दे० "श्येनिका"। उ०—आठ और आठ दीठि दै रह्यो। लोकनाथ आश्चर्य वै रह्यो।—गुमान।

सेनी—संज्ञा स्त्री० [फा० सीनी] (१) तश्तरी। रकाबी। (२) नकाशीदार छोटी छिछली थाली।

संज्ञा स्त्री० [सं० श्येनी] (१) बाज की मादा। मादा बाज पक्षी। (२) दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप की पत्नी ताम्रा से उत्पन्न पाँच कन्याओं में से एक।

संज्ञा स्त्री० [सं० श्रेणी] (१) पंक्ति। कतार। उ०—जोवन फूल्यो बसंत लसै तेहि अंगलता अलि-सेनी।—सेनी। (२) सीढ़ी। जीना।

संज्ञा पुं० विराट् के यहाँ अज्ञातवास करते समय का सहदेव का रखा हुआ नाम। उ०—नाम धनंजय को कह्यो बृहन्नड़ा ऋपि व्यास। सेनी सहदेवहि कह्यो सकल गुनन की रास।—सबल।

सेनेट—संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) प्रधान व्यवस्थापिका सभा। कानून बनानेवाली सभा। (२) विश्वविद्यालय की प्रबंधकारिणी सभा।

सेफ—संज्ञा पुं० दे० "शेफ"।

संज्ञा पुं० [अं०] लोहे का बड़ा मजबूत बक्स जिसमें रोकड़ और बहुमूल्य पदार्थ रखे जाते हैं।

सेफालिका—संज्ञा स्त्री० दे० "शेफालिका"।

सेब—संज्ञा पुं० [फा०] नासपाती की जाति का मझोले आकार का एक पेड़ जिसका फल मेवों में गिना जाता है।

विशेष—यह पेड़ पश्चिम का है, पर बहुत दिनों से भारतवर्ष में भी हिमालय-प्रदेश (काश्मीर, कुमाऊँ, गढ़वाल, काँगड़ा आदि) और पंजाब आदि में लगाया जाता है; और अब सिंध, मध्यभारत और दक्षिण तक फैल गया है। काश्मीर में कहीं कहीं यह जंगली भी देखा जाता है। इसके पत्ते कुछ कुछ गोल और पीछे की ओर कुछ सफेदी लिए और रोएँदार होते हैं। फूल सफेद रंग के होते हैं, जिन पर लाल लाल छींटे से होते हैं। फल गोल और पकने पर हलके हरे रंग के होते हैं; पर किसी किसी का कुछ भाग बहुत सुंदर लाल रंग का होता है जिससे देखने में बड़ा सुंदर लगता है। गूदा इसका बहुत मुलायम और मीठा होता है। मध्यम श्रेणी के फलों में कुछ खटास भी होती है। सेब फागुन से वैशाख के अंत तक फूलता है और जेठ से फल लगने लगते हैं। भादों में फल अच्छी तरह पक जाते हैं। ये फल बड़े पाचक माने जाते हैं। भावप्रकाश के अनुसार सेब वातपित्तनाशक, पुष्टिकारक, कफकारक, भारी, पाक में मधुर, शीतल तथा शुक्रकारक है। भावप्रकाश के अतिरिक्त किसी प्राचीन ग्रंथ में सेब का उल्लेख नहीं मिलता। भावप्रकाश ने सेब, सिंचितिकाफल आदि इसके कुछ नाम दिए हैं।

सैभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] शीतलता। शैत्य। ठंढक।

वि० शीतल। ठंढा।

सेमंतिका—संज्ञा स्त्री० दे० "सेमंती"।

सेमंती—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद गुलाब का फूल। सेवती।

सेम—संज्ञा स्त्री० [सं० शिंबा] एक प्रकार की फली जिसकी तरकारी खाई जाती है।

विशेष—इसकी लता लिपटती हुई बढ़ती है। पत्ते एक एक सींके पर तीन तीन रहते हैं और वे पान के आकार के होते हैं। सेम सफेद, हरी, मजंटा आदि कई रंगों की होती है। फलियाँ लंबी, चिपटी और कुछ टेढ़ी होती हैं। यह हिंदुस्तान में प्रायः सर्वत्र बोई जाती है। वैद्यक में सेम मधुर, शीतल, भारी, कसैली, बलकारी, वातकारक, दाहजनक, दीपन तथा पित्त और कफ का नाश करनेवाली मानी गई है।

यौ०—सेम का गोंद = एक प्रकार के कचनार का गोंद जो देहरादून की ओर से आता है और इंद्रियजुलाब या रज खोलने के लिये दिया जाता है। वि० दे० "कचनार"।

सेमई-संज्ञा पुं० [हिं० सेम] हलका सब्ज रंग।

वि० हलके हरे रंग का।

⊛†संज्ञा स्त्री० दे० "सेंवई"। उ०—मोतीचूर मूर के मोदक ओदक की उजियारी जी। सेमई सेव सेंजना सूरन सोवा सरस सोहारी जी।—विश्राम।

सेमर-संज्ञा पुं० [देश०] दलदली जमीन।

†संज्ञा पुं० दे० "सेमल"।

सेमल-संज्ञा पुं० [सं० शाल्मली] पत्ते झाड़नेवाला एक बहुत बड़ा पेड़ जिसमें बड़े आकार और मोटे दलों के लाल फूल लगते हैं, और जिसके फलों या डोडों में केवल रूई होती है, गूदा नहीं होता।

विशेष—इसके धड़ और डालों में दूर दूर पर काँटे होते हैं। पत्ते लंबे और नुकीले होते हैं; तथा एक एक डाँड़ी में पंजे की तरह पाँच पाँच छः छः लगे होते हैं। फूल मोटे दल के बड़े बड़े और गहरे लाल रंग के होते हैं। फूलों में पाँच दल होते हैं और उनका घेरा बहुत बड़ा होता है। फागुन में जब इस पेड़ की पत्तियाँ बिल्कुल झड़ जाती हैं और यह ठूंठा हो जाता है, तब यह इन्हीं लाल फूलों से गुछा हुआ दिखाई पड़ता है। दलों के झड़ जाने पर डोढा या फल रह जाता है जिसमें बहुत मुलायम और चमकीली रूई या घूए के भीतर बिनौले के से बीज बंद रहते हैं। सेमल के डोडे या फलों की निस्सारता भारतीय कविपरंपरा में बहुत काल से प्रसिद्ध है और यह अनेक अन्योक्तियों का विषय रहा है। "सेमर सेइ सुवा पछताने" यह एक कहावत सी हो गई है। सेमल की रूई रेशम सी मुलायम और चमकीली होती है और गद्दों तथा तकियों में भरने के काम में आती है, क्योंकि काती नहीं जा सकती। इसकी लकड़ी पानी में खूब ठहरती है और नाव बनाने के काम में आती है। आयुर्वेद में सेमल बहुत उपकारी ओषधि मानी गई है। यह मधुर, कसैला, शीतल, हलका, स्निग्ध, पिच्छिल तथा शुक्र और कफ को बढ़ानेवाला कहा गया है। सेमल की छाल कसैली और कफनाशक; फूल शीतल, कड़वा, भारी, कसैला, वातकारक, मलरोधक, रूखा तथा कफ, पित्त और रक्तविकार को शांत करनेवाला कहा गया है। फल के गुण फूल ही के समान हैं। सेमल के नए पौधे की जड़ को "सेमल का मूसला" कहते हैं, जो बहुत पुष्टिकारक, कामोद्दीपक और नपुंसकता को दूर करनेवाला माना जाता है। सेमल का गोंद मोचरस कहलाता है। यह अतीसार को दूर करनेवाला और बलकारक कहा गया है। इसके बीज स्निग्धताकारक और मदकारी होते हैं; और काँटों में फोड़े फुंसी, घाव, छीप आदि दूर करने का गुण होता है।

फूलों के रंग के भेद से सेमल तीन प्रकार का माना गया है—एक तो साधारण लाल फूलोंवाला, दूसरा सफेद फूलों का और तीसरा पीले फूलों का। इनमें से पीले फूलों का सेमल कहीं देखने में नहीं आता। सेमल भारतवर्ष के गरम जंगलों में तथा बरमा, सिंहल और मलाया में अधिकता से होता है।

पर्य्या०—शाल्मलि। शाल्मली। पिच्छला। मोचा। स्थिरायु। तूलिफला। दुरारोहा। शाल्मलिनी। शाल्मल। अपूरणी। पूरणी। निगंधपुष्पी। तुलनी। कुक्कुटी। रक्तपुष्पा। कंटकारी। मोचनी। शीमूल। कदला। चिरजीवी। पिच्छल। रक्तपुष्पक। तूलवृक्ष। मोचाख्य। कंटकद्रुम। कुक्कुटी। रक्तोत्पल। वन्यपुष्प। बहुवीर्य्य। यमद्रुम। दीर्घद्रुम। स्थूलफल। दीर्घायु। कंटकाष्ठ। निस्सारा। दीर्घपादपा।

सेमलमूसला-संज्ञा पुं० [सं० शाल्मलि मूल] सेमल की जड़ जो वैद्यक में वीर्यवर्द्धक, कामोद्दीपक और नपुंसकता नष्ट करनेवाला मानी गई है।

सेमलसफेद-संज्ञा पुं० [सं० श्वेत शाल्मलि] सेमल का एक भेद जिसके फूल सफेद होते हैं।

विशेष—यह सेमल के समान ही विशाल होता है। इसका उत्पत्ति स्थान मलाया है। हिंदुस्थान के गरम जंगलों और सिंहल में पाया जाता है। नए वृक्ष की छाल हरे रंग की और पुराने की भूरे रंग की होती है। पत्ते सेमल के समान ही एक साथ पाँच पाँच सात सात रहते हैं। फूल सेमल के फूल से छोटे और मटमैले सफेद रंग के होते हैं। इसके फल कुछ बड़े, गोल, धुँधले और पाँच फाँकवाले होते हैं। फलों के अंदर बहुत कोमल रूई होती है और रूई के बीच में चिपटे बीज होते हैं। वैद्यक में सेमल के समान ही इसके भी गुण बताए गए हैं।

सेमा-संज्ञा पुं० [हिं० सेम] बड़ी सेम।

सेमिटिक-संज्ञा पुं० [अं० शाम (देश का नाम तथा इसराईल की संतति में से एक)] (१) मनुष्यों के आधुनिक वर्ग-विभाग में से वह वर्ग जिसके अंतर्गत यहूदी, अरब, सीरियन, मिस्री आदि लाल समुद्र के आस पास बसनेवाली नई पुरानी जातियाँ हैं। मूसा, ईसा और मुहम्मद इसी वर्ग के थे जिन्होंने पैगंबरी मत चलाए। यह वर्ग आर्य्य वर्ग से भिन्न है जिसमें हिंदू, पारसी, युरोपियन आदि हैं। (२) उक्त वर्ग के लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषाओं का वर्ग जिसके अंतर्गत इबरानी और अरबी तथा असीरियन, फिनीशियन आदि प्राचीन भाषाएँ हैं। यह वर्ग आर्य्यवर्ग से सर्वथा भिन्न है जिसके अंतर्गत संस्कृत, पारसी, लैटिन, ग्रीक आदि प्राचीन भाषाएँ

और हिंदी, मराठी, बँगाली, पंजाबी, पश्तो, गुजराती आदि उत्तर भारत की भाषाएँ तथा अँगरेजी, फरासीसी, जर्मन आदि योरप की आधुनिक भाषाएँ हैं।

सेमीकोलन-संज्ञा पुं० [अं०] एक विराम जिसका चिह्न इस प्रकार है—;

सेयन-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

सेर-संज्ञा पुं० [सं० सेटक] (१) एक मान या तौल जो सोलह छटाँक या अस्सी तोले की होती है। मन का चालीसवाँ भाग। (२) १०६ ढोली पान। (तंबोली)

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन महीने में तैयार हो जाता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

संज्ञा पुं० दे० "शेर"। उ०—अरि अजा जूथ पै सेर हौं। —गोपाल।

वि० [फ़ा०] तृप्त। उ०—रे मन साहसी साहस राखु सुसाहस सों सब जेर फिरेंगे। ज्यों पदमाकर या सुख में दुख त्यों दुख में सुख सेर फिरेंगे।—पद्माकर।

सेरन-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास जो राजपूताने, बुँदेलखंड और मध्य भारत के पहाड़ी हिस्सों में होती है।

सेरवा-संज्ञा पुं० [सं० शाट ?] वह कपड़ा जिससे हवा करके अन्न बरसाते समय भूसा उड़ाया जाता है। झली। परती।

संज्ञा पुं० [हिं० सिर] चारपाई की वे पाटियाँ जो सिरहाने की ओर रहती हैं।

संज्ञा पुं० [हिं० सेराना = ठंढा करना, शांत करना] दीवाली के प्रातःकाल 'दरिद्दर' (दरिद्रता) भगाने की रस्म जो सूप बजाकर की जाती है।

सेरसाहि-संज्ञा पुं० [फ़ा० शेरशाह] दिल्ली का बादशाह शेरशाह। उ०—सेरसाहि देहली सुलतानू।—जायसी।

सेरही-संज्ञा स्त्री० [हिं० सेर] एक प्रकार का कर या लगान जो किसान को फसल की उपज के अपने हिस्से पर देना पड़ता था।

सेरा-संज्ञा पुं० [हिं० सिर] चारपाई की वे पाटियाँ जो सिरहाने की ओर रहती हैं।

संज्ञा पुं० [फ़ा० सेराब] आबपाशी की हुई ज़मीन। सींची हुई ज़मीन।

†संज्ञा पुं० दे० "सेढ़"।

सेरानाक्ष†-क्रि० अ० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़, हिं० सीयर, सीरा] (१) ठंढा होना। शीतल होना। उ०—नैन सेराने, भूखि गइ, देखे दरस तुम्हार।—जायसी। (२) तृप्त होना। तुष्ट होना। (३) जीवित न रहना। जीवन समाप्त होना। (४) समाप्त होना। खतम होना। उ०— उब्यो अखारा नृत्य सेराना। अपने गृह सुर कियो पयाना।—सबल। (५) चुकना। तै होना। करने को न रह जाना। उ०—पंथी कहाँ कहाँ सुसताई। पंथ चलै तब पंथ सेराई।—जायसी।

क्रि० स० (१) ठंढा करना। शीतल करना। (२) मूर्त्ति आदि जल में प्रवाह करना या भूमि में गाड़ना। जैसे,—ताजिया सेराना।

सेराब-वि० [फ़ा०] (१) पानी से भरा हुआ। (२) सिंचा हुआ। तराबोर।

सेराबी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) भराव। सिंचाई। (२) तरी।

सेराल-संज्ञा पुं० [सं०] हलका पीलापन।

वि० हलका पीला। पीताभ।

सेराह-संज्ञा पुं० [सं०] दूध के समान सफेद रंग का घोड़ा। दुग्ध वर्ण का अश्व।

सेरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) तृप्ति। संतोष। (२) मन का भरना। अघाने का भाव।

सेरीना-संज्ञा स्त्री० [हिं० सेर] अनाज या चारे का वह हिस्सा जो असामी जमींदार को देता है।

सेरु-वि० [सं०] बाँधनेवाला। जकड़नेवाला।

सेरुआ-संज्ञा पुं० [?] वैश्य। (सुनार)

†संज्ञा पुं० दे० "सेरवा"।

सेरुराह-संज्ञा पुं० [सं०] वह सफेद घोड़ा जिसके माथे पर दाग हो।

सेरुवा-संज्ञा पुं० [?] मुजरा सुननेवाला या वेश्यागामी। (वेश्या)

सेलु†-संज्ञा पुं० [सं० शेलु] लिसोड़े का पेड़। लमेड़ा।

सेल-संज्ञा पुं० [सं० शल, प्रा० सेल] बरछा। भाला। साँग। उ०—(क) बरसहिं बान सेल घनघोरा।—जायसी। (ख) देखि ज्वालाजाल हाहाकार दसकंध सुनि, कह्यो धरो धरो धाय वीर बलवान हैं। लिये सूल सेल पास परिघ प्रचंड दंड, भाजन सनीर धीर धरे धनुवान हैं।—तुलसी।

विशेष—यद्यपि यह शब्द कादंबरी में आया है, पर प्राकृत ही जान पड़ता है, संस्कृत नहीं।

संज्ञा स्त्री० [देश०] बद्धी। माला। उ०—साँपों की सेल पहने मुंडमाल गले में डाले......कहने लगे। - लल्लू।

संज्ञा पुं० [देश०] नाव से पानी उलीचने का काठ का बरतन।

संज्ञा पुं० [सं० सिलना = एक पौधा जिसके रेशों से रस्से बनते थे] (१) एक प्रकार का सन का रस्सा जो पहाड़ों में पुल बनाने के काम में आता है। (२) हल में लगी हुई वह नली जिसमें से होकर कूँड में का बीज जमीन पर गिरता है।

संज्ञा पुं० [अं० शेल] तोप का वह गोला जिसमें गोलियाँ आदि भरी रहती हैं। (फौजी)

यौ०—सेल का गोला।

सेलखड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलखड़ी", "खड़िया"।

सेलग-संज्ञा पुं० [सं०] लुटेरा। डाकू।

सेलना-क्रि० अ० [सं० शैल, सेल = जाना] मर जाना। चल बसना। जैसे,—वह सेल गया। (बाजारू)

सेला-संज्ञा पुं० [सं० शल्लक, शल्क = छिलका; मछली का सेहरा] (१) रेशमी चादर या दुपट्टा। (२) साफा। रेशमी शिरोबंध। उ०—कोऊ कुंद बेला कोऊ भूखन नवेला धरे कोऊ पाग सेला कोऊ सजै साज छेला सो।—गोपाल।

संज्ञा पुं० [सं० शालि] वह धान जो भूसी छाँटने के पहले कुछ उबाल लिया गया हो। भुँजिया धान।

सेलिया-संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े की एक जाति। उ०—सिरगा समँदा स्याह सेलिया सूर सुरंगा। मुसकी पँचकल्यान कुमेदा केहरि रँगा।—सूदन।

सेलिस-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सफेद हिरन।

सेली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सेल] छोटा भाला। बरछी। उ०—लहलहे जोबन लुहारिनि लुहारी मैं हि सारसी लहलहाति लोहसार सेलि सी। भृकुटी कमान खरी देव दगन बान भरी, जोबन की सान धरी धार विष मेलि सी।-देव।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सेला] (१) छोटा दुपट्टा। (२) गाँती। (३) सूत, ऊन, रेशम या बालों की बद्धी या माला जिसे योगी यती लोग में डालते या सिर में लपेटते हैं। उ०—(क) ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे, मूँड़ के कमंडल खपर किए कोटि कै।—तुलसी। (ख) सीस सेली केस, मुद्रा कनक-बीरी, बीर। बिरह भस्म चढ़ाइ बैठी, सहज कंथा चीर।—सूर। (४) स्त्रियों का एक गहना। उ०—मनि इंद्रनील सु पद्मराग कृत सेली भली।—रघुराज।

संज्ञा स्त्री० [सं० शल्क = मछली का सेहरा] एक प्रकार की मछली।

संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण भारत का एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी कड़ी और मजबूत होती है और खेती के औजार बनाने के काम में आती है।

सेलु-संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा। श्लेष्मांतक। लमेड़ा।

सेलून-संज्ञा पुं० [अं०] (१) जहाज का प्रधान कमरा। (२) बढ़िया कमरे के समान सजा हुआ रेल का बड़ा और लंबा डब्बा जिसमें राजा, महाराजा और बड़े बड़े अफसर सफर करते हैं। (३) सार्वजनिक आमोद प्रमोद का स्थान। (४) अँगरेजी ढंग के बाल बनानेवाले हज्जामों की दूकान। (५) जलपान का स्थान। (६) वह स्थान जहाँ अँगरेजी शराब बिकती है। (७) जहाज में कप्तान के खाने की जगह। (लश०)

सेलो†-संज्ञा पुं० [देश०] सायादार जमीन।

सेल्ला-संज्ञा पुं० [सं० शल] एक प्रकार का अस्त्र। भाला। सेल।

सेल्ह-संज्ञा पुं० दे० "सेल"। उ०—गोलिन तीरन की झर लाई। मची सेल्ह समसेरन घाई। त्यों लच्छे रावत प्रभु आगे। सेल्हन मार करी रिस पागे।—लाल कवि।

सेल्हा-संज्ञा पुं० [सं० शालि] एक प्रकार का अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

†संज्ञा पुं० दे० "सेला"।

सेल्ही-संज्ञा स्त्री० [हिं० सेला, सेल्हा] (१) छोटा दुपट्टा। (२) गाँती। (३) रेशम, सूत, बाल आदि की बद्धी या माला। उ०—ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे, मूँड़ के कमंडल, खपर किए कोरि कै। जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनीं तापसी सी तीर तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै।—तुलसी। वि० दे० "सेली"।

सेवँ-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी कुछ पीलापन या ललाई लिए सफेद रंग की, नरम, चिकनी, चमकीली और मजबूत होती है। इसकी आलमारी, मेज, कुरसी और आरायशी चीजें बनती हैं। बरमा में इस पर खुदाई का काम अच्छा होता है। इसकी छाल और जड़ औषध के काम आती है और फल खाया जाता है। इसकी कलम भी लगती है और बीज भी बोया जाता है। यह वृक्ष पहाड़ों पर तीन हजार फुट की ऊँचाई तक मिलता है। यह बरमा, आसाम, अवध, बरार और मध्य प्रांत में बहुत होता है। कुमार।

सेवँई-संज्ञा स्त्री० [सं० सेविका] गुँधे हुए मैदे के सूत के से लच्छे जो घी में तलकर और दूध में पकाकर खाए जाते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० श्यामक, हिं० सावाँ] एक प्रकार की लंबी घास जिसमें सावें की सी बालें लगती हैं जो चारे के काम में आती हैं।

सेवँढ़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धान जो युक्त प्रदेश में होता है।

सेवंत-संज्ञा पुं० [सं० सामंत ?] एक राग जो हनुमत के अनुसार मेघ राग का पुत्र है।

सेवँर*†-संज्ञा पुं० दे० "सेमल"। उ०—राजै कहा सत्य कहु सूआ। बिनु सत जस सेंवर कर भूआ।—जायसी।

सेव-संज्ञा पुं० [सं० सेविका] सूत या डोरी के रूप में बेसन का एक पकवान।

विशेष—गुँधे हुए बेसन को छेददार चौकी या झरने में दबाते हैं जिससे उसके तार से बनकर खौलते घी या तेल की कड़ाई में गिरते और पकते जाते हैं। यह अधिकतर नमकीन होता है। पर गुड़ में पागकर मीठे सेव भी बनाते हैं।

*संज्ञा स्त्री० दे० "सेवा"। उ०—करै जो सेव तुम्हारी सो सेइ भो विष्णु, शिव ब्रह्म मम रूप सारे।—सूर।

संज्ञा पुं० दे० "सेब"।

सेवक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सेविका, सेवकी, सेवकनी, सेवकिन, सेवकिनी] (१) सेवा करनेवाला। खिदमत करनेवाला। भृत्य। परिचारक। नौकर। चाकर। उ०—(क) मंत्री, भृत्य, सखा मों सेवक यातें कहत सुजान।—सूर। (ख) सिसुपन तें पितु, मातु, बंधु, गुरु, सेवक, सचिव, सखाउ। कहत राम बिधु बदन रिसौंहैं सपनेहु लखेउ न काउ।—तुलसी। (ग) ब्याहि कै आई है जा दिन सों तबि ता दिन सों लखी छाहँ न वाकी। हैं गुरु लोग सुखी रघुनाथ, निहाल हैं सेवकनी सुखदा की।—रघुनाथ। (घ) उन्होंने क्षीरोद नामक एक सेवकिन से कहला भेजा।—गदाधरसिंह। (च) अष्टसिद्धि नवनिद्धि देहुँ मथुरा घर घर को। रमा सेवकिनी देहुँ करि कर जोरे दिन जाम।—सूर। (छ) सेवकी सदा की बारबधू दस बीस आई एहो रघुनाथ छकीं बारुनी अमल सों।—रघुनाथ। (ज) दायज बसन मनि धेनु धन हय गय सुसेवक सेवकी।—तुलसी। (२) भक्त। आराधक। उपासक। पूजा करनेवाला। जैसे,—देवी का सेवक। उ०—मानिए कहै जो वारिधार पै दवारि औ अँगार बरसाइबो बतावै बारि दिन को। मानिए अनेक विपरीत की प्रतीति, पै न भीति आई मानिए भवानी-सेवकन को।—चरणचंद्रिका। (३) व्यवहार करनेवाला। काम में लानेवाला। इस्तेमाल करनेवाला। जैसे,—मद्य-सेवक। (४) पड़ा रहनेवाला। छोड़कर कहीं न जानेवाला। वास करनेवाला। जैसे,—तीर्थ सेवक। (५) सीनेवाला। दरजी। (६) बोरा।

सेवकाई-संज्ञा स्त्री० [सं० सेवक+आई (प्रत्य०)] सेवक का काम। सेवा। टहल। खिदमत। उ०—(क) करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई।—तुलसी। (ख) करहु सुफल आपन सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई।—तुलसी। (ग) नाना भाँति करहु सेवकाई। अस कहि अग्र चले जदुराई।—सबलसिंह।

सेवकालु-संज्ञा पुं० [सं०] दुग्धपेया नामक पौधा। निशाभंग।

सेवड़ा-संज्ञा पुं० [?] (१) जैन साधुओं का एक भेद। (२) एक ग्राम देवता।

संज्ञा पुं० [हिं० सेव] मैदे का एक प्रकार का मोटा सेव या पकवान।

सेवति✻†-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाति"। उ०—शशिहि चकोर रविहि अरविंदा। पपिहा कों सेवति करविंदा।—गोपाल।

सेवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुलाब का एक भेद जिसके फूल सफेद रंग के होते हैं। सफेद गुलाब। चैती गुलाब।

विशेष—वैद्यक में यह शीतल, तिक्त, कटु लघु, ग्राहक, पाचक, वर्णप्रसाधक, त्रिदोषनाशक तथा वीर्यवर्द्धक कही गई है।

पर्य्या०—शतपत्री। सेमंती। कर्णिका। चारुकेशरा। महाकुमारी। गंधाढ्या। लक्षपुष्पा। अतिमंजुला।

सेवधि-संज्ञा पुं० दे० "शेवधि"।

सेवन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सेवनीय, सेवित, सेव्य, सेवितव्य] (१) परिचर्या। खिदमत। (२) उपासना। आराधना। पूजन। (३) प्रयोग। उपयोग। नियमित व्यवहार। इस्तेमाल। जैसे,—सुरा-सेवन, औषध-सेवन। (४) छोड़कर न जाना। वास करना। लगातार रहना। जैसे,—तीर्थ-सेवन, गंगतट-सेवन। (५) संभोग। उपभोग। जैसे,—स्त्री-सेवन। (६) सीना। गूँथना। (७) बोरा।

संज्ञा पुं० [हिं० सावाँ] सावाँ की तरह की एक घास जो चारे के काम में आती है और जिसके महीन दाने बाजरे में मिलाकर मरुस्थल में खाए भी जाते हैं। सेवँई। सवँई।

सेवना✻†-क्रि० स० दे० "सेना"।

सेवनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूई। सूची। सिवनी। (२) सीवन। जोड़। टाँका। संधिस्थान। (३) शरीर के वे अंग जहाँ सीवन सी दिखाई देती हो। ऐसे स्थान सात हैं—पाँच मस्तक में एक जीभ में और एक लिंग में। (४) जुही। जूही।

संज्ञा स्त्री० [सं० सेवनी] दासी। उ०—निज सेविनी पहिचानि कै वहई अनुग्रह आनि है। करिहैं पवित्र चरित्र मेरी जीभ अवगुण बानि है।—गुमान।

सेवनीय-वि० [सं०] (१) सेवा योग्य। (२) पूजा के योग्य। (३) व्यवहार योग्य। (४) सीने योग्य।

सेवर-संज्ञा पुं० दे० "शबर"। उ०—हरिजू तिनको दुखित देख। कियो तुरत सेवरि को भेष।

सेवरा✻†-संज्ञा पुं० दे० "सेवड़ा"। उ०—सेवरा, खेवरा, वान पर सिध, साधक, अवधूत। आसन मारे बैठ सब जारि आतमा भूत।—जायसी।

सेवरी✻†-संज्ञा स्त्री० दे० "शबरी"। उ०—बहुरि कबंधहि निरखि प्रभु गीध कीन्ह उद्धार। सेवरी भवन प्रवेस करि पंपासरहि निहार।—रामाश्वमेध।

सेवल-संज्ञा पुं० [देश०] ब्याह की एक रस्म।

विशेष—इसमें वर की कोई सधवा आत्मीया वर के हाथ में पीतल की एक थाली देती है जिस पर एक दीया रहता है; अनंतर उसके दुपट्टे के दोनों छोर पकड़कर पहले उस थाली से वर का माथा और फिर अपना माथा छूती है।

सेवांजलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] भक्त या सेवक का दोनों हथेलियों के जुड़े हुए संपुट में स्वामी या उपास्य को कुछ अर्पण।

सेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूसरे को आराम पहुँचाने की क्रिया। खिदमत। टहल। परिचर्य्या। जैसे,—हमारी बीमारी में इसने बड़ी सेवा की।

यौ०—सेवा-शुश्रूषा। सेवा टहल।

(२) दूसरे का काम करना। नौकरी। चाकरी।

विशेष—राज्य की सेवा के अतिरिक्त और प्रकार की सेवा-वृत्ति अधम कही गई है।

(३) आराधना। उपासना। पूजा। जैसे,—ठाकुर की सेवा।

मुहा०—सेवा में = पास। समीप। सामने। जैसे,—(क) मैं कल आपकी सेवा में उपस्थित हूँगा। (ख) मैंने आपकी सेवा में एक पत्र भेजा था। (आदरार्थ, प्रायः बड़ों के लिये)

(४) आश्रय। शरण। जैसे,—आप मुझे अपनी सेवा में ले लेते तो बहुत अच्छा था। (५) रक्षा। हिफ़ाज़त। जैसे,—(क) सेवा बिना ये पौधे सूख गए। (ख) वे अपने शरीर की बड़ी सेवा करते हैं। उ०—वे अपने बालों की बड़ी सेवा करती हैं।—महावीरप्रसाद द्विवेदी। (६) संभोग। मैथुन। जैसे,—स्त्री-सेवा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सेवाकाकु-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवा काल में स्वर-परिवर्त्तन या आवाज बदलना (अर्थात् कभी जोर से बोलना, कभी मुलामियत से, कभी क्रोध से और कभी दुःख भाव से।)

सेवाजन-संज्ञा पुं० [सं०] नौकर। सेवक। दास।

सेवा टहल-संज्ञा स्त्री० [सं० सेवा + हिं० टहल] परिचर्य्या। खिदमत। सेवा-शुश्रूषा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सेवाती-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाति"। उ०—(क) रातुरंग जिमि दीपक बाती। नैन लाउ होइ सीप सेवाती।—जायसी। (ख) नयन लागु तेहि मारग पदुमावति जेहि दीप। जइस सेवातिहि सेवइ बन चातक जल सीप।—जायसी।

सेवाधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] सेवक का धर्म या कर्त्तव्य।

सेवापन-संज्ञा पुं० [सं० सेवा + हिं० पन (प्रत्य०)] दासत्व। सेवावृत्ति। नौकरी। टहल।

सेवाबंदगी-संज्ञा स्त्री० [सेवा + फ़ा० बंदगी] आराधना। पूजा। उ०—यह मसीति यह देवहरा सतगुरु दिया दिखाइ। भीतरि सेवा बंदगी बाहर काहे जाइ।—दादू।

सेवाय†-वि० [अ० सिवा] अधिक। ज्यादा।

अव्य० दे० "सिवा", "सिवाय"।

सेवार-संज्ञा स्त्री० [सं० शैवाल] (१) बालों के लच्छों की तरह पानी में फैलनेवाली एक घास। उ०—(क) संबुक, भेक, सेवार समाना। इहाँ न विषय-कथा रस नाना।—तुलसी। (ख) राम औ जादवन सुभट ताके हते रुधिर की नहर सरिता बहाई। सुभट मनो मकर अरु केस सेवार ज्यों, धनुष त्वच चर्म कूरम बनाई।—सूर।

विशेष—यह अत्यंत निम्न कोटि का उद्भिद् है, जिसमें जड़ आदि अलग नहीं होती। यह तृण नदियों और तालों में होता है और चीनी साफ करने तथा औषध के काम में आता है। वैद्यक में सेवार कसैली, कड़वी, मधुर, शीतल, हलकी, स्निग्ध, दस्तावर, नमकीन, घाव भरनेवाली तथा त्रिदोषनाशक बताई गई है।

(२) मिट्टी की तहें जो किसी नदी के आस-पास जमी हों।

† संज्ञा पुं० पान। (सुनार)

सेवारा-संज्ञा पुं० दे० "सेवड़ा"।

सेवाल संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "सेवार"। उ०—दूब वंश कुवलय नलिन अनिल व्योम तृणवाल। मरकत मणि हय सूर के नील वर्ण सेवाल।—केशव।

सेवावृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] नौकरी। दासत्व। चाकरी की जीविका।

सेविंग बैंक-संज्ञा पुं० [अं०] वह बैंक जो छोटी छोटी रकमें ब्याज पर ले। (ऐसे बैंक डाकखानों में होते हैं जहाँ गरीब और मध्य वित्त के लोग अपनी बचत के रुपए जमा करते हैं।)

सेवि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बदर फल। बेर। (२) सेब (इस अर्थ में पीछे प्रयुक्त हुआ है)।

संज्ञा पुं० 'सेवी' का वह रूप जो समास में होता है।

॥ वि० दे० "सेव्य", "सेवित"। उ०—जय जय जग-जननि देवि, सुरनर मुनि-असुर-सेवि, भुक्ति मुक्तिदायिनि दुखहरनि कालिका।—तुलसी।

सेविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेवा करनेवाली। दासी। परिचारिका। नौकरानी। (२) सेवँई नामक पकवान।

सेवित-वि० [सं०] (१) जिसकी सेवा या टहल की गई हो। वरिवस्यित। उपचरित। (२) जिसकी पूजा की गई हो। पूजित। उपासित। आराधित। उ०—जटाजूट रवि कोटि समाना। मुनिगन-सेवित ज्ञान निधाना।—गिरिधरदास। (३) जिसका प्रयोग या व्यवहार किया गया हो। व्यवहृत। (४) आश्रित। (५) उपभोग किया हुआ। उपभुक्त।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बदर फल। बेर। (२) सेब।

सेवितव्य-वि० [सं०] (१) सेवा के योग्य। उपासना के योग्य। (२) आश्रय के योग्य। आश्रयणीय। (३) सीने के योग्य।

सेविता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेवक का कर्म। सेवा। दास वृत्ति। (२) उपासना। (३) आश्रय।

संज्ञा पुं० [सं० सेवितृ] सेवा करनेवाला। सेवक।

सेवी-वि० [सं० सेविन्] (१) सेवा करनेवाला। सेवारत। (२) पूजा करनेवाला। आराधना करनेवाला। (३) संभोग करनेवाला।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द के अंत में हुआ करता है। जैसे,—साहित्यसेवी, स्वदेशसेवी, चरण-सेवी, स्त्रीसेवी।

सेव्य-वि० [सं०] [स्त्री० सेव्या] (१) सेवा के योग्य जिसकी सेवा करना उचित हो। खिदमत के लायक। (जैसे,—गुरु,

स्वामी, पिता) उ०—नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।—तुलसी। (२) जिसकी सेवा करनी हो या जिसकी सेवा की जाय। जैसे,—वे तो हमारे हर प्रकार से सेव्य हैं। (३) पूजा के योग्य। आराधना योग्य। जिसकी पूजा या उपासना कर्त्तव्य हो। जैसे,—ईश्वर। (४) व्यवहार योग्य। काम में लाने लायक। इस्तेमाल करने लायक। (५) रक्षण के योग्य। जिसकी हिफ़ाजत मुनासिब हो। (६) संभोग के योग्य।

संज्ञा पुं० (१) स्वामी। मालिक।

यौ०—सेव्य-सेवक।

(२) खस। उशीर। (३) अश्वत्थ। पीपल का पेड़। (४) हिज्जल वृक्ष। (५) लामज्जक तृण। लामज घास। (६) गौरैया पक्षी। (७) एक प्रकार का मद्य। (८) सुगंधवाला। (९) लाल चंदन। (१०) समुद्री नमक। (११) दही का थक्का। (१२) जल। पानी।

सेव्य सेवक-संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी और सेवक।

यौ०—सेव्य सेवक भाव = स्वामी और सेवक के बीच जो भाव होना चाहिए, वह भाव। उपास्य को स्वामी या मालिक के रूप में समझना। (भक्ति मार्ग में उपासना जिन जिन भावों से की जाती है, यह उनमें से एक है।)

सेव्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बंदा या बाँदा नामक पौधा जो दूसरे पेड़ों के ऊपर उगता है। बंदाक। (२) आँवला। आमलकी। (३) एक प्रकार का जंगली अनाज या धान।

सेशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) न्यायालय, पार्लमेंट, व्यवस्थापिका सभा आदि संस्थाओं का एक बार निरंतर कुछ दिनों तक होनेवाला अधिवेशन। लगातार कुछ दिन चलनेवाली बैठक। जैसे,—(क) हाई कोर्ट का सेशन शुरू हो गया। (ख) पार्लमेंट का सेशन अक्तूबर में शुरू होगा।

मुहा०—सेशन सपुर्द करना = दौरे सपुर्द करना। (आसामी या मुकदमे को) विचार या फैसले के लिये सेशन जज के पास भेजना। (डाकेजनी, खून आदि के मामले सेशन जज के पास भेजे जाते हैं।) **सेशन सपुर्द होना** = दौरे सपुर्द होना। सेशन जज के पास विचारार्थ भेजा जाना।

(२) स्कूल या कालेज की एक साथ निरंतर कुछ दिनों तक होनेवाली पढ़ाई। जैसे,—कालेज का सेशन जूलाई से शुरू होगा। (३) दौरा अदालत।

सेशन कोर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] जिले की वह बड़ी अदालत जहाँ जूरी या असेसरों की सहायता से डाकेजनी, खून आदि फौजदारी के बड़े मामलों का विचार होता है। दौरा अदालत।

सेशन जज-संज्ञा पुं० [अं०] वह जज जो खून आदि के बड़े बड़े मामलों का फैसला करता है। दौरा जज।

सेश्वर-वि० [सं०] (१) ईश्वर युक्त। (२) जिसमें ईश्वर की सत्ता मानी गई हो। जैसे,—न्याय और योग सेश्वर दर्शन हैं।

सेष*-संज्ञा पुं० दे० "शेष" (८)। उ०—तपबल संभु करहिं संहारा। तपबल शेष धरइ महि भारा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० दे० "शेख"।

सेस*-संज्ञा पुं० वि० दे० "शेष"। उ०—(क) सेस लखहिं न कहि सकै अगम कबीहि सुधीर। स्याम सबीहि बिलोकि कै बाम भई तसवीर।—शृंगार-सतसई। (ख) तबहिं सेस रहि जात पार नहिं कोऊ पावत। या सों जग मैं सेस नाम सुर नर मुनि गावत।—गोपाल।

सेसनाग*†-संज्ञा पुं० दे० "शेषनाग"।

सेसरंग*-संज्ञा पुं० [सं० शेष + रंग] सफेद रंग। (शेष का रंग श्वेत माना गया है।) उ०—गहि कर केस हमेस परहि दायक कलेस को। वेस सेस-रंग वसन तेज मोहत दिनेस को।—गोपाल।

सेसर-संज्ञा पुं० [फ़ा० सेह = तीन + सर = बाजी] (१) ताश का एक खेल जिसमें तीन तीन ताश हर एक आदमी को बाँटे जाते हैं और बिंदियों को जोड़कर हार जीत होती है। ९ आने पर 'सेसर' होता है। आठवाले को दाँव का दूना और नौवाले को तिगुना मिलता है। (२) जालसाजी। (३) जाल। उ०—मदमाती मनोज के आसव सों, अँग जासु मनो रँग केसरि को। सहजै नथ नाक तें खोलि धरी, करगो कौन धौं फंद या सेसरि को।—सुंदरी-सर्वस्व।

सेसरिया-वि० [हिं० सेसर + इया (प्रत्य०)] छल कपट कर दूसरों का माल मारनेवाला। जालिया।

सेसी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी के सामान बनते हैं। पगुर।

विशेष—इसकी लकड़ी भीतर से काली निकलती है। यह आसाम और सिलहट की पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी पहाड़ियों में बहुत होता है। लकड़ी से कई तरह की सजावट की और कीमती चीज़ें तैयार की जाती हैं। इसे आग में जलाने से बहुत अच्छी गंध निकलती है।

सेह-संज्ञा पुं० दे० "सेहा"।

वि० [फ़ा०] तीन। (हिंदी में यह शब्द फ़ारसी के कुछ यौगिक शब्दों के साथ ही मिलता है।)

सेहखाना-संज्ञा पुं० [फ़ा० सेह = तीन + खाना = घर] तिमंजिला मकान।

सेहत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सुख। चैन। राहत। (२) रोग से छुटकारा। रोगमुक्ति। बीमारी से आराम।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—होना।

सेहतखाना-संज्ञा पुं० [अ० सेहत + फ़ा० खाना] पेशाब आदि

करने और नहाने-धोने के लिये जहाज पर बनी हुई एक छोटी सी कोठरी। (लश०)

सेहथना†-क्रि० स० [सं० सह + हस्त = सहस्थ + ना (प्रत्य०)] (१) हाथ से लीपकर साफ करना। सैंतना। (२) झाड़ना। बुहारना।

सेहरा-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + हरा, हार] (१) फूल की या तार और गोटों की बनी मालाओं की पंक्ति या जाल जो दूल्हे के मौर के नीचे लटकता रहता है। (२) विवाह का मुकुट। मौर। उ०—(क) गजवर-गति आवनि पग धरनि धरत पाव, लटकत सिर सेहरो मनो शिखी शिखंड सुभाव।—सूर। (ख) मानिक सुपन्ना पदिक मोतिन जाल सोहत सेहरा।—रघुराज।

क्रि० प्र०—बँधना।—बाँधना।

मुहा०—किसी के सिर सेहरा बँधना = किसी का कृतकार्य होना। औरों से अधिक यश या कीर्ति होना। श्रेय मिलना। सेहरा बँधाई = वह नेग जो दूल्हे को सेहरा बाँधने पर दिया जाता है। सेहरे जलवे की = जो विधिपूर्वक ब्याह कर आई हो। (मुसल०)

(३) वे मांगलिक गीत जो विवाह के अवसर पर वर के यहाँ गाए जाते हैं।

सेहरी-संज्ञा स्त्री० [सं० शफरी] छोटी मछली। सहरी।

सेहवन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रोग जो गेहूँ के छोटे पौधों को होता है।

सेहहजारी-संज्ञा पुं० [फा०] एक उपाधि जो मुसलमान बादशाहों के समय में सरदारों और दरबारियों को मिलती थी। (ऐसे लोग या तो तीन हजार सवार या सैनिक रख सकते थे अथवा तीन हजार सैनिकों के नायक बनाए जाते थे।)

सेहा-संज्ञा पुं० [हिं० सेंध] कूआँ खोदनेवाला।

सेहिथान-संज्ञा पुं० [हिं० सेहथना] वह बुहारी या कूचा जिससे खलियान साफ किया जाता है।

सेही-संज्ञा स्त्री० [सं० सेधा, सेधी] लोमड़ी के आकार का एक जंतु जिसकी पीठ पर कड़े और नुकीले काँटे होते हैं। साही। खारपुश्त।

विशेष—क्रुद्ध होने पर यह जंतु काँटों को खड़े कर लेता है और इनसे चोट करता है। लंबाई में ये काँटे एक बालिश्त तक होते हैं।

सेहुँड़‡-संज्ञा पुं० [सं० सेहुण्ड] थूहर का पेड़। उ०—छती नेह कागद हिये भई लखाय न टाँक। बिरह तचे उघर्‌यो सु अब सेहुँड़ को सो आँक।—बिहारी।

सेहुंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] थूहर। सेहुँड़।

सेहुआँ-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का चर्म रोग जिसमें शरीर पर भूरी भूरी महीन चित्तियाँ सी पड़ जाती हैं।

सेहुआन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का करमकला जिसके बीज से तेल निकलता है।

सैंगर-संज्ञा पुं० दे० "सेंगर" (३)।

सैंगर-संज्ञा पुं० [सं० स्वामी + नर = साईंनर] पति। (डिं०)

सैंतना-क्रि० स० [सं० संचय + हिं० ना (प्रत्य०)] (१) संचित करना। एकत्र करना। बटोरना। इकट्ठा करना। उ०—(क) सोई पुरुष दरब जेइ सैंती। दरबहि तें सुनु बातें एती।—जायसी। (ख) फागु खेलि पुनि दाह बहोरी। सैंतब खेह, उड़ाउब झोरी। जायसी। (ग) कहा होत जल महा प्रलय को राख्यो सैंति सैंति है जेह। भुव पर एक बूँद नहिं पहुँची निझरि गए सब मेह।—सूर। (२) हाथों से समेटना। इधर उधर से सरका कर एक जगह करना। बटोरना। उ०—सखि वचन सुनि कौसिला लखि सुढर पाँसे ढरनि। लेति भरि भरि अंक, सैंतति पैंत जनु दुहुँ करनि।—तुलसी। (३) सहेजना। सँभालकर रखना। सावधानी से अपनी रक्षा में करना। सचाचना। जैसे,—जो रुपए मैंने दिए हैं, सैंतकर रखना। (४) मार डालना। ठिकाने लगाना। (बाजारू) (५) घन मारना। चोट लगाना।

सैंतालिस-वि० दे० "सैंतालीस"।

सैंतालीस-वि० [सं० सप्तचत्वारिंशत्, पा० सत्तचत्तालीसति, प्रा० सत्तालीस] जो गिनती से चालीस से सात अधिक हो। चालीस और सात।

संज्ञा पुं० चालीस से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४७।

सैंतालीसवाँ-वि० [हिं० सैंतालीस + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में छियालीस और वस्तुओं के उपरांत हो। क्रम में जिसका स्थान सैंतालिस पर हो।

सैंतिस-वि० दे० "सैंतीस"।

सैंतीस-वि० [सं० सप्तत्रिंशत्, पा० सत्ततिंसति, प्रा० सत्तिमइ] जो गिनती में तीस से सात अधिक हो। तीस और सात।

संज्ञा पुं० तीस से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३७।

सैंतीसवाँ-वि० [हिं० सैंतीस + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में छत्तीस और वस्तुओं के उपरांत हो। क्रम में जिसका स्थान सैंतीस पर हो।

सैंदूर-वि० [सं०] सिंदूर से रँगा हुआ। सिंदूर के रंग का।

सैंधव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेंधा नमक। वि० दे० "सेंधा"। (२) सिंध देश का घोड़ा। सिंधी घोड़ा। (३) सिंध के राजा जयद्रथ का नाम। (४) सिंध देश का निवासी।

वि० (१) सिंध देश में उत्पन्न। (२) सिंध देश का। सिंधु देशीय। (३) समुद्र संबंधी। समुद्रीय। (४) समुद्र में उत्पन्न

सैंधवक-वि० [सं०] सैंधव संबंधी।

सैंधवपति-संज्ञा पुं० [सं० सैंधव (सिंध निवासी) + पति = राजा] सिंध वासियों के राजा जयद्रथ। उ०—सोमदत्त शशिबिंदु सुवेशा। सैंधवपति अरु शल्य नरेशा।—सबलसिंह।

सैंधवादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक अग्निदीपक चूर्ण जिसमें सेंधा नमक, हर्रे, पीपल और चीतामूल बराबर पड़ता है।

सैंधवायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) उनके वंशज।

सैंधवारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक वन का नाम। (महाभारत)

सैंधवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो भैरव राग की पुत्रवधू मानी गई है। यह दिन के दूसरे पहर की दूसरी घड़ी में गाई जाती है। इसकी स्वर-लिपि इस प्रकार है—धा सा रे म म प प ध ध। सा नि ध ध प प म ग ग ग ग रे सा। धा सा रे म म ग रे ग रे म प ग रे। नि नि ध म प म ग रे। प प म रे ग ग ग रे सा। किसी किसी के मत से यह षाडव है और इसमें रि वर्जित है।

सैंधी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मदिरा जो खजूर या ताड़ के रस से बनती है। ताड़ी।

विशेष—वैद्यक में यह शीतल, कषाय, अम्ल, पित्तदाहनाशक तथा वातवर्द्धक मानी गई है।

सैंधुक्षित-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम भेद का नाम।

सैंधू-संज्ञा स्त्री० दे० "सैंधवी"। उ०—करि लावदार दीरघ दवान। गहि सेल साँग हुव सावधान। केतेक धीर संधी कमान। केतेन तेग रार्खा भुजान। गुन गाइक किय बीरनु बखान। सैंधू सुर पूरिय तिहीं थान।—सूदन।

सैंपुल-संज्ञा पुं० [अं०] नमूना। जैसे,—कपड़े का सैंपुल।

सैंयाँ-संज्ञा पुं० दे० "सैयाँ"।

सैंवर†-संज्ञा पुं० दे० "साँभर"। उ०—सज्जी साँचर सैंवर सोरा। साँन्याहूली सीप सिकोरा।—सूदन।

सैंह-वि० [सं०] (१) सिंह संबंधी। सिंह का। (२) सिंह के समान।

छी†-क्रि० वि० दे० "सौंह"।

सैंहल-वि० [सं०] [स्त्री० सैंहली] सिंहल द्वीप संबंधी। सिंहल द्वीप का। सिंहली। सिंहल में उत्पन्न।

सैंहली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की पीपल। सिंहली पीपल।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह कटु, उष्ण, दीपन, कोष्ठ-शोधक, कफ, श्वास और वायुनाशक है।

पर्या०—सर्पदंडा। सर्पाक्षी। उत्कटा। पार्वती। शैलजा। ब्रह्मभूमिजा। लंबबीजा। ताम्रा। अद्रिजा। सिंहलस्था। जीवला। लंबदंडा। जीवनेत्री। जीवाला। कुरुंची।

सैंहाद्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम।

सैंहिक-संज्ञा पुं० (सिंहिका से उत्पन्न) राहु।

वि० सिंह के समान।

सैंहिकेय-संज्ञा पुं० [सं०] (सिंहिका के पुत्र) राहु।

सैंहुड़-संज्ञा पुं० दे० "सेहुँड़"।

सैंहूँ-संज्ञा पुं० [हिं० गेहूँ का अनु०] गेहूँ के वे दाने जो छोटे, काले और बेकार होते हैं।

सै†-वि०, संज्ञा पुं० [सं० शत, प्रा० सय] सौ। उ०—संवत सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।—तुलसी।

विशेष—इसका प्रयोग अधिकतर किसी संख्या के आगे होता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० सत्त्व] (१) तत्त्व। सार। माद्दा। (२) वीर्य। शक्ति। ओज। उ०—विनती सौं परसन्न सदा तीसों प्रसन्न मन। विनमैं देखत सत्रु अहै यह सै जाके तन।—गोपाल। (३) बढ़ती। बरकत। लाभ।

सैकंट-संज्ञा पुं० [सं० शतकंटक] बबूल की जाति का एक पेड़ जिसकी छाल सफेद होती है। धौला खैर। कुमतिया।

विशेष—यह बंगाल, बिहार, आसाम तथा दक्षिण और मध्य प्रदेश आदि में विंध्य की पहाड़ियों पर होता है।

सैकड़ा-संज्ञा पुं० [सं० शतकाण्ड, प्रा० सयकंड] (१) सौ का समूह। शत समष्टि। जैसे,—२ सैकड़े आम। (२) १०६ ढोली पान। (तंबोली)

सैकड़े-क्रि० वि० [हिं० सैकड़ा] प्रति सौ के हिसाब से। प्रति शत। फी सदी। जैसे,—५) सैकड़े ब्याज।

सैकड़ों-वि० [हिं० सैकड़ा] (१) कई सौ। (२) बहु संख्यक। गिनती में बहुत। जैसे,—सैकड़ों आदमी।

सैकत-वि० [सं०] [स्त्री० सैकती] (१) रेतीला। बलुआ। बालुकामय। (२) बालू का बना।

संज्ञा पुं० (१) बलुआ किनारा। रेतीला तट। (२) रेतीली मिट्टी। बलुई जमीन (३) एक ऋषिवंश।

सैकतिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१)साधु। संन्यासी। क्षपणक। (२) वह सूत्र या सूत जो मंगल के लिये कलाई या गले में धारण किया जाता है। मंगल सूत्र। गंडा या रक्षा।

वि० (१) सैकत संबंधी। (२) भ्रम या संदेह में रहनेवाला। संदेहजीवी। भ्रांतिजीवी।

सैकती-वि० [सं० सैकतिन्] सिकतायुक्त। रेतीला। बलुआ। (तट वा किनारा)

सैकतेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रक। अदरक (जो बलुई जमीन में अधिक होता है)।

सैकयत-संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि के अनुसार एक प्राचीन जनपद या जाति का नाम।

सैकल-संज्ञा पुं० [अ०] हथियारों को साफ करने और उन पर सान चढ़ाने का काम।

सैक़लगर-संज्ञा पुं० [अ० सैक़ल+गर] तलवार, छुरी आदि पर बाढ़ रखनेवाला। सान धरनेवाला। चमक देनेवाला। सिकलीगर।

सैका-संज्ञा पुं० [सं० सेक (पात्र)] (१) घड़े की तरह का मिट्टी का एक बरतन जिससे कोल्हू से गन्ने का रस निकाल कर पकाने के लिये कड़ाहे में डालते हैं। (२) मिट्टी का छोटा बरतन जिसमे रेशम रँगने का रंग डाला जाता है। (३) खेत से कट कर आई हुई रबी फसल का अटाला। राशि।

संज्ञा पुं० [हिं० सै=सौ] (१) दस ढोंके। (२) एक सौ पूले।

सैकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सैका] छोटा सैका।

सैक्य-वि० [सं०] (१) एकता युक्त। (२) सिंचन संबंधी।

संज्ञा पुं० सोन पीतल। शोण पित्तल।

सैक्षव-वि० [सं०] जिसमें चीनी हो। मीठा।

सैक्सन-संज्ञा पुं० [अं०] योरप की एक जाति जो पहले जर्मनी के उत्तरी भाग में रहती थी। फिर पाँचवीं और छठी शताब्दी में इसने इंगलैंड पर धावा किया और वहाँ बस गई।

सैजन-संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"।

सैढ़†-संज्ञा पुं० [देश०] गेहूँ की कटी हुई फसल जो दाँई गई हो, पर ओसाई न गई हो।

सैण-संज्ञा पुं० [सं० स्वजन] मित्र। (डिं०)

सैतव-वि० [सं०] सेतु संबंधी।

सैतवाहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाहुदा नदी का नाम।

सैंथी-संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति, प्रा० सत्ति अथवा सहस्त, प्रा० सहत्थ, हिं० सैहथी] बरछी। साँग। छोटा भाला। उ०—पहर रात भर भई लराई। गोलिन सर सैंथिन झर लाई। खाइ घाइ सब खान अघानै। लोह मानि तजि कोह परानै।—लाल कवि।

सैदॐ†-संज्ञा पुं० दे० "सैयद"। उ०—सृज्यो बहुरि सुरभी बलवाना। शेख सैद अरु मुगल पठाना।—रघुराजसिंह।

सैदपुरी-संज्ञा स्त्री० [सैदपुर स्थान] एक प्रकार की नाव जिसके आगे पीछे दोनों ओर के सिक्के लंबे होते हैं।

सैद्धांतिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिद्धांत को जाननेवाला। सिद्धांतज्ञ। विद्वान्। तत्वज्ञ। (२) तांत्रिक।

वि० सिद्धांत संबंधी। तत्व संबंधी।

सैध्रक-वि० [सं०] सिध्रक वृक्ष की लकड़ी का बना हुआ।

सैध्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

सैन-संज्ञा स्त्री० [सं० संज्ञपन, प्रा० सण्णवन] (१) अपना भाव प्रकट करने के लिये आँख या उँगली से किया हुआ इंगित या इशारा। संकेत। इंगित। इशारा। उ०—(क) जदपि चवायनि चीकनी, चलति चहूँ दिस सैन। तदपि न छाँडत दुहुनि के हँसी रसीले नैन।—बिहारी। (ख) सुनि श्रवण दशवदन दशन अभिमान कर नैन की सैन अँगद बुलायो। देखि लंकेश कपिभेश दर दर हँस्यो सुन्यो भट कटक को पार पायो।—सूर। (ग) सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सैन बुझाई।—तुलसी।

संयो० क्रि०—करना।—देना।—मारना।

(२) चिह्न। निशान। सूचक वस्तु। लक्षण। उ०—यह श्रमकन नख खतन की सैन जुदी अँग मैन। नील निचोल चिते भये तरुनि चोल रँग नैन।—शृंगार-सतसई।

ॐ†संज्ञा पुं० दे० "शयन"। उ०—(क) भटन विदा करि रैन मुख, जाइ कीन्ह गृह सैन।—गोपाल। (ख) साजि सैन भूषण बसन सब की नजर बचाय। रही पौढ़ि मिस नींद के दग दुवार से लाय।—पद्माकर। (ग) जानि परेगी जात हो रात कहूँ करि सैन। लाल ललौहें नैन लखि सुनि अनखौहें बैन।—शृंगार-सतसई।

ॐ†संज्ञा स्त्री० दे० "सेना"। उ०—(क) सप्त दीप के कपि दल आये जुरी सैन अति भारी। सीता की सुधि लेन चले कपि ढूँढत विपिन मँझारी।—सूर। (ख) सजी सैन छबि बरनि न जाई। मनु विधि करामाति सब आई।—गोपाल।

ॐ† संज्ञा पुं० दे० "श्येन"। उ०—चलो प्रसेन ससैन सैन जिमि अपर खंगन पर।—गोपाल।

सैनक-संज्ञा पुं० [फा० सनी, सहनक] थाली। रिकाबी। तश्तरी।

सैनपतिॐ-संज्ञा पुं० दे० "सेनापति"। उ०—चहुँ सैनपतीनु बुलाइ लियं। तिन सौं यह आइसु आपु दियं।—सूदन।

सैनभोग-संज्ञा पुं० [सं० शयन+भोग] शयन समय का भोग। रात्रि का नैवेद्य जो मंदिरों में चढ़ता है। उ०—भये दिन तीनि ये तौ भूख के अधीन नहिं, रहे हरि लीन प्रभु शोच परे उभारिये। दियो सैनभोग आप लक्ष्मी जू ले पधारी, हाटक की थारी झनझन पाँव धारिये।—भक्तमाल।

सैनाॐ†-संज्ञा स्त्री० दे० "सेना"। उ०—मीत नीत की चाल ये चल जानतहू रैन। छबि सैना सजि धावहीं अबलन पै तुव नैन।—रसनिधि।

सैनानीक-वि० [सं०] सेना के अग्र भाग का।

सैनान्य-संज्ञा पुं० [सं०] सेनानी या सेनापति का कार्य। सैनापत्य। सेनापतित्व।

सैनापतिॐ†-संज्ञा पुं० दे० "सेनापति"।

सैनापत्य-संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति का पद या कार्य। सेनापतित्व।

वि० सेनापति-संबंधी।

सैनिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना या फौज का आदमी। सिपाही। लश्करी। तिलंगा। (२) सैन्यरक्षक। प्रहरी। संतरी। (३) समवेत सेना का भाग या दल। (४) वह जो किसी प्राणी का बध करने के लिये नियुक्त किया गया हो। (५) शंबर के एक पुत्र का नाम।

वि० सेना-संबंधी। सेना का।

सैनिका-संज्ञा स्त्री० [सं० सैनिका] एक छंद का नाम। उ०—सो सुजाननंद सोचि वा घरी। आइयौ ब्रजेस पास ता घरी। सीख माँगि श्रीब्रजेस सों नवे। दै निसान कूँच कै चमू सबै।—सूदन।

सैनी-संज्ञा पुं० [सेना भगत नाई] नाई। हज्जाम। उ०—दरशन हूँ नाशे यम सैनिक जिमि नह बालक सैनी। एक नाम लेत सब भाजै पीर सुभूमि रसैनी।—सूर।

†संज्ञा स्त्री० दे० "सेना"। उ०—जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप संग सजी अघ सैनी। जनु ता लगि तरवार त्रिविक्रम धरि करि कोप उपैनी।—सूर।

सैनू-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बूटेदार कपड़ा। सैनू।

सैनेय‡-वि० [सं० सेना+इय (प्रत्य०)] सेना के योग्य। लड़ने के योग्य। उ०—कैतवेय नृप चल्यो श्रेय गुनि बल अमेय तन। सँग अजेय सैनेय सैन पर प्रान तेय रन।—गोपाल।

सैनेश, सैनेस-संज्ञा पुं० [सं० सैन्य+ईश=सैन्येश] सेनापति। उ०—हँसि बोले सैनेश कुमारा। कहिये नाथ सहित विस्तारा।—सबलसिंह।

सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सैनिक। सिपाही। (२) सेना। फौज। (३) सेनादल। पलटन। (४) प्रहरी। संतरी। (५) शिविर। छावनी।

वि० सेनासंबंधी। फौज का।

सैन्यकक्ष-संज्ञा पुं० दे० "सेनाकक्ष"।

सैन्यक्षोभ-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का विद्रोह। फौज की बगावत।

सैन्यनायक-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का अध्यक्ष। सेनापति।

सैन्यनिवेशभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ सेना पड़ाव डाले। शिविर। पड़ाव। छावनी।

सैन्यपति-संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति।

सैन्यपाल-संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति।

सैन्यपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] फौज का पिछला हिस्सा। सेना का पश्चाद् भाग। प्रतिग्रह। परिग्रह।

सैन्यवास-संज्ञा पुं० [सं०] पड़ाव। छावनी।

सैन्यशिर-संज्ञा पुं० [सं० सैन्यशिरस्] सेना का अग्र भाग।

सैन्याधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति।

सैन्याध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति।

सैन्योपवेशन-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का पड़ाव।

सैफ-संज्ञा स्त्री० [अ० सैफ] तलवार। उ०—(क) यों छवि पावत हैं लखौ अंजन आँजे नैन। सरस बाढ़ सैफन धरी जनु सिकलीगर मैन।—रसनिधि। (ख) कोउ कहति भामिनि भ्रकुटि विकट विलोकि श्रवण समीप लौं। ये साफ सैफ करैं कतल नहिं छमैं जानि तिय सजनी पलौ।—रघुराज।

सैफल-संज्ञा पुं० [सं० शतफल ?] लाल देवदार।

विशेष—इसका सुंदर पेड़ चटगाँव से सिकिम तक और कोंकण और दक्षिण में मैसूर, मालाबार और लंका तक के जंगलों में पाया जाता है। इसकी लकड़ी पीलापन लिए भूरे रंग की होती है और मेज, कुरसी, बाजों के संदूक आदि बनाने के काम में आती है।

सैफा-संज्ञा पुं० [अ० सैफ] जिल्दसाजों का एक औजार जिससे वे किताबों का हाशिया काटते हैं।

सैफी-वि० [अ० सैफ=तलवार] तिरछा। उ०—नेहनि उर आवन लखौ जबहीं धीरज मैन। सैफी हेरन मैं पटे कैफी तेरे नैन।—रसनिधि।

सैमंतिक-संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर। सेंदुर। (सधवा स्त्रियों के सीमंत अर्थात् माँग में लगाने के कारण सिंदूर का यह नाम पड़ा।)

सैम-संज्ञा पुं० [देश०] धीवरों के एक देवता या भूत।

सैयद-संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० सैयदानी, सैदानी] (१) मुहम्मद साहब के नाती हुसैन के वंश का आदमी। (२) मुसलमानों के चार वर्गों या जातियों में दूसरी जाति। उ०—सैयद अशरफ पीर पियारा। जेइ मोहिं दीन्ह पंथ उजियारा।—जायसी।

सैयाँ‡†-संज्ञा पुं० [सं० स्वामी, हिं० साईं] स्वामी। पति। उ०—(क) सैयाँ भये तिलंगवा बहुअर चली नहाय।—गिरिधर। (ख) अपने सैयाँ बाँधी पाट। लै रे बेचौं हाटे हाट।—कबीर।

सैया‡-संज्ञा स्त्री० दे० "शय्या"। उ०—सैया असन बसन सुख होई। कल्प वृक्ष नामक तरु सोई।—गोपाल।

सैरंध्र-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सैरंध्री] (१) गृहदास। घर का नौकर। (२) एक संकर जाति जो स्मृतियों में दस्यु और अयोगवी से उत्पन्न कही गई है।

सैरंध्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] परिचारिका। दासी।

सैरंध्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सैरंध्र नामक संकर जाति की स्त्री। (२) अंतःपुर या जनाने में रहनेवाली दासी। अंतःपुर परिचारिका। महल्लिका। (३) स्त्री-कारीगर जो दूसरों के घरों में काम करे। स्वतंत्रा शिल्पजीवनी। (४) द्रौपदी का एक नाम।

विशेष—जब पाँचों पांडवों ने छद्मवेश में राजा विराट् के यहाँ सेवा वृत्ति स्वीकार की थी, तब द्रौपदी ने भी उनके साथ ही, एक वर्ष तक सैरंध्री का काम किया था। इसी से द्रौपदी का नाम सैरंध्री पड़ा।

सैरिंध्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद। (बृहत्संहिता)

संज्ञा पुं० दे० "सैरंध्र"।

सैरिंध्री-संज्ञा स्त्री० दे० "सैरंध्री"।

सैर-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) मन बहलाने के लिये घूमना फिरना।

मनोरंजन या वायुसेवन के लिये भ्रमण। उ०—शहर की सैर करते हुए राजा के महलों के नीचे आए।—लल्लू०।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) बहार। मौज। आनंद। (३) मित्रमंडली का कहीं बगीचे आदि में खान पान और नाच रंग। (४) मनोरंजक दृश्य। कौतुक। तमाशा। उ०—मम बंधु को तैं हने शक्ति, विशेष लैहौं बैर। तव पुत्र पौत्र सँहारि मैं दिखरायहौं रन सैर।—रघुराज।

यौ०—सैर-सपाटा।

वि० [सं०] सीर या हल-संबंधी।

सैरगाह-संज्ञा पुं० [फ़ा०] सैर करने की जगह।

सैरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्तिक महीना। (२) बृहत्संहिता के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

सैरिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हलवाहा। हलधर। किसान। कृषक। (२) हल में जुतनेवाला बैल। (३) आकाश।

वि० सीर-संबंधी। हल-संबंधी।

सैरिभ-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सैरिभी] (१) भैंसा। महिष। (२) स्वर्ग। आकाश।

सैरिभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भैंस। महिषी।

सैरिंध्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद। (मार्कंडेयपुराण)

सैरीय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद कटसरैया। श्वेत झिंटी। (२) नीली कटसरैया। नील झिंटी।

सैरीयक-संज्ञा पुं० दे० "सैरीय"।

सैरेय-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद फूलवाली कटसरैया। श्वेत झिंटी।

सैरेयक-संज्ञा पुं० दे० "सैरेय"।

सैर्य-संज्ञा पुं० [सं०] अश्ववाल नामक तृण।

सैल*†-संज्ञा स्त्री० दे० "सैर"। उ०—(क) गोप अथाइन तें उठे गोरज छाई गैल। चलि बलि अलि अभिसार कों भली सँझोखी सैल।—बिहारी। (ख) मोहि मधुर मुसकान सों सबै गाँव के छैल। सकल सैल बनकुंज में तरुनि सुरति की सैल।—मतिराम।

संज्ञा पुं० दे० "शैल"।

संज्ञा स्त्री० दे० "सेल"।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सैलाब] (१) बाढ़। जलप्लावन। (२) स्रोत। बहाव।

सैलकुमारी-संज्ञा स्त्री० दे० "शैलकुमारी"।

सैलग-संज्ञा पुं० [सं०] लुटेरा। डाकू।

सैलजा*-संज्ञा स्त्री० दे० "शैलजा"।

सैलसुता*-संज्ञा स्त्री० दे० "शैलसुता"।

सैला-संज्ञा पुं० [सं० शल्य] [स्त्री० अल्पा० सैली] (१) लकड़ी की गुल्ली या पच्चड़ जो किसी छेद या संधि में ठोंका जाय। किसी छेद में डालने या फँसाने का टुकड़ा। मेख। (२) लकड़ी का छोटा डंडा या मेख। (३) लकड़ी का छोटा डंडा या मेख जो हल के जुए के दोनों सिरों के छेदों में इसलिये डालते हैं जिसमें जुआ बैलों के गले में फँसा रहे। (४) नाव की पतवार की मुठिया। (५) वह मुँगरी जिससे कटी हुई फसल के डंठल दाना झाड़ने के लिये पीटते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० शाकल, प्रा० साअल] [स्त्री० अल्पा० सैली] चीरा हुआ टुकड़ा। चैला। जैसे,—लकड़ी का सैला।

सैलात्मजा*-संज्ञा स्त्री० [सं० शैलात्मजा] पार्वती।

सैलानी-वि० [फ़ा० सैर, हिं० सैल] (१) सैर करने में जिसे आनंद आवे। सैर करनेवाला। मनमाना घूमनेवाला। (२) आनंदी। मनमौजी।

सैलाब-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाढ़। जलप्लावन।

सैलाबा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सैलाब] वह फसल जो पानी में डूब गई हो।

सैलाबी-वि० [फ़ा०] जो बाढ़ आने पर डूब जाता हो। बाढ़वाला। जैसे,—सैलाबी ज़मीन।

संज्ञा स्त्री० तरी। सील। सीड़।

सैलि-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

सैली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सैला] (१) छोटा सैला। (२) ढाक की जड़ के रेशों की बनी रस्सी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] वह टोकरी जिसमें किसान तिन्नी का चावल इकट्ठा करते हैं।

सैलूख*-संज्ञा पुं० दे० "शैलूष"।

सैव*†-संज्ञा पुं० दे० "शैव"।

सैवल*-संज्ञा पुं० दे० "शैवाल"। उ०—नाभि सरसि त्रिवली निसेनिका रोमराजि सैवल छवि पावति।—तुलसी।

सैवलिनी*-संज्ञा स्त्री० दे० "शैवलिनी"।

सैवाल*-संज्ञा पुं० दे० "शैवाल"।

सैव्य*-संज्ञा पुं० दे० "शैव्य"।

सैस-वि० [सं०] (१) सीसे का बना हुआ। (२) सीसा-संबंधी।

सैसक-वि० दे० "सैस"।

सैसव*-संज्ञा पुं० दे० "शैशव"।

सैसवता*-संज्ञा स्त्री० दे० "शैशव"। उ०—सैसवता में है सखी जोबन कियो प्रवेस। कहा कहौं छवि रूप की नखसिख अंग सुदेस।—सूर।

सैसिकत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद। (महाभारत)

सैसिरिध्र-संज्ञा पुं० दे० "सैसिकत"।

सैहथी-संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति, प्रा० सत्ति, अथवा सं० सहस्त, प्रा० सहत्थ] शक्ति। बरछी। साँग। उ०—(क) ब्रह्ममंत्र पढ़ि सैहथी रावण कर चमकाय। काल जलद में बीजुरी जनु प्रगटी है आय।—हनुमन्नाटक। (ख) कह्यो लंकपति मारों

तोहीं। दीन्हीं कपट सेंहथी मोहीं।—हनुमन्नाटक। (ग) आपुस माँझ हुसारन कीनी। कर उलछारि सेंहथी लीनी। —लाल कवि।

सेंहा†–संज्ञा पुं० [सं० सेक = सिंचाई + हा (हिं० प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० सेंही] पानी, रस आदि ढालने का मिट्टी का बरतन।

सेंही†–संज्ञा स्त्री० [हिं० सेंहा] छोटा सेंहा।

सों‡†–प्रत्य० [प्रा० सुन्तो] करण और अपादान कारक का चिह्न। द्वारा। से। उ०—(क) बार बार करतल कहँ मलिकै। निज कर पीठ रदन सों दलिकै।—गोपाल। (ख) गिरत सिंदूर मतवारिन की माँगन सों, चहुँ ओर फैलि रही जासु अरुनाई है।—बालमुकुंद गुप्त।

वि० दे० "सा"। उ०—तीन सों धीर समीर लगे पद्माकर वृक्षिहू बोलत नाहीं।—पद्माकर।

अव्य० दे० "सौंह"। उ०—मथुरा में प्रेम बढे राम श्याम बल पाय मारयो कंस राय करे करम अलीके सों। ताको बैर लैहौं मारि सगुन नसैहौं सहि जामे परे पापिन के मुख फेरि फीके सों। धनी धरनी के नीके आपुनी अनीके संग आवें जुर जीके मोन जी के गरजी के सों।—गोपाल।

क्रि० वि० संग। साथ। उ०—मन हरि सों तनु घरहि चलावति। ज्यों गजमत्त लाज अंकुश कर गुरुजन सुधि आनति।—सूर।

सर्व० दे० "सो"। उ०—राज समाज लखर सों बरनी। आगे नृपदल सों थरि भरनी।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० दे० "सौंह"। उ०—बात सुन तें बहुत हँसोगे चरण कमल की सो। मेरी देह छुटत यम पठये जितक दूत घर मो।—सूर।

सोंइटा‡–संज्ञा पुं० [हिं० सन्ना] सिसटा। दस्तपनाह।

सोंच–संज्ञा पुं० दे० "सोच"।

सोंचर नमक–संज्ञा पुं० [सं० सौवर्चल + फ़ा० नमक] एक प्रकार का नमक जो मामूली नमक तथा हड़, बहेड़े और सज्जी के संयोग से बनाया जाता है। काला नमक। वैद्यक में यह उष्णवीर्य, कटु, रोचक, भेदक, दीपक, पाचक, स्नेहयुक्त, वातनाशक, अत्यंत पित्तजनक, विशद, हलका, डकार को शुद्ध करनेवाला, सूक्ष्म तथा विबंध, आनाह और शूल का नाश करनेवाला माना गया है।

पर्य्या०—अक्ष। सौवर्चल। रुच्य। दुर्गंध। शूलनाशन। रुचक। कृष्णलवण आदि।

सोंज†–संज्ञा स्त्री० दे० "सौंज"।

सोंट†–संज्ञा पुं० दे० "सोंटा"।

सोंटा–संज्ञा पुं० [सं० शुण्ड या हिं० सटना] (१) मोटी लंबी सीधी लकड़ी या बाँस जिसे हाथ में ले सकें। मोटी छड़ी। डंडा। लाठी। लट्ठ।

क्रि० प्र०—चलाना।—जमाना।—बाँधना।—मारना।

मुहा०—सोंटा चलना = सोंटे से मारपीट होना। सोंटा चलाना = सोंटे से प्रहार करना। सोंटा जमाना = दे० "सोंटा चलाना"।

संज्ञा पुं० (१) भंग घोंटने का मोटा डंडा। भंग-घोटना। उ०—तन कर कूँडी मन कर सोंटा प्रेम की भँगिया रगरि पियावै।—कबीर। (२) लोबिया का पौधा। रवाँस। (३) मस्तूल बनाने लायक लकड़ी। (लश०)

सोंटाबरदार–संज्ञा पुं० [हिं० सोंटा + फ़ा० बरदार] सोंटा या आसा लेकर किसी राजा या अमीर की सवारी के साथ चलनेवाला। आसाबरदार। बल्लमदार।

सोंठ–संज्ञा स्त्री० [सं० शुण्ठी] सुखाया हुआ अदरक। सुंठि। सुंठी।

विशेष—वैद्यक के अनुसार सोंठ रुचिकर, पाचक, हलकी, स्निग्ध, उष्णवीर्य, पाक में मधुर, वीर्यवर्द्धक, सारक, कफ, वात, विबंध, हृद्रोग, श्लीपद, शोक, बवासीर, अफारा, उदर रोग तथा वात रोग नाशक है।

सोंठमिट्टी–संज्ञा स्त्री० [सोंठ ? + हिं० मिट्टी] एक प्रकार की पीले रंग की मिट्टी जो ताल या धान के खेत में पाई जाती है। यह कागिस बनाने के काम में आती है।

सोंठराय–संज्ञा पुं० [हिं० सोंठ + राय = राजा] कंजूसों का सरदार। भारी मक्खीचूस। (व्यंग्य)

सोंठौरा†–संज्ञा पुं० [हिं० सोंठ + औरा (प्रत्य०)] एक प्रकार का सूजी का लड्डू जिसमें मेवों के सिवा सोंठ भी पड़ती है। यह लड्डू प्रायः प्रसूता स्त्री को खिलाया जाता है।

सोंडकहा–संज्ञा पुं० [देश०] घी। (सुनार)

सोंध‡–अव्य० दे० "सौंह"। उ०—यह श्यामा है कौन की छबि धामा मुसकाय। सोंध चढ़ी चाहि कोध सो चौंध गई चख छाय।—शृंगार-सतसई।

सोंधा–वि० [सं० सुगंध] [स्त्री० सोंधी] (१) सुगंधयुक्त। सुगंधित। खुशबूदार। महकनेवाला। उ०—(क) सोंधे समीरन को सरदार मलिंदन को मनसा फलदायक। किंसुक जालन को कल्पद्रुम मानिनी बालकहूँ को मनायक।—रसकुसुमाकर। (ख) लहर लहर सोंधी सीतल समीर डोलै, घहर घहर घन घोरिकै घहरिया।—देव। (ग) सोंधे केसी सोंधी देह सुधा सों सुधारी, पाउँ धारी देवलोक ते कि सिंधु ते उधारी सी।—केशव। (२) मिट्टी के नए बरतन या सूखी जमीन पर पानी पड़ने या चना, बेसन आदि भुनने से निकलनेवाली सुगंध के समान। जैसे,—सोंधी मिट्टी, सोंधा चना।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का सुगंधित मसाला जिससे स्त्रियाँ केश धोती हैं। उ०—(क) आइ हुती अन्हवावन नाइनि सोंधो लिये कर सूधे सुभाइनि। कंचुकि छोरि उतै उपटैबे को ईंगुर से अँग की सुखदाइनि। (ख) सोंधे की सुवास

आस पास भरि भवन, रह्यो भरत उसाँस बास बासन बसात है।—देव। (ग) देखी है गुपाल एक गोपिका मैं देवता सी, सोने सो शरीर सब सोंधे की सी बास है।—केशव। (घ) लेइ के फूल बैठि फुलहारी। पान अपूरब धरे सँवारी। सोंधा सबै बैठ लै गाँधी। फूल कपूर खिरोरी बाँधी।—जायसी। (२) एक प्रकार का सुगंधित मसाला जो बंगाल में स्त्रियाँ नारियल के तेल में उसे सुगंधित करने के लिये मिलाती हैं।

संज्ञा पुं० सुगंध। उ०—(क) सूरदास प्रभु की बानक देखे गोपी ग्वाल टारे न टरत निपट आवै सोंधे की लपट।—सूरदास। (ख) सोंधे को अधार किसमिस जिनको अहार चारि को सो अंक लंक चंद सरमाती हैं।—भूषण। (ग) गढ़ी सो सोने सोंधै भरी सो रूपै भाग। सुनत रूखि भइ रानी हिये लोन अस लाग।—जायसी।

सोंधिया-संज्ञा पुं० [हिं० सोंधा = सुगंधित + इया (प्रत्य०)] सुगंध तृण। रोहिष तृण। गंधेज घास।

सोंधी-संज्ञा पुं० [हिं० सोंधा] एक प्रकार का बढ़िया धान जो दलदली जमीन में होता है।

सोंधु॥-वि० दे० "सोंधा"। उ०—सोंधु सुरद्रुम विद्रुम चित्र लै फलौ दल फूलन दारयो दरेरे।—देव।

सोंपना-क्रि० स० दे० "सौंपना"। उ०—राम को राजलक्ष्मी सौंपो।—लक्ष्मणसिंह।

सोंवनिया-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्ण] एक प्रकार का आभूषण जो नाक में पहना जाता है। उ०—पहुँची करनी पदिक उर हरि नख कंठुला कंठ मंजु गजमनिया। रुचिर रुचि सुक द्विज अधर नासिका अति सुंदर राजत सोंवनिया।—सूर।

सोंह॥†-संज्ञा स्त्री० दे० "सौंह"। उ०—प्यारे की प्यार परोसिनि सोंहै कह्यो तुम सो तब सासु न लेखो। मोरी को झूठी कही झगरो करि सोंह करौ तब ओरऊ लेखो।—काव्यकलाधर।

अव्य० दे० "सौंह"। उ०—दादुर अंध प्रेम कर लागू। सोंह धसा कछु सूझ न आगू।—जायसी।

सोंहट†-वि० [?] सीधा सादा। सरल।

सोंही॥-अव्य० दे० "सौंह"। उ०—(क) आजु रिसोंहीं न सोंहीं चितौति कितौ न सखी प्रति प्रीति बढ़ावै।—देव। (ख) इतने में सोंहीं आ एक बोली व्रजनारी।—लल्लू।

सो-सर्व० [सं० स] वह। उ०—(क) ब्याही सो सुजान शील रूप वसुदेव जू को विदित जहान जाकी अतिहि बड़ाई है।—गोपाल। (ख) सो मो सन कहि जात न कैसे। साक-बनिक मनि-गन-गुन जैसे।—तुलसी। (ग) अरे दया में जो मजा सो जुलमन मे नाह।—रसनिधि।

॥ वि० दे० "सा"। उ०—(क) विधि-हरि-हर-मय वेद प्रमान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो।—तुलसी। (ख) नासिका सरोज गंधवाह से सुगंधवाह, दारयों से दशन कैसो बीजुरी सो हास है।—केशव।

अव्य० अतः। इसलिये। निदान। जैसे,—पराधीनता सब दुःखों का कारण है; सो, भाइयो, इससे मुक्त होने के उद्योग में लगे रहिए। उ०—सो अब हम तुम सों मिले जुद्द। नव अंग लहहु मैं समर सुद्द।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती का एक नाम।

सोऽहम् [सं० सः + अहम्] वही मैं हूँ—अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ।

विशेष—वेदांत का सिद्धांत है कि जीव और ब्रह्म एक ही हैं; दोनों में कोई अंतर नहीं है। जीव और कुछ नहीं ब्रह्म ही है। इसी सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिये वेदांती लोग कहा करते हैं—सोऽहम्; अर्थात् मैं वही ब्रह्म हूँ। उपनिषदों में भी यह बात "अहं ब्रह्मास्मि" और "तत्वमसि" रूप में कही गई है।

सोऽहमस्मि [सं० सः + अहम् + अस्मि] वही मैं हूँ—अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ। वि० दे० "सोऽहम्"।

सोअना॥-क्रि० अ० दे० "सोना"। उ०—(क) गोरे गात कपोल पर अलक अडोल सोहाय। सोअति है साँपिनि मनो पंकज पात बिछाय।—मुबारक। (ख) सुकृती जहाँ बसत जे जागत सोअत रहैं राम वके।—देवस्वामी।

सोअर†-संज्ञा स्त्री० दे० "सौरी"।

सोआ-संज्ञा पुं० [सं० मिसा] एक प्रकार का साग जिसका क्षुप १ से २ फुट तक ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ बहुत सूक्ष्म और फूल पीले होते हैं। वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, कड़ुआ, हलका, पित्तजनक, अग्निदीपक, गरम, मेधाजनक, वस्तिकर्म में प्रशस्त तथा कफ, वात, ज्वर, शूल, योनिशूल, आध्मान, नेत्ररोग, व्रण और कृमि का नाशक है।

पर्य्या०—शताह्वा। शतपुष्पा। शताक्षी। शतपुष्पिका। कारवी। तालपर्णी। माधवी। शोफहा। मिसी।

सोई-संज्ञा स्त्री० [सं० स्रोत, हिं० सोता] वह जमीन या गड्ढा जहाँ बाढ़ या नदी का पानी रुका रह जाता है जिससे अगहनी धान की फसल रोपी जाती है। डाबर।

सर्व० दे० "वही"। उ०—(क) मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोइ। जा तन की झाँई परे स्याम हरित दुति होइ।—बिहारी। (ख) सातों द्वीप कहे शुक मुनि ने सोइ कहत अब सूर।—सूर। (ग) सोइ रघुबर सोइ लछिमन सीता। देखि सती अति भई सभीता।—तुलसी।

अव्य० दे० "सो"। सोई मैं स्वशुरालय जाती थी।—प्रताप।

सोक-संज्ञा पुं० [देश०] चारपाई बुनने के समय बुनावट में का वह छेद जिसमें से रस्सी या निवार निकाल कर कसते हैं।

संज्ञा पुं० दे० "शोक"। उ०—समन पाप-संताप-सोक के। प्रिय पालक पर-लोक-लोक के।—तुलसी।

सोकन—संज्ञा पुं० दे० "सोखन"।

सोकना—क्रि० स० [सं० शोक] शोक करना। दुःख करना। रंज करना। उ०—तुव पन पालि विपिन करि देहौं। पुनि तुव पद पंकज सिर नैहौं। यों सुनि नृपति मनहिं मन सोक्यौ। पुनि पुनि रामबदन अवलोक्यौ।—पद्माकर।

क्रि० स० दे० "सोखना"। उ०—(क) आठ मास जो सूर्य जल सोकता है, सोई चार महीने बरसता है।—लल्लू। (ख) बुंद सोकिगो कहा महा समुद्र लीजई।—केशव।

सोकनी†—वि० [?] कालापन लिये सफेद रंग का (बैल)।

सोकरहा†—संज्ञा पुं० [हिं० सोकार] वह आदमी जो कूँए पर खड़ा होकर पानी से भरे हुए चरसे या मोट को नाली में उलटकर खाली करता है। बारा।

सोकार†—संज्ञा पुं० [हिं० सोकना, सोखना] वह स्थान जहाँ खेत सींचनेवाले कूँए से मोट निकालकर गिराते हैं। सिंचाई के लिये पानी गिराने की कूँए पर की नाली। छिउलारा। चौंढ़ा।

सोकित—वि० [सं० शोक] शोकयुक्त। उ०—मुहिं स्वारथ ढीठ बनायो तुमकों जब सोकित देख्यो।—प्रताप।

सोक्कन—संज्ञा पुं० दे० "सोखन"।

सोखक—वि० [सं० शोषक] (१) शोषण करनेवाला। (२) नाश करनेवाला। उ०—चलि चलि चंद्रमुखी सांवरे सखा पै बेगि, सोखक जु केसोदास अरि सुख साज के। चढ़ि चढ़ि पवन तुरंगन गगन घन, चाहत फिरत चंद योधा यमराज के।—केशव।

सोखता—वि० दे० "सोख्ता"। उ०—मैं सोहदा तन सोखता बिरहा दुख जारइ।—दादू।

संज्ञा पुं० दे० "सोख्ता"।

सोखन—संज्ञा पुं० [देश०] (१) स्याही लिये सफेद रंग का बैल। (२) एक प्रकार का जंगली धान जो नदी की घाटी में बलुई ज़मीन में बोया जाता है।

सोखना—क्रि० स० [सं० शोषण] (१) शोषण करना। रस खींच लेना। चूस लेना। सुखा डालना। उ०—(क) यह मिट्टी ......पानी को खूब सोखती है।—खेती विद्या। (ख) सेर भर चावल सेर ही भर घी सोखता है।—शिवप्रसाद। (ग) उदित अगस्त पंथजल सोखा। जिमि लोभहि सोखइ संतोषा।—तुलसी। (घ) उतै रुखाई है घनी थोरो मो पै नेह। जाही अंग लगाइए सोई सोखै लेह।—रसनिधि। (२) पीना। पान करना। (व्यंग्य)

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।—लेना।

सोखरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० सोखना या सुखाना] पेड़ का सूखा हुआ महुआ।

सोखा†—संज्ञा पुं० [सं० सूक्ष्म या चोखा ?] (१) चतुर मनुष्य। होशियार आदमी। (२) जादूगर।

सोखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० सोखा] जादू। टोना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सोखना] (१) सोखने की क्रिया या भाव। (२) सोखने या सोखाने की मजदूरी।

सोख्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का मोटा खुरदुरा कागज जो स्याही सोख लेता है। स्याही-सोख। स्याही-चट। ब्लाटिंग पेपर।

वि० जला हुआ। उ०—मैं सोहदा तन सोखता, बिरहा दुख जारइ।—दादू।

सोगंद—संज्ञा स्त्री० दे० "सौगंद"।

सोग—संज्ञा पुं० [सं० शोक] शोक। दुःख। रंज। उ०—(क) निसि दिन राम राम की भक्ती, भय रुज नहिं दुख सोग।—सूर। (ख) चित पितु-घातक जोग लखि भयौ भयें सुत सोग। फिर हुलस्यौ जिय जोयसी समुझ्यो जारज जोग।—बिहारी। (ग) तउ लहि सोग बिछोह कर भोजन परा न पेट। पुनि बिसरा भा सँवरना जनु सपने भइ भेंट।—जायसी।

मुहा०—सोग मनाना = किसी प्रिय या संबंधी के मर जाने पर शोकसूचक चिह्न धारण करना और किसी प्रकार के उत्सव या मनोविनोद आदि में सम्मिलित न होना।

सोगन—संज्ञा स्त्री० [हिं० सौगंद] सौगंद। कसम। (डिं०)

सोगिनी—वि० स्त्री० [हिं० सोग] शोक करनेवाली। शोकार्त्ता। शोकाकुला। शोकमग्ना। उ०—मुख कहत आजु बधि दुष्ट अरि तरपहुँ चौंसठ जोगिनी। बिललात फिरैं बन पात प्रति मगध सुंदरी सोगनी।—गोपाल।

सोगी—वि० [सं० शोक, हिं० सोग] [स्त्री० सोगिनी] शोक मनानेवाला। शोकार्त्त। शोकाकुल। दुःखित।

सोच—संज्ञा पुं० [सं० शोच] (१) सोचने की क्रिया या भाव। जैसे,—तुम अच्छी तरह सोच लो कि तुम्हारे इस काम का क्या फल होगा।

यौ०—सोच समझ। सोचविचार।

(२) चिंता। फिक्र। जैसे,—(क) तुम सोच मत करो, ईश्वर भला करेंगे। (ख) तुम किस सोच में बैठे हो? (३) शोक। दुःख। रंज। अफसोस। उ०—(क) तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक हैं, ऐसी ठाउँ जाके मुए जिए सोच करिहैं न लरिको।—तुलसी। (ख) नेह कै मोहिं बुलायो इतै अब बोरत मेह महीतल को है। आई मलार महावत मै तन मैं श्रम सीकर को झलको है। न मिले अब नौलकिसोर पिया हियो बेनी प्रवीन कहै कलको है। सोच नहीं धन पावन को सखि सोच यहै उनके छलको है।—बेनी प्रवीन। (४) पछतावा। पश्चात्ताप। उ०—देखिकै उमा को रुद्र लज्जित

भए कह्यो मैं कौन यह काम कीनो। इंद्रीजित कहावत हौं तो आपुको समुझि मन माहि ह्वै रह्यो खीनो। चतुर्भुज रूप हरि आई दरशन दियो कह्यो शिव सोच दीजै बिहाई।—सूर।

सोचक-संज्ञा पुं० [सं० सौचिक] दरजी। (डिं०)

सोचना-क्रि० अ० [सं० शोचन] (१) किसी प्रकार का निर्णय करने, परिणाम निकालने या भवितव्य को जानने के लिये बुद्धि का उपयोग करना। मन में किसी बात पर विचार करना। गौर करना। जैसे,—(क) मैं यह सोचता हूँ कि तुम्हारा भविष्य क्या होगा। (ख) कोई बात कहने से पहले सोच लिया करो कि वह कहने लायक है या नहीं। (ग) इस बात का उत्तर मैं सोचकर दूँगा। (घ) तुम तो सोचते सोचते सारा समय बिता दोगे। उ०—सोचत है मन ही मन में अब कीजै कहा बतियाँ जगदाई। नीचो भयो ब्रज को सब सीस मलीन भई रसखानि दुहाई।—रसखान। (२) चिंता करना। फिक्र करना। उ०—(क) कौनहुँ हेतन आइयो प्रीतम जाके धाम। ताको सोचति सोच हिय केशव उत्तमधाम।—केशव। (ख) अब हरि आइहैं जिन सोचै। सुन विधुमुखी बारि नयनन ते अब तू काहे मोचै।—सूर। (३) खेद करना। दुःख करना। उ०—माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन।—तुलसी।

सोच विचार-संज्ञा पुं० [हिं० सोच + सं० विचार] समझ-बूझ। गौर। जैसे,—(क) सोच विचार कर काम करो। (ख) अच्छी तरह सोच विचार लो।

सोचाना-क्रि० स० दे० "सुचाना"। उ०—सुदिन सुनखत सुघरी सोचाई। बेगि बेदविधि लगन धराई।—तुलसी।

सोचु*-संज्ञा पुं० दे० "सोच"। उ०—सती सभीत महेस पहिं चली हृदय बड़ सोचु।—तुलसी।

सोज-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूजना] (१) सूजने की क्रिया, भाव या अवस्था। सूजन। शोथ। (२) दे० "सौंज"। उ०—तुलसी समिध सोज लंक-जग्य कुंड लखि जातुधान पुंग फल जव तिल धान हैं।—तुलसी।

सोज़न-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सूई। उ०—अरे निरदई मालिया कहूँ जताय यह बात। केहि हित सुमनन तोरि तैं छेदत सोजन गात।—रसनिधि। (२) काँटा। (लश०)

सोजनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुजनी"।

सोजाक-संज्ञा पुं० दे० "सूजाक"।

सोजिश-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सूजन। फुलाव। शोथ।

सोझ*-वि०, क्रि० वि० दे० "सोझा"। उ०—कहै कबीर नर चलै न सोझ। भटकि मुये जस बन के रोझ।—कबीर।

सोझा-वि० [सं० सम्मुख, म० प्रा० समुज्झ] [स्त्री० सोझी] सीधा। सरल। उ०—दादू सोझा राम रस अम्रित काया कूल।—दादू।

सोझोवा*-संज्ञा पुं० [?] जवान बछड़ा।

सोटा-संज्ञा पुं० दे० "सोंटा"।

संज्ञा पुं० दे० "सुअटा"। उ०—लै सँदेस सोटा गा तहाँ। सूली देहि रतन को जहाँ।—जायसी।

सोठ-संज्ञा स्त्री० दे० "सोंठ"।

सोठ मिट्टी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोंट मिट्टी"।

सोडा-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का क्षार पदार्थ जो सज्जी को रासायनिक क्रिया से साफ करके बनाते हैं। इसके कई भेद हैं। जिसे लोग सिर धोने के काम में लाते हैं, उसे अंगरेज़ी में "सोडा क्रिस्टल" कहते हैं। यह सज्जी को उबालकर बनाते हैं। ठंढा होने पर साफ सोडा नीचे बैठ जाता है। जो सोडा साबुन, कागज, काँच आदि बनाने के काम में आता है, उसे 'सोडा कास्टिक' कहते हैं। यह चूने और सज्जी के संयोग से बनता है। दोनों को पानी में घोल और उबालकर पानी उड़ा देते हैं। इसी प्रकार "बाइकारबोनेट आफ सोडियम" भी साबुन, काँच आदि बनाने के काम में आता है। यह नमक को अमोनिया में घोलकर कारबोनिक गैस की भाप का तरारा देने से निकलता है। इसे एकत्र करके तपाने से पानी और कारबोनिक गैस उड़ जाता है। जो सोडा खाने के काम में आता है, उसे "बाइकारबोनेट आफ सोडा" कहते हैं। यह सोडे पर कारबोनिक गैस का तरारा देने से बनता है।

सोडावाटर-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का पाचक पानी जो प्रायः मामूली पानी में कारबोनिक एसिड का संयोग करके बनाते हैं और बोतल में हवा के जोर से बंद करके रखते हैं। विलायती पानी। खारा पानी।

सोढ-वि० [सं०] (१) सहनशील। सहिष्णु। (२) जो सहन किया गया हो।

सोढर-वि० [देश०] भोंदू। बेवकूफ। उ०—(क) गदहों में हम सोढर गदहा हैं।—बालकृष्ण भट्ट। (ख) भगति सुतिय के हाथ सुमिरिनी सोहत टोडर। सोढर खोडर बूढ़ ऊढ़ द्विज खोंडर ओडर।—सुधाकर।

सोढवत्-वि० [सं०] जिसने सहन किया हो। सहनेवाला।

सोढव्य-वि० [सं०] सहन करने के योग्य। सह्य।

सोढी-वि० [सं० सोढिन्] जिसने सहन किया हो। सहनकारी।

सोणक-वि० [सं० शोण] लाल रंग का। रक्त।

सोणत-संज्ञा पुं० [सं० शोणित] खून। लोहू। रक्त। (डिं०)

सोत-संज्ञा पु० दे० "स्रोत" या "सोता"। उ०—(क) लोल लोचनी कंठ लखि संख समुद के सोत। अरु उड़ि कानन को गये केकी गोल कपोत।—शृंगार-सतसई। (ख) धन कुल की मरजाद कछु प्रेम पंथ नहिं होत। राव रंक सब एक से लगत प्रेम रस सोत।—हरिश्चंद्र। (ग) वैरि-बधु-

बदन कलानिधि मलीन भयो सकल सुधानो परपानिप को सोत है ।—मतिराम ।

सोता–संज्ञा पुं० [सं० स्रोत] (१) जल की बराबर बहनेवाली या निकलनेवाली छोटी धारा । झरना । चश्मा । जैसे,—पहाड़ का सोता, कूएँ का सोता । उ०—(क) भूख लगे सोता मिले उथरे अरु बिन मैल । पी तिनको पानी तुरत लीजौ अपनी गैल ।—लक्ष्मणसिंह । (ख) दस दिसा निर्मल मुदित उडुगन भूमिमंडल सुख लयो । सागर सरित सोता सरोवर सबन उज्वल जल भयो ।—गिरिधरदास । (२) नदी की शाखा । नहर । उ०—जिसका (जमना की नहर का) एक सोता पश्चिम में हरियाने तक पहुँचकर रेगिस्तान में खप जाता है ।—शिवप्रसाद ।

सोतिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० सोता + इया (प्रत्य०)] सोता । उ०—नौ दस नदिया अगम बहे सोतिया बिचे में पुरइन दहया लागल रे रॉ ।—कबीर ।

सोतिहा†–संज्ञा पुं० [हिं० सोता + हा (प्रत्य०)] कूआँ जिसमें सोते का पानी आता है ।

सोती–संज्ञा स्त्री० [हिं० सोता] स्रोत । धारा । सोता । उ०—तेहि पर पूरि धरी जो सोती । जमुँना माँझ गाँग कइ सोती ।—जायसी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाती" । उ०—एक चर्प बरष्यो नहिं सोती । भयो न मान सरोवर मोती ।—रघुराजसिंह ।

संज्ञा पुं० दे० "श्रोत्रिय" ।

सोतु–संज्ञा पुं० [सं०] सोम निकालने की क्रिया ।

सोत्कंठ–वि० [सं०] उत्कंठायुक्त । उनमना ।

सोत्क–वि० [सं०] जिसे उत्कंठा हो । उत्कंठापूर्ण ।

सोत्कर्ष–वि० [सं०] उत्कर्षयुक्त । उत्तम । दिव्य ।

सोत्प्रास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाटु । प्रिय बात । (२) शब्दयुक्त हास्य । सशब्द हास्य । यथा—सोत्प्रास आच्छुरितकमच्छुरितकं तथा अट्टहासो महाहासो हासः प्रहास इत्यपि ।—शब्द रत्नावली ।

वि० (१) बढ़ाकर कहा हुआ । अतिरंजित । (२) व्यंग्ययुक्त । जिसमें व्यंग्य हो ।

सोत्प्रेक्ष–वि० [सं०] उपेक्षा के योग्य । उदासीनतापूर्वक ।

सोत्लंग–वि० [सं०] शोकाकुल । दुःखित ।

सोत्सर्ग समिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] मल मूत्र आदि का इस प्रकार यत्नपूर्वक त्याग करना जिसमें किसी व्यक्ति को कष्ट या जीव को आघात न पहुँचे । (जैन)

सोत्सव–वि० [सं०] (१) उत्सवयुक्त । उत्सव सहित । (२) प्रफुल्ल । प्रसन्न । खुश ।

सोत्सुक–वि० [सं०] उत्सुकतायुक्त । उत्सुकता सहित । उत्कंठित ।

सोत्सेक–वि० [सं०] अभिमानी । घमंडी । ऐंठू ।

सोत्सेध–वि० [सं०] उच्च । ऊँचा ।

सोथ–संज्ञा पुं० दे० "शोथ" ।

सोदकुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कृत्य जो पितरों के उद्देश्य से किया जाता है ।

सोदधिल–वि० [सं०] लघु । अल्प । थोड़ा । कम ।

सोदन–संज्ञा पुं० [देश०] कशीदे के काम में कागज का एक टुकड़ा जिस पर सूई से छेद कर बेल बूटे बनाए होते हैं । जिस कपड़े पर बेल बूटा बनाना होता है, उस पर इसे रखकर बारीक राख बिछा देते हैं, जिससे कपड़े पर निशान बन जाता है ।

सोदय–वि० [सं०] ब्याज या सूद समेत । वृद्धियुक्त ।

सोदर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सोदरा, सोदरी] सहोदर भ्राता । सगा भाई ।

वि० एक गर्भ से उत्पन्न ।

सोदरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहोदरा भगिनी । सगी बहिन ।

सोदरी–संज्ञा स्त्री० दे० "सोदरा" । उ०—काम की दुहाई के सुहाई सखी माधुरी की इंदिरा के मंदिर में झाई उपजति है । सुरनि की सुरी किधौं मोदहू की सोदरी कि चातुरी की माता ऐसी बातनि सिजति है ।—केशव ।

सोदर्य–वि० दे० "सोदर" ।

सोदर्य–संज्ञा पुं० वि० दे० "सहोदर" ।

सोद्योग–वि० [सं०] उद्योगी । कर्मशील ।

सोद्वेग–वि० [सं०] विचलित । चिंतित ।

सोध‡†–संज्ञा पुं० [सं० शोध] (१) खोज । खबर । पता । टोह । उ०—(क) हम सीता कै सोध विहीना । नहिं जैहहिं जुवराज प्रबीना ।—तुलसी । (ख) मोही सों रूठि कै बैठि रहे किधौं कोई कहूँ कछु सोध न पावै ।—देव । (२) संशोधन । सुधारन । उ०—खल प्रबोध जग सोध मन को निरोध कुल सोध । करहिं ते फोकट पचि मरहिं सपनेहु सुख न सुबोध ।—तुलसी । (३) चुकता होना । अदा होना । बेबाक होना । जैसे,—ऋण का सोध होना ।

संज्ञा पुं० [सं० सौध] (१) महल । प्रासाद । (डिं०) (२) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम ।

सोधक–संज्ञा पुं० दे० "शोधक" ।

सोधणी–संज्ञा स्त्री० [सं० शोधनी] झाड़ू । बुहारी । मार्जनी । (डिं०)

सोधन–संज्ञा पुं० [सं० शोधन] ढूँढ़ । खोज । तलाश । उ०—अति क्रोधन रन सोधन सदा अरि बल रोधन पन किये । दुरजोधन प्रपितामह लख्यो सह सत जोधक सँग लिये ।—गोपाल ।

सोधना‡†–क्रि० स० [सं० शोधन] (१) शोधन करना । शुद्ध करना । साफ करना । उ०—(क) बसि सकोच दसबदन बस साँच दिखावति बाल । सिय लौं सोधति तिय तनहि लगनि अगनि की ज्वाल ।—बिहारी । (ख) सोधि अवनि

अय लगि जोजन चारि प्रमान। अति विचित्र रचना रची मंडप विपुल वितान। (२) गलती या दोष दूर करना। (३) विचार कर देखना। ठीक करना। निश्चित करना। निर्णय करना। उ०—(क) ग्रह तिथि नखत जोग बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू।—तुलसी। (ख) समुझि करम गति धीरज कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह करि दीन्हा।—तुलसी। (४) खोजना। ढूँढ़ना। उ०—(क) एहि कुरोग कर औषध नाहीं। सोधेउँ सकल विस्व मन माहीं।—तुलसी। (ख) प्यासे दुपहर जेठ के थके सबै जल सोधि। मरुधर पाय मतीरहू मारू कहत पयोधि।—बिहारी। (ग) मैं तोहि बरजों बार बार। तैं बन सोध्यो डाढ़ डाढ़। सब फूलन में कियो है भोग। सुख न भयो तन बाढ्यो रोग।—कबीर। (५) धातुओं का औषध रूप में व्यवहार करने के लिये संस्कार। जैसे,—पारा सोधना। (६) ठीक करना। दुरुस्त करना। सुधारना। (७) ऋण चुकाना। अदा करना। (८) प्रसंग करना। संभोग करना। (बाजारू)

सोघस-संज्ञा पुं० [?] जल का किनारा। (डिं०)

सोधाना†-क्रि० स० [हिं० सोधना का प्रे० रूप] (१) सोधने का काम दूसरे से कराना। (२) ठीक कराना। दुरुस्त कराना। उ०—(क) बाजत अवध गहागहे आनंद बधाये। नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाये।—तुलसी। (ख) सुखु पाइ बात चलाइ सुदिनु सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै।—तुलसी। (ग) सत गुरु विप्र बोलाय के लाभ सोधावहीं। सज्जन कुटुम परिवार सुमंगल गावहीं।—कबीर।

सोधुॐ-संज्ञा पुं० दे० "सोध"।

सोन-संज्ञा पुं० [सं० शोण] एक प्रसिद्ध नद का नाम जो मध्य प्रदेश के अमरकंटक की अधित्यका भूमि से, नर्मदा के उद्गम स्थान से दो ढाई मील पूर्व से, निकला है और उत्तर में मध्य प्रदेश तथा बुंदेलखंड होता हुआ पूर्व की ओर प्रवाहित हुआ है और बिहार में दानापुर से १० मील उत्तर गंगा में मिला है। बिहार में इस नद का पाट कोई अढ़ाई तीन मील लंबा है। वर्षा ऋतु में समुद्र सा जान पड़ता है। इसमें कई शाखा-नदियाँ मिलती हैं जिनमें कोइल प्रधान है। गरमी में इस नद में पानी बहुत कम हो जाता है। वैद्यक के अनुसार इसका जल रुचिकर, संताप और शोषापह, पथ्य, अग्निवर्द्धक, बल और क्षीणांग को बढ़ानेवाला माना गया है। उ०—सानुज राम-समर-जस पावन। मिलउ महानद सोन सुहावन।

पर्य्या०—शोणा। शोणभद्र। हिरण्यवाह।

संज्ञा पुं० दे० "सोना"। उ०—(क) परी नाथ कोइ छुवै न पारा। मारग मानुष सोन उछारा।—जायसी। (ख) दमयंती के बचन न भाये। नल राजा सब द्रव्य गँवाये। सोन रूप जो लाव भुवारा। धरत दाउँ पल मह सब हारा।—सबलसिंह।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जलपक्षी। उ०—कुररहिं सारस करहिं हुलासा। जीवन मरन सो एकहि पासा। बोलहिं सोन ढेक बगलेदी। रही अबोल मीन जल-भेदी।—जायसी।

वि० [सं० शोण] लाल। अरुण। रक्त। उ०—सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन मयंक तापत्रय-मोचन।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सोना] एक प्रकार की बेल जो बारहो महीने बराबर हरी रहती है। इसके फूल पीले रंग के होते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० रसोनक] लहसुन। (डिं०)

सोनकिरवा†-संज्ञा पुं० [हिं० सोना + किरवा = कीड़ा] (१) एक प्रकार का कीड़ा जिसके पर पन्ने के रंग के चमकीले होते हैं। (२) जुगनूँ।

सोनकीकर-संज्ञा पुं० [हिं० सोना + कीकर] एक प्रकार का बहुत बड़ा पेड़ जो उत्तर बंगाल, दक्षिण भारत तथा मध्य भारत में बहुत होता है। इसके हीर की लकड़ी मुसली सी, पर बहुत ही कड़ी और मजबूत होती है। यह इमारत और खेती के औजार बनाने के काम में आती है। इसका गोंद कीकर के गोंद के समान ही होता है और प्रायः औषध आदि में काम आता है।

सोनकेला-संज्ञा पुं० [हिं० सोना + केला] चंपा केला। सुवर्ण कदली। पीला केला। वैद्यक में यह शीतल, मधुर, अग्निदीपक, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, भारी तथा तृषा, दाह, वात, पित्त और कफ-नाशक माना गया है।

सोनगढ़ी-संज्ञा पुं० [सोनगढ़ (स्थान)] एक प्रकार का गन्ना।

सोनगहरा-संज्ञा पुं० [हिं० सोना + गहरा] गहरा सुनहरा रंग।

सोनगेरू-संज्ञा पुं० दे० "सोनागेरू"।

सोनचंपा-संज्ञा पुं० [हिं० सोना + चंपा] पीला चंपा। सुवर्ण चंपक। स्वर्ण चंपक।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, कड़ुवा, कसैला, मधुर, शीतल तथा विष, कृमि, मूत्रकृच्छ्र, कफ, वात और रक्तपित्त को दूर करनेवाला है।

सोनचिरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सोना + चिरी = चिड़िया] नटी। उ०—पातरे अंग उड़े बिनु पाँखनु कोमल आपनि प्रेम छिरी की। जोवन रूप अनूप निहारि कै लाज मरैं निधिराज सिरी की। कौंल से नैन कलानिधि सो मुख को गनै कोटि कला गहिरी की। बाँस के सीस अकास में नाचत को न छकै छबि सोनचिरी की।—देव।

सोनजरद-संज्ञा स्त्री० दे० "सोनज़र्द"। उ०—कोइ गुलाल सुदरसन कूजा। कोइ सोनजरद पाव भल पूजा।—जायसी।

सोनज़र्द—संज्ञा स्त्री० [हिं० सोना + फ़ा० ज़र्द] पीली जूही । स्वर्ण यूथिका ।

सोनजूही—संज्ञा स्त्री० [हिं० सोना + जूही] एक प्रकार की जूही जिसके फूल पीले रंग के होते हैं, पर जिसमें सफेद जूही से सुगंधि अधिक होती है । पीली जूही । स्वर्ण-यूथिका । उ०—(क) देखो सोनजुही फिरति सोनजुही से अंग । दुति लपटनि पट सेत हूँ करति बनौटी रंग ।—बिहारी । (ख) हौं रीझी लखि रीझिहौ छबिहि छबीले लाल । सोनजुही सी होति दुति मिलत मालती माल ।—बिहारी ।

सोनपेडुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सोना + पेडुकी] एक प्रकार का पक्षी जो सुनहलापन लिए हरे रंग का होता है । इसकी चोंच सफेद तथा पैर लाल होते हैं ।

सोनभद्र—संज्ञा पुं० दे० "सोन" । उ०—सोनभद्र तट देश नवेला । तहाँ बसैं बहु अबुध बघेला—रघुराज ।

सोनहला—संज्ञा पुं० [हिं० सोना + हला (प्रत्य०)] भटकटैया का काँटा । (कहार)

विशेष—पालकी ले जाते समय जब कहीं रास्ते में भटकटैया के काँटे पड़ते हैं, तब उनसे बचने के लिये आगे के कहार "सोनहुला है" कह कर पीछे के कहारों को सचेत करते हैं । वि० दे० "सुनहला" ।

सोनहा—संज्ञा पुं० [सं० शुन = कुत्ता] कुत्ते की जाति का एक छोटा जंगली जानवर जो झुंड में रहता है और बड़ा हिंसक होता है । यह शेर को भी मार डालता है । कहते हैं कि जहाँ यह रहता है, वहाँ शेर नहीं रहते । इसे 'कोगी' भी कहते हैं । उ०—डाइन डारे सोनहा डोरे सिंह रहे वन घेरे । पाँच कुटुंब मिलि जूझन लागे बाजन बाज घनेरे ।—कबीर ।

सोना—संज्ञा पुं० [सं० स्वर्ण] (१) सुंदर उज्ज्वल पीले रंग की एक प्रसिद्ध बहुमूल्य धातु जिसके सिक्के और गहने आदि बनते हैं । यह खानों में या स्लेट अथवा पहाड़ों की दरारों में पाया जाता है । यह प्रायः कंकड़ के रूप में मिलता है । कंकड़ को चूर कर और पानी का तरारा देकर धूल, मिट्टी आदि बहा दी जाती है और सोना अलग कर लिया जाता है । कभी कभी सोना विशुद्ध अवस्था में भी मिल जाता है । पर प्रायः लोहे, ताँबे तथा अन्य धातुओं से मिली हुई अवस्था में ही पाया जाता है । यह सीसे के समान नरम होता है, पर चाँदी, ताँबे आदि के मेल से यह कड़ा हो जाता है । यह बहुत वज़नी होता है । भारीपन में प्लेटिनम और इरिडियम धातुओं के बाद इसी का स्थान है । यह पीटकर इतना पतला किया जा सकता है कि पारदर्शक हो जाता है । इस प्रकार का इसका बहुत पतला तार भी बनाया जा सकता है । सोने पर जंग नहीं लगता । इस पर कोई खास तेजाब असर नहीं करता । हाँ, गंधक और शोरे के तेजाब में आँच देने से यह गल जाता है । हिंदुस्थान में प्रायः सभी प्रांतों में सोना पाया जाता है, पर मैसूर और हैदराबाद की खानों में अधिक मिलता है । पिछली शताब्दी में कैलिफोर्निया और आस्ट्रेलिया में भी इसकी बहुत बड़ी खानें मिली हैं ।

सोना सब धातुओं में श्रेष्ठ माना गया है । हिंदू इसे बहुत पवित्र और लक्ष्मी का रूप मानते हैं । कमर और पैर में सोना पहनने का निषेध है । सोना कितनी ही रसौषधों में भी पड़ता है । वैद्यक में यह त्रिदोषनाशक तथा बलवीर्य, स्मरण शक्ति और कांतिवर्द्धक माना गया है ।

पर्य्या०—स्वर्ण । कनक । कांचन । हेम । गांगेय । हिरण्य । तपनीय । चांपेय । शातकुंभ । हाटक । जातरूप । रुक्म । महारजत । भर्म्म । गैरिक । लोहवर । चामीकर । कार्त्तस्वर । मनोहर । तेज । दीप्तक । कर्वर । कर्व्वूर । कर्च्चूर । अग्नि-वीर्य । मुख्यधातु । भद्र । उज्ज्वलक । शातकौंभ । भूरि । कल्याण । स्पर्शमणि । प्रभव । अग्नि । अग्निशिख । भास्कर । मांगल्य । आग्नेय । भरु । चंद्र । उज्ज्वल । भृंगार । कलधौत । पिंजान । जांबव । अग्निबीज । द्राविण । अग्निभ । दीप्त । अपिंजर । सौमंजक । जांबुनद । निष्क । रुग्म । अष्टापद ।

मुहा०—सोने का घर मिट्टी होना = लाख का घर खाक होना । सारा वैभव नष्ट होना । सोने में घुन लगना = असंभव बात का होना । अनहोनी होना । उ०—काहू चीटी लागे पाँख, काहू यम मारे काख, सुनो है न देख्यो घुन लागो है कनक को ।—हनुमन्नाटक । सोने में सुगंध = किसी बहुत बढ़िया चीज में और अधिक विशेषता होना ।

क्रि० प्र०—गलना ।—गलाना ।—तपना ।—तपाना ।

(२) अत्यंत बहुमूल्य वस्तु । बहुत महँगी चीज़ । (३) अत्यंत सुंदर वस्तु । उज्ज्वल या कान्तिमान् पदार्थ । जैसे, शरीर सोना हो जाना । (४) एक प्रकार का हंस । राजहंस ।

संज्ञा पुं० मझोले कद का एक वृक्ष जो बरार और दारजिलिंग की तराइयों में होता है । इसमें कलियाँ लगती हैं जिनका मुरब्बा बनता है । इसकी लकड़ी मजबूत होती है और इमारत तथा खेती के औज़ार बनाने के काम में आती है । चीरने के समय लकड़ी का रंग अंदर से गुलाबी निकलता है, पर हवा लगने से वह काला हो जाता है । कोलपार ।

संज्ञा स्त्री० प्रायः एक हाथ लंबी एक प्रकार की मछली जो भारत और बरमा की नदियों में पाई जाती है ।

क्रि० अ० [सं० शयन] (१) उस अवस्था में होना जिसमें चेतन क्रियाएँ रुक जाती हैं और मन तथा मस्तिष्क दोनों विश्राम करते हैं । नींद लेना । शयन करना । आँख लगना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—सोते जागते = हर घड़ी। हर समय।

(२) शरीर के किसी अंग का सुन्न होना। जैसे,—मेरे पैर सो गए। (यह क्रिया प्रायः एक अंग को एक ही अवस्था में कुछ अधिक समय तक रखने पर प्रायः हो जाती है।)

सोनागेरू—संज्ञा पुं० [हिं० सोना + गेरू] गेरू का एक भेद जो मामूली गेरू से अधिक लाल और मुलायम होता है। वैद्यक के अनुसार यह स्निग्ध, मधुर, कसैला, नेत्रों को हितकर, शीतल, बलकारक, व्रण-शोधक, विशद, कांतिजनक तथा दाह, पित्त, कफ, रक्त-विकार, ज्वर, विष, विस्फोटक, वमन, अग्निदग्धव्रण, बवासीर और रक्तपित्त को नाश करनेवाला है।

पर्य्या०—सुवर्णगैरिक। सुरक्त। स्वर्ण धातु। शिला धातु। संध्याभ्र। बभ्रुधातु। सुरक्तक।

सोनापाठा—संज्ञा पुं० [सं० शोण + हिं० पाठा] (१) एक प्रकार का ऊँचा वृक्ष जो भारत और लंका में सर्वत्र होता है। इसकी छाल चौथाई इंच तक मोटी, हरापन लिए पीले रंग की, चिकनी, हलकी और मुलायम होती है। काटने से इसमें से हरा रस निकलता है। लकड़ी पीलापन लिए सफेद रंग की, हलकी और खोखली होती है और जलाने के सिवा और किसी काम में नहीं आती। पेड़ की टहनियों पर तीन से पाँच फुट तक लंबी झुकी हुई सींकें होती हैं जो भीतर से पोली होती हैं। प्रत्येक प्रधान सींक पर पाँच पाँच गाँठें होती हैं और उन गाँठों के दोनों ओर एक एक और सींक होती है। पहली सींक को चार गाँठें सींकों सहित क्रम क्रम से छोटी रहती हैं। इनमें पहली गाँठ पर तीन जोड़े पत्ते, दूसरी और तीसरी गाँठ पर एक एक जोड़ा और चौथी गाँठ पर तीन पत्ते लगे रहते हैं। दूसरी और तीसरी सींकों पर भी इसी क्रम से पत्ते रहते हैं। चौथी गाँठवाली सींक पर पाँच पाँच पत्ते (दो जोड़े और एक छोर पर) होते हैं। पाँचवीं पर तीन पत्ते (एक जोड़ा और एक छोर पर) होते हैं। इसी प्रकार अंत में तीन पत्ते होते हैं। पत्ते करंज के पत्तों के समान २॥ से ४॥ इंच तक चौड़े, लंबोतरे और कुछ नुकीले होते हैं। फूल १-२ फुट लंबी डंडी पर २॥-३ इंच लंबोतरे और सिलसिलेवार आते हैं। फूलों के भीतर का रंग पीलापन लिए लाल और बाहर का रंग नीलापन लिए लाल होता है। फूलों में पाँच पंखड़ियाँ और भीतर पीले रंग के पाँच केसर होते हैं। फूल बहुधा गिर जाया करते हैं, इसलिये जितने फूल आते हैं, उतनी फलियाँ नहीं लगतीं। फलियाँ २-२॥ फुट लंबी और ३-४ इंच चौड़ी, चिपटी तथा तलवार की तरह कुछ मुड़ी हुई टेढ़ी नोकवाली होती हैं। इनके अंदर भोजपत्र के समान तहदार पत्ते सटे रहते हैं और इन पत्तों के बीच में छोटे, गोल और हलके बीज होते हैं। कलियाँ और कोमल फलियाँ प्रायः कच्ची ही गिर जाया करती हैं। कार्त्तिक और अगहन के आरंभ तक इसके वृक्ष पर फूल फल आते रहते हैं और शीत काल के अंत और वसंत ऋतु में फलियाँ पक कर गिर जाती हैं और बीज हवा में उड़ जाते हैं। इन बीजों के गिरने से वर्षा ऋतु में पौधे उत्पन्न होते हैं।

वैद्यक के अनुसार यह कसैला, कड़ुवा, चरपरा, शीतल, रूक्ष, मलशोधक, बलकारी, वीर्यवर्धक, जठराग्नि को दीपन करनेवाला तथा वात, पित्त, कफ, त्रिदोष, ज्वर, सन्निपात, अरुचि, आमवात, कृमि रोग, वमन, खाँसी, अतिसार, तृषा, कोढ़, श्वास और वस्ति रोग का नाश करनेवाला है। इसकी छाल, फल और बीज औषध के काम में आते हैं, पर छाल का ही अधिक उपयोग होता है। इसका कच्चा फल कसैला, मधुर, हलका, हृदय और कंठ को हितकारी, रुचिकर, पाचक, अग्निदीपक, गरम, कटु, क्षार तथा वात, गुल्म, कफ बवासीर और कृमिरोग का नाश करनेवाला है।

पर्य्या०—श्योनाक। शुकनास। कट्वंग। कटंभर। मयूरजंघ। अरलुक। प्रियजीवी। कुटन्नट।

(२) इसी वृक्ष का एक और भेद जो संयुक्त प्रदेश, पश्चिमोत्तर प्रदेश, बम्बई, कर्नाटक, कारमंडल के किनारे तथा बिहार में अधिकता से होता है और राजपूताने में भी कहीं कहीं पाया जाता है। यह पेड़ ६० से ८० फुट तक ऊँचा होता है और पत्तेवाली सींक प्रायः ८ इंच से १ फुट तक लंबी होती है और कहीं कहीं सींकों की लंबाई २-३ फुट तक होती है। सींकों पर आठ से चौदह जोड़े समवर्त्ती पत्ते होते हैं। इसके फूल बड़े और कुछ पीले होते हैं। फलियाँ ताँबे के रंग की दो इंच लंबी तथा चौथाई इंच चौड़ी, गोल, दोनों ओर नुकीली और जड़ की ओर ऐंठी सी रहती हैं। पेड़ की छाल सफेद रंग की होती है। इसका गुण भी नं० (१) के समान ही है।

पर्य्या०—टुंटुक। दीर्घवृंत। टिंटुक। कीटनाशन। पूतिवृक्ष। पूतिनाश। भूतिपुष्प। मुनिद्रुम आदि।

सोनापेट—संज्ञा पुं० [हिं० सोना + पेट = गर्भ] सोने की खान।

सोनाफूल—संज्ञा पुं० [हिं० सोना + फूल] एक झाड़ी जो आसाम और खासिया पहाड़ियों पर होती है और जिसकी पत्तियों से एक प्रकार का भूरा रंग निकलता है। इसकी छाल के रेशों से रस्सियाँ बनती हैं। इसे गुलाबजम भी कहते हैं।

सोनामक्खी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्णमाक्षिक] (१) एक खनिज पदार्थ जो भारत में कई स्थानों में पाया जाता है। आयुर्वेद में इसकी गणना उपधातुओं में है। इसमें सोने का कुछ अंश और गुण वर्त्तमान रहने के कारण इसका नाम स्वर्ण-माक्षिक पड़ा है। सोने के अभाव में, औषधियों में इसका उपयोग किया जाता है। सोने के सिवा अन्य धातुओं का

सम्मिश्रण रहने से इसमें और भी गुण आ गए हैं। उपधातु होने के कारण, यथोचित रीति से शोधन कर इसका व्यवहार करना चाहिए, अन्यथा यह मंदाग्नि, बलहानि, विष्टंभिता, नेत्ररोग, कोढ़, गंडमाला, क्षय, आध्मान, कृमि आदि अनेक रोग उत्पन्न करती है। शोधितावस्था में यह वीर्यवर्द्धक, नेत्रों के लिये हितकर, स्वरशोधक, व्यवायी, कोढ़, सूजन, प्रमेह, बवासीर, बस्ति, पांडुरोग, उदर व्याधि, विषविकार, कंठरोग, खुजली, क्षय, भ्रम, हृल्लास, मूर्च्छा, खाँसी, श्वास आदि रोगों को नाश करनेवाली मानी गई है।

पर्य्या०—स्वर्णमाक्षिक। माक्षिक। हेममाक्षिक। ताप्यमाक्षिक। स्वर्णवर्ण। स्वर्णाह्वय। पीतमाक्षिक। माक्षिकधातु। तापीज। मधुमाक्षिक। तीक्ष्ण। मधु धातु।

(२) एक प्रकार का रेशम का कीड़ा।

सोनामाखी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोनामक्खी"।

सोनार-संज्ञा पुं० दे० "सुनार"।

सोनिजरद*-संज्ञा स्त्री० दे० "सोनजर्द"।

सोनित*-संज्ञा पुं० दे० "शोणित"।

सोनी†-संज्ञा पुं० [हिं० सोना] सुनार। स्वर्णकार। उ०—देव दिखावति कंचन सी तन औरन को मन तावै अगोनी। सुंदरि साँचे में दै भरि काढ़ी सी आपने हाथ गढ़ी विधि सोनी।—देव।

संज्ञा पुं० [देश०] तुन की जाति का एक वृक्ष।

सोनेइया-संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

सोनैया-संज्ञा स्त्री० [देश०] देवदाली। घघरबेल। बंदाल। वि० दे० "देवदाली"।

सोप-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छपी हुई चादर।

संज्ञा पुं० [अं०] साबुन।

संज्ञा पुं० [अं० स्वाब] बुहारी। झाड़ू। (लश०)

सोपत-संज्ञा पुं० [सं० सुपथ्य] सुबीता। सुपास। आराम का प्रबंध। उ०—बन बन बागत बहुत दिवन ते कृश तनु ह्वै हैं प्यारे। करत रह्यो ह्वै है को सोपत दूध बदन दोउ वारे।—रघुराज।

क्रि० प्र०—बँधना।—बाँधना।—बैठना।—बैठाना।—लगना।—लगाना।

सोपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह व्यक्ति जो चंडाल पुरुष और पुक्कसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो। चंडाल। श्वपाक। (२) काष्ठौषधि बेचनेवाला। वनौषधि बेचनेवाला।

सोपान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीढ़ी। ज़ीना। (२) जैनों के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का उपाय।

सोपानित-वि० [सं०] सोपान से युक्त। सीढ़ियों से युक्त। उ०—सरयू तीर हेम सोपानित सब थल करहिं प्रकासा।—रघुराज।

सोपारी†-संज्ञा स्त्री० दे० "सुपारी"।

सोपि-वि० [सं० सः + अपि] (१) वही। उ०—आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परम पद लहहीं। सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया।—तुलसी। (२) वह भी। उ०—सब ते परम मनोहर गोपी। नंदनंदन के नेह मेह जिनि लोक लीक लोपी। बरि कुबजा के रंगहि राचे तदपि तजी सोपी। तदपि न तजै भजै निसि बासर नैकहु न कोपी।—सूर।

सोफता-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुफ़्ता] (१) एकांत स्थान। निराली जगह। उ०—(क) इनका मन किसी और बात में लगा हुआ है, तुम कहीं की बात फिर कभी सोफते में पूछ लेना।—श्रद्धाराम। (ख) वह उसे सोफते में ले गया। (२) रोग आदि में कुछ कमी होना।

सोफियाना-वि० [अ० सूफ़ी + इयाना (फ़ा० प्रत्य०)] (१) सूफ़ियों का। सूफ़ी संबंधी। (२) जो देखने में सादा पर बहुत भला लगे। जैसे,—सोफियाना कपड़ा, सोफियाना ढंग।

विशेष—सूफ़ी लोग प्रायः बहुत सादे, पर सुंदर ढंग से रहते थे; इसी से इस शब्द का इस अर्थ में व्यवहार होने लगा।

सोफी-संज्ञा पुं० दे० "सूफ़ी"। उ०—सोइ जोगी सोइ जंगमा सोइ सोफी सोइ सेख।

सोब-संज्ञा पुं० दे० "सोप" (१)।

सोबन†-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्ण"।

सोभ*-संज्ञा स्त्री० दे० "शोभा"। उ०—अति सुंदर सीतल सोभ बसै। जहँ रूप अनेकन लोभ लसै।—केशव।

संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्वों के नगर का नाम।

सोभन-संज्ञा पुं० दे० "शोभन"।

सोभना*†-क्रि० अ० [सं० शोभन] सोहना। शोभित होना। उ०—(क) सिंधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजई। पद्मरागनि सों किधौं दिवि भूरि पूरित सोभई।—केशव। (ख) कुंडल सुंदर सोभिजै स्याम गात छबि दान।—केशव।

सोभर-संज्ञा पुं० [?] वह कोठरी या कमरा जिसमें स्त्रियाँ प्रसव करती हैं। सौरी। जच्चाखाना। सूतिकागार।

सोभरि-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि।

सोभांजन-संज्ञा पुं० दे० "शोभांजन"।

सोभाकारी-वि० [सं० शोभाकर] जो देखने में अच्छा हो। सुंदर। बढ़िया। उ०—शीश परश रे जटा मानौ रूप कियो त्रिपुरारि। तिलक ललित ललाट केसरबिंदु सोभाकारि।—सूर।

सोभायमान-वि० दे० "शोभायमान"।

सोभित*-वि० दे० "शोभित"।

सोम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक लता का नाम जिसका रस पीले रंग का और मादक होता था और जिसे प्राचीन वैदिक ऋषि पान करते थे। इसे पत्थर से कुचल कर

रस निकालते थे और वह रस किसी ऊनी कपड़े में छान लेते थे। यह रस यज्ञ में देवताओं को चढ़ाया जाता था और अग्नि में इसकी आहुति भी दी जाती थी। इसमें दूध या मधु भी मिलाया जाता था। ऋक् संहिता के अनुसार इसका उत्पत्ति स्थान मुजवान् पर्वत है; इसी लिये इसे मौजवत भी कहते थे। इसी संहिता के एक दूसरे सूक्त में कहा गया है कि श्येन पक्षी ने इसे स्वर्ग से लाकर इंद्र को दिया था। ऋग्वेद में सोम की शक्ति और गुणों की बड़ी स्तुति है। यह यज्ञ की आत्मा और अमृत कहा गया है। देवताओं को यह परम प्रिय था। वेदों में सोम का जो वर्णन आया है, उससे जान पड़ता है कि यह बहुत अधिक बलवर्द्धक उत्साहवर्द्धक, पाचक और अनेक रोगों का नाशक था। वैदिक काल में यह अमृत के समान बहुत ही दिव्य पेय समझा जाता था, और यह माना जाता था कि इसके पान से हृदय से सब प्रकार के पापों का नाश तथा सत्य और धर्म्मभाव की वृद्धि होती है। यह सब लताओं का पति और राजा कहा गया है। आर्य्यों की ईरानी शाखा में भी इस लता के रस का बहुत प्रचार था। पर पीछे इस लता के पहचाननेवाले न रह गए। यहाँ तक कि आयुर्वेद के सुश्रुत आदि आचार्य्यों के समय में भी इसके संबंध में कल्पना ही कल्पना रह गई जो सोम (चंद्रमा) शब्द के आधार पर की गई। पारसी लोग भी आजकल जिस 'होम' का अपने कर्मकांड में व्यवहार करते हैं, वह असली सोम नहीं है। वैद्यक में सोमलता की गणना दिव्यौषधियों में है। यह परम रसायन मानी गई है और लिखा गया है कि इसके पंद्रह पत्ते होते हैं जो शुक्ल पक्ष में—प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक—एक एक करके उत्पन्न होते हैं और फिर कृष्णपक्ष में—प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक—पंद्रह दिनों में एक एक करके वे सब पत्ते गिर जाते हैं। इस प्रकार अमावस्या को यह लता पत्रहीन हो जाती है।

पर्य्या०—सोमवल्ली। सोमा। क्षीरी। द्विजप्रिया। शणा। यज्ञश्रेष्ठा। धनुलता। सोमार्हा। गुल्मवल्ली। वज्रवल्ली। सोमक्षीरा। यज्ञाह्वा।

(२) एक प्रकार की लता जो वैदिक काल के सोम से भिन्न है। यह दूसरी सोमलता दक्षिण की सूखी पथरीली जमीन में होती है। इसका क्षुप झाड़दार और गाँठदार तथा पत्रहीन होता है। इसकी शाखा राजहंस के पर के समान मोटी और हरी होती है और दो गाँठों के बीच की शाखा ४ से ६ इंच तक लंबी होती है। इसके फूल ललाई लिये बहुत हलके हरे रंग के होते हैं। फलियाँ ४-५ इंच लंबी और तिहाई इंच गोल होती हैं। बीज चिपटे और ½ से ¾ इंच तक लंबे होते हैं। (३) वैदिक काल के एक प्राचीन देवता जिनकी ऋग्वेद में बहुत स्तुति की गई है। इंद्र और वरुण की भाँति इन्हें मानवी रूप नहीं दिया गया है। ये सूर्य के समान प्रकाशमान्, बहुत अधिक वेगवान्, जेता, योद्धा और सब को संपत्ति, अन्न तथा गौ, बैल आदि देनेवाले माने जाते थे। ये इंद्र के साथ उसी के रथ पर बैठकर लड़ाई में जाते थे। कहीं कहीं ये इंद्र के सारथी भी कहे गए हैं। आर्य्यों की ईरानी शाखा में भी इनकी पूजा होती थी और आवस्ता में इनका नाम हओम या होम आया है। (४) चंद्रमा। (५) सोमवार। (६) सोमरस निकालने का दिन। (७) कुबेर। (८) यम। (९) वायु। (१०) अमृत। (११) जल। (१२) सोमयज्ञ। (१३) एक बानर का नाम। (१४) एक पर्वत का नाम। (१५) एक प्रकार की ओषधि। (१६) स्वर्ग। आकाश। (१७) अष्ट वसुओं में से एक। (१८) पितरों का एक वर्ग। (१९) माँड़। (२०) काँजी। (२१) हनुमंत के अनुसार मालकोश राग के एक पुत्र का नाम। —संगीत। (२२) विवाहित पति।—सत्यार्थप्रकाश। (२३) एक बहुत बड़ा ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी अंदर से बहुत मजबूत और चिकनी निकलती है। चीरने के बाद इसका रंग लाल हो जाता है। यह प्रायः इमारत के काम में आती है। आसाम में इसके पत्तों पर मूगा रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। (२४) एक प्रकार का स्त्रीरोग। सोमरोग। (२५) यज्ञद्रव्य। यज्ञ की सामग्री।

संज्ञा पुं० [सं० सोमन्] (१) वह जो सोम रस चुआता या बनाता हो। (२) सोमयज्ञ करनेवाला। (३) चंद्रमा।

सोमक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) एक राजा का नाम। (३) भागवत के अनुसार कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (४) द्रुपद वंश, या इस वंश का कोई राजा। (५) स्त्रियों का सोम नामक रोग। (६) सहदेव के एक पुत्र का नाम।

सोमकर—संज्ञा पुं० [सं० सोम + कर] चंद्रमा की किरण।

उ०—मधुर प्रिया घर सोमकर माखन दाख समान। बालक बातें तोतरी कविकुल उक्ति प्रमान।

सोमकर्म—संज्ञा पुं० [सं० सोम कर्मन्] सोम प्रस्तुत करने की क्रिया। सोम रस तैयार करना।

सोमकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार २१वें कल्प का नाम।

सोमकांत—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रकांत मणि।

वि० (१) चंद्रमा के समान प्रिय। (२) जिसे चंद्रमा प्रिय हो।

सोमकाम—वि० [सं०] सोमपान करने का इच्छुक। सोमकामी।

संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान करने की इच्छा।

सोमकीर्त्ति—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

सोमकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सोमकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वामन पुराण के अनुसार एक राजर्षि का नाम जो भरद्वाज के शिष्य थे।

सोमक्रतवीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

सोमक्रतु—संज्ञा पुं० [सं०] सोमयज्ञ।

सोमक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] अमावस्या, जिसमें चंद्रमा के दर्शन नहीं होते।

सोमक्षीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमवल्ली। सोमराजी। बकुची।

सोमक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमवल्ली।

सोमखंडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमवल्ली।

सोमखडुक्क—संज्ञा पुं० [सं०] नैपाल के एक प्रकार के जैन साधु।

सोमगंधक—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त पद्म। लाल कमल।

सोमगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सोमगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमराजी। सोमवल्ली।

सोमगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम। (२) मेरु-ज्योति। (३) एक आचार्य का नाम।

सोमगृष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेठा। कुष्मांड लता।

सोमगोपा—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

सोमग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का ग्रहण। (२) घोड़ों का एक ग्रह जिससे ग्रस्त होने पर वे काँपा करते हैं।

सोमग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का ग्रहण।

सोमघृत—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-रोगों की एक औषध जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—सफेद सरसों, बच, भार्गी, शंखाहुली, पुनर्नवा, दूधी (क्षीरकाकोली) खिरेंटी, कुटकी, गंभारी के फल (त्रिशिक), फालसा, दाख, अनन्तमूल, काला अनंतमूल, हलदी, पाठा, देवदारु, दालचीनी, मुलेठी, मजीठ, त्रिफला, फूल प्रियंगु, अडूसे के फूल, हुरहुर, सोंचर नमक और गेरू ये सब मिलाकर एक सेर घृतपाक विधि के अनुसार चार सेर गौ के घी में पाक करना चाहिए। गर्भवती स्त्री को दूसरे महीने से छः महीने तक इसका सेवन कराया जाता है। इससे गर्भ और योनि के समस्त दोषों का निवारण होता है, रजवीर्य शुद्ध होता है और स्त्री बलिष्ठ तथा सुंदर संतान उत्पन्न करती है। पुरुषों को भी दूषित वीर्य की शुद्धि के लिये दिया जा सकता है।

सोमचमस—संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान करने का पात्र।

सोमज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुध ग्रह। (२) दूध।
वि० चंद्रमा से उत्पन्न।

सोमजाजी—संज्ञा पुं० दे० "सोमयाजी"। उ०—व्याध अपराध की साध राखी कौन ? पिंगला कौन मति भक्ति भेई। कौन धौं सोमजाजी अजामिल अधम ? कौन गजराज धौं बाजपेई। —तुलसी।

सोमतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

सोमदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम। (बौद्ध)

सोमदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक गंधर्वी का नाम। (रामा०) (२) गंधपलाशी। कपूर कचरी।

सोमदिन—संज्ञा पुं० [सं० सोम + दिन] सोमवार। चंद्रवार। उ०—रस गोरस खेती सकल विप्र काज सुभ साज। राम अनुग्रह सोम दिन प्रमुदित प्रजा सुराज।—तुलसी।

सोमदेव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम देवता। (२) चंद्रमा देवता। (३) कथासरित्सागर के रचयिता का नाम जो काश्मीर में ११वीं शताब्दी में हुए थे।

सोमदेवत—वि० [सं०] जिसके देवता सोम हों।

सोमदैवत्य—वि० दे० "सोमदेवत"।

सोमदैवत—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र।

सोमधान—वि० [सं०] जिसमें सोम हो। सोमयुक्त।

सोमधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश। आसमान। (२) स्वर्ग।

सोमधेय—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद।

सोमनंदी—संज्ञा पुं० [सं० सोमनन्दिन्] (१) महादेव के एक अनुचर का नाम। (२) एक प्राचीन वैयाकरण का नाम।

सोमनंदीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव जी के एक लिंग का नाम।

सोमन—संज्ञा पुं० [सं० सोमन] एक प्रकार का अस्त्र। उ०—तथा पिशाच अस्त्र अरि मोहन लेहु राज दुलहेट। तामस सोमन लेहु बार बहु शत्रुन को दरभेंट।—रघुराज।

सोमनस—संज्ञा पुं० दे० "सौमनस्य"। उ०—पारिभाद्र सोमनस अरु अविज्ञात सुरवर्ष। रमणक अप्याजन सहित देउ सुरांवन हर्ष।—केशव।

सोमनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक। (२) काठियावाड़ के पश्चिम तट पर स्थित एक प्राचीन नगर जहाँ उक्त ज्योतिर्लिंग का मंदिर है। मंदिर के विपुल धन-रत्न की प्रसिद्धि सुन सन् १०२४ ई० में महमूद गज़नवी ने इस पर चढ़ाई की और यहाँ से करोड़ों की संपत्ति उसके हाथ लगी। मूर्ति तोड़ने पर उसमें से बहुमूल्य हीरे पन्ने आदि रत्न निकले थे। आसपास के लोगों ने महमूद के काम में बाधा दी थी, पर वे सफल नहीं हुए। अनंतर वह देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण को वहाँ का शासक नियुक्त कर गजनी लौट गया। चौलुक्यराज दुर्लभराज ने उससे सोमनाथ का उद्धार किया। इसके बाद राठौरों ने उस पर अधिकार जमाया। पर सन् १३०० में यह फिर मुसलमानों के अधिकार में आ गया। आज कल यह जूनागढ़ के नवाब वंश के शासनाधीन है। इसे सोमनाथपट्टन या सोमनाथपत्तन भी कहते हैं।

सोमनाथ रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक रसौषध जिसके

बनाने की विधि इस प्रकार है—फरहद (पारिभद्र) के रस में शोधा हुआ पारा दो तोले और मुसाकानी के रस में शोधी हुई गंधक दो तोले, दोनों की कज्जली कर उसमें आठ तोले लोहा मिलाकर घीकुआर के रस में घोंटते हैं। फिर अभ्रक, बंग, खपरिया, चाँदी, सोनामक्खी तथा सोना एक एक तोला मिलाकर घीकुआर के रस में भावना देते हैं। इसकी दो दो रत्ती की गोली बनाई जाती है जो शहद के साथ खाई जाती है। इसके सेवन से सब प्रकार के प्रमेह और सोमरोग का निवारण होता है।

सोमनेत्र-वि० [सं०] (१) सोम जिसका नेता या रक्षक हो। (२) सोम के समान नेत्रोंवाला।

सोमप-वि० [सं०] (१) जिसने यज्ञ में सोमरस पान किया हो। (२) सोमरस पीनेवाला। सोमपायी। सोमपा।
संज्ञा पुं० (१) सोमयज्ञ करनेवाला। (२) विश्वेदेवा में से एक का नाम। (३) स्कंद के एक पारिषद का नाम। (४) हरिवंश के अनुसार एक असुर का नाम। (५) एक ऋषि वंश का काम। (६) पितरों की एक श्रेणी। (७) बृहत्संहिता के अनुसार एक जनपद का नाम।

सोमपति-संज्ञा पुं० [सं०] (सोम के स्वामी) इंद्र का एक नाम।

सोमपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कुश जाति की एक घास। डाभ। दर्भ।

सोमपद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरिवंश के अनुसार एक लोक का नाम। (२) एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

सोमपर्व-संज्ञा पुं० [सं० सोमपर्वन्] सोम उत्सव का काल। सोमपान करने का उत्सव या पुण्य काल।

सोमपा-वि० [सं०] (१) जिसने यज्ञ में सोमपान किया हो। (२) सोमपान करनेवाला। सोमपायी।
संज्ञा पुं० (१) सोमयज्ञ करनेवाला। (२) पितरों की एक श्रेणी (विशेष कर ब्राह्मणों के पितृ पुरुष)। (३) ब्राह्मण।

सोमपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम रखने का बरतन। (२) सोम पीने का बरतन।

सोमपान-संज्ञा पुं० [सं०] सोम पीने की क्रिया। सोम पीना।

सोमपायी-वि० [सं० सोमपायिन्] [स्त्री० सोमपायिनी] सोम पीनेवाला। सोमपान करनेवाला।

सोमपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम का रक्षक। (२) गंधर्व जो सोम की रक्षा करनेवाले माने गए हैं।

सोमपावन-वि० [सं०] सोमपान करनेवाला। जो सोम पान करता हो।

सोमपित्री-संज्ञा स्त्री० [सं० सोम + पात्री] रगड़ा हुआ चंदन रखने का बरतन।

सोमपीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोमपान। (२) सोमयज्ञ।

सोमपीती-संज्ञा पुं० [सं० सोमपीतिन्] सोमपान करनेवाला। सोम पीनेवाला।

सोमपीथ-संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान। सोम पीने की क्रिया।

सोमपीथी-वि० [सं० सोमपीथिन्] सोमपान करनेवाला। सोमपायी।

सोमपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सोम या चंद्रमा के पुत्र, बुध।

सोमपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम का रक्षक। (२) सोम का अनुचर या दास।

सोमपृष्ठ-वि० [सं०] (पर्वत) जिस पर सोम हो।

सोमपेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक यज्ञ जिसमें सोमपान किया जाता था। (२) सोमपान। सोम पीने की क्रिया।

सोमप्रदोष संज्ञा पुं० [सं०] सोमवार को किया जानेवाला एक व्रत जिसमें दिन भर उपवास करके संध्या को शिवजी की पूजा कर भोजन किया जाता है। स्कंदपुराण में लिखा है कि यह व्रत मनस्कामना पूर्ण करनेवाला है। आज कल लोग प्रायः श्रावण के सोमवारों को ही यह व्रत करते हैं। सोमव्रत।

सोमप्रभ-वि० [सं०] सोम या चंद्रमा के समान प्रभावाला। कांतिवान्।

सोमप्रवाक-संज्ञा पुं० [सं०] सोमयज्ञ में घोषणा करनेवाला।

सोमबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुमुद। (२) सूर्य। (३) बुध।

सोमबेल-संज्ञा स्त्री० [सं० सोम + हिं० बेल] गुलचाँदनी या चाँदनी का पौधा।

सोमभक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सोम का पीना। सोमपान।

सोमभवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नर्मदा नदी का एक नाम।

सोमभू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (चंद्रमा के पुत्र) बुध। (२) चौथे कृष्ण वासुदेव का नाम। (जैन)
वि० (१) सोम से उत्पन्न। (२) चंद्रवंशीय।

सोमभृत-वि० [सं०] सोम लानेवाला।

सोमभोजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (२) सोमपान।

सोममख-संज्ञा पुं० [सं०] सोमयज्ञ।

सोममद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम का नशा। (२) सोम का रस जिसके पीने से नशा होता है।

सोमयज्ञ-संज्ञा पुं० दे० "सोमयाग"।

सोमयाग-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक त्रैवार्षिक यज्ञ जिसमें सोमरस पान किया जाता था।

सोमयाजी-संज्ञा पुं० [सं० सोमयाजिन्] वह जो सोमयाग करता हो। सोमयाग करनेवाला।

सोमयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) ब्राह्मण। (३) पीत चंदन। हरि चंदन।

सोमरक्ष-वि० [सं०] सोम का रक्षक।

सोमरत्नी-वि० दे० "सोमरक्ष"।

सोमरस-संज्ञा पुं० [सं०] सोमलता का रस। वि० दे० "सोम"।

सोमरा-संज्ञा पुं० [देश०] (१) जुते हुए खेत का दुबारा जोता जाना। दो चरस। (२) समचतुर्भुज खेत का चौड़ाई में जोता जाना।

सोमराग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का राग (संगीत)।

सोमराज-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

सोमराजसुत-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का पुत्र, बुध।

सोमराजिका-संज्ञा स्त्री० दे० "सोमराजी" (१)

सोमराजी-संज्ञा पुं० [सं० सोमराजिन्] बाकुची। बकुची। वि० दे० "बकुची"।

संज्ञा स्त्री० (१) बकुची। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में छः वर्ण होते हैं। यह दो यगण का वृत्त है। इसे शंखनारी भी कहते हैं। उ०—चमू बाल देखो। मुरंगी सुभेखो। धरे याहि आजी। कहे सोमराजी।—छंद प्रभाकर।

सोमराजी तैल-संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठादि चर्मरोगों की एक तैलौषध जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—बकुची का काढ़ा, हलदी, दारुहलदी, सफेद सरसों, कूट, करंज, पँवार के बीज, अमलतास के पत्ते, ये सब चीजें एक सेर लेकर चार सेर सरसों के तेल और सोलह सेर पानी में पकाते हैं। इस तेल के लगाने से अठारहों प्रकार के कोढ़, नासूर, दुष्ट व्रण, नीलिका, व्यंग, फुंसी, गंभीर संज्ञक वातरक्त, कंडु, कच्छु, दाद और खाज का निवारण होता है। इसका एक और भेद होता है जो महासोमराजी तैल कहलाता है। यह कुष्ट रोग के लिये परम उपकारी माना गया है। इसके बनाने की विधि इस प्रकार है। चित्रक, कलियारी, सोंठ, कूट, हलदी, करंज, हरताल, मैनसिल, विष्णुकांता, आक, कनेर, छतिवन, गाय का गोबर, खैर, नीम के पत्ते, मिर्च, कसौंदी, ये सब चीजें दो दो तोले लेकर इनका काढ़ा कर १२॥ सेर बकुची के काढ़े और ६४ सेर पानी और १६ सेर गोमूत्र में पकाते हैं।

सोमराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रलोक।

सोमराष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

सोम रोग-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का एक रोग, जिसमें वैद्यक के अनुसार अति मैथुन, शोक, परिश्रम आदि कारणों से शरीरस्थ जलीय धातु क्षुब्ध होकर योनि मार्ग से निकलने लगती है। यह पदार्थ श्वेत वर्ण, स्वच्छ और गंध-रहित होता है। इसमें कोई वेदना नहीं होती, पर वेग इतना प्रबल होता है कि सहा नहीं जाता। रोगिणी अत्यन्त कृश और दुर्बल हो जाती है। रंग पीला पड़ जाता है। शरीर शिथिल और अकर्मण्य हो जाता है। सिर में दर्द हुआ करता है। गला और तालु सूखा रहता है। प्यास बहुत लगती है। खाना पीना नहीं रुचता और मूर्छा आने लगती है। यह रोग पुरुषों के बहुमूत्र रोग के सदृश होता है।

सोमर्षि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सोमल-संज्ञा पुं० [देश०] संखिया का एक भेद जिसे सफेद संखल भी कहते हैं।

सोमलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गिलोय। गुडूची। (२) ब्राह्मी। संज्ञा स्त्री० दे० "सोम" (१)।

सोमलतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गिलोय। गुडूची। (२) दे० "सोम" (१)।

सोमलदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजतरंगिणी के अनुसार एक राजपुत्री का नाम।

सोमलोक-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का लोक। चंद्रलोक।

सोमवंश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) युधिष्ठिर का एक नाम। (२) चंद्रवंश। उ०—सोमदत्त भरि जोम चलेउ भट सोमवंश वर। पुलकि रोमबल तोम महत सुदरोम रोमधर।—गिरिधर।

सोमवंशीय-वि० [सं०] (१) चंद्रवंश में उत्पन्न। (२) चंद्रवंश संबंधी। चंद्रवंश का।

सोमवंश्य-वि० दे० "सोमवंशीय"।

सोमवत्-वि० [सं०] [स्त्री० सोमवती] (१) सोमयुक्त। चंद्रयुक्त। (२) चंद्रमा के समान।

सोमवती-संज्ञा स्त्री० दे० "सोमवती अमावस्या"।

सोमवती अमावस्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमवार को पड़नेवाली अमावस्या जो पुराणानुसार पुण्य तिथि मानी जाती है। प्रायः लोग इस दिन गंगा स्नान और दान-पुण्य करते हैं।

सोमवती तीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

सोमवर्चस्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वेदेवाओं में से एक का नाम। (२) एक गंधर्व का नाम। (हरिवंश)

वि० सोम के समान तेजयुक्त।

सोमवल्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद खैर। श्वेत खदिर। (२) कायफल। कटफल। (३) करंज। (४) रीठा करंज। गुच्छ पुष्पक। (५) बबूर। बर्बर।

सोमवल्लरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्राह्मी। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में रगण, जगण, रगण, जगण और रगण होते हैं। इसे 'चामर' और 'तूण' भी कहते हैं। उ०—रोज रोज राधिका सखीन संग आइकै। खेल रास कान्ह संग चित्त हर्ष लाइकै। बाँसुरी समान बोल सप्त ग्वाल गाइकै। कृष्णही रिझावहीं सु चामरै डुलाइ कै।—छंदः प्रभाकर। (३) दे० "सोम" (१)।

सोमवल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बकुची। सोमराजी। (२) दे० "सोम" (१)।

सोमवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गिलोय। गुडूची। (२) बकुची। सोमराजी। (३) छिरेंटी। पाताल गारुड़ी। (४) ब्राह्मी। (५) सुदर्शन। (६) लताकरंज। कठकरंजा। (७) गजपीपल। गजपिप्पली। (८) बन-कपास। वनकार्पास। (९) दे० "सोम" (१)।

सोमवामी-वि० [सं० सोमवामिन्] सोम वमन करनेवाला।

संज्ञा पुं० वह ऋत्विज् जो खूब सोम पान करता हो।

सोमवायव्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि-वंश का नाम।

सोमवार-संज्ञा पुं० [सं०] सात वारों में से एक वार जो सोम अर्थात् चंद्रमा का माना जाता है। यह रविवार के बाद और मंगलवार के पहले पड़ता है। चंद्रवार।

सोमवारी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोमवती अमावस्या"।

वि० सोमवार संबंधी। सोमवार का। जैसे,—सोमवारी बाजार, सोमवारी अमावस्या।

सोमवासर-संज्ञा पुं० [सं०] सोमवार। चंद्रवार।

सोमविक्रयी-संज्ञा पुं० [सं० सोमविक्रयिन्] सोम रस बेचनेवाला।

विशेष—मनु में सोम रस बेचनेवाला दान के अयोग्य कहा गया है। उसे दान देने से दाता दूसरे जन्म में विष्ठा खानेवाली योनि में उत्पन्न होता है।

सोमवीथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमंडल।

सोमवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कायफल। कटफल। (२) सफेद खैर। श्वेत खदिर।

सोमवृद्ध-वि० [सं०] जो खूब सोम पान करता हो। जिसकी उमर सोम पान करने में ही बीती हो।

सोमवेश-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन मुनि का नाम।

सोमव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साम का नाम। (२) दे० "सोमप्रदोष"।

सोमकलशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

सोमशुष्म-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

सोमसंभवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधपलाशी। कपूर कचरी।

सोमसंस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमयज्ञ का एक प्रारंभिक कृत्य।

सोमसंज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर। कर्पूर।

सोमसद्-संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार विराट् के पुत्र और साध्यगण के पितर।

सोमसलिल-संज्ञा पुं० [सं०] सोम का जल। सोमरस।

सोमसव-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में किया जानेवाला एक प्रकार का कृत्य जिसमें सोम का रस निकाला जाता था।

सोमसाम-संज्ञा पुं० [सं० सोमसामन्] एक साम का नाम।

सोमसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद खैर। श्वेत खदिर। (२) बबूल। कीकर। बर्बूर।

सोमसिंधु-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सोमसिद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बुद्ध का नाम। (२) वह शास्त्र जिससे भविष्य की बातें जानी जाती हैं। ज्योतिष-शास्त्र।

सोमसुंदर-वि० [सं०] चंद्रमा के समान सुंदर। बहुत सुंदर।

सोमसुत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम रस निकालनेवाला। (२) यज्ञ में सोम रस चढ़ानेवाला ऋत्विज्।

सोमसुत-संज्ञा पुं० [सं०] (चंद्रमा के पुत्र) बुध।

सोमसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (चंद्रमा की पुत्री) नर्मदा नदी।

सोमसुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोम का रस निकालने की क्रिया।

सोमसुत्या-संज्ञा स्त्री० दे० "सोमसुति"।

सोमसुत्वा-संज्ञा पुं० [सं० सोमसुत्वन्] वह जो यज्ञ में सोम रस चढ़ाता हो।

सोमसूक्ष्म-संज्ञा पुं० [सं० सोमसूक्ष्मन्] एक वैदिक ऋषि का नाम।

सोमसूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] शिवलिंग की जलधरी से जल निकलने का स्थान या नाली।

सोमसेन-संज्ञा पुं० [सं०] शंबर के एक पुत्र का नाम।

सोमहूति-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सोमांग-संज्ञा पुं० [सं०] सोम याग का एक अंग।

सोमांशु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा की किरण। (२) सोम लता का अंकुर। (३) सोम याग का एक अंग।

सोमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोम लता। (२) महाभारत के अनुसार एक अप्सरा का नाम। (३) मारकंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सोमाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

सोमाद्-वि० [सं०] सोम भक्षण करनेवाला।

सोमाधार-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के पितर।

सोमापि-संज्ञा पुं० [सं०] सहदेव के एक पुत्र का नाम। (पुराण)

सोमापूषण-संज्ञा पुं० [सं०] सोम और पूषण नामक देवता।

सोमापौष्ण-संज्ञा पुं० [सं०] सोम और पूषण का। सोम और पूषण संबंधी।

सोमाभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा की किरणें। चंद्रावली।

सोमायन-संज्ञा पुं० [सं०] महीने भर का एक व्रत जिसमें २७ दिन दूध पीकर रहने और ३ दिन तक उपवास करने का विधान है।

विशेष—याज्ञवल्क्य के अनुसार यह व्रत करनेवाला पहले सप्ताह (सात रात) गौ के चार स्तनों का, दूसरे सप्ताह तीन स्तनों का, तीसरे सप्ताह दो स्तनों का और ६ रात एक स्तन का दूध पीए और तीन दिन उपवास करे।

सोमारुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] सोम और रुद्र नामक देवता।

सोमारौद्र-वि० [सं०] सोम और रुद्र का। सोम और रुद्र संबंधी।

सोमार्च्चि-संज्ञा पुं० [सं० सोमार्चिस्] देवताओं के एक प्रासाद का नाम। (रामा०)

सोमार्द्धधारी–संज्ञा पुं० [सं० सोमार्द्धधारिन्] (मस्तक पर अर्द्ध चंद्र धारण करनेवाले) शिव ।

सोमाल–वि० [सं०] कोमल । नरम । मुलायम ।

सोमालक–संज्ञा पुं० [सं०] पुखराज । पुष्पराग मणि ।

सोमावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा की माता का नाम । उ०—विनता सुत खगनाथ चन्द्र सोमावति केरे । सुरावती के सूर्य रहत जग जासु उजेरे ।—विश्राम ।

सोमावर्त–संज्ञा पुं० [सं०] वायुपुराण के अनुसार एक स्थान का नाम ।

सोमाश्रम–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

सोमाश्रयायण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम । (२) शिव जी का स्थान ।

सोमाष्टमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमवार को पड़नेवाली अष्टमी तिथि ।

सोमाष्टमी व्रत–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो सोमवार को पड़नेवाली अष्टमी को किया जाता है ।

सोमास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र जो चंद्रमा का अस्त्र माना जाता है । उ०—सोमास्त्रहु सौरास्त्र सुनिज निज रूपनि धारैं । रामहिं सों कर जोरि सबै बोलैं इक बारैं ।—पद्माकर ।

सोमाह–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का दिन, सोमवार ।

सोमाहुत–वि० [सं०] जिसकी सोम रस द्वारा तृप्ति की गई हो ।

सोमाहुति–संज्ञा पुं० [सं०] भार्गव ऋषि का नाम । ये मंत्रद्रष्टा थे। संज्ञा स्त्री० सोम की आहुति ।

सोमाह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महा सोमलता ।

सोमित्रि–संज्ञा पुं० [सं० सौमित्र] लक्ष्मण । (डिं०)

सोमी–वि० [सं० सोमिन्] जिसमें सोम हो । सोमयुक्त ।
संज्ञा पुं० (१) सोम की आहुति देनेवाला । (२) सोम यज्ञ करनेवाला । सोमयाजक ।

सोमीय–वि० [सं०] सोम संबंधी । सोम का ।

सोमेंद्र–वि० [सं०] सोम और इंद्र का । सोम और इंद्र संबंधी ।

सोमेज्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोम यज्ञ ।

सोमेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक शिवलिंग जो काशी में स्थापित है । कहते हैं, भगवान सोम ने यह शिवलिंग प्रतिष्ठित किया था । (२) दे० "सोमनाथ" (१) । (३) श्रीकृष्ण का एक नाम । (४) एक देवता का नाम । (राज०) (५) संगीत शास्त्र के एक आचार्य का नाम ।

सोमेश्वर रस–संज्ञा पुं० [सं०] एक रसौषधि जो "भैषज्य-रत्नावली" के अनुसार सब प्रकार के प्रमेह, मूत्रघात, सन्निपातिक ज्वर, भगंदर, यकृत, प्लीहा, उदर रोग तथा सोम रोग का शीघ्र शमन करनेवाली है । इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—सेमल की छाल, कोह (अर्जुन) की छाल, लोध, अगर, गनियारी की छाल, रक्त चंदन, हलदी, दारुहलदी, आँवला, अनारदाना, गोखरू के बीज, जामुन की छाल, खस और गुग्गुल प्रत्येक चार चार तोले और पारा, गंधक, लोहा, धनिया, मोथा, इलायची, तेजपत्ता, पद्माक (पद्मकाष्ठ), पाढ़ (पाठा), रसौत, वायविडंग, सुहागा और जीरा आध आध तोला इन सब का खूब बारीक चूर्ण कर दो दो रत्ती की गोली बनाते हैं । बकरी के दूध या नारियल के जल के साथ इसका सेवन किया जाता है ।

सोमोद्गीत–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम ।

सोमोत्पत्ति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का जन्म । (२) अमावस्या के उपरांत चंद्रमा का फिर से निकलना ।

सोमोद्भव–संज्ञा पुं० [सं०] (चंद्रमा को उत्पन्न करनेवाले) श्री कृष्ण का एक नाम ।
वि० चंद्रमा से उत्पन्न ।

सोमोद्भवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नर्मदा नदी का एक नाम ।

सोमौती†–संज्ञा स्त्री० दे० "सोमवती अमावस्या" ।

सोम्य–वि० [सं०] (१) सोमयुक्त । (२) सोम संबंधी । सोम का । (३) सोमपान के योग्य । (४) सोम की आहुति देनेवाला ।

सोयॐ–सर्व० [हिं० सो + ही, ई] वही ।
सर्व० दे० "सो" । उ०—कै लघु कै बड़ मीत भल, सम सनेह दुख सोय । तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस, मिले महा विष होय ।—तुलसी ।

सोया–संज्ञा पुं० दे० "सोआ" ।

सोरंजान–संज्ञा स्त्री० दे० "सूरंजान", "सुरंजान" ।

सोरॐ–संज्ञा पुं० [फ़ा० शोर] (१) शोर । हल्ला । कोलाहल । उ०—(क) भएउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप-राउर सोर ।—तुलसी । (ख) सोर भयौ घोर चारो ओर नभ मंडल में आए घन, आए घन आयकै उघरिगे । (२) प्रसिद्धि । नाम । उ०—तुम अनियारे दृगन को सुनियत जग में सोर । —रसनिधि ।
संज्ञा स्त्री० [सं० शटा, प्रा० सड़] जड़ । मूल ।
संज्ञा पुं० [सं०] वक्र गति । टेढ़ी चाल ।
संज्ञा पुं० [अं० शोर] तट । किनारा ।

मुहा०—सोर पड़ना = (जहाज का) किनारे लगना ।

सोरठ्ठ–संज्ञा पुं० दे० "सोरठ" ।

सोरठ–संज्ञा पुं० [सं० सौराष्ट्र] (१) भारत का एक प्रदेश जो राजस्थान के दक्षिण-पश्चिम पड़ता है । गुजरात और दक्षिणी काठियावाड़ का प्राचीन नाम । (२) सोरठ देश की राजधानी, सूरत । उ०—नृप इक वीरभद्र अस नामा । सोरठ नगर माहिं तेहि धामा ।—विश्राम ।
संज्ञा पुं०, स्त्री० ओड़व जाति का एक राग जो हिंडोल का पुत्र कहा गया है ।

विशेष—इसमें गांधार और धैवत स्वर वर्जित हैं। यह पंचम, भैरवी, गुर्जरी, गांधार और कल्याण के संयोग से बना माना जाता है। इसके गाने का समय रात १६ दंड से २० दंड तक है। बंगदेश के कई संगीताचार्य्य इसे संपूर्ण जाति का राग कहते हैं। कोई सोरठ को षाडव जाति की रागिनी मानते हैं।

मुहा०—खुली सोरठ कहना = खुले आम कहना। कहने में संकोच या भय न करना।

सोरठ मल्लार-संज्ञा पुं० [हिं० सोरठ + मल्लार] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

सोरठा-संज्ञा पुं० [सं० सौराष्ट्र, हिं० सोरठ (देश)] अड़तालीस मात्राओं का एक छंद जिसके पहले और तीसरे चरण में ग्यारह ग्यारह और दूसरे तथा चौथे चरण में तेरह तेरह मात्राएँ होती हैं। इसके सम चरणों में जगण का निषेध है। दोहे को उलट देने से सोरठा हो जाता है। उ०—जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर बदन। करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।—तुलसी।

विशेष—जान पड़ता है कि इस छंद का प्रचार अपभ्रंश काल में पहले पहल सोरठ या सौराष्ट्र देश में हुआ था; इसी से यह नाम पड़ा।

सोरठी-संज्ञा स्त्री० [सोरठ (देश)] एक रागिनी जो सिंधूड़ा और बड़हंस के संयोग से बनी है। हनुमत के मत से यह मेघ राग की पत्नी है।

सोरण-वि० [सं०] कुछ कसैला, मीठा, खट्टा और नमकीन। चरपरा।

सोरन-संज्ञा पुं० [सं० शूरण] जमींकंद। सूरन।

सोरनी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सवरना + ई (प्रत्य०)] (१) झाड़ू। बुहारी। कूचा। (२) मृतक का एक संस्कार जो तीसरे दिन होता है और जिसमें उसकी चिता की राख बटोर कर नदी या जलाशय में फेंक दी जाती है। त्रिरात्रि।

सोरबा-संज्ञा पुं० दे० "शोरबा"।

सोरभखी-संज्ञा स्त्री० [सं० शूरभखी] तोप या बंदूक। (डिं०)

सोरह‡ॐ-वि० संज्ञा पुं० दे० "सोलह"। उ०—संवत सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।—तुलसी।

सोरहिया-संज्ञा स्त्री० दे० "सोरही"।

सोरही†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सोलह] (१) जूआ खेलने के लिये सोलह चित्ती कौड़ियों का समूह। (२) वह जूआ जो सोलह कौड़ियों से खेला जाता है। (३) कटी हुई फ़सल की सोलह अँटियों या पूलों का बोझ (जिससे खेत की पैदावार का अंदाज लगाते हैं। जैसे,—फी बीघा सौ सोलही)

सोरा‡ॐ-संज्ञा पुं० दे० "शोरा"। उ०—सीतलताऽरु सुगंध की घटै न महिमा मूर। पीनसवारे ज्यौं तज्यौ सोरा जानि कपूर।—बिहारी।

सोराघास-संज्ञा पुं० [सं०] बिना नमक का मांस का रसा। बिना नमक का शोरवा।

सोराष्ट्रिक-संज्ञा पुं० दे० "सौराष्ट्रिक"।

सोरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्रवण = बहना या चूना] बरतन में महीन छेद जिसमें से होकर पानी आदि टपक कर बह जाता हो।

सोर्णभ्रू-वि० [सं०] जिसकी दोनों भँवों के बीच रोएँ की भँवरी सी हो।

सोलंकी-संज्ञा पुं० [देश०] क्षत्रियों का एक प्राचीन राजवंश जिसका अधिकार गुजरात पर बहुत दिनों तक था।

विशेष—ऐसा माना जाता है कि सोलंकियों का राज्य पहले अयोध्या में था जहाँ से वे दक्षिण की ओर गए और वहाँ से फिर गुजरात, काठियावाड़, राजपूताने और बघेलखंड में उनके राज्य स्थापित हुए। उत्तरी भारत में जिस समय थानेश्वर और कन्नौज के परम प्रतापी सम्राट् हर्षवर्द्धन का राज्य था, उस समय दक्षिण में सोलंकी सम्राट द्वितीय पुलकेशी का राज्य था, जिससे हर्षवर्द्धन ने हार खाई थी। रीवाँ का बघेल वंश इसी सोलंकी वंश की एक शाखा है। इस समय सोलंकी और बघेल अपने को अग्नि-वंशी बतलाते हैं और अपने मूल पुरुष चालुक्य को वशिष्ठ ऋषि द्वारा आबू पर के यज्ञ-कुंड से उत्पन्न कहते हैं। पर यह बात पृथ्वीराज रासो आदि पीछे के ग्रंथों के आधार पर ही कल्पित जान पड़ती है, क्योंकि वि० सं० ६३५ से लेकर १६०० तक के अनेक शिलालेखों, दानपत्रों आदि में इनका चंद्रवंशी और पांडवों के वंशधर होना लिखा है। बहुत दिनों तक इनका मुख्य स्थान गुजरात था।

सोल वि० [सं०] (१) शीतल। ठंढा। (२) कसैला, खट्टा और तीता।

संज्ञा पुं० (१) शीतलता। ठंढापन। (२) कसैलापन, खट्टापन, तीतापन, चरपरापन आदि। (३) स्वाद। जायका।

सोलपंगो-संज्ञा पुं० [?] केंकड़ा। (डिं०)

सोलपोल-वि० [हिं० पोल + अनु० सोल] बेफायदा। व्यर्थ का।

सोलह-वि० [सं० षोडश, प्रा० सोलस, सोरह] जो गिनती में दस से छः अधिक हो। षोडश।

संज्ञा पुं० दस और छः की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१६।

मुहा०—सोलहो आने = संपूर्ण। पूरा पूरा। जैसे,—तुम्हारी बात सोलहो आने सही है। सोलह सोलह गंडे सुनाना = खूब गालियाँ देना।

सोलह नहाँ-संज्ञा पुं० [हिं० सोलह + नहं = नख] वह हाथी जिसके सोलह नख या नाखून हों। सोलह नाखूनवाला हाथी। (यह ऐबी समझा जाता है।)

सोलहवाँ-वि० [हिं० सोलह + वाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० सोलहवीं]

जिसका स्थान पंद्रहवें स्थान के बाद हो। जिसके पहले पंद्रह और हों।

सोलह सिंगार-संज्ञा पुं० [हिं० सोलह + सिंगार] पूरा सिंगार जिसके अंतर्गत अंग में उबटन लगाना, नहाना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, बाल सँवारना, काजल लगाना, सेंदुर से माँग भरना, महावर लगाना, भाल पर तिलक लगाना, चिबुक पर तिल बनाना, मेंहदी लगाना, सुगंध लगाना, आभूषण पहनना, फूलों की माला पहनना, मिस्सी लगाना, पान खाना और होंठों को लाल करना ये सोलह बातें हैं।

सोलही-संज्ञा स्त्री० दे० "सोरही"।

सोलाना-क्रि० स० दे० "सुलाना"।

सोलाली-संज्ञा स्त्री० [?] पृथ्वी। (डिं०)

सोल्लास-वि० [सं०] उल्लासयुक्त। प्रसन्न। आनंदित।

क्रि० वि० उल्लास के साथ। आनंद-पूर्वक।

सोल्लुंठ-वि० [सं०] परिहास-युक्त। व्यंग्य हास्ययुक्त। चुटकी के साथ।

संज्ञा पुं० व्यंग्य। परिहास। चुटकी।

सोल्लुंठोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] परिहास युक्त वचन। व्यंग्योक्ति। दिल्लगी। बोली ठोली। ठट्ठा। चुटकी।

सोवज-संज्ञा पुं० दे० "सावज"। "सौजा"। उ०—जब सोवज पिंजर घर पाया बाज रह्या बन माहीं।—दादू।

सोवड़-संज्ञा पुं० [सं० सूत का प्रा० सूअ] वह कोठरी जिसमें स्त्रियाँ बच्चा जनती हैं। सूतिकागार। सौरी।

सोवणी-संज्ञा स्त्री० [सं० शोधनी] बुहारी। झाड़ू। (डिं०)

सोवन‡†-संज्ञा पुं० [हिं० सोवना] सोने की क्रिया या भाव। उ०—सुरापान करि सोवन जानैं। कबहुँ न जान्यो गहन कमानैं।—रघुराज।

सोवना‡†-क्रि० अ० दे० "सोना"। उ०—(क) क्योंकरि झूठी मानिये सखि सपने की बात। जो हरि हरयो सोवत हियो सो न पाइयत प्रात।—पद्माकर। (ख) पंथ थकित मद मुकित सुखित सरसिंधुर जोवत। काकोदर कर कोश उदर तर केहरि सोवत।—केशव।

सोवा-संज्ञा पुं० दे० "सोआ"। उ०—साग चना सँग सब चौराई। सोवा अरु सरसों सरसाई।—सूर।

सोवाक-संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा।

सोवाना-क्रि० स० दे० "सुलाना"। उ०—प्रभुहि सोवाय समाल उतारी। लियो आपने गल महँ धारी।—रघुराज।

सोवारी-संज्ञा पुं० [?] पंद्रह मात्राओं का एक ताल जिसमें पाँच आघात और तीन खाली होते हैं। इस का बोल यह

\+ । ० +

है।—धिन धा धिन धा कत तागे दिनतो तेटे कता गदि धेन धा।

सोवाल-वि० [सं०] काले या धूँए के रंग का। धुँधला। धूमला।

सोवैया‡†-संज्ञा पुं० [हिं० सोवना + इया (प्रत्य०)] सोनेवाला। उ०—धमकै कछु यों भ्रम कै उठि आवै छपावति छाह सोवैयन तें।

सोशल वि० [अं०] समाज संबंधी। सामाजिक। जैसे,—सोशल कानफ्रेंस।

सोशलिज़्म-संज्ञा पुं० दे० "साम्यवाद"।

सोशलिस्ट-संज्ञा पुं० दे० "साम्यवादी"।

सोष-वि० [सं०] खारी मिट्टी मिला हुआ। क्षार मृत्तिका मिश्रित।

सोषक‡-संज्ञा पुं० दे० "शोषक"। उ०—सम प्रकास तम पाख दुहूँ नाम भेद विधि कीन्ह। ससि सोपक सोषक समुझि जग जस अपजस कीन्ह।—तुलसी।

सोषण‡-संज्ञा पुं० दे० "शोषण"। उ०— मोहन बसीकरन उच्चाटन। सोषन दीपन थंभन घातन।—गोपाल।

सोषना‡-क्रि० अ० दे० "सोखना"।

सोषु, सोषु‡-वि० [हिं० सोखना] सोखनेवाला। उ०—दंभ हू कलि नाम कुंभज सोच-सागर-सोषु।—तुलसी।

सोष्णीष-संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु विद्या के अनुसार एक प्रकार का भवन जिसके पूर्व भाग में वीथिका हो। (बृहत्संहिता)।

सोष्यंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो प्रसव करनेवाली हो। आसन्न-प्रसवा।

सोष्यंतीकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सोष्यंतीकर्मन्] आसन्न-प्रसवा स्त्री के संबंध में किया जानेवाला कृत्य या संस्कार।

सोष्यंती सवन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का संस्कार।

सोष्यंती होम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का होम जो आसन्न-प्रसवा स्त्री की ओर से किया जाता है।

सोसन-संज्ञा पुं० [फ़ा० सौसन] (१) फारस की ओर का एक प्रसिद्ध फूल का पौधा जो भारतवर्ष में हिमालय के पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् काश्मीर आदि प्रदेशों में भी पाया जाता है।

विशेष—इसकी जड़ में से एक साथ ही कई डंठल निकलते हैं। पत्ते कोमल, रेशेदार, हाथ भर के लंबे, आध अंगुल चौड़े और नोकदार होते हैं। फूलों के दल नीलापन लिए लाल, छोर पर नुकीले और आध अंगुल चौड़े होते हैं। बीज-कोश ५ या ६ अंगुल लंबे, छ-पहले और चोंचदार होते हैं। हकीमी में फूल और पत्ते औषध के काम में आते हैं और गरम, रूखे तथा कफ और वातनाशक माने जाते हैं। इसके पत्तों का रस सिर दर्द और आँख के रोगों में दिया जाता है। इसे शोभा के लिये बगीचे में लगाते हैं। फ़ारसी के शायर जीभ की उपमा इसके दल से दिया करते हैं।

सोसनी-वि० [फ़ा० सौसन] सोसन के फूल के रंग का। लाली लिए नीला। उ०—(क) सोसनी दुकूलनि दुराये रूप रोसनी है बूटेदार घाँघरी की घूमनि घुमाय कै। कहै पदमा-

कर त्यों उरोजन पै तंग अँगिया है तनी तननि तनाय कै। —पद्माकर। (ख) अंग अनंग की रोसनी में सुभ सोसनी चीर चुभ्यो चित चाइन। जानि चली बृज ठाकुर पै ठमका ठमकी ठुमकी ठकुराइन।—पद्माकर।

सोसाइटी, सोसायटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) समाज। गोष्ठी। जैसे,—हिंदू सोसायटी। बंगाली सोसाइटी। (२) संगत। सोहबत। जैसे,—उसकी सोसायटी अच्छी नहीं है।

सोस्मि%-   दे० "सोऽहमस्मि"। उ०—लिंग शरीर नाम तब पावै। जब नर अजपा में मन लावै। अजपा किं जो सोस्मि उसासा। सुमिरै नाम सहित विश्वासा।—विश्राम।

सोहँ‡%-क्रि० वि० दे० "सौंह"। उ०—सोहँहु भौंहन ऐंठति है कैसो तुम हिरदय। सुकवि लखी नहिं सुनी बात ऐसी कहुँ निरदय।—व्यास।

सोहं-   दे० "सोऽहम्"। उ०—मानन लगे ब्रह्म जिय काहीं। सोहं रटन मची चहुँ घाहीं।—रघुराज।

सोहंग‡-   दे० "सोऽहम्"। उ०—साधु सजे मिलि बैठे आई। बहु विधि भक्ति करो चित लाई। कहैं कबीर सुनो भइ साधो। वोहंग सोहंग शब्द अराधो।—कबीर।

सोहंगम-   दे० "सोऽहम्"। उ०—सुरति सोहंगम डेरि है, अग्र सोहंगम नाम। सार शब्द टकसार है, कोइ बिरले पावै नाम।—कबीर।

सोहंजि-संज्ञा पुं० [सं०] कुंतिभोज के एक पुत्र का नाम। (भाग०)

सोहगी संज्ञा स्त्री० [हिं० सोहाग] (१) तिलक चढ़ने के बाद की एक रस्म जिसमें लड़केवाले के यहाँ से लड़की के लिये कपड़े, गहने, मिठाई, मेवे, फल, खिलौने आदि सजाकर भेजे जाते हैं। उ०—अति उत्तम विचारि कै जोरी। भए मुदित संबंधहि जोरी। भेज्यो तिलक दाम भरि बहँगी। तुमहु सुता हित साजहु सोहँगी। (२) सिंदूर, मेंहदी आदि सुहाग की वस्तुएँ।

सोहगैला‡-संज्ञा पुं० [हिं० सुहाग या सोहाग] [स्त्री० सोहगैली] लकड़ी की कँगूरेदार डिबिया जिसमें विवाह के दिन सिंदूर भर कर देते हैं। सिंदूरा।

सोहदा-संज्ञा पुं० दे० "शोहदा"।

सोहन-वि० [सं० शोभन, प्रा० सोहण] [स्त्री० सोहना] अच्छा लगनेवाला। सुंदर। सुहावना। मनभावना। मनोहर। उ०—(क) तहँ मोहन सोहन गजत हैं। जिमि देखि मनोभव लाजत हैं।—गोपाल। (ख) हीर जराऊ मुकुट सीस कंचन को सोहन।—गोपाल।

संज्ञा पुं० सुंदर पुरुष। नायक। उ०—प्यारी की पीक कपोल में पीके बिलोकि सखीन हँसी उमड़ी सी। सोहन सौंह न लोचन होत सुलोचन सुंदरि जाति गड़ी सी।—देव।

संज्ञा स्त्री० एक बड़ी चिड़िया जिसका शिकार करते हैं।

विशेष—यह बिहार, उड़ीसा, छोटा नागपुर और बंगाल को छोड़ हिंदुस्तान में सर्वत्र पाई जाती है। यह कीड़े, मकोड़े, अनाज, फल, घास के अंकुर आदि सब कुछ खाती है। पूँछ से लेकर चोंच तक इसकी लंबाई डेढ़ हाथ तक होती है और वज़न भी बहुत भारी प्रायः दस सेर तक होता है। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट कहा जाता है।

संज्ञा पुं० एक बड़ा पेड़ जो मध्य भारत तथा दक्षिण के जंगलों में बहुत होता है।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी बहुत कड़ी, मज़बूत, चिकनी, टिकाऊ तथा ललाई लिए काले रंग की होती है। यह मकानों में लगती तथा मेज़, कुरसी आदि सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। सोहन शिशिर में पत्ते झाड़नेवाला पेड़ है। इसे रोहन और सूमी भी कहते हैं।

संज्ञा पुं० [फ़ा० सोहान] एक प्रकार की बढ़इयों की रेती या रंदा।

यौ०—तिकोनिया सोहन = तीन कोने की रेती।

सोहन चिड़िया-संज्ञा स्त्री० दे० "सोहन"।

सोहन पपड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सोहन + पपड़ी] एक प्रकार की मिठाई जो जमे हुए कतरों के रूप में होती है।

सोहन हलवा-संज्ञा पुं० [हिं० सोहन + अ० हलवा] एक प्रकार की स्वादिष्ट मिठाई जो जमे हुए कतरों के रूप में और घी से तर होती है।

सोहना-क्रि० अ० [सं० शोभन, प्रा० सोहण] (१) शोभित होना। सुंदरता के साथ होना। सजना। उ०—(क) नासिक कीर, कँवलमुख सोहा। पदमिनि रूप देखि जग मोहा।—जायसी। (ख) काक पच्छ सिर सोहत नीके।—तुलसी। (ग) रत्न-जटित कंकन बाजूबंद नगन मुद्रिका सोहे।—सूर। (घ) सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलोने गात।—बिहारी। (२) अच्छा लगना। उपयुक्त होना। फबना। जैसे,—(क) यह टोपी तुम्हारे सिर पर नहीं सोहती। (ख) ऐसी बातें तुम्हें नहीं सोहतीं। उ०—(क) यह पाप क्या हम लोगों को सोहता है।—प्रताप। (ख) ऐसी नीति तुम्हें नहिं सोहत।—गोपाल।

† वि० [स्त्री० सोहनी] सोहन। सुहावना। शोभायुक्त। सुंदर। मनोहर। जैसे,—सोहनी लकड़ी। सोहना बगीचा।

क्रि० स० [सं० शोधन] खेत में उगी घास निकालकर अलग करना। निराना।

संज्ञा पुं० [फ़ा० सोहान] कसेरों का एक नुकीला औजार जिससे वे घरिया या कुठाली में, साँचे में गली धातु गिराने के लिये, छेद करते हैं।

सोहनी-संज्ञा स्त्री० [सं० शोधनी] (१) झाड़ू। बुहारी। सरहट।

(२) खेत में से उगी घास खोदकर निकालने की क्रिया। निराई।

वि० स्त्री० [हिं० सोहना] सुंदर। सुहावनी। मनभावनी। उ०—साँवरी सी रही सोहनी सूरति हेरत को जुवती नहिं मोहैं ?—सुंदरी-सर्वस्व।

संज्ञा स्त्री० सोहिनी रागिणी।

सोहबत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) संग साथ। संगत। (२) संभोग। स्त्री-प्रसंग।

सोहमस्मि दे० सोऽहमस्मि"। उ०—सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।—तुलसी।

सोहर-संज्ञा पुं० [हिं० सोहना, सोहला] (१) एक प्रकार का मंगल गीत जो स्त्रियाँ घर में बच्चा पैदा होने पर गाती हैं। सोहला। उ०—रानि कौसिला ढोटा जायो रघुकुल-कुमुद जुन्हैया। सोहर सोर मनोहर नोहर माचि रह्यौ चहुँ घैया।—रघुराज। (२) मांगलिक गीत। उ०—कौसिल्यै सीतै करि आगे। चलीं अवध मंदिर अनुरागे। सहसन संग सहचरी भावैं। महा मनोहर सोहर गावैं।—रघुराज।

संज्ञा स्त्री० [सं० सूतका] सूतिकागृह। सौंड़। सौरी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) नाव के भीतर की पाटन या फ़र्श। (२) नाव का पाल खींचने की रस्सी।

सोहराना-क्रि० स० दे० "सहलाना"। उ०—कुचन्ह लिये तरवा सोहराई। भा जोगी कोउ संग न लाई।—जायसी।

सोहला-संज्ञा पुं० [हिं० सोहना] (१) वह गीत जो घर में बच्चा पैदा होने पर स्त्रियाँ गाती हैं। उ०—गौरि गनेस मनाऊँ हो देवी सारद तोहि। गाऊँ हरि जू को सोहलो मन और न आवै मोहि।—सूर। (२) मांगलिक गीत। उ०—डोमनियों के रूप में सारंगियाँ छेड़ छेड़ सोहले गावो।—इंशाअल्ला। (३) किसी देवी देवता की पूजा में गाने का गीत। जैसे,—माता के सोहले।

सोहाइन‡-वि० दे० "सुहावना"। उ०—संग गाँउ को गोधन ले सिगरो रघुनाथ भरे मन चाइन में। नहिं जानि ये जात रहे कितको बन भीतर कुंज सोहाइन में।—रघुनाथ।

सोहाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सोहना] (१) खेत में उगी घास निकालने का काम। निराई। (२) इस काम की मजदूरी।

सोहाग†-संज्ञा पुं० दे० "सुहाग"। उ०—(क) धाइ सों पूछति बातैं बिनै की सखीनि सों सीखै सोहाग की रीतहिं।—देव। (ख) लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग। हृदय असीसहिं प्रेमबस रहिहहु भरी सोहाग।—तुलसी।

संज्ञा पुं० दे० "सुहागा"।

सोहागा-संज्ञा पुं० [सं० समभाग, प्रा० सवँहाग] जुते हुए खेत की मिट्टी बराबर करने का पाटा। मैड़ा। हेंगा।

संज्ञा पुं० दे० "सुहागा"।

सोहागिन†-संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"।

सोहागिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"। उ०—अति सप्रेम सिय पायँ परि बहु बिधि देहिं असीस। सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लग महि अहि-सीस।—तुलसी।

सोहागिल-संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"। उ०—सिय पद सुमिरि सुतीय यहि तस गुन मंगल जानु। स्वामि सोहागिल भागु बड़ पुत्र काजु कल्यानु।—तुलसी।

सोहाता-वि० [हिं० सोहना] [स्त्री० सोहाती] सुहावना। शोभित। सुंदर। अच्छा। उ०—माधुरी मूरति देखे बिना पदमाकर लागै न भूमि सोहाती।—पद्माकर।

सोहाना-क्रि० अ० [सं० शोभन, प्रा० सोहण] (१) शोभित होना। शोभायमान होना। सुंदरता के साथ होना। सजना। उ०—(क) आवहिं झुंड सो पाँतिहि पाँती। गवन सोहाइ सो भाँतिहि भाँती।—जायसी। (ख) गोरे गात कपोल पर अलक अडोल सोहाय।—मुबारक। (ग) बन उपबन सर सरित सोहाए।—तुलसी। (२) रुचिकर होना। अच्छा लगना। प्रिय लगना। रुचना। जैसे,—तुम्हारी बातें हमें नहीं सोहातीं। उ०—(क) भएउ हुलास नवल ऋतु माहाँ। खन न सोहाइ धूप औ छाहाँ।—जायसी। (ख) पिय बिनु मनहिं अटरिया मोहिं न सोहाइ।—रहीम। (ग) राम सोहाती तोहि तौ तू सबहि सोहातो।—तुलसी।

सोहाया वि० [हिं० सोहाना का कृदंत रूप] [स्त्री० सोहाई] शोभित। शोभायमान। सुंदर। उ०—(क) सरद सोहाई आई राति। दस दिसि फूलि रही बनजाति।—सूर। (ख) एहि प्रकार बन मनहिं देखाई। करिहउँ रघुपति-कथा सोहाई।—तुलसी।

सोहायो†※-वि० "सोहाया"।

सोहरद‡※-संज्ञा पुं० दे० "सौहार्द"।

सोहारी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सोहाना = रुचना] पूरी। उ०—मोती-चूर मूर के मोदक ओदक की उजियारी जी। सेमई सेव सैंजना सूरन सोवा सरस सोहारी जी।—विश्राम।

सोहाल-संज्ञा पुं० दे० "सुहाल"।

सोहाली-संज्ञा स्त्री० [?] ऊपर के दाँतों का मसूड़ा। ऊपरी दाँतों के निकलने की जगह।

† संज्ञा स्त्री० दे० "सुहारी"।

सोहावन†※-वि० दे० "सुहावना"। उ०—(क) दंडक बन प्रभु कीन्ह सोहावन। अतनन अमित नाम किय पावन।—तुलसी। (ख) कुहकहिं मोर सोहावन लागा। होइ कोराहर बोलहिं कागा।—जायसी।

सोहावना-वि० दे० "सुहावना"।

क्रि० अ० दे० "सोहाना"। उ०—(क) कज्जल सो रंग

मोहैं सजल जलद जोहि उज्जल बरन बर रदन सोहावते। —गोपाल। (ख) वीर लै कमान हाथ मोद सों फिरावते। गावते बजावते सोहावते देखावते।—गोपाल।

सोहासित†ꕥ-वि० [हिं० सोहाना = रुचना] (१) प्रिय लगने-वाला। रुचिकर। (२) ठकुर सोहाती। उ०—राजसूय ह्वै नहिं तेरी। मानहु हंस बात सति मेरी। वैसे कहौ सोहा-सित भाखें। पै मन महँ संका हठि राखें।—रघुराज।

सोहिं‡-क्रि० वि० दे० "सौंह"। उ०—वेदवती दशशीश ते कह्यौ रहै मैं तोहिं। तव पुर पैठि बिनाशिहौं हेतु गई तोहि सोहिं।—विश्राम।

सोहिनी-वि० स्त्री० [हिं० सोहना] सुहावनी। शोभायमान। सुंदर। उ०—सँग लीन्हें बहु अच्छोहिनी। गज रथ तुरगन्ह सोहिनी।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० करुण रस की एक रागिनी।

विशेष—यह षाड्व जाति की है और इसमें पंचम वर्जित है। कोई इसे भैरव राग की और कोई मेघ राग की पुत्रवधू मानते हैं। हनुमत् के अनुसार यह मालकोस राग की पत्नी है। इसके गाने का समय रात्रि २६ दंड से २९ दंड तक है।

संज्ञा स्त्री० [सं० शोधनी] झाड़ू। बुहारी।

सोहिल-संज्ञा पुं० [अ० सुहैल] एक तारा जो चंद्रमा के पास दिखाई पड़ता है। अगस्त्य तारा। उ०—(क) हीर फूल पहिरे उजियारा। जनहु सरद ससि सोहिल तारा।—जायसी। (ख) सोहिल सरिस उवौं रन माहीं। कटक-घटा जेहि पाइ उड़ाहीं।—जायसी।

सोहिला-संज्ञा पुं० दे० "सोहला"। उ०—(क) आजु इंद्र अछरी सौं मिला। सब कैलास होहि सोहिला।—जायसी। (ख) सहेली सुनु सोहिलो रे।—तुलसी। (ग) सदन सदन शुभ सोहिलो सुहावनो तें गाइ उठीं भाइ उठीं क्षण क्षिति छै गये।—रघुराज।

सोहीं†ꕥ-क्रि० वि० [सं० सम्मुख, प्रा० सम्मुह, हिं० सौंह] सामने। आगे। उ०—उग्रसेन का स्वरूप बन रानी के सोहीं जा बोला—तू मुझसे मिल।—लल्लू।

सोहैं†ꕥ-क्रि० वि० दे० "सौंहैं", "सौंहैं"।

सोहैंꕥ-क्रि० वि० [सं० सम्मुख, प्रा० सम्मुह, हिं० सौंहैं] सामने। आगे। उ०—घूँघट में सुसकै भरे सासैं ससैं मुख नाहके सोहैं न खोलै।—बेनी।

सोहौटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] ६ या ७ इंच चौड़ी एक लकड़ी जो अपती के सामने लेवा के नीचे नाव की लंबाई में लगाई जाती है। (मल्लाह)

सौंꕥ-संज्ञा स्त्री० दे० "सौंह"। उ०—(क) सुंदर स्याम हँसत सजनी सों नंद बबा की सौं री।—सूर। (ख) बाभन की सौं बबा की सौं मोहन मोह गऊ की सौं गोरस की सौं।—देव। (ग) मारे कात तोरे गात भागे जात हा हा खात कहैं तुलसी सराधि राम की सौं टेरि कै।—तुलसी।

अव्य० दे० "सों" या "सा"। उ०—याही तें यह आदरै जगत माहिं सब कोइ। बोलै जबै बुलाइये अनबोले चुप होइ। हुका सौं कहु कौन पै जात निबाही साथ। जाकी स्वासा रहत है लगी स्वास के साथ।—रसनिधि।

प्रत्य० दे० "सों" या "से"। उ०—लै बाम बाहुबल ताहि राखत कंठ सौं खसि खसि परै। तिमि धरे दक्षिन बाहु कोहूँ गोद में बिच लै गिरै।—हरिश्चंद्र।

सौंकारा†-संज्ञा पुं० [सं० सकाल] प्रातःकाल। सबेरा। तड़का।

सौंकेरे‡-क्रि० वि० [सं० सकाल, पू० हिं० सकारे] (१) तड़के। सबेरे। (२) समय से कुछ पहले। जल्दी।

सौंधाई-संज्ञा स्त्री० [?] अधिकता। बहुतायत। ज़्यादती। उ०—काक कंक लेइ भुजा उड़ाहीं। एक ते छीन एक लेइ खाहीं। एक कहहिं ऐसिउ सौंधाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई।—तुलसी।

सौंधौ-वि० [?] (१) अच्छा। उ०—जौ चितवति सौंधी लगै चितइए सबेरे। तुलसीदास अपनाइऐ कीजै न ढील अब जीवन अवधि नित नेरे।—तुलसी। (२) उचित। ठीक।

सौंचन†-संज्ञा स्त्री० [सं० शौच] मलत्याग। शौच।

सौंचना†-क्रि० स० [सं० शौच] (१) शौच करना। मल त्याग करना। (२) मल त्याग के उपरांत हाथ-पैर आदि धोना।

सौंचर-संज्ञा पुं० दे० "सौंचर नमक"। उ०—सजी सौंचर सेंवर सोरा। साँखाहूली सीप सकोरा।—सूरन।

सौंचर नमक-संज्ञा पुं० दे० "सोंचर नमक"।

सौंचाना†-क्रि० स० [हिं० सौंचना का प्रे०] शौच कराना। मल-त्याग कराना। हगाना। उ०—काची रोटी कुचकुची परती माछी बार। फूहर वही सराहिये परसत टपकै लार। परसत टपकै लार झपटि लरिका सौंचावै। चूतर पोंछै हाथ दोऊ कर सिर खजुवावै।—गिरिधर।

सौंजꕥ-संज्ञा स्त्री० दे० "सौज"। उ०—(क) हरि को दर्सन करि सुख पायो पूजा बहु बिधि कीन्हीं। अति आनंद भये तन मन में सौंज बहुत बिधि दीन्हीं।—सूर। (ख) आये नाथ द्वारका नीके रच्यो माँड्यो छाय। ब्याह केलि विधि रची सकल सुख सौंज गनी नहिं जाय।—सूर। (ग) बिनती करत गोविंद गोसाईं। दै सब सौंज अनंत लोक-पति निपट रंक की नाईं।—सूर।

सौंड, सौंड़ा†-संज्ञा पुं० [हिं० सोना + ओढ़ना] ओढ़ने का भारी कपड़ा। जैसे,—रजाई, लिहाफ़ आदि।

सौंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपल। पिप्पली। शौंडी।

सौंतुखꕥ-संज्ञा पुं० [सं० सम्मुख] प्रत्यक्ष। सम्मुख। उ०—दृग भौंर से ह्वै के चकोर भए जेहि ठौर पै पायो बड़ो सुख है।

लहरें उठै सौरभ की सुखदा मच्यो पून्यो प्रकास चहूँ रुख है। ठगि से रहे सेवक स्याम लखे सपनो है किधौं यह सौंमुख है। बन अंबर में अरविंद किधौं सुचि इंदु के राधिका को मुख है।—सेवक।

क्रि० वि० आँखों के आगे। प्रत्यक्ष। सामने। उ०—तेरी परतीति न परत अब सौंमुख हू छयल छबीले मेरी छुवै जनि छहियाँ। राति सपने मैं जनु बैठी मैं सदन सूने मदन गोपाल! तुम गहि लीन्हीं बहियाँ।—तोष।

सौंदन–संज्ञा स्त्री० [हिं० सौंदना] धोबियों का वह कृत्य जिसमें वे कपड़ों को धोने से पहले रेह मिले पानी में भिगोते हैं।

सौंदना–क्रि० स० [सं० संधम् = मिलना] आपस में मिलाना। सानना। ओतप्रोत करना। आप्लावित करना। उ०—ये उस अज्ञता के कीचड़ के बाहर न होंगे, दक्षिणा के लोभ से उसी में सौंदे पड़े रहेंगे।—बालकृष्ण।

सौंदर्ज–संज्ञा पुं० दे० "सौंदर्य"। उ०—नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निधाना।—तुलसी।

सौंदर्य–संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर होने का भाव या धर्म। सुंदरता। रमणीयता। खूबसूरती। जैसे,—युवती का सौंदर्य्य, नगर का सौंदर्य।

सौंदर्यता–संज्ञा स्त्री० [सं० सौंदर्य + ता (प्रत्य०)] सुंदरता। रमणीयता। खूबसूरती। उ०—उस समय की सौंदर्यता का क्या पूछना!—अयोध्यासिंह।

विशेष—व्याकरण के नियम से 'सौंदर्यता' शब्द अशुद्ध है। शुद्ध रूप सौंदर्य या सुंदरता ही है।

सौंध–संज्ञा पुं० दे० "सौध"। उ०—(क) नृप संध्या विधि वंदि राग वारुणी अधर रचि, मंदिर गयो अनंदि खंड सातयें सौंध पर।—गुमान। (ख) एक महातरु हेरि बहेरो। सौंध समीप रहै नल केरो।—गुमान।

संज्ञा स्त्री० [सं० सुगंध] सुगंध। खुशबू। उ०—सौंध सी सनियें लसै बिच बीच मोतिन की कली।—गुमान।

सौंधना–क्रि० स० दे० "सौंदना"।

क्रि० स० [सं० सुगंधि] सुगंधित करना। सुवासित करना। बासना।

सौंधा–संज्ञा पुं० दे० "सोंधा"। उ०—(क) सौंधे की सी सोंधी देह सुधा सों सुधारी पाँवधारी देवलोक ते कि सिंधु ते उबारी सी।—केशव। (ख) कंचुकी चोवा के सौंधे सों बोरि कै स्याम सुगंधन देह भरी है।—पद्माकर। (ग) सौंधे सनी सुथरी बिथुरी अलकें हरि के उर आली।—बेनी।

वि० दे० "सोंधा"। उ०—सुठि सौंधे औवर्न, जनक सुख युक्त धरा के। सकल मनोहरता वारे प्यारे सबही के।—श्रीधर।

सौंनमक्खी–संज्ञा स्त्री० दे० "सोनामक्खी"। उ०—सौंनमक्खि संखिया सुहागा। सूल सम्हालू सबरस सागा।—सूदन।

सौंपना–क्रि० स० [सं० समर्पण, प्रा० सउप्पण] (१) किसी व्यक्ति या वस्तु को दूसरे के अधिकार में करना। सपुर्द करना। हवाले करना। जिम्मे करना। समर्पण करना। जैसे,—(क) मैं इस लड़के को तुम्हें सौंपता हूँ, इसे तुम अपनी देखभाल में रखना। (ख) सरकार ने उन्हें एक महत्व का काम सौंपा। (ग) जहाँ लड़के ने होश सँभाला, बाप ने उसे अपना घर सौंपा। (घ) लोगों ने उसे पकड़ कर पुलिस को सौंप दिया। उ०—(क) चित चोरन कर सौंप चित अब काहे पछताइ।—रसनिधि। (ख) जब लग सीस न सौंपिये तब लग इस्क न होइ।—दादू। (ग) सो सौंपि सुत कौं राज नृप तप करन हिमगिरि कौं गये।—पद्माकर। (घ) उन हर की हँसि कै उतै इन सौंपी मुसकाय। नैन मिले मन मिलि गयौ दोऊ मिलवत गाय।—बिहारी। (च) सौंपे भूप रिषिहि सुत बहु बिधि देइ असीस। जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पद सीस।—तुलसी। (छ) चंचल चरित्र चित चेटिकी चेटका गायो चोरी कै चितन अभिसार सौंपियतु है।—केशव। (ज) स्याम बिना ये चरित करै को यह कहि कै तनु सौंपि दई।—सूर।

क्रि० प्र०—देना।

(२) सहेजना।

सौंफ–संज्ञा स्त्री० [सं० शतपुष्पा] (१) पाँच छः फुट ऊँचा एक पौधा जिसकी खेती भारत में सर्वत्र होती है। इसकी पत्तियाँ सोए की पत्तियों के समान ही बहुत बारीक और फूल सोए के समान ही कुछ पीले होते हैं। फूल लंबे सींकों में गुच्छों के रूप में लगते हैं। फल जीरे के समान पर कुछ बड़े और पीले रंग के होते हैं। कार्त्तिक महीने में इसके बीज बो दिए जाते हैं और पाँच सात दिन में ही अंकुरित हो जाते हैं। माघ में फूल और फागुन में फल लग जाते हैं। फागुन के अंत या चैत के पहले पखवाड़े तक, फलों के पकने पर, मंजरी काट कर धूप में सुखा और पीटकर बीज अलग कर लेते हैं। यही बीज सौंफ कहलाते हैं। सौंफ स्वाद में तेजी लिए मीठी होती है। औषध के अतिरिक्त मसाले में भी इसका व्यवहार करते हैं। इसका अर्क और तेल भी निकाला जाता है जो औषध और सुगंधि के काम में आता है। वैद्यक में यह चरपरी, कड़वी, मधुर, गर्भदायक, विरेचक, वीर्यजनक, अग्निदीपक तथा वात, ज्वर, दाह, तृष्णा, व्रण, अतिसार, आम तथा नेत्र रोग को दूर करनेवाली मानी गई है। इसका अर्क शीतल, रुचिकर, चरपरा, अग्निदीपक, पाचक, मधुर, तृषा, वमन, पित्त और दाह का शमन करनेवाला कहा गया है।

पर्य्या०—शतपुष्पा। मधुरिका। माधुरी। सिता। मिश्रेया। मधुरा। सुगंधा। तृषाहरी। शतपत्रिका। वनपुष्पा। माधवी। छत्रा। भूरिपुष्पा। तापसप्रिय। घोषवती। शीतशिवा। तालपर्णी। मंगल्या। संघातपत्रिका। अवाकपुष्पी।

(२) सौंफ की तरह का एक प्रकार का जंगली पौधा जो काश्मीर में अधिकता से पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ और फल सौंफ के समान ही होते हैं। फल झुमकों में चौथाई से तीन चौथाई इंच तक के घेरे में होते हैं। बीज गोल और कुछ चिपटे से होते हैं। हकीम लोग इसका व्यवहार करते हैं। इसे बड़ी सौंफ, मौरी या मौड़ी भी कहते हैं।

सौंफिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० सौंफ+इया (प्रत्य०)] सौंफ की बनी हुई शराब।

सौंफी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सौंफ] वह शराब जो सौंफ से बनाई जाती है। सौंफिया।

सौंभरि-संज्ञा पुं० दे० "सौभरि"। उ०—वृंदावन महँ मुनि रहे सौंभरि सो जल माँह। अयुत अब्द अति तप कियो झख-बिहार लखि ताहँ। करि इच्छा विवाह कहँ कीन्हा। शत-मंधात-सुता कहँ लीन्हा।—गिरिधर।

सौंर-संज्ञा पुं० [हिं० सौरी] मिट्टी के बरतन, भाँड़े आदि जो संतानोत्पत्ति के दसवें दिन (अर्थात् सूतक हटने पर) तोड़ दिए जाते हैं।

संज्ञा स्त्री० दे० "सौरी"।

सौंरई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० साँवरा] साँवलापन। उ०—पीत पट छाँह प्रकटत मुख माहँ सौंरई को भाव मौहन मोरि झलकाइयतु है।—देव।

सौंरना&-क्रि० स० [सं० स्मरण, हिं० सुमरना] स्मरण करना। चिंतन करना। ध्यान करना। उ०—(क) सोइ अन्न तोडो भेजि लाखन जेवाँये संत सौंरि भगवंत नहिं अंतता को ह्वै गयो।—रघुराज। (ख) श्रीहरि गुरुपद पंकज सौंरी। सैन्य सहित वृंदावन ओरी।—रघुराज।

क्रि० अ० दे० "सँवरना"।

सौंसे†-वि० [सं० समस्त] सब। कुल। पूरा। तमाम। (पू० हिं०)

सौंह&†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सौगंद] सौगंद। शपथ। कसम। किरिया। उ०—(क) जो कहिये घर दूरि तुम्हारे बोलत सुनिये टेर। तुमहिं सौंह वृषभानु बबा की प्रात साँझ एक फेर।—सूर। (ख) तुलसी न तुम्ह सों राम प्रीतम कहत हौं सौंहैं किये। परिनाम मंगल जानि अपने आनिये धीरज हिये।—तुलसी। (ग) सही रँगीले रति जगे जगी पगी सुख चैन। अलसौंहैं सौंहैं किये कहैं हँसौंहैं नैन।—बिहारी। (घ) जब जब होत भेंट मेरी भटू तब तब ऐसी सौंहैं दिन उठि खाति न अघाति है।—केशव। (च) धर्महि की कर सौंह कहीं हौं। तुव सुख चाहि न और चहौं हौं।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।—देना।—लेना।

संज्ञा पुं० [सं० सम्मुख] सम्मुख। सामने। समक्ष। उ०—(क) लरत सौंह जो आय निधनु तेहि करत सधनु कर।—गोपाल। (ख) गहत धनुष अरि बहत त्रास तें पास रहत नहिं। महत गर्व जो सहत सौंह सर दहत ताहि तहिं।—गोपाल।

क्रि० वि० सामने। सम्मुख। उ०—(क) कपट सतर भौंहैं करी मुख सतरौंहैं बैन। सहज हँसौंहैं जानि कै सौंहैं करसि न नैन।—बिहारी। (ख) प्रेमक लुबुध पियादे पाऊँ। ताकै सौंह चले कर ठाऊँ।—जायसी।

सौंहन-संज्ञा पुं० दे० "सोहन"। उ०—कुदरा खुरपा बेल गुल-सफा छुरा कतरनी। नहनी सौंहन परी डरी बहु भरना-भरनी।—सूदन।

सौंहीं-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का हथियार। उ०—यह सौंहीं केहि देशहि केरी। कह नृप अहै फिरंग करेरी। सुनतहुँ नर पति मन मुसक्याई। सौंहीं दै वाणी यह गाई। तुव हथि-यारहि केवल तेरे। सदा रहैं हम बिन अवसरे।—बघेलवंश०।

प्रत्य० दे० "सौंह"।

सौ-वि० [सं० शत] जो गिनती में पचास का दूना हो। नब्बे और दस। शत।

संज्ञा पुं० नब्बे और दस की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१००।

मुहा०—सौ बात की एक बात=सारांश। तात्पर्य। निचोड़। उ०—(क) सौ बातन की एकै बात। सब तजि भजो जानकी नाथ।—सूर। (ख) सौ बातन की एकै बात। हरि हरि हरि सुमिरहु दिन राति।—सूर। सौ की सीधी एक=सारांश। सब का सार। निचोड़। उ०—रोम रोम जीभ पाय कहै तौ कह्यो न जाय जानत ब्रजेश सब मर्दन मयन के। सूधी यह बात जानो गिरधर ने बखानो सौ कि सीधी एक यही दायक चयन के।—गिरधर।

& वि० दे० "सा"। उ०—हे मुँदरी तेरो सुकृत मेरो ही सौ हीन।—लक्ष्मण।

सौक-संज्ञा स्त्री० [हिं० सौत] किसी स्त्री के पति या प्रेमी की दूसरी स्त्री या प्रेमिका। किसी स्त्री की प्रेम-प्रतिद्वंद्विनी। सौत। सपत्नी।

वि० [हिं सौ+एक] एक सौ। उ०—नैन लगे तिहिं लगनि सों छुटें न छूटे प्रान। काम न आवत एकहू तेरे सौक सयान।—बिहारी।

संज्ञा पुं० दे० "शौक"।

सौकन†-संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"।

सौकन्य-वि० [सं०] सुकन्या संबंधी। सुकन्या का।

सौकर-वि० [सं०] [स्त्री० सौकरी] (१) सूकर या सूअर का।

सूकर या सूअर संबंधी। (२) सूअर का। (३) वाराह-अवतार संबंधी।

संज्ञा पुं० दे० "सौकर तीर्थ"।

सौकरक-संज्ञा पुं० [सं०] सौकर तीर्थ।

वि० सूअर संबंधी। सूअर का। सौकर।

सौकर तीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

सौकरायण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिकारी। शिकार करनेवाला। व्याध। अहेरी। (२) एक वैदिक आचार्य का नाम।

सौकरिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूअर का शिकार करनेवाला। (२) शिकारी। व्याध। (३) सूअर का व्यापार करनेवाला।

सौकरीय-वि० [सं०] सूअर संबंधी। सूअर का।

सौकर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुकर का भाव। सुकरता। सुसाध्यता। (२) सुविधा। सुभीता। (३) सूकर का भाव या धर्म। सूकरता। सुअरपन।

सौकीन-संज्ञा पुं० दे० "शौक़ीन"।

सौकीनी-संज्ञा स्त्री० दे० "शौक़ीनी"।

सौकुमारक-संज्ञा पुं० [सं०] सुकुमार का भाव या धर्म। सुकुमारता।

सौकुमार्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुकुमार का भाव। सुकुमारता। कोमलता। नाजुकपन। (२) यौवन। जवानी। (३) काव्य का एक गुण जिसके लाने के लिये ग्राम्य और श्रुति कटु शब्दों का प्रयोग त्याज्य माना गया है।

वि० सुकुमार। कोमल। नाजुक।

सौकृति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम। (२) उक्त ऋषि के गोत्र का नाम।

सौकृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) याग, यज्ञादि पुण्यकर्म का सम्यक अनुष्ठान। (२) दे० "सौकर्म"।

सौकृत्यायन-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुकृत्य के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो।

सौक्ति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गोत्र का नाम। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सौक्तिक-वि० [सं०] सूक्त संबंधी। सूक्त का।

संज्ञा पुं० वह जो सिरका आदि बनाता हो। शौक्तिक।

सौक्ष्म-संज्ञा पुं० दे० "सौक्ष्म्य"।

सौक्ष्मक-संज्ञा पुं० [सं०] बारीक कीड़ा। सूक्ष्म कीट।

सौक्ष्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] सूक्ष्म का भाव। सूक्ष्मता। बारीकी।

सौख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख का भाव या धर्म। सुखता। सुख। आराम। (२) सुख का अपत्य।

‡संज्ञा पुं० दे० "शौक"।

सौखयानिक-संज्ञा पुं० [सं०] भाट। बंदी। स्तावक।

सौखरात्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] बंदी। वैतालिक। स्तुतिपाठक। अर्थिक।

सौखशय्यिक-संज्ञा पुं० [सं०] वैतालिक। स्तुतिपाठक। बंदी। अर्थिक।

सौखशायनिक-संज्ञा पुं० [सं०] वैतालिक। स्तुतिपाठक। अर्थिक। बंदी।

सौखशायिक-संज्ञा पुं० [सं०] वैतालिक। स्तुतिपाठक। अर्थिक। बंदी।

सौखसुप्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] वैतालिक। स्तुतिपाठक। बंदी।

सौखा‡-वि० [हिं० सुख] सहज। सरल।

सौखिक-वि० [सं०] सुख चाहनेवाला। सुखार्थी।

सौखी‡-संज्ञा पुं० [फ़ा० शौक़ या शौक़ीन] गुंडा। बदमाश।

सौखीन‡-संज्ञा पुं० दे० "शौक़ीन"।

सौख्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख का भाव। सुखता। सुखत्व। (२) सुख। आराम। आनंद-मंगल।

सौख्यद-वि० [सं०] सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। सुखद।

सौख्यदायक-संज्ञा पुं० [सं०] मूँग। मुद्ग।

सौख्यदायी-वि० [सं० सौख्यदायिन्] सुख देनेवाला। सुखद।

सौगंद-संज्ञा स्त्री० [सं० सौगन्ध] शपथ। कसम। सौंह। उ०—नगर नारि को यार भूलि परतीति न कीजै। सौ सौ सौगंद खाय चित्त में एक न दीजै।—गिरिधर।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।

सौगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुगंधित तेल, इत्र आदि का व्यापार करनेवाला। गंधी। (२) सुगंध। खुशबू। (३) अगिया घास। भूतृण। कतृण। (४) एक वर्ण संकर जाति जिसका उल्लेख महाभारत में है।

वि० सुगंध-युक्त। सुगंधित। खुशबूदार।

संज्ञा स्त्री० दे० "सौगंद"।

सौगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] नीला कमल। नील कमल।

सौगंधिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नील कमल। नील पद्म। (२) लाल कमल। रक्त कमल। (३) सफेद कमल। श्वेत कमल। कह्लार। (४) गंध तृण। भूतृण। रामकपूर। (५) रूसा घास। रोहिष तृण। (६) गंधक। गंध पाषाण। (७) पुखराज। पद्मराग मणि। (८) एक प्रकार का कीड़ा जो श्लेष्मा से उत्पन्न होता है। (चरक) (९) सुगंधित तेल, इत्र आदि का व्यवसाय करनेवाला। गंधी। (१०) एक प्रकार का नपुंसक जिसे किसी पुरुष की इंद्री अथवा स्त्री की योनि सूँघने से उद्दीपन होता है। नासायोनि। (वैद्यक) (११) दालचीनी, इलायची और तेजपत्ता इन तीनों का समूह। त्रिसुगंधि। (१२) एक पर्वत का नाम। (भागवत)

वि० सुगंधित। सुवासित। खुशबूदार।

सौगंधिक वन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल का घना झुंड। कमल का वन या जंगल। (२) एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

सौगंधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुबेर की नगरी की नदी का नाम। (वाल्मीकि रामायण)

सौगंधिपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद बर्बरी। श्वेतार्जका।

सौगंध्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधि का भाव या धर्म। सुगंधता। सुगंधत्व।

सौगत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुगत (बुद्ध) का अनुयायी। बौद्ध। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

वि० (१) सुगत संबंधी। (२) सुगत मत का।

सौगतिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध धर्म का अनुयायी। (२) बौद्ध भिक्षु। (३) नास्तिक। शून्यवादी। (४) अनीश्वरवादी।

सौगम्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुगम का भाव। सुगमता। आसानी।

सौगरिया-संज्ञा पुं० [?] क्षत्रियों की एक जाति या वंश। उ०—गौर सुगोकुल रामसिंह परताप कमठ कुल। रामचंद्र कुल पांडु भेद चहुँवान खग्ग खुल। सूरतराम प्रसिद्ध कुसल तन अरु पाखरिया। पैमसिंह प्रथिसिंह अमरवाला सौगरिया।—सूदन।

सौगात-संज्ञा स्त्री० [तु०] वह वस्तु जो परदेश से इष्टमित्रों को देने के लिये लाई जाय। भेंट। उपहार। नजर। तोहफ़ा। जैसे,—हमारे लिये बंबई से क्या सौगात लाए हो?

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—लाना।

सौगाती-वि० [हिं० सौगात] (१) सौगात के लायक। उपहार के योग्य। (२) उत्तम। बढ़िया। उमदा।

सौघा†-वि० [हिं० महँगा का अनु०] सस्ता। अल्प मूल्य का। कम दाम का। महँगा का उलटा। उ०—महँगे मनि कंचन किये सौंघो जग जल नाज।—तुलसी।

सौच*-संज्ञा पुं० दे० "शौच"। उ०—सकल सौच करि जाइ नहाये। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाये।—तुलसी।

सौचि-संज्ञा पुं० दे० "सौचिक"।

सौचिक-संज्ञा पुं० [सं०] सूची कर्म या सिलाई द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला। दरजी। सूचिक। सूत्रभित्।

सौचिक्य-संज्ञा पुं० [सं०] सूचिक का कार्य। दरजी का काम। सीने का काम।

सौचित्ति-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुचित्त के अपत्य हो।

सौचीक-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में एक प्रकार की अग्नि।

सौचुक-संज्ञा पुं० [सं०] भूतिराज के पिता का नाम।

सौचुक्य-संज्ञा पुं० [सं०] सूचक का भाव या कर्म। सूचकता।

सौज-संज्ञा स्त्री० [सं० शय्या, मि० फ़ा० साज] उपकरण। सामग्री। साज सामान। उ०—(क) कहाँ लगि समुझाऊँ सूर सुनि जाति मिलन की औधि टरी। लेहु सँभारि देहु पिय अपनी बिन प्रमान सब सौज धरी।—सूर। (ख) जन पुकारे हरि पै जाइ। जिनकी यह सब सौज राधिका तेरे तनु सब लई छँड़ाइ।—सूर। (ग) जिन हरि सौज चोरि जग खाई। विगत दसन ते होहिं बनाई।—रामाश्वमेध। (घ) अलि सुगंध बस रहे लुभाई। भोग सौज सब सजी बनाई।—रामाश्वमेध।

वि० [सं० ओजस] शक्तिशाली। बलवान्। ताकतवर।

सौजन्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुजन का भाव। सुजनता। भलमनसत।

सौजन्यता-संज्ञा स्त्री० दे० "सौजन्य"। उ०—क्यों महाशय, यही सौजन्यता है।—अयोध्यासिंह।

विशेष—शुद्ध भाववाचक शब्द "सौजन्य" ही है। उसमें भी "ता" प्रत्यय लगाकर जो "सौजन्यता" रूप बनाया जाता है, वह अशुद्ध है।

सौजस्क-वि० दे० "सौज"।

सौजात-संज्ञा पुं० [सं०] सुजात के वंश में उत्पन्न व्यक्ति।

सौजामि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सौड़-संज्ञा पुं० दे० "सौंड़"।

सौडल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य का नाम।

सौत-संज्ञा स्त्री० [सं० सपत्नी] किसी स्त्री के पति या प्रेमी की दूसरी स्त्री या प्रेमिका। किसी स्त्री की प्रेम प्रतिद्वंद्विनी। सपत्नी। सौक। सवत। उ०—(क) देह दुलहैया की बढ़े ज्यों ज्यों जोबन जोति। त्यों त्यों लखि सौतैं सबै बदन मलिन दुति होति।—बिहारी। (ख) काल्ह ब्याही नई हौं तो धाम हू न गई पुनि आजहूते मेरे सीस सौत को बसाई है।—हनुमन्नाटक।

मुहा०—सौतिया डाह=(१) दो सौतों में होनेवाली डाह या ईर्ष्या। (२) द्वेष। जलन।

वि० [सं०] (१) सूत से उत्पन्न। (२) सूत संबंधी। सूत का।

सौतन-संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"। उ०—कान्ह भये बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमको चहिहै। निस द्यौस रहै सँग साथ लगी यह सौतन तापन क्यों सहिहै।—रसखान।

सौतनि-संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"। उ०—बादत तो उर उरज भर भरि तरुनई विकास। बोझनि सौतनि के हिये आवत रूँधि उसास।—बिहारी।

सौति-संज्ञा पुं० [सं०] सूत के अपत्य, कर्ण।

संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"। उ०—(क) बिथुरो जावक सौति पग निरखि हँसी गहि गाँस। सलज हँसौंही लखि लियौ आधी हँसी उसास।—बिहारी। (ख) गुर लोगनि के पग लागति प्यार सों प्यारी कहू लखि सौति जरी।—देव।

सौतिन-संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"। उ०—(क) चौंक चौंक चकई सी सौतिन की दूती चली सो तें भई दीन अरविंद गति मंद ज्यों।—केशव। (ख) नायक के नैननि मैं नाइये सुधा सो सब सौतिन के लोचननि लौन सो लगाइये।—मतिराम।

सौतुक*-संज्ञा पुं० दे० "सौंतुख"। उ०—देखि वदन चकृत भई सौतुक की सपने।—सूर।

सौतुख*-संज्ञा पुं० दे० "सौंतुख"। उ०—पिय मिलाप को सुख सखी कह्यो न जाय अनूप। सौतुख सो सपनो भयो सपनो सौतुख रूप।—मतिराम।

सौतुप* संज्ञा पुं० दे० "सौंतुख"। उ०—पुनि पुनि करै प्रनामु न आवत कछु कहि। देखौं सपन कि सौतुप ससिसेषर सहि।—तुलसी।

सौतेला-वि० [हिं० सौत + एला (प्रत्य०)] [स्त्री० सौतेली] (१) सौत से उत्पन्न। सौत का। जैसे—सौतेला लड़का। (२) जिसका संबंध सौत के रिश्ते से हो। जैसे,—सौतेला भाई। (माँ की सौत का लड़का) सौतेली माँ (अर्थात् माँ की सौत) सौतेले मामा (अर्थात् नानी की सौत का लड़का या सौतेली माँ का भाई)।

सौत्य संज्ञा पुं० [सं०] सूत या सारथि का काम।

वि० सूत या सारथि संबंधी। (२) सुत्य संबंधी। सोमाभिषव संबंधी।

सौत्र-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

वि० (१) सूत का। (२) सूत्र संबंधी। सूत्र का (३) सूत्र में उल्लिखित या कथित।

सौत्रांतिक-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का एक भेद। इनके मत से अनुमान प्रमाण है। इनका कहना है कि बाहर कोई पदार्थ सांगोपांग प्रत्यक्ष नहीं होता; केवल एक देश के प्रत्यक्ष होने से शेष का ज्ञान अनुमान से होता है। ये कहते हैं कि सब पदार्थ अपने लक्षण से लक्षित होते हैं और लक्षण सदा लक्ष्य में वर्तमान रहता है।

सौत्रामण-वि० [सं०] [स्त्री० सौत्रामणी] इंद्र संबंधी। इंद्र का।

संज्ञा पुं० एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का याग। एकाह।

सौत्रामण धनु-संज्ञा पुं० [सं० सौत्रामण धनुस्] इंद्र धनुष।

सौत्रामणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र के प्रीत्यर्थ किया जानेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

सौत्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुलाहा। तंतुवाय। (२) वह जो बुना जाय। बुनी हुई वस्तु।

सौत्वन-संज्ञा पुं० [सं०] सुत्वन के अपत्य या वंशज।

सौदंति-संज्ञा पुं० [सं०] सुदंत के अपत्य या वंशज।

सौदंतेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुदंत के अपत्य।

सौदक्ष-वि० [सं०] (१) सुदक्ष संबंधी। सुदक्ष का। (२) सुदक्ष से उत्पन्न।

सौदक्षेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुदक्ष के अपत्य या वंशज।

सौदत्त-वि० [सं०] (१) सुदत्त संबंधी। सुदत्त का। (२) सुदत्त से उत्पन्न।

सौदर्य-वि० [सं०] (१) सहोदर या सगे भाई संबंधी। (२) सोदर या भाई का सा।

संज्ञा पुं० भ्रातृत्व। भाईपन।

सौदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] वाहीक जाति के एक गाँव का नाम।

सौदा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह चीज जो खरीदी या बेची जाती हो। क्रय-विक्रय की वस्तु। चीज। माल। जैसे,—(क) चलो बजार से कुछ सौदा ले आवें। (ख) तुम्हारा सौदा अच्छा नहीं है। (ग) आप क्या क्या सौदा लीजिएगा? उ०—(क) ब्योपार तो याँ का बहुत किया अब वाँ का भी कुछ सौदा लो।—नजीर। (ख) औरे बनिज मैं नाहीं लाहा होत मूल में हानि। सूर स्वामि को सौदो साँचो कहो हमारो मानि।—सूर। (२) लेन-देन। व्यवहार। उ०—(क) क्या खूब सौदा नक्द है उस हाथ दे इस हाथ ले। (ख) दरजी को मुरगी दरकार नहीं, वह गेहूँ लेना चाहता है; अतः उन दोनों का सौदा नहीं हो सकता।—मिश्रबंधु। (घ) प्रायः सभी बैंकें एक दूसरे से हिसाब रखती हैं। इस प्रकार सौदे का काम कागजी घोड़ों (चेकों) द्वारा चलता है।—मिश्रबंधु। (च) जरासुत सों और कोउ नहिं मिलै मोहि दलाल। जो करै सौदा समर को सहज द्रुमि या काल।—गोपाल।

मुहा०—सौदा पटना = क्रय विक्रय की बात चीत ठीक होना। जैसे,—तुमसे सौदा नहीं पटेगा। उ०—आखिर इसी बहाने मिला यार से नजीर। कपड़े बला से फट गए सौदा तो पट गया।—नजीर।

(३) क्रय-विक्रय। खरीद-फरोख्त। व्यापार। उ०—और बनिज मैं नाहीं लाहा होत मूल में हानि। सूर स्वामि को सौदो साँचो कहो हमारो मानि।—सूर। (४) खरीदने या बेचने की बात चीत पक्की करना। जैसे,—उन्होंने पचास गाँठ का सौदा किया। उ०—राजा खुद तिजारत करता है, बिना उसकी आज्ञा के राँगा, हाथी दाँत, सीसा इत्यादि का कोई सौदा नहीं कर सकता।—शिवप्रसाद।

यौ०—सौदागर = व्यापारी। सौदा सुलुफ = खरीदने की चीज। वस्तु। सौदासूत = व्यवहार। उ०—सुहृद समाजु दगाबाजी ही को सौदासूत जब जाको काजु तब मिलैं पायँ परि सो।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—पटना।—लेना।—होना।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) पागलपन। बावलापन। दीवानापन। उन्माद। (२) उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि का नाम।

†संज्ञा पुं० [देश०] वे काट छाँटकर साफ किए हुए पान जो ढोली में सड़ गए हों। (तंबोली)

सौदाई-संज्ञा पुं० [अ० सौदा + ई (प्रत्य०)] जिसे सौदा या पागलपन हुआ हो। पागल। बावला।

मुहा०—किसी का सौदाई होना = किसी पर बहुत अधिक आसक्त होना। सौदाई बनाना = अपने ऊपर किसी को आसक्त करना।

सौदागर-संज्ञा पुं० [फा०] व्यापारी। व्यवसायी। तिजारत करनेवाला। जैसे,—कपड़ों का सौदागर, घोड़ों का सौदागर।

सौदागर बच्चा-संज्ञा पुं० [फा० सौदागर + हिं० बच्चा] सौदागर अथवा सौदागर का लड़का।

सौदागरी-संज्ञा स्त्री० [फा०] सौदागर का काम। व्यापार। व्यवसाय। तिजारत। रोजगार।

सौदामनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली। विद्युत्। (२) एक प्रकार की विद्युत् या बिजली। मालाकार विद्युत्। (३) कश्यप और विनता की एक पुत्री का नाम। (विष्णुपुराण) (४) एक अप्सरा का नाम। (बालरामायण) (५) एक रागिनी जो मेघ राग की सहचरी मानी जाती है।

सौदामनीय-वि० [सं०] सौदामनी या विद्युत् के समान। सौदमनी या विद्युत् सा।

सौदामिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सौदामनी"। उ०—वर्षा बरनहुँ हंस बक दादुर चातक मोर। केतक कंज कदंब जल सौदामिनि घनघोर।—केशव।

सौदामिनीय-वि० दे० "सौदामनीय"।

सौदामेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुदामा के अपत्य या वंशज।

सौदाम्नी-संज्ञा स्त्री० "सौदामनी"।

सौदायिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन आदि जो स्त्री को उसके विवाह के अवसर पर उसके पिता-माता या पति के यहाँ से मिले। दाय भाग के अनुसार इस प्रकार मिला हुआ धन स्त्री का हो जाता है। उस पर उसी का सोलहों आने अधिकार होता है; और किसी का कोई अधिकार नहीं होता।

वि० दाय संबंधी। दाय का।

सौदास-संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकु वंशी एक राजा का नाम। ये राजा सुदास के पुत्र और ऋतुपर्ण के पौत्र थे। इन्हें मित्र सह और कल्मपपाद भी कहते हैं।

सौदासि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि का नाम। (२) इन ऋषि के गोत्र का नाम।

सौदेव-संज्ञा पुं० [सं०] सुदेव के पुत्र, दिवोदास।

सौद्युम्नि-संज्ञा पुं० [सं०] सुद्युम्न के अपत्य।

सौध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भवन। प्रासाद। अट्टालिका। महल। उ०—जहँ विमान वनितान के श्रमजल हरत अनूप। सौधपताकनि के बसन होइ बिजन अनुरूप।—मतिराम। (२) चाँदी। रजत। (३) दुधिया पत्थर। दुग्ध पाषाण।

वि० सफेदी, पलस्तर या अस्तरकारी किया हुआ।

सौधक-संज्ञा पुं० [सं०] परावसु गंधर्व के नौ पुत्रों में से एक। उ०—ब्रह्म कल्प महँ हो गंधर्वा। नाम परावसु तेहि सुत सर्वा। मंदर मंबर मंदी सौधक। सुधन सुदेव महाबिल नामक।—गोपाल।

सौधकार-संज्ञा पुं० [सं०] सौध बनानेवाला। प्रासाद या भवन बनानेवाला। राज। मेमार।

सौधना*-क्रि० स० दे० "सोधना"। उ०—तातें लेनौ सौधौ याकौ। तब उपाय करिहौं मैं ताकौ।—सूदन।

सौधन्य-वि० [सं०] सुधन से उत्पन्न।

सौधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० सौधन्वन्] (१) सुधन्वा के पुत्र, ऋभु। (२) एक वर्णसंकर जाति।

सौधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के देवताओं का निवास स्थान। कल्प-भवन।

सौधर्मज-संज्ञा पुं० [सं०] सौधर्म में उत्पन्न एक प्रकार के देवता। (जैन)

सौधर्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुधर्म का भाव। (२) साधुता। भलमनसत।

सौधाकार-वि० [सं०] सुधाकर या चंद्रमा संबंधी। चंद्रमा का।

सौधात-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण और भूज्जकंठी से उत्पन्न संतान। (भूज्जकंठ एक वर्णसंकर जाति थी जो व्रात्य ब्राह्मण और ब्राह्मणी से उत्पन्न थी।)

सौधातकि-संज्ञा पुं० [सं०] सुधता के अपत्य।

सौधार-संज्ञा पुं० [सं०] नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक के चौदह भागों में से एक का नाम।

सौधाल-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का मंदिर। शिवालय।

सौधावति-संज्ञा पुं० [सं०] सुधावति के अपत्य।

सौधृतेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुधृति के अपत्य या वंशज।

सौधोतकि-संज्ञा पुं० दे० "सौधातकि"।

सौनंद-संज्ञा पुं० [सं०] बलराम के मूसल का नाम।

सौनंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वत्सप्री की पत्नी का नाम। (मारकंडेय पुराण)

सौनंदी-संज्ञा पुं० [सं० सौनन्दिन्] बलराम का एक नाम जो अपने पास सौनंद नामक मूसल रखते थे।

सौन*-क्रि० वि० [सं० सम्मुख] सामने। प्रत्यक्ष। उ०—ब्याह कियो कुल इष्ट वसिष्ट अरिष्ट टरे घर को नृप धाये। लै सुत चार विवाहत ही घरी जानकी तात सबै समुदाये। सौन भये अपसौन सबै पथ काँपि उठे जिय में दुख पाये।—हनुमन्नाटक।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसाई। बूचड़। (२) वह ताजा मांस जो बिक्री के लिये रखा हो।

वि० पशुबध-शाला या कसाईखाने का। पशुबधशाला संबंधी।

सौनक-संज्ञा पुं० दे० "शौनक"। उ०—सौनक मुनि आसीन तहँ अति उदार तप रासि। मगन राम सिय ध्यान महँ, वेद रूप आभासि।—रामाश्वमेध।

सौनन†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सौदना] कपड़ों को धोने से पहले उनमें रेह आदि लगाना। रेह की नाँद में कपड़े भिगोना। सौंदना। (धोबी) उ०—तन मन लाय के सौनन कीन्हा धोबन जाय साधु की नगरी। कहहिं कबीर सुनो भाइ साधू, बिन सतसंग कबहूँ नहिं सुधरी।—कबीर।

सौनव्य-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सौनव्यायनी] सुनु के अपत्य।

सौनहोत्र-संज्ञा पुं० [सं० शौनहोत्र] (१) वह जो शुनहोत्र के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। शुनहोत्र का अपत्य। (२) गृत्समद ऋषि।

सौना‡-संज्ञा पुं० दे० "सोना"। उ०—धरि सौने के पींजरा राखौ अमृत पिवाइ। विष को कीरा रहत है विष ही में सुख पाइ।—रसनिधि।

†संज्ञा पुं० दे० "सौंदन"।

सौनाग-संज्ञा पुं० [सं०] वैयाकरणों की एक शाखा का नाम, जिसका उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य में है।

सौनामि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुनाम के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो।

सौनिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मांस बेचनेवाला। कसाई। वैतंसिक। मांसिक। (२) बहेलिया। व्याध। कौटिक।

सौनीतेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुनीति के पुत्र, ध्रुव।

सौपथि-संज्ञा पुं० [सं०] सुपथ के अपत्य।

सौपना‡-क्रि० स० दे० "सौंपना"

सौपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पन्ना। मरकत। (२) सोंठ। शुंठी। (३) गरुड़ जी के अस्त्र का नाम। गरुत्म अस्त्र। (४) ऋग्वेद का एक सूक्त। (५) गरुड़ पुराण।

वि० सुपर्ण अथवा गरुड़ संबंधी। गरुड़ का।

सौपर्णकेतव-वि० [सं०] विष्णु संबंधी। विष्णु का।

सौपर्ण व्रत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत। गरुड़ व्रत।

सौपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाताल-गारुड़ी लता। जल-जमनी।

सौपर्णेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुपर्णी के पुत्र, गरुड़।

सौपर्ण्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुपर्ण पक्षी (बाज या चील) का स्वभाव या धर्म।

वि० दे० "सौपर्ण"।

सौपर्व-वि० [सं०] सुपर्व संबंधी। सुपर्व का।

सौपस्तंबि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

सौपाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णसंकर जाति जिसका उल्लेख महाभारत में है।

सौपातव-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि।

सौपामावनि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुपामा के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। सुपामा का गोत्रज।

सौपिक-वि० [सं०] (१) सूप या व्यंजन डाला हुआ। (२) सूप या व्यंजन संबंधी।

सौपिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुपिष्ट के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। सुपिष्ट का गोत्रज।

सौपिष्टी-संज्ञा पुं० दे० "सौपिष्ट"।

सौपुष्पि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुपुष्प के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। सुपुष्प का गोत्रज।

सौप्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रात को सोते हुए मनुष्यों पर आक्रमण। रात्रियुद्ध। निशा-रण। रात्रि-मारण। (२) महाभारत के दसवें पर्व का नाम, जिसमें सोते हुए पांडवों पर आक्रमण करने का वर्णन है।

वि० सुप्त संबंधी।

सौप्रजास्त्व-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी संतानों का होना। अच्छी औलाद होना।

सौप्रतीक-वि० [सं०] (१) सुप्रतीक दिग्गज संबंधी। (२) हाथी का। हाथी संबंधी।

सौफ-संज्ञा स्त्री० दे० "सौंफ"।

सौफिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० सौंफ] रूसा नाम की घास जब कि वह पुरानी और लाल हो जाती है।

सौफियाना-वि० दे० "सोफियाना"।

सौबल-संज्ञा पुं० [सं०] गांधार देश के राजा सुबल का पुत्र, शकुनि। उ०—(क) जात भयो ताही समय सभाभवन कुरुनाथ। विकरण दुश्शासन करण सौबल शकुनी साथ। (ख) गंधार धरापति सुत सुभग मगध राज हित रस रसो। भट सौबल सौबल संग ले जंग रंग करिबे लसो। —गोपाल।

सौबलक-संज्ञा पुं० [सं०] (सुबल का पुत्र) शकुनि।

वि० सौबल (शकुनि) संबंधी। सौबल (शकुनि) का।

सौबली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुबल की पुत्री, गांधारी। (धृतराष्ट्र की पत्नी)

वि० सौबल (शकुनी) संबंधी। सौबल।

सौबलेय-संज्ञा पुं० [सं०] (सुबल के पुत्र) शकुनि का एक नाम।

सौबलेयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (सुबल की पुत्री और धृतराष्ट्र की पत्नी) गांधारी का एक नाम।

सौबल्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम। (महाभारत)

सौबिगा-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बुलबुल जो पश्चिम भारत को छोड़कर प्रायः शेष समस्त भारत में पाई जाती और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है। यह लंबाई में प्रायः एक बालिश्त से कुछ कम होती है। इसके ऊपर के पर सदा हरे रहते हैं। यह कीड़े मकोड़े खाती और एक बार में तीन अंडे देती है।

सौबीर-संज्ञा पुं० दे० "सौवीर"।

सौभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा हरिश्चंद्र की उस कल्पित नगरी का नाम जो आकाश में मानी गई है। कामचारिपुर।

(महाभारत)। (२) शाल्वों के एक नगर का नाम। (महाभारत) (३) एक प्राचीन जनपद का नाम। (महाभारत) (४) उक्त जनपद के राजा। (महाभारत) उ०—अभिमान सहित रिपु प्रान हर वर कृपान चमकावतो। नृप सौभ लख्यो मगधेस हित सिंह समान हिंसावतो।—गोपाल।

सौभकि-संज्ञा पुं० [सं०] द्रुपद का एक नाम।

सौभग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुभग होने का भाव। सौभाग्य। खुशकिस्मती। खुशनसीबी। (२) सुख। आनंद। मंगल। (३) ऐश्वर्य। संपदा। धन-दौलत। (४) सुंदरता। सौंदर्य। खूबसूरती। (५) बृहच्छ्लोक के एक पुत्र का नाम। (भागवत)

वि० सुभग वृक्ष से उत्पन्न या बना हुआ। (चरक)

सौभगत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सुख। आनंद। मंगल।

सौभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुभद्रा के पुत्र, अभिमन्यु। (२) एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है। (३) वह युद्ध जो सुभद्रा-हरण के कारण हुआ था।

वि० सुभद्रा संबंधी।

सौभद्रेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुभद्रा के पुत्र, अभिमन्यु। (२) बहेड़ा। विभीतक वृक्ष।

सौभर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक ऋषि का नाम। (२) एक साम का नाम।

वि० सोभरि संबंधी। सोभरि का।

सौभरायण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सौभर के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। सौभर का गोत्रज।

सौभरि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम, जो बड़े तपस्वी थे। कहते हैं कि एक दिन यमुना में एक मत्स्य को मछलियों से भोग करते देखकर इनमें भी भोग-लालसा उत्पन्न हुई। ये सम्राट् मान्धाता के पास पहुँचे, जिनके पचास कन्याएँ थीं। ऋषि ने उनसे अपने लिए एक कन्या माँगी। मान्धाता ने उत्तर दिया कि यदि मेरी कन्याएँ स्वयंवर में आपको वरमाल्य पहना दें, तो आप उन्हें ग्रहण कर सकते हैं। सौभरि ने समझा कि मेरी बुढ़ौती देखकर सम्राट् ने टालमटोल की है। पर मैं अपने आपको ऐसा बनाऊँगा कि राजकन्याओं की तो बात ही क्या, देवांगनाएँ भी मुझे वरण करने को उत्सुक होंगी। तपोबल से ऋषि का वैसा ही रूप हो गया। जब वे सम्राट् मान्धाता के अंतःपुर में पहुँचे, तब राजकन्याएँ उनका दिव्य रूप देख मोहित हो गईं और सब ने उनके गले में वरमाल्य डाल दिया। ऋषि ने अपनी मंत्र-शक्ति से उनके लिये अलग अलग पचास भवन बनवाए और उनमें बाग लगवाए। इस प्रकार ऋषि जी भोग-विलास में रत हो गए। पचास पत्नियों से उन्होंने पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किए। बह्वृचाचार्य नामक एक ऋषि ने उन्हें इस प्रकार भोग-रत देख एक दिन एकांत में बैठकर उन्हें समझाया कि यह आप क्या कर रहे हैं। इससे तो आप का तपोतेज नष्ट हो रहा है। ऋषि को आत्मग्लानि हुई। वे संसार त्याग भगवच्चिंतन के लिये वन में चले गए। उनकी पत्नियाँ उनके साथ ही गईं। कठोर तपस्या करने के उपरांत उन्होंने शरीर त्याग दिया और परब्रह्म में लीन हो गए। उनकी पत्नियों ने उनका सहगमन किया। (भागवत)

सौभव-संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के एक वैयाकरण का नाम।

सौभांजन-संज्ञा पुं० दे० "शोभांजन"।

सौभागिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० सौभाग्य] सधवा स्त्री। सोहागिन। उ०—सौभागिनी करै क्रम खोटा। तऊ ताहि बड़ि पति की ओटा।—विश्राम।

सौभागिनेय-संज्ञा पुं० [सं०] उस स्त्री का पुत्र जो अपने पति को प्रिय हो। सुभगा या सुहागिन का पुत्र।

सौभाग्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा भाग्य। अच्छा प्रारब्ध। अच्छी किस्मत। खुशकिस्मती। खुशनसीबी। (२) सुख। आनंद। (३) कल्याण। कुशल-क्षेम। (४) स्त्री के सधवा रहने की अवस्था। पति के जीवित रहने की अवस्था। सुहाग। अहिवात। (५) अनुराग। (६) ऐश्वर्य। वैभव। (७) सुंदरता। सौंदर्य। खूबसूरती। (८) मनोहरता। (९) शुभकामना। मंगल कामना। (१०) सफलता। साफल्य। कामयाबी। (११) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों में से चौथा योग जो बहुत शुभ माना जाता है। (१२) सिंदूर। (१३) सुहागा। टंकण। (१४) एक प्रकार का पौधा। (१५) एक प्रकार का व्रत।

सौभाग्य चिंतामणि-संज्ञा पुं० [सं०] सन्निपात ज्वर की एक औषध।

विशेष—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है। सुहागे का लावा, विष, जीरा, मिर्च, हड़, बहेड़ा, आँवला, सेंधा, कर्कच, विट, सोंचर और साँभर नमक, अभ्रक और गंधक—ये सब चीज़ें बराबर लेकर खरल करते हैं फिर संभालू (निर्गुंडी), शेफालिका, भँगरा (भृंगराज), अड़ूसा (वासक) और लटजीरा (अपामार्ग) के पत्तों के रस में अच्छी तरह भावना देने के उपरांत एक एक रत्ती की गोली बनाते हैं। सन्निपातिक ज्वर की यह उत्तम औषध मानी गई है।

सौभाग्य तृतीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र शुक्ल पक्ष की तृतीया जो बहुत पवित्र मानी गई है।

सौभाग्य व्रत-संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसके फागुन शुक्ल तृतीया को करने का विधान है।

विशेष—वाराह पुराण में इसका बड़ा माहात्म्य वर्णित है। यह व्रत स्त्री-पुरुष दोनों के लिये सौभाग्यदायक बताया गया है।

सौभाग्यमंडन-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

सौभाग्यवती-वि० स्त्री० [सं०] (१) (स्त्री) जिसका सौभाग्य या सुहाग बना हो। जिसका पति जीवित हो। सधवा। सुहागिन। (२) अच्छे भाग्यवाली।

सौभाग्यवान्-वि० [सं० सौभाग्यवत्] [स्त्री० सौभाग्यवती] (१) जिसका भाग्य अच्छा हो। अच्छे भाग्यवाला। खुशकिस्मत। खुशनसीब। (२) सुखी और संपन्न। खुशहाल।

सौभाग्य शुंठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध पाक जो सूतिका रोग के लिये बहुत उपकारी माना गया है।

विशेष—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—घी ८ तोले, दूध १२८ तोले, चीनी २०० तोले, इनको एक में मिला ३२ तोले सोंठ का चूर्ण डाल गुड़ पाक की विधि से पाक करते हैं। फिर इसमें धनिया १२ तोले, सौंफ २० तोले, तेजपत्ता, वायबिडंग, सफेद जीरा, काला जीरा, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, नागकेसर, दालचीनी और छोटी इलायची ४-४ तोले डालकर पाक करते हैं। 'भावप्रकाश' के अनुसार इसका सेवन करने से सूतिका रोग, तृषा, वमन, ज्वर, दाह, शोप, श्वास, खाँसी, प्लीहा आदि का नाश होता है और अग्नि प्रदीप्त होती है। दूसरी विधि यह है—कसेरू, सिंघाड़ा, कमलगट्टा, नागरमोथा, नागकेसर, सफेद जीरा, कालाजीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, भूरि छरीला (शैलज), तेजपत्ता, दालचीनी, धौ के फूल, इलायची, सोया, धनिया, सतावर, अभ्रक और लोहा आठ आठ तोले, सोंठ का चूर्ण एक सेर, मिश्री तीस पल, घी एक सेर और गाय का दूध आठ सेर इन सब को मिलाकर पाक विधि के अनुसार पाक करते हैं। मात्रा एक तोला है।

सौभासिक-वि० [सं०] चमकीला। प्रकाशवान्। समुज्ज्वल।

सौभिक-संज्ञा पुं० [सं०] जादूगर। इंद्रजालिक।

सौभिक्ष-वि० [सं०] सुभिक्ष या सुसमय लानेवाला।

संज्ञा पुं० घोड़ों को होनेवाला एक प्रकार का शूल रोग जो भारी और चिकने पदार्थ खाने से होता है।

सौभिक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] खाद्य पदार्थ की प्रचुरता। अन्न की अधिकता आदि के विचार से अच्छा समय। सुकाल।

सौभेषज-वि० [सं०] जिसमें सुभेषज या उत्तम ओषधियाँ हों। उत्तम ओषधियों से युक्त।

सौभ्रात्र-संज्ञा पुं० [सं०] सुभ्राता का भाव या धर्म। सुभ्रातृत्व। अच्छा भाई-चारा।

सौमंगल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुमंगल। कल्याण। (२) मंगल-सामग्री।

सौमंत्रिण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके अच्छा मंत्री हो।

सौम-वि० [सं०] (१) सोम लता संबंधी। (२) चंद्र संबंधी।

✱ वि० दे० "सौम्य"।

सौमकतव-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

सौमदत्ति-संज्ञा पुं० [सं०] सोमदत्त के पुत्र, जयद्रथ।

सौमन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का अस्त्र (रामायण)। उ०—त्यो मम संवर्त्तास्त्र बहुर मौसल सौमन हूँ। सत्यास्त्रहु, मायास्त्र, त्वाष्ट्र अस्त्रहु पुनि गनहू। (२) फूल। पुष्प।

सौमनस-वि० [सं०] (१) फूलों का। प्रसून या पुष्प-संबंधी। (२) मनोहर। रुचिकर। अच्छा लगनेवाला। प्रिय।

संज्ञा पुं० (१) प्रफुल्लता। आह्लाद। आनंद। खुशदिली। (२) पश्चिम दिशा का हाथी। (पुराण) (३) कर्म मास या सावन की आठवीं तिथि। (४) एक पर्वत का नाम। (५) अनुग्रह। कृपा। प्रसन्नता। इनायत। (६) जातीफल। जायफल। (७) अस्त्रों का एक संहार। अस्त्र निष्फल करने का एक अस्त्र। उ०—अरु विनीद्र तिमि मत्तहि प्रसमन तैसहि सारचिमाली। रुचिर वृत्ति मतपित्र सौमनस धन धानहु धृतिमाली। अस्त्रन को संहार सकल ये लीजै राजकुमारा।—रघुराज।

सौमनसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जावित्री। जातीपत्री। (२) एक नदी का नाम। (रामायण)

सौमनसायनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री। जातीपत्री।

सौमनसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्म मास अर्थात् सावन मास की पाँचवीं रात।

सौमनस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसन्नचित्तता। प्रसन्नता। आनंद। (२) श्राद्ध में पुरोहित या ब्राह्मण के हाथ में फूल देना। (भागवत) (३) प्लक्ष द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष का नाम जहाँ के देवता सौमनस्य माने जाते हैं। (भागवत) (४) सुबोधता।

वि० आनंद देनेवाला। प्रसन्नता देनेवाला।

सौमनस्यायनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मालती का फूल।

सौमना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फूल। पुष्प। (२) कली। कलिका। (३) एक दिव्यास्त्र का नाम।

सौमपौष-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम जिसमें सोम और पूषा की स्तुति है।

सौमापौष्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वि० सोम और पूषण का।

सौमायन-संज्ञा पुं० [सं०] (सोम अर्थात् चंद्रमा के पुत्र) बुध।

सौमारौद्र-वि० [सं०] सोम और रुद्र संबंधी। सोम और रुद्र का।

सौमिक-वि० [सं०] (१) सोम रस से किया जानेवाला (यज्ञ)। (२) सोम यज्ञ संबंधी। (३) सोम अर्थात् चंद्रमा संबंधी। (४) सोमायण या चांद्रायण व्रत करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० सौमिकम्] सोम रस रखने का पात्र।

सौमिकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का यज्ञ। दीक्षणीयेष्टि। (२) सोम लता का रस निचोड़ने की क्रिया।

सौमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुमित्रा के पुत्र, लक्ष्मण। उ०—सिय दिशि मुनि कहँ जात, लखि सौमित्र उदार मति। कछुक स्वस्ति अवदात निज चित मैं आनत भये।—मिश्रबंधु। (२) कई सामों के नाम। (३) मित्रता। मैत्री। दोस्ती।

सौमित्रा%-संज्ञा स्त्री० दे० "सुमित्रा"। उ०—अति फूले दशरथ मनहीं मन कौशल्या सुख पायो। सौमित्रा कैकेयी मन आनँद यह सबहिन सुत जायो।—सूर।

सौमित्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुमित्रा के पुत्र, लक्ष्मण। उ०—एहि विधि रघुकुल कमल रवि मग लोगन्ह सुख देत। जाहिं चले देखत विपिन सिय सौमित्रि समेत।—तुलसी। (२) एक आचार्य का नाम।

सौमित्रीय-वि० [सं०] सौमित्रि संबंधी।

सौमित्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध भिक्षुकों का एक प्रकार का का दंड जिसमें रेशम का गुच्छा लगा रहता है।

सौमी-संज्ञा स्त्री० दे० "सौर्म्या"।

सौमुख्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुमुखता। (२) प्रसन्नता।

सौमेंद्र-वि० [सं०] सोम और इंद्र का। सोम और इंद्र-संबंधी।

सौमेचक-संज्ञा पुं० [सं०] सोना। सुवर्ण।

सौमेध-संज्ञा पुं० [सं०] कई सामों के नाम।

सौमेधिक-वि० [सं०] दिव्य ज्ञान-संपन्न। जिसे दिव्य ज्ञान हो। संज्ञा पुं० सिद्ध। मुनि।

सौमेरव-संज्ञा पुं० [सं०] (१)। सुवर्ण। (२) इला वृत्त खंड का एक नाम।
वि० सुमेरु संबंधी। सुमेरु का।

सौमेरुक-संज्ञा पुं० [सं०] सोना। सुवर्ण।
वि० सुमेरु-संबंधी। सुमेरु का।

सौम्य-वि० [सं०] [स्त्री० सौम्या] (१) सोम लता-संबंधी। (२) सोम देवता संबंधी। (३) चंद्रमा संबंधी। (४) शीतल और स्निग्ध। ठंढा और रसीला। (५) गंभीर और कोमल स्वभाव का। सुशील। शांत। नम्र। (६) उत्तर की ओर का। (७) मांगलिक। शुभ। (८) प्रफुल्ल। प्रसन्न। (९) मनोहर। प्रियदर्शन। सुंदर। (१०) उज्ज्वल। चमकीला।
संज्ञा पुं० (१) सोम यज्ञ। (२) चंद्रमा के पुत्र, बुध। (३) ब्राह्मण। (४) भक्त। उपासक। (५) बायाँ हाथ। (६) गूलर। उदुंबर। (७) यज्ञ के यूप का नीचे से पंद्रह अरत्नि का स्थान। (८) लाल होने के पूर्व की रक्त की अवस्था (आयुर्वेद) (९) पित्त। (१०) मार्गशीर्ष मास। अगहन। (११) साठ संवत्सरों में से एक। इस वर्ष में अनावृष्टि, चूहे, टिड्डी आदि से फसल को हानि पहुँचती, रोग फैलता और राजाओं में शत्रुता होती है। (१२) ज्योतिष में सातवें युग का नाम। (१३) ब्राह्मणों के पितरों का एक वर्ग। (१४) एक कृच्छ्र या कठिन व्रत। (१५) वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशि। (१६) एक द्वीप का नाम। (पुराण) (१७) सुशीलता। सज्जनता। भलमनसाहत। (१८) मृगशिरा नक्षत्र। (१९) बाईं आँख। वाम नेत्र। (२०) हथेली का मध्य भाग। (२१) एक दिव्यास्त्र। उ०- सत्य अस्त्र मायास्त्र महाबल घोर तेज तनुकारी। पुनि पर तेज विकर्षण लीजै सौम्य अस्त्र भयहारी।—रघुराज।

सौम्यकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें पाँच दिन क्रम से खली (पिण्याक), भात, मट्ठे जल और सत्तू पर रहकर छठे दिन उपवास करना पड़ता है।

सौम्यगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवती। शतपत्री।

सौम्यगंधी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवती। शतपत्री।

सौम्य गिरि-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। (हरिवंश)

सौम्य गोल-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तरी गोलार्द्ध।

सौम्य ग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] शुभ ग्रह। जैसे,—चंद्र, बुध, बृहस्पति और शुक्र। फलित ज्योतिष में ये चारों शुभ माने गए हैं।

सौम्य ज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर जिसमें कभी शरीर गरम हो जाता है और कभी ठंढा।

विशेष—यह वात और पित्त अथवा वात और कफ के प्रकोप से उत्पन्न कहा गया है। (चरक)

सौम्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौम्य होने का भाव या धर्म। (२) शीतलता। ठंढक। (३) सुशीलता। शान्तता। साधुता। (४) सुंदरता। सौंदर्य। (५) परोपकारिता। उदारता। दयालुता।

सौम्यत्व-संज्ञा पुं० दे० "सौम्यता"।

सौम्यदर्शन-वि० [सं०] जो देखने में सुंदर हो। प्रियदर्शन।

सौम्यधातु-संज्ञा पुं० [सं०] बलगम। कफ। श्लेष्मा।

सौम्यवार-संज्ञा पुं० [सं०] बुधवार।

सौम्यवासर-संज्ञा पुं० [सं०] बुधवार।

सौम्यशिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] छंदःशास्त्र में मुक्तक विषम वृत्त के दो भेदों में से एक जिसके पूर्व दल में १६ गुरु वर्ण और उत्तर दल में ३२ लघु वर्ण होते हैं। उ०—आठौ यामा शंभू गावो। भव फंदा तें मुक्ती पावो। सिख मम धरि हिय भ्रम सब तजि कर। भज नर हर हर हर हर हर हर। इनका दूसरा नाम अनंगक्रीड़ा भी है।

सौम्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा का एक नाम। (२) बड़ी इंद्रायन। माहेंद्रवारुणी लता। (३) रुद्र जटा। शंकर जटा। (४) बड़ी मालकंगनी। महाज्योतिष्मती लता। (५) पाताल गारुड़ी। महिष वल्ली। (६) घुँघची। गुंजा। चिरमटी। (७) सरिवन। शालपर्णी। (८) ब्राह्मी। (९) कचूर। शटी। (१०) मल्लिका। मोतिया। (११) मोती।

मुक्ता। (१२) मृगशिरा नक्षत्र। (१३) मृगशिरा नक्षत्र पर रहनेवाले पाँच तारों का नाम। (१४) आर्य्या छंद का एक भेद।

सौम्यी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदनी। चंद्रिका।

सौयवस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कई सामों के नाम। (२) तृण या घास की प्रचुरता।

सौर-वि० [सं०] (१) सूर्य्य-संबंधी। सूर्य्य का। (२) सूर्य्य से उत्पन्न। (३) सूर्य्य का अनुसारी। जैसे,—सौर मास। (४) दिव्य सुर या देवता-संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य के पुत्र, शनि। (२) सूर्य्य का उपासक। सूर्य्य का भक्त। (३) बीसवें कल्प का नाम। (४) तुंबुरु। (५) धनिया। (६) एक साम का नाम। (७) दाहिनी आँख।

संज्ञा स्त्री० [सं० शाट, हिं० सौड़] चादर। ओढ़ना। उ०—अपनी पहुँच विचारि कै करतब करिए दौर। तेतो पाँव पसारिए जेती लाँबी सौर।—रहीम।

संज्ञा स्त्री० [सं० शफरी] सौरी मछली।

विशेष—यह मझोले आकार की होती है और इसके शरीर में एक ही काँटा होता है।

सौरग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम। (बृहत्संहिता)

सौरठवाल-संज्ञा पुं० [सं० सौराष्ट्र हिं० सोरठ+वाला] वैश्यों की एक जाति।

सौरज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुंबुरु। तुंबरू। (२) धनिया। धान्यक।

#† संज्ञा पुं० दे० "शौर्य"। उ०—सौरज धीर तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।—तुलसी।

सौरत-वि० [सं०] सुरत-संबंधी।

सौरत-संज्ञा पुं० [सं०] रतिक्रीड़ा। केलि। संभोग।

वि० सुरत-संबंधी। रतिक्रीड़ा संबंधी।

सौरत्य-संज्ञा पुं० [सं०] रतिसुख। संभोग।

सौर दिवस-संज्ञा पुं० [सं०] एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय। ६० दंड का समय।

सौरद्रोणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी तलैया।

सौरध्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तँबूरा या सितार।

सौरनक-संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो रविवार को हस्त नक्षत्र होने पर सूर्य के प्रीत्यर्थ किया जाता है। (नरसिंह पुराण)

सौरपत-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्योपासक। सूर्य-पूजक।

सौरपरिकर-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के चारो ओर भ्रमण करनेवाले ग्रहों का मंडल। सौर जगत्।

सौरपि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि।

सौरभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुरभि का भाव या धर्म। सुगंध। खुशबू। महक। उ०—त्रिविध समीर सुगन सौरभ मिलि मत्त मधुप गुंजार।—सूर। (२) केसर। कुंकुम। जाफरान। (३) तुंबुरु नामक गंध द्रव्य। तुंबरु। (४) धनिया। धान्यक। (५) बोल। हीराबोल। बीजाबोल। (६) एक प्रकार का मसाला। (७) आम। आम्र। उ०—सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रयलोका।—तुलसी। (८) एक साम का नाम।

वि० (१) सुगंधित। सुगंधयुक्त। खुशबूदार। (२) सुरभि (गाय) से उत्पन्न।

सौरभक-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्ण-वृत्त का नाम जिसके पहले चरण में सगण, जगण, सगण और लघु, दूसरे में नगण, सगण, जगण और गुरु, तीसरे में रगण, नगण, भगण और गुरु तथा चौथे में सगण, जगण, सगण, जगण और गुरु होता है। उ०—सब त्यागिये असत काम। शरण गहिये सदा हरी। दुःख भौ जनित जायँ टरी। भजिये अहो निशि हरी हरी हरी।

सौरभमय-वि० [सं०] सौरभ-युक्त। सुगंध-युक्त। सुगंधित।

सौरभित-वि० [सं० सौरभ] सौरभ-युक्त। महकनेवाला। सुगंधित। खुशबूदार।

सौरभेय-संज्ञा पुं० [सं०] (सुरभि का पुत्र) साँड़। वृषभ।

वि० सुरभि-संबंधी। सुरभि का।

सौरभेयक-संज्ञा पुं० [सं०] साँड़। वृष।

सौरभेयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाय। गो। (२) एक अप्सरा का नाम। (महाभारत)

सौरभ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुगंध। खुशबू। (२) मनोज्ञता। सुंदरता। खूबसूरती। (३) गुण-गौरव। कीर्त्ति। प्रसिद्धि। नेकनामी। (४) कुबेर का एक नाम।

सौर मास-संज्ञा पुं० [सं०] वह महीना जो सूर्य्य के किसी एक राशि में रहने तक माना जाता है। उतना काल जितने तक सूर्य किसी एक राशि में रहे। एक संक्रांति से दूसरी संक्रांति तक का समय।

विशेष-सूर्य एक वर्ष में क्रम से मेष, वृष आदि बारह राशियों को भोग करता है। एक राशि में वह प्रायः ३० दिन तक रहता है। प्रायः इतने दिन का ही एक सौरमास होता है।

सौर वर्ष-संज्ञा पुं० दे० "सौर संवत्सर"।

सौर संवत्सर-संज्ञा पुं० [सं०] उतना काल जितना सूर्य को मेष, वृष आदि बारह राशियों पर घूम आने में लगता है। एक मेष संक्रांति से दूसरी मेष संक्रांति तक का समय।

सौरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुरसा नामक पौधे से निकला या बना हुआ। (२) सुरसा का अपत्य या पुत्र। (३) जूँ। (४) नमकीन रसा या शोरबा।

सौर सिद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक सिद्धांत ग्रंथ।

सौर सूक्त-संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के एक सूक्त का नाम जिसमें सूर्य की स्तुति है। सूर्य-सूक्त।

सौरसेन–संज्ञा पुं० दे० "शूरसेन" और "शौरसेन"।
सौरसेय–संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद का एक नाम। कार्त्तिकेय।
सौर सैंधव–वि० [सं०] (१) गंगा का। गंगा-संबंधी। (२) गंगा से उत्पन्न। (जैसे, भीष्म)
संज्ञा पुं० सूर्य का घोड़ा।
सौरस्य–संज्ञा पुं० [सं०] सुरसता। रसीला होने का भाव।
सौराज्य–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा राज्य। सुराज्य। सुशासन।
सौराटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी। (संगीत)
सौराव–संज्ञा पुं० [सं०] नमकीन रसा या शोरबा।
सौराष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुजरात-काठियावाड़ का प्राचीन नाम। सूरत के आस पास का प्रदेश। सोरठ देश। (२) उक्त प्रदेश का निवासी। (३) कुँदुरु नामक गंध-द्रव्य। शल्लकी-निर्य्यास। (४) काँसा। कांस्य। (५) एक वर्ण वृत्त का नाम।
वि० सोरठ प्रदेश का।
सौराष्ट्रक–संज्ञा पुं० [सं०] सौराष्ट्र या सोरठ प्रदेश का रहनेवाला। (२) पंचलौह। (३) एक प्रकार का विष।
वि० सौराष्ट्र या सोरठ प्रदेश-संबंधी। सोरठ देश में उत्पन्न।
सौराष्ट्र-मृत्तिका संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपी चंदन।
सौराष्ट्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपी चंदन।
सौराष्ट्रिक–वि० [सं०] सौराष्ट्र या सोरठ देश-संबंधी। गुजरात काठियावाड़-संबंधी।
संज्ञा पुं० (१) सोरठ देश का निवासी। (२) काँसा नाम की धातु। (३) एक प्रकार का विषैला कंद।
विशेष—इसके पत्ते पलाश के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। यह कंद काले अगर के समान काला और कछुए की तरह चिपटा और फैला हुआ होता है।
सौराष्ट्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपी चंदन।
सौराष्ट्रेय–वि० [सं०] सोरठ प्रदेश का। गुजरात-काठियावाड़ का।
सौरास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दिव्यास्त्र। उ०—सोमास्त्रहु सौरास्त्र सु निज निज रूपनि धारैं। रामहिं सौं कर जोरि सबै बोले इक बारैं।—पद्माकर।
सौरिंध्र–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सौरिंध्री] (१) ईशान कोण में स्थित एक प्राचीन जनपद। (बृहत्संहिता) (२) उक्त जनपद का निवासी।
सौरि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) (सूर्य के पुत्र) शनि। (२) विजैसार। असन वृक्ष। (३) हुलहुल का पौधा। आदित्यभक्ता। (४) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि। (५) दक्षिण का एक प्राचीन जनपद। (बृहत्संहिता)
संज्ञा पुं० दे० "शौरि"। उ०—अंतःपुर में तुरत ही भयो सोर चहुँ ओर। बैठायो पर्य्यंक में रंकहि सौरि किशोर।—रघुराज।
सौरिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनैश्चर ग्रह। (२) स्वर्ग।
वि० (१) स्वर्गीय। (२) सुरा या मद्य संबंधी (ऋण)। शराब के कारण होनेवाला (कर्ज)।
सौरिकीर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक प्राचीन जनपद। (बृहत्संहिता)
सौरिरत्न–संज्ञा पुं० [सं०] नीलम नामक मणि।
सौरी–संज्ञा स्त्री० [सं० सूतिका] वह कोठरी या कमरा जिसमें स्त्री बच्चा जने। सूतिकागार। सौरा। जच्चाखाना।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य्य की पत्नी। (२) सूर्य की पुत्री और कुरु की माता तापती। वैवस्वती। (३) गाय। गौ। (४) हुलहुल पौधा। आदित्यभक्ता।
संज्ञा स्त्री० [सं० शफरी] एक प्रकार की मछली। शष्कुली मत्स्य।
विशेष—भाव-प्रकाश के अनुसार इसका मांस मधुर, कसैला और हृद्य है।
सौरीय–वि० [सं०] सूर्य-संबंधी। सूर्य का।
संज्ञा पुं० (१) एक वृक्ष जिसमें से विषैला गोंद निकलता है। (२) इस वृक्ष से निकला हुआ विष।
सौरेय, सौरेयक–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कटसरैया। श्वेत झिंटी।
सौर्य–वि० [सं०] सूर्य-संबंधी। सूर्य्य का।
संज्ञा पुं० (१) सूर्य का पुत्र, शनि। (२) एक संवत्सर का नाम। (३) हिमालय के दो शृंगों का नाम।
सौर्य्यपृष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।
सौर्यभगवत्–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वैयाकरण का नाम जिनका उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य में है।
सौर्ययाम–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य और यम-संबंधी। सूर्य और यम का।
सौर्वी–संज्ञा पुं० [सं० सौर्विन्] हिमालय का एक नाम।
सौर्योदयिक–वि० [सं०] सूर्योदय-संबंधी।
सौलंकी–संज्ञा पुं० दे० "सोलंकी"।
सौलक्षण्य–संज्ञा पुं० [सं०] शुभ या अच्छे लक्षणों का होना। सुलक्षणता।
सौलभ्य–संज्ञा पुं० [सं०] सुलभता।
सौल, सौला–संज्ञा पुं० [हिं० साहुल] (१) राजगीरों का शाकुल। साहुल। (२) हल के जूए के ऊपर की गाँठ।
सौल्विक–संज्ञा पुं० [सं०] ठठेरा। ताम्र-कुट्टक।
सौव–संज्ञा पुं० [सं०] अनुशासन। आदेश।
वि० (१) अपने संबंध का। अपना। निज का। (२) स्वर्गीय।
सौवर–वि० [सं०] स्वर-संबंधी।
सौवर्चल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोंचर नमक। (२) सज्जी मिट्टी। सर्जिका क्षार।
वि० सुवर्चल-संबंधी।

सौवर्चला-संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्र की पत्नी का नाम।

सौवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक कर्ष भर सोना। (२) सोने की बाली। (३) सोना। सुवर्ण।

वि० [स्त्री० सौवर्णी, सौवर्णी] (१) सोने का। सोने का बना। (२) तौल में कर्ष भर। १६ माशे भर।

सौवर्णभेदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलफेन। फूलप्रियंगु। प्रियंगु।

सौवर्णिक-संज्ञा पुं० [सं०] सुनार। स्वर्णकार।

वि० एक सुवर्ण भर। एक कर्ष या १६ माशे भर।

सौवर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का विषैला कीड़ा। (सुश्रुत)

सौवश्य-संज्ञा पुं० [सं०] घुड़दौड़।

सौवस्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरोहित। कुलपुरोहित। (२) दे० "स्वस्त्ययन"।

वि० स्वस्ति कहनेवाला। मंगल चाहनेवाला। मंगलाकांक्षी।

सौवाध्यायिक-वि० [सं०] जो स्वाध्याय करता हो। वेदपाठ करनेवाला। स्वाध्यायी।

सौवास-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सुगंधित तुलसी।

सौवासिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुवासिनी"।

सौवास्तव-वि० [सं०] (१) सुवास्तु-युक्त। भवन निर्माण की कुशलता से युक्त। अच्छी कारीगरी का (मकान)। (२) अच्छे स्थान पर बना हुआ (मकान)।

सौविद-संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर या रनिवास का रक्षक। कंचुकी। सुविद।

सौविदल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] राजा का वह प्रधान कर्मचारी जिसके पास राजा की मुद्रा आदि रहती हो।

सौविदल्लक-संज्ञा पुं० दे० "सौविदल्ल"।

सौविष्टकृत्-वि० [सं०] स्विष्टकृत् नामक अग्नि-संबंधी। (गृह्यसूत्र)

सौवीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंधु नद के आस-पास के एक प्राचीन प्रदेश का नाम। उ०—सिंधु और सौवीरहु सोरठ जे भूपति रनधीरा। न्योति पठावहु सकल महीपन, बाकी रहैं न बीरा।—रघुराज। (२) उक्त प्रदेश का निवासी या राजा। (३) बेर का पेड़ या फल। बदर। (४) जौ को सड़ाकर बनाई हुई एक प्रकार की काँजी।

विशेष—वैद्यक में यह अग्निदीपक, विरेचक तथा कफ, ग्रहणी, अर्श, उदावर्त्त, अस्थिर शूल आदि दोषों में उपकारी माना जाता है।

सौवीरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "सौवीर"। (२) जयद्रथ का एक नाम।

सौवीरपाण-संज्ञा पुं० [सं०] वाह्लीक देशवासी। वाह्लीक।

विशेष—उक्त देशवासी जौ या गेहूँ की काँजी बहुत पिया करते थे, इसी से उनका यह नाम पड़ा है।

सौवीरसार-संज्ञा पुं० [सं०] सुरमा। स्रोतोऽञ्जन।

सौवीरांजन-संज्ञा पुं० [सं०] सुरमा।

सौवीरा-संज्ञा स्त्री० दे० "सौवीरी"।

सौवीराम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] जौ या गेहूँ की काँजी।

सौवीरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बेर का पेड़ या फल।

सौवीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संगीत में एक प्रकार की मूर्च्छना जिसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स, प, ध, नि, स, रे, ग, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म। (२) सौवीर की राजकुमारी।

सौवीर्य-संज्ञा पुं० [सं०] सौवीर का राजा। (२) महान् वीरता। बहुत अधिक पराक्रम।

सौवीर्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] सौवीर की राजपुत्री।

सौव्रत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुव्रत का भाव। एकनिष्ठा। भक्ति। (२) आज्ञापालन।

सौशम्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुशमता। सुशांति।

सौशल्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम। (महाभारत)

सौशील्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुशीलता। सच्चरित्रता। साधुता।

सौश्रवस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुश्रवा के अपत्य, उपगु। (२) सुयश। सुकीर्त्ति (३) दो सामों के नाम।

वि० जिसका अच्छा नाम या यश हो। कीर्त्तिमान्। यशस्वी।

सौश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] ऐश्वर्य। वैभव।

सौश्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुश्रुत के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। सुश्रुत-गोत्रज।

वि० (१) सुश्रुत का रचा हुआ। (२) सुश्रुत-संबंधी।

सौषाम-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

सौषिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मसूड़ों का का एक रोग।

विशेष—इसमें कफ और पित्त के विकार से मसूड़े सूज जाते हैं; उनमें दर्द होता है और लार गिरती है।

(२) वह यंत्र जो वायु के जोर से बजता हो। फूँककर या हवा भरकर बजाया जानेवाला बाजा। जैसे,—बंसी, तुरही, शहनाई आदि।

सौषिर्य-संज्ञा पुं० [सं०] पोलापन।

सौषुम्ण-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरणों में से एक।

सौष्ठव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुडौलपन। उपयुक्तता। (२) सुंदरता। सौंदर्य। (३) तेजी। फुरती। क्षिप्रता। लाघव। (४) शरीर की एक मुद्रा। (नृत्य) (५) नाटक का एक अंग।

सौसन-संज्ञा पुं० दे० "सोसन"।

सौसनी-संज्ञा पुं० दे० "सोसनी"। उ०—पहिरौ री बेहूनरी सुरँग चूनरी ल्याय। पहिरे सारी सौसनी कारी देह दिखाय।—शृंगार-सतसई।

सौसुक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन स्थान का नाम जिसका उल्लेख महाभाष्य में है।

सौसुराद-संज्ञा पुं० [सं०] विष्ठा में होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

सौस्थित्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी स्थिति। (२) ग्रहों का शुभ स्थान में होना।

विशेष—बृहत्संहिता में लिखा है कि ग्रहों का सौस्थित्य, अर्थात् शुभ स्थान में स्थिति, देखकर राजा यदि आक्रमण करे तो वह अल्प पौरुषवाला होने पर भी पराया धन पाता है।

सौस्नातिक-वि० [सं०] यह प्रश्न कि यज्ञ के उपरांत स्नान सफल हुआ या नहीं।

सौस्वर्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुस्वर या उत्तम स्वर होने का भाव। सुस्वरता। सुरीलापन।

सौहँ-संज्ञा स्त्री० [सं० शपथ, प्रा० सवह] शपथ। कसम। उ०—हम रीझे मनभावते लखि तव सुंदर गात। दीठ रूप धर लाल सिर मैना सौहँ खात।—रसनिधि।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।

क्रि० वि० [सं० सम्मुख, प्रा० सम्मुह] सामने। आगे। उ०—रंग भरे अंग आसौहँ सरसौहँ सोहँ सौहँ करि भौहँ रस भावनि भरत है।—देव।

सौहन-संज्ञा पुं० [देश०] पैसे का चौथाई भाग। छदाम। दुकड़ा। (सुनार)

सौहर-संज्ञा पुं० दे० "शौहर"।

सौहरा†-संज्ञा पुं० [हिं० ससुर] ससुर। (पश्चिम)

सौहविष-संज्ञा पुं० [सं०] कई सामों के नाम।

सौहाँग-संज्ञा पुं० [देश०] दो भर का बाट या बटखरा। (सुनार)

सौहार्द-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुहृद का भाव। मित्रता। मैत्री। सख्य। दोस्ती। (२) सुहृद या मित्र का पुत्र।

सौहार्दनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] राम का एक नाम।

सौहार्द्य-संज्ञा पुं० [सं०] सौहार्द। मित्रता। बंधुत्व। दोस्ती।

सौहित्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तृप्ति। संतोष। (२) मनोरमता। मनोज्ञता। सुंदरता। (३) पूर्णता।

सौहीं-संज्ञा स्त्री० [फा० सोहन] (१) एक प्रकार की रेती। (२) एक प्रकार का हथियार।

क्रि० वि० [हिं० सौंह] सामने। आगे। उ०—कहि आवति है जु कहावत हौ तुम नाहीं तो ताकि सके हम सौहीं। तेहि पैंडे कहा चलिये कबहूँ जिहि काँटा लगै पग पीर दुखौहीं।—केशव।

सौहृद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मित्रता। स्नेह संबंध। सख्य। दोस्ती। (२) सुहृद। मित्र। दोस्त। (३) एक प्राचीन जनपद। (महाभारत

वि० सुहृद या मित्र संबंधी।

सौहृदय, सौहृदय्य-संज्ञा पुं० [सं०] सौहार्द। मित्रता। दोस्ती।

सौहृद्य-संज्ञा पुं० [सं०] सौहार्द। मित्रता। बंधुता। दोस्ती।

सौहोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सुहोत्र के अपत्य अजमीढ और पुरुमीढ नामक वैदिक ऋषि।

सौह्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुह्य देश का राजा।

स्कंक-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का काले रंग का जानवर जो अमेरिका में पाया जाता है। इसका शरीर अठारह तसू और पूँछ बारह तसू लंबी होती है। गरदन से पूँछ तक दो सफेद धारियाँ होती हैं और माथे पर सफेद टीका होता है। नाक लंबी, पर पतली तथा कान छोटे और गोल होते हैं। बाल लंबे और मोटे होते हैं। इसके शरीर से ऐसी दुर्गंध आती है कि पास ठहरा नहीं जाता।

स्कंत्त-वि० [सं०] जो उछले। उछलनेवाला। छलाँग मारनेवाला।

स्कंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उछलनेवाली वस्तु। (२) निकलना। बहना। गिरना। (३) विनाश। ध्वंस। (४) पारा। पारद। (५) कार्तिकेय का एक नाम। देव-सेनापति।

विशेष—ये शिव के पुत्र, देवताओं के सेनापति और युद्ध के देवता माने जाते हैं। पुराणों में इनके जन्म के संबंध में अनेक कथाएँ दी हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि शिव जी एक बार पार्वती के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उस समय उनका वीर्य्य पृथ्वी पर गिर पड़ा। पर पृथ्वी उसे सहन न कर सकी और उसने अग्नि को दे दिया जिससे इनकी उत्पत्ति हुई। एक और पुराण में लिखा है कि शिव और पार्वती के विहार के समय अग्नि-देवता ब्राह्मण का वेष धारण करके भिक्षा माँगने आए थे। शिव जी ने क्रोध में आकर अपना वीर्य्य उन्हें दे दिया। अग्नि-देवता वह वीर्य्य पी गए, पर सहन न कर सके; अतः उन्होंने उसे गंगा जी में वमन कर दिया। गंगा में वह वीर्य्य छः भागों में पड़ा था; पर पीछे से वे छः भाग मिलकर एक शरीर हो गए जिसमें छः मुख हुए। वहाँ से इन्हें छः कृत्तिकाएँ उठा लाईं और ये छः मुँहों से उन छः कृत्तिकाओं के स्तन-पान करने लगे। इसी लिए ये षडानन और कार्त्तिकेय कहलाए। इसी प्रकार और भी कई कथाएँ हैं। ये बहुत सुन्दर कहे गए हैं और इनका वाहन मोर माना जाता है। इनके अस्त्र का नाम शक्ति है और इनकी कांति तपाए हुए सोने के समान कही गई है। यह भी कथा है कि पार्वती जी ने एक बार कहा था कि जो कोई सब से पहले पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके आवेगा, उसके साथ ऋद्धि-सिद्धि का विवाह होगा। तदनुसार स्कंद मोर पर चढ़कर पृथ्वी प्रदक्षिणा करने निकले। पर गणेश जी ने सोचा कि माता ही पृथ्वी का रूप है; अतः उन्होंने पार्वती जी की प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम किया। पार्वती ने उनके साथ ऋद्धि-सिद्धि का विवाह कर दिया। जब स्कंद लौटकर आए, तब उन्होंने देखा कि गणेश का विवाह हो गया है; अतः उन्होंने

सदा कुँआरे रहने का प्रण किया। पर तंत्रों में इनके विवाहित होने का भी उल्लेख मिलता है और इनकी पत्नी देवसेना कही गई हैं जो षष्ठी देवी के नाम से पूजी जाती हैं। इन देवसेना के अस्त्र और वाहन आदि भी कार्त्तिकेय के अस्त्रों और वाहन के समान ही कहे गए हैं। स्कंद ने तारक और क्रौंच आदि अनेक राक्षसों का बध किया था।

पर्य्या०—महासेन। षडानन। सेनानी। अग्निभू। विशाख। शिखिवाहन। षाण्मातुर। शक्तिधर। कुमार। आग्नेय। मयूरकेतु। भूतेश। कामजित्। कांत। शिशु। शुभानन। अमोघ। रौद्र। प्रिय। चंद्रानन। षष्ठीप्रिय। रेवतीसुत। प्रभु। नेता। सुव्रत। ललित। गांग। स्वामी। द्वादश-लोचन। महाबाहु। युद्धरंग। रुद्रसूनु। गौरीपुत्र। गुह। (६) शिवजी का एक नाम। (७) पंडित। विद्वान्। (८) राजा। (९) शरीर। देह। (१०) बालकों के नौ प्राणघातक ग्रहों या रोगों में से एक जिसमें बालक कभी घबराकर और कभी डरकर रोता, नाखूनों और दाँतों से अपना शरीर नोचता, जमीन खोदता, दाँत पीसता, होंठ चबाता और चिल्लाता है। इसकी दोनों भौंहें फड़का और एक आँख बहा करती है; मुँह टेढ़ा हो जाता है; दूध से अरुचि हो जाती है; शरीर दुर्बल और शिथिल हो जाता है; चेतना शक्ति नहीं रहती; नींद नहीं आती; दस्त हुआ करते हैं और शरीर से मछली तथा रक्त की दुर्गंध आती है। वि० दे० "बालग्रह"। (११) नदी का किनारा।

स्कंदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो उछले। (२) सैनिक। सिपाही। (३) एक प्रकार का छंद।

स्कंदगुप्त-संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त वंश के एक प्रसिद्ध सम्राट् का नाम जिनका समय ई० ४५० से ४६७ तक माना जाता है। ये गुप्तवंश के प्रतापी सम्राट् समुद्रगुप्त के प्रपौत्र थे। इन्होंने पुष्यमित्र, हूणों तथा नागवंशियों को हराया था। इनका दूसरा नाम क्रमादित्य था।

स्कंदगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

स्कंदग्रह-संज्ञा पुं० दे० "स्कंद" (१०)।

स्कंदजननी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (स्कंद या कार्त्तिकेय की माता) पार्वती।

स्कंदजित्-संज्ञा पुं० [सं०] (स्कंद को जीतनेवाले) विष्णु का एक नाम।

स्कंदता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद का भाव या धर्म।

स्कंदत्व-संज्ञा पुं० दे० "स्कंदता"।

स्कंदन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० स्कंदित, स्कंदनीय] (१) कोठा साफ़ होना। रेचन। (२) सोखना। शोषण। (३) जाना। गमन। (४) निकलना। बहना। गिरना। स्खलन। पतन। (५) खून का जमना।

स्कंदपुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम। (राजतरंगिणी)

स्कंदपुराण-संज्ञा पुं० [सं०] अठारह पुराणों में से एक प्रसिद्ध पुराण का नाम, जिसके अंतर्गत सनत्कुमार संहिता, सूत-संहिता, शंकर-संहिता, वैष्णव-संहिता, ब्राह्म-संहिता और सौरसंहिता नामक छः संहिताएँ तथा माहेश्वर खंड, वैष्णव खंड, ब्रह्मखंड, काशीखंड, रेवाखंड, तापीखंड और प्रभास खंड नामक सात खंड तथा कितने ही माहात्म्य आदि माने जाते हैं। इनमें से काशीखंड ही सब से अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध है।

स्कंदफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] खजूर। खर्जूर वृक्ष।

स्कंदमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्कंदमातृ] (स्कंद की माता) दुर्गा।

स्कंदरेश्वरतीर्थ संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

स्कंदविशाख-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

स्कंद षष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चैत सुदी ६ जो कार्त्तिकेय के देवसेनापति पद पर अभिषिक्त होने की तिथि मानी जाती है।

विशेष—वाराह पुराण में लिखा है कि इस दिन जो लोग व्रत रह कर स्कंद की पूजा करते हैं, उनकी मनस्कामना सिद्ध होती है।

(२) कार्त्तिक या अगहन सुदी छठ। गुहषष्ठी। (३) तंत्र के अनुसार एक देवी का नाम जो स्कंद की भार्य्या कही गई है।

स्कंदांशक-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

विशेष—कहते हैं कि शिवजी के वीर्य से पारे की उत्पत्ति हुई है; इसी से इसे स्कंदांशक या शिवांशक कहते हैं।

स्कंदापस्मार-संज्ञा पुं० [सं०] एक बालग्रह या रोग जिसमें बालक अचेत हो जाता है और उसके मुँह से फेन निकला करता है। चैतन्य होने पर वह हाथ पैर पटकता और बार बार जँभाई लेता है। उसके शरीर से खून और पीब की सी दुर्गंध आती है।

स्कंदापस्मारी-वि० [सं० स्कंदापस्मारिन्] स्कंदापस्मार ग्रह या रोग से आक्रांत। जिस पर स्कंदापस्मार ग्रह का आक्रमण हुआ हो।

स्कंदित-वि० [सं०] निकला हुआ। गिरा हुआ। झड़ा हुआ। स्खलित। पतित। उ०—स्कंदित भव हर बीरज यातें। स्कंद नाम देवन दिय तातें।—पद्माकर।

स्कंदी-वि० [सं० स्कंदिन्] (१) बहनेवाला। गिरनेवाला। पतन-शील। (२) उछलनेवाला। कूदनेवाला।

स्कंदोपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

स्कंदोल-वि० [सं०] ठंढा। शीतल। सर्द।

संज्ञा पुं० ठंढक। शीतलता।

स्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंधा। मोढ़ा। (२) वृक्ष की पेड़ी या तने का वह भाग जहाँ से ऊपर चलकर डालियाँ निकलती

हैं। कांड। प्रकांड। दंड। (३) डाल। शाखा। (४) समूह। गरोह। झुंड। (५) सेना का अंग। व्यूह। (६) ग्रंथ का विभाग जिसमें कोई पूरा प्रसंग हो। खंड। जैसे,—भागवत का दशम स्कंध। (७) मार्ग। पंथ। (८) शरीर। देह। (९) राजा। (१०) वह वस्तु जिसका राज्याभिषेक में उपयोग हो। जैसे,—जल, छत्र आदि। (११) मुनि। आचार्य। (१२) युद्ध। संग्राम। (१३) संधि। राजीनामा। (१४) कंकपक्षी। सफेद चील। (१५) एक नाग का नाम। (महाभारत) (१६) आर्या छंद का एक भेद। (१७) बौद्धों के अनुसार रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार ये पाँचो पदार्थ। बौद्ध लोग इन पाँचों स्कंधों के अतिरिक्त पृथक् आत्मा का स्वीकार नहीं करते। (१८) दर्शन-शास्त्र के अनुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पाँच विषय।

स्कंधक-संज्ञा पुं० [सं०] आर्यागीत या खंधा नामक छंद का एक नाम।

स्कंधचाप-संज्ञा पुं० [सं०] बहँगी जिस पर कहार बोझ ढोते हैं। विहंगिका।

स्कंधज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सलई। शल्लकी वृक्ष। (२) बड़। बट वृक्ष।

स्कंधतरु-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का पेड़। नारिकेल वृक्ष।

स्कंधदेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंधा। मोढ़ा। (२) पेड़ का तना या धड़। (३) हाथी की गरदन जिस पर महावत बैठता है। आसन।

स्कंधपरिनिर्वाण-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार शरीर के पाँचो स्कंधों का नाश। मृत्यु।

स्कंधपाद-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। (मार्कंडेयपुराण)

स्कंधपीठ-संज्ञा पुं० [सं०] कंधे की हड्डी। मोढ़ा।

स्कंधप्रदेश-संज्ञा पुं० दे० "स्कंधदेश"।

स्कंधफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल का पेड़। नारिकेल वृक्ष। (२) गूलर। उदुंबर वृक्ष।

स्कंधबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] सौंफ। मधुरिका।

स्कंधबीज-संज्ञा पुं० [सं०] वह वनस्पति या वृक्ष जिसके स्कंध से ही शाखाएँ निकलकर जमीन तक पहुँचती और वृक्ष का रूप धारण करती हों। जैसे,—बड़, पाकर आदि।

स्कंधमणि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जंतर या तावीज।

स्कंधमल्लक-संज्ञा पुं० [सं०] कंक पक्षी। सफेद चील।

स्कंधमार-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के चार मारों में से एक।

स्कंधरुह-संज्ञा पुं० [सं०] बड़। वट वृक्ष।

स्कंधवह-संज्ञा पुं० दे० "स्कंधवाह"।

स्कंधवाह-संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जो कंधों के बल बोझ खींचता हो। जैसे,—बैल, घोड़ा आदि।

स्कंधवाहक-वि० [सं०] कंधे पर बोझ उठानेवाला। जो कंधे पर बोझ उठाता हो।

संज्ञा पुं० दे० "स्कंधवाह"।

स्कंधशाखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृक्ष की मुख्य शाखा या डाल।

स्कंधशिर-संज्ञा पुं० [सं० स्कंधशिरस्] कंधे की हड्डी। मोढ़ा।

स्कंधशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] भैंस। महिष।

स्कंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डाल। शाखा। (२) लता। बेल।

स्कंधाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय के अनुचर देवताओं का एक गण।

स्कंधाग्नि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मोटे लकड़ों की आग।

स्कंधावार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा का डेरा या शिविर। कंप। (२) छावनी। सेनानिवास। उ०—पिता से स्कंधावार में जाने की आज्ञा माँगी।—गदाधरसिंह। (३) राजा का निवासस्थान। राजधानी। (हेम) (४) सेना। फौज। (५) वह स्थान जहाँ बहुत से व्यापारी या यात्री आदि डेरा डालकर ठहरे हों।

स्कंधिक-संज्ञा पुं० [सं०] बैल। वृष।

स्कंधी-वि० [सं० स्कंधिन्] कांड से युक्त। तने से युक्त।

संज्ञा पुं० वृक्ष। पेड़।

स्कंधेमुख-वि० [सं०] जिसका मुख कंधे पर हो।

संज्ञा पुं० स्कंद के एक अनुचर का नाम।

स्कंधोग्रीवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बृहती नामक वर्णवृत्त का एक भेद।

स्कंधोपनेय-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं में होनेवाली एक प्रकार की संधि।

स्कंध्य-वि० [सं०] (१) स्कंध या कंधे का। स्कंध संबंधी। (२) स्कंध के समान।

स्कंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खंभा। स्तंभ। (२) विश्व को धारण करनेवाला, परमेश्वर।

स्कंभन-संज्ञा पुं० [सं०] खंभा। स्तंभ।

स्कंभसर्जन-संज्ञा पुं० दे० "स्कंभसर्जनी"।

स्कंभसर्जनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बैलगाड़ी के जुए की कील या खूँटी जिससे बैल इधर उधर नहीं हो सकते।

स्कन्न-वि० [सं०] (१) गिरा हुआ। पतित। च्युत। स्खलित। (जैसे, वीर्य) (२) गया हुआ। गत। (३) सूखा। शुष्क।

स्कभन संज्ञा पुं० [सं०] शब्द। आवाज।

स्कांद-वि० [सं०] स्कंद-संबंधी। स्कंद का।

संज्ञा पुं० स्कंदपुराण।

स्कांदायन-संज्ञा पुं० दे० "स्कांदायन्य"।

स्कांदायन्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद के गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति।

स्कांधी-संज्ञा पुं० [सं० स्कांधिन्] स्कंध के शिष्य या उनकी शाखा के अनुयायी।

स्कालर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो स्कूल में पढ़ता हो। छात्र।

विद्यार्थी । (२) वह जिसने बहुत विद्याध्ययन किया हो। उच्च कोटि का विद्वान् व्यक्ति । पंडित । आलिम ।

स्कालरशिप–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह वृत्ति या निर्धारित धन जो विद्यार्थी को किसी स्कूल या कालेज में शिक्षा प्राप्त करने के लिये नियमित रूप से सहायतार्थ दिया जाय । छात्रवृत्ति । वजीफा । (२) विद्वत्ता । पांडित्य ।

स्कीम-संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी बड़े काम को करने का विचार या आयोजन । भावी कार्यों के संबंध में व्यवस्थित विचार । योजना ।

स्कूल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह विद्यालय जहाँ किसी भाषा, विषय या कला आदि की शिक्षा दी जाती हो । (२) वह विद्यालय जहाँ एंट्रेंस या मैट्रिकुलेशन तक की पढ़ाई होती हो । (३) विद्यालय । मदरसा ।

मुहा०—स्कूल से निकलना = स्कूल की पढ़ाई समाप्त करके स्कूल छोड़ना । जैसे,—वह हाल में ही स्कूल से निकलकर कालेज में भर्ती हुआ है ।

स्कूलमास्टर–संज्ञा पुं० [अं०] स्कूल या अँगरेजी विद्यालय में पढ़ानेवाला । शिक्षक ।

स्कूली–वि० [अं० स्कूल + ई (प्रत्य०)] (१) स्कूल का । स्कूल संबंधी । जैसे,—स्कूली पढ़ाई, स्कूली किताबें । (२) स्कूल में पढ़नेवाला । जैसे,— स्कूली लड़का ।

स्कोटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी ।

स्क्रू–संज्ञा पुं० [अं०] वह कील या काँटा जिसके नुकीले आधे भाग पर चक्करदार गड़ारियाँ बनी होती हैं और जो ठोंक कर नहीं, बल्कि घुमाकर जड़ा जाता है । पेंच ।

क्रि० प्र०—कसना ।—खोलना ।—जड़ना ।—निकालना ।

स्खदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फाड़ना । चीरना । टुकड़े टुकड़े करना । विदारण । (२) हिंसा । हत्या । वध । (३) सताना । उत्पीड़न । (४) स्थिरता । स्थैर्य ।

स्खलित-वि० [सं०] (१) गिरा हुआ । निकला हुआ । पतित । च्युत । (२) फिसला हुआ । सरका हुआ । (३) लड़खड़ाया हुआ । विचलित । (४) चूका हुआ । उ०—वे अपने को जितना भ्रांतिशील, स्खलित-बुद्धि या सचूक समझते हैं ।—महावीरप्रसाद ।

संज्ञा पुं० (१) भूल । चूक । भ्रांति । (२) धर्मयुद्ध के नियमों को छोड़कर, युद्ध में छल कपट या घात करना ।

स्टांप-संज्ञा पुं० [अं०] (१) एक प्रकार का सरकारी कागज जिस पर अर्जीदावा लिखकर अदालत में दाखिल किया जाता है या जिस पर किसी प्रकार की पक्की लिखा पढ़ी की जाती है । यह भिन्न भिन्न मूल्यों का होता है; और विशिष्ट कार्यों के लिये विशिष्ट मूल्य का व्यवहृत होता है । ऐसे कागज पर की हुई लिखा पढ़ी बिलकुल पक्की समझी जाती है । (२) डाक का टिकट । (३) मोहर । छाप ।

स्टाइल–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) ढंग । तरीका । (२) शैली । पद्धति । (३) लेखन-शैली ।

स्टाक–संज्ञा पुं० [अं०] (१) बिक्री या बेचने का माल । (दूकानदार) जैसे,—उसकी दूकान में स्टाक कम है । (२) वह धन या पूँजी जो व्यापारी लोग या उनका कोई समूह किसी काम में लगाता हो । किसी साझे के काम में लगाई हुई पूँजी । (३) सरकारी कागज़ में व्याज पर लगाया हुआ धन । सरकारी कर्ज की हुंडी । (४) रसद । सामान । (५) वह स्थान जहाँ बिक्री का सामान जमा हो । भंडार । गुदाम ।

स्टाक एक्सचेंज–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह मकान, स्थान या बाड़ा जहाँ स्टाक या शेयर खरीदे और बेचे जाते हों । (२) स्टाक का काम करनेवालों या दलालों की संघटित सभा ।

स्टाक ब्रोकर–संज्ञा पुं० [अं०] वह दलाल जो दूसरों के लिये स्टाक या शेयरों की खरीद, बिक्री का काम करता हो ।

स्टिचिंग मशीन संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की किताब सीने की कल जिसमें लोहे के तारों से सिलाई होती है ।

स्टीम–संज्ञा पुं० [अं०] भाप । जलवाष्प ।

मुहा०—स्टीम भरना = जोश दिलाना । उत्साहित करना । उत्तेजन देना ।

स्टीम इंजिन–संज्ञा पुं० [अं०] वह इंजिन जो खौलते हुए पानी में से निकलनेवाली भाप के जोर से चलता हो । जैसे,—रेल का इंजिन, जहाज का इंजिन ।

स्टीमर–संज्ञा पुं० [अं०] स्टीम या भाप के जोर से चलनेवाला जहाज । धूम्रपोत ।

स्टूल–संज्ञा पुं० [अं०] तीन या चार पायों की बिना ढासने की छोटी ऊँची चौकी जिस पर एक ही आदमी बैठ सकता है । तिपाई । टूल ।

स्टेज–संज्ञा पुं० [अं०] (१) नाट्य-मंदिर या थिएटर के अंदर ज़मीन से कोई तीन हाथ ऊँचा बना हुआ मंच जिस पर नाटक खेला जाता है । रंगमंच । रंगभूमि । रंगपीठ । (२) मंच ।

स्टेज मनेजर–संज्ञा पुं० [अं०] रंगमंच का प्रबंधक या व्यवस्थापक ।

स्टेट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी देश की वह समस्त प्रजा या समाज जो अपना शासन आप ही करता हो । सभ्य या स्वतंत्र समाज या राष्ट्र । (२) वह शक्ति जिसके द्वारा कोई सरकार किसी देश का शासन करता हो । (३) ऐसे राष्ट्रों में से कोई एक जिनका कोई सम्मिलित संघ हो और जो व्यक्तिशः स्वतंत्र होने पर भी किसी एक केंद्रस्थ शक्ति या

सरकार से संबद्ध हों। जैसे,—अमेरिका के यूनाइटेड स्टेट्स। (४) आधुनिक भारत का कोई स्वतंत्र देशी राज्य। जैसे,—जयपुर एक बहुत बड़ा स्टेट है।

संज्ञा पुं० [अं० एस्टेट] (१) बड़ी जमींदारी। (२) स्थावर और जंगम संपत्ति। मनकूला और गैरमनकूला जायदाद। जैसे,—वे पाँच लाख रुपयों का स्टेट छोड़कर मरे थे।

स्टेशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह स्थान जहाँ निर्दिष्ट समय पर नियमित रूप से रेलगाड़ियाँ ठहरा करती हैं। रेलगाड़ियों के ठहरने और मुसाफिरों के उन पर उतरने चढ़ने के लिये बनी हुई जगह। (२) वह स्थान जहाँ कुछ लोगों की, रहने के लिये नियुक्ति हो। वह जगह जहाँ किसी विशिष्ट कार्य्य के लिये कुछ लोगों की नियुक्ति और निवास हो। जैसे,—पुलिस स्टेशन।

स्टोइक-संज्ञा पुं० [अं०] जीनो नामक एक यूनानी विद्वान् का चलाया हुआ संप्रदाय। इस संप्रदायवालों का सिद्धांत है कि मनुष्य को विषय-सुखों का त्याग करके बहुत संयम-पूर्वक रहना चाहिए।

स्ट्रेट-संज्ञा पुं० [अं०] जलडमरू-मध्य।

स्तंकु-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

स्तंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐसा पौधा जिसकी एक जड़ से कई पौधे निकलें और जिसमें कड़ी लकड़ी या डंठल न हो। गुल्म। (२) घास की आँटी। (३) रोहिड़ा। रोहतक वृक्ष। (४) एक पर्वत का नाम।

स्तंबक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुच्छा। (२) नकछिकनी। क्षवक वृक्ष। छिकनी।

स्तंबकरि-संज्ञा पुं० [सं०] धान।

स्तंबकार-वि० [सं०] गुच्छे बनानेवाला।

स्तंबघन-संज्ञा पुं० [सं०] दाँती जिससे घास आदि काटते हैं। हँसिया।

स्तंबघात-संज्ञा पुं० दे० "स्तंबघन"।

स्तंबघ्न-संज्ञा पुं० दे० "स्तंबघन"।

स्तंबपुर-संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रलिप्तपुर का एक नाम।

स्तंबमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] जरिता के एक पुत्र का नाम। (महाभारत)

स्तंबहनन-संज्ञा पुं० [सं०] घास आदि खोदने की खुरपी।

स्तंबी-संज्ञा पुं० [सं० स्तंबिन्] घास खोदने की खुरपी।

स्तंबेरम-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी। हस्ति।

स्तंबेरमासुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम। गजासुर।

स्तंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खंभा। थंभा। थूनी। (२) पेड़ का तना। तरुस्कंध। (३) साहित्यदर्पण के अनुसार एक प्रकार का सात्विक भाव। किसी कारण से संपूर्ण अंगों की गति का अवरोध। जड़ता। अचलता। उ०—देखा देखी भई, छूट तब तें सँकुच गई, मिटी कुल कानि, कैसो घूँघुट को करिबो। लागी टकटकी, उर उठी धकधकी, गति थकी, मति छकी, ऐसो नेह को उघरिबो। चित्र कैसे लिखे दोऊ ठाढ़े रहे, "कासीराम" नाहीं परवाह लाख लाख करो करिबो। बंसी को बजैबो नटनागर बिसरि गयो, नागरि बिसरि गई गागरि को भरिबो।—रसकुसुमाकर। (४) प्रतिबंध। रुकावट। (५) एक प्रकार का तांत्रिक प्रयोग जिससे किसी की चेष्टा या शक्ति को रोकते हैं। (६) काव्य में सात्विक भावों में से एक। (७) एक ऋषि का नाम। (विष्णुपुराण) (८) अभिमान। दंभ। (९) रोग आदि के कारण होनेवाली बेहोशी।

स्तंभक-वि० [सं०] (१) रोकनेवाला। रोधक। (२) कब्ज करनेवाला। (३) वीर्य रोकनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) खंभा। थंभा। (२) शिव का एक नाम।

स्तंभकर-वि० [सं०] (१) रोकनेवाला। रोधक। (२) जड़ता करनेवाला।

संज्ञा पुं० घेरा। वेष्टन।

स्तंभकी-संज्ञा पुं० [सं० स्तंभकिन्] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

स्तंभता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्तंभ का भाव। (२) जड़ता।

स्तंभतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन स्थान का नाम जो आज कल खंभात के नाम से प्रसिद्ध है। किसी समय यह एक प्रसिद्ध तीर्थ और व्यापार का बहुत बड़ा केंद्र था।

स्तंभन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुकावट। अवरोध। निवारण। (२) विशेषतः वीर्य आदि के स्खलन में बाधा या विलंब। (३) वह औषध जिससे वीर्य का स्खलन विलंब से हो। वीर्य्यपात रोकनेवाली दवा।

विशेष—इस अर्थ में लोग भ्रम से इस शब्द का, स्तंभक के स्थान पर प्रयोग करते हैं।

(३) सहारा। टेकान। टेक। (४) जड़ या निश्चेष्ट करना। जड़ीकरण। (५) रक्त के प्रवाह या गति का रोकना। (६) एक प्रकार का तांत्रिक प्रयोग जिससे किसी की चेष्टा या शक्ति को रोकते हैं। (७) वह औषध जो रूखी, ठंढी और कसैली हो, जिसमें पाचन-शक्ति कम हो और जो वायु करनेवाली हो। कब्ज। मलावरोधक। (९) कामदेव के पाँच बाणों में से एक। (शेष चार बाण ये हैं—उन्मादन, शोषण, तापन और सम्मोहन।)

स्तंभनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का इंद्रजाल या जादू।

स्तंभनीय-वि० [सं०] स्तंभन के योग्य।

स्तंभवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राण को जहाँ का तहाँ रोक देना, जो प्राणायाम का एक अंग है।

स्तंभि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

स्तंभिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चौकी या आसन का पाया। (२) छोटा खंभा। खँभिया।

स्तंभित-वि० [सं०] (१) जो जड़ या अचल हो गया हो। जड़ीभूत। निश्चल। निस्तब्ध। सुन्न। (२) ठहरा या ठहराया हुआ। स्थित। (३) रुका या रोका हुआ। अवरुद्ध। निवारित।

स्तंभिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] योग के अनुसार पाँच धारणाओं में से एक।

स्तंभी-वि० [सं० स्तम्भिन्] (१) स्तंभ या खंभों से युक्त। (२) रोकनेवाला। दांभिक।

संज्ञा पुं० समुद्र।

स्तनंधय-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० स्तनंधया, स्तनंधयी] (१) दूध पीता बच्चा। स्तनपायी शिशु। (२) बछड़ा। वत्स।

वि० दूधपीता। स्तनपान करनेवाला।

स्तन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्रियों या मादा पशुओं की छाती जिसमें दूध रहता है। जैसे,—गौ का स्तन।

मुहा०—स्तन पिलाना = स्तन मुँह में लगाकर उसका दूध पिलाना। स्तन पीना = स्तन मुँह में लगाकर उसका दूध पीना।

स्तनकील-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार स्त्रियों की छाती में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा।

स्तनकुंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम। (महाभारत)

स्तनचूचुक-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन का अग्र भाग। कुच के ऊपर की घुंडी। चूची। ढेपनी।

स्तनथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (शेर की) दहाड़। गरज। गर्जन। (२) घोर या भीषण नाद। गड़गड़ाहट।

स्तनथु-संज्ञा पुं० [सं०] (शेर की) दहाड़। गरज।

स्तनदात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (छाती का) दूध पिलानेवाली।

स्तनन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ध्वनि। नाद। शब्द। आवाज। (२) बादलों की गड़गड़ाहट। मेघगर्जन। (३) कराह। आह। आर्त्तध्वनि।

स्तनप-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० स्तनपा, स्तनपायिका] दूध पीता बच्चा। शिशु।

वि० स्तन पीनेवाला।

स्तनपान-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन में का दूध पीना। स्तन्यपान।

स्तनपायिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध पीती बच्ची। बहुत छोटी लड़की। दुग्ध-पोष्या।

स्तनपायी-वि० [सं० स्तनपायिन्] जो माता के स्तन से दूध पीता हो।

स्तनपोषिक-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद जिसे स्तनपायिक, स्तनयोपिक और स्तनयोधिक भी कहते थे।

स्तनबाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जनपद। (विष्णुपुराण) (२) इस देश का निवासी।

स्तनभर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थूल या पुष्ट स्तन। बड़ी और भरी छाती। (२) वह पुरुष जिसका स्तन या छाती स्त्री के समान हो।

स्तनभव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रति बंध या संभोग-आसन।

वि० स्तन से उत्पन्न।

स्तनमध्य-संज्ञा पुं० [सं०] दोनों स्तनों के बीच का स्थान।

स्तनमुख-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन या कुच का अगला भाग। चूचुक। चूची।

स्तनयित्नु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ गर्जन। बादलों की गड़गड़ाहट। (२) मेघ। बादल। (३) विद्युत्। बिजली। (४) मोथा। मुस्तक। (५) मृत्यु। मौत। (६) रोग। बीमारी।

स्तनरोग-संज्ञा पुं० [सं०] गर्भवती और प्रसूता स्त्रियों के स्तनों में होनेवाला एक प्रकार का रोग।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह रोग वायु, पित्त और कफ के कुपित होने से होता है। इसमें स्तन का मांस और रक्त दूषित हो जाता है। इसके पाँच भेद हैं—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगंतुज।

स्तनरोहित-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन या कुच के अग्र भाग के ऊपर दोनों ओर का अंग जो सुश्रुत के अनुसार परिमाण में दो अंगुल होता है।

स्तनविद्रधि-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन पर होनेवाला फोड़ा। थनैली।

स्तनवृंत-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन या कुच का अग्र भाग। चूचुक। चूची।

स्तनशिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तन का अग्र भाग। चूचुक। ढेपनी। चूची।

स्तनशोष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें स्तन सूख जाते हैं।

स्तनांतर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हृदय। दिल। (२) स्तन या छाती पर का एक चिह्न जो वैधव्यसूचक समझा जाता है।

स्तनाभुज-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राणी जो अपने बच्चों को स्तन से दूध पिलाता हो।

स्तनाभोग-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन की पूर्णता या पुष्टता।

स्तनित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ गर्जन। बादलों की गरज। (२) ध्वनि। शब्द। आवाज। (३) करतल ध्वनि। ताली बजाने का शब्द।

वि० (१) ध्वनित। निनादित। शब्दित। (२) गर्जन किया हुआ। गर्जित।

स्तनितकुमार–संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के देवताओं का एक वर्ग। इन्हें भुवनाधीश भी कहते हैं।

स्तनिफल–संज्ञा पुं० [सं०] कँटाय का पेड़। विकंकत वृक्ष।

स्तनी–वि० [सं० स्तनिन्] जिसके स्तन हो। स्तनयुक्त। स्तनवाला।

स्तन्य–संज्ञा पुं० [सं०] दूध। दुग्ध।
वि० जो स्तन में हो।

स्तन्यजनन–वि० [सं०] दूध उत्पन्न करने या बढ़ानेवाला।

स्तन्यदा–वि० स्त्री० [सं०] जिसके स्तनों में से दूध निकलता हो। दूध देनेवाली।

स्तन्यदान–संज्ञा पुं० [सं०] स्तन से दूध पिलाना।

स्तन्यप–वि० [सं०] [स्त्री० स्तन्यपा] स्तन या दूध पीनेवाला।
संज्ञा पुं० दूध पीता बच्चा। शिशु।

स्तन्यपान–संज्ञा पुं० [सं०] स्तन में का दूध पीना।

स्तन्यपायी–वि० [सं० स्तनपायिन्] जो स्तन से दूध पीता हो। स्तन पीनेवाला। दूध पीता।

स्तन्यरोग–संज्ञा पुं० [सं०] अस्वस्थ माता का दूध पीने से होनेवाला रोग।

स्तन्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] कलमी शाक। कलंबी साग।

स्तब्ध–वि० [सं०] (१) जो जड़ या अचल हो गया हो। जड़ीभूत। स्तंभित। स्पंदनहीन। निश्चेष्ट। सुन्न। (२) मजबूती से ठहराया हुआ। (३) दृढ़। स्थिर। (४) मंद। धीमा। सुस्त। (५) दुराग्रही। हठी। (६) अभिमानी। घमंडी।
संज्ञा पुं० वंशी के छः दोषों में से एक जिसमें उसका स्वर कुछ धीमा होता है।

स्तब्धता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्तब्ध का भाव। जड़ता। स्पंदनहीनता। (२) स्थिरता। दृढ़ता। (३) बहरापन। बधिरता।

स्तब्धपाद्–वि० [सं०] जिसके पैर जकड़ गए हों। खंज। लँगड़ा। पंगु।

स्तब्धपादता–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तब्धपाद का भाव। खंजता। पंगुता। लँगड़ापन।

स्तब्धमति–वि० [सं०] मंद बुद्धि। कुंद जेहन।

स्तब्धमेढ़्–वि० [सं०] जिसकी पुरुषेंद्रिय में जड़ता आ गई हो। क्लीव। नपुंसक।

स्तब्धरोमा–संज्ञा पुं० [सं० स्तब्धरोमन्] सूअर। शूकर।
वि० जिसके रोम या रोंगटे खड़े हो गए हों। स्तंभित।

स्तब्धसंभार–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

स्तभ–संज्ञा पुं० [सं०] बकरा।

स्तर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तह। परत। तबक। थर। (२) सेज। शय्या। तल्प। (३) भूगर्भ-शास्त्र के अनुसार भूमि आदि का एक प्रकार का विभाग जो उसकी भिन्न भिन्न कालों में बनी हुई तहों के आधार पर होता है।

स्तरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फैलाने या बिखेरने की क्रिया। (२) अस्तरकारी। पलस्तर। (३) बिछौना। बिस्तर।

स्तरणीय–वि० [सं०] (१) फैलाने या बिखेरने योग्य। (२) बिछाने के योग्य।

स्तरिमा–संज्ञा पुं० [सं० स्तरिमन्] सेज। शय्या। तल्प।

स्तरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] धूआँ। धूम्र।

स्तरीमा–संज्ञा पुं० [सं० स्तरीमन्] सेज। शय्या।

स्तरु–संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। बैरी।

स्तर्य–वि० [सं०] (१) फैलाने या बिखेरने योग्य। (२) बिछाने योग्य। स्तरणीय।

स्तव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देवता का छंदोबद्ध स्वरूप-कथन या गुण-गान। स्तुति। स्तोत्र। जैसे,—शिवस्तव, दुर्गास्तव। (२) ईश-प्रार्थना।

स्तवक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फूलों का गुच्छा। गुच्छक। गुलदस्ता। (२) समूह। ढेर। (३) पुस्तक का कोई अध्याय या परिच्छेद। जैसे,—प्रथम स्तवक, द्वितीय-स्तवक। (४) मोर की पूँछ या पंख। (५) स्तव। स्तोत्र। (६) वह जो किसी की स्तुति या स्तव करता हो। गुणकीर्त्तन करनेवाला।

स्तवथ–संज्ञा पुं० [सं०] स्तुति। स्तव। स्तोत्र।

स्तवन–संज्ञा पुं० [सं०] स्तुति करने की क्रिया। गुण कीर्त्तन। स्तव। स्तुति।

स्तवनीय–वि० [सं०] स्तव या स्तुति करने के योग्य। प्रशंसा के योग्य।

स्तवरक–संज्ञा पुं० [सं०] घेरा। वेष्ठन।

स्तवि–संज्ञा पुं० [सं०] साम गान करनेवाला। साम गायक।

स्तवितव्य–वि० [सं०] स्तव के योग्य। प्रशंसा के योग्य।

स्तविता–संज्ञा पुं० [सं० स्तवितृ] स्तव या स्तुति करनेवाला। गुण गान करनेवाला।

स्तवेय्य–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम।

स्तव्य–वि० [सं०] स्तव या स्तुति के योग्य। स्तवनीय।

स्तायु–संज्ञा पुं० [सं०] चोर।

स्तारा–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पौधा।

स्ताव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तव। स्तुति। गुण गान। (२) स्तव करनेवाला। गुण गान करनेवाला।

स्तावक–वि० [सं०] (१) स्तव या स्तुति करनेवाला। गुण-कीर्त्तन करनेवाला। प्रशंसक। (२) बंदीजन।

स्तावर–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बेल।

स्तावा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम। (वाजसनेयी-संहिता)

स्ताव्य–वि० [सं०] स्तव के योग्य। प्रशंसा के योग्य।

स्तिगोमूरा-संज्ञा पुं० [?] जहाज का पाल और उसकी रस्सी। (लश०)

स्तिपा-संज्ञा पुं० [सं०] आश्रितों की रक्षा करनेवाला। गृह पालक।

स्तिभि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फूलों का गुच्छा। गुच्छक। स्तवक। (२) समुद्र। (३) अवरोध। प्रतिबंध।

स्तिभिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुच्छा। स्तवक।

स्तिमित-वि० [सं०] (१) भीगा हुआ। तर। नम। आर्द्र। (२) स्थिर। निश्चल। (३) शांत। (४) प्रसन्न। संतुष्ट।
संज्ञा पुं० (१) नमी। आर्द्रता। (२) स्थिरता। निश्चलता।

स्तिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थिर जल।

स्तीम-वि० [सं०] सुस्त। अलस। धीमा।

स्तीमित-वि० दे० "स्तिमित"।

स्तीर्ण-वि० [सं०] फैलाया हुआ। बिखेरा हुआ। छितराया हुआ। विस्तृत। विकीर्ण।
संज्ञा पुं० शिव के एक अनुचर का नाम। (शिवपुराण)

स्तीर्वि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अध्वर्यु। (२) आकाश। (३) जल। (४) रुधिर। (५) शरीर। (६) भय। (७) तृण। घासपात। (८) इंद्र।

स्तुक-संज्ञा पुं० [सं०] अपत्य। संतान।

स्तुद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] भरदूल नामक पक्षी। भरद्वाज पक्षी।

स्तुत-वि० [सं०] (१) जिसकी स्तुति या प्रार्थना की गई हो। कीर्त्तित। प्रशंसित। (२) चूआ हुआ। बहा हुआ।
संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम। (२) स्तव। स्तुति। प्रशंसा।

स्तुतस्तोम-वि० [सं०] जिसका गुण-गान या प्रार्थना की गई हो। कीर्त्तित। प्रशंसित।

स्तुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुणकीर्त्तन। स्तव। प्रशंसा। तारीफ। बड़ाई।
क्रि० प्र०—करना।
(२) दुर्गा का एक नाम। (देवीपुराण) (३) प्रतिहर्ता की पत्नी का नाम। (भागवत)
संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम।

स्तुतिगीतक-संज्ञा पुं० [सं०] प्रशंसा का गीत।

स्तुतिपाठक-संज्ञा पुं० [सं०] बंदी जिसका काम प्राचीन काल में राजाओं की स्तुति या यशोगान करना था। स्तुतिपाठ करनेवाला। चारण। भाट। मागध। सूत।

स्तुतिवाद-संज्ञा पुं० [सं०] प्रशंसात्मक कथन। यशोगान। गुणगान।

स्तुतिवादक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तुति या प्रशंसा करनेवाला। प्रशंसक। (२) खुशामदी। चाटुकार। उ०—धनेश्वर भी स्तुतिवादक को यथार्थवादक जानकर उसी से वार्त्तालाप करता है :—गदाधरसिंह।

स्तुतिव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्तुति करे। स्तुतिपाठक।

स्तुत्य-वि० [सं०] स्तुति या प्रशंसा के योग्य। प्रशंसनीय।

स्तुत्यव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिरण्यरेता के एक पुत्र का नाम। (२) एक वर्ष का नाम जिसके अधिष्ठाता देवता स्तुत्यव्रत माने जाते हैं। (भागवत)

स्तुत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नलिका नामक गंध द्रव्य। नली। पवारी। (२) गोपीचंदन। सौराष्ट्री।

स्तुनक-संज्ञा पुं० [सं०] बकरा।

स्तुभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की अग्नि। (२) बकरा।

स्तुभ्वन-वि० [सं०] स्तुति करनेवाला।

स्तुव-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े के सिर का एक अंग।

स्तुवत्-वि० [सं०] स्तुति करनेवाला।
संज्ञा पुं० (१) स्तावक। स्तुति करनेवाला। (२) उपासक। पूजक।

स्तुवि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तुति करनेवाला। स्तावक। (२) उपासक। पूजक। (३) यज्ञ।

स्तुवेय्य-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

स्तुषेय्य-वि० [सं०] (१) स्तुति करने योग्य। स्तुत्य। (२) श्रेष्ठ। उत्तम। अच्छा।

स्तूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी आदि का ढेर। अटाला। राशि। (२) ऊँचा ढूह या टीला। (३) मिट्टी, ईंट, पत्थर आदि का बना ऊँचा ढूह या टीला जिसके नीचे भगवान् बुद्ध या किसी बौद्ध महात्मा की अस्थि, दाँत, केश या इसी प्रकार के अन्य स्मृति-चिह्न संरक्षित हों। (४) केशगुच्छ। लट। (५) मकान में का सब से बड़ा शहतीर। जोता।

स्तृत-वि० [सं०] (१) ढका हुआ। आच्छादित। (२) फैला हुआ। विस्तृत।

स्तृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] ढाँकने की क्रिया। आच्छादन।

स्तेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। चौर। तस्कर। (२) एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य। चोर नामक गंध द्रव्य। (३) चोरी करना। चुराना।

स्तेम-संज्ञा पुं० [सं०] नमी। गीलापन। आर्द्रता।

स्तेय-संज्ञा पुं० [सं०] चोरी। चौर्य्य।
वि० जो चोरी गया हो या चुराया जा सके।

स्तेयकृत-वि० [सं०] चोरी करनेवाला। चोर।

स्तेयफल-संज्ञा पुं० [सं०] तेजबल का पेड़।

स्तेयी-संज्ञा पुं० [सं० स्तेयिन्] (१) चोर। चौर। (२) मूसा। वनमूषिका। चूहा। (३) सुनार।

स्तैन-संज्ञा पुं० दे० "स्तैन्य"।

स्तैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर का काम। चोरी। (२) चोर। तस्कर।

स्तोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बूँद। बिंदु। (२) पपीहा। चातक।

स्तोतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पपीहा। चातक। (२) बछनाग विष। वत्सनाग विष।

स्तोतव्य-वि० [सं०] स्तव या स्तुति के योग्य। स्तुत्य।

स्तोता-वि० [सं० स्तोतृ] स्तुति करनेवाला। उपासना करनेवाला। प्रार्थना करनेवाला।

संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम।

स्तोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] किसी देवता का छंदोबद्ध स्वरूप कथन या गुणकीर्त्तन। स्तव। स्तुति। जैसे,—महिम्न स्तोत्र।

स्तोत्रिय, स्तोत्रीय-वि० [सं०] स्तोत्र संबंधी। स्तोत्र का।

स्तोभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद का एक अंग। (२) जड़ या निश्चेष्ट करना। स्तंभन। (३) तिरस्कार करना। उपेक्षा करना। अवज्ञा करना।

स्तोभित-वि० [सं०] (१) जिसकी स्तुति की गई हो। स्तुति किया हुआ। (२) जिसका जय जयकार किया गया हो।

स्तोम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तुति। प्रार्थना। (२) यज्ञ। (३) एक विशेष प्रकार का यज्ञ। (४) यज्ञकारी। यज्ञ करनेवाला। (५) समूह। राशि। (६) दस धन्वंतर अर्थात् चालीस हाथ की एक माप। (७) मस्तक। सिर। (८) धन। दौलत। (९) अनाज। शस्य। (१०) एक प्रकार की ईंट। (११) लोहे की नोकवाला डंडा या सोंटा।

वि०। टेढ़ा। वक्र।

स्तोमायन-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में बलि दिया जानेवाला पशु।

स्तोमीय-वि० [सं०] स्तोम संबंधी। स्तोम का।

स्तोम्य-वि० [सं०] स्तुति के योग्य। प्रार्थना के योग्य। स्तुत्य।

स्तौपिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अस्थि, नख, केश आदि स्मृति चिह्न जो स्तूप के नीचे संरक्षित हों। बुद्ध द्रव्य। (२) वह मार्जनी जो जैन यति अपने पास रखते हैं।

स्तौभ-वि० [सं०] स्तोभ संबंधी। स्तोभ का।

स्तौभिक-वि० [सं०] स्तोभ युक्त। जिसमें स्तोभ हो।

स्त्याम-वि० [सं०] (१) घना। कड़ा। कठोर। (२) चिकना। स्निग्ध। (४) शब्द या ध्वनि करनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) घनापन। घनत्व। (२) प्रतिध्वनि। आवाज। (३) आलस्य। अकर्मण्यता। (४) सत्कर्म में चित्त का न लगना। (५) अमृत।

स्त्यानर्द्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह निद्रा जिसमें वासुदेव का आधा बल होता है। जिसे यह निद्रा होती है, वह उठ कर कुछ काम करके फिर लेट जाता है और इस प्रकार वास्तव में वह सोता हुआ काम करता है, पर काम की उसे सुध नहीं रहती। (जैन)

स्त्यायन-संज्ञा पुं० [सं०] जन-समूह। भीड़। मजमा।

स्त्येन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। डाकू। (२) अमृत।

स्त्यैन-संज्ञा पुं० [सं०] चोर। डाकू।

वि० थोड़ा। कम। अल्प।

स्त्रियम्मन्य-वि० [सं०] जो अपने को स्त्री माने या समझे।

स्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नारी। औरत। जैसे,—लज्जाशीलता स्त्री जाति का आभूषण है। (२) पत्नी। जोरू। जैसे,—वह अपनी स्त्री और बाल-बच्चों के साथ आया है। (३) मादा। जैसे,—स्त्री-पशु। (४) सफेद च्यूँटी। (५) प्रियंगु लता। (६) एक वृत्त का नाम जिसमें दो गुरु होते हैं। उ०—गंगा धावो। कामा पावो। इसका दूसरा नाम कामा है।

संज्ञा स्त्री० दे० "इस्तिरी"।

स्त्रीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] संभोग। मैथुन।

स्त्रीकाम-वि० [सं०] स्त्री की कामना या इच्छा करनेवाला। जिसे औरत की ख्वाहिश हो।

स्त्रीकोश-संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग। कटार।

स्त्रीक्षीर-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री के स्तन का दूध।

स्त्रीगमन-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-संसर्ग। संभोग। मैथुन।

स्त्रीगुरु-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो दीक्षा या मंत्र देती हो। दीक्षा देनेवाली स्त्री।

विशेष—तंत्रों में सदाचारिणी और शास्त्र पारंगत स्त्रियों से दीक्षा या मंत्र लेने का विधान है।

स्त्रीग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार बुध, चंद्र और शुक्र ग्रह।

विशेष—ज्योतिष में पुरुष, स्त्री और क्लीव तीन प्रकार के ग्रह माने गए हैं जिनमें बुध, चंद्र और शुक्र स्त्री-ग्रह हैं। जातक के पंचम स्थान पर इन ग्रहों की स्थिति या दृष्टि रहने से स्त्री संतान होती है, और लग्न आदि में रहने से संतान स्त्री-स्वभाववाली होती है।

स्त्रीघोष-संज्ञा पुं० [सं०] प्रत्यूष। प्रभात। प्रातःकाल। तड़का।

स्त्रीघ्न-वि० [सं०] स्त्री या पत्नी की हत्या करनेवाला। स्त्री घातक।

स्त्रीचंचल-वि० [सं०] कामी। लंपट।

स्त्रीचित्तहारी-संज्ञा पुं० [सं० स्त्रीचित्तहारिन्] सहिंजन। शोभांजन।

वि० स्त्री का चित्त हरण करनेवाला।

स्त्रीचिह्न-संज्ञा पुं० [सं०] योनि। भग, स्तन आदि जो स्त्री होने के चिह्न हैं।

स्त्रीचौर-संज्ञा पुं० [सं०] कामी। लंपट। व्यभिचारी।

स्त्रीजननी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो केवल कन्या उत्पन्न करे। (मनु)

स्त्रीजित्-वि० [सं०] स्त्री या पत्नी के वश में रहनेवाला। जोरू का गुलाम।

स्त्रीता-संज्ञा स्त्री० दे० "स्त्रीत्व"।

स्त्रीत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्री का भाव या धर्म । स्त्रीपन । जनानपन । (२) व्याकरण में वह प्रत्यय जो स्त्री लिंग का सूचक होता है । ऐसा प्रत्यय जिस शब्द में लगता है, वह स्त्री लिंग हो जाता है ।

स्त्रीदेहार्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] शिव जिनके आधे अंग में पार्वती का होना माना जाता है ।

स्त्रीधन-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जिस पर स्त्रियों का विशेष रूप से पूरा अधिकार हो ।

विशेष—मनु के अनुसार यह छः प्रकार का है—विवाह में होम के समय जो धन मिले वह अध्यग्निक, पिता के यहाँ से जाते समय जो मिले वह अध्यावाहनिक, पति प्रसन्न होकर जो दे वह प्रीतिदत्त और माता, पिता तथा भ्राता से जो धन मिले वह यथाक्रम मातृ, पितृ और भ्रातृदत्त कहलाता है । इस पर पानेवाली स्त्री का ही अधिकार होता है, और किसी आदमी का कुछ अधिकार नहीं होता ।

स्त्रीधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्री का रजस्वला होना । रजोदर्शन । (२) मैथुन । (३) स्त्री का धर्म या कर्त्तव्य । (४) स्त्री संबंधी विधान ।

स्त्रीधर्मिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो ऋतु से हो । रजस्वला स्त्री ।

स्त्रीधव-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष ।

स्त्रीधूर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री को छलनेवाला पुरुष ।

स्त्रीध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी ।

वि० जिसमें स्त्रियों के चिह्न हों । स्त्री के चिह्नों से युक्त ।

स्त्रीनामा-वि० [सं० स्त्रीनामन्] जिसका स्त्री वाचक नाम हो । स्त्री नामवाला ।

स्त्रीनिबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] घर का धंधा जो स्त्रियाँ करती हैं ।

स्त्रीनिर्जित-वि० दे० "स्त्रीजित्" ।

स्त्रीपण्योपजीवी-संज्ञा पुं० [सं० स्त्रीपण्योपजीविन्] वह जो स्त्री या वेश्या की आय से अपनी जीविका चलावे । औरत की कमाई खानेवाला ।

स्त्रीपर-संज्ञा पुं० [सं०] कामुक । विषयी ।

स्त्रीपुर-संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर । जनानखाना ।

स्त्रीपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] रज । आर्त्तव ।

स्त्रीपूर्व-वि० दे० "स्त्रीजित्" ।

स्त्रीप्रसंग-संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन । संभोग ।

स्त्रीप्रसू-संज्ञा स्त्री० दे० "स्त्रीजननी" ।

स्त्रीप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आम । आम्र वृक्ष । (२) अशोक ।

स्त्रीबंध-संज्ञा पुं० [सं०] संभोग । मैथुन ।

स्त्रीभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] केवड़ा । केतकी ।

स्त्रीभोग-संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन । प्रसंग ।

स्त्रीमंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह मंत्र जिसके अंत में 'स्वाहा' हो ।

स्त्रीमय-वि० [सं०] स्त्रीरूप । जनाना । जनखा ।

स्त्रीमानी-संज्ञा पुं० [सं० स्त्रीमानिन्] भौत्य मनु के एक पुत्र का नाम । (मार्कंडेयपुराण)

स्त्रीमुखप-संज्ञा पुं० [सं०] मौलसिरी । बकुल ।

स्त्रीम्मन्य-वि० दे० "स्त्रियम्मन्य" ।

स्त्रीरंजन-संज्ञा पुं० [सं०] पान । तांबूल ।

स्त्रीरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी ।

स्त्रीराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार प्राचीन काल का एक प्रदेश जहाँ स्त्रियों की ही बस्ती थी ।

स्त्रीलंपट-वि० [सं०] स्त्री की सदा कामना करनेवाला । कामी । विषयी ।

स्त्रीलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भग । योनि । (२) हिंदी व्याकरण के अनुसार दो प्रकार के लिंगों में से एक जो स्त्री-वाचक होता है । जैसे,-घोड़ा शब्द पुंलिंग और घोड़ी स्त्रीलिंग है ।

स्त्रीलोल-वि० दे० "स्त्रीलंपट" ।

स्त्रीवश-वि० [सं०] स्त्री के कहने के अनुसार चलनेवाला । स्त्री का वशीभूत ।

स्त्रीवश्य-वि० दे० "स्त्रीवश" ।

स्त्रीवार-संज्ञा पुं० [सं०] सोम, बुध और शुक्रवार (ज्योतिष में चंद्र, बुध और शुक्र ये तीनों स्त्रीग्रह माने गए हैं; अतः इनके वार भी स्त्रीवार कहे जाते हैं ।)

स्त्रीवास-संज्ञा पुं० [सं० स्त्रीवासस] वह वस्त्र जो रति बंध या संभोग के समय के लिये उपयुक्त हो ।

स्त्रीवाह्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद । (मार्कंडेयपुराण)

स्त्रीविजित-वि० दे० "स्त्रीजित" ।

स्त्रीविषय-संज्ञा पुं० [सं०] संभोग । स्त्री संसर्ग । मैथुन ।

स्त्रीव्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन आदि चिह्न जिनसे स्त्री होने का बोध होता है ।

स्त्रीव्रण-संज्ञा पुं० [सं०] योनि । भग ।

स्त्रीव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] अपनी स्त्री के अतिरिक्त दूसरी स्त्री की कामना न करना । एक स्त्रीपरायणता । पत्नीव्रत । उ०—पातिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म नष्ट होना × ···।—सत्यार्थ प्र० ।

स्त्रीशौंड-वि० [सं०] स्त्री में आसक्त । स्त्री के पीछे उन्मत्त । औरत के लिये पागल रहनेवाला । कामुक ।

स्त्रीसंग-संज्ञा पुं० [सं०] संभोग । मैथुन । प्रसंग ।

स्त्रीसंग्रहण-संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री से बलात् आलिंगन या संभोग आदि करना । व्यभिचार ।

स्त्रीसंभोग-संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन । प्रसंग ।

स्त्रीसंसर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] संभोग । मैथुन । प्रसंग ।

स्त्रीसमागम-संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन । प्रसंग ।

स्त्रीसुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मैथुन । (२) सहिंजन । शोभांजन ।

स्त्रीसेवन-संज्ञा पुं० [सं०] संभोग । मैथुन ।

स्त्रीस्वभाव-संज्ञा पुं० [सं०] खोजा। अंतःपुर रक्षक।

स्त्रैण-वि० [सं०] (१) स्त्री संबंधी। स्त्रियों का। (२) स्त्रियों के कहने के अनुसार चलनेवाला। स्त्रियों का वशीभूत। स्त्रीरत। (३) स्त्री के योग्य।

स्त्रराजक-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-राज्य का निवासी।

स्त्यगार-संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर। जनानखाना।

स्त्यध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] रानियों की देखभाल करनेवाला। अंतःपुर का प्रधान अधिकारी।

स्त्यनुज-वि० [सं०] जो बहन के बाद उत्पन्न हुआ हो।

स्त्याख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु लता।

स्त्याजीव-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपनी या दूसरी स्त्रियों की वेश्यावृत्ति से अपनी जीविका चलाता हो। औरतों की कमाई खानेवाला।

स्थंडिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भूमि। जमीन। (२) यज्ञ के लिये साफ की हुई भूमि। चत्वर। (३) सीमा। हद। सिवान। (४) मिट्टी का ढेर। (५) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

स्थंडिलशय्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (व्रत के कारण) भूमि या जमीन पर सोना। भूमिशयन।

स्थंडिलशायी-संज्ञा पुं० [सं० स्थंडिलशायिन्] वह जो व्रत के कारण भूमि या यज्ञस्थल पर सोता हो।

स्थंडिलसितक-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की वेदी।

स्थंडिलेय-संज्ञा पुं० [सं०] रौद्राश्व के एक पुत्र का नाम। (महाभारत)

स्थंडिलेशय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "स्थंडिलशायी"। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

स्थ-प्रत्य० [सं०] एक प्रकार का प्रत्यय जो शब्दों के अंत में लगकर नीचे लिखे अर्थ देता है—(क) स्थित। कायम। जैसे,—गंगातटस्थ भवन। (ख) उपस्थित। वर्तमान। विद्यमान। मौजूद। जैसे,—उन्हें बहुत से श्लोक कंठस्थ हैं। (ग) रहनेवाला। निवासी। जैसे,—काशीस्थ पंडितों ने यह व्यवस्था दी। (घ) लगा हुआ। लीन। रत। जैसे,—वे ध्यानस्थ हैं।

स्थकर-संज्ञा पुं० दे० "स्थगर"।

स्थकित-वि० [हिं० थकित] थका हुआ। शिथिल। ढीला। उ०—जिसने वेनिस की पुलिस के गुप्तचरों और अनुसंधानियों को स्थकित कर दिया हो।—अयोध्या०।

स्थग-वि० [सं०] धूर्त्त। ठग। धोखेबाज। वंचक।

स्थगणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

स्थगन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० स्थगयितव्य] (१) ढाँकना। आच्छादन। (२) छिपाना। लुकाना। गोपन।

स्थगर-संज्ञा पुं० [सं०] तगर नामक गंधद्रव्य। वि० दे०"तगर"।

स्थगिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पान, सुपारी, चूना, कत्था आदि रखने का डिब्बा। पनडब्बा। पानदान। तांबूल करंक। (२) अँगूठे, उँगलियों और लिंगेंद्रिय के अग्रभाग पर के घाव पर बाँधी जानेवाली (पनडब्बे के आकार की) एक प्रकार की पट्टी। (वैद्यक)

स्थगित-वि० [सं०] (१) ढका हुआ। आवृत। आच्छादित। (२) छिपा हुआ। तिरोहित। अंतर्हित। गुप्त। (३) बंद। रुद्ध। (४) रोका हुआ। अवरुद्ध। (५) जो कुछ समय के लिये रोक दिया गया हो। मुलतवी। जैसे,—यात्रा स्थगित हो गई।

स्थगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पान, सुपारी आदि रखने का डिब्बा। पनडिब्बा। पानदान। तांबूलकरंक।

स्थगु-संज्ञा पुं० [सं०] पीठ पर का कूबड़। कुब्ब। गड्डु।

स्थड्डु-संज्ञा पुं० दे० "स्थगु"।

स्थपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। सामंत। (२) शासक। उच्च राजकर्मचारी। (३) रामचंद्र का सखा, गुह। (४) वह जिसने बृहस्पति-सवन नामक यज्ञ किया हो। (५) अंतःपुर रक्षक। कंचुकी। (६) वास्तु विद्या विशारद। भवन निर्माण कला में निपुण। वास्तुशिल्पी। (७) रथ या गाड़ी बनानेवाला। बढ़ई। सूत्रकार। (८) कुबेर का एक नाम। (९) बृहस्पति का एक नाम। (१०) रथ हाँकनेवाला। सारथि।

वि० (१) मुख्य। प्रधान। (२) उत्तम। श्रेष्ठ।

स्थपनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दोनों भौंहों के बीच का स्थान, जो वैद्यक के अनुसार मर्म्म-स्थान माना जाता है।

स्थपुट-वि० [सं०] (१) कुबड़ा। कुब्ज। विषम उन्नत। (२) जिस पर संकट पड़ा हो। विपन्न। (३) पीड़ा के कारण झुका हुआ। पीड़ा-नत।

संज्ञा पुं० पीठ पर का विषम उन्नत स्थान। कूबड़।

स्थल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भूमि। भूभाग। ज़मीन। (२) जलशून्य भूभाग। खुश्की। जैसे,—स्थल मार्ग से जाने में बहुत दिन लगेंगे। (३) स्थान। जगह। (४) अवसर। मौका। (५) टीला। ढूह। (६) तंबू। पटवास। (७) पुस्तक का एक अंश। परिच्छेद। (८) बल के एक पुत्र का नाम। (भागवत)

स्थलकंद-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली सूरन। कटैला जमींकंद।

स्थलकमल-संज्ञा पुं० [सं०] कमल की आकृति का एक प्रकार का पुष्प जो स्थल में उत्पन्न होता है।

विशेष—इसका क्षुप ६ से १२ इंच तक ऊँचा और पत्ते कुछ लंबोतरे और आध से दो इंच तक लंबे तथा तिहाई इंच तक चौड़े होते हैं। जड़ के पास के पत्ते डालों के पत्तों से कुछ चौड़े होते हैं। फूल गुलाबी रंग के और पाँच दलवाले होते

हैं। यह बंगाल में बहुत होता है। वैद्यक में यह शीतल, कड़वा, कसैला, चरपरा, हलका, स्तनों को दृढ़ करनेवाला तथा कफ, पित्त, मूत्रकृच्छ, अश्मरी, वात, शूल, वमन, दाह, मोह, प्रमेह, रक्त-विकार, श्वास्य, अपस्मार, विष और कास का नाश करनेवाला माना गया है।

पर्य्या०—पद्मचारिणी। अतिचरा। पद्माह्वा। चारिटी। अव्यथा। पद्मा। सारदा। सुगंधमूला। अंबुरुहा। लक्ष्मी। श्रेष्ठा। सुपुष्करा। रम्या। पद्मावती। स्थलरुहा। पुष्करणी। पुष्करपर्णिका। पुष्करनाड़ी।

स्थलकमलिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थल कमल का पौधा।

स्थलकाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा की एक सहचरी का नाम।

स्थलकुमुद-संज्ञा पुं० [सं०] कनेर। करवीर।

स्थलग-वि० [सं०] स्थल या भूमि पर रहने या विचरण करनेवाला। स्थलचर।

स्थलगामी-वि० [सं० स्थलगामिन्] स्थल पर रहने या विचरण करनेवाला। स्थलग। स्थलचर।

स्थलचर-वि० [सं०] स्थल पर रहने या विचरण करनेवाला।

स्थलचारी-वि० [सं० स्थलचारिन्] स्थल पर रहने या विचरण करनेवाला। स्थलचर।

स्थलज-वि० [सं०] (१) स्थल या भूमि में उत्पन्न। स्थल में उत्पन्न होनेवाला। (२) स्थल मार्ग से जानेवाले माल पर लगनेवाला (कर, चुंगी या महसूल)।

स्थलजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुलेठी। मधुयष्टी।

स्थलनलिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "स्थलकमलिनी"।

स्थलनीरज-संज्ञा पुं० [सं०] स्थलकमल।

स्थलपद्म-संज्ञा पुं० [सं०] स्थल कमल। (२) मानकच्चू। मानक। (३) सेवती गुलाब आदि। शतपत्र।

स्थलपद्मिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "स्थलकमलिनी"।

स्थलपिंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर। पिंडी। खर्जूरिका।

स्थलपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुल मखमली। झंडूक नामक क्षुप।

स्थलभंटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बनभंटा। वृहती।

स्थलमंजरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लटजीरा। अपामार्ग।

स्थलमर्कट-संज्ञा पुं० [सं०] करौंदा। करमर्दक।

स्थलयुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध या संग्राम जो स्थल या भूभाग पर होता है। खुश्की की लड़ाई।

स्थलरुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थलकमल।

स्थलविग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] वह लड़ाई या युद्ध जो स्थल या भूभाग पर होता है। खुश्की की लड़ाई।

स्थलविहंग-संज्ञा पुं० [सं०] स्थल पर विचरण करनेवाले मोर आदि पक्षी।

स्थलशृंगाट-संज्ञा पुं० [सं०] गोखरू। गोक्षुर।

स्थलशृंगाटक-संज्ञा पुं० दे० "स्थलशृंगाट"।

स्थलसीमा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्थलसीमन्] देश की सीमा। सरहद।

स्थला-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलशून्य भूभाग। खुश्क जमीन।

स्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जलशून्य भूभाग। खुश्क जमीन। भूमि। (२) ऊँची सम भूमि। (३) स्थान। जगह। जैसे,—वहाँ एक सुंदर वनस्थली है।

स्थलीदेवता-संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम्य देवता।

स्थलीय-वि० [सं०] (१) स्थल या भूमि संबंधी। स्थल का। भूमि का। जमीन का। उ०—जिसे कभी स्थलीय अथवा जलीय संग्राम से भय उत्पादन नहीं हुआ।—अयोध्यासिंह। (२) किसी स्थान का। स्थानीय।

स्थलेयु-संज्ञा पुं० [सं०] रौद्राश्व के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश)

स्थलेरुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घीकुआर। घृतकुमारी। (२) कुरुही। दुग्धावृक्ष।

स्थलेशय-संज्ञा पुं० [सं०] (स्थल अर्थात् भूमि पर सोनेवाले) कुरंग, कस्तूरी मृग आदि।

स्थलौक-संज्ञा पुं० [सं० स्थलौकस्] स्थल पर रहनेवाला पशु। स्थलचर जीव।

स्थवि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) थैला। थैली। (२) स्वर्ग। (३) जुलाहा। तंतुवाय। (४) अग्नि। आग। (५) कोढ़ी या उसका शरीर। (६) फल। (७) जंगम।

स्थविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मक्खी।

स्थविर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृद्ध। बुड्ढा। उ०—उनका प्रभाव स्थविर और युवा सब पर समान हुआ।—अयोध्यासिंह। (२) ब्रह्मा। (३) वृद्ध और पूज्य बौद्ध भिक्षु। (४) छरीला। शैलेय। (५) विधारा। वृद्धदारक। (६) कदंब। (७) बौद्धों का एक संप्रदाय।

वि० वृद्ध और पूज्य।

स्थविरदारु-संज्ञा पुं० [सं०] विधारा। वृद्धदारक।

स्थविरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोरखमुंडी। महाश्रावणिका। (२) वृद्धा स्त्री। बूढ़ी औरत।

स्थविष्ठ-वि० [सं०] अत्यंत स्थूल। बहुत मोटा।

स्थांडिल-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्रत के कारण भूमि या यज्ञ-स्थल पर सोता है। स्थंडिलशायी।

वि० व्रत के कारण भूमि पर शयन करनेवाला।

स्थाई-वि० दे० "स्थायी"।

स्थाग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शव। लाश। (२) शिव के एक अनुचर का नाम।

स्थाणु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खंभ। थून। स्तंभ। (२) पेड़ का वह धड़ जिसके ऊपर की डालियाँ और पत्ते आदि न रह गए हों। ठूँठ। (३) शिव का एक नाम। (४) एक प्रकार का भाला या बरछी। (५) हल का एक भाग। (६) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (७) धूपघड़ी का काँटा। (८)

सफेद च्यूँटियों का बिल। (९) वह वस्तु जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सके। स्थिर वस्तु। स्थावर पदार्थ। (११) ग्यारह रुद्रों में से एक का नाम। (१२) एक प्रजापति का नाम। (१३) एक नाग का नाम। (१४) एक राक्षस का नाम।

वि० स्थिर। अचल।

स्थाणवीय-वि० [सं०] स्थाणु या शिव संबंधी। शिव का।

स्थाणुकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इंद्रायन। महेन्द्रवारुणी लता।

स्थाणुतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] कुरुक्षेत्र के थानेश्वर नामक स्थान का प्राचीन नाम जो किसी समय बहुत प्रसिद्ध तीर्थ माना जाता था।

स्थाणुदिश्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (शिव की दिशा) उत्तर पूर्व दिशा। (बृहत्संहिता)

स्थाणुमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी। (रामायण)

स्थाणु रोग-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े को होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें उसकी जाँघ में व्रण या फोड़ा निकलता है। यह दूषित रक्त के कारण होता है। यह प्रायः बरसात में ही होता है।

स्थाणुवट-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

स्थाण्वीश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] स्थाणुतीर्थ में स्थित एक प्रसिद्ध शिवलिंग। (वामन पुराण)

स्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठहराव। टिकाव। स्थिति। (२) भूमि भाग। भूमि। जमीन। मैदान। जैसे,—सभा के सामनेवाला स्थान बड़ा रम्य है। (३) वह अवकाश जिसमें कोई चीज रह सके। जगह। ठाम। स्थल। जैसे,—सब सभासद अपने अपने स्थान पर बैठ गए। (४) डेरा। घर। आवास। जैसे,—मैं आप के स्थान पर गया था, आप मिले नहीं। (५) काम करने की जगह। पद। ओहदा। जैसे—उनके दफ्तर में कोई स्थान खाली है। (६) पद। दर्जा। जैसे,—काशीस्थ पंडितों में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। (७) मुँह के अंदर का वह अंग या स्थल जहाँ से किसी वर्ण या शब्द का उच्चारण हो। जैसे,—कंठ, तालु, मूर्धा, दंत, ओष्ठ। (व्याकरण) (८) राज्य। देश। (९) मंदिर। देवालय। (१०) किसी राज्य का मुख्य आधार या बल जो चार माने गए हैं। यथा—सेना, कोश, नगर और देश। (मनु) (११) गढ़। दुर्ग। (१२) सेना का अपने बचाव के लिये डटे रहना। (मनु) (१३) आखेट में शरीर की एक प्रकार की मुद्रा। (१४) (माल का) जखीरा। गुदाम। (१५) अवसर। मौका। (१६) अवस्था। दशा। हालत। (१७) कारण। उद्देश्य। (१८) ग्रंथ संधि। परिच्छेद। (१९) नीतिविदों के त्रिवर्ग के अंतर्गत एक वर्ग। (२०) किसी अभिनेता का अभिनय या अभिनयगत चरित्र। (२१) वेदी। (२२) एक गंधर्व राजा का नाम। (रामायण)

स्थानक-संज्ञा पुं० [सं०] जगह। ठाम। (२) नगर। शहर। (३) पद। स्थिति। दर्जा। (४) नृत्य में एक प्रकार की मुद्रा। (५) आलवाल। वृक्ष का थाला। (६) फेन।

स्थानचंचला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वनतुलसी। बर्वरी।

स्थानचिंतक-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का वह अधिकारी जो सेना के लिये छावनी की व्यवस्था करता हो।

स्थानच्युत-वि० [सं०] (१) जो अपने स्थान से गिर गया हो। अपनी जगह से गिरा हुआ। जैसे,—स्थानच्युत कमल। (२) जो अपने पद से हटा दिया गया हो। अपने ओहदे से हटाया हुआ। जैसे,—स्थानच्युत कर्मचारी।

स्थानतव्य-वि० [सं०] ठहरने के योग्य। रहने के योग्य। स्थिति के योग्य।

स्थानपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थान या देश का रक्षक। (२) प्रधान निरीक्षक। (३) चौकीदार। पहरेदार।

स्थानभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] रहने की जगह। मकान।

स्थानभ्रष्ट-वि० दे० "स्थानच्युत"।

स्थानमृग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) केंकड़ा। कर्कट। (२) मछली। मत्स्य। (३) कछुआ। कच्छप। (४) मगर। मकर।

स्थानविद्-वि० [सं०] स्थानीय विषयों का ज्ञाता या जानकार।

स्थान वीरासन-संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान करने की एक प्रकार की मुद्रा या आसन।

स्थानांग-संज्ञा पुं० [सं०] जैन धर्म-शास्त्र का तीसरा अंग।

स्थानांतर-संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा स्थान। प्रकृत या प्रस्तुत से भिन्न स्थान।

स्थानांतरित-वि० [सं०] जो एक स्थान से हट या उठकर दूसरे स्थान पर गया हो। जो एक जगह से दूसरी जगह पर भेजा या पहुँचाया गया हो। जैसे,—(क) भानु कार्यालय चौक से दशाश्वमेध स्थानांतरित हो गया। (ख) मि० सिंह काशी से आजमगढ़ स्थानांतरित कर दिए गए हैं।

स्थानाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिस पर किसी स्थान की रक्षा का भार हो। स्थान-रक्षक।

स्थानापन्न-वि० [सं०] दूसरे के स्थान पर अस्थायी रूप से काम करनेवाला। कायम मुकाम। एवजी। जैसे,—स्थानापन्न मैजिस्ट्रेट।

स्थानिक-वि० [सं०] उस स्थान का जिसके विषय में कोई उल्लेख हो। उल्लिखित, वक्ता या लेखक के स्थान का। जैसे,—स्थानिक घटना, स्थानिक समाचार।

संज्ञा पुं० (१) वह जिस पर किसी स्थान की रक्षा का भार हो। स्थान रक्षक। (२) मंदिर का प्रबंधक।

स्थानी-वि० [सं० स्थानिन्] (१) स्थानयुक्त । पदयुक्त । (२) ठहरनेवाला । स्थायी । (३) उचित । उपयुक्त । ठीक ।

स्थानीय-वि० [सं०] (१) उस स्थान या नगर का जिसके संबंध में कोई उल्लेख हो । उल्लिखित, वक्ता या लेखक के स्थान का । मुकामी । स्थानिक । जैसे,—स्थानीय पुलिस कर्मचारी । स्थानीय समाचार । (२) जो किसी स्थान पर स्थित हो ।

संज्ञा पुं० नगर । शहर । कस्बा ।

स्थानेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुरुक्षेत्र का थानेश्वर नामक स्थान जो किसी समय एक प्रसिद्ध तीर्थ था । (२) दे० "स्थानाध्यक्ष" ।

स्थापक-वि० [सं०] रखने या खड़ा करनेवाला । कायम करनेवाला । स्थापनकर्त्ता ।

संज्ञा पुं० (१) देव प्रतिमा या मूर्त्ति बनानेवाला । (२) सूत्रधार का सहकारी । सहकारी रंगमंचाध्यक्ष । (नाटक) (३) कोई संस्था खोलने या खड़ी करनेवाला । संस्थापक । प्रतिष्ठाता । (४) जो किसी के पास कोई चीज जमा करे । अमानत रखनेवाला ।

स्थापत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थपति का कार्य । भवन-निर्माण । राजगीरी । मेमारी । (२) वह विद्या जिसमें भवन-निर्माण संबंधी सिद्धांतों आदि का विवेचन हो । (३) अंतःपुर-रक्षक । रनिवास की रखवाली करनेवाला । (४) स्थानरक्षक का पद ।

स्थापत्यवेद-संज्ञा पुं० [सं०] चार उपवेदों में से एक जिसमें वास्तुशिल्प या भवन-निर्माण कला का विषय वर्णित है । कहते हैं कि इसे विश्वकर्मा ने अथर्ववेद से निकाला था ।

स्थापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खड़ा करना । उठाना । (२) रखना । बैठाना । जमाना । (३) नया काम खोलना । नया काम जारी करना । (४) जकड़ना । पकड़ना । (५) (प्रमाणपूर्वक किसी विषय को) सिद्ध करना । साबित करना । प्रतिपादन । (६) (शरीर की) रक्षा या आयु-वृद्धि का उपाय । (७) (रक्त का स्राव) रोकने का उपाय । (८) समाधि । (९) पुंसवन । (१०) मकान । घर । आवास । (११) अन्न की राशि । (१२) निरूपण ।

स्थापननिक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] अर्हत् की मूर्त्ति का पूजन । (जैन)

स्थापना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रतिष्ठित या स्थित करना । बैठाना । थापना । दृढ़तापूर्वक रखना । (२) रखना । जमा कर रखना । (३) (प्रमाणपूर्वक किसी विषय को) सिद्ध करना । साबित करना । प्रतिपादन । (४) व्यवस्थापन । निर्देश । (नाटक)

स्थापनासत्य-संज्ञा पुं० [सं०] किसी प्रतिमा या चित्र आदि में स्वयं उस वस्तु या व्यक्ति का आरोप करना जिसकी वह प्रतिमा या चित्र हो । जैसे,—पार्श्वनाथ की प्रतिमा को "पार्श्वनाथ की प्रतिमा" न कह कर "पार्श्वनाथ" कहना । (जैन)

स्थापनिक-वि० [सं०] जमा किया हुआ ।

स्थापनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाढ़ । पाठा ।

स्थापनीय-वि० [सं०] स्थापित करने के योग्य । जो स्थापना करने के योग्य हो ।

स्थापयिता-वि० [सं० स्थापयितृ] प्रतिष्ठा या स्थापन करनेवाला । संस्थापक । स्थापक ।

स्थापित-वि० [सं०] (१) जिसकी स्थापना की गई हो । कायम किया हुआ । प्रतिष्ठित । (२) जो जमा किया गया हो । (३) जो जमा कर रखा गया हो । रक्षित । (४) व्यवस्थित । निर्दिष्ट । (५) निश्चित । (६) ठहरा हुआ । जमा हुआ । दृढ़ । मजबूत । (७) विवाहित ।

स्थापी-संज्ञा पुं० [सं० स्थापिन्] प्रतिमा निर्माण करनेवाला । मूर्त्ति बनानेवाला ।

स्थाप्य-वि० [सं०] स्थापित करने के योग्य । जिसकी स्थापना की जा सके अथवा जो स्थापित करने के योग्य हो ।

संज्ञा पुं० (१) देव प्रतिमा । (२) धरोहर । अमानत ।

स्थाम-संज्ञा पुं० [सं० स्थामन्] (१) सामर्थ्य । शक्ति । (२) घोड़े की हिनहिनाहट । अश्वघोष । (३) स्थान । जगह । मुकाम ।

स्थाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आधार । पात्र । (२) दे० "स्थाम" ।

स्थाया-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । धरती ।

स्थायिता-संज्ञा स्त्री० दे० "स्थायित्व" ।

स्थायित्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थायी होने का भाव । टिकाव । ठहराव । (२) स्थिरता । दृढ़ता । मजबूती ।

स्थायी-वि० [सं० स्थायिन्] (१) ठहरनेवाला । टिकनेवाला । जो स्थिर रहे । (२) बहुत दिन चलनेवाला । जो बहुत दिन चले । टिकाऊ । जैसे,—(क) अब यह मकान पहले की अपेक्षा अधिक स्थायी हो गया है । (ख) अब हमारे यहाँ धीरे धीरे स्थायी साहित्य की भी सृष्टि होने लगी है । (३) बना रहनेवाला । स्थितिशील । स्थिर । (४) विश्वास करने योग्य । विश्वस्त ।

स्थायी भाव-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में तीन प्रकार के भावों में से एक जिसकी रस में सदा स्थिति रहती है । ये सदा चित्त में संस्कार रूप से वर्त्तमान रहते हैं और विभाव आदि में अभिव्यक्त होकर रसत्व को प्राप्त होते हैं । ये विरुद्ध अथवा अविरुद्ध भावों में नष्ट नहीं होते, बल्कि उन्हीं को अपने आप में समा लेते हैं । ये संख्या में नौ हैं; यथा—(१) रति । (२) हास्य । (३) शोक । (४) क्रोध । (५) उत्साह । (६) भय । (७) निंदा । (८) विस्मय और (९) निर्वेद ।

स्थायुक-वि० [सं०] ठहरनेवाला। टिकनेवाला। रहनेवाला। स्थितिशील।

संज्ञा पुं० गाँव का अध्यक्ष या निरीक्षक।

स्थाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आधार। पात्र। बरतन। (२) थाल। परात। थाली। (३) देग। देगची। पतीला। बटलोही। (४) दाँतों के नीचे का और मसूड़ों का भीतरी भाग।

स्थालक-संज्ञा पुं० [सं०] पीठ की एक हड्डी।

स्थालिक-संज्ञा पुं० [सं०] मल की दुर्गंध।

स्थालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मक्खी।

स्थाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंडी। हँडिया। (२) मिट्टी की रिकाबी। (३) एक प्रकार का बरतन जो सोम का रस बनाने के काम में आता था। (४) पाडर का पेड़। पाटला वृक्ष।

स्थालीद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] बेलिया पीपल। नंदी वृक्ष।

स्थालीपर्णी-संज्ञा स्त्री० दे० "शालिपर्णी"।

स्थालीपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आहुति के लिये दूध में पकाया हुआ चावल या जौ। एक प्रकार का चरु। (२) वैद्यक में लोहे की एक पाक विधि।

स्थालीपुलाक न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] जिस प्रकार हाँडी का एक चावल टोकर सब चावलों के पक जाने का अनुमान किया जाता है, उसी प्रकार किसी एक बात को देखकर उस संबंध की सब बातों का मालूम होना। जैसे,—मैंने उनका एक ही व्याख्यान सुनकर स्थालीपुलक न्याय से सब विषयों में उनका मत जान लिया।

स्थालीबिल-संज्ञा पुं० [सं०] पाकपात्र (बटलोही या हाँडी आदि) का भीतरी भाग।

स्थालीबिलीय-वि० [सं०] पाकपात्र (देग, हाँडी आदि) में उबलने या पकने योग्य।

स्थालीवृक्ष-संज्ञा पुं० दे० "स्थालीद्रुम"।

स्थावर-वि० [सं०] (१) जो चले नहीं। सदा अपने स्थान पर रहनेवाला। अचल। स्थिर। (२) जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया न जा सके। जंगम का उलटा। अचल। गैर-मनकूला। जैसे,—स्थावर संपत्ति (मकान, बाग, गाँव आदि) (३) स्थायी। स्थितिशील। (४) स्थावर संपत्ति संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) पहाड़। पर्वत। (२) अचल संपत्ति। गैर-मनकूला जायदाद। (जैसे,—जमीन, घर आदि) (३) वह संपत्ति जो वंश परंपरा से परिवार में रक्षित हो और जो बेची न जा सके। (जैसे,—रत्न आदि) (५) धनुष की डोरी। प्रत्यंचा। चिल्ला। (६) जैन दर्शन के अनुसार एकेंद्रिय पदार्थ आदि जिनके पाँच भेद कहे गए हैं—(१) पृथ्वीकाय, (२) अपकाय, (३) तेजस्काय, (४) वायुकाय और (५) वनस्पतिकाय।

स्थावरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थावर होने का भाव। स्थिरता।

स्थावरतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

स्थावरनाम-संज्ञा पुं० [सं०] वह पाप कर्म्म जिसके उदय से जीव स्थावर काय में जन्म ग्रहण करते हैं। (जैन)

स्थावरराज-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय।

स्थावर विष-संज्ञा पुं० [सं०] वह विष जो सुश्रुत के अनुसार, वृक्षमूल, पत्तों, फल, फूल, छाल, दूध, सार, गोंद, धातु और कंद में होता है। स्थावर पदार्थों में होनेवाला जहर। वैद्यक में यह ज्वर, हिचकी, दंतहर्ष, गलवेदना, वमन, अरुचि, श्वास, मूर्च्छा और झाग उत्पन्न करनेवाला बताया गया है।

स्थावरादि-संज्ञा पुं० [सं०] वत्सनाभ विष। बच्छनाग विष।

स्थाविर-संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धावस्था। वार्धक्य। बुढ़ौती।

विशेष—७० से ९० वर्ष तक स्थाविरावस्था मानी गई है। ९० वर्ष के उपरांत मनुष्य 'वर्षीयस्' कहलाता है।

स्थासक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर को चंदन आदि से चर्चित या सुगंधित करना। (२) पानी का बुलबुला। जलबुद्बुद्। (३) घोड़े के साज पर बुलबुल के आकार का एक गहना।

स्थिक-संज्ञा पुं० [सं०] नितंब। चूतड़।

स्थित-वि० [सं०] (१) अपने स्थान पर ठहरा हुआ। टिकाया हुआ। अवलंबित। जैसे,—इस भवन की छत खंभों पर स्थित है। (२) बैठा हुआ। आसीन। जैसे,—वे अपने आसन पर स्थित हो गए। (३) अपनी प्रतिज्ञा पर डटा हुआ। जैसे,—वह अपनी बात पर स्थित है। (४) विद्यमान। वर्तमान। मौजूद। जैसे,—परमात्मा सर्वत्र स्थित है। (५) रहनेवाला। निवासी। जैसे,—(क) स्वर्ग-स्थित देवता। (ख) दुर्गस्थित सेना। (६) बसा हुआ। अवस्थित। जैसे,—वह नगर गंगा के बाएँ किनारे पर स्थित है। (७) खड़ा हुआ। ऊर्ध्व। (८) अचल। स्थिर। (९) लगा हुआ। संलग्न। मशगूल।

संज्ञा पुं० (१) अवस्थान। निवास। (२) कुल मर्यादा।

स्थितता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थित होने का भाव। ठहराव। अवस्थान। स्थिति।

स्थितधी-वि० [सं०] (१) जिसका मन किसी बात से डाँवाँ-डोल न होता हो। जिसकी बुद्धि सदा स्थिर रहती हो। स्थिर-बुद्धि। (२) जिसका चित्त दुःख में विचलित न हो, सुख की जिसे चाह न हो और जिसमें राग, आसक्ति, भय या क्रोध न रह गया हो। सत्त्वबुद्धि-संपन्न।

स्थितप्रज्ञ-वि० [सं०] (१) जिसकी विवेक-बुद्धि स्थिर हो। (२)

जो समस्त मनोविकारों से रहित हो। आत्म द्वारा आत्मा में ही संतुष्ट रहनेवाला। आत्म-संतोषी।

स्थितबुद्धिदत्त-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्र का एक नाम।

स्थिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रहना। ठहरना। टिकाव। ठहराव। जैसे,—इस छत की स्थिति इन्हीं खंभों पर है। (२) निवास। अवस्थान। जैसे,—यहाँ कब तक आपकी स्थिति रहेगी? (३) अवस्था। दशा। हालत। जैसे,—उनकी स्थिति बहुत शोचनीय है। (४) पद। दर्जा। जैसे,—वे उन्नति करते हुए इस स्थिति को पहुँच गए। (५) एक स्थान या अवस्था में रहना। अवस्थान। (६) निरंतर बना रहना। अस्तित्व। (७) पालन। (८) नियम। (९) निष्पत्ति। निर्णय। (१०) मर्यादा। (११) सीमा। हद। (१२) निवृत्ति। (१३) स्थिरता। (१४) ठहरने का स्थान। (१५) ढंग। तरीका। (१६) आकार। आकृति। रूप। सूरत। (१७) संयोग। मौका।

स्थितिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थिति का भाव या धर्म। (२) स्थिरता।

स्थितिस्थापक-संज्ञा पुं० [सं०] वह गुण जिसके रहने से कोई वस्तु साधारण स्थिति में आने पर फिर अपनी पूर्व अवस्था को प्राप्त हो जाय। किसी वस्तु को अनुकूल परिस्थिति में फिर उसकी पूर्व अवस्था पर पहुँचानेवाला गुण। जैसे,—बेत लचकाने से लचक जाता है और छोड़ देने से फिर (इसी गुण के कारण) ज्यों का त्यों हो जाता है।

वि० (१) किसी वस्तु को उसकी पूर्व अवस्था को प्राप्त करानेवाला। (२) जो सहज में लचक या झुक जाय और छोड़ देने पर फिर ज्यों का त्यों हो जाय। लचीला। लचकदार। लचलचा। (जैसे, बेंत)

स्थितिस्थापकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थितिस्थापक होने की अवस्था या गुण। अनुकूल परिस्थिति में फिर अपनी पूर्व अवस्था को पहुँच जाने का गुण या शक्ति। लचीलापन। लचक।

स्थिर-वि० [सं०] (१) जो चलता या हिलता डोलता न हो। निश्चल। ठहरा हुआ। जैसे,—(क) हम लोग देखते हैं कि पृथ्वी स्थिर है; पर वह एक घंटे में ५८ हजार मील चलती है। (ख) और लोग उठकर चले गए, पर वह अपने स्थान पर स्थिर रहा। (२) निश्चित। जैसे,—(क) उन्होंने कलकत्ते जाना स्थिर किया है। (ख) आप स्थिर जानिए कि वह कभी सफल न होगा। (३) शांत। जैसे,—आप बहुत उत्तेजित हो गए हैं, जरा स्थिर होइए। (४) दृढ़। अटल। जैसे,—वे अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर हैं। (५) स्थायी। सदा बना रहनेवाला। जैसे,—इस संसार में कीर्त्ति ही स्थिर रहती है। (६) नियत। मुकर्रर। जैसे,—वहाँ चलने का समय स्थिर हो गया। (७) विश्वस्त। विश्वसनीय।

संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम। (२) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (३) ज्योतिष में एक योग का नाम। (४) ज्योतिष में वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ ये चारों राशियाँ जो स्थिर मानी गई हैं। कहते हैं कि इन राशियों में कोई काम करने से वह स्थिर या स्थायी होता है। जो बालक इनमें से किसी राशि में जन्म लेता है, वह स्थिर और गंभीर स्वभाववाला, क्षमाशील तथा दीर्घसूत्री होता है। (५) देवता। (६) साँड़। वृष। (७) मोक्ष। मुक्ति। (८) वृक्ष। पेड़। (९) धौ। धव वृक्ष। (१०) पहाड़। पर्वत। (११) शनि ग्रह। (१२) एक प्रकार का छंद। (१३) एक प्रकार का मंत्र जिससे शस्त्र अभिमंत्रित किए जाते थे। (१४) वह कर्म जिससे जीव को स्थिर अवयव प्राप्त होते हैं। (जैन)

स्थिरक-संज्ञा पुं० [सं०] सागौन। शाक वृक्ष।

स्थिरकर्मा-वि० [सं० स्थिरकर्मन्] स्थिरता या दृढ़ता से काम करनेवाला।

स्थिरकुसुम-संज्ञा पुं० [सं०] मौलसिरी। बकुल वृक्ष।

स्थिरगंध-संज्ञा पुं० [सं०] चंपा। चंपक वृक्ष।

वि० जिसकी सुगंध स्थिर रहती हो। स्थिर या स्थायी गंधयुक्त।

स्थिरगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केवड़ा। केतकी। (२) पाढ़र। पाटला।

स्थिरचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] मंजुघोष या मंजुश्री नामक प्रसिद्ध बोधिसत्व का एक नाम। वि० दे० "मंजुघोष"।

स्थिरचित्त-वि० [सं०] जिसका मन स्थिर या दृढ़ हो। जो जल्दी जल्दी अपने विचार न बदलता हो, अथवा घबराता न हो। दृढ़चित्त।

स्थिरचेता-वि० दे० "स्थिरचित्त"।

स्थिरच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र। भूर्जपत्र।

स्थिरच्छाय-संज्ञा पुं० [सं०] छाया देनेवाले पेड़। छायातरु।

स्थिरजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] मछली। मत्स्य।

स्थिरजीविता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमल का पेड़। शाल्मलि वृक्ष।

स्थिरजीवी-संज्ञा पुं० [सं० स्थिरजीविन्] कौआ, जिसका जीवन बहुत दीर्घ होता है।

स्थिरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थिर होने का भाव। ठहराव। निश्चलता। (२) दृढ़ता। मजबूती। (३) स्थायित्व। (४) धीरता। धैर्य।

स्थिरत्व-संज्ञा पुं० दे० "स्थिरता"।

स्थिरदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप। सर्प। भुजंग। (२) वाराह रूपी विष्णु का नाम। (३) ध्वनि।

स्थिरधी-वि० [सं०] जिसकी बुद्धि या चित्त स्थिर हो। दृढ़ चित्त।

स्थिरपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ से मिलता जुलता एक प्रकार का पेड़। श्रीताल। (२) एक प्रकार का खजूर का पेड़। हिंताल।

स्थिरपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपे का पेड़। चंपक वृक्ष। (२) मौलसिरी का पेड़। बकुल वृक्ष। (३) तिलपुष्पी। तिलकपुष्प वृक्ष।

स्थिरपुष्पी-संज्ञा पुं० [सं० स्थिरपुष्पिन्] तिलपुष्पी। तिलकपुष्प वृक्ष।

स्थिरफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुम्हड़े या पेठे की लता। कुष्मांड लता।

स्थिरबुद्धि-वि० [सं०] जिसकी बुद्धि स्थिर हो। ठहरी हुई बुद्धिवाला। दृढ़चित्त।

स्थिरमति-वि० दे० "स्थिरबुद्धि"।

स्थिरमद-संज्ञा पुं० [सं०] मोर। मयूर।

स्थिरमना-वि० दे० "स्थिरचित्त"।

स्थिरमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल कुलथी। रक्त कुलत्थ।

स्थिरयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] वह वृक्ष जो सदा छाया देता हो। छायावृक्ष।

स्थिरयौवन-संज्ञा पुं० [सं०] विद्याधर।
वि० जो सदा जवान रहे।

स्थिररंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा।

स्थिररांघ्रिप-संज्ञा पुं० [सं०] हिंताल वृक्ष।

स्थिररागा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी। दारुहरिद्रा।

स्थिरसाधनक-संज्ञा पुं० [सं०] सँभालू। सिंदुवार वृक्ष।

स्थिरसार-संज्ञा पुं० [सं०] सागौन। शाक वृक्ष।

स्थिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दृढ़चित्तवाली स्त्री। (२) पृथ्वी। (३) सरिवन। शालपर्णी। (४) काकोली। (५) सेमल। शाल्मलि वृक्ष। (५) वनमूँग। वनमुद्ग। (६) मषवन। माषपर्णी। (७) मूसाकानी। मूषाकर्णी।

स्थिरायु-संज्ञा पुं० [सं० स्थिरायुस्] सेमल का पेड़। शाल्मलि वृक्ष।
वि० (१) जिसकी आयु बहुत अधिक हो। चिरजीवी। (२) जो कभी मरे नहीं। अमर।

स्थिरीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थिर करने की क्रिया। (२) दृढ़ करना। मजबूत करना। (३) पुष्टि। समर्थन।

स्थुल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लंबा तंबू। पट्टवास।

स्थूण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (महाभारत)

स्थूणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घर का खंभा। थूनी। (२) पेड़ का तना या ठूँठ। (३) लोहे का पुतला। (४) निहाई। थूर्मि। (५) एक प्रकार का रोग।

स्थूणाकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का व्यूह। (२) एक यक्ष का नाम। (महाभारत) (३) एक रोग-ग्रह का नाम। (हरिवंश) (४) एक प्रकार का वाण।

स्थूणापक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का एक प्रकार का व्यूह।

स्थूम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीप्ति। प्रकाश। (२) चंद्रमा।

स्थूर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्य। आदमी। (२) साँड़। वृष।

स्थूरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बैल गाय का नथना। घूरिका। खुरिका।

स्थूरी-संज्ञा पुं० [सं० स्थूरिन्] बोझ लादनेवाला पशु। लद्दू घोड़ा या बैल।

स्थूल-वि० [सं०] (१) जिसके अंग फूले हुए या भारी हों। मोटा। पीन। जैसे,—स्थूल देह। उ०—देख्यो भरत तरुण अति सुंदर। स्थूल शरीर-रहित सब द्वंदर।—सूर। (२) जो यथेष्ट स्पष्ट हो। जिसकी विशेष व्याख्या करने की आवश्यकता न हो। सहज में दिखाई देने या समझ में आने योग्य। सूक्ष्म का उलटा। जैसे,—स्थूल सिद्धांत, स्थूल खंडन। (३) मूर्ख। जड़। (४) जिसका तल सम न हो।
संज्ञा पुं० (१) वह पदार्थ जिसका साधारणतया इंद्रियों द्वारा ग्रहण हो सके। वह जो स्पर्श, घ्राण, दृष्टि आदि की सहायता से जाना जा सके। गोचर पिंड। उ०—जो स्थूल होने के प्रथम देखने में आकर फिर न देख पड़े, उसको हम विनाश कहते हैं।—दयानंद। (२) विष्णु। (३) समूह। राशि। ढेर। (४) कटहल। (५) प्रियंगु। कँगनी। (६) एक प्रकार का कदंब। (७) शिव के एक गण का नाम। (८) अन्नमय कोश। (९) वैद्यक के अनुसार शरीर की सातवीं त्वचा। (१०) तूद या तूत का वृक्ष। (११) ईख। ऊख।

स्थूलकंगु-संज्ञा पुं० [सं०] वरक धान्य। चेना।

स्थूलकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे जाल बर्बुरक या आरी भी कहते हैं।

स्थूलकंटकिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमल का वृक्ष। शाल्मलि।

स्थूलकंटफल-संज्ञा पुं० [सं०] पनस। कटहल।

स्थूलकंटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी कटाई। बनभंटा। बृहती।

स्थूलकंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल लहसुन। (२) जमींकंद। सूरन। ओल। (३) जंगली सूरन। बनओल। (४) हाथीकंद। (५) मानकंद। (६) मंडपारोह। मुखालु।

स्थूलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण। उलप। उलूक।

स्थूलकणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मँगरैला।

स्थूलकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम। (महाभारत)

स्थूलका-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँबा हलदी।

स्थूलकुमुद-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कनेर।

स्थूलकेश–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम। (महाभारत)
स्थूलकांड–संज्ञा पुं० [सं०] वाण। तीर।
स्थूलग्रंथि–संज्ञा पुं० [सं०] कुलंजन। महामदा।
स्थूलचंचु–संज्ञा पुं० [सं०] महाचंचु नामक साग। बड़ा चेंच।
स्थूलचंपक–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद चंपा।
स्थूलचाप–संज्ञा पुं० [सं०] रूई धुनने की धुनकी।
स्थूलचूड़–संज्ञा पुं० [सं०] किरात।
स्थूलजंघा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नौ समिधाओं में से एक। (गृह्यसूत्र)
स्थूलजिह्व–वि० [सं०] जिसकी जीभ बहुत बड़ी हो।
संज्ञा पुं० एक प्रकार के भूत।
स्थूलजीरक–संज्ञा पुं० [सं०] मँगरैला।
स्थूलतंडुल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोटा धान।
स्थूलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थूल होने का भाव। स्थूलत्व। (२) मोटापन। मोटाई। (३) भारीपन।
स्थूलताल–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीताल। हिंताल।
स्थूलतिंदुक–संज्ञा पुं० [सं०] आबनूस। मकर तेंदुआ।
स्थूलतिक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।
स्थूलत्व–संज्ञा पुं० दे० "स्थूलता"।
स्थूलत्वचा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी। काश्मरी वृक्ष।
स्थूलदंड–संज्ञा पुं० [सं०] महानल। बड़ा नरकट।
स्थूलदर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] मूँज नामक तृण।
स्थूलदर्भा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मूँज नामक तृण। स्थूलदर्भ।
स्थूलदर्शक–संज्ञा पुं० [सं०] वह यंत्र जिसकी सहायता से सूक्ष्म वस्तु स्पष्ट और बड़ी दिखाई दे। सूक्ष्मदर्शक यंत्र।
स्थूलदला–संज्ञा स्त्री० [सं०] घीकुआर। ग्वारपाठा।
स्थूलनाल–संज्ञा पुं० [सं०] देवनल। बड़ा नरकट।
स्थूलनास, स्थूलनासिक–संज्ञा पुं० [सं०] सूअर। शूकर।
वि० जिसकी नाक बड़ी या लंबी हो।
स्थूलनिंबु–संज्ञा पुं० [सं०] महानिंबु। बड़ा नीबू।
स्थूलनील–संज्ञा पुं० [सं०] बाज नामक पक्षी।
स्थूलपट्ट–संज्ञा पुं० [सं०] कपास।
स्थूलपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दमनक। दौना नामक क्षुप। (२) सप्तपर्ण। सतिवन।
स्थूलपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सप्तपर्ण। छतिवन।
स्थूलपाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी। (२) वह जिसे फीलपा रोग हो। श्लीपद रोग से युक्त व्यक्ति।
स्थूलपिंडा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर।
स्थूलपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वक या अगस्त नामक वृक्ष। (२) गुलमखमली। झंटुक।
स्थूलपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] आरकीता। हापरमाली।
स्थूलपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखिनी। यवतिक्ता।
स्थूलप्रियंगु–संज्ञा स्त्री० [सं०] वरक धान्य। चेना।
स्थूलफल–संज्ञा पुं० [सं०] सेमल। शाल्मली। (२) बड़ा नींबू।
स्थूलफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शणपुष्पी। बन सनई। (२) सेमल। शाल्मली।
स्थूलबर्बुरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बबूल का पेड़।
स्थूलबालुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।
स्थूलभंटा–संज्ञा पुं० दे० "बनभंटा"।
स्थूलभद्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के जैन जो श्रुतकेवलिक भी कहलाते हैं।
स्थूलमंजरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।
स्थूलमरिच–संज्ञा पुं० [सं०] शीतलचीनी। कबाबचीनी। कक्कोल।
स्थूलमूल, स्थूलमूलक–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी मूली।
स्थूलरुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थलपद्म।
स्थूलरोग–संज्ञा पुं० [सं०] मोटे होने का रोग। मोटाई की व्याधि।
स्थूललक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो बहुत अधिक दान करता हो। बहुत बड़ा दानी। (२) बड़ा पंडित। विद्वान्। (३) कृतज्ञ।
स्थूललक्षिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दानशीलता। (२) पांडित्य। विद्वत्ता। (३) कृतज्ञता।
स्थूललक्ष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो बहुत अधिक दान करता हो। बहुत बड़ा दाता। (२) किसी विषय की ऊपरी या मोटी बातें बताना।
स्थूलवर्त्मकृत्–संज्ञा पुं० [सं०] भारंगी। बभनेटी।
स्थूलवल्कल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोध। लोध्र। (२) पठानी लोध। पट्टिका लोध्र।
स्थूलवृत्त–संज्ञा पुं० [सं०] मौलसिरी का पेड़। बकुल।
स्थूलवृत्तफल–संज्ञा पुं० [सं०] मैनफल। मदनफल।
स्थूलवैदेही–संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल। गजपीपल।
स्थूलशर–संज्ञा पुं० [सं०] रामशर। भद्रमुंज।
स्थूलशालि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोटा चावल। स्थूलतंडुल।
स्थूलशिंबी–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत निष्पावी। सफेद सेम। बरसेमा।
स्थूलशिरा–संज्ञा पुं० [सं० स्थूलशिरस्] एक प्राचीन ऋषि का नाम। (महाभारत)
स्थूलशीर्षिका–संज्ञा पुं० [सं०] छोटी च्यूँटी।
स्थूलशूरण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सूरन या जमींकंद।
स्थूलसायक–संज्ञा पुं० [सं०] रामशर। भद्रमुंज।
स्थूलस्कंध–संज्ञा पुं० [सं०] बड़हर। लकुच।
स्थूलहस्त–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का सूँड़।

स्थूलांग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चावल।
स्थूलांत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी अँतड़ी।
स्थूलांशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधपत्र।
स्थूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ी इलायची। (२) गजपीपल। (३) सोआ नामक साग। शतपुष्पा। (४) सौंफ। मिश्रेया। (५) कपिल द्राक्षा। मुनक्का। (६) कपास। (७) ककड़ी।
स्थूलाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जो खर का साथी था। (रामायण)
स्थूलाजाजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मँगरैला।
स्थूलाद्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (महाभारत) (२) एक राक्षस का नाम। (रामायण)
स्थूलाम्र-संज्ञा पुं० [सं०] कलमी आम।
स्थूलास्य-संज्ञा पुं० [सं०] साँप। सर्प।
स्थूली-संज्ञा पुं० [सं० स्थूलिन्] ऊँट।
स्थूलैरंड-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा एरंड।
स्थूलैला-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।
स्थूलोच्चय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंडोपल। (२) हाथी की मध्यम चाल, जो न बहुत तेज हो और न बहुत सुस्त।
स्थेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी विवाद का निर्णय करता हो। निर्णायक। (२) पुरोहित।
वि० स्थापित करने योग्य।
स्थैर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थिर होने का भाव। स्थिरता। (२) दृढ़ता। मजबूती।
स्थोरी-संज्ञा पुं० [सं० स्थोरिन्] बोझ ढोनेवाला घोड़ा। लद्दू घोड़ा।
स्थौणेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ग्रंथिपर्णी। थुनेर।
स्थौर-संज्ञा पुं० [सं०] वह भार जो पीठ पर लादा जाय।
स्थौरी-संज्ञा पुं० [सं० स्थौरिन] घोड़े, बैल, खच्चर आदि जिनकी पीठ पर भार लादा जाता हो।
स्थौलपिंडि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्थूलपिंड के वंश या गोत्र में उत्पन्न हुआ हो।
स्थौल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थूल का भाव। स्थूलता। (२) भारीपन। (३) शरीर की मेद वृद्धि जो वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग है। मोटापन।
स्नपन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० स्नपित] नहाने की क्रिया। स्नान।
स्नपित-वि० [सं०] जिसने स्नान किया हो। नहाया हुआ।
स्नसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्नायु।
स्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह चमड़ा जो गाय या बैल आदि के गले के नीचे लटकता है। लौ।
स्नात-वि० [सं०] जिसने स्नान किया हो। नहाया हुआ।
स्नातक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने ब्रह्मचर्य्य व्रत की समाप्ति पर स्नान करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश किया हो।
विशेष—प्राचीन काल में बालक गुरुकुलों में वेदों तथा अन्यान्य विद्याओं का अध्ययन समाप्त करके पचीस वर्ष की अवस्था में जब घर को लौटते थे, तब वे स्नातक कहलाते थे। ये स्नातक तीन प्रकार के होते थे। जो स्नातक २५ वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य्य का पालन करके बिना वेदों का पूरा अध्ययन किए ही घर लौटते थे, वे व्रत स्नातक कहलाते थे। जो लोग २५ वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी गुरु के यहाँ ही रहकर वेदों का अध्ययन करते थे और गृहस्थ आश्रम में नहीं आते थे, वे विद्यास्नातक कहलाते थे। और जो लोग ब्रह्मचर्य्य का पूरा पूरा पालन करके गृहस्थ आश्रम में आते थे, वे उभयस्नातक या विद्याव्रत स्नातक कहलाते थे। इधर हाल में भारत में थोड़े से गुरुकुल और ऋषिकुल आदि स्थापित हुए हैं। उनकी अवधि और परीक्षाएँ समाप्त करके भी जो युवक निकलते हैं, वे भी स्नातक ही कहलाते हैं।
स्नान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर को स्वच्छ करने या उसकी शिथिलता दूर करने के लिये उसे जल से धोना; अथवा जल की बहती हुई धारा में प्रवेश करना। अवगाहन। नहाना। वि० दे० "नहाना" (१)। (२) शरीर के अंगों को धूप या वायु के सामने इस प्रकार करना कि जिसमें उनके ऊपर उसका पूरा प्रभाव पड़े। जैसे,—आतप स्नान, वायु स्नान।
स्नानकलश-संज्ञा पुं० [सं०] वह घड़ा जिसमें स्नान करने का पानी रहता है।
स्नानकुंभ-संज्ञा पुं० दे० "स्नानकलश"।
स्नानगृह-संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा, कोठरी या इसी प्रकार का और घिरा हुआ स्थान जिसमें स्नान किया जाता है।
स्नानतृण-संज्ञा पुं० [सं०] कुश जिसे हाथ में लेकर नहाने का शास्त्रों में विधान है।
स्नानयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को होनेवाला एक उत्सव जिसमें विष्णु की मूर्त्ति को महास्नान कराया जाता है। इस दिन जगन्नाथ जी के दर्शन का बहुत माहात्म्य कहा गया है।
स्नानवस्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्त्र जिसे पहनकर स्नान किया जाता है।
स्नानशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] नहाने का कमरा या कोठरी। स्नानगृह। गुसलखाना।
स्नानीय-वि० [सं०] (१) जो नहाने के योग्य हो। (२) जिसमें नहाया जा सके।
स्नायन-संज्ञा पुं० [सं०] स्नान। नहाना।
स्नायविक-वि० [सं०] स्नायु संबंधी। स्नायु का।
स्नायवीय-संज्ञा पुं० [सं०] कर्मेंद्रिय। जैसे,—हाथ, पैर, आँख आदि।

स्नायी–संज्ञा पुं० [सं० स्नायिन्] वह जो स्नान करता हो। नहानेवाला।

स्नायु–संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर के अंदर की वह वायुवाहिनी नाड़ियाँ या नसें जिनसे स्पर्श का ज्ञान होता अथवा वेदना का ज्ञान एक स्थान से दूसरे स्थान या मस्तिष्क आदि तक पहुँचता है। ये सफेद, चिकनी, कड़ी और सन के गुच्छों के समान होती हैं और शरीर की माँस पेशियों में फैली रहती हैं। हमारे यहाँ वैद्यक में कहा गया है कि शरीर में से पसीना निकलने और लेप आदि को रोम छिद्र में से भीतर खींचने का व्यापार इन्हीं से होता है: और इनकी संख्या ९०० बतलाई गई है। इन्हें वात-रज्जु, नाड़ी या कंडरा भी कहते हैं।

स्नायुक–संज्ञा पुं० [सं०] नहरुआ नामक रोग।

स्नायुरोग–संज्ञा पुं० [सं०] नहरुआ या बाला नामक रोग।

स्नायुशूल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें स्नायु में शूल के समान तीव्र वेदना होती है। यह वेदना चमड़े के नीचे के भाग में होती है और शरीर के किसी स्थान में हो सकती है। इसके, अर्द्धभेद ऊर्ध्वभेद और अधोभेद ये तीन भेद कहे गए हैं।

स्नायुवर्म–संज्ञा पुं० [सं० स्नायुवर्मन्] आँख का एक प्रकार का रोग जिसमें उसकी कौड़ी या सफेद भाग पर एक छोटी गाँठ सी निकल आती है।

स्निग्ध–वि० [सं०] जिसमें स्नेह या तेल लगा हो अथवा वर्त्तमान हो।

संज्ञा पुं० (१) लाल रेंड। (२) धूप सरल या सरल नामक वृक्ष। (३) मोम। (४) गंधा बिरोजा। (५) दूध पर की मलाई।

स्निग्धकरंज–संज्ञा पुं० [सं०] गुच्छकरंज।

स्निग्धच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ का पेड़। वट वृक्ष।

स्निग्धच्छदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बेर का पेड़।

स्निग्धजीरक–संज्ञा पुं० [सं०] यशबगोल। ईसपगोल।

स्निग्धतंडुल–संज्ञा पुं० [सं०] साठी धान।

स्निग्धता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्निग्ध या चिकना होने का भाव। चिकनापन। चिकनाहट। (२) प्रिय होने का भाव। प्रियता।

स्निग्धत्व–संज्ञा पुं० दे० "स्निग्धता"।

स्निग्धदल–संज्ञा पुं० [सं०] गुच्छकरंज।

स्निग्धदारु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु का पेड़। (२) धूप सरल। (३) अश्वकर्ण या शाल नामक वृक्ष।

स्निग्धनिर्म्मल–संज्ञा पुं० [सं०] काँसा नामक धातु।

स्निग्धपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घृतकरंज। घीरंज। (२) गुच्छ करंज। (३) भगवतवल्ली। आवर्तकी लता। (४) मज्जर या माजुर नाम की घास।

स्निग्धपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेर। बदरी। (२) पालक का साग। (३) लोनी का साग। (४) गंभारी। काश्मरी। खुमेर।

स्निग्धपत्री–संज्ञा स्त्री० दे० "स्निग्धपत्रा"।

स्निग्धपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृश्निपर्णी। पिठवन। (२) मूर्वा। मरोड़फली।

स्निग्धपिंडीतक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मैनफल का वृक्ष।

स्निग्धफल–संज्ञा पुं० [सं०] गुच्छकरंज।

स्निग्धफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फूट नामक फल। (२) नकुलकंद। नाकुली।

स्निग्धबीज–संज्ञा पुं० [सं०] यशबगोल। ईसपगोल।

स्निग्धमज्जक–संज्ञा पुं० [सं०] बादाम।

स्निग्धराजि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप जिसकी उत्पत्ति, सुश्रुत के अनुसार, काले साँप और राजमती जाति की साँपिन से होती है।

स्निग्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) मज्जा। अस्थिसार। (३) विकंकत। बइँची।

वि० स्त्री० जिसमें स्नेह हो। स्नेह-युक्त।

स्नुक्–संज्ञा पुं० [सं०] स्नूही। थूहड़।

स्नुकच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरकंचुकी, क्षीरी या क्षीरसागर नामक वृक्ष।

स्नुकच्छदोपम–संज्ञा पुं० [सं०] वाराही कंद। गेंठी।

स्नुग्दल–संज्ञा पुं० [सं०] स्नूही। थूहड़।

स्नुषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुत्रवधू। लड़के की स्त्री। (२) स्नूही। थूहड़।

स्नुहा, स्नुही–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्नूही थूहड़।

स्नुहीक्षीर–संज्ञा पुं० [सं०] थूहड़ का दूध।

स्नुहीबीज–संज्ञा पुं० [सं०] थूहड़ का बीज।

स्नुहा–संज्ञा पुं० [सं०] उत्पल। कमल।

स्नेय–वि० [सं०] (१) स्नान करने के योग्य। नहाने लायक। (२) जो नहाने को हो।

स्नेह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रेम। प्रणय। प्यार। मुहब्बत। (२) चिकना पदार्थ। चिकनाहटवाली चीज। जैसे,—घी, तेल, चरबी आदि। विशेषतः तेल। (३) कोमलता। (४) एक प्रकार का राग जो हनुमत के मत से हिंडोल राग का पुत्र है। (५) सरसों। (६) सिर के अंदर का गूदा। भेजा। (७) दूध पर की साढ़ी। मलाई।

स्नेहकर–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वकर्ण या शाल नामक वृक्ष।

स्नेहगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] तिल।

स्नेहन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिकनाहट उत्पन्न करना। चिकनाई

कना। (२) शरीर में तेल लगाना। (३) कफ। श्लेष्मा। बलगम। (४) मक्खन। नवनीत।

स्नेहपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके साथ प्रेम किया जाय। प्रेमपात्र। प्यारा। प्रिय।

स्नेहपान-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की क्रिया जिसमें कुछ विशिष्ट रोगों में तेल, घी, चरबी आदि पीते हैं। इससे अग्नि दीप्त होती है, कोठा साफ होता है और शरीर कोमल तथा हलका होता है।

विशेष—हमारे यहाँ स्नेह चार प्रकार के माने गए हैं—तेल, घी, वसा और मज्जा। खाली तेल पीने को साधारण पान कहते हैं। यदि तेल और घी मिलाकर पीया जाय तो उसे यमक; इन दोनों के साथ यदि वसा भी मिला दी जाय तो उसे त्रिवृत; और यदि चारों साथ मिलाकर पीए जायँ तो उसे महास्नेह कहते हैं।

स्नेहपिंडीतक-संज्ञा पुं० [सं०] मैनफल।

स्नेहपूर-संज्ञा पुं० [सं०] तिल।

स्नेहफल-संज्ञा पुं० [सं०] तिल।

स्नेहबीज-संज्ञा पुं० [सं०] चिरौंजी।

स्नेहभू-संज्ञा पुं० [सं०] कफ। श्लेष्मा। बलगम।

स्नेहमुख्य-संज्ञा पुं० [सं०] तेल। रोगन।

स्नेहरंग-संज्ञा पुं० [सं०] तिल।

स्नेहवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नामक की अष्टवर्गीय ओषधि।

स्नेहवस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक के अनुसार दो प्रकार की वस्ति या पिचकारी देने के क्रियाओं में से एक जिसमें पिचकारी में तेल भरकर गुदा के द्वारा रोगी के शरीर में प्रविष्ट किया जाता है। प्रायः अजीर्ण, उन्माद, शोक, मूर्च्छा, अरुचि, श्वास, कफ और क्षय आदि के लिये यह वस्ति उपयुक्त कही है। इसका व्यवहार प्रायः वायु का प्रकोप शांत करने और कोष्ठ-शुद्धि के लिये किया जाता है।

स्नेहविद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु।

स्नेहवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु।

स्नेहसार-संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा नामक धातु। अस्थिसार।

स्नेहाश-संज्ञा पुं० [सं०] दीपक। चिराग।

स्नेहित-वि० [सं०] (१) जिसमें स्नेह हो या लगाया गया हो। चिकना। (२) जिसके साथ स्नेह या प्रेम किया जाय। बंधु। मित्र।

स्नेही-संज्ञा पुं० [सं० स्नेहिन्] वह जिसके साथ स्नेह या प्रेम किया जाय। प्रेमी। मित्र।

वि० जिसमें स्नेह हो। स्नेहयुक्त। चिकना।

स्नेहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोग। व्याधि। बीमारी। (२) चंद्रमा।

स्नेहोत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल।

स्नेह्य-वि० [सं०] जिसके साथ स्नेह किया जा सके। स्नेह या प्रेम करने के योग्य।

स्पंज-संज्ञा पुं० [अं०] झाँवें की तरह का एक प्रकार का बहुत मुलायम और रेशेदार पदार्थ जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं। इन्हीं छेदों से यह बहुत सा पानी सोख लेता है; और जब इसे दबाया जाता है, तब इसमें का सारा पानी बाहर निकल जाता है। इसी लिए प्रायः लोग स्नान आदि के समय शरीर मलने के लिये अथवा कुछ विशिष्ट पदार्थों को धोने या भिगोने के लिए अथवा गीले तल पर का पानी सुखाने के लिये इसे काम में लाते हैं। यह वास्तव में एक प्रकार के निम्न कोटि के समुद्री जीवों का आवास या ढाँचा है जो भूमध्य सागर और अमेरिका के आस पास के समुद्रों में पाया जाता है। इसकी कई जातियाँ और प्रकार होते हैं। मुरदा बादल।

स्पंद-संज्ञा पुं० दे० "स्पंदन"।

स्पंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी चीज का धीरे धीरे हिलना। काँपना। (२) (अंगों आदि का) प्रस्फुरण। फड़कना।

स्पंदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रजस्वला। रजोधर्मवाली स्त्री। (२) वह गौ जो बराबर दूध देती रहे। सदा दूध देनेवाली गौ। कामधेनु।

स्पंदी-वि० [सं० स्पंदिन्] जिसमें स्पंदन हो। हिलने, काँपने या फड़कनेवाला।

स्पर-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

स्परणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैदिक काल की एक प्रकार की लता का नाम।

स्पराटी-संज्ञा स्त्री० दे० "पुस्पराटी"।

स्पर्द्धनीय-वि० [सं०] (१) संघर्षण के योग्य। (२) स्पर्द्धा के योग्य। जिसके साथ स्पर्द्धा की जा सके।

स्पर्द्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संघर्ष। रगड़। (२) किसी के मुकाबिले में आगे बढ़ने की इच्छा। होड़। (३) साहस। हौसला। (४) साम्य। बराबरी। (५) ईर्ष्या। द्वेष।

स्पर्द्धी-वि० [सं० स्पर्द्धिन्] जिसमें स्पर्द्धा हो। स्पर्द्धा करनेवाला।

संज्ञा पुं० ज्यामिति में किसी कोण में की उतनी कमी जितनी की वृद्धि से वह कोण १८० अंश का अथवा अर्द्ध-वृत्त होता है। जैसे,—
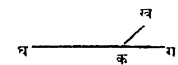
में घ क ख कोण ख क ग का स्पर्द्धी है।

स्पर्श-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो वस्तुओं का आपस में इतना पास पहुँचना कि उनके तलों का कुछ कुछ अंश आपस में सट या लग जाय। छूना। (२) त्वगिंद्रिय का वह गुण जिसके कारण ऊपर पड़नेवाले दबाव या किसी चीज के सटने

का ज्ञान होता है। नैयायिकों के अनुसार यह २४ प्रकार के गुणों में से एक है। (३) त्वगिंद्रिय का विषय। (४) पीड़ा। कष्ट। (५) दान। (६) वायु। (७) एक प्रकार का रतिबंध या आसन। (८) व्याकरण में उच्चारण के आभ्यंतर प्रयत्न के चार भेदों में से "स्पृष्ट" नामक भेद के अनुसार "क" से लेकर "म" तक के २५ व्यंजन जिनके उच्चारण में वागिंद्रिय का द्वार बंद रहता है। (९) ग्रहण या उपराग में सूर्य्य अथवा चंद्रमा पर छाया पड़ने का आरंभ।

स्पर्शकोण-संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह कोण जो किसी वृत्त पर खींची हुई स्पर्श रेखा के कारण उस वृत्त और स्पर्श रेखा के बीच में बनता है। जैसे,—
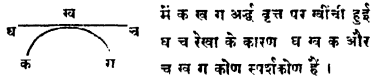
में क ख ग अर्द्ध वृत्त पर खींची हुई घ च रेखा के कारण घ ख क और च ख ग कोण स्पर्शकोण हैं।

स्पर्शजन्य-वि० [सं०] जो स्पर्श के कारण उत्पन्न हो। संक्रामक। छुतहा। जैसे,—कुष्ट, शीतला, हैजा आदि स्पर्शजन्य रोग हैं।

स्पर्शतन्मात्र-संज्ञा पुं० [सं०] स्पर्श भूत का आदि, अमिश्र और सूक्ष्म रूप। वि० दे० "तन्मात्र"।

स्पर्शता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्पर्श का भाव या धर्म्म। स्पर्शत्व।

स्पर्शदिशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दिशा जिधर से सूर्य्य या चंद्रमा को ग्रहण लगा हो। चंद्रमा या सूर्य्य पर ग्रहण की छाया आने की दिशा।

स्पर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छूने की क्रिया। स्पर्श करना। (२) दान। देना। (३) संबंध। लगाव। ताल्लुक। (४) वायु। हवा।

स्पर्शना-संज्ञा स्त्री० [सं०] छूने की शक्ति या भाव।

स्पर्शनीय-वि० [सं०] स्पर्श करने योग्य। छूने के लायक।

स्पर्शनेंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह इंद्रिय जिससे स्पर्श किया जाता है। छूने की इंद्रिय। त्वगिंद्रिय। त्वचा।

स्पर्शमणि-संज्ञा पुं० [सं०] पारस पत्थर जिसके स्पर्श से लोहे का सोना होना माना जाता है।

स्पर्शरसिक-संज्ञा पुं० [सं०] कामुक। लंपट।

स्पर्शरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित में वह सीधी रेखा जो किसी वृत्त की परिधि के किसी एक विंदु को स्पर्श करती हुई खींची जाय। जैसे,—
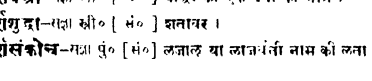
में क ख ग अर्द्ध वृत्त है; और उसके ख विंदु को स्पर्श करती हुई जो घ च रेखा है, वह स्पर्श रेखा है।

स्पर्शलज्जा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू या लाजवंती नाम की लता।

स्पर्शवज्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक देवी का नाम।

स्पर्शशुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावर।

स्पर्शसंकोच-संज्ञा पुं० [सं०] लजालू या लाजवंती नाम की लता।

स्पर्शसंकोच-संज्ञा पुं० [सं० स्पर्शसंकोचिन्] पिंडालू।

स्पर्शसंचारी-संज्ञा पुं० [सं० स्पर्शसंचारिन्] शूक रोग का एक भेद।

स्पर्शस्पंद-संज्ञा पुं० [सं०] मेढक।

स्पर्शहानि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शूक रोग में रुधिर के दूषित होने के कारण लिंग के चमड़े में स्पर्श-ज्ञान न रह जाना।

स्पर्शा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा। पुंश्चली। दुश्चरित्रा स्त्री। छिनाल।

स्पर्शाक्रामक-वि० [सं०] (रोग या दोष आदि) जो स्पर्श या संसर्ग के कारण उत्पन्न हो। संक्रामक। छुतहा।

स्पर्शाज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे स्पर्श ज्ञान हो।

स्पर्शास्पर्श-संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श + अस्पर्श] छूने या न छूने का भाव या विचार। इस बात का विचार कि अमुक पदार्थ छूना चाहिए और अमुक पदार्थ न छूना चाहिए। छूतछात।

स्पर्शिक-वि० [सं०] स्पर्श करनेवाला।

संज्ञा पुं० वायु। हवा।

स्पर्शी-वि० [सं० स्पर्शिन्] छूनेवाला। स्पर्श करनेवाला। जैसे,—गगनस्पर्शी। मर्म्मस्पर्शी।

स्पर्शेंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह इंद्रिय जिससे स्पर्श का ज्ञान होता है। त्वगिंद्रिय। त्वचा।

स्पर्शोपल-संज्ञा पुं० [सं०] पारस पत्थर। स्पर्शमणि।

स्पश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चर। दूत। (२) युद्ध। लड़ाई।

स्पष्ट-वि० [सं०] जिसके देखने या समझने आदि में कुछ भी कठिनता न हो। साफ दिखाई देने या समझ में आनेवाला। जैसे,—(क) इसके अक्षर दूर से भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। (ख) जिसमें किसी प्रकार की लगावट या दाँव-पेंच न हो। जैसे,—मैं तो स्पष्ट कहता हूँ; चाहे किसी को बुरा लगे और चाहे भला।

मुहा०—स्पष्ट कहना या सुनाना = बिल्कुल साफ साफ कहना। बिना कुछ छिपाव अथवा किसी का कुछ ध्यान किए कहना।

संज्ञा पुं० (१) ज्योतिष में ग्रहों का स्फुट साधन जिससे यह जाना जाता है कि जन्म के समय अथवा किसी और विशिष्ट काल में कौन सा ग्रह किस राशि के कितने अंश, कितनी कला और कितनी विकला में था। इसकी आवश्यकता ग्रहों का ठीक ठीक फल जानने के लिये होती है। (२) व्याकरण में वर्णों के उच्चारण का एक प्रकार का प्रयत्न जिसमें दोनों होंठ एक दूसरे से छू जाते हैं। जैसे,—प या म के उच्चारण में स्पष्ट प्रयत्न होता है।

स्पष्ट कथन-संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में कथन के दो प्रकारों में से एक जिसमें किसी दूसरे की कही हुई बात ठीक उसी रूप में कही जाती है, जिस रूप में वह उसके मुँह से निकली हुई होती है। जैसे,—कृष्ण ने साफ़ साफ़ कह दिया—"मैं उनसे किसी प्रकार का संबंध न रखूँगा।" इसमें लेखक

ने वक्ता कृष्ण का कथन उसी रूप में रहने दिया है, जिस रूप में वह उसके मुँह से निकला था।

स्पष्टतया-क्रि० वि० [सं०] स्पष्ट रूप से। साफ साफ। उ०—(क) इससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि समालोचना के सामान्य रूप का अर्थ मूल ग्रंथ का दूषण या उसका खंडन है।—गंगाप्रसाद। (ख) उषा काल की श्वेतता समुद्र में स्पष्टतया दृष्टि पड़ती थी।

स्पष्टता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्पष्ट होने का भाव। सफाई। जैसे,—उसकी बातों की स्पष्टता मन पर विशेष रूप से प्रभाव डालती है।

स्पष्ट प्रयत्न-संज्ञा पुं० दे० "स्पष्ट"। (२)

स्पष्टवक्ता-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो साफ साफ बातें कहता हो। वह जो कहने में किसी का मुलाहजा या रिआयत न करता हो।

स्पष्टवादी-संज्ञा पुं० [सं० स्पष्टवादिन्] वह जो साफ साफ बातें कहता हो। स्पष्टवक्ता। उ०—ऐसी हालत में स्पष्टवादी, निडर, समदर्शी, कुशाग्रबुद्धि और सच्चे तार्किकों की उत्पत्ति ही बंद हो जाती है।—द्विवेदी।

स्पष्टस्थिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में राशियों के अंश, कला, विकला आदि में (बालक के जन्म की) दिखलाई हुई ग्रहों की ठीक ठीक स्थिति।

स्पष्टीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] स्पष्ट करने की क्रिया। किसी बात को स्पष्ट या साफ़ करना। उ०—ऐसी बातें बहुत ही थोड़ी हैं जिनका मतलब बिना विवेचना, टीका या स्पष्टीकरण के समझ में आ सकता है।—द्विवेदी।

स्पष्टीकृत-वि० [सं०] जिसका स्पष्टीकरण हुआ हो। साफ या खुलासा किया हुआ।

स्पष्टीक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में वह क्रिया जिससे ग्रहों का किसी विशिष्ट समय में किसी राशि के अंश, कला, विकला आदि में अवस्थान जाना जाता है। उ०—पहले जब अयनांश का ज्ञान नहीं था, तब स्पष्टीक्रिया से जो ग्रह आता था, उसे लोग ग्रह ही के नाम से पुकारते थे।—सुधाकर।

स्पात-संज्ञा पुं० दे० "इस्पात"।

स्पिरिट-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) शरीर में रहनेवाली आत्मा। रूह। (२) वह कल्पित सूक्ष्म शरीर जिसका मृत्यु के समय शरीर से निकलना और आकाश में विचरण करना माना जाता है। सूक्ष्म शरीर। (३) जीवन-शक्ति। (४) एक प्रकार का बहुत तेज मादक द्रव पदार्थ जिसका व्यवहार अँगरेजी शराबों, दवाओं और सुगंधियों आदि में मिलाने अथवा लंपों आदि के जलाने में होता है। फूल शराब। (५) किसी पदार्थ का सत्त या मूल तत्त्व। जैसे,—स्पिरिट एमोनिया अर्थात् अमोनिया का सत।

स्पीच-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह जो कुछ मुँह से बोला जाय। कथन। (२) वाक्शक्ति। बोलने की शक्ति। (३) किसी विषय की ज़बानी की हुई विस्तृत व्याख्या। वक्तृता। व्याख्यान। लेक्चर।

स्पीन किशमिशी-संज्ञा पुं० [पिशीन प्रांत ? + किशमिश] एक प्रकार का बढ़िया अंगूर जो कैटा-पिशीन प्रांत में होता है।

स्पृक्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) असबरग। (२) लजालू। लाजवंती। (३) ब्राह्मी बूटी। (४) मालती। (५) सेवती। शतपत्री। (६) गंगापत्री। पात्रीलता।

स्पृन्-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की ईंट जिसका व्यवहार यज्ञ की वेदी आदि बनाने में होता था।

स्पृश-वि० [सं०] स्पर्श करनेवाला। छूनेवाला।

स्पृशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सर्पिणी। सर्पकंकालिका। (२) कंटकारी। कँटाई। रेंगनी।

स्पृशी संज्ञा स्त्री० [सं०] कंटकारी। कँटाई।

स्पृश्य-वि० [सं०] जो स्पर्श करने के योग्य हो। छूने के लायक।

स्पृष्ट वि० [सं०] जिसने स्पर्श किया हो। छूआ हुआ।

स्पृष्टरोदनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू या लाजवंती नाम की लता।

स्पृष्टास्पृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] परस्पर एक दूसरे को छूने की क्रिया। छूआछूत।

स्पृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] छूने की क्रिया। स्पर्श।

स्पृहरण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० स्पृहणीय] अभिलाषा। इच्छा।

स्पृहणीय-वि० [सं०] (१) जिसके लिये अभिलाषा या कामना की जा सके। वांछनीय। (२) गौरवशाली। गौरव या बड़ाई के योग्य।

स्पृहयालु-वि० [सं०] (१) जो स्पृहा या कामना करे। स्पृहा करनेवाला। (२) लोभी। लालची।

स्पृहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अभिलाषा। इच्छा। कामना। ख्वाहिश। (२) न्यायदर्शन के अनुसार किसी ऐसे पदार्थ की प्राप्ति की कामना जो धर्म्म के अनुकूल हो।

स्पृही-वि० [सं०] (१) कामना या इच्छा करनेवाला। (२) स्पृहा करनेवाला।

स्पृह्य-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू।

वि० जिसके लिये कामना या स्पृहा की जा सके। वांछनीय।

स्पेशल-वि० [अं०] (१) जिसमें औरों की अपेक्षा कोई विशेषता हो। विशिष्ट। खास। (२) जो विशेष रूप से किसी एक काम के लिये हो। जैसे,—स्पेशल गाड़ी।

संज्ञा स्त्री० वह रेलगाड़ी जो किसी विशिष्ट कार्य्य, उद्देश्य

या व्यक्ति के लिये चले। जैसे,—लाट साहब की स्पेशल, बारात की स्पेशल।

स्प्रिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] लोहे की तीली, पत्तर, तार या दूसरी प्रकार की और कोई लचीली वस्तु जो दाब पड़ने पर दब जाय और दाब हटने पर फिर अपने स्थान पर आ जाय। कमानी। वि० दे० "कमानी" (१)।

स्प्रिंगदार-वि० [अं० स्प्रिंग + फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें स्प्रिंग या कमानी लगी हो। कमानीदार।

स्प्रिचुअलिज्म-संज्ञा पुं० [अं०] वह विद्या या क्रिया जिसके द्वारा किसी स्वर्गीय या मृत व्यक्ति की आत्मा बुलाई जाती है और उससे बात-चीत की जाती है। भूतविद्या। आत्मविद्या।

स्प्लिंट-संज्ञा पुं० [अं०] पाश्चात्य चिकित्सा में चिपटी लकड़ी का वह टुकड़ा जो शरीर की किसी टूटी हुई हड्डी आदि को फिर यथास्थान बैठाकर, उस अंग को सीधा या ठीक स्थिति में रखने के लिये उस पर बाँधा जाता है। पट्टी। पटरी।

स्फट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फट फट शब्द। (२) साँप का फन।

स्फटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप का फन।

स्फटिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का सफेद बहुमूल्य पत्थर या रत्न जो काँच के समान पारदर्शी होता है और जिसका व्यवहार मालाएँ, मूर्त्तियाँ तथा दस्ते आदि बनाने में होता है। इसके कई भेद और रंग होते हैं। बिल्लौर। (२) सूर्य्यकांत मणि। (३) शीशा। काँच। (४) कपूर। (५) फिटकिरी।

स्फटिकविष-संज्ञा पुं० [सं०] दारुमोच नाम का विष।

स्फटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकरी।

स्फटिकाख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकरी।

स्फटिकाचल-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत जो दूर से देखने में स्फटिक के समान जान पड़ता है।

स्फटिकात्मा-संज्ञा पुं० [सं० स्फटिकात्मन्] बिल्लौर। स्फटिकमणि।

स्फटिकाभ्र-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

स्फटिकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकिरी।

स्फटिकोपम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपूर (२) जस्ता नाम की धातु। (३) चंद्रकांत मणि।

स्फटिकोपल-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्लौर। स्फटिक।

स्फटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकरी।

स्फाटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्फटिक बिल्लौर। (२) पानी की बूँद।

स्फाटिक-संज्ञा पुं० दे० "स्फटिक"।
वि० स्फटिक संबंधी। बिल्लौर का।

स्फाटिकोपल-संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर।

स्फाटीक-संज्ञा पुं० दे० "स्फटिक"।

स्फार-वि० [सं०] (१) प्रचुर। विपुल। बहुत। (२) विकट।

स्फारण-संज्ञा पुं० दे० "स्फुरण"।

स्फाल-संज्ञा पुं० दे० "स्फूर्त्ति"।

स्फिक्-संज्ञा पुं० [सं०] चूतड़।

स्फिच्-संज्ञा पुं० [सं०] चूतड़।

स्फीत-वि० [सं०] (१) बढ़ा हुआ। वर्द्धित। (२) फूला हुआ। (३) समृद्ध।

स्फीतता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्फीत होने का भाव या धर्म्म। (२) वृद्धि। (३) मोटाई। (४) समृद्धि।

स्फीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृद्धि। बढ़ती।

स्फुट-वि० [सं०] (१) जो सामने दिखाई देता हो। प्रकाशित। व्यक्त। (२) खिला हुआ। विकसित। जैसे,—स्फुटित कमल। (३) स्पष्ट हुआ। साफ। (४) शुक्ल। सफेद। (५) फुटकर। अलग अलग।
संज्ञा पुं० जन्मकुंडली में यह दिखाना कि कौन सा ग्रह किस राशि में कितने अंश, कितनी कला और कितनी विकला में है।

स्फुटक-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष्मती लता। मालकंगनी।

स्फुटता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्फुट होने का भाव या धर्म्म।

स्फुटत्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्फुट का भाव या धर्म्म। स्फुटता।

स्फुटत्वचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती। मालकंगनी।

स्फुटध्वनि-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद पंडुक (पक्षी)।

स्फुटन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फटना या फूटना। (२) विकसित होना। खिलना।

स्फुटफल-संज्ञा पुं० [सं०] तुंबुरु।

स्फुटबंधना-संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी। ज्योतिष्मती।

स्फुटरंगिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसका व्यवहार औषध में होता है।

स्फुटवल्कली-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्मती। मालकंगनी।

स्फुटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप का फन।

स्फुटि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पादस्फोटक नाम का रोग। पैर की बिवाई फटना। (२) फूट नाम का फल।

स्फुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फूट नामक फल। (२) फिटकिरी।

स्फुटित-वि० [सं०] (१) विकसित। खिला हुआ। (२) जो स्पष्ट किया गया हो। प्रकट किया हुआ। (३) हँसता हुआ।

स्फुटितकांडभग्न-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार हड्डी टूटने का एक भेद। हड्डी का टुकड़े टुकड़े होकर खिल जाना।

स्फुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पादस्फोट नामक रोग। पैर की बिवाई फटना। (२) फूट नाम का फल।

स्फुटीकरण-संज्ञा पुं० [सं० स्फुट + करण] स्पष्ट करना। प्रकट या व्यक्त करना।

स्फुटकर-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

स्फुत्कार-संज्ञा पुं० [सं०] फुफकार। फूत्कार।

स्फुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) दे० "स्फुरण"।

स्फुरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का जरा जरा हिलना। (२) अंग का फड़कना। (३) दे० "स्फूर्त्ति"।

स्फुरणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगों का फड़कना।

स्फुरति-संज्ञा स्त्री० दे० "स्फूर्त्ति"।

स्फुरित-वि० [सं०] जिसमें स्फुरण हो। हिलने या फड़कनेवाला। संज्ञा पुं० दे० "स्फुरण"।

स्फुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्फूर्त्ति। (२) तंबू। खेमा।

स्फुलमंजरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुलहुल नामक पौधा।

स्फुलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का छोटा कण। आग की चिनगारी।

स्फुलिंगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक।

स्फूर्जक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिंदुक या तेंदू नाम का वृक्ष। (२) सोनापाढ़ा।

स्फूर्जथु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिजली की कड़क। (२) चौलाई का साग।

स्फूर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिंदुक या तेंदू नाम का वृक्ष। (२) बलिया पीपल। नंदीवृक्ष।

स्फूर्त्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धीरे धीरे हिलना। फड़कना। स्फुरण। (२) कोई काम करने के लिये मन में उत्पन्न होनेवाली हलकी उत्तेजना। (३) फुरती। तेजी। जैसे,—स्नान करने से शरीर में स्फूर्त्ति आती है।

स्फोट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंदर भरे हुए किसी पदार्थ का अपने ऊपरी आवरण को तोड़ या भेदकर बाहर निकलना। फूटना। जैसे,—ज्वालामुखी का स्फोट। (२) शरीर में होनेवाला फोड़ा, फुंसी आदि। (३) मोती। मुक्ता। (४) सर्वदर्शन संग्रह के अनुसार नित्य शब्द जिससे वर्णात्मक शब्दों के अर्थ का ज्ञान होता है। जैसे,—कमल शब्द में क, म और ल ये तीन वर्ण हैं; और इन तीनों के अलग अलग उच्चारण से कुछ भी अभिप्राय नहीं निकलता। परंतु तीनों वर्णों का साथ साथ उच्चारण करने पर जो स्फोट होता है, उसी से कमल शब्द का अभिप्राय जाना जाता है। कुछ लोग इसी स्फोट (नित्य शब्द) को संसार का कारण मानते हैं।

स्फोटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फोड़ा। फुंसी। (२) भिलावाँ। भल्लातक। (जिसका तेल लगाने से शरीर में फोड़ा सा हो जाता है।)

स्फोटन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंदर से फोड़ना। (२) विदारण। फाड़ना। (३) प्रकट या प्रकाशित करना। (४) शब्द। आवाज। (५) सुश्रुत के अनुसार वायु के प्रकोप से होनेवाली व्रण की पीड़ा जिसमें व्रण फटता हुआ सा जान पड़ता है।

स्फोटलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] कनफोड़ा नाम की लता।

स्फोटवादी-संज्ञा पुं० [सं० स्फोटवादिन्] वह जो स्फोट या अनित्य शब्द को ही संसार का मूल हेतु या कारण मानता हो।

स्फोटबीजक-संज्ञा पुं० [सं०] भल्लातक। भिलावाँ।

स्फोटहेतु-संज्ञा पुं० [सं०] भल्लातक। भिलावाँ।

स्फोटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साँप का फन। (२) सफेद अनंतमूल।

स्फोटायन-संज्ञा पुं० [सं०] कक्षीवान् मुनि का एक नाम।

स्फोटिक-संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर या जमीन आदि तोड़ने फोड़ने का काम।

स्फोटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा फोड़ा। फुंसी। (२) हापुत्रिका नामक पक्षी।

स्फोटिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।

स्फोता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनंतमूल। शारिवा। (२) सफेद आक। सफेद मदार।

स्मदिभ-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

स्मय-संज्ञा पुं० [सं०] गर्व। अभिमान। शेखी।
वि० अद्भुत। विलक्षण।

स्मर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। मदन। उ०—(क) मदन मनोभव मन मथन, पंचसर स्मर मार। मीनकेतु कंदर्पहरि व्यापक विरह बिदार।—अनेकार्थ। (ख) स्मर अरचा को हित मान। ताको कहत बिसाल।—गुमान। (२) स्मरण। स्मृति। याद। (३) शुद्ध राग का एक भेद। (संगीत)

स्मरकथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों के संबंध की या शृंगार रस की ऐसी बातें जिनसे काम उत्तेजित हो।

स्मरकार-वि० [सं०] जिससे काम का उद्दीपन हो। कामोद्दीपक।

स्मरकूप-संज्ञा पुं० [सं०] भग। योनि।

स्मरकूपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भग। योनि।

स्मरगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। (२) वह जो काम कला की शिक्षा दे।

स्मरगृह-संज्ञा पुं० [सं०] भग। योनि।

स्मरचंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रतिबंध।

स्मरचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री संभोग के लिये एक प्रकार का रतिबंध।

स्मरच्छत्र-संज्ञा पुं० [सं०] भग। योनि।

स्मरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देखी, सुनी, बीती या अनुभव में आई हुई बात का फिर से मन में आना। याद आना। आध्यान। जैसे,—(क) मुझे स्मरण नहीं आता कि आपने उस दिन क्या कहा था। (ख) वे एक एक बात भली भाँति स्मरण रखते हैं।

मुहा०—स्मरण दिलाना = भूली हुई बात याद कराना। जैसे,—उनके स्मरण दिलाने पर मैं सब बातें समझ गया।

(२) नौ प्रकार की भक्तियों में से एक प्रकार की भक्ति जिसमें उपासक अपने उपास्यदेव को बराबर याद किया करता है। उ०—श्रवण, कीर्त्तन, स्मरणपाद, रत, अरचन वंदनदास। सख्य और आत्मा निवेदन, प्रेमलक्षणा जास।—सूर। (३) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें कोई बात या पदार्थ देखकर किसी विशिष्ट पदार्थ या बात का स्मरण हो आने का वर्णन होता है। जैसे,—कमल को देखकर किसी के सुंदर नेत्रों के स्मरण हो आने का वर्णन। उ०—(क) सूल होत नवनीत निहारी। मोहन के मुख जोग बिचारी। (ख) लखि शशि मुख की होत सुधि तन सुधि धन को जाहि।

स्मरणपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो किसी को कोई बात स्मरण दिलाने के लिये लिखा जाय।

स्मरणशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मानसिक शक्ति जो अपने सामने होनेवाली घटनाओं और सुनी जानेवाली बातों को ग्रहण करके रख छोड़ती है; और आवश्यकता पड़ने, प्रसंग आने या मस्तिष्क पर जोर देने से वह घटना या बात फिर हमारे मन में, स्पष्ट कर देती है। याद रखने की शक्ति। याददाश्त। जैसे,—(क) आपकी स्मरणशक्ति बहुत तीव्र है। (ख) अभ्यास से किसी विशिष्ट विषय में स्मरणशक्ति बहुत बढ़ाई जा सकती है।

स्मरणासक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवान के स्मरण में होनेवाली आसक्ति जिसके कारण भक्त दिन रात भगवान या इष्टदेव का स्मरण करता है। उ०—(यह भक्ति) एक रूप ही होकर गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दासासक्ति, सख्यासक्ति, कांतासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति रूप से एकादश प्रकार की होती है।—हरिश्चंद्र।

स्मरणीय-वि० [सं०] स्मरण रखने योग्य। याद रखने लायक। जो भूलने योग्य न हो। जैसे,—यह घटना भी स्मरणीय है।

स्मरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्मर या कामदेव का भाव या धर्म्म। (२) स्मरण का भाव या धर्म्म।

स्मरदशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दशा जो प्रेमी या प्रेमिका के न मिलने पर उसके विरह में होती है। विरह की अवस्था।

स्मरदहन-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव को भस्म करनेवाले, शिव।

स्मरदीपन-वि० [सं०] जिससे काम उत्तेजित हो। कामोत्तेजक।

स्मरध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरुष का लिंग। (२) स्त्री की योनि। भग। (३) वाद्य। बाजा।

स्मरध्वजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदनी रात।

स्मरना*-क्रि० स० [सं० स्मरण + ना (प्रत्य०)] स्मरण करना। याद करना। उ०—तुम्हैं देखिबे की महा चाह बाढ़ी, बिलापै, बिचारै, सराहै, स्मरै जू। रहै बैठि न्यारी, घटा देखि कारी, बिहारी, बिहारी, बिहारी, ररै जू॥ भई काल बौरी सि दौरी फिरी, आजु बाढ़ी दसा ईस का धौं करै जू। बिथा में ग्रसी सी, भुजंगै डसी सी, छरी सी, मरी सी, घरी सी, भरै जू।—रसकुसुमाकर।

स्मरप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव की पत्नी, रति।

स्मरमंदिर-संज्ञा पुं० [सं०] योनि। भग।

स्मरलेखनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शारिका पक्षी। मैना।

स्मरवधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव की पत्नी, रति।

स्मरवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध का एक नाम।

स्मरवीथिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

स्मरवृद्धि-संज्ञा पुं० [सं०] कामवृद्धि या कामज नामक क्षुप।

स्मरशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव का दहन करनेवाले, महादेव।

स्मरशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें काम कला का विवेचन हो। कामशास्त्र।

स्मरसख-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

वि० जिससे काम की उत्तेजना हो। कामोद्दीपक।

स्मरस्तंभ-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष की इंद्रिय। लिंग।

स्मरस्मरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवती।

स्मरस्मर्य-संज्ञा पुं० [सं०] गधा।

स्मरहर-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

स्मरागार-संज्ञा पुं० [सं०] भग। योनि।

स्मरांकुश-संज्ञा पुं० [सं०] लिंग।

स्मराधिवास-संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

स्मराम्र-संज्ञा पुं० [सं०] कलमी आम। राजाम्र।

स्मरारि-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव के शत्रु, महादेव। उ०—स्मरारि संस्मर निज रूपा। यथा दिखावहिं विमल स्वरूपा।—शंकरदिग्विजय।

स्मरासव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ में निकलनेवाला ताड़ी नामक मादक द्रव्य। (२) थूक।

स्मर्ण*-संज्ञा पुं० दे० "स्मरण"।

स्मर्त्तव्य-वि० [सं०] स्मरण रखने योग्य। याद रखने लायक। स्मरणीय।

स्मर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० स्मर्तृ] वह जो स्मरण रखे। याद रखनेवाला।

स्मर्य्य-वि० [सं०] स्मरण रखने योग्य। याद रखने लायक। स्मरणीय।

स्मशान-संज्ञा पुं० दे० "श्मशान"।

विशेष—स्मशान के यौगिक शब्दों के लिये देखो "श्मशान" के यौगिक।

स्मारक-वि० [सं०] स्मरण करानेवाला। याद दिलानेवाला।

संज्ञा पुं० (१) वह कृत्य, पदार्थ या वस्तु आदि जो किसी की स्मृति बनाए रखने के लिये प्रस्तुत किया जाय।

यादगार। जैसे,—महाराज शिवा जी का स्मारक। महारानी विक्टोरिया का स्मारक। (२) वह चीज जो किसी को अपना स्मरण रखने के लिये दी जाय। यादगार। जैसे,—मेरे पास यही एक पुस्तक तो आपका स्मारक है।

स्मारण-संज्ञा पुं० [सं०] स्मरण कराने की क्रिया। याद दिलाना।

स्मारणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी या ब्रह्मी नाम की वनस्पति जिसके सेवन से स्मरण शक्ति का बढ़ना माना जाता है।

स्मारित-संज्ञा पुं० [सं०] कृतसाक्षी के पाँच भेदों में से एक। वह साक्षी जिसका नाम पत्र पर न लिखा हो, परंतु अर्थी अपने पक्ष के समर्थन के लिये स्मरण करके बुलावे।

स्मार्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वे कृत्य आदि जो स्मृतियों में लिखे हुए हैं। (२) वह जो स्मृतियों में लिखे अनुसार सब कृत्य करता हो। (३) वह जो स्मृतियों आदि का अच्छा ज्ञाता हो। स्मृति शास्त्र का पंडित।

वि० स्मृति संबंधी। स्मृति का।

स्मार्तिक-वि० [सं०] स्मृति संबंधी। स्मृति का।

स्मित-संज्ञा पुं० [सं०] मंद हास्य। धीमी हँसी। उ०—श्रम अभिलाष सगर्व स्मित, क्रोध हरष भय भाव। उपजत एकहिं बार जहँ, तहँ किलकिंचित् हाव।—केशव।

वि० खिला हुआ। विकसित। प्रस्फुटित।

स्मृत-वि० [सं०] याद किया हुआ। जो स्मरण में आया हो। उ०—(क) एक बात यह भी स्मृत रक्खो कि जहाँ संवित् होती है, वहाँ ये सात गुण और उसके साथ निवास करते हैं।—श्रद्धाराम। (ख)...जो अब तक स्मृत थे, अत्यंत प्रसन्नता प्राप्त होती थी।—अयोध्यासिंह।

स्मृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्मरण शक्ति के द्वारा संचित होनेवाला ज्ञान। (२) स्मरण। याद। (३) दक्ष की कन्या और अंगिरा की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न एक कन्या। (४) हिंदुओं के धर्म शास्त्र जिनकी रचना ऋषियों और मुनियों आदि ने वेदों का स्मरण या चिंतन करके की थी और जिसमें धर्म्म, दर्शन, आचार व्यवहार, प्रायश्चित्त, शासन-नीति आदि के विवेचन हैं।

विशेष—हिंदुओं के धार्मिक ग्रंथ दो भागों में विभक्त हैं—श्रुति और स्मृति। इनमें से वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् आदि "श्रुति" के अंतर्गत हैं (दे० "श्रुति") और शेष धर्म्मशास्त्रों को स्मृति कहते हैं। स्मृति के अंतर्गत नीचे लिखे ग्रंथ आते हैं—(क) छः वेदांग। (ख) गृह्य, आश्वलायन, सांख्यायन, गोभिल, पारस्कर, बौधायन, भारद्वाज और आपस्तंबादि सूत्र। (ग) मनु, याज्ञवल्क्य अत्रि, विष्णु, हारीत, उशनस्, अंगिरा, यम, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, वशिष्ठ, नारद और भृगु आदि के रचे हुए धर्म्म-शास्त्र। (घ) रामायण और महाभारत आदि इतिहास। (च) अठारहो पुराण और (छ) सब प्रकार के नीति-शास्त्र के ग्रंथ। (५) (अठारह धर्म्म-शास्त्रों के कारण) १८ की संख्या। (६) एक प्रकार का छंद। (७) इच्छा। कामना।

स्मृतिकार-संज्ञा पुं० [सं०] स्मृति या धर्म्मशास्त्र बनानेवाला।

स्मृतिकारक-संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जिसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होती है।

स्मृतिवर्द्धिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी नामक वनस्पति जिसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होती है।

स्मृतिशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] धर्म्मशास्त्र। वि० दे० "स्मृति"।

स्मृतिहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखपुष्पी नाम की लता।

स्यंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टपकना। चूना। रसना। बहना। (२) गलना। पानी होना। (३) पसीना निकलना। स्वेदोद्गम। (४) एक प्रकार का चक्षुरोग। (५) चंद्रमा।

स्यंदक-संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू। तिंदुक वृक्ष।

स्यंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूना। टपकना। रसना। क्षरण। (२) गलना। पानी हो जाना। (३) जाना। चलना। गमन। (४) रथ विशेषतः युद्ध में काम आनेवाला रथ। उ०—चढ़ि स्यंदन चंदन सीस दै वंदन करि द्विजवर पदहि। नँद नंदनपुर तकतो भयो सुभट सुसर्मा धरि मदहि।—गोपाल। (५) वायु। हवा। (६) गत उत्सर्पिणी के २३वें अर्हत् का नाम। (जैन) (७) तिनसुना। तिनिश वृक्ष। (८) जल। (९) चित्र। तसवीर। (१०) घोड़ा। तुरंग। (११) एक प्रकार का मंत्र जिससे अस्त्र मंत्रित किए जाते थे। (१२) तेंदू। तिंदुक वृक्ष।

स्यंदन तैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की तैलौषध जो भगंदर के लिये उपकारी मानी जाती है। इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—चीता, आक, किसौत, पाढ़, कठूमर, सफेद कनेर, थूहर, हरताल, कलिहारी, बच, सज्जी और मालकंगनी, इन सब का कल्क, जो कुछ मिलाकर एक सेर हो, ४ सेर तिल के तेल में पकाया जाता है। इसके लगाने से भगंदर सूख जाता है। इसे निस्यंदन तैल भी कहते हैं।

स्यंदनद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिनसुना। तिनिश वृक्ष। (इसकी लकड़ी रथ के पहिए आदि बनाने के काम में आती थी; इसी से इसका नाम स्यंदनद्रुम पड़ा।) (२) तेंदू। तिंदुक।

स्यंदनारोह-संज्ञा पुं० [सं०] वह योद्धा जो रथ पर चढ़कर युद्ध करता हो। रथी।

स्यंदनाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिनसुना। तिनिश वृक्ष। (२) तेंदू। तिंदुक वृक्ष।

स्यंदनि-संज्ञा पुं० [सं०] तिनसुना। तिनिश वृक्ष।

स्यंदनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी नदी। नहर। (२) लार की बूँद।

स्यंदनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) थूक। लार। (२) मूत्र नाड़ी।

स्यंदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम। (रामायण)

स्यंदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) थूक। लार। (२) वह गाय जिसने एक साथ दो बछड़ों को जन्म दिया हो।

स्यमंतक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणोक्त एक प्रसिद्ध मणि।

विशेष—भागवत पुराण में इस मणि की कथा इस प्रकार है—यह मणि सत्राजित् नामक यादव ने अपनी तपस्या से सूर्य-नारायण को प्रसन्न कर प्राप्त की थी। यह सूर्य के समान प्रभा-विशिष्ट थी। यह प्रति दिन आठ भार (१ भार = २० तुला = २००० पल) सोना देती थी। जिस स्थान या नगर में यह रहती थी, वहाँ रोग, शोक, दुःख, दारिद्र्य आदि का नाम न रहता था। यादवों के कहने से श्रीकृष्ण ने राजा उग्रसेन के लिये यह मणि माँगी; पर सत्राजित् ने नहीं दी। सत्राजित् से उसके भाई प्रसेन ने यह ले ली और कंठ में धारण कर आखेट को गया। वहाँ एक सिंह ने उसे मार डाला। मणि लेकर सिंह एक गुफ़ा में घुसा। गुफा में रीछों का राजा जांबवंत रहता था। मणि के प्रकाश से गुफा को प्रकाशमान् देखकर जांबवंत आ पहुँचा और उसने सिंह को मार कर मणि हस्तगत की। इधर श्रीकृष्ण पर यह कलंक लगा कि उन्होंने प्रसेन को मार कर मणि ले ली है। यह सुन श्रीकृष्ण जांबवंत की गुफा में पहुँचे और उसे परास्त कर उन्होंने मणि का उद्धार किया। जांबवंत ने श्रीकृष्ण को साक्षात् भगवान जान कर अपनी कन्या जांबवंती उनके अर्पण की। श्रीकृष्ण ने लौटकर वही मणि सत्राजित् को दे दी। सत्राजित् इसलिये बहुत लज्जित और दुखी हुआ कि मैंने श्रीकृष्ण पर झूठा कलंक लगाया था। उसने भक्ति भाव से अपनी कन्या सत्यभामा और मणि श्रीकृष्ण को भेंट की। सत्यभामा को तो श्रीकृष्ण ने अंगीकार कर लिया, पर मणि लौटा दी। अनंतर सत्राजित् को मार कर शतधन्वा ने मणि ले ली। अंत में शतधन्वा श्रीकृष्ण के हाथों मारा गया और मणि सत्यभामा को मिल गई। कहते हैं, श्रीकृष्ण ने भादों की चौथ का चंद्रमा देखा था, इसी से उन पर मणि-हरण का झूठा कलंक लगा था। इसी से भादों महीने की चौथ का चंद्रमा लोग नहीं देखते।

स्यमंत पंचक-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम जहाँ, भागवत के अनुसार, परशुराम ने पितरों का शोणित से तर्पण किया था।

स्यमिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चींटियों या दीमकों का बनाया हुआ मिट्टी का घर। बाँबी। वल्मीक। (२) एक प्रकार का वृक्ष।

स्यमीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँबी। वल्मीक। (२) समय। काल। (३) बादल। मेघ। (४) जल। (५) एक प्राचीन राजवंश का नाम।

स्यमीका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पौधा। (२) एक प्रकार का कीड़ा।

स्यात-अव्य० [सं०] कदाचित। शायद।

स्याद्वाद-संज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन जिसमें एक वस्तु में नित्यत्व, अनित्यत्व, सदृशत्व, विरूपत्व, सत्त्व, असत्त्व आदि अनेक विरुद्ध धर्म्मों का सापेक्ष स्वीकार किया जाता है और कहा जाता है कि स्यात् यह भी है, स्यात् वह भी है आदि। अनेकांतवाद।

स्यान‡-वि० दे० "स्याना"। उ०—(क) भे सुत सुता स्यान सुख पागे।—रघुराज। (ख) विषम शर वेधत न स्यान के।—देव।

स्यानप-संज्ञा पुं० दे० "स्यानपन"।

स्यानपत-संज्ञा स्त्री० [हिं० स्याना + पत (प्रत्य०)] (१) चतुरता। चतुराई। (२) चालाकी। धूर्त्तता।

स्यानपन-संज्ञा पुं० [हिं० स्याना + पन (प्रत्य०)] (१) चतुरता। बुद्धिमानी। होशियारी। (२) चालाकी। धूर्त्तता।

स्याना-वि० [सं० सज्ञान] [स्त्री० स्यानी] (१) चतुर। बुद्धिमान्। होशियार। जैसे,—(क) तुम स्याने होकर ऐसी बातें करते हो! (ख) वे बड़े स्याने हैं; उनके आगे तुम्हारी दाल नहीं गलने की। (२) चालाक। काइयाँ। धूर्त्त। जैसे,—उसे तुम कम मत समझो; वह बड़ा स्याना है। (३) जो अब बालक न हो। बड़ा। वयस्क। बालिग। जैसे,—(क) जब लड़का स्याना हो जाय, तब उसका ब्याह करना चाहिए। (ख) ज्यों ज्यों वह स्याना हो रहा है, त्यों त्यों बिगड़ रहा है।

संज्ञा पुं० (१) बड़ा-बूढ़ा। वृद्ध पुरुष। जैसे,—(क) स्यानों का कहना मानना चाहिए। (ख) पहले घर के स्यानों से पूछ लो; फिर यह काम करो। (२) वह जो झाड़ फूँक करता हो। झाड़-फूँक करनेवाला। जंतर-मंतर करनेवाला। ओझा। (३) गाँव का मुखिया। नंबरदार। (४) चिकित्सक। हकीम।

स्यानाचारी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० स्याना + चार (प्रत्य०)] वह रसूम जो गाँव के मुखिया को मिलता है।

स्यानापन-संज्ञा पुं० [हिं० स्याना + पन (प्रत्य०)] (१) स्याने होने की अवस्था। लड़कपन के बाद की अवस्था। बालिग होने की अवस्था। युवावस्था। जैसे,—उसका ब्याह स्यानेपन में हुआ था। (२) चतुराई। चातुरी। होशियारी। (३) चालाकी। धूर्त्तता।

स्यापा-संज्ञा पुं० [फ़ा० स्याहपोश] मरे हुए मनुष्य के शोक में

कुछ काल तक घर की तथा नाते रिश्ते की स्त्रियों के प्रति दिन एकत्र होकर रोने और शोक मनाने की रीति।

विशेष—मुसलमानों तथा पंजाब के हिंदुओं में यह चाल है कि घर में किसी की, विशेषकर जवान मनुष्य की मृत्यु होने पर स्त्रियाँ एकत्र होकर रोती पीटती हैं। वे दिन रात में एक ही बार भोजन करती हैं और घर के बाहर नहीं निकलतीं। इसी को स्यापा कहते हैं।

मुहा०—स्यापा पड़ना=(१) रोना चिल्लाना मचना। (२) बिलकुल उजाड़ या सुनसान होना। जैसे,—इस बाजार में तो सरेशाम ही स्यापा पड़ जाता है।

स्याबासꣳ-अव्य० दे० "शाबास"। उ०—बार बार कह मुख स्याबासू। कियो सत्य पितु विष्णु विश्वासू।—रघुराज।

स्यामꣳ-संज्ञा पुं० दे० "श्याम"। उ०—विधु अति प्यारी रोहिनी तामैं जनमें स्याम। अति सन्निधि कै चंद्र के पूरन मन के काम।—व्यास।

वि० दे० "श्याम"। उ०—नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन वारिज बदन। करहु सो मम उर धाम सदा छीर सागर-सयन।—तुलसी।

संज्ञा पुं० भारतवर्ष के पूर्व के एक देश का नाम।

स्यामक-संज्ञा पुं० दे० "श्यामक"। उ०—स्यामक नामक वीर चलेउ वसुदेव अनुज बदि।—गोपाल।

स्यामकरनꣳ-संज्ञा पुं० दे० "श्यामकर्ण"। उ०—स्यामकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते।—तुलसी।

स्यामकर्नꣳ-संज्ञा पुं० दे० "श्यामकर्ण"। उ०—कहूँ अरुन तन तुरँग बरूथा। कितहूँ स्यामकर्न के जूथा।—रामाश्वमेध।

स्यामताꣳ-संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामता"। उ०—मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई।—तुलसी।

स्यामल-वि० दे० "श्यामल"। उ०—लता ओट तब सखिन लखाये। स्यामल गौर किसोर सुहाये।—तुलसी।

स्यामलता-संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामलता"। उ०—स्वच्छता सोहि रही इनमैं उन अंक मैं स्यामलता सरसावत।—रसकुसुमाकर।

स्यामलिया-संज्ञा पुं० दे० "साँवला"। उ०—रँगौ गयौ मन पट अरी स्यामलिया के रंग। कारी कामर पैं चढ़े अब क्यों दूजो रंग।—रसनिधि।

स्यामाꣳ-संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामा"।

स्यार†-संज्ञा पुं० [हिं० सियार] [स्त्री० स्यारनी] सियार। गीदड़। श्रृगाल। उ०—स्यार कटकटे लगे सबन सों डटे लगे अंग खंड तटे लगे सोनित को चटे लगे।—गोपाल।

स्यारकाँटा-संज्ञा पुं० [स्यार ? + हिं० काँटा] सत्यानासी। स्वर्णक्षीरी।

स्यारपन-संज्ञा पुं० [हिं० सियार + पन (प्रत्य०)] सियार या गीदड़ का सा स्वभाव। श्रृगाल प्रकृति। उ०—आयो सुनि कान्ह भूल्यो सकल हुस्यारपन, स्यारपन कंस को न कहत सिरातु है।—रसकुसुमाकर।

स्यारलाठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० स्यार + लाठी] अमलतास।

स्यारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सियारी] सियार की मादा। सियारी। सियारिन। गीदड़ी। श्रृगाली। उ०—बोलहिं मारजार अरु स्यारी। हारहुगे मनु कहत पुकारी।—गोपाल।

स्याल-संज्ञा पुं० [सं०] पत्नी का भाई। साला। श्याल। श्यालक। उ०—सुनत स्याल के वचन महीपति पठे सुमंत तुरंता। भ्रातन सहित राम बुलवायो आये अति विलसंता।—रघुराज।

संज्ञा पुं० दे० "सियार" या "स्यार"। उ०—सरमा से कुत्ते स्याल आदि उत्पन्न हो गए।—सत्यार्थ प्र०।

स्यालकाँटा-संज्ञा पुं० दे० "स्यारकाँटा"।

स्यालक-संज्ञा पुं० [सं०] पत्नी का भाई। साला।

स्याला-संज्ञा पुं० [देश०] बहुतायत। अधिकता। ज्यादती।

†संज्ञा पुं० [सं० शीतकाल] शीतकाल। जाड़े का मौसिम।

स्यालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी की छोटी बहन। साली।

स्यालिया†-संज्ञा पुं० [हिं० सियार] सियार। गीदड़। श्रृगाल। उ०—श्रीकृष्ण के पुत्र ढंढण मुनि को स्यालिया ले गया।—सत्यार्थ प्र०।

स्याली-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी की बहन। साली। श्यालिका।

स्यालू†-संज्ञा पुं० [हिं० सालू] स्त्रियों के ओढ़ने की चादर। ओढ़नी। उपरेनी।

स्यालो-संज्ञा पुं० [सं० स्याल, हिं० साला] पत्नी का भाई। साला। (डिं०)

स्याह-वि० [फ़ा०] काला। कृष्ण वर्ण का।

संज्ञा पुं० घोड़े की एक जाति। उ०—सिरगा समँदा स्याह सेलिया सूर सुरंगा। मुसकी पँचकल्यानि कुमेता केहरि रंगा।—सूदन।

स्याह करवा गुलकट-संज्ञा पुं० [?] लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का ठप्पा जिससे कपड़ों पर बेल बूटे छापे जाते हैं।

स्याहगोसर-संज्ञा पुं० दे० "सियाहगोश"। उ०—चीते सुरोस सावर दवंग। गैंडा गलीनु डोलत अभंग। अरु स्याहगोसर विथ्रंग अंग। रिच्छादि खैरिहा छुटे अंग।—सूदन।

स्याह जबान-संज्ञा पुं० [फ़ा० स्याह + जबान] वह हाथी या घोड़ा जिसकी जबान स्याह हो। (ऐसे हाथी घोड़े ऐबी समझे जाते हैं।)

स्याह जीरा-संज्ञा पुं० [फ़ा० स्याह + हिं० जीरा] काला जीरा। वि० दे० "काला जीरा"।

स्याह तालू-संज्ञा पुं० [फ़ा० स्याह + हिं० तालू] वह हाथी या घोड़ा जिसका तालू बिलकुल स्याह हो। (ऐसे हाथी घोड़े ऐबी समझे जाते हैं।)

स्याहदिल-वि० [फा०] जो दिल का काला हो । खोटा । दुष्ट ।

स्याहभूरा-वि० [फा० स्याह + हिं० भूरा] काला । (रंग)

स्याहा-संज्ञा पुं० दे० "सियाहा" । उ०—प्रभु जू में ऐसो अमल कमायो । साबिक जमा हुती जो जोरी मिन जालिक तल लायो । वासिलबाकी स्याहा मुजमिल सब अधर्म की बाकी । चित्रगुप्त होत मुस्तौफी शरण गहूँ मैं काकी ।—सूर ।

स्याही-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) एक प्रसिद्ध रंगीन तरल पदार्थ जो प्रायः काला होता है और जो लिखने, छापने आदि के काम में आता है । लिखने या छापने की रोशनाई । मसि । उ०—हरि जाय चैन चित सूखि स्याही झरि जाइ करि जाय कागद कलम टाँक जरि जाय ।—काव्यकलाधर । (२) कालापन । कालिमा । उ०—स्याही बारन तें गई मन तें भई न दूर । समुझ चतुर चित बात यह रहत बिसूर बिसूर ।—रसनिधि ।

मुहा०—स्याही जाना = बालों का कालापन जाना । जवानी का बीतना । उ०—स्याही गई सफेदी आई दिल सफेद अजहूँ न हुआ ।—कबीर । (३) कालिख । कालिमा । जैसे,—उसने अपने बाप दादों के नाम पर स्याही पोत दी ।

क्रि० प्र०—पोतना ।—लेपना ।

(४) कडुवे तेल के दीए में पारा हुआ एक प्रकार का काजल जिससे गोदना गोदते हैं ।

संज्ञा स्त्री० [सं० शल्यकी, हिं० स्याही] साही । शल्यकी । सेह । वि० दे० "साही" ।

स्युवक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद । (विष्णुपुराण)

स्यू-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूत । सूत्र ।

स्यूत-वि० [सं०] बुना हुआ । सीया हुआ । सूत्रित ।

संज्ञा पुं० मोटे कपड़े का थैला । थैली ।

स्यूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सीना । सीवन । (२) बुनना । वयन । (३) थैला । (४) संतति । संतान । औलाद ।

स्यून-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरण । रश्मि । (२) सूर्य । (३) थैला ।

स्यूम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरण । रश्मि । (२) जल ।

स्यूमरश्मि-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम ।

स्यों, स्यो*-अव्य० [सं० सह] सह । सहित । उ०—(क) सुनि सिष कंतदंत तृन धरिकै स्यो परिवार सिधारो ।—सूर । (ख) राम कह्यो उठि बावरराई । राजसिरी सखि स्यो तिय पाई ।—केशव । वि० दे० "सौं" ।

स्योत-संज्ञा पुं० [सं०] मोटे कपड़े का थैला । थैली ।

स्योती-संज्ञा स्त्री० दे० "सेवती" ।

स्योन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरण । रश्मि । (२) सूर्य । (३) थैला । (४) सुख । आनंद ।

स्योनाक-संज्ञा पुं० [सं०] सोनापाढ़ा । श्योनाक वृक्ष ।

स्योनाग-संज्ञा पुं० [सं० श्योनाक] सोनापाढ़ा । श्योनाक वृक्ष ।

स्योहार-संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति ।

स्रंग*-संज्ञा पुं० दे० "शृंग" । उ०—अँगिया झुनकारी खरी सित जारी की सेद कनी कुच दूपर लौं । मनो सिंधु मथे सुधा फेन बढ्यो सो चढ्यो गिरि स्रंगनि ऊपर लौं ।—सुंदरी-सर्वस्व ।

स्रंसन-वि० [सं०] मलभेदक । दस्त लानेवाला । दस्तावर । विरेचक ।

संज्ञा पुं० (१) वह औषध जो कोठे के वात आदि दोष तथा मल को नियत समय के पहले ही बलात् गुदा मार्ग से निकाल दे । मलभेदक औषध । दस्त लानेवाली दवा । विरेचन । (२) अधःपतन । भ्रंश । (३) कच्चे गर्भ का गिरना । गर्भपात । गर्भस्राव ।

स्रंसिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार का योनि रोग जिसमें प्रसंग के समय रगड़ लगने पर योनि बाहर निकल आती है और गर्भ नहीं ठहरता । प्रस्रंसिनी ।

स्रंसिनीफल-संज्ञा पुं० [सं०] सिरस । शिरीष वृक्ष ।

स्रंसी-संज्ञा पुं० [सं० स्रंसिन्] (१) पीलू वृक्ष । (२) सुपारी का पेड़ । पूग वृक्ष ।

वि० (१) गिरनेवाला । पतनशील । (२) असमय में गिरनेवाला । (गर्भ)

स्रक्-संज्ञा स्त्री० पुं० [सं०] (१) फूलों की माला । (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार नगण और एक सगण होता है तथा ६ और ९ पर यति होती है । उ०—नचहु सुखद यसुमति सुत सहिता । लहहु जनम इह सखि सुख अमिता ।—छंदःप्रभाकर । (३) एक प्रकार का वृक्ष । (४) ज्योतिष में एक प्रकार का योग ।

स्रक-संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "स्रक्" । (१) उ०—(क) स्रक चंदन वनितादिक भोगा । देखि हरख विसमयवस लोगा ।—तुलसी । (ख) स्रक चंदन वनिता विनोद सुख यह जर जरन बितायो ।—सूर ।

स्रग*-संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "स्रक्" (१) । उ०—अँचइ पान सब काहू पाये । स्रग चंदन-भूषित छबि छाये ।—तुलसी ।

स्रगाल-संज्ञा पुं० [सं० शृगाल] सियार । गीदड़ । (डिं०)

स्रग्जीह्व-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

स्रग्धरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में (म र भ न य य य) SSS SIS SII III ISS ISS ISS होता है और ७,७,७, पर यति होती है । उ०—मोरे भौने ययू यो कहहु सुत कहाँ तें लिये आवते हो । भा का आनंद आजी तुम फिरि फिरि के माथ जो नावते हो । बोले माता ! बिलोक्यो फिरत सह चमू बाग में स्रग्धरे ज्यों । काढ़ी माला रूमारे विपुल रिपुबली अश्वलो जीति केत्यों ।—छंदःप्रभाकर । (२) एक बौद्ध देवी का नाम ।

स्रग्वान्-वि० [सं० स्रग्वत्] माला से युक्त। मालाधारी।

स्रग्विणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार रगण होते हैं। उ०—रार री राधिका स्याम सों क्यों करै। सीख मो मान ले मान काहे धरै। चित्त में सुंदरी क्रोध न आनिये। स्रग्विणी मूर्त्ति को कृष्ण की धारिये।—छंदःप्रभाकर। (२) एक देवी का नाम।

स्रग्वी-वि० [सं० स्रग्विन्] माला से युक्त। मालाधारी।

स्रज्-संज्ञा स्त्री०, पुं० दे० "स्रक्"।

स्रज-संज्ञा पुं० [सं०] एक विश्वेदेवा का नाम।

संज्ञा स्त्री० माला। उ०—ब्यरथ सुमन स्रज परिहरी जैसें। समरथ राजरहित नृप तैसें।—पद्माकर।

स्रजना॰-क्रि० स० दे० "सृजना"। उ०—(क) बिस्व स्रजहु पालहु पुनि हरहू। त्रिकालज्ञ संतत सुख करहू।—रामाश्वमेध। (ख) धरि सत रज तम रूप स्रजति पालति संघारति।—सूदन।

स्रज्वा-संज्ञा पुं० [सं० स्रज्वन्] (१) माला बनानेवाला। माली। मालाकार। (२) रस्सा। रज्जू। (३) प्रजापति।

स्रणिका-वि० [सं० शोणित] लाल। (डिं०)

स्रद्धा॰-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रद्धा"। उ०—स्रद्धा बिना धरम नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई।—तुलसी।

स्रपाटी-संज्ञा स्त्री० [?] पक्षी की चोंच। (डिं०)

स्रम॰-संज्ञा पुं० दे० "श्रम"। उ०—(क) स्वारथ सुकृत न स्रम वृथा देखि बिहंग बिचार। बाज पराये पानि परि तू पंछी हि न मार।—बिहारी। (ख) रामचरित-सर बिन अन्हवाये। सो स्रम जाइ न कोटि उपाये।—तुलसी।

स्रमित॰-वि० दे० "श्रमित"। उ०—ब्रह्म धाम सिवपुर सब लोका। फिरे स्रमित ब्याकुल भय सोका।—तुलसी।

स्रवंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी। दरिया। (२) एक प्रकार की वनस्पति।

स्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहना। बहाव। प्रवाह। (२) झरना। निर्झर। प्रस्रवण। (३) मूत्र। प्रस्राव। पेशाब।

संज्ञा पुं० दे० "श्रवण"।

स्रवण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहना। बहाव। प्रवाह। (२) कच्चे गर्भ का गिरना। गर्भपात। गर्भस्राव। (३) मूत। मूत्र। पेशाब। (४) पसीना। प्रस्वेद। घर्मबिंदु।

स्रवत्तोया-संज्ञा स्त्री० [सं०] रुदंती। रुद्रवंती।

स्रवद्गर्भा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री या गाय जिसका गर्भ गिर गया हो।

स्रवद्रंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेला। प्रदर्शनी। नुमाइश। (२) बाजार। हाट।

स्रवन॰-संज्ञा पुं० दे० "श्रवण"। उ०—(क) रामचरित मानस एहि नामा। सुनत स्रवन पाइय बिस्रामा।—तुलसी। (ख) स्रवन नाहिं, पै सब किछु सुना। हिया नाहिं पै सब किछु गुना।—जायसी।

स्रवना॰-क्रि० अ० [सं० स्रवण] (१) बहना। चूना। टपकना। उ०—(क) कुछ काल के पीछे हम उस ढेर को टीला बना देखते हैं और वहाँ से जल स्रवने लगता है।—श्रद्धाराम। (ख) प्रेम बिवस जनु रामहिं पायौ। स्रवत भयहु पय उर जन छायौ।—पद्माकर। (ग) लज्जावश नहिं रहेउ सँभारा। स्रवत नयन मग ते जलधारा।—सबल। (२) गिरना। उ०—अति गर्व गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ तें।—तुलसी।

क्रि० स० (१) बहाना। टपकाना। उ०—(क) अमृत हू ते अमल अति गुण स्रवति निधि आनंद। सूर तीनों लोक परस्यो सुर असुर जस छंद।—सूर। (ख) गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाये।—तुलसी। (२) गिराना। उ०—चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुररवनी।—तुलसी।

स्रवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मरोड़ फली। मुरहरी। मूर्व्वा। (२) डोडी। जीवंती।

स्रष्टव्य-वि० [सं०] सृष्टि करने के योग्य। सृष्टि करने या रचने के लिए उपयुक्त। जिसकी सृष्टि की जा सके।

स्रष्टा-संज्ञा पुं० [सं० स्रष्टृ] (१) सृष्टि या विश्व की रचना करनेवाले, ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) शिव।

वि० सृष्टि करनेवाला। निर्माता। रचयिता।

स्रष्टना-संज्ञा स्त्री० दे० "स्रष्टृत्व"।

स्रष्टृत्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्रष्टा का कार्य। सृष्टि करने या रचने का काम।

स्रस्तर-संज्ञा पुं० [सं० स्रस्तर] घास पात का बिछावन। (डिं०)

स्रस्त-वि० [सं०] (१) गिरा हुआ। पतित। च्युत। (२) शिथिल। ढीला ढाला। (३) हिलता हुआ। (४) धँसा हुआ। जैसे,—स्रस्त नेत्र। (५) अलग किया हुआ।

स्रस्तर-संज्ञा पुं० [सं०] बैठने का आसन।

स्रा किशमिशी-संज्ञा स्त्री० [फा०] हलके बैंगनी रंग का एक प्रकार का छोटा अंगूर जो क्वेटा जिले में होता है और जिसको सुखाकर किशमिश बनाते हैं।

स्राप॰-संज्ञा पुं० दे० "शाप"। उ०—विप्र स्राप से दूनउँ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई।—तुलसी।

स्रापित॰-वि० दे० "शापित"। उ०—(क) नृप त्रिशंकु गुरु स्रापित ये है। कहहु जाइ किमि स्वर्ग सदेहै।—पद्माकर। (ख) तू सारे ढोर और वन के पशु से भी अधिक स्रापित होगा।—सत्यार्थ०।

स्राव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (खून, मवाद आदि का) बहना। झरना। क्षरण। (२) कच्चे गर्भ का गिरना। गर्भपात।

गर्भस्राव। (३) वह जो बह, रस या चूकर निकला हो। (४) निर्यास। रस।

स्रावक-वि० [सं०] बहाने, चुआने या टपकानेवाला। स्राव करानेवाला।

संज्ञा पुं० काली मिर्च। गोल मिर्च।

स्रावकत्व-संज्ञा पुं० [सं०] पदार्थों का वह धर्म्म जिसके कारण कोई अन्य पदार्थ उनमें से होकर निकल या रस जाता है। जैसे,—बलुए पत्थर में से पानी जो रस रस कर निकल जाता है, वह उसके स्रावकत्व गुण के कारण ही।

स्रावण-वि० दे० "स्रावक"।

स्रावणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय औषध।

संज्ञा स्त्री० दे० "श्रावणी"।

स्रावित-वि० [सं०] बहा, रसा या चुआकर निकाला हुआ। जिसका स्राव कराया गया हो।

स्रावी-वि० [सं० स्राविन्] बहानेवाला। चुआनेवाला। रसानेवाला। स्राव करानेवाला। क्षरण करानेवाला।

स्राव्य-वि० [सं०] बहाने योग्य। क्षरण के योग्य।

स्रिंग॥-संज्ञा पुं० दे० "शृंग"। उ०—सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सिंगन्ह जनु प्रविसहिं ब्याला।—तुलसी।

स्रिजन॥-संज्ञा पुं० दे० "सृजन"। उ०—विस्व स्रिजन आदिक तुम करहू। मोहि जन जानि दुसह दुख हरहू।—रामाश्वमेध।

स्रिय॥-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रिय"। उ०—सुख मकरंद भरे स्रिय मूला। निरखि राम-मन-भँवर न भूला।—तुलसी।

स्रुक्-संज्ञा स्त्री० [सं०] लकड़ी की छोटी करछी जिससे हवनादि में घी की आहुति देते हैं। स्रुवा।

स्रुग्दारु-संज्ञा पुं० [सं०] कंटाई। विकंकत वृक्ष।

स्रुघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जो हस्तिनापुर के उत्तर में था। (बृहत्संहिता)

स्रुघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी मिट्टी। सर्जिका क्षार।

स्रुच्-संज्ञा स्त्री० दे० "स्रुक्"।

स्रुत-वि० [सं०] बहा हुआ। चुआ हुआ। क्षरित।

॥ वि० दे० "श्रुत"। उ०—तदपि जथा स्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी।—तुलसी।

स्रुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगपत्री। हिंगुपत्री।

स्रुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बहाव। क्षरण।

संज्ञा स्त्री० दे० "श्रुति"। उ०—एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान स्रुति सारा।—तुलसी।

स्रुतिकीर्त्ति॥-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रुतिकीर्त्ति"। उ०—मांडवी स्रुतिकीर्त्ति उर्मिला कुअँरि लईं हँकारि कै।—तुलसी।

स्रुतिमाथ॥-संज्ञा पुं० [सं० श्रुति + मस्तक] विष्णु। उ०—छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास स्रुतिमाथा।—तुलसी।

स्रुव-संज्ञा पुं० दे० "स्रुवा"।

स्रुवतरु-संज्ञा पुं० [सं०] विकंकत वृक्ष।

स्रुवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लकड़ी की बनी हुई एक प्रकार की छोटी करछी जिसमे हवनादि में घी की आहुति देते हैं। सुरवा। उ०—चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू।—तुलसी।

विशेष—इस अर्थ में हिंदी में यह शब्द प्रायः पुलिंग बोला जाता है।

(२) सलई। शलकी वृक्ष। (३) मरोड़फली। मूर्वा।

स्रू-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लकड़ी की बनी हुई एक प्रकार की छोटी करछी जिससे हवनादि में घी की आहुति देते हैं। स्रुव। स्रुवा। सुरवा। (२) झरना। निर्झर।

स्रेनी॥-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रेणी"। उ०—देव दनुज किन्नर नर स्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी।—तुलसी।

स्रोत-संज्ञा पुं० [सं० स्रोतस्] (१) पानी का बहाव या झरना। जल-प्रवाह। धारा। (२) नदी। (३) वैद्यक के अनुसार शरीरस्थ छिद्र या मार्ग जो पुरुषों में प्रधानतः ९ और स्त्रियों में ११ माने गए हैं। इनके द्वारा प्राण, अन्न, जल, रस, रक्त, मांस, मेद, मल, मूत्र, शुक्र और आर्त्तव का शरीर में संचार होना माना जाता है। (४) वंशपरंपरा। कुलधारा।

स्रोत आपत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध शास्त्र के अनुसार निर्वाण साधना की प्रथम अवस्था जिसमें सांसारिक बंधन शिथिल होने लगते हैं।

स्रोत आपन्न-वि० [सं०] जो निर्वाण साधना की प्रथम अवस्था पर पहुँचा हो।

स्रोतईश-संज्ञा पुं० [सं०] नदियों का स्वामी, समुद्र। सागर।

स्रोतपत-संज्ञा पुं० [सं० स्रोत + पति] समुद्र। (डिं०)

स्रोतस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम। (२) चोर। चौर।

स्रोतस्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

स्रोतस्विनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

स्रोता॥-संज्ञा पुं० दे० "श्रोता"। उ०—ते स्रोता बकता समसीला। समदरसी जानहिं हरिलीला।—तुलसी।

स्रोतोऽजन-संज्ञा पुं० [सं०] आँखों में लगाने का सुरमा।

स्रोतोऽनुगत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समाधि। (बौद्ध)

स्रोतोज-संज्ञा पुं० [सं०] आँखों में लगाने का सुरमा।

स्रोतोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] सुरमा।

स्रोतोवह-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

स्रोतोवहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

स्रोन॥-संज्ञा पुं० दे० "श्रवण"। उ०—जीह कहै बतियाँई कियो करौं स्रोन कहै, उनहीं की सुनीजै।—रसकुसुमाकर।

स्रोनित॥-संज्ञा पुं० दे० "शोणित"। उ०—मारि तरवारि प्रान

पर के निकारि लेत भल डारि भेरें भूमि स्रोनित के ठोप सों ।—गोपाल ।

स्रौग्मत–संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम ।

स्रौघ्निका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी । सर्जिका क्षार ।

स्रौत–संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम ।

स्रौतिक–संज्ञा पुं० [सं०] सीप । शुक्ति ।

स्लीपर–संज्ञा पुं० [अं० स्लिपर] एक प्रकार की जूती जो एड़ी की ओर से खुली होती है । चटी ।

यौ०—फुल स्लीपर = स्लीपर के आकार का एक प्रकार का जूता जो पीछे एड़ी की ओर भी साधारण जूतों की भाँति बंद रहता है ।

संज्ञा पुं० [अं०] लकड़ी का वह चौपहल लंबा टुकड़ा या धरन जो प्रायः रेल की पटरियों के नीचे बिछी रहती है ।

स्लेज–संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की बिना पहिए की गाड़ी जो बर्फ पर घसिटती हुई चलती है ।

स्लेट–संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की चिकने पत्थर की चौकोर चौरस पतली पटरी जिस पर प्रारंभिक श्रेणियों के विद्यार्थी अक्षर और अंक लिख कर अभ्यास करते हैं । इस पर लिखा हुआ हाथ से पोंछने अथवा पानी से धोने से मिट जाता है ।

स्लेसम अंग–संज्ञा पुं० [सं० श्लेष्मा + अंग] लसूड़े का वृक्ष । (डिं०)

स्लो–वि० [अं०] (१) धीमी चाल से चलनेवाला । मंदगति । जैसे,—स्लो पैसेंजर । (२) सुस्त । काहिल ।

संज्ञा पुं० घड़ी की चाल का मंद या धीमा होना ।

स्लोथ–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का बहुत सुस्त जानवर जो दक्षिण अमेरिका के जंगलों में पाया जाता है । इसके दाँत बहुत कम होते हैं और प्रायः कटीले नहीं होते । किसी किसी के तो बिलकुल दाँत ही नहीं होते । यह पेड़ों की पत्तियाँ खाकर गुजारा करता है । जब तक पेड़ की सब पत्तियाँ नहीं खा लेता, तब तक उस पेड़ से नहीं उतरता । यह हिंसक जंतु नहीं है । पर यदि कोई इस पर आक्रमण करे तो यह अपने नाखूनों से अपनी रक्षा कर सकता है ।

स्वः–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग ।

स्वःपथ–संज्ञा पुं० [सं०] (स्वर्ग का मार्ग) मृत्यु ।

स्वःपाल–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग का रक्षक ।

स्वःपृष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] कई सामों के नाम ।

स्वःसरिता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्वःसरित्] गंगा ।

स्वःसुंदरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा ।

स्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना आप । निज । आत्म । (२) विष्णु का एक नाम । (३) भाई-बंधु । गोती । संबंधी । ज्ञाति । (४) धन । दौलत ।

वि० अपना । निज का । जैसे,—स्वदेश, स्वराज्य, स्वजाति । उ०—बृंद बृंद गोपिका चलीं स्वसाज साजिकर मंद मंद हास हैं लजावैं हंस गति को ।—कल्लू० ।

स्वकंपन–संज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

स्वकंबला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम । (मार्कंडेयपुराण)

स्वकर्मी–वि० [सं० स्वकर्मिन्] केवल अपने ही काम से मतलब रखनेवाला । स्वार्थी । खुदगरज ।

स्वकीया–संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में नायिका के दो प्रधान भेदों में से एक । अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली नायिका या स्त्री ।

विशेष—स्वकीया दो प्रकार की कही गई हैं—(१) ज्येष्ठा और (२) कनिष्ठा । अवस्थानुसार इनके तीन और भेद किए गए हैं—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा । (दे० ये शब्द)

स्वकुलक्षय–संज्ञा पुं० [सं०] मछली (जो अपने वंश का आप ही नाश करती है ।)

स्वक्ष*–वि० दे० "स्वच्छ" । उ०—अति स्वक्ष सुंदर हेम फटिक की शिला गसि कै गली ।—गुमान ।

स्वगत–संज्ञा पुं० दे० "स्वगत कथन" ।

क्रि० वि० आप ही आप (कहना या बोलना) । इस प्रकार (कहना या बोलना) जिसमें और कोई न सुन सके । अपने आप से ।

स्वगत-कथन–संज्ञा पुं० [सं०] नाटक में पात्र का आप ही आप बोलना ।

विशेष—जिस समय रंगमंच पर कई पात्र होते हैं, उस समय यदि उनमें से कोई पात्र अन्य पात्रों से छिपाकर इस प्रकार कोई बात कहता है, मानों वह किसी को सुनाना नहीं चाहता और न कोई उसकी बात सुनता ही है, तो ऐसे कथन को स्वगत, अश्राव्य या आत्मगत कहते हैं ।

स्वगुप्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कौंछ । केवाँछ । (२) लजालू । लजालू ।

स्वगृह–संज्ञा पुं० [सं०] कलिकार नामक पक्षी ।

स्वग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] बालकों को होनेवाला एक प्रकार का रोग ।

स्वच्छंद–वि० [सं०] (१) जो किसी दूसरे के नियंत्रण में न हो और अपनी ही इच्छा के अनुसार सब कार्य्य करे । स्वाधीन । स्वतंत्र । आजाद । उ०—(क) सबहि भाँति अधिकार लहि अभिमानी नृप चंद । नहिं सहिहै अपमान सब, राजा होइ स्वच्छंद ।—हरिश्चंद्र । (ख) सुख सों ऐसो मोद रमै रीतें मन माहीं । विघ्न, ईरषा, अवधि रहित स्वच्छंद सदाहीं ।—श्रीधर । (ग)......कुतुबुद्दीन ऐबक के समय तक यह स्वच्छंद राज्य था ।—बालकृष्ण । (२) अपने इच्छानुसार चलनेवाला । मनमाना काम करनेवाला । निरंकुश । (३) (जंगलों आदि में) अपने आप से होनेवाला (पौधा या वनस्पति) ।

संज्ञा पुं० स्कंद का एक नाम ।

क्रि० वि० मनमाना । बेधड़क । निर्द्वंद । स्वतंत्रतापूर्वक ।

उ०—(क) बालक रूप द्वै के दसरथ सुत करत केलि स्वच्छंद।—सूर। (ख) इस पर्वत की रम्य जटी में मैं स्वच्छंद विचरता हूँ।—श्रीधर।

स्वच्छंदचारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

स्वच्छंदचारी-वि० [सं० स्वच्छंदचारिन्] [स्त्री० स्वच्छंदचारिणी] अपने इच्छानुसार चलनेवाला। स्वेच्छाचारी। मनमौजी।

स्वच्छंदता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वच्छंद होने का भाव। स्वतंत्रता। आजादी।

स्वच्छंद नायक संज्ञा पुं० [सं०] सन्निपात ज्वर की एक औषध जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पारा, गंधक, लोहा और चाँदी बराबर बराबर लेकर हुड़हुड़, सम्हालू, तुलसी, सफेद चीता, लाल चीता, अदरक, भाँग, हर्रे, मकोय और पंचपित्त में भावना दे, मूषा में बंद कर बालुका यंत्र में पाक करते हैं। इसकी मात्रा एक माशे की कही गई है।

स्वच्छंद भैरव-संज्ञा पुं० [सं०] उग्र सन्निपात ज्वर की एक औषध, जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पारा १ तोला, गंधक १ तोला, दोनों की कज्जली कर उसमें शोधित स्वर्णमाक्षिक १ तोला मिलाते हैं; फिर क्रम से रुद्रजटा, सम्हालू, हर्रे, आँवला और विषकंठाली के रस (एक एक तोला) में घोटते हैं। इसकी मूँग के बराबर गोली बनती है।

स्वच्छ-वि० [सं०] (१) जिसमें किसी प्रकार की मैल या गंदगी आदि न हो। निर्मल। साफ। (२) उज्ज्वल। शुभ्र। (३) स्पष्ट। साफ़। (४) स्वस्थ। नीरोग। (५) शुद्ध। पवित्र। (६) निष्कपट।

संज्ञा पुं० (१) बिल्लौर। स्फटिक। (२) बेर। बदरी वृक्ष। (३) मोती। मुक्ता। (४) अभ्रक। अबरक। (५) सोनामाखी। स्वर्णमाक्षिक। (६) रूपामाखी। रौप्य माक्षिक। (७) विमल नामक उपधातु। (८) सोने और चाँदी का मिश्रण।

स्वच्छता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वच्छ होने का भाव। निर्मलता। विशुद्धता। सफाई।

स्वच्छना-क्रि० स० [सं० स्वच्छ] निर्मल करना। शुद्ध करना। पवित्र करना। साफ करना। उ०—दंडक मुनि जात भोगी सुनि दिय शाप तिन। गिरि बालू दिन सात जरेउ देश सो स्वच्छिये।—विश्राम।

स्वच्छपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] अबरक। अभ्रक।

स्वच्छमणि-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्लौर। स्फटिक।

स्वच्छवालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] विमल नामक उपधातु।

स्वच्छा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेतदूर्वा। सफेद दूब।

स्वच्छी-वि० दे० "स्वच्छ"। उ०—एक वृक्ष में सम द्वै पक्षी। फल भोगै इक दूजो स्वच्छी।—विचार-सागर।

स्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र। बेटा। (२) खून। रक्त। (३) पसीना। स्वेद।

वि० अपने से उत्पन्न।

स्वजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपने परिवार के लोग। आत्मीय जन। (२) सगे संबंधी। रिश्तेदार।

स्वजनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वजन होने का भाव। आत्मीयता। (२) नातेदारी। रिश्तेदारी।

स्वजन्मा-वि० [सं० स्वजन्मन्] जो अपने आप उत्पन्न हुआ हो। अपने आप से उत्पन्न (ईश्वर आदि)। उ०—तुम अज्ञात सर्वज्ञ हो, तुम स्वजन्मा सब के कर्त्ता हो, तुम अनीश सब के ईश हो, एक सर्वरूप हो।—लक्ष्मण।

स्वजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। पुत्री। बेटी।

स्वजात-वि० [सं०] अपने से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० पुत्र। बेटा।

स्वजाति-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी जाति। अपनी क़ौम। जैसे,—उन्होंने अपनी कन्या का विवाह स्वजाति में न करके दूसरी जाति में किया।

स्वजातिद्विष्-संज्ञा पुं० [सं०] (अपनी जाति से द्वेष करनेवाला) कुत्ता।

स्वजातीय-वि० [सं०] (१) अपनी जाति का। अपने वर्ग का। जैसे,—अपने स्वजातियों के साथ खान पान करने में कोई हानि नहीं है। (२) एक ही वर्ग या जाति का। जैसे,—ये दोनों पौधे स्वजातीय हैं।

स्वतंत्र-वि० [सं०] (१) जो किसी के अधीन न हो। स्वाधीन। मुक्त। आज़ाद। जैसे,—(क) आयरलैंड पहले अँगरेजों के अधीन था, पर अब स्वतंत्र हो गया। (ख) नेपाल राज्य ने सब गुलामों को स्वतंत्र कर दिया। (२) अपने इच्छानुसार चलनेवाला। मनमानी करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरंकुश। जैसे,—वहाँ के राज्याधिकारी परम स्वतंत्र हैं, खूब मनमानी कर रहे हैं। उ०—परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावहि मनहिं करहु तुम्ह सोई।—तुलसी। (३) अलग। जुदा। भिन्न। पृथक्। जैसे,—(क) राजनीति का विषय ही स्वतंत्र है। (ख) इस पर एक स्वतंत्र लेख होना चाहिए। (४) किसी प्रकार के बंधन या नियम आदि से रहित अथवा मुक्त। जैसे,—वे स्वतंत्र विचार के मनुष्य हैं। (५) वयस्क। स्याना। बालिग।

स्वतंत्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वतंत्र होने का भाव। स्वाधीनता। आजादी।

स्वतंत्री-वि० [सं० स्वतंत्रिन्] स्वाधीन। मुक्त। आजाद।

स्वतः-अव्य० [सं० स्वतस्] अपने आप। आप ही। जैसे,—(क) उसने मुझसे कुछ माँगा नहीं, मैंने स्वतः उसे दस रुपए दे दिए। (ख) वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए, इससे वे स्वतः नित्य

स्वरूप हैं। (ग) वेद ईश्वर-कृत होने के कारण स्वतः प्रमाण हैं। (घ) पक्षी का उड़ना स्वतः सिद्ध है।

स्वतोविरोध-संज्ञा पुं० [सं० स्वतः + विरोध] आप ही अपना विरोध या खंडन करना।

स्वतोविरोधी-संज्ञा पुं० [सं० स्वतः + विरोधी] अपना ही विरोध या खंडन करनेवाला। उ०—नास्तिकों के विषय में ऐसा नियम बनाना स्वतोविरोधी है, वह खुद ही अपना खंडन करता है।—द्विवेदी।

स्वत्व-संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु को पाने, पास रखने या व्यवहार में लाने की योग्यता जो न्याय और लोकरीति के अनुसार किसी को प्राप्त हो। किसी वस्तु को अपने अधिकार में रखने, काम में लाने या लेने का अधिकार। अधिकार। हक। जैसे,—(क) इस संपत्ति पर हमारा स्वत्व है। (ख) उन्होंने अपनी पुस्तक का स्वत्व बेच दिया। (ग) भारतवासी अपने स्वत्वों के लिये आंदोलन कर रहे हैं।

संज्ञा पुं० "स्व" का भाव। अपना होने का भाव। उ०—तृतीय यह कि जो स्वत्व, परत्व, नीच ऊँच का विचार त्याग कर समस्त जीवों पर समान द्रवीभूत हो।—श्रद्धाराम।

स्वत्वाधिकारी-संज्ञा पुं० [सं० स्वत्वाधिकारिन्] (१) वह जिसके हाथ में किसी विषय का पूरा स्वत्व हो। (२) स्वामी। मालिक।

स्वदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वाद लेना। आस्वादन। खाना। भक्षण। (२) लोहा।

स्वदेश-संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें किसी का जन्म और पालन-पोषण हुआ हो। अपना और अपने पूर्वजों का देश। मातृभूमि। वतन।

स्वदेशी-वि० [सं० स्वदेशीय] (१) अपने देश का। अपने देश-संबंधी। जैसे,—स्वदेशी भाई। स्वदेशी उद्योग धंधा। स्वदेशी रीति। (२) अपने देश में उत्पन्न या बना हुआ। जैसे,—स्वदेशी वस्त्र। स्वदेशी औषध।

स्वधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] अपना धर्म। अपना कर्त्तव्य। कर्म।

स्वधा-अव्य० [सं०] एक शब्द या मंत्र जिसका उच्चारण देवताओं या पितरों को हवि देने के समय किया जाता है।

विशेष—मनु के अनुसार श्राद्ध के उपरांत स्वधा का उच्चारण श्राद्धकर्त्ता के लिये बड़ा आशीर्वाद।

संज्ञा स्त्री० (१) पितरों को दिया जानेवाला अन्न या भोजन। पितृ अन्न। उ०—मेरे पीछे पिंड का लोप देख मेरे पुरखे स्वधा इकट्ठी करने में लगे हुए, श्राद्ध में इच्छापूर्वक भोजन नहीं करते।—लक्ष्मण। (२) दक्ष की एक कन्या जो पितरों की पत्नी कही गई है।

स्वधाकर, स्वधाकार-वि० [सं०] श्राद्ध करनेवाला। श्राद्धकर्त्ता।

स्वधाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

स्वधाप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) काला तिल।

स्वधाभुक्-संज्ञा पुं० [सं० स्वधाभुज्] (१) पितर। (२) देवता।

स्वधाभोजी-संज्ञा पुं० [सं० स्वधाभोजिन्] पितर। पितृगण।

स्वधाशन-संज्ञा पुं० [सं०] पितर। पितृगण।

स्वधिति-संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] (१) कुल्हाड़ी। कुठार। (२) वज्र।

स्वधिष्ठान-वि० [सं०] अच्छी स्थिति या स्थान से युक्त।

स्वधीत-वि० [सं०] अच्छी तरह पढ़ा हुआ। सम्यक् रूप से अध्ययन किया हुआ।

स्वनंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

स्वन-संज्ञा पुं० [सं०] शब्द। ध्वनि। आवाज। उ०—सुरगन मिलि जय जय स्वन कीन्हा। असुरहि कृष्ण परम पद दीन्हा।—गोपाल।

स्वनचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का संभोग आसन या रतिबंध।

स्वनामा-वि० [सं० स्वनामन्] जो अपने नाम के कारण प्रसिद्ध हो। अपने नाम से विख्यात होनेवाला।

स्वनामधन्य-वि० [सं०] अपने नाम के कारण धन्य होनेवाला। जो अपने नाम के कारण धन्य हो। जैसे,—स्वनामधन्य पं० बाल गंगाधर तिलक।

स्वनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्द। आवाज। (२) अग्नि। आग।

स्वनित-वि० [सं०] ध्वनित। शब्दित।

संज्ञा पुं० (१) शब्द। ध्वनि। आवाज। (२) मेघ गर्जन। बादलों की गड़गड़ाहट। (३) गर्जन। गरज।

स्वनिताह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का शाक। तंडुलीय शाक।

स्वनोत्साह-संज्ञा पुं० [सं०] गैंडा। गंडक।

स्वपच&-संज्ञा पुं० दे० "श्वपच"। उ०—स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात। राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात।—तुलसी।

स्वपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नींद। निद्रा। (२) सपना। स्वप्न। ख्वाब।

स्वपना&†-संज्ञा पुं० दे० "सपना" या "स्वप्न"। उ०—स्वपना में नाहि राज मिलो है हाकिम हुकुम दोहाई। जागि परे कहूँ लाव न लसकर पलक खुले सुधि पाई।—कबीर।

स्वपनीय-वि० [सं०] निद्रा के योग्य। सोने लायक।

स्वपिंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर। पिंड खजूरी।

स्वप्तव्य-वि० [सं०] निद्रा के योग्य।

स्वप्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोने की क्रिया या अवस्था। निद्रा। नींद। (२) निद्रावस्था में कुछ मूर्त्तियों, चित्रों और विचारों आदि की संबद्ध या असंबद्ध शृंखला का मन में आना। निद्रावस्था में कुछ घटना आदि दिखाई देना। जैसे,—इधर

कई दिनों से मैं भीषण स्वप्न देखा करता हूँ। (३) वह घटना आदि जो इस प्रकार निद्रित अवस्था में दिखाई दे अथवा मन में आवे। जैसे,—उन्होंने अपना सारा स्वप्न कह सुनाया।

विशेष—प्रायः पूरी नींद न आने की दशा में मन में अनेक प्रकार के विचार उठा करते हैं जिनके कारण कुछ घटनाएँ मन के सामने उपस्थित हो जाती हैं। इसी को स्वप्न कहते हैं। यद्यपि वास्तव में उस समय नेत्र बंद रहते हैं और इन बातों का अनुभव केवल मन को होता है, तथापि बोल चाल में इसके साथ "देखना" क्रिया का प्रयोग होता है।

(४) मन में उठनेवाली ऊँची कल्पना या विचार, विशेषतः ऐसी कल्पना या विचार जो सहज में कार्य्य रूप में परिणत न हो सके। जैसे,—आप तो बहुत दिनों से इसी प्रकार के स्वप्न देखा करते हैं।

स्वप्नक्-वि० [सं० स्वप्नज] सोनेवाला। निद्राशील।

स्वप्नकृत-संज्ञा पुं० [सं०] शिरियारी। सुनिषण्णक शाक।

विशेष—कहते हैं, इस शाक के खाने से नींद आती है; इसी से इसका नाम स्वप्नकृत (नींद लानेवाला) पड़ा।

स्वप्नगृह-संज्ञा पुं० [सं०] सोने का कमरा। शयनागार। शयनगृह।

स्वप्नदर्शी-वि० [सं० स्वप्नदर्शिन्] (१) स्वप्न देखनेवाला। (२) बड़ी बड़ी कल्पनाएँ करनेवाला। मनमोदक खानेवाला।

स्वप्नदोष-संज्ञा पुं० [सं०] निद्रावस्था में वीर्य्यपात होना जो एक प्रकार का रोग माना जाता है।

विशेष—स्वप्नावस्था में स्त्री-प्रसंग या कोई कामोद्दीपक दृश्य देखकर दुर्बलेंद्रिय लोगों का प्रायः वीर्य्यपात हो जाता है। यह एक भयंकर रोग है जो अधिक स्त्री-प्रसंग या अस्वाभाविक कर्म से धातुक्षीणता होने के कारण होता है। कभी कभी बहुत गरम चीज खाने और कोष्ठबद्धता से भी स्वप्नदोष हो जाता है।

स्वप्ननंशन-संज्ञा पुं० [सं०] (निद्रा का नाश करनेवाले) सूर्य्य।

स्वप्ननिकेतन-संज्ञा पुं० [सं०] सोने का कमरा। शयनगृह। शयनागार।

स्वप्नस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] सोने का कमरा। शयनगृह। शयनागार।

स्वप्नाना*-क्रि० स० [सं० स्वप्न + आना (प्रत्य०)] स्वप्न देना। स्वप्न दिखाना। उ०—हारि गयो हीरा नहिं पायो। तब अंगद को हरि स्वप्नायो।—रघुराज।

स्वप्नालु-वि० [सं०] सोनेवाला। निद्राशील। निद्रालु।

स्वप्रकाश-वि० [सं०] जो आप ही प्रकाशमान् हो। जो अपने ही तेज से प्रकाशमान् हो।

स्वप्रकृतिक-वि० [सं०] जो बिना किसी कारण के स्वयं अपनी प्रकृति से ही हो। प्राकृतिक रूप से होनेवाला।

स्वप्रमितिक-वि० [सं०] जो बिना किसी की सहायता के अपना सारा काम स्वयं करता हो। जैसे,—सूर्य जो आप ही प्रकाश देता है।

स्वबरन*-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्ण"।

स्वबीज-संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा।

स्वभद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी। गँभारी वृक्ष।

स्वभाउ*-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव"। उ०—शूर को स्वभाउ बिना युद्ध न करे बखान कायर ज्यों कहा घर बैठे सोच हरिये।—हनुमन्नाटक।

स्वभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सदा बना रहनेवाला मूल या प्रधान गुण। तासीर। जैसे,—जल का स्वभाव शीतल होता है। (२) मन की प्रवृत्ति। मिजाज। प्रकृति। जैसे,—(क) उसका स्वभाव बड़ा कठोर है। (ख) कवि स्वभाव से ही सौंदर्य-प्रिय होते हैं। (ग) आजकल उनका स्वभाव कुछ बदल गया है। (३) आदत। बान। जैसे,—उसे लड़ने का स्वभाव पड़ गया है।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

स्वभावकृपण-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा का एक नाम।

स्वभावज-वि० [सं०] जो स्वभाव या प्रकृति से उत्पन्न हुआ हो। प्राकृतिक। स्वाभाविक। सहज।

स्वभावतः-अव्य० [सं० स्वभावतस्] स्वभाव से। प्राकृतिक रूप से। सहज ही। जैसे,—कोई अन्याय होता हुआ देखकर मनुष्य को स्वभावतः क्रोध आ जाता है।

स्वभावसिद्ध-वि० [सं०] स्वभाव से ही होनेवाला। सहज। प्राकृतिक। स्वाभाविक। उ०—भ्रमपूर्ण बातों का संशोधन करने की योग्यता मनुष्य में स्वभावसिद्ध है।—द्विवेदी।

स्वभाविक-वि० दे० "स्वाभाविक"।

स्वभावोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें किसी का जाति या अवस्था आदि के अनुसार यथावत् और प्राकृतिक स्वरूप का वर्णन किया जाय। इसके दो भेद कहे गए हैं—सहज और प्रतिज्ञाबद्ध। जहाँ किसी विषय का बिलकुल सहज और स्वाभाविक वर्णन होता है, वहाँ सहज स्वभावोक्ति अलंकार होता है; और जहाँ अपने सहज स्वभाव के अनुसार प्रतिज्ञा या शपथ आदि के साथ कोई बात कही जाती है, वहाँ प्रतिज्ञाबद्ध स्वाभावोक्ति होती है। उ०—(क) सीस मकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल। यहि बानिक मों उर बसौ सदा बिहारीलाल। (सहज) (ख) तोरौं छत्रक दंड जिमि तुव प्रताप बलनाथ। जौ न करौं प्रभु-पद सपथ पुनि न धरौं धनु हाथ। (प्रतिज्ञाबद्ध)

स्वभू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा का एक नाम। (२) विष्णु का एक नाम। (३) शिव का एक नाम।

वि० जो अपने आप से उत्पन्न हुआ हो। आप से आप होनेवाला।

स्वभूमि-संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम। (विष्णुपुराण)

स्वमेक-संज्ञा पुं० [सं०] संवत्सर। वर्ष।

स्वयं-अव्य० [सं० स्वयम्] (१) खुद। आप। उ०—(क) मैं स्वयं तुम्हारे साथ चलकर देखूँगा कि इस पहली परीक्षा में कैसे उतरते हो। अयोध्या०। (ख) आप स्वयं अपनी कृपा से सब जीवों में प्रकाशित हूजिए।—दयानंद। (२) आप से आप। अपने ही से। खुद बखुद। जैसे,—आप के सब काम तो स्वयं ही हो जाते हैं।

स्वयंगुप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौंछ। केवाँच।

स्वयंज्योति संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर। परमात्मा।

स्वयंदत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो अपने माता-पिता के मर जाने अथवा उनके द्वारा परित्यक्त होने पर अपने आप को किसी के हाथ सौंप दे और उसका पुत्र बन जाय।

स्वयंदूत-संज्ञा पुं० [सं०] वह नायक जो अपना दूतत्व आप ही करे। नायिका पर अपनी कामवासना स्वयं ही प्रकट करनेवाला नायक। उ०—जपत हूँ ता दिन सों रघुनाथ की दोहाई जो दिन सों सुन्यो है मैं प्यारी तेरे नाम को। साई भयो सिद्धि आजु औचक मिली हौ मोहि ऐसी दुपहरी में चली हौ काहू काम को। यह वर माँगत हौं मेरे पर कृपा करि मेरी कही कीजै सुख दीजै तन छाम को। यह सुख ठाम को अराम को निहारो नेक मेरे कहे बरिक निवारि लीजै घाम को।—रघुनाथ।

स्वयंदूती-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जो अपना दूतत्व आप ही करती हो। नायक पर स्वयं ही वासना प्रकट करनेवाली नायिका। उ०—ऐसे बने रघुनाथ कहै हरि कामकलानिधि के मद गारे। झाँकि झरोखे सों आवत देखि खरी भई आइकै आपने द्वारे। रीझि सरूप सों भीजी सनेह सों बोली हरें रस आखर भारे। ठाढ़ हो तोसों कहौंगी कछू अरे ग्वाल बड़ी बड़ी आँखिनवारे।—सुंदरी सर्वस्व।

स्वयंपतित-वि० [सं०] जो आप से आप गिरे। जैसे,—वृक्ष से पक कर (आप से आप) गिरा हुआ फल।

स्वयंप्रकाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो आप ही आप बिना किसी दूसरे की सहायता के प्रकाशित हो। उ०—(क) जो आप स्वयंप्रकाश और सूर्य्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करनेवाला है, इससे उस ईश्वर का नाम "तैजस" है।—सत्यार्थ०। (ख)........सो उस परम शक्तिमान् सर्वज्ञ स्वयंप्रकाश परमात्मा के समीप जाते ही प्रश्न शक्ति से रहित काष्ठवत् मौन होके खड़ा रहा।—केनोपनिषद्। (२) परमात्मा। परमेश्वर।

स्वयंप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैनियों के अनुसार भावी २४ अर्हतों में से चौथे अर्हत् का नाम। (२) दे० "स्वयं-प्रकाश"।

स्वयंप्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की एक अप्सरा का नाम जिसे मय दानव हर लाया था और जिसके गर्भ से उसने मंदोदरी नामक कन्या उत्पन्न की थी। जब हनुमान आदि बानर सीता को ढूँढने निकले थे, तब मार्ग में एक गुफा में इससे उनकी भेंट हुई थी।

स्वयंप्रमाण-वि० [सं०] जो आप ही प्रमाण हो और जिसके लिये किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता न हो। जैसे,—वेद आदि स्वयंप्रमाण हैं।

स्वयंफल-वि० [सं०] जो आप ही अपना फल हो और किसी दूसरे कारण से न उत्पन्न हुआ हो।

स्वयंभु-संज्ञा पुं० [सं० स्वयम्भु] (१) ब्रह्मा। (२) वेद। (३) महादेव। शिव। (४) अज। (५) जैनियों के नौ वासुदेवों में से एक। (६) बनमूँग।

वि० जो आप से आप उत्पन्न हो। अपने आप पैदा होनेवाला।

स्वयंभुवा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वयम्भुवा] (१) तमाकू का पत्ता। (२) शिवलिंगी नाम की लता। माषपर्णी। मखवन।

स्वयंभू-संज्ञा पुं० [सं० स्वयम्भू] (१) ब्रह्मा। (२) काल। (३) कामदेव। (४) विष्णु। (५) शिव। (६) माषपर्णी। मखवन। (७) शिवलिंगी नाम की लता। (८) दे० "स्वायंभुव"। उ०—बहुरि स्वयंभू मनु तप कीनो। ताहू को हरिजू वर दीनो।—सूर।

वि० जो आप से आप उत्पन्न हुआ हो।

स्वयंभूत-वि० [सं० स्वयम्भूत] जो आप से आप उत्पन्न हुआ हो। अपने आप पैदा होनेवाला।

स्वयंभोज-संज्ञा पुं० [सं०] राजा शिनि के एक पुत्र का नाम। (भागवत)

स्वयंवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन भारत का एक प्रसिद्ध विधान जिसमें विवाह योग्य कन्या कुछ उपस्थित व्यक्तियों में से अपने लिये स्वयं वर चुनती थी। उ०—(क) सीय स्वयंवर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई।—तुलसी। (ख) जनक विदेह कियो जु स्वयंवर बहु नृप विप्र बोलाये। तोरन धनुष देव त्र्यंबक को काहू यतन न पाये।—सूर। (ग) मारि ताड़का यज्ञ करायो विश्वामित्र आनंद भयो। सीय स्वयंवर जानि सूर प्रभु को ऋषि लै ता ठौर गयो।—सूर।

विशेष—प्राचीन काल में भारतीय आर्यों विशेषतः क्षत्रियों या राजाओं में यह प्रथा थी कि जब कन्या विवाह के

योग्य हो जाती थी, तब उसकी सूचना उपयुक्त व्यक्तियों के पास भेज दी जाती थी, जो एक निश्चित समय और स्थान पर आकर एकत्र होते थे। उस समय वह कन्या उन उपस्थित व्यक्तियों में से जिसे अपने लिये उपयुक्त समझती थी, उसके गले में वरमाल या जयमाल डाल देती थी; और तब उसी के साथ उसका विवाह होता था। कभी कभी कन्या के पिता की ओर से, बल-परीक्षा के लिये, कोई शर्त भी लगा दी जाती थी; और वह शर्त पूरी करनेवाला ही कन्या के लिये उपयुक्त पात्र समझा जाता था। सीता जी और द्रौपदी का विवाह इसी प्रथा के अनुसार हुआ था। (२) वह स्थान जहाँ इस प्रकार लोगों को एकत्र करके कन्या के लिये वर चुना जाय।

स्वयंवरण-संज्ञा पुं० [सं०] कन्या का अपने इच्छानुसार अपने लिये पति मनोनीत करना। स्वयंवर। वि० दे० "स्वयंवर"। (१)

स्वयंवरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो अपने लिये स्वयं ही उपयुक्त वर को वरण करे। अपने इच्छानुसार अपना पति नियत करनेवाली स्त्री। पतिंवरा। वर्य्या। उ०—ये हम लोगों के देश की प्राचीन स्वयंवरा थीं।—हिंदीप्रदीप।

स्वयंवह-संज्ञा पुं० [सं०] वह बाजा जो चाबी देने से आप से आप बजे। जैसे,—अरगन आदि।

वि० स्वयं अपने आपको धारण करनेवाला। जो आप ही अपने आप को वहन करे।

स्वयंविक्रीत-वि० [सं०] (दास आदि) जिसने स्वयं ही अपने आप को बेचा हो।

स्वयंश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

स्वयंसिद्ध-वि० [सं०] (१) (बात) जो आप ही आप सिद्ध हो। जिसकी सिद्धि के लिये और किसी तर्क, प्रमाण या उपकरण आदि की आवश्यकता न हो। जैसे,—आग से हाथ जलता है, यह तो स्वयंसिद्ध बात है। (२) जिसने आप ही सिद्धि प्राप्त की हो। जो बिना किसी की सहायता के सिद्ध या सफल हुआ हो।

स्वयंसेवक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० स्वयंसेविका] वह जो बिना किसी पुरस्कार या वेतन के किसी कार्य में अपनी इच्छा से योग दे। स्वेच्छासेवक।

स्वयंहारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दुःसह की पत्नी निर्माष्टि के गर्भ से उत्पन्न आठ कन्याओं में से एक। कहते हैं कि यह भोजनशाला में से अधपका अन्न, गौ के स्तन में से दूध, तिलों में से तेल, कपास में से सूत आदि हरण कर ले जाती है, इसी से इसका यह नाम पड़ा।

स्वयमर्जित-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन-संपत्ति जो स्वयं उपार्जित की गई हो और जिसमें अपने किसी संबंधी या दायाद आदि को कोई हिस्सा न देना पड़े। खास अपनी कमाई हुई दौलत। (स्मृति)

स्वयमीश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर। परमात्मा।

स्वयमुक्ति-संज्ञा पुं० [सं०] पाँच प्रकार के साक्षियों में से एक प्रकार का साक्षी। वह साक्षी जो बिना वादी या प्रतिवादी के बुलाए स्वयं ही आकर किसी घटना या व्यवहार आदि के संबंध में कुछ कहे। (व्यवहार)

स्वयमेव-क्रि० वि० [सं०] आप ही आप। खुद ही। स्वयं ही।

स्वयोनि-वि० [सं०] जो अपना कारण अथवा अपनी उत्पत्ति का स्थान आप ही हो।

स्वर्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) परलोक। (३) आकाश।

स्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राणी के कंठ से अथवा किसी पदार्थ पर आघात पड़ने के कारण उत्पन्न होनेवाला शब्द, जिसमें कुछ कोमलता, तीव्रता, मृदुता, कटुता, उदात्तता, अनुदात्तता आदि गुण हों। जैसे,—(क) मैंने आप के स्वर से ही आप को पहचान लिया था। (ख) दूर से कोयल का स्वर सुनाई पड़ा। (ग) इस छड़ को ठोंकने पर कैसा अच्छा स्वर निकलता है। उ०—लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै।—तुलसी। (२) संगीत में वह शब्द जिसका कोई निश्चित रूप हो और जिसकी कोमलता या तीव्रता अथवा उतार चढ़ाव आदि का, सुनते ही, सहज में अनुमान हो सके। सुर। उ०—चारों भ्रातन श्रमित जानि कै जननी तब पौढ़ाये। चापत चरण जननि अप अपनी कछुक मधुर स्वर गाये।—सूर।

विशेष—यों तो स्वरों की कोई संख्या बतलाई ही नहीं जा सकती, परंतु फिर भी सुभीते के लिये सभी देशों और सभी कालों में सात स्वर नियत किए गए हैं। हमारे यहाँ इन सातों स्वरों के नाम क्रम से षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद रखे गए हैं जिनके संक्षिप्त रूप सा, रे, ग, म, प, ध, और नि हैं। वैज्ञानिकों ने परीक्षा करके सिद्ध किया है कि किसी पदार्थ में २५६ बार कंप होने पर षड्ज, २९८$\frac{2}{3}$ बार होने पर ऋषभ, ३२० बार होने पर गांधार स्वर उत्पन्न होता है; और इसी प्रकार बढ़ते बढ़ते ४८० बार कंप होने पर निषाद स्वर निकलता है। तात्पर्य्य यह कि कंपन जितना ही अधिक और जल्दी जल्दी होता है, स्वर भी उतना ही ऊँचा चढ़ता जाता है। इस क्रम के अनुसार षड्ज से निषाद तक सातों स्वरों के समूह को सप्तक कहते हैं। एक सप्तक के उपरांत दूसरा सप्तक चलता है, जिसके स्वरों की कंपन-संख्या इस संख्या से दूनी होती है। इसी प्रकार तीसरा और चौथा सप्तक भी होता है। यदि प्रत्येक स्वर की कंपन-संख्या नियत से आधी हो, तो स्वर बराबर नीचे होते जायँगे और उन स्वरों

का समूह नीचे का सप्तक कहलावेगा। हमारे यहाँ यह भी माना गया है कि ये सातों स्वर क्रमशः मोर, गौ, बकरी, क्रौंच, कोयल, घोड़े और हाथी के स्वर से लिए गए हैं, अर्थात् ये सब प्राणी क्रमशः इन्हीं स्वरों में बोलते हैं; और इन्हीं के अनुकरण पर स्वरों की यह संख्या नियत की गई है। भिन्न भिन्न स्वरों के उच्चारण स्थान भी भिन्न भिन्न कहे गए हैं। जैसे,—नासा, कंठ, उर, तालु, जीभ और दाँत इन छः स्थानों में उत्पन्न होने के कारण पहला स्वर षड्ज कहलाता है। जिस स्वर की गति नाभि से सिर तक पहुँचे, वह ऋषभ कहलाता है, आदि। ये सब स्वर गले से तो निकलते ही हैं, पर बाजों से भी उसी प्रकार निकलते हैं। इन सातों स्वरों में से सा और प तो शुद्ध स्वर कहलाते हैं, क्योंकि इनका कोई भेद नहीं होता; पर शेष पाँचों स्वर कोमल और तीव्र दो प्रकार के होते हैं। प्रत्येक स्वर दो दो तीन तीन भागों में बँटा रहता है, जिनमें से प्रत्येक भाग "श्रुति" कहलाता है।

मुहा०—**स्वर उतारना**=स्वर नीचा या धीमा करना। **स्वर चढ़ाना**=स्वर ऊँचा या तेज करना। **स्वर निकालना**=स्वर उत्पन्न करना। **स्वर भरना**=अभ्यास के लिये किसी एक ही स्वर का कुछ समय तक उच्चारण करना। **स्वर मिलाना**=किसी सुनाई पड़ते हुए स्वर के अनुसार स्वर उत्पन्न करना।

(३) व्याकरण में वह वर्णात्मक शब्द जिसका उच्चारण आप से आप स्वतंत्रतापूर्वक होता है और जो किसी व्यंजन के उच्चारण में सहायक होता है। हिंदी वर्णमाला में ११ स्वर हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ और औ। (४) वेदपाठ में होनेवाले शब्दों का उतार चढ़ाव। (५) नासिका में से निकलनेवाली वायु या श्वास।

संज्ञा पुं० [सं० स्वर्] आकाश। उ०—परब्रह्म अरु जीव जो महानाद स्वरचारि। पंचम विदु षष्ठरु अवर माया दिव्य निहारि।—विश्राम।

स्वरकर-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसके सेवन से गले का स्वर तीव्र और सुंदर होता है।

स्वरक्षय-संज्ञा पुं० दे० "स्वरभंग"।

स्वरक्षु-संज्ञा स्त्री० [सं०] वक्षु महानदी का एक नाम।

विशेष—मार्कंडेयपुराण में लिखा है कि जब भगीरथ गंगा को स्वर्ग से इस लोक में लाए, तब उसकी चार धाराएँ हो गईं। उन्हीं में से एक धारा मेरु पर्वत के पश्चिमी भाग में चली गई जो स्वरक्षु या वक्षु कहलाती है।

स्वरगॐ-संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग"। उ०—धरती लेत स्वरग लहि बाढ़ा। सकल समुँद जानो भा ठाढ़ा।—जायसी।

स्वरघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार वायु के प्रकोप से होनेवाला गले का एक रोग जिसमें गला सूखता है, आवाज बैठ जाती है, खाए हुए पदार्थ जल्दी गले के नीचे नहीं उतरते और श्वासवाहिनी नाड़ी दूषित हो जाती है।

स्वरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर का भाव या धर्म। स्वरत्व।

स्वरनादी-संज्ञा पुं० [सं० स्वरनादिन्] वह बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता हो। (संगीत)

स्वरनाभि-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता था।

स्वरपत्तन-संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद।

स्वरप्रधान-संज्ञा पुं० [सं०] राग का एक प्रकार। वह राग जिसमें स्वर का ही आग्रह या प्रधानता हो, ताल की प्रधानता न हो।

स्वरभंग-संज्ञा पुं० [सं०] आवाज का बैठना जो वैद्यक के अनुसार एक रोग माना गया है। कहा गया है कि बहुत जोर जोर से बोलने या पढ़ने, विषपान करने, गले पर भारी आघात लगने या शीत आदि के कारण वायु कुपित होकर स्वर-नाली में प्रविष्ट हो जाती है, जिससे ठीक ठीक स्वर नहीं निकलता। इसी को स्वरभंग कहते हैं।

स्वरभंगी-संज्ञा पुं० [सं० स्वरभंगिन्] (१) वह जिसे स्वरभंग रोग हुआ हो। वह जिसका गला बैठ गया हो और मुँह से साफ आवाज न निकलती हो। (२) एक प्रकार का पक्षी।

स्वरभानु-संज्ञा पुं० [सं०] सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के दस पुत्रों में से एक पुत्र का नाम।

स्वरभाव-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में भाव के चार भेदों में से एक। बिना अंग संचालन किए केवल स्वर से ही दुःख सुख आदि का भाव प्रकट करना।

स्वरभेद-संज्ञा पुं० [सं०] गला या आवाज बैठ जाना। स्वरभंग।

स्वरमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते हैं।

स्वरमंडलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की वीणा।

स्वरलासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशी या मुरली नाम का बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है।

स्वरवाही-संज्ञा पुं० [सं० स्वरवाहिन्] वह बाजा जिसमें से केवल स्वर निकलता हो और जो ताल आदि का सूचक न हो।

स्वरवेधी-संज्ञा पुं० दे० "शब्दवेधी"। उ०—स्वरवेधी सब शस्त्र विज्ञाना वेधक लक्ष विहीना। परमुख पेखि न पदहु प्रहारत कर लाघव लवलीना।—रामस्वयंवर।

स्वरशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें स्वर संबंधी सब बातों का विवेचन हो। स्वर-विज्ञान।

स्वरसंक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में स्वरों का आरोह और अवरोह। स्वरों का उतार और चढ़ाव।

स्वरस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार पत्ती आदि को भिगोकर और अच्छी तरह कूट, पीस और छानकर निकाला हुआ रस ।

स्वरसमुद्र संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे ।

स्वरसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपित्थ पत्रक नाम की ओषधि । (२) लाख । लाह ।

स्वरसाद-संज्ञा पुं० [सं०] गला बैठ जाना । स्वरभंग ।

स्वरसादि-संज्ञा पुं० [सं०] ओषधियों को पानी में औटाकर तैयार किया हुआ काढ़ा । कषाय ।

स्वरसाम-संज्ञा पुं० [सं० स्वरसामन्] एक साम का नाम ।

स्वरांत-वि० [सं०] (शब्द) जिसके अंत में कोई स्वर हो । जैसे,—माला, टोपी ।

स्वरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मा की बड़ी पत्नी का नाम जो गायत्री की सपत्नी कही गई है ।

स्वराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह राज्य जिसमें कोई राष्ट्र या किसी देश के निवासी स्वयं ही अपना शासन और अपने देश का सब प्रबंध करते हों । अपना राज्य ।

स्वराट्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा । (२) ईश्वर । (३) एक प्रकार का वैदिक छंद । (४) वह वैदिक छंद जिसके सब पादों में मिलकर नियमित वर्णों में दो वर्ण कम हों । (५) वह राजा जो किसी ऐसे राज्य का स्वामी हो, जिसमें स्वराज्य शासन प्रणाली प्रचलित हो । उ०—जो पिता के सदृश सब प्रकार से हमारा पालन करनेवाला स्वराट् .... ।—दयानंद ।

वि० जो स्वयं प्रकाशमान हो और दूसरों को प्रकाशित करता हो । उ०—जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी (स्वराट्) स्वयं प्रकाश रूप और (कालाग्नि) प्रलय में सब का काल और काल का भी काल है, इसलिये परमेश्वर का नाम कालाग्नि है ।—सत्यार्थप्र० ।

स्वरापगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश गंगा । मंदाकिनी ।

स्वरामक-संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट का वृक्ष ।

स्वरालु-संज्ञा पुं० [सं०] बचा या वच नाम की ओषधि ।

स्वराष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का संकर राग जो बंगाली, भैरव, गांधार, पंचम और गुर्जरी के मेल से बनता है ।

स्वराष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना राष्ट्र या राज्य । (२) प्राचीन सुराष्ट्र नामक देश का एक नाम । (३) तामस मनु के पिता का नाम जो पुराणानुसार एक सार्वभौम और प्रसिद्ध राजा थे और जिन्होंने बहुत से यज्ञादि किए थे ।

स्वरित-संज्ञा पुं० [सं०] उच्चारण के अनुसार स्वर के तीन भेदों में से एक । वह स्वर जिसमें उदात्त और अनुदात्त दोनों गुण हों । वह स्वर जिसका उच्चारण न बहुत जोर से हो और न बहुत धीरे से । मध्यम रूप से उच्चरित स्वर ।

वि० (१) जिसमें स्वर हो । स्वर से युक्त । (२) गूँजता हुआ ।

स्वरितत्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्वरित का भाव या धर्म्म ।

स्वरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्र । (२) यज्ञ । (३) बाण । तीर । (४) सूर्य्य की किरण । (५) एक प्रकार का बिच्छू ।

स्वरुचि-वि० [सं०] जो सब काम अपनी रुचि के अनुसार करे । स्वतंत्र । स्वाधीन । आज़ाद ।

स्वरूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकार । आकृति । शक्ल । उ०—अपने अंश आप हरि प्रकटे पुरुषोत्तम निज रूप । नारायण भुव भार हरो है अति आनंद स्वरूप ।—सूर । (२) मूर्त्ति या चित्र आदि । उ०—हिय में स्वरूप सेवा करि अनुराग भरे ढरे और जीवनि की जीवन को दीजिए ।—नाभा । (३) देवताओं आदि का धारण किया हुआ रूप । (४) वह जो किसी देवता का रूप धारण किए हो । (५) पंडित । विद्वान् । (६) स्वभाव । (७) आत्मा ।

वि० (१) सुंदर । खूबसूरत । (२) तुल्य । समान । उ०—इतनि रूप भइ कन्या जेहि स्वरूप नहिं कोय । धन सुदेस रुपवंता जहाँ जनम अस होय ।—जायसी ।

अव्य० रूप में । तौर पर । जैसे,—उन्होंने प्रमाण-स्वरूप महाभारत का एक श्लोक कह सुनाया ।

विशेष—इस अर्थ में यह यौगिक शब्दों के अंत में ही आता है । जैसे,—आधार-स्वरूप ।

संज्ञा पुं० दे० "सारूप्य" । उ०—हम सालोक्य स्वरूप सरोज्यो रहत समीप सहाई । सो तजि कहत और की औरै तुम अलि बड़े अदाई ।—सूर ।

स्वरूपज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो परमात्मा और आत्मा का स्वरूप पहचानता हो । तत्वज्ञ । उ०—...क्योंकि वह अपने स्वरूपज्ञों पर किस नाते दत्तचित्त होगा ?—हरिश्चंद्र ।

स्वरूपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वरूप का भाव या धर्म्म ।

स्वरूपदया-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार दया वह या जीवरक्षा जो इहलोक और परलोक में सुख पाने के लिये लोगों की देखादेखी की जाय । यद्यपि यह ऊपर से देखने में दया ही जान पड़ती है, परंतु वास्तव में मन के भाव से नहीं बल्कि स्वार्थ के विचार से होती है ।

स्वरूप प्रतिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीव का अपनी स्वाभाविक शक्तियों और गुणों से युक्त होना ।

स्वरूपमान-संज्ञा पुं० [सं० स्वरूपवत्] स्वरूपवान् । सुंदर । खूबसूरत । उ०—और स्वरूपमान लोगों के सहस्रों लघु लघु समूह उडुगणों की भाँति यत्र तत्र छिटके हुए थे ।—अयोध्या० ।

स्वरूपवान्-वि० [सं० स्वरूपवत्] [स्त्री० स्वरूपवती] जिसका स्वरूप

अच्छा हो। सुंदर। खूबसूरत। उ०—अर्थात् उस परम अद्भुत विशेष स्वरूपवान् परमात्मा के...।—केनोपनिषद्।

स्वरूप-संबंध-संज्ञा पुं० [सं०] वह संबंध जो किसी के परस्पर ठीक अनुरूप होने के कारण स्थापित होता है।

स्वरूपाभास-संज्ञा पुं० [सं०] कोई वास्तविक स्वरूप न होने पर भी उसका आभास दिखाई देना। जैसे,—गंधर्वनगर, जिसका वास्तव में कोई स्वरूप नहीं होता, पर फिर भी स्वरूपाभास होता है।

स्वरूपी-वि० [सं० स्वरूपिन्] (१) स्वरूपवाला। स्वरूपयुक्त। उ०—नमो नमो गुरुदेव जू, साधु स्वरूपी देव। आदि अंत गुण काल के, जाननहारे भेव।—कबीर। (२) जो किसी के स्वरूप के अनुसार हो, अथवा जिसने किसी का स्वरूप धारण किया हो। उ०—ज्योति स्वरूपी हाकिमा जिन अमल पसारा हो।—कबीर।

ॐ संज्ञा पुं० दे० "सारूप्य"।

स्वरूपोपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

स्वरेणु-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य की पत्नी संज्ञा का एक नाम।

स्वरोचिस्-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार स्वारोचिष् मनु के पिता का नाम जो कलि नामक गंधर्व के पुत्र थे और वरूथिनी नाम की अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

स्वरोद-संज्ञा पुं० [सं० स्वरोदय] एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिए तार लगे होते हैं।

स्वरोदय-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसके द्वारा इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना आदि नाड़ियों के श्वासों के द्वारा सब प्रकार के शुभ और अशुभ फल जाने जाते हैं। दाहिने और बाएँ नथने से निकलते हुए श्वासों को देखकर शुभ और अशुभ फल कहने की विद्या।

स्वर्गंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नदी, मंदाकिनी।

स्वर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिन्दुओं के सात लोकों में से तीसरा लोक जो ऊपर आकाश में सूर्य्यलोक से लेकर ध्रुवलोक तक माना जाता है। किसी किसी पुराण के अनुसार यह सुमेरु पर्वत पर है। देवताओं का निवासस्थान यही स्वर्गलोक माना गया है और कहा गया है कि जो लोग अनेक प्रकार के पुण्य और सत्कर्म्म करके मरते हैं, उनकी आत्माएँ इसी लोक में जाकर निवास करती हैं। यज्ञ, दान आदि जितने पुण्य कार्य्य किए जाते हैं, वे सब स्वर्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से ही किए जाते हैं। कहते हैं कि इस लोक में केवल सुख ही सुख है; दुःख, शोक, रोग, मृत्यु आदि का नाम भी नहीं है। जो प्राणी जितने ही अधिक सत्कर्म करता है, वह उतने ही अधिक समय तक इस लोक में निवास करने का अधिकारी होता है। परंतु पुण्यों का क्षय हो जाने अथवा अवधि पूरी हो जाने पर जीव को फिर कर्म्मानुसार शरीर धारण करना पड़ता है; और यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक उसकी मुक्ति नहीं हो जाती। यहाँ अच्छे अच्छे फलोंवाले वृक्षों, मनोहर वाटिकाओं और अप्सराओं आदि का निवास माना जाता है। स्वर्ग की कल्पना नरक की कल्पना के बिलकुल विरुद्ध है। उ०—(क) असन वसन पसु वस्तु विविधि विधि सब मनि महँ रहु जैसे। स्वर्ग नरक चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे।—तुलसी। (ख) स्वर्ग-भूमि पाताल के, भोगहिं सर्व समाज। शुभ संतति निज तेजबल, करत राज के काज।—निश्चल। (ग)... देवकी के आठवें गर्भ में लड़का होगा, सो न हो लड़की हुई; वह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई।—लल्लू।

विशेष—प्रायः सभी धर्म्मों, देशों और जातियों में स्वर्ग और नरक की कल्पना की गई है। ईसाइयों के अनुसार स्वर्ग ईश्वर का निवास-स्थान है और वहाँ फरिश्ते तथा धर्मात्मा लोग अनंत सुख का भोग करते हैं। मुसलमानों का स्वर्ग बिहिश्त कहलाता है। मुसलमान लोग भी बिहिश्त को खुदा और फरिश्तों के रहने की जगह मानते हैं और कहते हैं कि दीनदार लोग मरने पर वहीं जायँगे। उनका बिहिश्त इंद्रिय-सुख की सब प्रकार की सामग्री से परिपूर्ण कहा गया है। वहाँ दूध और शहद की नदियाँ तथा समुद्र हैं, अंगूरों के वृक्ष हैं और कभी वृद्ध न होनेवाली अप्सराएँ हैं। यहूदियों के यहाँ तीन स्वर्गों की कल्पना की गई है।

पर्य्या०—स्वर्। नाक। त्रिदिव। त्रिदशालय। सुरलोक। द्यौ। मन्दर। देवलोक। ऊर्ध्वलोक। शक्रभुवन।

मुहा०—स्वर्ग के पंथ पर पैर देना=(१) मरना। (२) जान जोखिम में डालना। उ०—कहा सो तोहिं सिंहलगढ़ है खंड सात चढ़ाव। फेरि न कोई जीति जिय स्वर्ग पंथ दे पाव।—जायसी। स्वर्ग जाना या सिधारना=मरना। देहान्त होना। जैसे,—वे तीस ही वर्ष की अवस्था में स्वर्ग सिधारे। (किसी की मृत्यु पर उसके सम्मानार्थ उसका स्वर्ग जाना या सिधारना कहा जाता है।) उ०—बहुते भँवर बवंडर भये। पहुँच न सके स्वर्ग कहँ गये।—जायसी।

यौ०—स्वर्ग सुख=बहुत अधिक और उच्च कोटि का सुख। वैसा सुख जैसा स्वर्ग में मिलता है। जैसे,—मुझे तो केवल अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ने में ही स्वर्ग सुख मिलता है।

यौ०—स्वर्ग की धार=आकाश गंगा। उ०—नासिक खीन स्वर्ग की धारा। खीन लंक जनु केहर हारा।—जायसी।

(२) ईश्वर। उ०—न जनों स्वर्ग बात धौं काहा। कहूँ न आय कही फिर चाहा।—जायसी। (३) सुख। (४) वह स्थान जहाँ स्वर्ग का सुख मिले। बहुत अधिक आनंद का स्थान। (५) आकाश। उ०—(क) हौं तेहि दीप पतंग होइ परा। जिव जिमि काढ़ स्वर्ग ले धरा।—जायसी। (ख)

लाक्षागृह पावक नव जारा। लागी जाय स्वर्ग सों धारा। —सबल। (६) प्रलय। (क्र०) उ०—भा पर्लै अस सबहीं जाना। काढ़ा स्वर्ग स्वर्ग नियराना।—जायसी।

स्वर्गकाम—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्वर्ग की कामना रखता हो। स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा रखनेवाला।

स्वर्गगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग जाना। मरना।

स्वर्गगमन—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग सिधारना। मरना।

स्वर्गगामी—वि० [सं० स्वर्गगामिन्] (१) स्वर्ग की ओर गमन करनेवाला। स्वर्ग जानेवाला। (२) जो स्वर्ग की ओर गमन कर चुका हो। मरा हुआ। मृत। स्वर्गीय।

स्वर्गत—वि० [सं०] जो स्वर्ग चला गया हो। स्वर्गगत। मरा हुआ। स्वर्गीय।

स्वर्गतरंगिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नदी मंदाकिनी।

स्वर्गतरु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कल्पतरु वृक्ष। (२) पारिजात। परजाता।

स्वर्गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की ओर जाने की क्रिया। स्वर्ग-गमन।

स्वर्गद—वि० [सं०] जो स्वर्ग पहुँचता हो। स्वर्ग देनेवाला। उ०—(क) सतगुण, रजगुण तमोगुण त्रयविधि के मुनिवाच। मोक्षद स्वर्गद सुखद हैं धरिहौं सुखप्रद साँच।—विश्राम। (ख) स्वर्गद नर्कद कर्म अनंता। साधन सकल कह्यो मतिवंता।—रघुराज।

स्वर्गदायक—वि० दे० "स्वर्गद"।

स्वर्गधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

स्वर्गनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्ग+नदी] आकाशगंगा। उ०—पद्मपाद सुनि गुरु आदेशा। स्वर्गनदी महँ कीन्ह प्रवेशा।—शंकरदिग्वि०।

स्वर्गपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

स्वर्गपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की पुरी अमरावती।

स्वर्गपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लौंग।

स्वर्गभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम जो वाराणसी के पश्चिम ओर था। कहते हैं कि इसी स्थान पर भगवती ने दुर्ग नामक राक्षस का नाश किया था जिसके कारण उनका नाम दुर्गा पड़ा था।

स्वर्गमंदाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गगंगा। मंदाकिनी।

स्वर्गमन—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग जाना। स्वर्ग-गमन। मरना।

स्वर्गयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ, दान आदि वे शुभ कर्म जिनके कारण मनुष्य स्वर्ग जाता है।

स्वर्गलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग की प्राप्ति। स्वर्ग पहुँचना। मरना।

स्वर्गलोक—संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग" (१)।

स्वर्गलोकेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग के स्वामी, इंद्र। (२) शरीर। तन।

स्वर्गवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

स्वर्गवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्ग+वाणी] आकाशवाणी। उ०—वेद वचन ते कन्या भयऊ। वेदन स्वर्गवाणि तो कियऊ। सबल।

स्वर्गवास—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग में निवास करना। स्वर्ग में रहना। (२) स्वर्ग को प्रस्थान करना। मरना। जैसे,—परसों उनके पिता का स्वर्गवास हो गया।

स्वर्गवासी—वि० [सं० स्वर्गवासिन्] [स्त्री० स्वर्गवासिनी] (१) स्वर्ग में रहनेवाला। (२) जो मर गया हो। मृत। जैसे,—स्वर्गवासी राजा शिवप्रसाद जी।

स्वर्गसार—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्दश ताल के चौदह भेदों में से एक। (संगीत)

स्वर्गस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

स्वर्गस्थ—वि० [सं०] (१) स्वर्ग में स्थित। स्वर्ग का। (२) जो मर गया हो। मृत। स्वर्गवासी।

स्वर्गापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गंगा। मंदाकिनी।

स्वर्गामी—वि० [सं० स्वर्गामिन्] जो स्वर्ग चला गया हो। स्वर्गगामी।

स्वर्गारूढ़—वि० [सं०] स्वर्ग सिधारा हुआ। स्वर्ग पहुँचा हुआ। मृत। स्वर्गवासी।

स्वर्गारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग की ओर जाना या चढ़ना। (२) स्वर्ग सिधारना। मरना।

स्वर्गावास—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में निवास करना। स्वर्गवास।

स्वर्गिगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत, जिसके शृंग पर स्वर्ग की स्थिति मानी जाती है।

स्वर्गिवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

स्वर्गी—वि० [सं० स्वर्गिन्] (१) स्वर्ग का निवासी। स्वर्गवासी। (२) स्वर्गगामी।

संज्ञा पुं० देवता।

स्वर्गीय—वि० [सं०] [स्त्री० स्वर्गीया] (१) स्वर्ग-संबंधी। स्वर्ग का। जैसे,—मुझे एकांत-वास में स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है। (२) जिसका स्वर्गवास हो गया हो। जो मर गया हो। जैसे,—स्वर्गीय भारतेंदु जी। उ०—श्रीमान्, स्मृतिमंदिर बनवाकर स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया का ऐसा स्मारक बनवा देंगे।—शिवशंभु।

स्वर्चन—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जिसमें से सुंदर ज्वाला निकलती हो।

स्वर्जक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] सर्जिक्षार। सज्जी मिट्टी।

स्वर्जारि घृत—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का घृत जो गौ के घी में सज्जी, जवाखार, कमीला, मेंहदी, सुहागा और

सफेद कत्थे के चूर्ण को खरल करने से बनता है। कहते हैं कि इसे घाव पर लगाने से उसमें के कीड़े मर जाते हैं, सूजन कम हो जाती है और वह जल्दी भर जाता है।

स्वर्जि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सज्जी मिट्टी। (२) शोरा।

स्वर्जिक-संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी।

स्वर्जिकाक्षार-संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी।

स्वर्जिकाद्य तैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो तिल के तेल में सज्जी, मूली, हींग, पीपल और सोंठ आदि औंटा कर बनाया जाता है। यह तेल कान के दर्द और बहरेपन आदि के लिये उपयोगी माना जाता है।

स्वर्जिकापाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी।

स्वर्जित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने स्वर्ग पर विजय प्राप्त कर ली हो। स्वर्गजेता। (२) एक प्रकार का यज्ञ।

स्वर्जित-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्जित्] एक प्रकार का यज्ञ।

स्वर्जी-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्जिन्] सज्जी मिट्टी।

स्वर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुवर्ण या सोना नामक बहुमूल्य धातु। (२) धतूरा। (३) गौरसुवर्ण नाम का साग। (४) नागकेसर। (५) पुराणानुसार एक नदी का नाम। (६) कामरूप देश की एक नदी का नाम।

स्वर्णकंडु-संज्ञा पुं० [सं०] धूना। राल

स्वर्णकण-संज्ञा पुं० [सं०] कर्णगुग्गुल।

स्वर्णकदली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोनकेला। सुवर्ण कदली।

स्वर्णकमल-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

स्वर्णकाय-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

वि० जिसका शरीर सोने का अथवा सोने का सा हो।

स्वर्णकार-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की जाति जो सोने चाँदी के आभूषण आदि बनाती है। सुनार।

स्वर्णकूट-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय की एक चोटी का नाम।

स्वर्णकृत्-संज्ञा पुं० दे० "स्वर्णकार"।

स्वर्णकेतकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली केतकी जिससे इत्र और तेल आदि बनाया जाता है।

स्वर्णक्षीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हेमपुष्पा। सत्यानाशी। भरभाँड़।

स्वर्णक्रोश-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पूर्व वंग के एक नद का नाम।

स्वर्णगर्भाचल-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय की एक चोटी का नाम।

स्वर्णगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत।

स्वर्णगैरिक-संज्ञा पुं० [सं०] सोना गेरू।

स्वर्णग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

स्वर्णग्रीवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कालिका पुराण के अनुसार एक नदी का नाम जो नाटक शैल के पूर्वी भाग से निकली हुई और गंगा के समान पवित्र कही गई है।

स्वर्णचूड़, स्वर्णचूल-संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ नामक पक्षी।

स्वर्णज-वि० [सं०] (१) सोने से उत्पन्न। (२) सोने से बना हुआ।

संज्ञा पुं० (१) वंग नाम की धातु। राँगा। (२) सोनामक्खी।

स्वर्णजातिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली चमेली।

स्वर्णजाती-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वर्णजातिका"।

स्वर्णजीवंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जीवंती।

स्वर्णजीवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जीवंती।

स्वर्णजीवी-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्णजीविन्] वह जो सोने के आभूषण आदि बनाकर जीविका निर्वाह करता हो। सुनार।

स्वर्णजूही-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्णयूथिका] पीली जूही।

स्वर्णतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

स्वर्णद-वि० [सं०] (१) स्वर्ण या सोना देनेवाला। (२) स्वर्ण या सोना दान करनेवाला।

संज्ञा पुं० वृश्चिकाली। बरहंटी।

स्वर्णदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मंदाकिनी। स्वर्गंगा। (२) वृश्चिकाली। बरहंटा। (३) कामाख्या के पास की एक नदी का नाम।

स्वर्णदीधिति-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

स्वर्णदुग्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णक्षीरी। सत्यानाशी। भरभाँड़।

स्वर्णद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] आरग्वध। अमलतास।

स्वर्णधातु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुवर्ण। सोना। (२) स्वर्णगैरिक। सोनागेरू।

स्वर्णनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शालग्राम।

स्वर्णनिभ-संज्ञा पुं० [सं०] सोनागेरू। स्वर्णगैरिक।

स्वर्णपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

स्वर्णपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सोने का पत्तर या तबक।

स्वर्णपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णमुखी। सोनामुखी। सनाय।

स्वर्णपद्मा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गंगा। मंदाकिनी।

स्वर्णपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जीवंती।

स्वर्णपर्पटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रसिद्ध औषध जो संग्रहणी रोग के लिये सब से अधिक गुणकारी मानी जाती है। इसके बनाने के लिये एक तोले सोने को पहले आठ तोले पारे में भली भाँति खरल करते हैं और तब उसमें आठ तोले गंधक मिलाकर उसकी कजली तैयार करते हैं। इसके सेवन के समय रोगी को उतना अधिक दूध पिलाया जाता है जितना वह पी सकता है।

स्वर्णपाटक-संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा, जिसके मिलाने से सोना गल जाता है।

स्वर्णपारवेत-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा पारवेत।

स्वर्णपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आरग्वध। अमलतास। (२)

चंपा। चंपक। (३) बबूल। कीकर। (४) कपित्थ। कैथ। (५) सफेद कुम्हड़ा। पेठा।

स्वर्णपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कलिहारी। लांगली। (२) सातला नाम का थूहर। (३) मेढ़ासिंगी। (४) सोनुली। स्वर्णुली। आरग्वध। (५) स्वर्ण केतकी।

स्वर्णपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ण केतकी। पीला केवड़ा। (२) सातला नाम का थूहड़। (३) अमलतास। आरग्वध।

स्वर्णप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार जंबू द्वीप के एक उपद्वीप का नाम।

स्वर्णफल-संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा।

स्वर्णफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णकदली। चंपा केला।

स्वर्णबीज-संज्ञा पुं० [सं०] धतूरे का बीज।

स्वर्णभाज्-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

स्वर्णभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ सब प्रकार के सुख हों। बहुत उत्तम भूमि। (२) दारचीनी। गुडत्वक्।

स्वर्णभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आरग्वध। अमलतास। (२) सोनागेरू। स्वर्णगैरिक।

स्वर्णभृंगार-संज्ञा पुं० [सं०] पीला भँगरा।

स्वर्णमंडन-संज्ञा पुं० [सं०] सोना गेरू। स्वर्णगैरिक।

स्वर्णमय-वि० [सं०] जो बिलकुल सोने का हो। जैसे,—स्वर्णमय सिंहासन।

स्वर्णमाक्षिक-संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी नामक उपधातु। वि० दे० "सोनामक्खी"।

स्वर्णमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्णमातृ] (१) हिमालय की एक छोटी नदी का नाम। (२) जामुन।

स्वर्णमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णपत्री। सनाय।

स्वर्णमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोने का सिक्का। अशरफी।

स्वर्णयूथिका, स्वर्णयूथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जूही।

स्वर्णरंभा संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ण कदली। चंपा केला।

स्वर्णरीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजपीतल। सोनापीतल।

स्वर्णरेखा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुवर्णरेखा"।

स्वर्णरोमा-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्णरोमन्] एक सूर्यवंशी राजा का नाम जो राजा महारोमा का पुत्र और ह्रस्वरोमा का पिता था।

स्वर्णलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मालकंगनी। ज्योतिष्मती। (२) पीली जीवंती। स्वर्णजीवंती।

स्वर्णली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोनुली नामक क्षुप। स्वर्णपुष्पी।

स्वर्णवज्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लोहा।

स्वर्णवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कणगुग्गुल। (२) हरताल। (३) सोनागेरू। स्वर्णगैरिक। (४) दारुहल्दी।

स्वर्णवर्णाक-संज्ञा पुं० [सं०] कंकुष्ठ। मुरदा संग।

स्वर्णवर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हलदी। (२) दारुहलदी।

स्वर्णवर्णाभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती।

स्वर्णवल्कल-संज्ञा पुं० [सं०] सोनापाठा। श्योनाक। अरलू।

स्वर्णवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोनावल्ली। रक्तफला। (२) स्वर्णुली नामक क्षुप। (३) पीली जीवंती।

स्वर्णबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) प्राचीन काल के एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

स्वर्णशिख-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णचूड़ या नीलकंठ नामक पक्षी।

स्वर्णशृंगी-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्णशृंगिन्] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु पर्वत के उत्तर ओर माना जाता है।

स्वर्णशेफालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आरग्वध। अमलतास। (२) सँभालू। पीला सिंधुआर।

स्वर्णसिंदूर-संज्ञा पुं० दे० "रससिंदूर"।

स्वर्णहालि-संज्ञा पुं० [सं०] आरग्वध। अमलतास।

स्वर्णांग-संज्ञा पुं० [सं०] आरग्वध। अमलतास।

स्वर्णाकर-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ सोना उत्पन्न होता हो। सोने की खान।

स्वर्णाद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] उड़ीसा प्रदेश का भुवनेश्वर नामक तीर्थ जो स्वर्णाचल भी कहलाता है।

स्वर्णाभ-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

स्वर्णाभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जूही।

स्वर्णारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधक। (२) सीसा नामक धातु।

स्वर्णालु-संज्ञा पुं० [सं०] सोनुली। स्वर्णुली।

स्वर्णाह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णक्षीरी। सत्यानाशी। भरभाँड़।

स्वर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया।

स्वर्णुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जो सोनुली कहलाता है। इसे हेमपुष्पी और स्वर्णपुष्पा भी कहते हैं। वैद्यक के अनुसार यह कटु, शीतल, कषाय और व्रणनाशक होता है।

स्वर्णोपधातु-संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी नामक उपधातु।

स्वर्धुनी संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

स्वर्नगरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की पुरी, अमरावती।

स्वर्नदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गंगा।

स्वर्पति-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग के स्वामी, इंद्र।

स्वर्भानव-संज्ञा पुं० [सं०] गोमेद मणि। राहुरत्न।

स्वर्भानु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राहु। (२) सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

स्वर्लीन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

स्वर्लोक-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

स्वर्वधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

स्वर्वापी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

स्वर्विद्-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो यज्ञ आदि करके स्वर्ग जाता हो।

स्वर्वेश्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

स्वर्वैद्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग के वैद्य, अश्विनी-कुमार।

स्वर्लीन-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

स्वल्प-वि० [सं०] बहुत थोड़ा। बहुत कम। जैसे,—स्वल्प मात्रा में मकरध्वज देने से भी बहुत लाभ होता है। उ०—(क) अतिथि ऋषीश्वर शाप न आए शोक भयो जिय भारी। स्वल्प शाक ते तृप्त किए सब कठिन आपदा टारी।—सूर। (ख) कल्प वर्ग भट चल्यो किए संकल्प विजय को। समुझि अल्प बल परन स्वल्पहू लेस न भय को।—गिरधरदास।

संज्ञा पुं० नखी या हट्टविलासिनी नामक गंधद्रव्य।

स्वल्पकंद-संज्ञा पुं० [सं०] कसेरू।

स्वल्पकाष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] साँख आलू।

स्वल्पकेशर-संज्ञा पुं० [सं०] कचनार।

स्वल्पकेशी-संज्ञा पुं० [सं० स्वल्पकेशिन्] भूतकेश नामक पौधा।

स्वल्पघंटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बनसनई।

स्वल्पचटक-संज्ञा पुं० [सं०] गौरैया नामक पक्षी।

स्वल्पजंबुक-संज्ञा पुं० [सं०] लोमड़ी।

स्वल्पतरु-संज्ञा पुं० [सं०] केमुक। केमुआँ।

स्वल्पनख-संज्ञा पुं० [सं०] नखी या हट्टविलासिनी नामक गंधद्रव्य।

स्वल्पपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] गौरशाक। पहाड़ी महुआ।

स्वल्पपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।

स्वल्पफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] हाऊबेर। हवुषा।

स्वल्पयव-संज्ञा पुं० [सं०] जौ नामक अन्न।

स्वल्परूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शणपुष्पी। बनसनई।

स्वल्पवर्त्तुल-संज्ञा पुं० [सं०] मटर।

स्वल्पवल्कला-संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजबल। तेजोवती।

स्वल्पविटप संज्ञा पु० [सं०] केमुक। केमुआ।

स्वल्पविराम ज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] ठहर ठहर कर थोड़ी देर के लिये उतर कर फिर आनेवाला ज्वर।

स्वल्पशब्दा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बनसनई। शणपुष्पी।

स्वल्पशृगाल-संज्ञा पुं० [सं०] रोहित मृग। बनरोहा।

स्ववग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा का न होना। अनावृष्टि।

स्ववरन⊛-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्ण"।

स्ववर्णी रेखा-संज्ञा स्त्री० [सं० सुवर्णरेखा] एक नदी जो छोटा नागपुर से निकलकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

स्ववश-वि० [सं०] (१) जो अपने वश में हो। (२) जिसका अपने आप पर अधिकार हो। जो अपनी इंद्रियों को वश में रखता हो। जितेंद्रिय।

स्ववशता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्ववश का भाव या धर्म।

स्ववशिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद।

स्ववश्य-वि० [सं०] जो अपने ही वश में हो। अपने आप पर अधिकार रखनेवाला।

स्ववहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ। त्रिवृत।

स्ववासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या अथवा विवाहिता स्त्री जो अपने पिता के घर रहती हो।

स्ववासी-संज्ञा पुं० [सं० स्ववासिन्] एक साम का नाम।

स्ववीज-वि० [सं०] जो अपना बीज या कारण आप ही हो।

संज्ञा पुं० आत्मा।

स्वशुर-संज्ञा पुं० दे० "श्वसुर"।

स्वसंभव-वि० [सं०] जो आत्मा से उत्पन्न हो। आत्मसंभव।

स्वसंभूत-वि० [सं०] जो आप से आप उत्पन्न हो।

स्वसंविद्-वि० [सं०] जिसका ज्ञान इंद्रियों से न हो सके। अगोचर।

स्वसंवेद्य-वि० [सं०] (ऐसी बात) जिसका अनुभव वही कर सकता हो जिस पर वह बीती हो। केवल अपने ही अनुभव होने योग्य।

स्वसर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर। मकान। (२) दिन।

स्वसा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वसृ] भगिनी। बहिन। उ०—तेहि अवसर रावण स्वसा सूपनखा तहँ आइ। रामस्वरूप मोहित बचन बोली गरब बढ़ाइ।—विश्राम। (२) तेजबल। तेजफल। तेजोवती।

स्वसुर-संज्ञा पुं० दे० "ससुर"।

स्वसुराल-संज्ञा स्त्री० दे० "ससुराल"।

स्वस्ति-अव्य० [सं०] कल्याण हो। मंगल हो। (आशीर्वाद) उ०—नंदराय घर ढोटा जायो महर महा सुख पायो। विप्र बुलाय वेद ध्वनि कीन्ही स्वस्ती बचन पढ़ायो।—सूर।

विशेष—प्रायः दान लेने पर ब्राह्मण लोग "स्वस्ति" कहते हैं," जिसका अभिप्राय होता है—दाता का कल्याण हो।

संज्ञा स्त्री० (१) कल्याण। मंगल। (२) पुराणानुसार ब्रह्मा की तीन स्त्रियों में से एक स्त्री का नाम। उ०—ब्रह्मा कहँ जानत संसारा। जिन सिरज्यो जग कर विस्तारा। तिनके भवन तीनि रहँ इस्त्री। संध्या स्वस्ति और सावित्री।—विश्राम। (३) सुख।

स्वस्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर जिसमें पश्चिम ओर एक दालान और पूर्व ओर दो दालान हों। कहते हैं कि ऐसे घर में रहने से गृहस्थ की स्वस्ति अर्थात् कल्याण होता है, इसी लिये इसे स्वस्तिक कहते हैं। (२) शिरियारी। सुसना नाम का साग। (३) लहसुन। (४) रतालू। रक्तालु। (५) मुर्गा। (६) हठयोग में एक प्रकार का आसन। (७) एक प्रकार का मंगल द्रव्य जो विवाह आदि के समय चावल को पीसकर और पानी में मिलाकर तैयार किया जाता है और जिसमें देवताओं का निवास माना जाता है। (८) प्राचीन काल का एक प्रकार का यंत्र जो शरीर में गड़े हुए शल्य आदि को बाहर निकालने के काम में आता

था। यह अठारह अंगुल तक लंबा होता था और सिंह, शृगाल, मृग आदि के आकार के अनुसार १८ प्रकार का होता था। (९) वैद्यक में फोड़े आदि पर बाँधा जानेवाला बंधन या पट्टी जिसका आकार तिकोना होता था। (१०) चौराहा। चौमुहानी। (११) साँप के फन पर की नीली रेखा। (१२) प्राचीन काल का एक प्रकार का मंगल चिह्न जो शुभ अवसरों पर मांगलिक द्रव्यों से अंकित किया जाता था और जो कई आकार तथा प्रकार का होता था। आज कल इसका मुख्य आकार 卐 यह प्रचलित है। प्रायः किसी मंगल कार्य्य के समय गणेश पूजन करने से पहले यह चिह्न बनाया जाता है। आज कल लोग इसे भ्रम से गणेश ही कहा करते हैं। (१३) शरीर के विशिष्ट अंगों में होनेवाला उक्त आकार का एक चिह्न जो सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार बहुत शुभ माना जाता है। कहते हैं कि रामचंद्र जी के चरण में इस आकार का चिह्न था। जैनी लोग जिन देवता के २४ लक्षणों में से इसे भी एक मानते हैं। उ०—स्वस्तिक अष्टकोण श्री केरा। हलमूसल पन्नग शर हेरा।—विश्राम। (१४) प्राचीन काल की एक प्रकार की बढ़िया नाव जो प्रायः राजाओं की सवारी के काम में आती थी।

स्वस्तिक यंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का यंत्र जिसका व्यवहार शरीर में धँसे हुए शल्य को निकालने के लिये होता था। वि० दे० "स्वस्तिक"। (८)

स्वस्तिकर-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

स्वस्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली।

स्वस्तिकाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

स्वस्तिकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।
वि० मंगल करनेवाला। कल्याणकारी।

स्वस्तिद-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।
वि० मंगल या कल्याण देने अथवा करनेवाला।

स्वस्तिपुर-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

स्वस्तिमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

स्वस्तिमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्राह्मण। (२) वह जो राजाओं की स्तुति करता हो। वंदी। स्तुतिपाठक।

स्वस्तिवाचक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो मंगलसूचक बात कहता हो। (२) वह जो आशीर्वाद देता हो।

स्वस्तिवाचन-संज्ञा पुं० [सं०] कर्म्मकांड के अनुसार मंगल कार्य्यों के आरंभ में किया जानेवाला एक प्रकार का धार्मिक कृत्य जिसमें गणेश का पूजन होता है, कलश स्थापित किया जाता है और कुछ मंगल-सूचक मंत्रों का पाठ किया जाता है। उ०—एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरषी नँदरानी। विप्र बुलाय स्वस्तिवाचन करि रोहिणी नैन सिरानी।—सूर।

स्वस्त्येन-संज्ञा पुं० दे० "स्वस्त्ययन"।

स्वस्त्ययन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धार्म्मिक कृत्य जो किसी विशिष्ट कार्य्य की अशुभ बातों का नाश करके शुभ की स्थापना के विचार से किया जाता है। उ०—पढ़न लगे स्वस्त्ययन ब्रह्मऋषि गाइ उठीं सब नारी। लै नरनाथ अंक रघुनाथहि रंगनाथ संभारी।—रघुराज।

स्वस्त्यात्रेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

स्वस्थ-वि० [सं०] (१) जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो। जिसे किसी प्रकार का रोग न हो। नीरोग। तंदुरुस्त। भला चंगा। जैसे,—इधर महीनों से वे बीमार थे; पर अब बिलकुल स्वस्थ हो गए हैं। (२) जिसका चित्त ठिकाने हो। सावधान। जैसे,—आप तो घबरा गए; ज़रा स्वस्थ होकर पहले सब बातें सुन तो लीजिए।

स्वस्थचित्त-वि० [सं०] जिसका चित्त ठिकाने हो। शान्तचित्त।

स्वस्थता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वस्थ का भाव या धर्म्म। नीरोगता। तंदुरुस्ती। (२) सावधानता।

स्वस्त्रीय-संज्ञा पुं० [सं०] (स्वसृ) बहिन का लड़का। भानजा।

स्वहाना*-क्रि० अ० दे० "सोहाना"। उ०—सब आचार्यन के मधि माहीं। रामानुज मुनि सरिस स्वहाहीं।—रघुराज।

स्वांकिक-संज्ञा पुं० [सं०] ढोल या मृदंग बजानेवाला।

स्वाँग-संज्ञा पुं० [सं० सु + अंग अथवा स्व + अंग] (१) कृत्रिम या बनावटी वेष जो अपना वास्तविक रूप छिपाने या दूसरे का रूप बनने के लिये धारण किया जाय। भेस। रूप। उ०—(क)...अब चलो अपने अपने स्वाँग सजें।—हरिश्चंद्र। (ख) कै इक स्वाँग बनाइ कै नाचौ बहु बिधि नाच। रीझत नहिं रिझवार वह बिना हिये के साँच।—रसनिधि।

क्रि० प्र०—भरना।—बनना।—बनाना।—सजना।

(२) मज़ाक का खेल या तमाशा। नकल। उ०—(क) बहु बासना विविध कंचुकि भूषण लोभादि भरयौ। चर अरु अचर गगन जल थल में कौन स्वाँग न करयौ।—तुलसी। (ख) पै बहु विस्तृत ठाठ बाट निसि नाच स्वाँग सब। धन अधिकाई के अरु लंपटता करतब के।—श्रीधर। (३) धोखा देने को बनाया हुआ कोई रूप। जैसे,—वह बीमार नहीं है; उसने बीमारी का स्वाँग रचा है।

क्रि० प्र०—रचना।

मुहा०—स्वाँग लाना = धोखा देने या कोई कपट व्यवहार करने के लिये कोई रूप धारण करना।

स्वाँगना*-क्रि० स० [हि० स्वाँग] स्वाँग बनाना। बनावटी वेष

या रूप धारण करना। उ०—भीम अर्जुन सहित विप्र को रूप धरि हरि जरासंध सों युद्ध माँग्यो। दियो उनपै कह्यो तुम कोऊ क्षत्रिया कपट करि विप्र को स्वाँग स्वाँग्यो।—सूर।

स्वाँगी-संज्ञा पुं० [हिं० स्वाँग] (१) वह जो स्वाँग सजकर जीविका उपार्जन करता है। नकल करनेवाला। नक्काल। उ०—(क) जैसे कि डोम, भाँड़, नट, वेश्या, स्वाँगी, बहुरूपी या प्रशंसक को देना।—श्रद्धाराम। (ख) जिन प्रथमै करि पाछे छाँड़ा। तिन्हैं जानिये स्वाँगी भाड़ा। —विश्राम। (२) अनेक रूप धारण करनेवाला। बहुरुपिया। उ०—स्वाँगी से ए भए रहत हैं छिन ही छिन ए और।—सूर।

वि० रूप धारण करनेवाला। उ०—साँची सी यह बात है सुनियौ सज्जन संत। स्वाँगी तौ वह एक है वा के स्वाँग अनंत।—रसनिधि।

स्वांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतःकरण। मन। (२) अपना अंत या मृत्यु। (३) अपना राज्य या प्रदेश। (४) गुफा। गुहा।

स्वांतज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रेम। (२) मनोज। कामदेव।

स्वाँस-संज्ञा स्त्री० दे० "साँस"। उ०—पंकज सों मुख गो मुरझाइ लगी लपटैं बिस स्वाँस हिया की।—रसखान।

स्वाँसा-संज्ञा पुं० [देश०] वह सोना जिसमें ताँबे का खोट मिला हो। ताँबे का खोट मिला हुआ सोना।

संज्ञा पुं० दे० "साँस"। उ०—स्वाँसा सार रच्यो मेरो साहब।—कबीर।

स्वाक्षर-संज्ञा पुं० [सं०] हस्ताक्षर। दस्तखत। जैसे,—(क) उन्होंने उस पर स्वाक्षर कर दिए। (ख) उनके स्वाक्षर से एक सूचना निकली है।

स्वाक्षरित-वि० [सं०] अपने हस्ताक्षर से युक्त। अपना हस्ताक्षर किया हुआ। अपना दस्तखत किया हुआ। जैसे,—उनके स्वाक्षरित सूचनापत्र से सारी बातों का पता लगा है।

स्वागत-संज्ञा पुं० (१) किसी अतिथि या विशिष्ट पुरुष के पधारने पर उसका सादर अभिनंदन करना। सम्मानार्थ आगे बढ़कर लेना। अगवानी। अभ्यर्थना। पेशवाई। जैसे,—उनका स्वागत लोगों ने बड़े उत्साह और उमंग से किया। (२) एक बुद्ध का नाम।

स्वागतकारिणी-सभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थानीय लोगों की वह सभा जो उस स्थान में निमंत्रित किसी विराट् सभा या सम्मेलन आदि का प्रबंध करने और आनेवाले प्रतिनिधियों के स्वागत, निवासस्थान, भोजन आदि की व्यवस्था करने के लिये संघटित हो।

स्वागतकारी-वि० [सं० स्वागतकारिन्] स्वागत या अभ्यर्थना करनेवाला। पेशवाई करनेवाला।

स्वागतपतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में से एक। वह नायिका जो अपने पति के परदेश से लौटने से प्रसन्न हो। आगत-पतिका।

स्वागतप्रिया-संज्ञा पुं० [सं०] वह नायक जो अपनी पत्नी के परदेश से लौटने से उत्साहपूर्ण और प्रसन्न हो।

स्वागता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में (र, न, भ, ग, ग) ऽ।ऽ + ।।। + ऽ।। + ऽऽ होता है। यथा—रानि! भोगि गहि नाथ कन्हाई। साथ गोपजन आवत धाई। स्वागतार्थ सुनि आतुर माता। धाइ देखि मुद सुंदर गाता।—छंदःप्रभाकर।

स्वागतिक-वि० [सं०] स्वागत करनेवाला। आनेवाले की अभ्यर्थना या सत्कार करनेवाला।

स्वागम-संज्ञा पुं० [सं०] स्वागत। अभिनंदन।

स्वाच्छंद्य-संज्ञा पुं० दे० "स्वच्छंदता"।

स्वाजन्य-संज्ञा पुं० दे० "स्वजनता"।

स्वाजीव, स्वाजीव्य-वि० [सं०] (वह स्थान या देश आदि) जहाँ कृषि वाणिज्य आदि जीविका का साधन सुलभ हो। जैसे,—स्वाजीव्य देश।

स्वातंत्र-संज्ञा पुं० दे० "स्वातंत्र्य"।

स्वातंत्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्वतंत्र का भाव या धर्म्म। स्वतंत्रता। स्वाधीनता। आज़ादी। जैसे,—उस देश में भाषण और लेखन स्वातंत्र्य नहीं है।

स्वात⁎-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाति"। उ०—स्वात बूँद चातक मुख परी। सीप समुँद मोती बहु भरी।—जायसी।

स्वाति-संज्ञा स्त्री० [सं०] पंद्रहवाँ नक्षत्र जो फलित ज्योतिष के अनुसार शुभ माना गया है। इस नक्षत्र में जन्मनेवाला कामदेव के समान रूपवान्, स्त्रियों का प्रिय और सुखी होता है।

विशेष—कहते हैं कि चातक इसी नक्षत्र में बरसनेवाला पानी पीता है और इसी नक्षत्र में वर्षा होने से सीप में मोती, बाँस में वंशलोचन और साँप में विष उत्पन्न होता है। उ०—(क) जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति। जिमि चातक चातकि त्रिषित वृष्टि सरद रितु स्वाति।—तुलसी। (ख) भेद मुकता के जेते, स्वाति ही में होतु तेते रतनन हूँ को कहूँ भूलिहू न होत भ्रम।—रसकुसुमाकर।

संज्ञा स्त्री० उरु और आग्नेयी के एक पुत्र का नाम।

वि० स्वाति नक्षत्र में उत्पन्न।

स्वातिकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कृषि की देवी। (पारस्कर गृह्यसूत्र)

स्वातिपंथ-संज्ञा पुं० [सं० स्वाति + पंथ] आकाश-गंगा। उ०—बंदी विदूषक वदत बहु विधि सुयश युक्ति समेत। यह भानुकुल कीरति उदय जो स्वाति पंथ सपेत।—रघुराज।

स्वातियोग-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार आषाढ़ के शुक्ल पक्ष में स्वाति नक्षत्र का चंद्रमा के साथ योग।

स्वातिसुत-संज्ञा पुं० [सं० स्वाति + सुत] मोती । मुक्ता । उ०—(क) स्वातिसुत माला विराजत श्याम तन यों भाइ । मनो गंगा गौरि उर हर लिये कंठ लगाइ ।—सूर । (ख) बेनी छूटि लटें बगरानी मुकुट लटकि लटकानो । फूल खसत सिर ते भए न्यारे सुभग स्वातिसुत मानो ।—सूर ।

स्वातिसुवन-संज्ञा पुं० [सं० स्वाति + हिं० सुवन] मोती । मुक्ता । उ०—अनसी कुसुम कलेवर बूँदैं प्रतिबिंबित निरधार । ज्योति प्रकाश सुवन में खोलत स्वातिसुवन आकार ।—सूर ।

स्वाती-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाति" । उ०—सीय सुखहि बरनिय केहि भाँती । जनु चातकी पाइ जल स्वाती ।—तुलसी ।

स्वाद-संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ के खाने या पीने से रसनेंद्रिय को होनेवाला अनुभव । जायका । जैसे,—(क) इसका स्वाद खट्टा है या मीठा, यह तुम क्या जानो । (ख) आज भोजन में बिलकुल स्वाद नहीं है । (२) रसानुभूति । आनंद । मजा । जैसे,—(क) उनकी कविता ऐसी सरस और सरल होती है कि सामान्य जन भी उसका स्वाद ले सकते हैं । (ख) जान पड़ता है, आप को लड़ाई झगड़े में बड़ा स्वाद मिलता है ।

क्रि० प्र०—लेना ।—मिलना ।

मुहा०—स्वाद चखाना = किसी को उसके किए हुए अपराध का दंड देना । बदला लेना । जैसे,—मैं तुम्हें इसका स्वाद चखाऊँगा ।

(३) चाह । इच्छा । कामना । उ०—(क) गंधमादरन स्वाद चल्यो घन सरिस नाद करि । लै द्विज आसिरबाद परम अहलाद हृदय भरि ।—गोपाल । (ख) द्विज अरपहिं आसिरबाद पढ़ि । नमत तिन्हें अहलाद मढ़ि । नृप लसेउ सुरथ जय स्वाद चढ़ि । करत सिंह सम नाद बढ़ि ।—गोपाल । (४) मीठा रस । (डिं०)

स्वादक-संज्ञा पुं० [सं० स्वाद] वह जो भोज्य पदार्थ प्रस्तुत होने पर चखता है । स्वादुविवेकी । उ०—स्वादक चतुर बनावत जाहीं । सूपकार बहु विरचत तौहीं ।—रामाश्वमेध ।

विशेष—राजा महाराजों की पाकशालाओं में प्रायः ऐसे कर्मचारी होते हैं जो भोज्य पदार्थ प्रस्तुत होने पर पहले चख लेते हैं कि पदार्थ उत्तम बना है या नहीं । ऐसे ही लोग स्वादक कहलाते हैं ।

स्वादन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चखना । स्वाद लेना । (२) रस ग्रहण । मजा लेना । आनंद लेना ।

स्वादनीय-वि० [सं०] (१) स्वाद लेने के योग्य । (२) रस लेने के योग्य । मजा लेने के योग्य । (३) जायकेदार । स्वादिष्ट ।

स्वादित-वि० [सं०] (१) चखा हुआ । रस लिया हुआ । (२) स्वाद-युक्त । जायकेदार । (३) प्रीत । प्रसन्न ।

स्वादित्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्वाद का भाव । स्वादु ।

स्वादिष्ट, स्वादिष्ठ-वि० [सं० स्वादिष्ठ] जो खाने में बहुत अच्छा जान पड़े । जिसका स्वाद अच्छा हो । जायकेदार । सुस्वाद । जैसे,—स्वादिष्ट भोजन ।

स्वादी-वि० [सं० स्वादिन्] (१) स्वाद चखनेवाला । उ०—बहु सुत मागध बंदी जन नृप बचन गुनि हरषित चले । पुनि वैद्य पौरानिक सभाचातुर विपुल स्वादी भले ।—रामाश्वमेध । (२) मजा लेनेवाला । रसिक ।

स्वादीला†-वि० [सं० स्वाद + ईला (प्रत्य०)] स्वादयुक्त । स्वादिष्ट । उ०—घास के स्वादीले ग्रासों करके.........वह राजेश्वर उसकी (नंदिनी गाय की) सेवा में तत्पर हुआ ।—लक्ष्मणसिंह ।

स्वादु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मधुर रस । मीठा रस । मधुरता । (२) गुड़ । (३) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि । (४) अगर । अगुरुसार । (५) महुआ । मधूक वृक्ष । (६) चिरौंजी । पियाल । (७) ममला नींबू । (८) काँस । काशतृण । (९) बेर । बदर । (१०) सेंधा नमक । सैंधव लवण । (११) दूध । दुग्ध ।

संज्ञा स्त्री० दाख । द्राक्षा ।

वि० (१) मीठा । मधुर । मिष्ट । (२) जायकेदार । मजेदार । स्वादिष्ट । (३) मनोज्ञ । सुंदर ।

स्वादुकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकंकत वृक्ष । (२) गोखरू । गोक्षुर ।

स्वादुकंद-संज्ञा पुं० [सं०] भूमि कुष्मांड । भुईं कुम्हड़ा । (२) सफेद पिंडालू । (३) कोबी । केउँआ । केमुक ।

स्वादुकंदक-संज्ञा पुं० [सं०] कोबी । केउँआ । केमुक ।

स्वादुकंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारी कंद ।

स्वादुकर-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की वर्णसंकर जाति जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

स्वादुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती ।

स्वादुकोपानकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तोरई ।

स्वादुखंड-संज्ञा पुं० [सं०] गुड़ ।

स्वादुगंध-संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिंजन । रक्त शोभांजन ।

स्वादुगंधच्छदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] काली तुलसी । कृष्ण तुलसी ।

स्वादुगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भुईं कुम्हड़ा । भूमि कुष्मांड । (२) लाल सहिंजन । रक्त शोभांजन ।

स्वादुगंधि-संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिंजन । रक्तशोभांजन ।

स्वादुता-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वादु का भाव या धर्म्म । (२) मधुरता ।

स्वादुतिक्त-संज्ञा पुं० [सं०] पीलू फल ।

स्वादुतिक्तफल-संज्ञा पुं० [सं०] नीबू का पेड़ ।

स्वादुधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० स्वादुधन्वन्] कामदेव ।

स्वादुपटोलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] परवल की लता।

स्वादुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] परवल की लता।

स्वादुपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूधी। दुग्धिका।

स्वादुपाकफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मकोय। काकमाची।

स्वादुपिंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर। पिंडी खर्जूर।

स्वादुपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] काली कटभी।

स्वादुपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूधी। दुग्धिका।

स्वादुपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कटभी का पेड़।

स्वादुफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेर। बदरी फल। (२) धामिन। धन्व वृक्ष।

स्वादुफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेर। बदरी वृक्ष। (२) खजूर का पेड़। खर्जूर वृक्ष। (३) केले का पेड़। कदली वृक्ष। (४) मुनक्का। कपिल द्राक्षा।

स्वादुबीज-संज्ञा पुं० [सं०] पीपल। अश्वत्थ वृक्ष।

स्वादुमज्ज-संज्ञा पुं० [सं० स्वादुमज्जन्] पहाड़ी पीलू। अखरोट।

स्वादुमस्तका-संज्ञा स्त्री० [सं०] खजूर का पेड़। खर्जूरी वृक्ष।

स्वादुमांसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

स्वादुमाषी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मषवन। माषपर्णी।

स्वादुमूल-संज्ञा पुं० [सं०] गाजर। गर्जर।

स्वादुरसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली। (२) मद्य। मदिरा। शराब। (३) दाख। द्राक्षा। (४) सतावर। शतावरी। (५) अमड़ा। आम्रातक फल। (६) मरोड़-फली। मूर्वा।

स्वादुल-संज्ञा पुं० [सं०] क्षीर मूर्वा।

स्वादुलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारी कंद।

स्वादुलुंग-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संतरा। (२) मीठा नींबू। स्वादुमालुंग।

स्वादुशुंठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद कटभी।

स्वादुशुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री नमक।

स्वाद्य-वि० [सं०] स्वाद लेने के योग्य। चखने के योग्य। उ०—पदार्थ वास्तव में रोचक और विस्तृत हैं; याने पहले ये स्पृश्य और दृश्य हैं और पीछे घ्रेय, स्वाद्य और पेय।—चंद्रधर गुलेरी।

स्वाद्वगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की अगर की लकड़ी।

स्वाद्वम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनार का पेड़। दाड़िम वृक्ष। (२) नारंगी का पेड़। नागरंग वृक्ष। (३) कदंब वृक्ष।

स्वाद्वी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दाख। द्राक्षा। (२) मुनक्का। कपिलद्राक्षा। (३) फूट। चिर्भटिका। (४) खजूर का पेड़। खर्जुर वृक्ष।

स्वाधिष्ठान-संज्ञा पुं० [सं०] हठ योग में माने हुए कुंडलिनी के ऊपर पड़नेवाले छः चक्रों में से दूसरा चक्र। इसका स्थान शिश्न के मूल में, रंग पीला और देवता ब्रह्मा माने गए हैं। इसके दलों की संख्या छः और अक्षर ब से ल तक हैं।

स्वाधीन-वि० [सं०] (१) जो अपने सिवा और किसी के अधीन न हो। स्वतंत्र। आज़ाद। खुद मुख्तार। (२) किसी का बंधन न माननेवाला। अपने इच्छानुसार चलनेवाला। मनमाना काम करनेवाला। निरंकुश। अबाध्य। जैसे,—(क) वह लड़का आजकल स्वाधीन हो गया है, किसी की बात नहीं सुनता। (ख) उसका पति क्या मरा, वह बिलकुल स्वाधीन हो गई।

संज्ञा पुं० समर्पण। हवाला। सपुर्द। जैसे,—अंत में लाचार होकर १९ जून को तीसरे पहर अपने को नवाब के स्वाधीन कर दिया।—द्विवेदी।

स्वाधीनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वाधीन होने का भाव। स्वतंत्रता। आज़ादी। खुदमुख्तारी। जैसे,—स्वाधीनता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।

स्वाधीनपतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जिसका पति उसके वश में हो। पति को वशीभूत करनेवाली नायिका। साहित्य में इसके चार भेद कहे गए हैं; यथा—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा और परकीया।

स्वाधीनभर्तृका-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाधीनपतिका"।

स्वाधीनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वाधीन] स्वाधीनता। स्वतंत्रता। आज़ादी। उ०—शिल्पकलाओं से जन्मे हैं, विविध सौख्य संपत्ति प्रथा। धन, वैभव, व्योपार, बड़प्पन, स्वाधीनी, संतोष तथा।—श्रीधर।

स्वाध्याय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदों की निरंतर और नियम-पूर्वक आवृत्ति या अभ्यास करना। वेदाध्ययन। धर्मग्रंथों का नियमपूर्वक अनुशीलन करना। (२) किसी विषय का अनुशीलन। अध्ययन। (३) वेद।

स्वान-संज्ञा पुं० [सं०] शब्द। आवाज़। घड़घड़ाहट।

संज्ञा पुं० दे० "श्वान"। उ०—खर स्वान सुअर सृगाल मुख गन वेष अगनित को गनै। बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै।—तुलसी।

स्वाना‡-क्रि० स० दे० "सुलाना"। उ०—(क) सुख दै सर्वान बीच दै के सौंहैं खाय कै स्वाइ कछू स्वाय वश कीनी बरबसु है।—केशव। (ख) आजु हौं गर्वोली स्वाय उन्हें रघुनाथ कृपा निशि मेरे करोगे। मैं उठि जाउँगी छोड़ि कै पास जगाइ कै सेज पै पायँ धरोगे।—रघुनाथ।

स्वाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नींद। निद्रा। (२) स्वप्न। ख्वाब। (३) अज्ञान। (४) निस्पंदता।

स्वापक-वि० [सं०] नींद लानेवाला। निद्राकारक।

स्वापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जिससे शत्रु निद्रित किए जाते थे। उ०—वर विद्याधर

अस्त्र नाम नंदन जो एसौ। मोहन स्वापन समन सौम्यकर्षन पुनि तैसो।—पद्माकर। (२) नींद लानेवाली औषध।

वि० नींद लानेवाला। निद्राकारक।

स्वाप्न-वि० [सं०] स्वप्न-संबंधी। स्वप्न का।

स्वाब-संज्ञा पुं० [फा०] कपड़े या सन की बुहारी या झाड़ू जिससे जहाज के डेक आदि साफ किए जाते हैं। (लश०)

स्वाभाविक-वि० [सं०] (१) जो स्वभाव से उत्पन्न हुआ हो। जो आप ही आप हो। (२) स्वभावसिद्ध। प्राकृतिक। नैसर्गिक। सहज। कुदरती। जैसे,—(क) जल में शीतलता होना स्वाभाविक है। (ख) उसका दुष्ट आचरण देखकर उनका क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। (ग) उस कवि ने काश्मीर का कैसा ही स्वाभाविक वर्णन किया है।

स्वाभाविकी-वि० [सं०] स्वभावसिद्ध। प्राकृतिक। जैसे,—हे जल! आप में शीतलता का होना तो सहज बात है; स्वच्छता भी आप में स्वाभाविकी है .....।—द्विवेदी।

स्वाभाव्य-वि० [सं०] स्वयं उत्पन्न होनेवाला। आप ही आप होनेवाला।

संज्ञा पुं० स्वभावता। स्वभाव का भाव।

स्वामि※-संज्ञा पुं० दे० "स्वामी"। उ०—सेवक स्वामि सखा सिय पीके। हित निरुपधि सब विधि तुलसी के।—तुलसी।

स्वामिकार्त्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव के पुत्र कार्त्तिकेय। देव सेनापति। वि० दे० "स्कंद"। उ०—धरे चाप इषु हाथ स्वामि कार्त्तिक बल सोहत।—गोपाल। (२) छः आघात और दस मात्राओं का ताल जिसका बोल इस प्रकार

+ १ १ १ १

है—धा धिं धा गे ना ग ति न तिरकिट तिं ना ति ना ति ना के त्ता धिं ना।

स्वामिकुमार-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के पुत्र कार्त्तिकेय का एक नाम। स्वामिकार्त्तिक।

स्वामिजंघी-संज्ञा पुं० [सं० स्वामिजंघिन्] परशुराम का एक नाम।

स्वामिता-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वामित्व"।

स्वामित्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी होने का भाव। प्रभुता। प्रभुत्व। मालिकपन।

स्वामिन-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वामिनी"।

स्वामिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मालिकिन। स्वत्वाधिकारिणी। (२) घर की मालिकिन। गृहिणी। (३) अपने स्वामी या प्रभु की पत्नी। (४) श्रीराधिका। (वल्लभ संप्रदाय) उ०—× × × सहित स्वामिनी अंतरजामी।—गोपाल।

स्वामी-संज्ञा पुं० [सं० स्वामिन्] [स्त्री० स्वामिनी] (१) वह जिसके आश्रय में जीवन निर्वाह होता हो। वह जो जीविका चलाता हो। मालिक। प्रभु। अन्नदाता। जैसे,—वे मेरे स्वामी हैं। मैं उनका नमक खाता हूँ। उनकी आज्ञा का पालन करना मेरा परम धर्म है। (२) घर का कर्त्ताधर्त्ता। घर का प्रधान पुरुष। जैसे,—वे ही इस घर के स्वामी हैं, उनकी आज्ञा के बिना कोई काम नहीं हो सकता। (३) स्वत्वाधिकारी। मालिक। जैसे,—इस नाट्यशाला के स्वामी एक बंगाली सज्जन हैं। (४) पति। शौहर। (५) ईश्वर। भगवान। (६) राजा। नरपति। (७) कार्त्तिकेय। (८) साधु, संन्यासी और धर्म्माचार्यों की उपाधि। जैसे,—स्वामी शंकराचार्य, स्वामी दयानंद, तैलंग स्वामी, श्रीधर स्वामी। (९) सेना का नायक। (१०) शिव। (११) विष्णु। (१२) गरुड़। (१३) वात्स्यायन मुनि का एक नाम। (१४) गत उत्सर्पिणी के ११वें अर्हत् का नाम।

स्वाम्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी होने का भाव। स्वामित्व। प्रभुत्व। प्रभुता। मालिकपन।

स्वाम्युपकारक-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा। अश्व।

स्वायंभुव-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार चौदह मनुओं में से पहले मनु जो स्वयंभू ब्रह्मा से उत्पन्न माने जाते हैं।

विशेष—श्रीमद्भागवत में लिखा है कि ब्रह्मा ने इस संसार की सृष्टि करके अपने दाहिने अंग से स्वायंभुव मनु को और बाएँ अंग से शतरूपा नाम की स्त्री उत्पन्न की थी; और दोनों में पति-पत्नी का संबंध स्थापित किया था। इनसे प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्र तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति नाम की तीन कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं। इन्हीं से आगे और सृष्टि चली थी।

स्वायंभुवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी।

स्वायंभू-संज्ञा पुं० दे० "स्वायंभुव"।

स्वायत्त-वि० [सं०] जो अपने आयत्त या अधीन हो। जिस पर अपना ही अधिकार हो।

स्वायत्त शासन-संज्ञा पुं० [सं०] वह शासन या हुकूमत जो अपने आयत्त या अधिकार में हो। स्थानिक स्वराज्य। जैसे,—म्युनिसिपैलिटी और ज़िला बोर्ड स्वायत्तशासन या स्थानिक स्वराज्य के अंतर्गत हैं।

स्वार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़े के घर्राटे का शब्द। (२) बादल की गड़गड़ाहट। मेघध्वनि।

वि० स्वर संबंधी।

स्वारथ※†-संज्ञा पुं० दे० "स्वार्थ"। उ०—स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्योहारु।—तुलसी।

वि० [सं० सार्थ] सफल। सिद्ध। फलीभूत। सार्थक। उ०—सेवा सबै भई अब स्वारथ।—सूर।

स्वारथी-वि० दे० "स्वार्थी"। उ०—आये देव सदा स्वारथी। वचन कहहिं जनु परमारथी।—तुलसी।

स्वारस्य-वि०[सं०] (१) सरसता। रसीलापन। उ०—कथाओं का स्वारस्य कम हो गया है।—द्विवेदी। (२) स्वाभाविकता।

स्वाराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शासन प्रबंध जिसका संचालन-सूत्र अपने ही देश के लोगों के हाथों में हो। वह शासन या राज्य जिस पर किसी बाहरी शक्ति का नियंत्रण न हो। स्वाधीन राज्य। (२) स्वर्ग का राज्य। स्वर्ग लोक।

स्वाराट्-संज्ञा पुं० [सं० स्वाराज्] (स्वर्ग के राजा) इंद्र।

स्वारी⁕†-संज्ञा स्त्री० दे० "सवारी"।

स्वारोचिष-संज्ञा पुं० [सं०] (स्वरोचिष के पुत्र) दूसरे मनु का नाम। मार्कंडेयपुराण में इनका नाम द्युतिमान कहा गया है; और श्रीमद्भागवत के अनुसार ये अग्नि के पुत्र हैं। वि० दे० "मनु"।

स्वार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना उद्देश्य। अपना मतलब। अपना प्रयोजन। जैसे,—वह ऊपर से उनका मित्र बनकर भीतर ही भीतर स्वार्थ साधन कर रहा है। (२) अपना लाभ। अपनी भलाई। अपना हित। जैसे,—(क) इसमें उसका स्वार्थ है, इसी से वह इतनी दौड़-धूप कर रहा है। (ख) वह अपने स्वार्थ के लिये जो चाहे सो कर सकता है। (ग) वे जिस काम में अपने स्वार्थ की हानि देखते हैं, उसमें कभी नहीं पड़ते।

मुहा०—(किसी बात में) स्वार्थ लेना = दिलचस्पी लेना। अनुराग रखना। जैसे,—राजकीय बातों में स्वार्थ लेनेवाले जो लोग योरप में यह समझते हैं कि राजसत्ता की हद होनी चाहिए, वे बहुत थोड़े हैं।—द्विवेदी।

विशेष—यह मुहा० अँगरेज़ी मुहा० का अविकल अनुवाद है, अतः प्रशस्त नहीं है।

(३) अपना धन।

वि० [सं० सार्थक] सार्थक। सफल। जैसे,—आपका दर्शन पाय जन्म स्वार्थ किया।—लल्लू।

स्वार्थता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वार्थ का भाव या धर्म। खुदगर्ज़ी। उ०—वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।—सत्यार्थप्रकाश।

स्वार्थत्याग-संज्ञा पुं० [सं०] (दूसरे के लिये कर्त्तव्यबुद्धि से) अपने स्वार्थ या हित को निछावर करना। किसी भले काम के लिये अपने हित या लाभ का विचार छोड़ना। जैसे,—देशबंधु दास ने देश के लिये बड़ा भारी स्वार्थ त्याग किया कि २॥ लाख वार्षिक आय की बैरिस्टरी छोड़ दी।

स्वार्थत्यागी-वि० [सं० स्वार्थत्यागिन्] जो (दूसरे के लिये कर्त्तव्य बुद्धि से) अपने स्वार्थ या हित को निछावर कर दे। दूसरे के भले के लिये अपने हित या लाभ का विचार न रखनेवाला। जैसे,—इस समय देश में स्वार्थत्यागी नेताओं की आवश्यकता है।

स्वार्थ पंडित-वि० [सं०] अपना मतलब साधने में चतुर। बड़ा भारी स्वार्थी या खुदगरज।

स्वार्थपर-वि० [सं०] जो केवल अपना ही स्वार्थ या मतलब देखे। अपना स्वार्थ या मतलब साधनेवाला। स्वार्थी। खुदगरज।

स्वार्थपरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वार्थपर होने का भाव। खुदगरज़ी।

स्वार्थपरायण-वि० [सं०] स्वार्थपर। स्वार्थी। खुदगरज।

स्वार्थपरायणता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वार्थपरायण होने का भाव। स्वार्थपरता। खुदगरज़ी।

स्वार्थसाधक-वि० [सं०] अपना मतलब साधनेवाला। अपना काम निकालनेवाला। खुदगरज।

स्वार्थसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] अपना मतलब साधना। अपना प्रयोजन सिद्ध करना। अपना काम निकालना।

स्वार्थांध-वि० [सं०] जो अपने स्वार्थ के वश अंधा हो जाता हो। अपने हित या लाभ के सामने और किसी बात का विचार न करनेवाला।

स्वार्थी-वि० [सं० स्वार्थिन्] अपना ही मतलब देखनेवाला। मतलबी। खुदगरज।

स्वाल⁕-संज्ञा पुं० दे० "सवाल"। उ०—नाथ कह्यो वकील करि दीजै। ज्वाब स्वाल तेहि मुख नृप कीजै।—रघुराज।

स्वास⁕-संज्ञा पुं० [सं० श्वास] साँस। श्वास।

स्वासा-संज्ञा स्त्री० [सं० श्वास] साँस। श्वास। उ०—हुका सौं कहु कौन पै जात निबाहौ साथ। जाकी स्वासा रहत है लगी स्वास के साथ।—रसनिधि।

स्वास्थ्य-संज्ञा पुं० [सं०] नीरोग या स्वस्थ होने की अवस्था। नीरोगता। आरोग्य। तंदुरुस्ती। जैसे,—उनका स्वास्थ्य आजकल अच्छा नहीं है।

स्वास्थ्यकर-वि० [सं०] स्वस्थ करनेवाला। तंदुरुस्त करनेवाला। आरोग्यवर्द्धक। जैसे,—देवघर बड़ा स्वास्थ्यकर स्थान है।

स्वाहा-अव्य० [सं०] एक शब्द या मंत्र जिसका प्रयोग देवताओं को हवि देने के समय किया जाता है। जैसे,—इंद्राय स्वाहा।

मुहा०—स्वाहा करना = नष्ट करना। फूँक डालना। जैसे,—उसने बाप दादे की सारी संपत्ति दो ही बरस में स्वाहा कर डाली। स्वाहा होना = नष्ट होना। बरबाद होना। जैसे,—उनका सारा धन मामले मुकदमे में स्वाहा हो गया।

संज्ञा स्त्री० अग्नि की पत्नी का नाम।

स्वाहाकृत्-वि० [सं०] यज्ञ करनेवाला। यज्ञकर्त्ता।

स्वाहाग्रसन-संज्ञा पुं० [सं० स्वाहा + ग्रसन] देवता। (डिं०)

स्वाहापति-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

स्वाहाप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

स्वाहाभुक्-संज्ञा पुं० [सं० स्वाहाभुज्] देवता।

स्वाहार्ह-वि० [सं०] स्वाहा के योग्य। हवि पाने के योग्य।

स्वाहावल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

स्वाहाशन-संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

स्वाहेय-संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय का एक नाम।

स्विन्न-वि० [सं०] (१) पसीने से युक्त। स्वेद विशिष्ट। (२) सीझा हुआ। उबला हुआ। (जैसे अन्नादि)

स्विष्टकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

स्वीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना करना। अपनाना। अंगीकार करना। कबूल करना। (२) पत्नी को ग्रहण करना। विवाह करना। (३) मानना। राजी होना। सम्मत होना। वचन देना। प्रतिज्ञा करना।

स्वीकरणीय-वि० [सं०] स्वीकार करने के योग्य। मानने के योग्य।

स्वीकर्त्तव्य-वि० [सं०] स्वीकार करने के योग्य। मानने के योग्य।

स्वीकर्त्ता-वि० [सं० स्वीकर्तृ] स्वीकार करनेवाला। मंजूर करनेवाला।

स्वीकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपनाने की क्रिया। अंगीकार। कबूल। मंजूर। (२) लेना। ग्रहण। परिग्रह। (३) प्रतिज्ञा। वचन। इकरार। कौल।

स्वीकार्य-वि० [सं०] स्वीकार करने के योग्य। मानने के योग्य।

स्वीकृत-वि० [सं०] स्वीकार किया हुआ। कबूल किया हुआ। माना हुआ। अंगीकृत। मंजूर।

स्वीकृति-वि० [सं०] स्वीकार का भाव। मंजूरी। सम्मति। रजामंदी। जैसे,—(क) वायसराय ने उस 'बिल' पर अपनी स्वीकृति दे दी। (ख) उनकी स्वीकृति से यह नियुक्ति हुई है।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।—मिलना।—लेना।

स्वीय-वि० [सं०] अपना। निज का।

संज्ञा पुं० अपने आदमी। स्वजन। आत्मीय। संबंधी। नातेरिश्तेदार।

स्वीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली स्त्री। वि० दे० "स्वकीया"।

स्वै*-वि० दे० "स्व"। उ०—जहँ अभेद करि दुहुन सों करत और स्वै काम। भनि भूषन सब कहत हैं तासु नाम परिनाम।—भूषण।

स्वेच्छा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी इच्छा। अपनी मर्जी। जैसे,—वे सब काम स्वेच्छापूर्वक करते हैं।

स्वेच्छाचार-संज्ञा पुं० [सं०] मनमाना काम करना। जो जी में आवे, वही करना। यथेच्छाचार।

स्वेच्छाचारिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वेच्छाचार का भाव या धर्म्म। निरंकुशता। उच्छृंखलता।

स्वेच्छाचारी-वि० [सं० स्वेच्छाचारिन्] अपने इच्छानुसार चलनेवाला। मनमाना काम करनेवाला। निरंकुश। अबाध्य। जैसे,—वहाँ के पुलिस कर्मचारी बड़े स्वेच्छारी हैं।

स्वेच्छामृत्यु-संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म पितामह, जो अपने इच्छानुसार मरे थे।

वि० अपने इच्छानुसार मरनेवाला।

स्वेच्छासेवक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० स्वेच्छासेविका] वह जो बिना किसी पुरस्कार या वेतन के किसी कार्य में अपनी इच्छा से योग दे। स्वयंसेवक।

स्वेत*-वि० दे० "श्वेत"।

स्वेतरंगी-संज्ञा स्त्री० [सं० श्वेत + हिं० रंगी] कीर्त्ति। यश। (डिं०)

स्वेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पसीना। प्रस्वेद। (२) भाप। वाष्प। (३) ताप। गरमी। (४) पसीना लानेवाली औषध।

वि० पसीना लानेवाला।

स्वेदक-संज्ञा पुं० [सं०] कांति लौह।

वि० पसीना लानेवाला। घर्मदायक।

स्वेदचूषक-संज्ञा [सं०] ठंढी हवा। शीतल वायु।

स्वेदज-वि० [सं०] पसीने से उत्पन्न होनेवाला। गर्म भाप या उष्ण वाष्प से उत्पन्न होनेवाला। (जूँ, लीक, खटमल, मच्छर आदि कीड़े मकोड़े।)

स्वेदजल-संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। प्रस्वेद।

स्वेदज शाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शाक जो भूमि गोबर, पाँस, लकड़ी आदि में उत्पन्न होता है। भुईंफोड़। छतौना। भुइंछत्ता। छत्रा। छत्राक।

विशेष—वैद्यक में यह शीतल, दोषजनक, पिच्छिल, भारी तथा वमन, अतिसार ज्वर और कफ रोग को उत्पन्न करनेवाला माना गया है।

स्वेदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पसीना निकलना। (२) वैद्यों का एक यंत्र जिसकी सहायता से ओषधियाँ शोधी जाती है।

विशेष—एक हँडिया में तरल पदार्थ (जल, स्वरस, काढ़ा आदि) भरकर उसका मुँह कपड़े से भली भाँति बाँध देते हैं। फिर उस कपड़े के ऊपर उस औषधि की, जिसका स्वेदन करना होता है, पोटली रखकर मुँह ढकने से अच्छी तरह ढँक देते हैं और बरतन को धीमी आँच पर चढ़ा देते हैं। इस क्रिया से भाप के द्वारा वह ओषधि शोधी जाती हैं।

स्वेदनत्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्वेदन का भाव।

स्वेदनाश-संज्ञा पुं० [सं०] हवा। वायु।

स्वेदनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तवा (२) रसोईघर। पाकशाला। (३) शराब चुआने का बरतन या भभका।

स्वेदनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तवा।

स्वेदमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वेदमातृ] शरीर में का रस।

स्वेदायन-संज्ञा पुं० [सं०] रोम कूप। लोम छिद्र।

स्वेदित-वि० [सं०] (१) स्वेद से युक्त। पसीने से युक्त। (२) भफारा दिया हुआ। सेंका हुआ। उ०—इस प्रकार... ..

अपने मुख की भाप से नेत्रों को स्वेदित कर दो।—नूतनामृतसागर।

स्वेदी-वि० [सं० स्वेदिन्] पसीना लानेवाला। घर्मकारक।

स्वेद्य-वि० [सं०] स्वेद के योग्य। पसीने के योग्य।

स्वैं⊗-वि० [सं० स्वीय] अपना। निज का। (डिं०)

सर्व० दे० "सो"। उ०—सो सुकृती सुचिमंत सुसंत सुसील सयान सिरोमनि स्वै।—तुलसी।

स्वैर-वि० [सं०] (१) अपने इच्छानुसार चलनेवाला। मनमाना काम करनेवाला। स्वच्छंद। स्वतंत्र। स्वाधीन। यथेच्छाचारी। (२) धीमा। मंद। (३) यथेच्छ। मनमाना। ऐच्छिक।

स्वैरचारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मनमाना काम करनेवाली स्त्री। (२) व्यभिचारिणी स्त्री।

स्वैरचारी-वि० [सं० स्वैरचारिन्] मनमाना काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरंकुश।

स्वैरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यथेच्छाचारिता। स्वच्छंदता।

स्वैरथ-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष्मत् के एक पुत्र का नाम। (२) एक वर्ष का नाम जिसके देवता स्वैरथ माने जाते हैं। (विष्णुपुराण)

स्वैरवर्त्ती-वि० [सं० स्वैरवर्तिन्] अपने इच्छानुसार चलने या काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी।

स्वैरवृत्त-वि० [सं०] अपने इच्छानुसार चलने या काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी।

स्वैराचार-संज्ञा पुं० [सं०] जो जी में आवे, वही करना। मनमाना काम करना। स्वेच्छाचार। यथेच्छाचार।

स्वैरिंध्री-संज्ञा स्त्री० दे० "सैरिंध्री"।

स्वैरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी स्त्री।

स्वैरिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] यथेच्छाचारिता। स्वच्छंदता। स्वाधीनता।

स्वैरी-वि० [सं० स्वैरिन्] स्वेच्छाचारी। स्वतंत्र। निरंकुश। अबाध्य।

स्वोपार्जित-वि० [सं०] अपना उपार्जन किया हुआ। अपना कमाया हुआ। जैसे,—उनकी सारी संपत्ति स्वोपार्जित है।

स्वोरस-संज्ञा पुं० दे० "स्वरस"।

ह

ह—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का तैंतीसवाँ व्यंजन जो उच्चारण-विभाग के अनुसार ऊष्म वर्ण कहलाता है।

हँक-संज्ञा स्त्री० दे० "हाँक"।

हँकड़ना-क्रि० अ० [हिं० हाँक] झगड़ते हुए जोर जोर से चिल्लाना। दर्प के साथ बोलना। ललकारना।

हँकरना-क्रि० अ० दे० "हँकड़ना"।

हँकारना⊗†-क्रि० स० [हिं० हाँक] (१) हाँक देकर बुलाना। जोर से आवाज लगाकर किसी दूर के मनुष्य को संबोधन करना। (२) बुलाना। पुकारना। उ०—मोहन ग्वाल सखा हँकराए।—सूर। (३) पुकारने का काम दूसरे से कराना। बुलवाना। उ०—राजा सब सेवक हँकराई। भाँति भाँति की वस्तु मँगाई।—विश्राम।

हँकरावा-संज्ञा पुं० [हिं० हँकराना] (१) बुलाने की क्रिया या भाव। बुलाहट। पुकार। (२) बुलावा। न्योता। निमंत्रण।

हँकवा-संज्ञा पुं० [हिं० हाँक] शेर के शिकार का एक ढंग जिसमें बहुत से लोग ढोल, ताशे आदि बजाते और शोर करते हुए, जिस स्थान पर शेर होता है, उस स्थान के चारो ओर से चलते हैं और इस प्रकार शेर को हाँक कर उस मचान की ओर ले जाते हैं जहाँ शिकारी उसे मारने के लिये बंदूक भरे बैठे रहते हैं।

हँकवाना-क्रि० स० [हिं० हाँकना का प्रेर० रूप] (१) हाँक लगवाना। बुलवाना। दूसरे से पुकारने का काम कराना। (२) पशुओं या चौपायों को आवाज देकर हटवाना या किसी ओर भगाना।

संयो० क्रि०—देना।

हँकवैया⊗†-संज्ञा पुं० [हिं० हाँकना + वैया (प्रत्य०)] हाँकनेवाला।

हंका-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँक] ललकार। दपट। उ०—संका दै दसानन को, हंका दै सुबंका बीर, डंका दै विजय को कपि कूदि परयो लंका में।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

हँकाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँकना] (१) हाँकने की क्रिया या भाव। (२) हाँकने की मजदूरी।

हँकाना-क्रि० स० [हिं० हाँक] (१) चौपायों या जानवरों को आवाज देकर हटाना या किसी ओर ले जाना। हाँकना। (२) पुकारना। बुलाना। (३) दूसरे से हाँकने का काम कराना। हँकवाना।

हँकार-संज्ञा स्त्री० [सं० हकार] (१) आवाज लगाकर बुलाने की क्रिया या भाव। पुकार। (२) वह ऊँचा शब्द जो किसी को बुलाने या संबोधन करने के लिये किया जाय। पुकार।

मुहा०—हँकार पड़ना = बुलाने के लिये आवाज लगना। पुकार मचना।

हंकार꠸†–संज्ञा पुं० दे० "अहंकार"।

संज्ञा पुं० [सं० हुंकार] वीरों का दर्पनाद। ललकार। दपट।

हँकारना–क्रि० स० [हिं० हँकार] (१) आवाज देकर किसी को संबोधन करना। जोर से पुकारना। ऊँचे स्वर से बुलाना। टेरना। नाम लेकर चिल्लाना। उ०—ऊँचे तरु चढ़ि श्याम सखन को बारंबार हँकारत।—सूर। (२) अपने पास आने को कहना। बुलाना। पुकारना। उ०—(क) धाय दामिनी-बेग हँकारी। ओहि सौंपा हीये रिस भारी।—जायसी। (ख) देखी जनक भीर भइ भारी। शुचि सेवक सब लिए हँकारी।—तुलसी।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(३) युद्ध के लिये आह्वान करना। ललकारना। हाँक देना। उ०—देखत तहाँ जुरे भट भारी। एक एक सन भिरे हँकारी।—रघुराज।

हंकारना–क्रि० अ० [हिं० हुंकार] हुंकार शब्द करना। वीरनाद करना। दपटना।

हँकारा–संज्ञा पुं० [हिं० हँकारना] (१) पुकार। बुलाहट। (२) निमंत्रण। आह्वान। बुलौवा। न्योता। उ०—गुरु बसिष्ठ कहँ गएउ हँकारा। आए द्विजन्ह सहित नृपद्वारा।—तुलसी।

क्रि० प्र०—जाना।—भेजना।

हंगामा–संज्ञा पुं० [फा० हंगामः] (१) उपद्रव। हलचल। दंगा। बलवा। मारपीट। लड़ाई झगड़ा।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

(२) शोरगुल। कलकल। हल्ला।

हंगोरी–संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत बड़ा पेड़ जो दार्जिलिंग के पहाड़ों में होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और मेज, कुरसी, आलमारी आदि सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। पहाड़ी लोग इसका फल भी खाते हैं।

हंजि–संज्ञा पुं० [सं०] छींक।

हंटर–संज्ञा पुं० [अं० हंट ?] लंबी चाबुक। कोड़ा।

क्रि० प्र०—जमाना।—मारना।—लगाना।

हंडना–क्रि० अ० [सं० अभ्यटन, प्रा० अहडन अथवा भंडन = नटखटी] (१) घूमना। फिरना। जैसे,—काशी हंडे, प्रयाग मुंडे। (२) व्यर्थ इधर उधर फिरना। आवारा घूमना। (३) इधर उधर ढूँढ़ना। छानबीन करना।

हंडल–संज्ञा पुं० [अं० हैंडल] (१) बेंट। दस्ता। मुठिया। (२) किसी कल या पेंच का वह भाग जो हाथ से पकड़ कर घुमाया जाता है।

हंडा–संज्ञा पुं० [सं० भांडक] पीतल या ताँबे का बहुत बड़ा बरतन जिसमें पानी भरकर रखा जाता है।

हँड़िक–संज्ञा पुं० [देश०] तौलने का बाट। (सुनार)

हँडिया–संज्ञा स्त्री० [सं० भांडिका] (१) बड़े लोटे के आकार का मिट्टी का बरतन जिसमें चावल दाल पकाते या कोई वस्तु रखते हैं। हाँड़ी।

मुहा०—हँडिया चढ़ाना = कोई वस्तु पकाने के लिये पानी रखकर हाँड़ी आँच पर रखना।

(२) इस आकार का शीशे का पात्र जो शोभा के लिये लटकाया जाता है और जिसमें मोमबत्ती जलाई जाती है। (३) जौ, चावल आदि अनाज सड़ाकर बनाई हुई शराब।

हंडी–संज्ञा स्त्री० दे० "हँड़िया", "हाँड़ी"।

हंत–अव्य० [सं०] खेद या शोकसूचक शब्द।

हंतकार–संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि या संन्यासी आदि के लिये निकाला हुआ भोजन जो पुष्कल का चौगुना अर्थात् मोर के सोलह अंडों के बराबर होना चाहिए।

हंता–संज्ञा पुं० [सं० हंतृ] [स्त्री० हंत्री] मारनेवाला। बध करनेवाला। जैसे,—शत्रुहंता, पितृहंता।

हँथोरी–संज्ञा स्त्री० दे० "हथोरी"।

हँथौरा–संज्ञा पुं० दे० "हथौड़ा"।

हंदा–संज्ञा पुं० [सं० हंतकार] पुरोहित या ब्राह्मण के लिये निकाला हुआ भोजन।

विशेष—पंजाब के खत्री-ब्राह्मणों में यह प्रथा है कि सवेरे की रसोई में से कुछ अंश अपने पुरोहित के लिये अलग कर देते हैं। इसी को हंदा कहते हैं।

हँफनि꠸–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँफना] हाँफने की क्रिया या भाव। अधिक परिश्रम के कारण जल्दी जल्दी और जोर जोर से चलती हुई साँस। हाँफ।

मुहा०—हँफनि मिटाना = दम लेना। दम मारना। सुस्ताना। थकावट दूर करना। उ०—बात कहिबे में नंदलाल की उताल कहा, हाल तौ हरिननैनी हँफनि मिटाय लै।—शिव।

हंबा–अव्य० [हिं० हाँ] सम्मति या स्वीकृति-सूचक अव्यय। हाँ। (राजपूताना)

हंभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय या बैल आदि के बोलने का शब्द। रँभाने का शब्द।

हंस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बत्तख के आकार का एक जलपक्षी जो बड़ी बड़ी झीलों में रहता है।

विशेष—इसकी गरदन बत्तख से लंबी होती है और कभी कभी उसमें बहुत सुंदर घुमाव दिखाई पड़ता है। यह पृथ्वी के प्रायः सब भागों में पाया जाता है और छोटे छोटे जलजंतुओं और उद्भिद पर निर्वाह करता है। यद्यपि हंस का रंग श्वेत ही प्रसिद्ध है, पर आस्ट्रेलिया में काले रंग के हंस भी पाए जाते हैं। योरप में इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक 'मूक हंस'; दूसरी 'तूर्य्य हंस'। मूक हंस बोलते नहीं, पर तूर्य्य हंस की आवाज बड़ी कड़ी होती है। अमेरिका में भूरे और चितकबरे हंस भी होते हैं। चितकबरे हंस का सारा

शरीर सफेद होता है, केवल सिर और गरदन कालापन लिए लाखी रंग की होती है। भारतवर्ष में हंस सब दिन नहीं रहते। वर्षा काल में उनका मान सरोवर आदि तिब्बत की झीलों में चला जाना और शरत्काल में लौटना प्रसिद्ध है। यह पक्षी अपनी शुभ्रता और सुंदर चाल के लिये बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। कवियों में तथा जनसाधारण में इसके मोती चुँगने और नीरक्षीर विवेक करने (दूध में से पानी अलग करने) का प्रवाद चला आता है जो कल्पना मात्र है। युरोप के पुराने कवियों में भी ऐसा प्रवाद था कि यह पक्षी बहुत सुंदर राग गाता है, विशेषतः मरते समय। (किसी शब्द के आगे लगकर यह शब्द श्रेष्ठता का वाचक भी होता है, जैसे, कुल हंस। उ०—विधि के समान हैं, विमानीकृत राजहंस विविध विबुधयुत मेरु सो अचल है। —केशव।)

(२) सूर्य्य। उ०—हंस-बंस, दसरथ जनक, रामलपन से भाई।—तुलसी।

यौ०—हंसवंश। हंससुता।

(३) ब्रह्म। परमात्मा। (४) शुद्ध आत्मा। माया से निर्लिप्त आत्मा। उ०—जे एहि छीर समुद महँ परे। जीउ गँवाइ हंस होइ तरे।—जायसी। (५) जीवात्मा। जीव। उ०—सिर धुनि हंसा चले हो रमैया राम।—कबीर। (६) विष्णु। (७) विष्णु का एक अवतार।

विशेष—एक बार सनकादिक ने ब्रह्मा से जाकर पूछा—"कृपा कर बताइए कि विषय को चित्त ग्रहण किए हुए है या विषय ही चित्त को ग्रहण किए है। ये दोनों ऐसे मिले हुए हैं कि हमसे अलग नहीं करते बनता।" जब ब्रह्मा उत्तर न दे सके, तब सनकादिक को अपने ज्ञान का बड़ा गर्व हो गया। इस पर ब्रह्मा ने भक्तिपूर्वक भगवान् का ध्यान किया। तब भगवान् हंस का रूप धारण करके सामने आए और सनकादिक से बोले—"तुम्हारा यह प्रश्न ही अज्ञानपूर्ण है। विषय और उनका चिंतन दोनों ही माया हैं, अर्थात् एक है"। इस प्रकार सनकादिक का ज्ञानगर्व दूर हो गया।

(८) उदार और संयमी राजा। श्रेष्ठ राजा। (९) संन्यासियों का एक भेद। उ०—कहि आचार भक्तिविधि भाखी हंस धर्म प्रगटायो।—सूर। (१०) एक मंत्र। (११) प्राणवायु। (१२) घोड़ा। (१३) शिव। महादेव। (१४) ईर्ष्या। द्वेष। (१५) दीक्षागुरु। आचार्य्य। (१६) पर्वत। (१७) कामदेव। (१८) भैंसा। (१९) दोहे के नवें भेद का नाम जिसमें १४ गुरु और २० लघु वर्ण होते हैं। (पिंगल) (२०) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक भगण और दो गुरु होते हैं। इसे 'पंक्ति' भी कहते हैं। उ०—राम खरारी। (२१) एक प्रकार का नृत्य। (२२) प्रासाद का एक भेद जो हंस के आकार का बनाया जाता था। यह बारह हाथ चौड़ा और एक खंड का होता था और इसके ऊपर एक शृंग बनाया जाता था। (वास्तु विद्या)

हंसक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हंस पक्षी। (२) पैर की उँगलियों में पहनने का एक गहना। बिछुआ। उ०—ते नगरी ना नागरी प्रतिपद हंसक हीन।—केशव।

हंसकूट-संज्ञा पुं० [सं०] बैल के कंधों के बीच उठा हुआ कूबड़। डिल्ला।

हंसगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंस के समान सुंदर धीमी चाल (२) ब्रह्मत्व की प्राप्ति। सायुज्य मुक्ति। (३) बीस मात्राओं के एक छंद का नाम जिसमें ग्यारहवीं मात्रा पर विराम होता है। इसी छंद की बारहवीं मात्रा पर यति मानकर मंजुतिलका भी कहते हैं।

हंसगद्गा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियभाषिणी स्त्री।

हंसगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक रत्न का नाम। (रत्नपरीक्षा)

हंसगामिनी-वि० स्त्री० [सं०] हंस के समान सुंदर मंद गति से चलनेवाली।

हंस चौपड़-संज्ञा पुं० [सं० हंस + हिं० चौपड़] एक प्रकार का पुराना चौपड़ का खेल जो पासों से खेला जाता था।

विशेष—इसकी तख्ती में ६२ घर होते थे। एक ६३वाँ घर केंद्र में होता था, जो जीत का घर होता था। तख्ती के प्रत्येक चौथे और पाँचवें घर में एक हंस का चित्र होता था। खेलनेवाले का पाँसा जब हंस पर पड़ता था, तब वह दूनी चाल चल सकता था।

हंसजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (सूर्य्य की कन्या) यमुना।

हँसता-मुखी-संज्ञा पुं० [हिं० हँसना + मुख] हँसते चेहरेवाला। प्रसन्नमुख। उ०—जो देखा सो हँसतामुखी।—जायसी।

हंसदफरा-संज्ञा पुं० [?] वे रस्से जो छोटी नाव में उसकी मजबूती के लिये बँधे रहते हैं।

हंसदाहन-संज्ञा पुं० [सं०] धूप। गुगल।

हँसन-संज्ञा स्त्री० [हिं० हँसना] (१) हँसने की क्रिया या भाव। (२) हँसने का ढंग।

हँसना-क्रि० अ० [सं० हसन] (१) आनंद के वेग से कंठ से एक विशेष प्रकार का आघात-रूप स्वर निकालना। खुशी के मारे मुँह फैलाकर एक तरह की आवाज करना। खिलखिलाना। ठट्ठा मारना। हास करना। कहकहा लगाना।

संयो० क्रि०—देना।—पड़ना।

यौ०—**हँसना बोलना** = आनंद की बातचीत करना। जैसे,—चार दिन की जिंदगी में हँस बोल लो। **हँसना खेलना** = आनंद करना।

मुहा०—**किसी व्यक्ति पर हँसना** = विनोद की बात कहकर किसी को तुच्छ या मूर्ख ठहराना। उपहास करना। जैसे,—तुम दूसरों

पर तो बहुत हँसते हो, पर आप कुछ नहीं कर सकते। किसी वस्तु पर हँसना = विनोद की बात कहकर किसी वस्तु को तुच्छ या बुरा ठहराना। उपहास करना। व्यंग्यपूर्ण निंदा करना। अनादर करना। उ०—(क) हँसिबे जोग, हँसे नहिं खोरी।—तुलसी। (ख) हँसहि मलिन खल विमल बतकही।—तुलसी। हँसते हँसते = प्रसन्नता से। खुशी से। बिना किसी प्रकार का कष्ट या बाधा अनुभव किए। जैसे,—(क) राजपूतों ने हँसते हँसते युद्ध में प्राण दिए। (ख) मैं हँसते हँसते यह सब कष्ट सह लूँगा। हँसते हुए = दे० "हँसते हँसते"। हँसता मुँह या चेहरा = प्रसन्न मुख। ऐसा चेहरा जिससे प्रसन्नता का भाव प्रकट होता हो। ठठा कर हँसना = जोर से हँसना। अट्टहास करना। उ०—दोउ एक संग न होहिं भुआलू। हँसब ठठाइ, फुलाउब गालू।—तुलसी। बात हँसकर उड़ाना = ध्यान न देना। तुच्छ, साधारण या हलका समझकर विनोद में टाल देना। जैसे,—मैं काम की बात कहता हूँ, तुम हँसकर उड़ा देते हो।

(२) रमणीय लगना। मनोहर जान पड़ना। गुलजार या रौनक होना। जैसे,—यह जमीन कैसी हँस रही है। (३) केवल मनोरंजन के लिये कुछ कहना या करना। दिल्लगी करना। हँसी करना। मज़ाक करना। मसखरापन करना। जैसे,—मैं तो यों ही हँसता था, कुछ तुम्हारी छड़ी लिए नहीं लेता था। (४) आनंद मानना। प्रसन्न या सुखी होना। खुशी मनाना। जैसे,—यह तो दुनिया है; कोई हँसता है, कोई रोता है।

क्रि० स० किसी का उपहास करना। व्यंग्य या हंसी की बात कहकर किसी को तुच्छ या मूर्ख ठहराना। विनोद के रूप में किसी को हेठा, बुरा या मूर्ख प्रकट करना। अनादर करना। हँसी उड़ाना। जैसे,—तुम दूसरों को तो हँसते हो, पर अपना दोष नहीं देखते।

हंसनादिनी—वि० स्त्री० [सं०] सुंदर बोलनेवाली। मधुरभाषिणी।

हँसनि‡—संज्ञा स्त्री० दे० "हँसन"।

हंसनी—संज्ञा स्त्री० दे० "हंसी"।

हंसपद—संज्ञा पुं० [सं०] एक तौल या मान। कर्ष।

हंसपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम।

हंसपाद—संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल। ईंगुर। शिंगरफ।

हंसपादी—संज्ञा स्त्री० दे० "हंसपदी"।

हंस-मंगला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो शंकराभरण, सोरठ और अड़ाने के मेल से बनी है।

हंसमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसों की पंक्ति। (२) एक वर्ण वृत्त का नाम।

हँसमुख—वि० [हिं० हँसना + मुख] (१) प्रसन्नवदन। जिसके चेहरे से प्रसन्नता का भाव प्रकट होता हो। (२) विनोदशील। हास्यप्रिय। ठठोल। हँसी दिल्लगी करनेवाला। चुहलबाज।

हंसरथ—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा (जिनका वाहन हंस है)।

हंसराज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बूटी जो पहाड़ों में चट्टानों से लगी हुई मिलती है। समलपत्ती।

विशेष—यह एक छोटी घास होती है जिसमें चारों ओर आठ दस अंगुल के सूत के से डंठल फैलते हैं। इन डंठलों के दोनों ओर बंद मुट्ठी के आकार की छोटी छोटी कटावदार पत्तियाँ गुछी होती हैं। यह बूटी देखने में बड़ी सुंदर होती है, इससे बगीचों में कंकड़ पत्थर के ढेर खड़े करके इसे लगाते हैं। वैद्यक में यह गरम मानी जाती है और ज्वर में दी जाती है। कहते हैं, इससे बवासीर से खून जाना भी बंद हो जाता है।

(२) एक प्रकार का अगहनी धान।

हँसली—संज्ञा स्त्री० [सं० अंसली] (१) गरदन के नीचे और छाती के ऊपर की धन्वाकार हड्डी। (२) गले में पहनने का स्त्रियों का एक गहना जो मंडलाकार और ठोस होता है। यह बीच में मोटा और छोरों पर पतला होता है।

हंसलोमश—संज्ञा पुं० [सं०] कसीस।

हंसवंश—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य वंश। उ०—हंस बंस, दसरथ जनक, राम लखन से भाइ।—तुलसी।

हंसवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम।

हंसवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा (जिनकी सवारी हंस है)।

हंसवाहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती (जिनकी सवारी हंस है)।

हंससुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी। उ०—हंससुता की सुंदर कगरी औ कुंजन की छाहीं।—सूर।

हंसांघ्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल। ईंगुर। सिंगरफ।

हँसाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० हँसना] (१) हँसने की क्रिया या भाव। (२) उपहास। लोगों में निंदा। बदनामी। उ०—सूरदास कुबरि रँग राते ब्रज में होति हँसाई।—सूर।

यौ०—जगत-हँसाई।

हँसाना—क्रि० स० [हिं० हँसना] दूसरे को हँसने में प्रवृत्त करना। कोई ऐसी बात करना जिससे दूसरा हँसे।

संयो० क्रि०—देना।

हंसाभिख्य—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।

हँसाय‡—संज्ञा स्त्री० दे० "हँसाई"।

हंसारूढ़—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा (जो हंस पर सवार होते हैं)।

हंसारूढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

हंसालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३७ मात्राओं का एक छंद जिसमें बीसवीं मात्रा पर यति और अंत में यगण होता है।

हंसिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंस की मादा। हंसी।

हंसिनी—संज्ञा स्त्री० दे० "हंसी"।

हँसिया—संज्ञा पुं० [सं० हंस] (१) लोहे का एक धारदार औजार जो अर्द्धचंद्राकार होता है और जिससे खेत की फ़सल या

तरकारी आदि काटी जाती है। (२) लोहे की धारदार अर्द्धचंद्राकार पट्टी जिससे कुम्हार गीली मिट्टी काटते हैं। (३) चमड़ा छीलकर चिकना करने का औजार। (४) हाथी के अंकुश का टेढ़ा भाग।

संज्ञा स्त्री० [सं० हनु] गरदन के नीचे की धन्वाकार हड्डी। हँसली।

हंसी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंस की मादा। स्त्री हंस। (२) दूध देनेवाली गाय की एक अच्छी जाति। (पंजाब) (३) बाईस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में दो मगण, एक तगण, तीन नगण, एक सगण और एक गुरु होता है (ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽ।, ।।।, ।।।, ।।।, ।।ऽ, ऽ)।

हँसी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हँसना] (१) हँसने की क्रिया या भाव। हास। उ०—बरजा पितै हँसी औ राजू।—जायसी।

क्रि० प्र०—आना।

यौ०—हँसी खुशी = प्रसन्नता। हँसी ठट्ठा = आनंद क्रीड़ा। मज़ाक।

मुहा०—हँसी छूटना = हँसी आना। हास की मुद्रा प्रकट होना।

(२) हँसने हँसाने के लिये की हुई बात। मज़ाक़। दिल्लगी। मनोरंजन। विनोद। जैसे,—तुमतो हँसी हँसी में रोने लगते हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०हँ—सी खेल = (१) विनोद और क्रीड़ा। (२) साधारण बात। सहज बात। आसान बात। हँसी ठठोली = विनोद और हास। दिल्लगी।

मुहा०—हँसी समझना या हँसी खेल समझना = साधारण बात समझना। आसान बात समझना। कठिन न समझना। जैसे,—लीडर बनाना क्या हँसी खेल समझ रखा है? हँसी में उड़ाना = किसी बात को यों ही दिल्लगी समझकर ध्यान न देना। साधारण समझकर खयाल न करना। परिहास की बात कहकर टाल देना। हँसी में ले जाना = किसी बात को मज़ाक समझना। किसी बात का ऐसा अर्थ समझना मानो वह ध्यान देने की नहीं है, केवल मन बहलाव की है। जैसे,—तुम तो मेरी बात हँसी में ले जाते हो। हँसी में खाँसी = दिल्लगी की बातचीत होते होते झगड़ा या मारपीट की नौबत आना।

(३) किसी व्यक्ति को मूर्ख या वस्तु को तुच्छ ठहराने के लिये कही हुई विनोदपूर्ण उक्ति। अनादरसूचक हास। उपहास। व्यंग्यपूर्णनिंदा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हँसी उड़ाना = व्यंग्यपूर्ण निंदा करना। उपहास करना। चतुराई की उक्ति द्वारा अनादर प्रकट करना।

(४) लोक निंदा। बदनामी। अनादर। जैसे,—ऐसा काम न करो जिसमें पीछे हँसी हो। उ०—(क) हाँसी होन लगी या ब्रज में कान्हहि जाइ सुनावौ।—सूर। (ख) रोज सरोजन के परै, हँसी ससी की होइ।—बिहारी।

क्रि० प्र०—होना।

हँसीला‡–वि० [हिं० हँसना + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० हँसीली] हँसी मजाक करनेवाला। हँसोड़।

हँसुआ, हँसुवा†–संज्ञा पुं० दे० "हँसिया"।

हँसुली†–संज्ञा स्त्री० दे० "हँसली"।

हँसेल†–संज्ञा स्त्री० [देश०] नाव को किनारे पर से खींचने की रस्सी। गून।

हँसोड़–वि० [हिं० हँसना + ओड़ (प्रत्य०)] हँसी ठट्ठा करनेवाला। दिल्लगीबाज। मसखरा। चुहलबाज। विनोदप्रिय।

हँसोरॐ–वि० दे० हँसोड़"।

हँसोहाँ–वि० दे० "हँसौहाँ"।

हँसौहाँॐ–वि० [हिं० हँसना] [स्त्री० हँसौंही] (१) ईषद् हासयुक्त। कुछ हँसी लिए। हासोन्मुख। उ०—(क) भयो हँसौहों बदन ग्वारि को सुनत श्याम के बैन। (ख) लखत हँसौहैं नैन वदति राधा मुख मोरी। (२) हँसने का स्वभाव रखनेवाला। जल्दी हँस देनेवाला। उ०—(क) सहज हँसौहैं जानि कै सौहैं करति न नैन।–बिहारी। (ख) नेकु हँसौहीं बानि तजि, लख्यो परत मुख नीठि।—बिहारी। (३) परिहासयुक्त। दिल्लगी का। मजाक से भरा। उ०—नेकु न मोहिं सुहाथैं अरी सुन बोल तिहारे हँसौहैं अबै।—शंभु।

ह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हास। हँसी। (२) शिव। महादेव। (३) जल। पानी। (४) शून्य। सिफ़र। (५) योग का एक आसन। विष्कंभ। (६) ध्यान। (७) शुभ। मंगल। (८) आकाश। (९) स्वर्ग। (१०) रक्त। खून। (११) भय। (१२) ज्ञान। (१३) चंद्रमा। (१४) विष्णु। (१५) युद्ध। लड़ाई। (१६) घोड़ा। अश्व। (१७) गर्व। घमंड। (१८) वैद्य। (१९) कारण। हेतु।

हईॐ–संज्ञा पुं० [सं० हयिन्, हयी] घुड़सवार।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ह (आश्चर्य सूचक शब्द)] आश्चर्य। अचरज। तअज्जुब। उ०—हौं हिय रहति हई छई नई जुगति जग जोय। आँखिन आँखि लगे खरी देह दूबरी होय।–बिहारी।

हउँॐ–क्रि० अ० दे० "हौं"।

सर्व० दे० "हौं"।

हक†–संज्ञा पुं० [अनु०] वह धक्का जो सहसा चकपका उठने या घबरा उठने से हृदय में लगता है। धक। क्रि० दे० "धक"।

हक़–वि० [अ०] (१) जो झूठ न हो। सच। सत्य। (२) जो धर्म्म और नीति के अनुसार हो। वाजिब। ठीक। उचित। न्याय्य। जैसे,—हक़ बात।

यौ०—हक़ नाहक़।

संज्ञा पुं० (१) किसी वस्तु को पाने, पास रखने या व्यवहार में लाने की योग्यता जो न्याय या लोकरीति के अनुसार किसी

को प्राप्त हो। किसी वस्तु को अपने क़ब्ज़े में रखने, काम में लाने या लेने का अधिकार। स्वत्व। जैसे,—(क) इस जमीन पर हमारा हक़ है। (ख) तुम्हें इस जमीन पर पेड़ लगाने का क्या हक़ है?

यौ०—हक़दार। हक़शफ़ा।

(२) कोई काम करने या किसी से कराने का अधिकार जो किसी की आज्ञा, लोकरीति या न्याय के अनुसार प्राप्त हो। अधिकार। इख़्तियार। जैसे,—(क) तुम्हें दूसरे के लड़के को मारने का क्या हक़ है? (ख) तुम्हें हमारे आदमी से काम कराने का कोई हक़ नहीं है।

मुहा०—**हक़ दबाना या मारना** = किसी को उस वस्तु या बात से वंचित रखना जिसका उसे अधिकार प्राप्त हो। **हक़ पर लड़ना** = अपने न्याययुक्त अधिकार के लिये प्रयत्न करना। किसी ऐसी वस्तु को पाने, पास रखने, काम में लाने अथवा कोई ऐसी बात करने के लिये विरोधियों के विरुद्ध उद्योग करना जो न्याय या रीति के अनुसार कोई पा सकता हो, काम में ला सकता हो अथवा कर सकता हो। स्वत्व रक्षा के हेतु प्रयत्न करना। **हक़ दबना या मारा जाना** = उस वस्तु या बात से वंचित होना जिसका न्याय से अधिकार प्राप्त हो। वह वस्तु न पाना या वह काम न करने पाना जो न्यायतः वह पा सकता या कर सकता हो। स्वत्व की हानि होना। **हक़ साबित करना** = यह सिद्ध करना कि किसी वस्तु को पाने, रखने या काम में लाने अथवा कोई काम करने का हमें अधिकार है। स्वत्व प्रमाणित करना। **हक़ में** = हित के लिये। लाभ की दृष्टि से। पक्ष में। विषय में। जैसे,—(क) ऐसा करना तुम्हारे हक़ में अच्छा न होगा। (ख) हम तुम्हारे हक़ में दुआ करेंगे।

(३) कर्त्तव्य। फ़र्ज़।

मुहा०—**हक़ अदा करना** = वह बात करना जो न्याय, नीति आदि की दृष्टि से करणीय हो। कर्त्तव्य पालन करना। जैसे,—वे दोस्ती का हक़ अदा कर रहे हैं।

(४) वह वस्तु जिसे पाने, पास रखने या काम में लाने का अथवा वह बात जिसे करने का न्याय से अधिकार प्राप्त हो। जैसे,—(क) यह रुपया तो नौकरों का हक़ है। (ख) यहाँ टहलना हमारा हक़ है। (५) वह द्रव्य या धन जो किसी काम या व्यवहार में किसी को रीति के अनुसार मिलता हो। किसी मामले में दस्तूर के मुताबिक़ मिलनेवाली कुछ रक़म। दस्तूरी। जैसे,—(क) ५) सैकड़ा तो पुरोहित का हक़ है। (ख) हमारा हक़ देकर तब जाइए। (ग) अदालत में मुहर्रिरों का हक़ भी तो देना पड़ता है।

क्रि० प्र०—चाहना।—देना।—पाना।—माँगना।

मुहा०—हक़ दबाना या मारना = वह रक़म न देना जो किसी को रीति के अनुसार दी जाती हो। जैसे,—नौकरों का हक़ मारकर आप राजा न हो जायँगे।

(६) ठीक बात। वाजिब बात। उचित बात। (७) उचित पक्ष। न्याय्य पक्ष। जैसे,—मैं तो हक़ पर हूँ, मुझे किस बात का डर है।

मुहा०—हक़ पर होना = न्याय्य पक्ष का अवलंबन करना। उचित बात का आग्रह करना।

(८) खुदा। ईश्वर। (मुसलमान)

हक़दार-संज्ञा पुं० [अ० हक़ + फ़ा० दार] वह जिसे हक़ हासिल हो। स्वत्व या अधिकार रखनेवाला। जैसे,—इस जायदाद के जितने हक़दार हैं, सब हाज़िर हों।

हक़ नाहक़-अव्य० [अ० + फ़ा०] (१) बिना उचित अनुचित के विचार के। ज़बरदस्ती। धींगा धींगी से। जैसे,—क्यों हक़-नाहक़ बेचारे की चीज ले रहे हो? (२) बिना कारण या प्रयोजन। निष्प्रयोजन। व्यर्थ। फ़ज़ूल। जैसे,—क्यों हक़ नाहक़ लड़ रहे हो।

हकबक-वि० दे० "हक्का बक्का"।

हकबकाना-क्रि० अ० [अनु० हक्का बक्का] किसी ऐसी बात पर, जिसका पहले से अनुमान तक न रहा हो अथवा जो अनहोनी या भयानक हो, स्तंभित हो जाना। ठक रह जाना। हक्का बक्का हो जाना। सहसा निश्चेष्ट और मौन होकर मुँह ताकने लगना। घबरा जाना।

हक़ मालिकाना-संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] किसी चीज या जायदाद के मालिक का हक़।

हक़ मौरूसी-संज्ञा पुं० [अ०] वह अधिकार जो पितृपरंपरा से प्राप्त हो। वह हक़ जो बाप दादों से चला आता हो।

हकला-वि० [हिं० हकलाना] रुक रुक कर बोलनेवाला। वाग्दोष के हकलानेवाला। कारण किसी वाक्य को एक साथ न बोल सकनेवाला।

हकलाना-क्रि० अ० [अनु० हक] स्वर-नाली के ठीक काम न करने या जीभ तेजी से न चलने के कारण बोलने में अटकना। रुक रुक कर बोलना।

हकलाहा†-वि० दे० "हकला"।

हक़शफ़ा-संज्ञा पुं० [अ०] किसी जमीन को खरीदने का औरों से ऊपर या अधिक वह हक़ या स्वत्व जो गाँव के (जिसमें बेची हुई जमीन हो) हिस्सेदारों अथवा पड़ोसियों को प्राप्त हो। (यदि कोई इस प्रकार की जमीन बेच देता है, तो जिसे इस प्रकार का स्वत्व प्राप्त होता है, वह अदालत के द्वारा उतना ही—या जितना अदालत ठहरा दे—दाम देकर वह जमीन ले सकता है।)

हकार-संज्ञा पुं० [सं०] ह अक्षर या वर्ण।

हकारना-क्रि० स० [देश०] (१) पाल तानना या खड़ा करना। (२) झंडा या निशान उठाना। (लश्करी)

हक़ीक़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तत्त्व। सचाई। असलियत।

सत्यता। (२) तथ्य। ठीक बात। असल असल बात। (३) ठीक ठीक वृत्तांत। असल हाल। सत्य वृत्त। जैसे,—उसकी हक़ीक़त यों है।

मुहा०—हक़ीक़त में = वास्तव में। सचमुच। हक़ीक़त खुलना = असल बात का पता लग जाना। ठीक ठीक बात मालूम हो जाना।

हक़ीक़ी-वि० [अ०] (१) सच्चा। ठीक। सत्य। (२) खास अपना। सगा। आत्मीय। जैसे,—हक़ीक़ी भाई। (३) ईश्वरोन्मुख। भगवत्संबंधी। जैसे,—इश्क़ हक़ीक़ी।

हकीम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) विद्वान्। आचार्य। जैसे,—हकीम अरस्तू। (२) यूनानी रीति से चिकित्सा करनेवाला। वैद्य। चिकित्सक।

हकीमी-संज्ञा स्त्री० [अ० हकीम + ई (प्रत्य०)] (१) यूनानी आयुर्वेद। यूनानी चिकित्सा-शास्त्र। (२) हकीम का पेशा या काम। वैदगी। जैसे,—वे लखनऊ में हकीमी करते हैं।

हक़ीयत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) स्वत्व। अधिकार। (२) वह वस्तु या जायदाद जिस पर हक़ हो। (३) अधिकार होने का भाव। जैसे,—तुम अपनी हक़ीयत साबित करो।

हक़ीर-वि० [अ०] (१) जिसका कुछ महत्व न हो। बहुत छोटा। तुच्छ। नाचीज़। (२) उपेक्षा के योग्य।

हक़ूक़-संज्ञा पुं० [अ०] 'हक़' का बहुवचन। कई प्रकार के स्वत्व या अधिकार।

हक़ूमत†-संज्ञा पुं० दे० "हुकूमत"।

हक्क-संज्ञा पुं० [अनु०] हाथी को बुलाने का शब्द।

†संज्ञा पुं० दे० "हक़"।

हक्का-संज्ञा पुं० [अ० हक़ा] वह नोट या पुरज़ा जो कोई गल्ले का व्यापारी किसी असामी के लगान की जमानत के रूप में ज़मींदार को देता है।

हक्काक-संज्ञा पुं० [?] नग जड़नेवाला। नग को काटने, सान पर चढ़ाने, जड़ने आदि का काम करनेवाला। जड़िया।

हक्का बक्का-वि० [अनु० हक, धक] किसी ऐसी बात पर स्तंभित जिसका पहले से अनुमान तक न रहा हो अथवा जो अनहोनी या भयानक हो। सहसा निश्चेष्ट और मौन होकर मुँह ताकता हुआ। भौचक। घबराया हुआ। चित्रलिखा सा। ठक। जैसे,—यह सुनते ही वह हक्का बक्का हो गया।

हक्कार-संज्ञा पुं० [सं०] चिल्लाकर बुलाने का शब्द। पुकार।

हगनहटी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० हगना] (१) मलत्याग की इंद्रिय। गुदा। (२) वह स्थान जहाँ लोग पाखाना फिरते हैं।

हगना-क्रि० अ० [सं० भग ?] (१) मलोत्सर्ग करना। मल त्याग करना। झाड़ा फिरना। पाखाना फिरना।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—हग भरना या मारना = (१) हग देना। मलोत्सर्ग कर देना। (२) अत्यंत भयभीत होना। बहुत डर जाना।

(२) दबाव के मारे कोई वस्तु दे देना। झख मारकर अदा कर देना। जैसे,—दावा होगा तो सब रुपया हग दोगे।

हगनेटी-संज्ञा स्त्री० दे० "हगनहटी"।

हगाना-क्रि० स० [हिं० हगना का स०] (१) हगने की क्रिया कराना। पाखाना फिरने पर विवश करना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) पाखाना फिरने में सहायता देना। मलत्याग कराना। जैसे,—बच्चे को हगाना।

हगास-संज्ञा स्त्री० [हिं० हगना + आस (प्रत्य०)] हगने की इच्छा। मलत्याग का वेग या इच्छा।

क्रि० प्र०—लगना।

हगोड़ा-वि० [हिं० हगना + ओड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० हगोड़ी] बहुत हगनेवाला। बहुत झाड़ा फिरनेवाला।

हचकना†-क्रि० अ० [अनु० हच हच] चारपाई, गाड़ी आदि का झोंका खाना या बार बार हिलना। धक्के से हिलना डोलना।

हचका†-संज्ञा पुं० [हिं० हचकना] धक्का। झोंका।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

हचकाना-क्रि० स० [हिं० हचकना का स०] धक्के से हिलाना। झोंका देकर हिलाना।

हचकोला-संज्ञा पुं० [हिं० हचकना] वह धक्का जो गाड़ी, चारपाई आदि पर उछाल या हिलने डोलने से लगे। धचका।

हचना†*-क्रि० अ० [अनु० हच] किसी काम के करने में संकोच या आगापीछा करना। हिचकना।

हज-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों का काबे के दर्शन के लिये मक्के जाना। मुसलमानों की मक्के की तीर्थ-यात्रा। जैसे,—सत्तर चूहे खा के बिल्ली हज को चली।

हज़म-संज्ञा पुं० [अ०] पेट में पचने की क्रिया या भाव। पाचन।

वि० (१) जो पाचन शक्ति द्वारा रस या धातु के रूप में हो गया हो। पेट में पचा हुआ। जैसे,—दूध हज़म होना, रोटी हज़म करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) बेईमानी से दूसरे की वस्तु लेकर न दी हुई। बेईमानी से लिया हुआ। अनुचित रीति से अधिकार किया हुआ। उड़ाया हुआ। जैसे,—(क) दूसरे का माल या रुपया हज़म करना। (ख) दूसरे की चीज़ हज़म करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—कर जाना।—कर लेना।

मुहा०—हज़म होना = बेईमानी से ली हुई वस्तु का अपने पास रहना। जैसे,—बेईमानी का माल हज़म न होना।

हज़रत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) महात्मा। महापुरुष। जैसे,—हज़रत मुहम्मद। (२) अत्यंत आदर का संबोधन। महाशय। (३) नटखट या खोटा आदमी। (व्यंग्य) जैसे,—आप बड़े हज़रत हैं, यों ही झगड़ा लगाया करते हैं।

हज़रत सलामत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बादशाहों या नवाबों के लिये संबोधन का शब्द। (२) बादशाह।

हजाम-संज्ञा पुं० दे० "हज्जाम"।

हजामत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) हज्जाम का काम। बाल बनाने का काम। दाढ़ी के बाल मूँड़ने और सिर के बाल मूँड़ने या काटने का काम। क्षौर। (२) बाल बनाने की मज़दूरी। (३) सिर या दाढ़ी के बढ़े हुए बाल जिन्हें कटाना या मुँड़ाना हो।

मुहा०—हजामत बढ़ना = बालों का बढ़ना। हजामत बनाना = (१) दाढ़ी या सिर के बाल साफ करना या काटना। (२) लूटना। धन हरण करना। माल लेना। जैसे,—धूर्त्तों ने वहाँ उसकी खूब हजामत बनाई। (३) दंड देना। मारना पीटना। हजामत बनवाना = दाढ़ी के बाल साफ कराना या सिर के बाल कटाना। हजामत होना = (१) किसी के धन का धोखा देकर हरण होना। लूट होना। (२) दंड होना। शासन होना। मार पड़ना। जैसे,—बचा की वहाँ खूब हजामत हुई।

हज़ार-वि० [फ़ा०] (१) जो गिनती में दस सौ हो। सहस्र। (२) बहुत से। अनेक। जैसे,—उनमें हज़ार ऐब हों, पर वे हैं तो तुम्हारे भाई।

संज्ञा पुं० दस सौ की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१०००।

क्रि० वि० कितना ही। चाहे जितना अधिक। जैसे,—तुम हजार कहो, तुम्हारी बात मानता कौन है ?

हज़ारहा-वि० [फ़ा०] (१) हज़ारों। सहस्रों। (२) बहुत से।

हज़ारा-वि० [फ़ा०] (फूल) जिसमें हजार या बहुत अधिक पँखड़ियाँ हों। सहस्रदल। जैसे,—हज़ारा गेंदा।

संज्ञा पुं० (१) फुहारा। फ़ौवारा। (२) एक प्रकार की आतिशबाज़ी।

हज़ारी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक हज़ार सिपाहियों का सरदार। वह सरदार या नायक जिसके अधीन एक हज़ार फौज हो।

यौ०—पंज हजारी। दस हजारी।

विशेष—इस प्रकार के पद अकबर ने सरदारों और राजाओं महाराजाओं को दे रखे थे।

यौ०—हज़ारी बज़ारी = सरदारों से लेकर बनियों तक सब। अमीर गरीब सब। सर्वसाधारण।

(२) व्यभिचारिणी का पुत्र। दोगला। वर्ण संकर।

हज़ारों-वि० [फ़ा० हज़ार + ओं (प्रत्य०)] (१) सहस्रों। (२) बहुत से। अनेक। न जाने कितने। जैसे,—तुम्हारे ऐसे हजारों आते हैं।

हज़ूर-संज्ञा पुं० दे० "हुज़ूर"।

हज़ूरी-संज्ञा पुं० [अ० हज़ूर] [स्त्री० हज़ूरी] किसी बादशाह या राजा के सदा पास रहनेवाला सेवक।

हजो-संज्ञा स्त्री० [अ० हज्व] निंदा। बुराई। अपकीर्त्ति। बदनामी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हज्ज-संज्ञा पुं० दे० "हज"।

हज्जाम-संज्ञा पुं० [अ०] हजामत बनानेवाला। सिर और दाढ़ी के बाल मूँड़ने या काटनेवाला। नाई। नापित।

हट-संज्ञा स्त्री० दे० "हठ"।

हटक†*-संज्ञा स्त्री० [हिं० हटकना] (१) वारण। वर्जन।

मुहा०—हटक मानना = मना करने पर किसी काम से रुकना। निषेध का पालन करना। उ०—बंसी धुनि मृदु कान परत ही गुरुजन-हटक न मानति।—सूर।

(२) गायों को हाँकने की क्रिया या भाव।

हटकन-संज्ञा स्त्री० [हिं० हटकना] (१) वारण। वर्जन। मना करना। (२) चौपायों को फेरने का काम। हाँकना। (३) चौपायों को हाँकने की छड़ी या लाठी।

हटकना-क्रि० स० [हिं० हट = दूर होना + करना] (१) मना करना। निषेध करना। वर्जन करना। किसी काम से हटाना या रोकना। उ०—(क) तुम्ह हटकहु जौ चहहु उबारा। कहि प्रतापु, बल रोष हमारा।—तुलसी। (ख) जुरीं आय सिगरीं जमुना-तट हटक्यो कोउ न मान्यो।—सूर। (२) चौपायों को किसी ओर जाने से रोक कर दूसरी ओर फेरना। रोक कर दूसरी तरफ़ हाँकना। उ०—(क) पायँ परि बिनती करौं हौं हटकि लावौ गाय।—सूर। (ख) माधव जू! नेकु हटकौ गाय।—सूर।

मुहा०—हटकि = (१) हठात्। जबरदस्ती। (२) बिना कारण।

हटका†-संज्ञा पुं० [हिं० हटकना = रोकना] किवाड़ों को खुलने से रोकने के लिये लगाया हुआ काठ। किल्ली। अर्गल। ब्योंड़ा।

हटतार†-संज्ञा पुं० दे० "हरताल"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० हठतार] माला का सूत। उ०—प्रीत प्रीत हटतार तें नेह जु सरसै आइ। हिय तामैं कौं रसिकनिधि बेधि तुरत ही जाइ।

हटताल-संज्ञा स्त्री० [हिं० हट्ट = दूकान + ताल = ताला] किसी कर या महसूल से अथवा और किसी बात से असंतोष प्रकट करने के लिये दूकानदारों का दूकान बंद कर देना अथवा काम करनेवालों का काम बंद कर देना। हड़ताल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हटना-क्रि० अ० [सं० घट्टन] (१) किसी स्थान को त्याग कर दूसरे स्थान पर हो जाना। एक जगह से दूसरी जगह पर जा रहना। खिसकना। सरकना। टलना। जैसे,—(क) थोड़ा पीछे हटो। (ख) जरा हटकर बैठो। (ग) उन्होंने बहुत जोर लगाया, पर पत्थर जगह से न हटा।

संयो० क्रि०—हटना बढ़ना = ठीक स्थान से कुछ इधर उधर होना या सरकना।

(२) पीछे की ओर धीरे धीरे जाना। पीछे सरकना। जैसे,—भालों की मार से सेना हटने लगी। (३) विमुख होना। जी चुराना। करने से भागना। जैसे,—मैं काम से नहीं हटता।

मुहा०—(किसी बात से) पीछे न हटना = मुँह न मोड़ना। विमुख न होना। तत्पर या प्रस्तुत रहना। कोई काम करने को तैयार रहना। जैसे,—जो बात मैं कह चुका हूँ, उससे पीछे न हटूँगा।

(४) सामने से दूर होना। सामने से चला जाना। जैसे,—हमारे सामने से हट जाओ, नहीं तो मार खाओगे।

मुहा०—हटकर खड़ = चल। दूर हो। (अत्यंत अवज्ञा)

(५) किसी बात का नियत समय पर न होकर और आगे किसी समय होना। टलना। जैसे,—विवाह की तिथि अब हट गई। (६) न रह जाना। दूर होना। मिटना या शांत होना। जैसे,—आपदा हटना, संकट हटना, सूजन हटना। (७) व्रत, प्रतिज्ञा आदि से विचलित होना। बात पर दृढ़ न रहना।

ॐ† [हिं० हटकना] मना करना। निषेध करना। वारण करना। वर्जित करना। रोकना। उ०—देत दुःख बार बार कोऊ नहिं हटत।—सूर।

हटनी उड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हटना + उड़ना] मालखंभ की एक कसरत जिसमें पीठ के बल होकर ऊपर जाते हैं।

हटबया-संज्ञा पुं० [हिं० हाट + बया] [स्त्री० हटबई] हाट या बाजार में बैठकर सौदा बेचनेवाला। दूकानदार।

हटवाईॐ†-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाट + वाई (प्रत्य०)] सौदा लेना या बेचना। क्रय विक्रय। ख़रीद फ़रोख्त। उ०—साधो! करौ हटवाई हाट उठि जाई।—कबीर।

हटवाना-क्रि० स० [हिं० हटाना का प्रेरणा०] हटाने का काम दूसरे से कराना। हटाने में प्रवृत्त करना। दूसरे से स्थानांतरित कराना।

हटवारॐ†-संज्ञा पुं० [हिं० हाट + वारा, (वाला)] बाजार में बैठकर सौदा बेचनेवाला। दूकानदार।

हटाना-क्रि० स० [हिं० हटना का स०] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान पर करना। एक जगह से दूसरी जगह पर ले जाना। सरकाना। खिसकाना। किसी ओर चलाना या बढ़ाना। जैसे,—चौकी बाईं ओर हटा दो।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(२) किसी स्थान पर न रहने देना। दूर करना। जैसे,—(क) चारपाई इस कोठरी में से हटा दो। (ख) इस आदमी को यहाँ से हटा दो। (३) आक्रमण द्वारा भगाना। स्थान छोड़ने पर विवश करना। जैसे,—थोड़े से वीरों ने शत्रु की सारी सेना हटा दी। (४) किसी काम का करना या किसी बात का विचार या प्रसंग छोड़ना। जाने देना। जैसे,—(क) खतम करके हटाओ, कब तक यह काम लिए बैठे रहोगे? (ख) बखेड़ा हटाओ। (५) किसी व्रत, प्रतिज्ञा आदि से विचलित करना। बात पर दृढ़ न रहने देना। डिगाना।

हटुवा†-संज्ञा पुं० [हिं० हाट + उवा (प्रत्य०)] (१) दूकानदार। (२) अनाज तौलनेवाला। बया।

हटौती-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाड़ + औती (प्रत्य०)] देह की गठन। शरीर का ढाँचा। जैसे,—उसकी हटौती बहुत अच्छी है।

हट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाजार। (२) दूकान।

यौ०—चौहट्ट = बाजार का चौक।

हट्टचौरक-संज्ञा पुं० [सं०] बाजार में घूमकर चोरी करने या माल उचकनेवाला। चाई। गिरहकट।

हट्टा कट्टा-वि० [सं० हृष्ट + काष्ठ] [स्त्री० हट्टी कट्टी] हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा। मजबूत। दृढांग।

हठ-संज्ञा स्त्री० पुं० [सं०] [वि० हठी, हठीला] (१) किसी बात के लिये अड़ना। किसी बात पर जम जाना कि ऐसा ही हो। टेक। ज़िद। दुराग्रह। जैसे,—(क) नाक कटी, पर हठ न हटी। (ख) तुम तो हर बात के लिये हठ करने लगते हो। (ग) बच्चों का हठ ही तो है।

यौ०—हठधर्म। हठधर्मी।

मुहा०—हठ पकड़ना = किसी बात के लिये अड़ जाना। जिद करना। दुराग्रह करना। हठ रखना = जिस बात के लिये कोई अड़े, उसे पूरा करना। हठ में पड़ना = हठ करना। उ०—मन हठ परा न मान सिखावा।—तुलसी। हठ माँडना ॐ = हठ ठानना। उ०—कहाँ हठ माँड़ि रही री सजनी! टेरत स्याम सुजान।—सूर। हठ बाँधना = हठ पकड़ना।

(२) दृढ़ प्रतिज्ञा। अटल संकल्प। दृढ़तापूर्वक किसी बात का ग्रहण। उ०—(क) जो हठ राखै धर्म को, तेहि राखै करतार। (ख) तिरिया तेल, हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार।

मुहा०—हठ करना = हठ ठानना।

(३) बलात्कार। जबरदस्ती। (४) शत्रु पर पीछे से आक्रमण। (५) अवश्य होने की क्रिया या भाव। अवश्यंभाविता। अनिवार्य्यता।

हठधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] अपने मत पर उचित अनुचित या सत्य असत्य का विचार छोड़कर जमा रहना। दुराग्रह। कट्टरपन।

हठधर्मी-संज्ञा स्त्री० [सं० हठ + धर्म] (१) सत्य असत्य, उचित अनुचित का विचार छोड़कर अपनी बात पर जमे रहना। दूसरे की बात जरा भी न मानना। दुराग्रह। (२) अपने मत या संप्रदाय की बात लेकर अड़ने की क्रिया या प्रवृत्ति।

विचारों की संकीर्णता। कट्टरपन। जैसे,—यह मुसलमानों की हठधर्मी है कि वे व्यर्थ छेड़छाड़ करते हैं।

हठना&-क्रि० अ० [हिं० हठ+ना (प्रत्य०)] (१) हठ करना। जिद पकड़ना। दुराग्रह करना। उ०—(क) बरज्यो नेकु न मानत क्योंहूँ सखि ये नैन हठे।—सूर। (ख) जो पै तुम या भाँति हठैहो।—सूर।

मुहा०—हठ कर=बलात्। जबरदस्ती। किसी का कहना न मानकर। उ०—सुनि हठि चला महा अभिमानी।—तुलसी।

(२) प्रतिज्ञा करना। दृढ़ संकल्प करना।

हठ योग-संज्ञा पुं० [सं०] वह योग जिसमें चित्तवृत्ति हठात् बाह्य विषयों से हटाकर अंतर्मुख की जाती है और जिसमें शरीर को साधने के लिये बड़ी कठिन कठिन मुद्राओं और आसनों आदि का विधान है। नेती, धोती आदि क्रियाएँ इसी योग के अंतर्गत हैं। कायव्यूह का भी इसमें विशेष विस्तार किया गया है और शरीर के भीतर कुंडलिनी, अनेक प्रकार के चक्र तथा मणिपुर आदि स्थान माने गए हैं। स्वात्माराम की हठप्रदीपिका इसका प्रधान ग्रंथ माना जाता है। मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ इस योग के मुख्य आचार्य हो गए हैं। गोरखनाथ ने एक पंथ भी चलाया है जिसके अनुयायी कनफटे कहलाते हैं। पतंजलि के योग के दार्शनिक अंश को छोड़कर उसकी साधना के अंश को लेकर जो विस्तार किया गया है, वही हठ योग है।

हठविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] हठयोग।

हठशील-वि० [सं०] हठ करनेवाला। हठी। ज़िद्दी।

हठात्-प्रत्य० [सं०] (१) हठपूर्वक। दुराग्रह के साथ। लोगों के मना करने पर भी। (२) ज़बरदस्ती से। बलात्। (३) अवश्य। ज़रूर।

हठात्कार-संज्ञा पुं० [सं०] बलात्कार। ज़बरदस्ती।

हठिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोलाहल। शोर। हल्लागुल्ला।

हठी-वि० [सं० हठिन्] हठ करनेवाला। अपनी बात पर अड़नेवाला। ज़िद्दी। टेकी।

हठीला-वि० [सं० हठ+ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० हठीली] (१) हठ करनेवाला। हठी। ज़िद्दी। उ०—तू अजहूँ तजि मान हठीली कहाँ तोहि समुझाय।—सूर। (२) दृढ़-प्रतिज्ञ। बात का पक्का। अपने संकल्प या वचन को पूरा करनेवाला। (३) लड़ाई में जमा रहनेवाला। धीर। उ०—ऐसो तोहि न बूझिए हनुमान हठीले।—तुलसी।

हड़-संज्ञा स्त्री० [सं० हरीतकी] (१) एक बड़ा पेड़ जिसके पत्ते महुए के से चौड़े चौड़े होते हैं और शिशिर में झड़ जाते हैं। यह उत्तर भारत, मध्य प्रदेश, बंगाल और मद्रास के जंगलों में पाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत चिकनी, साफ, मजबूत और भूरे रंग की होती है जो इमारत में लगाने, और खेती तथा सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। इसका फल व्यापार की एक बड़ी प्रसिद्ध वस्तु है और अत्यंत प्राचीन काल से औषध के रूप में काम में लाया जाता है। वैद्यक में हड़ के बहुत अधिक गुण लिखे गए हैं। हड़ भेदक और कोष्ठ शुद्ध करनेवाली औषधों में प्रधान है और संकोचक होने पर भी पाचक चूर्णों में इसका योग रहा करता है। हड़ की कई जातियाँ होती हैं जिनमें से दो सर्वसाधारण में प्रसिद्ध हैं—छोटी हड़ और बड़ी हड़ या हर्रा। छोटी हड़ में भी जो छोटी जाति होती है, वह जौंगी हड़ कहलाती है। वैद्यक में हड़ शीतल, कसैली, मूत्र लानेवाली और रेचक मानी जाती है। पाचक, चूर्ण आदि में छोटी हड़ का ही अधिकतर व्यवहार होता है। त्रिफला में बड़ी हड़ (हर्रा) ली जाती है। बड़ी हड़ का व्यवहार चमड़ा सिझाने, कपड़ा रँगने आदि में बहुत अधिक होता है। हड़ में कसाव-सार बहुत अधिक होता है, इससे यह संकोचक होती है। वैद्यक में हड़ सात प्रकार की कही गई है—विजया, रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया, जीवंती और चेतकी। (२) एक प्रकार का गहना जो हड़ के आकार का होता और नाक में पहना जाता है। लटकन।

हड़क-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) पागल कुत्ते के काटने पर पानी के लिये गहरी आकुलता।

क्रि० प्र०—उठना।

(२) किसी वस्तु को पाने की गहरी झक। पागल करनेवाली चाह। उत्कट इच्छा। रट। धुन। जैसे,—तुम्हें तो उस किताब की हड़क सी लग गई है।

क्रि० प्र०—लगना।

हड़कत-संज्ञा स्त्री० दे० "हड़जोड़"।

हड़कना-क्रि० अ० [हिं० हड़क] किसी वस्तु के अभाव से दुःखी होना। तरसना।

हड़काना†-क्रि० स० [देश०] (१) आक्रमण करने, घेरने, तंग करने आदि के लिये पीछे लगा देना। लहकारना। पीछे छोड़ना। (२) किसी वस्तु के अभाव का दुःख देना। तरसाना। जैसे,—क्यों बच्चे को ज़रा ज़रा सी चीज के लिये हड़काते हो। (३) कोई वस्तु माँगनेवाले को न देकर भगा देना। नाहीं करके हटा देना। उ०—हड़काया भला, परकाया नहीं भला। (कहा०)

हड़काया-वि० [हिं० हड़काना] [स्त्री० हड़काई] (१) पागल। बावला। (कुत्ते के लिये) जैसे,—हड़काई कुतिया। (२) किसी वस्तु के लिये उतावला। घबराया हुआ।

हड़गिल्ल-संज्ञा पुं० दे० "हड़गीला"।

हड़गीला-संज्ञा पुं० [हिं० हाड़+गिलना ?] एक चिड़िया का

नाम। बगले की जाति का एक पक्षी जिसकी टाँगें और चोंच बहुत लंबी होती है। दस्ता। चनियारी।

हड़जोड़-संज्ञा पुं० [हिं० हाड़+जोड़ना] एक प्रकार की लता जिसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं। यह भीतरी चोट के स्थान पर लगाई जाती है। कहते हैं कि इससे टूटी हुई हड्डी भी जुड़ जाती है।

हड़ताल-संज्ञा स्त्री० [सं० हट्ट = दूकान या बाजार+ताला] किसी कर या महसूल से अथवा और किसी बात से असंतोष प्रकट करने के लिये दूकानदारों का दूकान बंद कर देना या काम करनेवालों का काम बंद कर देना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा स्त्री० दे० "हरताल"।

हड़ना-क्रि० अ० [हिं० धड़ा] तौल में जाँचा जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

हड़प-वि० [अनु०] (१) पेट में डाला हुआ। निगला हुआ। (२) गायब किया हुआ। अनुचित रीति से ले लिया हुआ। उड़ाया हुआ।

मुहा०—हड़प करना = गायब करना। बेईमानी से ले लेना। अनुचित रीति से अधिकार कर लेना। जैसे,—दूसरे का रुपया इसी तरह हड़प कर लोगे?

हड़पना-क्रि० स० [अनु० हड़प] (१) मुँह में डाल लेना। खा जाना। (२) दूसरे की वस्तु अनुचित रीति से ले लेना। गायब करना। उड़ा लेना। जैसे,—दूसरे का माल या रुपया हड़पना।

हड़फूटन†-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाड़+फूटना] शरीर के भीतर का वह दर्द जो हड्डियों के भीतर तक जान पड़े। हड्डियों की पीड़ा।

हड़फूटनी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० हड़फूटन] चमगादड़। (लोग चमगादड़ की हड्डी की गुरिया पैर के दर्द में पहनते हैं।)

हड़फोड़-संज्ञा पुं० [हिं० हाड़+फोड़ना] एक प्रकार की चिड़िया।

हड़बड़-संज्ञा स्त्री० [अनु०] उतावलेपन की मुद्रा। जल्दबाज़ी प्रकट करनेवाली गति विधि।

मुहा०—हड़बड़ करना = जल्दी मचाना। जल्दबाजी करना।

हड़बड़ाना-क्रि० अ० [अनु०] जल्दी करना। उतावलापन करना। शीघ्रता के कारण कोई काम घबराहट से करना। आतुर होना। जैसे,—अभी हड़बड़ाओ मत, गाड़ी आने में देर है।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० किसी को जल्दी करने के लिये कहना। जैसे,—तुम जाकर हड़बड़ाओगे तब वह घर से चलेगा।

संयो० क्रि०—देना।

हड़बड़िया-वि० [हिं० हड़बड़ी+इया० (प्रत्य०)] हड़बड़ी करनेवाला। जल्दी मचानेवाला। जल्दबाज। उतावला। आतुरता प्रकट करनेवाला।

हड़बड़ी-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) जल्दी। उतावली। शीघ्रता। (२) शीघ्रता के कारण आतुरता। जल्दी के कारण घबराहट। जैसे,—हड़बड़ी में काम ठीक नहीं होता।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—लगना।—होना।

मुहा०—हड़बड़ी में पड़ना = ऐसी स्थिति में पड़ना जिसमें काम बहुत जल्दी जल्दी करना पड़े। उतावली की दशा में होना।

हड़हड़ाना-क्रि० स० [अनु०] जल्दी करने के लिये उकसाना। क्षीघ्रता करने की प्रेरणा करना। जल्दी मचाकर दूसरे को घबराना। जैसे,—वह क्यों न चलेगा, जब जाकर हड़हड़ाओगे, तब उठेगा।

हड़हा†-संज्ञा पुं० [देश०] जंगली बैल।

संज्ञा पुं० [हिं० हाड़] वह जिसने किसी के पुरखे की हत्या की हो।

वि० [हिं० हाड़] [स्त्री० हड़ही] जिसकी देह में हड्डियाँ ही रह गई हों। बहुत दुबला पतला।

हड़ा-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) चिड़ियों को उड़ाने का शब्द जो खेत के रखवाले करते हैं।

मुहा०—हड़ा हड़ा करना = बोलकर चिड़िया उड़ाना।

(२) पथरकला बंदूक।

हड़ावरि*-संज्ञा स्त्री० दे० "हड़ावल"।

हड़ावल-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाड़+सं० अवलि] (१) हड्डियों की पंक्ति या समूह। (२) हड्डियों का ढाँचा। ठठरी। उ०—राम सरासन तें चले तीर, रहे न शरीर हड़ावरि फूटी।—तुलसी। (३) हड्डियों की माला। उ०—काथरि कया हड़ावरि बाँधे। मुंडमाल औ हत्या काँधे।—जायसी।

हड़ि-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की काठ की बेड़ी जो पैर में डाल दी जाती थी।

हड़ीला-वि० [हिं० हाड़+ईला (प्रत्य०)] (१) जिसमें हड्डी हो। (२) जिसकी देह में केवल हड्डियाँ रह गई हों। बहुत दुबला पतला।

हड़ुवा-संज्ञा स्त्री० [सं० हरिद्रा] एक प्रकार की हल्दी जो कटक में होती है।

हड्डा-संज्ञा पुं० [सं० हड्डिका] पतंग जाति का एक कीट जो मधुमक्खियों के समान छत्ता बनाकर अंडे देता है। भिड़। बर्रे। ततैया।

हड्डी-संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थि, प्रा० अट्ठि, अट्ठि। (सं० कोशों का 'हड्ड' शब्द देशभाषा से ही लिया जान पड़ता है)] शरीर की तीन प्रकार की वस्तुओं—कठोर, कोमल और द्रव—में से कठोर वस्तु जो भीतर ढाँचे या आधार के रूप में होती है। अस्थि।

विशेष—शरीर के ढाँचे या ठठरी में अनेक आकार और प्रकार की हड्डियाँ होती हैं। यद्यपि ये खंड खंड होती हैं, पर एक दूसरी से जुड़ी होती हैं। मनुष्य के शरीर में दो सौ से अधिक हड्डियाँ होती हैं। हड्डियों के खंड खंड जुड़े रहने से अंगों में लचीलापन रहता है जिससे वे बिना किसी कठिनता के अच्छी तरह हिल डुल सकते हैं। शरीर में हड्डियों के होने से ही हम सीधे खड़े हो सकते हैं। बचपन में हड्डियाँ मुलायम और लचीली होती हैं; इसी से बच्चे वर्ष सवा वर्ष तक खड़े नहीं हो सकते। युवावस्था आने पर हड्डियाँ अच्छी तरह दृढ़ और कड़ी हो जाती हैं। बुढ़ापे में वे जीर्ण और कड़ी हो जाती हैं और सहज में टूट सकती हैं।

शरीर की और वस्तुओं के समान हड्डी भी एक सजीव वस्तु है; उसमें भी रक्त का संचार होता है। इसमें चूने का अंश कुछ विशेष होता है। किसी हड्डी के टुकड़े को लेकर कुछ देर तक गंधक के तेजाब में रखें तो उसका कड़ापन दूर हो जायगा।

मुहा०—हड्डी उखड़ना = हड्डी का जोड़ खुल जाना। हड्डी का जोड़ खुलना = हड्डी उखड़ना। हड्डी टूटना = हड्डी फूटना। हड्डियाँ गढ़ना या तोड़ना = खूब मारना। खूब पीटना। हड्डियाँ निकल आना = मांस न रहने के कारण हड्डियाँ दिखाई पड़ना। शरीर बहुत दुबला होना। पुरानी हड्डी = पुराने आदमी का दृढ़ शरीर। पुराने समय का मजबूत आदमी। जैसे,—यह पुरानी हड्डी है, बुढ़ापे में भी तुम्हें पछाड़ सकते हैं।

(२) कुल। वंश। खानदान। जैसे,—हड्डी देखकर विवाह करना।

हत-वि० [सं०] (१) वध किया हुआ। मारा हुआ। जो मारा गया हो। (२) जिस पर आघात किया गया हो। जिस पर चोट लगाई गई हो। पीटा हुआ। ताड़ित। (३) खोया हुआ। गँवाया हुआ। जो न रह गया हो। रहित। विहीन। जैसे,—श्रीहत, हतोत्साह। (४) जिसमें या जिस पर ठोकर लगी हो। जैसे,—हत रेणु। (५) नष्ट किया हुआ। बिगाड़ा हुआ। चौपट किया हुआ। खराब किया हुआ। (६) तंग किया हुआ। हैरान। (७) पीड़ित। ग्रस्त। (८) स्पर्श किया हुआ। लगा हुआ। जिससे छू गया हो। (ज्योतिष) (९) गया बीता। निकृष्ट। निकम्मा। (१०) गुणा किया हुआ। गुणित। (गणित)

हतक-संज्ञा स्त्री० [अ० हतक = फाड़ना] हेठी। बेइज्जती। अप्रतिष्ठा।

क्रि० प्र०—करना। होना।

यौ०—हतक इज्जत। हतक इज्ज़ती।

हतक इज्ज़ती-संज्ञा स्त्री० [अ० हतक + इज्जत] अप्रतिष्ठा। मानहानि। बेइज्ज़ती। जैसे,—उसने उस अखबार पर हतक-इज्ज़ती का दावा किया है।

हतज्ञान-वि० [सं०] ज्ञान-शून्य। अचेत। बेहोश। संज्ञा-शून्य।

हतदैव-वि० [सं०] दई का मारा। अभागा।

हतना-क्रि० स० [सं० हत + ना (हिं० प्रत्य०)] (१) वध करना। मार डालना। उ०—कहाँ राम रन हतौं प्रचारी।—तुलसी। (२) मारना। पीटना। प्रहार करना। (३) अन्यथा करना। पालन न करना। भंग करना। न मानना। उ०—मद्यपान रत, स्त्रीजित होई। सन्निपात युत वातुल जोई। देखि देखि तिनको सब भागै। तासु बात हति पाप न लागै।—केशव।

हतप्रभ-वि० [सं०] जिसकी कांति या तेज नष्ट हो गया हो। प्रभा-रहित।

हतप्रभाव-वि० [सं०] (१) जिसका प्रभाव न रह गया हो। जिसका असर जाता रहा हो। (२) जिसका अधिकार न रह गया हो। जिसकी बात कोई न मानता हो।

हतबुद्धि-वि० [सं०] बुद्धि-शून्य। मूर्ख।

हतभागी*-वि० [सं० हत + हिं० भाग्य] [स्त्री० हतभागिन, हतभागिनी] अभागा। भाग्यहीन।

हतभाग्य-वि० [सं०] भाग्यहीन। बदकिस्मत।

हतवाना-क्रि० स० [हिं० हतना का प्रेरणा०] बध कराना। मरवाना।

हतवीर्य-वि० [सं०] बल रहित। शक्तिहीन।

हता-वि० स्त्री० [सं०] नष्ट चरित्र की। व्यभिचारिणी।

*†क्रि० स० [होना का भूतकाल] था।

हताना-क्रि० स० दे० "हतवाना"।

हताश-वि० [सं०] जिसे आशा न रह गई हो। निराश। नाउम्मीद।

हताहत-वि० [सं०] मारे गए और घायल। जैसे,—उस युद्ध में हताहतों की संख्या एक हजार थी।

हतोत्साह-वि० [सं०] जिसे कुछ करने का उत्साह न रह गया हो। जिसे कोई बात करने की उमंग न हो।

हत्थ*-संज्ञा पुं० दे० "हाथ"।

हत्था-संज्ञा पुं० [हिं० हत्थ, हाथ] (१) किसी भारी औजार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाता हो। दस्ता। मूठ। (२) रेशमी कपड़े बुननेवालों के करघे में लकड़ी का वह ढाँचा जो छत से लगाकर नीचे लटकाया रहता है और जो इधर उधर झूलता रहता है। (३) तीन हाथ के लगभग लंबा लकड़ी का बल्ला जो एक छोर पर हाथ की हथेली के समान चौड़ा और गहरा होता है और जिससे खेत की नालियों का पानी चारों ओर उलीचा जाता है। हाथा। हथेरा। (४) निवार बुनने में लकड़ी का एक औजार जो एक ओर कुछ पतला होता है और कंघी की भाँति सूत बैठाने के काम में आता है। (५) एक प्रकार का भद्दा रंग जो सुर्खी लिए पीला या मटमैला होता है। (६) पत्थर या ईंट जो दंड करते समय हाथ के नीचे रख लेते हैं। (७) केले के फलों का घौद

या गुच्छा। पंजा। (८) ऐपन से बना हाथ के पंजे का चिह्न जो पूजन आदि के अवसर पर दीवार पर बनाया जाता है। हाथ का छापा। (९) गड़ेरियों का वह औजार जिससे वे कंबल बुनते समय पटिया ठोंकते हैं।

हत्था जड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी + जड़ी] एक छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ सुगंधित होती हैं और जो भारतवर्ष के कई भागों में पाया जाता है। इसकी पत्तियों का रस घाव और फोड़े आदि पर रखा जाता है। बिच्छू और भिड़ के डंक मारे हुए स्थान पर भी यह लगाया जाता है। संस्कृत में इसे हस्तिशुंडा कहते हैं।

हत्थी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हत्था, हाथ] (१) किसी औजार या हथियार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाय। दस्ता। मूँठ। (२) चमड़े का वह टुकड़ा जिसे छीपी रंग छापते समय हाथ में लगा लेते हैं। (३) वह लकड़ी जिससे कड़ाह में ईख का रस चलाते हैं। (४) गोमुखी की तरह का ऊनी थैला जिससे घोड़ों का बदन पोंछते हैं। (५) बारह गिरह लंबी लकड़ी जिसमें पीतल के छः दाँत लगे रहते हैं और जो कपड़ा बुनते समय उसे ताने रहने के लिये लगाई जाती है।

हत्थे-क्रि० वि० [हिं० हाथ, हत्थ] हाथ में।

मुहा०—हत्थे चढ़ना = (१) हाथ में आना। अधिकार में आना। प्राप्त होना। (२) वश में होना। प्रभाव के भीतर आना।

हत्थेदंड-संज्ञा पुं० [हिं० हत्था + दंड] वह दंड (कसरत) जो ऊँची ईंट या पत्थर पर हाथ रखकर किया जाता है।

हत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मार डालने की क्रिया। बध। खून।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हत्या लगना = हत्या का पाप लगना। किसी के बध का दोष ऊपर आना। जैसे—गाय मारने से हत्या लगती है।

(२) हैरान करनेवाली बात। झंझट। बखेड़ा। जैसे,—(क) कहाँ की हत्या लाए, हटाओ। (ख) चलो, हत्या टली।

मुहा०—हत्या टलना = झंझट दूर होना। हत्या सिर लगाना = बखेड़े का काम देना। झंझट लादना।

हत्यार†-संज्ञा पुं० दे० "हत्यारा"।

हत्यारा-संज्ञा पुं० [सं० हत्या + कार] [स्त्री० हत्यारिन] हत्या करनेवाला। बध करनेवाला। जान लेनेवाला। हिंसा करनेवाला।

हत्यारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हत्यारा] (१) हत्या करनेवाली। प्राण लेनेवाली। (२) हत्या का पाप। प्राणबध का दोष। खून का अज़ाब।

क्रि० प्र०—लगना।

हथ-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ] 'हाथ' का संक्षिप्त रूप जिसका व्यवहार समस्त पदों में होता है। जैसे,—हथकंडा, हथलेवा।

हथ-उधार-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + उधार] वह कर्ज जो थोड़े दिनों के लिये यों ही बिना किसी प्रकार की लिखा पढ़ी के लिया जाय। हथफेर। दस्तगरदाँ।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

हथकंडा-संज्ञा पुं० [सं० हस्त, हिं० हाथ + सं० कांड] (१) हाथ को इस प्रकार जल्दी से और ढंग के साथ चलाने की क्रिया जिससे देखनेवालों को उसके द्वारा किए हुए काम का ठीक ठीक पता न लगे। हाथ की सफाई। हस्तलाघव। हस्त-कौशल। जैसे,—बाजीगरों के हथकंडे। (२) गुप्त चाल। चालाकी का ढंग। चतुराई की युक्ति। जैसे,—ये सब हथकंडे मैं खूब पहचानता हूँ।

हथकड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + कड़ा] डोरी से बँधा हुआ लोहे का कड़ा जो कैदी के हाथ में पहना दिया जाता है (जिसमें वह भाग न सके)।

क्रि० प्र०—पड़ना।—डालना।

हथकरा-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + करना] (१) धुनिये की कमान में बँधा हुआ कपड़े या रस्सी का टुकड़ा जिसे धुनिए हाथ से पकड़े रहते हैं। (२) चमड़े का दस्ताना जिसे चारे के लिये कँटीले झाड़ काटते समय पहन लेते हैं।

हथकरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + कड़ा] दूकान के किवाड़ों में लगा हुआ एक प्रकार का ताला जो एक कड़ी से जुड़े हुए लोहे के दो कड़ों के रूप में होता है और दोनों ओर ताले के अँकुड़े की तरह खुला रहता है। इसी में हाथ डालकर कुंजी लगा दी जाती है।

हथकल-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + कल] (१) पेंच कसने के लिये लुहारों का एक औजार। (२) करघे की दो डाँड़ियाँ जिनका एक छोर तो हत्थे के ऊपर बँधा रहता है और दूसरा लग्घे में। (३) तार ऐंठने के लिये एक औजार जो आठ अंगुल का होता है और जिसमें पेंचकश लगा होता है। (४) दे० "हथकरा"।

हथकोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + कोड़ा] कुश्ती का एक पेच।

हथखंडा-संज्ञा पुं० दे० "हथकंडा"।

हथछुट-वि० [हिं० हाथ + छूटना] जिसका हाथ मारने के लिये बहुत जल्दी छूटता या उठता हो। जिसको मार बैठने की आदत हो।

हथधरी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + धरना] लकड़ी की पटरी जो नाव से लगाकर जमीन तक दो आदमी इसलिये पकड़े रहते हैं जिसमें उस पर से होकर लोग उतर जायँ।

हथनाल-संज्ञा पुं० [हिं० हाथी + नाल] वह तोप जो हाथियों पर चलती थी। गजनाल।

हथनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी + नी (प्रत्य०)] हाथी की मादा।

हथफूल-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + फूल] (१) एक प्रकार की आतशबाज़ी। (२) हथेली की पीठ पर पहनने का एक

जड़ाऊ गहना जो सिकड़ियों के द्वारा एक ओर तो अँगूठियों से बँधा रहता है और दूसरी ओर कलाई से। हथसाँकर। हथसंकर।

हथफेर-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + फेरना] (१) प्यार करते हुए शरीर पर हाथ फेरने की क्रिया। (२) रुपये पैसे के लेन देन के समय हाथ से कुछ चालाकी करना जिससे दूसरे के पास कम या खराब सिक्के जायँ। हाथ की चालाकी। (३) दूसरे के माल को चुपचाप ले लेना। किसी की वस्तु या धन को सफाई से उड़ा लेना।

क्रि० प्र०—करना।

(४) थोड़े दिनों के लिये बिना लिखा पढ़ी के लिया या दिया हुआ कर्ज। हाथ-उधार।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

हथबेंटा-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + बेंट] एक प्रकार की कुदाली जो खड़े गन्ने काटने के काम में आती है।

हथरखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + रखना] चमड़े की थैली जो कोल्हू में गन्ने डालनेवाला हाथ में पहने रहता है।

हथली-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ] चरखे की मुठिया जिसे पकड़ कर चरखा चलाते हैं।

हथलेवा-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + लेना] विवाह में वर का कन्या का हाथ अपने हाथ में लेने की रीति। पाणिग्रहण। उ०—सेद सलिल, रोमांच कुस गहि दुलही अरु नाथ। हियो दियो सँग हाथ के हथलेवा ही हाथ।—बिहारी।

हथवाँस-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + वाँस (प्रत्य०)] नाव चलाने के सामान। जैसे,—लग्गा, पतवार, डाँड़ा इत्यादि। उ०—अस बिचारि गुह ज्ञाति सन कहेउ सजग सब होहु। हथ-वाँसहु बोरहु तरनि कीजिय घाटारोहु।—तुलसी।

हथवाँसना†-क्रि० स० [हिं० हाथ + अवाँसना] किसी व्यवहार में लाई जानेवाली वस्तु में पहले पहल हाथ लगाना। काम में लाना। व्यवहार करना।

हथसंकर-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + साँकर] हथेली की पीठ पर पहनने का एक गहना जो फूल के आकार का होता है और जिसमें पतली सिकड़ियाँ लगी होती हैं। हथफूल।

हथसाँकला-संज्ञा पुं० दे० "हथसंकर"।

हथसार-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी + सं० शाला, हिं० सार] वह घर जिसमें हाथी रखे जाते हैं। फ़ीलखाना। गजशाला।

हथा-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ] गीले पिसे हुए चावल और हल्दी पोत कर बनाया हुआ पंजे का चिह्न। ऐपन का छापा। (यह पूजन आदि में दीवार पर बनाया जाता है।)

हथाहथी‡†-अव्य० [हिं० हाथ] (१) एक के हाथ से दूसरे के हाथ में बराबर जाते हुए। हाथों हाथ। (२) शीघ्र। तुरंत।

हथिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० हस्तिनी, प्रा० हत्थिणी] हाथी की मादा।

हथिया-संज्ञा पुं० [सं० हस्त, प्रा० हत्थ (नक्षत्र)] हस्त नक्षत्र।

संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ] कंघी के ऊपर की लकड़ी। (जुलाहे)

हथियाना-क्रि० स० [हिं० हाथ + आना (प्रत्य०)] (१) हाथ में करना। अधिकार में करना। ले लेना। (२) दूसरे की वस्तु धोखा देकर ले लेना। उड़ा लेना। (३) हाथ में पकड़ना। हाथ से पकड़कर काम में लाना।

हथियार-संज्ञा पुं० [हिं० हथियाना = हाथ से पकड़ना] (१) हाथ से पकड़कर काम में लाने की साधन-वस्तु। वह वस्तु जिसकी सहायता से कोई काम किया जाय। औजार। (२) तलवार, भाला आदि आक्रमण करने या मारने का साधन। अस्त्र शस्त्र।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

मुहा०—हथियार बाँधना या लगाना = अस्त्र शस्त्र धारण करना। हथियार उठाना = (१) मारने के लिये अस्त्र हाथ में लेना। (२) लड़ाई के लिये तैयार होना। हथियार करना = हथियार चलाना।

(३) लिंगेंद्रिय। (बाज़ारू)

हथियारबंद-वि० [हिं० हथियार + फ़ा० बंद, सं० बंध] जो हथियार बाँधे हो। सशस्त्र। जैसे,—हथियारबंद सिपाही।

हथुई मिट्टी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + मिट्टी] गीली मिट्टी का वह लेप जो कच्ची दीवार का खुरदुरापन दूर करने के लिये लगाया जाता है।

हथुई रोटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + रोटी] वह रोटी जो गीले आटे को हाथ से गढ़कर बनाई गई हो।

हथेरा-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + एरा (प्रत्य०)] तीन साढ़े तीन हाथ लंबा लकड़ी का वह बल्ला जिसका एक सिरा हथेली की तरह चौड़ा होता है और जिससे खेती की नाली का पानी चारों ओर सिंचाई के लिये उलीचते हैं। हाथा।

हथेरी‡†-संज्ञा स्त्री० दे० "हथेली"।

हथेल-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ] वह लचीली कमाची जिस पर बुना हुआ कपड़ा तानकर रखा जाता है। पनिक। पनखट। (जुलाहे)

हथेली-संज्ञा स्त्री० [सं० हस्ततल, प्रा० हत्थतल] (१) हाथ की कलाई का चौड़ा सिरा जिसमें उँगलियाँ लगी होती हैं। हाथ की गद्दी। हस्ततल। करतल।

मुहा०—हथेली में आना = (१) हाथ में आना। अधिकार में आना। मिलना। प्राप्त होना। (२) वश में होना। हथेली में करना = अपने अधिकार में करना। ले लेना। हथेली खुजलाना = द्रव्य मिलने का आगम सूचित होना। कुछ मिलने का शकुन होना। (यह प्रवाद है कि जब हथेली खुजलाती है, तब कुछ मिलता है।) हथेली का फफोला = अत्यंत सुकुमार वस्तु। बहुत नाजुक चीज जिसके टूटने फूटने का सदा डर रहे। हथेली देना या

लगाना = हाथ का सहारा देना। सहायता करना। मदद करके सँभालना। हथेली बजाना = ताली पीटना। किसकी हथेली में बाल जमे हैं? = कौन ऐसा संसार में है? जैसे,—किसकी हथेली में बाल जमे हैं जो उसे मार सकता है। हथेली सा = बिल्कुल चौरस या सपाट। समतल। हथेली पर जान होना = ऐसी स्थिति में पड़ना जिसमें प्राण जाने का भय हो। जान जोखों होना।

(२) चरखे की मुठिया जिसे पकड़कर चरखा चलाते हैं।

हथोरी‡†-संज्ञा स्त्री० दे० "हथेली"। उ०—जानौ रकत हथोरी बूड़ी। रवि परभात तात, वै जूड़ी।—जायसी।

हथौटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + औटी (प्रत्य०)] (१) किसी काम में हाथ लगाने का ढंग। हाथ से करने का ढब। हस्तकौशल। जैसे,—अभी तुम्हें इसकी हथौटी नहीं मालूम है, इसी से देर लगती है। (२) किसी काम में लगा हुआ हाथ। किसी काम में हाथ डालने की क्रिया या भाव। जैसे,—उसकी हथौटी बड़ी मनहूस है। जिस काम में हाथ लगाता है, वह चौपट हो जाता है।

हथौड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + औड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० हथौड़ी] (१) किसी वस्तु को ठोंकने, पीटने या गढ़ने के लिये साधन वस्तु। लुहारों या सुनारों का वह औजार जिससे वे किसी धातुखंड को तोड़ते, पीटते या गढ़ते हैं। मारतौल। (२) कील ठोंकने, खूँटे गाड़ने आदि का औजार।

हथौड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हथौड़ा] छोटा हथौड़ा।

हथौना-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + औना (प्रत्य०)] दूल्हे और दुलहन के हाथ में मिठाई रखने की रीति।

हथ्यार‡†-संज्ञा पुं० दे० "हथियार"।

हद-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) किसी वस्तु के विस्तार का अंतिम सिरा। किसी चीज की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई या गहराई की सब से अधिक पहुँच। सीमा। मर्य्यादा। जैसे,—सड़क की हद, गाँव की हद।

यौ०—हदबंदी। हदसमाअत।

मुहा०—हद बँधना = सीमा निर्धारित होना। यह ठहराया जाना कि किसी चीज का घेरा अथवा लंबाई, चौड़ाई यहाँ तक है। हद बाँधना = सीमा निर्धारित करना। हद तोड़ना = सीमा के बाहर जाना या कुछ करना। सीमा का अतिक्रमण करना। हद से बाहर = ठहराई हुई सीमा के आगे। हद कायम करना = दे० "हद बाँधना"।

(२) किसी वस्तु या बात का सब से अधिक परिमाण जो ठहराया गया हो। अधिक से अधिक संख्या या परिमाण जो साधारणतः माना जाता हो या उचित हो। जैसे,—(क) उस मेले में हद से ज्यादा आदमी आए। (ख) उसने मिहनत की हद कर दी। उ०—कैला करी कोकिल, कुरंग बार कारे करे, कुदि कुदि केहरी कलंक लंक हद ली।—केशव।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हद से ज्यादा = बहुत अधिक। अत्यंत। हद व हिसाब नहीं = बहुत ही ज्यादा। अत्यंत। अपार। अपरिमेय।

(३) किसी बात की उचित सीमा। कोई बात कहाँ तक करनी चाहिए, इसका नियत मान। कोई काम, व्यवहार या आचरण कहाँ तक ठीक है, इसका अंदाज। मर्य्यादा। जैसे,—तुम तो हर एक बात में हद से बाहर चले जाते हो।

मुहा०—हद से गुजरना = मर्य्यादा का अतिक्रमण करना। जहाँ तक उचित है, उससे किसी बात में आगे बढ़ना।

हद समाअत-संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी बात का दावा करने के लिये समय की नियत अवधि। वह मुकर्रर वक्त जिसके भीतर अदालत में दावा करना चाहिए। (कचहरी)

मुहा०—हद समाअत होना = हद समाअत पूरी होना। दावा करने की अवधि का बीत जाना।

हद सियासत-संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी न्यायालय के अधिकार की सीमा। उतना स्थान जितने के भीतर के मुकदमे कोई अदालत ले सके।

हदीस-संज्ञा स्त्री० [अ०] मुसलमानों का वह धर्मग्रंथ जिसमें मुहम्मद साहब के कार्य्यों के वृत्तांत और भिन्न भिन्न अवसरों पर कहे हुए वचनों का संग्रह है और जिसका व्यवहार बहुत कुछ स्मृति के रूप में होता है।

हनन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० हननीय, हनित] (१) मार डालना। बध करना। जान मारना। (२) आघात करना। चोट लगाना। पीटना। (३) गुणन। गुणा करना। ज़रब देना। (गणित)

हनना†‡-क्रि० स० [सं० हनन] (१) मार डालना। बध करना। प्राण लेना। उ०—छन महँ हने निसाचर जेते।—तुलसी। (२) आघात करना। चोट मारना। प्रहार करना। कस कर मारना। उ०—(क) मुष्टिक एक ताहि कपि हनी। (ख) आवत ही उर-महँ हनेउ मुष्टि-प्रहार प्रघोर।—तुलसी। (३) पीटना। ठोंकना। (४) लकड़ी से पीट या ठोंक कर बजाना। उ०—जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।—तुलसी।

हननीय-वि० [सं०] (१) हनन करने योग। मारने योग्य। (२) जिसे मारना हो।

हनफ़ी-संज्ञा पुं० [सं०] मुसलमानों में सुन्नियों का एक संप्रदाय।

हनवाना-क्रि० स० [हिं० हनना का प्रेरणा०] हनने का कार्य्य दूसरे से कराना। मरवाना।

†क्रि० अ० दे० "नहवाना", "नहलाना"।

हनाना†-क्रि० अ० दे० "नहाना"।

हनितवंत*‡-संज्ञा पुं० दे० "हनुमंत"।

हनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दाढ़ की हड्डी। जबड़ा। *(२) ठुड्डी। चिबुक।

हनुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाढ़ की हड्डी। जबड़ा।

हनुग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें जबड़े बैठ जाते हैं और जल्दी खुलते नहीं। (यह किसी प्रकार की चोट लगने आदि से वायु कुपित होने के कारण होता है।)

हनुभेद-संज्ञा पुं० [सं०] जबड़े का खुलना।

हनुमंत-संज्ञा पुं० दे० "हनुमान्"।

हनुमंत उड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हनुमंत+उड़ना] मालखंभ की एक कसरत जिसमें सिर नीचे और पैर ऊपर की ओर करके सामने लाते हैं और फिर ऊपर खसकते हैं।

हनुमंती-संज्ञा स्त्री० [हिं० हनुमंत] मालखंभ की एक कसरत जिसमें एक पाँव के अँगूठे से बेंत पकड़कर खूब तानते हैं और फिर दूसरे पाँव को अंटी देकर और उससे बेंत पकड़कर बैठते हैं।

हनुमत्कवच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनुमान को प्रसन्न करने का एक मंत्र जिसे लोग तावीज वगैरह में रखकर पहनते हैं। (२) हनुमान् जी को प्रसन्न करने की एक स्तुति।

हनुमान-वि० [सं० हनुमत] (१) दाढ़वाला। जबड़ेवाला। (२) भारी दाढ़ या जबड़ेवाला। महावीर।

संज्ञा पुं० पंपा के एक वीर बंदर जिन्होंने सीता-हरण के उपरांत रामचंद्र की बड़ी सेवा और सहायता की थी। ये लंका में जाकर सीता का समाचार भी लाए थे और रावण की सेना के साथ बड़ी वीरता के साथ लड़े थे। ये अपने अपार बल, वीरता और वेग के लिये प्रसिद्ध हैं। और बंदरों के समान इनकी उत्पत्ति भी विष्णु के अवतार राम की सहायता के लिये देवांश से हुई थी। इनकी माता का नाम अंजना था और ये वायु या मरुत् देवता के पुत्र कहे जाते हैं। कहीं कहीं इन्हें शिव के वीर्य्य या अंश से भी उत्पन्न कहा है। ये रामभक्तों में सब से आदि कहे जाते हैं और राम ही के समान इनकी पूजा भी भारत में सर्वत्र होती है। ये बलप्रदाता माने जाते हैं और हिंदू पहलवान या योद्धा इनका नाम लेते हैं और इनकी उपासना करते हैं।

हनुमान बैठक-संज्ञा स्त्री० [हिं० हनुमान्+बैठक] एक प्रकार की बैठक (कसरत) जिसमें एक पैर पैंतरे की तरह आगे बढ़ाते हुए बैठते उठते हैं।

हनुमोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] दाढ़ का एक रोग जिसमें बहुत दरद होता है और मुँह खोलते नहीं बनता।

हनुल-वि० [सं०] पुष्ट या दृढ़ दाढ़वाला। मजबूत जबड़ेवाला।

हनूफाल-संज्ञा पुं० [सं० हनु+हिं० फाल, फलाँग] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होते हैं।

हनूमान्-संज्ञा पुं० दे० "हनुमान्"।

हनोज़-अव्य० [फ़ा०] अभी। अभी तक। जैसे,—हनोज़ दिल्ली दूर है। उ०—कवि सेवक बूढ़े भए तौ कहा पै हनोज है मौज मनोज ही की।—सेवक।

हनोद-संज्ञा पुं० [देश०] हिंडोल राग के एक पुत्र का नाम।

हप-संज्ञा पुं० [अनु०] मुँह में चट से लेकर ओंठ बंद करने का शब्द। जैसे हप से खा गया।

मुहा०—**हप कर जाना** = झट से मुँह में डालकर खा जाना। चटपट उड़ा जाना। उ०—देखते देखते सारा भात हप कर गया।

हपटाना‡-क्रि० अ० [हिं० हाँफना] हाँफना।

हफ़्तगाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] गाँव के पटवारी के सात कागज जिनमें वह जमीन, लगान आदि का लेखा रखता है—खसरा, बहीखाता, जमाबंदी, स्याहा, बुझारत, रोजनामचा और जिंसवार।

हफ़्ता-संज्ञा पुं० [फ़ा०] सात दिन का समय। सप्ताह।

हफ़्ती-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की जूती।

हबकना‡-क्रि० अ० [अनु० हप] मुँह बाना। खाने या दाँत काटने के लिये झट से मुँह खोलना।

क्रि० स० दाँत काटना। जैसे,—कुत्ते ने पीछे से आकर हबक लिया।

हबर दबर, हबर हबर-क्रि० वि० [अनु० हबड़] (१) जल्दी जल्दी। उतावली से। जल्दबाजी से। जैसे,—घर में तलवा नहीं टिकता, हबर दबर आई, फिर बाहर जा झमकीं। (२) जल्दी के कारण ठीक तौर से नहीं। हड़बड़ी से। जैसे,—इस तरह हबर दबर करने से काम नहीं होता।

हबराना‡*-क्रि० अ० दे० "हड़बड़ाना"।

हबश-संज्ञा पुं० [फ़ा० हब्श] अफ्रिका का एक प्रदेश जो मिस्र के दक्षिण पड़ता है और जहाँ के लोग बहुत काले होते हैं।

हबशी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) हबश देश का निवासी जो बहुत काला होता है। उ०—तिल न होइ मुख मीत पर जानौ वाको हेत। रूप-खजाने को मनौ हबसी चौकी देत।—रसनिधि।

विशेष—हबशियों का रंग बहुत काला, कद नाटा, बाल घुँघराले और ओंठ बहुत मोटे होते हैं। पहले ये गुलाम बनाए जाते थे और बिकते थे।

(२) एक प्रकार का अंगूर जो जामुन की तरह काला होता है।

हबशी सनर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] अफ्रिका का गैंडा जिसके दो सींग या खाँग होते हैं।

हबीब संज्ञा पुं० [अ०] (१) दोस्त। मित्र। (२) प्रिय।

यौ०—खुदा का हबीब = पैगम्बर मुहम्मद साहब जो खुदा के परम प्रिय माने जाते हैं।

हबूब–संज्ञा पुं० [अ० हबाब या हुबाब] (१) पानी का बबूला। बुल्ला। (२) निःसार बात। झूठ मूठ की बात। उ०—साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महा खल, बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब हैं।—तुलसी।

हबेली–संज्ञा स्त्री० दे० "हवेली"।

हब्बा डब्बा–संज्ञा पुं० [हि० हाँफ अनु० डब्बा] जोर जोर से साँस या पसली चलने की बीमारी जो बच्चों को होती है।

हब्बुल् आस–संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की मेहँदी जो बगीचों में लगाई जाती है और दवा के काम में आती है। विलायती मेहँदी।

विशेष—इसकी पत्तियों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकाला जाता है जिसका लेप, कृमिघ्न होने के कारण, घाव पर किया जाता है। इस तेल से बाल भी बढ़ते हैं। इसके फल अतिसार और संग्रहणी में दिए जाते हैं और गठिया का दर्द दूर करने और खून रोकने के काम में आते हैं।

हब्स–संज्ञा पुं० [अ०] कैद। कारावास।

यौ०—हब्स बेजा।

हब्सबेजा–संज्ञा पुं० [अ० + फा०] अनुचित रीति से बंदी करना। बेजा तौर पर कहीं कैद रखना। (कानून)

हम–सर्व० [सं० अहम्] उत्तम पुरुष बहुवचन सूचक सर्वनाम शब्द। "मैं" का बहुवचन।

संज्ञा पुं० अहंकार। 'हम' का भाव। उ०—जब 'हम' था तब गुरु नहीं, अब गुरु तब 'हम' नाहिं।—कबीर।

अव्य० [फा०] (१) साथ। संग। (२) समान। तुल्य।

यौ०—हम असर। हमदर्दी। हमजिंस। हमजोली।

हम-असर–संज्ञा पुं० [फा० + अ०] (१) वे जिन पर एक ही प्रकार का प्रभाव पड़ा हो। समान संस्कार या प्रवृत्तिवाले। (२) एक ही समय में होनेवाले। साथी। संगी।

हम-जिंस–संज्ञा पुं० [फा०] एक ही वर्ग या जाति के प्राणी। एक ही प्रकार के व्यक्ति।

हमजोली–संज्ञा पुं० [फा० + हिं० जोड़ी ?] साथी। संगी। सहयोगी। सखा।

हमता–संज्ञा स्त्री० [हिं० हम + ता (प्रत्य०)] अहंभाव। अहंकार।

हमदर्द–संज्ञा पुं० [फा०] दुःख का साथी। दुःख में सहानुभूति रखनेवाला।

हमदर्दी–संज्ञा स्त्री० [फा०] दूसरे के दुःख से दुखी होने का भाव। सहानुभूति। जैसे,—मुझे उसके साथ कुछ भी हमदर्दी नहीं है।

हमनिवाला–संज्ञा पुं० [फा०] एक साथ बैठकर भोजन करनेवाले। आहार विहार के सखा। घनिष्ठ मित्र।

हम पंच–सर्व० [हिं० हम + पंच] हम लोग।

हमरा–सर्व० दे० "हमारा"।

हमराह–अव्य० [फा०] (कहीं जाने में किसी के) साथ। संग में। जैसे—लड़का उसके हमराह गया।

मुहा०—हमराह करना = साथ में करना। संग में लगाना। हमराह होना = साथ जाना।

हमल–संज्ञा पुं० [अ०] स्त्री के पेट में बच्चे का होना। गर्भ। वि० दे० "गर्भ"।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—हमल गिरना = गर्भपात होना। पेट से बच्चे का पूरा हुए बिना निकल जाना। हमल गिराना = गर्भपात करना। पेट के बच्चे को बिना समय पूरा हुए निकाल देना। हमल रहना = गर्भ रहना। पेट में बच्चे को योजना होना।

हमला–संज्ञा पुं० [अ०] (१) लड़ाई करने के लिये चल पड़ना। युद्ध यात्रा। चढ़ाई। धावा। जैसे,—मुगलों के कई हमले हिंदुस्तान पर हुए। (२) मारने के लिये झपटना। प्रहार करने के लिये वेग से बढ़ना। आक्रमण। (३) प्रहार। वार। (४) किसी को हानि पहुँचाने के लिये किया हुआ प्रयत्न। नुकसान पहुँचाने की कार्रवाई। (५) विरोध में कही हुई बात। शब्द द्वारा आक्षेप। कटु व्यंग्य। जैसे,—यह हमला हमारे ऊपर है, हम इसका जवाब देंगे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हमवतन–संज्ञा पुं० [फा० + अ०] एक ही प्रदेश के रहनेवाले। स्वदेशवासी। देश भाई।

हमवार–वि० [फा०] जिसकी सतह बराबर हो। जो ऊँचा नीचा न हो। जो ऊबड़ खाबड़ न हो। समतल। सपाट। जैसे,—जमीन हमवार करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हम सबक–संज्ञा पुं० [फा०] एक साथ पढ़नेवाले। सहपाठी।

हमसर–संज्ञा पुं० [फा०] दरजे में बराबर आदमी। गुण, बल या पद में समान व्यक्ति। जोड़ का आदमी। बराबरी का आदमी।

हमसरी–संज्ञा स्त्री० [फा०] समानता का भाव। बराबरी। जैसे,—वह तुमसे हमसरी का दावा रखता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हमसाया–संज्ञा पुं० [फा०] पड़ोसी।

हमहमी–संज्ञा स्त्री० दे० "हमाहमी"।

हमाम–संज्ञा पुं० [अ० हम्माम] नहाने का घर जहाँ गरम पानी रहता है। स्नानागार। उ०—मैं तपाय त्रय ताप सों राख्यो हियो हमाम। मकु कबहूँ आवै इहाँ पुलक पसीजे स्याम।—बिहारी।

हमारा–सर्व० [हिं० हम + आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० हमारी] 'हम' का संबंधकारक रूप।

हमाल-संज्ञा पुं० [अ० हमाल] (१) भार उठानेवाला। बोझ ऊपर लेनेवाला। (२) सँभालनेवाला। रक्षा करनेवाला। रक्षक। रखवाला। उ०—पैज प्रतिपाल, भूमिभार को हमाल, चहूँ चक्क को अमाल, भयो दंडक जहान को।—भूषण। (३) (बोझ उठानेवाला) मजदूर। कुली। उ०—पल पलौ भर इन लिया तेरा नाज उठाइ। नैन-हमालन दै अरे दरस-मजूरी आइ।—रसनिधि।

हमालल-संज्ञा पुं० [सं० हिमालय ?] सिंहल या सीलोन का सब से ऊँचा पहाड़ जिसे 'आदम की चोटी' कहते हैं।

हमाहमी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हम] (१) अपने अपने लाभ का आतुर प्रयत्न। बहुत से लोगों में से प्रत्येक का किसी वस्तु को पाने के लिये अपने को आगे करने की धुन। स्वार्थपरता। (२) अपने को ऊपर करने का प्रयत्न। अहंकार।

हमीर-संज्ञा पुं० दे० "हम्मीर"।

हमें-सर्व० [हिं० हम] 'हम' का कर्म और संप्रदान कारक का रूप। हमको। जैसे,—(क) हमें बनाओ। (ख) हमें दो।

हमेल-संज्ञा स्त्री० [अ० हमायल] सिक्कों या सिक्के के आकार के धातु के गोल टुकड़ों की माला जो गले में पहनी जाती है। (यह प्रायः अशरफ़ियों या पुराने रुपयों को तागे में गूँथ कर बनती है।)

हमेवॐ†-संज्ञा पुं० [सं० अहम + एव] अहंकार। अभिमान।

मुहा०—हमेव टूटना = गर्व चूर्ण होना। शेखी निकल जाना।

हमेशा-अव्य० [फ़ा०] सब दिन या सब समय। सदा। सर्वदा। सदैव। जैसे,—(क) वह हमेशा ऐसा ही कहता है। (ख) इस दवा को हमेशा पीना।

मुहा०—हमेशा के लिये = सब दिन के लिये।

हमेसॐ-अव्य० दे० "हमेशा"।

हमैंॐ-अव्य० दे० "हमें"।

हम्माम-संज्ञा पुं० [अ०] नहाने की कोठरी जिसमें गरम पानी रखा रहता है और जो आग या भाप से गरम रखी जाती है। स्नानागार।

हम्मीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो शंकराभरण और मारू के मेल से बना है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और इसके गाने का समय संध्या को एक से पाँच दंड तक है। यह राग धर्म संबंधी उत्सवों या हास्य रस के लिये अधिक उपयुक्त समझा जाता है। (२) रणथंभोरगढ़ का एक अत्यंत वीर चौहान राजा जो सन् १३०० ई० में अलाउद्दीन खिलजी से बड़ी वीरता के साथ लड़कर मारा गया था।

हम्मीर नट-संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो नट और हम्मीर के मेल से बना है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

हयंदॐ-संज्ञा पुं० [सं० हयेंद] बड़ा या अच्छा घोड़ा।

हय-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० हया, हयी] (१) घोड़ा। अश्व। (२) कविता में सात की मात्रा सूचित करने का शब्द (उच्चैःश्रवा के सात मुँह के कारण)। (३) चार मात्राओं का एक छंद। (४) इंद्र का एक नाम। (५) धनु राशि।

हयगंध-संज्ञा पुं० [सं०] काला नमक।

हयगृह-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वशाला। घुड़सार।

हयग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक अवतार।

विशेष—मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य जब वेद को उठा ले गए थे, तब वेद के उद्धार और उन राक्षसों के विनाश के लिये भगवान् ने यह अवतार लिया था।

(२) एक असुर या राक्षस जो कल्पांत में ब्रह्मा की निद्रा के समय वेद उठा ले गया था। विष्णु ने मत्स्य अवतार लेकर वेद का उद्धार और इस राक्षस का बध किया था। (३) एक और राक्षस का नाम। (रामायण) (४) तांत्रिक बौद्धों के एक देवता।

हयग्रीवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

हयन-संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष। साल।

हयनाॐ-क्रि० स० [सं० हत, प्रा० हय + ना (हिं० प्रत्य०)] (१) वध करना। मार डालना। हनन करना। उ०—छन महँ सकल निशाचर हये। (२) मारना। पीटना। चोट लगाना। (३) पीटकर बजाना। ठोंककर बजाना। उ०—देवन हये निसान।—तुलसी। (४) नष्ट करना। न रहने देना। उ०—प्रीति प्रतीति रीति परिमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है।—तुलसी।

हयनाल-संज्ञा स्त्री० [सं० हय + हिं० नाल] वह तोप जिसे घोड़े खींचते हैं।

हयप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] जौ। यव।

हयप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली खजूर। खजूरी।

हयमारक-संज्ञा पुं० [सं०] करवीर। कनेर।

हयमारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कनेर। (२) अश्वत्थ। पीपल।

हयमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का नाम जिसके संबंध में प्रसिद्ध है कि वहाँ घोड़े के से मुँहवाले आदमी बसते हैं। (२) और्व ऋषि का क्रोध रूपी तेज जो समुद्र में स्थित होकर बड़वानल कहलाता है। (रामायण)

हयमेध-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ।

हयशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वशाला। घुड़सार। अस्तबल।

हयशिर-संज्ञा पुं० [सं० हयशिरस्] (१) एक ऋषि का नाम। (२) एक दिव्यास्त्र का नाम। (रामायण)

हयशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का हयग्रीव रूप।

हयांग-संज्ञा पुं० [सं०] धनु राशि।

हया-संज्ञा स्त्री० [अ०] लज्जा। लाज। शर्म।

यौ०—हयादार। हयादारी। बेहया। बेहयाई।

हयात-संज्ञा स्त्री० [अ०] जिंदगी। जीवन।

यौ०—हीन हयात = जिंदगी भर के लिये। किसी के जीवन-काल तक। जैसे,—मुआफ़ी हीन हयात। हीन हयात में = जिंदगी में। जीते जी। जीवन काल में।

हयादार-संज्ञा पुं० [अ० हया + फ़ा० दार] वह जिसे हया हो। लज्जाशील। शर्मदार।

हयादारी-संज्ञा स्त्री० [अ० हया + फ़ा० दारी] हयादार होने का भाव। लज्जाशीलता।

हयानन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हयग्रीव। (२) हयग्रीव का स्थान। (वाल्मीकि)

हयायुर्वेद-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों की चिकित्सा का शास्त्र। शालिहोत्र।

हयारि-संज्ञा पुं० [सं०] करवीर। कनेर।

हयाशन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धूप का पौधा जो मध्य भारत तथा गया और शाहाबाद के पहाड़ों में बहुत होता है।

हयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़ी।

संज्ञा पुं० [सं० हयिन्] घुड़सवार।

हर-वि० [सं०] (१) हरण करनेवाला। ले लेनेवाला। छीनने या लूटनेवाला। जैसे,—धनहर, वस्त्रहर, पश्यतोहर। (२) दूर करनेवाला। मिटानेवाला। न रहने देनेवाला। जैसे,—रोगहर, पापहर। (३) बध करनेवाला। नाश करनेवाला। मारनेवाला। जैसे,—असुरहर। (४) ले जानेवाला। पहुँचानेवाला। वाहक। जैसे,—संदेशहर।

संज्ञा पुं० (१) शिव। महादेव। (२) एक राक्षस जो वसुदा के गर्भ से उत्पन्न माली नामक राक्षस के चार पुत्रों में से एक था और जो विभीषण का मंत्री था। (३) वह संख्या जिससे भाग दें। भाजक। (गणित) (४) भिन्न में नीचे की संख्या। (गणित) (५) अग्नि। आग। (६) गदहा। (७) छप्पय के दसवें भेद का नाम। (८) टगण के पहले भेद का नाम।

† संज्ञा पुं० [सं० हल] हल।

यौ०—हरवाहा। हरवल। हरौरी। हरहा।

वि० [फ़ा०] प्रत्येक। एक एक। जैसे,—(क) हर शख्स के पास एक एक बंदूक थी। (ख) वह हर रोज आता है।

यौ०—हरकारा। हरजाई।

मुहा०—हर एक = प्रत्येक। एक एक। हर कोई या हर किसी = प्रत्येक मनुष्य। सब कोई या सब किसी। सर्वसाधारण। जैसे,—(क) हर किसी के पास ऐसी चीज नहीं निकल सकती। (ख) हर कोई यह काम नहीं कर सकता। हर दफ़ा या हर बार = प्रत्येक अवसर पर। हर रोज़ = प्रति दिन। नित्य। हर हाल में = प्रत्येक दशा में। हर दम = प्रति क्षण। सदा। जैसे,—वह हर दम यहीं पड़ा रहता है। ‡ हर हमेश = सदा। सर्वदा।

हरएँ&-अव्य० [हिं० हरुवा] (१) धीरे धीरे। मंद गति से। आहिस्ते से। उ०—हेरत ही हरि को हरषाय हिये हठि कै हरएँ चलि आई।—बेनी। (२) तीव्रता से नहीं। जोर से नहीं।

हरकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) गति। चाल। हिलना डोलना। (२) चेष्टा। क्रिया। (३) बुरी चाल। बेजा कार्रवाई। दुष्ट व्यवहार। नटखटी। उ०—(क) तुम्हारी सब हरकतें हम देख रहे हैं। (ख) यह सब उसी की हरकतें हैं। (ग) नाशाइस्ता हरकत, बेजा हरकत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हरकना&†-क्रि० स० दे० "हटकना"।

हरकारा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चिट्ठी पत्री ले जानेवाला। सँदेसा ले जानेवाला। (२) चिट्ठीरसाँ। डाकिया।

हरकेस-संज्ञा पुं० [सं० हरिकेश] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

हरख&†-संज्ञा पुं० दे० "हर्ष"।

हरखना&-क्रि० अ० [हिं० हरख + ना (प्रत्य०)] हर्षित होना। प्रसन्न होना। खुश होना। उ०—कौतुक देखि सकल सुर हरखे।—तुलसी।

हरखाना-क्रि० अ० दे० "हरखना"। उ०—तुरत उठे लछमन हरखाई।—तुलसी।

क्रि० स० [हिं० हरखना] प्रसन्न करना। खुश करना। आनंदित करना।

हरगिज़-अव्य० [फ़ा०] किसी दशा में। कदापि। कभी। जैसे,—वह वहाँ हरगिज़ न जायगा।

हरगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत।

हरगिला†-संज्ञा पुं० दे० "हड़गीला"।

हरगौरी रस-संज्ञा पुं० [सं०] रस सिंदूर। (आयुर्वेद)

हरचंद-अव्य० [फ़ा०] (१) कितना ही। बहुत या बहुत बार। जैसे,—मैंने हरचंद मना किया, पर उसने न माना। (२) यद्यपि। अगरचे।

हरज-संज्ञा पुं० दे० "हर्ज"।

हरजा-संज्ञा पुं० [फ़ा० हर + जा (जगह)] संगतराशों की वह टाँकी जिससे वे सतह को हर जगह बराबर करते हैं। चौरस करने की छेनी। चौरसी।

संज्ञा पुं० दे० (१) "हरज", "हर्ज"। (२) "हरजाना"।

हरजाई-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) हर जगह घूमनेवाला। जिसका कोई ठीक ठिकाना न हो। (२) बहला। आवारा।

संज्ञा स्त्री० (१) व्यभिचारिणी स्त्री। कुलटा। (२) वेश्या। रंडी। खानगी।

हरजाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) नुकसान पूरा करना। हानि का बदला। क्षतिपूर्ति। (२) वह धन या वस्तु जो किसी को उस नुकसान के बदले में (उसके द्वारा जिससे या जिसके कारण नुकसान पहुँचा हो) दी जाय, जो उसे उठाना पड़ा हो। हानि के बदले में दिया जानेवाला धन। क्षतिपूर्ति का द्रव्य। जैसे,—अगर तुमने वक्त पर चीज न दी तो १००) हरजाना देना होगा।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।—लेना।

हरट्ट†-वि० [सं० हृष्ट] हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा। मजबूत। दृढ़ अंगोंवाला। उ०—हैवर हरट्ट साजि, गैवर गरट्ट सम पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की।—भूषण।

हरठिया†-संज्ञा पुं० [हिं० रहँट] रहँट के बैल हाँकनेवाला।

हरड़ा†-संज्ञा पुं० दे० "हड़", "हर्रा"।

हरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिसकी वस्तु हो, उसकी इच्छा के विरुद्ध लेना। छीनना, लूटना या चुराना। जैसे,—धन हरण, वस्त्र हरण। (२) दूर करना। हटाना। न रहने देना। मिटाना। जैसे,—रोग हरण, संकट हरण, पाप हरण। (३) नाश। विनाश। संहार। (४) ले जाना। वहन। जैसे,—संदेश हरण। (५) भाग देना। तकसीम करना। (गणित) (६) दायजा जो विवाह में दिया जाता है। (७) वह भिक्षा जो यज्ञोपवीत के समय ब्रह्मचारी को दी जाती है।

हरता-संज्ञा पुं० दे० "हर्त्ता"।

हरता धरता-संज्ञा पुं० [सं० हर्ता+धर्ता (वैदिक)] (१) रक्षा और नाश दोनों करनेवाला। वह जिसके हाथ में बनाना बिगाड़ना या रखना मारना दोनों हो। सब अधिकार रखनेवाला स्वामी। (२) सब बात का अधिकार रखनेवाला। सब कुछ करने की शक्ति या अधिकार रखनेवाला। पूर्ण अधिकारी। जैसे,—आज कल वही उनकी सारी जायदाद के हरता धरता हो रहे हैं।

हरताल-संज्ञा स्त्री० [सं० हरिताल] एक खनिज पदार्थ जिसमें सौ में ६१ भाग संखिया और ३९ भाग गंधक का योग रहता है। यह खानों में रोड़ों के रूप में स्वाभाविक मिलता है और बनाया भी जा सकता है। यह पीले रंग का और चमकीला होता है। इसमें गंधक और संखिया दोनों के सम्मिलित गुण होते हैं। वैद्य लोग इसको शोधकर गलित कुष्ठ, वात रक्त आदि रोगों में देते हैं जिससे घाव भर जाते हैं। आयुर्वेद में हरताल की गणना उपधातुओं में है। इसमें स्याही या रंग उड़ाने का गुण होता है, इससे पुराने समय में पोथी लिखनेवाले किसी शब्द या अक्षर को उड़ाने के स्थान पर उस पर घुली हुई हरताल लगा देते थे जिससे कुछ दिनों में वे अक्षर उड़ जाते थे। रँगाई में भी इसका व्यवहार होता है और छींट छापनेवाले भी अपनी प्रक्रिया में इसका व्यवहार करते हैं।

पर्य्या०—पिंजर। ताल। गोदंत। विड़ालक। चित्रगंध।

मुहा०—(किसी बात पर) हरताल लगाना=नष्ट करना। किया न किया बराबर करना। रद करना। जैसे,—तुमने तो मेरे सब कामों पर हरताल फेर दी।

हरताली-वि० [हिं० हरताल] हरताल के रंग का।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का गंधकी या पीला रंग।

हरतालेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक रसौषध जो हरताल के योग से बनती है।

विशेष—पुनर्नवा (गदहपूरना) के रस में हरताल को खरल करके टिकिया बनाते हैं। फिर उस टिकिया को पुनर्नवा की राख में रखकर मिट्टी के बरतन में डाल मंद आँच पर चढ़ा देते हैं। इस प्रकार पाँच दिन तक वह टिकिया पकती है; फिर ठंढी करके रख ली जाती है। इस भस्म की एक रत्ती गिलोय के काढ़े के साथ सेवन करने से वात रक्त, अठारह प्रकार के कुष्ठ, फिरंग वात, विसर्प और फोड़े आराम हो जाते हैं।

हरतेज-संज्ञा पुं० [सं० हरतेजस्] पारा। पारद। (जो शिव का वीर्य्य समझा जाता है)

हरद‡-संज्ञा स्त्री० दे० "हल्दी"। उ०—कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद, दूब, दधि, अच्छत, माला।—तुलसी।

हरदा-संज्ञा पुं० [हिं० हरदी] कीटाणुओं का समूह जो पीली या गेरू के रंग की बुकनी के रूप में फसल की पत्तियों पर जम जाता है और बड़ी हानि पहुँचाता है। गेरुई।

हरदिया†-वि० [पुं० हिं० हरदी] हल्दी के रंग का। पीला।

संज्ञा पुं० पीले रंग का घोड़ा।

हरदिया देव-संज्ञा पुं० दे० "हरदौल"।

हरदी†-संज्ञा स्त्री० दे० "हल्दी"।

हरदू-संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ जो हिमालय में जमुना के पूर्व तीन हजार फुट तक के ऊँचे लेकिन तर स्थानों में होता है। इसकी छाल अंगुल भर मोटी, बहुत मुलायम, खुरदुरी और सफेद होती है। भीतर की लकड़ी बहुत मजबूत और पीले रंग की होती है और साफ करने से बहुत चमकती है। इससे खेती के और सजावट के सामान, बंदूक के कुंदे, कंघियाँ और नावें बनती हैं।

हरदौल-संज्ञा पुं० [सं० हरदत्त] ओड़छा के राजा जुझारसिंह (सन् १६२६-३५ ई०) के छोटे भाई जो बड़े सच्चे और भ्रातृभक्त थे। एक बार जब महाराज जुझारसिंह दिल्ली के बादशाह के काम से गए थे, तब वे राज्य का प्रबंध अपने छोटे भाई हरदत्तसिंह या हरदौलसिंह के ऊपर छोड़ गए थे। इनके सुशासन में बेईमानों की नहीं चलने पाती थी।

इससे जब महाराज जुझारसिंह लौटकर आए, तब उन सब ने मिलकर राजा को यह सुझाया कि हरदौल के साथ महारानी (उनकी भावज) का अनुचित संबंध है। महारानी अपने देवर को बहुत प्यार करती थीं और हरदत्त भी उन्हें अपनी माता के समान मानते थे। राजा ने अपने संदेह की बात रानी से कही; और यह भी कहा कि हम तुम्हें सच्ची तभी मान सकते हैं जब तुम अपने हाथ से हरदौल को विष दो। रानी ने अपने सतीत्व की मर्यादा के विचार से स्वीकार किया और हरदौल को विष मिली मिठाई खिलाने को बुलाया। हरदौल के आने पर रानी ने सब व्यवस्था कही। सुनते ही हरदौल ने कहा कि माता, तुम्हारे सतीत्व की मर्यादा की रक्षा के लिये मैं सहर्ष इसे खाऊँगा। इतना कहकर वे भावज के हाथ से मिठाई लेकर झट से खा गए और थोड़ी देर में परलोक सिधारे। इस घटना का प्रजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा और सब लोग हरदौल की देवता के समान पूजा करने लगे। धीरे धीरे इनकी पूजा का प्रचार बहुत बढ़ा और सारे बुंदेलखंड में ही नहीं बल्कि युक्त प्रांत और पंजाब तक ये पुजने लगे। इनकी चौरी या वेदी स्थान स्थान पर बनी मिलती है और बहुत से घरानों में ये कुल-देवता माने जाते हैं। इन्हें 'हरदिया देव' भी कहते हैं।

हरद्वार-संज्ञा पुं० दे० "हरिद्वार"।

हरना-क्रि० स० [सं० हरण] (१) जिसकी वस्तु हो, उसकी इच्छा के विरुद्ध लेना। छीनना, लूटना या चुराना। (२) दूर करना। हटाना। न रहने देना। (३) मिटाना। नाश करना। जैसे,—दुःख या पीड़ा हरना, संकट हरना। उ०—मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।—बिहारी। (४) ले जाना। उठाकर ले जाना। वहन करना।

मुहा०—मन हरना = मन खींचना। मन आकर्षित करना। मोहित करना। लुभाना। उ०—हरि दिखराय मोहनी मूरति मन हरि लियो हमारो।—सूर। **प्राण हरना** = (१) मार डालना। (२) बहुत संताप या दुःख देना। उ०—मिलत एक दारुन दुख देहीं। बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।—तुलसी।

*क्रि० अ० [हिं० हारना] (१) जूए आदि में हारना। (२) पराजित होना। परास्त होना। (३) थकना। शिथिल होना। हिम्मत हारना।

*† संज्ञा पुं० दे० "हिरन"।

हरनाकस*†-संज्ञा पुं० दे० "हिरण्यकशिपु"। उ०—हरनाकस औ कंस को गयो दुहुन को राज।—गिरिधर।

हरनाच्छ†*-संज्ञा पुं० दे० "हिरण्याक्ष"।

हरनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हरिन] हिरन की मादा। मृगी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० हड़] कपड़ों में हड़ (हर्रा) का रंग देने की क्रिया।

हर-परेवरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हर, हल + पड़ना] किसानों की औरतों का एक टोटका जो वे पानी न बरसने पर करती हैं।

हरपा-संज्ञा पुं० [देश०] सुनारों का तराजू रखने का डिब्बा।

हरपुजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हर, हल + पूजा] कार्तिक में हल का पूजन जो किसान करते हैं। इस पूजन में किसान उत्सव करते और मिठाई आदि बाँटते हैं।

हरप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] करवीर। कनेर।

हरफ़-संज्ञा पुं० [अ०] मनुष्य के मुँह से निकलनेवाली ध्वनियों के संकेत जिनका व्यवहार लिखने में होता है। अक्षर। वर्ण।

मुहा०—किसी पर हरफ़ आना = दोष लगना। कसूर लगना। जैसे,—तुम बेफिक्र रहो, तुम पर जरा भी हरफ न आवेगा। **हरफ उठाना** = अक्षर पहचान कर पढ़ लेना। जैसे,—अब तो बच्चा हरफ़ उठा लेता है। **हरफ़ बैठाना** = छापे के अक्षर क्रम से रखना। टाइप जमाना। **हरफ़ बनाना** = (१) सुंदर अक्षर लिखना। (२) अक्षर लिखने का अभ्यास करना। (३) किसी दस्तावेज़ में जाल के लिये फेरफार करना। **किसी पर हरफ लाना** = दोष देना। इलजाम लगाना। लांछित करना।

हरफ़गीर-वि० [फ़ा०] (१) अक्षर अक्षर का गुण दोष दिखानेवाला। बहुत बारीकी से दोष देखने या पकड़नेवाला। (२) बाल की खाल निकालनेवाला।

हरफ़गीरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बहुत बारीकी से गुण दोष देखना। बड़ी सूक्ष्म परीक्षा। बाल की खाल निकालना।

हरफा-संज्ञा पुं० [देश०] कटा चारा या भूसा रखने का घर जो लकड़ी के घेरे से बनाया जाता है।

हरफारेवड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० हरिपर्णी] (१) कमरख की जाति का एक पेड़ जिसमें आँवलों के से छोटे छोटे फल लगते हैं जो खाने में कुछ खटमीठे होते हैं। इसे संस्कृत में 'लवली' कहते हैं। (२) उक्त पेड़ का फल।

हरबर-संज्ञा पुं० दे० "हड़बड़", "हड़बड़ी"।

हरबराना*†-क्रि० अ० दे० "हड़बड़ाना"।

हरबा-संज्ञा पुं० [अ० हरबः] अस्त्र। हथियार।

यौ०—हरबा हथियार।

हरबीज-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

हरबोंग-वि० [हिं० हर, हल + बोंग = लठ] (१) गँवार। लठ्ठमार। अक्खड़। (२) मूर्ख। जड़।

संज्ञा पुं० अंधेर। कुशासन। गड़बड़ी।

क्रि० प्र०—मचना।

हरभूली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धतूरा जिसके बीज फारस से बंबई में आते और बिकते हैं।

हरम-संज्ञा पुं० [अ०] अंतःपुर। जनानखाना।

संज्ञा स्त्री० (१) जनानखाने में दाखिल की हुई स्त्री। मुताही। रखेली स्त्री। (२) दासी। (३) स्त्री। बेगम।

यौ०—हरमसरा = अंतःपुर। जनानखाना।

हरमज़दगी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० हरामज़ाद:] शरारत। नटखटी। बदमाशी।

हरयेॐ-अव्य० दे० "हरएँ"।

हरवल-संज्ञा स्त्री० [हिं० हर + ओल (प्रत्य०)] वह रुपया जो हलवाहों को बिना ब्याज के पेशगी या उधार दिया जाता है। ॐ संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हरवली-संज्ञा स्त्री० [तु० हरावल] सेना की अध्यक्षता। फ़ौज की अफ़सरी। उ०—जो नहिं देतो भतन कहँ दगन हरवली आय। मन ममास जे सुतिन के को सर करतो जाय।—रसनिधि।

हरवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। (संगीतदामोदर)।

हरवा†-संज्ञा पुं० दे० "हार"। उ०—चंपक हरवा अँग मिलि अधिक सुहाइ। जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ।—तुलसी। वि० दे० "हरुवा"।

हरवाना-क्रि० अ० [हिं० हड़बड़] जल्दी करना। शीघ्रता करना। उतावली करना। हड़बड़ी मचाना। उ०—हरवाइ जाय सिय पायँ परी। ऋषिनारि सूँघि सिर, गोद धरी।—केशव।

हरवाल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे 'सुरारी' भी कहते हैं।

हरवाह, हरवाहा-संज्ञा पुं० [हिं० हर, हल + सं० वाह] हल चलानेवाला मज़दूर या नौकर। हलवाहा।

हरवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] (शिव की सवारी) बैल।

हरवाही-संज्ञा स्त्री० [हिं० हरवाह + ई (प्रत्य०)] (१) हलवाहे का काम। (२) हलवाहे की मजदूरी।

हरशंकरी-संज्ञा स्त्री० [सं० हरशंकर] पीपल और पकड़ के एक साथ लगे हुए पेड़ जो बहुत पवित्र माने जाते हैं।

हरशेखरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा (जो शिव के सिर पर रहती हैं)।

हरषॐ†-संज्ञा पुं० दे० "हर्ष"।

हरषनाॐ-क्रि० अ० [हिं० हरष, हर्ष + ना (प्रत्य०)] (१) हर्षित होना। प्रसन्न होना। खुश होना। उ०—हरषे पुर नर-नारि सब मिटा मोहमय सूल।—तुलसी। (२) पुलकित होना। रोमांच से प्रफुल्ल होना। उ०—नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गात।—तुलसी।

हरषानाॐ-क्रि० अ० [हिं० हरष + आना (प्रत्य०)] (१) हर्षित होना। प्रसन्न होना। खुश होना। उ०—जे पर-भनित सुनत हरषाहीं।—तुलसी। (२) पुलकित होना। रोमांच से प्रफुल्ल होना।

क्रि० स० हर्षित करना। प्रसन्न करना।

हरषितॐ-वि० दे० "हर्षित"।

हरसनाॐ-क्रि० अ० दे० "हरषना"।

हरसाना-क्रि० स० दे० "हरषाना"।

हरसिंगार-संज्ञा पुं० [सं० हार + सिंगार] मझोले कद का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी और ३-४ अंगुल चौड़ी और किनारों पर कुछ कटावदार होती हैं। पतली नोक कुछ दूर तक निकली होती है। यह पेड़ फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है और विंध्य पर्वत के कई स्थानों पर जंगली होता है। यह शरद् ऋतु में कुँआर से अगहन तक फूलता है। फूल में छोटे छोटे पाँच दल और नारंगी रंग की लंबी पोली डाँड़ी होती है। फूल पेड़ में बहुत काल तक लगे नहीं रहते, बराबर झड़ा करते हैं। डाँड़ियों को लोग पीला रंग निकालने के लिये सुखाकर रखते हैं। इसकी पत्ती ज्वर की बहुत अच्छी ओषधि समझी जाती है। इसे "परजाता" भी कहते हैं।

हरसौधा†-संज्ञा पुं० [हिं० हरिस] कोल्हू में वह स्थान या पाटा जिस पर बैठकर बैल हाँके जाते हैं।

हरहट†-वि० [हिं० हरकना] नटखट (बैल)। जो बार बार खेत चरने दौड़े या इधर उधर भागता फिरे (चौपाया)। हरहाई। जैसे,—हरहट गैया।

हरहा-वि० दे० "हरहट"।

संज्ञा पुं० [देश०] भेड़िया। वृक।

हरहाई-वि० स्त्री० [हिं० हरहा] नटखट (गाय)। (गाय) जो बार बार खेत चरने दौड़े या इधर उधर भागती फिरे। हरहट। उ०—जिमि कपिलहि घालै हरहाई।—तुलसी।

हरहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (शिव का हार) सर्प। साँप। उ०—हठि हित करि प्रीतम हियो कियो जु सौति सिंगार। अपने कर मोतिन गुह्यो भयो हरा हरहार।—बिहारी। (२) शेषनाग।

हरहोरवा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

हराँस†-संज्ञा पुं० [अ० हर = गरम होना + सं० अंश] मंद ज्वर। हरारत।

हरा-वि० [सं० हरित, प्रा० हरिअ] [स्त्री० हरी] (१) घास या पत्ती के रंग का। हरित। सब्ज़। जैसे,—हरा कपड़ा। हरी पत्ती।

यौ०—हरा भरा।

(२) प्रफुल्ल। प्रसन्न। ताज़ा। जैसे,—(क) नहाने से जी हरा हो गया। (ख) माँ बेटे को देख हरी हो गई। (ग) हरा भरा चेहरा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) जो मुरझाया न हो। सजीव। ताज़ा। जैसे,—पानी देने से पौधे हरे हो गए। (४) (घाव) जो सूखा या भरा न हो। जैसे,—धक्का लगने से घाव फिर हरा हो गया।

(५) दाना या फल जो पका न हो। जैसे,—हरे अमरूद, हरे चूट, हरे दाने।

मुहा०—**हरा बाग**=केवल अभी लुभानेवाली पर पीछे कुछ न ठहरनेवाली बात। व्यर्थ आशा बँधानेवाली बात। **हरा भरा**=(१) जो सूखा या मुरझाया न हो। (२) जो हरे पेड़ पौधों और घास आदि से भरा हो। जैसे,—तेरी गोद हरी भरी रहे। **हरे में आँखें होना या फूलना**=हरियाली सूझना। मन बढ़ा रहना और आगम का ध्यान न रहना।

संज्ञा पुं० (१) घास या पत्ती का सा रंग। हरित वर्ण। जैसे,—नीला और पीला मिलाने से हरा बन जाता है। (२) चौपायों को खिलाने का ताजा चारा।

⊛† संज्ञा पुं० [हिं० हार] हार। माला। उ०—(क) अपने कर मोतिन गुह्यो भयो हरा हरहार।—बिहारी। (ख) कुच दुंदन को पहिराय हरा मुख सोंधी सुरा महकावति हैं।—श्रीधर पाठक।

संज्ञा स्त्री० [सं०] हर या महादेव की स्त्री। पार्वती।

हराई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० हर, हल] खेत का उतना भाग जितना एक हल के एक चक्कर में जुत जाता है। बाह। जैसे,—४ हराई हो गई।

मुहा०—**हराई फाँदना**=जुताई की कूँड़ शुरू करना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० हारना] हारने की क्रिया या भाव। हार।

हरानल-संज्ञा पुं० [सं०] रावण का एक नाम।

हराना-क्रि० स० [हिं० हारना, या हरना] (१) युद्ध में प्रतिद्वंद्वी को हटाना। मारना या बेकाम करना। परास्त करना। पराजित करना। शिकस्त देना। जैसे,—लड़ाई में हराना। (२) शत्रु को विफल मनोरथ करना। दुश्मन को नाकामयाब करना। (३) प्रयत्न में शिथिल करना। और अधिक श्रम के योग्य न रखना। थकाना।

संयो० क्रि०—देना।

हरापन-संज्ञा पुं० [हिं० हरा + पन (प्रत्य०)] हरे होने का भाव। हरितता। सब्ज़ी।

हराम-वि० [अ०] निषिद्ध। विधि-विरुद्ध। बुरा। अनुचित। दूषित। जैसे—मुसलमानों के लिये सूद खाना हराम है।

संज्ञा पुं० (१) वह वस्तु या बात जिसका धर्म्मशास्त्र में निषेध हो। वर्जित बात या वस्तु। (२) सूअर (जिसके खाने आदि का इसलाम में निषेध है)। उ०—आँधरो, अधम, जड़, जाजरो जरा जवन, सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग में। गिरो हिये हहरि, "हराम हो! हराम हन्यो" हाय हाय करत परीगो काल-फँग में।—तुलसी।

मुहा०—**(कोई बात) हराम करना**=किसी बात का करना मुश्किल कर देना। ऐसा करना कि कोई काम आराम से न कर सकें। जैसे,—तुमने तो काम के मारे खाना पीना हराम कर दिया। **(कोई बात) हराम होना**=किसी बात का करना मुश्किल हो जाना। कोई बात न करने पाना। जैसे,—रात भर इतना शोर हुआ कि नींद हराम हो गई।

(३) बेईमानी। अधर्म। बुराई। पाप। जैसे,—(क) हराम का रुपया हम नहीं लेते। (ख) हराम की कौड़ी। (ग) हराम की कमाई।

मुहा०—**हराम का**=(१) जो बेईमानी से प्राप्त हो। जो पाप या अधर्म से कमाया गया हो। (२) मुफ़्त का। जो बिना मिहनत या काम के मिले। जैसे,—हराम का खाना।

यौ०—हरामखोर।

(४) स्त्री पुरुष का अनुचित संबंध। व्यभिचार। जैसे,—हराम का लड़का।

यौ०—हरामज़ादा।

मुहा०—**हराम का पिल्ला**=(१) दोगला। वर्णसंकर। (२) दुष्ट। पाजी। बदमाश। (गाली) **हराम का पेट**=व्यभिचार से रहा हुआ गर्भ।

हरामकार-संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] (१) निषिद्ध कर्म करनेवाला। बुरे काम करनेवाला। (२) व्यभिचारी।

हरामकारी-संज्ञा स्त्री० [अ० + फ़ा०] (१) निषिद्ध कर्म। पाप। बुराई। (२) व्यभिचार। परस्त्रीगमन।

हरामखोर-संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] (१) पाप की कमाई खानेवाला। अनुचित रूप से धन पैदा करनेवाला। (२) बिना मिहनत मजदूरी किए यों ही किसी का धन लेनेवाला। मुफ़्तखोर। (३) अपना काम न करनेवाला। आलसी। निकम्मा।

हरामज़ादा-संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] [स्त्री० हरामज़ादी] (१) व्यभिचार से उत्पन्न पुरुष। दोगला। वर्णसंकर। (२) दुष्ट। पाजी। बदमाश। खल। (गाली)

हरामी-वि० [अ० हराम + ई (प्रत्य०)] (१) व्यभिचार से उत्पन्न। (२) दुष्ट। पाजी। नटखट। (गाली)

हरारत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) गर्मी। ताप। (२) हलका ज्वर। ज्वरांश। मंद ज्वर।

हरावरि⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "हड़ावरि"।

संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हरावल-संज्ञा पुं० [तु०] (१) सेना का अगला भाग। सिपाहियों का वह दल जो फौज में सब के आगे रहता है। (२) ठगों या डाकुओं का सरदार जो आगे चलता है।

हरास-संज्ञा पुं० [फ़ा० हिरास] (१) भय। डर। (२) आशंका। खटका। अंदेशा। उ०—अंतहु उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हिय होइ हरासू।—तुलसी। (३) विषाद। दुःख। रंज। उ०—राज सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भएउ न हरष हरासू।—तुलसी। (४) नैराश्य। नाउम्मेदी।

हराहरॐ–संज्ञा पुं० दे० "हलाहल"।

हरि–वि० [सं०] (१) पिंगल वर्ण। भूरा या बादामी। (२) पीला। (३) हरे रंग का। हरा। हरित।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। भगवान्। (२) इंद्र। (३) घोड़ा। (४) बंदर। (५) सिंह। (६) सिंह राशि। (७) सूर्य। (८) किरन। (९) चंद्रमा। (१०) गीदड़। (११) शुक। सूआ। तोता। (१२) मोर। मयूर। (१३) कोकिल। कोयल। (१४) हंस। (१५) मेढक। मंडूक। (१६) सर्प। साँप। (१७) अग्नि। आग। (१८) वायु। (१९) विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण। (२०) श्रीराम। उ०—हरि हित हरहु चाप गरुआई।—तुलसी। (२१) शिव। (२२) यम। (२३) शुक्र। (२४) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (२५) एक पर्वत का नाम। (२६) एक वर्ष या भूभाग का नाम। (२७) अठारह वर्णों का एक छंद या वृत्त। उ०—बानर गन बानन सन केशव जबहीं मुरगो। रावन दुखदावन जगपावन समुहें जुरयो। (२८) बौद्धशास्त्रों में एक बड़ी संख्या का नाम।

हरिअरॐ†–वि० [सं० हरित] पेड़ की पत्ती के रंग का। हरा। सब्ज़। उ०—हरिअरि भूमि कुसुंभी चोला।—जायसी।

संज्ञा पुं० एक रंग का नाम जो पेड़ की पत्तियों के समान होता है। उ०—अजगव खंडेउ ऊख जिमि मुनिहि हरिअरइ सूझ।—तुलसी।

हरिअराना†–क्रि० अ० दे० "हरिआना"।

हरिअरीॐ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० हरिअर + ई (प्रत्य०)] (१) हरे रंग का विस्तार। (२) घास और पेड़ पौधों का समूह। हरियाली।

हरिआना†–क्रि० अ० [हिं० हरिअ] हरा होना। सब्ज़ होना। मुरझाया न रहना। ताज़ा होना।

संयो० क्रि०—आना।—उठना।

हरिआली–संज्ञा स्त्री० [सं० हरित + आलि] (१) हरेपन का विस्तार। (२) घास और पेड़ पौधों का फैला हुआ समूह। जैसे,—सड़क के दोनों ओर बड़ी सुंदर हरिआली है।

हरिक–संज्ञा पुं० [सं०] लाल या भूरे रंग का घोड़ा।

हरिकथा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भगवान् या उनके अवतारों का चरित्र-वर्णन।

हरिकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ।

हरिकारा†–संज्ञा पुं० दे० "हरकारा"।

हरिकीर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् या उनके अवतारों की स्तुति का गान। भगवान् का भजन।

हरिकेलीय–संज्ञा पुं० [सं०] बंग देश का एक नाम।

हरिकेश–वि० [सं०] भूरे बालोंवाला।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य की सात प्रधान कलाओं में से एक। (२) शिव का एक नाम। (३) एक यक्ष का नाम जो शिव को प्रसन्न करके गणों का एक नायक हुआ था। दंडपाणि। (४) श्यामक नामक यादव का पुत्र जो वसुदेव का भतीजा लगता था।

हरिकांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

हरिक्षेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] पटने के पास एक तीर्थ का नाम।

हरिगंध–संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

हरिगीता–संज्ञा स्त्री० दे० "हरिगीतिका"।

हरिगीतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोलह और बारह के विराम से अट्ठाईस मात्राओं का एक छंद जिसकी पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्रा लघु होनी चाहिए। अंत में लघु गुरु होता है। उ०—निज दास ज्यों रघुबंस-भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो।

हरिचंद–संज्ञा पुं० "हरिश्चंद्र"।

हरिचंदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चंदन। (२) स्वर्ग के पाँच वृक्षों में से एक।

विशेष—शेष चार वृक्षों के नाम ये हैं—पारिजात, मंदार, संतान और कल्प वृक्ष।

(३) कमल का पराग। (४) केसर। (५) चंद्रिका। चाँदनी।

हरिचर्म–संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रचर्म। बाघंबर।

हरिचाप–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

हरिजटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता को समझाने के लिये नियत किया था। (वाल्मीकि०)

हरिजन–संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् का दास। ईश्वर का भक्त।

हरिजानॐ–संज्ञा पुं० दे० "हरियान"।

हरिण–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० हरिणी] (१) मृग। हिरन। (२) हिरन की एक जाति।

विशेष—शेष चार जातियों के नाम ये हैं—ऋष्य, रुरु, पृषत् और मृग।

(३) हंस। (४) सूर्य। (५) एक लोक का नाम। (६) विष्णु का एक नाम। (७) शिव का एक नाम। (८) एक नाग का नाम।

वि० भूरे या बादामी रंग का।

हरिणकलंक–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हरिणनयना, हरिणनयनी–वि० स्त्री० [सं०] हिरन की आँखों के समान सुंदर आँखोंवाली। सुंदरी।

हरिणप्लुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णार्द्धसम वृत्त का नाम जिसके विषम चरणों में ३ सगण, एक लघु और एक गुरु होता है तथा सम में एक नगण, दो भगण और एक रगण होता है।

हरिणलक्षण, हरिणलांछन–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हरिणहृदय–वि० [सं०] (हिरन सा) डरपोक। बुज़दिल।

हरिणाक्षी-वि० स्त्री० [सं०] हिरन की आँखों के समान सुंदर आँखोंवाली। सुंदरी।

हरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मादा हिरन। हिरन की मादा। (२) मँजीठ। (३) ज़र्द चमेली। (४) कामशास्त्र के अनुसार स्त्रियों की चार जातियों या भेदों में से एक जिसे चित्रिणी भी कहते हैं।

विशेष—दो अच्छी जाति की स्त्रियों में यह मध्यम है। 'पद्मिनी' से इसका स्थान दूसरा है। यह पद्मिनी की अपेक्षा कम सुकुमार तथा चंचल और क्रीड़ाशील प्रकृति की होती है।

(५) एक वर्णवृत्त का नाम जिसमें सत्रह वर्ण होते हैं। इसका स्वरूप इस प्रकार है—न स म र स ल० गु० (।।। ।।ऽ ऽऽऽ ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ)। (६) दस वर्णों का एक वृत्त। उ०—फूलन की सुभ गेंद नई। सूँघि सची जनु डारि दई।—केशव।

हरित्-वि० [सं०] (१) भूरे या बादामी रंग का। कपिश। (२) हरे रंग का। हरा। सब्ज़।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य के घोड़े का नाम। (२) मरकत। पन्ना। (३) सिंह। (४) सूर्य्य। (५) विष्णु। (६) एक प्रकार का तृण। (७) हलदी।

हरित-वि० [सं०] (१) भूरे या बादामी रंग का। (२) पीला। ज़र्द। (३) हरे रंग का। हरा। सब्ज़।

संज्ञा पुं० (१) सिंह। (२) कश्यप के एक पुत्र का नाम। (३) यदु के एक पुत्र का नाम। (४) युवनाश्व के एक पुत्र का नाम। (५) द्वादश मन्वंतर का एक देवगण। (६) सेना। (७) सब्ज़ी। हरियाली। (८) सब्ज़ी। शाक भाजी।

हरित कपिश-वि० [सं०] पीलापन या हरापन लिए भूरा। लीद के रंग का।

हरित गोमय-संज्ञा पुं० [सं०] ताज़ा गोबर। (गोभिल गृह्य०)

हरित मणि-संज्ञा पुं० [सं०] मरकत। पन्ना। उ०—हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल। रचना देखि विचित्र अति मन विरंचि कर भूल।—तुलसी।

हरिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूर्वा। दूब। नील दूर्वा। (२) हल्दी। (३) हरे या भूरे रंग का अंगूर। (४) भूरे रंग की गाय। (५) स्वर-भक्ति का एक भेद। (६) हरि या विष्णु का भाव। विष्णुपन।

हरिताल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरताल नाम की धातु। वि० दे० "हरताल"। (२) एक प्रकार का कबूतर जिसका रंग कुछ पीलापन या हरापन लिए होता है।

हरितालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "हरताल"। (२) नाटक के अभिनय में शरीर में रंग आदि पोतने का कर्म।

हरिताली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मालकंगनी। (२) तलवार का वह भाग जो धारदार होता है। (३) भादों की शुक्ल तृतीया। वि० दे० "हरितालिका"। (४) आकाश में मेघ आदि की पतली धज्जी या रेखा। (५) वायु।

हरितालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों के शुक्ल पक्ष की तृतीया। तीज।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ निर्जल व्रत रखतीं और नए वस्त्र पहनकर शिव-पार्वती का पूजन करती हैं।

हरिदश्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब्ज़ा घोड़ा। (२) सूर्य्य (जिनका घोड़ा हरित् माना गया है)।

हरिदास-संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् का सेवक या भक्त।

हरिदिन, हरिदिवस-संज्ञा पुं० [सं०] एकादशी।

हरिदिशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व दिशा (जिसके लोकपाल या अधिष्ठाता इंद्र हैं)।

हरिदैव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रवण नक्षत्र (जिसके अधिष्ठाता विष्णु हैं)।

हरिद्गर्भ-संज्ञा पुं० दे० "हरिदर्भ"।

हरिद्र-संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

हरिद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीला चंदन। (२) एक नाग का नाम।

हरिद्रखंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक औषध जिसके सेवन से दाद, खुजली, फोड़े फुंसी और कुष्ठ रोग दूर होता है।

विशेष—सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, तज, पत्रज, बायबिडंग, नागकेसर, निसोथ, त्रिफला, केसर और नागरमोथा सब टके टके भर लेकर चूर्ण करे और गाय के घी में सान डाले और ४ टके भर हलदी का चूर्ण ४ सेर दूध में मिलाकर खोया बना ले। फिर मिस्री की चाशनी में सबको मिलाकर टके टके भर की गोलियाँ बाँध ले।

हरिद्रांग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कबूतर।

हरिद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हलदी। (२) एक नदी का नाम। (३) वन। जंगल। (अनेकार्थ०) (४) मंगल। (अनेकार्थ०) (५) सीसा धातु। (अनेकार्थ०)

हरिद्रा गणपति-संज्ञा पुं० [सं०] गणपति या गणेश जी की एक मूर्त्ति जिन पर मंत्र पढ़कर हलदी चढ़ाई जाती है।

हरिद्राद्वय-संज्ञा पुं० [सं०] हलदी और दारु हलदी।

हरिद्रा प्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] प्रमेह का एक भेद जिसमें पेशाब हलदी के समान पीला आता है और जलन होती है।

हरिद्रामेह-संज्ञा पुं० दे० "हरिद्राप्रमेह"।

हरिद्रा राग-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में पूर्व राग का एक भेद। वह प्रेम जो हलदी के रंग के समान कच्चा हो, स्थायी या पक्का न हो।

विशेष—पूर्व राग के कुसुंभ राग, मंजिष्ठा राग आदि कई भेद किए गए हैं।

हरिद्वार-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ से गंगा पहाड़ों

को छोड़कर मैदान में आती है। इसी से इसे "गंगाद्वार" भी कहते हैं। 'हरिद्वार' इसलिये कहते हैं कि इस तीर्थ के सेवन से विष्णुलोक का द्वार खुल जाता है।

हरिधनुष-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

हरिधाम-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुलोक। वैकुंठ।

हरिन-संज्ञा पुं० [सं० हरिण] [स्त्री० हरिनी] खुर और सींगवाला एक चौपाया जो प्रायः सुनसान मैदानों, जंगलों और पहाड़ों में रहता है। मृग।

विशेष—हरिन की बहुत जातियाँ होती हैं; जैसे—कृष्णसार, एण, कस्तूरी, मृग, बारहसिंगा, साँभर इत्यादि। यह जंतु अपनी तेज़ चाल, कुदान और चंचलता के लिये प्रसिद्ध है। यह झुंड बाँधकर रहता है और स्वभावतः डरपोक होता है। मादा के सींग नहीं बढ़ते, अंकुर मात्र रह जाते हैं, इसी से पालनेवाले अधिकतर मादा पालते हैं। इसकी आँखें बहुत बड़ी बड़ी और काली होती हैं; इसी से कवि लोग बहुत दिनों से स्त्रियों के सुंदर नेत्रों की उपमा इसकी आँखों से देते आए हैं। शिकार भी जितना इस जंतु का संसार में हुआ और होता है, उतना शायद ही और किसी पशु का होता हो। 'मृगया' जिस प्रकार यहाँ राजाओं का एक साधारण व्यसन रहा है, उसी प्रकार और देशों में भी। हिंदुओं के यहाँ इसका चमड़ा बहुत पवित्र माना जाता है; यहाँ तक कि उपनयन संस्कार में भी इसका व्यवहार होता है। प्राचीन ऋषि मुनि भी मृगचर्म धारण करते थे और आजकल के साधु संन्यासी भी।

हरि नक्षत्र-संज्ञा पुं० [सं०] श्रवण नक्षत्र (जिसके अधिष्ठाता देवता विष्णु हैं)।

हरिनख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह या बाघ का नाखून। (२) बाघ के नाखून लगी तावीज़ जो स्त्रियाँ बच्चों को (नज़र आदि से बचाने के खयाल से) पहनाती हैं। बघनहाँ।

हरिनग॥-संज्ञा पुं० [सं०] सर्प का मणि।

हरिनाकुस॥†-संज्ञा पुं० दे० "हिरण्यकशिपु"। उ०—हरिनाकुस औ कंस को गयो दुहुन को राज।—गिरिधर।

हरिनाक्ष-संज्ञा पुं० दे० "हिरण्याक्ष"।

हरिनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] (बंदरों में श्रेष्ठ) हनुमान्।

हरिनाम-संज्ञा पुं० [सं० हरिनामन्] भगवान् का नाम। उ०—भजता क्यों नाहीं हरिनाम। तेरी कौड़ी लगै न दाम।

हरिनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हरिन] (१) मादा हिरन। स्त्री जाति का मृग। उ०—(क) यह तन हरियर खेत तरुनी हरिनी चरि गई। (ख) हरिनी के नैनान सों हरि! नीके नैनान।—बिहारी। (२) जूही फूल। (अनेका०) (३) बाज पक्षी की मादा। (अनेकार्थ०)

हरिपद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु लोक। वैकुंठ। उ०—जो यह मंगल गावहिं हरिपद पावहिं हो।—तुलसी। (२) एक छंद जिसके विषम (पहले और तीसरे) चरणों में १६ तथा सम (दूसरे और चौथे) चरणों में ११ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु लघु होता है।

हरिपुर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु लोक। वैकुंठ।

हरिपैड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हरि + पैड़ी = सीढ़ी] हरिद्वार तीर्थ में गंगा का एक विशेष घाट जहाँ के स्नान का बहुत माहात्म्य है।

हरिप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रप्रस्थ।

हरिप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कदंब। (२) बधूक। गुल दुपहरिया। (३) शंख। (४) मूर्ख आदमी। (५) पागल। (६) सनाह। बकतर।

हरिप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १२ + १२ + १२ + १० के विराम से ४६ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु होता है। इसे 'चंचरी' भी कहते हैं। उ०—पौढ़िए कृपानिधान देव देव रामचंद्र चंद्रिका समेत चंद्र चित्त रैनि मोहै। (३) तुलसी। (४) पृथ्वी। (५) मधु। (६) मद्य। (७) द्वादशी। (८) लाल चंदन।

हरिप्रीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में एक मुहूर्त्त का नाम। उ०—नवमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकुल पच्छ, अभिजित, हरिप्रीता।—तुलसी।

हरिबीज-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

हरिबोधिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिक शुक्ल एकादशी। देवोत्थान एकादशी।

हरिभक्त-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु या भगवान् का भक्त। ईश्वर का प्रेमी। ईश्वर का भजन करनेवाला।

हरिभक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु या ईश्वर की भक्ति। ईश्वर-प्रेम।

हरिभुज-संज्ञा पुं० [सं०] साँप। सर्प (जो मेढक खाता है)।

हरिमंथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गनियारी का पेड़ जिसकी लकड़ी रगड़ने से आग निकलती है। अग्निमंथ। (२) मटर। (३) चना। (४) एक प्रदेश का नाम।

हरिमेध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वमेध यज्ञ। (२) विष्णु या नारायण का एक नाम।

हरियर†-संज्ञा पुं० दे० "हरीरा"।

वि० दे० "हरा"।

हरियराना-क्रि० अ० दे० "हरिआना"।

हरिया†-संज्ञा पुं० [हिं० हर (हल)] हल जोतनेवाला। हलवाहा।

हरियाई†॥-संज्ञा स्त्री० दे० "हरियाली"। उ०—लसति लहलही जहाँ सघन सुंदर हरियाई।—श्रीधर पाठक।

हरिया थोथा-संज्ञा पुं० [हिं० हरा + थोथा] नीला थोथा। तूतिया।

हरियान-संज्ञा पुं० [सं०] (विष्णु के वाहन) गरुड़।

हरियाना-क्रि० अ० दे० "हरिआना"।

हरियारी†-संज्ञा स्त्री० दे० "हरियाली"।

हरियाली-संज्ञा स्त्री० [सं० हरित + आलि = पंक्ति, समूह] (१) हरेपन का विस्तार। हरे रंग का फैलाव। (२) हरे हरे पेड़-पौधों या घास का समूह या विस्तार। जैसे,—बरसात में चारो ओर हरियाली छा जाती है।

मुहा०—हरियाली सूझना = चारो ओर आनंद ही आनंद दिखाई पड़ना। मौज की बातों की ओर ही ध्यान रहना। आनंद में मग्न रहना। जैसे,—अभी तो हरियाली सूझ रही है; जब रुपए देने पड़ेंगे, तब मालूम होगा।

(३) हरा चारा जो चौपायों के सामने डाला जाता है।

हरियाली तीज-संज्ञा स्त्री० [हिं० हरियाली + तीज] सावन बदी तीज।

हरियार्ध-संज्ञा पुं० [देश०] फसल की एक बँटाई जिसमें ९ भाग असामी और ७ भाग जमींदार लेता है।

हरिल-संज्ञा पुं० दे० "हारिल"।

हरिलीला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौदह अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसका स्वरूप इस प्रकार है—"साँची कही भरत बात सबै सुजान"।—केशव।

विशेष—यदि अंतिम वर्ण लघु लें तब तो इसे अलग छंद कह सकते हैं; पर यदि अंतिम लघु वर्ण को गुरु के स्थान पर मानें तो यह प्रसिद्ध वसंततिलका वृत्त ही है। केशव ने ही इसका यह नाम दिया है।

हरिलोक-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु लोक। वैकुंठ।

हरिलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) केकड़ा। (२) उल्लू।

हरिवंश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृष्ण का कुल। (२) एक ग्रंथ जो महाभारत का परिशिष्ट माना जाता है और जिसमें कृष्ण तथा उनके कुल के यादवों का सविस्तर वृत्तांत दिया गया है।

हरिवर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] जंबू द्वीप के नौ खंडों में से एक।

हरिवल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) तुलसी। (३) अधिक मास की कृष्ण एकादशी।

हरिवास-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ। पीपल।

हरिवासर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य का दिन। रविवार। (२) विष्णु का दिन। एकादशी।

हरिवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़। (२) सूर्य्य का एक नाम। (३) इंद्र का एक नाम।

हरिशंकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु और शिव। (२) एक रसौषध जो पारे और अभ्रक के योग से बनती है और प्रमेह में दी जाती है।

विशेष—शुद्ध पारे और अभ्रक को लेकर सात दिन तक आँवले के रस में घोंटते हैं; फिर सुखाकर एक रत्ती की मात्रा में देते हैं।

हरिशयनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आषाढ़ शुक्ल एकादशी। (पुराणों के अनुसार इस दिन विष्णु भगवान शेष की शय्या पर सोते हैं और फिर कार्त्तिक की प्रबोधिनी एकादशी को उठते हैं।)

हरिशर-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

विशेष—त्रिपुर विनाश के समय शिव ने विष्णु भगवान् को अपने धनुष का बाण बनाया था; इसी से इनका यह नाम पड़ा है।

हरिश्चंद्र-वि० [सं०] सोने की सी चमकवाला। स्वर्णाभ। (वैदिक)

संज्ञा पुं० सूर्य्य वंश का अट्ठाईसवाँ राजा जो त्रिशंकु का पुत्र था। पुराणों में यह बड़ा ही दानी और सत्यव्रती प्रसिद्ध है। मार्कंडेयपुराण में इसकी कथा विस्तार से आई है। इंद्र ने ईर्ष्यावश विश्वामित्र को इनकी परीक्षा के लिये भेजा। विश्वामित्र ने इनसे सारी पृथ्वी दान में ली और फिर ऊपर से दक्षिणा माँगने लगे। अंत में राजा ने रानी सहित अपने को बेचकर ऋषि की दक्षिणा चुकाई। वे काशी में डोम के सेवक होकर श्मशान पर मुर्दा लानेवालों से कर वसूल करने लगे। एक दिन उनकी रानी ही अपने मृत पुत्र को श्मशान में लाई। उसके पास कर देने के लिये कुछ भी द्रव्य नहीं था। राजा ने उससे भी कर नहीं छोड़ा और आधा कफन फड़वाया। इस पर भगवान ने प्रकट होकर पुत्र को जिला दिया और अंत में अयोध्या की प्रजा सहित सबको वैकुंठ भेज दिया। महाभारत में राजसूय यज्ञ करके राजा हरिश्चंद्र का स्वर्ग प्राप्त करना लिखा है। ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेफ की गाथा के प्रसंग में हरिश्चंद्र का नाम आया है; पर वहाँ कथा दूसरे ढंग की है। उसमें हरिश्चंद्र इक्ष्वाकु वंश के राजा वेधस के पुत्र कहे गए हैं। गाथा इस प्रकार है—

नारद के उपदेश से राजा ने पुत्र की कामना करके वरुण से यह प्रतिज्ञा की कि जो पुत्र होगा, उसे वरुण को भेंट करूँगा। वरुण के वर से जब राजा को पुत्र हुआ, तब उसका नाम उन्होंने रोहित रखा। जब वरुण पुत्र माँगने लगे, तब राजा बराबर टालते गए। जब रोहित बड़ा होकर शस्त्र धारण के योग्य हुआ, तब वह मरना स्वीकार न कर जंगल में निकल गया और इंद्र के उपदेशानुसार इधर उधर फिरता रहा। अंत में वह अजीगर्त्त नामक एक ऋषि के आश्रम पर पहुँचा और उनसे सौ गायों के बदले में शुनःशेफ नामक उनके मझले पुत्र को लेकर अपने पिता के पास आया जिसे वरुण के कोप से जलोदर रोग हो गया था। शुनःशेफ को यज्ञ में बलि देने के लिये जब सब तैयारियाँ हो चुकीं, तब शुनःशेफ अपने छुटकारे के लिये सब देवताओं की स्तुति करने लगा। अंत में इंद्र के उपदेश से उसने

अश्विनीकुमारों का स्मरण किया जिससे उसके बंधन कट गए और रोहित के पिता हरिश्चंद्र का जलोदर रोग भी दूर हो गया। जब शुनःशेफ मुक्त होकर अपने पिता के साथ न गया, तब विश्वामित्र ने उसे अपना बड़ा पुत्र बनाया।

हरिश्मश्रु-संज्ञा पुं० [सं०] हिरण्याक्ष दैत्य के नौ पुत्रों में से एक जो ब्रह्मकल्प में परावसु गंधर्व के नौ पुत्रों में से एक था।

हरिषेण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु पुराण के अनुसार दसवें मनु के पुत्रों में से एक। (२) जैन पुराणों के अनुसार भारत के दस चक्रवर्त्तियों में से एक। (३) एक प्राचीन भट्ट या कवि का नाम जिसने गुप्तवंशीय सम्राट् समुद्रगुप्त की वह प्रशस्ति लिखी थी जो प्रयाग के किले के भीतर के खंभे पर है।

हरिस-संज्ञा स्त्री० [सं० हलीषा] हल का वह लंबा लट्ठा जिसके एक छोर पर फालवाली लकड़ी आड़ी जुड़ी रहती है और दूसरे छोर पर जूवा अटकाया जाता है। ईषा।

हरिसिंगार-संज्ञा पुं० दे० "हरसिंगार"।

हरिसुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न। (२) इंद्र के अंश से उत्पन्न अर्जुन।

हरिहर क्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बिहार में एक तीर्थस्थान जहाँ कार्त्तिक पूर्णिमा को गंगास्नान और बड़ा भारी मेला होता है। यह मेला पंद्रह दिन तक रहता है और बहुत दूर दूर से दूकानें आती हैं। हाथी, घोड़े आदि जानवर बहुत बिकने के लिये आते हैं।

हरिहाई*-वि० स्त्री० दे० "हरहाई"।

हरिहित-संज्ञा पुं० [सं०] बीरबहूटी। इंद्रवधू।

हरी-वि० स्त्री० [हिं० हरा] हरित। सब्ज़।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) १४ वर्णों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण, जगण, रगण और अंत में लघु गुरु होते हैं। इसे 'अनंद' भी कहते हैं। (२) कश्यप की क्रोधवशा नाम की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न दस कन्याओं में से एक जिससे सिंह, बंदर आदि पैदा हुए थे।

*† संज्ञा स्त्री० [हिं० हर (हल)] जमींदार के खेत की जुताई में असामियों का हल बैल देकर या काम करके सहायता करना।

संज्ञा पुं० दे० "हरि"।

हरी कसीस-संज्ञा स्त्री० दे० "हीरा कसीस"।

हरीकेन-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की लालटेन जिसकी बत्ती में हवा का झोंका आदि नहीं लगता।

हरी चाह-संज्ञा स्त्री० [हिं० हरी + चाह] एक प्रकार की घास जिसकी जड़ में नीबू की सी सुगंध होती है। गंधतृण।

हरीत-संज्ञा पुं० दे० "हारीत"।

हरीतकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हड़। हर्रे।

हरीतक्यादि क्वाथ-संज्ञा पुं० [सं०] हड़ के प्रधान योग से बना हुआ एक प्रकार का काढ़ा जो मूत्रकृच्छ्र और बंधकुष्ठ रोग में दिया जाता है।

विशेष—हड़ का छिलका, अमलतास का गूदा, गोखरू, पखानभेद, धमासा और अडूसा इन सब का चूर्ण लेकर पानी में काढ़ा उतारा जाता है।

हरीफ़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) दुश्मन। शत्रु। (२) प्रतिद्वंद्वी। प्रतिस्पर्द्धी। विरोधी।

हरीरा-संज्ञा पुं० [अ० हरीर:] एक प्रकार का पेय पदार्थ जो दूध में सूजी, चीनी और इलायची आदि मसाले और मेवे डालकर औटाने से बनता है। यह अधिकतर प्रसूता स्त्रियों को दिया जाता है।

†*वि० [हिं० हरिअर] [स्त्री० हरीरी] (१) हरा। सब्ज़। (२) हर्षित। प्रसन्न। प्रफुल्ल। उ०—छन होत हरीरी मही को लखे, छन जोवति है छन-जोति-छटा। अवलोकति इंद्र-बधू की पैत्यारी, बिलोकति है छिन कारी घटा।—कोई कवि।

हरीरी-संज्ञा स्त्री० [अ० हरीर:] हरीरा।

वि० स्त्री० दे० "हरीरा"।

हरील†-संज्ञा पुं० दे० "हारिल"।

हरीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंदरों के राजा। (२) हनुमान्। (३) सुग्रीव।

हरीस-संज्ञा स्त्री० [सं० हलीषा] हल का वह लंबा लट्ठा जिसके एक छोर पर फालवाली लकड़ी आड़े बल जड़ी रहती है और दूसरे छोर पर जूआ लगाया जाता है। हरिस।

हरुआ†*-वि० [सं० लघुक, प्रा० लहुअ; विपर्यय "हलुअ"] हलका। जो भारी न हो। जिसमें गुरुत्व न हो। उ०—निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी।—तुलसी।

हरुआ†*-वि० [सं० लघुक, प्रा० लहुअ, विपर्यय 'हलुअ'] [स्त्री० हरुई] जो भारी न हो। जिसमें गुरुत्व न हो। हलका। उ०—सोन नदी अस पिउ मोर गरुआ। पाहन होइ परै जो हरुआ।—जायसी।

हरुआई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० हरुआ + ई (प्रत्य०)] (१) हलकापन। (२) फुरती।

हरुआना†-क्रि० अ० [हिं० हरुआ + ना (प्रत्य०)] (१) हलका होना। लघु होना। (२) फुरती करना। जल्दी करना। उ०—कर धनु लै किन चंदहि मारि। तु हरुआय जाय मंदिर चढ़ि ससि सन्मुख दर्पन विस्तारि। याही भाँति बुलाय, मुकुर महि अति बल खंड खंड करि डारि।—सूर।

हरुई†-वि० स्त्री० दे० "हरुआ"।

हरुए†*-क्रि० वि० [हिं० हरुआ] (१) धीरे धीरे। आहिस्ता से। (२) इस प्रकार जिसमें आहट न मिले। हलके पन से। चुपचाप। उ०—(क) ना जानौं कित तें हरुए हरि आय

मूँदि दिए नैन।—सूर। (ख) आपहि तें तजि मान तिया हरुए हरुए गरबै लगि जैहै।—पद्माकर।

हरुण-संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत बड़ी संख्या। (बौद्ध)

हरुवा†-वि० दे० "हरुआ"।

हरूा*-वि० दे० "हरुअ"।

हरूफ़-संज्ञा पुं० [अ० हरफ़ का बहु०] अक्षर। हरफ़।

हरे-संज्ञा पुं० [सं०] 'हरि' शब्द का संबोधन का रूप।

* क्रि० वि० [हिं० हरुए] (१) धीरे से। आहिस्ता से। तेजी के साथ नहीं। मंद। उ०—लाज के साज धरेई रहे तब नैनन लै मन ही सों मिलाए। कैसी करौं अब क्यों निकसैं री हरे ई हरे हिय में हरि आए।—केशव। (२) जो ऊँचा या ज़ोर का न हो। जो तीव्र न हो। (शब्द) उ०—दूरि तें दौरत, देव, गए सुनि के धुनि रोस महा चित चीन्हो। संग की औरैं उठी हँसि कै तब हेरि हरे हरि जू हँसि दीन्हों।—देव। (३) जो कठोर या तीव्र न हो। हलका। कोमल। (आघात, स्पर्श आदि)

यौ०—हरे हरे=धीरे धीरे। उ०—रोस दरसाय बाल हरि तन हेरि हेरि फूल की छरी सों खरी मारती हरे हरे।

हरेणु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मटर। (२) बाढ़ जो हद बाँधने के लिये लगाई जाय।

हरेना†-संज्ञा पुं० [हिं० हरा] वह विशेष प्रकार का चारा जो ब्यानेवाली गाय को दिया जाता है।

हरेरा†-वि० दे० "हरा", "हरियरा"।

हरेव-संज्ञा पुं० [देश०] (१) मंगोलों का देश। (२) मंगोल जाति। उ०—पछिउँ हरेव दीन्हि जो पीठी। सो पुनि फिरा सौंह कै दीठी।—जायसी।

हरेवा-संज्ञा पुं० [हिं० हरा] हरे रंग की एक चिड़िया जिसकी चोंच काली, पैर पीले और लंबाई १४ या १५ अंगुल होती है। यह युक्त प्रांत, मध्य भारत और बंगाल में पाई जाती है। यह पेड़ की जड़ और रेशों से कटोरे के आकार का घोंसला बनाती और दो अंडे देती है। यह बहुत अच्छा बोलती है, इससे इसे "हरी बुलबुल" भी कहते हैं।

हरैं*-क्रि० वि० दे० "हरे"।

हरैना-संज्ञा पुं० [हिं० हर (हल)+ऐना (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० हरैनी] (१) वह टेढ़ी गावदुम लकड़ी जो हल के लट्ठे (हरिस) के एक छोर पर आड़े बल में लगी रहती है और जिसमें लोहे का फाल ठोंका रहता है। (२) बैल गाड़ी के सामने की ओर निकली हुई लकड़ी।

हरैनी-संज्ञा स्त्री० दे० "हरैना"।

हरैया†*-संज्ञा पुं० [हिं० हरना] हरनेवाला। दूर करनेवाला। उ०—दसरथ के नंद हैं दुःख हरैया।—तुलसी।

हरोना-संज्ञा पुं० [हिं० हरा] एक प्रकार की अरहर जो रायपुर जिले में बहुत होती है।

हरोल-संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हरौल-संज्ञा पुं० दे० "हरावल"। उ०—जुरे दुहुन के दग झमकि रुके न झीने चीर। हलकी फौज हरौल ज्यों परत गोल पर भीर।—बिहारी।

हर्ज-संज्ञा पुं० [अ०] (१) काम में रुकावट। बाधा। अड़चन। जैसे,—नौकर के न रहने से बड़ा हर्ज हो रहा है। (२) हानि। नुकसान। जैसे,—इनके यहाँ रहने से आपका क्या हर्ज है?

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० हर्तृ] [स्त्री० हर्त्री] (१) हरण करनेवाला। दूर करनेवाला। (२) नाश करनेवाला।

हर्त्तार-संज्ञा पुं० [सं०] हरण करनेवाला। हर्त्ता।

हर्द†-संज्ञा पुं० दे० "हलदी"।

हर्दी†-संज्ञा स्त्री० दे० "हलदी"।

हर्फ़-संज्ञा पुं० दे० "हरफ़"।

हर्वा-संज्ञा पुं० दे० "हरवा"।

हर्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजभवन। महल। प्रासाद। (२) बड़ा भारी मकान। हवेली। (३) नरक।

हर्म्यपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] मकान की पाटन या छत।

हर्र-संज्ञा स्त्री० दे० "हर्रे", "हड़"।

हर्रा-संज्ञा पुं० [सं० हरीतकी] बड़ी जाति की हड़ जिसका उपयोग त्रिफला में होता है और जो रँगाई के काम में आती है। वि० दे० "हर्रे", "हड़"।

मुहा०—हर्रा कदम में=रास्ते में मैला या गोबर है। (पालकी के कहार)

हर्रे-संज्ञा स्त्री० दे० "हड़"।

हर्रैया-संज्ञा स्त्री० [हिं० हर्रे] (१) हाथ में पहनने का एक गहना जिसमें हड़ के से सोने या चाँदी के दाने पाट में गुछे रहते हैं। (२) माला या कंठे के दोनों छोरों पर का चिपटा दाना जिसके आगे सुराही होती है।

हर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रफुल्लता या भय के कारण रोंगटों का खड़ा होना। (२) प्रफुल्लता। आनंद। खुशी। मोद। चित्त प्रसादन।

क्रि० प्र०—करना।—मनाना—।—होना।

विशेष—साहित्य में हर्ष की गिनती संचारी भावों में है।

(३) धर्म के पुत्रों में से एक। (४) कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (भागवत)

यौ०—हर्ष विषाद=खुशी और रंज।

हर्षक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हर्ष करनेवाले। आनंददायक। (२)

चित्रगुप्त के एक पुत्र का नाम। (३) मगध के शिशुनाक वंश का एक प्राचीन राजा।

हर्षकर-संज्ञा पुं० [सं०] खुश करनेवाला। आनंद देनेवाला। हर्षकारक।

हर्षकीलक-संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र में एक प्रकार के आसन का नाम।

हर्षचरित-संज्ञा पुं० [सं०] बाण कवि का रचित एक प्रसिद्ध गद्य काव्य जिसमें उनके आश्रयदाता सम्राट् हर्षवर्द्धन का वृत्तांत है।

हर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रफुल्लता या भय से रोंगटों का खड़ा होना। जैसे,—लोमहर्षण। (२) प्रफुल्लित करना या होना। (३) कामदेव के पाँच बाणों में से एक। (४) आँख का एक रोग। (५) एक प्रकार का श्राद्ध। (६) फलित ज्योतिष में एक योग। (७) काम के वेग से इंद्रिय का तनाव। (८) अस्त्र का एक संहार।

हर्षधारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौदह प्रकार के तालों में से एक। (संगीत)

हर्षना*-क्रि० अ० [सं० हर्षण] प्रफुल्लित होना। खुश होना। प्रसन्न होना।

हर्षनिस्वनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी का नाम। (संगीत)

हर्षवर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] भारत का वैस क्षत्रिय-वंशी एक सम्राट् जिसकी सभा में बाण कवि रहते थे। यह बौद्ध था और इसका राज्य विक्रम की सातवीं शताब्दी में था। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्सांग हर्ष के समय में भारतवर्ष में आया था।

हर्षाना*-क्रि० अ० [सं० हर्ष + आना (हिं० प्रत्य०)] आनंदित होना। प्रसन्न होना। प्रफुल्ल होना।

क्रि० स० हर्षित करना। आनंदित करना।

हर्षित-वि० [सं०] आनंदित। प्रसन्न। प्रफुल्ल। खुश।

क्रि० प्र०- करना।—होना।

हर्षुल-वि० [सं०] हर्षित रहनेवाला। खुशमिज़ाज।

संज्ञा पुं० (१) प्रेमी। नायक। प्रियतम। (२) हिरन। मृग। (३) एक बुद्ध का नाम।

हर्षुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जिसकी ठुड्डी में बाल या दाढ़ी हो। शास्त्रों में ऐसी कन्या विवाह के अयोग्य कही गई है।

हर्षोत्फुल्ल-वि० [सं०] खुशी से फूला हुआ।

हर्सा†-संज्ञा पुं० [सं० हलीषा] हल का लंबा लट्ठा। हरिस। हलीषा।

हल्-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध व्यंजन जिसमें स्वर न मिला हो।

विशेष—लिखने में अक्षर के नीचे एक छोटी तिरछी लकीर बना देने से यह सूचित होता है। जैसे,—'पृथक्' शब्द में 'क' के नीचे ्।

हलंत-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध व्यंजन जिसके उच्चारण में स्वर न मिला हो। वि० दे० "हल्"।

विशेष—व्यंजन दो रूपों में आते हैं—सस्वर और हलंत।

हल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह यंत्र या औजार जिससे बीज बोने के लिये जमीन जोती जाती है। वह औजार जिसे खेत में सब जगह फिरा कर जमीन को खोदते और भुरभुरी करते हैं। सीर। लांगल।

विशेष—यह खेती का मुख्य औजार है और सात आठ हाथ लंबे लट्ठे के रूप में होता है, जिसके एक छोर पर दो ढाई हाथ का लकड़ी का टेढ़ा टुकड़ा आड़े बल में जड़ा रहता है। इसी आड़ी लकड़ी में जमीन खोदनेवाला लोहे का फाल ठोंका रहता है। लंबे लट्ठे को 'हरिस' या 'हर्सा' और आड़ी जड़ी लकड़ी को 'हरेना' कहते हैं।

क्रि० प्र०—चलाना।

मुहा०—हल जोतना = (१) खेत में हल चलाना। (२) खेती करना।

(२) एक अस्त्र का नाम। (३) जमीन नापने का लट्ठा। (४) उत्तर के एक देश का नाम। (बृहत्संहिता) (५) पैर की एक रेखा या चिह्न। (सामुद्रिक)

संज्ञा पुं० [अ०] (१) हिसाब लगाना। गणित करना। (२) किसी कठिन बात का निर्णय। किसी समस्या का समाधान या उत्तर निकालना। जैसे,—यह मुश्किल किसी तरह हल होती दिखाई नहीं देती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हलकंप-संज्ञा पुं० [हिं० हलना (हिलना) + कंप] (१) भारी हल्ला या उथल पुथल। हलचल। आंदोलन। हड़कंप। उ०—जब अहेर सों आयो नाहीं। तब हलकंप परयो पुर माँहीं। —रघुराज।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

(२) चारों ओर फैली हुई घबराहट। लोगों के बीच फैला हुआ आवेग या आकुलता। उ०—सत्रुन के दल में हलकंप परयो सुनि कै नृप केरि अवाई।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

हलक़-संज्ञा पुं० [अ०] गले की नली। कंठ।

मुहा०—हलक़ के नीचे उतरना = (१) मुँह में डाली हुई वस्तु का पेट में ले जानेवाले स्रोत में जाना। पेट में जाना। (२) (किसी बात का) मन में बैठना। असर होना।

हलकई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० हलका + ई (प्रत्य०)] (१) हलकापन। (२) ओछापन। तुच्छता। (३) हेठी। अप्रतिष्ठा। जैसे,—वहाँ जाने से कोई हलकई न होगी।—बालकृष्ण भट्ट।

हलककुद्-संज्ञा पुं० [सं०] हल की वह लकड़ी जो लट्ठे के एक

छोर पर आड़े बल में जड़ी रहती है और जिसमें फाल ठोंका रहता है । हरैना ।

हलकना†&‡—क्रि० अ० [सं० हल्लन = हिलना अथवा 'हल हल' अनु०] (१) किसी वस्तु में भरे जल का हिलाने से हिलना डोलना या शब्द करना । जैसे,—दौड़ने से पेट में पानी हलकता है । (२) हिलोरें लेना । तरंग मारना । लहराना । (३) बत्ती की लौ का झिलमिलाना । (४) हिलना । डोलना । उ०—पानिप के भारन सँभारत न गात, लंक लचि लचि जाति कचभारन के हलकें ।—द्विजदेव ।

हलका—वि० [सं० लघुक, प्रा० लहुक, विपर्य्यय 'हलुक'] [स्त्री० हलकी] (१) जो तौल में भारी न हो । जिसमें वजन या गुरुत्व न हो । 'भारी' का उलटा । जैसे,—यह पत्थर हलका है, तुम उठा लोगे । (२) जो गाढ़ा न हो । पतला । जैसे,—हलका शरबत । (३) जो गहरा या चटकीला न हो । जो शोख न हो । जैसे,—हलका रंग, हलका हरा । (४) जो गहरा न हो । उथला । जैसे,—किनारे पर पानी हलका है । (५) जो उपजाऊ न हो । जो उर्वरा न हो । जैसे,—यहाँ की जमीन हलकी है, पैदावार कम होती है । (६) जो अधिक न हो । कम । थोड़ा । जैसे,—(क) हलका भोजन । (ख) हमें हलके दामों का एक घोड़ा चाहिए । (७) जो जोर का न हो । मंद । थोड़ा थोड़ा । जैसे,—हलका दर्द, हलका ज्वर । (८) जो कठोर या प्रचंड न हो । जो जोर से न पड़ा या बैठा हो । जैसे,—हलका चपत, हलकी चोट । (९) जिसमें गंभीरता या बड़प्पन न हो । ओछा । तुच्छ । टुच्चा । जैसे,—हलका आदमी, हलकी बात । (१०) जो करने में सहज हो । जिसमें कम परिश्रम हो । आसान । सुख-साध्य । जैसे,—हलका काम । (११) जिसके ऊपर किसी कार्य्य या कर्त्तव्य का भार न हो । जिसे किसी बात के करने की फिक्र न रह गई हो । निश्चिंत । जैसे,—कन्या का विवाह करके अब वे हलके हो गए । (१२) प्रफुल्ल । ताजा । (१३) जो मोटा न हो । झीना । पतला । महीन । जैसे,—(क) हलका कपड़ा । (ख) नहाने से बदन हलका हो जाता है । (१४) कम अच्छा । घटिया । जैसे,—यह माल उससे कुछ हलका पड़ता है । (१५) जिसमें कुछ भरा न हो । खाली । छूँछा । उ०—सखि ! बात सुनौ इक मोहन की, निकसे मटकी सिर लै हलकै । पुनि बाँधि लई सुनिए नत नार कहूँ कहूँ कुंदकरी छलकै ।—केशव ।

मुहा०—**हलका करना** = अपमानित करना । तुच्छ ठहराना । लोगों की दृष्टि में प्रतिष्ठा कम करना । जैसे,—तुमने दस आदमियों के बीच में हलका किया । **हलकी बात** = (१) ओछी या तुच्छ बात । (२) बुरी बात । **हलके भारी होना** = (१) ऊबना । भार अनुभव करना । बोझ सा समझना । जैसे,—चार दिन में तुम्हारे यहाँ से चले जायँगे, क्यों हलके भारी हो रहे हो । (२) तुच्छता प्रकट करना । लोगों की नजर में ओछा बनना । **हलकी भारी बोलना** = खोटे वचन कहना । खरी खोटी सुनाना । बुरे शब्द मुँह से निकालना । **लोगों की दृष्टि में हलका होना** = ओछा या तुच्छ समझा जाना । प्रतिष्ठा खोना । बुरा समझा जाना । **हलके हलके** = धीरे धीरे । मंद गति से । आहिस्ता आहिस्ता । **हलका सोना** = हलका सुनहरी रंग । (रँगरेज)

† संज्ञा पुं० [अनु० हल हल] पानी की हिलोर । तरंग । लहर ।

हलक़ा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) वृत्त । मंडल । गोलाई । (२) घेरा । परिधि । (३) मंडली । झुंड । दल । (४) हाथियों का झुंड । उ०—सत्ता के सपूत भाऊ तेरे दिए हलकनि बरनी उँचाई कविराजन की मति मैं । मधुकर कुल करटीन के कपोलन तें उड़ि उड़ि पियत अमृत उड़ुपति मैं ।—मतिराम । (५) कई गाँवों या कसबों का समूह जो किसी काम के लिये नियत हो । जैसे,—थाने का हलक़ा, पटवारियों का का हलक़ा । (६) गले का पट्टा । (७) लोहे का बंद जो पहिए के घेरे में जड़ा रहता है । हाल ।

हलकाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० हलका + ई (प्रत्य०)] (१) हलकापन । लघुता । (२) ओछापन । नीचता । (३) अप्रतिष्ठा । हेठी ।

हलकान†—वि० दे० "हैरान" ।

हलकाना†—क्रि० अ० [हिं० हलका + ना (प्रत्य०)] हलका होना । बोझ कम होना ।

क्रि० स० [हिं० हलकना] (१) किसी वस्तु में भरे हुए पानी को हिलाना या हिलाकर बुलाना । (२) हिलोरा देना ।

क्रि० स० दे० "हिलगाना" ।

हलकापन—संज्ञा पुं० [हिं० हलका + पन (प्रत्य०)] (१) हलके होने का भाव । भार का अभाव । लघुता । (२) ओछापन । नीचता । तुच्छबुद्धि । खोटाई । (३) अप्रतिष्ठा । हेठी । इज्जत की कमी ।

हलकारा†—संज्ञा पुं० दे० "हरकारा" ।

हलकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हड़ + कारी] कपड़ा रँगने के पहले उसमें फिटकरी, हड़ या तेजाब आदि का पुट देना जिसमें रंग पक्का हो ।

संज्ञा स्त्री० [अ० हलक़ा = घेरा] हलदी के योग से बने हुए रंग के द्वारा कपड़ों के किनारे पर की छपाई ।

हलकोरा†—संज्ञा पुं० [अनु० हल हल] हिलोरा । तरंग । लहर ।

हल-गोलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा ।

हलग्राही—वि० [सं० हलग्राहिन्] हल पकड़नेवाला । हल की मूँठ पकड़कर खेत जोतनेवाला ।

विशेष—हल पकड़ना बहुत स्थानों में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिये निषिद्ध समझा जाता है ।

संज्ञा पुं० खेती करनेवाला। किसान।

हलचल-संज्ञा स्त्री० [हिं० हलना + चलना] (१) लोगों के बीच फैली हुई अधीरता, घबराहट, दौड़ धूप, शोर गुल आदि। खलबली। धूम। जैसे,—सिपाहियों के शहर में घुसते ही हलचल मच गई। (ख) शिवाजी ने मुगलों की सेना में हलचल डाल दी।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—मचना।—मचाना।

(२) उपद्रव। दंगा। (३) हिलना डोलना। कंप। विचलन।

वि० इधर उधर हिलता डोलता हुआ। डगमगाता हुआ। कंपायमान।

हलजीवी-वि० [सं० हलजीविन्] हल चलाकर अर्थात् खेती करके निर्वाह करनेवाला। किसान।

हलजुता-संज्ञा पुं० [हिं० हल + जोतना] (१) तुच्छ कृषक। मामूली किसान। (२) गँवार।

हलड़ा-संज्ञा पुं० दे० "हलरा"।

हलदंड-संज्ञा पुं० [सं०] हल का लंबा लट्ठा। हरिस।

हलद†-संज्ञा स्त्री० दे० "हलदी"।

हलद-हाथ-संज्ञा स्त्री० [हिं० हलद + हाथ] विवाह के तीन या पाँच दिन पहले वर और कन्या के शरीर में हल्दी और तेल लगाने की रस्म। हल्दी चढ़ना।

हलदी-संज्ञा स्त्री० [सं० हरिद्रा] (१) डेढ़ दो हाथ ऊँचा एक पौधा जिसमें चारो ओर टहनियाँ नहीं निकलतीं, कांड के चारो हाथ पौन हाथ लंबे और तीन चार अंगुल चौड़े पत्ते निकलते हैं। इसकी जड़, जो गाँठ के रूप में होती है, व्यापार की एक प्रसिद्ध वस्तु है; क्योंकि वह मसाले के रूप में नित्य के व्यवहार की भी वस्तु है और रँगाई तथा औषध के काम में भी आती है। गाँठ पीसने पर बिलकुल पीली हो जाती है। इससे दाल, तरकारी आदि में भी यह डाली जाती है और इसका रंग भी बनता है। इसकी खेती हिंदुस्तान में प्रायः सब जगह होती है। हलदी की कई जातियाँ होती हैं। साधारणतः दो प्रकार की हलदी देखने में आती है—एक बिलकुल पीली, दूसरी लाल या ललाई लिए जिसे रोचनी हलदी कहते हैं। वैद्यक में यह गरम, पाचन, अग्निवर्द्धक और कृमिघ्न मानी जाती है। रँगाई में काम आनेवाली हलदी की जातियाँ ये हैं। लोकहाँड़ी हलदी, मोयला हलदी, ज्वाला हलदी और आँबा हलदी। (२) उक्त पौधे की गाँठ जो मसाले आदि के रूप में व्यवहार में लाई जाती है।

मुहा०—हलदी उठना या चढ़ना = विवाह के तीन या पाँच दिन पहले दूल्हे और दुलहन के शरीर में हलदी और तेल लगाने की रस्म होना। हलदी लगना = विवाह होना। हलदी लगा के बैठना = (१) कोई काम धाम न करना, एक जगह बैठा रहना। (२) घमंड में फूला रहना। अपने को बहुत लगाना। हलदी लगी न फिटकिरी = बिना कुछ खर्च किए। मुफ़्त में।

हलदू-संज्ञा पुं० [हिं० हलद (हलदी)] एक बहुत बड़ा और ऊँचा पेड़ जिसकी डेढ़ अंगुल मोटी, सफेद और खुरदुरी छाल होती है। भीतर की लकड़ी पीली और बहुत मजबूत होती है। यह पेड़ तर जगहों में—जैसे, हिमालय की तलहटी में—होता है। लकड़ी बहुत वज़नी होती है तथा साफ करने से चमकती है। इससे खेती और सजावट के सामान जैसे, मेज, कुरसी, आलमारी, कंघियाँ, बंदूक के कुंदे इत्यादि बनते हैं। इस पेड़ को करम भी कहते हैं।

हलधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल को धारण करनेवाला। (२) बलराम जी (जो हल नामक अस्त्र धारण करते थे)।

हलना†※-क्रि० अ० [सं० हल्लन = डोलना, करवट लेना] (१) हिलना डोलना। उ०—(क) अंगनि उतंग जंग जैतवार जोर जिन्हें चिक्करत दिक्करि हलत कलकत हैं।—मतिराम। (२) घुसना। प्रवेश करना। पैठना। जैसे,—पानी में हलना, घर में हलना।

हलपत†-संज्ञा पुं० [हिं० हल + पट्ट, पाटा] हल की आड़ी लगी हुई लकड़ी जो बीच में चौड़ी होती है। परिहत।

हलपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] बलराम (जो हाथ में हल लिए रहते थे)।

हलफ़-संज्ञा पुं० [अ०] वह बात जो ईश्वर को साक्षी मानकर कही जाय। किसी पवित्र वस्तु की शपथ। कसम। सौगंध।

मुहा०—हलफ़ उठवाना या देना = शपथ खिलाना या खाने को कहना। हलफ़ उठाना या लेना = शपथपूर्वक कहना। कसम खाना। ईश्वर को साक्षी देकर कहना।

हलफ़नामा-संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] वह कागज जिस पर कोई बात ईश्वर को साक्षी मानकर अथवा शपथपूर्वक लिखी गई हो।

हलफा-संज्ञा पुं० [अनु० हल हल] हिलोर। लहर। तरंग।

क्रि० प्र०—उठना।

मुहा०—हलफा मारना = लहरें लेना। लहराना।

हलब-संज्ञा पुं० [देश०] [वि० हलब्बी] फारस की ओर के एक देश का नाम जहाँ का शीशा प्रसिद्ध था।

हलबल†※-संज्ञा पुं० [हिं० हल + बल] खलबली। हलचल। धूम।

हलबी, हलब्बी-वि० [हलब देश] हलब देश का (शीशा)। बढ़िया (शीशा)। उ०—नैन सनेहन के मनौ हलबी सीसा आय। गुपुत प्रगट तिन मैं मीत सुमुख दरसाय।—रसनिधि।

हलभल†-संज्ञा पुं० दे० "हलबल"।

हलभली†-संज्ञा स्त्री० [हिं० हलबल, हलभल] खलबली। हलचल। घबराहट।

संज्ञा स्त्री० [प्रा० हलहलम] त्वरा । जल्दी । हड़बड़ी ।

हलभूति-संज्ञा पुं० [सं०] शंकराचार्य्य का एक नाम ।

हलभृत-संज्ञा पुं० [सं०] बलराम ।

हलमरिया-संज्ञा स्त्री० [पुर्त० आलमारी] जहाज के नीचे का खाना । (लश०)

हलमिल लैला-संज्ञा पुं० [सिंहली] एक प्रकार का बड़ा पेड़ जो सिंहल या सीलोन में होता है और जिसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और खेती के सामान आदि बनाने के काम में आती है । मैसूर में भी यह पेड़ पाया जाता है ।

हलमुख-संज्ञा पुं० [सं०] हल का फाल ।

हलमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में क्रम से रगण, नगण और सगण आते हैं ।

हलराना-क्रि० स० [हिं० हिलोरा] (बच्चों को) हाथ पर लेकर इधर उधर हिलाना डुलाना । प्यार से हाथ पर झुलाना । उ०—(क) जसुदा हरि पालने झुलावै । हलरावै मलहरावै जोइ सोई कछु गावै ।—सूर । (ख) लै उछंग कबहुँक हलरावै । कबहुँ पालने घालि झुलावै ।—तुलसी ।

हलवत-संज्ञा स्त्री० [हिं० हल + औत (प्रत्य०)] वर्ष में पहले पहल खेत में हल ले जाने की रीति या कृत्य । हरौती ।

हलवा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) एक प्रकार का मीठा भोजन या मिठाई जो मैदे या सूजी को घी में खूब भून कर उसे शरबत या चाशनी में पकाने से बनती है । मोहनभोग । (२) गीली और मुलायम चीज ।

यौ०—सोहन हलवा ।

मुहा०—हलवे माँडे से काम = केवल स्वार्थसाधन से ही प्रयोजन । काम ही से मतलब । जैसे,—तुम्हें तो अपने हलवे माँडे से काम; किसी का चाहे कुछ हो । हलवा निकालना = बहुत पीटना । खूब मारना । जैसे,— मारते मारते हलवा निकाल देंगे ।

हलवाइन-संज्ञा स्त्री० [हिं० हलवाई] (१) हलवाई की स्त्री । (२) वह स्त्री जो मिठाई बनाने का काम करती हो ।

हलवाई-संज्ञा पुं० [अ० हलवा + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० हलवाइन] मिठाई बनाने और बेचनेवाला । मिठाई बनाकर या बेचकर जीविका चलानेवाला ।

हलवाह-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दूसरे के यहाँ हल जोतने का काम करता हो । हल चलाने का काम करनेवाला मजदूर या नौकर ।

विशेष—हल चलाने के लिये गाँवों में चमार आदि नीची जाति के लोग ही रखे जाते हैं ।

हलवाहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जमीन की एक नाप जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था ।

‡ संज्ञा पुं० दे० "हलवाई" ।

हलहल-संज्ञा पुं० [सं०] हल चलाना ।

संज्ञा पुं० [अनु०] किसी वस्तु में भरे जल के हिलने डोलने का शब्द ।

हलहला†-संज्ञा स्त्री० [सं०] आनंदसूचक ध्वनि । किलकार ।

हलहलाना†-क्रि० स० [हिं० हलना या अनु० हलहल] (१) ऐसी वस्तु को हिलाना जिसके भीतर पानी भरा हो । (२) खूब जोर से हिलाना डुलाना । झकझोरना ।

क्रि० अ० काँपना । थरथराना । कंपित होना । जैसे,—भारे बुखार के हलहला रहा है ।

हलाक-वि० [अ० हलाकत] मारा हुआ । वध किया हुआ ।

मुहा०—हलाक करना = मार डालना । वध करना ।

हलाकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) हत्या । वध । मार डालना । (२) मृत्यु । विनाश ।

हलाकान‡-वि० [अ० हलाकत या हैरान] परेशान । हैरान । तंग ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

हलाकानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हलाकान] तंग होने की क्रिया या भाव । परेशानी । हैरानी ।

हलाकी-वि० [अ० हलाक + ई (हिं० प्रत्य०)] हलाक करनेवाला । मार डालनेवाला । मारू । घातक । उ०—जोगकथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी । ऊधो जू ! क्यों न कहै कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी ।—तुलसी ।

हलाकू-वि० [अ० हलाक + ऊ (प्रत्य०)] हलाक करनेवाला ।

संज्ञा पुं० एक तुर्क सरदार या बादशाह जो चंगेज़ खाँ का पोता था और उसी के समान क्रूर तथा हत्याकारी था ।

हलाना†-क्रि० स० दे० "हिलाना" ।

हलाभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह घोड़ा जिसकी पीठ पर काले या गहरे रंग के रोएँ बराबर कुछ दूर तक चले गए हों ।

हला भला-संज्ञा पुं० [हिं० भला + हला अनु०] (१) निबटारा । निर्णय । जैसे,—बहुत दिनों से यह पीछे लगा है, इसका भी कुछ हला भला कर दो । (२) परिणाम । फल । उ०—भले ही भले निबहै जो भली यह देखिबे ही को हला हु भला । मिल्यौ मन तौ मिलिबोइ कहूँ, मिलिबो न अलौकिक नंदलला ।—केशव ।

हलाभियोग-संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष में पहले पहल खेत में हल ले जाने की रीति या कृत्य । हलवत । हरौती ।

हलायुध-संज्ञा पुं० [सं०] बलराम ।

हलाल-वि० [अ०] जो धर्मशास्त्र के अनुसार उचित हो । जिसकी आज्ञा धर्मशास्त्र में हो । जो शरअ या मुसलमानी धर्मपुस्तक के अनुकूल हो । जो हराम न हो । विधि-विहित । जायज़ ।

यौ०—हलालखोर । नमकहलाल ।

संज्ञा पुं० वह पशु जिसका मांस खाने की मुसलमानी धर्मपुस्तक में आज्ञा हो । वह जानवर जिसके खाने का निषेध न हो ।

मुहा०—हलाल करना=(१) ईमानदारी के साथ व्यवहार करना। बदले में पूरा काम करना। उ०—जिसका खाना, उसका हलाल करके खाना। (२) खाने के लिये पशुओं को मुसलमानी शरअ के मुताबिक़ (धीरे धीरे गला रेत कर) मारना। जबह करना। **हलाल का**=धर्मशास्त्र के अनुकूल। ईमानदारी से पाया हुआ। जैसे,—हलाल का रुपया।

हलालखोर—संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] [स्त्री० हलालखोरी, हलालखोरिन] (१) हलाल की कमाई खानेवाला। मिहनत करके जीविका करनेवाला। (२) मैला या कूड़ा करकट साफ करने का काम करनेवाला। मेहतर। भंगी।

हलालखोरी—संज्ञा स्त्री० [अ० हलाल + फ़ा० खोर] (१) हलालखोर की स्त्री। (२) पाखाना उठाने या कूड़ा करकट साफ करने का काम करनेवाली स्त्री। (३) हलालखोर का काम। (४) हलालखोर का भाव या धर्म्म।

हलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह प्रचंड विष जो समुद्र मथन के समय निकला था और जिसके प्रभाव से सारे देवता और असुर व्याकुल हो गए थे। इसे अंत में शिव जी ने धारण किया था। (२) महा विष। भारी जहर। उ०—धिक तो कहँ जो अजहूँ तु जियै। खल, जाय हलाहल क्यों न पियै?—केशव। (३) एक ज़हरीला पौधा जिसके पत्ते ताड़ के से, कुछ नीलापन लिए तथा फल गाय के थन के आकार के सफेद सफेद लिखे गए हैं। इसका कंद या जड़ की गाँठें भी गाय के थन के आकार की कही गई हैं। लिखा है कि इसके आस पास घास या पेड़ पौधे नहीं उगते और मनुष्य केवल इसकी महक से मर जाता है। (भावप्रकाश)

हलिदण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सिंह।

हलिप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मद्य। मदिरा। (२) ताड़ी (जो बलरामजी को प्रिय थी)।

हलिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद या कुमार की मातृकाओं में से एक।

हली—संज्ञा पुं० [सं० हलिन्] (१) (हल नाम का अस्त्र धारण करनेवाले) बलराम। (२) किसान।

हलीम—संज्ञा पुं० [सं०] केतकी।

संज्ञा पु० [देश०] मटर के डंठल जो बंबई की ओर काटकर चौपायों को खिलाए जाते हैं।

वि० [अ०] सीधा। शांत।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का खाना जो मुहर्रम में बनता है। (मुसलमान)

हलीमक—संज्ञा पुं० [सं०] पांडु रोग का एक भेद।

विशेष—यह वात पित्त के कोप से उत्पन्न कहा गया है। इसमें रोगी के चमड़े का रंग कुछ हरापन, कालापन या धूमिलपन लिए पीला हो जाता है। इसे तंद्रा, मंदाग्नि, जीर्ण ज्वर, अरुचि और भ्रांति तथा उसके अंगों में पीड़ा रहती है।

हलीसा—संज्ञा पुं० [सं० हलीषा] नाव खेने का छोटा डाँड़ा जिसका एक जोड़ा लेकर एक ही आदमी नाव चला सकता है। चप्पू। (लश०)

मुहा०—हलीसा तानना=डाँड़ चलाना।

हलुक|*—वि० दे० "हलका"।

हलुकई|—संज्ञा स्त्री० दे० "हलकाई"।

हलुवा—संज्ञा पु० दे० "हलवा"।

हलुवाई|—संज्ञा पुं० दे० "हलवाई"।

हलुहार—संज्ञा पुं० [सं०] वह घोड़ा जिसके अंडकोश काले हों और जिसके माथे पर दाग हो।

हलेरा|*—संज्ञा पुं० दे० "हिलोर"।

हलेसा—संज्ञा पु० दे० "हलीसा"।

हलोर|*—संज्ञा स्त्री० [हिं० हलना या अनु० हलहल] हिलोरा। तरंग। लहर।

हलोरना—क्रि० स० [हिं० हिलोर + ना (प्रत्य०)] (१) पानी में हाथ डालकर उसे हिलाना डुलाना। जल को हाथ के आघात से तरंगित करना। (२) मथना। (३) अनाज फटकना। (४) दोनों हाथों से या बहुत अधिक मान में किसी पदार्थ का विशेषतः द्रव्य का संग्रह करना। जैसे,—आज कल वह रंग के व्यापार में खूब रुपए हलोर रहे हैं।

हलोरा|*—संज्ञा पुं० [हिं० हलना या अनु० हलहल] हिलोरा। तरंग। लहर। उ०—सोहै सितासित को मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे। मानौं हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे।—तुलसी।

हल्का—वि० दे० "हलका"।

हल्द—संज्ञा स्त्री० दे० "हलद"।

हल्दहात—संज्ञा स्त्री० [हिं० हल्दी + हाथ] विवाह के तीन या पाँच दिन पहले वर और कन्या के शरीर में हल्दी लगाने की रीति। हल्दी चढ़ना।

हल्दी—संज्ञा स्त्री० दे० "हलदी"।

हल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

हल्लन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) करवट बदलना। (२) इधर से उधर हिलना डोलना।

हल्ला—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) एक या अधिक मनुष्यों का ऊँचे स्वर से बोलना। चिल्लाहट। शोरगुल। कोलाहल।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

यौ०—हल्ला गुल्ला=शोर गुल।

(२) लड़ाई के समय की ललकार। धावे के समय किया हुआ शोर। हाँक। (३) सेना का वेग से किया हुआ

आक्रमण । धावा । हमला । जैसे,—राजपूतों ने एक ही हल्ले में किला ले लिया ।

हल्लीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाट्यशास्त्र में अठारह उपरूपकों में से एक ।

विशेष—इसमें एक ही अंक होता है और नृत्य की प्रधानता रहती है । इसमें एक पुरुष पात्र और सात, आठ या दस स्त्रियाँ पात्री होती हैं ।

(२) मंडल बाँधकर होनेवाला एक प्रकार का नाच जिसमें एक पुरुष के आदेश पर कई स्त्रियाँ नाचती हैं ।

हव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देवता के निमित्त अग्नि में दी हुई आहुति । बलि । (२) अग्नि । आग ।

हवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देवता के निमित्त मंत्र पढ़कर घी, जौ, तिल आदि अग्नि में डालने का कृत्य । होम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

(२) अग्नि । आग । (३) अग्निकुंड । (४) अग्नि में आहुति देने का यज्ञपात्र । हवन करने का चमचा । श्रुवा ।

हवनीय-वि० [सं०] जो हवन के योग्य हो या जिसे आहुति के रूप में अग्नि में डालना हो ।

संज्ञा पुं० वह पदार्थ जो हवन करने के समय अग्नि में डाला जाता है । जैसे,—घी, जौ आदि ।

हवलदार-संज्ञा पुं० [अ० हवाल. = सुपुर्दगी + फा० दार = रखनेवाला] (१) बादशाही जमाने का वह अफसर जो राजकर की ठीक ठीक वसूली और फ़सल की निगरानी के लिये तैनात रहता था । (२) फौज में वह सब से छोटा अफसर जिसके मातहत थोड़े से सिपाही रहते हैं ।

हवस-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लालसा । कामना । चाह । जैसे,—हमें अब किसी बात की हवस नहीं है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—**हवस पकाना** = व्यर्थ कामना करना करना । केवल मन में ही किसी कामना की पूर्त्ति का अनुमान किया करना । मनमोदक खाना । **हवस पूरी करना** = इच्छा पूर्ण करना । **हवस पूरी होना** = इच्छा पूर्ण होना ।

(२) तृष्णा । जैसे,—बुड्ढे हुए पर हवस न गई ।

हवा-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह सूक्ष्म प्रवाह रूप पदार्थ जो भूमंडल को चारो ओर से घेरे हुए है और जो प्राणियों के जीवन के लिये सब से अधिक आवश्यक है । वायु । पवन । वि० दे० "वायु" ।

क्रि० प्र०—आना ।—चलना ।—बहना ।

यौ०—हवाखोरी । हवाचक्की ।

मुहा०—**हवा उड़ना** = खबर फैलना । बात फैलना या प्रसिद्ध होना । **हवा उड़ाना** = (१) अधोवायु छोड़ना । पादना । (२) किंवदंती उड़ाना । अफवाह फैलाना । **हवा करना** = पंखे से हवा का झोंका लाना । पंखा हाँकना । **हवा के रुख जाना** = जिस ओर को हवा बहती हो, उसी ओर जाना । **हवा के मुँह पर जाना** = दे० "हवा के रुख जाना" । (लश०) **हवा के घोड़े पर सवार** = बहुत उतावली में । बहुत जल्दी में । **हवा गिरना** = हवा थमना । तेज हवा का चलना बंद होना । **हवा खाना** = (१) शुद्ध वायु के लिये बाहर निकलना । बाहर घूमना । टहलना । (२) प्रयोजन सिद्धि तक न पहुँचना । बिना सफलता प्राप्त किए यों ही रह जाना । अकृतकार्य्य होना । जैसे,—वक्त पर तो आए नहीं, अब जाओ, हवा खाओ । **हवा गाँठ में बाँधना** = असंभव बात के लिये प्रयत्न करना । अनहोनी बात के पीछे हैरान होना । **हवा फाँक कर रहना या हवा पीकर रहना** = बिना आहार के रहना । (व्यंग्य) जैसे,—कुछ खाने को नहीं पाते तो क्या हवा पीकर रहते हो ? **हवा पकड़ना** = पाल में हवा भरना । (लश०) **हवा बताना** = किसी वस्तु से वंचित रखना । टाल देना । इधर उधर की बात कह कर हटा देना । जैसे,—वह अपना काम निकाल कर तुम्हें हवा बता देगा । **हवा बाँधकर जाना** = हवा की नाल में उलटा जाना । जिस ओर से हवा आती हो, उस ओर जाना (विशेषतः नाव के लिये) । **हवा बाँधना** = (१) लंबी चौड़ी बातें कहना । शेखी हाँकना । बढ़ बढ़कर बोलना । (२) बिना जड़ की बात कहना । गप हाँकना । झूठी बातें जोड़ जोड़ कर कहना । **हवा पलटना, फिरना या बदलना** = (१) दूसरी ओर को हवा चलने लगना । (२) दशांतर होना । दूसरी स्थिति या अवस्था होना । हालत बदलना । **हवा भर जाना** = खुशी या घमंड से फूल जाना । **हवा बिगड़ना** = (१) संक्रामक रोग फैलना । वबा या मरी फैलना । (२) रीति या चाल बिगड़ना । बुरे विचार फैलना । **दिमाग में हवा भर जाना** = सिर फिरना । उन्माद होना । बुद्धि ठीक न रहना । **हवा देना** = (१) मुँह से हवा छोड़कर दहकाना । फूँकना । (आग के लिये) । (२) बाहर हवा में रखना । ऐसे स्थान में लाना जहाँ खूब हवा लगे । जैसे,—इन कपड़ों को कभी कभी हवा दे दिया करो । (३) झगड़े का बढ़ाना । झगड़ा उकसाना । **हवा सा** = बिलकुल महीन या हलका । **हवा से लड़ना** = किसी से अकारण लड़ना । **हवा से बातें करना** = (१) बहुत तेज दौड़ना या चलना । (२) आप ही आप या व्यर्थ बहुत बोलना । **हवा लगना** = (१) हवा का झोंका बदन पर पड़ना । वायु का स्पर्श होना । (२) वात रोग से ग्रस्त होना । (३) उन्माद होना । सिर फिर जाना । बुद्धि ठीक न रहना । **किसी की हवा लगना** = किसी की संगत का प्रभाव पड़ना । सुहबत का असर होना । किसी के दोषों का किसी में आना । जैसे,—तुम्हें भी उसी की हवा लगी । **हवा हो जाना** = (१) झटपट चल देना । भाग जाना । (२) बहुत तेज दौड़ना या चलना । जैसे,—चाबुक पड़ते ही यह घोड़ा हवा हो जाता है । (३) न रह जाना । एक बारगी गायब हो जाना । अभाव हो जाना । जैसे,—बहुत आशा लगाए

थे, पर सारी बातें हवा हो गई। कहीं की हवा खाना = कहीं जाना। कहीं की हवा खिलाना = कहीं भेजना। जैसे,—तुम्हें जेलखाने की हवा खिलावेंगे।

(२) भूत। प्रेत। (जिनका शरीर वायव्य माना जाता है) (३) अच्छा नाम। प्रसिद्धि। ख्याति। (४) व्यापारियों या महाजनों में धाक। बड़प्पन या उत्तम व्यवहार का विश्वास। साख।

मुहा०—हवा उखड़ना = (१) नाम न रह जाना। प्रसिद्धि न रहना। (२) साख न रह जाना। बाजार से विश्वास उठ जाना। हवा बँधना = (१) अच्छा नाम हो जाना। लोगों के बीच प्रसिद्धि हो जाना। (२) बाजार में साख होना। व्यवहार में लोगों के बीच अच्छी धारणा होना।

(५) किसी बात की सनक। धुन।

हवाई-वि० [अ० हवा + ई (हिं० प्रत्य०)] (१) हवा का। वायु-संबंधी। (२) हवा में चलनेवाला। जैसे,—हवाई जहाज। (३) बिना जड़ का। जिसमें सत्य का आधार न हो। कल्पित या झूठ। निर्मूल। जैसे,—हवाई खबर, हवाई बात।

संज्ञा स्त्री० हवा में कुछ दूर तक बड़े झोंक से जाकर बुझ जानेवाली एक प्रकार की आतशबाज़ी। बान। आसमानी।

मुहा०—(मुँह पर) हवाइयाँ उड़ना = चेहरे का रंग फीका पड़ जाना। आकृति से भय, लज्जा या उदासी प्रकट होना। विवर्णता होना।

हवागीर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] आतशबाज़ी के बान बनानेवाला।

हवाचक्की संज्ञा स्त्री० [हिं० हवा + चक्की] आटा पीसने की वह चक्की जो हवा के जोर से चलती हो।

हवादार-वि० [फ़ा०] जिसमें हवा आती जाती हो। जिसमें हवा आने जाने के लिये काफी छेद, खिड़कियाँ या दरवाजे हों। जैसे,—हवादार कमरा, हवादार मकान, हवादार पिंजरा।

संज्ञा पुं० वह हलका तख्त जिस पर बैठाकर बादशाह को महल या किले के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे।

हवान-संज्ञा पुं० [अ० हवा, हवाई] एक प्रकार की छोटी तोप जो जहाजों पर रहती है। छोटी तोप। (लश०)

हवाना-संज्ञा पुं० [हवाना द्वीप] तंबाकू का एक भेद। अमेरिका के हवाना नामक स्थान का तंबाकू।

हवाल-संज्ञा पुं० [अ० अहवाल] (१) हाल। दशा। अवस्था। (२) गति। परिणाम। उ०—बकरी पाती खाति है ताकी काढ़ी खाल। जो नर बकरी खात हैं तिनका कौन हवाल?—कबीर। (३) संवाद। समाचार। वृत्तांत।

यौ०—हाल हवाल।

हवालदार-संज्ञा पुं० दे० "हवलदार"।

हवाला-संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी बात की पुष्टि के लिये किसी के वचन या किसी घटना की ओर संकेत। प्रमाण का उल्लेख। (२) उदाहरण। दृष्टांत। मिसाल। नज़ीर।

क्रि० प्र०—देना।

(३) अधिकार या कब्ज़ा। सुपुर्दगी। जिम्मेदारी।

मुहा०—(किसी के) हवाले करना = किसी को दे देना। किसी के सुपुर्द करना। सौंपना। जैसे,—जिसकी चीज है, उसके हवाले करो। (किसी के) हवाले पड़ना = वश में आ जाना। हाथ में आ जाना। चंगुल में आना। उ०—अब हैरै कहा अरविंद सो आनन इंदु के आय हवाले परयो।—पद्माकर।

हवालात-संज्ञा पुं० स्त्री० [अ०] (१) पहरे के भीतर रखे जाने की क्रिया या भाव। नज़रबंदी। (२) अभियुक्त की वह साधारण क़ैद जो मुक़दमे के फ़ैसले के पहले उसे भागने से रोकने के लिये की जाती है। हाजत। (३) वह मकान जिसमें ऐसे अभियुक्त रखे जाते हैं।

क्रि० प्र०—में देना।

मुहा०—हवालात करना = पहरे के भीतर बंद करना।

हवास-संज्ञा पुं० [अ०] (१) इंद्रियाँ। (२) संवेदन। (३) चेतना। संज्ञा। होश। सुध।

यौ०—होश हवास।

मुहा०—हवास गुम होना = होश ठिकाने न रहना। भय आदि से स्तंभित होना। ठक रह जाना।

हवि-संज्ञा पुं० [सं० हविस्] देवता के निमित्त अग्नि में दिया जानेवाला घी, जौ या इसी प्रकार की सामग्री। वह द्रव्य जिसकी आहुति दी जाय। हवन की वस्तु।

हविर्गी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हवन-कुंड।

हविर्धानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरभी। कामधेनु।

हविर्भुज्-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

हविर्भू-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हवन की भूमि। (२) कर्दम की पुत्री जो पुलस्त्य की पत्नी थी।

हविष्मती-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

हविष्मान्-वि० [सं० हविष्मत्] [स्त्री० हविष्मती] हवन करनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) अंगिरा के एक पुत्र का नाम। (२) छठे मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक। (३) पितरों का एक गण।

हविष्यंद-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

हविष्य-वि० [सं०] (१) हवन करने योग्य। (२) जिसकी आहुति दी जानेवाली हो।

संज्ञा पुं० वह वस्तु जो किसी देवता के निमित्त अग्नि में डाली जाय। बलि। हवि।

हविष्यान्न-संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न या आहार जो यज्ञ के समय किया जाय। खाने की पवित्र वस्तुएँ। जैसे,—जौ, तिल, मूँग, चावल इत्यादि।

हविस्‌-संज्ञा स्त्री० दे० "हवस"।

हवीत संज्ञा पुं० [?] लकड़ियों का बना हुआ एक यंत्र जिसमें लंगर डालने के समय जहाज की रस्सियाँ बाँधी या लपेटी जाती हैं। (लश०)

हवेली-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पक्का बड़ा मकान। प्रासाद। हर्म्य। (२) पत्नी। स्त्री। जोरू।

हव्य-संज्ञा पुं० [सं०] हवन की सामग्री। वह वस्तु जिसकी किसी देवता के अर्थ अग्नि में आहुति दी जाय। जैसे,—घी, जौ, तिल आदि।

विशेष—देवताओं के अर्थ जो सामग्री हवन की जाती है, वह हव्य कहलाती है; और पितरों को जो अग्नि की जाती है, वह कव्य कहलाती है।

यौ०—हव्य कव्य।

हव्यभुज्-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

हव्ययोनि-संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

हव्यवाट्-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि देवता।

हव्यवाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) अश्वत्थ वृक्ष। पीपल (जिसकी लकड़ी की अरणी बनती है)।

हव्याशन-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

हशमत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) गौरव। बड़ाई। (२) वैभव। ऐश्वर्य।

हसंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगीठी। गोरसी।

हसद-संज्ञा पुं० [अ०] ईर्ष्या। डाह।

हसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हँसना। (२) परिहास। दिल्लगी। (३) विनोद। (४) स्कंद के एक अनुचर का नाम।

संज्ञा पुं० [अ०] अली के दो बेटों में से एक जो यजीद के साथ लड़ाई करने में मारे गए थे और जिनका शोक शीया मुसलमान मुहर्रम में मनाते हैं।

हसब-अव्य० [अ०] अनुसार। रू से। मुताबिक। जैसे,—हसब हैसियत, हसब कानून।

हसरत-संज्ञा स्त्री० [अ०] रंज। अफ़सोस। शोक।

हसावर-संज्ञा पुं० [हिं० हंस] खाकी रंग की एक बड़ी चिड़िया जिसकी गरदन एक हाथ लंबी और चोंच केले के फल के समान होती है। इसके बगल के कुछ पर और पैर लाल होते हैं।

हसिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हँसने की क्रिया या भाव। हँसी। (२) उपहास। ठट्ठा।

हसित-वि० [सं०] (१) जो हँसा गया हो। जिस पर लोग हँसते हों। (२) जो हँसा हो।

संज्ञा पुं० (१) हास। हँसना। (२) हँसी ठट्ठा। उपहास। (३) कामदेव का धनुष।

हसिर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चूहा।

हसीन-वि० [अ०] सुंदर। खूबसूरत।

हस्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ। (२) हाथी की सूँड़। (३) कुहनी से लेकर उँगली के छोर तक की लंबाई या नाप। एक नाप जो २४ अंगुल की होती है। हाथ। (४) हाथ का लिखा हुआ लेख। लिखावट। (५) एक नक्षत्र जिसमें पाँच तारे होते हैं और जिसका आकार हाथ का सा माना गया है। वि० दे० "नक्षत्र"। (६) संगीत या नृत्य में हाथ हिलाकर भाव बताना।

विशेष—यह संगीत का सातवाँ भेद कहा गया है और दो प्रकार का होता है—लयाश्रित और भावाश्रित।

(७) वासुदेव के एक पुत्र का नाम। (८) छंद का एक चरण। (९) गुच्छा। समूह। जैसे —केशहस्त।

हस्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ। (२) संगीत का ताल। (३) प्राचीन काल का एक बाजा जो हाथ में लेकर बजाया जाता था। करताल। (४) हाथ से बजाई हुई ताली।

हस्तकार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ का काम। (२) दस्तकारी।

हस्तकोहली-संज्ञा स्त्री० [सं०] वर और कन्या की कलाई में मंगल सूत्र बाँधने की क्रिया या रीति।

हस्तकौशल-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की सफ़ाई। किसी काम में हाथ चलाने की निपुणता।

हस्तक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथ का काम। (२) दस्तकारी। (३) हाथ से इंद्रिय-संचालन। सरका कूटना।

हस्तक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] किसी काम में हाथ डालना। किसी होते हुए काम में कुछ कार्रवाई कर बैठना या बात भिड़ाना। दखल देना। जैसे,—हमारे काम में तुम हस्तक्षेप क्यों करते हो? हम जैसे चाहेंगे वैसे करेंगे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हस्तगत-वि० [सं०] हाथ में आया हुआ। प्राप्त। लब्ध। हासिल। जैसे,—वह पुस्तक किसी प्रकार हस्तगत करो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हस्तग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ पकड़ना। (२) पाणिग्रहण। विवाह।

हस्तचापल्य संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की फुरती। हाथ की सफाई।

हस्ततल-संज्ञा पुं० [सं०] हथेली।

हस्तत्राण-संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्रों के आघात से रक्षा के लिये हाथ में पहना जानेवाला दस्ताना।

हस्तधारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ पकड़ना। (२) हाथ का सहारा देना। (३) पाणिग्रहण करना। विवाह करना। (४) वार को हाथ पर रोकना।

हस्तपर्णी-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताड़।

हस्तपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] हथेली का पिछला या उलटा भाग।

हस्तबिंब–संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में सुगंधित द्रव्यों का लेपन करना।

हस्तमणि–संज्ञा पुं० [सं०] कलाई में पहनने का रत्न।

हस्तमैथुन–संज्ञा पुं० [सं०] हाथ के द्वारा इंद्रिय संचालन। सरका कूटना।

हस्तरेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हथेली में पड़ी हुई लकीरें।

विशेष—इन रेखाओं के विचार से सामुद्रिक में शुभाशुभ फल का निर्णय होता है।

हस्तरोधी–संज्ञा पुं० [सं० हस्तरोधिन्] शिव का एक नाम।

हस्तलक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हथेली की रेखाओं द्वारा शुभाशुभ सूचना। (२) अथर्ववेद का एक प्रकरण।

हस्तलाघव–संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की फुरती। हाथ की सफ़ाई। किसी काम में हाथ चलाने की निपुणता।

हस्तलिखित–वि० [सं०] हाथ का लिखा हुआ। (ग्रन्थ आदि)

हस्तलिपि–संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथ की लिखावट। लेख।

हस्त-वात रक्त–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें हथेलियों में छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं और धीरे धीरे सारे शरीर में फैल जाती हैं।

हस्त-वारण–संज्ञा पुं० [सं०] वार या आघात को हाथ पर रोकना।

हस्त-सूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] सूत का कंगन जिसमें कपड़े की पोटली बँधी होती है और जो विवाह के समय वर और कन्या की कलाई में पहनाया जाता है।

हस्ताक्षर–संज्ञा पुं० [सं०] अपने हाथ से लिखा हुआ अपना नाम जो किसी लेख आदि के नीचे लिखा जाय। दस्तख़त।

हस्तामलक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ में लिया हुआ आँवला। (२) वह वस्तु या विषय जिसका अंग प्रत्यंग हाथ में लिए हुए आँवले के समान, अच्छी तरह समझ में आ गया हो। वह चीज या बात जिसका हर एक पहलू साफ साफ जाहिर हो गया हो। जैसे,—यह पुस्तक पढ़ जाइए; सारा विषय हस्तामलक हो जायगा।

हस्ताहस्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथा बाँहीं। हाथा पाई। मुठभेड़। चपत या घूँसे की लड़ाई।

हस्ति–संज्ञा पुं० दे० "हस्ती"।

हस्तिकंद–संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जिसका कंद खाया जाता है। हाथी कंद।

हस्तिकक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जहरीला कीड़ा। (सुश्रुत)

हस्तिकक्ष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह। (२) व्याघ्र। बाघ।

हस्तिकरंज–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी जाति का करंज या कंजा। वि० दे० "करंज"।

हस्तिकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंडी का पेड़। एरंड। रेंड़। (२) पलाश। टेसू का पेड़। (३) कच्चू। बंडा। (४) शिव के गणों में से एक। (५) गण देवताओं में से एक।

हस्तिकर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] हठयोग का एक आसन।

हस्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगा रहता था।

हस्तिजिह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथी की जीभ। (२) दाहिनी आँख की एक नस।

हस्तिदंत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी दाँत। (२) दीवार में गड़ी हुई कपड़े आदि टाँगने की खूँटी। (३) मूली।

हस्तिदंती–संज्ञा पुं० [सं०] मूली।

हस्तिनख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी के नाखून। (२) वह बुर्ज या टीला जो गढ़ की दीवार के पास उन स्थानों पर बना होता है जहाँ चढ़ाव होता है।

हस्तिनापुर–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रवंशियों या कौरवों की राजधानी जो वर्त्तमान दिल्ली नगर से कुछ दूर पर थी।

पर्य्या०—गजाह्वय। नाग-साह्वय। नागाह्व।

विशेष—यह नगर हस्तिन् नामक राजा का बसाया हुआ था। इसका स्थान दिल्ली से उत्तर-पूर्व २८ कोस पर निश्चित किया गया है।

हस्तिनासा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी की सूँड़।

हस्तिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मादा हाथी। हथिनी। (२) एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य। हट्टविलासिनी। (३) काम-शास्त्र के अनुसार स्त्री के चार भेदों में से सब से निकृष्ट भेद।

विशेष—इसका शरीर स्थूल, ओंठ और उँगलियाँ मोटी और आहार तथा कामवासना अन्य प्रकार की सब स्त्रियों से अधिक कही गई हैं।

हस्तिपक–संज्ञा पुं० [सं०] महावत। फीलवान।

हस्तिपर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] तुरई। तरोई। कोषातकी।

हस्तिपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।

हस्तिपिप्पली–संज्ञा स्त्री० [सं०] गज पिप्पली।

हस्तिपृष्ठक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर जिसके पास कुटिका नाम की नदी बहती थी।

हस्तिप्रमेह–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मूत्र के साथ हाथी के मद का सा पदार्थ बिना वेग के तार सा निकलता है और पेशाब ठहर ठहर कर होता है।

हस्तिमल्ल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐरावत। (२) गणेश। (३) पाताल का एक नाग जिसे शंख भी कहते हैं। (४) राख का ढेर। (५) धूल की वर्षा। (६) पाला।

हस्तिमुख–संज्ञा पुं० [सं०] गजानन। गणेश।

हस्तिश्यामक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला सावाँ। (२) बाजरा।

हस्ती–संज्ञा पुं० [सं० हस्तिन्] [स्त्री० हस्तिनी] (१) हाथी।

(हस्ती चार प्रकार के कहे गए हैं—भद्र, मंद्र, मृग और मिश्र।) (२) अजमोदा। (३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (४) चंद्रवंशी राजा सुहोत्र के एक पुत्र जिन्होंने हस्तिनापुर बसाया था।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अस्तित्व। होने का भाव। जैसे,—इसमें तो उनकी हस्ती ही मिट जायगी।

मुहा०—(किसी की) क्या हस्ती है = क्या गिनती है। कोई महत्व नहीं। तुच्छ है।

हस्ते-अव्य० [सं०] हाथ से। मारफ़त। जैसे,—१००) उसके हस्ते मिले।

हस्त्यशन-संज्ञा पुं० [सं०] लोबान का पौधा।

हहर-संज्ञा स्त्री० [हिं० हहरना] (१) थर्राहट। कँपकँपी। (२) भय। डर।

हहरना-क्रि० अ० [अनु०] (१) काँपना। थरथराना। उ०—पहल पहल जौ रूई झाँपै। हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै। —जायसी। (२) डर के मारे काँप उठना। दहलना। बहुत डर जाना। थर्राना। उ०—नाथ! भलो रघुनाथ मिले रजनीचर-सेन हिये हहरी। (३) दंग रह जाना। चकित रह जाना। आश्चर्य से ठक रह जाना। (४) कोई बात बहुत अधिक देखकर क्षुब्ध होना। डाह करना। सिहाना। उ०—काम बन नंदन की उपमा न देत बनै, देखि कै विभव जाको सुरतरु हहरत।—कोई कवि। (५) कोई वस्तु बहुत अधिक देखकर दंग होना। अधिकता देखकर चकपकाना। उ०—ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं, हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरिकै।—तुलसी।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

हहराना-क्रि० अ० [अनु०] (१) काँपना। थरथराना। (२) डर के मारे काँपना। दहलना। थर्राना। उ०—चंचल चपेट चरन चकोट चाहैं, हहरानी फौजैं भहरानी जातुधान की। —तुलसी। (३) डरना। भयभीत होना। (४) दे० "हरहराना"।

क्रि० स० दहलाना। भयभीत करना।

हहलना-क्रि० अ० दे० "हहरना"।

हहलाना-क्रि० अ०, क्रि० स० दे० "हहराना"।

हहा-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) हँसने का शब्द। ठट्ठा। जैसे,—क्यों 'हहा हहा' करते हो? (२) दीनतासूचक शब्द। गिड़गिड़ाने का शब्द। अत्यंत अनुनय विनय का शब्द। (३) बिनती। चिरौरी। गिड़गिड़ाहट।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—हहा खाना = हाहा खाना। बहुत गिड़गिड़ाना। बहुत बिनती करना।

(४) हाहाकार।

हाँ-अव्य० [सं० आम्] (१) स्वीकृति-सूचक शब्द। सम्मति-सूचक शब्द। वह शब्द जिसके द्वारा यह प्रकट किया जाता है कि हम यह बात करने को तैयार हैं। जैसे,—प्रश्न—तुम वहाँ जाओगे? उत्तर—"हाँ"। (२) एक शब्द जिसके द्वारा यह प्रकट किया जाता है कि वह बात जो पूछी जा रही है, ठीक है। जैसे,—प्रश्न तुम वहाँ गए थे? उत्तर—हाँ।

मुहा०—हाँ करना (१) स्वीकार होना। सम्मत होना। राजी होना। (२) ठीक मान लेना। यह मानना कि कोई बात ऐसी ही है। हाँ न करना = इधर उधर की बात कहकर जल्दी स्वीकार न करना। न मानना। न राजी होना। हाँ हाँ करना = (१) स्वीकार-सूचक शब्द कहना। मान लेना। जैसे,—अभी तो हाँ हाँ कर रहा है, पीछे धोखा देगा। (२) बात न काटना। 'ठीक है' 'ठीक है' कहना। (३) खुशामद करना। हाँ जी हाँ जी करना = खुशामद करना। चापलूसी करना। हाँ में हाँ मिलाना = (१) बिना विचार किए बात का समर्थन करना। प्रसन्न करने के लिये किसी के मन की बात कहना। (२) खुशामद करना। चापलूसी करना।

(३) कोई बात स्वीकार न करने पर भी दूसरे रूप में स्वीकार सूचित करनेवाला शब्द। वह शब्द जिसके द्वारा किसी बात का दूसरे रूप में, या अंशतः माना जाना प्रकट किया जाता है। (यह बात तो नहीं है या ऐसा तो मैं नहीं कर सकता) पर इतना हो सकता है, या इतनी बात मानी जा सकती है। जैसे,—(क) तुम्हें हम अपने साथ तो न ले चलेंगे, हाँ, पीछे से आ सकते हो। (ख) हमारे सामने तो वह कुछ नहीं कहता; हाँ औरों से कहता हो तो नहीं जानते। ⊛ (४) दे० "यहाँ"।

हाँक-संज्ञा स्त्री० [सं० हुंकार] (१) किसी को बुलाने के लिये ज़ोर से निकाला हुआ शब्द। ज़ोर की पुकार। उच्च स्वर से किया हुआ संबोधन।

यौ०—हाँक पुकार।

मुहा०—हाँक देना या हाँक लगाना = ज़ोर से पुकारना। हाँक मारना = दे० "हाँक लगाना"। हाँक पुकार कर कहना = डंके की चोट कहना। सबके सामने निर्भय और निस्संकोच कहना। सबको सुनाकर कहना।

(२) लड़ाई में धावा या आक्रमण करते समय गर्वसूचक चिल्लाहट। डाँट। दपट। ललकार। हुंकार। गर्जन। उ०—रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत सुनत हनुमान की हाँक बाँकी। (३) बढ़ावे का शब्द। उत्साह दिलाने का शब्द। बढ़ावा। उ०—तुलसी उत हाँक दसानन देत, अचेत भै बीर को धीर धरै।—तुलसी। (४) दुहाई।

सहायता के लिये की हुई पुकार। उ०—बसत श्री सहित वैकुंठ के बीच गजराज की हाँक पै दौरि आए।—सूर।

हाँकना–क्रि० स० [हिं० हाँक+ना (प्रत्य०)] (१) ज़ोर से पुकारना। चिल्लाकर बुलाना। (२) ललकारना। लड़ाई में धावे के समय गर्व से चिल्लाना। हुंकार करना। उ०—भूमि परे भट धूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले।—तुलसी। (३) बढ़ बढ़ कर बोलना। लंबी चौड़ी बातें कहना। सीटना। जैसे,—(क) हमारे सामने वह इतना नहीं हाँकता। (ख) शेखी हाँकना। डींग हाँकना। (ग) वह दूकानदार बहुत दाम हाँकता है। (४) मुँह से बोलकर या चाबुक आदि मारकर जानवरों (घोड़े, बैल आदि) को आगे बढ़ाना। जानवरों को चलाना। जैसे,—बैल हाँकना। (५) खींचनेवाले जानवर को चलाकर गाड़ी, रथ आदि चलाना। गाड़ी चलाना। उ०—खोज मारि रथ हाँकहु ताता।—तुलसी। (६) मारकर या बोलकर चौपायों को भगाना। चौपायों को किसी स्थान से हटाना। जैसे,—खेत में गाएँ पड़ी हैं, हाँक दो।

संयो० क्रि०—देना।

(७) पंखा हिलाना। बीजन डुलाना। झलना। (८) पंखे से हवा पहुँचाना। हवा करना। जैसे,—मुझे मत हाँको, उन लोगों को हाँको।

हाँगर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी मछली।

हाँगा–संज्ञा पुं० [सं० अंग] (१) शरीर का बल। बूता। ताक़त।

मुहा०–हाँगा छूटना = बल काम न करना। साहस छूटना। हिम्मत न रहना।

(२) ज़बरदस्ती। अत्याचार। धींगाधींगी। जैसे,—पुलिस-वाले सबके साथ हाँगा करते हैं।

हाँगी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँ] हामी। स्वीकृति।

मुहा०—हाँगी भरना = हामी भरना। स्वीकार करना। मानना या अंगीकार करना। उ०—तारि टारी पुलक, प्रसेद हू निवारि डारी नेक रसना हू तें भरी न कछु हाँगी री। एते पै रह्यो न प्रान मोहन लट्ट पै भट्ट, टूक टूक ह्वै कै जो छट्टक भई आँगरी।—पद्माकर।

हाँड़ना†–क्रि० अ० [सं० भ्रमटन] व्यर्थ इधर उधर फिरना। आवारा घूमना।

वि० [स्त्री० हाँड़नी] हाँड़नेवाला। व्यर्थ इधर उधर घूमने-वाला। आवारा फिरनेवाला। जैसे,—हाँड़नी नारि।

हाँड़ी–संज्ञा पुं० [सं० भांड, हिं० हंडा ('हंडिका' प्राकृत से लिया प्रतीत होता है)] (१) मिट्टी का मझोला बरतन जो बटलोई के आकार का हो। हँड़िया।

मुहा०—हाँड़ी उबलना = (१) हाँड़ी में पकाई जानेवाली चीज़ का गरम होकर ऊपर आना। (२) ख़ुशी से फूलना। इतराना। हाँड़ी पकना = (१) हाँड़ी में पकाई जानेवाली चीज़ का पकना। (२) बकवाद होना। मुँह से बहुत बातें निकलना। (३) भीतर ही भीतर कोई युक्ति खड़ी होना। कोई षट्चक्र रचा जाना। कोई मामला तैयार किया जाना। जैसे,—भीतर ही भीतर खूब हाँड़ी पक रही है। किसी के नाम पर हाँड़ी फोड़ना = किसी के चले जाने पर प्रसन्न होना। हाँड़ी चढ़ना = कोई चीज़ पकाने के लिये हाँड़ी का आग पर रखा जाना। उ०—जैसे हाँडी काठ की चढ़ै न दूजी बार। बावली हाँड़ी = वह भोजन जिसमें बहुत सी चीज़ें एक में मिल गई हों।

(२) इसी आकार का शीशे का पात्र जो सजावट के लिये कमरे में टाँगा जाता है और जिसमें मोमबत्ती जलाई जाती है।

हाँता⁕–वि० [सं० हान = छोड़ा हुआ] [स्त्री० हाँती] (१) अलग किया हुआ। त्याग किया हुआ। छोड़ा हुआ। (२) दूर किया हुआ। हटाया हुआ। उ०—(क) प्रिया, बचन कस कहसि कुभाँती। भीरु प्रतीति प्रीति करि हाँती।—तुलसी। (ख) जानत प्रीति रीति रघुराई। नाते सब हाँते करि राखत राम-सनेह सगाई।—तुलसी। (ग) कंत, सुनु मंत, कुल अंत किए अंत हानि, हाँतो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को।—तुलसी।

हाँपना–क्रि० अ० दे० "हाँफना"।

हाँफना–क्रि० अ० [अनु० हँफ हँफ या सं० हाफिक] कड़ी मिहनत करने, दौड़ने या रोग आदि के कारण ज़ोर ज़ोर से और जल्दी जल्दी साँस लेना। तीव्र श्वास लेना। जैसे,—वह चार क़दम चलता है तो हाँफने लगता है।

हाँफा–संज्ञा पुं० [हिं० हाँफना] हाँफने की क्रिया या भाव। तीव्र और क्षिप्र श्वास। जल्दी जल्दी चलती हुई साँस।

क्रि० प्र०—छूटना।

हाँफी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँफना] हाँफने की क्रिया या भाव। तीव्र और क्षिप्र श्वास। जल्दी जल्दी चलती हुई साँस।

हाँबीरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी।

हाँमैला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

हाँस–वि० [सं०] हंस-संबंधी।

हाँस†–संज्ञा स्त्री० दे० "हँसी"।

हाँसना†⁕–क्रि० अ० दे० "हँसना"।

हाँसल–संज्ञा पुं० [हिं० हाँस] घोड़ों का एक भेद। वह घोड़ा जिसका रंग मेंहँदी सा लाल और चारो पैर कुछ काले हों। कुम्मैत हिनाई। उ०—हाँसल गौर गियाह बखाने।—जायसी।

हाँसवर†–संज्ञा स्त्री० दे० "हँसली"।

हाँसिल–संज्ञा स्त्री० [अं० हाजर] (१) रस्सा लपेटने की गराड़ी। (२) लंगर की रस्सी। पागर। (लश्करी)

क्रि० प्र०—तानना।

हाँसी-संज्ञा स्त्री० [सं० हास] (१) हँसी। हँसने की क्रिया या भाव। (२) परिहास। हँसी ठट्ठा। दिल्लगी। मज़ाक़। ठठोली। उ०—(क) निर्गुन कौन देस को बासी। ऊधो! नेकु हमहिं समुझावहु, बूझति साँच न हाँसी।—सूर। (ख) हमरे प्रान अघात होत हैं, तुम जानत हौ हाँसी।—सूर। (३) उपहास। निंदा। उ०—(क) ऊधो, कही सो बहुरि न कहियो। हाँसी होन लगी या ब्रज में, अनबोले ही रहियो।—सूर। (ख) जेते ऐंड़दार दरबार सरदार सब ऊपर प्रताप दिल्लीपति को अभंग भो। मतिराम कहै करवाल के कसैया केते गाड़र से मूँड़, जग हाँसी को प्रसंग भो।—मतिराम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हाँसुल-संज्ञा पुं० दे० "हाँसल"।

हाँ हाँ-अव्य० [हिं० अहाँ = नहीं] निषेध या वारण करने का शब्द। वह शब्द जिसे बोलकर किसी को कोई काम करने से चटपट रोकते हैं। जैसे,—हाँ हाँ! यह क्या कर रहे हो?

हा-अव्य० [सं०] (१) शोक या दुःखसूचक शब्द। (२) आश्चर्य या आह्लादसूचक शब्द। (३) भयसूचक शब्द।

यौ०—हा हा।

संज्ञा पुं० हनन करनेवाला। मारनेवाला। बध या नाश करनेवाला। उ०—कौन शत्रु तें हत्यो कि नाम शत्रुहा लिया?—केशव।

हाइ‡*-अव्य० दे० "हाय"।

हाइफन-संज्ञा पुं० [अं०] एक विरामचिह्न जो एक में समस्त दो या अधिक शब्दों के बीच में लगाया जाता है। जैसे,—रघुकुल-कमल-दिवाकर।

हाई-संज्ञा स्त्री० [सं० घात] (१) दशा। हालत। अवस्था। जैसे,—अपनी हाई और पर छाई। (२) ढंग। घात। तौर। ढब। उ०—ऊधो, दीनी प्रीति दिनाई। बातनि सुहृद, करम कपटी के, चले चोर की हाई।—सूर।

हाई कोर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] हिंदुस्तान में किसी प्रांत की दीवानी और फौजदारी की सबसे बड़ी अदालत। सबसे बड़ा न्यायालय।

विशेष—हिंदुस्तान के प्रत्येक बड़े सूबे में एक हाई कोर्ट है। जैसे,—कलकत्ता हाई कोर्ट। इलाहाबाद हाई कोर्ट।

हाइड्रोफोबिया-संज्ञा पुं० [अं०] शरीर के भीतर एक प्रकार का उपद्रव या व्याधि जो पागल कुत्ते, गीदड़ आदि के काटने से होता है। इसमें मनुष्य प्यास के मारे व्याकुल रहता है, पर पानी सामने आने से चिल्लाकर भागता है। जलातंक।

हाईस्कूल-संज्ञा पुं० [अं०] अँगरेज़ी की बड़ी पाठशाला जिसमें कालेज की पढ़ाई के पहले की पूरी पढ़ाई होती है।

हाउस-संज्ञा पुं० [अं०] (१) घर। मकान। जैसे,—बोर्डिंग हाउस, कानी हाउस। (२) कोठी। बड़ी दूकान। जैसे,—हाउस की दलाली। (३) सभा। मंडली। जैसे,—हाउस आफ़ लार्ड्स।

हाऊ-संज्ञा पुं० [अनु०] एक कल्पित भयानक जंतु जिसका नाम बच्चों को डराने के लिये लिया जाता है। हौवा। भकाऊँ। जूजू। उ०—खेलन दूरि जात कित कान्हा। आजु सुन्यो बन हाऊ आयो तुम नहिं जानत नान्हा।—सूर।

हाकल-संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है। इसके पहले और दूसरे चरण में ११ और तीसरे और चौथे चरण में १० अक्षर होते हैं।

हाकलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पंद्रह अक्षरों का एक वर्णवृत्त। उ०—नीरन तें निकसीं तिय सबै। सोहति हैं बिनु भूषन सबै।

हाकली-संज्ञा स्त्री० [सं०] दस अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तीन भगण और एक गुरु होता है।

हाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घोर देवी। (तंत्र)

हाकिम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) हुकूमत करनेवाला। शासक। गवर्नर। प्रधान अधिकारी (२) बड़ा अफ़सर।

हाकिमी-संज्ञा स्त्री० [अ० हाकिम + ई (प्रत्य०)] हाकिम का काम। हुकूमत। प्रभुत्व। शासन। उ०—कहूँ हाकिमी करत है, कहूँ बंदगी आय। हाकिम बंदा आप हीं दूजा नहीं देखाय।—रसनिधि।

वि० हाकिम का। हाकिम-संबंधी।

हॉकी-संज्ञा पुं० [अं०] एक खेल जिसमें एक टेढ़ी लकड़ी या डंडे से गेंद मारते हैं। चौगान की तरह का एक अँगरेज़ी खेल।

हाजत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ज़रूरत। आवश्यकता। (२) चाह। (३) पहरे के भीतर रखा जाना। हिरासत। हवालात।

मुहा०—हाजत में देना = पहरे के भीतर देना। हवालात में डालना। हाजत में रखना = हवालात में रखना।

हाज़मा-संज्ञा पुं० [अ०] पाचन-क्रिया। पाचन-शक्ति। भोजन पचने की क्रिया।

मुहा०—हाज़मा बिगड़ना = अन्न न पचना।

हाज़िम-वि० [अ०] हज़म करनेवाला। भोजन पचानेवाला। पाचक।

हाज़िर-वि० [अ०] (१) सम्मुख उपस्थित। सामने आया हुआ। मौजूद। विद्यमान। जैसे,—(क) तुम उस दिन हाज़िर नहीं थे। (ख) जो कुछ मेरे पास है, हाज़िर है। (२) कोई काम करने के लिये सन्नद्ध। प्रस्तुत। तैयार। जैसे,—मेरे लिये जो हुक्म होगा, मैं हाज़िर हूँ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हाज़िर आना = हाज़िर होना।

हाज़िर-जवाब-वि० [अ०] उत्तर देने में निपुण। जोड़ की तोड़ बात कहने में चतुर। बात का चटपट अच्छा जवाब देने में होशियार। उपस्थित बुद्धि का। प्रत्युत्पन्न-मति। जैसे,—बीरबल बड़े हाज़िर-जवाब थे।

हाज़िर-जवाबी-संज्ञा स्त्री० [अ० हाज़िरजवाब + ई (हिं० प्रत्य०)] चटपट उत्तर देने की निपुणता। उपस्थित बुद्धि। प्रत्युत्पन्न-मतित्व। जैसे,—बीरबल की हाज़िरजवाबी से अकबर बहुत खुश रहता था।

हाज़िरबाश-वि० [अ० + फ़ा०] (१) सामने मौजूद रहनेवाला। बराबर सेवा में रहनेवाला। (२) लोगों के पास जाकर बराबर मिलने जुलनेवाला।

हाज़िरबाशी-संज्ञा स्त्री० [अ० + फ़ा०] (१) सेवा में निरंतर उपस्थिति। (२) लोगों से जाकर मिलना जुलना। खुशामद।

हाजिराई-संज्ञा पुं० [अ० हाज़िर + आई (हिं० प्रत्य०)] (१) भूतप्रेत बुलाने या दूर करनेवाला। ओझा। सयाना। (२) जादूगर।

हाजिरात-संज्ञा स्त्री० [अ०] बंदना या पूजा आदि के द्वारा किसी के ऊपर कोई आत्मा बुलाना जिससे वह झूमने और अनेक प्रकार की बातें कहने लगता है।

हाजी-संज्ञा पुं० [अ०] (१) हज करनेवाला। तीर्थाटन के लिये मक्के मदीने जानेवाला। (२) वह जो हज कर आया हो। (मुसल०)

हाट-संज्ञा स्त्री० [सं० हट्ट] (१) वह स्थान जहाँ कोई व्यवसायी बेचने के लिये चीज़ें रखकर बैठता है। दूकान। (२) वह स्थान जहाँ बिक्री की सब प्रकार की वस्तुएँ रहती हों। बाजार।

यौ०—हाटबाट।

मुहा०—**हाट करना** = (१) दूकान रखकर बैठना। (२) सौदा लेने के लिये बाजार जाना। जैसे,—वह स्त्री हाट बाजार करती है। **हाट बाजार करना** = सौदा लेने बाजार जाना। **हाट खोलना** = (१) दूकान रखना। रोजगार करना। (२) दूकान पर आकर बिक्री की चीजें निकाल कर रखना। **हाट लगना** = दूकान या बाजार में बिक्री की चीजें रखी जाना। **हाट चढ़ना** = बाजार में बिकने के लिये आना। उ०—पंडित होइ सो हाट न चढ़ा।—जायसी। (३) बाजार लगने का दिन।

हाटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का नाम। (महाभारत) (२) सोना। स्वर्ण। उ०—फाटक दै कर हाटक माँगत भोरी निपट बिचारी।—सूर।

हाटकपुर-संज्ञा पुं० [सं०] (सोने की बनी हुई) लंका।

हाटकलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] हिरण्याक्ष दैत्य। उ०—कनक-कसिप अरु हाटकलोचन। जगत विदित सुरपति-पद-मोचन।—तुलसी।

हाटकीय-वि० [सं०] (१) सोने का। सोना-संबंधी। (२) सोने का बना हुआ।

हाटकेश-संज्ञा पुं० [सं०] शिव की एक मूर्त्ति या रूप का नाम जिसकी उपासना गोदावरी के तट पर होती है।

हाड़†*-संज्ञा पुं० [सं० हड्ड] (१) हड्डी। अस्थि। उ०—चरग-चंगु-गत चातकहि नेम प्रेम की पीर। तुलसी परबस हाड़ परि परिहै पुहुमी नीर।—तुलसी। (२) वंश या जाति की मर्य्यादा। कुलीनता।

हाड़ना†-क्रि० स० [सं० हरण] तौलने में बरतन आदि के कारण किसी पलड़े के भारी पड़ने पर दूसरे पलड़े पर पत्थर आदि रखकर दोनों पलड़े ठीक बराबर करना। अहँड़ा करना। धड़ा करना।

क्रि० स० दे० "हाँड़ना"।

हाड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० आर, आड़ = टंक] लाल रंग की बड़ी भिड़। लाल ततैया।

संज्ञा पुं० क्षत्रियों की एक शाखा।

हाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० हाड़िका] (१) ज़मीन में पत्थर गाड़कर बनाया हुआ गड्ढा जिसमें अनाज रखकर साफ़ करने के लिये मूसल से कूटते हैं। (२) वह गड्ढेदार पत्थर जिस पर रखकर पीटने से पीतल आदि की चद्दर कटोरेनुमा बन जाती है।

संज्ञा पुं० [सं० आड़ि] (१) एक प्रकार का बगला। (२) कौआ।

हात-वि० [सं०] छोड़ा हुआ। त्यागा हुआ।

हातव्य-वि० [सं०] छोड़ने योग्य। त्याज्य।

हाता संज्ञा पुं० [अ० इहात:] (१) घेरा हुआ स्थान। वह जगह जिसके चारो ओर दीवार खिंची हो। बाड़ा। (२) देश-विभाग। मंडल। हलका या सूबा। प्रांत। जैसे,—बंगाल हाता। बंबई हाता। (३) रोक। हद। सीमा।

वि० [सं० हात] [स्त्री० हाती] (१) अलग। दूर किया हुआ। हटाया हुआ। उ०—(क) कंत सुनु मंत, कुल अंत किए अंत हानि हातो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को।—तुलसी। (ख) जानत प्रीति रीति रघुराई। नाते सब हाते करि राखत राम-सनेह सगाई।—तुलसी। (ग) मधुकर! रह्यो जोग लौं नातो। कतहिं बकत बेकाम काज बिनु, होय न ह्याँ ते हातो।—सूर। (घ) हरि से हितू सों भ्रमि भूलि हू न कीजै मान हातो किए हिय हू सों होत हित हानियै।—केशव। (२) नष्ट। बरबाद।

संज्ञा पुं० [सं० हंता] मारनेवाला। वध करनेवाला। (समास में)

हातिम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) निपुण। चतुर। कुशल। (२) किसी काम में पक्का आदमी। उस्ताद। जैसे,—वह लड़ने

में बड़े हातिम हैं। (३) एक प्राचीन अरब सरदार जो बड़ा दानी, परोपकारी और उदार प्रसिद्ध है।

मुहा०—हातिम की कबर पर लात मारना = बहुत अधिक उदारता या परोपकार करना। (व्यंग्य)

(४) अत्यंत दानी मनुष्य। अत्यंत उदार मनुष्य।

हातु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृत्यु। मौत। (२) सड़क।

हाथ-संज्ञा पुं० [सं० हस्त, प्रा० हत्थ] (१) मनुष्य, बंदर आदि प्राणियों का वह दंडाकार अवयव जिससे वे वस्तुओं को पकड़ते या छूते हैं। बाहु से लेकर पंजे तक का अंग विशेषतः कलाई और हथेली या पंजा। कर। हस्त।

मुहा०—हाथ आना, हाथ पड़ना, हाथ चढ़ना = दे० "हाथ में आना या पड़ना"। **हाथ में आना, पड़ना** = अधिकार या वश में आना। कब्जे या काबू में आना। मिलना या इख्तियार में हो जाना। जैसे,—(क) सब वही ले लेगा, तुम्हारे हाथ में कुछ भी न आवेगा। (ख) अब तो वह हमारे हाथ में है, जैसा कहेंगे वैसा करेगा। **(किसी को) हाथ उठाना** = सलाम करना। प्रणाम करना। **(किसी पर) हाथ उठाना** = किसी को मारने के लिये थप्पड़ या घूँसा तानना। मारना। जैसे,—बच्चे पर हाथ उठाना अच्छी बात नहीं। **हाथ उठाकर देना** = अपनी खुशी से देना। जैसे,—कभी हाथ उठाकर एक पैसा भी तो नहीं दिया है। **हाथ उठाकर कोसना** = शाप देना। किसी के अनिष्ट की ईश्वर से प्रार्थना करना। **हाथ उतरना** = हाथ की हड्डी उखड़ जाना। **हाथ ऊँचा होना** = (१) दान देने में प्रवृत्त होना। (२) देने लायक होना। खर्च करने लायक होना। संपन्न होना। **हाथ कट जाना** = (१) कुछ करने लायक न रह जाना। साधन या सहायक का अभाव हो जाना। (२) प्रतिज्ञा आदि से बद्ध हो जाना। इच्छानुसार कुछ करने के लिये स्वच्छंद न रह जाना। **हाथ कटा देना** = (१) अपने को कुछ करने योग्य न रखना। साधन या सहायक खो देना। (२) अपने को प्रतिज्ञा आदि से बद्ध कर देना। कोई ऐसा काम करना जिससे इच्छानुसार कुछ करने की स्वतंत्रता न रह जाय। बँध जाना। **हाथ करना** = हाथ चलाना। वार करना। प्रहार करना। **हाथ का झूठा** = अविश्वसनीय। जिस पर एतबार न किया जा सके। धोखेबाज। बेईमान। **हाथ का दिया** = दान दिया हुआ। प्रदत्त। जैसे,—(क) तुम्हारे हाथ का दिया हम कुछ भी नहीं जानते। (ख) हाथ दिया साथ जाता है। **हाथ का सच्चा** = (१) ईमानदार। (२) अचूक वार करनेवाला। ऐसा वार करनेवाला जो खाली न जाय। (३) ऐसा सटीक काम करनेवाला जिसमें भूल चूक न हो। **हाथ की मैल** = बराबर हाथ में आता जाता रहनेवाला। साधारण वस्तु। तुच्छ वस्तु। जैसे,—रुपया पैसा हाथ की मैल है। **(किसी के) हाथ की चिट्ठी या पुरजा** = किसी की लिखी हुई चिट्ठी या पुरजा। हस्तलेख। **हाथ की लकीर** = (१) हथेली में पड़ी हुई लकीरें। हस्तरेखा जिनसे शुभाशुभ फल कहा जाता है। (२) भाग्य। किस्मत। **हाथ के नीचे आना या हाथ तले आना** = काबू में आना। वश में होना। ऐसी स्थिति में पड़ना कि जो बात चाहें कराई जा सके। **हाथ खाली जाना** = (१) वार चूकना। प्रहार न बैठना। (२) युक्ति सफल न होना। चाल चूक जाना। **हाथ खाली होना** = पास में कुछ द्रव्य न रह जाना। रुपया पैसा न रहना। **हाथ खाली न होना** = काम में फँसा रहना। फुरसत न होना। **हाथ खुजलाना** = (१) मारने को जी करना। थप्पड़ लगाने की इच्छा होना। (२) मिलने का आगम होना। प्राप्ति के लक्षण दिखाई पड़ना। (ऐसा विश्वास है कि जब हथेली में खुजलाहट होती है, तब कुछ मिलता है। **हाथ खींचना** = (१) किसी काम से अलग हो जाना। योग न देना। (२) खर्च बंद कर देना। देना बंद कर देना। **हाथ खुलना** = (१) दान में प्रवृत्ति होना। (२) खर्च करना। जैसे,—ऋण के मारे उनका हाथ नहीं खुलता है। **हाथ खोलना** = (१) खूब दान देना। खैरात करना। (२) खूब खर्च करना। **हाथ गरम होना** = दे० "मुट्ठी गरम होना"। **हाथ चलना** = (१) किसी काम में हाथ का हिलना डोलना। जैसे,—अभ्यास न होने से उसका हाथ जल्दी जल्दी नहीं चलता। (२) मारने के लिये हाथ उठना। थप्पड़ या घूँसा तनना। जैसे,—तुम्हारा हाथ बड़ी जल्दी चल जाता है। **हाथ चलाना** = (१) किसी काम में हाथ हिलाना डुलाना। (२) मारने के लिये थप्पड़ तानना। मारना। (३) किसी वस्तु को छूने या लेने के लिये हाथ बढ़ाना। जैसे,—छाती पर हाथ चलाना। **हाथ चूमना** = किसी की कला-निपुणता पर मुग्ध होकर उसके हाथों को प्यार करना। किसी की कारीगरी पर इतना खुश होना कि उसके हाथों को प्रेम की दृष्टि से देखना। जैसे,—(क) इस चित्र को देखकर जी चाहता है कि चित्रकार के हाथ चूम लूँ। (ख) यह काम कर डालो तो हाथ चूम लूँ। **हाथ चालाक या हाथ-चला** = (१) फुरती से दूसरे की चीज उड़ा लेनेवाला। दूसरे की वस्तु लेने में हाथ की सफाई दिखानेवाला। (२) किसी काम में हाथ की सफाई दिखानेवाला। हस्तलाघव दिखानेवाला। **हाथ चालाकी** = हाथ की सफाई या फुरती। हस्तकौशल। हस्तलाघव। **हाथ चाटना** = सामने रखा भोजन कुछ भी न छोड़ना, सब खा जाना। सब खाकर भी न तृप्त होना। **हाथ छूटना** = मारने के लिये हाथ उठना। **(किसी पर) हाथ छोड़ना** = मारना। प्रहार करना। **हाथ जड़ना** = थप्पड़ मारना। प्रहार करना। **हाथ जोड़ना** = (१) प्रणाम करना। नमस्कार करना। (२) अनुनय विनय करना। (३) प्रार्थना करना। **(दूर से) हाथ जोड़ना** = संसर्ग या संबंध न रखना। किनारे रहना। पीछा छुड़ाना। जैसे,—ऐसे आदमियों को हम दूर ही से हाथ जोड़ते हैं। **हाथ जूठा होना** = हाथ में खाने पीने की चीज लगी रहना या हाथ का मुँह में पड़ जाना। (ऐसा हाथ

अशुद्ध माना जाता है।) (किसी काम में) **हाथ जमना** = दे० "हाथ बैठना"। **हाथ झाड़ना** = (१) लड़ाई में खूब शस्त्र चलाना। खूब हथियार चलाना। (२) वार करना। प्रहार करना। खूब मारना। **हाथ झुलाते या हिलाते आना** = कुछ भी लेकर न आना। खाली हाथ लौटना। **हाथ झाड़ देना** = खाली हाथ हो जाना। कह देना कि मेरे पास कुछ नहीं है। **हाथ झाड़कर खड़े हो जाना** = खाली हाथ दिखा देना। कह देना कि मेरे पास कुछ नहीं है। **जैसे,—तुम्हारा क्या? तुम तो हाथ झाड़कर खड़े हो जाओगे, सारा खर्च हमारे ऊपर पड़ेगा।** **हाथ टेकना** = सहारा देना। **हाथ डालना** = (१) किसी काम में हाथ लगाना। योग देना। (२) दखल देना। (३) स्त्री को हाथ लगाना। (४) लूटना। माल मारना। **हाथ तकना** = दूसरे के देने के आसरे रहना। दूसरे के आश्रित रहना। **हाथ तंग होना** = खर्च करने के लिये रुपया पैसा न रहना। निर्धन होना। **हाथ थिरकाना या नचाना** = नाचने या बोलने में हाथ मटकाना या हिलाना। **हाथ दिलाना** = नजर लड़वाना। भूत प्रेत की बाधा शांत करने के लिये सयाने को दिखाना। **हाथ दिखाना** = (१) भविष्य शुभाशुभ जानने के लिये सामुद्रिक जाननेवाले से हाथ की रेखाओं का विचार कराना। (२) वैद्य को नाड़ी दिखाना। **हाथ देखना** = (१) नाड़ी देखना। (२) सामुद्रिक का विचार करना। **हाथ देना** = (१) सहारा देना। (२) बाजी लगाना। (३) गुप्त रूप से सौदा तै करना। (४) दीया बुझाना। (५) भूत प्रेत की बाधा का विचार करना। (६) रोकना। मना करना। (किसी का) **हाथ धरना** = (१) कोई काम करने से रोकना। **जैसे,—जिसको जो चाहें दें, कोई हाथ धर सकता है।** (२) किसी को सहारा देना। अपनी रक्षा में लेना। (३) पाणिग्रहण करना। विवाह करना। (किसी पर) **हाथ धरना** = किसी को आशीर्वाद देना। (किसी वस्तु या बात से) **हाथ धोना** = खो देना। प्राप्ति की संभावना न रखना। नष्ट करना। **जैसे,—(क) जान से हाथ धोना। (ख) मकान से हाथ धोना।** **हाथ धोकर पीछे पड़ना** = (१) किसी काम में जी जान से लग जाना। सब कुछ छोड़कर प्रवृत्त हो जाना। किसी की हानि पहुँचाने में सब काम धंधा छोड़कर लग जाना। **जैसे,—न जाने क्यों वह आज कल हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ा है।** **हाथ न रखने देना या पुट्ठे पर हाथ न धरने देना** = (१) बहुत तेजी दिखाना। हाथ रखते ही उछलने कूदने या दौड़ने लगना। (घोड़े के लिये) (२) जरा भी बातों में न आना। थोड़ी सी बात भी मानने के लिये तैयार न होना। दृढ़ रहना। **जैसे,—उसे कैसे राजी करें, हाथ तो रखने ही नहीं देता।** **हाथ पकड़ना** = (१) किसी काम से रोकना। (२) सहारा देना। (३) आश्रय देना। शरण में लेना। रक्षक होना। (४) पाणिग्रहण करना। विवाह करना। **हाथ पड़ना** = (१) हाथ लगना। हाथ छू जाना। (२) डाका पड़ना। नाका पड़ना। लूट होना। **जैसे,—आज बाजार में हाथ पड़ गया।** **हाथ पत्थर तले दबना** = (१) मुश्किल में फँसना। संकट या कठिनता की स्थिति में पड़ना। (२) कुछ कर धर न सकना। कुछ करने की शक्ति या अवकाश न रहना। (३) लाचार होना। विवश होना। (४) किसी चलते हुए काम को बंद करने के लिये विवश होना। **हाथ पर गंगाजली रखना** = गंगा की शपथ देना। कसम खिलाना। **हाथ पर नाग खेलाना** = अपनी जान जोखो में डालना। प्राण संकट में डालना। **हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना** = खाली बैठे रहना। कुछ काम धंधा न करना। **हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना** = निराश हो जाना। **हाथ पर हाथ मारना** = (१) प्रतिज्ञा करना। किसी बात को दृढ़ करना। किसी बात को पक्का करना। (२) बाजी लगाना। **हाथ पसारना या फैलाना** = कुछ माँगना। याचना करना। (किसी के आगे) **हाथ पसारना या फैलाना** = (किसी से) कुछ माँगना। याचना करना। **जैसे,—हम गरीब हैं तो किसी के आगे हाथ फैलाने तो नहीं जाते।** **हाथ पसारे जाना** = इस संसार से खाली हाथ जाना। परलोक में कुछ साथ न ले जाना। **हाथ पाँव चलना** = काम धंधे के लिये सामर्थ्य होना। कार्य्य करने की योग्यता होना। **जैसे,—इतने बड़े हुए, तुम्हारे हाथ पाँव नहीं चलते हैं।** **हाथ पाँव चलाना** = काम धंधा करना। **हाथ पाँव टूटना** = (१) अंग भंग होना। (२) शरीर में पीड़ा होना। **हाथ पाँव ठंढे होना** = (१) शरीर में गरमी न रह जाना। मरणासन्न होना। (२) भय या आशंका से स्तब्ध हो जाना। ठक हो जाना। **हाथ पाँव तोड़ना** = (१) अंग भंग करना। (२) हाथ पाँव थर्राना। डर के मारे कँपकँपी होना। **हाथ पाँव निकालना** = (१) शरीर हृष्ट पुष्ट होना। मोटा ताजा होना। (२) सीमा का अतिक्रमण करना। हद से गुजरना। (३) नटखटी करना। शरारत करना। (४) छेड़छाड़ करना। **हाथ पाँव फूलना** = भय से स्तब्ध होना। डर या शोक से घबरा जाना। **हाथ पाँव बचाना** = अपने शरीर की रक्षा करना। **जैसे,—हाथ पाँव बचाकर काम करना।** **हाथ पाँव पटकना** = छटपटाना। **हाथ पाँव मारना या हिलाना** = (१) तैरने में हाथ पैर चलाना। (२) शोक, दुःख या पीड़ा से छटपटाना। तड़पना। (३) घोर प्रयत्न करना। बहुत कोशिश करना। **जैसे, उसने बहुत हाथ पाँव मारे पर उसे ले न सका।** (४) बहुत परिश्रम करना। खूब मिहनत करना। **हाथ पाँव से छूटना** = अच्छी तरह बच्चा पैदा होना। सहज में कुशल-पूर्वक प्रसव होना। (स्त्रि०) **हाथ पाँव हारना** = (१) साहस छोड़ना। हिम्मत हारना। (२) निराश होना। **हाथ पीले पड़ना** = (१) किसी प्रकार विवाह कर देना। (२) विवाह करना। **(हिंदुओं में विवाह के समय शरीर में हल्दी लगाने की रीति है।)** **हाथ पैर जोड़ना** = बहुत विनती करना। अनुनय विनय करना। **हाथ फेंकना** = हाथ चलाना। वार करना। हथियार चलाना। **(किसी पर) हाथ फेरना** = प्यार से शरीर सहलाना। प्यार

करना। **(किसी वस्तु पर) हाथ फेरना** = किसी वस्तु को उड़ा लेना। ले लेना। **हाथ बंद होना** = दे० "हाथ तंग होना"। **हाथ बढ़ाना** = (१) कोई वस्तु लेने के लिये हाथ फैलाना। (२) हद से बाहर जाना। सीमा का अतिक्रमण करना। **(किसी काम में) हाथ बँटाना** = शामिल होना। शरीक होना। योग देना। **हाथ बाँधकर खड़ा होना** = हाथ जोड़कर खड़ा होना। **हाथ बाँधे खड़ा रहना** = सेवा में बराबर उपस्थित रहना। खिदमत में हाजिर रहना। **(किसी के) हाथ बिकना** = किसी को मोल दिया जाना। **(किसी व्यक्ति का) किसी के हाथ बिकना** = किसी का क्रीत दास होना। किसी का खरीदा गुलाम होना। किसी के बिल्कुल अधीन होना। **(किसी काम में) हाथ बैठना या जमना** = अभ्यास होना। मश्क होना। ऐसा अभ्यास होना कि हाथ बराबर ठीक चला करे। **(किसी पर) हाथ बैठना या जमना** = किसी पर ठीक और भरपूर थप्पड़ या वार पड़ना। वार खाली न जाना। **हाथ भर आना** = काम करते करते हाथ थक जाना। **हाथ भरना** = हाथ में रंग या महावर लगाना। **हाथ मँजना** = अभ्यास होना। मश्क होना। **हाथ माँजना** = अभ्यास करना। **हाथ मलना** = (१) भूल चूक का बुरा परिणाम होने पर अत्यंत पश्चात्ताप करना। बहुत पछताना। (२) निराश और दुःखी होना। **हाथ मारना** = (१) बात पक्की करना। दृढ़ प्रतिज्ञा करना। (२) बाज़ी लगाना। **(किसी वस्तु पर) हाथ मारना** = उड़ा लेना। गायब कर लेना। बेईमानी से ले लेना। **(भोजन पर) हाथ मारना** = (१) खूब खाना। (२) बड़े बड़े कौर मुँह में डालना। **हाथ मारकर भागना** = दौड़ने और पकड़ने का खेल खेलना। **हाथ मिलाना** = (१) भेंट होने पर प्रेमपूर्वक एक दूसरे का हाथ पकड़ना। (२) लड़ना। पंजा लड़ाना। (३) सौदा पटाकर लेना। **हाथ मींजना** = दे० "हाथ मलना"। **हाथ में करना** = (१) वश में करना। काबू में करना। (२) अधिकार में करना। ले लेना। प्राप्त करना। **(मन) हाथ में करना** = मोहित करना। लुभाना। प्रेम में फँसाना। **हाथ में ठीकरा लेना** = भिक्षावृत्ति का अवलंबन करना। भीख माँगना। मँगता हो जाना। **हाथ में पड़ना** = (१) अधिकार में आना। (२) वश में होना। काबू में आना। **हाथ में लाना** = दे० "हाथ में करना"। **हाथ में लेना** = (१) करने का भार ऊपर लेना। जिम्मे लेना। (२) अधिकार में करना। **हाथ में हाथ देना** = पाणिग्रहण कराना। (कन्या को) ब्याह देना। **हाथ में होना** = (१) अधिकार में होना। पास में होना। (२) वश में होना। अधीन होना। उ०—**हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस बिधि हाथ।—तुलसी।** **हाथ में गुन या हुनर होना** = किसी कला में निपुणता होना। **हाथ रँगना** = (१) हाथ में मेहँदी लगाना। (२) किसी बुरे काम में पड़कर अपने को कलंकित करना। कलंक माथे पर लेना। (३) रिशवत लेना। घूस लेना। **(किसी का) हाथ रोकना** = कोई काम न करने देना। कुछ करते समय हाथ थाम लेना। कुछ करने से मना करना। **(अपना) हाथ रोकना** = (१) किसी काम का करना बंद कर देना। किसी काम से अलग हो जाना। विरत हो जाना। (२) मारने के लिये हाथ उठाकर रह जाना। (३) खर्च करते समय आगा पीछा सोचना। सँभालकर खर्च करना। जैसे,—**आमदनी घट गई है तो हाथ रोककर खर्च किया करो।** **हाथ रोपना या ओड़ना** = हाथ फैलाना। माँगना। **(कोई वस्तु) हाथ लगना** = (१) हाथ में आना। मिलना। प्राप्त होना। जैसे,—**तुम्हारे हाथ तो कुछ भी न लगा।** (२) गणित करते समय वह संख्या जो अंतिम संख्या ले लेने पर बच रहती है। जैसे,—**१२ के २ रखे, हाथ लगा १।** **(किसी काम में) हाथ लगना** = (१) आरंभ होना। शुरू किया जाना। जैसे,—**जब काम में हाथ लग गया तब हुआ समझो।** (२) किसी के द्वारा किया जाना। किसी का लगाव होना। जैसे,—**जिस काम में तुम्हारा हाथ लगता है, वह चौपट हो जाता है।** **(किसी वस्तु में) हाथ लगना** = छू जाना। स्पर्श होना। **(किसी काम में) हाथ लगाना** = (१) आरंभ करना। शुरू करना। (२) करने में प्रवृत्त होना। योग देना। जैसे,—**जिस काम में तुम हाथ लगाओगे, वह क्यों न अच्छा होगा।** **(किसी वस्तु में) हाथ लगाना** = छूना। स्पर्श करना। **हाथ लगे मैला होना** = इतना स्वच्छ और पवित्र होना कि हाथ से छूने से मैला होना। **हाथ साधना** = (१) यह देखने के लिये कोई काम करना कि उसे आगे अच्छी तरह कर सकते हैं या नहीं। (२) अभ्यास करना। मश्क करना। (३) दे० "हाथ साफ़ करना"। **(किसी पर) हाथ साफ़ करना** = किसी को मारना। **(किसी वस्तु पर) हाथ साफ़ करना** = बेईमानी से ले लेना। अन्याय से हरण करना। उड़ा लेना। **(भोजन पर) हाथ साफ़ करना** = खूब खाना। **हाथ किसी के सिर पर रखना** = किसी की रक्षा का भार ग्रहण करना। शरण या आश्रय में लेना। मुरब्बी होना। **(अपने या किसी के सिर पर) हाथ रखना** = सिर की कसम खाना। शपथ उठाना। **हाथ से** = द्वारा। मारफत। जैसे,—**(क) तुम्हारे हाथ से यह काम हो जाता तो अच्छा था। (ख) तुमने किस के हाथ से रुपया पाया?** **हाथ से जाना या निकल जाना** = (१) अधिकार में न रहना। कब्जे में न रह जाना। (२) वश में न रह जाना। काबू में न रह जाना। जैसे,—**चीज़ हाथ से निकल जाना, अवसर हाथ से जाना।** **हाथ से हाथ मिलाना** = दान देना। खैरात करना। अपने हाथ से दूसरे के हाथ पर कुछ रखना। जैसे,—**आज एकादशी है, कुछ हाथ मिलाओ।** **हाथ हिलाते आना** = (१) खाली हाथ लौटना। कुछ प्राप्त करके न आना। (२) बिना कार्य्य सिद्ध हुए लौटना आना। **हाथों में चाँद आना** = (१) पुत्र उत्पन्न होना। लड़का पैदा होना। (स्त्रि०) मन चाही वस्तु मिलना। **हाथों में रखना** = बड़े लाड़ प्यार या आदर सम्मान

से रखना। हाथों हाथ = एक के हाथ से दूसरे के हाथ में होते हुए। जैसे,—चीज हाथों हाथ वहाँ पहुँच गई। हाथों हाथ बिक जाना या उड़ जाना = खूब बिकी होना। बड़ी गहरी माँग होना। जैसे,—ऐसी उपयोगी पुस्तक हाथों हाथ बिक जायगी। हाथों हाथ लेना = बड़े आदर और सम्मान से स्वागत करना। (किसी के) हाथ बेचना = किसी को मूल्य लेकर देना। (किसी के) हाथ भेजना = किसी के हाथ में देकर भेजना। किसी के द्वारा प्रेषित करना। (किसी के) हाथों = किसी के द्वारा।

(२) लंबाई की एक माप जो मनुष्य की कुहनी से लेकर पंजे के छोर तक की मानी जाती है। चौबीस अंगुल का मान। जैसे,—दस हाथ की धोती। बीस हाथ जमीन।

मुहा०—हाथों कलेजा उछलना = (१) बहुत जी धड़कना। (२) बहुत खुशी होना। हाथ भर कलेजा होना = (१) बहुत खुशी होना। आनंद से फूलना। (२) उत्साह होना। साहस बँधना।

(३) ताश, जूए आदि के खेल में एक एक आदमी के खेलने की बारी। दावँ। जैसे,—अभी चार ही हाथ तो हमने खेला है।

मुहा०—हाथ मारना = दावँ जीतना।

(४) किसी कार्य्यालय के कार्यकर्त्ता। कारखाने में काम करनेवाले आदमी। जैसे,—आज कल हाथ कम हो गए हैं; इसी से देर हो रही है। (५) किसी औज़ार या हथियार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाय। दस्ता। मुठिया।

हाथकंडा-संज्ञा पुं० दे० "हथकंडा"।

हाथड़-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ] जाँते या चक्की की मुठिया।

हाथतोड़-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + तोड़ना] कुश्ती का एक पेंच जिसमें जोड़ का पंजा उलटा पकड़ कर मरोड़ते हैं और उसी मरोड़े हुए हाथ के ऊपर से अपनी उसी बगल की टाँगें जोड़ की टाँगों में फँसाकर उसे चित करते हैं।

हाथ-धुलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + धुलाई] वह बँधी रकम जो चमारों को मरे हुए चौपायों के फेंकने के लिये दी जाती है।

हाथपान-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + पान] हाथफूल के समान हथेली की पीठ पर पहनने का एक गहना जो पान के आकार का होता है और जंजीरों के द्वारा अँगूठियों और कलाई से लगाकर बँधा रहता है।

हाथफूल-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + फूल] हथेली की पीठ पर पहनने का फूल के आकार का एक गहना जो सिकड़ियों के द्वारा अँगूठियों और कलाई से लगाकर बाँधा जाता है।

हाथबाँह-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + बाँह] बाँह करने (कसरत) का एक ढंग।

हाथा-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ] (१) किसी औजार या हथियार का वह भाग जो मुट्ठी में पकड़ा जाता है। दस्ता। (२) दो तीन हाथ लंबा लकड़ी का एक औज़ार जिससे सिंचाई करते समय खेत में आया हुआ पानी उलीच कर चारो ओर पहुँचाते हैं। (३) पंजे की छाप या चिह्न जो गीले पिसे चावल और हल्दी आदि पोत कर दीवार पर छापने से बनता है। छापा। (उत्सव, पूजन आदि में स्त्रियाँ ऐसा छापा बनाती हैं।)

हाथा-छाँटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + छाँटना] (१) व्यवहार में कपट या बेईमानी। चालाकी। धूर्त्तता। चालबाज़ी। (२) चालबाज़ी या बेईमानी से रुपया पैसा उड़ाना। माल हज़म करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हाथाजोड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + जोड़ना] (१) एक पौधा जो औषध के काम में आता है। (२) सरकंडे की वह जड़ जो दो मिले हुए पंजों के आकार की बन जाती है। (इसका रखना लोग बहुत फलदायक मानते हैं।)

हाथापाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + पायँ] ऐसी लड़ाई जिसमें हाथ पैर चलाए जायँ। मुठभेड़। भिड़ंत। धौलधप्पड़।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हाथाबाँही-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + बाँह] हाथापाई।

हाथाहाथी-अव्य० [हिं० हाथ + हाथ] (१) हाथोंहाथ। (२) तुरंत। जल्दी।

हाथी-संज्ञा पुं० [सं० हस्तिन्, हस्ती, प्रा० हत्थी] [स्त्री० हथिनी] एक बहुत बड़ा स्तनपायी जंतु जो सूँड़ के रूप में बढ़ी हुई नाक के कारण और सब जानवरों से विलक्षण दिखाई पड़ता है।

विशेष—यह ज़मीन से ७–८ हाथ ऊँचा होता है और इसका धड़ बहुत चौड़ा और मोटा होता है। धड़ के हिसाब से टाँगें छोटी और खंभे की तरह मोटी होती हैं। पैर के पंजे गोल चक्राकार होते हैं। आँखें डीलडौल के हिसाब से छोटी और कुछ ऊदापन लिये होती हैं। जीभ लंबी होती है। पूँछ के छोर पर बालों का गुच्छा होता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है नाक जो एक गावदुम नली के समान ज़मीन तक लटकती रहती है और सूँड़ कहलाती है। यह सूँड़ हाथ का भी काम देती है। इससे हाथी छोटी से छोटी वस्तु ज़मीन पर से उठा सकता है और पेड़ की बड़ी बड़ी डालों को तोड़कर मुँह में डाल लेता है। इससे वह अपने शत्रुओं को लपेट कर पटक देता या चीर डालता है। सूँड़ में पानी भर कर वह अपने ऊपर डालता भी है। नर के मुख-विवर के दोनों छोरों पर हाथ डेढ़ हाथ लंबे और ५–६ अंगुल चौड़े गोल डंडे की तरह के सफेद चमकीले दाँत निकले होते हैं जो केवल दिखावटी होते हैं। इन दाँतों का वज़न बहुत अधिक—७५ से १७५ सेर तक—होता है। इसके कान गोल सूप की तरह के होते हैं। मस्तक चौड़ा और बीच से कुछ

विभक्त दिखाई पड़ता है। सिर की हड्डियाँ जालीदार होती हैं। पसलियाँ बीस जोड़ी होती हैं। हाथी पृथ्वी के गरम भागों में—विशेषतः हिंदुस्तान और अफ्रिका में—पाए जाते हैं। अफ्रिका और हिंदुस्तान के हाथियों में कुछ भेद होता है। अफ्रिका के हाथी के दो निकले हुए दाँतों के सिवा चार दाढ़ें होती हैं और हिंदुस्तानी के दो ही। अफ्रिका के हाथी का मस्तक गोल और कान इतने बड़े होते हैं कि सारे कंधे को ढाँके रहते हैं। बरमा और स्याम की ओर सफेद हाथी भी पाए जाते हैं जिनका बहुत अधिक आदर और मोल होता है। हिंदुस्तान के हाथियों के भी अनेक भेद होते हैं जैसे,—दँतैला, मकना (बिना दाँत का), पलँगदाँत, गनेसा, सूअरदंता, पथरदंता, सँकरिया, अंकुसदंता या गुंडा इत्यादि। कोई कोई हिंदुस्तानी हाथी के दो प्रधान भेद करते हैं—एक कमरिया, दूसरा मिरगी या शिकारी। कमरिया का शरीर भारी और सूँड़ लंबी होती है। मिरगी कुछ अधिक ऊँचा और फुरतीला होता है और उसकी सूँड़ भी कुछ छोटी होती है। सवारी के लिये कमरिया हाथी अधिक पसंद किया जाता है और शिकार के लिये मिरगी। हाथी गहरे जंगलों में झुंड बाँधकर रहते हैं और मनुष्य की तरह एक बार में एक बच्चा देते हैं। हाथी की बाढ़ १८ से २४वें वर्ष तक जारी रहती है। पाले हुए हाथी सौ वर्ष से अधिक जीते हैं। जंगली और भी अधिक जीते होंगे। हिंदुस्तान में हाथी रखने की रीति अत्यंत प्राचीन काल से है। प्राचीन समय में राजाओं के पास हाथियों की भी बड़ी बड़ी सेनाएँ रहती थीं जो शत्रु के दल में घुसकर भयंकर संहार करती थीं। हाथी रखना अमीरी का बड़ा भारी चिह्न समझा जाता है। अफ्रिका के जंगली इसका मांस भी खाते हैं। हाथी पकड़ने के कई उपाय हैं। अधिकतर गड्ढा खोदकर हाथी फँसाए जाते हैं।

यौ०—हाथीनाल, हाथीपाँव, हाथीनशीन, हाथीखाना, हाथीदाँत।

मुहा०—**हाथी सा** = बहुत मोटा। अत्यंत स्थूलकाय। **हाथी की राह** = आकाश गंगा। डहर। **हाथी पर चढ़ना** = बहुत अमीर होना। **हाथी बाँधना** = बहुत अमीर होना। जैसे,—तुम्हीं बेईमानी करके हाथी बाँध लोगे? **निशान का हाथी** = सेना या जुलूस में वह हाथी जिसपर झंडा और डंका रहता है। **हाथी के संग गाँड़े खाना** = बलवान की बराबरी करना।

⊛ संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ] हाथ का सहारा। करावलंब। उ०—दस्तगीर गाढ़े कर साथी। वह अवगाह दीन्ह तेहि हाथी।—जायसी।

हाथीख़ाना-संज्ञा पुं० [हिं० हाथी + फ़ा० ख़ानः] वह घर जिसमें हाथी रखा जाय। फ़ीलख़ाना।

हाथीचक-संज्ञा पुं० [हिं० हाथी + चक्र] एक प्रकार का पौधा जो औषध के काम में आता है।

हाथीदाँत-संज्ञा पुं० [हिं० हाथी + दाँत] हाथी के मुँह के दोनों छोरों पर हाथ डेढ़ हाथ निकले हुए सफेद दाँत जो केवल दिखावटी होते हैं।

विशेष—यह बहुत ठोस, मजबूत और चमकीला होता है और अधिक मूल्य पर बिकता है। इससे अनेक प्रकार के सजावट के सामान बनते हैं। जैसे,—चाकू के बेंट, कंघियाँ, कुरसियाँ, शीशे के फ्रेम इत्यादि। इस पर नक़्क़ाशी भी बड़ी ही सुंदर होती है।

हाथीनाल-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी + नाल] वह पुरानी तोप जिसे हाथियों की पीठ पर रखकर ले जाते थे। हथनाल। गजनाल।

हाथीपाँव-संज्ञा पुं० [हिं० हाथी + पाँव] (१) एक रोग जिसमें टाँगें फूलकर हाथी के पैर की तरह मोटी और बेडौल हो जाती हैं। फ़ीलपाँव। (२) एक प्रकार का बढ़िया सफेद कत्था।

हाथीपीच-संज्ञा पुं० [हिं० हाथी + पीच] एक प्रकार का हाथी-चक जो शाम और रूम की ओर से आता है और औषध के काम का होता है।

हाथीबच-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी + बच] एक पौधा जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

हाथीवान-संज्ञा पुं० [हिं० हाथी + वान (प्रत्य०)] हाथी की रक्षा करने और उसे चलाने के लिये नियुक्त पुरुष। फीलवान। महावत।

हादसा-संज्ञा पुं० [अ०] बुरी घटना। दुर्घटना। आपत्ति।

हान⊛†-संज्ञा स्त्री० दे० "हानि"।

हानि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) न रह जाने का भाव। नाश। अभाव। क्षय। जैसे,—प्राणहानि, तिथिहानि। (२) नुक़सान। क्षति। लाभ का उलटा। पास के द्रव्य आदि में त्रुटि या कमी। घाटा। टोटा। जैसे,—इस व्यापार में बड़ी हानि हुई। (३) स्वास्थ्य में बाधा। तंदुरुस्ती में ख़राबी। जैसे,—जिस वस्तु से हानि पहुँचती है, उसे क्यों खाते हो? (४) अनिष्ट। अपकार। बुराई।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—**हानि उठाना** नुकसान सहना। **हानि पहुँचना** = नुकसान होना। **हानि पहुँचाना** = नुकसान करना।

हानिकर-वि० [सं०] हानि करनेवाला। जिससे नुक़सान पहुँचे। (२) अनिष्ट करनेवाला। बुरा परिणाम उपस्थित करनेवाला। (३) स्वास्थ्य में त्रुटि या बाधा पहुँचानेवाला। तंदुरुस्ती बिगाड़नेवाला। रोगी बनानेवाला।

हानिकारक-वि० दे० "हानिकर"।

हानिकारी-वि० दे० "हानिकर"।

हाफ़िज़-संज्ञा पुं० [अ०] वह धार्मिक मुसलमान जिसे कुरान कंठ हो।

हाबिल-संज्ञा पुं० [देश०] जहाज का लंगर उखाड़ने या खींचने की क्रिया।

हामी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँ] 'हाँ' करने की क्रिया या भाव। स्वीकृति। स्वीकार।

मुहा०—हामी भरना = किसी बात के उत्तर में 'हाँ' कहना। स्वीकार करना। मंजूर करना। मानना।

हाय-प्रत्य० [सं० हा] (१) शोक और दुःख सूचित करनेवाला एक शब्द। घोर दुःख या शोक में मुँह से निकलनेवाला एक शब्द। आह। (२) कष्ट और पीड़ा सूचित करनेवाला शब्द। शारीरिक व्यथा के समय मुँह से निकलनेवाला शब्द।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—हाय मारना = (१) शोक से हाय हाय करना। कराहना। (२) दहल जाना। स्तंभित हो जाना।

संज्ञा स्त्री० कष्ट। पीड़ा। दुःख। जैसे,—गरीब की हाय का फल तुम्हारे लिये अच्छा नहीं। उ०—तुलसी हाय गरीब की हरि सों सही न जाय। (चलित)

मुहा०—(किसी की) हाय पड़ना = पहुँचाए हुए दुःख या कष्ट का बुरा फल मिलना। जैसे,—इतने गरीबों की हाय पड़ रही है, उसका कभी भला न होगा।

हायन-संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष। संवत्सर। साल।

हायनक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोटा चावल जो लाल होता है।

हायल&-वि० [सं० हत = क्षीण हुआ, प्रा० हय, अथवा हिं० घायल] घायल। शिथिल। मूर्च्छित। बेकाम। उ०—किय हायल चित चाय लगि बजि पायल तुव पाय। पुनि सुनि सुनि मुख मधुर धुनि, क्यों न लाल ललचाय।—बिहारी।

वि० [अ०] दो वस्तुओं के बीच में पड़नेवाला। व्यवधान रूप से स्थित। रोकनेवाला। अंतरवर्त्ती।

हाय हाय-अव्य० [सं० हा हा] शोक दुःख या शारीरिक कष्ट-सूचक शब्द। दे० 'हाय'।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

संज्ञा स्त्री० (१) कष्ट। दुःख। शोक। (२) व्याकुलता। घबराहट। आकुलता। परेशानी। झंझट। जैसे,—(क) तुम्हें तो रुपए के लिये सदा हाय हाय रहती है। (ख) जिंदगी भर यह हाय हाय न मिटेगी।

हार-संज्ञा स्त्री० [सं० हारि] (१) युद्ध, क्रीड़ा, प्रतिद्वंद्विता आदि में शत्रु के सम्मुख असफलता। लड़ाई, खेल, बाजी या चढ़ा ऊपरी में जोड़ या प्रतिद्वंद्वी के सामने न जीत सकने का भाव। पराजय। शिकस्त। जैसे,—लड़ाई में हार, खेल में हार इत्यादि।

क्रि० प्र०—मानना।—होना।

यौ०—हारजीत।

मुहा०—हार खाना = हारना। हार देना = पराजित करना। हराना।

(२) शिथिलता। श्रांति। थकावट। (३) हानि। क्षति। हरण। (४) ज़ब्ती। राज्य द्वारा हरण। (५) युद्ध। (६) विरह। वियोग।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोने, चाँदी या मोतियों आदि की माला जो गले में पहनी जाय।

विशेष—किसी के मत से इसमें ६४ और किसी के मत से १०८ दाने होने चाहिएँ।

(२) ले जानेवाले। वहन करनेवाला। (३) मनोहर। मन हरनेवाला। सुंदर। (४) अंकगणित में भाजक। (५) पिंगल या छंदःशास्त्र में गुरु मात्रा। (६) नाश करनेवाला।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) बन। जंगल। (२) नाव के बाहरी तख्ते। (३) चरने का मैदान। चरागाह। गोचारण-भूमि। (४) खेत।

प्रत्य० दे० "हारा"।

हारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरण करनेवाला। लेनेवाला। (२) जानेवाला। (३) मन हरनेवाला। मनोहर। सुंदर। (४) चोर। लुटेरा। (५) धूर्त्त। खल। (६) गणित में भाजक। (७) हार। माला।

हारगुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हार की गुरिया। माला के दाने।

हारद&-वि० दे० "हार्दिक"।

हारना-क्रि० अ० [सं० हार + ना (हिं० प्रत्य०)] (१) युद्ध, क्रीड़ा, प्रतिद्वंद्विता आदि में शत्रु के सामने असफल होना। लड़ाई, खेल, बाजी या लाग-डाँट में दूसरे पक्ष के मुकाबिले में न जीत सकना। पराभूत होना। पराजित होना। शिकस्त खाना। जैसे,—लड़ाई में हारना, खेल या बाजी में हारना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) व्यवहार या अभियोग में दूसरे पक्ष के मुक़ाबिले में कृतकार्य्य न होना। मुक़दमा न जीतना। जैसे,—मुक़दमे में हारना। (३) श्रांत होना। शिथिल होना। थक जाना। प्रयत्न में निराश होना। असमर्थ होना। जैसे,—जब वह उसे न ले सका, तब हारकर बैठ गया।

यौ०—हारा माँदा।

मुहा०—हारे दर्जे = (१) सब उपायों से निराश होकर और कुछ बस न चलने पर। (२) लाचार होकर। विवश होकर। **हारकर** = (१) असमर्थ होकर। (२) लाचार होकर।

क्रि० स० (१) लड़ाई, बाजी आदि को सफलता के साथ न पूरा करना। जैसे,—बाजी हारना, दाँव हारना। (२)

नष्ट करना या न प्राप्त करना। गवाँना। खोना। जैसे,—प्राण हारना, धन हारना। (३) छोड़ देना। न रख सकना। जैसे,—हिम्मत हारना। (४) दे देना। जैसे,—बचन हारना।

हारफलक-संज्ञा पुं० [सं०] पाँच लड़ियों का हार।

हारबंध-संज्ञा पुं० [सं०] एक चित्र-काव्य जिसमें पद्य हार के आकार में रखे जाते हैं।

हारभूरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्राक्षा। दाख। अंगूर।

हारमोनियम-संज्ञा पुं० [अं०] संदूक के आकार का एक अँगरेजी बाजा जिसपर उँगली रखने से अनेक प्रकार के स्वर निकलते हैं।

हारयष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] हार या माला की लड़ी।

हारल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो प्रायःअपने चंगुल में कोई लकड़ी या तिनका लिए रहती है। हारिल।

हारवार॥-संज्ञा स्त्री० दे० "हड़बड़ी"।

हारसिंगार-संज्ञा पुं० [हिं० हार + सिंगार] हारसिंगार का पेड़ या फूल। परजाता।

हारहारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अंगूर।

हारहूण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम। (२) उक्त देश के निवासी।

हारहूर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मद्य।

हारहूरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अंगूर।

हारहूरिका-संज्ञा स्त्री० दे० "हारहूरा"।

हारहौर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम। (२) उक्त देश का निवासी।

हारा†-प्रत्य० [सं० धार = रखनेवाला] [स्त्री० हारी] एक पुराना प्रत्यय जो किसी शब्द के आगे लगकर कर्त्तव्य, धारण या संयोग आदि सूचित करता है। वाला। जैसे,—करनेहारा, देनेहारा, लकड़हारा इत्यादि।

संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण-पश्चिम के कोने की हवा।

हारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हार। पराभव। पराजय। शिकस्त। (२) पथिकों का दल। कारवाँ। (३) हरण करनेवाला। (४) मन हरनेवाला।

संज्ञा स्त्री० दे० "हार"।

हारित-वि० [सं०] (१) हरण कराया हुआ। (२) लाया हुआ। जिसे ले आए हों। (३) छीना हुआ। (४) खोया हुआ। छोड़ा हुआ। गँवाया हुआ। (५) वंचित। (६) हारा हुआ। (७) मोहित। मुग्ध।

संज्ञा पुं० (१) तोता। सूआ। (२) एक वर्णवृत्त जिसमें एक तगण और दो गुरु होते हैं।

हारिद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का विष जिसका पौधा हल्दी के समान होता है और जो हल्दी के खेतों में ही उगता है। इसकी गाँठ बहुत ज़हरीली होती है। (२) एक प्रकार का प्रमेह जिसमें हल्दी के समान पीला पेशाब आता है।

हारिनाश्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक मूर्च्छना जिसका स्वरग्राम इस प्रकार है—ग, म, प, ध, नि, स, रे। स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प।

हारिल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो प्रायः अपने चंगुल में कोई लकड़ी या तिनका लिए रहती है। इसका रंग हरा, पैर पीले और चोंच कासनी रंग की होती है। हरियल। उ०—हमारे हरि हारिल की लकरी।—सूर।

हारी-वि० [सं० हारिन्] [स्त्री० हारिणी] (१) हरण करनेवाला। छीननेवाला। (२) ले जानेवाला। पहुँचानेवाला। लेकर चलनेवाला। (३) चुरानेवाला। लूटनेवाला। (४) दूर करनेवाला। हटानेवाला। (५) नाश करनेवाला। ध्वंस करनेवाला। (६) वसूल करनेवाला। उगाहनेवाला। (कर या महसूल) (७) जीतनेवाला। (८) मन हरनेवाला। मोहित करनेवाला। (९) हार पहननेवाला।

संज्ञा पुं० एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और दो गुरु होते हैं।

हारीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। लुटेरा। डाकू। चाई। (२) चोरी। लुटेरापन। चाईपन। (३) कण्व ऋषि के एक शिष्य का नाम। (४) जाबाल ऋषि के पुत्र का नाम। (५) परेवा। कबूतर।

हारुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरण करनेवाला। छीननेवाला। (२) ले जानेवाला।

हारौल-संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हार्द-संज्ञा पुं० [सं०] स्नेह।

वि० हृदय संबंधी। हृदय का।

हार्दिक-वि० [सं०] (१) हृदय-संबंधी। हृदय का। (२) हृदय से निकला हुआ। सच्चा। जैसे,—हार्दिक सहानुभूति। हार्दिक प्रेम।

हार्दिक्य-संज्ञा पुं० [सं०] मित्रभाव। मित्रता। सुहृद्भाव।

हार्य-वि० [सं०] (१) हरण करने योग्य। छीनने या लेने योग्य। (२) जो हरण किया जानेवाला हो। जो लिया या छीना जानेवाला हो। (३) जो हिलाया या इधर उधर किया जानेवाला हो। (४) जिसका अभिनय किया जानेवाला हो। (नाटक) (५) जो भाग दिया जानेवाला हो। भाज्य। (गणित)

हार्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का चंदन।

हाल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) दशा। अवस्था। जैसे,—अब उनका क्या हाल है? (२) परिस्थिति। माजरा। (३) संवाद। समाचार। वृत्तांत। जैसे,—बहुत दिनों से उनका कुछ हाल

नहीं मिला। (४) जो बात हुई हो, उसका ठीक ठीक उल्लेख। इतिवृत्त। ब्योरा। विवरण। कैफ़ियत। (५) कथा। आख्यान। चरित्र। जैसे,—इस किताब में हातिम का सारा हाल है। (६) ईश्वर के भक्तों या साधकों की वह अवस्था जिसमें वे अपने को बिलकुल भूल कर ईश्वर के प्रेम में लीन हो जाते हैं। तन्मयता। लीनता। (मुसल०)

मुहा०—(किसी पर) हाल आना = ईश्वर-प्रेम का उद्रेक होना। प्रेम की बेहोशी छाना।

वि० वर्त्तमान। चलता। उपस्थित। जैसे,—ज़माना हाल।

मुहा०—हाल में = थोड़े ही दिन हुए। जैसे,—वे अभी हाल में आए हैं। हाल का = थोड़े दिनों का। नया। ताज़ा।

अव्य० (१) इस समय। अभी। उ०—बात कहिबे में नंदलाल की उताल कहा? हाल लौ हरिनैनी! हँफनि मिटाय लै।—शिव। (२) तुरंत। शीघ्र। उ०—संग हित हाल करि जाचक निहाल करि नृपता बहाल करि कीरति बिसाल की।—गुलाब।

संज्ञा स्त्री० [हिं० हालना] (१) हिलने की क्रिया या भाव। कंप। (२) झटका। झोंका। धक्का।

क्रि० प्र०—लगना।

(३) लोहे का बंद जो पहिए के चारो ओर घेरे में चढ़ाया जाता है।

संज्ञा पुं० [अं०] बहुत बड़ा कमरा। खूब लंबा चौड़ा कमरा।

हालक-संज्ञा पुं० [सं०] पीलापन लिए भूरे रंग का घोड़ा।

हालगोला-संज्ञा पुं० [हिं० हाल + गोला] गेंद। उ०—किधौं चित्त चौगान के मूल सोहैं। हिये हेम के हालगोला बिमोहैं।—केशव।

हालडाल-संज्ञा पुं० [हिं० हालना + डोलना] (१) हिलने की क्रिया या भाव। गति। (२) कंप। (३) हलकंप। हलचल।

हालत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) दशा। अवस्था। जैसे,—अब उस बीमार की क्या हालत है? (२) आर्थिक दशा। सांपत्तिक स्थिति। जीवन-निर्वाह की गति। जैसे,—अब उनकी हालत ऐसी नहीं है कि कुछ अधिक दे सकें। (३) चारो ओर की वस्तुओं और व्यापारों की स्थिति। संयोग। परिस्थिति। जैसे,—ऐसी हालत में हम सिवा हट जाने के और क्या कर सकते थे?

हालना-†अ० क्रि० अ० [सं० हल्लन] (१) हिलना। डोलना। गतिवान् होना। हरकत करना। (२) काँपना। (३) झूमना। उ०—(क) भुव हालति जानि अकास हिये। जनु थंभित ठौरनि ठौर किये।—केशव। (ख) भूतल भूधर हाले अचानक आय भरत्थ के दुंदुभि बाजे।—केशव। (ग) हालति न चंप-लता डोलत समीरन के बानी कल कोकिल कलित कंठ परिगो।

हालरा-संज्ञा पुं० [हिं० हालना] (१) बच्चों को हाथ में लेकर हिलाने की क्रिया। बच्चों को लेकर हिलाना डुलाना। (२) झोंका। (३) लहर। हिलोर।

हालहूल-संज्ञा स्त्री० [हिं० हल्ला] (१) हल्ला गुल्ला। कोलाहल। शोरगुल। (२) हलकंप। हलचल। आंदोलन।

हालाँकि-अव्य० [फ़ा०] यद्यपि। गो कि। ऐसी बात है, फिर भी। जैसे,—वह ज्यादः हिम्मत रखता है, हालाँकि तुमसे कमज़ोर है।

हाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा। मद्य। शराब।

हालाहल-संज्ञा पुं० दे० "हलाहल"।

हालिक-वि० [सं०] हल संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) कृषक। किसान। खेतिहर। (२) एक प्रकार का छंद। (३) पशुओं का बध करनेवाला। कसाई।

हालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छिपकली।

हालिम-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसके बीज औषध के काम में आते हैं। चंसुर। चंद्रसुर। हालों।

विशेष—यह सारे एशिया में लगाया जाता है। इसके बीजों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकलता है। बीज बाजार में बिकते हैं और पुष्ट माने जाते हैं। ग्रहणी और चर्म्म रोग में भी इनका व्यवहार होता है।

हाली-अव्य० [अ० हाल] जल्दी। शीघ्र।

यौ०—हाली हाली = जल्दी जल्दी। शीघ्रता से।

हालु-संज्ञा पुं० [सं०] दाँत।

हालूक-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भेड़ जो तिब्बत के पूरबी भाग में होती है और जिसका ऊन बहुत अच्छा होता है।

हालों-संज्ञा पुं० दे० "हालिम"।

हाल्ट-संज्ञा पुं० [अं०] दल या सेना का चलते हुए ठहर जाना। ठहराव।

विशेष—मार्च करती हुई या चलती हुई सेना को ठहराने के लिये यह शब्द ज़ोर से बोला जाता है।

हाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पास बुलाने की क्रिया या भाव। पुकार। बुलाहट। (२) संयोग समय में नायिका की स्वाभाविक चेष्टाएँ जो पुरुष को आकर्षित करती हैं।

विशेष—साहित्य में ग्यारह हाव गिनाए गए हैं—लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, विब्बोक, विहृत, कुट्टमित, ललित और हेला। भाव-विधान में "हाव" अनुभाव के ही अंतर्गत है।

यौ०—हावभाव।

हावक-संज्ञा पुं० [सं०] हवन या यज्ञ करानेवाला।

हावनदस्ता-संज्ञा पुं० [फ़ा०] खरल और बट्टा। खल लोढ़ा।

हावनीय-वि० [सं०] हवन कराने योग्य।

हावभाव-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों की वह चेष्टा जिससे पुरुषों का चित्त आकर्षित होता है। नाज़ नखरा।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।

हावर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो अवध, राजपूताने, मध्यदेश और मद्रास में बहुत होता है। इसकी लकड़ी मज़बूत, वज़नी और भूरे रंग की होती है और खेती के सामान (हल, पाटे आदि) बनाने के काम में आती है।

हावला बावला-वि० [हि० बावला] [स्त्री० हावली बावली] पागल। सनकी।

हाशिया-संज्ञा पुं० [अ० हाशियः] (१) किसी फैली हुई वस्तु का किनारा। कोर। पाड़। बारी। जैसे,—किताब का हाशिया कपड़े का हाशिया। (२) गोट। मगजी।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—लगाना।

(३) हाशिए या किनारे पर का लेख। नोट।

मुहा०—हाशिए का गवाह = वह गवाह या साक्षी जिसका नाम किसी दस्तावेज़ के किनारे दर्ज हो। हाशिया चढ़ाना = किसी बात में मनोरंजन आदि के लिये कुछ और बात जोड़ना। नमक मिर्च लगाना।

हास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हँसने की क्रिया या भाव। हँसी। (२) परिहास। दिल्लगी। ठट्ठा। मज़ाक। (३) निंदा का भाव लिए हुए हँसी। उपहास।

यौ०—हास परिहास, हास विलास।

वि० श्वेत वर्ण। उज्वल।

हासक-संज्ञा पुं० [सं०] हँसानेवाला।

हासकर-वि० [सं०] हँसानेवाला। जिसमें हँसी आवे।

हासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हँसाना। (२) हँसानेवाला।

हासनिक-संज्ञा पुं० [सं०] विनोद या क्रीड़ा का साथी।

हासवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिक बौद्धों की एक देवी।

हासशील-वि० [सं०] हँसानेवाला। हँसोड़ा। विनोदी।

हासिद-वि० [अ०] हसद करनेवाला। डाह करनेवाला। ईर्ष्यालु।

हासिल-वि० [अ०] प्राप्त। लब्ध। पाया हुआ। मिला हुआ।

मुहा०—हासिल करना = प्राप्त करना। लाभ करना। जैसे,—दौलत हासिल करना, हुक्म हासिल करना। हासिल होना = प्राप्त होना। मिलना।

संज्ञा पुं० (१) गणित करने में किसी संख्या का वह भाग या अंक जो शेष भाग के कहीं रखे जाने पर बच रहे।

क्रि० प्र०—आना।

(२) उपज। पैदावार। (३) लाभ। नफ़ा। (४) गणित की क्रिया का फल। जैसे,—हासिल जरब, हासिल तक़सीम। (५) जमा। लगान। वसूली।

हासी-वि० [सं० हासिन्] [स्त्री० हासिनी] (१) हँसनेवाला। जैसे,—चारु हासिनी। (२) श्वेत। सफेद।

हास्य-वि० [सं०] (१) हँसने योग्य। जिस पर लोग हँसें। (२) उपहास के योग्य।

संज्ञा पुं० (१) हँसने की क्रिया या भाव। हँसी। (२) नौ स्थायी भावों और रसों में से एक। (३) उपहास। निंदापूर्ण हँसी। (४) ठट्ठा। ठठोली। दिल्लगी। मज़ाक।

हास्य कथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हँसी की बात।

हास्यकर-वि० [सं०] (१) हँसानेवाला। (२) जिसमें हँसी आवे।

हास्यास्पद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हास्य का स्थान या विषय। वह जिसे देखकर लोग हँसें। (२) उपहास का विषय। वह जिसके बेढंगेपन पर लोग हँसी उड़ावें।

हास्योत्पादक-वि० [सं०] जिससे लोगों को हँसी आवे। उपहास के योग्य।

हा हंत-अव्य० [सं०] अत्यंत शोकसूचक शब्द।

हा हा-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) हँसने का शब्द। वह आवाज जो जोर से हँसने पर आदमी के मुँह से निकलती है।

यौ०—हाहा हीही, हाहा ठीठी = हँसी ठट्ठा। विनोद।

मुहा०—हाहा हीही करना = (१) हँसना। (२) हँसी ठट्ठा करना। विनोद क्रीड़ा करना। हाहा हीही होना या मचना = हँसी होना।

(२) गिड़गिड़ाने का शब्द। अनुनय विनय का शब्द। दीनता या बहुत विनती की पुकार। दुहाई।

मुहा०—हाहा करना = गिड़गिड़ाना। बहुत विनती करना। दुहाई देना। उ०—हाहा कै हारि रहे मोहन पाँय परे जिन्ह लातनि मारे।—केशव। हाहा खाना = बहुत गिड़गिड़ाना। अत्यंत दीनता और नम्रता से पुकारना। बहुत विनती करना। उ०—साँटी लै जसुमति अति तरजति हरि बसि हाहा खात।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम।

हाहाकार-संज्ञा पुं० [सं०] भय के कारण बहुत आदमियों के मुँह से निकला हुआ हाहा शब्द। घबराहट की चिल्लाहट। भय, दुःख या पीड़ा सूचित करनेवाली जन-समूह की पुकार। कुहराम।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—पड़ना।—होना।

हाहाठीठी-संज्ञा स्त्री० [अनु० हाहा + हिं० ठट्ठा] हँसी ठट्ठा। विनोद क्रीड़ा। जैसे,—तुम्हारा सारा दिन हाहा ठीठी में जाता है।

हाहाहूत†*-संज्ञा पुं० [अनु०] हाहाकार। भय का कोलाहल।

हाहू‡-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) हलागुला । कोलाहल । (२) हलचल । धूम ।

हाहूबेर-संज्ञा पुं० [देश० हाहू + हिं० बेर] जंगली बेर । झड़बेरी ।

हिंकरना-क्रि० अ० [अनु० हिन हिन] हिनहिनाना । घोड़ों का बोलना । हींसना ।

हिंकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रँभाने का वह शब्द जो गाय अपने बछड़े को बुलाते समय करती है । (२) बाघ के बोलने का शब्द । (३) सामगान का एक अंग जिसमें उद्गाता गीत के बीच बीच में 'हिं' का उच्चारण करता है । (४) व्याघ्र । बाघ ।

हिंग-संज्ञा पुं० दे० "हींग" ।

संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम । (मार्कं० पु०)

हिंगन बेर-संज्ञा पुं० [हिं० हिंगोट + बेर] इंगुदी वृक्ष । हिंगोट । हिंगुवा । गोंदी ।

हिंगलाची-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक यक्षिणी का नाम । (बौद्ध)

हिंगलाज संज्ञा स्त्री० [सं० हिंगुलाजा] दुर्गा या देवी की एक मूर्त्ति या भेद जो सिंध और बिलूचिस्तान के बीच की पहाड़ियों में है । यहाँ अँधेरी गुफा में ज्योति के उसी प्रकार दर्शन होते हैं जिस प्रकार काँगड़े की ज्वालामुखी में । कराची बंदर से उत्तर की ओर समुद्र के किनारे किनारे ४५ कोस चलकर लोग यहाँ पहुँचते हैं ।

हिंगली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तंबाकू ।

हिंगाष्टकचूर्ण-संज्ञा पुं० [हिं० हिंग + सं० अष्टक] वैद्यक में प्रसिद्ध एक अजीर्णनाशक और पाचक चूर्ण ।

विशेष—सोंठ, पीपल, काली मिर्च, अजमोदा, सफेद जीरा, स्याह जीरा, भुनी हींग और सेंधा नमक इन सबको एक साथ चूर्ण कर डाले । सेवन की मात्रा १ या २ टंक ।

हिंगु-संज्ञा पुं० [सं०] हींग ।

हिंगुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी । हिंगोट ।

हिंगुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईंगुर । सिंगरफ । (२) एक नदी का नाम ।

हिंगुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रदेश का नाम जो सिंध और बिलूचिस्तान के बीच में है और जहाँ 'हिंगुलाजा' या हिंगलाज देवी का स्थान है ।

हिंगुलाजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा या देवी का एक रूप । हिंगलाज देवी ।

हिंगुलेश्वर रस-संज्ञा पुं० [सं०] ईंगुर से बनी हुई एक रसौषध जिसका व्यवहार वात ज्वर की चिकित्सा में होता है ।

हिंगूल-संज्ञा पुं० [सं०] हिज्जल नाम का पौधा ।

हिंगोट-संज्ञा पुं० [सं० हिंगुपत्र, प्रा० हिंगुवत] एक झाड़दार कँटीला जंगली पेड़ जो मझोले आकार का होता है और जिसकी इधर उधर सीधी निकली हुई टहनियाँ गोल गोल और छोटी तथा श्यामता लिये गहरे हरे रंग की पत्तियों से गुछी होती हैं । इसमें बादाम की तरह के गोल छोटे फल लगते हैं जिनकी गुठलियों से बहुत अधिक तेल निकलता है । छाल और पत्तियों में कसाव होता है । प्राचीन काल में जंगल में रहकर तपस्या करनेवाले मुनियों और तपस्वियों के लिये यह पेड़ बड़े काम का होता था; इसी से इसे 'तापस-तरु' भी कहते थे । इंगुदी ।

पर्य्या०—इंगुदी । हिंगुपत्र । जंगली बादाम ।

हिंग्वादि गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हींग के योग से बनी हुई एक विशेष प्रकार की गोली जिसके सेवन से पेट का दर्द दूर होता है ।

विशेष—भुनी हींग, अमलबेत, काली मिर्च, पीपल, अजवायन, काला नमक, साँभर नमक, सेंधा नमक इन सबको पीसकर बिजौरे नीबू के रस में गोलियाँ बनाते हैं जो गरम पानी के साथ खाई जाती हैं ।

हिंग्वादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] हींग के योग से बनी हुई एक बुकनी जो गुल्म, अनाह, अर्श, संग्रहणी, उदावर्त्त, शूल और उन्माद आदि रोगों में दी जाती है ।

विशेष—भूनी हींग, पिपलामूल, धनिया, जीरा, बच, चव्य, चीता, पाठा, कचूर, अमलबेत, साँभर नमक, काला नमक, सेंधा नमक, जवाखार सज्जी, अनारदाना, हड़ का छिलका, पुष्करमूल, डाँसरा, झाऊ की जड़, इन सब का चूर्ण कर डाले और अदरक तथा बिजौरे के रस के सात सात पुट देकर सुखा डाले ।

हिंच-संज्ञा पुं० [अ० हिंच] झटका । आघात । चोट । (लश०)

हिंछना‡-क्रि० अ० [सं० इच्छण] इच्छा करना । चाहना ।

हिंछा‡-संज्ञा स्त्री० दे० "इच्छा" ।

हिंजीर-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी के पैर में बाँधने की रस्सी या जंजीर ।

हिंडन-संज्ञा पुं० [सं०] घूमना । फिरना ।

हिंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिषी ।

हिंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम ।

हिंडी बदाम-संज्ञा पुं० [देश० हिंड + फा० बादाम] अंडमन टापू में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा पेड़ जिसमें एक प्रकार का गोंद निकलता है और जिसके बीजों में बहुत सा तेल होता है ।

हिंडीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की समुद्री मछली की हड्डी जो 'समुद्रफेन' के नाम से प्रसिद्ध है । (२) मर्द । नर । पुरुष । (३) अनार का पेड़ ।

हिंडुक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम ।

हिंडोरा-संज्ञा पुं० दे० "हिंडोला" । उ०—प्रेम रँग बोरी गोरी

नवल किसोरी भोरी झूलति हिंडोरे यों सुहाई सखियान ले।—पद्माकर।

हिंडोरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हिंडोरा] छोटा हिंडोला।

हिंडोल-संज्ञा पुं० [सं० हिन्दोल] (१) हिंडोला। (२) एक राग जो गांधार स्वर की संतान कहा गया है। एक मत से यह ओड़व जाति का है और इसमें पंचम तथा गांधार वर्जित हैं। इसकी ऋतु वसंत और वार मंगल है। गाने का समय रात को २१ या २६ दंड से लेकर २९ दंड तक। ऐसा प्रसिद्ध है कि यह राग यदि शुद्ध गाया जाय तो हिंडोला आप से आप चलने लगता है। हनुमत् के मत से इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—सा ग म प नि सा नि प म ग सा। विलावली, भूपाली, मालश्री, पटमंजरी और ललिता इसकी स्त्रियाँ तथा पंचम, वसंत, विहाग, सिंधुड़ा और सोरठ इसके पुत्र माने गए हैं। पुत्रवधू—सिंधुरई, गांधारी, मालिनी और त्रिवेणी।

हिंडोलना†-संज्ञा पुं० दे० "हिंडोला"।

हिंडोला-संज्ञा पुं० [सं० हिन्दोल] (१) नीचे ऊपर घूमनेवाला एक चक्कर जिसमें लोगों के बैठने के लिये छोटे छोटे मंच बने रहते हैं। विनोद या मन बहलाव के लिये लोग इसमें बैठकर नीचे ऊपर घूमते हैं। सावन के महीने में इस पर झूलने की विशेष चाल है। (२) पालना। (३) झूला।

हिंडोली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो हनुमत् के मत से हिंडोल राग की प्रिया है।

हिंताल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जंगली खजूर जिसके पेड़ छोटे छोटे—ज़मीन से दो तीन हाथ ऊँचे—होते हैं। यह पेड़ देखने में बहुत सुंदर होता है और दक्षिण के जंगलों में दलदलों के किनारे और गीली जमीन में बहुत पाया जाता है। अमरकंटक के आस पास यह बहुत होता है। संस्कृत के पुराने कवियों ने इसका बहुत वर्णन किया है।

हिंद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] हिंदोस्तान। भारतवर्ष।

विशेष—यह शब्द वास्तव में 'सिंधु' शब्द का फ़ारसी उच्चारण है। प्राचीन काल में भारतीय आर्यों और पारसीक आर्यों के बीच बहुत कुछ संबंध था। यज्ञ करानेवाले याजक बराबर एक देश से दूसरे देश में आते जाते थे। शाकद्वीप के मग ब्राह्मण फारस के पूर्वोत्तर भाग से ही आए हुए हैं। ईसा से ५०० वर्ष पहले दारा (दारयवहु) प्रथम के समय में सिंधु नद के आसपास के प्रदेश पर पारसियों का अधिकार हो गया था। प्राचीन पारसी भाषा में संस्कृत के 'स' का उच्चारण 'ह' होता था। जैसे,—संस्कृत 'सप्त'; फ़ारसी 'हफ्त'। इसी नियम के अनुसार 'सिंधु' का उच्चारण प्राचीन पारस देश में 'हिंदु' या 'हिंद' होता था। पारसियों के धर्म-ग्रंथ 'अवस्ता' में 'हफ्तहिंद' का उल्लेख है जो वेदों में भी 'सप्तसिंधु' के नाम से आया है। धीरे धीरे 'हिंद' शब्द सारे देश के लिये प्रयुक्त होने लगा। प्राचीन यूनानी जब फ़ारस आए, तब उन्हें इस देश का परिचय हुआ और वे अपने उच्चारण के अनुसार फारसी 'हिंद' को 'इंड' या 'इंडिका' कहने लगे, जिससे आजकल 'इंडिया' शब्द बना है।

हिंदवाना†-संज्ञा पुं० [फ़ा० हिंद + वान] तरबूज। कलींदा।

हिंदवी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] हिंद या हिंदोस्तान की भाषा। हिंदी भाषा जो उत्तरीय भारत के अधिकतर भाग में बोली जाती है।

हिंदी-वि० [फ़ा०] हिंद का। हिंदुस्तान का। भारतीय।

संज्ञा पुं० हिंद का रहनेवाला। हिंदुस्तान या भारतवर्ष का निवासी। भारतवासी।

संज्ञा स्त्री० (१) हिंदुस्तान की भाषा। भारतवर्ष की बोली। (२) हिंदुस्तान के उत्तरी या प्रधान भाग की भाषा जिसके अंतर्गत कई बोलियाँ हैं और जो बहुत से अंशों में सारे देश की एक सामान्य भाषा मानी जाती है।

विशेष—मुसलमान पहले पहल उत्तरी भारत में ही आकर जमे और दिल्ली, आगरा और जौनपुर आदि उनकी राजधानियाँ हुईं। इसी से उत्तरी भारत में प्रचलित भाषा को ही उन्होंने 'हिंदवी' या 'हिंदी' कहा। काव्यभाषा के रूप में शौरसेनी या नागर अपभ्रंश से विकसित भाषा का प्रचार तो मुसलमानों के आने के पहले ही से सारे उत्तरी भारत में था। मुसलमानों ने आकर दिल्ली और मेरठ के आस पास की भाषा को अपनाया और उसका प्रचार बढ़ाया। इस प्रकार वह भी देश के एक बड़े भाग की शिष्ट बोलचाल की भाषा हो चली। खुसरो ने उसमें कुछ पद्य रचना भी आरंभ की जिसमें पुरानी काव्यभाषा या व्रजभाषा का बहुत कुछ आभास था। इससे स्पष्ट है कि दिल्ली और मेरठ के आसपास की भाषा (खड़ी बोली) को, जो पहले केवल एक प्रांतिक बोली थी, साहित्य के लिये पहले पहल मुसलमानों ने ही लिया। मुसलमानों के अपनाने से खड़ी बोली शिष्ट बोल-चाल की भाषा तो मानी गई, पर देश के साहित्य की सामान्य काव्यभाषा व्रज (जिसके अंतर्गत राजस्थानी भी आ जाती है) और अवधी रही। इस बीच में मुसलमान खड़ी बोली को अरबी, फ़ारसी द्वारा थोड़ा बहुत बराबर अलंकृत करते रहे; यहाँ तक कि धीरे धीरे उन्होंने अपने लिये एक साहित्यिक भाषा और साहित्य अलग कर लिया जिसमें विदेशी भावों और संस्कारों की प्रधानता रही। ध्यान देने की बात यह है कि यह साहित्य तो पद्यमय ही रहा, पर शिष्ट बोल-चाल की भाषा के रूप में खड़ी बोली का प्रचार उत्तरी भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक हो गया। जब अँगरेज़ भारत में आए, तब उन्होंने खड़ी बोली को शिष्ट

जनता में प्रचलित पाया। अतः उनका ध्यान अपने सुबीते के लिये स्वभावतः इसी खड़ी बोली की ओर गया और उन्होंने इसमें गद्य साहित्य के आविर्भाव का प्रयत्न किया। पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मुसलमानों ने अपने लिये एक साहित्यिक भाषा उर्दू के नाम से अलग कर ली थी। इसी से गद्य-साहित्य के लिये एक ही भाषा का व्यवहार असंभव प्रतीत हुआ। इससे कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज के प्रोत्साहन से खड़ी बोली के दो रूपों में गद्य साहित्य का निर्माण आरंभ हुआ—उर्दू में अलग और हिंदी में अलग। इस प्रकार 'खड़ी बोली' का ग्रहण हिंदी के गद्य-साहित्य में तो हो गया, पर पद्य की भाषा बहुत दिनों तक एक ही—वही ब्रजभाषा—रही। भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय तक यही अवस्था रही। पीछे हिंदी साहित्य-सेवियों का ध्यान गद्य और पद्य की एक भाषा करने की ओर गया और बहुत से लोग 'खड़ी बोली' के पद्य की ओर ज़ोर देने लगे। यह बात बहुत दिनों तक एक आंदोलन के रूप में रही; फिर क्रमशः खड़ी बोली में भी बराबर हिंदी की कविताएँ लिखी जाने लगीं। इस प्रकार हिंदी साहित्य के भीतर अब तीन बोलियाँ आ गईं—खड़ी बोली, ब्रजभाषा और अवधी। हिंदी साहित्य की जानकारी के लिये अब इन तीनों बोलियों का जानना आवश्यक है। साहित्यिक खड़ी बोली की हिंदी और उर्दू दो शाखाएँ हो जाने से साधारण बोल-चाल की मिली जुली भाषा को अँगरेज़ हिंदुस्तानी कहने लगे हैं।

हिंदी रेवद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का पौधा जो हिमालय में ११००० से १२००० फुट की ऊँचाई तक उगता है। यह काश्मीर, लद्दाख, नैपाल, सिक्किम और भूटान में पाया जाता है। इसकी जड़ औषध के काम में आती है और चीनी रेवद या रेवंदचीनी कहलाती है। इसका रंग भी मैला होता है और सुगंध भी कम होती है, पर चीनी रेवंद की जगह यह बाज़ारों में बराबर बिकती है। चीनी जाति का पौधा तिब्बत के दक्षिण-पूर्व भाग में तथा चीन के पश्चिमोत्तर भाग में होता है और उसकी जड़ क्राइसोफेनिक एसिड के अंश के कारण पीसने पर ख़ूब पीली निकलती है। रेवंद की जड़ दवा के काम में आती है और पुष्ट, उदरशूलनाशक तथा कुछ रेचक होती है। यह आमातिसार में उपकारी होती है, पर ग्रहणी में नहीं।

हिंदुस्तान-संज्ञा पुं० [फ़ा० हिंदोस्तान] (१) भारतवर्ष। वि० दे० "हिंद"। (२) भारतवर्ष का उत्तरीय मध्य भाग जो दिल्ली से लेकर पटने तक और दक्षिण में नर्मदा के किनारे तक माना जाता है। यह ख़ास हिंदुस्तान कहा जाता है। पंजाब, बंगाल, महाराष्ट्र आदि के निवासी इस भू-भाग को प्रायः हिंदुस्तान और यहाँ के निवासियों को हिंदुस्तानी कहा करते हैं।

हिंदुस्तानी-वि० [फ़ा०] हिंदुस्तान का। हिंदुस्तान संबंधी। संज्ञा पुं० (१) हिंदुस्तान का निवासी। भारतवासी। (२) उत्तरीय भारत के मध्यभाग का निवासी। भारतवासी। (पंजाबी, बंगाली आदि से भेद सूचित करने के लिये।) संज्ञा स्त्री० (१) हिंदुस्तान की भाषा। (२) बोलचाल या व्यवहार की वह हिंदी जिसमें न तो बहुत अरबी फारसी के शब्द हों, न संस्कृत के।

हिंदुस्थान-संज्ञा पुं० [फ़ा० हिंदू + सं० स्थान] हिंदुस्तान। भारतवर्ष।

हिंदू-संज्ञा पुं० [फ़ा०] भारतवर्ष में बसनेवाली आर्य्य जाति के वंशज जो भारत में प्रवर्तित या पल्लवित आर्य्य धर्म, संस्कार और समाज-व्यवस्था को मानते चले आ रहे हों। वेद, स्मृति, पुराण आदि अथवा इनमें से किसी एक के अनुसार चलनेवाला। भारतीय आर्य्य-धर्म का अनुयायी।

विशेष—यह नाम प्राचीन पारसियों का दिया हुआ है जो उनके द्वारा संसार में सर्वत्र प्रचलित हुआ। प्राचीन भारतीय आर्य्य अपनी धर्म-व्यवस्था को "वर्णाश्रम-धर्म" के नाम से पुकारते थे। प्राचीन अनार्य्य द्रविड़ जातियों को उन्होंने अपने समाज में मिलाया, पर उन्हें अपनी वर्णव्यवस्था के भीतर करके अर्थात् सिद्धांत रूप में किसी आर्य्य ऋषि, राजा इत्यादि की संतति मानकर। पीछे शक, हूण और यवन आदि भी जो मिले, वे या तो वसिष्ठ ऋषि द्वारा उत्पन्न (गाय से सही) वीरों के वंशज माने जाकर अथवा ब्राह्मणों के दर्शन से पतित क्षत्रिय माने जाकर। सारांश यह कि भारतीय आर्य्य अपनी धर्मव्यवस्था को मज़हब की तरह फैलाते नहीं थे; आसपास की या आई हुई जातियाँ उसे सभ्यता के संस्कार के रूप में आपसे आप ग्रहण करती थीं। प्राचीन काल में आर्य्य-सभ्यता के दो केंद्र थे—भारत और पारस। इन दोनों में भेद बहुत कम था। हूणों ने पहले पारसी सभ्यता ग्रहण की, फिर भारत में आकर वे भारतीय आर्य्यों में मिले। शक जाति तो आर्य्य जाति की ही एक शाखा थी। पीछे जब पारस-निवासी मुसलमान हो गए तब उन्होंने 'हिंदू' शब्द के साथ 'काफ़िर', 'काला', 'लुटेरा' आदि कुत्सित अर्थों की योजना की। जब तक वे आर्य्य-धर्म के अनुयायी रहे, तब तक 'हिंदू' शब्द का प्रयोग आदर के साथ "हिंद के निवासी" के अर्थ में ही करते थे। यह शब्द इसलाम के प्रचार के बहुत पहले का है (दे० 'हिंद')। अतः पीछे से मुसलमानों के बुरे अर्थ की योजना करने से यह शब्द बुरा नहीं हो सकता। मेरुतंत्र आदि कुछ आधुनिक ग्रंथों में इस शब्द को संस्कृत सिद्ध करने का जो

प्रयत्न किया गया है, उसे कल्पना मात्र ही समझना चाहिए।

हिंदूकुश-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक पर्वत-श्रेणी जो अफ़गानिस्तान के उत्तर में है और हिमालय से मिली हुई है।

हिंदूपन-संज्ञा पुं० [फ़ा० हिंदू + पन (प्रत्य०)] हिंदू होने का भाव या गुण।

हिंदोरना-क्रि० स० [सं० हिंदोल + ना (हिं० प्रत्य०)] पानी के समान पतली चीज़ में हाथ या कोई चीज डालकर इधर उधर घुमाना। बँघोलना। फेंटना।

हिंदोल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंडोला। झूला। (२) हिंडोल नाम का राग।

हिंदोस्तान-संज्ञा पुं० दे० "हिंदुस्तान"।

हिंदोस्तानी-वि०, संज्ञा पुं०, संज्ञा स्त्री० दे० "हिंदुस्तानी"।

हिंयाँ†*-अव्य० दे० "यहाँ"।

हिंव-संज्ञा पुं० दे० "हिम"।

हिंवार-संज्ञा पुं० [सं० हिमालि] हिम। बर्फ़। पाला।

मुहा०—हिंवार पड़ना = (१) बर्फ़ गिरना। (२) बहुत सर्दी पड़ना। बहुत जाड़ा होना।

हिंस-संज्ञा स्त्री० [सं० हेष या अनु० हिं हिं] घोड़ों के बोलने का शब्द। हींस। हिनहिनाहट। उ०—गरजहिं गज, घंटाधुनि घोरा। रथ रव बाजि-हिंस चहुँ ओरा।—तुलसी।

हिंसक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसा करनेवाला। हत्यारा। घातक। मारने या पीड़ित करनेवाला। बध करने या कष्ट पहुँचानेवाला। (२) बुराई करनेवाला। हानि करनेवाला। (३) जीवों को मारनेवाला पशु। खूँखार जानवर। (४) शत्रु। दुश्मन। (५) मारण, उच्चाटन आदि प्रयोग करनेवाला ब्राह्मण। तांत्रिक ब्राह्मण।

हिंसन-संज्ञा पुं० [सं०] [हिंसनीय, हिंसित, हिंस्य] (१) जीवों का बध करना। जान मारना। घात करना। (२) जीवों को पीड़ा पहुँचाना। कष्ट देना। सताना। पीड़न। (३) बुराई करना। अनिष्ट करना या चाहना।

हिंसनीय-वि० [सं०] (१) हिंसा करने योग्य। (२) जिसकी हिंसा की जानेवाली हो।

हिंसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बध या पीड़ा। जीवों को मारना या सताना। प्राण मारना या कष्ट देना। (२) हानि पहुँचाना। अनिष्ट करना।

विशेष—हिंसा तीन प्रकार से हो सकती है—मनसा, वाचा और कर्मणा। पुराणों में हिंसा लोभ की कन्या और अधर्म की भार्या कही गई है। जैन शास्त्रानुसार हिंसा चार प्रकार की होती है—आकुट्टी हिंसा, दर्प हिंसा, प्रमाद हिंसा और कल्प हिंसा।

हिंसाकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बध य पीड़ा पहुँचाने का कर्म। मारने या सताने का काम। (२) दूसरे का अनिष्ट करने के लिये मारण उच्चाटन, पुरश्चरण आदि तांत्रिक प्रयोग।

हिंसात्मक-वि० [सं०] जिसमें हिंसा हो। हिंसा से युक्त।

हिंसारु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंस्र पशु। खूँखार जानवर। (२) बाघ। शेर।

हिंसालु-वि० [सं०] (१) हिंसा करनेवाला। मारने या सतानेवाला। (२) हिंसा की प्रवृत्तिवाला।

हिंसितव्य-वि० [सं०] हिंसा करने योग्य या जिसकी हिंसा करनी हो।

हिंसीर-वि० [सं०] हिंसा करनेवाला। सतानेवाला।

संज्ञा पुं० बाघ।

हिंस्य-वि० [सं०] (१) हिंसा के योग्य। (२) जिसकी हिंसा होनेवाली हो।

हिंस्र-वि० [सं०] हिंसा करनेवाला। खूँखार। जैसे,—हिंस्र पशु।

हि-एक पुरानी विभक्ति जिसका प्रयोग पहले तो सब कारकों में होता था, पर पीछे कर्म और संप्रदान में ही ('को' के अर्थ में) रह गया। जैसे,—रामहि प्रेम समेत लखि।

विशेष—पाली में तृतीया और पंचमी की विभक्ति के रूप में 'हि' का व्यवहार मिलता है। पीछे प्राकृतों में संबंध के लिये भी विकल्प से अपादान की विभक्ति आने लगी और सब कारकों का काम कभी कभी संबंध की विभक्ति से ही चलाया जाने लगा। 'रासो' आदि की पुरानी हिंदी में 'ह' रूप में भी यह विभक्ति मिलती है। अपभ्रंश में 'हो' और 'हे' रूप संबंध विभक्ति के मिलते हैं। यह 'हि' या 'ह' विभक्ति संस्कृत के 'भिस्' या 'भ्यस्' से निकली जान पड़ती है।

‡*अव्य० दे० "ही"।

हिअ*-संज्ञा पुं० [प्रा०] (१) हृदय। (२) छाती।

हिआ-संज्ञा पुं० [प्रा० हिअ] (१) हृदय। (२) छाती। उ०—हिआ थार कुच कंचन लाडू।—जायसी।

हिआउ‡-संज्ञा पुं० दे० "हिआव"।

हिआव-संज्ञा पुं० [हिं० हिअ + आव (भाव प्रत्य०)] साहस। जिगरा। हिम्मत। वि० दे० "हियाव"। उ०—भँवर जो मनसा मानसर लीन्ह कँवलरस जाइ। घुन जो हिआव न कै सका झूर काठ तस खाइ।—जायसी।

हिकड़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा० से: = तीन + कोड़ी] तीन कोड़ी कपड़ों का समूह। (धोबी)

हिकमत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) विद्या। तत्वज्ञान। (२) कला कौशल। निर्माण की बुद्धि। कोई चीज़ बनाने या निकालने की अक्ल। जैसे,—हिकमते चीन, हुज्जते बंगाल। (३) कार्य सिद्ध करने की युक्ति। तदबीर। उपाय। जैसे,—इसके हाथ से रुपया निकालने की तुम्हीं कोई हिकमत सोचो।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—लगाना।

(४) चतुराई का ढंग। चाल। पालिसी। जैसे,—ऐसे मौके पर हिकमत से काम लेना चाहिए। (५) किफ़ायत। (६) हकीम का काम या पेशा। हकीमी। वैद्यक। (७) मल्लाही। (लश्क०)

हिकमती-वि० [अ० हिकमत] (१) कार्य-साधन की युक्ति निकालनेवाला। तदबीर सोचनेवाला। उपाय निकालनेवाला। कार्य्यपटु। (२) चतुर। चालाक। (३) किफ़ायती।

हिकलाना-क्रि० अ० दे० "हकलाना"।

हिकायत-संज्ञा स्त्री० [अ०] कथा। कहानी। प्रसंग।

हिकल-संज्ञा पुं० [?] बौद्ध सन्यासियों या भिक्षुओं का दंड।

हिक्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिचकी। (२) बहुत हिचकी आने का रोग।

विशेष—वायु का पसलियों और अँतड़ियों को पीड़ित करते हुए ऊपर चढ़कर गले से झटके से निकलना ही हिक्का या हिचकी है। वैद्यक में वायु और कफ़ के मेल से पाँच प्रकार की हिक्का कही गई है—अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गंभीरा और महती। पेट में अफरा, पसलियों में तनाव, कंठ और हृदय का भारी होना, मुँह कसैला होना हिक्का होने के पूर्व लक्षण हैं। गरम, बादी, गरिष्ठ, रूखी और बासी चीज़ें खाना, मुँह में धूल जाना, थकावट, मलमूत्र का वेग रोकना हिक्का के कारण कहे गए हैं। जिस हिक्का में रोगी को कंप हो, ऊपर की ओर दृष्टि चढ़ जाय, आँख के सामने अँधेरा छा जाय, शरीर दुबला होता जाय, छींक बहुत आवे और भोजन में अरुचि हो जाय, वह असाध्य कही गई है।

(३) रोने या सिसकने का वह शब्द जो रुक रुककर आवे।

हिक्किका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिक्का। हिचकी।

हिक्की-वि० [सं० हिक्किन्] जिसे हिक्का रोग हो। हिचकी का रोगी।

हिचक-संज्ञा स्त्री० [हिं० हिचकना] किसी काम के करने में वह रुकावट जो मन में मालूम हो। आगा पीछा।

हिचकना-क्रि० अ० [सं० हिक्का या अनु० हिच+ना (प्रत्य०)] (१) हिचकी लेना। वायु का उठा हुआ झोंका कंठ से निकालना। (२) किसी काम के करने में कुछ अनिच्छा, भय या संकोच के कारण प्रवृत्त न होना। आगा पीछा करना। जैसे,—वहाँ जाने से तुम हिचकते क्यों हो?

हिचकिचाना-क्रि० अ० दे० "हिचकना"।

हिचकिचाहट-संज्ञा स्त्री० दे० "हिचक"।

हिचकिची-संज्ञा स्त्री० दे० "हिचक"।

हिचकी-संज्ञा स्त्री० [अनु० हिच या सं० हिक्का] (१) पेट की वायु का झोंक के साथ ऊपर चढ़कर कंठ में धक्का देते हुए निकलना। उदरस्थ वायु के कंठ में आघात या शब्द के साथ निकलने की क्रिया।

क्रि० प्र०—आना।—लेना।

मुहा०—हिचकियाँ लगना = मरने के समय वायु का कंठ में से रह रहकर आघात करते हुए निकलना। मरणासन्न अवस्था होना। मरने के निकट होना।

(२) रह रहकर सिसकने का शब्द। रोने में रह रहकर कंठ से साँस छोड़ना।

क्रि० प्र०—बँधना।

हिचर मिचर-संज्ञा पुं० [हिं० हिचक] (१) किसी काम के करने में भय, संकोच या कुछ अनिच्छा के कारण रुकना या देर करना। आगा-पीछा। सोच-विचार। (२) किसी काम को न करना पड़े, इसलिये देर करना या इधर उधर की बात कहना। टालमटूल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हिजड़ा-संज्ञा पुं० दे० "हीजड़ा"।

हिजरा-संज्ञा पुं० दे० "हीजड़ा"।

हिजरी-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानी सन् या संवत् जो मुहम्मद साहब के मक्के से मदीने भागने की तारीख़ (१५ जुलाई सन् ६२२ ई० अर्थात् विक्रम संवत् ६७९ श्रावण शुक्ल २ का सायंकाल) से चला है।

विशेष—खलीफ़ा उमर ने विद्वानों की सम्मति से यह हिजरी सन् स्थिर किया था। हिजरी सन् का वर्ष शुद्ध चांद्र वर्ष है। इसका प्रत्येक मास चंद्रदर्शन (शुक्ल द्वितीया) से आरंभ होता है और दूसरे चंद्रदर्शन तक माना जाता है। हर एक तारीख़ सायंकाल से आरंभ होकर दूसरे दिन सायंकाल तक मानी जाती है। इस सन् के बारह महीनों के नाम इस प्रकार हैं—मुहर्रम, सफ़र, रबीउल् अव्वल, रबीउस्सानी, जमादिउल् अव्वल, जमादिउल् आखिर, रजब, शाबान, रमज़ान, शव्वाल, ज़िल्काद और ज़िलहिज्ज। चांद्रमास २९ दिन, ३१ घड़ी, ५० पल और ७ विपल का होता है; इससे चांद्रवर्ष सौरवर्ष से १० दिन, ५३ घड़ी, ३० पल और ६ विपल के क़रीब कम होता है। इस हिसाब से सौ वर्ष में ३ चांद्रवर्ष २४ दिन और ९ घड़ियाँ बढ़ जाती हैं। अतः ईसवी सन् या विक्रम संवत् से हिजरी सन् का कोई निश्चित अंतर नहीं रहता, जिससे दिए हुए हिजरी सन् में कोई निश्चित संख्या जोड़कर ईसवी सन् या विक्रम निकाल लें। इसके लिये गणित करना पड़ता है।

हिजाज़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) अरब के एक भाग का नाम जिसमें मक्का और मदीना नामक नगर हैं। (२) फारसी संगीत के १२ मुक़ामों में से एक।

हिजाब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) परदा। (२) शर्म। हया। लज्जा।

हिज्र-संज्ञा पुं० दे० "हिज्रान"।

‡ संज्ञा पुं० दे० "हीजड़ा"।

हिज्जल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

हिज्जे-संज्ञा पुं० [अ० हिज्जः] किसी शब्द में आए हुए अक्षरों को मात्रा सहित कहना।

क्रि० प्र०—करना।

हिज्र-संज्ञा पुं० [अ०] जुदाई। वियोग। बिछोह।

हिटकना†-क्रि० स० दे० "हटकना"।

हिडंब-संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० हिडंबी] भैंसा। (डिं०)

हिडिंब-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जिसे भीम ने पांडवों के बनवास के समय मारा था।

हिडिंबा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिडिंब राक्षस की बहिन जो पांडवों के बनवास के समय भीम को देखकर मोहित हो गई थी और जिसके साथ, हिडिंब को मार चुकने पर, भीम ने विवाह किया था। इस विवाह से भीम को घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

हिडोर, हिडोला-संज्ञा पुं० दे० "हिंडोला"।

हित-वि० [सं०] (१) लाभदायक। उपकारी। फायदेमंद। (२) अनुकूल। मुवाफ़िक़। (३) अच्छा व्यवहार करनेवाला। भलाई करने या चाहनेवाला। सद्भाव रखनेवाला। ख़ैरख़्वाह। संज्ञा पुं० (१) लाभ। फ़ायदा। (२) कल्याण। मंगल। भलाई। उपकार। बेहतरी। उ०—राम-विमुख सुत तें हित-हानी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—हितकर। हितकारी।

(३) अनुकूलता। मुवाफ़िक़त। (४) स्वास्थ्य के लिये लाभ। तंदुरुस्ती को फायदा। (५) प्रेम। स्नेह। अनुराग। उ०—हित करि श्याम सों कह पायो?—सूर। (६) मित्रता ख़ैरख़्वाही। (७) भला चाहनेवाला आदमी। मित्र। (८) संबंध। नाता। रिश्ता। (९) संबंधी। नातेदार। रिश्तेदार।

अव्य० (१) (किसी के) लाभ के हेतु। ख़ातिर। प्रसन्नता के लिये। (२) निमित्त। हेतु। कारण। लिये। वास्ते। उ०—हरि हित हरहु चाप गरुवाई।—तुलसी।

हितक-संज्ञा पुं० [सं०] किसी जानवर का बच्चा।

हितकर-वि० [सं०] (१) भलाई करनेवाला। उपकार या कल्याण करनेवाला। (२) लाभ पहुँचानेवाला। उपयोगी। फायदेमंद। (३) शरीर को आराम या आरोग्यता देनेवाला। स्वास्थ्यकर।

हितकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं०] भलाई करनेवाला।

हितकाम-संज्ञा पुं० [सं०] भलाई की कामना या इच्छा। ख़ैरख़्वाही।

वि० भलाई चाहनेवाला।

हितकारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भलाई करनेवाला। उपकार या कल्याण करनेवाला। (२) लाभ पहुँचानेवाला। फायदेमंद। (३) स्वास्थ्यकर।

हितकारी-वि० [सं० हितकारिन्] [स्त्री० हितकारिणी] (१) हित या भलाई करनेवाला। उपकार या कल्याण करनेवाला। (२) लाभ पहुँचानेवाला। फायदेमंद। (३) स्वास्थ्यकर।

हितचिंतक-संज्ञा पुं० [सं०] भला चाहनेवाला। ख़ैरख़्वाह।

हितचिंतन-संज्ञा पुं० [सं०] किसी की भलाई की कामना या इच्छा। उपकार की इच्छा। ख़ैरख़्वाही।

हितता※-संज्ञा स्त्री० [सं० हित + ता] भलाई। उपकार।

हितवचन-संज्ञा पुं० [सं०] भलाई का वचन। कल्याण का उपदेश। बेहतरी की सलाह।

हितवना※†-क्रि० अ० दे० "हिताना"।

हितवादी-वि० [सं० हितवादिन्] [स्त्री० हितवादिनी] हित की बात कहनेवाला। बेहतरी की सलाह देनेवाला।

हिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाली। बरहा। (२) एक विशेष प्रकार की रक्तवाहिनी नस या शिरा।

हिताई-संज्ञा स्त्री० [सं० हित + आई (हिं० प्रत्य०)] नाता। रिश्ता। संबंध।

हिताना※-क्रि० अ० [सं० हित + आना (प्रत्य०)] (१) हितकारी होना। अनुकूल होना। (२) प्रेमयुक्त होना। उ०—बाँध्यो देखि श्याम को परबस गोपी परम हितानी।—सूर। (३) प्यारा लगना। अच्छा लगना। भाना। रुचिकर होना। उ०—ऐसे करम नाहिं प्रभु मेरे जाते तुमहिं हितैहौं।—सूर।

हितावह-वि० [सं०] जिससे भलाई हो। हितकारी। कल्याणकारी।

हिताहित-संज्ञा पुं० [सं०] भलाई बुराई। लाभ हानि। नफ़ा नुक़सान। उपकार और अपकार। जैसे,—जिसे अपने हिताहित का ध्यान नहीं, वह बावला है।

हिती-वि० [सं० हित + ई (हिं० प्रत्य०)] (१) हितू। भलाई चाहनेवाला। ख़ैरख़्वाह। (२) मित्र। दोस्त।

हितु-संज्ञा पुं० दे० "हित"; "हितू"।

हितुआ, हितुवा‡-संज्ञा पुं० दे० "हितू"।

हितू-संज्ञा पुं० [सं० हित] (१) भलाई करने या चाहनेवाला। ख़ैरख़्वाह। दोस्त। उ०—सखि सब कौतुक देखनहारे। जेइ कहावत हितू हमारे।—तुलसी। (२) संबंधी। नातेदार। (३) सुहृद। स्नेही।

हितेच्छा-संज्ञा स्त्री० [सं०] भलाई की चाह। ख़ैरख़्वाही। उपकार का ध्यान।

हितेच्छु-वि० [सं०] भला चाहनेवाला। ख़ैरख़्वाह। कल्याण मनानेवाला।

हितैषिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] भलाई चाहने की वृत्ति। ख़ैरख़्वाही।

हितैषी–वि० [सं० हितैषिन्] [स्त्री० हितैषिणी] भला चाहनेवाला । ख़ैरख़्वाह । कल्याण मनानेवाला ।
संज्ञा पुं० दोस्त । मित्र । सुहृद ।

हितोक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] हित के वचन । भलाई का उपदेश । कल्याणकारी उपदेश । नेक सलाह ।

हितोपदेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भलाई का उपदेश । नेक सलाह । (२) विष्णुशर्म्मा रचित संस्कृत का एक प्रसिद्ध ग्रंथ जिसमें व्यवहार-नीति की शिक्षा को लिए हुए उपदेश और कहानियाँ हैं ।

हितौना†॥–क्रि० अ० दे० "हिताना" ।

हिदायत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पथ प्रदर्शन । रास्ता दिखाना । (२) अधिकारी की शिक्षा । आदेश । निर्देश ।

हिनकाना–क्रि० अ० [अनु० हिन हिन+करना] घोड़े का बोलना । हिनहिनाना ।

हिनती॥†–संज्ञा स्त्री० [सं० हीनता] हीनता । तुच्छता । छोटापन ।

हिनवाना–संज्ञा पुं० दे० "हिंदवाना" ।

हिनहिनाना–क्रि० अ० [अनु० हिन हिन] घोड़े का बोलना । हींसना ।

हिनहिनाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० हिनहिनाना] घोड़े की बोली ।

हिना–संज्ञा स्त्री० [अ०] मेंहदी ।

हिफ़ाज़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) किसी की वस्तु को इस प्रकार रखना कि वह नष्ट होने या बिगड़ने न पावे । रक्षा । जैसे,—इस चीज को हिफ़ाज़त से रखना । (२) बचाव । देख-रेख । खबरदारी । सावधानी । जैसे,—वहाँ लड़कों की हिफ़ाज़त कौन करेगा ?
क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

हिब्बा–संज्ञा पुं० [अ० हिब्बः] (१) दान । (२) दो जौ की एक तौल ।
मुहा०—हिब्बा भर = जरा सा । थोड़ा ।
(३) दान ।
यौ०—हिब्बानामा ।

हिब्बानामा–संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] दानपत्र ।

हिमंचल‡॥–संज्ञा पुं० दे० "हिमाचल" ।

हिमंत‡॥–संज्ञा पुं० दे० "हेमंत" ।

हिम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाला । बर्फ़ । जल का वह ठोस रूप जो सरदी से जमने के कारण होता है । तुषार । (२) जाड़ा । ठंढ । (३) जाड़े की ऋतु । (४) चंद्रमा । (५) चंदन । (६) कपूर । (७) राँगा । (८) मोती । (९) ताजा मक्खन । (१०) कमल । (११) पृथ्वी के विभागों या वर्षों में से एक । (१२) वह दवा जो रातभर ठंढे पानी में भिगोकर सबेरे मलकर छान ली जाय । ठंढा काथ या काढ़ा । खेसाँदा ।
वि० ठंढा । सर्द ।

हिम-उपल–संज्ञा पुं० [सं०] ओला । पत्थर । जमा हुआ मेह । उ०—जिमि हिम-उपल कृषी दलि गरहीं ।—तुलसी ।

हिम ऋतु–संज्ञा स्त्री० [सं०] जाड़े का मौसिम । हेमंत ऋतु ।

हिमक–संज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र ।

हिमकण–संज्ञा पुं० [सं०] बर्फ़ या पाले के महीन टुकड़े ।

हिमकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।

हिमकिरण–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

हिमखंड–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पहाड़ ।

हिमगु–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

हिमगृह–संज्ञा पुं० [सं०] वह घर या कोठरी जो बहुत ठंढी हो और जिसमें ठंढक के सामान इकट्ठे हों । सर्दख़ाना ।

हिमज–वि० [सं०] (१) बर्फ़ में होनेवाला । (२) हिमालय में होनेवाला । (३) हिमालय से उत्पन्न ।
संज्ञा पुं० मैनाक पर्वत ।

हिमजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खिरनी का पेड़ । (२) यवनाल से निकली हुई चीनी । (३) पार्वती ।

हिमतैल–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर देकर बनाया हुआ तेल ।

हिमदीधिति–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

हिमदुग्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खिरनी । क्षीरिणी ।

हिमद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] बकायन का पेड़ ।

हिमपात–संज्ञा पुं० [सं०] पाला पड़ना । बर्फ़ गिरना ।

हिमप्रस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पहाड़ ।

हिमभानु–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

हिममयूख–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

हिमयुक्–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कपूर ।

हिमरश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

हिमरुचि–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

हिमर्तु–संज्ञा स्त्री० [सं०] हिम ऋतु । जाड़े का मौसिम ।

हिमवत्–संज्ञा पुं० "हिमवान्" ।

हिमवत्खंड–संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद पुराण के एक खंड या विभाग का नाम ।

हिमवत्सुत–संज्ञा पुं० [सं०] मैनाक पर्वत ।

हिमवत्सुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती ।

हिमवल–संज्ञा पुं० [सं०] मोती ।

हिमवान–वि० [सं० हिमवत्] [स्त्री० हिमवती] बर्फ़वाला । जिसमें बर्फ़ या पाला हो ।
संज्ञा पुं० (१) हिमालय पहाड़ । (२) कैलाश पर्वत ।

हिमवालुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर ।

हिमशर्करा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चीनी जो यवनाल से निकाली जाती है ।

हिमशैल–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पहाड़ ।

हिमशैलजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती ।

हिमसुत-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

हिमहासक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खजूर ।

हिमांक-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

हिमांशु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।

हिमाकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] बेवकूफ़ी । मूर्खता ।

हिमाचल-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पहाड़ ।

हिमानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बर्फ़ का ढेर । पाले का समूह ।

हिमाद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पहाड़ ।

हिमाब्ज-संज्ञा पुं० [सं०] नील कमल ।

हिमाभ्र-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

हिमामदस्ता-संज्ञा पुं० [फ़ा० हावनदस्तः] खरल और बट्टा ।

हिमायत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) रक्षा । अभिभावकता । संरक्षा । (२) पक्षपात । (३) मंडन । समर्थन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

हिमायती-वि० [फ़ा०] (१) पक्ष करनेवाला । पक्ष लेनेवाला । समर्थन करनेवाला । मंडन करनेवाला । (२) तरफ़दार । सहायता करनेवाला । मददगार ।

हिमाराति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि । आग । (२) सूर्य्य । (३) चित्रक वृक्ष । चीता । (४) आक । मदार ।

हिमाल-संज्ञा पुं० दे० "हिमालय" ।

हिमालय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर बराबर फैला हुआ एक बहुत बड़ा और ऊँचा पहाड़ जो संसार के सब पर्वतों से बड़ा है । इसकी ऊँची चोटियाँ सदा बर्फ से ढकी रहती हैं और सबसे ऊँची चोटी २९००२ फुट ऊँची है । यह संसार की सबसे ऊँची चोटी मानी गई है । उत्तर भारत की सबसे बड़ी नदियाँ इसी पर्वत-राज से निकली हैं । पुराणों में यह पर्वत मेना या मेनका का पति और पार्वती का पिता माना गया है । गंगा भी इसकी बड़ी पुत्री कही गई हैं । (२) सफेद खैर का पेड़ ।

हिमाह्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपूर । (२) जंबू द्वीप के एक वर्ष या खंड का नाम ।

हिमाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

हिमिका-संज्ञा पुं० दे० "हिम" ।

हिमेश-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय ।

हिमोत्तरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दाख । अंगूर ।

हिम्न-संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह ।

हिम्मत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कोई कठिन या कष्टसाध्य कर्म करने की मानसिक दृढ़ता या बल । साहस । जिगरा । (२) बहादुरी । पराक्रम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—हिम्मत हारना = साहस छोड़ना । उत्साह न रहना । हिम्मत पड़ना = साहस होना ।

हिम्मती-वि० [फ़ा०] (१) हिम्मतवाला । साहसी । दृढ़ । (२) पराक्रमी । बहादुर ।

हिय-संज्ञा पुं० [सं० हृदय, प्रा० हिअ] (१) हृदय । मन । उ०—चले भाँट, हिय हरष न थोरा । (२) छाती । वक्षस्थल । विशेष दे० "हिया" ।

मुहा०—हिय हारना = हिम्मत छोड़ना । साहस न रखना । उ० तेहि कानन आवत हिय हारे । कामी-काक-बलाक बेचारे ।—तुलसी ।

हियरा-संज्ञा पुं० [हिं० हिय + रा (स्वार्थ प्रत्य०)] (१) हृदय । मन । उ०—(क) आँसु बरषि हियरे हरषि, सीता सुखद सुभाय । निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि बरनति है बहु भाय ।—केशव । (ख) नैसुक हेरि हर्यो हियरा मनमोहन मेरो अचानक हौ । (२) छाती । वक्षस्थल । उ०—हियरा लगि भामिनि सोइ रही ।—लक्ष्मण० ।

हियाँ‡-अव्य० दे० "यहाँ" ।

हिया-संज्ञा पुं० [सं० हृदय, प्रा० हिअअ] (१) हृदय । मन । उ०—अब धौं बिनु प्रानप्रिया रहिहैं कहि कौन हितू अवलंब हिये ।—केशव । (२) छाती । वक्षस्थल । उ०—(क) बनमाल हिये अरु विप्रलात ।—केशव । (ख) हिया थार, कुच कंचन लाडू ।—जायसी ।

मुहा०—हिये का अंधा = अज्ञान । मूर्ख । **हिये की फूटना** = ज्ञान न रहना । अज्ञान रहना । बुद्धि न होना । **हिया शीतल या ठंढा होना** = मन में सुख शांति होना । मन तृप्त और आनंदित होना । **हिया जलना** = अत्यंत क्रोध में होना । उ०—क्रूर कुठार निहारि तजै फल ताकि यहै जो हियो जरई ।—केशव । **हिये लगना** = गले से लगना । छाती से लगना । आलिंगन करना । उ०—क्यों हठि मान गहै सजनी उठि बेगि गोपाल हिये किन लागै ?—शंकर । **हिये में लोन सा लगना** = बहुत बुरा लगना । अत्यंत अप्रिय होना । उ०—सुनत रूखि भइ रानी, हिये लोन अस लाग ।—जायसी । **हिये पर पत्थर धरना** = दे० "छाती पर पत्थर धरना" । **हिया फटना** = कलेजा फटना । अत्यंत शोक या दुःख होना । **हिया भर आना** = कलेजा भर आना । शोक या दुःख का हृदय में अत्यंत वेग होना । **हिया भर लेना** = दुःख से लंबी साँस लेना । विशेष—मुहा० दे० "जी" और "कलेजा" ।

हियाव-संज्ञा पुं० [हिं० हिय + आव (भाव प्रत्य०)] कोई कठिन काम करने की मानसिक दृढ़ता । साहस । हिम्मत । जीवट । उ०—भौंर जो मनसा मानसर लीन्ह कँवलरस जाय । घुन जो हियाव न कै सका झूर काठ तस खाय ।—जायसी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—हियाव खुलना = (१) मानसिक दृढ़ता आना। साहस हो जाना। हिम्मत बँधना। (२) संकोच, झिझक या भय न रहना। धड़क खुलना। हियाव पड़ना = हिम्मत होना। साहस होना।

हिरंगु—संज्ञा पुं० [सं०] राहु ग्रह।

हिर—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े आदि की पट्टी।

हिरकना‡—क्रि० अ० [सं० हिरुक् = समीप] (१) पास होना। निकट जाना। (२) इतने समीप होना कि स्पर्श हो। सटना। भिड़ना। जैसे,—हिरक कर बैठना।

संयो० क्रि०—जाना।

हिरकाना‡—क्रि० स० [हिं० हिरकना] (१) पास करना। नज़दीक ले जाना। (२) इतने समीप ले जाना कि स्पर्श हो जाय। सटाना। भिड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।

हिरगुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हीरा + गुन = सूत] एक प्रकार की बढ़िया कपास जो सिंध में होती है।

हिरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) वीर्य्य। (३) कौड़ी।

‡संज्ञा पुं० दे० "हिरन", "हरिण"।

हिरण्मय—वि० [सं०] सुनहरा। सोने का।

संज्ञा पुं० (१) हिरण्यगर्भ। ब्रह्मा। (२) एक ऋषि। (३) जंबू द्वीप के नौ खंडों या वर्षों में से एक जो श्वेत और शृंगवान् पर्वतों के बीच कहा गया है। (४) उक्त वर्ष का शासक, अग्नीध्र का पुत्र। (भागवत)

हिरण्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) वीर्य्य। शुक्र। (३) कौड़ी। (४) एक मान या तौल। (५) धतूरा। (६) हिरण्मय वर्ष या खंड। (७) एक दैत्य। (८) नित्य। तत्त्व। (९) ज्ञान। (१०) ज्योति। तेज। प्रकाश। (११) अमृत।

हिरण्य-कशिपु—वि० [सं०] सोने के तकिए या गद्दीवाला।

संज्ञा पुं० एक प्रसिद्ध विष्णु-विरोधी दैत्य-राजा का नाम जो प्रह्लाद का पिता था।

विशेष—यह कश्यप और दिति का पुत्र था और भगवान् का बड़ा भारी विरोधी था। इसे ब्रह्मा से यह वर मिला था कि मनुष्य, देवता या और किसी प्राणी से तुम्हारा वध नहीं हो सकता। इससे यह अत्यंत प्रबल और अजेय हो गया। जब इसने अपने पुत्र प्रह्लाद को भगवान् की भक्ति करने के कारण बहुत सताया और एक दिन उसे खंभे से बाँध और तलवार खींचकर बार बार कहने लगा कि 'बता! अब तेरा भगवान् कहाँ है? आकर तुझे बचावे।" तब भगवान् नृसिंह (आधा सिंह आधा मनुष्य) का रूप धारण करके खंभा फाड़कर प्रकट हुए और उसे फाड़ डाला। भगवान् का चौथा अवतार नृसिंह इसी दैत्य को मारने के लिये हुआ था।

हिरण्य-कश्यप—संज्ञा पुं० दे० "हिरण्य-कशिपु"।

हिरण्य-कामधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान देने के निमित्त बनी हुई सोने की कामधेनु गाय। (ऐसी गाय का दान १६ महादानों में है।)

हिरण्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णकार। सुनार।

हिरण्यकेश—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

हिरण्यगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह ज्योतिर्मय अंड जिससे ब्रह्मा और सारि सृष्टि की उत्पत्ति हुई। (२) ब्रह्मा।

विशेष—ब्रह्मा ने जल या समुद्र की सृष्टि करके उसमें अपना बीज डाला, जिससे एक अत्यंत देदीप्यमान ज्योतिर्मय या स्वर्णमय अंड की उत्पत्ति हुई। यह अंड सूर्य्य से भी अधिक प्रकाशवान् था। इसी अंड से सृष्टि-निर्माता ब्रह्मा प्रकट हुए जो ब्रह्म के व्यक्त या सगुण रूप हुए। वेदांत की व्याख्या के अनुसार ब्रह्म की शक्ति या प्रकृति पहले रजोगुण की प्रवृत्ति से दो रूपों में विभक्त होती है—सत्वप्रधान और तमःप्रधान। सत्वप्रधान के भी दो रूप हो जाते हैं—शुद्ध सत्व (जिसमें सत्वगुण पूर्ण होता है) और अशुद्ध सत्व (जिसमें सत्व अंशतः रहता है)। प्रकृति के इन्हीं भेदों में प्रतिबिंबित होने के कारण ब्रह्म कभी ईश्वर या हिरण्यगर्भ और कभी जीव कहलाता है। जब शक्ति या प्रकृति के तीन गुणों में से शुद्ध सत्व का उत्कर्ष होता है तब उसे माया कहते हैं; और उस माया में प्रतिबिंबित होनेवाले ब्रह्म को सगुण या व्यक्त ईश्वर, हिरण्यगर्भ आदि कहते हैं। अशुद्ध सत्व की प्रधानता को अविद्या कहते हैं और उसमें प्रतिबिंबित होनेवाले ब्रह्म को जीव या प्राज्ञ कहते हैं।

(३) सूक्ष्म शरीर से युक्त-आत्मा। (४) एक मंत्रकार ऋषि। (५) विष्णु।

हिरण्यनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) मैनाक पर्वत। (३) वह मकान जिसमें तीन बड़ी शालाएँ (कमरे) पूर्व, पश्चिम और उत्तर की ओर हों और दक्षिण की ओर कोई शाला न हो। (बृहत्संहिता)

हिरण्यपुर—संज्ञा पुं० [सं०] असुरों का एक नगर जो समुद्र के पार वायु-मंडल में स्थित कहा गया है। (हरिवंश)

हिरण्यपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार पौधा।

हिरण्यबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम। (२) सोन नद। (३) एक नाग का नाम।

हिरण्यबिंदु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। आग। (२) एक पर्वत। (३) एक तीर्थ।

हिरण्यरेता—संज्ञा पुं० [सं० हिरण्यरेतस्] (१) अग्नि। आग। (२) सूर्य्य। (३) शिव। (४) बारह आदित्यों में से एक। (५) चित्रक वृक्ष। चीता।

हिरण्यरोम-संज्ञा पुं० [सं० हिरण्यरोमन्] (१) लोकपाल जो मरीचि के पुत्र हैं। (२) भीष्मक का नाम (महाभारत)

हिरण्यस्व-संज्ञा पुं० [सं०] किसी देवता या मंदिर पर चढ़ा हुआ धन। देवस्व। देवोत्तर संपत्ति।

हिरण्यवान-वि० [सं० हिरण्यवत्] [स्त्री० हिरण्यवती] सोनेवाला। जिसमें या जिसके पास सोना हो।

संज्ञा पुं० अग्नि।

हिरण्यबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) सोन नद।

हिरण्यवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) सूर्य्य।

हिरण्यसर-संज्ञा पुं० [सं० हिरण्यसरस्] एक तीर्थ (महाभारत)।

हिरण्याक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध दैत्य जो हिरण्यकशिपु का भाई था। यह कश्यप और दिति से उत्पन्न हुआ था। इसने पृथ्वी को लेकर पाताल में रख छोड़ा था। ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु ने वाराह अवतार धारण करके इसे मारा और पृथ्वी का उद्धार किया। (२) वसुदेव के छोटे भाई श्यामक के एक पुत्र का नाम।

हिरण्याश्व-संज्ञा पुं० [सं०] दान देने के लिये बनाई सोने के घोड़े की मूर्त्ति। इसका दान १६ महादानों में है।

हिरदय‡*-संज्ञा पुं० दे० "हृदय"।

हिरदावल-संज्ञा पुं० [सं० हृदावर्त] घोड़े की छाती की भौंरी (घूमे हुए रोएँ) जो बड़ा भारी दोष मानी जाती है।

हिरन-संज्ञा पुं० [सं० हरिण] [स्त्री० हिरनी] हरिन। मृग। वि० दे० "हरिन"।

मुहा०—हिरन हो जाना = भाग जाना। बहुत तेजी से भागना।

हिरनखुरी-संज्ञा स्त्री० [सं० हिरन + खुर] एक प्रकार की लता या बेल जो बरसात में उगती है और जिसके पत्ते हिरन के खुर से मिलते जुलते होते हैं।

हिरनाकुस-संज्ञा पुं० दे० "हिरण्यकशिपु"। उ०—हिरनाकुस और कंस को गयो दुहुन को राज।—गिरधर।

हिरनौटा-संज्ञा पुं० [सं० हरिणपोत] हिरन का बच्चा। मृग-शावक।

हिरफ़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) व्यवसाय। पेशा। व्यापार। (२) हाथ की कारीगरी। दस्तकारी। (३) हुनर। कला-कौशल। (४) चतुराई। चालाकी। (५) चालबाज़ी। धूर्त्तता।

हिरफ़तबाज़-वि० [अ० + फा०] चालबाज़। धूर्त्त।

हिरमज़ी-संज्ञा स्त्री० [अ०] लाल रंग की एक प्रकार की मिट्टी, जिससे कपड़े, दीवार आदि रँगते हैं।

हिरमिज़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "हिरमज़ी"।

हिरवा-‡संज्ञा पुं० दे० "हीरा"।

हिरवा चाय-संज्ञा स्त्री० [हिं० हीरा + चाय] एक प्रकार की सुगंधित घास जिसकी जड़ में से नीबू की सी सुगंध आती है और जिससे सुगंधित तेल बनता है।

हिरस‡-संज्ञा स्त्री० दे० "हिर्स"।

हिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्तनाड़ी या शिरा।

हिराती-वि० [देश० हिरात] हिरात नामक स्थान जो अफ़गानिस्तान के उत्तर में है।

संज्ञा पुं० एक जाति का घोड़ा जिसका डील डौल औसत दर्जे का और हाथ पैर दोहरे होते हैं। यह गरमी में नहीं थकता।

हिराना‡-क्रि० अ० [सं० हरण] (१) खो जाना। गायब होना। गुम होना। (२) न रह जाना। अभाव होना। उ०—गुन ना हिरानो गुनगाहक हिरानो है।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) मिटना। दूर होना। उ०—लखि गोपिन को प्रेम भुलायो। ऊधो को सब ज्ञान हिरायो।—सूर। (४) आश्चर्य से अपने को भूल जाना। हक्का-बक्का होना। दंग रह जाना। अत्यंत चकित होना। उ०—शोभा-कोस धनन न मेरो घनश्याम नित नई नई रुचि तन हेरत हिराइए।—केशव। (५) अपने को भूल जाना। आपा खोना। उ०—जौ लहि आप हिराइ न कोई। तौ लहि हेरत पाव न सोई।—जायसी।

क्रि० स० भूल जाना। ध्यान में न रहना। उ०—बिकल भई तन दसा हिरानी।—सूर।

क्रि० स० [हिं० हिलाना = प्रवेश करना] खेतों में भेड़ बकरी गाय आदि चौपाए रखना जिसमें उनकी लेंडी या गोबर से खेत में खाद हो जाय।

हिरावल-संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हिरास-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) भय। त्रास। (२) नैराश्य। नाउम्मेदी। (३) रंज। खेद। खिन्नता।

वि० [फा० हिरासाँ] (१) निराश। नाउम्मेद। हताश। (२) खिन्न। उदासीन।

हिरासत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पहरा। चौकी। ऐसी स्थिति जिसमें कोई मनुष्य इधर उधर भाग न सके। (२) क़ैद। नजरबंदी।

मुहा०—हिरासत में करना = क़ैद करना। पहरे के अंदर करना। सिपाहियों के पहरे में देना।

हिरासाँ-वि० [फा०] (१) निराश। नाउम्मेद। (२) हिम्मत हारा हुआ। पस्त। (३) उदासीन। खिन्न।

हिरौंजी‡-संज्ञा स्त्री० दे० "हिरमज़ी"।

हिरौल*-संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हिर्स-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लालच। तृष्णा। लोभ। (२) इच्छा का वेग। कामना की उमंग।

मुहा०—हिर्स छूटना = मन में लालच होना। तृष्णा होना। हिर्स दिलाना = (१) प्रबल इच्छा उत्पन्न करना। लालसा जगाना। कामना उत्तेजित करना। (२) लालच दिलाना। हिर्स मिटना =

(१) इच्छा का वेग शांत होना। (२) काम का वेग शांत होना। हिर्स मिटाना = (१) इच्छा पूरी करना। लालसा पूरी करना। (२) काम का वेग शांत करना।

(३) किसी की देखादेखी कुछ काम करने की इच्छा। टीस। स्पर्द्धा।

यौ०—हिर्साहिर्सी।

हिलंदा-संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० हिलंदा] मोटा ताज़ा आदमी। तगड़ा आदमी।

हिलकना†-क्रि० अ० [अनु० या सं० हिक्का] (१) हिचकियाँ लेना। हिचकना। (२) सिसकना।

क्रि० स० [देश०] सुकोड़ना। (मुँह) ऐंठना।

क्रि० अ० दे० "हिरकना"।

हिलकी†*-संज्ञा स्त्री० [अनु या सं० हिक्का] (१) हिचकी। (२) भीतर ही भीतर रोने से रह रहकर वायु के निकलने का झोंका या आघात। सिसकने का शब्द। सिसक। उ०—(क) उर लाय लई अकुलाय तऊ अधिरातिक लौं हिलकीन रहीं।—केशव। (ख) कमल-नयन हरि हिलकि न रोवै बंधन छोरि जसोवै।—सूर।

क्रि० प्र०—लेना।—भरना।

हिलकार, हिलकोरा-संज्ञा पुं० [सं० हिल्लोल] हिलोर। लहर। तरंग।

मुहा०—हिलकोरे लेना = लहराना। तरंगित होना।

हिलकोरना-क्रि० स० [हिं० हिलकार + ना (प्रत्य०)] पानी को हिलाकर तरंगें उठाना। जल को क्षुब्ध करना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

हिलग-संज्ञा स्त्री० [हिं० हिलगना] (१) लगाव। संबंध। (२) लगन। प्रेम। (३) परिचय। हेलमेल। हिलने मिलने या परचने का भाव।

हिलगन-संज्ञा स्त्री० [हिं० हिलगना] (१) परचने का भाव। (२) टेव। आदत। बान।

हिलगना-क्रि० अ० [सं० अधिलग्न, प्रा० अहिलग्ग] (१) अटकना। टँगना। किसी वस्तु से लगकर ठहरना। (२) फँसना। बझना। (३) हिलमिल जाना। (४) परचना।

क्रि० अ० [सं० हिरुक् = पास] पास होना। इतने समीप होना कि स्पर्श हो। सटना। भिड़ना। वि० दे० "हिरकना"।

हिलगाना-क्रि० स० [हिं० हिलगना] (१) अटकाना। टाँगना। किसी वस्तु से लगाकर ठहराना। (२) फँसाना। बझाना। (३) मेल जोल में करना। घनिष्ठता स्थापित करना। (४) परचाना। परिचित और अनुरक्त करना। जैसे,—बच्चे को हिलगाना।

क्रि० स० [सं० हिरुक् = पास] सटाना। भिड़ाना। वि० दे० "हिरकाना"।

हिलना--क्रि० अ० [सं० हल्लन = इधर उधर लुढ़कना] (१) डोलना। चलायमान होना। स्थिर न रहना। हरकत करना। जैसे,—पेड़ की पत्तियाँ हिलना। घड़ी का लंगर हिलना।

संयो० क्रि०—जाना।—उठना।

मुहा०—हिलना डोलना = (१) चलायमान होना। (२) चलना। फिरना। घूमना। टहलना। जैसे,—शाम को कुछ हिला डोला करो। (३) श्रम करना। काम धंधा करना। (४) प्रयत्न करना। उद्योग करना। जैसे,—बिना हिले डोले कोई काम नहीं हो सकता।

(२) अपने स्थान से टलना। सरकना। चलना। जैसे,—जो लड़का अपनी जगह से हिलेगा, वह मार खायगा। (३) काँपना। कंपित होना। थरथराना। जैसे,—लिखने में हाथ हिलना, जाड़े से बदन हिलना। (४) ख़ूब जमकर बैठा न रहना। अपने स्थान पर ऐसा कसा, जमा, या लगा न रहना कि छूने से इधर उधर न करे। ढीला होना। जैसे,—दाँत हिलना। (५) झूमना। लहराना। नीचे ऊपर या इधर उधर डोलना। जैसे,—(क) बहुत से लड़के हिल हिलकर पढ़ते हैं। (ख) बुड्ढों का सिर हिलना। (६) घुसना। पैठना। प्रवेश करना। (विशेषतः पानी में)

क्रि० अ० [हिं० हिलगना] (१) परिचित और अनुरक्त होना। परचना। मेल जोल में होना। घनिष्ठता का अनुभव करना। जैसे,—(क) यह बच्चा तुमसे बहुत हिल गया है। (ख) बिल्ली उससे ख़ूब हिल गई है।

यौ०—हिलना मिलना = (१) मेल जोल के साथ होना। घनिष्ठ संबंध रखना। (२) मेल जोल से होना। एकता साथ रखना। (३) एक जी होना। परस्पर गहरे मित्र होना। जैसे,—दोनों ख़ूब हिल मिल गए हैं।

मुहा०—हिल मिलकर = (१) मेल जोल के साथ। घनिष्ठता और मैत्री के साथ। एक जी होकर। सुलह के साथ। (२) सम्मिलित होकर इकट्ठा होकर। एकत्र होकर। उ०—हिल मिल फाग परस्पर खेलहिं, सोभा बरनि न जाई।—गीत। हिला मिला या हिला जुला = (१) मेल जोल में आया हुआ। घनिष्ठ संबंध रखता हुआ। सुहृद भाव रखता हुआ। (२) परचा हुआ। परिचित और अनुरक्त। जैसे,—यह बच्चा तुमसे ख़ूब हिला जुला है।

क्रि० अ० [देश०] प्रवेश करना। घुसना। (विशेषतः पानी में)

हिलसा-संज्ञा स्त्री० [सं० इलिश] एक प्रकार की मछली जो चिपटी और बहुत काँटेदार होती है।

हिलाना-क्रि० स० [हिं० हिलना] (१) डुलाना। चलायमान करना। हरकत देना। जैसे,—बैठे बैठे पैर हिलाना। (ख) छड़ी हिलाना। (२) स्थान से उठाना। टालना।

हटाना। जैसे,—(क) जब हम बैठ गए, तब कौन हिला सकता है। (ख) इस भारी पत्थर को जगह से हिलाना मुश्किल है। (३) कँपाना। कंपित करना। (४) नीचे ऊपर या इधर उधर डुलाना। झुलाना। जैसे,—मुगदर हिलाना, सिर हिलाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

क्रि० स० [हिं० हिलगाना] (१) परिचित और अनुरक्त करना। परचाना। घनिष्ठता स्थापित करना। जैसे,—छोटे बच्चे को हिलाना, जानवरों को हिलाना।

क्रि० स० [देश०] प्रवेश कराना। घुसाना। पैठाना। (विशेषतः पानी में)

हिलोर, हिलोरा-संज्ञा पुं० [सं० हिल्लोल] हवा के झोंके आदि से जल का उठना और गिरना। तरंग। लहर। मौज। उ०—सोहै सितासित को मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हिलोरे।—तुलसी।

क्रि० प्र०—उठना।

मुहा०—हिलोरे लेना = तरंगित होना। लहराना।

हिलोरना-क्रि० स० [हिं० हिलोर + ना (प्रत्य०)] (१) जल को क्षुब्ध और तरंगित करना। पानी को इस प्रकार हिलाना कि लहरें उठें। (२) लहराना। इधर उधर हिलाना डुलाना।

हिलोल-संज्ञा पुं० दे० "हिल्लोल"। "हिलोर"।

हिल्लोल-संज्ञा पुं० दे० "हिलोर"।

हिल्लोल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिलोरा। तरंग। लहर। (२) आनंद की तरंग। मौज। (३) एक रतिबंध या आसन। (कामशास्त्र) (४) एक राग का नाम। हिंडोल।

हिल्लोलन-संज्ञा पु० [सं०] [वि० हिल्लोलित] (१) तरंग उठना। लहराना। (२) दोलन। झूलना।

हिवँ-संज्ञा पुं० [सं० हिम] बर्फ। पाला।

हिवाँर-संज्ञा पुं० [सं० हिम + आलि] बर्फ। पाला। तुषार।

मुहा०—हिवाँर होना = बहुत ठंढा होना। बहुत सर्द होना।

हिस-संज्ञा पुं० [अ०] (१) अनुभव। ज्ञान। (२) संज्ञा। होश। चेतना।

मुहा०—बेहिस व हरकत = निश्चेष्ट और निःसंज्ञ। बेहोश और सुन।

हिसका-संज्ञा पुं० [सं० ईर्ष्या, हिं० हीस] (१) ईर्ष्या। डाह। (२) स्पर्द्धा। देखादेखी किसी बात की इच्छा। (३) किसी की बराबरी करने की हवस।

यौ०—हिसका हिसकी = परस्पर स्पर्द्धा। एक दूसरे के बराबर होने की धुन।

हिसाब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) गिनती। गणित। लेखा। कोई संख्या, वस्तु परिमाण आदि में कितनी ठहरेगी, इसके निर्णय की प्रक्रिया। जैसे,—(क) अपने रुपये का हिसाब करो कितना होगा। (ख) यह हिसाब लगाओ कि वह चार घंटे में कितनी दूर जायगा।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

यौ०—हिसाब किताब, हिसाब बही, हिसाबचोर।

(२) लेन देन या आमदनी, खर्च आदि का लिखा हुआ ब्योरा। लेखा। उचापत।

मुहा०—**हिसाब चलना** = (१) लेन देन का लेखा रहना। (२) उधार लिखा जाना। **हिसाब चुकाना या चुकता करना** = जो कुछ जिम्मे निकलता हो उसे दे देना। देना साफ़ करना। **हिसाब जाँचना** = लेखा देखना कि ठीक है या नहीं। **हिसाब जोड़ना** = अलग अलग कई रकमों की मीज़ान लगाना। कई अलग अलग अंकों का योगफल निकालना। **हिसाब करना** = जो जिम्मे आता हो उसे दे देना। तनखाह, दाम या मजदूरी के मद्दे जो कुछ रुपया निकलता हो, उसे चुकाना। जैसे—हमारा हिसाब कर दीजिए, अब हम नौकरी न करेंगे। **हिसाब देना** = लेखा समझाना। जमा खर्च का ब्योरा बताना। **हिसाब पर चढ़ना** = बही में लिखा जाना। लेखे में टँकना। **हिसाब बराबर करना** = (१) कुछ दे या लेकर लेना और देना बराबर करना। लेन देन का हिसाब साफ करना। (२) अपना काम पूरा करना। **हिसाब बेबाक करना** = दे० "हिसाब चुकाना"। **हिसाब बंद करना** = लेखा आगे न चलाना। लेनदेन बंद करना। **हिसाब में जमा होना** = (१) किसी से पाई हुई रकम का लिखा जाना। (२) लेन देन के लेखे में पावने से ऊपर आई हुई रकम का अलग लिखा जाना। **हिसाब में लगाना** = उधार या लेन देन में शामिल करना। **हिसाब लेना** = यह पूछना कि कितनी रकम कहाँ खर्च हुई। **(किसी से) हिसाब समझना** = (किसी से) आमदनी और खर्च का ब्योरा पूछना। **हिसाब समझाना** = आमदनी खर्च आदि का ब्योरा बताना। **बेहिसाब** = (१) बहुत अधिक। अत्यंत। इतना कि गिनती या नाप आदि न हो सके। **हिसाब रखना** = आमदनी, खर्च आदि का ब्योरा लिखकर रखना। आय व्यय आदि का लेखबद्ध विवरण रखना। **हिसाब लड़ना या लगना** = मेल मिलना। तबीयत मिलना। **हिसाब बैठना** = (१) ठीक ठीक जैसा चाहिए वैसा प्रबंध हो जाना। इच्छानुसार सब बातों की व्यवस्था होना। (२) सुबीता होना। सुपास होना। आवश्यकता पूरी होना। जैसे,—इतने से हमारा हिसाब नहीं बैठेगा। **हिसाब से** = (१) अंदाज से। संयम से। परिमित। जैसे,—हिसाब से खर्च किया करो। (२) लेखे के अनुसार। लिखे हुए ब्योरे के मुताबिक। जैसे,—हिसाब से तुम्हारा जितना निकले उतना लो। **बेढ़ा या टेढ़ा हिसाब** = (१) कठिन कार्य्य। मुश्किल काम। (२) अव्यवस्था। गड़बड़ व्यवहार या रीति। **पक्का हिसाब** = ठीक ठीक हिसाब। पूरा हिसाब। सूक्ष्म विवरण। **कच्चा हिसाब** = स्थूल विवरण। मोटा ब्योरा। ऐसा ब्योरा जो

अधूरा हो। चलता हिसाब = लेन देन का [illegible] जारी हो। लेन देन या उधार बिक्री का जारी सिलसिला।

(२) गणित विद्या। वह विद्या जिसके द्वारा संख्या, मान आदि निर्धारित हों। जैसे,—यह लड़का हिसाब में कमज़ोर है। (३) गणित विद्या का प्रश्न। गणित [illegible] समस्या। जैसे,—चार में से मैंने दो हिसाब किए हैं।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

(४) प्रत्येक वस्तु या निर्दिष्ट संख्या या परिमाण का मूल्य जिसके अनुसार कोई वस्तु बेची जाय। भाव। दर। रेट। जैसे,—नारंगियाँ किस हिसाब से लाए हो?

मुहा०—हिसाब से = (१) परिमाण, क्रम या गति के अनुसार। अनुसार। मुताबिक। जैसे,—जिस हिसाब से दर्द बढ़ेगा उसी हिसाब से बुखार भी। (२) विचार से। ध्यान से। अपेक्षा से। जैसे,—कद के हिसाब से हाथी की आँखें छोटी होती हैं।

(५) नियम। क़ायदा। व्यवस्था। बँधी हुई रीति या ढंग। जैसे,—तुम्हारे जाने आने का कोई हिसाब भी है, या यों ही जब चाहते हो चल देते हो? (६) निर्णय। निश्चय। धारणा। समझ। मत। विचार। राय। जैसे,—(क) हमारे हिसाब से जैसे तुम तैसे वे। (ख) हमारे हिसाब से तो दोनों बराबर हैं।

मुहा०—अपने हिसाब या अपने हिसाब से = अपनी समझ के अनुसार। अपनी जान में। अपने विचार में। लेखे में। जैसे,—अपने हिसाब तो हम अच्छा ही करते हैं, तुम जैसा समझो।

(७) हाल। दशा। अवस्था। स्थिति। जैसे,—उनका हिसाब न पूछो, खूब मनमानी कर रहे हैं। (८) चाल। व्यवहार। रहन। जैसे,—उनका वही हिसाब है, कुछ सुधर नहीं रहे हैं। (९) ढंग रीति। तरीक़ा। जैसे,—(क) तुम्हें ऐसे हिसाब से चलना चाहिए कि कोई बुरा न कह सके। (ख) उनका हिसाब ही कुछ और है। (१०) किफ़ायत। मितव्यय। जैसे,—वह बड़े हिसाब से रहता है, तब रुपया बचाता है। (११) हृदय या प्रकृति की परस्पर अनुकूलता। मेल।

मुहा०—हिसाब बैठना = पटरी बैठना। मेल मिलना। प्रकृति की समानता होना।

हिसाब किताब—संज्ञा पुं० [अ०] आमदनी, खर्च आदि का ब्यौरा जो लिखा हो। वस्तु या धन की संख्या, आय, व्यय आदि का लेखबद्ध विवरण। लेखा। जैसे,—कहीं कुछ हिसाब भी रखते हो कि यों ही मनमाना खर्च करते हो।

मुहा०—हिसाब किताब देखना = लेखा जाँचना।

(२) ढंग। चाल। रीति। क़ायदा। जैसे,—उनका हिसाब किताब ही कुछ और है।

हिसाब चोर—संज्ञा पुं० [अ० हिसाब + हिं० चोर] वह जो व्यवहार या लेखे में कुछ रक़म दबा लेता हो।

हिसाब बही—संज्ञा स्त्री० [अ० हिसाब + हिं० बही] वह पुस्तक जिसमें आय व्यय या लेन देन आदि का ब्यौरा लिखा जाता हो।

हिसार—संज्ञा पुं० [फा०] फारसी संगीत की २४ शोभाओं में से एक।

हिसिषा*†—संज्ञा स्त्री० [सं० ईर्ष्या] (१) दूसरे की देखादेखी कुछ करने की प्रबल इच्छा। स्पर्द्धा। बराबरी करने का भाव। होड़। (२) समता। तुल्य भावना। पटतर। उ०—जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ विवेक अभिमान। परहिं कलपु भरि नरक महुँ, जीव कि ईस समान।—तुलसी।

हिस्सा—संज्ञा पुं० [अ० हिस्सः] (१) उतनी वस्तु जितनी कुछ अधिक वस्तु में से अलग की जाय। भाग। अंश। जैसे,—१००) के १५–२५ के चार हिस्से करो। (ख) जमीन चार हिस्सों में बँट गई।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—लगाना।

(२) टुकड़ा। खंड। जैसे,—इस गन्ने के चार हिस्से करो। (३) उतना अंश जितना प्रत्येक को विभाग करने पर मिले। अधिक में से उतनी वस्तु जितनी बाँटे जाने पर किसी को प्राप्त हो। बखरा। जैसे,—तुम अपने हिस्से में से कुछ जमीन इसको दे दो। (४) बाँटने की क्रिया या भाव। विभाग। तक़सीम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—लगाना।

(५) किसी विस्तृत वस्तु (जैसे,—खेत, घर आदि) का विशेष अंश जो और अंशों से किसी प्रकार की सीमा द्वारा अलग हो। विभाग। खंड। जैसे,—(क) इस मकान के पिछले हिस्से में किराएदार हैं। (ख) कोठी का अच्छा हिस्सा उसके अधिकार में है। (६) किसी बड़ी या विस्तृत वस्तु के अंतर्गत कुछ वस्तु या अंश। अधिक के भीतर का कोई खंड या टुकड़ा। जैसे,—यह पेड़ दुनिया के हर हिस्से में पाया जाता है। (७) अंग। अवयव। अंतर्भूत वस्तु। जैसे,—बदन के किस हिस्से में दर्द है? (८) किसी वस्तु के कुछ अंश के भोग का अधिकार। किसी व्यवसाय के हानि-लाभ में योग। साझा। शिरकत। जैसे,—कंपनी में हिस्सा, दूकान में हिस्सा, मकान में हिस्सा।

हिस्सेदार—संज्ञा पुं० [अ० हिस्सः + फा० दार (प्रत्य०)] (१) किसी वस्तु के किसी भाग पर अधिकार रखनेवाला। वह जिसे किसी वस्तु कुछ अंश के भोग का अधिकार हो। वह जिसे कुछ हिस्सा मिला हो। जैसे,—इस मकान के चार हिस्सेदार हैं। (२) किसी व्यवसाय के हानि लाभ में औरों के साथ सम्मिलित रहनेवाला। रोजगार में शरीक। साझेदार।

जैसे,—कंपनी के हिस्सेदार, बंक के हिस्सेदार। (३) भागी। शरीक।

हिहिनाना-क्रि० अ० [अनु० हिं हिं] घोड़ों का बोलना। हिनहिनाना। हींसना। उ०—देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं।—तुलसी।

हींग-संज्ञा स्त्री० [सं० हिंगु] (१) एक छोटा पौधा जो अफगानिस्तान और फ़ारस में आप से आप और बहुत होता है। (२) इस पौधे का जमाया हुआ दूध या गोंद जिसमें बड़ी तीक्ष्ण गंध होती है और जिसका व्यवहार दवा और नित्य के मसाले में बघार के लिये होता है।

विशेष—हींग का पौधा दो ढाई हाथ ऊँचा होता है और इसकी पत्तियों का समूह एक गोल राशि के रूप में होता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। कुछ के पौधे तो साल ही दो साल रहते हैं और कुछ की पेड़ी बहुत दिनों तक रहती है, जिसमें से समय समय पर नई नई टहनियाँ और पत्तियाँ निकला करती हैं। पिछले प्रकार के पौधों की हींग घटिया होती है और 'हींगड़ा' कहलाती है। हींग के पौधे अफ़गानिस्तान, फ़ारस के पूर्वी हिस्से (खुरासान, यज़्द) तथा तुर्किस्तान के दक्षिणी भाग में बहुतायत से होते हैं। पर भारत में जो हींग आती है, वह कंधारी हींग (अफ़गानिस्तान की) है। हींग का व्यवहार बघार के अतिरिक्त औषध में भी होता है। यह शूलनाशक, वायुनाशक, कफ निकालनेवाली, कुछ रेचक और उत्तेजक होती है। पेट के दर्द, बायगोला और हिस्टीरिया (मूर्च्छा रोग) में यह बहुत उपकारी होती है। आयुर्वेद में इसके योग से कई पाचक चूर्ण और गोलियाँ बनती हैं। हींग में व्यापारी अनेक प्रकार की मिलावट करते हैं। शुद्ध ख़ालिस हींग 'तलाव हींग' कहलाती है।

हींगड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० हींग + ड़ा (प्रत्य०)] एक प्रकार की घटिया हींग।

हींछा‡-संज्ञा स्त्री० दे० "इच्छा"।

हींठी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जोंक।

हींस—संज्ञा स्त्री० [सं० हेष] घोड़े या गधे के बोलने का शब्द। रेंक या हिनहिनाहट।

हींसना-क्रि० अ० [हिं० हींस + ना] (१) घोड़े का बोलना। हिनहिनाना। उ०—हींसत हय, बहु बारन गाजैं। जहँ तहँ दीरघ दुंदुभि बाजैं।—केशव। (२) गदहे का बोलना। रेंकना।

हींसा‡-संज्ञा पुं० दे० "हिस्सा"।

हींहीं-संज्ञा स्त्री० [अनु०] हँसने का शब्द।

ही-अव्य० [सं० हि (निश्चयार्थक)] एक अव्यय जिसका व्यवहार ज़ोर देने के लिये या निश्चय, अनन्यता, अल्पता, परिमिति तथा स्वीकृति आदि सूचित करने के लिये होता है। जैसे,—(क) आज हम रुपया लेही लेंगे। (ख) यह गोपाल ही का काम है। (ग) मेरे पास दस ही रुपये हैं। (घ) अभी वह प्रयाग ही तक पहुँचा होगा। (च) अच्छा भाई हम न जायँगे, गोपाल ही जायँ। इसके अतिरिक्त और प्रकार के भी प्रयोग इस शब्द के होते हैं। कभी इस शब्द से यह ध्वनि निकलती है कि "औरों की बात जाने दीजिए" जैसे,—तुम्हीं बताओ, इसमें हमारा क्या दोष?

संज्ञा पुं० दे० "हिय", "हृदय"।

क्रि० अ० व्रजभाषा के 'होनो' (= होना) क्रिया के भूतकाल 'हो' (= था) का स्त्री० रूप। थी। उ०—एक दिवस मेरे गृह आए, मैं ही मथति दही।—सूर।

हीअ-संज्ञा पुं० दे० "हिअ"।

हीक-संज्ञा स्त्री० [सं० हिक्का] (१) हिचकी।

क्रि० प्र०—आना।

(२) हलकी अरुचिकर गंध। जैसे,—बकरी के दूध में से एक प्रकार की हीक आती है।

क्रि० प्र०—आना।

मुहा०—हीक मारना = बसाना। रह रह दुर्गंध करना।

हीचना*†-क्रि० अ० [अनु० हिच्] हिचकना। आगापीछा करना। जल्दी प्रवृत्त न होना। उ०—कहत सारदहु कै मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे।—तुलसी।

हीछना‡-क्रि० अ० [हिं० हीछ + ना] इच्छा करना। चाहना।

हीछा‡-संज्ञा स्त्री० दे० "इच्छा"।

हीज-वि० [देश०] आलसी। मट्ठर। काहिल।

हीठना-क्रि० अ० [सं० अधिष्ठा, प्रा० अहिट्ठा] (१) पास जाना। समीप होना। फटकना। जैसे,—उसे अपने यहाँ हीठने न देना। उ०—(क) झा झा अरुझि सरुझि कित जाना। हीठत ढूँढ़त जाइ पराना।—कबीर। (ख) बहुत दिवस में हीठिया शून्य समाधि लगाय। करहा परिगा गाँड़ में, दूरि परे पछिताय।—कबीर। (२) जाना। पहुँचना। उ०—(क) जेहि बन सिंह न संचरे, पंछी नहीं उड़ाय। सो बन कबिरा हीठिया, शून्य समाधि लगाय।—कबीर। (ख) मन तो कहै कब जाइए, चित्त कहै कब जाउँ। छै मासे के हीठ ते आध कोस पर गाउँ।—कबीर।

हीन-वि० [सं०] (१) परित्यक्त। छोड़ा हुआ। (२) रहित। जिसमें न हो। शून्य। वंचित। ख़ाली। बिना। बगैर। जैसे,—शक्तिहीन, धनहीन, बलहीन श्रीहीन। (३) निम्न कोटि का। नीचे दर्जे का। निकृष्ट। घटिया। जैसे,—हीन जाति। (३) ओछा। नीच। बुरा। असत्। ख़राब। कुत्सित। जैसे,— हीन कर्म। (४) तुच्छ। नाचीज़।

जिसमें कुछ भी महत्व न हो। (५) सुख समृद्धि रहित। दीन। जैसे,— हीन दशा। (६) पथभ्रष्ट। भटका हुआ। साथ या रास्ते से अलग जा पड़ा हुआ। जैसे,—पथहीन। (७) अल्प। कम। थोड़ा।

संज्ञा पुं० प्रमाण के अयोग्य साक्षी। बुरा गवाह।

विशेष—हीन साक्षी स्मृतियों में पाँच प्रकार के कहे गए हैं—अन्यवादी, क्रियाद्वेषी, नोपस्थायी, निरुत्तर और आहूत-प्रपलायी।

(१) अधम नायक। (साहित्य)

हीनकर्मा-वि० [सं०] (१) यज्ञादि विधेय कर्म से रहित। अपना निर्दिष्ट कर्म या आचार न करनेवाला। जैसे,— हीनकर्मा ब्राह्मणः। (२) निकृष्ट कर्म करनेवाले। बुरा काम करनेवाला।

हीनकुल वि० [सं०] बुरे या नीच कुल का। कुख्यातवान का।

हीनक्रम संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में एक दोष जो उस स्थान पर माना जाता है जहाँ जिस क्रम से गुण गिनाए गए हों, उसी क्रम से गुणी न गिनाए जायँ। जैसे,—जग की रचना कहि कौन करी। केहि राखन कीजिय पैजधरी। अति कोपि कै कौन सँहार करै। हरिजू, हर जू, बिधि बुद्धि रै। यहाँ प्रश्नों के क्रम से उत्तर इस प्रकार होना चाहिए था—"बिधि जू, हरि जू, हर बुद्धि रै"। पर वैसा न होकर क्रम का भंग कर दिया गया है।

हीनचरित-वि० [सं०] जिसका आचरण बुरा हो।

हीनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अभाव। राहित्य। कमी। त्रुटि। (२) क्षुद्रता। तुच्छता। (३) ओछापन। (४) बुराई। निकृष्टता।

हीनत्व-संज्ञा पुं० [सं०] हीनता।

हीनपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिरा हुआ पक्ष। तर्क में किसी की ऐसी बात जो प्रमाण द्वारा सिद्ध न हो सके। ऐसी बात जो दलीलों से साबित न हो सके। (२) कमज़ोर मुक़दमा।

हीनबल-वि० [सं०] बल रहित या जिसका बल घट गया हो। शक्तिरहित। कमज़ोर।

हीनबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक गण का नाम।

हीनबुद्धि-वि० [सं०] बुद्धि-शून्य। दुर्बुद्धि। जड़। मूर्ख।

हीनमति-वि० [सं०] बुद्धिशून्य। जड़। मूर्ख।

हीनमूल्य-संज्ञा पुं० [सं०] कम दाम। (याज्ञवल्क्य)

हीनयान-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध सिद्धांत की आदि और प्राचीन शाखा जिसके ग्रंथ पाली भाषा में हैं।

विशेष—इस शाखा का प्रचार एशिया के दक्षिण भागों में—सिंहल, बरमा और स्याम आदि देशों में—है; इसी से यह दक्षिण शाखा के नाम से भी प्रसिद्ध है। 'यान' का अर्थ है निर्वाण या मोक्ष की ओर ले जानेवाला रथ। हीनयान के सिद्धांत सीधे सादे रूप में अर्थात् उसी रूप में जिस रूप में गौतम बुद्ध ने उनका उपदेश किया था, हैं। पीछे 'महायान' शाखा में न्याय, योग, तंत्र आदि बहुत से विषयों के सम्मिलित होने से जटिलता आ गई। वैदिक धर्मानुयायी नैयायिकों के साथ खंडन मंडन में प्रवृत्त होनेवाले बौद्ध महायान शाखा के थे जो क्षणिकवाद आदि सिद्धांतों पर बहुत ज़ोर देते थे। हीनयान आराधना और उपासना का तत्व न रहने से जनसाधारण के लिये रूखा था; इससे 'महायान शाखा' के बहुत अनुयायी हुए। जो बुद्ध, बोधिसत्वों, बुद्धि की शक्तियों (जो तांत्रिकों) की महाविद्याएँ हैं, आदि के अनुग्रह के लिये पूजा और उपासना में प्रवृत्त रहने लगे। 'हीनयान' का यह अर्थ लिया गया कि उसमें बहुत कम लोगों के लिये जगह है।

हीनयोग-वि० [सं०] योग-भ्रष्ट।

संज्ञा पुं० उचित परिमाण से कम ओषधि मिलाना। (आयुर्वेद)

हीनयोनि-वि० [सं०] नीच जाति का। जिसकी उत्पत्ति अच्छे कुल में न हो।

हीनरस-संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में एक दोष जो किसी रस का वर्णन करते समय उस रस के विरुद्ध प्रसंग लाने से होता है। यह वास्तव में रस-विरोध ही है, जैसा कि केशव के इस उदाहरण से प्रकट होता है—'दै दधि', 'दीनो उधार हो केशव', 'दानी कहा जब मोल लै खैहैं'। 'दीन्हे बिना तो गई जु गई, 'न गई, न गई घर ही फिरि जैहैं। 'गो हित बैर कियो', 'हित को कब ? बैर किए बरु नीकेइ रैहैं। इस प्रश्नोत्तर में जो रोष भरी कड़ा सुनी है, वह शृंगार रस की पोषक नहीं है।

हीनवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] नीच जाति या वर्ण। शूद्र वर्ण।

हीनवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिथ्या तर्क। फ़जूल की बहस। कमज़ोर दलील। (२) मिथ्या साक्ष्य। झूठी गवाही जिसमें पूर्वापर विरोध हो।

हीनवादी-संज्ञा पुं० [सं० हीनवादिन्] [स्त्री० हीनवादिनी] (१) वह जिसका लाया हुआ अभियोग गिर गया हो। वह जिसका दावा ख़ारिज हो गया हो। वह जो मुक़दमा हार जाय। (२) परस्पर विरोधी कथन करनेवाला। खिलाफ़ बयान करनेवाला गवाह।

हीनवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] हीनबल। कमज़ोर।

हीन-हयात-संज्ञा पुं० [अ०] (१) जीवन काल। वह समय जिसमें कोई जीता रहा हो।

मुहा०—हीन-हयात में = जीवन काल में। जिंदगी में। जीते जी।

अव्य० जब तक जीवन रहे, तब तक। जब तक कोई जीता

रहे तब तक। जिंदगी भर तक के लिये। जैसे,—हीन हयात मुआफ़ी।

हीनांग-वि० [सं०] (१) जिसका कोई अंग न हो। खंडित अंगवाला। जैसे,—लूला, लँगड़ा इत्यादि। (२) जो सर्वांग-पूर्ण न हो। अधूरा। नामुकम्मल।

हीनार्थ-वि० [सं०] (१) जिसका कार्य्य सिद्ध न हुआ हो। विफल। (२) जिसे लाभ न हुआ हो।

हीनोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्य में वह उपमा जिसमें बड़े उपमेय के लिये छोटा उपमान लाया जाय। बड़े की छोटे से उपमा।

हीयॐ-संज्ञा पुं० दे० "हिय"।

हीयराॐ-संज्ञा पुं० दे० "हियरा"।

हीयाॐ-संज्ञा पुं० दे० "हिया"।

हीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हीरा नामक रत्न। (२) वज्र। बिजली। (३) सर्प। साँप। (४) सिंह। (५) मोती की माला। (६) शिव का एक नाम। (७) छप्पय के ६२वें भेद का नाम। (८) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, सगण, नगण, जगण, नगण और रगण होते हैं। (९) एक मात्रिक छंद जिसमें ६,६ और ११ के विराम से २३ मात्राएँ होती हैं।

संज्ञा पुं० [हिं० हीरा] (१) किसी वस्तु के भीतर का सार भाग। गूदा या सत। सार। जैसे,—जौ का हीर, गेहूँ का हीर, सौंफ का हीर। (२) लकड़ी के भीतर का सार भाग जो छाल के नीचे होता है। जैसे,—इसके हीर की लकड़ी मज़बूत होती है। (३) शरीर की सार वस्तु। धातु। वीर्य्य। जैसे,—उसकी देह का हीर तो निकल गया। (४) शक्ति। बल।

हीरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हीरा नामक रत्न। (२) हीर छंद।

हीरा-संज्ञा पुं० [सं० हीरक] (१) एक रत्न या बहुमूल्य पत्थर जो अपनी चमक और कड़ाई के लिये प्रसिद्ध है। वज्रमणि।

विशेष—आधुनिक रसायन-शास्त्र के अनुसार हीरा कारबन या कोयले का ही विशेष रूप है जो प्राकृतिक दशा में पाया जाता है। यह संसार के सब पदार्थों से कड़ा होता है; इसी से कवि लोग कठोरता के उदाहरण के लिये इसका नाम लाया करते हैं, जैसा कि तुलसीदास जी ने कहा है—"सिरिस सुमन किमि बेधै हीरा।" यह अधिकतर तो सफ़ेद अर्थात् बिना रंग का होता है; पर पीले, हरे, नीले और कभी कभी काले हीरे भी मिल जाते हैं। यह रत्न सबसे बहुमूल्य माना जाता है और भिन्न भिन्न रंगों की आभा या छाया देता है। रत्नपरीक्षा की पुस्तकों में हीरे की पाँच छायाएँ कही गई हैं—लाल, पीली, काली, हरी और श्वेत। व्यवहार के लिये हीरा कई रूपों में काटा जाता है जिससे प्रकाश छोड़ने के पहलों के बढ़ जाने से इसकी आभा बढ़ जाती है। इसके पहल काटने में भी बड़ी तारीफ़ है। बहुत अच्छे हीरे को 'पहले पानी' का हीरा कहते हैं। रत्न परीक्षा में हीरे के पाँच गुण कहे गए हैं—अठपहल, छकोना होना, लघु, उज्वल और नुकीला होना। मुख्य दोष है—मलदोष। यदि बीच में मल (मैल) दिखाई दे तो बहुत अशुभ कहा गया है। आज कल हीरा दक्षिण अफ्रिका में बहुत पाया जाता है। भारतवर्ष की खानें अब प्रायः खाली हो गई हैं। 'पन्ना' आदि कुछ स्थानों में अब भी थोड़ा बहुत निकलता है। किसी समय दक्षिण भारत हीरे के लिये प्रसिद्ध था। जगत्प्रसिद्ध 'कोहेनूर' नाम का हीरा गोलकुंडे की खान का कहा जाता है।

यौ०—हीरा कट = कई पहलों का कटाव। डायमंड कट। डंबल काट।

मुहा०—हीरा खाना या हीरे की कनी चाटना = हीरे का चूर खाकर आत्म-हत्या करना।

(२) बहुत ही अच्छा आदमी। नररत्न। (लाक्षणिक) जैसे,—वह हीरा आदमी था। (३) बहुत उत्तम वस्तु। बहुत बढ़िया या चोखी चीज़। (लाक्षणिक) (४) दुंबे भेड़े की एक जाति।

हीरा कसीस-संज्ञा पुं० [हिं० हीर + सं० कसीस] लोहे का वह विकार जो गंधक के रासायनिक योग से होता है और जो देखने में कुछ हरापन लिए मटमैले रंग का होता है।

विशेष—लोहे को गंधक के तेज़ाब में गलाने से हीरा कसीस निकल सकता है; पर इस क्रिया में लागत अधिक पड़ती है। खान के मैले लोहे को हवा और सीड़ में छोड़ देने से भी कसीस निकलता है। हवा और सीड़ के प्रभाव से एक प्रकार का रस निकलता है जिसमें कसीस और गंधक का तेज़ाब दोनों रहते हैं। लोहचूर का थोड़ा योग कर देने से सब का हीरा कसीस हो जाता है। इसका व्यवहार स्याही, रंग आदि बनाने में तथा औषध के लिये भी होता है।

हीरादोखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हीरा + दोष] विजयसाल का गोंद जो दवा के काम में आता है।

हीरानखी-संज्ञा पुं० [हिं० हीरा + नख] एक प्रकार का बढ़िया धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत महीन और सफ़ेद होता है।

हीराना‡-क्रि० स० [हिं० हिलाना = घुसाना] खाद के लिये खेत में गाय, भेंड़, बकरी आदि रखना।

हीरामन-संज्ञा पुं० [हिं० हीरा + मणि] सूए या तोते की एक कल्पित जाति जिसका रंग सोने का सा माना जाता है। इस प्रकार के तोते का वर्णन कहानियों में बहुत आता है।

हील-संज्ञा पुं० [देश०] भारत के पश्चिमी किनारे पर और सिंहल में पाया जानेवाला एक सदाबहार पेड़ जिससे एक प्रकार

का लसीला गोंद निकलता है। यह गोंद बाहर भेजा जाता है। इस पेड़ को 'अरदल' और 'गोरक' भी कहते हैं।

†संज्ञा स्त्री० [हिं० गीला] पनाले आदि का गंदा कीचड़। गलीज।

हीलना†ॐ-क्रि० अ० दे० "हिलना"।

हीला-संज्ञा पुं० [अ० हीलः] (१) बहाना। मिस। किसी बात के लिये गढ़ा हुआ कारण।

क्रि० प्र०—करना।—ढूँढ़ना।—होना।

यौ०—हीला हवाला = इधर उधर का बहाना।

(२) किसी बात की सिद्धि के लिये निकला हुआ मार्ग। निमित्त। द्वार। वसीला। व्याज। जैसे,—इसी हीले से उसे चार पैसे मिल जायँगे।

मुहा०—हीला निकलना = रास्ता निकलना। ढंग निकलना।

†संज्ञा पुं० [हिं० गीला] कीचड़।

हुँ-अव्य० दे० "हू"।

अव्य० (१) एक शब्द जो किसी बात को सुननेवाला यह सूचित करने के लिये बोलता है कि हम सुन रहे हैं। (२) स्वीकृति-सूचक शब्द। हाँ।

हुंकना-क्रि० अ० दे० "हुंकारना"।

हुँकरना-क्रि० अ० दे० "हुंकारना"।

हुंकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ललकार। दपट। डाँटने का शब्द। (२) घोर शब्द। गर्जन। गरज। (३) चीत्कार। चिग्घाड़। चिल्लाहट।

हुंकारना-क्रि० अ० [सं० हुंकार + ना (प्रत्य०)] (१) ललकारना। दपटना। डाँटना। घोर शब्द करना। गर्जन करना। गर्जना। गरजना। (२) चिग्घाड़ना। चिल्लाना।

हुँकारी-संज्ञा स्त्री० [अनु० हुँहुँ + करना] (१) 'हुँ' करने की क्रिया। वक्ता की बात सुनना सूचित करने का शब्द जो श्रोता बीच बीच में बोलता जाता है। (२) स्वीकृति-सूचक शब्द। मानना या कबूल करना प्रकट करने का शब्द। हामी।

संज्ञा स्त्री० [सं० हुंडि = राशि + कारी] घुमाव के साथ झुकी लकीर जो अंक के आगे रुपया या रक़म सूचित करने के लिये लगा दी जाती है। बिकारी। जैसे,—१); ॥)।

हुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेढ़ा। मेष। (२) बाघ। व्याघ्र। (३) सूअर। ग्राम शूकर। (४) जड़बुद्धि। मूर्ख। (५) राक्षस। (६) अनाज की बाल। (७) एक वर्बर जाति। (महाभारत)

हुंडन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव के एक गण का नाम। (काशी खंड) (२) सुन या स्तब्ध हो जाना। मारा जाना। (अंग का)

हुंडा-संज्ञा पुं० [सं०] आग के दहकने का शब्द।

संज्ञा पुं० [हिं० हुंडी] वह रुपया जो किसी किसी जाति में वर पक्ष से कन्या के पिता को ब्याह के लिये दिया जाता है।

हुंडा भाड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० हुंडी + भाड़ा] महसूल, भाड़ा आदि सब कुछ देकर कहीं पर माल पहुँचाने का ठेका।

हुँडार-संज्ञा पुं० [सं० हुंड = मेढ़ + अरि = शत्रु] भेड़िया। बीग।

हुंडावन-संज्ञा स्त्री० [हिं० हुंडी] (१) वह रक़म जो हुंडी लिखने के समय दस्तूर की तरह पर काटी जाती है। (२) हुंडी की दर।

हुंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह पत्र या कागज़ जिस पर एक महाजन दूसरे महाजन को, जिससे लेन-देन का व्यवहार होता है, कुछ रुपया देने के लिये लिखकर किसी को रुपए के बदले में देता है। निधिपत्र। छोटपत्र। चेक।

क्रि० प्र०—बेचना।—लिखना।—लेना।

यौ०—हुंडी-पुरजा, हुंडी-बही।

मुहा०—(किसी पर) हुंडी करना = किसी के नाम हुंडी लिखना। हुंडी का व्यवहार = हुंडी के द्वारा लेन-देन का व्यवहार। हुंडी पटना = हुंडी के रुपए का चुकता होना। हुंडी भेजना = हुंडी के द्वारा कोई रकम अदा करना। हुंडी का न पटना = हुंडी के रुपए का चुकता न होना। हुंडी सकारना = हुंडी के रुपए का देना स्वीकार करना। दर्शनी हुंडी = वह हुंडी जिसके रुपए को दिखाते ही चुकता कर देने का नियम हो। मियादी हुंडी = वह हुंडी जिसके रुपये को मिति के बाद देने का नियम हो।

(२) उधार रुपया देने की एक रीति जिसके अनुसार लेनेवाले को साल भर में २०) का २५) या १५) का २०) देना पड़ता है।

हुंडी बही-संज्ञा स्त्री० [हिं० हुंडी + बही] वह किताब या बही जिसमें सब तरह की हुंडियों की नक़ल रहती है।

हुंडी बेंत-संज्ञा पुं० [देश० हुंडी + हिं० बेंत] एक प्रकार का बेंत जिसे मयूरी बेंत भी कहते हैं।

हुँत-प्रत्य० [प्रा० विभक्ति 'हिंतो'] (१) पुरानी हिंदी की पंचमी और तृतीया की विभक्ति। से। उ०—(क) तेहि बंदि हुँत छुटै जो पावा। (ख) जब हुँत कहिगा पंखि सँदेसी। (ग) तब हुँत तुम बिनु रहै न जीऊ।—जायसी। (२) लिये। निमित्त। वास्ते। खातिर। उ०—तुम हुँत मँडप गइउँ परदेसी।—जायसी। (३) द्वारा। ज़रिये से। उ०—उन्ह हुँत देखै पाएँउ दरस गोसाईं केर।—जायसी।

हुंबा-संज्ञा पुं० [देश०] समुद्र की चढ़ती लहर। ज्वार। (लश०)

हुंभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय के रँभाने का शब्द।

हुॐ†-अ० [वैदिक सं० उप = और, आगे; प्रा० उभ, हिं० ऊ] अतिरेक-सूचक शब्द। कथित के अतिरिक्त और भी। जैसे,—रामहु = राम भी। हमहु = हम भी। उ०—हमहु कहब अब ठकुरसुहाती।—तुलसी।

हुआँ-अव्य० दे० "वहाँ"।

संज्ञा पुं० [अनु०] गीदड़ों के बोलने का शब्द।

हुआना-क्रि० अ० [अनु० हुआँ] 'हुआँ हुआँ' करना। (गीदड़ों का) बोलना। उ०—जंबुक-निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं, हुआहिं, अघाहिं दपट्टहिं।—तुलसी।

हुक-संज्ञा पुं० [अं०] (१) कँटिया। टेढ़ी कील। (२) दो वस्तुओं को एक में जोड़ने का झुका हुआ काँटा। अँकुसी। अँकुड़ी। (३) नाव में वह लकड़ी जिसमें डाँड़े को ठहरा या फँसाकर चलाते हैं।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का दर्द जो प्रायः पीठ में किसी स्थान की नस पर होता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

हुकना-संज्ञा पुं० [देश०] एक पक्षी जो 'सोहन-चिड़िया' के नाम से प्रसिद्ध है।

क्रि० अ० [देश०] भूल जाना। विस्मृत होना।

क्रि० स० वार या निशाना चूकना। लक्ष्य भ्रष्ट होना। खाली जाना।

हुकरना-क्रि० अ० दे० "हुँकरना", "हुँकारना"।

हुकर पुकर-संज्ञा स्त्री० [अनु०] कलेजे की धड़कन। दिल की कँपकँपी। हृत्कंप। घबराहट। अधीरता।

मुहा०—कलेजा हुकर पुकर करना = (१) भय या आशंका से हृदय में कँपकँपी या अशांति होना। डर या घबराहट से दिल धड़कना। (२) भय या घबराहट होना। चित्त अधीर होना।

हुकारना-क्रि० अ० दे० "हुँकारना"।

हुकुम‡-संज्ञा पुं० दे० "हुक्म"।

हुकुर हुकुर-संज्ञा स्त्री० [अनु०] दुर्बलता, रोग आदि में श्वास का स्पंदन। जल्दी जल्दी साँस चलने की धड़कन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हुकूमत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) अधीनता में रखने की अवस्था, क्रिया या भाव। आज्ञा में रखने का भाव। प्रभुत्व। शासन। आधिपत्य। अधिकार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हुकूमत चलना = प्रभुत्व माना जाना। अधिकार माना जाना। हुकूमत चलाना = प्रभुत्व या अधिकार से काम लेना। दूसरों को आज्ञा देना। जैसे,—उठो कुछ करो, बैठे बैठे हुकूमत चलाने से काम न होगा। हुकूमत जताना = अधिकार या बड़प्पन प्रकट करना। प्रभुत्व प्रदर्शित करना। रोब दिखाना।

(२) राज्य। शासन। राजनीतिक आधिपत्य। जैसे,—वहाँ भी अँगरेजों की हुकूमत है।

हुक्का-संज्ञा पुं० [अ०] (१) तंबाकू का धूआँ खींचने के लिये विशेष रूप से बना हुआ एक नल यंत्र जिसमें दो नलियाँ होती हैं—एक पानी भरे पेंदे से ऊपर की ओर खड़ी जाती है जिस पर तंबाकू सुलगाने की चिलम बैठाई जाती है और दूसरी उसी पेंदे से बगल की ओर आड़ी या तिरछी जाती है जिसका छोर मुँह में लगाकर पानी से होकर आता हुआ तंबाकू का धूआँ खींचते हैं। गड़गड़ा। फ़रशी।

यौ०—हुक्का पानी।

मुहा०—हुक्का पीना = हुक्के की नली से तंबाकू का धूआँ मुँह में खींचना। हुक्का गुड़गुड़ाना = हुक्का पीना। हुक्का ताजा करना = हुक्के का पानी बदलना। हुक्का भरना = चिलम पर आग तंबाकू वगैरह रखकर हुक्का पीने के लिये तैयार करना।

(२) दिशा जानने का यंत्र। कंपास। (लश०)

हुक्का पानी-संज्ञा पुं० [अ० हुक्का + हिं० पानी] एक दूसरे के हाथ से हुक्का तंबाकू पीने और पानी पीने का व्यवहार। बिरादरी की राहरस्म। आने जाने और खाने पीने आदि का सामाजिक व्यवहार।

विशेष—जिस प्रकार एक दूसरे के साथ खाना-पीना एक जाति या बिरादरी में होने का चिह्न समझा जाता है, उसी प्रकार कुछ जातियों में एक दूसरे के हाथ का हुक्का पीना भी। ऐसी जातियाँ जब किसी को समाज या बिरादरी से अलग करती हैं, तब उसके हाथ का पानी और हुक्का दोनों पीना बंद कर देती हैं।

मुहा०—हुक्का पानी बंद करना = बिरादरी से अलग करना। समाज से बाहर करना। (दंडस्वरूप) हुक्का पानी बंद होना = बिरादरी से अलग किया जाना। समाज से बाहर होना।

हुक्काम-संज्ञा पुं० [अ० 'हाकिम' का बहुवचन रूप] हाकिम लोग। अधिकारीवर्ग। बड़े अफ़सर।

हुक्कू-संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति का बंदर।

हुक्म-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बड़े का वचन जिसका पालन कर्त्तव्य हो। कुछ करने के लिये अधिकार के साथ कहना। आज्ञा। आदेश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हुक्म उठाना = (१) हुक्म रद करना। आज्ञा फेरना। हुक्म जारी न रखना। (२) आज्ञा पालन करना। सेवा करना। अधीनता में रहना। हुक्म उलटाना = आज्ञा का निराकरण करना। एक आज्ञा के विरुद्ध दूसरी आज्ञा प्राप्त करना। हुक्म की तामील = आज्ञा का पालन। हुक्म के मुताबिक कार्रवाई। हुक्म चलाना = (१) आज्ञा प्रचलित करना। (२) आज्ञा देना। अधिकारपूर्वक दूसरे को कुछ करने के लिये कहना। बड़प्पन दिखाते हुए दूसरे को काम में लगाना। जैसे,—बैठे बैठे हुक्म चलाते हो, खुद जाकर क्यों नहीं करते? हुक्म जारी करना = आज्ञा का प्रचार करना। हुक्म तोड़ना = आज्ञा भंग करना। आदेश के विरुद्ध कार्य्य करना। बड़े के वचन का पालन न करना। हुक्म देना = आज्ञा करना। हुक्म बजाना या बजा लाना = (१) आज्ञा पालन करना। बड़े

के कहे अनुसार करना। (२) सेवा करना। **हुक्म मानना** = आज्ञा पालन करना। बड़े के कहे अनुसार चलना। **हुक्म मिलना** = आज्ञा दिया जाना। आदेश होना। जैसे,—मुझे क्या हुक्म मिलता है? जो हुक्म = जो हुक्म होता है, उसे मैं करूँग। (नौकर)

(२) कुछ करने की स्वीकृति। अनुमति। इजाज़त। जैसे,—(क) सवारी निकालने का हुक्म हो गया। (ख) घर जाने का हुक्म मिल गया।

मुहा०—**हुक्म लेना** = आज्ञा प्राप्त करना। अनुमति लेना। जैसे,—तुम्हें हुक्म लेकर जाना चाहिए था।

(३) अधिकार। प्रभुत्व। शासन। इख्तियार। जैसे,—हुक्म बना रहे। (आशीर्वाद)

मुहा०—**हुक्म में होना** = अधिकार में होना। अधीन होना। शासन में होना। जैसे,—(क) मैं तो हर घड़ी हुक्म में हाज़िर रहता हूँ। (ख) यह किसी के हुक्म में नहीं है, मनमानी करता है।

(४) किसी क़ानून या धर्मशास्त्र की आज्ञा। विधि। नियम। शिक्षा। उपदेश। (५) ताश का एक रंग जिसमें काले रंग का पान बना रहता है।

हुक्मचील-संज्ञा स्त्री० [?] खजूर का गोंद।

हुक्मनामा-संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] वह कागज जिस पर कोई हुक्म लिखा गया हो। आज्ञा-पत्र।

क्रि० प्र०—देना।—लिखना।—भेजना।

हुक्मबरदार-संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] (१) आज्ञानुवर्ती। आज्ञा के अनुसार चलनेवाला। आज्ञाकारी। सेवक। अधीन।

हुक्म बरदारी संज्ञा स्त्री० [अ० + फ़ा०] (१) आज्ञा पालन। आज्ञाकारिता। (२) सेवा।

हुक्मी वि० [अ० हुक्म] (१) दूसरे की आज्ञा के अनुसार ही काम करनेवाला। दूसरे के कहे मुताबिक़ चलनेवाला। पराधीन। जैसे,—मैं तो हुक्मी बंदा हूँ, मेरा क्या क़सूर? (२) न चूकनेवाला। ज़रूर असर करनेवाला। अचूक। अव्यर्थ। जैसे,—हुक्मी दवा। (३) न खाली जानेवाला। अवश्य लक्ष्य पर पहुँचनेवाला। जैसे,—वह हुक्मी तीर चलाता है। (४) अवश्य कर्त्तव्य। न टालने योग्य। लाज़िमी। ज़रूरी।

हुचकी-संज्ञा स्त्री० दे० "हिचकी"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सुंदर लता या बेल जिसके फूल ललाई लिए सफेद और सुगंधित होते हैं।

हुजूम-संज्ञा पुं० [अ०] भीड़। जमावड़ा।

हुजूर-संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी बड़े का सामीप्य। नज़र का सामना। सम्मुख स्थिति। समक्षता।

मुहा०—(किसी के) **हुजूर में** = (बड़े के) सामने। आगे। जैसे,—वह सब बादशाह के हुजूर में लाए गए।

(२) बादशाह या हाकिम का दरबार। कचहरी।

मुहा०—**हुजूर तहसील** = सदर तहसील। वह तहसील जो जिले के प्रधान नगर में हो। **हुजूर महाल** = वह महाल जिसकी मालगुजारी सीधे सरकार के यहाँ दाखिल हो, लगान के रूप में किसी जमींदार को न दी जाती हो। वह जमीन जिसकी जमींदार सरकार हो।

(३) बहुत बड़े लोगों के संबोधन का शब्द। (४) एक शब्द जिसके द्वारा अधीन कर्म्मचारी अपने बड़े अफ़सर को या नौकर अपने मालिक को संबोधन करते हैं।

हुजूरी-संज्ञा स्त्री० [अ० हुजूर + ई० (हिं० प्रत्य०)] बड़े का सामीप्य या समक्षता। नज़र का सामना।

संज्ञा पुं० (१) ख़ास सेवा में रहनेवाला नौकर। (२) दरबारी। मुसाहब।

वि० हुजूर का। सरकारी।

हुज्जत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) व्यर्थ का तर्क। फजूल की दलील। (२) विवाद। झगड़ा। तकरार। कहासुनी। वाग्युद्ध।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

हुड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेढ़ा। (२) एक प्रकार का अस्त्र।

हुड़कना-क्रि० अ० [देश०] बच्चे का रो रोकर उसके लिये व्याकुलता प्रकट करना जिससे वह बहुत हिला हो।

हुड़दंगा-संज्ञा पुं० [अनु० हुड़ + हिं० दंगा] हल्लागुल्ला और उछलकूद। धमाचौकड़ी। उपद्रव। उत्पात।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

हुडुक-संज्ञा पुं० [सं० हुडुक] एक प्रकार का बहुत छोटा ढोल जिसे प्रायः कहार या धीमर बजाते हैं।

हुडुक्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बहुत छोटा ढोल। हुडुक नाम का बाजा। (२) दात्यूह पक्षी। (३) मतवाला आदमी। मदोन्मत्त पुरुष। (४) लोहे की साम जड़ा हुआ डंडा। लोहबंद। (५) अर्गल। बेंवड़ा।

हुढक्क‡-संज्ञा पुं० दे० "हुडुक्क"।

हुत-वि० [सं०] हवन किया हुआ। आहुति दिया हुआ। हवन करते समय अग्नि में डाला हुआ।

संज्ञा पुं० (१) हवन की वस्तु। हवन की सामग्री। (२) शिव का एक नाम।

‡क्रि० अ० 'होना' क्रिया का प्राचीन भूतकालिक रूप। था।

उ०—हुत पहिले औ अब है सोई।—जायसी।

हुतभक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

हुतभुक्, हुतभुज्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। आग। (२) चित्रक। चीते का पेड़।

हुतवह-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

हुतशेष-संज्ञा पुं० [सं०] हवन करने से बची हुई सामग्री।

हुता†ॐ-क्रि० अ० [हिं० हुत] 'होना' क्रिया का पुरानी अवधी हिंदी का भूतकालिक रूप। था। उ०—गगन हुता, नहिं महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।—जायसी।

हुताग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने हवन किया हो। (२) अग्निहोत्री। (३) यज्ञ या हवन की आग।

हुताश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (आहुति खानेवाला) अग्नि। आग। (२) तीन की संख्या। (३) चित्रक। चीते का पेड़।

हुताशन-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

हुतिॐ-अव्य० [प्रा० हितो] (१) अपादान और करण कारक का चिह्न। से। द्वारा। (२) ओर से। तरफ़ से। वि० दे० "हुँति"।

संज्ञा स्त्री० [सं०] हवन। यज्ञ।

हुतियन-संज्ञा पुं० [देश०] सेमल का पेड़।

हुँते-अव्य० [प्रा० हितो] (१) से। द्वारा। (२) ओर से। तरफ से।

हुतोॐ-क्रि० अ० ['होना' क्रि० का व्रज भूतकालिक रूप] था।

हुदक्क-संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य का नाम।

हुदकाना†ॐ-क्रि० स० [देश०] उसकाना। उभारना।

हुदना†ॐ-क्रि० अ० [सं० हुंडन] स्तब्ध होना। रुकना।

हुदहुद-संज्ञा पुं० [अ०] एक चिड़िया जो हिंदुस्तान और बरमा में प्रायः सब जगह पाई जाती है। इसकी छाती और गरदन खैरे रंग की तथा चोटी और डैने काले और सफेद होते हैं। चोंच एक अंगुल लंबी होती है।

हुदारना-क्रि० स० [देश०] रस्सी पर लटकाना। टाँगना। (लश०)

हुद्दा-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

‡ संज्ञा पुं० [अ० ओहदा] ओहदा। पद।

हुन-संज्ञा पुं० [सं० हूण, हून = सोने का एक सिक्का] (१) मोहर। अशरफ़ी। स्वर्णमुद्रा। (२) सोना। सुवर्ण।

मुहा०—**हुन बरसना** = धन की बहुत अधिकता होना।

हुनना-क्रि० स० [सं० हु, हुन् + हिं० प्रत्य०—ना] (१) अग्नि में डालना। आहुति देना। (२) हवन करना।

हुनर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कला। कारीगरी। (२) गुण। करतब। (३) कौशल। युक्ति। चतुराई।

हुनरमंद-वि० [फ़ा०] कला-कुशल। निपुण।

हुनरा-वि० [फ़ा० हुनर] वह बंदर या भालू जो नाचना और खेल दिखाना सीख गया हो। (कलंदर)

हुनिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों की एक जाति जिसका ऊन अच्छा होता है।

हुन्न-संज्ञा पुं० दे० "हुन"।

हुब, हुब्ब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) अनुराग। प्रेम। (२) श्रद्धा। (३) हौसला। उमंग। उत्साह।

हुमकना-क्रि० अ० [अनु० हुँ (प्रयत्न का शब्द)] (१) उछलना कूदना। (२) जमे हुए पैर से ठेलना या धक्का पहुँचाना। पैरों से ज़ोर लगाना। (३) पैरों को आघात के लिये ज़ोर से उठाना। कसकर पैर तानना। उ०—हुमकि लात कूबर पर मारा।—तुलसी। (४) चलने का प्रयत्न करना। चलने के येाि ज़ोर लगाकर पैर रखना। ठुमकना। (बच्चों का)

हुमगना-क्रि० अ० दे० "हुमकना"।

हुमा-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक कल्पित पक्षी जिसके संबंध में प्रसिद्ध है कि वह हड्डियाँ ही खाता है और जिसके ऊपर उसकी छाया पड़ जाय वह बादशाह हो जाता है।

हुमेल-संज्ञा स्त्री० [अ० हमायल] (१) अशर्फ़ियों या रुपयों को गूँथकर बनी हुई एक प्रकार की माला जिसे स्त्रियाँ पहनती हैं। (२) घोड़ों के गले का एक गहना।

हुम्मा-संज्ञा पुं० [हिं० उमंग] लहरों का उठना। बान। (लश०)

हुरदंग, हुरदंगा-संज्ञा पुं० दे० "हुड़दंग"।

हुरमत-संज्ञा स्त्री० [अ०] आबरू। इज़्ज़त। मान। मर्य्यादा।

हुरहुर-संज्ञा पुं० दे० "हुलहुल"।

हुरहुरिया-संज्ञा स्त्री० [अनु० सं० हुलहुली] एक प्रकार की चिड़िया।

हुरिंजक-संज्ञा पुं० [सं०] निषाद और कबरी स्त्री से उत्पन्न एक संकर जाति।

हुरुट्टक-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का अंकुश।

हुरुमयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नृत्य। उ०—उकथा, टेकी, आलमस, दिंड। पक्षटि हुरुमयी निःशंक चिंड।—केशव।

हुर्रा-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की हर्षध्वनि।

हुल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दो-धारा छुरा।

हुलकना-क्रि० अ० [अनु० हुलहुल] कै करना। वमन करना।

हुलकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हुलकना] (१) कै। वमन। उलटी। (२) हैजे की बीमारी।

हुलना-क्रि० अ० [हिं० हूलना] लाठी आदि को ठेलना। रेलना। पेलना।

हुलसना-क्रि० अ० [हिं० हुलास + ना (प्रत्य०)] (१) उल्लास में होना। आनंद से फूलना। उमगना। खुशी से भरना। (२) उभरना। उठना। (३) उमड़ना। बढ़ना। उ०—संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरित मानस कवि तुलसी।—तुलसी।

ॐ क्रि० स० आनंदित करना। प्रफुल्लित करना।

हुलसाना-क्रि० स० [हिं० हुलसना] उल्लासित करना। आनंदपूर्ण करना। हर्ष की उमंग उत्पन्न करना।

क्रि० अ० दे० "हुलसना"। उ०—राम अनुज-मन की गति जानी। भगतबछलता हिय हुलसानी।—तुलसी।

हुलसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हुलसना] (१) हुलास। उल्लास। आनंद

की उमंग। उ०—रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी।—तुलसी। (२) किसी किसी मत से तुलसीदास जी की माता का नाम।

हुलहुल—संज्ञा पुं० [?] एक छोटा बरसाती पौधा जिसके कई भेद होते हैं। साधारण जाति के पौधे में सफेद फूल और मूँग की सी लंबी फलियाँ लगती हैं। पीले, लाल और बैंगनी फूलवाले पौधे भी पाए जाते हैं। पत्तियाँ गोल और फाँकदार होती हैं जो दर्द दूर करने की दवा मानी जाती हैं। कान के दर्द में प्रायः इन पत्तियों का रस डाला जाता है। पत्तियों का साग भी खाते हैं। अर्कपुष्पिका। सूरजवर्त्त।

हुला—संज्ञा पुं० [हिं० हूलना] लाठी का छोर या नोक।

हुलाना†—क्रि० स० [हिं० हूलना] लाठी, भाले आदि को ज़ोर से ठेलना। पेलना।

हुलाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० हुलसना] तरंग। लहर।

हुलास—संज्ञा पुं० [सं० उल्लास] (१) आनंद की उमंग। उल्लास। हर्ष की प्रेरणा। खुशी का उमड़ना। आह्लाद। (२) उत्साह। हौसला। तबीयत का बढ़ना। उ०—सुतहि राज, रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू।—तुलसी। (३) उमगना। बढ़ना।

संज्ञा स्त्री० सुँघनी। मगजरोशन।

हुलासदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हुलास + दान] सुँघनीदानी।

हुलासी—वि० [हिं० हुलास] (१) आनंदी। (२) उत्साही। हौसलेवाला।

हुलिंग—संज्ञा पुं० [सं०] मध्यदेश के अंतर्गत एक प्रदेश का नाम।

हुलिया—संज्ञा पुं० [अ० हुलियः] (१) शकल। आकृति। रूप रंग। (२) किसी मनुष्य के रूप रंग आदि का विवरण। शकल सूरत और बदन पर के निशान वगैरह का ब्योरा।

मुहा०—हुलिया लिखाना = किसी भागे हुए, खोए हुए या लापता आदमी का पता लगाने के लिये उसकी शकल सूरत आदि पुलिस में दर्ज कराना।

हुलु—संज्ञा पुं० [सं०] मेढ़ा।

हुलूक—संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति का बंदर।

विशेष—इसकी लंबाई बीस इक्कीस इंच और रंग प्रायः सफेद होता है। यह आसाम के जंगलों में झुंड में रहता है और जल्दी पालतू हो जाता है।

हुलैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० हूलना] डूबने के पहले नाव का डगमगाना।

हुल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

हुल्लड़—संज्ञा पुं० [अनु० सं० हुलहुल] (१) शोरगुल। हल्ला। कोलाहल। (२) उपद्रव। ऊधम। धूम। (४) हलचल। आंदोलन। (४) दंगा। बलवा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—मचना।—मचाना।

हुल्लास—संज्ञा पुं० [सं० उल्लास] चौपाई और त्रिभंगी के मेल से बना हुआ एक छंद।

हुश्—अव्य० [अनु०] एक निषेधवाचक शब्द। अनुचित बात मुँह से निकालने पर रोकने का शब्द।

हुसियार॥†—वि० दे० "होशियार"।

हुसैन—संज्ञा पुं० [अ०] मुहम्मद साहब के दामाद अली के बेटे जो करबला के मैदान में मारे गए थे और शीया मुसलमानों के पूज्य हैं। मुहर्रम इन्हीं के शोक में मनाया जाता है।

हुसैनी—संज्ञा पुं० [अ० हुसैन] (१) अंगूर की एक जाति। (२) फ़ारस संगीत के बारह मुकामों में से एक।

हुसैनी कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा० हुसैनी + हिं० कान्हड़ा] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

हुस्न—संज्ञा पुं० [अ०] (१) सौंदर्य्य। सुंदरता। लावण्य।

यौ०—हुस्नपरस्त।

(२) तारीफ की बात। खूबी। उत्कर्ष। जैसे,—हुस्न इंतज़ाम। (३) अनूठापन। विचित्रता। जैसे,—हुस्न इत्तफ़ाक़।

हुस्नदान—संज्ञा पुं० [अ० हुस्न + हिं० दान] पानदान। खासदान।

हुस्नपरस्त—संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] सौंदर्य्योपासक। सुंदर रूप का प्रेमी। रूप का लोभी।

हुस्नपरस्ती—संज्ञा स्त्री० [अ० + फ़ा०] सौंदर्य्योपासना। सुंदर रूप का प्रेम। रूप का लोभ।

हुस्यार॥†—वि० दे० "होशियार"।

हुहव—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

हुहु—संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम। हूहू।

हुँ—अव्य० [अनु०] (१) किसी प्रश्न के उत्तर में स्वीकार-सूचक शब्द। (२) समर्थन-सूचक शब्द। (३) एक शब्द जिसके द्वारा सुननेवाला यह सूचित करता है कि मैं कही जाती हुई बात या प्रसंग ध्यान से सुन रहा हूँ।

अव्य० दे० "हू"।

सर्व० वर्त्तमान-कालिक क्रिया "है" का उत्तम पुरुष एक वचन का रूप। जैसे,—"मैं हूँ"।

हुँकना—क्रि० अ० [अनु०] (१) गाय का बछड़े की याद में या और कोई दुःख सूचित करने के लिये धीरे धीरे बोलना। हुँड़कना। उ०—ऊधो! इतनी कहियो जाय। अति कृशगात भई हैं तुम बिनु बहुत दुखारी गाय। जल समूह बरसत अँखियन तें हुँकति लीन्हें नावँ। जहाँ जहाँ गो दोहन करते ढूँढति सोइ सोइ ठावँ।—सूर। (२) हुंकार शब्द करना। वीरों का ललकारना या दपटना। (३) सिसक कर रोना। कोई बात याद कर करके रोना।

हूँठ-वि० [सं० अर्द्धचतुर्थ, प्रा० अद्धुट्ठ । (सं० 'अध्युष्ठ' कल्पित जान पड़ता है)] साढ़े तीन ।

हूँठा-संज्ञा पुं० [हिं० हूँठ] साढ़े तीन का पहाड़ा ।

हूँड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० होड़] खेतों की सिंचाई में किसानों की एक दूसरे को सहायता देने की रीति ।

हूँस-संज्ञा स्त्री० [सं० हिंस] (१) दूसरे की बढ़ती देख कर जलना । ईर्ष्या । डाह । (२) दूसरे की कोई वस्तु देख कर उसे पाने के लिये दुखी रहना । आँख गड़ाना । (३) बुरी नज़र । टोक । जैसे,—बच्चे को हूँस लगी है ।

क्रि० प्र०—लगना ।

(४) बुरा भला कहते रहने की क्रिया । कोसना । फटकार । जैसे,—दिन रात तुम्हारी हूँस कौन सहा करे ?

हूँसना-क्रि० स० [हिं० हूँस] नज़र लगाना ।

क्रि० अ० (१) ईर्ष्या से जलाना । (२) किसी वस्तु पर आँख गड़ाना । ललचाना । (४) भला बुरा कहना । कोसना । (५) रह रहकर चिढ़ना ।

हू‡*-अव्य० [वैदिक सं० उप = आगे, और । प्रा० उव, हिं० ऊ] एक अतिरेक-बोधक शब्द । भी । उ०—तुमहू कान्ह मनो भए आजु कालि के दानि ।—बिहारी ।

संज्ञा पुं० गीदड़ के बोलने का शब्द ।

हूक-संज्ञा स्त्री० [सं० हिक्का] (१) हृदय की पीड़ा । छाती या कलेजे का दर्द जो रह रहकर उठता है । साल ।

क्रि० प्र०—उठना ।—मारना ।

(२) दर्द । पीड़ा । कसक । (३) मानसिक वेदना । संताप । दुःख । उ०—भूलि हू चूक परी जौ कहूँ तिहि चूक की हूक न जाति हिये तें ।—पद्माकर । (४) धड़क । आशंका । खटका ।

हूकना-क्रि० अ० [हिं० हूक + —ना (प्रत्य०)] (१) सालना । दुखना । दर्द करना । कसकना । (२) पीड़ा से चौंक उठना । उ०—(क) कुच-तूँबी अब पीठि गड़ोऊँ । गहै जो हूकि गाढ़ रस धोऊँ ।—जायसी । (ख) त्यों पद्माकर पेखौ पलासन, पावक सी मनौ फूँकन लागी । वै ब्रजवारी बेचारी बधू बन बावरी लौं हिये हूकन लागीं ।—पद्माकर ।

हूबक-संज्ञा पुं० [देश०] युद्ध । (डिं०)

हूटना*†-क्रि० अ० [सं० हुड् = चलना] (१) हटना । टलना । (२) मुड़ना । पीठ फेरना ।

हूठा-संज्ञा पुं० [हिं० अँगूठा] (१) किसी को चाही वस्तु न देकर उसे चिढ़ाने के लिये अँगूठा दिखाने की अशिष्ट मुद्रा । ठेंगा । (२) अशिष्टों या गँवारों का बातचीत या विवाद में ऐंठ दिखाते हुए हाथ मटकाने की मुद्रा । भद्दी या गँवारू चेष्टा ।

मुहा०—हूठा देना = ठेंगा दिखाना । अशिष्टता से हाथ मटकाना । भद्दी चेष्टा करना । उ०—(क) नागरि बिबिध बिलास तजि बसी गँवैलिन माहिं । मूढ़नि में गनिबी कितौ हूठौ दै अठिलाहि ।—बिहारी । (ख) गदराने तन गोरटी, ऐपन आड़ लिलार । हूठ्यौ दै अठिलाय दृग, करै गँवारि सु मार ।—बिहारी ।

हूड़-वि० [हूण (जाति)] (१) हुड्ड । उजड्ड । अनगढ़ । (२) असावधान । बेख़बर । ध्यान न रखनेवाला । (३) गावदी । अनाड़ी । (४) हठी । ज़िद्दी ।

हूड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो पच्छिमी घाट (मलय पर्वत) के पहाड़ों से लेकर कन्याकुमारी तक होता है ।

हूण-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्राचीन मंगोल जाति जो पहले चीन की पूरबी सीमा पर लूटमार किया करती थी, पर पीछे अत्यंत प्रबल होकर एशिया और योरप के सभ्य देशों पर आक्रमण करती हुई फैली ।

विशेष—हूणों का इतना भारी दल चलता था कि उस समय के बड़े बड़े सभ्य साम्राज्य उनका अवरोध नहीं कर सकते थे । चीन की ओर से हटाए जाकर हूण लोग तुर्किस्तान पर अधिकार करके सन् ४०० ई० से पहले वंक्षु नद (आक्सस नदी) के किनारे आ बसे । यहाँ से उनकी एक शाखा ने तो योरप के रोम साम्राज्य की जड़ हिलाई और शेष पारस साम्राज्य में घुसकर लूट-पाट करने लगे । पारसवाले इन्हें 'हैताल' कहते थे । कालिदास के समय में हूण वंक्षु के ही किनारे तक आए थे, भारतवर्ष के भीतर नहीं घुसे थे; क्योंकि रघु के दिग्विजय के वर्णन में कालिदास ने हूणों का उल्लेख वहीं पर किया है । कुछ आधुनिक प्रतियों में 'वंक्षु' के स्थान पर 'सिंधु' पाठ कर दिया गया है, पर वह ठीक नहीं । प्राचीन मिली हुई रघुवंश की प्रतियों में 'वंक्षु' ही पाठ पाया जाता है । वंक्षु नद के किनारे से जब हूण लोग फारस में बहुत उपद्रव करने लगे, तब फ़ारस के प्रसिद्ध बादशाह बहराम गोर ने सन् ४२५ ई० में उन्हें पूर्ण रूप से परास्त करके वंक्षु नद के उस पार भगा दिया । पर बहराम गोर के पौत्र फ़ीरोज़ के समय में हूणों का प्रभाव फारस में बढ़ा । वे धीरे धीरे फारसी सभ्यता ग्रहण कर चुके थे और अपने नाम आदि फारसी ढंग के रखने लगे थे । फ़ीरोज़ को हरानेवाले हूण बादशाह का नाम खुशनेवाज था । जब फ़ारस में हूण साम्राज्य स्थापित न हो सका, तब हूणों ने भारतवर्ष की ओर रुख किया । पहले उन्होंने सीमांत प्रदेश कपिशा और गांधार पर अधिकार किया । फिर मध्य-देश की ओर चढ़ाई पर चढ़ाई करने लगे । गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त इन्हीं चढ़ाइयों में मारा गया । इन चढ़ाइयों से तत्कालीन गुप्त साम्राज्य निर्बल पड़ने लगा । कुमारगुप्त के पुत्र महाराज स्कंदगुप्त बड़ी योग्यता और वीरता से जीवन भर हूणों से लड़ते रहे । सन् ४५७ ई० अंतर्वेद, मगध आदि पर स्कंद-

गुप्त का अधिकार बराबर पाया जाता है। सन् ४६५ के उपरांत हूण प्रबल पड़ने लगे और अंत में स्कंदगुप्त हूणों के साथ युद्ध करने में मारे गए। सन् ४९९ ई० में हूणों के प्रतापी राजा तुरमान शाह (सं० तोरमाण) ने गुप्त साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर पूर्ण अधिकार कर लिया। इस प्रकार गांधार, काश्मीर, पंजाब, राजपूताना, मालवा और काठियावाड़ उसके शासन में आए। तुरमान शाह या तोरमाण का पुत्र मिहिरगुल (सं० मिहिरकुल) बड़ा ही अत्याचारी और निर्दय हुआ। पहले वह बौद्ध था, पर पीछे कट्टर शैव हुआ। गुप्तवंशीय नरसिंहगुप्त और मालव के राजा यशोधर्मन् से उसने सन् ५३२ में गहरी हार खाई और अपना इधर का सारा राज्य छोड़ वह काश्मीर भाग गया। हूणों में ये ही दो सम्राट् उल्लेख योग्य हुए। कहने की आवश्यकता नहीं कि हूण लोग कुछ और प्राचीन जातियों के समान धीरे धीरे भारतीय सभ्यता में मिल गए। राजपूतों में एक शाखा हूण भी है। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि राजपूताने और गुजरात के कुनबी भी हूणों के वंशज हैं।

हुदा–संज्ञा पुं० दे० "हूल", "हूला"।

हूनिया–संज्ञा स्त्री० [हूण (देश०)] एक प्रकार की भेड़ जो तिब्बत के पश्चिम भाग में पाई जाती है।

हूब–संज्ञा स्त्री० दे० "हुब्ब"।

हूबहू–वि० [अ०] ज्यों का त्यों। ठीक वैसा ही। बिलकुल समान।

हूय–संज्ञा पुं० [सं०] आह्वान। आवाहन। जैसे,—देव-हूय, पितृ हूय।

हूर–संज्ञा स्त्री० [अ०] मुसलमानों के स्वर्ग की अप्सरा।

हूरहूण–संज्ञा पुं० [सं०] हूणों की एक शाखा जिसने योरप में जाकर हलचल मचाई थी। श्वेतहूण।

हूरा–संज्ञा पुं० दे० "हूला"।

हूराहूरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक त्योहार या उत्सव जो दीवाली के तीसरे दिन होता है।

हूल–संज्ञा स्त्री० [सं० शूल] (१) भाले, डंडे, छुरे आदि की नोक या सिरे को ज़ोर से ठेलने अथवा भोंकने की क्रिया। (२) लासा लगाकर चिड़िया फँसाने का बाँस। (३) हूक। शूल। पीड़ा। (छाती या हृदय की) उ०—कोकिल केकी कोलाहल हूल उठी उठी उर में मति की गति लूली।—केशव।

क्रि० प्र०—उठना।

संज्ञा स्त्री० [अनु० सं० हुलहुल] (१) कोलाहल। हल्ला। धूम। (२) हर्षध्वनि। आनंद का शब्द। (३) ललकार। (४) खुशी। आनंद।

यौ०—हूलफूल।

हूलना–क्रि० स० [हिं० हूल+ना (प्रत्य०)] (१) लाठी, भाले, छुरे आदि की नोक या सिरे को ज़ोर से ठेलना या घुसाना। सिरे या फल को जोर से ठेलना या धँसाना। गोदना। गड़ाना। उ०—हूलै इतै पर मैन महावत, लाज के आँदू परे गथि पायँन।—पद्माकर। (२) शूल उत्पन्न करना।

हूश–वि० [हिं० हूड़] (१) असभ्य। जंगली। उजड्ड। (२) अशिष्ट। बेहूदा।

हूसड़–वि० दे० "हूश"।

हूह–संज्ञा स्त्री० [अनु०] हुंकार। कोलाहल। युद्धनाद। उ०—(क) चले हूह करि यूथप बंदर।—तुलसी। (ख) जय जय जय रघुबंस-मनि धाए कपि दइ हूह।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

हूहू–संज्ञा पुं० [अनु०] अग्नि के जलने का शब्द। लपट के उठने या लहराने का शब्द। धायँ धायँ। जैसे,—हूहू करके जलना।

संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम।

हृत–वि० [सं०] (१) जिसे ले गए हों। पहुँचाया हुआ। (२) हरण किया हुआ। लिया हुआ।

हृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ले जाना। हरण। (२) नाश। (३) लूट।

हृत्कंप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हृदय की कँपकँपी। दिल की धड़कन। (२) जी का दहलना। अत्यंत भय। दहशत।

हृत्पिंड–संज्ञा पुं० [सं०] हृदय का कोश या थैली। कलेजा।

हृद्–संज्ञा पुं० [सं०] हृदय। दिल।

हृदयंगम–वि० [सं०] मन में आया हुआ। मन में बैठा हुआ समझ में आया हुआ। जिसका सम्यक् बोध हो गया हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हृदय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छाती के भीतर बाईं ओर स्थित मांसकोश या थैली के आकार का एक भीतरी अवयव जिसमें स्पंदन होता है और जिसमें से होकर शुद्ध लाल रक्त नाड़ियों के द्वारा सारे शरीर में संचार करता है। दिल। कलेजा। वि० दे० "कलेजा"।

मुहा०—हृदय धड़कना = (१) हृदय का स्पंदन करना या कूदना। (२) भय या आशंका होना।

(२) छाती। वक्षस्थल।

मुहा०—हृदय से लगाना = आलिंगन करना। भेंटना। हृदय विदीर्ण होना = अत्यंत शोक होना। वि० दे० "छाती"।

(३) अंतःकरण का रागात्मक अंग। प्रेम, हर्ष, शोक, करुणा, क्रोध आदि मनोविकारों का स्थान। जैसे,—उसे हृदय नहीं है, तभी ऐसा निष्ठुर कर्म करता है।

मुहा०—हृदय उमड़ना = मन में प्रेम, शोक या करुणा का वेग

उत्पन्न होना। हृदय भर आना = दे० "हृदय उमड़ना"। वि० दे० "जी", "कलेजा"।

(४) अंतःकरण। मन। जैसे,—वह अपने हृदय की बात किसी से नहीं कहता।

मुहा०—हृदय की गाँठ = (१) मन का दुर्भाव। (२) कपट। कुटिलता। वि० दे० "जी", "मन"।

(५) अंतरात्मा। विवेक-बुद्धि। जैसे,—हमारा हृदय गवाही नहीं देता। (६) किसी वस्तु का सार भाग। (७) तत्व। सारांश। (८) गुह्य बात। गूढ़ रहस्य। (९) अत्यंत प्रिय व्यक्ति। प्राणाधार।

हृदयग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] कलेजा पकड़ने का रोग। कलेजे का शूल या ऐंठन।

हृदयग्राही-संज्ञा पुं० [सं० हृदयग्राहिन्] [स्त्री० हृदयग्राहिणी] (१) मन को मोहित करनेवाला। (२) रुचिकर। भानेवाला।

हृदयचोर-संज्ञा पुं० [सं०] मन को मोहनेवाला।

हृदयनिकेत-संज्ञा पुं० [सं०] मनसिज। कामदेव। उ०—सकल कला करि कोटि विधि हारेउ सेन समेत। चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदय-निकेत।—तुलसी।

हृदय-पुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] हृदय की धड़कन या स्पंदन।

हृदय-प्रमाथी-वि० [सं० हृदय-प्रमाथिन्] [स्त्री० हृदय-प्रमाथिनी] (१) मन को क्षुब्ध या चंचल करनेवाला। (२) मन मोहनेवाला।

हृदयवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] प्रेमपात्र। प्रियतम।

हृदयवान्-वि० [सं० हृदयवत्] [स्त्री० हृदयवती] (१) जिसके मन में प्रेम, करुणा आदि कोमल भाव उत्पन्न हों। सहृदय। (२) भावुक। रसिक।

हृदय-विदारक-वि० [सं०] (१) अत्यंत शोक उत्पन्न करनेवाला। (२) अत्यंत करुणा या दया उत्पन्न करनेवाला। जैसे,—हृदय-विदारक घटना।

हृदयवेधी-वि० [सं० हृदय-वेधिन्] [स्त्री० हृदय-वेधिनी] (१) मन को अत्यंत मोहित करनेवाला। जैसे,—हृदय-वेधी कटाक्ष। (२) अत्यंत शोक उत्पन्न करनेवाला। (३) बहुत अप्रिय या बुरा लगनेवाला। अत्यंत कटु। जैसे,—हृदय-वेधी वचन।

हृदय-संघट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] हृदय की गति का रुक जाना। दिल एकबारगी बेकाम हो जाना।

हृदयस्पर्शी-वि० [सं० हृदयस्पर्शिन्] [स्त्री० हृदयस्पर्शिणी] (१) हृदय पर प्रभाव डालनेवाला। दिल पर असर करनेवाला। (२) चित्त को द्रवीभूत करनेवाला। जिससे मन में दया या करुणा हो।

हृदयहारी-वि० [सं० हृदयहारिन्] [स्त्री० हृदयहारिणी] मन मोहनेवाला। जी को लुभानेवाला।

हृदयालु-वि० [सं०] (१) सहृदय। भावुक। (२) सुशील।

हृदयेश, हृदयेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० हृदयेश्वरी] (१) प्रेमपात्र। प्यारा। प्रियतम। (२) पति।

हृदयोन्मादिनी-वि० स्त्री० [सं०] (१) हृदय को उन्मत्त या पागल करनेवाली। (२) मन को मोहनेवाली।

संज्ञा स्त्री० संगीत में एक श्रुति।

हृदि-संज्ञा पुं० [सं० हृद् का अधिकरण रूप] हृदय में। उ०—द्वंद विपति भयफंद विभंजय। हृदि बसि राम काममद गंजय।—तुलसी।

हृद्गत-वि० [सं०] (१) हृदय का। मन का। आंतरिक। भीतरी। जैसे,—हृद्गत भाव। (२) मन में बैठा या जमा हुआ। समझ या ध्यान में आया हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) मनचाहा। प्रिय। रुचिकर।

हृद्रोल-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

हृद्य-वि० [सं०] (१) हृदय का। भीतरी। (२) हृदय को रुचनेवाला। अच्छा लगनेवाला। (३) सुंदर। लुभावना। (४) हृदय को शीतल करनेवाला। हृदय को हितकारी। (५) खाने में अच्छा। सुस्वादु। स्वादिष्ट। ज़ायकेदार।

संज्ञा पुं० (१) कपित्थ। कैथ। (२) शत्रु को वशीभूत करने का एक मंत्र। (३) सफेद जीरा। (४) दही। (५) मधु। महुए की शराब।

हृद्यगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेल का पेड़ या फल। (२) सोंचर नमक।

हृद्यांशु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हृद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ऋद्धि नाम की ओषधि या जड़ी। (२) बकरी।

हृषि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हर्ष। आनंद। (२) कांति। चमक। दमक। (३) झूठा आदमी।

हृषीक-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रिय।

यौ०—हृषीकेश।

हृषीकेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) श्रीकृष्ण। (३) पूस का महीना। (४) हरिद्वार के पास एक तीर्थस्थान।

हृषु-वि० [सं०] (१) हर्षित होनेवाला। प्रसन्न। (२) झूठ बोलनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) अग्नि। (२) सूर्य्य। (३) चंद्र।

हृष्ट-वि० [सं०] (१) हर्षित। अत्यंत प्रसन्न। आनंदयुक्त।

यौ०—हृष्टपुष्ट। हृष्टतुष्ट।

(२) खड़ा। उठा हुआ। (रोयाँ) (३) अकड़ा हुआ। कड़ा पड़ा हुआ।

हृष्टपुष्ट-वि० [सं०] मोटा ताज़ा। तैयार। तगड़ा।

हृष्टवृक-संज्ञा पुं० [सं०] हिरण्याक्ष दैत्य के नौ पुत्रों में से एक। (गर्गसंहिता)

हृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हर्ष। प्रसन्नता। (२) इतराना। गर्व से फूलना।

हृष्टयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नपुंसक। ईर्ष्यक नपुंसक।

हृष्यका-संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक मूर्च्छना जिसका स्वर ग्राम इस प्रकार है—प ध नि स रे ग म। ध नि स रे ग म प ध नि स रे ग।

हेंहें-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) धीरे से हँसने का शब्द। (२) दीनता-सूचक शब्द। गिड़गिड़ाने का शब्द।

मुहा०—हेंहें करना = गिड़गिड़ाना। दीनता दिखाना।

हेंगा†-संज्ञा पुं० [सं० अभ्यङ्ग = पोतना] जुते हुए खेत की मिट्टी बराबर करने का पाटा। मैड़ा। पहटा।

हे-अव्य० [सं०] संबोधन का शब्द। पुकारने में नाम लेने के पहले कहा जानेवाला शब्द।

ॐ† क्रि० अ० ब्रज 'हो' (= था) का बहुवचन। थे।

हेउँती-संज्ञा स्त्री० [देश०] देसावरी रूई। (धुनिया)

हेकड़-वि० [हिं० हिया + कड़ा] (१) हृष्ट-पुष्ट। मज़बूत। कड़े बदन का। मोटा ताजा। (२) जबरदस्त। प्रबल। प्रचंड। बली। (३) अक्खड़। उजड्ड। (४) तौल में पूरा। जो वज़न में दबता न हो। जैसे,—उसकी तौल हेकड़ है।

हेकड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हेकड़] (१) अधिकार या बल दिखाने की क्रिया या भाव। अक्खड़पन। उग्रता। जैसे,—हेकड़ी मत दिखाओ, सीधे से बात करो। (२) ज़बरदस्ती। बलात्कार। जैसे,—अपनी हेकड़ी से वह दूसरों की चीज़ें ले लेता है।

हेच-वि० [फ़ा०] (१) तुच्छ। नाचीज़। किसी गिनती में नहीं। (२) जिसमें कुछ तत्व न हो। निःसार। पोच।

हेठ†-वि० [सं० अधस्थः, प्रा० अहट्ठ] (१) नीचा। जो नीचे हो। (२) घट कर। कम।

क्रि० वि० नीचे।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) विघ्न। बाधा। (२) हानि। (३) आघात। चोट।

हेठा-वि० [हिं० हेठ] (१) नीचा। जो नीचे हो। (२) प्रतिष्ठा या बड़ाई में घटकर। कम। (३) तुच्छ। नीच।

हेठापन-संज्ञा पुं० [हिं० हेठा + पन (प्रत्य०)] तुच्छता। नीचता। क्षुद्रता।

हेठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हेठा] (१) प्रतिष्ठा में कमी। मानहानि। गौरव का नाश। हीनता। तौहीन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) जहाज में पाल का पाया। (लश०)

हेड-संज्ञा पुं० [अं०] ऊँचा अफ़सर। प्रधान। जैसे,—हेड मास्टर हेड कानस्टिबल।

हेड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] मांस। गोश्त।

हेड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लेहँड़ी] चौपायों का समूह जिसे बनजारे बिक्री के लिये लेकर चलते हैं।

संज्ञा पुं० [हिं० अहेरी] शिकारी। व्याध।

हेतॐ-संज्ञा पुं० दे० "हेतु"।

हेति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वज्र। भाला। (२) अस्त्र। (३) घाव। चोट। (४) आग की लपट। लौ। (५) सूर्य्य की किरन। (६) धनुष की टंकार। (७) औजार। यंत्र। (८) अंकुर। अँखुवा।

संज्ञा पुं० (१) प्रथम राक्षस राजा जो मधुमास या चैत्र में सूर्य्य के रथ पर रहता है। यह प्रहेति का भाई और विद्युत्केश का पिता कहा गया है। (वैदिक) (२) एक असुर का नाम। (भागवत)

हेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह बात जिसे ध्यान में रखकर कोई दूसरी बात की जाय। प्रेरक भाव। अभिप्राय। उद्देश्य। जैसे,—उसके आने का हेतु क्या है? तुम किस हेतु वहाँ जाते हो? (२) वह बात जिसके होने से ही कोई दूसरी बात हो। कारक या उत्पादक विषय। कारण। वजह। सबब। जैसे,—दूध बिगड़ने का यही हेतु है। उ०—(क) कौन हेतु बन बिचरहु स्वामी?—तुलसी। (ख) केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि निवारई।—तुलसी। (३) वह व्यक्ति या वस्तु जिसके होने से कोई बात हो। कारक व्यक्ति या वस्तु। उत्पन्न करनेवाला व्यक्ति या वस्तु। उ०—महीं सकल अनरथ कर हेतू।—तुलसी। (४) वह बात जिसके होने से कोई दूसरी बात सिद्ध हो। प्रमाणित करनेवाली बात। ज्ञापक विषय। जैसे,—जो हेतु तुमने दिया, उससे यह सिद्ध नहीं होता।

विशेष—न्याय में तर्क के पाँच अवयवों में से 'हेतु' दूसरा अवयव है जिसका लक्षण है—"उदाहरण के साधर्म्य या वैधर्म्य से साध्य के धर्म का साधन"। जैसे,—प्रतिज्ञा—यह पर्वत वह्निमान् है। हेतु—क्योंकि यह धूमवान् है। उ०—जो धूमवान् होता है, वह वह्निमान् होता है; जैसे,—रसोईघर।

(५) तर्क। दलील।

यौ०—हेतुविद्या, हेतुशास्त्र, हेतुवाद।

(६) मूल कारण। (बौद्ध)

विशेष—बौद्धदर्शन में मूल कारण को 'हेतु' तथा अन्य कारणों को 'प्रत्यय' कहते हैं।

(७) एक अर्थालंकार जिसमें हेतु और हेतुमान् का अभेद से कथन होता है, अर्थात् कारण ही कार्य्य कह दिया जाता

है। जैसे,—धृत ही बल है। उ०—मो संपति जदुपति सदा बिपति-बिदारनहार।

विशेष—ऊपर दिया हुआ लक्षण रुद्रट का है जिसे साहित्य-दर्पणकार ने भी माना है। कुछ आचार्य्यों ने किसी चमत्कार-पूर्ण हेतु के कथन को ही 'हेतु' अलंकार माना है और किसी किसी ने उसे काव्य लिंग ही कहा है।

संज्ञा पुं० [सं० हित] (१) लगाव। प्रेम-संबंध। (२) प्रेम। प्रीति। अनुराग। उ०—पति हिय हेतु अधिक अनुमानी। बिहँसि उमा बोली प्रिय बानी।—तुलसी।

हेतुभेद–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में ग्रहयुद्ध का एक भेद। (बृहत्संहिता)

हेतुमान्–वि० [सं० हेतुमत्] [स्त्री० हेतुमती] जिसका कुछ हेतु या कारण हो।

संज्ञा पुं० वह जिसका कुछ कारण हो। कार्य्य।

हेतुवाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब बातों का हेतु ढूँढ़ना या सबके विषय में तर्क करना। तर्कविद्या। (२) कुतर्क। नास्तिकता। उ०—राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है। नीति प्रतीति प्रीति परिमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है।—तुलसी।

हेतुवादी–वि० [सं० हेतुवादिन्] [स्त्री० हेतुवादिनी] (१) तार्किक। दलील करनेवाला। (२) कुतर्की। नास्तिक।

हेतुविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्कशास्त्र।

हेतुशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] तर्कशास्त्र।

हेतुहिल–संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत बड़ी संख्या। (बौद्ध)

हेतुहेतुमद्भाव–संज्ञा पुं० [सं०] कार्य्य-कारण भाव। कारण और कार्य्य का संबंध।

हेतुहेतुमद्भूत काल–संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में क्रिया के भूतकाल का वह भेद जिसमें ऐसी दो बातों का न होना सूचित होता है जिनमें दूसरी पहली पर निर्भर होती है। जैसे,—यदि तुम मुझसे माँगते तो मैं अवश्य देता।

हेतूपमा–संज्ञा स्त्री० दे० "उत्प्रेक्षा" (२)।

हेत्वपह्नुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अपह्नुति अलंकार जिस में प्रकृत के निषेध का कुछ कारण भी दिया जाय। वि० दे० "अपह्नुति"।

हेत्वाभास–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में किसी बात को सिद्ध करने के लिये उपस्थित किया हुआ वह कारण जो कारण सा प्रतीत होता हुआ भी ठीक कारण न हो। असत्हेतु।

विशेष—हेत्वाभास पाँच प्रकार का कहा गया है—सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम और कालातीत। (१) जो हेतु और दूसरी बात भी उसी प्रकार सिद्ध करे अर्थात् ऐकांतिक न हो वह 'सव्यभिचार' कहलाता है। जैसे, शब्द नित्य है क्योंकि वह अमूर्त्त है; जैसे—परमाणु। यहाँ अमूर्त्त होना जो भेद दिया गया है, वह बुद्धि का उदाहरण लेने से शब्द को अनित्य भी सिद्ध करता है। (२) जो हेतु प्रतिज्ञा के ही विरुद्ध पड़े, वह विरुद्ध कहलाता है। जैसे,—घट उत्पत्ति धर्मवाला है, क्योंकि वह नित्य है। (३) जिस हेतु में जिज्ञास्य विषय (प्रश्न) ज्यों का त्यों बना रहता है, वह 'प्रकरण सम' कहलाता है। जैसे,—शब्द अनित्य है, उसमें नित्यता नहीं है। (४) जिस हेतु को साध्य के समान ही सिद्ध करने की आवश्यकता हो, उसे 'साध्यसम' कहते हैं। जैसे,—छाया द्रव्य है क्योंकि उसमें गति है। यहाँ छाया में स्वतः गति है, इसे साबित करने की आवश्यकता है। (५) यदि हेतु ऐसा दिया जाय जो कालक्रम के विचार से साध्य पर न घटे, तो वह कालातीत कहलाता है। जैसे,—शब्द नित्य है, क्योंकि उसकी अभिव्यक्ति संयोग से होती है। जैसे,—घट के रूप की। यहाँ घट का रूप दीपक के संयोग के पहले भी था, पर ढोल का शब्द लकड़ी के संयोग के पहले नहीं था।

हेमंत–संज्ञा पुं० [सं०] छः ऋतुओं में से पाँचवीं ऋतु जिसमें अगहन और पूस के महीने पड़ते हैं। जाड़े का मौसिम। शीतकाल।

हेमंतनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ। कैथ।

हेम–संज्ञा पुं० [सं० हेमन्] (१) हिम। पाला। बर्फ़। उ०—ऊधो! अब यह समुझ भई! नँदनंदन के अंग अंग प्रति उपमा न्याय दई। आनन इंदु बरन सम्मुख तजि करखे तें न नई। निरमोही नहिं नेह, कुमुदिनी अंतहि हेम हई।—सूर। (२) स्वर्णखंड। सोने का टुकड़ा। (३) सोना। सुवर्ण। स्वर्ण। (४) कपित्थ। कैथ। (५) नाग केसर। (६) एक माशे की तौल। (७) बादामी रंग का घोड़ा। (८) बुद्ध का एक नाम।

हेमकंदल–संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा।

हेमकांति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बन-हलदी। (२) आँबा-हलदी।

हेमकूट–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के उत्तर का एक पर्वत जो पुराणानुसार किंपुरुष वर्ष और भारतवर्ष की सीमा पर स्थित है।

हेमकेश–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

हेमगंधिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] रेणुका नामक गंध-द्रव्य।

हेमगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर दिशा का एक पर्वत। (वाल्मीकि०)

हेमगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत (जो सोने का कहा गया है)।

हेमगौर–संज्ञा पुं० [सं०] किंकिरात वृक्ष।

हेमघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा धातु।

हेमघ्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी।

हेमचंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इक्ष्वाकुवंशी एक राजा जो विशाल का पुत्र था। (२) एक प्रसिद्ध जैन आचार्य्य जो ईसवी

सन् १०८९ और ११७३ के बीच हुए थे और गुजरात के राजा कुमारपाल के गुरु थे। इन्होंने व्याकरण और कोश के कई ग्रंथ लिखे हैं। जैसे,—अनेकार्थकोश, अभिधान चिंतामणि, संस्कृत और प्राकृत का व्याकरण, देशीनाममाला, उणादिसूत्र वृत्ति इत्यादि।

हेमज-संज्ञा पुं० [सं०] राँगा।

हेमतरु-संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा।

हेमतार-संज्ञा पुं० [सं०] नीला थोथा। तूतिया।

हेमताल-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तराखंड का एक पहाड़ी देश।

हेमतुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] तौल में किसी के बराबर सोने का दान। सोने का तुलादान।

हेमदंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा। (हरिवंश)

हेमदुग्ध-संज्ञा पुं० [सं०] गूलर। ऊमर।

हेमधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० हेमधन्वन्] ११वें मनु के एक पुत्र का नाम।

हेमपर्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुमेरु पर्वत। (२) दान के लिये सोने की राशि। (यह महादानों में है।)

हेमपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपा। (२) अशोक। (३) नागकेसर। (४) अमलतास। गिरमाला।

हेमपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोनजुही। (२) गुड़हर।

हेमपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मजीठ। (२) मूसली कंद। (३) कंटकारी।

हेमफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का केला।

हेममय-वि० [सं०] सुनहरा।

हेममाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] यम की पत्नी का नाम।

हेममाली-संज्ञा पुं० [सं० हेममालिन्] (१) सूर्य्य। (२) एक राक्षस जो खर का सेनापति था।

हेमयूथिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोनजुही।

हेमरागिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी।

हेमरेणु-संज्ञा पुं० [सं०] त्रसरेणु।

हेमलंब, हेमलंबक-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से ३१वाँ संवत्सर।

हेमल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोनार। (२) कसौटी। (३) गिरगिट। (४) छिपकली।

हेमवल-संज्ञा पुं० [सं०] मोती। मुक्ता।

हेमशिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णक्षीरी का पौधा।

हेमसागर-संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जो बगीचों में लगाया जाता है और पंजाब के पहाड़ों में आप से आप उगता है। इसे 'ज़ख़्म हयात' भी कहते हैं।

हेमसार-संज्ञा पुं० [सं०] नीलाथोथा। तूतिया।

हेमसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती। दुर्गा।

हेमांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपा। (२) सिंह। (३) मेरुपर्वत। (४) ब्रह्मा। (५) विष्णु। (६) गरुड़।

हेमांगद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोने का बिजायठ। (२) वह जो सोने का बिजायठ पहने हो। (३) वसुदेव के एक पुत्र का नाम। (४) कलिंग देश के एक राजा का नाम।

हेमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माधवी लता। (२) पृथ्वी। (३) सुंदरी स्त्री। (४) एक अप्सरा जिससे मंदोदरी उत्पन्न हुई थी।

हेमाचल-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत।

हेमाद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुमेरु पर्वत। (२) एक प्रसिद्ध ग्रंथकार जो ईसा की १३वीं शताब्दी में विद्यमान था और जिसने पाँच खंडों (दान, व्रत, तीर्थ, मोक्ष और परिशेष) में 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' नाम का एक बड़ा ग्रंथ लिखा है।

हेमाद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णक्षीरी नाम का पौधा।

हेमाल-संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो दीपक का पुत्र कहा जाता है।

हेमियानी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रुपया पैसा रखने की जालीदार लंबी थैली जो कमर में बाँधी जाती है।

हेम्न-संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह।

हेम्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] संकीर्ण राग का एक भेद।

हेय-वि० [सं०] (१) छोड़ने योग्य। न ग्रहण करने योग्य। त्याज्य। (२) बुरा। ख़राब। निकृष्ट। उपादेय का उलटा। (३) जानेवाला। जाने योग्य।

हेरंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणेश। (२) भैंसा। (३) धीरोद्धत नायक। (४) एक बुद्ध का नाम।

हेर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरीट। (२) हलदी। (३) आसुरी माया।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० हेरना] ढूँढ़। तलाश। खोज।

संज्ञा पुं० दे० "अहेर"।

हेरक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक गण का नाम।

हेरना†-क्रि० स० [सं० आखेट, हिं० अहेर] (१) ढूँढ़ना। खोजना। तलाश। करना। पता लगाना। उ०—(क) लागीं सब मिलि हेरै, बूड़ि बूड़ि एक साथ। कोइ उठी मोती लेइ, काहू घोंघा हाथ।—जायसी। (ख) बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलै ताहि सब घेरहिं।—तुलसी। (२) देखना। ताकना। अवलोकन करना। उ०—(क) जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु, जिन्ह प्रभु हेरे। ते सब भए परमपद-जोगू।—तुलसी। (ख) अलि! एकंत पाय पायँन परे हैं आय, हौं न तब हेरी या गुमान बजमारे सों।—पद्माकर। (ग) क्यों हँसि हेरि हरयो हियरा?—घनानंद। (३) जाँचना। परखना।

विचारना। उ०—हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तियभूषन तिय को।—तुलसी।

हेरना फेरना—क्रि० स० [हेरना अनु० + हिं० फेरना] (१) इधर का उधर करना। (२) अदल बदल करना। बदलना। परिवर्तन करना।

मुहा०—हेर फेर कर = घूम फिर कर। इधर उधर होते हुए।

हेर फेर—संज्ञा पुं० [हिं० हेरना + फेरना] (१) घुमाव। चक्कर। (२) वचन की वक्रता। बात का आडंबर। जैसे, हमें हेर फेर की बात नहीं भाती। (३) कुटिल युक्ति। दावँ पेच। चाल। (४) अदल-बदल। उलट पलट। इधर का उधर और उधर का इधर होना। क्रम विपर्य्यय। जैसे,—अक्षरों का हेर फेर हो गया। (५) अंतर। फ़र्क़। जैसे—दोनों के दाम में ५) का हेर फेर है। (६) अदला-बदला। विनिमय। लेन-देन या ख़रीद-फरोख़्त का व्यवहार। जैसे,—वहाँ नित्य लाखों का हेर फेर होता है।

हेरवा†—संज्ञा पुं० [हिं० हेरना] तलाश। ढूँढ। खोज।

क्रि० प्र०—पड़ना।

हेरवाना†—क्रि० स० [हिं० हेराना] खोना। गँवाना।

क्रि० स० [हिं० हेरना का प्रे०] ढुँढ़वाना। तलाश कराना।

हेराना†—क्रि० अ० [सं० हरण] (१) खो जाना। असावधानी के कारण पास से निकल जाना। न जाने क्या होना। न जाने कहाँ चला जाना या न रह जाना। उ०—हेरि रही कब तें यहि ठाँ मुँदरी को हेरानो कहूँ नग मेरो।—शंभु।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) न रह जाना। कहीं न मिलना। अभाव हो जाना। उ०—गुन न हेरानो, गुन-गाहक हेरानो है। (३) लुप्त हो जाना। नष्ट हो जाना। तिरोहित हो जाना। लापता होना। उ०—रहा जो रावन केर बसेरा। गा हेराय, कहुँ मिलै न हेरा।—जायसी। (४) फीका पड़ जाना। मंद पड़ जाना। कांतिहीन होना। उ०—आनन के ढिग होत सखी अरविंद की दुतिहू है हेरानी। (५) आत्म-विस्मृत होना। अपनी सुध-बुध भूलना। लीन होना। तन्मय होना। उ०—सो छबि हेरि हेराय रहे हरि, कौन को रूसिबो काको मनावन।

क्रि० स० [हिं० हेरना का प्रे०] खोजवाना। ढुँढ़वाना। तलाश कराना। उ०—हार गँवाइ सो ऐसै रोवा। हेरि हेराइ लेइ जौ खोवा।—जायसी।

हेराफेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हेरना + फेरना] (१) हेरफेर। अदल-बदल। (२) यहाँ की चीज वहाँ और वहाँ की चीज़ यहाँ होना। इधर का उधर होना या करना। जैसे,—चोर चोरी से गया तो क्या हेराफेरी से भी गया?

हेरिक—संज्ञा पुं० [सं०] भेद लेनेवाला दूत। गुप्तचर।

हेरियाना—क्रि० अ० [देश०] जहाज़ के अगले पालों की रस्सियाँ तानकर बाँधना। हेरिया मारना। (लश०)

हेरी†॥—संज्ञा स्त्री० [संबोधन हे + री] पुकार। टेर।

मुहा०—हेरी देना = चिल्लाकर नाम लेना। पुकारना। आवाज़ देना। टेरना। उ०—हेरी देत सखा सब आए चले चरावन गैयाँ।—सूर।

हेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणेश का एक नाम। (२) महाकाल शिव का एक गण। (३) एक बोधिसत्व का नाम। (४) एक प्रकार के नास्तिक।

हेल—संज्ञा पुं० [हिं० हिलना] घनिष्ठता। मेलजोल। (यह शब्द अकेले नहीं आता, 'मेल' के साथ आता है।)

यौ०—हेलमेल।

संज्ञा पुं० [हिं० हील] (१) कीचड़, गोबर इत्यादि। (२) गोबर का खेप। जैसे,—दो हेल गोबर डाल जा। (३) मैला। गलीज़। (४) घृणा। घिन।

हेलन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुच्छ समझना। परवा न करना। तिरस्कार करना। अवज्ञा करना। (२) क्रीड़ा करना। केलि करना। किलोल करना। (३) अपराध। क़सूर।

हेलना॥—क्रि० अ० [सं० हेलन] (१) क्रीड़ा करना। केलि करना। (२) विनोद करना। हँसी ठट्ठा करना। ठिठोली करना। उ०—मोहिं न भावत ऐसी हँसी 'द्विजदेव' सबै तुम नाहक हेलति।—द्विजदेव। (३) खेल समझना। परवा न करना। उ०—को तुम अस बन फिरहु अकेले सुंदर जुवा जीव पर हेले।—तुलसी।

क्रि० स० (१) तुच्छ समझना। अवज्ञा करना। तिरस्कार करना। (२) ध्यान न देना। परवा न करना।

† क्रि० अ० [हिं० हिलना, हलना] (१) प्रवेश करना। पैठना। घुसना। दाखिल होना। (विशेषतः पानी में) (२) तैरना।

हेल मेल—संज्ञा पुं० [हिं० हेलमेल] (१) मिलने जुलने, आने जाने, साथ उठने बैठने आदि का संबंध। घनिष्ठता। मित्रता। रब्त ज़ब्त। जैसे,—इस बड़े आदमियों से उनका हेलमेल है। (२) संग। साथ। सुहबत। (३) परिचय।

क्रि० प्र०—करना।—बढ़ाना।—होना।

हेलया—क्रि० वि० [सं०] (१) खेल ही खेल में। (२) सहज में।

हेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तुच्छ समझना। अवज्ञा। तिरस्कार। (२) ध्यान न देना। बेपरवाई। (३) खेल। खिलवाड़। क्रीड़ा। (४) बहुत सहज बात। बहुत आसान काम। (५) शृंगारचेष्टा। प्रेम की क्रीड़ा। केलि। (६) साहित्य में अनुभावांतर्गत एक प्रकार का 'हाव' अर्थात् संयोग-समय में स्त्रियों की मनोहर चेष्टा। नायक से मिलने के समय नायिका की विविध विलास या विनोद-सूचक मुद्रा।

उ०—छीनि पितंबर कम्मर तें सु विदा दई मीढ़ि कपोलन रोरी। नैन नचाय कही मुसकाय "लला फिर आइयो खेलन होरी"।

विशेष—संस्कृत के आचार्यों ने 'हेला' को नायिका के अट्ठाईस सात्विक अलंकारों में गिना है और उसे अति स्फुटता से लक्षित संभोगाभिलाष का भाव कहा है।

संज्ञा पुं० [हिं० हल्ला] (१) पुकार। चिल्लाहट। हाँक। हल्ला।

क्रि० प्र०—मारना।

(२) धावा। आक्रमण। चढ़ाई।

संज्ञा पुं० [हिं० रेलना = ठेलना] ठेलने की क्रिया या भाव। किसी भारी वस्तु को खिसकाने या हटाने के लिये लगाया हुआ जोर। धक्का।

क्रि० प्र०—मारना।

संज्ञा पुं० [हिं० हेल, हील = गलीज़] [स्त्री० हेलिन] ग़लीज़ उठानेवाला। मैला साफ़ करनेवाला। हलालखोर मेहतर।

संज्ञा पुं० [हिं० हेल = खेप] (१) उतना बोझ जितना एक बार टोकरे या नाव, गाड़ी आदि में ले जा सकें। खेप। खेवा। (२) बारी। पारी।

मुहा०—अब के हेले = इस बार। इस दफ़ा।

हेलान—संज्ञा पुं० [देश०] डाँड़े को नाव पर रखना। (लश०)

हेलाल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) दूज का चाँद। (२) बँधी हुई पगड़ी की वह उठी ऐंठन जो सामने माथे के ऊपर पड़ती है। बत्तीसी।

हेलिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० हेला] ग़लीज उठानेवाली। हलालखोरिन। मेहतरानी।

हेलीॐ—अव्य० [संबो० हे + अली] हे सखी!

संज्ञा स्त्री० सहेली। सखी।

हेलुवा—संज्ञा पुं० [हिं० हेलना] पानी में खड़े होकर एक दूसरे के ऊपर पानी का हिलोरा या छींटा मारने का खेल।

‡संज्ञा पुं० दे० "हलवा"।

हेवंतॐ—संज्ञा पुं० दे० "हेमंत"।

हेवाँर‡—संज्ञा पुं० [सं० हिमालि] पाला। हिम। बर्फ़।

हैं—अव्य० (१) एक आश्चर्य-सूचक शब्द। जैसे,—हैं! यह क्या हुआ? (२) एक निषेध या असम्मति-सूचक शब्द। जैसे,—हैं! यह क्या करते हो?

यौ०—हैं हैं।

क्रि० अ० सत्तार्थक क्रिया 'होना' के वर्त्तमान रूप "है" का बहुवचन।

हैंगिंग लैंप—संज्ञा पुं० [अं०] छत में लटकाने का लंप।

हैंगुल—वि० [सं०] हिंगुल-संबंधी। इंगुर का।

हैंड बैग—संज्ञा पुं० [अं०] चमड़े का एक छोटा बक्स या लंबोतरा थैला जिसे सफर में हाथ में रखते हैं।

हैंडिल—संज्ञा पुं० [अं०] मुठिया। दस्ता।

हैंस—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पौधा जिसकी जड़ जहरीले फोड़ों पर जलाने के लिये घिसकर लगाई जाती है।

है—क्रि० अ० हिं० क्रि० 'होना' का वर्त्तमान कालिक एक वचन रूप।

‡ॐ संज्ञा पुं० दे० "हय"।

हैकड़—वि० दे० "हेकड़"।

हैकल—संज्ञा स्त्री० [सं० हय + गल] (१) एक गहना जो घोड़ों के गले में पहनाया जाता है। (२) चौकोर या पान के से दानों की गले में पहनने की एक प्रकार की माला। तावीज़। हुमेल।

हैजम—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) सेना की पंक्ति। (२) तलवार। (डिं०)

हैजा—संज्ञा पुं० [अ० हैज़ः] दस्त और कै की बीमारी जो मरी या संक्रामक रूप में फैलती है। विशूचिका।

हैट—संज्ञा पुं० [अं०] छज्जेदार अँगरेज़ी टोपी जिससे धूप का बचाव होता है।

हैटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अंगूर।

हैतुक—वि० [सं०] (१) जिसका कोई हेतु हो। जो किसी हेतु या उद्देश्य से किया जाय। (२) अवलंबित। निर्भर।

संज्ञा पुं० (१) तार्किक। तर्क करनेवाला। (२) कुतर्की। (३) संशयवादी। नास्तिक। (४) मीमांसा का मत माननेवाला।

हैन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास। तकड़ी।

हैफ़—अव्य० [अ०] खेद या शोक-सूचक शब्द। अफ़सोस। हाय। हा। उ०—हरो हरो रंग देखि कै भूलत है मन हैफ। नीम पतौवन में मिलै कहूँ भाँग को कैफ।—रसनिधि।

हैबत—संज्ञा स्त्री० [अ०] भय। त्रास। दहशत।

हैबतनाक—वि० [अ०] भयानक। डरावना।

हैबरॐ—संज्ञा पुं० [सं० हयवर] अच्छा घोड़ा।

हैम—वि० [सं०] [स्त्री० हैमी] (१) सोने का। स्वर्णमय। सोने का बना हुआ। (२) सुनहरे रंग का।

संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम। (२) चिरायता।

वि० [सं०] हिम-संबंधी। पाले का। बर्फ़ का। (२) जाड़े का। जाड़े में होनेवाला। (३) बर्फ़ में होनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) पाला। (२) ओस।

हैमना—वि० [सं०] जाड़े का। शीतकाल का।

संज्ञा पुं० (१) पूस का महीना। (२) साठी धान।

हैमवत—वि० [सं०] [स्त्री० हैमवती] (१) हिमालय का। हिमालय-संबंधी। (२) हिमालय पर होनेवाला। हिमालय से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० (१) हिमालय का निवासी। (२) एक प्रकार का विष। (३) एक राक्षस का नाम। (४) एक संप्रदाय का नाम। (५) मोती। (६) पुराणानुसार पृथ्वी के एक वर्ष या खंड का नाम।

हैमवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उमा। पार्वती। (२) गंगा। (३) सफेद फूल की बच। (४) हरीतकी। हड़। (५) अलसी। अतसी। तीसी। (६) रेणुका नामक गंधद्रव्य।

हैमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोनजुही। (२) ज़र्द चमेली।

हैमी-वि० स्त्री० [सं०] सोने की। सोने की बनी।

संज्ञा स्त्री० (१) केतकी। (२) सोनजुही।

हैयंगवीन-संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन पहले के दूध के मक्खन से बनाया हुआ घी। ताजे मक्खन का घी।

हैरंब-वि० [सं०] गणेश-संबंधी।

संज्ञा पुं० गणेश का उपासक संप्रदाय। गाणपत्य।

हैरण्य-वि० [सं०] (१) हिरण्य संबंधी। सोने का। सोने का बना हुआ। (२) सोना उत्पन्न करनेवाला।

हैरण्यक-संज्ञा पुं० [सं०] सोनार।

हैरत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आश्चर्य। अचरज। अचंभा। तअज्जुब। (२) एक मुक़ाम या फ़ारसी राग का पुत्र।

हैरान-वि० [अ०] (१) आश्चर्य से। स्तब्ध। चकित। दंग। भौचक्का। जैसे,—(क) मैं उसे एकबारगी यहाँ देखकर हैरान हो गया। (ख) ताज की कारीगरी देख लोग हैरान हो जाते हैं। श्रम, कष्ट या झंझट से व्याकुल। विकल। (२) परेशान। व्यग्र। तंग। जैसे,—तुमने मुझे नाहक़ धूप में हैरान किया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हैवान-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पशु। जानवर। 'इंसान' का उलटा। (२) जड़ मनुष्य। बेवकूफ़ या गँवार आदमी। उजड्ड आदमी।

हैवानी-वि० [अ० हैवान] (१) पशु का। (२) पशु के करने योग्य। जैसे,—हैवानी काम।

हैसियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) योग्यता। सामर्थ्य। शक्ति। (२) वित्त। धनबल। समाई। बिसात। आर्थिक दशा। जैसे,—उसकी हैसियत ऐसी नहीं है कि गाड़ी घोड़ा रख सके। (३) मूल्य। (४) श्रेणी। दरजा। जैसे,—इस मकान की हैसियत के हिसाब से ४०००) दाम बहुत है। (५) मान-मर्य्यादा। प्रतिष्ठा। (६) धन। दौलत। जायदाद। जैसे,—उसने अच्छी हैसियत पैदा की है।

हैहय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक क्षत्रिय वंश जो यदु से उत्पन्न कहा गया है। पुराणों में इस वंश की पाँच शाखाएँ कही गई हैं—तालजंघ, वीतिहोत्र, आवंत्य, तुंडिकेर और जात। लिखा है कि हैहयों ने शकों के साथ साथ भारत के अनेक देशों को जीता था। प्राचीन काल का इस वंश का सब से प्रसिद्ध राजा कार्तवीर्य्य सहस्रार्जुन हुआ था जिसे परशुराम ने मारा था।

विशेष—इतिहास में हैहय वंश कलचुरि के नाम से प्रसिद्ध है। विक्रम संवत् ५५० और ७९० के बीच हैहयों का राज्य चेदि देश और गुजरात में था। हैहयों ने एक संवत् भी चलाया था जो कलचुरि संवत् कहलाता था और विक्रम संवत् ३०६ से आरंभ होकर १४वीं शताब्दी तक इधर उधर चलता रहा। हैहयों का शृंखलाबद्ध इतिहास विक्रम संवत् ९२० के आसपास से मिलता है इसके पूर्व चौलुक्यों आदि के प्रसंग में इधर उधर उल्लेख मिलता है। कोकल्लदेव (वि० सं० ९२०–९६०), मुग्धतुंग, बालहर्ष केयूरवर्ष (संवत् ९९० के लगभग), शंकरगण, युवराजदेव (वि० १०५० के लगभग) गांगेयदेव, कर्णदेव आदि बहुत से नाम शिलालेखों में हैहय राजाओं के मिलते हैं।

(२) हैहयवंशी कार्त्तवीर्य्य सहस्रार्जुन। (३) पश्चिम दिशा का एक पर्वत। (बृहत्संहिता)

हैहयराज-संज्ञा पुं० [सं०] हैहयवंशी कार्त्तवीर्य्य सहस्रार्जुन। उ०—जब हन्यौ हैहयराज इन बिनु छत्र छितिमंडल करयो।—केशव।

है है-अव्य० [हा हा] शोक, खेद या दुःख-सूचक शब्द। हाय। अफ़सोस। हा हंत!

हो-क्रि० अ० सत्तार्थक क्रिया 'होना' का बहुवचन संभाव्य काल का रूप। जैसे,—(क) शायद वे वहाँ हों। (ख) यदि वे वहाँ हों तो यह कह देना।

होंठ-संज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ, प्रा० हिं० ओठ] प्राणियों के मुख विवर का उभरा हुआ किनारा जिससे दाँत ढँके रहते हैं। ओष्ठ। रदच्छद।

मुहा०—होंठ काटना या चबाना = भीतरी क्रोध या क्षोभ प्रकट करना। होंठ चाटना = किसी बहुत स्वादिष्ट वस्तु को खाकर अतृप्ति प्रकट करना। और खाने की इच्छा या लालच करना। जैसे,—हलवा ऐसा बना था कि लोग होंठ चाटते रह गए। होंठ चिपकना = मीठी वस्तु का नाम सुनकर लालच होना। होंठ चूसना = होंठों का चुंबन करना। होंठ हिलाना = बोलने के लिये मुँह खोलना। बोलना।

होंठल-वि० [हिं० होंठ + ल (प्रत्य०)] मोटे होंठोंवाला।

होंठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० होंठ] (१) बारी। किनारा। औंठ। (२) छोटा टुकड़ा।

हो-संज्ञा पुं० [सं०] पुकारने का शब्द या संबोधन।

क्रि० अ० (१) सत्तार्थक क्रिया 'होना' के अन्यपुरुष संभाव्य काल तथा मध्यमपुरुष बहुवचन के वर्त्तमान काल का रूप। जैसे,—(क) शायद वह हो। (ख) तुम वहाँ हो।

(२) व्रज की वर्त्तमान कालिक क्रिया 'है' का सामान्य भूत का रूप। था।

होई-संज्ञा स्त्री० [हिं० होना] एक पूजन या त्योहार जो दीवाली के आठ दिन पहले होता है। इसमें ऐसी दो स्त्रियों की कथा कही जाती है जिनमें से एक को संतान होती ही नहीं थी और दूसरी की संतान हो होकर मर जाती थी।

होगला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नरसल या नरकट।

होजन-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का हाशिया या किनारा जो कपड़ों में बनाया जाता है।

होटल-संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ मूल्य लेकर लोगों के भोजन और ठहरने का प्रबंध रहता है।

होड़-संज्ञा स्त्री० [सं० हार - लड़ाई, विवाद] (१) दूसरे के साथ ऐसी प्रतिज्ञा कि कोई बात हमारे कथन के अनुसार न हो तो हम हार मानें और कुछ दें। शर्त। बाज़ी।

क्रि० प्र०—बदना।—लगाना।

(२) एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न। किसी बात में दूसरे से अधिक होने का प्रयास। स्पर्द्धा। (३) यह प्रयत्न कि जो दूसरा करता है, हम भी करेंगे। समान होने का प्रयास। बराबरी। उ०—होड़ सी परी है मानो घन घनश्याम जू सों दामिनी को कामिनी को दोऊ अंक में भरें।—तोष।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(४) अड़। हठ। ज़िद।

संज्ञा पुं० [सं०] तरेंदा। नाव।

होड़ाबादी-संज्ञा स्त्री० [हिं० होड़ + बदना] होड़ाहोड़ी।

होड़ाहोड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० होड़] (१) दूसरे के बराबर होने या दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न। लाग डाँट। चढ़ा ऊपरी। (२) शर्त्त। बाज़ी।

होढ-वि० [सं०] चुराया हुआ। चोरी का।

होत-संज्ञा स्त्री० [हिं० होना या सं० भूति] (१) पास में धन होने की दशा। आढ्यता। संपन्नता। उ०—(क) होत की जोत है। (ख) होत का बाप, अनहोत की माँ। (२) वित्त। सामर्थ्य। धन की योग्यता। मकदूर। समाई।

होतब, होतव्य-संज्ञा पुं० [सं० भवितव्य] होनेवाला। वह जो होने को हो। होनहार।

होतव्यता-संज्ञा स्त्री० [सं० भवितव्यता] होनेवाली बात। वह बात जिसका होना ध्रुव हो। होनहार। उ०—जैसी हो होतव्यता, वैसी उपजै बुद्धि।

होता-संज्ञा पुं० [सं० होतृ] [स्त्री० होत्री] यज्ञ में आहुति देनेवाला। मंत्र पढ़कर अग्निकुंड में हवन की सामग्री डालनेवाला।

विशेष—यह चार प्रधान ऋत्विजों में है जो ऋग्वेद के मंत्र पढ़ता और देवताओं का आह्वान करता है। इसके तीन पुरुष या सहायक होते हैं—मैत्रावरुण, अच्छावाक और ग्रावस्तुत्।

होनहार-वि० [हिं० होना + -हार (प्रत्य०)] (१) जो होनेवाला है। जो अवश्य होगा। जो होने को है। भावी। (२) जिसके बढ़ने या श्रेष्ठ होने की आशा हो। अच्छे लक्षणोंवाला। जिसमें भावी उन्नति के चिह्न हों। जैसे,—होनहार लड़का। उ०—होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

संज्ञा पुं० वह बात जो होने को हो। वह बात जो अवश्य हो। वह बात जिसका होना दैवी विधान में निश्चित हो। होनी। भवितव्यता। उ०—हम पर कीजत रोख कालगति जानि न जाई। होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई। होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै। होय तिनूका बज्र, बज्र तिनका ह्वै टूटै।—केशव।

होना-क्रि० अ० [सं० भवन; प्रा० होन] (१) प्रधान सत्तार्थक क्रिया। अस्तित्व रखना। कहीं विद्यमान रहना। उपस्थित या मौजूद रहना। जैसे,—उसका होना और न होना बराबर है। (ख) संसार में ऐसा कोई नहीं है। उ०—गगन हुता, नहिं महि हुती, हुते चंद नहीं सूर।—जायसी।

विशेष—शुद्ध सत्ता के अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग साधारण रूप 'होना' के अतिरिक्त केवल सामान्य कालों में ही होता है। जैसे,—वह है, मैं था, वे होंगे। और कालों में प्रयुक्त होने पर यह क्रिया विकार, निर्माण, घटना, अनुष्ठान आदि का अर्थ देती है। हिंदी में यह क्रिया बड़े महत्व की है, क्योंकि खड़ी बोली में सब क्रियाओं के अधिकतर 'काल' इसी क्रिया की सहायता से बनते हैं। काल-निर्माण में यह सहायक क्रिया का काम देती है। जैसे,—वह चलता है, वह चलता था, वह चलता होगा, वह चला है, इत्यादि, इत्यादि। इस क्रिया के काल-सूचक रूप अनियमित या रूढ़ होते हैं जैसे,—है, था, होगा। सामान्य वर्त्तमान के दो रूप होते हैं—एक तो 'है' जो शुद्ध सत्ता बोधक है; दूसरा "होता है" जो प्रसंग के अनुसार सत्ता और विकार दोनों सूचित करता है; जैसे,—(क) जो क्रूर होता है, वह दया नहीं करता। (ख) देखो अभी यह काले से सफ़ेद होता है।

मुहा०—किसी का होना = (१) किसी के अधिकार में, अधीन या आज्ञावर्त्ती होना। दास होना। सेवक होना। उ०—तुलसी तिहारो, तुम ही तें तुलसी को हित राखि कहौं जौ पै तौ ह्वैहौं माखी घीय की।—तुलसी। (२) किसी का प्रेमी या प्रेमपात्र होना। उ०—(क) सब भाँति सों कान्ह तिहारे भए सखि औ तुम हू भई कान्हर केरी।—कोई कवि। (ख) अब तौ कान्ह भए कुबजा के क्यों करिहैं ब्रज फेरो।—सूर। (३) किसी का आत्मीय, कुटुंबी या संबंधी होना। सगा होना। जैसे,—जो तुम्हारा हो, उससे कहो सुनो, मुझसे मतलब। उ०—देस में रहैंगे, परदेस में रहैंगे, काहू भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहावैंगे—अनीस। कहीं का हो रहना = (कहीं से) न लौटना। कहीं रह जाना। अधिक विलंब लगा देना। बहुत रुक या ठहर जाना। जैसे,—यह बड़ा सुस्त है; जहाँ

जाता है, वहीं का हो रहता है। (कहीं से) होकर या होते हुए = (१) गुजरते हुए। बीच से। मध्य से। जैसे,—इस रास्ते या महल्ले से होकर मत जाना। (२) बीच में ठहरते हुए। बीच में रुक कर कुछ बातचीत या काम करते हुए। जैसे,—चौक जा रहे हो तो उनके यहाँ से होते जाना। (३) पहुँचना। जाना। मिलना। जैसे,—जब उधर जा ही रहे हो तो उनके यहाँ भी होते आना। हो आना = भेंट करने के लिये जाना। मिल आना। जैसे,—बहुत दिनों से नहीं गए हो, ज़रा उनके यहाँ हो आओ। होते पर = पास में धन होने की दशा मे। संपन्नता मे। जैसे,—ये सब होते पर की बातें हैं। होता सोता = जो अपना होता हो। आत्मीय। कुटुंबी। संबंधी। जैसे,—अपने होते सोतों को कोसो। (क्वि०) कौन होता है ? = संबंध मे क्या है। कौन संबंधी है। कौन लगता है। जैसे,—वे तुम्हारे कौन होते हैं ?

(२) विकार सूचक क्रिया। एक रूप से दूसरे रूप में आना। अन्य दशा, स्वरूप या गुण प्राप्त करना। सूरत या हालत बदलना। जैसे,—(क) तुम क्या से क्या हो गए ? (ख) कुसंग में पड़कर यह लड़का खराब हो गया। (ग) तुम्हारे कहने से पीतल सोना हो जायगा !

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—हो बैठना = (१) बन जाना। अपने को समझने लगना या प्रकट करने लगना। लगाने लगना। जैसे,—देखते देखते वह कवि हो बैठा। (२) मासिक धर्म से होना। रजस्वला होना।

(३) किया जाना। साधित किया जाना। कार्य्य का संपन्न किया जाना। भुगतना। सरना। जैसे,—(क) काम हो रहा है। (ख) छपाई कब होगी ?

संयो० क्रि०—जाना।

यौ०—होना जाना, होना हवाना। जैसे,—यह सब होता जाता रहेगा, तुम उधर का काम देखो।

मुहा०—हो जाना या चुकना = समाप्ति पर पहुँचना। पूरा होना। खतम होना। करने को न रह जाना। सिद्ध होना। हो चुकना = (१) मर जाना। जैसे,—वैद्य के पहुँचते पहुँचते तो वह हो चुका। (२) न रह जाना। लुप्त होना। जैसे,—यदि ऐसे ही उपदेशक हैं तो हिंदू धर्म हो चुका। बस हो चुका = कुछ न होगा। कुछ भी काम न बनेगा। काम न पूरा होगा। (नैराश्य-सूचक) तो फिर क्या है ? = फिर तो कुछ करने को रह ही न जायगा। तब तो सब काम सिद्ध समझो।

(४) बनना। निर्माण किया जाना। तैयार होने की हालत में रहना। प्रस्तुत किया जाना। जैसे,—(क) खाना होना, रसोई होना, दाल होना। (ख) अभी कोट हो रहा है, कुरते में पीछे हाथ लगेगा।

विशेष—मकान आदि बड़ी वस्तुओं के बनने के अर्थ में इस क्रिया का व्यवहार नहीं होता।

(५) घटना सूचक क्रिया। किसी घटना या व्यवहार का प्रस्तुत रूप में आना। घटित किया जाना। कोई बात या संयोग आ पड़ना। जैसे,—(क) अंधेर होना, गज़ब होना, वाक़या होना। (ख) कोई ऐसी वैसी बात हो जायगी तो कौन ज़िम्मेदार होगा ?

मुहा०—होकर रहना = अवश्य घटित होना। न टलना। ज़रूर होना। जैसे,—जो होनेवाला रहता है, वह होकर रहता है। तो क्या हुआ ? = तो कोई हर्ज नहीं। तो कुछ बुराई या दोष नहीं। जैसे,—टूटा है तो क्या हुआ, काम तो देगा। हुआ हुआ = (१) बस रहने दो, तुमसे न करो बनेगा या न पूरा होगा। (२) बहुत कह चुके, अब चुप रहो। और बोलने की ज़रूरत नहीं। हो न हो = अवश्य। निश्चय। ज़रूर। निस्संदेह। जैसे,—हो न हो, यह उसी की कार्रवाई है। जो हुआ सो हुआ = (१) बीती बात जाने दो। गुज़री बात की ओर ध्यान न दो या परवा न करो। (२) जो हुआ वह अब और न होगा। उ०—जाहु लला ! जो भई सो भई अब नेह की बात चलाइए ना !—कोई कवि। हो पड़ना = बन पड़ना। जान या अनजान में कोई दोष या भूल हो जाना।

(६) किसी रोग, व्याधि, अस्वस्था, प्रेतबाधा आदि का आना। किसी मर्ज या बीमारी का घेरना। जैसे,—(क) उसको क्या हुआ है ? (ख) फोड़ा होना, रोग होना इत्यादि। (७) बीतना। गुज़रना। जैसे,—दस दिन हो गए, वह न लौटा। (८) परिणाम निकलना। किसी कारण से कार्य्य का विकास पाना। फल देखने में आना। जैसे,—(क) समझाने से क्या होगा ? (ख) मारने पीटने से कुछ न होगा।

मुहा०—होता रहेगा = फल मिलता जायगा। परिणाम अच्छा न होगा। (शाप)

(९) असर देखने में आना। प्रभाव या गुण दिखाई पड़ना। जैसे,—इस दवा से कुछ न होगा। (१०) जनमना। जन्म लेना। उद्भव पाना। जैसे,—उस स्त्री को एक लड़की हुई है। (११) काम निकलना। प्रयोजन या कार्य्य सधना। जैसे,—१०) से क्या होगा ? और लाओ।

यौ०—होना। जाना।

(२) काम बिगड़ना। हानि पहुँचना। क्षति आना। जैसे,—तुम्हारे नाराज़ होने से हमारा क्या हो जायगा ?

यौ०—होना जाना।

होनिहार†—संज्ञा पुं० दे० "होनहार"।

होनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० होना] (१) उत्पत्ति। पैदाइश। (२) वह बात जो हो गई हो। हाल। वृत्तांत। (३) होनेवाली बात

या घटना। वह बात जिसका होना ध्रुव हो। वह बात जिसका होना दैवी विधान में निश्चित हो। भावी। भवितव्यता। उ०—ह्वै रहै होनी प्रयास बिना, अनहोनी न ह्वै सकै कोटि उपाई।—पद्माकर। (४) हो सकनेवाली बात। वह बात जिसका होना संभव हो।

होबार–संज्ञा पुं० [देश०] सोहन चिड़िया का एक भेद। तिलूर।
संज्ञा पुं० घोड़ा। (डिं०)

होम–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के उद्देश्य से अग्नि में घृत, जौ आदि डालना। हवन। यज्ञ। आहुति देने का कर्म।
क्रि० प्र० —करना।—होना।
मुहा०—होम कर देना = (१) जला डालना। भस्म कर देना। (२) नष्ट करना। बरबाद करना। (३) उत्सर्ग करना। छोड़ देना।

होमकाष्ठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ की अग्नि दहकाने की फुँकनी।

होमकुंड–संज्ञा पुं० [सं०] होम की अग्नि रखने का गड्ढा।

होमना–क्रि० स० [सं० होम + ना (प्रत्य०)] (१) देवता के उद्देश्य से अग्नि में डालना। हवन करना। आहुति देना।
संयो० क्रि०—देना।
(२) उत्सर्ग करना। छोड़ देना। उ०—नंदलाल के हेतु आजुनो सुख वै होमति।—सुकवि।
(३) नष्ट करना। बरबाद करना।

होमि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) घृत। (३) जल।

होमियोपैथिक–वि० [अं०] (१) चिकित्सा की होमियोपैथी नामक पद्धति के अनुसार। (२) होमियोपैथी के अनुसार चिकित्सा करनेवाला।

होमियोपैथी–संज्ञा स्त्री० [अं०] थोड़े दिनों से निकला हुआ पाश्चात्य चिकित्सा का एक सिद्धांत या विधान जिसमें विषों की अल्प से अल्प मात्रा द्वारा रोग दूर किए जाते हैं। रोग के समान लक्षण उत्पन्न करनेवाले द्रव्यों द्वारा रोगनिवारण की पद्धति।
विशेष—इस सिद्धांत के अनुसार कोई रोग उसी द्रव्य से दूर होता है जिसके खाने से स्वस्थ मनुष्य में उस रोग के समान लक्षण प्रकट होते हैं। इसमें संखिया, कुचला आदि अनेक विषों को स्पिरिट में डालकर उनकी मात्रा को निरंतर हलकी करते जाते हैं।

होमीय–वि० [सं०] होम-संबंधी। होम का। जैसे,—होमीय द्रव्य।

होम्य–वि० [सं०] होम-संबंधी। होम का।
संज्ञा पुं० घृत। घी।

होर–वि० [अनु०] ठहरा हुआ। चलने से रुका हुआ।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

होरमा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास या चारा। सोंवक।

होरसा–संज्ञा पुं० [सं० घर्ष = घिसना] पत्थर की गोल छोटी चौकी जिस पर चंदन घिसते या रोटी बेलते हैं। चौका।

होरा–संज्ञा पुं० दे० "होला"।
संज्ञा स्त्री० [सं० यूनानी भाषा से गृहीत] (१) एक अहोरात्र का २४वाँ भाग। घंटा। ढाई घड़ी का समय। (२) एक राशि या लग्न का आधा भाग। (३) जन्मकुंडली। (४) जन्मकुंडली के अनुसार फलाफल-निर्णय की विद्या। जातक शास्त्र।

होरिल–संज्ञा पुं० [देश०] नवजात बालक। नया पैदा लड़का। (गीत)

होरिहार‡–संज्ञा पुं० [हिं० होरी] होली खेलनेवाला। उ०—होन लग्यो ब्रजगलिन में होरिहारन को घोष।—पद्माकर।

होरी–संज्ञा स्त्री० दे० "होली"।
संज्ञा स्त्री० [हिं० होर = ठहरा हुआ] एक प्रकार की बड़ी नाव जो जहाज़ों पर का माल लादने और उतारने के काम में आती है।

होल–संज्ञा पुं० [देश०] पश्चिमी एशिया से आया हुआ एक पौधा जो घोड़ों और चौपायों के चारे के लिये लगाया जाता है।

होलक–संज्ञा पुं० [सं०] आग में भुनी हुई चने, मटर आदि की हरी फलियाँ। होला। होरा। होरहा।

होला–संज्ञा स्त्री० [सं०] होली का त्योहार।
संज्ञा पुं० सिखों की होली जो होली के दूसरे दिन होती है।
संज्ञा पुं० [सं० होलक] (१) आग में भूनी हुई हरे चने या मटर की फलियाँ। (२) चने का हरा दाना। होरा। होरहा।

होलाक–संज्ञा पुं० [सं०] आग की गरमी पहुँचा कर पसीना लाने की एक क्रिया। एक प्रकार की स्वेदन-विधि। (आयुर्वेद)

होलाका–संज्ञा स्त्री० [सं०] होली का त्योहार।

होलाष्टक–संज्ञा पुं० [सं०] होली के पहले के आठ दिन जिनमें विवाह कृत्य नहीं किया जाता। जरता बरता।

होलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) होली का त्योहार। (२) लकड़ी, घास फूस आदि का वह ढेर जो होली के दिन जलाया जाता है।
यौ०—होलिका दहन।
(३) एक राक्षसी का नाम।

होली–संज्ञा स्त्री० [सं० होलिका] (१) हिंदुओं का एक बड़ा त्योहार जो फाल्गुन के अंत में बसंत ऋतु के आरंभ पर मनाया जाता है और जिसमें लोग एक दूसरे पर रंग अबीर आदि डालते तथा अनेक प्रकार के विनोद करते हैं।
विशेष—प्राचीन काल में जो मदनोत्सव या वसंतोत्सव होता था, उसी की यह परंपरा है। इसके साथ होलिका राक्षसी की शांति का कृत्य भी मिला हुआ है। बसंत

पंचमी के दिन से लकड़ियों आदि का ढेर एक मैदान में इकट्ठा किया जाता है जो वर्ष के अंतिम दिन जलाया जाता है। इसी को होली जलाना या संवत् जलाना कहते हैं। बीते हुए वर्ष का अंतिम दिन और आनेवाले वर्ष का प्रथम दिन दोनों इस उत्सव में सम्मिलित रहते हैं।

मुहा०—होली खेलना = होली का उत्सव मनाना। एक दूसरे पर रंग अबीर आदि डालना। उ०—नैन नचाय कही मुसकाय "लला फिर आइयो खेलन होरी"।—पद्माकर। **होली का भँडुवा** = बेढंगा पुतला जो विनोद के लिये खड़ा किया जाता है।

(२) लकड़ी, घास फूस आदि का ढेर जो होली के दिन जलाया जाता है। (३) एक प्रकार का गीत जो होली के उत्सव में गाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कँटीला झाड़ या पौधा।

होलंडर-संज्ञा पुं० [अं०] अँगरेजी कलम का वह हिस्सा जो हाथ से पकड़ा जाता है और जिसमें लिखने की निब या जीभ खोंसी जाती है।

होलना-क्रि० स० [देश०] धान के खेत में घास पात दूर करने के लिये हल चलाना। (पंजाब)

होश-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बोध या ज्ञान की वृत्ति। संज्ञा। चेतना। चेत। जैसे,—वह होश में नहीं है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—होश व हवास = चेतना और बुद्धि।

मुहा०—होश उड़ना या जाता रहना = भय या आशंका से चित्त व्याकुल होना। चित्त स्तब्ध होना। सुध बुध भूल जाना। तन मन की सँभाल न रहना। जैसे,—बंदूक देखते ही उसके होश उड़ गए। **होश करना** = सचेत होना। बुद्धि ठीक करना। **होश दंग होना** = चित्त चकित होना। आश्चर्य से स्तब्ध होना। मन में अत्यंत आश्चर्य उत्पन्न होना। **होश पकड़ना** = आपे में होना। चेतना प्राप्त करना। **होश सँभालना** = अवस्था बढ़ने पर सब बातें समझने बूझने लगना। सयाना होना। अनजान बालक न रहना। जैसे,—मैंने तो जब से होश सँभाला, तब से इसे ऐसा ही देखता हूँ। **होश में आना** = चेतना प्राप्त करना। बोध या ज्ञान की वृत्ति फिर लाभ करना। बेसुध न रहना। मूर्च्छित या संज्ञाशून्य न रहना। **होश की दवा करो** = बुद्धि ठीक करो। समझ बूझ कर बोलो। **होश ठिकाने होना** = (१) बुद्धि ठीक होना। भ्रांति या मोह दूर होना। (२) चित्त स्वस्थ होना। थकावट, घबराहट, डर या व्याकुलता दूर होना। चित्त की अधीरता या व्याकुलता मिटना। (३) अहंकार या गर्व मिटना। दंड पाकर भूल का पछतावा होना। जैसे,—वह मार खायगा तब उसके होश ठिकाने होंगे।

(२) स्मरण। सुध। याद।

क्रि० प्र०—करना होना।

मुहा०—होश दिलाना = सुध कराना। स्मरण कराना। याद दिलाना।

(३) बुद्धि। समझ। अक्ल।

यौ०—होशमंद।

होशमंद-वि० [फ़ा०] समझदार। बुद्धिमान्।

होशियार-वि० [फ़ा०] (१) चतुर। समझदार। बुद्धिमान्। (२) दक्ष। निपुण। कुशल। जैसे,—वह इस काम में बड़ा होशियार है। (३) सचेत। सावधान। खबरदार। जैसे,—इतना खोकर अब से होशियार हो जाओ।

मुहा०—होशियार रहना = चौकसी करते रहना। किसी अनिष्ट से बचने का बराबर ध्यान रखना।

(४) जिसने होश सँभाला हो। जो अनजान बालक न हो। सयाना। (५) चालाक। धूर्त्त।

होशियारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) समझदारी। बुद्धिमानी। चतुराई। (२) दक्षता। निपुणता। (३) कौशल। युक्ति। सावधानी। जैसे,—इसे होशियारी से पकड़ना; नहीं तो टूट जायगा।

होस॥‡-संज्ञा पुं० दे० "होश"।

संज्ञा पुं० दे० "हौस"।

हौं॥†-सर्व० [सं० अहम्] ब्रज भाषा का उत्तम पुरुष एक वचन सर्वनाम। मैं।

क्रि० अ० 'होना' क्रिया का वर्त्तमान कालिक उत्तम पुरुष एक वचन रूप। हूँ।

हौंकना†॥-क्रि० अ० [हिं० हुंकार] (१) गरजना। हुंकार करना। (२) हाँफना।

हौंस-संज्ञा स्त्री० दे० "हौस"।

हौ॥-अव्य० [हिं० हाँ] स्वीकृति सूचक शब्द। हाँ। (मध्यप्रदेश)

क्रि० अ० (१) होना क्रिया का मध्यम पुरुष एक वचन का वर्त्तमान कालिक रूप। हो। (२) होना का भूत काल। था। वि० दे० "हो"।

हौआ-संज्ञा पुं० [अनु० हौ] लड़कों को डराने के लिये एक कल्पित भयानक वस्तु का नाम। हाऊ। भकाऊँ।

संज्ञा स्त्री० दे० "हौवा"।

हौका-संज्ञा पुं० [अनु० हाव = मुँह बाने का शब्द] (१) मरभुखापन। खाने का गहरा लालच। (२) प्रबल लोभ। तृष्णा।

हौज़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पानी जमा रहने का चहबच्चा। कुंड। (२) कटोरे के आकार का मिट्टी का बहुत बड़ा बरतन। नाँद।

हौद-संज्ञा पुं० [अ० हौज़] (१) बँधा हुआ बहुत छोटा जलाशय। कुंड। (२) कटोरे के आकार का मिट्टी का बहुत बड़ा बरतन जिसमें चौपाए खाते पीते हैं तथा रँगरेज़, धोबी आदि कपड़े डुबाते हैं। नाँद।

हौदा-संज्ञा पुं० [फा० हौजः] हाथी की पीठ पर कसा जानेवाला आसन जिसके चारों ओर रोक रहती है और पीठ टिकाने के लिये गद्दी रहती है ।

क्रि० प्र०—कसना ।

संज्ञा पुं० [अ० हौज, हिं० हौद] [स्त्री० हौदी] कटोरे के आकार का मिट्टी, पत्थर आदि का बहुत बड़ा बरतन जिसमें चौपायों को चारा दिया जाता है । नाँद ।

हौरा†-संज्ञा पुं० [अनु० हाव, हाव] शोर । गुल । हल्ला । कोलाहल ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचना—होना ।

हौल-संज्ञा पुं० [अ०] डर । भय । दहशत ।

यौ०—हौलनाक, हौलदिल ।

मुहा०—हौल पैठना या बैठना = जी में डर समाना । हृदय में भय उत्पन्न होना ।

हौलदिल-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) कलेजा धड़कना । दिल की धड़कन । (२) दिल धड़कने का रोग ।

वि० (१) जिसका दिल धड़कता हो । (२) दहशत में पड़ा हुआ । डरा हुआ । (३) घबराया हुआ । व्याकुल । जिसका जी ठिकाने न हो ।

हौलदिला-वि० [फा० हौलदिल] [स्त्री० हौलदिली] डरपोक । बुज़दिल ।

हौलनाक-वि० [अ० + फा०] डरावना । भयानक ।

हौली-संज्ञा स्त्री० [सं० हाला = मद्य] वह स्थान जहाँ मद्य उतरता और बिकता है । आबकारी । कलवरिया ।

हौले-क्रि० वि० [हिं० हरुआ] (१) धीरे । आहिस्ता । मंद गति से । क्षिप्रता के साथ नहीं । जैसे,—हौले हौले चलना । (२) हलके हाथ से । ज़ोर से नहीं । जैसे,—हौले हौले मारना ।

हौवा-संज्ञा स्त्री० [अ०] पैगंबरी मतों के अनुसार सब से पहली स्त्री जो पृथ्वी पर आदम के साथ उत्पन्न की गई और जो मनुष्य-जाति की आदि माता मानी जाती है ।

संज्ञा पुं० दे० "हौआ" ।

हौस-संज्ञा स्त्री० [अ० हवस] (१) चाह । प्रबल इच्छा । लालसा । कामना । उ०—(क) सजै बिभूषन बसन सब पिया मिलन की हौस ।—पद्माकर । (ख) हौस मरैं सिगरी सजनी कबहूँ हरि सों हँसि बात कहौंगी ।—केशव । (२) उमंग । हर्षोत्कंठा । उ०—रति विपरीत की पुनीत परिपाटी मनौ हौसन हिंडोरे की सुपारी में परति है ।—पद्माकर । (३) हौसला । उत्साह । साहसपूर्ण इच्छा ।

हौसला-संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी काम को करने की आनंदपूर्ण इच्छा । उत्कंठा । लालसा । जैसे,—उसे अपने बेटे का ब्याह देखने का हौसला है ।

मुहा०—हौसला निकलना = इच्छा पूरी होना । अरमान निकलना ।

(२) उत्साह । आनंदपूर्ण साहस । जोश और हिम्मत । जैसे,—फिर कभी मुझसे लड़ने का हौसला न करना ।

मुहा०—हौसला पस्त होना = उत्साह न रह जाना । जोश ठंढा पड़ना । हिम्मत न रहना ।

(३) प्रफुल्लता । उमंग । बढ़ी हुई तबीयत । जैसे,—उसने बड़े हौसले से बेटे का ब्याह किया है ।

हौसलामंद-वि० [फा०] (१) लालसा रखनेवाला । (२) बढ़ी हुई तबीयत का । उमंगवाला । (३) उत्साही । साहसी ।

ह्याँ†*-अव्य० दे० "यहाँ" ।

ह्यो‡*-संज्ञा पुं० दे० "हियो", "हिया" । उ०—(क) लक्ष्मण के पुरिखान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई । वेष बनाय कियो बनितान को देखत केशव ह्यो हरई ।—केशव । (ख) कहै पदमाकर त्यों बाँधनू बसनवारी, वा ब्रज बसनवारी ह्यो हरनहारी है ।—पद्माकर ।

ह्रद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा ताल । झील । (२) सरोवर । तालाब । (३) नाद । ध्वनि । आवाज़ । (४) किरण । (५) मेढ़ा ।

ह्रदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।

ह्रसित-वि० [सं०] छोटा किया हुआ । कम किया हुआ । घटा हुआ । जिसका ह्रास हुआ हो ।

ह्रस्व-वि० [सं०] (१) छोटा । जो बड़ा न हो । (२) नाटा । छोटे आकार का । (३) कम । थोड़ा । (४) नीचा । जैसे,—ह्रस्व द्वार । (५) तुच्छ । नाचीज़ ।

विशेष—वर्णमाला में दीर्घ की अपेक्षा कम खींचकर बोले जानेवाले स्वर अथवा सस्वर व्यंजन 'ह्रस्व' कहलाते हैं । जैसे,—अ, इ, क, कि, कु ह्रस्व वर्ण हैं और आ, ई, ऊ, का, की, कू दीर्घ ।

संज्ञा पुं० (१) वामन । बौना । (२) दीर्घ की अपेक्षा कम खींच कर बोला जानेवाला स्वर । एक मात्रा का स्वर । जैसे,—अ, इ, उ ।

ह्रस्वजात रोग-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें दिन के समय वस्तुएँ बहुत छोटी दिखाई पड़ती हैं ।

ह्रस्वता-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटाई । छोटापन । अल्पता । लघुता ।

ह्रस्वपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महुआ ।

ह्रस्वपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] पकड़ । पाकर का पेड़ ।

ह्रस्वफल-संज्ञा पुं० [सं०] खजूर या छुहारा ।

ह्रस्वफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] भूमिजंबू । छोटी जाति की जामुन जो नदियों के किनारे होती है ।

ह्रस्वमूल-संज्ञा पुं० [सं०] लाल गन्ना ।

ह्रस्वांग-वि० [सं०] नाटा । ठेंगना । बौना ।

संज्ञा पुं० जीवक नाम का पौधा ।

ह्रस्वाग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] आक का पौधा। मदार। अर्क।

ह्राद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ध्वनि। शब्द। आवाज। (२) बादल की गरज। मेघ गर्जन। (३) शब्दस्फोट। (४) एक नाग का नाम। (५) हिरण्यकशिपु के एक पुत्र का नाम।

ह्रादिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी। (२) एक नदी का नाम जिसे 'ह्रादिनी' और 'दूरपारा' भी कहते थे। (वाल्मीकि०) (३) बिजली। वज्र।

ह्रादी-वि० [सं० ह्रादिन्] [स्त्री० ह्रादिनी] शब्द करनेवाला। गर्जन करनेवाला।

ह्रास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहले से छोटा या कम हो जाने की क्रिया या भाव। कमी। घटती। घटाव। छीज। क्षीणता। अवनति। घटती। (२) शक्ति, वैभव, गुण आदि की कमी। (३) ध्वनि। आवाज।

ह्रासन-संज्ञा पुं० [सं०] कम करना। घटाना।

ह्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लज्जा। व्रीड़ा। शर्म। हया। संकोच। (२) दक्ष प्रजापति की कन्या जो धर्म की पत्नी मानी जाती है।

ह्रीक-संज्ञा पुं० [सं०] नेवला।

ह्रीका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जा। लज्जाशीलता। हया।

ह्रीकु-वि० [सं०] लजीला। लज्जाशील। शर्मीला।
संज्ञा पुं० (१) बिल्ली। (२) लाख। (३) राँगा।

ह्रीण-वि० [सं०] लज्जित। शरमिंदा। जैसे,—ह्रीण मुख।

ह्रीत-वि० [सं०] लज्जित। लजाया हुआ।

ह्रीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जा। शर्म। हया। संकोच।

ह्रीमान-वि० [सं० ह्रीमत्] [स्त्री० ह्रीमती] लज्जाशील। हयादार। शर्मदार।
संज्ञा पुं० विश्वेदेवा में से एक।

ह्रीमूढ़-वि० [सं०] लज्जा से घबराया हुआ। लज्जा के कारण निश्चेष्ट। लाज से दबा हुआ।

ह्रीवेर-संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधवाला।

ह्लाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आनंद। खुशी। प्रफुल्लता। (२) हिरण्यकशिपु के एक पुत्र का नाम।

ह्लादन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ह्लादनीय, ह्लादित] आनंदित करना। खुश करना।

ह्लादिनी-वि० स्त्री० [सं०] आनंदित करनेवाली।
संज्ञा स्त्री० (१) बिजली। वज्र। (२) धूप का पौधा। (३) एक शक्ति या देवी का नाम। (४) एक नदी का नाम। दे० "ह्रादिनी"।

ह्वलन-संज्ञा पुं० [सं०] इधर उधर झुकना या गिरना पड़ना। लड़खड़ाना। थहराना।

ह्वाँ*-अव्य० दे० "वहाँ"।

ह्विस्की-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की अँगरेजी शराब।

ह्वेल-संज्ञा पुं० [अं०] एक बहुत बड़ा समुद्री जंतु जो आज कल पाए जानेवाले पृथ्वी पर के सब जीवों से बड़ा होता है।

विशेष—ह्वेल ८० या ९० फुट तक लंबे होते हैं। इसकी खाल के नीचे चरबी की एक बड़ी मोटी तह होती है। आगे की ओर दो पर होते हैं जिनसे यह पानी ठेलता और अपनी रक्षा करता है। किसी किसी जाति के ह्वेल की दुम के पास भी एक पर सा होता है। पूँछ के बल ये जंतु पानी के बाहर कूद कर आते हैं। मछली के समान ह्वेल अंडज जीव नहीं है, पिंडज है। मादा बच्चे देती है और अपने दो थनों से दूध पिलाती है। बहुत छोटे छोटे कान भी ह्वेल को होते हैं। यह जंतु छोटी छोटी मछलियाँ खा कर रहता है। यह बहुत देर तक पानी में डूबा नहीं रह सकता। फेफड़े या गलफड़े के अतिरिक्त दो छेद इसके सिर में होते हैं जिनसे यह साँस भी लेता है और पानी का फुहारा भी छोड़ता है। आँखें बहुत छोटी होती हैं। पृथ्वी के उत्तरी भाग के समुद्रों में ह्वेल बहुत पाए जाते हैं और उनका शिकार होता है। ह्वेल की हड्डियों से हाथीदाँत की तरह अनेक प्रकार के सामान बनते हैं। इसकी अँतड़ियों में एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य जमा हुआ मिलता है जो 'अंबर' के नाम से प्रसिद्ध है और जो भारतवर्ष, अफ्रिका और दक्षिण अमेरिका के समुद्रतट पर बहता हुआ पाया जाता है।

प्राणी-विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि ह्वेल पूर्व कल्प में स्थलचारी जंतु था और पानी के किनारे दलदलों में रहा करता था। क्रमशः पृथ्वी पर ऐसी अवस्था आती गई जिसमें उसका ज़मीन पर रहना कठिन होता गया और स्थिति परिवर्त्तन के अनुसार इसके अवयवों में फेरफार होता गया। यहाँ तक कि लाखों वर्ष के अनंतर ह्वेलों में जल में रहने के उपयुक्त अवयवों का विधान हो गया। जैसे, उनके अगले पैर मछली के डैने के रूप में हो गए, यद्यपि उनमें हड्डियाँ वे ही बनी रहीं जो घोड़े, गधे आदि के अगले पैरों में होती हैं। हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में 'तिमिंगिल' नामक एक बड़े भारी मत्स्य या जलजंतु का उल्लेख मिलता है जो संभव है, ह्वेल ही हो।

छूटे हुए शब्द और अर्थ

अंकम⊛-संज्ञा पुं० [सं० अंक] गोद। क्रोड़। उ०—मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि गहंत।—जायसी।

अंकूर⊛-संज्ञा पुं० दे० "अंकुर"। उ०—तब भा पुनि अंकूर सिरजा दीपक निरमला।—जायसी।

अंगड़-खंगड़-संज्ञा पुं० [अनु०] लकड़ियों का टूटा फूटा सामान। काठ कबाड़।

अंगसंधि-संज्ञा स्त्री० दे० "संध्यंग"।

अंगारपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] चित्ररथ गंधर्व का एक नाम। वि० दे० "चित्ररथ"।

अंगुलित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह तत या तारोंवाला बाजा जो कमानी से नहीं बल्कि उँगली में मिजराब पहन कर बजाया जाता है। जैसे,—सितार, बीन, एकतारा आदि।

अंजल⊛-संज्ञा पुं० [सं० अन्न + जल] अन्नजल। दानापानी। उ०—जब अंजल मुँह सोवा, समुद न सँवरा जागि। अब धरि काढ़ मच्छ जिमि, पानी माँगत आगि।—जायसी।

अँजोरा†-संज्ञा पुं० [सं० उज्वल] प्रकाश। रोशनी। उ०—दिया मँदिर निमि करै अँजोरा। दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा।—जायसी।

अंडर सेक्रेटरी-संज्ञा पुं० [अं०] वह मंत्री जो मुख्य मंत्री के अधीन हो। सहकारी सचिव। सहायक मंत्री। जैसे,—अंडर सेक्रेटरी फार इंडिया (सहकारी भारत सचिव)।

अंडा⊛-संज्ञा पुं० [सं० अंड या पिंड] शरीर। देह। पिंड। उ०—आसन, बासन, मानुस अंडा। भए चौखंड जो ऐस पखंडा।—जायसी।

अंतःकलह-संज्ञा० पुं० दे० "गृहकलह"।

अंतःराष्ट्रीय-वि० दे० "सार्वराष्ट्रीय"।

अंतःशल्य-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के वश में पड़ी हुई सेना।

अंतपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (२) सीमारक्षक। सरहद का पहरेदार।

अंतभेदी-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्यूह। मध्यभेदी व्यूह का विपरीत।

अंतरपतित आय-संज्ञा स्त्री० [सं०] सौदा पटाने की दस्तूरी। दलाली।

अंतर प्रादेशिक-वि० [सं०] जिसका संबंध अपने प्रांत या प्रदेश से हो। अपने प्रदेश या प्रांत में होनेवाला। जैसे,—अंतर प्रादेशिक अपराध।

अंतरराष्ट्रीय-वि० दे० "सार्वराष्ट्रीय"।

अंतरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दो मकानों के बीच की गली।

अंतर्धि-संज्ञा पुं० [सं०] दो लड़नेवाले राज्यों के बीच में पड़नेवाला राज्य।

अंधर⊛-वि० [सं० अन्धकार] अँधेरा। अंधकारमय। प्रकाशरहित। उ०—नखत चहूँ दिसि रोवहिं, अंधर धरति अकास।—जायसी।

अंधराजा-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्र और नीति आदि से अनभिज्ञ अविवेकी राजा।

विशेष—चाणक्य ने अर्थशास्त्र में राजा के दो भेद किए हैं—एक अंधराजा, दूसरा चलितशास्त्र राजा। चलितशास्त्र वह है जो जान बूझ कर शास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन करता हो। इन दोनों में चाणक्य ने अंधराजा को ही अच्छा कहा है जो योग्य मंत्रियों के होने पर अच्छा शासन कर सकता है।

अंधसैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] अशिक्षित सेना। वि० दे० "भिन्नकूट"।

अंधाहुली-संज्ञा स्त्री० [सं० अधःपुष्पी]. चोरपुष्पी नामक क्षुप। वि० दे० "चोरपुष्पी"।

अँधियारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधेरा] (१) अंधकार। अँधेरा। (२) वह पट्टी जो उपद्रवी घोड़ों, शिकारी पक्षियों और चीतों आदि की आँखों पर इसलिये बँधी रहती है कि किसी को देख कर उपद्रव न करें।

अँधेरा उजाला-संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा + उजाला] कागज को एक विशेष प्रकार से कई तहों में लपेट कर बनाया हुआ एक प्रकार का खिलौना जिसके भीतरी दो भाग सादे और दो भाग रंगीन होते हैं और जो हाथ की चारों उँगलियों की

सहायता से खोला और मूँदा जाता है। इससे कभी तो उसका सादा अंश दिखाई पड़ता है और कभी रंगीन।

अँधेरा गुप-संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा + कूप] इतना अधिक अंधकार कि कुछ दिखाई न दे। घोर अंधकार। जैसे,—इस कोठरी में तो बिलकुल अँधेरा गुप है।

अंधेरी-संज्ञा स्त्री० [?] दक्षिण भारत का एक स्थान। उ०—गढ़ गुवालियर परी मथानी। औ अंधियार मथा भा पानी।—जायसी।

अँधौरी†-संज्ञा स्त्री० दे० "अम्हौरी"।

अंबर डंबर†-संज्ञा पुं० [सं० अंबर = आकाश] वह लाली जो सूर्य के अस्त होने के समय पश्चिम दिशा में दिखाई देती है। उ०—बिन सतसार न लागई, ओछे जन की प्रीत। अंबर डंबर साँझ के, ज्यों बालू की भीत।

क्रि० प्र०—फूलना।

अंबा⊛†-संज्ञा पुं० [सं० आम्र, हिं० आम] उ०—बसै मीन जल धरती अंबा बसै अकास।—जायसी।

अंबारी-संज्ञा स्त्री० [देश०] पटसन। (दक्षिण)

अँभौरी-संज्ञा स्त्री० दे० "अम्हौरी"।

अंश-संज्ञा पुं० [सं] (८) किसी कारबार का हिस्सा। (९) फायदे का हिस्सा।

अंस-संज्ञा पुं० [सं० अंश] कन्धा। उ०—अंसनि धनु सर-कर-कमलनि कटि कसे हैं निखंग बनाई।—तुलसी।

अँहड़ा†-संज्ञा पुं० [देश०] तौलने का बाट। बटखरा।

अंहस्पात-संज्ञा पुं० [सं०] क्षय मास।

अकत्थ⊛-वि० [सं० अकथनीय] जो कहा न जा सके। न कहने योग्य। अकथनीय। उ०—मसि नैना लिखनी बरुनि, रोइ रोइ लिखा अकत्थ।—जायसी।

अकना†-क्रि० अ० [सं० आकुल] ऊबना। उकताना। घबराना। उ०—दौड़ दौड़ आने से जुरअत के अको मत क्या करे। उस बिचारे की तबीयत तुम पे है आई हुई।—जुरअत। संज्ञा पुं० [सं० अंकुर] ज्वार की वह बाल जिसके दाने निकाल लिए गए हों। ज्वार की खुखड़ी।

अकरासू†-वि० स्त्री० [सं० अकर = आलस्य] गर्भवती। जो हमल से हो।

अकवन†-संज्ञा पुं० [हिं० आक] आक का पेड़। मदार।

अकासी†-संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश] चील नामक पक्षी।

यौ०—धौरी अकासी या सफेद अकासी=एक प्रकार की चील जिसे क्षेमकरी चील भी कहते हैं। इसका सिर सफेद और शेष सारे अंग लाल रंग के होते हैं। उ०—बाएँ अकासी धौरी आई।—जायसी।

अकिल दाढ़-संज्ञा स्त्री० [अ० अक़्ल + हिं० दाढ़] वह दाँत जो मनुष्यों के वयस्क होने पर बत्तीस दाँतों के अतिरिक्त निकलता है। कहते हैं कि इस दाँत के निकलने पर मनुष्य का लड़कपन जाता रहता है और वह समझदार हो जाता है।

अकृतचिकीर्षा-(संधि) संज्ञा स्त्री० [सं०] सामादि उपायों से नई संधि करना तथा उसमें छोटे बड़े तथा समान राजाओं के अधिकारों का उचित ध्यान रखना।

अकृतशुल्क-वि० [सं०] (१) जिसने महसूल या चुंगी न दी हो। (२) जिस पर महसूल न लगा हो। (माल)

अकोप्या पण्यात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिक्के का चलन। सिक्के के चलने में किसी प्रकार की रुकावट न होना।

अखज⊛-वि० [सं० अखाद्य] (१) न खाने योग्य। अभक्ष्य। उ०—सुख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सों धारत। विहरत पंख फुलाय नहीं खज अखज विचारत।—दीन-दयाल। (२) निकृष्ट। बुरा। खराब।

अखबारनवीस-संज्ञा पुं० दे० "पत्रकार"।

अगनिउ⊛-संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] आग्नेय कोण। उत्तर पूर्व का कोना। उ०—तीज एकादसि अगनिउ मौर। चौथ दुवादसि नैऋत वौर।—जायसी।

अगमन-क्रि० वि० [सं० अग्र, हिं० आगे] आगे। उ०—(क) नैन भिखारि न मानहिं सीखा। अगमन दौरि लेहिं पै भीखा। —जायसी। (ख) रतनसेन आवै जेहि घाटा। अगमन होइ बैठि तेहि बाटा।—जायसी।

अगरे†-क्रि० वि० [सं० अग्र] सामने। आगे। उ०—चेला पूछै गुरू कहँ तेहि कस अगरे होइ।—जायसी।

अगवना†-क्रि० अ० [हिं० आगे + ना (प्रत्य०)] कोई काम करने के लिये उद्यत होना। आगे बढ़ना।

अगसार⊛-क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे। उ०—हस्ति क जूह आय अगसारी। हनुवँत नवै लँगूर पसारी।—जायसी।

अगान⊛†-वि० [सं० अज्ञान] अज्ञान। अनजान। नासमझ। उ०—बालक अगाने हठी और की न मानें बात बिना दिए मातु हाथ भोजन न पाइए।—हनुमन्नाटक।

अगाह⊛-क्रि० वि० [हिं० आगे] आगे से। पहले से। उ०—चाँदक गहन अगाह जनावा।—जायसी।

अगिदधा†-वि० [सं० अग्नि + दग्ध] आग से जला हुआ। दग्ध। उ०—तेहि सौंपा राजा अगिदधा।—जायसी।

अगिदाह⊛-संज्ञा पुं० दे० "अग्निदाह"। उ०—जस तुम कया कीन्ह अगिदाहू।—जायसी।

अगिया-संज्ञा पुं० [हिं० आग] एक प्रकार एक छोटा कीड़ा जिसके शरीर में लगने से पीले पीले छाले पड़ जाते हैं।

अगिया बैताल-संज्ञा पुं० [हिं० आग + बैताल] (१) एक कल्पित बैताल जिसके संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। कहते हैं कि यह बड़ा दुष्ट था और बड़े आश्चर्यजनक कृत्य

करता था। (२) वह जिसका स्वभाव बहुत क्रोधी और चिड़चिड़ा हो।

अगियार†-वि० [हिं० आग+इयार (प्रत्य०)] (लकड़ी, कोयला आदि) जिसकी आग बहुत देर तक ठहरे या तेज हो।

संज्ञा पुं० दे० "अगियारी"।

अगियारी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० आग+इयारी (प्रत्य०)] वह पदार्थ जो अग्नि में वायु को सुगंधित करने के लिये डाला जाय। धूप देने की वस्तु।

अगीठा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसके पत्ते पान के आकार के पर उससे कुछ बड़े होते हैं। इसमें कैथ की तरह का एक प्रकार का कुछ चिपटा फल लगता है जिसकी सतह पर छोटे छोटे दाने रहते हैं।

अगुसरना*†-क्रि० अ० [सं० अग्रसर+ना (प्रत्य०)] अग्रसर होना। आगे बढ़ना। उ०—एका परग न सो अगुसरई।—जायसी।

अगूठना*-क्रि० स० [सं० अगूढ़] चारों ओर से घेरना।

अगूठा†-संज्ञा पुं० [सं० अगूढ़] घेरा। महासिरा। उ०—जेहि कारन गढ़ कीन्ह अगूठी।—जायसी।

अगूता*-संज्ञा पुं० [हिं० आगे] आगे। सामने। उ०—बाजन बाजहिं होइ अगूता।—जायसी।

अगोटना†-क्रि० स० [सं० अगूढ़] चारों ओर से घेरना। उ०—सत्रु कोट जो आइ अगोटी। मीठी खाँड़ जेंवाएहु रोटी।—जायसी।

अगोरा†-संज्ञा पुं० [हिं० अगोरना] (१) अगोरने या रखवाली करने की क्रिया। चौकसी। निगरानी। (२) खेत की कटाई या फसल की दँवाई के समय की वह निगरानी जो जमींदार लोग काश्तकार से उपज का भाग लेने के लिये अपनी ओर से कराते हैं।

अगौरी†-संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र+औरी (प्रत्य०)] ऊख या गन्ने का वह ऊपरी भाग जिसमें गाँठें बहुत पास पास होती हैं। कौंचा।

अग्गई-संज्ञा स्त्री० [देश०] अवध में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष जिसकी पत्तियाँ प्रायः हाथ भर लंबी होती हैं। यह नेपाल, भूटान, बरमा और जावा में भी पाया जाता है। इसमें पीले रंग के २-३ इंच चौड़े फूल और छोटे अमरूद के आकार के फल लगते हैं।

अग्निकार्य-संज्ञा पुं० दे० "प्रतिसारण"।

अग्निजीवी-संज्ञा पुं० [सं० अग्निजीविन्] आग के सहारे काम करनेवाले। जैसे, लुहार, सुनार।

अग्निदंड-संज्ञा पुं० [सं०] आग में जलाने का दंड।

अग्निद-संज्ञा पुं० [सं०] आग लगानेवाला।

अग्निदमनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसे दमनी भी कहते हैं। गनियारी।

अघमर्षण कृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कठिन व्रत जो प्रायश्चित्त रूप में किया जाता था। (स्मृति)

विशेष—इसमें तीन दिन तक कुछ न खाने, त्रिकाल स्नान करने और पानी में डूब कर अघमर्षण मंत्र जपने का विधान है।

अच्-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर वर्ण।

अचल व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] असंहत व्यूह का एक भेद जिसमें हाथी, घोड़े और रथ एक दूसरे के आगे पीछे रखे जाते थे।

अचित्-संज्ञा पुं० [सं०] रामानुजाचार्य्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो भोग्य, दृश्य, अचेतन स्वरूप, जड़ात्मक और भोग्यत्व के विकार से युक्त माना जाता है। इसके भोग्य, भोगोपकरण और भोगायन ये तीन प्रकार माने गए हैं।

अछूत-वि० [सं० अ=नहीं+हिं० छूना] (३) जो छूने योग्य न हो। न छूने योग्य। नीच जाति का। अंत्यज जाति का। अस्पृश्य। जैसे,—मेहतर, डोम, चमार आदि अछूत जातियाँ भी अपना अपना संघटन कर रही हैं।

संज्ञा पुं० (१) वह जो छूने योग्य न हो। अछूत या अस्पृश्य जाति का मनुष्य। अंत्यज जाति का मनुष्य। जैसे,—(क) अछूत उद्धार। (ख) आर्य समाज ने तीन सौ अछूतों को शुद्ध कर अपने में मिला लिया।

अजान-संज्ञा स्त्री० [अ०] वह पुकार जो प्रायः मसजिदों के मीनारों पर मुसलमानों को नमाज के समय की सूचना देने और उन्हें मसजिद में बुलाने के लिये की जाती है। बाँग।

अजुगति-संज्ञा स्त्री० दे० "अजगुत"।

अज्ञा*†-संज्ञा स्त्री० दे० "आज्ञा"। उ०—होइ अज्ञा बनवास तौ जाऊँ।—जायसी।

अज्ञातस्वामिक (धन)-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जिसके मालिक का पता न हो। जैसे,—मार्ग में पड़ा हुआ या जमीन में गड़ा धन।

अट-संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] प्रतिबंध। शर्त्त। कैद। जैसे,—तुम तो हर बात में एक अट लगा देते हो।

अटवाटी खटवाटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खाट+पाटी] खाट खटोला। बोरिया बँधना। साज सामान।

मुहा०—अटवाटी खटवाटी लेकर पड़ना=खिन्न और उदासीन होकर अलग पड़ रहना। रूठ कर अलग बैठना।

अटवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जंगल। वन। (२) लंबा चौड़ा साफ मैदान।

अटवीबल-संज्ञा पुं० [सं०] जंगलियों की सेना।

अट्टसट्ट-वि० [अनु०] (१) ऊटपटाँग। अंड बंड। जैसे,—तुम तो सदा यों ही अट्टसट्ट बका करते हो। (२) बहुत ही साधारण या निम्न कोटि का। इधर उधर का। जैसे,—उस कोठरी में बहुत सा अट्ट सट्ट सामान पड़ा है।

अट्टालक-संज्ञा पुं० [सं०] किले का बुर्ज।

अठई॰†-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अष्टमी] अष्टमी तिथि। उ॰—सतमी पूनिउँ वा सब आठी। अठई अमावस ईसन लाठी। —जायसी।

अठाई॰†-वि॰ [सं॰ अस्थायी] उपद्रवी। उत्पाती। शरीर। उ॰—हैं हरि आठहु गाँठ अठाई।—केशव।

अड़गड़ा-संज्ञा पुं॰ [अनु॰] (१) बैल गाड़ियों और सगड़ों आदि के ठहरने का स्थान। (२) वह स्थान जहाँ बिक्री के लिये घोड़े, बैल आदि रहते हों।

अड़ार॰-वि॰ [सं॰ अराल] टेढ़ा। तिरछा। उ॰—जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अड़ार जाहिं पल माहाँ।—जायसी।

अड़ारना॰-क्रि॰ स॰ [हिं॰ डालना] डालना। देना। उ॰—पीउ सुनत धनि आपु बिसारै। चित्त लखै, तनु खाइ अड़ारै।—जायसी।

अढ़वायक†-संज्ञा पुं॰ [?] वह जो दूसरों को काम में लगाता हो। दूसरों से काम लेनेवाला। उ॰—पहिलेइ रचे चारि अढ़वायक। भए सब अढ़वैयन के नायक।—जायसी।

अढ़वैया†-संज्ञा पुं॰ दे॰ "अढ़वायक"।

अतिचार-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (३) तमाशबीनी का जुर्म। नाच रंग के समाजों में अधिक सम्मिलित होने का अपराध।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में जो रसिक और रँगीले बार बार निषेध करने पर भी नाचरंग के समाजों में सम्मिलित होते थे, उन पर तीन पण जुरमाना होता था। रात में ऐसे अपराध करने पर दंड और अधिक होता था। ब्राह्मण को जूठी या अपवित्र वस्तु खिला देने या दूसरे के घर में घुसने पर भी अतिचार दंड होता था।

अतिरिक्त पत्र-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह विज्ञापन, समाचार या सूचना आदि जो अलग छाप कर किसी समाचार पत्र के साथ बाँटी जाय। क्रोड़पत्र। विशेषपत्र।

अतिव्यय कर्म-संज्ञा पुं॰ [सं॰] फजूलखर्ची का काम।

अतिसंधि-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) सामर्थ्य से अधिक सहायता देने की शर्त। (२) एक मित्र की सहायता से दूसरे मित्र या सहायक की प्राप्ति।

अतुल-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (४) तिलक। तिलपुष्पी। (५) कफ। श्लेष्मा। बलगम।

अत्यम्ल-संज्ञा पुं॰ [सं] (२) वृक्षाम्ल। विषायिल। (३) बिजौरा नीबू।

वि॰ बहुत अधिक खट्टा।

अत्यय-संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्राचीन काल का एक प्रकार का जुरमाना या अर्थ दंड।

अत्याबाध-संज्ञा पुं॰ [सं॰] राजविद्रोहियों की अधिकता।

अत्याहित कर्मा-संज्ञा पुं॰ [सं॰ अत्याहित कर्म्मन] गुंडा। बदमाश।

अथना॰-क्रि॰ अ॰ [सं॰ अस्त + ना (प्रत्य॰)] अस्त होना। डूबना। उ॰—(क) मिलि चलि, चलि मिलि, मिलि चलत आँगन अथयो भानु। भयो मुहूरत भोर को पौरिहिं प्रथम मिलानु।—बिहारी। (ख) केइ यह बसन बसंत उजारा। गा सो चाँद अथवा लेइ तारा।—जायसी। (ग) सूरुज उवै बिहानहिं आई। पुनि सौं अथै कहाँ कहँ जाई?—जायसी।

अथैया-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "अथाई"।

अदत्त-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह वस्तु जिसके दिए जाने पर भी लेनेवाले को उसके रखने का अधिकार न हो।

विशेष—नारद ने अदत्त के ये सोलह भेद किये हैं—१. भय—जो वस्तु डर के मारे दी गई हो। २. क्रोध—लड़के आदि पर क्रोध निकालने के लिये। ३. शोकावेग में। ४. रुक्—असाध्य रोग से घबरा कर। ५. उत्कोच—घूस के रूप में। ६. परिहास—हँसी हँसी में। ७. व्यन्यास—बढ़ावे में आकर अथवा देखा देखी। ८. छल—जो धोखे में उचित से अधिक दे दिया गया हो। ९ बाल—देनेवाला यदि बालक अर्थात् नाबालिग हो। १०. मूढ़—जो धोखे में आकर बेवकूफी से दिया गया हो। ११. अस्वतंत्र—जो दास के द्वारा या ऐसे के द्वारा दिया गया हो जिसे देने का अधिकार न हो। १२. आर्त्त—जो बेचैनी या दुःख से घबरा कर दिया गया हो। १३. मत्त—जो नशे की झोंक में दिया गया हो। १४. उन्मत्त—जो पागल होने पर दिया गया हो। १५. काम्य—जो लाभ की झूठी आशा दिखा कर प्राप्त किया गया हो और १६. अधर्म काम्य—धर्म के नाम पर जो अधर्म के लिये लिया गया हो।

अदिव्य-संज्ञा पुं॰ [सं॰] तीन प्रकार के नायकों में से एक। वह नायक जो लौकिक हो। मनुष्य नायक। जैसे,—मालती माधव नाटक में माधव।

अदिव्या-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक। वह नायिका जो लौकिक हो। जैसे,—मालती-माधव में मालती।

अदृष्ट नर संधि-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह संधि या इकरार जो दूसरे के साथ इस आशय से किया जाय कि वह किसी तीसरे से कोई काम सिद्ध करा देगा।

अदेय-वि॰ [सं॰] (२) (वह पदार्थ) जिसे देने को कोई बाध्य न किया जा सके।

विशेष—नारद के अनुसार अन्वाहित, याचितक, रोग में प्रतिज्ञात, सामान्य पदार्थ, स्त्री, पुत्र, परिवार होने पर सर्वस्व, तथा निक्षेप ये आठ पदार्थ नहीं देने चाहिएँ। इनको प्रतिज्ञा कर चुकने पर भी न दे। ऐसा करने पर वह राज्यापराधी न समझा जायगा। (नारद-स्मृ॰ ४।४-५) दक्ष के मत से स्त्री की संपत्ति को भी अदेय समझना चाहिए।

मनु ने लिखा है कि 'जो लोग अदेय को ग्रहण करते हैं या दूसरे व्यक्ति को देते हैं, उनको चोर के सदृश ही समझना चाहिए।' यही बात नारद ने पुष्ट की है (ना. स्मृ० ४-१२) याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि स्त्री पुत्र को छोड़कर अन्य पदार्थों को कुटुम्ब की आज्ञा से दे सकता है (या० स्मृति २-१७५)। इसी के सदृश वशिष्ठ का मत है कि 'इकलौते पुत्र को न कोई ले सकता है और न दे सकता है' (व० स्मृ० १५. ३-४)। वशिष्ठ को ही कात्यायन भी पुष्ट करता है। वह लिखता है कि स्त्रीपुत्र पर मिलकीयत शासन के मामले में है, न कि दान के मामले में।

अद्रिजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) सिंहली पीपल।

अद्वैध्य मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र,(व्यक्ति या राष्ट्र) जिसकी मित्रता में किसी प्रकार का संदेह न हो।

विशेष—वह जिसकी मैत्री स्वार्थवश न हो, जो स्थिरचित्त, सुशील और उपकारी हो तथा विपत्ति पड़ने पर जिसके साथ छोड़ने की आशंका न हो अद्वैध्य मित्र है।

अधः-संज्ञा स्त्री० [सं०] दश दिशाओं में से एक। पैर के ठीक नीचे की दिशा।

अधकहा-वि० [हिं० आधा + कहना] आधा कहा हुआ। अस्पष्ट रूप से या आधा उच्चारण किया हुआ। उ०—गहकि गाँसु औरै गहै, रहें अधकहें बैन। देखि खिसौंहैं पिय-नयन किए रिसौंहैं नैयन।—बिहारी।

अधचना†-संज्ञा पुं० [हिं० आधा + चना] गेहूँ और चने का मिश्रण। वह मिश्रण जिसमें आधा चना और आधा गेहूँ हो।

अधनियाँ-वि० [हिं० आधा + आना + इया (प्रत्य०)] आध आने का। आध आनेवाला। जैसे—अधनियाँ टिकट।

अधन्नी-संज्ञा स्त्री० दे० "अधन्ना"।

अधर-संज्ञा पुं० [सं०] (३) भग या योनि के दोनों पार्श्व।

अधर्म मंत्र युद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जो दोनों ओर के लोगों को नष्ट करने के लिये ही छेड़ा गया हो।

अधवाना†-संज्ञा पुं० [हिं० हिंदवाना] तरबूज।

अधस्स्वस्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की ओर का वह स्थान या बिन्दु जो पृथ्वी पर के किसी स्थान या बिन्दु के ठीक नीचे हो। शीर्ष बिन्दु से ठीक वपरीत दिशा का बिन्दु जो क्षितिज का दक्षिणी ध्रुव है।

अधान्यवाप-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या उपनिवेश जिसमें धान न पैदा होता हो।

विशेष—चाणक्य के अनुसार जलयुक्त उपनिवेश में भी वही उपनिवेश या प्रदेश उत्तम है जिसमें धान पैदा होता हो। परन्तु यदि धान पैदा करनेवाला उपनिवेश छोटा हो और धान न पैदा करनेवाला उपनिवेश बहुत बड़ा हो, तो दूसरा ही ठीक है।

अधार-संज्ञा पुं० दे० "आधार"।

अधिकार-संज्ञा पुं० [सं०] (७) नाट्य-शास्त्र के अनुसार रूपक के प्रधान फल का स्वामित्व या उसकी प्राप्ति की योग्यता।

अधिकारी-संज्ञा पुं० [सं०] (४) नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक का वह पात्र जिसे रूपक का प्रधान फल प्राप्त होता है।

अधिबल-संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ संधि के तेरह अंगों में से एक। वह धोखा जो किसी को वेष बदले हुए देख कर होता है। (नाट्य-शास्त्र)

अधियाम-संज्ञा पुं० [हिं० आधा] (२) छोटी माला। सुमिरनी।

अधियारिन†-संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा + इयारिन (प्रत्य०)] (१) सौत। सपत्नी। (२) बराबरी का दावा रखने और आधे हिस्से की हिस्सेदार स्त्री।

अधीनना⊛-क्रि० अ० [सं० अधीन + ना (प्रत्य०)] अधीन होना। वश में होना। उ०—यह सुनि कंस खड्ग ले धायो तब देवै आधीनी हो। यह कन्या जो बकसु बन्धु मोहिं दासी जनि कर दीन्ही हो—सूर।

अधीसारक-संज्ञा पुं० [सं०] वेश्याओं के पास बारंबार जानेवाला।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में इनको कठोर दंड दिया जाता था।

अधेली-संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा + एला (प्रत्य०)] आधा रुपया। आठ आने का सिक्का। अठन्नी।

अधौरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो हिमालय की तराई में जम्मू से आसाम तक और दक्षिण भारत तथा बरमा के जंगलों में अधिकता से पाया जाता है। इसकी छाल चिकनी और खाकी रंग की होती है। इसकी छाल और पत्तियाँ चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं और लकड़ी से हल तथा नावें बनती हैं। इसकी लकड़ी का कोयला भी अच्छा होता है। यह चैत से जेठ तक फूलता और वर्षा ऋतु में फलता है। फल बहुत समय तक वृक्ष पर रहते हैं। इसकी छाल से एक प्रकार का मीठा और खाने योग्य गोंद निकलता है। बकली। धौरा। शेज।

अध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (४) सफेद मदार। श्वेतार्क। (५) क्षीरिका। खिरनी।

अध्वग-संज्ञा पुं० [सं०] (२) ऊँट।

अध्वनिवेश-संज्ञा पुं० [सं०] पड़ाव।

अनकाढ़ा-वि० [हिं० अन (प्रत्य०) + काढ़ना = निकालना] बिना निकाला हुआ। उ०—साकहिं मरै चहै अनकाढ़े।—जायसी।

अनखाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० अनखना + आहट (प्रत्य०)] अनखने या क्रोध दिखलाने की क्रिया या भाव। अनख। उ०—मार्यौ मनुहारिनु भरी गार्यौ खरी मिठाहिं। वाकौ अति अनखाहटौ मुसकाहट बिनु नाहिं।—बिहारी।

अनखुला-वि० [हिं० अन (प्रत्य०) + खुलना] (१) जो खुला न हो। बंद। (२) जिसका कारण प्रकट न हो। उ०—केसरि केसरि-कुसुम के रहे अंग लपटाइ। लगे जानि नख अनखुली कत बोलत अनखाइ।—बिहारी।

अनगवनाॐ-क्रि० अ० [हिं० अन + अगवना = आगे होना] जान बूझ कर देर करना। विलंब करना। उ०—मुँहु धोवति एड़ी घसति हसति अनगवति तीर। धसति न इंदीवर नयनि कालिंदी कैं नीर।—बिहारी।

अनगानाॐ†-क्रि० अ० [हिं० अन + अगवना = आगे बढ़ना] (१) विलंब करना। देर करना। (२) टाल मटोल करना।

अनचाखा-वि० [हिं० अन + चखना] बिना चखा या खाया हुआ। उ०—दारिउँ दाख फुटे अनचाखे।—जायसी।

अनध्यास-वि० [?] भूला हुआ। विस्मृत।

अनन्याधिकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसके बेचने या बनाने का किसी एक व्यक्ति या कंपनी को ही अधिकार हो। पेटंट। इजारा।

अनपाकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा के काम न करना। इकरार के मुताबिक तनखाह या मजदूरी न देना। जैसे—मजदूरी न देना, दी हुई वस्तु लौटा लेना।

विशेष—स्मृतियों तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग इसी अर्थ में है। अनपाकर्म संबंधी झगड़ा दो प्रकार का है। एक तो वेतन संबंधी और दूसरा दान संबंधी। पराशर ने लिखा है कि श्रमी या भृत्य को उसके काम के बदले वेतन न देना या वेतन देकर लौटा लेने का नाम वेतनस्यानपाकर्म है। इसी प्रकार दिए हुए माल को लौटाना और ग्रहण किए हुए माल को देना दत्तस्यानपाकर्म है।

अनपाकर्म विवाद-संज्ञा पुं० [सं०] मजदूरों और काम करानेवाले पूँजीपतियों के बीच वेतन संबंधी झगड़ा।

विशेष—नारद ने लिखा है कि कर्मस्वामी अर्थात् पूँजीपति भृत्यों को निश्चित की हुई भृति दे। (ना० स्मृ० ६०२)

अनफाँस-संज्ञा पुं० [हिं० अन + फाँस = पाश] मोक्ष। मुक्ति। उ०—जेकर पास अनफाँस, कहु हिय फिकिर सँभारि के। —जायसी।

अनमायाॐ-वि० [हिं० अन (प्रत्य०) + मापना = मापना] जिसकी माप न हो सकती हो। न नापा जाने योग्य। उ०—मेंटी मालु भरत भरतानुज क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो।—तुलसी।

अनरसों†-क्रि० वि० दे० "अतरसों"।

अनरुच-वि० [हिं० अन + रुचि] जो पसंद न हो। न रुचनेवाला। अरुचिकर। उ०—दसन गए कै पचा कपोला। बैन गए अनरुच देइ बोला।—जायसी।

अनर्घ क्रय-संज्ञा पुं० [सं०] बाजारी कीमत से अधिक या कम कीमत पर खरीदना।

अनर्घ विक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] बाजारी कीमत से अधिक कीमत या कम कीमत पर बेचना। (चाणक्य ने इस अपराध में १००० पण दंड लिखा है।)

अनर्जित आय-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आय या लाभ जो वस्तु के एकाएक महँगे हो जाने पर उसके उत्पन्न करने या बेचनेवाले को हो जाय अर्थात् जिसकी संभावना पहले न रही हो।

अनर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (४) भय की प्राप्ति।

अनर्थ-अनर्थानुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] किसी शक्तिशाली राजा को लड़ने के लिये उभाड़ कर आप अलग हो जाना। यह अर्थ के भेदों में से है।

अनर्थ-अर्थानुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] अपने लाभ के लिये शत्रु या पड़ोसी को धन तथा सैन्य (कोश-दण्ड) द्वारा सहायता पहुँचाना।

अनर्थ निरनुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] किसी हीन शक्तिवाले राजा को उभाड़ कर तथा लड़ने के लिये प्रोत्साहित कर स्वयं पृथक् हो जाना। यह अर्थ के भेदों में से है।

अनर्थसंशयापद्-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं के साथ मित्रों की लड़ाई का अवसर।

अनर्थसिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] चल मित्र तथा आक्रंद (वह मित्र जो शत्रु या विजिगीषु के आश्रय में हो) का मेल या संधि।

अनर्थानुबन्ध-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु का इस प्रकार नाश न होना कि अनर्थ की आशंका मिट जाय।

अनर्थापद्-संज्ञा पुं० [सं०] चारो ओर से शत्रुओं का भय।

अनर्थार्थसंशय-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्थिति जिसमें एक ओर तो अर्थ प्राप्ति की संभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशंका।

अनवसित संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] औपनिवेशिक संधि। जंगल या ऊसर जमीन बसाने के संबंध में दो पुरुषों या राष्ट्रों की संधि।

विशेष—औपनिवेशिक संधि के विषय में चाणक्य ने लिखा है कि यह प्रायः विवादग्रस्त विषय है कि स्थलीय या जलप्राय भूमि में उपनिवेश की दृष्टि से कौन सी भूमि उत्तम है। साधारणतः जलप्रायः भूमि ही उत्तम है।

अनामेल-संज्ञा पुं० दे० "एनामेल"।

अनार-संज्ञा पुं० [फा०] (२) वह रस्सी जिसमें दो छप्पर एक साथ मिला कर बाँधे जाते हैं।

अनारकिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो राज्य में विद्रोह को उत्तेजन दे या अशांति उत्पन्न करे। वह जो राज्य या राज्य-व्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था उलट देना चाहता हो। अराजक। विप्लवपंथी।

अनार्की-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) राज्य या राजा न रहने की

अवस्था। शासन या राज्य व्यवस्था का अभाव। शांति और व्यवस्था का अभाव। राजनीतिक उथल पुथल। अराजकता। विप्लव। (२) एक मतवाद जिसके अनुसार समाज तभी पूर्णता को प्राप्त होगा जब राज्य या शासन व्यवस्था न रहेगी और पूर्ण व्यक्ति-स्वातंत्र्य हो जायगा। अराजकवाद।

अनिक्षिप्त सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] तोड़ी या सेवा से अलग की हुई सेना। अपसृत सैन्य।

अनित्यसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक। यदि कोई कहे कि घट का सादृश्य शब्द में है, इससे घट की भाँति शब्द भी अनित्य होगा। तो इस पर यह कहना कि किसी न किसी बात में घट का सादृश्य सभी वस्तुओं में होगा। तो क्या फिर सभी वस्तुएँ अनित्य होंगी? इसी प्रकार का उत्तर अनित्यसम कहलाता है।

अनिभृत संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] यदि कोई राजा किसी दूसरे राजा की बहुत ही अधिक उपजाऊ भूमि को खरीदना चाहता हो और दूसरा राजा उस भूमि को उसको देकर संधि कर ले तो ऐसी संधि को अनिभृत संधि कहते हैं।

अनियाउ%-संज्ञा पुं० दे० "अन्याय"। उ०—सत्य कहहु तुम मोसौं दहुँ काकर अनियाउ।—जायसी।

अनिर्दिष्ट भोग-संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे के पशु, भूमि या और पदार्थों को मालिक की आज्ञा के बिना काम में लाना।

विशेष—इस प्रकार दूसरे की वस्तु का व्यवहार करनेवाला चोर के तुल्य ही कहा गया है। स्मृतियों में इस दोष के करनेवाले के लिये भिन्न भिन्न अर्थदंड हैं।

अनिर्वाह्य पण्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ या माल जिसका राज्य या नगर के भीतर लाया जाना बंद किया गया हो।

अनिल-संज्ञा पुं० [सं०] (२) सागौन का वृक्ष।

अनिष्कासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्देनशीन औरत।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में यह नियम था कि पर्देनशीन औरतों से घरों के भीतर ही काम लिया जाता था और उनको वहीं पर वेतन पहुँचा दिया जाता था।

अनिष्टप्रवृत्तिक-वि० [सं०] राष्ट्र या राज्य के अनिष्ट-साधन में तत्पर। बागी।

विशेष—चाणक्य के समय में इन्हें अग्नि में जलाने का दण्ड मिलता था।

अनिसृष्ट-वि० [सं०] (१) जिसने आज्ञा या अधिकार न प्राप्त किया हो। (२) जिसके व्यवहार या उपयोग की आज्ञा न ले ली गई हो।

अनिसृष्टोपभोक्ता-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बिना मालिक की आज्ञा के धरोहर रखी हुई वस्तु काम में लावे।

अनीस-वि० [?] जिसका कोई रक्षक न हो। अनाथ। उ०—बाल-दसा जेते दुख पाए। अति अनीस नहिं जाए गनाए।—तुलसी।

अनु-अव्य० [?] हाँ। ठीक है। उ०—(क) तुम अनु गुपुत मते तस लेऊ। ऐमन लेउ न जानै केऊ।—जायसी। (ख) अनु तुम कही नीक यह सोभा। पै फुल सोइ भँवर जेहि लोभा।—जायसी।

अनुकूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) दंती वृक्ष।

अनुग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (३) राज्य या राजा की कृपा से प्राप्त सहायता। सरकारी रिआयत।

अनुज्ञातक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] सरकार की ओर से दिया हुआ कुछ वस्तुओं को बेचने का ठेका।

अनुत्ताप-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार दस क्लेशों में से एक।

अनुत्पत्तिसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक। यदि किसी वस्तु के प्रसंग में कोई हेतु कहा जाय और उत्तर में उसी वस्तु के प्रसंग में यह कहा जाय कि जब तक उस वस्तु की उत्पत्ति ही नहीं हुई, तब वह कहा हुआ हेतु कहाँ रहेगा? तो ऐसे उत्तर को अनुत्पत्तिसम कहेंगे। जैसे—यदि वादी कहे—"शब्द अनित्य है; क्योंकि प्रयत्न से उत्पन्न होता है।" इस पर प्रतिवादी कहे—"यदि शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है, तो प्रयत्न से पहले इसकी उत्पत्ति नहीं होगी। और जब शब्द उत्पन्न ही नहीं हुआ, तब प्रयत्न से उत्पन्न होने का गुण कहाँ पर रहेगा? जब इस गुण का आधार भी नहीं रहा, तब वह अनित्यत्व का साधन कैसे कर सकता है?" इसी प्रकार का उत्तर अनुत्पत्तिसम कहलाता है।

अनुद्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल का एक भेद।

अनुपकारी मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु राजा का मित्र।

अनुपलब्धि सम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। यदि वादी किसी बात के न पाए जाने के आधार पर कोई बात सिद्ध करना चाहता है, और उसके उत्तर में प्रतिवादी किसी और बात के न पाए जाने के आधार पर उसके विपरीत बात सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे उत्तर को अनुपलब्धिसम कहते हैं।

अनुपाश्रया भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो बसनेवालों के अतिरिक्त और दूसरों को आश्रय देने में असमर्थ हो अर्थात् जिसमें और लोगों के बसने की गुंजाइश न हो।

अनुरक्त-प्रकृति-वि० [सं०] (राजा) जिसकी प्रजा उसमें अनुरक्त हो। प्रजा-प्रिय।

अनुरूपा सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रों, भाई, बंधुओं आदि को साम दान आदि द्वारा पक्ष में करना।

अनुलोमा सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पौर जानपद तथा सेनापतियों को दान तथा भेद से अपने अनुकूल करना।

अनुशतिक- संज्ञा पुं० [सं०] सौ से अधिक सैनिकों का नायक। सौ से ज्यादा सिपाहियों का अफसर।

विशेष—इसका स्थान शतानीकों के ऊपर होता था जिन्हें यह सैनिक शिक्षा देता था।

अनुशय-संज्ञा पुं० [सं०] काम से ली हुई छुट्टी। रुखसत।

विशेष—चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इसके संबंध में बहुत से नियम दिए हैं।

अनुशय-संज्ञा पुं० [सं०] (३) दान-संबंधी झगड़ों का निर्णय, फल या फैसला। (अर्थशास्त्र)

अनुशयी-संज्ञा पुं० [सं० अनुशयिन्] वह राजकर्म्मचारी जो दान संबंधी झगड़ों का निर्णय करता था। (अर्थशास्त्र)

अनूदर्या-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो ४८ हाथ लम्बी, २४ हाथ चौड़ी और २४ ही हाथ ऊँची होती थी।

अनूपग्राम-संज्ञा पुं० [सं०] नदी के किनारे का गाँव।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में यह राजनियम था कि बरसात के दिनों में ऐसे गाँव के लोगों को नदी का किनारा छोड़ कर किसी दूसरे दूरवर्त्ती स्थान पर बसना पड़ता था।

अनृतुप्राप्त सैन्य-संज्ञा पुं० [सं] वह सेना जिसके अनुकूल ऋतु न पड़ती हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसी सेना ऋतु के अनुकूल वस्त्र, अस्त्र, कवच आदि का प्रबंध हो जाने पर युद्ध कर सकती है, पर अभूमि प्राप्त (अनुपयुक्त भूमि में फँसी) सैन्य कुछ करने में असमर्थ हो जाती है।

अनेता-संज्ञा पुं० [देश०] मालती नाम की लता। (देहरादून)

अनौधि-क्रि० वि० [हिं० अन + अवधि] शीघ्र। जल्दी।

अन्यक्रीत-वि० [सं०] दूसरे का खरीदा हुआ।

अन्यजात-वि० [सं०] खोई हुई या नष्ट (वस्तु)।

अन्यथावाही-संज्ञा पुं० [सं० अन्यथावाहिन्] बिना चुंगी या महसूल दिए ही माल ले जानेवाला। (अर्थशास्त्र)

अन्यसंभूय क्रय-संज्ञा पुं० [सं०] थोक का दूसरा दाम जो पहले दाम पर न बिकने पर लगाया जाय।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में बहुत से पदार्थ ऐसे थे जिनकी बिक्री राज्य की ओर से ही होती थी।

अन्वाय-संज्ञा पुं० [सं०] सेना के किसी एक अंग की अधिकता। (अर्थशास्त्र)

अन्वायन—संज्ञा पुं० [सं०] वह सामान जो वधू अपने पिता के घर से लाई हो।

अन्वाहित-संज्ञा पुं० [सं०] (२) निक्षेप या न्यास के धन को एक महाजन के यहाँ से उठा कर दूसरे के यहाँ रखने का विधान।

अन्हरा†- संज्ञा पुं० [सं० अंध] अंधा। नेत्रहीन।

अपःप्रवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में डुबा कर मारने का दंड जो राज-विद्रोही ब्राह्मणों को दिया जाता था। (कौ०)

अपकर्ष सम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। दृष्टांत में जो न्यूनताएँ हों, उनका साध्य में आरोप करना। जैसे,—यह कहना—"यदि घट का सादृश्य शब्द में है, तो जिस प्रकार घट का प्रत्यक्ष श्रवणेंद्रिय से नहीं होता, उसी प्रकार शब्द का भी श्रवणेंद्रिय से प्रत्यक्ष नहीं होता।"

अपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो राज्य के पक्ष में न हो। (२) जिससे राज्य को कोई लाभ न हो। (३) वह जिसका किसी से हेल मेल न हो। वह जो किसी के साथ मिल जुल कर न रह सकता हो।

विशेष—चाणक्य ने ऐसे मनुष्यों के लिये लिखा है कि उन्हें कहीं अलग अपना उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए।

अपचरित प्रकृति-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जिसकी प्रजा अत्याचार से तंग हो।

अपती-संज्ञा स्त्री० [देश०] प्रायः एक बालिश्त चौड़ा एक तख्ता जो नाव की लंबाई में मरिया के दोनों सिरों पर लगाया जाता है। (मल्लाह)

अपन†-सर्व० [हिं० अपना] हम। (मध्यप्रदेश)

अपनय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनीति। (२) संधि आदि उचित रीति पर न करने का व्यवहार जिससे विपत्ति की संभावना हो जाती है। (अर्थशास्त्र)

अपनर्मक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार।

अपना-सर्व० [सं० आत्मनो] (२) आप। निज। जैसे,—अपने को, अपने में, अपने पर।

अपनाइयत-संज्ञा स्त्री० दे० "अपनायत"।

अपनायत-संज्ञा स्त्री० [हिं० अपना + यत (प्रत्य०)] (१) अपना होने का भाव। अपनापन। आत्मीयता। (२) आपसदारी का संबंध। बहुत पास का रिश्ता।

अपराधी-साक्षी-संज्ञा पुं० [सं०] किसी अपराध के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार करता है और अपने साथी या साथियों के विरुद्ध गवाही देता है। वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है। इकबाली गवाह। मुनजरिम इकरारी। सरकारी गवाह।

अपरिपणित संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कपट-संधि जो केवल धोखे में रखने के लिये की जाय।

विशेष—ढंग यह है कि किसी अभिमानी, मूर्ख, आलसी या दुर्व्यसनी राजा को यदि नीचा दिखाना हो तो उससे यों ही कहता रहे कि "हम तुम तो एक हैं" पर किसी प्रयोजन की बात न करे। इस प्रकार उसे संधि के विश्वास में रख उसकी कमजोरियों का पता लगाता रहे और मौका पड़ने

पर उस पर आक्रमण कर दे। इस कपट संधि का उपयोग दो सामंत राजाओं को लड़ा कर उनके राज्य को हड़प करने के लिये भी हो सकता है। (कौ०)

अपरेटस-संज्ञा पुं० [अं०] वह यंत्र जो किसी विशेष कार्य या परीक्षा-कार्य के लिये बना हो। यंत्र। औजार। परीक्षा-यंत्र।

अपसृत-वि० [सं०] युद्ध से भागा हुआ। भगोड़ा।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार अपसृत और अनिक्षिप्त (सेवा से अलग किए हुए या देश से निकाले हुए) सैनिकों में अपसृत अच्छे हैं। उनसे युद्ध में फिर काम लिया जा सकता है।

अपसौना†-क्रि० अ० [?] जाना। पहुँचना। प्राप्त होना। उ०—(क) जीव कादि लै तुम्ह अपसई। वह भा कया जीव तुम भई।—जायसी। (ख) जनु जमकात करहिं सब भवाँ। जिउ लेइ चहहिं सरग अपसवाँ।—जायसी।

अपहरण-संज्ञा पुं० [सं०] (४) महसूली माल को दूसरी वस्तुओं में छिपा कर महसूल से बचाना। (कौ०)

अपेक्षाकृत-क्रि० वि० [सं० अपेक्षा + कृत] मुकाबले में। तुलना में। जैसे,—गरमी में दिन अपेक्षाकृत बड़ा होता है।

अपेलेट साइड-संज्ञा पुं० [अं०] प्रेसिडेंसी हाईकोर्ट का वह विभाग जहाँ जज अपनी निर्द्धारित सीमा के अंतर्गत सब दीवानी और फौजदारी अदालतों का नियंत्रण करते हैं और अपीलें सुनते हैं। इसे अपेलेट जूरिसडिक्शन भी कहते हैं

अप्रतिसंबद्धा भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो एक दूसरी से पृथक् हो। (कौ०)

अप्रतिहत-संज्ञा पुं० [सं०] अंकुश।

अप्रतिहत व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह असंहत व्यूह जिसमें हाथी घोड़े रथ तथा प्यादे एक दूसरे के पीछे हों। (कौ०)

अप्रवृत्तवध-वि० [सं०] जिसकी ओर से आक्रमण न हुआ हो।

अप्राप्तिसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक। यदि किसी के उत्तर में कहा जाय—"तुम्हारा हेतु और साध्य दोनों एक आधार में वर्त्तमान हैं या नहीं? यदि वर्त्तमान हैं, तो दोनों बराबर हैं। फिर तुम किसे हेतु कहोगे और किसे साध्य?" तो इसे प्राप्तिसम कहेंगे। और यदि साथ ही इतना और कहा जाय—"यदि दोनों एक आधार में नहीं रहते, तो तुम्हारा हेतु साध्य का साधन कैसे कर सकता है?" तो इसे अप्राप्तिसम कहेंगे।

अप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (२) बेंत। वेतस।

अप्सु प्रवेशन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दंड जिसमें अपराधी जल में डुबाकर मारा जाता था। (कौ०)

अबंध-वि० [सं० अ + बंधन] जो किसी के बंधन में न हो। अबद्ध। बंधनहीन। निरंकुश।

अबध-वि० [सं० अबाध्य] जो रोका न जा सके। अबाध्य। उ०—भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवध चितवनि चितई है।—तुलसी।

अबरा-संज्ञा पुं० [फा०] (२) न खुलनेवाली गाँठ। उलझन।

अबरू-संज्ञा स्त्री० [फा०] भौंह। भ्रू।

अबासः-संज्ञा पुं० [अ० आवास] रहने का स्थान। घर। मकान। उ०—ऊँचे अबास, बहु ध्वज प्रकास। सोभा विलास, सोभै प्रकास।—केशव।

अभंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमें एक लघु, एक गुरु और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं। (२) एक प्रकार के पद या भजन जिनका व्यवहार मराठी में होता है। जैसे,—तुकाराम के अभंग।

अभय-संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

अभयचारी-संज्ञा पुं० [सं०] वे जंगली पशु जिनके मारने की आज्ञा न हो।

अभयवन-संज्ञा पुं० [सं०] वह जंगल जिसे काटने की आज्ञा न हो। रक्षित वन।

अभयवन परिग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] रक्षित वन संबंधी राज-नियम का भंग। जैसे,—उसमें घुसना, पेड़ काटना, लकड़ी तोड़ना इत्यादि।

अभिज्ञान-संज्ञा पुं० [सं०] (४) मुद्रा की छाप। मुहर।

अभिधर्म्म पिटक-संज्ञा पुं० दे० "त्रिपिटक"।

अभिनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (६) आम।

अभिप्लव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपद्रव। उत्पात। फसाद। (२) गवामयन यज्ञ में प्रति मास का पंचमांश जो छः छः दिनों का होता था और जिनमें से प्रत्येक का अलग अलग नाम होता था। (३) स्तोम आदि का पाठ जो एक अभिप्लव में होता था।

अभिषव-संज्ञा पुं० [सं०] (६) काँजी।

अभिहित संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जिसकी लिखा पढ़ी न हुई हो। (कौटिल्य)

अभूताहरण-संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का कपटयुक्त या व्यंग्यपूर्ण वचन कहना। यह गर्भ-संधि के तेरह अंगों में से एक है।

अभूमिप्राप्त सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जो अनुपयुक्त भूमि में पड़ गई हो। ऐसी जगह पड़ी हुई फौज जहाँ से लड़ना असंभव हो। (कौटिल्य)

अभृत सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसे वेतन या भत्ता न मिला हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार यह व्याधित (बीमार) सैन्य से उपयोगी है, क्योंकि वेतन पा जाने पर जी लगाकर लड़ सकती है। (कौ०)

अभेद्य- संज्ञा पुं० [सं०] हीरा। हीरक।

अमेरना-क्रि० स० [सं० अभेद ?] मिलाना । मिश्रित करना । एक में करना । उ०—जपहु बुद्धि कै दुइ सन फेरहु । दही चूर अस हिया अमेरउ ।—जायसी ।

अम्र-संज्ञा पुं० [सं०] (६) नागरमोथा ।

अमंगल-संज्ञा पुं० [सं०] रेंड । एरंड ।

अमका†-सर्व० [सं० अमुक] ऐसा ऐसा । अमुक । फलाना ।

अमनिया-संज्ञा स्त्री० [?] भोजन बनाने की क्रिया । रसोई पकाना । (साधुओं की परि०)

अमल-कोची-संज्ञा स्त्री० [देश०] कंजे की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जिसकी फलियों से चमड़ा सिझाया जाता है । वि० दे० "कुंती" ।

अमलगुच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] पद्मकाष्ठ या पद्म नामक वृक्ष । वि० दे० "पद्म" ।

अमलबेल-संज्ञा स्त्री० [अमल ? + हिं० बेल] एक प्रकार की लता जो भारत के प्रायः सभी गरम प्रदेशों में पाई जाती है । वर्षा ऋतु में इसमें नीलापन लिए सफेद रंग के सुन्दर फूल लगते हैं । इसकी पत्तियाँ फोड़ों पर उन्हें पकाने के लिये बाँधी जाती हैं ।

अमानिया-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पटसन ।

अमानित सेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जिसका वीरता के उपलक्ष में उचित आदर मान न किया गया हो और जो इस कारण असंतुष्ट हो ।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसी सेना को विमानित (जिसकी बेइज्जती की गई हो) सेना से उपयोगी कहा है, क्योंकि उचित मान पाकर यह जी लगाकर लड़ सकती है ।

अमारी-संज्ञा स्त्री० [सं० आम्रात] अमड़ा नामक वृक्ष या उसका फल।

अमिताभ-संज्ञा पुं० [सं०] महात्मा बुद्धदेव का एक नाम ।

अमित्र विषयातिगा (नौका)-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जहाज जो शत्रु के राष्ट्र में जानेवाला हो ।

अमिली-संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + मिलना] मेल या अनुकूलता का अभाव । विरोध । मनमुटाव । उ०—जहँ अमिली पाकै हिय माँहीं । तहँ न भाव नौरँग कै छाहीं ।—जायसी ।

अमीढ़-संज्ञा पुं० दे० "अधौरी" ।

अमुद्र-वि० [सं०] जिसके पास कहीं जाने का परवाना या मुहर न हो ।

वि० [सं०] जिसके पास मुद्रा या निशानी न हो । (कौ०)

अम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (२) तेजाब ।

अम्लजन-संज्ञा पुं० दे० "आक्सिजन" ।

अम्लान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाणपुष्प नामक वृक्ष । (२) दुपहरिया । कटसरैया ।

अयन समांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रात और दिन दोनों का बराबर होना । विषुवद् रेखा पर के उन दो विंदुओं में से, जिन पर से होकर सूर्य्य का क्रांतिवृत्त (सूर्य्य का मार्ग) विषुवद् रेखा को वर्ष में दो बार (छः छः महीने पर) काटता है, जब किसी एक बिन्दु पर सूर्य्य आता है, तब रात और दिन दोनों बराबर होते हैं । इसी को अयन समांत कहते हैं । (२) उक्त दोनों विंदु ।

अयनांश-संज्ञा पुं० [सं०] विषुवद् रेखा पर के वे दो विंदु जिन पर से होकर सूर्य्य का क्रांतिवृत्त (गमन का मार्ग) वर्ष में दो बार (छः छः महीने पर) काटता है और जिन पर सूर्य्य के आने पर रात और दिन दोनों बराबर होते हैं ।

अयमदिन-संज्ञा पुं० [सं०] साठ घड़ी का वह एक ही रात-दिन जिसमें दो तिथियों का अवसान हो जाय । कहा गया है कि ऐसे दिन में स्नान और दानादि के अतिरिक्त और कोई शुभ कर्म्म नहीं करना चाहिए ।

अरइल-संज्ञा पुं० [देश०] (२) प्रयाग में वह स्थान जहाँ गंगा में यमुना मिलती हैं । उ०—की कालिंदी विरह सताई । चलि प्रयाग अरइल बिच आई ।—जायसी ।

अरकाटी-संज्ञा पुं० [अरकाट = दक्षिण भारत का स्थान] वह व्यक्ति जो कुलियों आदि को चाय के बगीचों में या मारिशस, गायना आदि टापुओं में काम करने के लिये भरती करके भेजता हो ।

अरजम-संज्ञा पुं० [देश०] कुंबी नामक बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी से खेती के औजार और गाड़ी के धुरे आदि बनाए जाते हैं । वि० दे० "कुंबी" ।

अरजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) घी-कुआर । घृत कुमारी ।

अरझा-संज्ञा पुं० [देश०] छोटी जाति का सन । सनई ।

† संज्ञा पुं० [पु० हिं० अरुझना] (१) उलझन । झमेला । (२) बखेड़ा । टंटा । झगड़ा ।

अरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) चीता नामक वृक्ष या उसकी लकड़ी । (५) श्योनाक । सोनापाढ़ा ।

अरध॰-क्रि० वि० [सं० अधः] अंदर । भीतर । उ०—अरध उरध अस है दुइ हीया । परगट गुपुत बरै जस दीया ।—जायसी ।

अरर-संज्ञा पुं० [सं० अरर] (३) मैनफल ।

अराजबीजी-वि० [सं० अराजबीजिन्] अराजकता फैलानेवाला । राजविद्रोह का प्रचार करनेवाला ।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसे मनुष्यों को वहाँ भेजने का विधान बताया है जहाँ उपनिवेश बसाने में बहुत कठिनता और खर्च हो ।

अराजव्यसन-संज्ञा पुं० [सं०] अराजकता संबंधी संकट ।

अरिप्रकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध में प्रवृत्त राजा के चारो ओर के शत्रुओं की स्थिति ।

अरिया†-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो

प्रायः पानी के किनारे रहती है। इसे ताक या लेदी भी कहते हैं।

अरिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का असंहत व्यूह जिसमें रथ बीच में, हाथी कक्ष में और घोड़े पृष्ठ भाग में रहते थे। (कौ०)

अरुआ-संज्ञा पुं० [सं० श्रालु] एक प्रकार का बहुत बड़ा वृक्ष जो बंगाल, मध्य भारत और दक्षिण भारत में प्रायः जंगली दशा में पाया जाता है और संयुक्त प्रांत में लगाया जाता है। इसमें चैत बैशाख में पीले रंग के फूल लगते हैं। इसकी छाल और पत्तियाँ ओषधि रूप में काम में आती हैं और इसकी लकड़ी से ढोल तथा तलवार की म्यान या इसी प्रकार की और हलकी चीजें बनाई जाती हैं।

† संज्ञा पुं० [सं० श्रालु] एक प्रकार का कंद जो तरकारी के काम में आता है।

अरुज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमलतास। (२) केसर। (३) सिंदूर।

अरुणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (११) काला अनंतमूल।

अरुरनाॐ-क्रि० अ० [हिं० मरोड़ना] मुड़ना। सिकुड़ना। संकुचित होना। उ०-छ्वावति न छाँह, छुए नाहक ही नाँहीं कहि नाइ गल माँह बाँह मेलै सुर रूख सी।......नीकी दीठ तूल सी, पतूल सी अरुरि अंग ऊख सी मसरि मुख लागति महूख सी।—देव।

अरुरानाॐ-क्रि० स० [हिं० अरुरना का स० रूप] (१) मरोड़ना। (२) सिकोड़ना।

अरुष्क-संज्ञा पुं० [सं०] (२) अड़ूसा।

अरैली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी जिसके डंठलों आदि से नैपाली कागज बनता है। वि० दे० "कघुर्ती"।

अर्क नाना-संज्ञा पुं० [अ०] सिरके के साथ भबके में उतारा हुआ पुदीने का अर्क।

अर्गल-संज्ञा पुं० [सं०] (६) मांस।

अर्घ-संज्ञा पुं० [सं०] (१०) मधु। शहद। (११) घोड़ा। अश्व।

अर्घपतन-संज्ञा पुं० [सं०] भाव का गिरना। माल की कीमत बाजार में कम होना।

अर्घवर्णांतर-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छे माल में घटिया माल मिलाकर अच्छे माल के दाम पर बेचना।

विशेष-ऐसा करनेवाले को चंद्रगुप्त के समय में २०० पण तक जुरमाना होता था।

अर्घवर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] कीमत बढ़ाना। अनुचित रूप से दाम बढ़ाना।

विशेष-कौटिल्य ने इसे अपराध माना है और इस प्रकार दाम बढ़ानेवाले व्यापारी पर २०० पण तक जुरमाना लिखा है।

अर्घवृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] माल की दर बढ़ना। बाजार में किसी माल की कीमत चढ़ना।

अर्घा-संज्ञा स्त्री० [सं०] २० मोतियों का लच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ती हो। (वराहमिहिर के समय में एक अर्घा १७० कार्षापण में बिकता था।)

अर्जक-संज्ञा पुं० [सं०] बनतुलसी। बबई।

अर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (२) सागौन। शाल वृक्ष।

अर्णव-संज्ञा पुं० [सं०] (७) रत्न। मणि। जवाहिर।

अर्थकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] (२) राज्य की आर्थिक तंगी। राज्यकर से व्यय का बढ़ना।

विशेष-ऐसी तंगी में चंद्रगुप्त के समय में राज्य जनता से संपूर्ण राज्यकर एक दम से माँग लेता था। (कौ०)

अर्थचर-संज्ञा पुं० [सं०] सरकारी नौकर।

अर्थभृत-संज्ञा पुं० [सं०] नकद रुपया तनखाह में लेकर काम करनेवाला।

अर्थ मंत्री-संज्ञा पुं० दे० "अर्थ सचिव"।

अर्थ व्यवस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] सार्वजनिक राजस्व और उसके आय व्यय की पद्धति। फाइनांस।

अर्थ संशयापद-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे समानतोऽर्थापद की प्राप्ति जिसमें पार्ष्णिग्राह-बाधक हों। (कौ०)

अर्थ सचिव-संज्ञा पुं० [सं०] किसी देश की सरकार या मंत्रिमंडल का वह सदस्य जिसके अधीन देश के राजस्व और उसके आय व्यय की व्यवस्था करना हो। अर्थ-मंत्री।

अर्थ सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्ष्णिग्राह को मित्र तथा आक्रंद (शत्रु के शत्रु) का सहारा मिलना। (कौ०)

अर्थातिक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में आई या मिली हुई अच्छी वस्तु को छोड़ देना। (कौ०)

अर्थानर्थ संशय-संज्ञा पुं० [सं०] एक ओर से अर्थ और दूसरी ओर से अनर्थ की संभावना।

अर्थानर्थापद-संज्ञा पुं० [सं०] एक ओर से लाभ की प्राप्ति और दूसरी ओर से राज्य जाने का भय।

अर्थानुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु को नष्ट कर पार्ष्णिग्राह को अपने वश में करना।

अर्थापत्तिसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। वादी के उत्तर में यह कहना कि यदि तुम मेरा प्रतिपादित अमुक सिद्धांत न मानोगे तो बड़ा दोष पड़ेगा, अर्थापत्तिसम कहलाता है।

अर्थाप्रतिकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रबंधकर्त्ता जो कारखाने के नौकरों तथा अन्य मनुष्यों को, जिन्होंने कच्चा माल आदि दिया हो, धन देता है।

अर्थी-संज्ञा पुं० [सं० अर्थिन्] वह जिसने किसी पर रुपयों का दावा किया हो। (स्मृति०)

अर्द्धाली-संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धालि] वह चौपाई जिसमें दो ही चरण हों। आधी चौपाई। जैसे,—राम भजन बिनु सुनहु खगेसा। मिटै न जीवन केर कलेसा।

अर्धमाणव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शीर्षक हार जिसके बीच में मणि हो। (कौ०) (२) दस मोतियों की माला।

अर्धमासभृत-संज्ञा पुं० [सं०] वह मजदूर या नौकर जिसे अर्ध-मासिक (१५ दिन पर) वेतन मिलता हो।

अर्धहार-संज्ञा पुं० [सं०] ६४ मोतियों की माला।

अर्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसे २५ मोतियों का गुच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ती हो।

विशेष-वराहमिहिर के समय में एक अर्धा का दाम १३० कार्षापण था। उस समय कार्षापण में दस माशे चाँदी होती थी और वह सोलह मोटे (गोरखपुरी) पैसों के बराबर होता था।

अर्पण प्रतिभू-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू (जामिन) जो किसी की इस प्रकार जमानत करे कि यदि यह ऋण का धन न देगा, तो मैं दूँगा।

अर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (५) नेत्रबाला। (६) कुशा।

अर्भक-संज्ञा पुं० [सं०] (२) नेत्रबाला। (३) कुशा।

अर्ल-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० कौंटेस] इँगलैंड के सामंतों और बड़े बड़े भूम्यधिकारियों को वंशपरंपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि जिसका दर्जा मार्किस के नीचे और वाइकौंट के ऊपर है।

विशेष-दे० "ड्यूक"।

अर्श-संज्ञा पुं० [अ०] (३) चरखी जिस पर ऊन काता जाता है।

अर्शोघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (२) भिलावाँ। (३) सज्जीखार। (४) तेजबल। (५) सफेद सरसों।

अलंकार-संज्ञा पुं० [सं०] (३) वह हाव भाव या क्रिया आदि जिससे स्त्रियों का सौंदर्य्य बढ़े।

अलई-संज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कँटीली लता जिसकी प्रायः खेतों में बाढ़ लगाई जाती है। ऊरू।

अलक-संज्ञा पुं० [सं०] (२) हरताल। (३) सफेद आक। श्वेत मंदार।

अलता-संज्ञा पुं० [सं० अलक्तक] (१) वह लाल रंग जो स्त्रियाँ पैरों में लगाती हैं। (२) खसी की मूत्रेंद्रिय। जैसे,—अलते की बोटी।

अलबी तलबी-संज्ञा स्त्री० [अ० अरबी] अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाएँ अथवा बहुत कठिन उर्दू। जैसे,—आप अपनी अलबी तलबी छोड़कर सीधी तरह से हिंदी में बातें कीजिए।

अलबेला-संज्ञा पुं० [सं० अलभ्य] नारियल का बना हुआ हुक्का। उ०—खाय कै पान बिदोरत ओंठ हैं बैठि सभा में पिएँ अलबेला।—वंश गोपाल।

अलब्ध व्यायामभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी भूमि जिसमें सैन्य संग्रह न हो सके। (कौ०)

अलसान*-संज्ञा स्त्री० [सं० आलस्य] आलस। सुस्ती। उ०—अँखिन मैं अलसानि, चितौन में मंजु विलासन की सरसाई।—मतिराम।

अलहदी-संज्ञा पुं० दे० "अहदी"।

अलहदियाँ†-संज्ञा पुं० [अ० अहदी] जो कोई काम न कर सकता हो। अकर्म्मण्य। अहदी।

अलुक्-संज्ञा पुं० [सं०] आलू बुखारा।

अल्टिमेटम-संज्ञा पुं० [अं०] (किसी देश या राज्य का दूसरे देश या राज्य से) अंतिम प्रस्ताव, सूचना, पत्र या शर्तें जिनके अस्वीकृत होने पर युद्ध के सिवा उपायांतर नहीं रहता। अंतिम पत्र। अंतिम सूचना। जैसे,—जापान ने चीन को अल्टिमेटम दिया है कि २४ घंटे के अंदर टिनसिन खाली कर दो।

अल्पप्रसार-संज्ञा पुं० [सं०] छोटी सी जांगलिक सेना या जांगलिक सहायता। (कौ०)

अल्पभृत-संज्ञा पुं० [सं०] वार्षिक भृत्ति (भत्ता या वेतन) पानेवाला कर्मचारी।

अल्पव्यय-संज्ञा पुं० [सं०] जो काम केवल कुछ भत्ता (खाने पीने का खर्च) मात्र देने से हो जाय।

अल्पव्ययारंभ-वि० [सं०] बहुत कम खर्च में बननेवाला। (कौ०)

अल्पस्वाप-संज्ञा पुं० [सं०] आराम करने के स्थान या अवसर का बहुत कम मिलना। (कौ०)

अवकाश-संज्ञा पुं० [सं०] जगह। जमीन।

विशेष—चाणक्य ने अनवसित संधि प्रकरण में इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है।

अवक्रीतक-वि० [सं०] माँग कर लिया हुआ। मँगनी लिया हुआ।

विशेष—अवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के समान ही दंड का विधान था।

संज्ञा पुं० [सं०] किराये या भाड़े पर लिया हुआ माल।

अवघोषक-संज्ञा पुं० [सं०] झूठी खबरें उड़ानेवाला। (इनको चंद्रगुप्त मौर्य्य के समय में फाँसी पर चढ़ाने का दंड दिया जाता था।)

अवडेर†-संज्ञा पुं० [अव + रार या राड़] झमेला। झंझट। बखेड़ा।

अवडेरना*†-क्रि० स० [सं० उद्वास ?] न बसने देना। न रहने देना। उ०—भोरानाथ भोरे हो सरोष होत थोरे दोष पोषि तोपि थापि आपने न अवडेरिये।—तुलसी।

† क्रि० स० [हिं० अवडेर + ना (प्रत्य०)] चक्कर में डालना। फेर में डालना। फँसाना। उ०—(क) पंच कहे सिव सती बियाही। पुनि अवडेरि मरायन्हि ताही।—तुलसी। (ख)

भोरानाथ भोरे ही सरोष होत थोरे दोष पोषि तोषि थापी अपनी न अवडेरिये।—तुलसी।

अवडेरा†-वि० [?] (१) घुमाव फिराववाला। चक्करदार। (२) बेढब। कुढब। उ०—जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।—तुलसी।

अवनीप-संज्ञा पुं० [सं० अवनि+प=पति] राजा। उ०—दीप दीप हू के अवनीपन के अवनीप।—केशव।

अवमर्श संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाट्य-शास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक।

अवरवर्णाभिनिवेश-संज्ञा पुं० [सं०] छोटी जातियों से बसाया हुआ उपनिवेश।

अवरोहक-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वगंध। असगंध।

अवशीर्ण क्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] विरक्त मित्र या राज्यापराध के कारण बहिष्कृत व्यक्ति के साथ फिर संधि करना।

अवश्य सैन्य-वि० [सं०] (राजा या राष्ट्र) जिसकी सेना वश में न हो।

विशेष—पुराने नीतिज्ञ इसकी अपेक्षा अव्यवस्थित-सैन्य अच्छा समझते थे। पर कौटिल्य के मत में अवश्य सेना साम आदि उपायों से वश में की जा सकती है, अतः वही अच्छी है।

अवसर-प्राप्त-वि० [सं०] जिसने अपने काम से सदा के लिये अवसर ग्रहण कर लिया हो। जिसने पेन्शन ले ली हो। जैसे,—अवसर-प्राप्त मैजिस्ट्रेट।

अवस्कंदक-संज्ञा पुं० [सं०] जो रास्ते चलते लोगों को मारे पीटे। गुंडा।

अवस्कंदित-श्रमी-संज्ञा पुं० [सं०] मजदूरी या तनखाह लेकर भाग जानेवाला मजदूर।

अवस्कर भ्रम-संज्ञा पुं० [सं०] वह नल जिससे पाखाना बह कर बाहर जाता हो। ड्रेन।

अवस्था परिणाम-संज्ञा पुं० दे० "परिणाम"। (योग)

अवारना*-क्रि० स० [सं० अवारण] (१) रोकना। मना करना। (२) दे० "वारना"।

अवासा-संज्ञा पुं० [सं० अवासस] एक प्रकार के दिगंबर जैन जो "नग्न" के अंतर्गत हैं।

अविज्ञात क्रय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुप्त स्थान से या मालिक के अनजान में कोई पदार्थ मोल लेना। (२) व्यवहार में आधा माल नष्ट हो जाना।

अविदुग्ध-संज्ञा पुं० [सं०] भेंड़ी का दूध।

अविभाज्य-संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह राशि जिसको किसी गुणक के द्वारा भाग न किया जा सके। निश्छेद।

अविशेष सम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। यदि वादी किसी वस्तु के सादृश्य के आधार पर कोई बात सिद्ध करे—उदाहरणार्थ घट के सादृश्य से शब्द को अनित्य सिद्ध करे; और उसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि यदि प्रयत्न के उत्पन्न होने के कारण ही घट के समान शब्द भी अनित्य हो, तो इतना अल्प सादृश्य तो सभी वस्तुओं में होता है; और ऐसे सादृश्य के कारण सभी चीजों के धर्म्म एक मानने पड़ेंगे, तो ऐसा उत्तर अविशेष सम कहा जायगा।

अविसह्य-वि० [सं०] रोग उत्पन्न करनेवाला या गुण-रहित (पदार्थ)।

विशेष—ऐसे पदार्थ बेचनेवाला दंड का भागी होता था।

अविसह्य दुर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग जिसमें शत्रु प्रवेश न कर सकता हो। (कौ०)

अवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) बन कुलथी।

अवृद्धिक-वि० [सं०] जिस पर ब्याज न लगता हो।

अव्यथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) स्थल कमल। स्थलपद्म। (४) गोरखमुंडी। (५) आँवला।

अशन-संज्ञा पुं० [सं०] (३) चीता। चित्रक लकड़ी। (४) भिलावाँ। (५) असन वृक्ष।

अशुश्रूषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसकी आज्ञा में रहना चाहिए, उसकी आज्ञा में न रहने का अपराध।

विशेष—पारिवारिक व्यवस्था की दृष्टि से इस अपराध का राज्य की ओर से दंड होता था। जैसे,—यदि पुत्र पिता की आज्ञा न माने तो वह दंडनीय कहा गया है। (स्मृति०)

अश्मंतक-संज्ञा पुं० [सं०] (४) पाषाणभेद। (५) लिसोढ़ा। (६) कचनार।

अश्म-संज्ञा पुं० [सं०] (४) सोनामक्खी। (५) लोहा।

अश्वव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें कवचधारी (लोहे की पाखरवाले) घोड़े सामने और साधारण घोड़े पक्ष और कक्ष में हों।

अश्वमेध-संज्ञा पुं० [सं०] (२) एक प्रकार की तान जिसमें षड्ज स्वर को छोड़कर शेष छः स्वर लगते हैं।

अश्वारि-संज्ञा पुं० [सं०] (२) करवीर। कनेर।

अश्विनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) जटामासी। बालछड़।

अश्वियुगल-संज्ञा पुं० [सं०] दो कल्पित देवता जो प्रभात के समय घोड़ों या पक्षियों से जुते हुए सोने के रथ पर चढ़कर आकाश में निकलते हैं। कहते हैं कि यह लोगों को सुख-सौभाग्य प्रदान करते हैं और उनके दुःख तथा दरिद्रता आदि हरते हैं। कहीं कहीं यही अश्विनीकुमार भी माने गए हैं। कहते हैं कि दधीचि से मधु-विद्या सीखने के लिये इन्होंने उनका सिर काटकर अलग रख दिया था, और उनके धड़ पर घोड़े का सिर रख दिया था; और तब उनसे मधु-विद्या सीखी थी। वि० दे० "दधीचि"।

अष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] (६) आठ ऋषियों का एक गण।

अष्टधाती-वि० [सं० अष्ट+धातु] (४) वह जिसके माता-पिता का ठीक ठिकाना न हो। दोगला। वर्णसंकर।

अष्टपदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) बेला नाम का फूल या उसका पौधा।

अष्ट प्रकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्रनीति के अनुसार राज्य के ये आठ प्रधान कर्मचारी—सुमंत्र, पंडित, मंत्री, प्रधान, सचिव, अमात्य, प्राड्विवाक् और प्रतिनिधि। किसी किसी के अनुसार—राजा, राष्ट्र, अमात्य, दुर्ग, बल, कोष, सामंत और प्रजा राज्य के ये आठ अंग।

विशेष—महाभारत, मनुस्मृति आदि में पहले सात ही अंग कहे गये हैं।

अष्टमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) क्षीर काकोली। पयस्वा।

अष्टवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (३) नीति शास्त्र के अनुसार किसी राज्य के कृषि, बस्ती (बाजार आदि), दुर्ग, सेतु, हस्तिबंधन, खान, कर-ग्रहण और सैन्य-संस्थापन का समूह।

अष्टावक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह मनुष्य जिसके हाथ पैर आदि कई अंग टेढ़े मेढ़े हों।

असंहत व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] सेना को छोटे छोटे समूहों में अलग अलग खड़ा करना।

असकारंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह भूमि जिसमें बहुत थोड़े श्रम से अन्न पैदा हो। (२) कम मेहनत और थोड़ी वर्षा से हो जानेवाली फसल। (कौ०)

असगुनियाँ†-संज्ञा पुं० [हिं० असगुन+इया (प्रत्य०)] वह मनुष्य जिसका मुँह देखना लोग अशुभ समझते हों। मनहूस।

असद्भाव-संज्ञा पुं० [सं०] नव्य न्याय के अनुसार एक दोष जो तर्क के अवयवों के प्रयोग में होता है।

असमेधॐ-संज्ञा पुं० दे० "अश्वमेध" उ०—दस असमेध जगत जेइ कीन्हा।—जायसी

असल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लंबा झाड़ जो मध्य प्रदेश, संयुक्त प्रांत, दक्षिण भारत और राजपूताने में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ तीन चार इंच लंबी होती हैं और डालियाँ नीचे की ओर झुकी हुई होती हैं। इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है, और बीज, छाल तथा पत्तियों का औषध में व्यवहार होता है। अकाल पड़ने पर इसकी पत्तियाँ खाई भी जाती हैं। इसकी टहनियों की दातुन बहुत अच्छी होती है। जब जाड़े के दिनों में यह फूलता है, तब बहुत सुंदर जान पड़ता है।

संज्ञा पुं० [अ०] (३) लोहा नामक धातु।

असहयोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साथ मिलकर काम न करने का भाव। (२) आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सरकार के साथ मिलकर काम न करने, उसकी संस्थाओं में सम्मिलित न होने और उसके पद आदि ग्रहण न करने का सिद्धांत। तर्के मवालात। नान-कोआपरेशन।

असहयोग वाद-संज्ञा पुं० [सं०] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने का सिद्धांत।

असहयोगवादी-संज्ञा पुं० [सं०] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने के सिद्धांत को माननेवाला मनुष्य।

असही-संज्ञा स्त्री० [?] ककही या कंघी नाम का पौधा।

असह्य व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह 'दंडव्यूह' जिसके दोनों पक्ष फैला दिए गए हों। (कौ०)

असाईॐ-संज्ञा पुं० [सं० अज्ञानीय] वह जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञानी। उ०—भोला गंध्रबसेन रिसाई। कस जोगी कस भाँट असाई।—जायसी।

असाधॐ†-वि० दे० "असाध्य"।

असारभांड-संज्ञा पुं० [सं०] घटिया माल। (कौ०)

असित-संज्ञा पुं० [सं०] (५) धौ का पेड़।

असिता संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली नाम का पौधा।

असिद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा और ऊँचा वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और प्रायः इमारत के काम में आती है। इसकी छाल से चमड़ा भी सिझाया जाता है।

असीन-संज्ञा पुं० [देश०] सज नाम का वृक्ष। वि० दे० "सज"।

असुॐ-संज्ञा पुं० [सं० अश्व] घोड़ा। अश्व। उ०—असु-दल गज-दल दूनौ साजे। औ घन तबल जुझाऊ बाजे।—जायसी।

असुर-संज्ञा पुं० [सं०] (६) समुद्री लवण। (७) देवदार।

असुरविजयी-संज्ञा पुं० [सं० असुरविजयिन्] वह राजा जो पराजित की भूमि, धन, स्त्री, पुत्र आदि के अतिरिक्त उसकी जाति भी लेना चाहे।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि दुर्बल राजा ऐसे शत्रु को भूमि आदि देकर जहाँ तक दूर रख सके, अच्छा है।

असेसमेंट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) मालगुजारी या लगान लगाने के लिये जमीन का मोल ठहराने का काम। बंदोबस्त। (२) कर या टैक्स लगाने के लिये बही खाते की जाँच का काम।

असेसर-संज्ञा पुं० [अं०] (२) वह जो बही खाता जाँचकर कर या महसूल की रकम निश्चित करता है। (३) वह जो जमीन का मोल ठहरा कर लगान या मालगुजारी की रकम निश्चित करता है। कर लगानेवाला।

अस्तनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके स्तन बहुत ही छोटे और नहीं के समान हों।

अस्ताचल-संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित पर्वत जिसके संबंध में

लोगों का यह विश्वास है कि अस्त होने के समय सूर्य इसी की आड़ में छिप जाता है। पश्चिमाचल।

अस्र-संज्ञा पुं० [सं०] (५) केसर। (६) बाल।

अस्रप-संज्ञा पुं० [सं०] (३) जोंक जो लहू (अस्र) पीती है।

अस्वामिक द्रव्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जिस पर किसी की मिलकियत न हो। (पराशर)

अस्वामि-विक्रीत-संज्ञा पुं० [सं०] मालिक की चोरी से बेचा हुआ।

विशेष—नारद ने कहा है कि ऐसी वस्तु का पता लगने पर मालिक उसका हकदार होता है। पर मालिक को इस बात की सूचना राज्य को कर देनी चाहिए।

अस्वामि-संहत (सेना)-वि० [सं०] (सेना) जिसका सेनानायक न मारा गया हो।

अहकना॥-क्रि० स० [हिं० अहक + ना (प्रत्य०)] इच्छा करना। लालसा करना।

अहथिर॥†-वि० दे० "स्थिर"। उ०—सबै नास्ति वह अहथिर ऐस साज जेहि केर।—जायसी।

अहना॥-क्रि० अ० [सं० अस्ति] वर्त्तमान रहना। होना। उ०—(क) राजा सेंति कुँअर सब कहहीं। अस अस मच्छ समुद महँ अहहीं।—जायसी। (ख) जब लगि गुरु हौं अहा न चीन्हा। कोटि अँतरपट बीचहिं दीन्हा।—जायसी।

अहनिसि॥-क्रि० वि० दे० "अहर्निश"। उ०—मुयों मुयों अहनिसि चिल्लाई। ओही रोस नागन्ह धै खाई।—जायसी।

अहर-संज्ञा पुं० [देश०] छीपियों का रंग रखने का मिट्टी का बरतन। तैया।

अहिंसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (५) कंटकवाली या हंस नाम की घास।

अहीक-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक।

अहुआ†-संज्ञा स्त्री० [देश०] घीए के महीन टुकड़ों को मिलाकर पकाया हुआ चावल।

अहेतुसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। यदि वादी कोई हेतु उपस्थित करे और उसके उत्तर में यह कहा जाय कि तुम्हारा यह हेतुभूत, भविष्य या वर्त्तमान किसी काल में हेतु नहीं हो सकता, तो ऐसा उत्तर अहेतु सम कहलावेगा।

आईना-संज्ञा पुं० [फा०] (२) किवाड़े का दिलहा। वि० दे० "दिलहा"।

यौ०—आईनेदार = वह किवाड़ा जिसमें आइना या दिलहा हो।

आकर-संज्ञा पुं० [सं०] (५) तलवार चलाने के बत्तीस हाथों या तरकीबों में से एक।

आकरी-संज्ञा पुं० दे० "आकरिक"

संज्ञा स्त्री० [सं० आकर] खान खोदने का काम। उ०—चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख जानत न क्रूर कछु किसब कबारू है।—तुलसी।

आकली-संज्ञा स्त्री० [देश०] चटक पक्षी। गौरैया।

आकाश-संज्ञा पुं० [सं०] (४) अबरक। अभ्रक।

आकाशयोधी-संज्ञा पुं० [सं० आकाशयोधिन्] वह लोग जो ऊँची जमीन या टीले पर से लड़ाई कर रहे हों। (कौ०)

आकिलखानी-संज्ञा पुं० [आकिलखाँ (नाम)] एक प्रकार का रंग जो कालापन लिए लाल होता है। एक प्रकार का खैरा या काकरेजी रंग।

आकुल-संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर। अश्वतर।

आक्रंद-संज्ञा पुं० [सं०] (८) प्रधान शत्रु के पीछे रह कर सहायता करनेवाला शत्रु राजा या राष्ट्र।

आक्षिक ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] जूआ खेलने में किया हुआ ऋण।

आखु-संज्ञा पुं० [सं०] (३) सूअर। शूकर।

आखुपाषाण-संज्ञा पुं० [सं०] (२) संखिया नामक विष।

आग॥†-क्रि० वि० दे० "आगे"। उ०—चित डोलै नहिं खूँटी टरई। पल पल पेखि आग अनुसरई।—जायसी।

संज्ञा पुं० दे० "आगा"। उ०—तू रिस भरी न देखेसि आगू। रिस महँ काकर भएउ सोहागू।—जायसी।

आगत-संज्ञा पुं० दे० "आयात"। जैसे,—आगत-कर।

आगम-संज्ञा पुं० [सं०] (१३) तंत्रशास्त्र का वह अंग जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, उनका साधन, पुरश्चरण और चार प्रकार का ध्यान योग होता है।

आघाट-संज्ञा पुं० [सं०] गाँव की सीमा। गाँव की हद। सिवान।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन शिलालेखों में मिलता है। 'आघाटक' या 'आघाटन' शब्द भी इसी अर्थ में आए हैं।

आचमन-संज्ञा पुं० [सं०] (४) सुगंधबाला। नेत्रबाला।

आचरित दायन-संज्ञा पुं० [सं०] ऋण का वह चुकता जो स्त्री पुत्र को बाँधने या दरवाजे पर धरना देने से हो।

आचारी-संज्ञा स्त्री० [?] हुरहुर। हिलमोचिका।

आछे॥†-क्रि० वि० [हिं० अच्छा] भले प्रकार से। अच्छी तरह से। भली भाँति। उ०—तिनके लच्छन लच्छ अब, आछे कहौं बखानि—मतिराम।

आजीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उचित लाभ या आय। वाजिब आमदनी।

विशेष—जो लोग कारीगरों तथा श्रमियों की आमदनी को घटाने का यत्न करते थे, उनके ऊपर चाणक्य ने १००० पण जुरमाना करना लिखा है।

(२) राज्य कर। सरकारी टैक्स या महसूल।

विशेष—यह भिन्न भिन्न पदार्थों पर लगता था।

आज्ञाधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जो राजा की आज्ञा से रखी या रखाई गई हो ।

आज्ञापत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह पत्र जिसके द्वारा राजा सामंत, भृत्य, राष्ट्रपाल आदमियों को आज्ञा दे ।

आटोक्रैट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) निरंकुश या स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट् । वह राजा या शासक जो दूसरों पर अपनी शक्ति का अबाध रूप से प्रयोग या मनमानी करना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानता हो । (२) वह जिसे किसी विषय में अमर्यादित अधिकार प्राप्त हों या जो किसी विषय में अपना अमर्यादित अधिकार मानता हो । मनमानी करनेवाला । स्वेच्छाचारी । निरंकुश ।

आटोक्रैसी–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) दूसरों पर अनियंत्रित या अमर्यादित अधिकार जो किसी एक ही व्यक्ति को हो । दूसरों पर मनमाना करने का अधिकार । स्वेच्छाचारिता । निरंकुशता । (२) किसी निरंकुश स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट् की शक्ति । एक-तंत्रता ।

आडिटर–संज्ञा पुं० [अं०] आय व्यय का चिट्ठा जाँचनेवाला । आय व्यय परीक्षक ।

आढ़की–संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) सौराष्ट्र मृत्तिका । गोपीचंदन ।

आढ़तदार–संज्ञा पुं० [हिं० आढ़त + फा० दार (प्रत्य०)] वह जो व्यापारियों का माल अपने यहाँ रखकर दूकानदारों के हाथ बेचता हो । आढ़त का काम करनेवाला । अढ़तिया ।

आत्त प्रतिदान–संज्ञा पुं० [सं०] जो मिला हो, उसको लौटाना । (कौ०)

आत्मगुप्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) शतावर ।

आत्मधारण भूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अधीन राज्य या भूमि जिसका शासन-प्रबंध वहीं की सेना और संपत्ति से हो जाय, साम्राज्य को उसके शासन का कुछ खर्च न उठाना पड़े । (कौ०)

आत्मरत–संज्ञा पुं० [सं०] महेंद्रवारुणी । बड़ी इन्द्रायन ।

आत्मविक्रेता–संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो अपने आपको बेचकर दास हुआ हो ।

आत्मविचय–संज्ञा पुं० [सं०] अपनी तलाशी या नंगा झोली देना ।

आत्मशासन–संज्ञा पुं० दे० "स्वराज्य" । (क०)

आत्मामिष संधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो स्वयं सेना के साथ शत्रु के पास जाकर की जाय । (कामंदकीय)

आथी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थातृ, हिं० थाती] पूँजी । धन । उ०—साथी आथि निजाथि जो सकै साथ निरबाहि ।—जायसी ।
 ॐ संज्ञा स्त्री० [सं० अर्थ] अर्थ-संपन्नता । अमीरी । खुशहाली ।

आदि–संज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा । परमेश्वर । उ०—आदि किएउ आदेस सुन्नहिं ते अस्थूल भए ।—जायसी ।

आदिष्टसंधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो प्रबल शत्रु को कोई भूमिखंड देने की प्रतिज्ञा करके की जाय । (कामंद०)

आदी†–क्रि० वि० [सं० आदि] बिलकुल । नितान्त । जरा भी । उ०—मातु न जानसि बालक आदी । हौं बावला सिंधु रनवादी ।—जायसी ।

आदेय–संज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ जो सुगमता से प्राप्त हो, सुरक्षित रखा जा सके तथा शत्रु द्वारा न लिया जा सके । (कौ०)

आधाता–संज्ञा पुं० [सं आधातृ] गिरवी रखनेवाला । बंधक रखनेवाला ।

आधान–संज्ञा पुं० [सं०] (३) गिरवी या बंधक रखना । (कौ०)

आधिकारिक–संज्ञा पुं० [सं०] दृश्यकाव्य की वस्तु के दो भेदों में से एक । मूल कथावस्तु । वि० दे० "वस्तु" (५) ।

आधिपाल–संज्ञा पुं० [सं०] वह राज-कर्मचारी जो जमा की हुई धरोहर की रक्षा का प्रबंध करता था ।

आधिमोचन–संज्ञा पुं० [सं०] गिरवी या बंधक छुड़ाना ।

आनंद–संज्ञा पुं० [सं०] (२) मद्य । शराब ।

आनर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) सम्मान-चिह्न । उपाधि । (२) सम्मान ।

आनुग्राहिक कर नीति–संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य की वह नीति जिसके अनुसार कुछ विशेष मालों पर रिआयत की जाती है ।

आनुग्रहिक दारोदय शुल्क–संज्ञा पुं० [सं०] वह चुंगी जो कुछ खास खास पदार्थों पर कम ली जाय ।

आनुवंशिक–संज्ञा पुं० [सं०] वंश-परंपरा से चला आया हुआ । वंशानुक्रमिक ।

आनुवेश्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पड़ोसी । प्रतिवेशी । (२) वह पड़ोसी जिसका घर अपने मकान से दाहिने या बाएँ हो । प्रतिवेश्य का उलटा ।

आपत्कृत ऋण संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो कोई आपत्ति पड़ने पर लिया जाय ।

आपदर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] वह धन या संपत्ति जिसके प्राप्त करने पर आगे चल कर अपना अनिष्ट हो ।

विशेष–जिस संपत्ति के लेने पर शत्रुओं की संख्या बढ़े, व्यय या क्षय बढ़े अथवा दूसरों को बहुत कुछ देना पड़े, वह आपदर्थ है । कौटिल्य ने आपदर्थ के अनेक दृष्टांत दिए हैं; जैसे वह संपत्ति जो कुछ दिनों पीछे मिलनेवाली हो, जिसे पीछे से कुपित होकर पर्ष्णिग्राह छीन ले, जो मित्र के नाश या संधिभंग द्वारा हो, जिसके ग्रहण के विरुद्ध सारा मंडल हो इत्यादि । (कौ०)

आपीड़–संज्ञा पुं० [सं०] (३) एक प्रकार का विषम वृत्त जिसके प्रथम चरण में ८, दूसरे में १२, तीसरे में १६ और चौथे में २० अक्षर होते हैं । इसमें समस्त चरणों के समस्त वर्ण लघु होते हैं; केवल अंत के दो वर्ण गुरु होते हैं ।

आपुन–सर्व० [हिं० आप] (२) खुद । स्वयं । उ०—कछु आपुन

अध अधगति चलंति । फल पतितन कहँ उरध फलंति ।—केशव ।

आपोजीशन-संज्ञा पुं० [अं०] पार्लमेंट या व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों का वह समूह या दल जो मंत्रि-मंडल या शासन का विरोधी हो। जैसे,—पार्लमेंट की कामन्स सभा में आपोजीशन के लीडर ने होम मेंबर पर वोट आफ सेन्सर या निंदात्मक प्रस्ताव उपस्थित किया ।

आबदार-संज्ञा पुं० [फा०] वह आदमी जो तोप में सुंबा और पानी का पुचारा देता है । उ०—केतेक जालदार आबदार लाबदार हौ ।—सूदन ।

विशेष—पुरानी चाल की तोपों में जब एक बार गोला छूट जाता था, तब नल को ठंढा करने के लिये एक छड़ में लपेटे हुए चीथड़ों को भिगोकर उस पर पुचारा दिया जाता था, जिसमें नल के गरम होने के कारण वह गोला आप ही आप न छूट जाय ।

आभय-संज्ञा पुं० [सं०] (२) काला अगर। (३) कुट नाम की ओषधि ।

आभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) बबूल का पेड़ ।

आभीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) भारतवर्ष की एक प्राचीन भाषा जो ईसवी दूसरी या तीसरी शताब्दी में सिंध, मुलतान तथा उत्तरी पंजाब में बोली जाती थी। आगे चलकर ईसवी छठी शताब्दी में यह भाषा "अपभ्रंश" के नाम से प्रसिद्ध हुई थी। उस समय इस भाषा में साहित्य का भी निर्माण होने लगा था।

आभ्यंतर आतिथ्य-संज्ञा पुं० [सं०] देश के भीतर आया हुआ विदेशी माल ।

आभ्यंतर कोप-संज्ञा पुं० [सं०] मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज आदि का विद्रोह । (कौ०)

आमिश्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि या राज्य जिसमें राजभक्त और राजद्रोही दोनों समान रूप से हों ।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि राजभक्त जनता के सहारे ही आमिश्रा भूमि पर शासन किया जाय। (कौ०)

आमिर⊛-संज्ञा पुं० [अ० आमिल] हाकिम । आमिल। अधिकारी। उ०—नव-नागरि तन मुलुक लहि जोबन-आमिर जौर। घटि बढ़ि तैं बढ़ि घटि रकम करीं और की और।—बिहारी।

आमिल⊛-वि० [सं० अम्ल] खट्टा । अम्ल । उ०—अहै सो कडुआ अहै सो मीठा। अहै सो आमिल अहै सो सीठा।—जायसी ।

आमोद संज्ञा पुं० [सं०] (४) शतावर ।

आयति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भावी आय । आगे होनेवाली आमदनी । (कौ०)

आयव्यय-संज्ञा पुं० [सं०] जमाखर्च । आमदनी और खर्च । (कौ०)

आयस-संज्ञा पुं० [सं०] (३) अगर नामक लकड़ी । (४) रत्न । मणि ।

आयात-संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो व्यापार के लिये विदेश से अपने देश में लाया या मँगाया गया हो । आगत। जैसे,—आयात कर । आयात व्यापार ।

आयुतिक संज्ञा पुं० [सं०] दस हजार सिपाहियों का अध्यक्ष ।

आयुधीय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फौजी सिपाही । (२) सैनिक या रंगरूट देनेवाला गाँव । (कौ०)

आयुधीय काय-संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र जिसमें फौज में काम करनेवाले लोगों की संख्या अधिक हो । (कौ०)

आरंभ निष्पत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उपलब्धि । माल की माँग पूरी करना । (२) माल पैदा करने या बनाने की लागत । (कौ०)

आर-संज्ञा पुं० [सं०] (५) हरताल ।

आरक्त-संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन ।

आरचेस्ट्रा-संज्ञा पुं० [अं०] (१) थियेटर आदि में सामने बैठकर बाजा बजानेवालों का दल । (२) थियेटर में वह स्थान जहाँ बाजा बजानेवाले एक साथ बैठकर बाजा बजाते हैं। (३) थियेटर में सब से आगे की सीटें या आसन ।

आरफनेज-संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ अनाथ बच्चों की रक्षा या पालन होता है । अनाथालय। यतीमखाना । जैसे,—हिन्दू आरफनेज ।

आराम कुरसी-संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार की लंबी कुरसी जिसमें पीछे की ओर कुछ लंबोतरा ढासना होता है और दोनों ओर हाथ या पैर रखने के लिये लंबी पटरियाँ लगी होती हैं। इस पर आदमी बैठा हुआ आराम से लेट भी सकता है ।

आरामाधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] बगीचों का अफसर ।

विशेष—शुक्र नीति के अनुसार फल फूल के पौधे बोने में निपुण खाद तथा पानी देने का समय जाननेवाला, जड़ी बूटियों को पहचाननेवाला आरामाधिप्रति होना चाहिए ।

आरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे जालबर्बुरक या स्थूलकंटक भी कहते हैं। (२) दुर्गंध खैर । बबुरी ।

आरुक-संज्ञा पुं० [सं०] (२) आलू बुखारा ।

आरोह-संज्ञा पुं० [सं०] (८) चूतड़ । नितंब । (९) ग्रहण के दस भेदों में से एक जिसमें ग्रस्त ग्रह को आवृत्त करनेवाला ग्रह (राहु) वर्त्तुलाकार ग्रहमंडल को आवृत्त करके पुनः दिखाई पड़ता है । फलित ज्योतिष के अनुसार इस प्रकार के ग्रहण के फल स्वरूप राजाओं में परस्पर संदेह और विरोध उत्पन्न होता है ।

आर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) कौशल । कृतित्व । कारीगरी । (२)

कला। क्रिया। शिल्प। हुनर। जैसे,—चित्रकारी। (३) चित्रकार या भास्कर का काम या व्यवसाय। (४) विश्वविद्यालय का वह विभाग जिसमें चिकित्सा, विज्ञान और व्यवहारशास्त्र (वकालत) को छोड़ अन्य सब विषयों, विद्याओं और भाषाओं की उच्च शिक्षा दी जाती हो। जैसे,—आर्टस् कालेज।

आर्टिकिल्स आफ एसोसियेशन-संज्ञा पुं० [अं०] किसी संस्था या ज्वायंट स्टाक कंपनी या सम्मिलित पूँजी से खुलनेवाली कंपनी की नियमावली।

आर्टिलरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] तोपखाना।

आर्टिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी कला में, विशेषकर ललित कला (चित्रकारी, तक्षण कला, संगीत, नृत्य आदि) में कुशल हो।

आर्डर-संज्ञा पुं० [अं०] (२) कोई वस्तु भेजने, पहुँचाने या मुहैया करने के लिये मौखिक या लिखित आदेश। माँग। जैसे,—(क) वे बादामी कागज की एक गाँठ का आर्डर दे गए हैं। (ख) आज-कल बाहर से बहुत कम आर्डर आते हैं। (ग) आर्डर के साथ चौथाई दाम भेजना चाहिए।

क्रि० प्र०—आना।—देना।—मिलना।

यौ०— आर्डर-सप्लाई। आर्डर-सप्लायर।

(३) स्थिरता। शांति। जैसे,—सभा में बड़ा ही हल्ला मचा, लोग 'आर्डर' 'आर्डर' कहने लगे। (४) क्रम। सिलसिला।

आर्डरी-वि० [अ० आर्डर+ई (प्रत्य०)] आर्डर संबंधी। आर्डर का।

आर्डिनरी-वि० [अं०] साधारण। मामूली। जैसे,—आर्डिनरी मेंबर, आर्डिनरी शेयर।

आर्डिनेंस-संज्ञा पु० [अं०] वह आदेश या हुक्म जो किसी देश के अधिकारी (भारत में वाइसराय) विशेष अवसरों पर जारी करते हैं और जो कुछ काल के लिये कानून माना जाता है। अस्थायी व्यवस्था या कानून। जैसे,—नये आर्डिनेंस के अनुसार बंगाल में कितने ही युवक गिरफ्तार किए गए।

विशेष—भारत में वाइसराय अपने अधिकार से, बिना कौंसिल की सम्मति लिए, आर्डिनेंस जारी कर सकते हैं। ऐसे आर्डिनेंस का काल छः महीने का होता है। पर आवश्यकता पड़ने पर वह बढ़ाया भी जा सकता है।

आर्थी-संज्ञा स्त्री० दे० "कैतवापह्नुति"।

आर्थोडाक्स-वि० [अं०] जो अपने धार्मिक मत या सिद्धांत पर अटल हो। अपने धार्मिक मत या सिद्धांत से टस से मस न होनेवाला। कट्टर। सनातनी। जैसे,—परिषद् के आर्थोडाक्स हिंदू मेम्बरों ने शारदा विवाह बिल का घोर विरोध किया।

आर्द्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) अदरक। आर्दी। (५) अतीस।

आर्म-संज्ञा पुं० [अं०] हथियार। अस्त्र शस्त्र। जैसे,—आर्म्स ऐक्ट।

आर्म पुलिस-संज्ञा स्त्री० [अं० आर्म्ड पोलिस] हथियार-बंद पुलिस। सशस्त्र पुलिस।

आर्मर्ड कार-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की गाड़ी जिस पर गोलियों से बचाव के लिए लोहा मढ़ा रहता है। बख्तरदार गाड़ी।

विशेष—ऐसी गाड़ियाँ सेना के साथ रहती हैं।

आर्मी-संज्ञा स्त्री० [अं०] सेना। फौज। जैसे,—इंडियन आर्मी।

विशेष—आर्मी शब्द देश की समूची स्थल सेना का बोधक है।

आल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कँटीला पौधा। स्याह काँटा। किंगरई। वि० दे० "किंगरई"।

आलू दम-संज्ञा पुं० दे० "दम आलू"।

आवर्त्तक-संज्ञा पुं० [सं०] योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें उनका ज्ञान आकुल हो जाता है और उनका चित्त नष्ट हो जाता है। (मार्कंडेय पु०)

आवर्त्तकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे चर्म्मण और भगवतवल्ली भी कहते हैं।

आवाय-संज्ञा पुं० [सं०] व्यूह बाँधने से बची हुई सेना। (कौ०)

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि परवाय तथा प्रत्यावाय से जो सेना तीन गुनी से आठ गुनी तक हो, उसका आवाय बना देना चाहिए।

आवेशनिक-संज्ञा पुं० [सं०] मित्रों को दिया जानेवाला भोज। (कौ०)

आशय-संज्ञा पुं० [सं०] (५) कटहल। पनस।

आशानिर्वेदि सेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय से हताश सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि आशानिर्वेदि तथा परिसृप्त (भगोड़े) सेना में आशानिर्वेदि उत्तम है; क्योंकि वह अपना स्वार्थ देखकर युद्ध के लिये तैयार हो जाती है।

आषाढ़-संज्ञा पुं० [सं०] (६) पलाश। ढाक।

आसन-संज्ञा पुं० [सं०] (८) उपेक्षा की नीति से काम करना। यह प्रकट करना कि हमें कुछ परवा नहीं है।

विशेष—इस नीति के अनुसार शत्रु के चढ़ आने या घेरने पर भी राजा लोग नाच-रंग का सामान करते हैं।

(९) उदासीन या तटस्थ रहने की नीति। आक्रमण को रोके रहने की नीति। (कौ०) (१०) एक दूसरे की शक्ति नष्ट करने में असमर्थ होकर दो राजाओं का संधि करके चुपचाप रह जाना।

विशेष—यह पाँच प्रकार का कहा गया है—विगृह्यासन, संधानासन, संभूयासन, प्रसंगासन और उपेक्षासन।

संज्ञा पुं० [सं] जीवक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि। (९) जीरक। जीरा।

आसामुखी†-वि० [सं० आशा+मुख] किसी के मुँह का

आसरा देखनेवाला। मुखापेक्षी। उ०—जो जाकर अस आसामुखी। दुख महँ ऐसन मारै दुखी।—जायसी।

आसार-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई में मित्र आदि से मिलनेवाली सहायता। (कौ०)

आसीन पाठ्य-संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार लास्य के दस अंगों में से एक। शोक और चिंता से युक्त किसी अभूषितांगी नायिका का बिना किसी बाजे या साज के यों ही गाना।

आसुर-संज्ञा पुं० [सं० असुर] असुर। राक्षस। उ०—काहू कहूँ सुर आसुर मार्‍यौ।—केशव।

आसुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) राजिका। राई। (४) सरसों।

आसुरी सृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] दैवी आपत्ति। जैसे, आग लगना, पानी की बाढ़, दुर्भिक्ष आदि।

आहार्य-संज्ञा पुं० [सं०] (२) अभिनय के चार प्रकारों में से एक। वेष-भूषा आदि धारण करके अभिनय करना।

आहार्योदक सेतु-संज्ञा पुं० [सं०] वह नहर जिसमें किसी स्थान से खींच कर पानी लाया गया हो। वि० दे० "सेतुबंध"।

आहितक-संज्ञा पुं० [सं०] गिरवी या बंधक रखा हुआ माल।

आहितदास-संज्ञा पुं० [सं०] ऋण के बदले में अपने को गिरवी रखकर बना हुआ दास। कर्जा पटाने के लिये बना हुआ गुलाम।

इंजर-संज्ञा पुं० दे० "समुंदर फल"।

इंडस्ट्रियल-वि० [अं०] उद्योग धंधा संबंधी। शिल्प संबंधी। औद्योगिक। जैसे,—इंडस्ट्रियल कानफरेन्स।

इंडस्ट्री-संज्ञा स्त्री० [अं०] उद्योग धंधा। शिल्प।

इंडेक्स-संज्ञा पुं० [अं०] (पुस्तक के) विषयों की अक्षरक्रम से बनी हुई सूची। विषयानुक्रमणिका।

इंडेण्ट-संज्ञा पुं० [अं०] माल मँगाने के समय भेजी जानेवाली माल की वह सूची जो किसी व्यापारी के पास माल की माँग के साथ भेजी जाती है।

इंडोर्स-क्रि० स० [अं० एण्डोर्स] चेक या हुंडी आदि पर रुपये देने या पाने के संबंध में हस्ताक्षर करना।

इंद्रच्छंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक हजार आठ मोतियों की माला जो चार हाथ लंबी होती थी।

इकली-संज्ञा स्त्री० दे० "एकली"।

इक्षुदर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण।

इच्छा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) माल की माँग।

विशेष—आधुनिक अर्थशास्त्र में माँग या Demand शब्द का व्यवहार जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में कौटिल्य ने 'इच्छा' शब्द का प्रयोग किया है। उसने 'आयुधागाराध्यक्ष' अधिकरण में लिखा है कि आयुधेश्वर अस्त्रों की 'इच्छा' और बनाने के व्यय को सदा समझता रहे। (३) गणित में त्रैराशिक की दूसरी राशि।

इनफार्मर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो गुप्त रूप से किसी बात का भेद लगाकर पुलिस को बताता है। गोइन्दा। भेदिया। जैसे,—वह पुलिस का इनफार्मर है।

इनस्टिट्यूशन-संज्ञा पुं० [अं०] संस्था। समाज। मंडल।

इन्टरनैशनल-वि० दे० "सार्वराष्ट्रीय"। जैसे,—इन्टरनैशनल एग्जिबिशन।

इन्टरमीडिएट-वि० [अं०] बीच का। मध्य का। मध्यम। जैसे—इन्टरमीडिएट क्लास।

इन्टरव्यू-संज्ञा पुं० [अं०] (१) व्यक्तियों का आपस में मिलना। एक दूसरे का मिलाप। भेंट। मुलाकात। जैसे,—प्रयाग के एक संवाददाता ने उस दिन स्वराज्य पार्टी की स्थिति जानने के लिये उसके नेता पं० मोतीलाल नेहरू से इन्टरव्यू किया था।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

(२) आपस में विचारों का आदान प्रदान। वार्त्तालाप। जैसे,—समाचारपत्रों में एक संवाददाता और मालवीय जी का जो इन्टरव्यू छपा है, उसमें मालवीय जी ने देश की वर्त्तमान राजनीतिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट किए हैं।

इन्वायस-संज्ञा पुं० [अं०] (१) व्यापारी द्वारा भेजे हुए माल की सूची जिसमें उस माल के दाम आदि का ब्योरा रहता है। बीजक। रवन्ना। (२) चलान का कागज।

इनश्योरेंस-संज्ञा पुं० दे० "बीमा"। जैसे,—लाइफ इनश्योरेंस।

इम्पीरियल-वि० [अं०] साम्राज्य या सम्राट् संबंधी। राजकीय। शाही। जैसे,—इम्पीरियल सर्विस।

इम्पीरियल गवर्नमेंट-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) साम्राज्य सरकार। (२) बड़ी सरकार।

विशेष—भारत सरकार को भी इम्पीरियल गवर्नमेंट अर्थात् बड़ी सरकार कहते हैं।

इम्पीरियल प्रेफरेन्स-संज्ञा पुं० [अं०] साम्राज्य की वस्तुओं पर उसके अधीनस्थ देश में इस प्रकार आयात-निर्यात कर बैठाने की नीति जिससे वह दूसरे देशों के मुकाबले में सस्ता माल बेच सके। साम्राज्य की बनी वस्तुओं को प्रशस्तता देना।

इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सेना जो भारत के देशी रजवाड़े भारत सरकार के सहायतार्थ अपने यहाँ रखते हैं और जिसकी देखभाल ब्रिटिश अफसर करते हैं।

विशेष—आपत्काल में सरकार इस सेना से काम लेती है।

इम्पोर्ट-संज्ञा पुं० दे० "आयात"। जैसे,—इम्पोर्ट ड्यूटी।

इरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (६) मदिरा। शराब।

इलता-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण भारत के मैदानों और पहाड़ों में होता है। इसमें

बहुत बड़े बड़े फूल और फल लगते हैं। इसके छोटे छोटे कलों से बहुत अच्छा कागज बनता है।

इलेक्ट्रो-वि० [अं०] बिजली द्वारा तैयार किया हुआ। इलेक्ट्रिक का। जैसे,—इलेक्ट्रो टाइप, इलेक्ट्रो प्लेट।

संज्ञा पुं० तस्वीर आदि का वह ठप्पा या ब्लाक जो बिजली की सहायता से तैयार किया गया हो।

इल्ली-संज्ञा स्त्री० [?] च्यूँटी आदि के बच्चों का वह पहला रूप जो अंडे से निकलने के उपरांत तुरंत होता है।

इसारत-*†-संज्ञा स्त्री० [फा० इशारा] इशारा। संकेत। उ०—मुख सों न कह्यो कछु हाथ की इसारत सों गारी दै दै आपनी केवारी दोऊ दै गई।—रघुनाथ।

इहलौकिक-वि० [सं०] इहलोक संबंधी। इस लोक का। सांसारिक। (२) इस लोक में सुख देनेवाला।

इँडरी†-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] कपड़े की बनी हुई कुंडलाकार गद्दी जिसे घड़ा या और कोई बोझ उठाते समय सिर पर रख लेते हैं। उ०—आई संग आलिन के ननद पठाई नीठ सोहत सुहाई सूही इँडरी सुपट की। कहै पद्माकर गभीर जमुना के तीर लागी घट भरन नवेली नेह अटकी।—पद्माकर।

ईठना*-क्रि० अ० [सं० इष्ट] चाह करना। इच्छा करना।

ईर्ष्यक-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार के नपुंसक जिन्हें उस समय कामोत्तेजना होती है जिस समय वे किसी दूसरे को मैथुन करते हुए देखते हैं।

ईश-संज्ञा पुं० [सं०] (८) पारद। पारा।

ईश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (४) पारद। पारा। (५) पीतल। (६) रामानुजाचार्य्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो संसार का कर्त्ता, अपादान, अंतर्यामी और ऐश्वर्य तथा वीर्य्य आदि संपन्न माना जाता है। (शेष दो पदार्थ चित् और अचित् हैं।)

ईसन*-संज्ञा पुं० [सं० ईशान] ईशान कोण। पूरब और उत्तर के बीच का कोना। उ०—सतमी पूनिउँ वायब आछी। अठइँ अमावस ईसन लाछी।—जायसी।

ईसर*-संज्ञा पुं० [सं० ऐश्वर्य] धन-संपत्ति। ऐश्वर्य। वैभव। उ०—कहेन्हि न रोव बहुत तें रोवा। अब ईसर भा दारिद खोवा।—जायसी।

ईस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] पूर्व दिशा।

उँघाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँघना] (१) ऊँघने की क्रिया या भाव। (२) निद्रागम। झपकी।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।

उकौना†-संज्ञा पुं० [हिं० ओकाई ?] गर्भवती स्त्री में होनेवाली अनेक प्रकार की प्रबल इच्छाएँ। दोहद।

क्रि० प्र०—उठना।

उक्त-प्रयुक्त-संज्ञा पुं० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक। उक्ति प्रत्युक्ति से युक्त, उपालंभ के सहित, अलीक (अप्रिय या मिथ्या) सा प्रतीत होनेवाला और विलासपूर्ण अर्थ से सुसंपन्न गान। (नाट्यशास्त्र)

उक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (४) ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।

उगरना†-क्रि० अ० [सं० अग्र] सामने आना। निकलना। उ०—गवन करै कहँ उगरै कोई। सनमुख सोम लाभ बहुत होई।—जायसी।

उच्चटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास।

उच्छिन्न संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो उपजाऊ या खनिज पदार्थों से परिपूर्ण भूमि का दान करके की जाय।

उच्छुल्क-वि० [सं०] बिना चुंगी या महसूल का।

क्रि० वि० बिना चुंगी या महसूल दिए। (कौ०)

उझरना*-क्रि० स० [सं० उत् + सरण] ऊपर की ओर उठाना। ऊपर खिसकाना। उ०—करु उठाइ घूँघटु करत उझरत पट-गुँझरौट। सुख-मोटैं लूटीं ललन लखि ललना की लौट।—बिहारी।

उट्टी-संज्ञा स्त्री० [देश०] लाग डाँट में बुरी तरह अपनी हार मानना।

क्रि० प्र०—बुलवाना।—बोलना।

उडकट-संज्ञा पुं० [अं०] छपाई के काम में आनेवाला एक प्रकार का ठप्पा जो कुछ विशिष्ट प्रकार की मुलायम लकड़ियों पर खोद कर तैयार किया जाता है।

विशेष—पहले चित्र आदि किसी मुलायम लकड़ी पर उलटा खोद देते हैं; और या तो उसी को प्रेस पर छापते हैं अथवा उससे इलेक्ट्रो आदि ब्लाक तैयार करते हैं।

उड़सना†-क्रि० अ० [सं० विनष्ट ?] भंग होना। नष्ट होना। उ०—उड़सा नाच नचनियाँ मारा। रहसे तुरुक बजाइ के तारा।—जायसी।

उड़ाइक*-संज्ञा पुं० [सं० उड्डायक] वह जो (गुड्डी आदि) उड़ाता हो। उड़ानेवाला। उ०—कहा भयो जौ बीछुरे मो मन तो मन साथ। उड़ी जाहु कितहूँ तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ।—बिहारी।

उड़ाका-संज्ञा पुं० [हिं० उड़ना + आका (प्रत्य०)] (१) वह जो उड़ सकता हो। उड़नेवाला। (२) वह जो वायुयान आदि पर उड़ता हो। हवाई जहाज पर उड़नेवाला।

उड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० उड़ना] (२) कलैया। कलाबाजी।

उडु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) पानी। जल।

उडुपति-संज्ञा पुं० [सं०] (२) सोम लता।

उतराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० उतरना] (३) नाव आदि पर से उतरने का स्थान। (४) नीचे की ओर ढलती हुई जमीन। उतार। ढाल।

उत्कट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूंज। (२) ईख। गन्ना। (३) दालचीनी। (४) तज। (५) तेजपत्ता।

उत्तम मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो राष्ट्र या राजा के लिये सब से उत्तम मित्र हो। उत्तम मित्र के कौटिल्य ने छः भेद दिए हैं—(१) नित्यमित्र, (२) वश्यमित्र (३) लघूत्थान मित्र (४) पितृपैतामह मित्र (५) महत् मित्र (६) अद्वैध्य मित्र।

उत्तमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) दूधी। दुग्धिका। (४) इंदीवरा। युग्मफल। उतरन।

उत्तमोत्तमक-संज्ञा पुं० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक। कोप अथवा प्रसन्नताजनक, आक्षेपयुक्त, रसपूर्ण, हाव और भाव से संयुक्त विचित्र पद्य-रचना युक्त गान। (नाट्यशास्त्र)

उत्तरीय-संज्ञा पुं० [सं०] (२) एक प्रकार का बहुत बड़ा सन जो बहुत मजबूत होता और सहज में काता जा सकता है। यह बहुत मुलायम और चमकीला होता है और सब सनों से अच्छा समझा जाता है।

उत्पथिक-संज्ञा पु० [सं०] वे लोग जो नगर में इधर उधर आ जा रहे हों।

उत्संग-संज्ञा पुं० [सं०] राजकुमार के जन्म पर प्रजा तथा करद राजाओं से नजराने या उपहार के रूप में प्राप्त धन।

उत्साह शक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] चढ़ाई तथा युद्ध करने की शक्ति।

उत्साह-सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कार्य्य जो कि उत्साहशक्ति (लड़ने भिड़ने के साहस) से सिद्ध हो।

उदंजर स्थान-संज्ञा पुं० [सं०] पानी रखने का स्थान या गुसलखाना।

उदकचरण-संज्ञा पुं० [सं०] वह चोर या घातक जो स्नान करते हुए मनुष्य को पानी के भीतर ही भीतर खींच ले जाय। पनडुब्बा। बुड़ुआ। (कौ०)

उदपान-संज्ञा पुं० [सं०] (२) तालाब के आस-पास की भूमि या टीला।

उदरदास-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जन्म से ही दास हो या दास का पुत्र हो।

विशेष—ऐसे मनुष्य को छोड़ दूसरे किसी मनुष्य को बेचना अपराध माना जाता था।

उदार-संज्ञा पुं० [देश०] गुलू नाम का वृक्ष। (अवध)

संज्ञा पुं० [सं०] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद या अवस्था जिसमें कोई क्लेश अपने पूर्ण रूप में वर्त्तमान रहता हुआ अपने विषय का ग्रहण करता रहता है।

उदासीन-संज्ञा पुं० [सं०] (४) वह दूरवर्त्ती राष्ट्र का राजा जो शक्ति-शाली तथा निग्रह अनुग्रह में समर्थ हो। (कौ०)

उदासीन मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र राजा जिसके संबंध में यह निश्चय न हो कि वह सहायता में कुछ करने का कष्ट उठावेगा।

विशेष—जिस राजा के पास बहुत अधिक उपजाऊ जमीन होगी, जो बलवान, संतुष्ट तथा आलसी होगा और कष्ट से दूर भागनेवाला होगा, उसे सहायता के लिये कुछ करने की कम परवा होगी। (कौ०)

उदाहृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का उत्कर्षयुक्त वचन कहना, जो गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक है। जैसे,—रत्नावली में विदूषक का यह कथन—(हर्ष से) आज मेरी बात सुनकर प्रिय मित्र को जैसा हर्ष होगा, वैसा तो कौशांबी का राज्य पाने से भी न हुआ होगा। अच्छा अब चलकर यह शुभ संवाद सुनाऊँ।

उद्गतार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ या धरोहर जिसका पड़े पड़े ही भोग आदि के बढने से दाम चढ़ गया हो।

उद्ग्रंथ-संज्ञा पुं० [सं०] कर के रूप में एकत्र किया हुआ धान्य।

उद्ग्राह-संज्ञा पुं० [सं०] कर के रूप में एकत्र किया हुआ अन्न।

उद्दिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु का वह भोग जो मालिक से आज्ञा प्राप्त करके किया जाय। (पराशर)

उद्धव्य-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक क्लेश।

उद्धृत-संज्ञा पुं० [सं०] गाँव के वे वृद्ध जन जो गाँव संबंधी पुरानी घटनाओं से परिचित तथा समय पड़ने पर उनको प्रकाशित करनेवाले हों।

विशेष—मध्य काल में सीमा संबंधी झगड़ों का इन्हीं लोगों के साक्ष्य के अनुसार निर्णय किया जाता था। आज कल पटवारी ही इन लोगों का स्थानापन्न है।

उद्यानक व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह असंहत व्यूह जिसके चारों अंग असंहत हों।

उद्रंग-संज्ञा पु० [सं०] (१) सारस्वत कोष के अनुसार उद्ग्रंथ तथा उद्ग्राह। (२) डाक्टर बुहलर के मत से वह अन्न जो राजा के अंश के रूप में गाँवों से इकट्ठा किया गया हो।

उद्रेक-संज्ञा पुं० [सं०] (३) बकायन। महानिंब।

उद्वह-संज्ञा पुं० [सं०] (३) उदान वायु जिसका स्थान कंठ में माना गया है। वि० दे० "उदान"।

उद्वाप-संज्ञा पु० [सं०] खेती। फसल।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में राज्य का यह नियम था कि यदि कृषक खेती न करें तो उनको राज्य कर इकट्ठा करनेवाले समाहर्ता के कारिंदे बाध्य करते थे कि वह गरमी की फसल तैयार करें।

उनंत-वि० [सं० अनुन्नत या नत] झुका हुआ। नत। उ०—उठी कोंप जस दारिउँ दाखा। भई उनंत प्रेम कै साखा।—जायसी।

उनदौहाँ⊛-वि० [सं० उन्निद्र, हिं० उनींदा] नींद से भरा हुआ। ऊँघता हुआ। उनींदा। उ०—पाग्यो सोरु सुहाग को इनु बिनु ही पिय-नेह। उनदौंहीं अँखियाँ ककै कै अलसौंहीं देह।—बिहारी।

उन्नतोदर-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह पदार्थ जिसका वृत्तखंड ऊपर की ओर उठा हुआ हो। जैसे,—उन्नतोदर शीशा।

उन्नैना&-क्रि० अ० [सं० उन्नयन] झुकना। नत होना। उ०—लागि सुहाई हरफा स्योरी। उन्नै रही केरा की घौरी।—जायसी।

उपग्रह संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो सब कुछ देकर अपनी प्राणरक्षा के लिये की जाय। (कौ०)

उपचारच्छल-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में विकल्प या विरुद्ध अर्थ के निदर्शन द्वारा सद्भाव या अभिप्रेत अर्थ का निषेध करना। जैसे,—वादी ने कहा कि "गद्दी से हुकुम हुआ", इस पर प्रतिवादी कहे कि "गद्दी तो जड़ है; वह कैसे हुकुम दे सकती है ?" तो यह उसका उपचारच्छल है।

उपदंश-संज्ञा पुं० [सं०] (३) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें पुरुष की लिंगेंद्रिय पर नाखून या दाँत लगने के कारण घाव हो जाता है।

उपदाग्राहक-वि० [सं०] घूस लेनेवाला। रिशवत लेनेवाला। रिशवती।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि न्यायाधीश के चरित्र की परीक्षा के लिये खुफिया पुलिस का कोई आदमी उससे जाकर कहे कि एक मेरा मित्र राज्यापराध में फँस गया है। आप कृपा कर उसको छोड़ दीजिए और यह धन ग्रहण कीजिए। यदि वह धन ग्रहण कर ले तो राज्य उसको "उपदाग्राहक" समझ कर राज्य के बाहर निकाल दे। (कौ०)

उपदेसना&-क्रि० स० [सं० उपदेश + ना (प्रत्य०)] उपदेश करना। शिक्षा देना। नसीहत करना। उ०—द्विरदहिं बहुरि बुलाइ नरेसा। सौंपि गयंद यूथ उपदेसा।—सबल।

उपधियुक्त-संज्ञा पुं० [सं०] मिलावटी। जो असली या खालिस न हो (माल)। (कौ०)

उपना&-क्रि० अ० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न होना। पैदा होना। उ०—कुधर सहित चढ़ौ बिसिप बेगि पठयों सुनि हरि हिय गरब गूढ़ उपयो है।—तुलसी।

उपनिधि-भोक्ता-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जिसने दूसरे की रखी धरोहर का स्वयं प्रयोग किया हो। (चंद्रगुप्त के समय में ऐसे लोग देश काल के अनुसार उसका बदला या भोग-वेतन देने के लिए बाध्य किए जाते थे।)

उपनिपात-संज्ञा पुं० [सं०] राजा, चोर, आग और पानी आदि से माल का खराब या नष्ट होना। वि० दे० "दोष"। (कौ०)

उपनिविष्ट (**सैन्य**)-वि० [सं०] सुशिक्षित और अनुभवी।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि उपनिविष्ट तथा समास (एक ही ढंग की लड़ाई जाननेवाली) सैन्य में उपनिविष्ट सैन्य ही उत्तम है, क्योंकि उपनिविष्ट को भिन्न भिन्न स्थानों में लड़ना आता है और वह छावनी के अतिरिक्त भी लड़ाई कर सकती है। (कौ०)

उपन्यास संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो किसी कल्याणकारी शुभ कर्म की इच्छा से की जाय। (कामंद०)

उपमाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध पिलानेवाली स्त्री। दाई। धाय।

उपराज&†-संज्ञा स्त्री० [हिं० उपज] उपज। पैदावार।

उपराहना&- क्रि० स० [?] प्रशंसा करना। सराहना। उ०—आम जो फरि कै नवै तराहीं। फल अमृत भा सब उपराहीं।—जायसी।

उपरिकर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कर जो उन किसानों से लिया जाता था जिनका जमीन पर मौरूसी या अन्य किसी प्रकार का हक नहीं होता था।

उपरिचर-संज्ञा पुं० [सं०] एक वसु का नाम। वि० दे० "चेदिराज" (२)।

उपरुद्ध सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के द्वारा रोकी हुई सेना।

विशेष — कौटिल्य ने लिखा है कि उपरुद्ध तथा परिक्षिप्त (सब ओर से घिरी हुई) सेना में उपरुद्ध अच्छी है, क्योंकि वह किसी एक ओर से निकल कर युद्ध कर सकती है। परिक्षिप्त सब ओर से घिर जाने के कारण ऐसा नहीं कर सकती। (कौ०)

उपवन&-क्रि० अ० [सं० उदय] उदय होना। उगना। उ०—मोद भरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि देव कहैं सबको सुकृत उपवियौ है।—तुलसी।

उपवास या उपवासी-संज्ञा पुं० [सं०] वे नीच जाति के लोग जिनको गाँव के मामलों में विशेष अधिकार न हो। वि० दे० "ग्रामिक"।

उपविक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] चोरी से या संदेह की अवस्था में किसी माल का खरीदा या बेचा जाना।

विशेष—बृहस्पति के अनुसार घर के भीतर, गाँव के बाहर या रात में किसी नीच जाति के आदमी से कम दाम में कोई वस्तु खरीदना उपविक्रय के अंतर्गत है। ऐसा माल खरीदनेवाला अपराधी होता था। पर यदि वह खरीदने के पहले राज्य को सूचना दे देता था तो अपराधी नहीं होता था। (नारद)

उपविष प्रणिधि-संज्ञा पुं० [सं०] विष या यंत्र मंत्र आदि द्वारा मनुष्यों को गुप्त रूप से मारनेवाला।

विशेष—कौटिल्य के समय में ऐसे गुप्तचर उन लोगों के बध के लिये नियुक्त किए जाते थे जिनसे राजा असंतुष्ट होता था या जो बागी समझे जाते थे।

उपवेधक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रास्ते चलते लोगों को तंग करे या लूटे। गुंडा। बदमाश।

उपशाल-संज्ञा पुं० [सं०] गाँव का चौपाल जहाँ बैठ कर पंचायत होती थी या गाँव भर के लोग उत्सव आदि मनाते थे। आए हुए साधु संन्यासी इसी में बैठ कर उपदेश देते तथा व्यास लोग कथा पुराण सुनाते थे। (कौ०)

उपसर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (४) योगियों के योग में होनेवाला

विघ्न जो पाँच प्रकार का कहा गया है—प्रतिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त्तक। (मार्कंडेय पु०)

उपस्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (५) जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थ। रसद या सामान। (कौ०)

उपस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (६) प्रस्तुत राज्य-कर इकट्ठा करना और पुराना बाकी वसूल करना।

उपस्थापक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विषय को विचार और स्वीकृति के लिये किसी सभा में उपस्थित करे। उपस्थित करनेवाला।

उपहार संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जिसमें संधि करने से पूर्व एक पक्ष को दूसरे को कुछ उपहार में देना पड़े। (कामंद०)

उपाड़†-संज्ञा पुं० [हिं० उपड़ना = उभरना] किसी तीव्र औषध आदि के कारण शरीर की खाल का उड़ने लगना।

मुहा०—उपाड़ करना = किसी दवा का शरीर पर लाने डालना या वहाँ की खाल उड़ाना।

उपाती"-संज्ञा स्त्री० [सं० उत्पत्ति] उत्पत्ति। पैदाइश। उ०—सुखहिं ते है सुख उपाती। सुखहि तें उपजे बहु भाँती।—जायसी।

उपाध्व-संज्ञा पुं० [सं०] खेतों में जानेवाली पगडंडी। डाँड़। मेंड़।

उपेक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (३) आसन नीति का एक भेद। अवज्ञा प्रदर्शित करते हुए आक्रमण न करना।

उपेक्षायान-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु से छुट्टी पाकर उसके सहायक मित्रों पर चढ़ाई। (कामंद०)

उपेक्षासन-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु की उपेक्षा करते हुए चुपचाप बैठे रहना, उस पर चढ़ाई आदि न करना। (कामंद०)

उपैना"†-क्रि० अ० [?] उड़ना। लुप्त हो जाना। उ०—देखत उरै कपूर ज्यौं उपै जाइ जनि लाल। छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल।—बिहारी।

उबना†-क्रि० अ० (१) दे० "उगना"। (२) दे० "ऊबना"।

उबहना"-क्रि० अ० [सं० उद्वहन] ऊपर की ओर उठना। उभरना। उ०—जावत सबै उरेह उरेहे। भाँति भाँति नग लाग उबेहे।—जायसी।

उभटना†-क्रि० अ० [हिं० उभरना] अहंकार करना। अभिमान करना। शेखी करना।

उभयतोऽर्थापद-संज्ञा पुं० [सं०] जिधर से लाभ की संभावना दिखाई पड़ती हो, उधर ही शत्रु की बाधा। ऐसा करते हैं तो भी बाधा और वैसा करते हैं तब भी। (कौ०)

उभयतोऽनर्था पद-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्थिति जिसमें दो ही मार्ग हों और दोनों अनिष्टकर हों। (कौ०)

उभयतोभागी-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो अमित्र तथा आसार (साथी) दोनों का साथ ही उपकार करे। (कौ०)

उभयाविमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो दो लड़नेवाले पक्षों में से किसी के प्रति उदासीनता न प्रकट करे अर्थात् दोनों का मित्र बना रहे।

उभरौंहाँ-वि० [हिं० उभार + औहाँ (प्रत्य०)] उभार पर आया हुआ। उभरा हुआ। उ०—भावुक कु उभरौंहौं भयौं, कछुकु पर्यौ भरुआइ। सीप-हरा कैं मिस हियौ निसि दिन हेरत जाइ।—बिहारी।

उमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (८) चंद्रकांत मणि।

उम्मेदवार-संज्ञा पुं० [फा०] (४) वह जो किसी स्थान या पद के लिये अपने को उपस्थित करता या किसी के द्वारा किया जाता है। पदप्रार्थी। जैसे,—(क) वे व्यवस्थापिका परिषद् की मेंबरी के लिये उम्मेदवार हैं। (ख) वे बनारस डिवीजन से कौन्सिल के लिये उम्मेदवार खड़े किए गए हैं।

उरंग-संज्ञा पुं० [सं०] (२) नागकेसर।

उरगना"-क्रि० स० [सं० उरीकरण] स्वीकार करना। अंगीकार करना। अँगेजना। उ०-आय भरत्थ कहा धौं करैं जिय माँहि गुनौ। जौ दुख देइ तो लै उरगो यह बात सुनो।—केशव।

उरण-संज्ञा पुं० [सं०] (२) युरेनस नामक ग्रह जो पृथ्वी से बहुत अधिक दूर होने के कारण एक धूमिल स्थिर तारे या नक्षत्र के समान जान पड़ता है। पृथ्वी से सूर्य जितनी दूरी पर है, उसकी अपेक्षा यह प्रायः १९ गुनी अधिक दूरी पर है। यद्यपि प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों को बहुत दिनों पहले से इसका ज्ञान था, पर पाश्चात्य ज्योतिषियों में से हर्शेल ने १७८१ ई० में इसका पता लगाया था। इसकी परिधि ३१,००० मील है। प्रायः ८४ वर्ष और १ सप्ताह में इसका एक परिक्रमण होता है। इसके चार उपग्रह हैं, जिनमें से दो इतने छोटे हैं कि बिना बहुत अच्छी दूरबीन के दिखाई नहीं देते। युरेनस।

उरस्य-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का अग्र भाग।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में पाँच धनुष का अंतर होना चाहिए। व्यूह रचना के प्रसंग में पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में भिन्न भिन्न प्रकार की सेनाओं के रखने के नियम बताए गए हैं। (कौ०)

उराना"†-क्रि० अ० [हिं० ओर + आना (प्रत्य०)] समाप्त होना। खतम होना। वि० दे० "ओराना"। उ०—देखत उरै कपूर ज्यों उपै जाइ जनि लाल। छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल।—बिहारी।

उलझा†-संज्ञा पुं० दे० "उलझन"। उ०—वीर वियोग के ये उलझा निकसै जिन रे जियरा हियरा तें।—ठाकुर।

उसरना"-क्रि० अ० [सं० विस्मरण] विस्मृत होना। भूलना। याद न रहना।

उसारना†-क्रि० स० [सं० उद + सरण] मकान, दीवार आदि बनाकर खड़ा करना।

ऊख⊛-वि० [सं० उष्ण] तपा हुआ। गरम। उ०—उष्ण काल अरु देह खिन मगपंथी तन ऊख। चातक बतियाँ ना रुचीं अनजल सींचे रूख।—तुलसी।

ऊखड़-संज्ञा पुं० [सं० ऊषर] पहाड़ के नीचे की सूखी जमीन। भाभर। (कुमाऊँ)

ऊखल-संज्ञा पुं० [सं० उलूखल] एक प्रकार का तृण या घास।

ऊटक नाटक-संज्ञा पुं० [सं० उत्कट + नाटक] इधर उधर का काम। वह काम जिसका कुछ निश्चय न हो। जैसे,—(क) बैठने से तो काम चलेगा नहीं, कुछ ऊटक नाटक करना ही होगा। (ख) वह ऊटक नाटक करके किसी प्रकार गुजर करता है।

ऊढ़ना⊛-क्रि० स० [सं० ऊढ़] विवाह करना। शादी करना। उ०—बिरिध खाइ नव जोबन सौं तिरिया सों ऊढ़।—जायसी।

ऊतर⊛-संज्ञा पुं० [?] (२) बहाना। मिस। उ०—ऊतर कौन हू कै पद्माकर दै फिरै कुंजगलीन में फेरी।—पद्माकर।

ऊप⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "ओप"। उ०—तौ निरमल मुख देखै जोग होइ तेहि ऊप।—जायसी।

ऊरू-संज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कँटीली लता। अलई। वि० दे० "ऐल"।

ऊर्द्ध-संज्ञा स्त्री० [सं०] दस दिशाओं में से एक। सिर के ठीक ऊपर की ओर की दिशा।

ऊर्ध्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विशेष प्रकार की प्राचीन नौका जो ३२ हाथ लंबी, १६ हाथ चौड़ी और १६ हाथ ऊँची होती थी।

ऊह-संज्ञा स्त्री० [सं०] किंवदंती। अफवाह।

ऋण-मोक्षित दास-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "ऋणमोक्षित"।

ऋणलेख्य-पत्र-संज्ञा पुं० वह लेन देन के व्यवहार का पत्र जो साक्षियों के सामने लिखा गया हो। दस्तावेज।

एकडेमी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) शिक्षालय। विद्यालय। स्कूल। (२) वह सभा या समाज जो शिल्पकला या विज्ञान की उन्नति के लिये स्थापित हुआ हो। विज्ञान समाज।

एकतोभोगी मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह वश्य मित्र जो एक साथ एक ही को लाभ पहुँचा सके; अर्थात् अमित्र को नहीं। उभयतोभोगी का उलटा। (कौ०)

एकन्नी-संज्ञा स्त्री० [हिं० एक + आना] ब्रिटिश भारत का निकल धातु का एक छोटा सिक्का जो एक आने या चार पैसे मूल्य का होता है।

एकपत्नी व्रत-संज्ञा पुं० [सं०] (२) केवल एक विवाहिता पत्नी को छोड़कर और किसी स्त्री से विवाह या प्रेम-संबंध न करने का व्रत।

एकपाद वध-संज्ञा पुं० [सं०] एक पैर काट देने का दंड। (जो लोग साधारण द्रव्य की चोरी करते थे, उनको एक पैर काट देने का दंड मिलता था। प्रायः ३०० पण देकर वे इस दंड से मुक्त भी हो सकते थे।)

एकमुख विक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] सब के हाथ एक दाम पर बेचना। बँधी कीमत पर बेचना।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में पण्यबाहुल्य (माल की पूरी आमदनी) होने पर व्यापारियों को माल बँधी कीमत पर बेचना पड़ता था। वे भाव घटा बढ़ा नहीं सकते थे। (कौ०)

एकलेखा संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का फूल या उसका पौधा।

एकवासा-संज्ञा पुं० [सं० एकवाससू] एक प्रकार के दिगंबर जैन जो नग्न के अंतर्गत हैं।

एकसिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] केवल एक ही उपाय से होनेवाली सिद्धि। (कौ०)

एकहत्था-संज्ञा पुं० [हिं० एक + हाथ] किसी विषय, विशेष कर व्यापार या रोजगार को अपने हाथ में करना, दूसरे को न करने देना। किसी व्यापार या बाजार पर अपना एक मात्र अधिकार जमाना। एकाधिकार जैसे,—रूई के व्यापार को उन्होंने एकहत्था कर लिया।

क्रि० प्र०—करना।

एकहस्तपाद वध-संज्ञा पुं० [सं०] एक हाथ और एक पैर काटने का दंड।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में जो लोग ऊँचे वर्ण के लोगों तथा गुरुओं के हाथ पैर मरोड़ देते थे या सरकारी घोड़े गाड़ियों पर बिना आज्ञा के चढ़ते थे, उनको यह दंड दिया जाता था। प्रायः ७०० पण देकर लोग इस दंड से मुक्त हो जाते थे।

एक-हस्त वध-संज्ञा पुं० [सं०] एक हाथ काटने का दंड।

विशेष—जो लोग नकली कौड़ी पासा आदि बना कर खेलते थे या हाथ की सफाई से बाजी जीतते थे, उनको यह दंड दिया जाता था। जो लोग इस दंड से बचना चाहते थे, उनको ४०० पण देना पड़ता था। (कौ०)

एकांग वध-संज्ञा पुं० [सं०] एक अंग काटने का दंड। (कौ०)

एकाग्र-संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त निरंतर किसी एक ही विषय की ओर लगा रहता है। ऐसी अवस्था योग साधना के लिये अनुकूल और उपयुक्त कही गई है। वि० दे० "चित्तभूमि"।

एकाग्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) योगदर्शन के अनुसार चित्त की एक भूमि जिसमें किसी प्रकार की चंचलता या अस्थिरता नहीं रह जाती और योगी का मन बिलकुल शांत रहता है।

एकार्गल-संज्ञा पुं० [सं०] खर्जूरवेध नाम का योग।

एकावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] मोतियों की एक हाथ लंबी माला जिसमें मोतियों की संख्या नियत न हो। (कौ०। वराह०)

विशेष—यदि इस माला के बीच में मणि होती थी तो इसकी 'यष्टी' संज्ञा थी।

एक्सपर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो। किसी विषय में पारंगत। विशेषज्ञ।

एक्सपोर्ट-संज्ञा पुं० दे० "निर्गत"। जैसे,—एक्सपोर्ट ड्यूटी।

एक्सप्लोसिव-संज्ञा पुं० [अं०] भभक उठनेवाला पदार्थ। विस्फोटक पदार्थ। गंधक, बारूद आदि। जैसे,—एक्सप्लोसिव ऐक्ट।

एक्साइज-संज्ञा पुं० [अं०] वह टैक्स या कर जो नमक और आबकारी की चीजों पर लगता है। नमक और आबकारी की चीजों पर लगनेवाला टैक्स या कर। महसूल। चुंगी।

एग्जामिनेशन-संज्ञा पुं० [अं०] परीक्षा। इम्तिहान।

एग्जिबिट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) प्रदर्शनी आदि में दिखाई जानेवाली वस्तु। (२) वह वस्तु जो अदालत में किसी मामले में प्रमाण स्वरूप दिखाई जाय। अदालत में किसी मामले के संबंध में प्रमाण स्वरूप उपस्थित की जानेवाली वस्तु। जैसे,—नं० ३० एग्जिबिट एक तेज छुरा था।

एग्जिबिशन-संज्ञा पुं० [अं०] प्रदर्शनी। नुमाइश। जैसे,—एम्पायर एग्जिबिशन।

एजुकेशन-संज्ञा पुं० [अं०] शिक्षा। तालीम। जैसे,—प्राइमरी एजुकेशन।

एजुकेशनल-वि० [अं०] शिक्षा संबंधी। जैसे,—एजुकेशनल सोसाइटी।

एजेंट-संज्ञा पुं० [अं०] (३) वह राजपुरुष या अफसर जो अँगरेज सरकार या बड़े लाट के प्रतिनिधि रूप से किसी देशी राज्य में रहता हो। (४) दे० "एजेंट-गवर्नर-जनरल।"

एजेंट-गवर्नर-जनरल-संज्ञा पुं० [अं०] वह राजपुरुष या अफसर जो बड़े लाट के एजेंट या प्रतिनिधि रूप से कई देशी राज्यों की राजनीतिक दृष्टि से देख भाल करता हो।

एजेंडा-संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा का कार्यक्रम।

एजेंसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (३) वह स्थान जहाँ सरकार या गवर्नर जनरल (बड़े लाट) का एजेंट या प्रतिनिधि रहता हो या जहाँ उसका कार्यालय हो। (४) वह प्रांत जो राजनीतिक दृष्टि से एजेंट के अधिकार-भुक्त हो। जैसे,—राजपूताना एजेंसी, मध्य-भारत एजेंसी।

विशेष—हिंदुस्थान में पाँच रेजिडेंसियाँ (हैदराबाद, मैसूर, बड़ोदा, काश्मीर और सिकम में) और चार एजेंसियाँ (राजपूताना, मध्य-भारत, बिलोचिस्तान तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में) हैं। एक एक एजेंसी के अंतर्गत कई राज्य हैं। इन एजेंसियों में सब मिलाकर कोई १७५ राज्य या रियासतें हैं। प्रत्येक एजेंसी में गवर्नर जनरल या बड़े लाट का एजेंट या प्रतिनिधि रहता है। इन एजेंटों के सहायतार्थ रियासतों में पोलिटिकल अफसर रहते हैं। जिस स्थान पर ये लोग रहते हैं, वहाँ प्रायः अँगरेज सरकार की छावनी होती है और कुछ फौज रहती है।

एडवोकेट-संज्ञा पुं० [अं०] वह वकील जो साधारण वकीलों से पद में बड़ा हो और जो पुलिस कोर्ट से लेकर हाई कोर्ट तक में बहस कर सके।

एडवोकेट जनरल-संज्ञा पुं० [अं०] सरकार का प्रधान कानूनी परामर्शदाता और उसकी ओर से मामलों की पैरवी करनेवाला।

विशेष—भारत में बंगाल, मद्रास और बंबई में एडवोकेट जनरल होते हैं। इन तीनों में बंगाल के एडवोकेट जनरल का पद बड़ा है। बंगाल सरकार के सिवा भारत सरकार भी (कौंसिल के बाहर) कानूनी मामलों में इनसे सलाह लेती है। जजों की भाँति इन्हें भी सम्राट् नियुक्त करते हैं।

एनडोर्स-संज्ञा पुं० [अं०] (१) हुंडी आदि की पीठ पर हस्ताक्षर करना। (२) हुंडी या चेक की पीठ पर हस्ताक्षर करके उसे हस्तांतरित करना। (३) सकारना।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।

एनामेल-संज्ञा पुं० [अं०] कुछ विशिष्ट क्रियाओं से प्रस्तुत किया हुआ एक प्रकार का लेप जो चीनी मिट्टी या लोहे आदि के बरतनों तथा धातु के और अनेक पदार्थों पर लगाया जाता है। यह कई रंगों का होता है और सूखने पर बहुत अधिक कड़ा तथा चमकीला हो जाता है। कभी कभी यह पारदर्शी भी बनाया जाता है।

एप्रूवर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी फौजदारी के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और अपने साथी या साथियों के विरुद्ध गवाही देता है। वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है। अपराधी-साक्षी। मुजरिम-इकरारी। इकबाली गवाह। सरकारी गवाह।

विशेष—एप्रूवर मामला हो जाने पर छोड़ दिया जाता है।

एफिडेविट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) शपथ। हलफ। (२) हलफनामा।

एमिग्रेशन-संज्ञा पुं० [अं०] एक देश से दूसरे देश या राज्य में बसने के लिये जाना। देशांतराधिवास।

एम्बुलेंस-संज्ञा पुं० [अं०] (१) युद्ध क्षेत्र का अस्पताल जिसमें घायलों की मरहम पट्टी आदि की जाती है। मैदानी अस्पताल। (२) एक प्रकार की गाड़ी जिसमें घायलों या बीमारों को आराम से लेटाकर अस्पताल आदि में पहुँचाते हैं।

एम्बुलेंस कार-संज्ञा पुं० दे० "एम्बुलेंस" (२)।

एरोप्लेन-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की उड़ने की मशीन। वायुयान। हवाई जहाज।

एलकोहल-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रसिद्ध मादक तरल पदार्थ जो कई चीजों का खमीर उठाकर बनाया जाता है। इसका कोई रंग नहीं होता। इसमें स्पिरिट की सी महक आती है। यह पानी में भली भाँति घुल जाता है और स्वाद में बहुत तीक्ष्ण होता है। इसमें गोंद, तेल तथा इसी प्रकार के और अनेक पदार्थ बहुत सहज में घुल जाते हैं; इसलिये रंग आदि बनाने तथा औषधों में इसका बहुत अधिक व्यवहार होता है। शराब इसी से बनती है। जिस शराब में इसकी मात्रा जितनी ही अधिक होती है, वह शराब उतनी ही तेज होती है। फूल-शराब।

एला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) बनरीठा।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जिसकी पत्तियों की चटनी बनाई जाती है। वि० दे० "रसौत"।

एलार्म-संज्ञा पुं० [अं०] विपद् या खतरे का सूचक शब्द या संकेत।

एलार्म चेन-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह जंजीर जो रेल गाड़ियों के अंदर लगी रहती है और किसी प्रकार की विपद् की आशंका होने पर, जिसे खींचने से ट्रेन खड़ी कर दी जाती है। खतरे की जंजीर। विपद्-सूचक श्रृंखला।

ऐलार्म बेल-संज्ञा पु० [अं०] वह घंटा जो विपद् या खतरे की सूचना देने के लिये बजाया जाता है। विपद्-सूचक घंटा। खतरे का घंटा।

एलेक्टर-संज्ञा पुं० दे० "निर्वाचक"।

एलेक्टरेट-संज्ञा पुं० दे "निर्वाचक संघ"।

एलेक्टेड-वि० दे० "निर्वाचित"।

एलेक्शन-संज्ञा पुं० दे० "निर्वाचन"।

एल्डरमैन-संज्ञा पुं० [अं०] म्युनिसिपल कारपोरेशन का सदस्य जिसका दर्जा मेयर या प्रधान के बाद और साधारण कौन्सलर या सदस्य से ऊँचा होता है। जैसे,—कलकत्ता कारपोरेशन के एल्डरमैन।

विशेष—इङ्गलैण्ड आदि देशों में एल्डरमैन को, म्युनिसिपैलिटी के सदस्य होने के सिवा, स्थानिक पुलिस मैजिस्ट्रेट के भी अधिकार प्राप्त होते हैं। सन् १७२६ ई० में बम्बई, मद्रास और कलकत्ते आदि में जो मेयर-कोर्ट स्थापित किए गए थे, उनमें भी एल्डरमैन थे।

एवेन्यू-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह स्थान जो वृक्ष लता आदि से आच्छादित हो। कुंज। (२) रास्ता। मार्ग। जैसे,—चित्तरंजन एवेन्यू।

एसेंब्ली-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) सभा। परिषद्। मंडल। मजलिस। जैसे,—लेजिस्लेटिव एसेंब्ली। (२) समूह। जमाव। मजमा।

एसेंस-संज्ञा पुं० [अं०] (१) रासायनिक प्रक्रिया से खींचा हुआ फूलों की सुगंधि का सार। पुष्पसार। अतर। (२) वनस्पति आदि का खींचा हुआ सार। अरक। (३) सुगंधि।

एस्टिमेट-संज्ञा पुं० [अं०] अंदाज। तखमीना। अनुमान। जैसे,—इसमें कितना खर्च पड़ेगा, इसका एस्टिमेट दीजिए।

क्रि० प्र०-देना।—बताना।—लगाना।

ऐंद्रजालिक कर्म-संज्ञा पुं० [सं०] जादू के काम। माया के काम। ऐसे कर्म जिनसे लोग धोखा खायँ।

विशेष-अर्थशास्त्र के औपनिषदिक खंड के दूसरे प्रकरण में इस प्रकार के अनेक उपाय बताए हैं, जिनसे मनुष्य कुरूप हो जाता था, बाल सफेद हो जाते थे, वह कोढ़ी की तरह या काला हो जाता था, आग से जलता नहीं था, अंतर्द्धान हो सकता था और उसकी छाया नहीं पड़ती थी। (कौ०)

ऐक्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी राजा, राजसभा, व्यवस्थापिका सभा या न्यायालय द्वारा स्वीकृत सर्वसाधारण संबंधी कोई विधान। राजविधि। कानून। आईन। जैसे,—प्रेस ऐक्ट, पुलिस ऐक्ट, म्युनिसिपल ऐक्ट। (२) नाटक का एक अंश या विभाग। अंक।

ऐक्टिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] नाटक में किसी पार्ट या भूमिका का अभिनय करना। रूपाभिनय। चरित्राभिनय। जैसे,—महाभारत नाटक में वह दुर्योधन रूप में बहुत ही सुंदर और स्वाभाविक ऐक्टिंग करता है।

क्रि० प्र०-करना।

ऐक्ट्रेस-संज्ञा स्त्री० [अं०] रंगमंच पर अभिनय करनेवाली स्त्री। अभिनेत्री।

ऐच्छिक-वि० [सं०] जो अपनी इच्छा या पसंद पर निर्भर हो। अपनी इच्छा या पसंद से लिया या दिया जानेवाला। वैकल्पिक। जैसे,—उन्होंने संस्कृत ऐच्छिक विषय लिया है।

ऐटेस्टिंग अफसर-संज्ञा पुं० [अं०] वह अफसर जिसके सामने निर्वाचन संबंधी 'वोट' लिखे जाते हैं और जो साक्षी स्वरूप रहता है। वोट लिखे जाने के समय साक्षी स्वरूप उपस्थित रहनेवाला अफसर।

ऐडमिनिस्ट्रेटर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसके अधीन किसी राज्य या रियासत या बड़ी ज़मींदारी का प्रबंध हो।

ऐडमिनिस्ट्रेशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) प्रबंध। व्यवस्था। बंदोबस्त। (२) शासन। हुकूमत। (३) राज्य। सरकार।

विशेष-गवर्नरी प्राविन्शल गवर्नमेंट या प्रादेशिक सरकार कहलाती है; और चीफ कमिशनरी लोकल ऐडमिनिस्ट्रेशन या स्थानीय सरकार कहलाती है।

ऐडवाइज़र-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो परामर्श या सलाह देता हो। परामर्शदाता। सलाहकार। सलाह देनेवाला। जैसे,-लीगल ऐडवाइज़र।

ऐडवाइज़री-वि० [अं०] सलाह या परामर्श देनेवाली। जैसे,-ऐडवाइज़री कौंसिल।

ऐडिशनल-वि० [अं०] अतिरिक्त। जैसे,-ऐडिशनल मैजिस्ट्रेट।

ऐत*†-वि० दे० "इतना"। उ०-तुम सुखिया अपने घर राजा। जोखिउँ ऐत सहहु केहि काजा। जायसी।

ऐमेचर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो कला विशेष पर विशेष रुचि और अनुराग के कारण शौकिया तौर से उसका अभ्यास करता और अपनी कलाभिज्ञता दिखाकर धन उपार्जन नहीं करता। शौकीन। जैसे,—(क) ऐमेचर ड्रामटिक क्लब। (ख) वह ऐमेचर होने पर भी बड़े बड़े ऐक्टरों के कान काटता है।

ऐरिस्टोक्रैसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) एक प्रकार की सरकार जिसमें राजसत्ता या शासन सूत्र बड़े बड़े भूम्यधिकारियों (सरदारों) या ऐश्वर्य-संपन्न नागरिकों के हाथों में रहती है। सरदार-तंत्र। कुलीन तंत्र। अभिजात तंत्र। (२) ऐसे लोगों की समष्टि या समाज। अभिजात समाज। कुलीन समाज।

ऐल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जिसकी पत्तियाँ प्रायः एक फुट लंबी होती हैं। यह देहरादून, रुहेलखंड, अवध और गोरखपुर की नम जमीन में पाई जाती है। प्रायः खेतों आदि के चारों ओर इसकी बाढ़ लगाई जाती है। कहीं कहीं इसकी पत्तियाँ चमड़ा सिझाने के काम में भी आती है। अलई। ऊरू।

ऐस†-वि० दे० "ऐसा"। उ०—आम न बास न मानस अंडा। भए चौखँड जो ऐस पखंडा।—जायसी।

ऐसन†-वि० दे० "ऐसा"।

क्रि० वि० दे० "ऐसे"।

ओक-संज्ञा पुं० [सं०] (४) समूह। ढेर। उ०—घर घर नर नारी लसैं, दिव्य रूप के ओक।—मतिराम।

ओट-संज्ञा स्त्री० [सं० उट] (४) वह छोटी सी दीवार जो प्रायः राजमहलों या बड़े बड़े जनाने मकानों के मुख-द्वार के ठीक आगे, अंदर की ओर, परदे के लिये बनी रहती है। घूँघट की दीवार। गुलाम गर्दिश।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसमें बरसात के दिनों में सफेद और पीले सुगंधित फूल तथा ताड़ की तरह के फल लगते हैं। इन फलों के अंदर चिकना गूदा होता है, और इनका व्यवहार खटाई के रूप में होता है। वैद्यक में यह फल रुचिकर, श्रम शूलनाशक, मल-रोधक और विघ्न कहा गया है।

पर्या०—भव्र। भव्य। भविष्य। भावन। वक्रशोधन। लोमक। संपुटांग। कुसुमोदर।

ओड़-संज्ञा पुं० [?] वह जो गदहों पर ईंट, चूना, मिट्टी आदि ढोता हो। गदहों पर माल ढोनेवाला व्यक्ति। उ०—चल्यौ जाइ ह्याँ को करै हाथिन को व्यापार। नहिं जानतु इहिं पुर बसैं धोबी ओड़ कुम्हार।—बिहारी।

ओरती†-संज्ञा स्त्री० दे० "ओलती"। उ०—रोवति भई न साँस सँभारा। नैन चुवहिं जस ओरति धारा।—जायसी।

ओरहा†-संज्ञा पुं० दे० "होरहा"।

ओरिजिनल साइड-संज्ञा पुं० [अं०] प्रेसिडेंसी हाई कोर्ट का वह विभाग जहाँ प्रेसिडेंसी नगर के दीवानी मामले दायर किए जाते तथा उन मामलों का विचार होता है जिन्हें प्रेसिडेंसी मैजिस्ट्रेट दौरा सपुर्द करते हैं। इन फौजदारी मामलों का विचार करने के लिये प्रायः प्रति मास एक दौरा अदालत बैठती है। इसे ओरिजिनल जुरिस्डिकशन भी कहते हैं।

ओलिगार्की-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह सरकार जिसमें राजसत्ता या शासन सूत्र इने गिने लोगों के हाथों में हो। कुछ लोगों का राज्य या शासन। स्वल्प व्यक्ति-तंत्र। (२) ऐसे लोगों का समाज।

ओलियाना†-क्रि० स० [हिं० ओली] ओली में भरना। गोद में भरना।

क्रि० स० [हिं० हूलना] प्रविष्ट करना। घुसेड़ना। घुसाना। जैसे,—पेट में सींग ओलियाना।

ओषध†-संज्ञा स्त्री० [सं० औषध] औषध। दवा। उ०—कीन्हेसि पान फूल बहु भोगू। कीन्हेसि बहु ओषध बहु रोगू।—जायसी।

ओहना†-क्रि० स० [सं० अवधारण] डंठलों आदि को ऊपर उठा कर हिलाते हुए उनके दानों का ढेर लगाने के लिये नीचे गिराना। खरही करना।

औंगा†-वि० [सं० अवाक् या गुंग] [स्त्री० औंगी] (१) मूक। गूँगा। (२) न बोलनेवाला चुप्पा। उ०—सुनि खग कहत अंब औंगी रहि समुझि प्रेम-पथ न्यारो। गए ते प्रभु पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो।—तुलसी।

औंजना†-क्रि० स० [?] एक बरतन में से दूसरे बरतन में डालना। उँडेलना। उलटना।

औठपाय†-संज्ञा पुं० [देश०] नटखटी। शरारत। उत्पात। उ०—अनगने औठपाय रावरे गने न जाहिं वेऊ आहिं तमकि करैया अति मान की। तुम जोई सोई कहौ, वेऊ जोई सोई सुनैं तुम जीभ पातरे वे पातरी हैं कान की।—केशव।

औत्तमर्णिक-वि० [सं०] दूसरे से सूद पर लिया हुआ (धन)। (शुक्र०)

औदक-संज्ञा पुं० [सं०] वह उपनिवेश जिसमें जल की बहुतायत हो। (कौ०)

औदनिक-संज्ञा पुं० [सं०] पका चावल अर्थात् भात-दाल बेचनेवाला। (कौ०)

औदर्य-वि० [सं०] उदर संबंधी। पेट का। औदरिक।

औपनिधिक-वि० [सं०] (२) विश्वास पर किसी के यहाँ धरोहर रखा हुआ (धन)। (शुक्र०)

औपनिवेशिक-संज्ञा पुं० [सं०] उपनिवेश में रहनेवाला। जैसे,—दक्षिण अफ्रिका के भारतीय औपनिवेशिक।

वि० उपनिवेश का। उपनिवेश संबंधी। जैसे,—औपनिवेशिक सचिव।

औपनिषदिक कर्म-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु का नाश करनेवाले कर्म। नाशक काम। (कौ०)

औपन्यासिक-संज्ञा पुं० [सं०] उपन्यास लिखनेवाला। उपन्यास लेखक। जैसे,—शरत् बाबू बँगला के प्रसिद्ध औपन्यासिक हैं।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुत हाल में बंगालियों की देखादेखी होने लगा है।

औपायनिक-वि० [सं०] उपहार या नजराने में मिला हुआ या दिया जानेवाला (पदार्थ)। (कौ०)

औला दौला-वि० [देश०] जिसे किसी बात का ध्यान या चिंता न हो। ला-परवाह। जैसे,—बाबू साहब औला दौला आदमी ठहरे; जिस पर प्रसन्न हुए, उसे निहाल कर दिया।

औसी-संज्ञा स्त्री० दे० "औली"।

कंकट कर्मांत-संज्ञा पुं० [सं०] तारों से कवच (बख्तर) बनाने का कारखाना।

कंकण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का षाड़व राग जो गांधार से आरंभ होता है और जिसमें पंचम स्वर वर्जित है। इसमें प्रायः मध्यम स्वर का अधिक प्रयोग होता है। इसके गाने का समय दोपहर के उपरांत संध्या तक है।

कंकुष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की पहाड़ी मिट्टी जो भावप्रकाश के अनुसार हिमालय के शिखर पर उत्पन्न होती है। कहते हैं कि यह सफेद और पीली दो प्रकार की होती है। सफेद को नालिक और पीली को रेणुक कहते हैं। रेणुक ही अधिक गुणवाली समझी जाती है। वैद्यक के अनुसार यह गुरु, स्निग्ध, विरेचक, तिक्त, कटु, उष्ण, वर्णकारक और कृमि, शोथ, गुल्म तथा कफ की नाशक होती है।

पर्य्या०—कालकुष्ठ। विरंग। रंगदायक। रेचक। पुलक। शोधक। कालपालक।

कंचुक-संज्ञा पुं० [सं०] (६) कंचुक के आकार का कवच जो घुटने तक होता था। (कौ०)

कँटाय-संज्ञा स्त्री० [सं० किंकिणी] एक प्रकार का कँटीला पेड़ जिसकी लकड़ी के यज्ञ-पात्र बनते हैं। इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और फल बेर के समान गोल होते हैं, जो दवा के काम में आते हैं।

कँटिया-संज्ञा स्त्री० [हिं काँटी] (६) इमली की वे छोटी फलियाँ जिनमें बीज न पड़े हों। कतुली।

कँटियारी-संज्ञा स्त्री० दे० "खारेजा"।

कँटेरी-संज्ञा स्त्री० [सं० कंटकी] भटकटैया।

कंट्रोल-संज्ञा पुं० [अं०] नियंत्रण। काबू। जैसे,—इतनी बड़ी सभा पर कंट्रोल करना हँसी खेल नहीं है।

कंठत्राण-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई में गले की रक्षा के लिये बनी हुई लोहे की जाली या पट्टी। (कौ०)

कंथारी-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

कंथी-संज्ञा पुं० [सं० कंथा = गुदड़ी] गुदड़ी पहननेवाला। फकीर। उ०—जोगि जती अरु आवहिं कंथी। पूछै पियहि जान कोइ पंथी।—जायसी।

कंदर्प-संज्ञा पुं० [सं०] (३) संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमें क्रम से दो द्रुत, एक लघु और दो गुरु होते हैं। इसके पखावज के बोल इस प्रकार हैं—तक जग धिमि तक धाकृत धीकृत ऽधिधिगन थों थोंऽ।

कंधराबध-संज्ञा पुं० [सं०] कंधा काटने का दंड। (कौ०)

विशेष—किले में घुसने या सेंध लगाने आदि के लिये चंद्रगुप्त मौर्य्य के समय में यह दंड प्रचलित था। प्रायः लोग २०० पण देकर इस दंड से बच जाते थे।

क-संज्ञा पुं० [सं०] (२०) जल उ०—ति न नगरि ना नागरी प्रति पद हंस क हीन।—केशव।

ककनूँ-संज्ञा पुं० दे० "कुकनू" (पक्षी)।

ककमारी-संज्ञा स्त्री० [सं० काक = कौवा + मारना] एक प्रकार की बड़ी लता जो अवध, बंगाल और दक्षिणी भारत में पाई जाती है। इसकी पत्तियाँ चार से आठ इंच तक लंबी होती हैं; और फूल नीलापन लिए पीले रंग के और बहुत सुगंधित होते हैं। इसमें छोटे छोटे तीक्ष्ण फल लगते हैं जो मछलियां और कौवों के लिये मादक होते हैं। विलायत में जौ की शराब में इसका मेल दिया जाता है।

ककरेजा-संज्ञा पुं० दे० "काकरेजा"।

ककरेजी-संज्ञा पुं० दे० "काकरेजी"।

ककरौल-संज्ञा पुं० [सं० कर्कोटक, प्रा० कक्कोडक] ककोड़ा। खेखसा।

कक्कड़-संज्ञा पुं० दे० "काकड़"।

कक्की-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। वि० दे० "कठसेमल"।

कक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१८) सेना के अगल बगल का भाग। (कौ०)

कगिरी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके दूध से रबड़ बनता है। वि० दे० "रबड़" (२)।

कघुती-संज्ञा स्त्री० [हिं० कागज] मध्य और पूर्वी हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी जो नैपाल, भूटान, बरमा,

चीन और जापान में बहुत अधिकता से होती है। नेपाली कागज इसी के डंठलों से बनता है और नैपाल में इसी लिये यह झाड़ी बहुत लगाई जाती है। अरैली।

कचारना†-क्रि० स० [अनु०] धोती दुपट्टे आदि कपड़ों को पटक पटक कर धोना। कपड़ा धोना।

कचिया-संज्ञा पुं० [सं० काच] एक प्रकार का नमक जो काँच से बनाया जाता है। काच लवण।

कच्ची कुर्की-संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा + तु० कुर्क] वह कुर्की जो प्रायः महाजन लोग अपने मुकदमे का फैसला होने से पहले ही इस आशंका से जारी कराते हैं जिसमें मुकदमे के फैसले तक मुद्दालेह अपना माल असबाब इधर उधर न कर दे। वि० दे० "कुर्की"।

कच्छ-संज्ञा पुं० [?] तुन का पेड़। उ०—राम प्रताप हुतासन कच्छ विपच्छ समीर समीर दुलारो।—तुलसी।

कच्छशेष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के दिगंबर जैन जो "नग्न" के अन्तर्गत हैं।

कच्छा-संज्ञा पुं० [सं० कच्छ] (२) कई बड़ी बड़ी नावों, विशेषतः पटैलों को एक में मिला कर तैयार किया हुआ बड़ा बेड़ा या नाव।

कछियाना-संज्ञा पुं० [हिं० काछी] (१) वह स्थान जहाँ काछी लोग रहते हों। काछियों की बस्ती। (२) वह स्थान जहाँ काछी लोग साग भाजी आदि बोते हों।

कछौहा†-संज्ञा पुं० दे० "कछार"।

कजली-संज्ञा स्त्री० [हिं० काजल] (१०) एक प्रकार की मछली।

कटकरंज-संज्ञा पुं० [सं० करंज] कंजा नाम का पौधा। वि० दे० "कंजा" (१)।

कटघरा-संज्ञा पुं० [हिं० काठ + घर] (३) अदालत में वह स्थान जहाँ विचार के समय अभियुक्त और अपराधी खड़े किए जाते हैं।

कटनंस*†-संज्ञा पुं० [हिं० काटना + नाश] काटने और नष्ट करने की क्रिया। उ०—पेड़ तिलौरी और जल हंसा। हिरदय पैठि बिरह कटनंसा।—जायसी।

कटभी-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते कुछ गोलाई लिए लंबे होते हैं; और फल अंड खरबूजे के समान छोटे होते हैं। इसका व्यवहार औषध में होता है। वैद्यक में यह प्रमेह, बवासीर, नाड़ीव्रण, विष, कृमि, कुष्ठ और कफ का नाशक कहा गया है। करभी। हरिसल।

कटाइक*-वि० [हिं० काटना] काटनेवाला। उ०—साँकरे के सेइबे सराहिबे सुमिरबे को राम सो न साहिब न कुमति कटाइको।—तुलसी।

कटान-संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना + आन (प्रत्य०)] कटने की क्रिया या भाव। कटाई।

कटुआ†-वि० [हिं० कटना] कई खंडों में कटा हुआ। टुकड़े टुकड़े। उ०—कटुआ बटुआ मिला सुबासू। सीझा अनबन भाँति गरासू।—जायसी।

कटुपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भड़भाँड़। सत्यानाशी।

कटुभंग-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जंगली भाँग जिसकी पत्तियाँ खाने में बहुत कड़वी होती हैं।

कटोरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कटोरा] (५) फूल में बाहर की ओर हरी पत्तियों का वह कटोरी के आकार का अंश जिसके अंदर पुष्पदल रहते हैं।

कट्ठा-संज्ञा पुं० [हिं० काठ] लाल गेहूँ जो प्रायः मध्यम श्रेणी का होता है।

कठघोड़ा-संज्ञा पुं० दे० "धुड़बहा"।

कठबेर-संज्ञा पुं० [हिं० काठ + बेर] घूँट नाम का पेड़ या झाड़ जिसकी छाल चमड़ा रँगने के काम में आती है। वि० दे० "घूँट"।

कठभेमल-संज्ञा पुं० [हिं० काठ + भेमल] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो प्रायः सारे उत्तरी भारत और बरमा में पाया जाता है। यह वर्षा ऋतु में फूलता और जाड़े में फलता है। इसकी पत्तियाँ प्रायः चारे के काम में आती हैं। कक्की। फिरसन।

कठसेमल-संज्ञा पुं० [हिं० काठ + सेमल] सेमल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष।

कठसोला-संज्ञा पुं० [हिं० काठ + सोला] सोला की जाति की एक प्रकार की झाड़ी या छोटा पौधा जो प्रायः सारे भारत, स्याम और जापान में होता है। वर्षा ऋतु में इसमें सुंदर फूल लगते हैं।

कड़कड़ाना-क्रि० स० [अनु०] घी को साफ और सोंधा करने के लिये थोड़ी देर तक हलकी आँच पर तपाना।

कड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़ा] (४) लगाम। उ०—हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ी, वासुकि पीठि पलान। चाँद सुरुज दोउ पाँवड़ा चढ़सी संत सुजान।—कबीर।

कड़ूला†-संज्ञा पुं० [हिं० कड़ा + ऊला (प्रत्य०)] हाथ या पैर में पहनने का, बच्चों का, छोटा कड़ा।

कढ़नी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० काढ़ना = निकालना] बरसात में जमीन की वह अंतिम जुताई जिसके बाद अनाज बोया जाता है।

क्रि० प्र०—काढ़ना (जोतना)।

कतई-क्रि० वि० [अ०] नितांत। निपट। बिलकुल। जैसे,—मैं उनसे कतई कोई तअल्लुक नहीं रखना चाहता।

कतरवाना-क्रि० स० [हिं० कतरना] कतरने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को कतरने में प्रवृत्त करना।

कतरा रसाज-संज्ञा पुं० [हिं० कतरना + रसा ?] खँड़रा नाम का पकवान जो बेसन से बनता है ।

कतरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह यंत्र जिसकी सहायता से जहाज पर नावें रखी जाती हैं । (लश०)

कतली-संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना] (१) मिठाई या पकवान आदि के चौकोर काटे हुए छोटे टुकड़े । (२) चीनी की चाशनी में पागे हुए खरबूजे या पोस्त आदि के बीज ।

कतवारखाना-संज्ञा पुं० [हिं० कतवार + फा० खाना] वह स्थान जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाता हो । कूड़ाखाना ।

कतान-संज्ञा पुं० [?] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का बहुत बढ़िया कपड़ा जो अलसी की छाल से बनता था । कहते हैं कि यह कपड़ा इतना कोमल होता था कि चंद्रमा की चाँदनी पड़ने से फट जाता था । (२) एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्रायः बनारसी साड़ियों और दुपट्टों में होता है ।

कतौनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कातना] (१) कातने की क्रिया या भाव । (२) कातने की मजदूरी । (३) किसी काम में अनावश्यक रूप से बहुत अधिक विलंब करना । (४) निरर्थक और तुच्छ काम ।

कत्तारी-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का सदा-बहार वृक्ष जो हिमालय में हजारा से कुमाऊँ तक, ५००० फुट की ऊँचाई तक, और कहीं कहीं छोटा नागपुर और आसाम में भी पाया जाता है । इसकी टहनियाँ बहुत लंबी और कोमल होती हैं और इसके पत्ते प्रायः एक बालिश्त लंबे होते हैं । इसके फूल, जो जाड़े में फूलते हैं, मधुमक्खियों के लिये बहुत आकर्षक होते हैं । कत्तावा ।

कत्तावा-संज्ञा पुं० दे० "कत्तारी" ।

कत्ल-संज्ञा पुं० दे० "कतल" ।

कत्ल-आम-संज्ञा पुं० [अ०] सब लोगों की वह हत्या जो बिना किसी छोटे बड़े या अपराधी निरपराध का विचार किए की जाय ।

कथ-कीकर-संज्ञा पुं० [हिं० कत्था + कीकर] कीकर की जाति का वह वृक्ष जिसकी छाल से कत्था या खैर निकलता है । खैर का पेड़ ।

कथावस्तु-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक या आख्यान आदि का कथन या कहानी । वि० दे० "वस्तु" (५) ।

कदंबपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी ।

कदर्थना-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्दशा । दुर्गति । उ०—हा हा करै तुलसी दयानिधान राम ऐसी कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की ।—तुलसी ।

कदर्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह कंजूस राजा जो कोश इकट्ठा करने के पीछे प्रजा पर अत्याचार करे और राज्य की आमदनी को राज्य की भलाई में न खर्च करे । (कौ०)

कदीमी-वि० [अ०] प्राचीन काल का । पुराने समय का ।

कनकनंदी-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक प्रकार के गण ।

कनकुटकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटकी] रेवंद चीनी की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो खासिया की पहाड़ी, पूर्वी बंगाल और लंका आदि में होता है । इसमें से एक प्रकार की राल निकलती है जो दवा और रँगाई के काम में आती है ।

कनकूट-संज्ञा पुं० दे० "कुरकुंड" ।

कनकौवा—संज्ञा पुं० [हिं० कन्ना + कौवा] एक प्रकार की घास जो प्रायः मध्य भारत और बुंदेलखंड में होती है ।

कनखा-संज्ञा पुं० [सं० काण्ड = शाखा] (१) कोंपल । (२) शाखा । डाल ।

कनखोदनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कान + खोदना] लोहे, ताँबे आदि के कड़े तार का बना हुआ एक उपकरण जिसका एक सिरा कुछ चिपटा करके मोड़ा हुआ होता है और जिससे कान में की मैल निकाली जाती है । प्रायः हज्जाम लोग अपनी नहरनी का दूसरा सिरा भी इसी आकार का रखते हैं ।

कनतूतुर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा मेंढक जो बहुत जहरीला होता है और बहुत ऊँचा उछलता है ।

कनमनाना-क्रि० अ० [अनु०] (१) सोने की अवस्था में व्याकुलता के कारण कुछ हिलना डुलना । (२) किसी प्रकार की गति करना; विशेषतः कोई काम होता देखकर उसके विरुद्ध बहुत ही साधारण या थोड़ी चेष्टा करना । जैसे,—तुम्हारे सामने इतना बड़ा अनर्थ हो गया; और तुम कनमनाए तक नहीं ।

कनमैलिया-संज्ञा पुं० [हिं कान + मैल + इया (प्रत्य०)] वह जो लोगों के कान की मैल निकालता हो ।

कनय*-संज्ञा पुं० [सं० कनक] सोना । सुवर्ण । उ०—वह जो मेघ, गढ़ लाग अकासा । बिजुरी कनय-कोट चहुँ पासा ।—जायसी ।

कनवासर, कनवैसर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो कनवैसिंग करता हो । वह जो 'वोट' 'आर्डर' आदि माँगता या संग्रह करता हो । कनवैसिंग करनेवाला ।

कनवासिंग, कनवैसिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वोटरों या मत-दाताओं से वोट माँगना । वोट पाने के लिये उद्योग करना । लोगों को पक्ष में करने के लिए समझाना बुझाना । लोकमत को पक्ष में करने का उद्योग करना । जैसे,—(क) उनके आदमी जिले भर में उनके लिये बड़े जोरों से कनवैसिंग कर रहे हैं; उन्हीं को अधिक 'वोट' मिलने की पूरी संभावना है । (ख) उन्हें सभापति पद पर बैठाने के लिये खूब कनवैसिंग हो रही है । (२) किसी कंपनी या फर्म के लिये माल आदि का 'आर्डर' प्राप्त करने का उद्योग करना । जैसे,—मिस्टर शर्मा गंगा आयर्न फैक्टरी के लिये

बाहर कनवैसिंग कर रहे हैं; पिछले महीने उन्होंने बीस हजार रुपए के आर्डर भेजे हैं।

कनसीरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] हावर नामक पेड़। वि० दे० "हावर"।

कनेरी-संज्ञा स्त्री० [अं० कैनरी (टापू)] प्रायः तोते के आकार की एक प्रकार की बहुत सुंदर चिड़िया जिसका स्वर बहुत कोमल और मधुर होता है और जो इसी लिए पाली जाती है। इसकी कई जातियाँ और रंग हैं; पर प्रायः पीले रंग की कनेरी बहुत सुंदर होती है।

कन्सरवेंसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] सरकारी निरीक्षण या देख रेख। जैसे,—कन्सरवेंसी इन्स्पेक्टर।

कन्सरवेटर-संज्ञा पुं० [अं०] देख रेख करनेवाला। निरीक्षक। जैसे,—जंगल विभाग का कान्सरवेटर।

कन्सरवेटिव-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो राज्य या शासन प्रणाली में क्रांतिकारी या चरम प्रकार के परिवर्त्तन का विरोधी हो। वह जो प्रजा-सत्तात्मक शासन प्रणाली का विरोधी हो। टोरी। (२) वह जो प्राचीनता का, पुरानी बातों का, पक्षपाती और नवीनता का, नई बातों का, किसी प्रकार के सुधार या परिवर्त्तन का विरोधी हो। वह जो परंपरा से चली आई हुई धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं और रीति रवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। वह जो कुसंस्कार या अदूरदर्शिता से सच्ची उन्नति का विरोधी हो।

वि० जो देश की नागरिक और धार्मिक संस्थाओं में क्रांतिकारी परिवर्त्तन या प्रजासत्ता के प्रवर्त्तन का विरोधी हो। जो परंपरा से चली आई हुई सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं या रीति रवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। परिवर्त्तन-विमुख। सुधार-विरोधी। सनातनी। पुराणप्रिय। लकीर का फकीर। जैसे,—बाल विवाह जैसी नाशकारी प्रथा का समर्थन उन्हीं लोगों ने किया जो कनसरवेटिव थे—लकीर के फकीर थे।

कप-संज्ञा पुं० [अं०] प्याला।

कपालसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी संधि जिसमें किसी पक्ष को दबना न पड़े। समान संधि।

कपाल-संश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र या राज्य जो दो शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच में हो और दोनों का मित्र बना रहे।

कपासी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (२) एक प्रकार का झाड़ या छोटा वृक्ष जो प्रायः सारे भारत, मलय द्वीप, जावा और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। यह गरमी और बरसात में फूलता और जाड़े में फलता है। इसी का फल मरोड़फली कहलाता है जो पेट के मरोड़ दूर करने के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

कपिखेल-संज्ञा स्त्री० [सं० कपिलता] केवाँच। कौंछ। उ०—द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर कंदुक ज्यों कपिखेल बेल कैसो फल भो।—तुलसी।

कफली-संज्ञा पुं० [हिं० खपेली] एक प्रकार का गेहूँ जिसे खपली भी कहते हैं। वि० दे० "खपली"।

कबरा-संज्ञा पुं० [हिं० कौर] करील की जाति की एक प्रकार की फैलनेवाली झाड़ी जो उत्तरी भारत में अधिकता से पाई जाती है। इसके फल खाए जाते हैं और उनसे एक प्रकार का तेल भी निकाला जाता है। इसका व्यवहार ओषधि के रूप में भी होता है। कौर।

कबल-क्रि० वि० [अ० कब्ल] पहले। पूर्व में। पेश्तर। जैसे,—मैं आपके पहुँचने के कबल ही वहाँ से चला जाऊँगा।

कबारना†-क्रि० स० [?] उखाड़ना। उत्पाटन करना।

कबीला-संज्ञा पुं० [फा०] (अफगानिस्तान और भारत की पश्चिमी सीमा में) एक ही पूर्व-पुरुष के वंशजों का जत्था या टोली जो प्रायः एक साथ रहती है। खेल।

कबूतरखाना-संज्ञा पुं० [फा०] वह स्थान जहाँ पाले हुए बहुत से कबूतर रखे जाते हों। कबूतरों का बड़ा दरबा।

कब्ल-क्रि० वि० दे० "कबल"।

कमची-संज्ञा स्त्री० [तु०] (३) पंजा लड़ाने में हाथ का झटका जिससे उँगलियाँ टूट जाती हैं।

कमर्शल-वि० [अं०] व्यापार संबंधी। व्यापारिक।

कमलपाणि-वि० [सं०] जिसके हाथ कमल के समान हों। उ०—बिनायक एक हू पै आवे ना पिनाक ताहि, कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई।—केशव।

कमाइच†-संज्ञा स्त्री० [फा० कमान] (१) छोटी कमान। कमानचा। (२) सारंगी बजाने की कमानी। उ०—बीना बेनु कमाइच गहे। बाजे तहँ अमृत गहगहे।—जायसी।

कमाच-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उ०—काम जो आवै कामरी का लै करिय कमाच।—तुलसी।

कमानिया-वि० [हिं० कमान + इया (प्रत्य०)] (१) जिसमें किसी प्रकार की कमानी लगी हो। (२) जिसमें किसी प्रकार की मेहराब या अर्द्धवृत्त हो। मेहराबदार।

कमिटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] सभा। समिति।

कमिश्नरी-संज्ञा स्त्री० [अं० कमिश्नर] (१) वह भूभाग जो किसी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। डिवीजन। जैसे,—बनारस एक कमिश्नरी है। (२) कमिश्नर की कचहरी। जैसे,—कमिश्नरी में मामला चल रहा है। (३) कमिश्नर का काम या पद। जैसे,—उन्होंने कई वर्ष तक कमिश्नरी की थी।

कमोड-संज्ञा पुं० [अं०] लोहे या चीनी मिट्टी आदि का बना हुआ, कड़ाही के आकार का एक प्रकार का अँगरेजी ढंग का पात्र जिसमें पाखाना फिरते हैं। गमला।

कम्युनिक-संज्ञा पुं० [फ्रां०] सरकारी विज्ञप्ति या सूचना। वह

सरकारी वक्तव्य जो समाचार पत्रों को छापने के लिये दिया जाता है। जैसे,—सरकार ने एक कम्युनिक निकाल कर इस समाचार का खंडन किया।

कम्युनिज्म-संज्ञा पुं० [अं०] वह मतवाद या सिद्धांत जिसमें संपत्ति का अधिकार समष्टि या समाज का माना जाता है; व्यक्ति विशेष या व्यष्टि का स्वत्व नहीं माना जाता। समष्टिवाद।

कम्युनिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो कम्युनिज्म या समष्टिवाद के सिद्धांत को मानता हो। कम्युनिज्म के सिद्धांत को माननेवाला।

करंज-संज्ञा पुं० [सं० कलिंग, फा० कुलंग] मुरगा।
यौ०—करंजखाना।

करंजखाना-संज्ञा पुं० [हिं० करंज + फा० खाना (घर)] वह स्थान जहाँ बहुत से मुरगे पले हों। पालतू मुरगों के रहने का स्थान। उ०—हिरन हरमखाने, स्याही हैं सुतुरखाने, पाढ़े पीलखाने औ करंजखाने कीस हैं।—भूषण।

करंतीना-संज्ञा पुं० दे० "क्वारंटाइन"।

करकचहा†-संज्ञा पुं० दे० "अमलतास"।

करजोड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० कर + हिं० जोड़ना] एक प्रकार की ओषधि जो पारा बाँधने के काम में आती है। हस्तजोड़ी। हत्था जड़ी। वि० दे० "हत्था जड़ी"।

करण-संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] कान। उ०—शंभु शरासन गुण करौं करणालंबित आज।—केशव।

करतारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० करतार] ईश्वर की लीला। उ०—केशव और की और भई गति, जानि न जाय कछू करतारी।—केशव।

करद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मालगुजारी देनेवाला किसान।
विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि जो किसान मालगुजारी देते हों, उनको हलके सुधरे हुए खेत खेती करने के लिये दिए जायँ। बिना सुधरे खेत उनको न दिए जायँ। जो खेती न करें, उनके खेत छीन लिए जायँ। गाँव के नौकर या बनिए उस पर खेती करें। खेती न करनेवाले सरकारी नुकसान दें। जो लोग सुगमता से कर दे दें, राजा उनको धान्य, पशु, हल आदि की सहायता दे। (कौ०)
(२) कर देनेवाला राजा या राज्य। (३) वह घर जिसका राज्य को कर मिले। (कौ०)

करन†-संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] राजा कर्ण। उ०—करन पास लीन्हेउ कै छंदू। विप्र रूप धरि झिलमिल इन्दू।—जायसी।
यौ०—करन का पहरा = प्रभात या प्रातःकाल का समय, जो राजा कर्ण के पहरा देने का समय माना जाता है।

करपिचकी-संज्ञा स्त्री० [सं० कर = हाथ + पिचकी (पिचकारी)] दोनों हाथों के योग से बनाई हुई पिचकारी। (प्रायः लोग दोनों हाथों के बीच में, कई प्रकार से जल भर कर इस प्रकार जोर से दबाते हैं कि उसमें से पिचकारी सी छूटती है। इसी को करपिचकी कहते हैं।) उ०—छिड़के नाह नवाद दृग, कर-पिचकी जल जोर। रोचन रँग लाली भई विय तिय लोचन कोर।—बिहारी।

करबरना॥†-क्रि० अ० [सं० कलरव] पक्षियों आदि का कलरव करना। उ०—सारौं सुआ जो रहचह करहीं। कुरहिं परेवा औ करबरहीं।—जायसी।

करभा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली गाना जो प्रायः कोल, भील आदि गाते हैं।

करमैल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का तोता जो साधारण तोते से कुछ बड़ा होता है। इसके परों पर लाल दाग होते हैं।

करवी-संज्ञा स्त्री० [सं० कुररी] बटेर की जाति की एक प्रकार की चिड़िया जो साधारण बटेर से कुछ बड़ी और बहुत सुंदर होती है। यह हिमालय में प्रायः सभी जगह पाई जाती है। इसकी खाल का बहुत बड़ा व्यापार होता है।

करवट-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसका गोंद जहरीला होता है और जिसमें तीर जहरीले करने के लिए बुझाए जाते हैं। जसूँद। नताउल।

करवानक-संज्ञा पुं० [सं० कलविंक] चटक पक्षी। गौरैया। उ०—सारस से सूबा करवानक से साहजादे मोर से मुगुल मीर धीर ही धचै नहीं।—भूषण।

करही-संज्ञा स्त्री० [देश०] (२) शीशम की तरह का एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते शीशम के पत्तों से दूने बड़े होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत भारी होती है और प्रायः इमारत के काम में आती है।

कराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० करना] (१) करने या कराने का भाव। (२) करने या कराने की मजदूरी।

करात-संज्ञा स्त्री० दे० "कैरट" (२)।

करिकट-संज्ञा पुं० [देश०] किलकिला नाम का पक्षी जो मछलियाँ पकड़ कर खाता है।

करित-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो आर्डर या आज्ञा देकर बनवाया गया हो। (कौ०)

करिल-॥संज्ञा स्त्री० [हिं० कोंपल] कोंपल। नया कल्ला। उ०—ओहि भाँति पलुही सुखबारी। उठी करिल नइ कोंप सँवारी।—जायसी।
वि० दे० "काला" उ०—करिल केस बिसहर बिस भरे। लहरैं लहि कँवल मुख धरे।—जायसी।

करी-† संज्ञा स्त्री० [?] सौरी या सवरी नाम की मछली जिसका मांस खाया जाता है।

करीश-संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों में श्रेष्ठ। गजराज।

करुणामय-वि० [सं०] जिसमें बहुत अधिक करुणा हो। दयावान। उ०—बहु शुभ मनसा कर करुणामय अरु शुभ तरंगिनी शोभ सनी।—केशव।

करुबेल-संज्ञा स्त्री० [सं० कारवेल] इंद्रायण की बेल या लता। उ०—कीन्हेसि ऊख मीठ रस-भरी। केन्हेसि करुबेल बहु फरी।—जायसी।

करुल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी चिड़िया जो जल के किनारे रहती है और घोंघे आदि फोड़ कर खाया करती है। इसके डैने काले और छाती सफेद होती है। इसकी चोंच बहुत लंबी और नुकीली होती है। लोग इसका शिकार भी करते हैं।

करेणुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी। मादा हाथी। उ०—केशवदास प्रबल करेणुका गमनहार भुकुत सुहंस कंस बहु सुखदासी है।—केशव।

करेणुवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] चेदिराज की कन्या का नाम जो नकुल को ब्याही गई थी।

कर्कटक शृंगी-संज्ञा पुं० [सं०] वह असंहत व्यूह जिसमें तीन भाग अर्द्ध-चंद्राकार असंहत हों। (कौ०)

क़र्ज़ख़ाह-संज्ञा पुं० [अ० कर्ज + फा० ख़्वाह = चाहनेवाला] वह जो किसी से कर्ज लेना चाहता हो। ऋण लेने की इच्छा रखनेवाला।

कर्द्दमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र मास की पूर्णिमा तिथि।

कर्पूरक-संज्ञा पुं० [सं०] कर्चूरक। कपूर कचरी।

कर्मकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रमी। मजदूर। (२) प्राचीन काल की एक जाति जो सेवा कर्म करती थी। आजकल इसे कमकर कहते हैं।

कर्मगुण-संज्ञा पुं० [सं०] काम की अच्छाई बुराई। कार्यक्षमता। (कौ०)

कर्मगुणापकर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] काम अच्छा न होना। श्रमियों की कार्य्य-क्षमता का घटना।

कर्मनिष्पत्ति वेतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काम की अच्छाई बुराई के अनुसार वेतन। (कौ०) (२) वह वेतन जो काम पूरा होने पर दिया जाय।

कर्म निष्पाक-संज्ञा पुं० [सं०] मेहनती मजदूरों से काम को अंत तक पूरा करवाना।

कर्ममास-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महीना जो ३० सावन दिनों का होता है। सावन मास।

कर्मवध-संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी जिससे रोगी को हानि पहुँच जाय। (कौ०)

कर्मवध वैगुण्यकरण-संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी के कारण बीमारी का बढ़ जाना। (कौ०)

कर्मसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्ग बनाने के संबंध में दो राज्यों के बीच संधि। (कौ०)

कर्मस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ कारीगर काम करते हों। कारखाना। (कौ०)

कर्मांत-संज्ञा पुं० [सं०] (३) कार्य्यालय। कारखाना। (कौ०)

कर्मापरोध-संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी। बीमार का इलाज ठीक ढंग पर न करना। (कौ०)

कर्माश्रयाभृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] काम के अच्छे या बुरे अथवा कम या अधिक होने के अनुसार मजदूरी। कार्य्य के अनुसार वेतन।

कर्मोपघाती-वि० [सं० कर्म्मोपघातिन्] काम बिगाड़नेवाला। (कौ०)

कर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (६) प्राचीन काल का एक प्रकार का सिक्का जो आजकल के हिसाब से लगभग ४॥) मूल्य का होता था। यह चाँदी के १६ कार्षापण के बराबर था। इसे "टूग" भी कहते थे।

कर्षना*-क्रि० स० [सं० कर्षण] खींचना। उ०—कोउ आजु राज समाज में बल शंभु को धनु कर्षिहै।—केशव।

कर्षिता भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसको शत्रु ने पूर्ण रूप से निचोड़ लिया हो।

कलंक-संज्ञा पुं० [सं०] (३) वह कजली जो पारा सिद्ध होने पर बैठ जाती है। उ०-करत न समुझत झूठ गुन सुनत होत मतिरंक। पारद प्रगट प्रपंचमय सिद्धिउँ नाउ कलंक।—तुलसी। (४) पारे और गंधक की कजली। उ०—जौ लहि घरी कलंक न परा। काँच होहि नहिं कंचन करा।—जायसी।

कलंगो-संज्ञा स्त्री० [हिं० कली] पहाड़ों में होनेवाली जंगली भाँग का वह पौधा जिसमें बीज लगते हैं। फुलंगों का उलटा।

कलची-संज्ञा स्त्री० [हिं० कंजा] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी। वि० दे० "कंजा" (१)।

कलछी-संज्ञा स्त्री० [सं० कर + रक्षा] चम्मच के आकार का लंबी डंडी का एक प्रकार का पात्र जिसका अगला भाग गोल कटोरी के आकार का होता है और जिससे पकाते समय चावल, दाल, तरकारी आदि चलाते या परोसते हैं।

कलत्रगर्हि सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] परिवार के वशीभूत सेना। वह सेना जो परिवार (पुत्र कलत्र) की चिंता में डूबी रहे।

विशेष—कौटिल्य ने यद्यपि ऐसी सेना को ठीक नहीं कहा है, पर अंतः शल्य (शत्रु से भीतर भीतर मिली हुई) सेना से अच्छी कहा है।

कलथरा†-संज्ञा पुं० [देश०] करघे की चक नामक लकड़ी। वि० दे० "चक"।

कलपना*†-क्रि० स० [सं० कर्तन ?] काटना। कतरना। उ०—हौं रनथंभ उरनाह हमीरू। कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू।—जायसी।

कलशभव-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य ऋषि जिनकी उत्पत्ति घट से कही गई है। उ०—अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध-

बिंध्य बढ़ोइ। सकुचि सम भयो ईस आयसु कलसभव जिय जोइ।—तुलसी।

कलहंस–संज्ञा पुं० [सं०] (७) राजपूतों की एक जाति। उ०—गहरवार परिहार जो कुरे। औ कलहंस जो ठाकुर जुरे।—जायसी।

कलाधर–संज्ञा पुं० [सं०] (४) कलाओं को जाननेवाला। वह जो कलाओं का ज्ञाता हो। उ०—कविकुल विद्याधर सजल कलाधर राज राज बर वेश बने।—केशव।

कलीट†–वि० [हिं० काला + ईट (प्रत्य०) काला कलूटा। उ०—मुरली के संग मिले मुरारी। ये कुलटा, कलीट वे दोऊ। इक तें एक नहिं घाटे कोऊ।—सूर।

कलीरा†–संज्ञा पुं० [सं० कली + रा (प्रत्य०)] कौड़ियों और छुहारों आदि को पिरो कर बनाई हुई एक प्रकार की माला जो प्रायः विवाह आदि के समय कन्या को अथवा दीवाली आदि अवसरों पर यों ही बच्चों को उपहार में दी जाती है।

कल्पारंभी–संज्ञा पुं० [सं० कल्पारम्भिन्] प्रशंसा कराने के लालच से काम करनेवाला। वाहवाही के लिये कुछ करनेवाला।

कल्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बछिया जो बरदाने के योग्य हो गई हो। कलोर।

कल्ला–संज्ञा पुं० [हिं० कल्ला] लंप का वह ऊपरी भाग जिसमें बत्ती जलती है। बर्नर।

कल्हण–संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के एक प्रसिद्ध पंडित और इतिहासकार जो काश्मीर के राजमंत्री चंपकप्रतु के पुत्र और राज-तरंगिणी के कर्त्ता थे। इनका समय ईसवी १२ वीं शताब्दी का मध्य है।

कल्हरा†–संज्ञा पुं० [देश०] करघे की वह लकड़ी जिसे चक कहते हैं। वि० दे० "चक"।

कवारी†–संज्ञा स्त्री० दे० "अरवन"।

कष्टी–वि० [सं० कष्ट] जिसे कष्ट हो। दुःखी। पीड़ित। उ०—दरशनारत दास त्रसित माया-पास त्राहि त्राहि दास कष्टी।—तुलसी।

कसरवा–संज्ञा पुं० [देश०] सालपान नाम का क्षुप। वि० दे० "सालपान"।

कसूँमी–वि० [हिं० कुसुम] कुसुम के रंग का अथवा कुसुंभ के फूलों के रंग से रँगा हुआ। उ०—सोनजुही सी जगमगति अँग अँग जोबन जोति। सुरँग कसूँभी कंचुकी दुरँग देह-दुति होति।—बिहारी।

कस्टम, कस्टम्स–संज्ञा पुं० दे० "कस्टम ड्यूटी"।

कस्टम ड्यूटी–संज्ञा स्त्री० [अं० कस्टम ड्यूटीज] वह कर या महसूल जो विदेश से आने जानेवाले माल पर लगता है। कर। महसूल। चुंगी। परमट।

कस्टम हाउस–संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान या मकान जहाँ विदेश से आने जानेवाले माल का महसूल देना पड़ता है। परमट हाउस।

कस्तूरा–संज्ञा पुं० [देश०] (५) लोमड़ी के आकार का एक प्रकार का जानवर जिसकी दुम लोमड़ी की दुम से लंबी और झबरी होती है। कुछ लोगों का विश्वास है कि इसकी नाभि में से भी कस्तूरी निकलती है; पर यह बात ठीक नहीं है।

कहॐ–वि० [सं० कः] क्या। उ०—द्विज दोषी न विचारिये कहा पुरुष कह नारि।—केशव।

कहरी–वि० [अ० कहर + ई (प्रत्य०)] कहर करनेवाला। आफत ढानेवाला। उ०—लंक से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे को कहरी है।—तुलसी।

कहुवा†–संज्ञा पुं० [सं० कोह] अर्जुन नामक वृक्ष।

कह्लार–संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कमल। सफेद कमल।

काँक†–संज्ञा पुं० [सं० कंक] सफेद चील। कंक।

कांग्रेसमैन–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो कांग्रेस का सदस्य हो। वह जो कांग्रेस के सिद्धांत या मन्तव्य को माननेवाला हो। कांग्रेस-सदस्य। कांग्रेस का अनुयायी। कांग्रेस-पंथी।

काँटा बाँस–संज्ञा पुं० [हिं काँटा + बाँस] एक प्रकार का कँटीला बाँस जो मध्य प्रदेश, पूर्वी बंगाल और आसाम को छोड़कर प्रायः शेष सारे भारत में जंगली रूप में पाया जाता है और लगाया भी जाता है। तबाशीर प्रायः इसी की गाँठों से निकलता है। मगर बाँस। नाल बाँस। कटबाँसी।

काँसार–संज्ञा पुं० [सं० कांस्यकार] काँसे का बरतन बनानेवाला। कसेरा।

कांस्टिट्युएंसी–संज्ञा स्त्री० दे० "निर्वाचक संघ"।

काकगोलक–संज्ञा पुं० [सं०] कौए की आँख की पुतली। (प्रसिद्ध है कि कौए की आँखें तो दो होती हैं, पर पुतली एक ही होती है। और वह जब जिस आँख से देखना चाहता है, तब उसी आँख में वह पुतली चली जाती है।) उ०—उनकौ हितु उनहीं बनै कोऊ करौ अनेकु। फिरतु काक-गोलकु भयौ दुहूँ देह ज्यौं एकु।—बिहारी।

काकमारी–संज्ञा स्त्री० दे० "ककमारी"।

काग़ज़ी बादाम–संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का बढ़िया बादाम जिसका ऊपरी छिलका अपेक्षाकृत बहुत पतला होता है।

कागजी सबूत–संज्ञा पुं० [फा०] कागज पर लिखा हुआ सबूत। लिखित प्रमाण।

काची†–संज्ञा स्त्री० [हिं० कचा] तीखुर, सिंघाड़े या कुम्हड़े आदि का हलुआ।

काछू†–संज्ञा पु० दे० "कछुआ"। उ०—चेला परे न छाँड़हिं पाछू। चेला मच्छ गुरू जिमि काछू।—जायसी।

काटन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) कपास। रूई। (२) रूई का कपड़ा। सूती कपड़ा। जैसे,—काटन मिल्स।

काटर॥†-वि० दे० "कट्टर"। उ०—आना काटर एक तुखारू। कहा सो फेरौ भा असवारू।—जायसी।

काटू-संज्ञा पुं० [अं० कैश्यू नट] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो दक्षिण अमेरिका से लाकर भारत के दक्षिणी समुद्र-तटों पर की रेतीली भूमि में लगाया गया है। इसके तने पर एक प्रकार का गोंद होता है जिससे कीड़े नष्ट होते या भाग जाते हैं। इसकी छाल में से एक प्रकार का रस निकलता है जिससे कपड़ों पर निशान लगाया जाता है। इसकी छाल से एक प्रकारका तेल भी निकलता है जो मछलियाँ पकड़ने के जालों पर लगाया जाता है। इसके बीजों से तेल निकलता है जो बहुत से अंशों में बादाम के तेल के समान होता है। इसके फल, जो प्रायः बादाम के समान होते हैं, भूनकर खाए जाते हैं और उनका मुरब्बा भी पड़ता है। इसकी लकड़ी से संदूक, नावें और कोयला बनाया जाता है। हिजली बदाम।

काठ॥-संज्ञा पुं० दे० "कठपुतली"। उ०—कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा। कतहुँ पखंडी काठ नचावा।—जायसी।

काठ कबाड़-संज्ञा पुं० [हिं० काठ + कबाड़ (अनु०)] लकड़ियों आदि के टूटे फूटे और निकम्मे टुकड़े। अंगड़ खंगड़।

काठनीम-संज्ञा पुं० [हिं० काठ + नीम] एक प्रकार का वृक्ष जिसे गंधेल भी कहते हैं। वि० दे० "गंधेल"।

काठबेर-संज्ञा पुं० दे० "घूँट" (वृक्ष)।

काड़ी†-संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] अरहर का सूखा और कटा पेड़। कड़िवा। रहट।

कातिक-संज्ञा पुं० [अं० ककाटू ?] हरे रंग का एक प्रकार का बहुत बड़ा तोता।

काथ†-संज्ञा पुं० दे० "कत्था"। उ०—जहँ बीरा तहँ चून है, पान सुपारी काथ।—जायसी।

काद्रवेय-संज्ञा पुं० [सं०] शेष, अनंत, वासुकी, तक्षक आदि सर्प जो कद्रु से उत्पन्न माने जाते हैं।

कान-संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] नाव की पतवार जिसका आकार प्रायः कान का सा होता है। उ०—कान समुद धँसि लीन्हेसि भा पाछे सब कोइ।—जायसी।

काना-संज्ञा पुं० [हिं० काना] पासे में की बिंदी। पौ।, जैसे,—तीन काने।

कानागोसी॥†-संज्ञा स्त्री० [हिं० कान + गोश (कान)] कान में बात कहना। कानाफूसी।

कानी हाउस-संज्ञा पुं० [अं० कैनिन + हाउस] वह स्थान जहाँ इधर उधर घूमनेवाले चौपाए पकड़ कर बंद कर दिए जाते हैं, और जहाँ से उनके मालिक कुछ व्यय आदि देकर ले जाते हैं। काँजी हाउस।

कानूनन्-क्रि० वि० [अ०] कानून की रू से। कानून के अनुसार। जैसे,—कानूनन् तुम्हारा उस मकान पर कोई हक नहीं है।

कान्सल-संज्ञा पुं० [अं०] वह मनुष्य जो किसी स्वाधीन राज्य या देश के प्रतिनिधि रूप से दूसरे में रहता और अपने देश के स्वार्थों, विशेष कर व्यापारिक स्वार्थों की रक्षा करता हो। वाणिज्य दूत। राजदूत। जैसे,—कलकत्ते में रहनेवाले अमेरिकन कान्सल ने अमेरिकन माल पर विशेष कर मोटर गाड़ियों पर अधिक महसूल लगने के बारे में भारत सरकार को लिखा है।

कान्सोलेट-संज्ञा पुं० दे० "दूतावास"।

कान्स्टिट्यूशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी देश या राज्य के शासन या सरकार का विधि-विहित या व्यवस्थित रूप। संघटना। (२) वह विधि-विधान या सिद्धांत जो किसी राज्य, राष्ट्र, समाज या संस्था की संघटना के लिये रचे और निश्चित किए गए हों। विधि-विधान। व्यवस्था।

कान्स्पिरेसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी बुरे उद्देश्य या दुरभिसंधि से लोगों का गुप्त रूप से मिलना जुलना या साँट गाँठ। किसी राज्य या सरकार के विरुद्ध गुप्त रूप से कोई भयंकर काम करने की तैयारी या आयोजन करना। षड्यंत्र। साजिश।

कापी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (३) वह लिखा या छपा हुआ मैटर जो छापेखाने में कंपोज करने के लिये दिया जाय। जैसे,—कंपोज के लिये कापी दीजिए, कंपोजिटर बैठे हुए हैं। (४) लीथो की छपाई में पीले कागज पर तैयार की हुई प्रतिलिपि जो छापने के लिये पत्थर पर जमाई जाती है।

कापीनवीस-संज्ञा पुं० [अं० कापी + फा० नवीस = लिखनेवाला] (१) वह जो किसी प्रकार की प्रतिलिपि प्रस्तुत करता हो। लेखक। (२) लीथो के छापेखाने का वह कर्मचारी जो छापने के लिये बहुत सुंदर अक्षरों में पीले कागज पर लेख आदि प्रस्तुत करता है। कापी लिखनेवाला। (इसी की लिखी हुई कापी पत्थर पर जमाकर छापी जाती है।)

काफी-संज्ञा पुं० [अं०] कहवा।

कामकृत ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो विषय-भोग में लिप्त होने की दशा में लिया गया हो। (स्मृति०)

कामदान-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा नाचरंग या गाना बजाना जिसमें लोग अपना काम धंधा छोड़कर लीन रहें।

विशेष—कौटिल्य के समय में राज्य की मुख्य आमदनी अनाज की उपज का भाग ही था; अतः कृषकों के दुर्व्यसन, आलस्य आदि के कारण जो पैदावार की कमी होती थी, उससे राज्य को हानि पहुँचती थी। इसी से 'कामदान' अपराधों में गिना गया था और इसके लिये १२ पण जुरमाना होता था।

कामधुक-संज्ञा स्त्री० [सं० कामधेनु] कामधेनु। उ०—नाम कामधुक रामलला।—तुलसी।

कामनवेल्थ-संज्ञा पुं० [अं०] लोक-सत्तात्मक शासन प्रणाली।

कामन सभा-संज्ञा स्त्री० [अं० हाउस आफ कामन्स] ब्रिटिश पार्ले-मेण्ट की वह शाखा या सभा जिसमें जन साधारण के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। आजकल इनकी संख्या ७०७ होती है। हाउस आफ कामन्स।

कामर्स-संज्ञा पुं० [अं०] व्यापार। वाणिज्य। कारोबार। लेन देन। जैसे,—चेंबर आफ कामर्स। कामर्स डिपार्टमेंट।

कामवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वन जहाँ बैठकर महादेव जी ने कामदेव का दहन किया था। (२) मथुरा के पास का एक प्रसिद्ध वन जो तीर्थ माना जाता है।

कॉमेडियन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) आदि रस या हास्य रस का अभिनेता। (२) सुखांत नाटक लिखनेवाला।

कॉमेडी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह नाटक जिसका अंत आनंद या सुखमय हो। सुखांत नाटक। संयोगांत नाटक। मिलनांत नाटक।

कामेड-संज्ञा पुं० [अं०] सहयोगी। साथी।

विशेष—कम्युनिस्ट या साम्यवादी अपने दलवालों और अपने से सहानुभूति रखनेवालों को 'काम्रेड' शब्द से संबोधित करते हैं। जैसे,—काम्रेड सकलातवाला।

कारंधमी-संज्ञा पुं० [सं०] रसायनी। कीमियागर।

कार-वि० [हिं० काला] काला। कृष्ण। उ०—रावन पाप जो जिउ धरा दुवौ जगत महँ कार।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) गाड़ी। (२) मोटर गाड़ी। मोटर कार।

कारगाह-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह स्थान जहाँ बहुत से मजदूर आदि काम करते हों। कारखाना। (२) जुलाहों का कपड़ा बुनने का स्थान। करगह।

कारट्रिज-संज्ञा पुं० [अं०] दफ्ती, टीन, ताँबे आदि का बना हुआ वह आवरण जिसके अंदर बंदूक में भरकर चलाई जाने-वाली गोली या छर्रा आदि रहता है। कारतूस।

कारणिक-संज्ञा पुं० [सं०] मुकदमे संबंधी कागज लिखनेवाला। मुहर्रिर। अर्जीनवीस।

कारपोरल-संज्ञा पुं० [अं०] पलटन का छोटा अफसर। जमा-दार। जैसे,—कारपोरल मिल्टन।

कारितावृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सूद जो ऋण लिया हुआ धन दूसरे को देकर लिया जाय।

विशेष—आधुनिक बैंक इसी नियम पर चलते हैं।

कारुशासिता-संज्ञा पुं० [सं० कारुशासितृ] शिल्पियों या कारीगरों का निरीक्षक या उन्हें काम में लगानेवाला। (कौ०)

कारेस्पांडेंट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी समाचार पत्र में अपने स्थान की घटनाएँ आदि लिखकर भेजता हो। समा-चारपत्रों में संवाद आदि भेजनेवाला। संवाददाता।

कारेस्पांडेंस-संज्ञा पुं० [अं०] पत्र आदि का भेजा जाना और आना। पत्र-व्यवहार।

कारोनर-संज्ञा पुं० [अं०] वह अफसर जिसका काम जूरी की सहा-यता से आकस्मिक या संदिग्ध मृत्यु, आत्महत्या तथा उन लोगों की मृत्यु की जाँच करना है जो दंगे फसाद में या किसी दुर्घटना के कारण मरे हों।

विशेष—हिंदुस्थान में प्रेसिडेंसी नगरों अर्थात् कलकत्ते, बंबई और मद्रास में कारोनर होते हैं। ये प्रायः छोटी अदालत के जज या मैजिस्ट्रेट होते हैं। इनके साथ जूरी बैठते हैं। ऐसी मौत के मामले इस अदालत में आते हैं जो गिरने, पड़ने, जलने, अस्त्रशस्त्र के लगने या आत्महत्या से हुई हो। उदाहरणार्थ किसी युवती की मृत्यु जलने से हुई है। उसने स्वयं आत्महत्या की या वह जलाकर मार डाली गई, साक्ष्य और प्रमाणों पर यही निर्णय करना इस अदालत का काम है। और किसी प्रकार की कानूनी कार्रवाई करने या दंड का इसे अधिकार नहीं है। इसका निर्णय हो जाने पर साधारण अदालत में किसी पर मामला चलता है।

कार्य्यकरण-संज्ञा पुं० [सं०] कार्य्यालय। दफ्तर। (कौ०)

कार्य्यचिंतक-संज्ञा पुं० [सं०] शासक। स्थानीय प्रबंध-कर्त्ता। (स्मृति०)

कालखंड-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर। उ०—मानो कीन्हीं काल ही की कालखंड खंडना।—केशव।

कालदंड-संज्ञा पुं० [सं०] यमराज का दंड। उ०—वज्र ते कठोर है कैलास ते विशाल, कालदंड ते कराल सब काल गावई।—केशव।

कालरा-संज्ञा पुं० [अं०] हैजा या विसूचिका नामक रोग।

कालांतरित पण्य-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत काल पहले का बना माल।

विशेष—ऐसे माल का दाम बनने के समय की उसकी लागत का विचार करके निश्चित किया जाता था। (कौ०)

कालादेव-संज्ञा पुं० [हिं० काला + फा० देव] (१) एक कल्पित देव या विशालकाय व्यक्ति जिसका रंग बिलकुल काला माना गया है। (२) वह व्यक्ति जिसका शरीर हृष्ट पुष्ट और रंग बहुत काला हो।

काला धतूरा-संज्ञा पुं० [हिं० काला + धतूरा] एक प्रकार का बहुत विषैला धतूरा जिसके पत्ते हरे, पर फल और बीज काले होते हैं। लोग प्रायः बहुत अधिक नशे या स्तंभन के लिये इसका व्यवहार करते हैं।

काला नमक-संज्ञा पुं० [हिं० काला + नमक] एक प्रकार का बना-वटी नमक जिसका रंग काला होता है और जो साधारण नमक तथा हड़, बहेड़े और सज्जी के संयोग से बनाया जाता है। वैद्यक में यह हलका, उष्णवीर्य्य, रोचक, भेदन, दीपन, पाचक, वातनाशक, अत्यंत पित्तजनक और विबंध, शूल, गुल्म और आनाह का नाशक माना गया है। सोंचर नमक।

कालिका वृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ब्याज जो महीने महीने लिया जाय। मासिक ब्याज।

कालीय-संज्ञा पुं० [सं०] काला चंदन।

कालीयक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीला चंदन। (२) काली अगर। (३) काला चंदन। (४) दारुहल्दी।

कालोनियल-वि० [अं०] कालोनी या उपनिवेश संबंधी। औपनिवेशिक। जैसे,—कालोनियल सेक्रेटरी।

कालोनी-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक देश के लोगों की दूसरे देश में बस्ती या आबादी। उपनिवेश।

काव्य व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] (२) शरीरों का बनाया हुआ मोरचा या व्यूह। उ०—प्रतिबिंबित जयसाहि दुति दीपति दरपन धाम। सबु जगु जीतनु कौं कर्‌यौ काय व्यूह मनु काम। —बिहारी।

काश्मरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसके पत्ते पीपल के पत्तों से चौड़े होते हैं और जिसके कई अंगों का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। वि० दे० "गंभारी"।

काष्ठ संघात-संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ियों का बेड़ा। (कौ०)

कासा-संज्ञा पुं० [फा०] (३) दरियाई नारियल का वह भिक्षा-पात्र जो प्रायः मुसलमान फकीरों के पास रहता है। कचकोल।

कासालु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कंद या आलू।

कासृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पगडंडी। (२) पतला रास्ता। (गृह्यसूत्र)

कास्केट-संज्ञा पुं० [अं०] पेटी। संदूकड़ी। डिब्बा। जैसे,—अभिनंदनपत्र चाँदी के एक सुंदर कास्केट में रखकर उनके अर्पण किया गया।

कास्टिंग वोट-संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या परिषद् के अध्यक्ष या सभापति का वोट जिसका उपयोग किसी विषय या प्रश्न का निर्णय करने के लिये उस समय किया जाता है जब सभासद दो समान भागों में बँट जाते हैं; अर्थात् जब आधे सदस्य पक्ष में और आधे विपक्ष में होते हैं, तब सभापति किसी पक्ष को अपना 'कास्टिंग वोट' देता है। इस प्रकार एक अधिक वोट से उस पक्ष की बात मान ली जाती है। निर्णायक वोट। जैसे,—अमुक प्रस्ताव के पक्ष में २० और विपक्ष में भी २० ही वोट आए। सभापति ने पक्ष में अपना कास्टिंग वोट देकर प्रस्ताव पास कर दिया।

विशेष—यदि सभापति उस सभा या संस्था का सदस्य हो तो वह कास्टिंग वोट दे सकता है; सदस्य रूप से वह सदस्यों के साथ पहले ही वोट दे चुकता है।

किटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े या बाँस का बना कवच। (कौ०)

कित⊛†-क्रि० वि० [सं० कुत्र] (३) ओर। तरफ। उ०—मानहु पुंडरीक महँ चहुँ कित भँवर वृंद मग मो हैं।—रघुराज। वि० दे० "कितना"। उ०—गृहि दहि लेइ कित होइ होइ गए। कै कै गरब खेल मिलि गए।—जायसी।

कितै⊛†-क्रि० वि० [सं० कुत्र] कहाँ। किस जगह। उ०—शंभु को दै राजपुत्री कितै।—केशव।

किनवानी‡-संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी छोटी बूँदों की वर्षा। फुहार। झड़ी।

किनारे-क्रि० वि० [हिं० किनारा] (१) किनारे पर। तट पर। (२) अलग। दूर।

किम्मत†-संज्ञा स्त्री० [अ० हिकमत] (१) चतुराई। होशियारी। उ०—हारिए न हिम्मत सुकीजै कोटि किम्मत को आपति में पति राखि धीरज को धरिए। (२) वीरता। बहादुरी।

किरकिरा-संज्ञा पुं० [सं० कर्कट] लोहारों का एक औजार जिससे बड़े और मोटे लोहे में छेद किया जाता है।

किरणकेतु- संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य। उ०—जयति जय सत्रु कटि केसरी सत्रुहन सत्रुतम तुहिन हर किरनकेतू।—तुलसी।

किरसुन⊛†-संज्ञा पुं० दे० "कृष्ण"। उ०—उहै धनुक किरसुन पहँ अहा। उहै धनुक राघौ कर गहा।—जायसी।

किरीरा⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "क्रीड़ा"। उ०—हँसहिं हंस औ करहिं किरीरा। चुनहिं रतन मुकुताहल हीरा।—जायसी।

किरोध⊛†-संज्ञा पुं० दे० "क्रोध"। उ०—तुम बारी पिउ दुहुँ जग राजा। गरब किरोध ओहि पै छाजा।—जायसी।

किल⊛-क्रि० वि० [?] निश्चय ही। अवश्य। उ०—कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।—केशव।

किलचिया-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा बगला जो सारे भारत और बरमा में पाया जाता है।

किलवारी-संज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण] वह डाँड़ा जिससे छोटी नावों में पतवार का काम लेते हैं।

किलविषी-वि० [सं० किल्विष] पापी। अपराधी। उ०—मन मलीन कलि किलविषी होत सुनत जासु कृत काज। सो तुलसी कियो आपुनो रघुबीर गरीब निवाज।—तुलसी।

किलहँटा-संज्ञा पुं० [पा० गिलाट या हिं० कलह ?] [स्त्री० किलहँटी] एक प्रकार की चिड़िया जो आपस में बहुत लड़ती है। सिरोही।

किलोमीटर-संज्ञा पुं० [अं०] दूरी की एक माप जो मील के प्रायः पंच-अष्टमांश के बराबर होती है।

किसब-संज्ञा पुं० [अ० कस्ब] (१) रोजगार। व्यवसाय। (२) कारीगरी। कला-कौशल। उ०—चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख जानत न कूर कछु किसब कबारु है।—तुलसी।

की-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह पुस्तक जिसमें किसी ग्रंथ या पुस्तक के कठिन शब्दों के अर्थ या उनकी व्याख्या की गई हो। कुंजी।

कीकान†-संज्ञा पुं० [सं० केकाण (देश)] (१) केकाण देश जो

किसी समय घोड़ों के लिये प्रसिद्ध था। (२) इस देश का घोड़ा। (३) घोड़ा। अश्व।

कीलना-क्रि० स० [सं० कीलन] (५) तोप की नली में आगे की ओर से कसकर लकड़ी का कुन्दा ठोंकना जिसमें तोप चलाई न जा सके।

कीलाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) रक्त। लहू। (३) अमृत। (४) मधु। शहद। (५) पशु। जानवर।

वि० बंधन हटाने या दूर करनेवाला।

कुंबी-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंभी] (५) एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो बहुत जल्दी बढ़ता और प्रायः सारे भारत में पाया जाता है। इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है और रेशों से रस्से आदि बनते हैं। कहीं कहीं अकाल के दिनों में इसकी छाल आटे की तरह पीस कर खाई भी जाती है। लकड़ी से खेती के औजार, छाजन की बल्लियाँ, गाड़ियों के धुरे और बंदूक के कुंदे बनाए जाते हैं। यह पानी में जल्दी सड़ता नहीं। जंगली सूअर इसकी छाल बहुत मजे में खाते हैं, इसलिये शिकारी लोग उनका शिकार करने के लिये प्रायः इसका उपयोग करते हैं। अरजम।

कुंभसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि।

कुटज-संज्ञा पुं० [सं०] (४) इंद्रजौ। (५) पद्म। कमल।

कुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) सफेद कुड़ा। श्वेत कुटज। (४) मरुआ नामक पौधा।

कुट्टा-संज्ञा पुं० [हिं० कटना] (२) वह पक्षी जिसके पैर बाँधकर जाल में इसलिये छोड़ देते हैं कि उसे देख कर और पक्षी आकर जाल में फँसें। मुल्लह।

कुथना-क्रि० अ० [हिं० कूथना] बहुत मार खाना। पीटा जाना।

कुपंथी-वि० [हिं० कुपंथ + ई (प्रत्य०)] जिसका आचरण निषिद्ध हो। बुरे मार्ग पर चलनेवाला। उ०—पंडित सुमति देइ पथ लावा। जो कुपंथि तेहि पंडित न भावा।—जायसी।

कुप-संज्ञा पुं० [देश०] घास, भूसे या पुआल आदि का ढेर जो खलिहान में लगाया जाता है।

कुपक-संज्ञा पुं० [फा० कुबक] एक प्रकार का गानेवाला पक्षी जो प्रायः पाला जाता है।

कुपित मूल (सैन्य)-संज्ञा पुं० [सं०] भड़की हुई सेना।

विशेष—कौटिल्य के मत में कुपितमूल और भिन्नगर्भ (तितर बितर हुई) सेनाओं में से कुपितमूल सामादि उपायों से शांत किया जाकर उपयोग में लाई जा सकती है।

कुब-संज्ञा पुं० दे० "कूबड़"।

कुबड़ापन-संज्ञा पुं० [हिं० कुबड़ा + पन (प्रत्य०)] 'कुबड़ा' होने का भाव।

कुबानी-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + बानी (वाणिज्य)] बुरा व्यवसाय। खराब वाणिज्य। उ०—अपने चलन से कीन्ह कुबानी। लाभ न देख मूर भइ हानी।—जायसी।

कुमइत†-संज्ञा पुं० दे० "कुम्मैत"। उ०—कारे कुमइत लील सुपेते। खिंग कुरंग बोज दुर केते।—जायसी।

कुमारबाज-संज्ञा पुं० [अ० किमार + फा० बाज (प्रत्य०)] वह जो जूआ खेलता हो। जुआरी।

कुमारबाजी-संज्ञा स्त्री० [अ० किमार = जूआ + फा० बाजी (प्रत्य०)] जूआ खेलने का भाव। जुआरीपन।

कुम्हरौटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुम्हार + औटी (प्रत्य०)] एक प्रकार की काली मिट्टी जिससे कुम्हार लोग घड़े और हाँड़ियाँ आदि बनाते हैं। जटाव।

कुरसा-संज्ञा पुं० [देश०] (२) जंगली गोभी।

कुरसी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (७) नदियों में चलनेवाली छोटी नाव की लंबाई में दोनों ओर लकड़ी की पट्टियों का बना हुआ वह ऊँचा और चौरस स्थान जिस पर आरोही बैठते हैं। पादारक।

कुरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) धुस। टीला। उ०—हाल सो करै गोइ लेइ बाढ़ा। कुरी दुवौ पैज कै काढ़ा।—जायसी। (२) ढेर। समूह। उ०—तेइ सन बोहित कुरी चलाए। तेइ सन पवन पंख जनु लाए।—जायसी।

कुरुमक्ष-संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] कूर्म्म। कच्छप। उ०—कुरुम टुटै भुइँ फाटै तिन्ह हस्तिन्ह के चालि।—जायसी।

कुल-संज्ञा पुं० [सं०] (८) व्यापारियों या कारीगरों का संघ। श्रेणी। कंपनी। (स्मृति०) (९) शासन करनेवाले उच्च कुल के लोगों का मंडल। कुलीनतंत्र राज्य। (कौ०)

कुलट-संज्ञा पुं० [सं०] औरस के अतिरिक्त और किसी प्रकार का पुत्र। क्षेत्रज, गोलक, दत्तक या क्रीत पुत्र।

कुलधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] किसी परिवार में प्रचलित नियम या परंपरा। कुल की रीति।

विशेष—अभियोगों के निर्णय में इसका भी विचार किया जाता था।

कुलनीवी-ग्राहक-संज्ञा पुं० [सं०] किसी समाज या संघ की आमदनी को अपने पास जमा रखनेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसे धन का अपव्यय या दुरुपयोग करनेवाले के लिये १०० पण जुरमाना लिखा है।

कुलफत-संज्ञा स्त्री० [अ० कुल्फत] मानसिक चिंता या दुःख।

क्रि० प्र०—मिटना।—होना।

कुलराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] किसी एक वंश के सरदारों का राज्य। किसी एक कुल के नायकों द्वारा चलनेवाला शासन। सरदारतंत्र।

विशेष—चाणक्य के अनुसार ऐसे राज्य में स्थिरता रहती है, अराजकता का भय नहीं रहता और ऐसे राज्य को शत्रु भी जल्दी नहीं जीत सकता।

कुलशतावर-ग्राम-संज्ञा पुं० [सं०] वह गाँव जिसकी आबादी सौ से अधिक हो। (कौ०)

कुलसंघ-संज्ञा पुं० [सं०] कुलीन तंत्रराज्य का शासक मंडल। वि० दे० "कुलराज्य"।

कुहर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस खाया जाता है।

कुहौ†-संज्ञा स्त्री० [सं० कुहू] मोर या कोयल की कूक। कुहू। उ०—बन-बाटन पिक बटपरा लखि बिरहिनु मत मैं न। कुहौ कुहौ कहि कहि उठैं करि करि राते नैन।—बिहारी।

कूँड-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंड] (४) मिट्टी, ताँबे या पीतल आदि का बना हुआ वह गहरा पात्र जिसके ऊपर चमड़ा मढ़कर "बायाँ" या "ठेका" बनाते हैं।

कूटकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (२) जूआ खेलते समय बेईमानी करना या हाथ की चतुराई या सफाई से पासे पलटना। (कौ०)

कूटन-संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] (१) कूटने की क्रिया या भाव। (२) मारना। पीटना। कुटाई। उ०—फेरत नैन चेरि सौं छूटीं। भइ कूटन कुटनी तस कूटीं।—जायसी।

कूटपण कारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जाली सिक्का या माल तैयार करनेवाला। (२) जाली दस्तावेज़ बनानेवाला। जालसाज। (कौ०)

कूटमुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] जाली मुहर या सिक्का बनानेवाला। (कौ०)

कूटमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जाली मुहर या परवाना। (कौ०)

कूटरूप—संज्ञा पुं० [सं०] जाली रुपया या सिक्का। (कौ०)

कूटरूप कारक-संज्ञा पुं० [सं०] जाली सिक्का तैयार करनेवाला।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि जो लोग भिन्न भिन्न प्रकार के लोहे के औजार खरीदते हों तथा जिनके पास सैकड़ों प्रकार के रासायनिक द्रव्य हों और जो धूएँ में सने हों, उनको जाली सिक्का तैयार करनेवाला समझना चाहिए। इनको गुप्त दूत लगाकर पकड़ना और देश से निकाल देना चाहिए।

कूटरूप निर्यापण-संज्ञा पुं० [सं०] जाली सिक्का निकालना या चलाना। (कौ०)

कूटरूप प्रतिग्रहण-संज्ञा पुं० [सं०] जाली सिक्का ग्रहण करना। (कौ०)

कूटागार-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार वह मंदिर जो मानुषी बुद्धों के लिये बना हो।

कूटावपात-संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर से छिपा हुआ गड्ढा जो जंगली जानवरों को फँसाने के लिये बनाया जाता है।

कूथना-क्रि० स० [सं० कुंथन] बहुत मारना। पीटना। क्रि० अ० दे० "कूँथना"।

कूर्पास-संज्ञा पुं० [सं०] धड़ की रक्षा के लिये लोहे की जालियों का छोटा कवच। (कौ०)

कूर्मखंड-संज्ञा पुं० [सं०] पौराणिक भूगोल के अनुसार एक खंड या वर्ष का नाम।

कूर्ममुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की उपासना में एक प्रकार की मुद्रा जिसमें एक हथेली दूसरी हथेली पर इस प्रकार रखते हैं कि कछुए की आकृति बन जाती है।

कृकाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कंधे और गले का जोड़। घाँटी। उ०—सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका कंबु कंठ सोभा मन मानति।—तुलसी।

कृच्छ्रपराक-संज्ञा पुं० [सं०] १२ दिन तक निराहार रहने का व्रत।

कृच्छ्रातिकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] २१ दिन तक दूध पर निर्वाह करने का व्रत।

विशेष—गौतम के मत से दूध के स्थान पर पानी पी कर ही रहना चाहिए।

कृतकाल दास-संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जिसने कुछ ही समय के लिये अपने को दास बनाया हो।

कृतविदूषण संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रु के बागियों या अपने गुप्तचरों द्वारा यह सिद्ध करके कि शत्रु ने संधि भंग किया है, संधि भंग करना। (कौ०)

कृतशुल्क-वि० [सं०] (माल) जिस पर चुंगी दी जा चुकी हो। (कौ०)

कृतश्लेषण संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पक्की संधि जो मित्रों को बीच में डालकर की जाय और जिसमें युद्ध या विग्रह की संभावना न रह जाय। (कौ०)

कृत्रिम-अरि-प्रकृति-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो किसी दूसरे को विजेता के विरुद्ध भड़काता हो।

कृत्रिम-मित्र-प्रकृति-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो धन तथा जीवन के हेतु मित्र बन गया हो।

कृशोदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतमूल।

केतकर†-संज्ञा स्त्री० दे० "केतकी"। उ०—सुहु जौ प्रीति निबाहै आँटा। भौंर न देख केतकर काँटा।—जायसी।

केम†-संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब] कदंब। कदम। उ०—अब तजि नाउँ उपाय कौ आए पावस मास। खेलु न रहिबौ खेम सौं केम-कुसुम की बास।—बिहारी।

केव-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का वृक्ष जो सिंध की पहाड़ियों और पश्चिमी हिमालय में होता है। इसकी लकड़ी भूरे रंग की और भारी होती है; तथा सजावट के सामान और खिलौने आदि बनाने के काम में आती है। इसके फल खाए जाते हैं और बीजों से तेल निकलता है। इसके पौधे पर विलायती जैतून की कलम लग जाती है।

कैटलग-संज्ञा पुं० [अं०] सूचीपत्र। फेहरिस्त। फर्द।

कैप-संज्ञा स्त्री० [अं०] टोपी।

कैपिटल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी व्यक्ति या समुदाय का ऐसा समस्त धन जिसे वह किसी व्यवसाय या काम में लगा

सके। धन। संपत्ति। पूँजी। (२) वह धन जो किसी व्यापार या व्यवसाय में लगाया गया हो या जिससे कोई कारोबार आरंभ किया गया हो। किसी दूकान, कोठी, कारखाने, बैंक आदि की निज की चर या अचर संपत्ति। पूँजी। मूलधन। (३) किसी देश का मुख्य या प्रधान नगर जिसमें राजा या राज-प्रतिनिधि या प्रधान सरकार हो।

कैपिटलिस्ट–संज्ञा पुं० दे० "पूँजीपति"।

कैरट–संज्ञा पुं० [अं०, मि० अ० किरात] (१) दे० "करात"। (२) एक प्रकार का मान जिससे सोने की शुद्धता और उसमें दिए हुए मेल का हिसाब जाना जाता है।

विशेष—युरोप और अमेरिका में बिलकुल खालिस सोने का व्यवहार प्रायः नहीं होता और उसमें अपेक्षाकृत अधिक मेल दिया जाता है। इसी लिए जो सोना बिलकुल शुद्ध होता है, वह २४ कैरट का कहा जाता है। यदि आधा सोना और आधा दूसरी धातु का मेल हो तो वह सोना १२ कैरट का, और यदि तीन चौथाई सोना और एक चौथाई मेल हो तो वह सोना १८ कैरट का कहा जाता है। इसी प्रकार १४, १६, २० और २२ कैरट का भी सोना होता है जिनमें से अंतिम सब से अच्छा समझा जाता है।

कैलंडर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) अँगरेजी तिथि पत्र या पंचांग जिसमें महीना, वार और तारीख छपी रहती है। (२) सूची। फेहरिस्त। रजिस्टर।

कैवा†–क्रि० वि० [हिं० कै = कई + वा = बार] कई बार। कई दफा। उ०—(क) मैं तो सौं कैवा कह्यो तू जनि इन्हें पत्याइ। लगा लगी करि लोइननु उर में लाई लाइ।—बिहारी। (ख) कैवा आवत इहिं गली रहौं चलाइ चलै न। दरसन की साधै रहै सूधे रहैं न नैन।—बिहारी।

कैश–संज्ञा पुं० [अं०] रुपया पैसा। सिक्का। नगदी।
वि० जिसका दाम नगद दिया गया हो। सिक्का देकर लिया हुआ।

कैशियर–संज्ञा पुं० [अं०] वह कर्मचारी जिसके पास रुपया पैसा जमा रहता हो और जो उसे खर्च करता हो। आमदनी लेने और खर्च करनेवाला आदमी। खजानची।

कैसा–क्रि० वि० [हिं० का + सा] के समान। का सा। की तरह का। उ०—छिछिया कैसी घट भयो, दिन ही मैं बन-कुंज।—मतिराम।

कोटिक–वि० [सं० कोटि + क] बहुत अधिक। अनंत। उ०—(क) कीनै हूँ कोटिक जतन अब कहि काढ़े कौनु। भो मन-मोहन रूपु मिली पानी मैं कौ लौनु।—बिहारी। (ख) कोऊ कोटिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार। मो संपति जदुपति सदा बिपति बिदारनहार।—बिहारी।

कोठी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठा] (९) कोल्हू के बीच का वह स्थान या घेरा जिसमें पेरने के लिये ऊख या गन्ने के टुकड़े डाले जाते हैं।

कोड–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह पुस्तक जिसमें किसी प्रकार के संकेत और उनके प्रयोग के नियम लिखे हों। संकेत पद्धति। संकेत विधान। (२) किसी विषय के प्रयोग के नियम आदि का संग्रह।

कोपक–संज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ जो मंत्रियों के उपदेश से अथवा राजद्रोही मंत्रियों के अनादर से प्राप्त हुआ हो।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है पहली अवस्था में मंत्री यह समझने लगते हैं कि हम न होते तो राज्य की बहुत हानि हो जाती; और दूसरी अवस्था में शेष मंत्री यह समझते हैं कि जहाँ हमसे लाभ न पहुँचेगा, वहाँ हमारा नाश होगा।

कोप्यापण यात्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जाली सिक्कों का चलना (जिनका रोकना जरूरी हो)। (कौ०)

कोर–संज्ञा पुं० [अं०] पलटन। सैन्यदल। जैसे,—वालंटियर कोर।

कोरना–क्रि० स० [हिं० कोर + ना (प्रत्य०)] (१) लकड़ी आदि में कोर निकालना। (२) छील छाल कर ठीक करना। दुरुस्त करना। उ०—बनबासी पुर-लोग महामुनि किए हैं काठ से कोरि।—तुलसी।

कोरम–संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने की उपस्थिति सभा के कार्य-निर्वाह के लिये आवश्यक होती है। किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने के उपस्थित होने पर सभा का कार्य प्रारंभ होता है। कार्य निर्वाहक सदस्य संख्या। जैसे,—साधारण सभा का कोरम ९ सदस्यों का है; पर ६ ही उपस्थित थे, कोरम पूरा न होने के कारण अधिवेशन न हो सका।

कोरहन†–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का धान। उ०—कोरहन बड़हन जड़हन मिला। औ संसार-तिलक खँडविला।—जायसी।

कोर्स–संज्ञा पुं० [अं०] उन विषयों का क्रम जो किसी विश्वविद्यालय, स्कूल, कालेज आदि में पढ़ाए जाते हों। पाठ्यक्रम। जैसे,—इस बार बी० ए० के कोर्स में शकुंतला के स्थान पर भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित' नाटक रखा गया है।

कोशसंधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] कोश देकर संधि करना। धन देकर किया जानेवाला मेल।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि यदि शत्रु कोशसंधि करना चाहे तो उसको ऐसे बहुमूल्य पदार्थ दे जिनका कोई खरीदनेवाला न हो या जो युद्ध के लिये अनुपयोगी हों या जो जांगलिक पदार्थ हों।

कोशाभिसंहरण–संज्ञा पुं० [सं०] ख़ज़ाने की कमी पूरी करना।

विशेष—चाणक्य ने इसके कई ढंग बताए हैं; जैसे,—(१) बाकी राजकर को एक दम वसूल करना। (२) धान्य का

तृतीय तथा चतुर्थ अंश टैक्स में लेना। (३) सोने चाँदी के उत्पादकों, व्यापारियों, व्यवसायियों तथा पशुपालकों से भिन्न भिन्न ढंग पर राजकर लेना। (४) मंदिरों की आमदनी में से कर लेना। (५) धनियों के घरों से धन गुप्त दूतों के द्वारा चोरी कराके प्राप्त करना।

कोरवस-संज्ञा पुं० [देश०] मदरास के आस पास रहनेवाली एक जाति। इस जाति के लोग प्रायः डौरियाँ आदि बनाते और सारे भारत में घूम घूम कर अनेक प्रकार के पक्षियों के पर एकत्र करते हैं।

कोषाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोष का अध्यक्ष या स्वामी। वह जिसके पास कोष रहता हो। (२) वह जिसके पास किसी व्यक्ति या संस्था का आयव्यय और रोकड़ आदि रहती हो। रोकड़िया। खजानची।

कोष्ठागार-संज्ञा पुं० [सं०] भांडार। भंडारखाना। (कौ०)

कोसा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गाढ़ा रस या अवलेह जो चिकनी सुपारी बनाने के समय सुपारियों को उबालने पर तैयार होता है और जिसकी सहायता से घटिया दरजे की सुपारियाँ रँगी और स्वादिष्ट बनाई जाती हैं।

कौंचा†-संज्ञा पुं० [?] ऊख के ऊपर का पतला और नीरस भाग जिसमें गाँठें बहुत पास पास होती हैं। अगौरा।

कौंछ-संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] केवाँच। कौंच। दि० दे० "कौंच"।

कौंट-संज्ञा पुं० [अं० काउन्ट] [स्त्री० कौंटिस] युरोप के कई देशों के सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों की उपाधि जिसका दर्जा ब्रिटिश उपाधि 'अर्ल' के बराबर का है।

कौंसल-संज्ञा पुं० [अं०] बैरिस्टर। एडवोकेट।

कौंसली-संज्ञा पुं० [अं० कौंसल] बैरिस्टर। एडवोकेट। जैसे,—हाई कोर्ट में उसकी ओर से बड़े बड़े कौंसली पैरवी कर रहे हैं। (प्रांतिक)

कौड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] (२) बूई नाम का पौधा जिसे जलाकर सज्जीखार निकालते हैं। वि० दे० "बूई"।

कौड़िया-संज्ञा पुं० [हिं० कौड़िल्ल] कौड़िल्ला या किलकिला नाम का पक्षी। उ०—नयन कौड़िया हिय समुद गुरू सो तेही जोति। मन मरजिया न होइ परै हाथ न आवै मोति। —जायसी।

कौणप-संज्ञा पुं० [सं०] (३) पातकी। अधर्म्मी। उ०—केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई।—तुलसी।

कौतिग†-संज्ञा पुं० [सं० कौतुक] विलक्षण और अद्भुत बात। कौतुक। उ०—देखत कछु कौतिगु इतै देखौ नैंक निहारि। कब की इकटक डटि रही टटिया अँगुरिन फारि।—बिहारी।

क़ौमियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] कौम या जाति का भाव। जातीयता। जैसे,—वल्दियत और कौमियत सब लिखा दो।

क़ौमी-वि० [अ०] किसी कौम या जाति संबंधी। जातीय। जैसे,—कौमी जोश। कौमी मजलिस।

कौलॐ-संज्ञा पुं० दे० "कोर"। उ०—लाल बिलोचनि-कौलन सौं, मुसकाइ इतै अरुझाइ चितैगो।—मतिराम।

कौवा-संज्ञा पुं० [सं० काक] (६) कनकुटकी नाम का पेड़ जिसकी राल दवा और रँगाई के काम में आती है। (७) एक प्रकार की मछली जिसका मुँह बगले के मुँह की तरह होता है। कंकचोट। जलव्यथ।

कौषेय-वि० [सं०] रेशम से संबंध रखनेवाला। रेशम का। रेशमी। संज्ञा पुं० रेशम का बना हुआ वस्त्र। रेशमी कपड़ा।

कौष्ठेयक-संज्ञा पुं० [सं०] वे कर या टैक्स जो खजाने तथा वस्तु-भांडार को पूर्ण करने के लिये जनता से समय समय पर लिये जायँ।

क्रमॐ†-संज्ञा पुं० [सं० कर्म] कर्म्म। कार्य्य। कृत्य। उ०—मन, वच, क्रम तुम सेवहु जाई।

क्रयलेख्यपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पदार्थ के क्रय विक्रय संबंधी पत्र। (शुक्रनीति)

क्रयिम-संज्ञा पुं० [सं०] वह कर या टैक्स जो माल की खरीद या बिक्री पर लिया जाय। (कौ०)

क्रयोपघात-संज्ञा पुं० [सं०] पदार्थ के खरीदने को रोकना। पदार्थ के क्रय में रुकावटें डालना। (कौ०)

क्राउन-संज्ञा पुं० [अं०] (३) राजा। सम्राट्। शाह। सुलतान। (४) राज्य।

क्राउन कालोनी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कालोनी या उपनिवेश जो किसी राज्य या साम्राज्य के अधीन हो। राज्य या साम्राज्यांतर्गत उपनिवेश।

क्राउन प्रिंस-संज्ञा पुं० [अं०] किसी स्वतंत्र राज्य का राज-सिंहासन का उत्तराधिकारी। युवराज। जैसे,—रूमानिया के क्राउन प्रिंस।

क्रिमिनल इनवेस्टिगेशन डिपार्टमेंट-संज्ञा पुं० [अं०] [संक्षिप्त रूप सी० आई० डी०] सरकार का वह विभाग या महकमा जो अपराधों, विशेष कर राजनीतिक अपराधों का गुप्त रूप से अनुसंधान करता है। भेदिया विभाग। खुफिया महकमा। भेदिया पुलिस। खुफिया पुलिस। सी० आई० डी०।

क्रिमिनल प्रोसीजर कोड-संज्ञा पुं० [अं०] अपराध और दंड संबंधी विधानों का संग्रह। दंडविधान। जाब्ता फौजदारी।

क्रूज़र-संज्ञा पुं० [अं०] तेज चलनेवाला सशस्त्र या हथियारबंद जहाज जिसका काम अपने देश के जहाजों की रक्षा करना और शत्रु के जहाजों को नष्ट करना या लूटना है। रक्षक जहाज।

क्रेडिट-संज्ञा पुं० [अं०] बाजार में वह मानमर्यादा जिसके कारण मनुष्य लेन देन कर सकता हो। साख। जैसे,—बाजार में

अब उनका कोई क्रेडिट नहीं रहा, अब वे एक पैसे का माल भी नहीं ले सकते।

क्रेतृ-संघर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] खरीदनेवालों की चढ़ा ऊपरी। (कौ०)

क्रोधकृत-ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो क्रोध में आकर किसी का धन नष्ट कर देने के कारण लेना पड़ा हो।

क्लाक टावर-संज्ञा पुं० [अं०] वह मीनार जिसमें सर्व साधारण को समय बतलाने के लिये बड़ी सी घड़ी लगी रहती है। घंटा घर।

क्लिष्टघात-संज्ञा पुं० [सं०] साँसत से मारना। तकलीफ देकर मारना। (कौ०)

क्लृप्त-संज्ञा पुं० [सं०] मुकर्रर लगान या महसूल। नियत कर।

विशेष—नदियों के किनारे जो गाँव होते थे, उनको चंद्रगुप्त के समय में स्थिर तथा नियत कर देना पड़ता था।

क्वार्टर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) बस्ती। टोला। बाड़ा। जैसे,—कुलियों का क्वार्टर। (२) अफसरों और कर्मचारियों के रहने की जगह। जैसे,—रेलवे क्वार्टर। (३) वह स्थान जहाँ पलटन ने डेरा डाला हो। डेरा। छावनी। मुकाम।

क्वेश्चन-संज्ञा पुं० [अं०] प्रश्न। सवाल।

यौ०—क्वेश्चन पेपर।

क्वेश्चन पेपर-संज्ञा पुं० [अं०] वह छपा हुआ पत्र या पर्चा जिसमें परीक्षार्थियों से एक या अधिक प्रश्न किए गए हों। परीक्षा-पत्र। प्रश्नपत्र।

क्षणमूल्य-संज्ञा पुं० [सं०] नक़द दाम। तुरंत दी जानेवाली कीमत।

विशेष—शाम शास्त्री ने इसका अर्थ 'कमीशन' किया है।

क्षिप्त-संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त रजोगुण के द्वारा सदा अस्थिर रहता है। कहा गया है कि यह अवस्था योग के लिये अनुकूल या उपयुक्त नहीं होती। वि० दे० "चित्तभूमि"।

क्षीण-प्रकृति-वि० [सं०] (राजा) जिसकी प्रकृति या प्रजा दरिद्र हो। जिसकी प्रजा दिन पर दिन दुर्बल और दरिद्र होती जाती हो।

क्षीरोदक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उ०—कहा भयो मेरो गृह माटी को। हौं तो गयो गुपालहि भेंटन और खरच तंदुल गाँठी को।......नौतन क्षीरोदक युवती पै भूषन हुते न कहुँ माटी को। सूरदास प्रभु कहा निहोरो मानतु रंक त्रास टाटी को।—सूर।

क्षीरोदतनय-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा जो समुद्र का पुत्र और उससे उत्पन्न माना जाता है।

क्षीरोदतनया-संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी जो समुद्र की कन्या और उससे उत्पन्न या निकली हुई मानी जाती है।

क्षीरोदधि-संज्ञा पुं० [सं०] क्षीर सागर। क्षीर समुद्र।

क्षीव-संज्ञा पुं० [सं०] उन्मत्त। पागल।

क्षुणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

क्षुण्ण-वि० [सं०] (१) अभ्यस्त। (२) टुकड़े टुकड़े या चूर्ण किया हुआ। (३) जिसका कोई अंग टूट या कट गया हो। खंडित।

क्षुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (८) प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो १६ हाथ लंबी, ४ हाथ चौड़ी और ४ हाथ ऊँची होती थी। यह केवल छोटी छोटी नदियों में चलती थी।

क्षेत्र-हिंसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] खेत को नुकसान पहुँचाना।

विशेष—कौटिल्य के समय में इस संबंध में ये नियम थे-खेत चर जाने पर पशुओं के मालिकों से दुगुना नुकसान लिया जाता। यदि किसी ने कह कर चरवाया हो तो उस पर १२ पण और जो रोज यही करे, उस पर २४ पण जुरमाना किया जाता था। रखवालों को आधा दंड मिलता था।

क्षेत्रादीपिक-संज्ञा पुं० [सं०] खेत में आग लगानेवाला।

विशेष—प्राचीन काल में इसका दंड आग लगानेवाले को आग में जला देना था।

क्षेत्रानुगत-वि० [सं०] घाट या बंदर-गाह पर लगा हुआ (जहाज)। (कौ०)

क्षेमरात्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रात जिसमें चोरी आदि न हुई हो। (कौ०)

खंगनखार-संज्ञा पुं० [खंगन ? + हिं० खार] पंजाब के पश्चिमी जिलों में होनेवाला एक प्रकार का पौधा जिसे जला कर सज्जीखार तैयार करते हैं। इसकी सज्जी सबसे अच्छी समझी जाती है।

खंडफुल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] कूड़ा कर्कट।

खँडवरा†-संज्ञा पुं० दे० "खँडौरा।" उ०—खंडे कीन्ह आमचुर परा। लौंग इलाची सों खँडवरा।—जायसी।

खँडविला†-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का धान। उ०—कोरहन, बड़हर, जड़हन मिला। औ संसारतिलक खँडविला।—जायसी।

खँधार†-संज्ञा पुं० [सं० स्कंधावार] सेना का निवासस्थान। स्कंधावार। छावनी। उ०—कहाँ मोर सब दरब भँडारा। कहाँ मोर सब दरब खँधारा।—जायसी।

खजूरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खजूर] खजूर का फल। खजूर। उ०—कोइ बिजौर करौंदा जूरी। कोइ अमिली कोइ महुअ खजूरी।—जायसी।

खटना-क्रि० अ० [?] (१) धन उपार्जन करना। कमाना। (पश्चिम) (२) अधिक परिश्रम करना। कड़ी मेहनत करना। जैसे,—दिन रात खट खट कर तो हमने मकान बनवाया; और आप मालिक बन कर आ बैठे। (३) कठिन समय में ठहरे रहना। विपत्ति में पीछे न हटना।

खट्टी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खट्टा] (१) खट्टी नारंगी। (२) एक

प्रकार का बड़ा नीबू जो खट-मीठा होता है। (३) गलगल नाम का बहुत बड़ा नीबू जिसका अचार पड़ता है और जो बहुत अधिक खट्टा होता है।

खड़खड़िया-संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़खड़ाना] (१) गाड़ी का वह ढाँचा जिसमें जोत कर नया घोड़ा सधाने के लिये निकाला जाता है। (२) पालकी।

खड़ी बोली-संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ी (खरी ?) + बोली = भाषा] वर्त्तमान हिंदी का पूर्व रूप जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्त्तमान हिंदी भाषा की और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्त्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है। वह बोली जिस पर ब्रज भाषा या अवधी आदि की छाप न हो। ठेठ हिंदी। वि० दे० "हिंदी"।

विशेष-जिस समय मुसलमान इस देश में आकर बस गए, उस समय उन्हें यहाँ की कोई एक भाषा ग्रहण करने की आवश्यकता हुई। वे प्रायः दिल्ली और उसके पूरबी प्रांतों में ही अधिकता से बसे थे; और ब्रज भाषा तथा अवधी भाषाएँ, क्लिष्ट होने के कारण अपना नहीं सकते थे; इसलिये उन्होंने मेरठ और उसके आस पास की बोली ग्रहण की; और उसका नाम खड़ी (खरी ?) बोली रखा। इसी खड़ी बोली में वे धीरे धीरे फारसी और अरबी के शब्द मिलाते गए जिससे अंत में वर्त्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि हुई। विक्रमी १४ वीं शताब्दी में पहले पहल अमीर खुसरो ने इस प्रांतीय बोली का प्रयोग साहित्य में करना आरंभ किया और उसमें बहुत कुछ कविता की, जो सरल तथा सरस होने के कारण शीघ्र ही प्रचलित हो गई। बहुत दिनों तक मुसलमान ही इस बोली का बोल-चाल और साहित्य में व्यवहार करते रहे; पर पीछे हिंदुओं में भी इसका प्रचार होने लगा। पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में कोई कोई हिन्दी के कवि भी अपनी कविता में कहीं कहीं इसका प्रयोग करने लगे थे; पर उनकी संख्या प्रायः नहीं के समान थी। अधिकांश कविता बराबर अवधी और ब्रज-भाषा में ही होती रही। अठारहवीं शताब्दी में हिंदू भी साहित्य में इसका व्यवहार करने लगे, पर पद्य में नहीं, केवल गद्य में; और तभी से मानों वर्तमान हिंदी गद्य का जन्म हुआ, जिसके आचार्य्य मु० सदासुख, लल्लू जी लाल और सदल मिश्र आदि माने जाते हैं। जिस प्रकार मुसलमानों ने इसमें फारसी तथा अरबी आदि के शब्द भर कर वर्त्तमान उर्दू भाषा बनाई, उसी प्रकार हिंदुओं ने भी उसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता करके वर्त्तमान हिन्दी प्रस्तुत की। इधर थोड़े दिनों से कुछ लोग संस्कृत-प्रचुर वर्त्तमान हिन्दी में भी कविता करने लग गए हैं और कविता के काम के लिये उसी को खड़ी बोली कहते हैं।

खड्गधार-संज्ञा पुं० [सं०] बदरिकाश्रम के एक पर्वत का नाम।

खड्गपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कल्पित वृक्ष। कहते हैं कि यह वृक्ष यमराज के यहाँ है और इसकी डालियों में पत्तों की जगह तलवारें और कटारें आदि लगी हुई हैं। पापियों को यातना देने के लिये इस वृक्ष पर चढ़ाया जाता है।

खत॥-संज्ञा पुं० [सं० क्षत] घाव। उ०—निय जिय हिय जु लगी चलत पिय नख रेख खरौंट। सूखन देति न सरसई खोंटि खोंटि खत-खौंट।—बिहारी।

खदंग-संज्ञा पुं० [फा०] बाण। तीर। उ०—लाखन मीर बहादुर जंगी। जँबुक कमानैं, तीर खदंगी।—जायसी।

खदबद-संज्ञा स्त्री० [अनु०] खद खद या खद बद शब्द जो प्रायः किसी तरल पर गाढ़े पदार्थ को खौलाने से उत्पन्न होता है।

खनक-संज्ञा स्त्री० [खन से अनु०] खनकने की क्रिया या भाव। खनखनाहट।

खनिभोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदेश या उपनिवेश जिसमें धातुओं की खानें हों और जहाँ के निवासियों का निर्वाह खानों में काम करने से ही होता हो।

विशेष-कौटिल्य ने साधारणतः 'खनिभोग' की अपेक्षा धान्य-पूर्ण प्रदेश को अच्छा कहा है, क्योंकि खानों से केवल कोश की वृद्धि होती है और धान्य से कोश और भांडार दोनों पूर्ण होते हैं। पर यदि प्रदेश बहुत मूल्यवान् पदार्थों की खानोंवाला हो तो वही अच्छा है।

खमकरा†-संज्ञा पुं० [देश०] मकड़ा नाम की घास जो पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है। वि० दे० "मकड़ा"।

खया॥†-संज्ञा पुं० [सं० स्कंध] भुजमूल। खवा। उ०—कंदुक केलि कुसल हय चढ़ि चढ़ि, मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये।—तुलसी।

खर-संज्ञा पुं० [सं०] (१४) एक प्रकार की घास जो पंजाब, संयुक्त प्रांत और मध्यप्रदेश में होती है और जो घोड़ों के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है।

खरकना॥-क्रि० अ० [अनु०] खड़ खड़ आवाज होना। खड़कना। उ०—बारहिं बार बिलोकन द्वारहि, चौंकि परै तिनके खरके हूँ।—मतिराम।

खरतर॥†-वि० [हिं० खर + तर (प्रत्य०)] (१) अधिक तीक्ष्ण। बहुत तेज। उ०—कया ताइ कै खरतर करई। प्रेम क सँड़सी पोढ़ कै धरई।—जायसी। (२) लेन देन में खरा। व्यवहार का सच्चा या साफ।

खरदुक†-संज्ञा पुं० [?] प्राचीन काल का एक प्रकार का पहनावा। उ०—चँदनौता औ खरदुक भारी। बाँसपूर झिलमिल कै सारी।—जायसी।

खरधावा†-संज्ञा पुं० [हिं० खर + धव] धव या धाव का पेड़ जिसकी

लकड़ी नाव आदि बनाने के काम में आती है। वि० दे० "धव" (१)।

खरबिरई‡–संज्ञा स्त्री० [हिं० खर + बिरई = बूटी] घास-पात या जड़ी बूटी की दवा जो प्रायः देहाती लोग करते हैं।

खरायँध–संज्ञा स्त्री० [हिं० खार + गंध] (१) मूत्र की दुर्गंध। पेशाब की बदबू। (२) क्षार आदि की दुर्गंध।

खरिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० खर + इया प्रत्य०] (२) झोली। थैली।

खरियाना†–क्रि० स० [हिं० खरिया = झोली] (१) झोली में डालना। थैली में भरना। (२) हस्तगत करना। ले लेना। (३) झोली में से गिराना।

खलना–क्रि० स० [हिं० खल या खरल] (१) खरल में डालकर घोंटना। (२) नष्ट करना। पीस डालना। उ०—रावन सो रसराज सुभट रस सहित लंक खल खलतो।—तुलसी।

खलादीपिक–संज्ञा पुं० [सं०] खलियान में आग लगानेवाला।

विशेष—ऐसे अपराधी को आग में जलाने का दंड मिलता था।

खसखसी–वि० [हिं० खसखस] खसखस की तरह का। बहुत छोटा। जैसे,—खसखसी दाढ़ी।

खसखासी–संज्ञा पुं० [हिं० खसखस] पोस्ते के फूल का रंग। हलका आसमानी रंग।

वि० पोस्ते के फूल के रंग का। हलका आसमानी।

खसिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक पहाड़ी का नाम जो आसाम में है। (२) इस पहाड़ी के आस पास का प्रदेश। उ०—चला परबती लेइ कुमाऊँ। खसिया मगर जहाँ लगि नाऊँ।—जायसी।

खाँड़ना†–क्रि० स० [सं० खंड = टुकड़ा] कुचल कुचल कर खाना। चबाना। उ०—काढ़े अधर डाभ जनु चीरा। रुहिर चुवै जौ खाँड़ै बीरा।—जायसी।

खाजी®–संज्ञा स्त्री० [सं० खाद्य] खाद्य पदार्थ।

मुहा०—खाजी खाना=मुँह की खाना। बुरी तरह परास्त और लज्जित होना। उ०—सानुज सगन ससचिव सुजोधन भए मुख मलिन खाइ खल खाजी।—तुलसी।

खिझ®–संज्ञा स्त्री० दे० "खीज"। उ०—मनु न मनावन कौं करै देतु रुठाइ रुठाइ। कौतुक लाग्यौ प्यौ प्रिया खिझहूँ रिझवति जाइ।—बिहारी।

खिरौरा†–संज्ञा पुं० [हिं० खैर = कत्था + औरा (प्रत्य०)] कत्थे की टिकिया। उ०—पुहुप पंक रस अमृत साँधे। कोइ यह सुरँग खिरौरा बाँधे।—जायसी।

खिसलन†–संज्ञा स्त्री० दे० "फिसलन"।

खिसाना–वि० [हिं० खिसियाना] खिसिआया हुआ। लज्जित और संकुचित।

खिसौहाँ®–वि० [हिं० खिसियाना + औहाँ (प्रत्य०)] खिसिआया हुआ। लज्जित और संकुचित। उ०—गहकि गाँसु औरै गहै रहे अध-कहे बैन। देखि खिसौंहैं पिय-नयन किए रिसौंहैं नैन।—बिहारी।

खीरी†–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीरिणी] खिरनी नाम का फल। उ०—कोइ दारिउँ, कोइ दाख औ खीरी। कोइ सदाफर तुरँग गँभीरी।—जायसी।

खुँटैया–संज्ञा स्त्री० [हिं० खूँटी] एक प्रकार की दूब या घास जिसे चट्टू भी कहते हैं।

खुब्बाजी–संज्ञा स्त्री० [अ०] चंगेल नामक पौधे का फल जो दवा के काम में आता है। वि० दे० "चंगेल"।

खुमान®†–वि० [सं० आयुष्मान्] बड़ी आयुवाला। दीर्घजीवी। (आशीर्वाद)

खुरुक–संज्ञा पुं० [हिं० खुटका] खुटका। खटका। आशंका। उ०—मोट बड़े सोइ टोइ टोइ धरे। ऊबर दूबर खुरुकन चरे।—जायसी।

खुसिया–संज्ञा पुं० [अ० खुसियः] अंड कोश।

यौ०—खुसिया बरदारी=बहुत अधिक खुशामद।

खूँट†–संज्ञा पुं० [सं० खंड] (७) कान में पहनने का एक प्रकार का गहना। उ०—कानन्ह कुंडल खूँट औ खूँटी। जानहुँ परी कचपची टूटी।—जायसी।

खेरौरा‡–संज्ञा पुं० [हिं० खाँड़ + औरा (प्रत्य०)] खँड़ौरा या ओला नाम की मिठाई। मिसरी का लड्डू। उ०—दूती बहुत पकावन साधे। मोति-लाड़ु औ खेरौरा बाँधे।—जायसी।

खैला†–संज्ञा पुं० [सं० क्ष्वेड] मथानी। उ०—मन माठा सम अस कै धोवै। तन खैला तेहि माहिं बिलोवै।—जायसी।

खोई–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्र] (४) एक प्रकार की घास जिसे "बूर" भी कहते हैं। वि० दे० "बूर"।

खोड़–संज्ञा पुं० [सं० कोटर] वह छेद जो वृक्ष की लकड़ी के सड़ जाने से हो जाता है। उ०—मानहु आयो है राज कछू चढ़ि बैठे हो ऐसै पलास के खोड़े।—मतिराम।

खोर®–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षालन, हिं० खोरना] नहाने की क्रिया। स्नान।

खोली–संज्ञा स्त्री० [फा० खोल] तकिए आदि के ऊपर चढ़ाने की थैली। गिलाफ।

खौं†–संज्ञा स्त्री० [सं० खन्] (३) वृक्ष में वह स्थान जहाँ डाल से टहनी या टहनी से पत्ती निकलती है।

खौंट†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खोंटना] (१) खोंटने की क्रिया या भाव। (२) खोंटने या नोचने के कारण (शरीर आदि पर) पड़ा हुआ चिह्न। खरोंट। उ०—तियनिय हिय जु लगी चलत पिय नख रेख खरौंट। सूखन देति न सरसई खोंटि खोंटि खत खौंट।—बिहारी।

गंगा-गति–संज्ञा स्त्री० [सं० गंगा + गति] मोक्ष। मुक्ति। उ०—मरै जो चलै गंग-गति लेई। तेहि दिन कहाँ घरी को देई।—जायसी।

गंगेय-संज्ञा पुं० [सं० गांगेय] गंगा के पुत्र भीष्म-पितामह। उ०—तुम ही द्रोन और गंगेऊ। तुम्ह लेखौं जैसे सहदेऊ।—जायसी।

गंगोभॐ-संज्ञा पुं० [सं० गंगोदक] गंगा का जल। गंगोदक। उ०—तुलसी रामहिं परिहरे निपट हानि सुनि ओझ। सुरसरि-गत सोई सलिल सुरा सरिस गंगोझ।—तुलसी।

गंजन-संज्ञा पुं० [सं०] (३) दुःख। कष्ट। तकलीफ। उ०—जेहि मिलि बिछुरनि औ तपनि अंत होइ जौ निंत। तेहि मिलि गंजन को सहै बरु बिनु मिले निचिंत।—जायसी।

गँठछोर†-संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ + छोरना] गाँठ का माल छीन लेनेवाला। गिरहकट।

गँड़झप-संज्ञा पुं० [हिं० गाँड़ + झेंपना] बुरी तरह झेंपने की क्रिया। (बाजारू)

मुहा०—गँड़झप खाना = बुरी तरह झेंपना। बहुत बेतरह लज्जित होना।

गँड़दार-संज्ञा पुं० [सं० गंड या गँड़ासा + फा० दार (प्रत्य०)] महावत। फीलवान। उ०—ज्यों मतंग अँड़दार को, लिए जात गँड़दार।—रसराज।

गँड़सल-वि० [हिं० गाँड़] (१) गुदा भंजन करानेवाला। (२) डरपोक। कायर।

गंडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गेंडे के चमड़े से बनी हुई एक प्रकार की छोटी नाव।

गँड़ियल-वि० [हिं० गाँड़ + इयल (प्रत्य०)] (१) गुदा भंजन करानेवाला। (२) डरपोक। कायर।

गंधतृण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सुगंधित घास जो वैद्यक में कुछ तिक्त, सुगंधित, रसायन, स्निग्ध, मधुर, शीतल और कफ तथा पित्त की नाशक कही गई है।

पर्या०—सुगंधि। भूतृण। सुरस। सुरभि। सुखवास।

गइनाही†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] ज्ञान। जानकारी। उ०—डसी री माई स्याम भुअंगम कारे। मोहन मुख मुसकान मनहु बिष जाते मरे सो मारे। फुरै न मंत्र यंत्र गइनाही चले गुणी गुण डारे।—सूर।

गगनगढ़-संज्ञा पुं० [सं० गगन + गढ़] गगन-स्पर्शी प्रासाद। बहुत ऊँचा महल। उ०—देखा साह गगनगढ़ इन्द्रलोक कर साज। कहिय राज फुर ताकर सरग करै अस राज।—जायसी।

गज-संज्ञा पुं० [सं०] (६) ज्योतिष में नक्षत्रों की बीथियों में से एक।

गजदंड-संज्ञा पुं० [सं० गजदण्ड] पारिस पीपल का पेड़। पारीश पिप्पल।

गड़गड़-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) गड़ गड़ शब्द जो हुक्का पीने के समय या सुराही से पानी उलटने के समय होता है। (२) पेट में होनेवाला गड़ गड़ शब्द।

गडुरी-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पक्षी जिसे गेंडुरी भी कहते हैं। उ०—पीव पीव कर लाग पपीहा। तुही तुही कर गडुरी जीहा।—जायसी।

गड्डा-संज्ञा पुं० [हिं० गाड़ा या गाड़ी] (१) बैल गाड़ी। छकड़ा। (२) लकड़ी आदि का बड़ा पूला या गट्ठा। (३) रेशम या सूत आदि का गट्ठा।

गढ़ना-क्रि० स० [सं० घटन] प्रस्तुत करना। उपस्थित करना। उ०—आछे सँजोग गोसाईं गढ़े।—जायसी।

गढ़वनाॐ-क्रि० अ० [सं० गढ़ = किला] (१) किले में जाना। (२) रक्षित स्थान में पहुँचना। उ०—रहि न सकी सब जगत मैं सिसिर सीत कैं त्रास। गरम भाजि गढ़वै भई तिय-कुच अचल मवास।—बिहारी।

गण-संज्ञा पुं० [सं०] (१४) किसी विशेष कार्य के लिये संघटित समाज या संघ। जैसे,—व्यापारियों का गण, भिक्षुक संन्यासियों का गण। (१५) शासन करनेवाली जाति के मुखियों का मंडल। जैसे,—मालवों का गण।

विशेष—प्राचीन काल में कहीं कहीं इस प्रकार के गणराज्य होते थे। मालवा में पहले मालवों का गणराज्य था जिनका संवत् पीछे विक्रम संवत् कहलाया।

गणतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह राज्य या राष्ट्र जिसमें समस्त राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और वे सामूहिक रूप से या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा शासन और न्याय का विधान करते हों। प्रजातंत्र। जनतंत्र।

गणिकाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वेश्याओं का निरीक्षक राजकर्म्मचारी या चौधरी।

विशेष—कौटिल्य के समय में इस प्रकार के कर्मचारी नियत करने की व्यवस्था थी।

गणित विक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] गिनती के हिसाब से पदार्थ बेचना। (कौ०)

गण्य पण्य-संज्ञा पुं० [सं०] गिनती के हिसाब से बिकनेवाली वस्तुएँ। (कौ०)

गथनाॐ†-क्रि० स० [सं० गाथा] बातें बना बना कर कहना। गढ़ गढ़ कर कहना।

गदरानाॐ†-वि० [हिं० गदराना] गदराया हुआ। उ०—गदराने तन गोरटी ऐपन आड़ लिलार। हूठ्यौ दै इठलाइ दृग करै गँवारि सुवार।—बिहारी।

गदा-संज्ञा पुं० [फा०] भिक्षुक। भिखमंगा। फकीर।

यौ०—गदागरी=भिक्षुकी। भिखमंगापन। फकीरी।

गधेड़ी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० गधी + एड़ी (प्रत्य०)] अयोग्य या फूहड़ स्त्री।

गनगनाना-क्रि० अ० [अनु०] (रोआँ) खड़ा होना। रोमांच होना।

गनरा भाँग-संज्ञा स्त्री० [गनरा ? + हिं० भाँग] जंगली भाँग जिसमें

नशा बिलकुल नहीं होता। कहीं कहीं इसकी टहनियों से रेशे निकाले जाते हैं।

गनाना%-क्रि० स० दे० "गिनाना"।

क्रि० अ०—गिना जाना। गिनती में आना। उ०—बारह ओनइस चारि सताइस। जोगिनि पच्छिउँ दिसा गनाइस।—जायसी।

गनी-संज्ञा पुं० [अं०] पाट या सन की रस्सियों का बुना हुआ मोटा खुरदुरा कपड़ा जो बोरा या थैला बनाने के काम में आता है। जैसे,—गनी मार्केट। गनी ब्रोकर।

गप्पा-संज्ञा पुं० [अनु० गप] (१) धोखा।

मुहा०—गप्पा खाना=धोखे में आना। चूकना।

(२) पुरुष की इन्द्रिय। (बाजारू)

गभस्तल-संज्ञा पुं० [सं० गभस्तिमान्] गभस्तिमान् द्वीप।

गमकना-क्रि० अ० [हिं० गमक+ना (प्रत्य०)] सुगन्धि देना। महकना।

ग़मगुसार-संज्ञा पुं० [फा०] वह जो किसी को कष्ट में देखकर दुःखी होता हो। सहानुभूति रखने या दिखलानेवाला। हमदर्द।

गमना%-क्रि० अ० [अ० ग़म=रंज+ना (प्रत्य०)] (१) ग़म करना। शोक करना। (२) परवाह करना। ध्यान देना। उ०—मेरे तौ न डरु रघुबीर सुनौ साँची कहौं खल अनखैहैं तुम्हें सज्जन न गमिहैं।—तुलसी।

गया-संज्ञा स्त्री० [सं० गया (तीर्थ)] गया में होनेवाली पिंडोदक आदि क्रियाएँ।

मुहा०—गया करना=गया में जाकर पिंडदान आदि करना। जैसे,—वह बाप की गया करने गए हैं।

गरजना†-वि० [हिं० गरजना] गरजनेवाला। जोर से बोलनेवाला। उ०—राजपंखि पेखा गरजना।—जायसी।

गरना-क्रि० अ० [हिं० गारना] (१) गारा जाना। निचोड़ा जाना। (२) किसी चीज में से किसी पदार्थ का बूँद बूँद होकर गिरना। निचुड़ना। उ०—चुंबक-लोहँड़ा औंटा खोवा। भा हलुवा घिउ गरत निचोवा।—जायसी।

गरब†-संज्ञा पुं० [सं० गर्व] हाथी का मद। उ०—गरब गयंदन्ह गगन पसीजा। रुहिर चुवै धरती सब भीजा।—जायसी।

गरब-गहेला†-वि० [हिं० गर्व+गहना (ग्रहण करना)] [स्त्री० गरब-गहेली] जिसने गर्व धारण किया हो। गर्वीला। उ०—तू गज-गामिनि गरब-गहेली। अब कस आस छाँडु तू बेली।—जायसी।

गरबना%-क्रि० अ० [सं० गर्व] गर्व करना। अभिमान करना। शेखी करना। उ०—इहिं द्वैहीं मोती सुगथ तूँ नथ गरबि निसाँक। जिहिं पहिरे जग-दृग ग्रसति लसति हँसति सी नाँक।—बिहारी।

गरसना†-क्रि० स० दे० "ग्रसना"।

गराम-संज्ञा पुं० [अं० मैनग्रोव] चौरी नाम का वृक्ष जिसकी छाल से रंग निकाला और चमड़ा सिझाया जाता है।

गरासना†-क्रि० स० दे० "ग्रसना"। उ०—रैनु रैनि होइ रविहिं गरासा।—जायसी।

गरियल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का किलकिला पक्षी जिसका सिर भूरे रंग का होता है।

गरु†-वि० [सं० गुरु] (१) भारी। वजनी। (२) जिसका स्वभाव गंभीर हो। शांत।

गरुआ†-वि० [सं० गुरु] [स्त्री० गरुई] (२) गौरव युक्त। गौरवशाली। उ०—बैठहु पाट छत्र नव फेरी। तुम्हरे गरब गरुइ मैं चेरी।—जायसी।

गरुवा†-वि० [सं० गुरु=भारी] (१) भारी। बोझवाला। (२) गंभीर। धीर। उ०—बड़े कहावत आप सौं गरुवे गोपीनाथ। तौ बदिहौं जौ राखिहौ हाथनु लखि मनु हाथ।—बिहारी।

गरू†-वि० [सं० गुरु] (१) भारी। वजनी। उ०—गरू गयंद न टारे टरहीं।—जायसी।

गरेरा†-वि० [हिं० घेरा] चक्करदार। घुमावदार।

गर्बना%-क्रि० अ० [सं० गर्व] गर्व करना। अभिमान करना।

गर्भसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक।

गर्ल-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) लड़की। बालिका। (२) युवती। जवान स्त्री।

गर्ल्स् स्कूल-संज्ञा पुं० [अं०] वह विद्यालय जिसमें केवल लड़कियाँ पढ़ती हों। कन्या विद्यालय।

गलगंजना†-क्रि० अ० [हिं० गाल+गाजना] जोर से आवाज़ करना। भारी शब्द करना। उ०—तीस सहस घहराहिं निसाना। गलगंजहिं भेरी असमाना।—जायसी।

गलझंप-संज्ञा पुं० [हिं० गला+झंप] एक प्रकार की लोहे की झूल जो युद्ध के समय हाथियों के गले में पहनाई जाती थी। उ०—तैसे चँवर बनाए और घाले गलझंप। बँधे सेन गजगाह तहँ जो देखै सो कंप।—जायसी।

गलत-फहमी-संज्ञा स्त्री० [अ०+फा०] किसी ठीक बात को गलत समझना। भूल से कुछ का कुछ समझना। भ्रम।

क्रि० प्र०—पैदा होना।—होना।

गवनचार†-संज्ञा पुं० [सं० गमन+आचार] वधू का वर के घर जाना। गौना। उ०—गवनचार पदमावति सुना। उठा धमकि जिय औ सिर धुना।—जायसी।

गवाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रायन। (२) एक प्रकार की ककड़ी। (३) सहोरा नाम का पेड़। (४) अपराजिता लता। विष्णुक्रांता।

गवामयन-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का यज्ञ जो एक वर्ष में समाप्त होता था ।

गवेजा†-संज्ञा पुं० [?] बातचीत । वार्त्तालाप । उ०—केवट हँसे सो सुनत गवेजा । समुद न जानु कुवाँ कर मेजा ।–जायसी ।

गवेसी⊛†-वि० [सं० गवेषणा] गवेषणा करनेवाला । ढूँढनेवाला । उ०—कहाँ सो गुरु पावौं उपदेसी । अगम पंथ जो कहै गवेसी ।—जायसी ।

गह-संज्ञा स्त्री० [हिं० गहना] (१) हथियार आदि के पकड़ने की जगह । मूठ । दस्ता । कबजा ।

मुहा०— गह बैठना=मूठ पर अच्छी तरह हाथ बैठना ।

(२) किसी कमरे या कोठरी की ऊँचाई । (३) मकान का खंड । मंजिल ।

गहडोरना†-क्रि० स० [अनु०] मथकर गँदला करना । उ०—दूरि कीजै द्वार तें लबार लालची प्रपंची सुधा सों सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं ।—तुलसी ।

गहबरना-⊛ क्रि० अ० [सं० गह्वर] (१) घबराना । व्याकुल होना । उ०—तत खन रतनसेन गहबरा । रोउब छाँड़ि पाँव लेइ परा ।—जायसी । (२) करुणा आदि के कारण (जी) भर आना । उ०—(क) कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो । —तुलसी । (ख) बिलखी डभकौं हैं चखन तिय लखि गवन बराइ । पिय गहबरि आएँ गरैं राखी गरैं लगाइ । —बिहारी ।

गहबराना⊛†-क्रि० अ० दे० "गहबरना" ।

क्रि० स० व्याकुल करना । विकल करना । घबराहट में डालना ।

गहीर⊛-वि० दे० "गहरा" ।

गाँधी-संज्ञा पुं० [सं० गांधिक] (१) वह जो इत्र और सुगंधित तेल आदि बेचता हो । गंधी । (२) गुजराती वैश्यों की एक जाति ।

गाछ मरिच-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाछ + मिर्च] मिर्च की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष ।

गाजरघोट-संज्ञा पुं० [?] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी । वि० दे० "कंजा" (१) ।

गाजीमर्द-संज्ञा पुं० [अ० + फा०] (१) वह जो बहुत बड़ा वीर हो । (२) घोड़ा । अश्व । (बोलचाल)

गाथ-संज्ञा स्त्री० [सं०] यश । प्रशंसा । उ०—उत्तम गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जी हाथ कै लीनो ।—केशव ।

गालू⊛-वि० [हिं० गाल + ऊ (प्रत्य०)] (१) व्यर्थ बढ़ बढ़कर बातें करनेवाला । गाल बजानेवाला । बकवादी । (२) डींग हाँकनेवाला । शेखीबाज ।

गिजाई†-संज्ञा स्त्री० [सं० गुंजन] गिंजाई या कनसलाई नाम का बरसाती कीड़ा । (पूरब) वि० दे० "गिंजाई" ।

गिनी-संज्ञा स्त्री० [अं० गिनी ग्रास] एक प्रकार की विलायती बारहमासी घास जो पशुओं के लिये बहुत बलवर्धक और आरोग्यकारक होती है । इसे गौओं और भैंसों को खिलाने से उनका दूध बहुत बढ़ जाता है; और घोड़ों को खिलाने से उनका बल बहुत बढ़ जाता है । यह घास सभी प्रकार की जमीनों में भली भाँति हो सकती है, पर क्षार या सीड़वाली जमीन में अच्छी नहीं होती । यद्यपि यह बीजों से भी बोई जा सकती है, पर जड़ों से बोना अधिक उत्तम समझा जाता है । यदि वर्षा ऋतु के आरंभ में यह थोड़ी सी भी बो दी जाय तो बहुत दूर तक फैल जाती है । इसके लिये घोड़े की सड़ी हुई लीद की खाद बहुत अच्छी होती है । यदि इस पर उचित ध्यान दिया जाय तो साल में इसकी छः फसलें काटी जा सकती हैं ।

गिराव-संज्ञा पुं० [हिं० गिरना + आव (प्रत्य०)] गिरने की क्रिया या भाव । पतन ।

गिरावट-संज्ञा स्त्री० दे० "गिराव" ।

गिरिनंदी-संज्ञा पुं० [सं० गिरिनन्दिन्] शिव के एक प्रकार के गण ।

गिरिबूटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वनस्पति जो औषध के काम में आती है । संग बूटी । अंगूरशेफा । वि० दे० "अंगूरशेफा" ।

गीउ⊛‡-संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गरदन । उ०–दीरघ नैन तीख नहँ देखा । दीरघ गीउ कंठी निति रेखा ।—जायसी ।

गीवा⊛‡-संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] ग्रीवा । गरदन । उ०—राते स्याम कंठ दुइ गीवा । तेहि दुइ फंद डरौं सुठि जीवा—जायसी ।

गुंडालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तृण जो वैद्यक में कटु, तिक्त, उष्ण और पित्त, दाह, शोष तथा व्रण-दोष का नाशक कहा गया है ।

पर्या०—गुण्डाला । गुडाला । गुच्छमूलिका । चिपिटा । तृणापत्री । यवासा । पृथुला । विष्टरा ।

गुजरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गूजर] (३) वह भेंड़ जिसके कान न हों या कटे हुए हों । बूची ।

गुझा†-वि० [सं० गुह्य] गुप्त । छिपा हुआ । (पश्चिम)

गुझाना-क्रि० स० [सं० गुह्य] छिपाना । गुप्त करना ।

गुट्टी-संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रंथि, हिं० गाँठ] (१) कोई मोटी गोल या लंबोतरी गाँठ । (२) दे० "बल्ब" (१) ।

गुड ईवनिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] संध्या के समय का अँगरेजी अभिवादन का वचन जो किसी से मिलने अथवा अलग होने के समय कहा जाता है और जिसका अभिप्राय है—यह संध्या आपके लिये शुभ हो ।

गुड नाइट-संज्ञा स्त्री० [अं०] रात के समय किसी से मिलने या बिदा होने पर कहा जानेवाला एक अँगरेजी अभिवादन वचन जिसका अभिप्राय है—यह रात आपके लिये शुभ हो ।

गुड बाई-संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी से बिदा होने के समय कहा

जानेवाला अँगरेजी अभिवादन-वचन जिसका वास्तविक अभिप्राय है—ईश्वर तुम्हारे साथ रहे या तुम्हारा रक्षक हो।

गुड मार्निंग-संज्ञा पुं० [अं०] किसी से मिलने या विदा होने के समय कहा जानेवाला एक अँगरेजी अभिवादन-वचन।

गुडरू‡-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की चिड़िया जिसे गडुरी भी कहते हैं। उ०—ग्रेरे परेवा पंडुक हेरी। खेहा गुडरू और बगेरी।—जायसी।

गुड़िला†-संज्ञा पुं० [हिं० गुड़िया] (१) बड़ी गुड़िया। (२) किसी की बनी हुई आकृति। मूर्ति। पुतला।

गुड़ीला†-वि० [हिं० गुड़ + ईला (प्रत्य०)] (१) गुड़ का सा मीठा। (२) उत्तम। बढ़िया। (क्व०)

गुढ़*-संज्ञा पुं० [सं० गूढ़] छिप कर रहने का स्थान। बच कर रहने की जगह।

गुढ़ना*-क्रि० अ० [सं० गूढ़] आड़ में होना। छिपना। लुकना। उ०—लखि दारत पिय-कर-कटकु वास छुड़ावन काज। बरुनिन-बन गाढ़ें दृगनु रही गुढ़ौ करि लाज।—बिहारी।

गुणनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में वह अनुष्ठान जो नट लोग अभिनय आरंभ करने से पहले विघ्नों की शांति के लिये करते हैं। पूर्व रंग।

गुदना†-संज्ञा स्त्री० [हिं० गोदना] वह स्त्री जिसके शरीर पर गोदना गुदा हुआ हो। (पश्चिम)

गुदरना*‡-क्रि० अ० [फा० गुजर + ना (प्रत्य०)] (३) व्यतीत होना। बीतना। गुजरना। उ०—मंतर लेहु होहु सँग लागू। गुदर जाइ सब होइहि आगू।—जायसी। (४) उपस्थित किया जाना। पेश होना।

गुनना*†- क्रि० अ० [सं० गुणन] (१) मनन करना। विचार करना। जैसे,—पढ़ना गुनना। (२) समझना। सोचना। उ०—(क) सुनि चितउर राजा मन गुना। बिधि-सँदेस मैं कासों सुना।—जायसी। (ख) सुमति महामुनि सुनिये। तन, धन कै मन गुनिये।—केशव।

गुनाहगार-वि० [फा०] (१) गुनाह करनेवाला। पाप करनेवाला। (२) अपराध करनेवाला। कसूर करनेवाला। दोषी।

गुनाहगारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] गुनाहगार का भाव। अपराधी या दोषी होने का भाव।

गुप-वि० दे० "घुप"।

संज्ञा पुं० [अनु०] सनसान होने का भाव। सन्नाटा।

गुपुत*‡-वि० दे० "गुप्त"।

गुमान-संज्ञा पुं० [फा०] (३) लोगों की बुरी धारणा। बद-गुमानी। लोकापवाद। उ०—तुलसी जुपै गुमान को होतो कछू उपाउ। तौ कि जानिकिहि जानि जिय परिहरते रघुराउ।—तुलसी।

गुम्मट-संज्ञा पुं० [हिं० गुम्मट] चेहरे या और किसी अंग पर निकला हुआ बहुत बड़ा गोल मसा या मांस का लोथड़ा।

गुरिंदा-संज्ञा पुं० [फा० गोइंदा] गुप्तचर। भेदिया। गोइंदा। जैसे,—कोतवाल तथा उनके गुरिंदों ने छेदालाल जी का जीवन भार-भूत कर दिया।—प्रताप।

गुरीरा*†-वि० [हिं० गुड़ + ईला (प्रत्य०)] (१) गुड़ का सा मीठा। (२) सुंदर। बढ़िया। उत्तम। उ०—सूर परस सों भयो गुरीरा।—जायसी।

गुरुज†-संज्ञा पुं० दे० "गुर्ज"। उ०—तीसर खड्ग कूँड़ पर लावा। काँध गुरुज हुत घाव न आवा।—जायसी।

गुरु समुद्यम-वि० [सं०] (राष्ट्र या राजा) जो लड़ाई के लिये बड़ी मुश्किल से तैयार हो।

गुलंच-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कंद।

गुल अकीक-संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का फूलदार पौधा जिसके बीसियों भेद पाए जाते हैं। यह प्रायः फागुन चैत या सावन भादों में लगाया जाता है।

गुलफाम-वि० [फा०] जिसके शरीर का रंग फूल के समान हो। सुन्दर। खूबसूरत।

गुल मखमल-संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक प्रकार का पौधा जिसके बीजों से पहले पनीरी तैयार करके तब पौधे लगाए जाते हैं। (२) इस पौधे का फूल जो देखने में मखमल की घुंडियों के समान जान पड़ता है। यह सफेद, लाल और पीला कई रंगों का तथा बहुत मुलायम और चिकना होता है।

गुलरू-वि० [फा०] फूल के समान आकृतिवाला। सुन्दर। खूबसूरत।

गुलाम चोर-संज्ञा पुं० [अ० गुलाम + हिं० चोर] ताश का एक प्रकार का खेल जो दो से सात आठ आदमियों तक में खेला जाता है। इसमें एक गुलाम या और कोई पत्ता गड्डी से अलग कर दिया जाता है; और तब सब खेलनेवालों में बराबर पत्ते बाँट दिए जाते हैं। हर एक खेलाड़ी अपने अपने पत्तों के जोड़ (जैसे,—दुक्की दुक्की, छक्का छक्का, दहला दहला) निकाल कर अलग रख देता है और सब एक दूसरे से एक एक पत्ता लेते हुए इसी प्रकार जोड़ मिलाकर निकालते हैं। अंत में जिसके पास अकेला गुलाम या निकाले हुए पत्ते का जोड़ बच रहता है, वही चोर और हारा हुआ समझा जाता है।

गुलिस्ताँ-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह स्थान जहाँ फूलों के बहुत से पौधे आदि लगे हों। बाग। उपवन। वाटिका। (२) फारसी के प्रसिद्ध कवि शेख सादी शीराजी का बनाया हुआ नीति सम्बन्धी एक प्रसिद्ध ग्रंथ।

गुल्मप-संज्ञा पुं० [सं०] एक गुल्म का नायक। गौल्मिक।

गुवा†-संज्ञा पुं० [सं० गुवाक] सुपारी। उ०—कोइ जायफर लौंग सुपारी। कोइ नरियर कोइ गुवा छुहारी।—जायसी।

गुहाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० गुहना] (१) गुहने की क्रिया या भाव। (२) गुहने की मजदूरी।

गूँगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँगा] (२) दो-मुहाँ साँप।

गूढ़जीवी-संज्ञा पुं० [सं० गूढ़जीविन्] (१) वह जिसकी जीविका का पता न चलता हो। वह जिसके संबंध में यह न पता हो कि वह किस प्रकार अपना निर्वाह करता है। (२) गुप्त रूप से चोरी, डकैती आदि के द्वारा जीवन निर्वाह करनेवाला व्यक्ति।

गून सराई-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो पूर्वी हिमालय और विशेषतः दारजिलिंग तथा आसाम में पाया जाता है। रोहू।

गूल भाँग-संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल का अनु० गूल + भाँग] हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की भाँग का मादा पेड़ जिसकी टहनियों से रेशे निकाले जाते हैं।

गृहजात (दास)-संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो घर में दासी से पैदा हुआ हो।

गृहपातक व्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] सामान्य गृहस्थ के रूप में रहनेवाले गुप्तचर जो लोगों के रहन सहन, आमदनी आदि की खबर रखते थे। ये समाहर्त्ता के अधीन रहते थे। (कौ०)

गृहमंत्री-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

गृहयुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जो एक ही देश या राज्य के निवासियों में आपस में हो। अंतः कलह। गृहकलह।

गृहसचिव-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

गृहाधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकान का मालिक। मकानदार। (२) राजभवन का प्रधान अधिकारी।

विशेष—वह राज-कर्मचारी जिसका काम राजभवन की देखभाल रखना होता था, गृहाधिपति कहलाता था। (शुक्र नीति)

गृहीतानुवर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं०] देने के बाद कुछ और दे देना। (कौ०)

गेठा-संज्ञा पुं० [देश०] मोका नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। मोका। वि० दे० "मोका"।

गेयपद-संज्ञा पुं० [सं०] नाट्य शास्त्र के अनुसार लास्य के दस अंगों में से एक। वीणा या तानपूरा आदि यंत्र लेकर आसन पर बैठे हुए केवल गाना।

गैजेटियर-संज्ञा पुं० [अं०] वह पुस्तक जिसमें कहीं का भौगोलिक वृत्त वर्णानुक्रम से हो। भौगोलिक कोश। जैसे,—डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर, इम्पीरियल गैजेटियर।

गैजेटेड अफसर-संज्ञा पुं० [अं०] वह सरकारी कर्मचारी जिसकी नियुक्ति की सूचना सरकारी गैजेट में प्रकाशित होती है।

विशेष—सरकारी गैजेट में उन्हीं कर्मचारियों की नियुक्ति की सूचना प्रकाशित होती है जिनका पद बड़ा और महत्व का समझा जाता है। इस प्रकार गवर्नर तक की नियुक्ति की सूचना गैजेट में निकलती है। सब इन्सपेक्टर, जमादार, आदि छोटे कर्मचारियों की नियुक्ति गैजेट में नहीं निकलती।

गैन॰-संज्ञा पुं० [सं० गगन] गगन। आकाश। आसमान। उ०—ओछे बड़े न ह्वै सकैं लगौ सतर ह्वै गैन। दीरघ होहिं न नैंकहूँ फारि निहारैं नैन।—बिहारी।

गैर-सरकारी-वि० [अ० गैर + फा० सरकारी] जो सरकारी न हो। जो किसी सरकार या राज्य का (आदमी या नौकर) न हो। जिसका किसी सरकार या राज्य से संबंध न हो। जैसे,—गैर सरकारी सदस्य।

गोंद पटेर-संज्ञा स्त्री० [सं० गुंद्र + पर्या० पटेर] पानी में होनेवाली एक प्रकार की वनस्पति जिसके पत्ते मोटे और प्रायः एक इंच चौड़े और चार पाँच फुट लंबे होते हैं। इसके पत्तों में से नए पत्ते निकलते हैं। इसमें ऊपर की ओर बाजरे की बाल के समान बाल भी लगती है जिसके ऊपर सींकें होती हैं। इन सींकों से चटाइयाँ आदि बनती हैं। वैद्यक में यह कसैली, मधुर, शीतल, रक्तपित्त नाशक और स्तन का दूध, शुक्र, रज तथा मूत्र को शुद्ध करनेवाली कही गई है।

गो-संज्ञा स्त्री० [सं०] (६) ज्योतिष में नक्षत्रों की नौ वीथियों में से एक।

गोइ†-संज्ञा पुं० दे० "गोय"।

गोइन-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का मृग। उ०—हरिन रोझ लगना बन बसे। चीतर गोइन झाँख औ ससे।—जायसी।

गोई†-संज्ञा स्त्री० दे० "गोइयाँ"। उ०—सुनि निरचै नैहर कै गोई। गरे लागि पदमावत रोई।—जायसी।

गोट-संज्ञा पुं० [हिं० गोल] तोप का गोला। उ०—जिन्हके गोट कोट पर जाहीं। जेहि ताकहिं चूकहिं तेहि नाहीं।—जायसी।

गोटा†-संज्ञा पुं० [सं० गुटिका] (९) चौपड़ का मोहरा। गोट। गोटी। उ०—अलक भुअंगिनि तेहि पर लोटा। हिय-घर एक खेल दुइ गोटा।—जायसी। (२) तोप का गोला। उ०—औ जौं छुटहिं बज्र कर गोटा। बिसरहि भुगुति होइ सब रोटा।—जायसी।

गोटू संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घटिया चिकनी सुपारी।

गोड़ाँगी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ + अङ्ग] (२) जूता।

गोड़ापाही†-संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ = पाँव + पाई = ताने के सूत फैलाने का ढाँचा] (१) किसी मंडल में घूमने की क्रिया। पाई। मंडल देना। (२) किसी स्थान पर बार बार आने की क्रिया। ताना पाई।

गोड़ाली†-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँडर] गाँडर दूब।

गोदंती-संज्ञा स्त्री० [सं० गोदन्त] एक प्रकार का मणि या बहुमूल्य पत्थर।

गोप-संज्ञा पुं० [सं०] (८) गाँव का मुखिया या पटवारी जो गाँव

के हिस्सों और लोगों के स्वत्व आदि का लेखा रखता था।

  *। वि० [सं० गुप्त] छिपा हुआ। गुप्त। उ०—छा-छाया जस बुन्द अलोपू। ओठई सो आनि रहा करि गोपू।—जायसी।

गोपीता—संज्ञा स्त्री० [सं० गोपी] गोप-कन्या। गोपी। (क०) उ०—उन्ह भौंहनि सरि केउ न जीता। अछरी छपीं छपीं गोपीता।—जायसी।

गोप्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धन जो घर में छिपा कर रखने के लिये गिरवी रखा जाय।

गोमूत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) सर्पसारी नामक व्यूह। (कौ०)

गोरान—संज्ञा पुं० [अं० मैनग्रोव] चौरी नाम का वृक्ष जिसकी छाल से रंग निकाला और चमड़ा सिझाया जाता है।

गोल मेज कान्फरेन्स—संज्ञा स्त्री० दे० "राउंड टेबुल कान्फरेन्स"।

गोलिंग—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की गाड़ी। (कौ०)

गोल्फ—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अँगरेजी खेल जो डंडे और गेंदों से खेला जाता है।

गौं—संज्ञा स्त्री० [सं० गम] (३) ढब। चाल। ढंग। उ०—कल कुंडल चौतनी चारु अति चलत मत्त गज गौं हैं।—तुलसी।

गौनहर—संज्ञा स्त्री० दे० "गौनहारी"।

गौनहारिन—संज्ञा स्त्री० दे० "गौनहारी"।

गौनहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं गाना + हारी (वाली)] एक प्रकार की गानेवाली स्त्रियाँ जो कई एक साथ मिलकर ढोलक पर या शहनाई आदि के साथ गाती हैं। इनकी कोई विशेष जाति नहीं होती। प्रायः घर से निकली हुई छोटी जाति की स्त्रियाँ ही आकर इनमें सम्मिलित हो जाती हैं और गाने बजाने तथा कसब कमाने लगती हैं।

गौरा†—संज्ञा पुं० [सं० गोरोचन] गोरोचन नामक सुगंधित द्रव्य। उ०—रचि रचि साजे चंदन चौरा। पोते अगर मेद औ गौरा।—जायसी।

गौरीपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव जी की जलहरी, जिसे जलधरी या अरघा भी कहते हैं।

गौरूबटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] करभई या अमली नाम का झाड़ीदार पौधा। वि० दे० "करमई"।

गौल्मिक—संज्ञा पुं० [सं०] ३० सिपाहियों का नायक या अफसर।

गौहरा—संज्ञा पुं० [हिं० गौ + हरा] गायों के रहने का स्थान। गोंड़ा।

ग्रंथिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह चोरी जो द्रव्य के साथ बँधी गाँठ काटकर की जाय। गाँठ काटना। गिरहकटी।

ग्रंस†—संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथि = कुटिलता] (२) वह जो छल कपट करता हो। कुटिल। (३) दुष्ट। उपद्रवी।

ग्रामकंटक—संज्ञा पुं० दे० "ग्रामद्रोही"।

ग्रामकूट—संज्ञा पुं० [सं०] (२) गाँव का मुखिया या चौधरी।

विशेष—कौटिल्य के समय में इनके पीछे भी गुप्तचर रहते थे, जो इनकी ईमानदारी की जाँच करते रहते थे।

ग्रामद्रोही—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम की मर्य्यादा या नियम का भंग करनेवाला। ग्रामकंटक।

विशेष—प्राचीन काल में ग्राम के प्रबंध और झगड़े आदि निबटाने का भार गाँव की पंचायत पर ही रहता था। जो लोग उक्त पंचायत के निर्णय के विरुद्ध काम करते या उसका नियम तोड़ते थे, वे ग्रामद्रोही कहलाते और दंड के भागी होते थे।

ग्रामर—संज्ञा स्त्री० [अं०] व्याकरण।

ग्रामहट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का मुखिया या चौधरी। ग्रामकूट।

ग्रेट ब्रिटेन—संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड, वेल्स और स्कॉटलैंड।

ग्लास—संज्ञा पुं० [अं०] (१) शीशा। (२) दे० "गिलास"।

ग्वारफली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वार + फली] ग्वार नामक पौधे की फली जिसकी तरकारी बनती है। वि० दे० "ग्वार"।

ग्वैंठा†—वि० [हिं० ऐंठा का अनु०] ऐंठा हुआ। टेढ़ा मेढ़ा। उ०—सौंहैं हूँ हेर्‌यौ न तैं केती धाई सौंह। एहो, क्यों बैठी किए ऐंठी ग्वैंठी भौंह।—बिहारी।

घँसना—क्रि० स० दे० "घिसना"।

घट—संज्ञा पुं० [सं०] (५) नौ प्रकार के दिव्यों में से एक जिसे तुला भी कहते हैं। वि० दे० "तुला परीक्षा"।

घटकर्ण—संज्ञा पुं० दे० "कुंभकर्ण"। उ०—जयति दसकंठ घटकरन बारिदनाद कदन कारन कालनेमि हंता।—तुलसी।

घटना—क्रि० अ० [सं० घटन] (३) उपयोग में आना। काम आना। उ०—लाभ कहा मानुष तन पाए। काम बचन मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराए।—तुलसी।

घटस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मंगल कार्य्य या पूजन आदि के समय, विशेषतः नवरात्र में, घड़े में जल भरकर रखना जो कल्याणकारक समझा जाता है। (२) नवरात्र का आरंभ, या पहला दिन जिसमें घट की स्थापना होती है।

घटिकास्थान—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रियों के ठहरने का स्थान। पथिकशाला। चट्टी। सराय।

घटेरुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० घाटी = गला] पशुओं का एक प्रकार का रोग जिसमें उनका गला फूल आता है।

घड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० घट] घड़ा का स्त्रीलिंग और अल्पार्थक रूप। छोटा घड़ा।

घन—संज्ञा पुं० [सं०] (१५) शरीर। उ०—कंप छुट्यो घन स्वेद बढ्यो, तनु रोम उठ्यो, अँखियाँ भरि आईं।—मतिराम।

घनदार—वि० [सं० घन + फा० दार (प्रत्य०)] घना। गुंजान।

घनबेल—संज्ञा स्त्री० [सं० घन + हिं० बेल] एक प्रकार का बेला। उ०—बहुत फूल फूलीं घनबेली। केवड़ा चंपा कुंद चमेली।—जायसी।

घनश्याम—संज्ञा पुं० [सं०] (३) रामचन्द्र जी। उ०—शोक की

आग लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम बिहाने।—केशव।

घनसार-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर। उ०—गारि राख्यो चंदन बगारि राख्यो घनसार।—मतिराम।

घरजाया-संज्ञा पुं० [हिं० घर + जाया = उत्पन्न] दास। गुलाम। उ०—राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि, तुलसी तिहारो घर-जायउ है घर को।—तुलसी।

घरी*†-संज्ञा स्त्री० दे० "घड़िया"।

घाएँ†-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) ओर। तरफ। (२) अवसर। बार। दफा।

क्रि० वि० ओर से। तरफ से।

घाघस-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बढ़िया और बड़ी मुरगी।

घाता-संज्ञा पुं० [हिं० घात या घाल] वह थोड़ी सी चीज जो सौदा खरीदने के बाद ऊपर से ली या दी जाती है। घाल। घलुआ।

घावपत्ता-संज्ञा पुं० [हिं० घाव + पत्ता] एक प्रकार की लता जिसके पत्ते पान के आकार के, प्रायः एक बालिश्त लंबे और ८-१० अंगुल चौड़े होते हैं और नीचे की ओर कुछ सफेदी लिए होते हैं। यह घावों पर उनको सुखाने और फोड़ों पर उनको बहाने के लिये बाँधा जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि यदि यह सीधा बाँधा जाय तो कच्चा फोड़ा पककर फूट जाता है; और यदि उलटा बाँधा जाय तो बहता हुआ फोड़ा सूख जाता है। मालवा में इसे ताँबेसर कहते हैं।

घिरित*‡-संज्ञा पुं० [सं० घृत] घृत। घी। उ०—अपने हाथ देव नहवावा। कलस सहस इक घिरित भरावा।—जायसी।

घिरिन परेवा†-संज्ञा पुं० [हिं० घिरनी = चक्कर + परेवा] (१) गिरहबाज कबूतर। (२) कौड़ियाला पक्षी जो मछली के लिये पानी के ऊपर मँडराता रहता है। उ०—(क) कहँ वह भौंर कँवल-रस-लेवा। आइ परै होइ घिरिन परेवा।—जायसी। (ख) घिरिन परेवा गीउ उठावा। चहै बोल तमचूर सुनावा।—जायसी।

घीकुआर-संज्ञा पुं० [सं० घृतकुमारी] एक प्रसिद्ध क्षुप जो खारी रेतीली जमीन पर अथवा नदियों के किनारे अधिकता से होता है। इसके पत्ते ३-४ अंगुल चौड़े, हाथ डेढ़ हाथ लंबे, दोनों किनारों पर अनीदार, बहुत मोटे और गूदेदार होते हैं जिनके अंदर हरे रंग का और लसीला गूदा होता है। यह गूदा बहुत पुष्टिकारक समझा जाता और कई रोगों में व्यवहृत होता है। एलुवा इसी के रस से बनाया जाता है। वैद्यक में यह शीतल, कड़वा, कफनाशक और पित्त, खाँसी, विष, श्वास तथा कुष्ठ आदि को दूर करनेवाला माना गया है। पत्तों के बीच से एक मोटा डंडा या मूसला निकलता है जो मधुर और कृमि तथा पित्तनाशक कहा गया है। इसी डंडे में लाल फूल निकलता है जो भारी और वात, पित्त तथा कृमि का नाशक बतलाया गया है।

घीसा*‡-संज्ञा पुं० [हिं० घिसना] घिसने या रगड़ने की क्रिया। रगड़। माँजा। उ०—खरिका लाइ करै तन घीसू। निपर न होइ करै इबलीसू।—जायसी।

घुटना†-क्रि० स० [अनु० मि० पं० घुट्टना] जोर से पकड़ना या कसना। उ०—फिरहिं दुऔ सन फेर घुटै कै। सातहु फेर गाँठि सो एकै।—जायसी।

घुरघुरा†-संज्ञा पुं० [घुरघुर से अनु०] झींगुर नाम का कीड़ा।

घूँटा†-संज्ञा पुं० [सं० घुटक, हिं० घुटना] टाँग और जाँघ के बीच का जोड़। घुटना। उ०—मुँहु पखारि मुड़हरु भिजै सीस सजल कर छुाइ। मौरु उचै घूँटेनु तैं नारि सरोवर न्हाइ।—बिहारी।

घेंटी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० घाँटी या सं० कृकाटिका] गले और कंधे का जोड़।

घेरुआ†-संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] वह छोटा गड्ढा जो नाली आदि में पानी रोकने के लिये बनाया जाता है। झिर्री।

घेसी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का देवदार जो हिमालय में होता है। इसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है। बरचर।

घोड़ानस-संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा या गोड़ा ? + नस] वह मोटी नस जो पैर में एड़ी से ऊपर की ओर गई होती है। कहते हैं कि यह नस कट जाने पर आदमी या पशु मर जाता है (क्योंकि शरीर का प्रायः सारा रक्त इसी के मार्ग से निकल जाता है)।

घाणक-संज्ञा पुं० [देश०] उतना तेलहन जितना एक बार में पेरने के लिये कोल्हू में डाला जाय। घानी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग संवत् १००२ के एक शिलालेख में आया है जिसमें लिखा है कि हर घाणक पीछे नारायण देव आदि ने एक एक पली तेल मंदिर के लिये दिया। इस शब्द की व्युत्पत्ति का संस्कृत में पता नहीं लगता, यद्यपि 'घानी' या 'घान' शब्द अब तक इसी अर्थ में बोला जाता है।

चंद्र-पाषाण-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्थर जिसमें से चंद्र-किरणों का स्पर्श होने से जल की बूँदें टपकने लगती हैं। चंद्रकांत। उ०—चंद की चाँदनी के परसें मनौं, चंदपखान पहार चले च्वै।—मतिराम।

चका†-संज्ञा पुं० [हिं० चकवा] [स्त्री० चकी] चक्रवाक। चकवा। उ०—नैकु निमेप न लायत नैन चकी चितवै तिय देवतिया सी।—मतिराम।

चक्रधर-संज्ञा पुं० [सं०] (३) गाड़ीवान।

चक्रपथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी की लीक। (२) गाड़ी चलने का मार्ग।

चट्टू-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की दूब जिसे खुरैया भी कहते हैं।

चतरोई-संज्ञा स्त्री० [देश०] पाँच छः हाथ ऊँची एक प्रकार की

झाड़ी जो हिमालय में हजारा से नैपाल तक ९००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। इसकी छाल सफेद रंग की होती है और फागुन चैत में इसमें पीले रंग के छोटे फूल लगते हैं। इसकी लकड़ी के रस से एक प्रकार की रसौत बनाते हैं।

चतुःशाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मकान जिसमें चार बड़े बड़े कमरे हों। (२) चौपाल। बैठक। दीवानखाना।

चपरना-क्रि० अ० [सं० चपल] तेजी करना। जल्दी करना। उ०—सरल बक्रगति पंचग्रह चपरि न चितवत काहु। तुलसी सूधे सूर ससि समय बिडंबत राहु। —तुलसी।

चमना†-क्रि० अ० [?] कुचला जाना। दरेरा खाना। उ०—रह्यौ ढीठु ढारसु गहैं ससहरि गयौ न सूरु। मुर्यो न मनु मुरवानु चुभि भौ चूरमु चपि चूरु।—बिहारी।

चरखना-क्रि०स० [सं० चर्चन] (४) पहचानना। उ०—चेला चरखन गुरु-गुन गावा। खोजत पूछि परम रस पावा।—जायसी।

चरित्रबंधक कृत-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जो किसी के पास किसी शर्त पर गिरवी रक्खा जाय।

चरीद-संज्ञा पुं० [फा० चरिन्द या हिं चरना] वह जानवर जो चरने के लिये निकला हो। (शिकारी)

चर्म्मकरण्ड-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का बड़ा कुप्पा जिसके सहारे नदी के पार उतरा जाय। (कौ०)

चलचा-संज्ञा पुं० [देश०] ढाक। पलास।

चलमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र (राजा) जो सदा साथ न दे सके। वि० दे० "अनर्थ सिद्धि" (कौ०)

चहचहाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० चहचहाना + हट (प्रत्य०)] चहचहाने की क्रिया या भाव।

चाँवर-संज्ञा पुं० [देश०] सालपान नाम का क्षुप। वि० दे० "सालपान"।

चाँप-संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना] (१) दबाव। (२) रेल पेल। धक्का। उ०—कोइ काहू न सँभारै होत आप तस चाँप। धरति आपु कहँ काँपै सरग आपु कहँ काँप।—जायसी।

चाइ-संज्ञा पुं० [हिं० चाव] चाव। उमंग। उ०—किय हाइलु चित चाइ लगि बजि पाइल तुव पाइ। पुनि सुनि सुनि मुँह मधुर धुनि क्यों न लालु ललचाइ।—बिहारी।

चाकलेट-संज्ञा पुं० [अं० चॉकलेट = एक प्रकार की मिठाई] सुंदर लड़का जिसके साथ प्रकृति-विरुद्ध कर्म्म किया जाय। लौंडा।

चाकसू-संज्ञा पुं० [सं० चतुष्या (१) निर्मली का वृक्ष या बीज।

चाटुकार-संज्ञा पुं० [सं०] (२) सोने के तार में पिरोए मोतियों की वह माला जिसके बीच में एक तरलक मणि हो। (बृहत्संहिता)

चारक-संज्ञा पुं० [सं०] वह कैद जिसमें न्यायाधीश विचार-काल में किसी को रखे। हवालात।

चार-प्रचार-संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर छोड़ना। खुफ़िया पुलिस पीछे लगाना। (कौ०)

चारित-संज्ञा पुं० [हिं० चारा] पशुओं के चरने का चारा। उ०—धरनि-धेनु चारितु चरत प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ। हाथ कछु नहिं लागिहै किए गोड़ की गाय।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं०] (चलाया जानेवाला) आरा। उ०—चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी।—तुलसी।

चार्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की सड़क जो ६ हाथ चौड़ी होती थी।

चार्ज-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी काम का भार। कार्यभार। जैसे,—(क) उन्होंने ३ तारीख को आफिस का चार्ज ले लिया। (ख) लार्ड रीडिंग ने २ तारीख को बंबई में, जहाज पर, नये वायसराय को चार्ज दिया।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

(२) संरक्षण। सपुर्दगी। देखरेख। अधिकार। जैसे,—सरकारी अस्पताल सिविल सर्जन के चार्ज में है। (३) अभियोग। आरोप। इलजाम। जैसे,—मालूम नहीं, अदालत ने उन पर क्या चार्ज लगाया है।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(४) दाम। मूल्य। जैसे,—(क) आपके प्रेस में छपाई का चार्ज अन्य प्रेसों की अपेक्षा अधिक है। (ख) इतना चार्ज मत कीजिये।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पड़ना।

(५) किराया। भाड़ा। जैसे,—अगर आप डाकगाड़ी से जायँगे तो आपको ज्योदा चार्ज देना पड़ेगा।

क्रि० प्र०—देना।—लगना।

चार्टर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह लेख जिसमें किसी सरकार की ओर से किसी को कोई स्वत्व या अधिकार देने की बात लिखी रहती है। सनद। अधिकारपत्र। जैसे,—चार्टर ऐक्ट। (२) किसी शर्त पर जहाज को किराये पर लेना या देना। जैसे,—चीनी व्यापारियों ने माल लादने के लिये हाल में दो जापानी जहाज चार्टर किए हैं।

वि० [अं० चार्टर्ड] जो राजा की सनद से स्थापित हुआ हो। जैसे,—महारानी के लेटर्स पेटेंट्स से स्थापित होने के कारण कलकत्ते, मद्रास, बंबई और इलाबाद के हाइकोर्ट चार्टर्ड हाइकोर्ट कहाते हैं।

चाला-संज्ञा पुं० [हिं० चालना = छानना] एक प्रकार का कृत्य जो किसी व्यक्ति के मर जाने पर उसकी षोड़शी आदि की क्रिया की समाप्ति पर रात के समय किया जाता है। इसमें एक चलनी में राख या बालू आदि डाल कर उसे छानते हैं; और जमीन पर गिरी हुई राख या बालू में बननेवाली आकृतियों से इस बात का अनुमान करते हैं कि मृत व्यक्ति अगले

जन्म में किस योनि में जायगा। यह कृत्य प्रायः घर की कोई बड़ी बूढ़ी स्त्री एकांत में करती है, और उस समय किसी को, विशेषतः बालकों को, वहाँ नहीं आने देती।

चिकवा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशमी या टसर का कपड़ा। चिकट। उ०—चिकवा चीर मघौना लोने। मोति लाग औ छापे सोने।—जायसी।

चित्-संज्ञा पुं० [सं०] (३) रामानुजाचार्य्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो जीव-पद-वाच्य, भोक्ता, अपरिच्छिन्न, निर्म्मल ज्ञान स्वरूप और नित्य कहा गया है। (शेष दो पदार्थ अचित् और ईश्वर हैं।)

चिताप्रताप-संज्ञा पुं० [सं०] जीते ही चिता पर जला देने का दंड।

विशेष—जो स्त्री पुरुष का खून कर देती थी, उसको चंद्रगुप्त के समय में जीते जी जला दिया जाता था। (कौ०)

चित्तभंग-संज्ञा पुं० [सं०] बदरिकाश्रम के एक पर्वत का नाम।

चित्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्त = सफेद दाग] (२) एक ओर कुछ रगड़ा हुआ इमली का चिआँ जिससे छोटे लड़के जूआ खेलते हैं।

विशेष—इमली के चिएँ को लड़के एक ओर इतना रगड़ते हैं हैं कि उसके ऊपर का काला छिलका बिलकुल निकल जाता है और उसके अंदर से सफेद भाग निकल आता है। दो तीन लड़के मिल कर अपनी अपनी चित्ती एक में मिलाकर फेंकते हैं और दाँव पर चिएँ लगाते हैं। फेंकने पर जिस लड़के के चिएँ का सफेद भाग ऊपर पड़ता है, वह और लड़कों के दाँव पर लगाए हुए चिएँ जीत लेता है।

चित्र-वि० [सं०] चित्र के समान ठीक। दुरुस्त। उ०—बाँके पर सुठि बाँक करेहीं। रातिहि कोट चित्र कै लेहीं।—जायसी।

चित्रनाॐ-क्रि० स० [सं० चित्र + ना (प्रत्य०)] (१) चित्रित करना। चित्र बनाना। चितरना। उ०—चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रनि केशवदास निहारि। जनु विश्वरूप की अमल आरसी रची विरंचि विचारि।—केशव। (२) रंग भरना। चित्रित करना।

चित्रभोग-संज्ञा पुं० [सं०] राजा का वह सहायक या खैरख्वाह जो ग्राम, बाजार, बन आदि में मिलनेवाले पदार्थों तथा गाड़ी, घोड़े आदि से समय पर सहायता करे। (कौ०)

चित्रमति-वि० [सं० चित्र + मति] विचित्र बुद्धिवाला। जिसकी बुद्धि विलक्षण हो। उ०—विश्वामित्र पवित्र चित्रमति बामदेव पुनि।—केशव।

चिरम-संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा। घुँघची। उ०—गाहु तरुनि-कुच उच्च पद चिरम ठग्यौ सब गाउँ। छुटैं ठौरु रहिहै वहै जु हो मालु जवि नाउँ।—बिहारी।

चिरला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पंजाब, अफगानिस्तान, बलोचिस्तान और फारस में होती है। यह महीनों तक बिना पत्तियों के ही रहती है। इसमें काले रंग के मीठे फल लगते हैं जिनका व्यवहार औषध में होता है।

चिरिहारॐ-संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया + हार = वाला (प्रत्य०)] पक्षी फँसानेवाला। बहेलिया। उ०—जौं न होत चारा कै आसा। किन चिरिहार ढुकत लेइ लासा।—जायसी।

चिल्ली†-संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्ती?] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी छाल गहरे खाकी रंग की होती है और जिस पर सफेद चित्तियाँ होती हैं। यह देहरादून, रुहेलखंड, अवध और गोरखपुर के जंगलों में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ एक बालिश्त से कुछ कम लंबी होती हैं और गरमी के दिनों में यह फलता है। इसके फल मछलियों के लिये जहर होते हैं।

चीना-संज्ञा पुं० [सं० चीनाक] चीनी कपूर।

चीनी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पौधा जो पंजाब और पश्चिम हिमालय में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ प्रायः चारे के काम में आती हैं।

चीफ जस्टिस-संज्ञा पुं० [अं०] हाईकोर्ट का प्रधान न्यायाधीश। प्रधान विचारपति।

चुनवट-संज्ञा स्त्री० [हिं चुनना + वट (प्रत्य०)] चुनने की क्रिया या भाव। चुनट।

चुनौती-संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनना] (३) वह आह्वान जो किसी को वादविवाद करके अथवा और किसी प्रकार किसी विषय का निर्णय या अपना पक्ष प्रमाणित करने के लिये दिया जाता है। प्रचार।

चुन्नी-संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण] (५) चमकी या सितारे जो स्त्रियाँ अपना सौंदर्य बढ़ाने के लिये माथे और कपोलों पर चिपकाती हैं। उ०—तिलक सँवारि जो चुन्नी रची। दुइज माँझ जानहुँ कचपची।—जायसी।

मुहा०—चुन्नी रचना=मस्तक और कपोलों पर सितारे या चमकी लगाना।

चुवा ॐ-संज्ञा पुं० [हिं० चौआ = चार पैरों वाला] पशु। चौपाया। उ०—चारु चुवा चहुँ ओर चलैं लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी।—तुलसी।

चुहुटना † क्रि० अ० [हिं० चिमटना] चिमटना। चिपकना। पकड़ना।

वि० चिमटनेवाला। चिपकने या पकड़नेवाला। उ०—हँसि उतारि हिय तें दई तुम जु तिहिं दिना लाल। राखति प्रान कपूर ज्यौं वहै चुहुटनी-माल।—बिहारी।

विशेष-यहाँ चुहुटनी शब्द श्लिष्ट है। इसका एक अर्थ घुँघची या गुंजा और दूसरा अर्थ चिपकने या पकड़नेवाली है।

चुहुटनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा। घुँघची। उ०—हँसि उतारि हिय तें दई तुम जु तिहिं दिना लाल। राखति प्रान कपूर ज्यौं वहै चुहुटनी माल।—बिहारी।

चूक-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूकना] (३) छल। कपट। फरेब। दगा।

धोखा। उ०—(क) अहो हरि बलि सों चूक करी।—परमानंददास। (ख) धरमराज सौं चूक करि दुरयोधन लै लीन्ह। राज-पाट अरु बित्त सब बनौबास दै दीन्ह।—लल्लू।

चूड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड़ा] वे छोटी छोटी मेहराबें जिनमें कोई बड़ी मेहराब विभक्त रहती है।

चूना-क्रि० अ० [सं० च्यवन] (४) गर्भपात होना। गर्भ गिरना। (क्व०) उ०—दिकपालन की भुवपालन की, लोकपालन की किन मातु गई च्वै।—केशव।

चूर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) तोल में ३२ रत्ती मोतियों की संख्या के हिसाब से भिन्न भिन्न लड़ियाँ।

चेंज-संज्ञा पुं० [अं०] (१) (एक स्थान से दूसरे स्थान को) वायु-परिवर्त्तन के लिये जाना। वायु-परिवर्त्तन। हवा बदलना। जैसे,—डाक्टरों की सलाह से वे चेंज में गए हैं। (२) (किसी जंकशन पर) एक गाड़ी से उतर कर दूसरी पर चढ़ना। बदलना। जैसे,—मुगलसराय में चेंज करना पड़ेगा। (३) बड़े सिक्कों का छोटे सिक्कों में बदलना। विनिमय। जैसे,—(क) आपके पास नोट का चेंज होगा? (ख) टिकट बाबू को नोट दिया है, चेंज ले लूँ तो चलता हूँ।

चेता †-संज्ञा पुं० [सं० चित्] (१) संज्ञा। होश। बुद्धि। (२) स्मृति। याद। (पश्चिम)

मुहा०—चेता भूलना=याद न रहना। स्मरण न रहना।

चोंटना-क्रि० स० [हिं० चिकोटी या अनु०] नोचना। तोड़ना। उ०—छुटत निकसि कुच कोर रुचि कढ़त गौर भुजमूल। मनु लुटिगौ लोटनु चढ़त चौंटत ऊँचे फूल।—बिहारी।

चोका †-संज्ञा पुं० [सं० चूषण] चूसने की क्रिया। चूसना।

मुहा०—चोका लगाना=मुँह लगा कर चूसना। उ०—ते छकि रस नव केलि करेहीं। चोका लाइ अधर रस लेहीं।—जायसी।

चोढ़ †-संज्ञा पुं० [?] उत्साह। उमंग। उ०—गूँज गरे सिर मोरपखा मतिराम हों गाय चरावत चोढ़े।—मतिराम।

चोभा-संज्ञा पुं० [हिं० चोभना] (२) एक प्रकार का औजार जिसमें लकड़ी के दस्ते या लट्टू में आगे की ओर चार पाँच मोटी सूइयाँ लगी रहती हैं और जिससे आँवले या पेठे आदि का मुरब्बा बनाने के पहले उसे इसलिये कोंचते हैं कि उसके अंदर तक रस या शीरा चला जाय।

चोभाकारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोभना + फा० कारी] बहुमूल्य पत्थरों पर रत्नों या सोने आदि का ऐसा जड़ाव जो कुछ उभरा हुआ हो।

चौंकड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] करील का पौधा।

चौक-संज्ञा पुं० [हिं० चार या सं० चतुष्क] (१०) चार का समूह। उ०—पुनि सोरहो सिंगार जस चारिहु चौक कुलीन। दीरघ चारि चारि लघु चारि सुभट चौ खीन।—जायसी।

चौगून-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौगुना] (१) चौगुना होने का भाव। (२) आरंभ में गाने या बजाने में जितना समय लगाया जाय, आगे चल कर उसके चौथाई समय में गाना या बजाना। दून से भी आधे समय में गाना या बजाना।

विशेष—प्रायः किसी चीज के गाने या बजाने का आरंभ धीरे धीरे होता है, पर आगे चलकर उसकी लय बढ़ा दी जाती है और वही गाना या बजाना जल्दी जल्दी होने लगता है। जब गाना या बजाना साधारण समय से आधे समय में हो, तब उसे दून, जब तिहाई समय में हो, तब उसे तिगून और जब चौथाई समय में हो, तब उसे चौगून कहते हैं।

चौघड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + घर] (६) एक प्रकार का बाजा। चौडोल। उ०—सौ तुपार तेइस गज पावा। दुंदुभि औ चौघड़ा दियावा।—जायसी।

चौघड़िया-वि० [हिं० चौ = चार + घड़ी + इया (प्रत्य०)] चार घड़ियों का। चार घड़ी संबंधी। जैसे,—चौघड़िया मुहूर्त्त।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + गोड़ा = पाया] एक प्रकार की छोटी ऊँची चौकी जिसमें चार पाये होते हैं। तिरपाई। स्टूल।

चौघड़िया मुहूर्त्त-संज्ञा पुं० [हिं० चौघड़िया + सं० मुहूर्त] एक प्रकार का मुहूर्त्त जो प्रायः किसी जल्दी के काम के लिये, एक दो दिन के अंदर ही निकाला जाता है।

विशेष—जब कोई शुभ मुहूर्त्त दूर होता है और यात्रा या इसी प्रकार का और कोई काम जल्दी करना होता है, तो इस प्रकार मुहूर्त्त निकलवाया जाता है। ऐसा मुहूर्त्त दिन के दिन या एक दो दिन के अंदर ही निकल आता है। ऐसा मुहूर्त्त घड़ी, दो घड़ी या चार घड़ी का होता है; और उतने ही समय में उस कार्य्य का आरंभ कर दिया जाता है।

चौडोल-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + डोल ?] एक प्रकार का बाजा जिसे चौघड़ा भी कहते हैं। उ०—आस पास बाजत चौडोला। दुंदुभि झाँझ तूर डफ ढोला।—जायसी।

चौधारी⊛†-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + धारा] वह कपड़ा जिसमें आड़ी और बेड़ी धारियाँ बनी हों। चारखाना। उ०—पेमचा डोरिया औ चौधारी। साम, सेत, पीयर हरियारी।—जायसी।

चौभी‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोभना] नाँगर या नगरा से मिला हुआ हल का वह भाग जिसमें फाल लगा होता है और जुताई के समय जिसका कुछ भाग फाल के साथ जमीन के अंदर रहता है।

छंदवासिनी-वि० स्त्री० [सं०] स्वतन्त्र जीविकावाली। (स्त्री) जो किसी दूसरे पर निर्भर न करती हो। (कौ०)

छतगीर-संज्ञा स्त्री० दे० "छतगीरी"।

छतगीरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छत + फा० गीर] (१) वह कपड़ा या चाँदनी जो किसी कमरे में ऊपर की ओर शोभा के लिये छत

से सटी हुई टँगी रहती है। (२) वह कपड़ा जो रात को सोने के समय ओस आदि से रक्षित रहने के लिये पलंग के ऊपरी भाग में (उसके पायों के ऊपर चारो ओर चार डंडे लगाकर) तान दिया जाता है।

छत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का कुप्पा आदि जिसके सहारे नदी पार उतरते थे। (कौ०)

छन⊛–संज्ञा पुं० [सं० क्षण] पर्व का समय। पुण्यकाल। उ०—सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति छन दान प्रिय किधौं सूरज अमल है।—केशव।

छनदा⊛–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणदा] (२) बिजली। विद्युत्। उ०—नभ मंडल ह्वै छिति मंडल ह्वै, छनदा की छटा छहरान लगी।—मतिराम।

छरना†–क्रि० स० [सं० क्षरण] कन अलग करने के लिये चावल को फटक कर साफ करना।

क्रि० अ० (१) चावल का फटक कर साफ किया जाना। (२) छँट कर अलग होना। दूर होना। उ०—जेहि जेहि मग सिय राम लषन गए तहँ तहँ नर नारि बिनु छट छरिगे।—तुलसी।

छिछुड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छिछड़ा] लिंगेंद्रिय के ऊपर का वह अगला आवरण जो बाहर की ओर कुछ बढ़ा हुआ होता है और जो मुसलमानों में खतने या मुसलमानी के समय काट दिया जाता है।

छिन्नधान्य (सैन्य)–संज्ञा पुं० [सं०] (वह सेना) जिसके पास धान्य न पहुँच सकता हो।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि छिन्नधान्य तथा छिन्नपुरुष-वीवध (जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो) सैन्य में छिन्नधान्य उत्तम है; क्योंकि वह दूसरे स्थान से धान्य लाकर या स्थावर तथा जंगम (तरकारी तथा मांस) आहार कर लड़ाई लड़ सकता है। सहायता न मिलने के कारण छिन्नपुरुष वीवध यह नहीं कर सकता। (कौ०)

छिन्नपुरुष वीवध (सैन्य)–संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो।

छिरना⊛–क्रि० अ० दे० "छिलना"। उ०—मकरि क तार तेहि कर चीरू। सो पहिरे छिरि जाइ सरीरू।—जायसी।

छींटा–संज्ञा पुं० [सं० क्षिप्त, हिं० छींटना] (६) किसी चीज पर पड़ा हुआ कोई छोटा दाग। जैसे,—इस नग पर कुछ छींटे हैं।

छुछमछली–संज्ञा स्त्री० [सं० सूक्ष्म, पु० हिं० छूछम + मछली] मेंढक के बच्चे का एक आरंभिक रूप जो लंबी पूँछवाले कीड़े या मछली के बच्चे का सा होता है। इसके उपरांत कई रूपांतर होने पर तब यह अपने असली चतुष्पद रूप में आता है।

छुड़ैया–वि० [हिं० छुड़ाना + ऐया (प्रत्य०)] छुड़ानेवाला। बचानेवाला। रक्षक।

संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना + ऐया (प्रत्य०)] किसी दूसरे के हाथ की गुड्डी या पतंग को उड़ाने के लिये कुछ दूर पर जाकर, दोनों हाथों से पकड़ कर ऊपर आकाश की ओर छोड़ना या हवा में उड़ाना।

क्रि० प्र०—देना।

विशेष—जिस समय हवा कम होती है और गुड्डी या पतंग आदि के उड़ने में कुछ कठिनता होती है, उस समय एक दूसरा आदमी पतंग या गुड्डी को पकड़ कर कुछ दूर ले जाता है; और तब वहाँ से उसे ऊपर की ओर छोड़ता या उड़ाता है, जिससे वह सहज में और जल्दी उड़ने लगती है।

छुद्रावली⊛–संज्ञा स्त्री० दे० "क्षुद्रघंटिका"। उ०—कटि छुद्रावलि अभरन पूरा। पायन्ह पहिरे पायल चूरा।—जायसी।

छेवना⊛–क्रि० स० [सं० क्षेपण] (२) ऊपर डालना।

मुहा०—जी पर छेवना = अपने ऊपर विपत्ति डालना। जी पर खेलना। उ०—(क) जो अस कोई जिय पर छेवा। देवता आइ करहिं नित सेवा।—जायसी। (ख) भौंर खोजि जस पावै केवा। तुम्ह कारन मैं जिय पर छेवा।—जायसी।

छोहना†–क्रि० अ० [हिं० छोह = प्रेम + ना (प्रत्य०)] प्रेम करना। अनुराग करना।

छौंड़ा‡–संज्ञा पुं० [सं० शंकरा, हिं० छोकरा] [स्त्री० छौंड़ी] लड़का। बालक। उ०—छलिन की छौंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति कीन्ही लीन आपु में सुनारी भोंडे भील की।—तुलसी।

छ्वाना⊛–क्रि० स० [हिं० छुआना] छुलाना। स्पर्श कराना। उ०—ह्वै कपूर मनिमय रही मिलि तन-दुति मुकतालि। छिन छिन खरी बिचच्छिनौ लखति छ्वाइ तिनु आलि।—बिहारी।

जंकशन–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह स्थान जहाँ दो या अधिक रेलवे लाइनें मिली हों। जैसे,—मुगलसराय जंकशन। (२) वह स्थान जहाँ दो रास्ते मिले हों। संगम। जैसे,—कालेज स्ट्रीट और हैरिसन रोड के जंकशन पर गहरा दंगा हो गया।

जंगेला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे चौरी, मामरी और रूही भी कहते हैं। वि० दे० "रूही"।

जंघाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] १२८ हाथ लम्बी, १६ हाथ चौड़ी और १२⅘ हाथ ऊँची नाव।

जंपना†–क्रि० अ० [सं० जल्पन] कहना। कथन करना। उ०—यों कवि भूषण जंपत है लखि संपति को अलकापति लाजै।—भूषण।

जंबुर⊛|–संज्ञा पुं० दे० "जंबूर"। उ०—लाखन मीर बहादुर जंगी। जंबुर कमीने तीर खदंगी।—जायसी।

जगबंद⊛–वि० [सं० जगत् + वंद्य] जिसकी वंदना संसार करे।

संसार द्वारा पूजित । उ०—आपनपौ जु तज्यो जगबंद है ।—केशव ।

जगरन⊗†-संज्ञा पुं० दे० "जागरण" । उ०—जगन्नाथ जगरन कै आई । पुनि दुवारिका जाइ नहाई ।—जायसी ।

जगसूर*-संज्ञा पुं० [सं० जगत् + सूर] राजा । (क्व०) उ०—बिनती कीन्ह घालि गिउ पागा । ए जगसूर ! सीउ मोहिं लागा ।—जायसी ।

जजमेंट-संज्ञा पुं० [अं०] फैसला । निर्णय । जैसे,—मामले की सुनवाई हो चुकी; अभी जजमेंट नहीं सुनाया गया ।

जज्ञ*†-संज्ञा पुं० दे० "यज्ञ" । उ०—केन बारि समुझावै भँवर न काटै बेग । कहै मरौं तै चितउर जज्ञ करौं असुमेध ।—जायसी ।

जन-संख्या-संज्ञा स्त्री० [सं० जन + संख्या] किसी स्थान पर बसने या रहनेवाले लोगों की गिनती । आबादी । जैसे,—(क) काशी की जन संख्या दो लाख के लगभग है । (ख) कलकत्ते की जन संख्या में बंबई की अपेक्षा इस बार कम वृद्धि हुई है ।

जनी-संज्ञा स्त्री० [सं० जननी] एक प्रकार की ओषधि जिसे पर्पटी या पानड़ी भी कहते हैं । यह शीतल, वर्णकारक, कसैली, कड़वी, हलकी, अग्निदीपक, रुचिकारक तथा रक्तपित्त, कफ, रुधिर-विकार, कोढ़, दाह, वमन, तृषा, विष, खुजली और व्रण का नाश करनेवाली कही गई है ।

जनौं⊗†-क्रि० वि० [हिं० जानना] मानो । उ०—जब भा चेत उठा बैरागा । बाउर जनौं सोइ उठ जागा । —जायसी ।

जपना⊗-क्रि० स० [सं० यजन] यजन करना । यज्ञ करना । उ०—बहत महा मुनि जाग जपो । नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तनु ताप तपो ।—तुलसी ।

जपा⊗†-संज्ञा पुं० [सं० जप] वह जो जप करता हो । जप करने-वाला । उ०—मठ मंडप चहुँ पास सँवारे । तपा जपा सब आसन मारे ।—जायसी ।

जमकात⊗-संज्ञा पुं० दे० "जमकातर" । उ०—बिजुरी चक्र फिरै चहुँ फेरी । औ जमकात फिरै जम केरी ।—जायसी ।

जमकातर-संज्ञा स्त्री० [सं० यम + कर्त्तरी] (२) एक प्रकार की छोटी तलवार ।

जम-दिसा⊗-संज्ञा स्त्री० [सं०यम + दिशा] दक्षिण दिशा जिसमें यम का निवास माना जाता है । उ०—मेष सिंह धन पूरुब बसै । बिरिख मकर कन्या जम-दिसै ।—जायसी ।

जम-रस्सी-संज्ञा स्त्री० [सं० यम + रस्सी ?] चौरी नाम का वृक्ष जिसकी जड़ साँप के काटने की बहुत अच्छी ओषधि समझी जाती है ।

जमवार⊗-संज्ञा पुं० [सं० यमद्वार] यम का द्वार । उ०—सिंहल द्वीप भए औतारू । जंबूदीप जाइ जमवारू । —जायसी ।

जयफर⊗†-संज्ञा पुं० दे० "जायफल" । उ०—जयफर लौंग सुपारि छोहारा । मिरिच होइ जो सहै न झारा ।—जायसी ।

जया-वि० [सं०] जय दिलानेवाली । विजय करानेवाली । उ०—तीज अष्टमी नैरसि जया । चौथि चतुरदसि नवमी रखया । —जायसी ।

जरद अंछी-संज्ञा स्त्री० [फा० जरद + अंछी] काली अंछी की तरह की एक प्रकार की बड़ी झाड़ी जिसकी लंबी टहनियों के सिरों पर काँटे होते हैं । यह देहरादून से भूटान और खासिया की पहाड़ी तक, ७००० फुट की ऊँचाई तक, पाई जाती है । दक्षिण में कनाडा और लंका तक भी होती है । इसमें फागुन चैत में फल लगते हैं और बैसाख जेठ में फल पकते हैं जो कच्चे भी खाए जाते हैं और अचार डालने के भी काम में आते हैं ।

जरनलिस्ट-संज्ञा पुं० दे० "पत्रकार" ।

जरना⊗-क्रि० अ० दे० "जड़ना" ।

जराऊ*-वि० दे० "जड़ाऊ" । उ०—पाँवरि कनक जराऊ पाऊँ । दीन्हि असीस आइ तेहि ठाऊँ ।—जायसी ।

ज़राफ़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] ज़रीफ़ होने का भाव । मसखरा-पन ।

जरी*-संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ी] जड़ी । बूटी । उ०—तब सो जरी अमृत लेइ आवा । जो मरे हुत तिन्ह छिरिकि जियावा ।—जायसी ।

ज़रीफ़-संज्ञा पुं० [अ०] परिहास करनेवाला । मसखरा । ठट्ठे-बाज । मखौलिया ।

जल-संज्ञा पुं० [सं०] (६) धर्म्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार की परीक्षा या दिव्य । वि० दे० "दिव्य" ।

जल-चादर-संज्ञा स्त्री० [सं० जल + हिं० चादर] किसी ऊँचे स्थान से होनेवाला जल का झीना और विस्तृत प्रवाह । उ०—सहज सेज पँचतोरिया यह रत अति छबि होति । जल-चादर के दीप लौं जगमगाति तन-जोति ।—बिहारी ।

विशेष-प्रायः धनवानों और राजाओं आदि के उद्यानों में शोभा के लिये इस प्रकार जल का प्रवाह कराया जाता है, जिसे जल-चादर कहते हैं । कभी कभी इसके पीछे आले बनाकर उनमें दीपकों की पंक्ति भी जलाई जाती है जिससे रात के समय जलचादर के पीछे जगमगाती हुई दीपावली बहुत शोभा देती है ।

जल-डमरूमध्य-संज्ञा पुं० [सं०] भूगोल में जल की वह पतली प्रणाली जो दो बड़े समुद्रों या जलों के मध्य में हो और दोनों को मिलाती हो ।

जलथंभ-संज्ञा पुं० [सं० जल-स्तंभन] मंत्रों आदि से जल का स्तंभन करने या उसे रोकने की क्रिया । जल-स्तंभन । उ०—बिरह बिथा जल परस बिन बसियतु मो मन ताल । कछु जानत जलथंभ बिधि दुर्जोधन लौं लाल ।—बिहारी ।

जलसेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जो जहाजों पर चढ़कर

समुद्र में युद्ध करती हो। जहाजी बेड़ों पर रहनेवाली फौज। नौ-सेना। समुद्री सेना।

जल-सेनापति-संज्ञा पुं० [सं०] वह सेनापति जिसकी अधीनता में जल-सेना हो। समुद्री सेना का प्रधान अधिकारी जिसकी अधीनता में बहुत से लड़ाई के जहाज और जल-सैनिक हों। जल या नौ-सेना का प्रधान या अध्यक्ष। नौसेनापति।

जलेबी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जलाव] (४) एक प्रकार की आतिशबाजी जो मिट्टी के कसोरे में कुछ मसाले आदि रखकर और ऊपर कागज चिपका कर बनाई जाती है।

जवाहरात-संज्ञा पुं० [अ०] जवाहर का बहुवचन रूप। बहुत से या अनेक प्रकार के रत्न और मणि आदि। जैसे,—अब उन्होंने कपड़े का काम छोड़ कर जवाहरात का काम शुरू किया है।

जसूँद-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके रेशों से रस्से आदि बनते हैं। इसकी लकड़ी मुलायम होती है और मेज कुरसी आदि बनाने के काम में आती है। इसे नताउल भी कहते हैं। वि० दे० "नताउल"।

जसोवा॰-संज्ञा स्त्री० दे० "यशोदा"। उ०—सो तुम मातु जसोवै, मोहिं न जानहु बार। जहँ राजा बलि बाँधा छोरौं पैठि पतार।—जायसी।

जस्टिफाई-संज्ञा पुं० [अं०] कंपोज किए हुए मैटर को इस सहूलियत से बैठाना या कसना कि कोई लाइन या पंक्ति ऊँची नीची या कोई अक्षर इधर उधर न होने पावे। जैसे,—इस पेज का जस्टिफाई ठीक नहीं हुआ है।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

जस्टिस-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो न्याय करने के लिये नियुक्त हो। न्यायाधीश। विचारपति। न्यायमूर्त्ति। जैसे,—जस्टिस सुंदरलाल।

विशेष—हिंदुस्थान में हाईकोर्ट के जज 'जस्टिस' कहलाते हैं।

जस्टिस आफ दि पीस-संज्ञा पुं० [अं०] [संक्षिप्त रूप जे० पी०] स्थानीय छोटे मैजिस्ट्रेट जो शांति-रक्षा, छोटे मोटे मामलों आदि का विचार करने के लिये नियुक्त किए जाते हैं। शांतिरक्षक।

विशेष—बंबई में कितने ही प्रतिष्ठित भारतीय जस्टिस आफ दि पीस हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता। इन्हें आनरेरी मैजिस्ट्रेट ही समझना चाहिए। जज, मैजिस्ट्रेट आदि भी जस्टिस आफ दि पीस कहलाते हैं। अपने महल्ले या आसपास में दंगा फसाद होने पर वे जस्टिस आफ दि पीस वा शांतिरक्षक की हैसियत से शांति-रक्षा की व्यवस्था करते हैं।

जाँगर-संज्ञा पुं० [देश०] खाली डंठल जिसमें से अन्न झाड़ लिया गया हो। उ०—तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौज संपदा अकेलि चाकि राखी रासि जाँगर जहान भो।—तुलसी।

जाखिनी॰-संज्ञा स्त्री० दे० "यक्षिणी"। उ०—राघव करै जाखिनी-पूजा। चहै सो भाव देखावै दूजा।—जायसी।

जागना-क्रि० अ० [सं० जागरण] (९) प्रसिद्ध होना। मशहूर होना। उ०—खायो खोंचि माँगि मैं तेरो नाम लिया रे। तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जिया रे।—तुलसी।

जाटू-संज्ञा स्त्री० [हिं० जाट] हिसार, करनाल और रोहतक के जाटों की बोली जिसे बाँगडू या हरियानी भी कहते हैं।

जाति-चरित्र-संज्ञा पुं० [सं०] जातीय रहन सहन तथा प्रथा। (कौ०)

जाति-धर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (३) जिस जाति में मनुष्य उत्पन्न हुआ हो, उसका विशेष आचार या कर्त्तव्य।

विशेष—प्राचीन काल में अभियोगों का निर्णय करते हुए जाति-धर्म्म का आदर किया जाता था।

जाप†संज्ञा स्त्री० [सं० जप] मंत्र या नाम आदि जपने की माला। जप माला। उ०—बिरह भभूत जटा बैरागी। छाला काँध जाप कँठ लागी।—जायसी।

जायँ†-वि० [फा० जा = ठीक] ठीक। उचित। वाजिब। मुनासिब। जैसे,—तुम्हारा कहना जायँ है।

जायंट-वि० [अं०] साथ में काम करनेवाला। सहयोगी। संयुक्त। जैसे,—जायंट सेक्रेटरी। जायंट एडीटर।

जायंट मैजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं० [अं०] फौजदारी का वह मैजिस्ट्रेट या हाकिम जिसका दर्जा जिला मैजिस्ट्रेट के नीचे होता है और जो प्रायः नया सिवीलियन होता है। जंट।

जाय-संज्ञा स्त्री० [देश०] चने और उड़द की भून कर पकाई हुई दाल।

जायरी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो बुंदेलखंड और राजपूताने की पथरीली भूमि में नदियों के पास होती है।

जालरंध्र-संज्ञा पुं० [सं०] घर में प्रकाश आने के लिये झरोखे में लगी हुई जाली या उसके छेद। उ०—जालरंध्र मग अँगनु कौ कछु उजास सौ पाइ। पीठि दिए जगत्यौ रह्यौ डीठि झरोखैं लाइ।—बिहारी।

जालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) समूह। उ०—प्रनतजन कुमुद-बन इन्दुकर जालिका। जलसि अभिमान महिषेस बहु कालिका।—तुलसी।

जावा-संज्ञा पुं० [हिं० जामन या जमना] वह मसाला जिससे शराब चुआई जाती है। बेसवार। जाया।

जिनि॰†-अव्य० [हिं० जनि] मत। नहीं। उ०—जिनि कटार गर लावसि समुझि देखु मन आप। सकति जीउ जौं काढ़ै महा दोष औ पाप।—जायसी।

जियबधा॰-संज्ञा पुं० [सं० जीव + वध] जल्लाद।

जिला बोर्ड-संज्ञा पुं० [अ० जिला + अं० बोर्ड] किसी जिले के करदाताओं के प्रति-निधियों की वह सभा जिसका काम अपने अधीनस्थ ग्राम बोर्डों की सहायता से गाँवों की सड़कों की

मरम्मत कराना, स्कूल और चिकित्सालय चलाना, चेचक के टीके और स्वास्थ्योन्नति का प्रबंध आदि करना है।

विशेष—म्युनिसिपैलिटी के समान ही जिला बोर्ड के सदस्यों का भी हर तीसरे साल चुनाव होता है।

जिला मैजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं० [अ + अं०] जिले का बड़ा हाकिम जो फौजदारी मामलों का फैसला करता है। जिला हाकिम।

विशेष—हिंदुस्थान में जिले का कलक्टर और मैजिस्ट्रेट एक ही मनुष्य होता है जो अपने दो पदों के कारण दो नामों से पुकारा जाता है। मालगुजारी वसूल करने, जमींदार और सरकार का संबंध ठीक रखने आदि के कारण वह कलक्टर और फौजदारी मामलों का फैसला करने के कारण मैजिस्ट्रेट कहलाता है।

जिवाना⊛†-क्रि० स० [हिं० जीव = जीवन] जीवित करना। जिलाना। उ०—इहि काँटै मो पाइ गड़ि, लीनी मरति जिवाइ। प्रीति जनावति भीति सौं मीत जु काढ्यौ आइ।—बिहारी।

जिह्वाच्छेद-संज्ञा पुं० [सं०] जीभ काटने का दंड।

विशेष—जो लोग माता, पिता, पुत्र, भाई, आचार्य या तपस्वियों आदि को गाली देते थे, उनको यही दंड दिया जाता था।

जीगन†-संज्ञा पुं० दे० "जुगनू"। उ०—बिरह जरी लखि जीगननु कह्यौ न डहि कै बार। अरी आउ भजि भीतरी बरसतु आज अँगार।—बिहारी।

जुझार⊛-संज्ञा पुं० [हिं० जुज्झ=युद्ध + आर (प्रत्य०)] युद्ध। समर। लड़ाई। (क्व०) उ०— बादल राय ! मोर तुइ बारा। का जानसि कस होइ जुझारा।—जायसी।

जुत⊛-वि० दे० "युक्त"। उ०—जानी जाति नारिन दवारि जुत बन में।—मतिराम।

जुनूनी-वि० [अ०] जिसे जुनून हो। पागल। उन्मत्त।

जुलकरन⊛-संज्ञा पुं० दे० "जुलकरनैन"। उ०—तहँ लगि राज खड़ग करि लीन्हा। इसकंदर जुलकरन जो कीन्हा।—जायसी।

जुलक़रनैन-संज्ञा पुं० [अ०] सुप्रसिद्ध यूनानी बादशाह सिकंदर की एक उपाधि जिसका अर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। कुछ लोगों के मत से इसका अर्थ "दो सींगोंवाला" है। वे कहते हैं कि सिकंदर अपने देश की प्रथा के अनुसार दो सींगोंवाली टोपी पहनता था। इसी प्रकार कुछ लोग "पूर्व और पश्चिम दोनों कोनों को जीतनेवाला" कुछ लोग "बीस वर्ष राज्य करनेवाला" और कुछ लोग "दो उच्च ग्रहों से युक्त" अर्थात् "भाग्यवान्" अर्थ करते हैं।

जूआ-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का पौधा जो प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। (२) इस पौधे का फूल जो गहरे पीले रंग का और देखने में बहुत सुंदर होता है।

जूरर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो जूरी में बैठता हो। जूरी का काम करनेवाला। पंच। सालिस। जैसे,—९ जूररों में ७ ने उसे अपराधी बताया। जज ने बहुमत मानकर अभियुक्त को पाँच वर्ष की सख्त कैद की सजा दी।

जूरिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जो कानून में, विशेष कर दीवानी कानून में, पारंगत हो। व्यवहार शास्त्र निष्णात। जैसे—डाक्टर सर रासबिहारी घोष संसार के बहुत बड़े जूरिस्टों में थे।

जूरिस्डिक्शन-संज्ञा पुं० [अं०] वह सीमा या विभाग जिसके अंदर शक्ति या अधिकार का उपयोग किया जा सके। अधिकार-सीमा। जैसे,—वह स्थान इस हाई कोर्ट के जूरिस्डिक्शन के बाहर है।

जूरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वे कुछ व्यक्ति जो अदालत में जज के साथ बैठकर खून, डाकाजनी, राजद्रोह, षड्यंत्र आदि के संगीन मामलों को सुनते और अंत में अभियुक्त या अभियुक्तों के अपराधी या निरपराध होने के संबंध में अपना मत देते हैं। पंच। सालिस। जैसे,—जूरी ने एक मत होकर उसे निर्दोष बताया; तदनुसार जज ने उसे छोड़ दिया।

विशेष—जूरी के लोग नागरिकों में से चुने जाते हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता, खर्च भर मिलता है। इन्हें निष्पक्ष रह कर न्याय करने की शपथ करनी पड़ती है। जब तक किसी मामले की सुनवाई नहीं हो लेती, इन्हें बराबर पेशी-वाले दिन अदालत में उपस्थित रहना पड़ता है। और देशों में जज इनका बहुमत मानने को बाध्य है और तदनुसार ही अपना फैसला देता है। पर हिंदुस्थान में यह बात नहीं है। हाई कोर्ट और चीफ कोर्ट को छोड़कर जिले के दौरा जज जूरी का मत मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। जूरी से मतैक्य न होने की अवस्था में वे मामला हाई कोर्ट या चीफ कोर्ट भेज सकते हैं।

जूरीमैन-संज्ञा पुं० दे० "जूरर"।

जेंटू-संज्ञा पुं० [?] (१) हिंदु। (२) हिंदुओं की भाषा।

विशेष—पहले पहल पुर्त्तगालियों ने भारत के मूर्त्तिपूजकों के लिये इस शब्द का प्रयोग किया था। बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के समय अँगरेज लोग उक्त अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करने लगे थे।

जेंवन†-संज्ञा पुं० [हिं० जेंवना] खाने की चीजें। भोजन की सामग्री। खाद्य पदार्थ। उ०—कोइ आगे पनवार बिछावहिं। कोई जेंवन लेइ लेइ आवहिं।—जायसी।

जेउँ⊛-क्रि० वि० [सं० यः + इव] ज्यों। जिस प्रकार। जैसे। उ०—आदि किएउ आदेस सुन्नहिं ते अस्थूल भए। आपु करै सब भेस मुहमद चादर-ओट जेउँ।—जायसी।

जेटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] नदी या समुद्र के किनारे ईंट, पत्थर विशेषकर शहतीरों या लट्ठों का बना प्लैटफार्म या चबूतरा जहाँ जहाज पर से यात्री या माल उतरता या चढ़ता है।

जेता-वि० [हिं० जिस + तना (प्रत्य०)] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जितना। उ०—सकल दीप महँ जेती रानी। तिन्ह महँ दीपक बारह बानी।—जायसी।

क्रि० वि० जिस मात्रा में। जिस परिमाण में। जितना।

जेनरल स्टाफ-संज्ञा पुं० [अं०] जेनरलों या सेनाध्यक्षों का वर्ग या समूह।

जेप्लिन-संज्ञा पुं० [जर्मन] जर्मनी की एक प्रकार की उड़नेवाली मशीन या वायुयान जिसका निर्माता इसी नाम का एक जर्मन था।

जेहि-सर्व० [सं० यस्] (२) जिससे। उ०—कहि अब सोई, जेहि यश होई।—केशव।

जैस-वि० दे० "जैसा"। उ०—अरतिहि जैस गगन सों नेहा। पलटि आव बरषा ऋतु मेहा।—जायसी।

जो-अव्य० [सं० यद्] (२) यद्यपि। अगरचे। (क्व०) उ०—पौंरि पौंरि कोतवार जो बैठा। पेमक लुबुध सुरँग होइ पैठा।—जायसी।

जोइसी-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी"। उ०—चित पितु-मारक जोग गनि भयौ भयें सुत सोगु। फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी समुझें जारज-जोग।—बिहारी।

जोखना-क्रि०अ० [सं० जुष = जाँचना] विचार करना। सोचना। उ०—काहू साथ न तन गा, सकति मुए सब पोखि। ओछ पूर तेहि जानब जो थिर आवत जोखि।—जायसी।

जोखिउँ-संज्ञा स्त्री० दे० "जोखिम"। उ०—तुम सुखिया अपने घर राजा। जोखिउँ एत सहहु केहि काजा।—जायसी।

जोग-अव्य० [सं० योग्य] के लिये। वास्ते। (पु० हिं०) उ०—अपने जोग लागि अस खेला। गुरु भएउँ आपु कीन्ह तुम्ह चेला।—जायसी।

जोत-संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] (३) वह छोटी रस्सी या पगही जिसमें बैल बाँधे जाते हैं और जो उन्हें जोतते समय जुआठे में बाँध दी जाती है।

जोतिवंत-वि० [सं० ज्योति + वंत] ज्योति युक्त। चमकदार। उ०—पावक पवन मणि पन्नग पतंग पितृ जेते जोतिवंत जग ज्योतिपिन गाये हैं।—केशव।

जोती-संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] (३) चक्की में की वह रस्सी जो बीच की कीली और हत्थे में बँधी रहती है। इसे कसने या ढीली करने से चक्की हलकी या भारी चलती है और चीज मोटी या महीन पिसती है। (४) वह रस्सियाँ जिनसे खेत में पानी सींचने की दौरी बँधी रहती है।

ज्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) किसी वृत्त का व्यास।

ज्वलिनी सीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दो गाँवों के बीच की वह सीमा जो ऊँचे पेड़ लगाकर बनाई गई हो।

विशेष—मनु ने लिखा है कि पीपल, बड़, साल, ताड़ तथा ढाक के वृक्ष गाँव की सीमा पर लगावे।

झँझोरा-संज्ञा पुं० [देश०] कचनार का पेड़।

झँवकार-वि० [हिं० झाँवला + काला] कृष्ण वर्ण का। साँवले रंग का। काला। उ०—गैंड गयंद जरे भए कारे। औ बन मिरिग रोझ झँवकारे।—जायसी।

झँसना-क्रि० स० [अनु०] (१) सिर या तलुए आदि में तेल या और कोई चिकना पदार्थ लगाकर हथेली से उसे बार बार रगड़ना जिसमें वह उस अंग के अंदर समा जाय। जैसे,—सिर में कद्दू का तेल झँसने से तुम्हारा सिर दर्द दूर होगा।

संयो० क्रि०—देना।

(२) किसी को बहका कर या अनुचित रूप से उसका धन आदि आदि ले लेना। जैसे,—उस ओझा ने भूत के बहाने उससे दस रुपए झँस लिए।

झकुराना-क्रि० अ० [हिं० झकोरा] झकोरा लेना। झूमना। उ०—रुक्यौ साँकरें कुंज-मग करतु झाँकि झँकुरातु। मंद मंद मारुत तुरँग खूँदतु आवतु जातु।—बिहारी।

क्रि० स० झकोरा देना। झूमने में प्रवृत्त करना।

झखिया-संज्ञा स्त्री० दे० "झखी"।

झरर-संज्ञा पुं० [सं०] झाड़ू देनेवाला। स्थान झाड़नेवाला।

विशेष—झाड़ू देनेवाले को जब कोई पड़ी हुई चीज मिलती थी तो उसका ⅓ भाग चन्द्रगुप्त का राज्य लेता था और ⅔ भाग उसको मिलता था। (कौ०)

झलरा-संज्ञा पुं० [हिं० झालर] एक प्रकार का पकवान जिसे झालर भी कहते हैं।

झलाना-क्रि० अ० [अनु० झन झन] हड्डी, जोड़ या नस आदि पर एक बारगी चोट लगने के कारण एक विशेष प्रकार की संवेदना होना। सुन सा हो जाना। जैसे,—ऐसी ठोकर लगी कि पैर झला गया।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

क्रि० स० दूसरे से झालने का काम कराना। झालने में किसी को प्रवृत्त करना।

झसना-क्रि० स० दे० "झँसना"।

झाँपना-क्रि० स० [सं० उत्थापन] (३) पकड़ कर दबा लेना। छोप लेना। उ०—नीची मैं नीची निपट दीठि कुही लौं दौरि। उठि ऊँचैं नीचौ दियौ मनु कुलिंगु झँपि झौरि।—बिहारी।

झाड़ना-क्रि० स० [सं० शाटय या शातन] (८) निकालना। दूर करना। हटाना। छुड़ाना। जैसे,—तुम्हारी सारी बदमाशी झाड़ देंगे। उ०—मोहूँ ते ये चतुर कहावति। ये मन ही मन मोको नारति। ऐसे बचन कहूँगी इन तें चतुराई इनकी मैं

झारति।—सूर। (९) अपनी योग्यता दिखलाने के लिये गढ़ गढ़ कर बातें करना। जैसे;—वह आते ही अँगरेजी झाड़ने लगा।

झालर†-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पकवान जिसे झलरा भी कहते हैं। उ०—झालर माँड़े आए पोई। देखत उजर पाग जस धोई।—जायसी।

झिराना-क्रि० अ० दे० "झुराना"।

झिलमिल-संज्ञा स्त्री० [अनु०] युद्ध में पहनने का लोहे का कवच। झिलम। उ०—करन पास लीन्हेउ कै छंदू। बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू।—जायसी।

झींगन-संज्ञा पुं० [देश०] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसका तना मोटा होता है और जिसमें डालियाँ अपेक्षाकृत बहुत कम होती हैं। यह सारे उत्तरी भारत, आसाम, बरमा और लंका में पाया जाता है। इसमें से पीलापन लिए सफेद रंग का एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसका व्यवहार छींटों की छपाई और ओषधि के रूप में होता है। इसकी छाल से टस्सर रँगा और चमड़ा सिझाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं और हीर की लकड़ी से कई तरह के सामान बनते हैं।

झीका-संज्ञा पुं० [सं० शिक्य] रस्सी का लटकता हुआ जालदार फंदा जिस पर बिल्ली आदि के डर से दूध या खाने की दूसरी वस्तुएँ रखते हैं। छीका। सिकहर।

झीलर-संज्ञा पुं० [हिं० झील] छोटी झील। छोटा तालाब।

झुँका‡†-संज्ञा पुं० दे० "झोंका"। उ०—यह गढ़ छार होइ इक झुँके।—जायसी।

झूँसना-क्रि० स० [अनु०] किसी को बहका कर या दम-पट्टी देकर उसका धन आदि लेना। झँसना।

झूसा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास जो उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है और जिसे घोड़े तथा गाय बैल आदि बड़े चाव से खाते हैं। गुलगुला। पलंजी। बड़ा मुरमुरा।

झेलना-क्रि० स० [सं० क्ष्वेल] ग्रहण करना। मानना। उ०—पाँयन आनि परे तो परे रहे केती करी मनुहारि न झेली।—मतिराम।

झोला†-संज्ञा पुं० [हिं० झूलना] झोंका। झकोरा। हिलोर। उ०—कोई खाहिं पवन कर झोला। कोई करहिं पात अस डोला।—जायसी।

झौंराना‡-क्रि० अ० [हिं० झूमना] इधर उधर हिलना। झूमना। उ०—झाँ ठिहि रंक चलै झौंराई। निसँठ राव सब कह बौराई।—जायसी।

टरकुल-वि० [हिं० टरकाना] (१) बहुत साधारण। बिलकुल मामूली। (२) घटिया। खराब।

टाँक-संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] (५) एक प्रकार का छोटा कटोरा। उ०—घीउ टाँक महँ सोध सेरावा। लौंग मिरिच तेहि ऊपर नावा।—जायसी।

टानिक-संज्ञा पुं० [अं०] वह औषध जो शरीर का बल बढ़ाती हो। बलवीर्य-वर्द्धक औषध। पुष्टिकारक औषध। ताकत की दवा। जैसे,—डाक्टर ने उन्हें कोई टानिक दिया है।

टारपीडो-संज्ञा पुं० [अं०] एक विध्वंसकारी यंत्र जिसमें भीषण विस्फोटक पदार्थ भरा रहता है और जो बड़े समुद्री मत्स्य के आकार का होता है। यह जल के अंदर छिपाया रहता है। युद्ध के समय शत्रु के जहाज पर इसे चलाते हैं। इसके लगने से जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है और वह वहीं डूब जाता है। विस्फोटक वज्र।

टारपीडो कैचर-संज्ञा पुं० [अं०] तेज चलनेवाला एक शक्तिशाली रणपोत वा जंगी जहाज जो टारपीडो बोट के प्रयत्न को विफल करने और उसे नष्ट करने के काम में लाया जाता है।

टारपीडो बोट-संज्ञा स्त्री० [अं०] तेज चलनेवाली एक छोटी स्टीम बोट जो युद्ध के समय शत्रु के जहाज को नष्ट करने के लिये उस पर टारपीडो या विस्फोटक वज्र चलाती है। नाशक जहाज।

टालना-क्रि० स० [हिं० टलना] (१३) हिलाना। इधर उधर गति देना। उ०—टारहिं पूँछ पसारहिं जीहा। कुंजर डरहिं कि गुंजरि लीहा।—जायसी।

टावर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) लाठ। मीनार। बुर्ज। (२) किला। कोट।

टिकटी-संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकाष्ठ] (५) रथी जिस पर शव को अंत्येष्टि क्रिया के लिये ले जाते हैं।

टिका साहब-संज्ञा पुं० [हिं० टीका = तिलक + साहब] राजा का वह बड़ा लड़का जिसका यौवराज्याभिषेक होने को हो। युवराज। (पंजाब)

टिकी-संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

टी-संज्ञा स्त्री० [अं०] चाय।

टी गार्डन-संज्ञा पुं० [अं०] वह जमीन जहाँ चाय की खेती होती है। चाय बगीचा। जैसे,—आसाम के टी-गार्डनों के कुलियों की दशा बड़ी ही शोचनीय और करुणाजनक है।

टूट†-संज्ञा पुं० [सं० त्रुटि] त्रुटि। भूल। गलती। उ०—औ बिनती पँडितन मन भजा। टूट सँवारहु मेटवहु सजा।—जायसी।

टूल-संज्ञा पुं० [अं०] औजार जिसकी सहायता से कोई काम किया जाय।

संज्ञा पुं० [अं० स्टूल] ऊँचे पावों की छोटी चौकी जिस पर लड़के बैठते या कोई चीज रखी जाती है। तिपाई।

टेंपरेचर-संज्ञा पुं० [अं०] शरीर या देश के किसी स्थान की उष्णता या गर्मी का मान जो थर्मामीटर से जाना जाता है। तापमान। जैसे,—(क) सवेरे उसका टेम्परेचर लिया था;

१०२ डिग्री बुखार था। (ख) इस बार इलाहाबाद में ११८ डिग्री टेम्परेचर हो गया था।

क्रि० प्र०—लेना।—होना।

टँड़िहा†-वि० दे० "टँटी"।

संज्ञा पुं० एक प्रकार के क्षत्रिय जो प्रायः बिहार के शाहाबाद जिले में पाए जाते हैं।

टँटी†-वि० [अनु० टँटें] बात बात में बिगड़नेवाला। व्यर्थ झगड़ा करनेवाला।

टेकना†-क्रि० स० [हिं० टेक] (६) किसी को कोई काम करते हुए बीच में रोकना। पकड़ना। उ०—(क) रोवहिं मातु पिता औ भाई। कोउ न टेक जौ कंत चलाई।—जायसी। (ख) जनहुँ औटि कै मिलि गए तस दूनौ भए एक। कंचन कसत कसौटी हाथ न कोऊ टेक।—जायसी।

टेनेंट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किराएदार। (२) असामी। पट्टेदार। रैयत।

टेबुल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) मेज। (२) वह जिसमें बहुत से खाने या कोष्ठक बने हों। नकशा।

टेरिटोरियल फोर्स-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सैन्यदल जिसका संबंध अपने स्थान से हो। नागरिक सेना। देशरक्षिणी सेना।

विशेष—इन्हें साधारणतः देश के बाहर लड़ने को नहीं जाना पड़ता।

टैक्सी-संज्ञा स्त्री० [अं०] किराए पर चलनेवाली मोटर गाड़ी।

टैबलेट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) छोटी टिकिया। जैसे, क्विनाइन टैबलेट। (२) पत्थर, काँसे आदि का फलक जिस पर किसी की स्मृति में कुछ लिखा या खुदा रहता है। जैसे,—किसान सभा ने उनके स्मारक स्वरूप एक टैबलेट लगाना निश्चित किया है।

टोरी-संज्ञा पुं० दे० "कनसरवेटिव" (१)।

टौरना†-क्रि० स० [हिं० टेरना ?] (१) भली बुरी बात की जाँच करना। (२) किसी व्यक्ति या बात की थाह लेना। पता लगाना।

ट्रस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] संपत्ति या दान-संपत्ति को इस विचार या विश्वास से दूसरे व्यक्तियों के सपुर्द करना कि वे संपत्ति का प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखा-पढ़ी या दान-पत्र के अनुसार करेंगे।

ट्रस्टी-संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जिसके सपुर्द कोई संपत्ति इस विचार और विश्वास से की गई हो कि वह उस संपत्ति का प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखा-पढ़ी या दान-पत्र के अनुसार करेगा। अभिभावक।

ट्रान्सपोर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) माल असबाब एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना। बारबरदारी। (२) वह जहाज जिस पर सैनिक या युद्ध का सामान आदि एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है। (३) सवारी। गाड़ी।

ट्रान्सलेटर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो एक भाषा का दूसरी भाषा में उल्था करता है। भाषांतरकार। अनुवादक। जैसे,—गवर्नमेंट ट्रान्सलेटर।

ट्रान्सलेशन-संज्ञा पुं० [अं०] एक भाषा में प्रदर्शित भावों या विचारों को दूसरी भाषा के शब्दों में प्रकट करना। एक भाषा को दूसरी में उल्था करना। भाषांतर। अनुवाद। उल्था। तर्जुमा।

ट्रूप-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) पलटन। सैन्यदल। जैसे,—ब्रिटिश ट्रूप। नेटिव ट्रूप। (२) घुड़सवारों का एक दल जिसमें एक कप्तान की अधीनता में प्रायः साठ जवान होते हैं।

ट्रूस-संज्ञा स्त्री० [अं०] दो लड़नेवाली सेनाओं के नायकों की स्वीकृति से लड़ाई का स्थगित होना। कुछ काल के लिये लड़ाई बंद होना। क्षणिक संधि।

ट्रेजरर-संज्ञा पुं० [अं०] खजानची। कोषाध्यक्ष।

ट्रैजेडियन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह अभिनेता जो विषाद, शोक और गंभीर भाव व्यंजक अभिनय करता हो। (२) वियोगांत नाटक लिखनेवाला। वियोगांत नाटक लेखक।

ट्रैजेडी-संज्ञा स्त्री० [अं०] नाटक का एक भेद जिसमें किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटना का वर्णन हो, मनोविकारों का खूब संघर्ष और द्वंद्व दिखाया गया हो और जिसका अंत शोक-दुःखमय हो। वह नाटक जिसका अंत करुणोत्पादक और विषादमय हो। दुःखांत नाटक। वियोगांत नाटक।

ठाह-संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहरना] धीरे धीरे और अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय लगा कर गाने या बजाने की क्रिया।

विशेष—जब गाने या बजानेवाले लोग कोई चीज गाना या बजाना आरंभ करते हैं, तब पहले धीरे धीरे और अधिक समय लगाकर गाते या बजाते हैं। इसी को "ठार" या "ठाह" में गाना बजाना कहते हैं। आगे चलकर वह चीज क्रमशः जल्दी जल्दी गाने या बजाने लगते हैं जिसे दून, तिगून और चौगून कहते हैं। वि० दे० "चौगून"।

ठूठी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] राज-जामुन नाम का वृक्ष। वि० दे० "राज-जामुन"।

डऊ†-वि० [हिं० डौल] डील डौलवाला। बड़ा। वयस्क। जैसे,—इतने बड़े डऊ हुए, अक्ल नहीं आई।

डक-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी बंदर या नदी के किनारे एक घिरा हुआ स्थान जहाँ जहाज आकर ठहरते हैं और जिसका फाटक, जो पानी में बना होता है, आवश्यकता पड़ने पर खुलता और बंद होता है। (२) अदालत में वह स्थान जहाँ अभियुक्त खड़े किए जाते हैं। कटघरा।

डकूरा†-संज्ञा पुं० [देश०] चक्र की तरह घूमती हुई वायु। बवंडर। चक्रवात। बगूला।

डगना-क्रि० अ० [हिं० डिगना या डग] (३) डगमगाना। लड़खड़ाना। उ०—डगकु डगति सी चलि ठठुकि चितई चली निहारि। लिए जाति चितु चोरटी वहै गोरटी नारि।—बिहारी।

डभकना-क्रि० अ० [अनु०] (१) (आँखों का) डबडबाना। (नेत्रों में) जल भर आना। उ०—बदन पियर जल डभकहिं नैना। परगट दुवौ पेम के बैना।—जायसी।

डला-संज्ञा पुं० [सं० दल] (२) लिंगेंद्रिय। (बाजारू)

डहार†-वि० [हिं० डाहना] डाहनेवाला। तंग करनेवाला। कष्ट पहुँचानेवाला। उ०—फोरहिं सिल लोढ़ा मदन लागे अढुक पहार। कायर कूर कुपूत कलि घर घर सहस डहार।—तुलसी।

डाँक†-संज्ञा पुं० दे० "डंका"। उ०—दान डाँक बाजै दरबारा। कीरति गई समुन्दर पारा।—जायसी।

संज्ञा पुं० [हिं० डंक] विषैले जंतुओं के काटने का डंक। आर। उ०—जे तब होत दिखा दिखी भई अमी इक आँक। दगैं तिरीछी डीठि अब ह्वै बीछी को डाँक।—बिहारी।

डाइबीटी-संज्ञा पुं० [अं० डाइबिटीज़] बहुमूत्र रोग। मधुमेह।

डाक्टरी-संज्ञा स्त्री० [अं० डाक्टर] (३) डाक्टर का पेशा या काम। (४) वह परीक्षा जिसे पास करने पर आदमी डाक्टर होता है।

डामल-संज्ञा पुं० दे० "डायमंड कट"।

डायट-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) व्यवस्थापिका सभा। राज्य सभा। जैसे,—जापान की इम्पीरियल डायट। (२) पथ्य। (३) भोजन। खाद्य पदार्थ।

डायरिया-संज्ञा पुं० [अं०] दस्त की बीमारी। अतिसार।

डायार्की-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह शासन-प्रणाली या सरकार जिसमें शासन-अधिकार दो व्यक्तियों के हाथों में हो। द्वैध शासन। दुहत्था शासन।

विशेष—भारत में १९१९ के गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट के अनुसार प्रादेशिक शासन-प्रणाली इसी प्रकार की कर दी गई है। शासन के सुभीते के लिये प्रदेशों से संबंध रखनेवाले विषय दो भागों में बाँट दिए गए हैं—एक रिजर्व्ड या रक्षित विषय जो गवर्नर और उनकी शासन सभा के अधिकार में है; और दूसरा ट्रान्सफर्ड वा हस्तांतरित विषय जो मिनिस्टरों या मंत्रियों के अधिकार में (जो निर्वाचित सदस्यों में से चुने जाते हैं) है। "रक्षित विषयों" की सुव्यवस्था के लिये गवर्नर और उनकी शासन सभा भारत सरकार और भारत सचिव द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से पार्लमेंट अथवा ब्रिटिश मतदाताओं के सामने उत्तरदाता है और हस्तान्तरित विषयों के लिये गवर्नर के मंत्री अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय मतदाताओं के सामने उत्तरदायी हैं। यद्यपि विशेष अवस्थाओं में इनके मत के विरुद्ध कार्य करने का गवर्नर को अधिकार है, परंतु शासन सभा के बहुमत के विरुद्ध गवर्नर आचरण नहीं कर सकता। शासन सभा के सदस्यों और मंत्रियों में एक अंतर यह भी है कि वे सम्राट् के आज्ञा-पत्र द्वारा नियुक्त होते हैं, परंतु मंत्री को नियुक्त करने और हटाने का अधिकार गवर्नर को ही है। मंत्री का वेतन निर्दिष्ट करने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा को है।—भारतीय शासन पद्धति।

डालना-क्रि० स० [सं० तलन] (१४) किसी के अंतर्गत करना। किसी विषय या वस्तु के भीतर लेना। जैसे,—यह रुपया ब्याह के खर्च में डाल दो। (१५) अव्यवस्था आदि उपस्थित करना। बुरी बात घटित करना। मचाना। जैसे,—गड़बड़ डालना, आपत्ति डालना, विपत्ति डालना। (१६) बिछाना। जैसे,—खटिया डालना। पलंग डालना। चारा डालना।

डाही-वि० [हिं० डाह] डाह करनेवाला। ईर्ष्या करनेवाला। ईर्ष्यालु।

डिंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (३) एक प्रकार का उदर रोग जो धीरे धीरे बढ़ता हुआ अंत में बहुत भयानक हो जाता है।

डिक्टेटर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह मनुष्य जिसे कोई काम करने का पूरा अधिकार प्राप्त हो। प्रधान नेता या पथ-प्रदर्शक। शास्ता। (२) वह मनुष्य जिसे शासन की अबाधित सत्ता प्राप्त हो। निरंकुश शासक।

विशेष—डिक्टेटर दो प्रकार के होते हैं—(१) राष्ट्रपक्ष का और (२) राज्य या शासन पक्ष का। जब देश में संकट उपस्थित होता है, तब देश या राष्ट्र उस मनुष्य को, जिस पर उसका पूरा विश्वास होता है, पूर्ण अधिकार दे देता है कि वह जो चाहे सो करे। यह व्यवस्था संकट काल के लिये है। जैसे,—सं० १९८०-८१ में महात्मा गांधी राष्ट्र के डिक्टेटर या शास्ता थे। पर राज्य या शासन पक्ष का डिक्टेटर वही होता है जो बड़ा जबर्दस्त होता है, जिसका सब लोगों पर आतंक छाया रहता है। जैसे,—इस समय इटली का डिक्टेटर मुसोलोनी है।

डिक्लेरेशन-संज्ञा पुं० [अं०] वह लिखा हुआ कागज़ जिसमें, किसी मैजिस्ट्रेट के सामने कोई प्रेस खोलने, रखने या कोई समाचार पत्र या पत्रिका छापने और निकालने की जिम्मेवारी ली या घोषित की जाती है। जैसे,—(क) उन्होंने अपने नाम से प्रेस खोलने का डिक्लेरेशन दिया है। (ख) वे अग्रदूत के मुद्रक और प्रकाशक होने का डिक्लेरेशन देनेवाले हैं।

डिगलाना, डिगुलाना*-क्रि० अ० [हिं० डग] डगमगाना। लड़खड़ाना। उ०—डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब व्रज बेहाल। कंपि किसोरी दरसि कै खरैं लजाने लाल।—बिहारी।

डिप्लोमेसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह चातुरी या कौशल जो

कार्य-साधन के लिये, विशेष कर राजनीतिक कार्यसाधन के लिये, किया जाय। कूटनीति। (२) स्वतंत्र राष्ट्रों में आपस का व्यवहार संबंध। राजनीतिक संबंध।

डिप्लोमैट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो डिप्लोमेसी या कूटनीति में निपुण हो। कूटनीतिज्ञ।

डिफेमेशन-संज्ञा पुं० [अं०] किसी की अप्रतिष्ठा या अपमान करने के लिये गर्हित शब्दों का प्रयोग। ऐसे गंदे शब्दों का प्रयोग जिनसे किसी की मानहानि या बेइज्जती होती हो। मानहानि। अप्रतिष्ठा। अपमान। बेइज्जती। हतक इज्जत। जैसे,-इधर महीनों से उनपर डिफेमेशन केस चल रहा है।

डिलेवरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (२) किसी चीज का बाँटा या दिया जाना। (३) प्रसव होना।

डिविजनल-वि० [अं०] डिवीजन का। उस भूभाग कमिश्नरी या किस्मत का जिसके अंतर्गत कई जिले हों। जैसे,—डिविजनल कमिश्नर।

डिविडेंड-संज्ञा पुं० [अं०] वह लाभ या मुनाफा जो जायंट स्टाक कंपनी या सम्मिलित पूँजी से चलनेवाली कंपनी को होता है और जो हिस्सेदारों में, उनके हिस्से के मुताबिक, बँट जाता है। जैसे,—कृष्ण काटन मिल ने इस बार अपने हिस्सेदारों को पाँच सैंकड़े डिविडेंट बाँटा।

डिवीजन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह भूभाग जिसके अंतर्गत कई जिले हों। कमिश्नरी। जैसे,—बनारस डिवीजन। (२) विभाग। जैसे,—वह मैट्रिक्युलेशन परीक्षा में फर्स्ट डिवीजन में पास हुआ।

डिसकाउंट-संज्ञा पुं० [अं०] वह कमी जो व्यवहार या लेनदेन में किसी वस्तु के मूल्य में की जाती है। बट्टा। दस्तूरी। कमीशन।

डिसिप्लिन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) नियम या कायदे के अनुसार चलने की शिक्षा या भाव। अनुशासन। (२) आज्ञानुवर्त्तित्व। नियमानुवर्त्तित्व। फरमाँबरदारी। (३) व्यवस्था। पद्धति। (४) शिक्षा। तालीम। (५) दंड। सजा।

डिस्ट्रायर-संज्ञा पुं० [अं०] नाशक जहाज। वि० दे० "टारपीडो बोट"।

डिस्ट्रिक्ट-संज्ञा पुं० [अं०] किसी प्रदेश या सूबे का वह भाग जो एक कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। जिला।

यौ०—डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड-संज्ञा पुं० दे० "जिला बोर्ड"।

डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं० दे० "जिला मैजिस्ट्रेट।"

डिस्पेप्सिया-संज्ञा पुं० [अं०] मंदाग्नि। अग्निमांद्य। पाचन-शक्ति की कमी।

डीठना⊛†-क्रि० स० [हिं० डीठ + ना (प्रत्यय०)] (१) देखना। दृष्टि डालना। उ०—रूप गुरू कर चेलै डीठा। चित समाइ होइ चित्र पईठा।—जायसी। (२) बुरी दृष्टि लगाना। नजर लगाना। जैसे,—कल से बच्चे को बुखार आ गया; किसी ने डीठ दिया है।

डुडला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे बूदला भी कहते हैं।

डूँगा†-संज्ञा पुं० [सं० तुंग] छोटी पहाड़ी। टीला।

डेक†-संज्ञा पुं० [देश०] महानिंब। बकायन।

संज्ञा पुं० [अं०] जहाज पर का लकड़ी से पटा हुआ फर्श या छत।

डेमोक्रेसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह सरकार या शासन-प्रणाली जिसमें राजसत्ता जन-साधारण के हाथ में हो और उस सत्ता या शक्ति का प्रयोग वे स्वयं या उनके निर्वाचित प्रतिनिधि करें। वह सरकार जो जन-साधारण के अधीन हो। सर्वसाधारण द्वारा परिचालित सरकार। लोक-सत्ताक राज्य। प्रजा सत्तात्मक राज्य। (२) वह राष्ट्र जिसमें समस्त राजसत्ता जन-साधारण के हाथ में हो और वे सामूहिक रूप से या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन और न्याय का विधान करते हों। प्रजातंत्र। (३) राजनीतिक और सामाजिक समानता। समाज की वह अवस्था जिसमें कुलीन-अकुलीन, धनी-दरिद्र, ऊँच-नीच या इसी प्रकार का और भेद नहीं माना जाता।

डेमोक्रैट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो डेमोक्रेसी या प्रजासत्ता या लोकसत्ता के सिद्धांत का पक्षपाती हो। वह जो सरकार को प्रजासत्ताक या लोकसत्ताक बनाने के सिद्धांत का पक्षपाती हो। (२) वह जो राजनीतिक और प्राकृतिक समानता का पक्षपाती हो। वह जो कुलीनता-अकुलीनता या ऊँच-नीच का भेद न मानता हो।

डेरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह स्थान जहाँ गौएँ भैंसें रखी और दूध, मक्खन आदि बेचा जाता हो।

यौ०—डेरी फार्म।

डेरी फार्म-संज्ञा पुं० दे० "डेरी"।

डेला†-संज्ञा पुं० [हिं० डला] वह डला जिसमें बहेलिए पक्षी आदि बंद करके रखते हैं। उ०—कित नैहर पुनि आउब कित ससुरे यह खेल। आपु आपु कहँ होइहि परब पंखि जस डेल।—जायसी।

डेल आयरियन-संज्ञा स्त्री० [आयरिश] आयर्लैंड की पार्लमेंट या व्यवस्थापिका परिषद् जिसमें उस देश के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं।

डेली-संज्ञा स्त्री० दे० "डेल"। उ०-बंधिगा सुआ करत सुखकेली। चूरि पाँख मेलेसि धरि डेली।—जायसी।

डोम साल-संज्ञा पुं० [हिं० डोम + साल] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसे गीदड़ रूख भी कहते हैं। वि० दे० "गीदड़ रूख"।

डोमीनियन-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) स्वतंत्र शासन या सरकार। (२) स्वतंत्र शासनवाला देश या साम्राज्य। जैसे,—ब्रिटिश डोमीनियन।

डोल†-वि० [हिं० डोलना] डोलनेवाला। चंचल। उ०—तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल। तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल।—जायसी।

संज्ञा पुं० हलचल। उ०—बादसाह कहँ ऐस न बोलू। चढ़ै तौ परै जगत महँ डोलू।—जायसी।

क्रि० प्र०—पड़ना।

डोलढाक-संज्ञा पुं० [हिं० ढाक ?] पँगरा नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी के तख्ते बनते हैं। वि० दे० "पँगरा"।

ड्यूक-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० डचेज] (१) इँगलैंड, फ्रान्स, इटली आदि देशों के सामंतों और भूम्यधिकारियों की वंश परंपरागत उपाधि। इँगलैंड के सामंतों और भूम्यधिकारियों को दी जानेवाली सर्वोच्च उपाधि जिसका दर्जा प्रिंस के नीचे है। जैसे,—कनाट के ड्यूक।

विशेष—जैसे हमारे देश में सामंत राजाओं तथा बड़े बड़े जमींदारों को सरकार से महाराजाधिराज, महाराजा, राजा बहादुर, राजा आदि उपाधियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार इंगलैंड में सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों को ड्यूक, मार्किस, अर्ल, वाइकौंट, बैरन आदि की उपाधियाँ मिलती हैं। ये उपाधियाँ वंश-परंपरा के लिये होती हैं। उपाधि पानेवाले के मरने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र या उत्तराधिकारी उपाधि का भी अधिकारी होता है। इस प्रकार अधिकारी क्रम से उस वंश में उपाधि बनी रहती है। मार्किस, अर्ल, वाइकौंट और बैरन-उपाधिधारी लार्ड कहलाते हैं। मार्किस, बैरन आदि उपाधियाँ जापान में भी प्रचलित हो गई हैं।

(२) सामंत। सरदार। (३) राजा।

ड्यूटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) करने योग्य कार्य। कर्त्तव्य। धर्म्म। फर्ज। जैसे,—स्वयंसेवकों ने बड़ी तत्परता से अपनी ड्यूटी पूरी की। (२) वह काम जो सपुर्द किया गया हो। सेवा। खिदमत। पहरा। जैसे,—(क) स्वयंसेवक अपनी ड्यूटी पर थे। (ख) कल सवेरे वहाँ उसकी ड्यूटी थी। (३) नौकरी का काम। जैसे,—वह अपनी ड्यूटी पर चला गया। (४) कर। चुंगी। महसूल। जैसे,—सरकार ने नमक पर ड्यूटी कम नहीं की।

ड्राप-संज्ञा पुं० [अं०] (१) बूँद। बिंदु। (२) दे० "ड्रापसीन"।

ड्राप सीन-संज्ञा पुं० [अं०] नाट्यशाला या थियेटर के रंग-मंच के आगे का परदा जो नाटक का एक अंक पूरा होने पर गिराया जाता है। यवनिका।

ड्राफ्ट-संज्ञा पुं० [अं०] मसविदा। मसौदा। खर्रा। जैसे,—अपील का ड्राफ्ट तैयार कर के कमिटी में भेज दिया गया।

ड्रामा-संज्ञा पुं० [अं०] (१) रंगमंच पर नटों का आकृति, हाव भाव, वचन आदि द्वारा किसी घटना या दृश्य का प्रदर्शन। रंगमंच पर किसी घटना या घटनाओं का प्रदर्शन। अभिनय। (२) वह रचना जिसमें मानव-जीवन का चित्र अंकों और गर्भांकों आदि में चित्रित हो। नाटक।

ड्रेटनाट-संज्ञा पुं० [अं०] जंगी जहाज का एक भेद जो साधारण जंगी जहाजों से बहुत अधिक बड़ा, शक्तिशाली और भीषण होता है।

ड्रेन-संज्ञा पुं० [अं०] नगर के गंदे पानी के निकास का परनाला। मोरी।

ढकपन्ना†-संज्ञा पुं० [हिं० ढाक + पन्ना = पत्ता] पलास पापड़ा।

ढपना-क्रि० अ० [हिं० ढकना] ढका होना। उ०—लसतु सेत सारी ढप्यौ तरल तरौना कान। पर्‌यौ मनौ सुरसरि सलिल रवि प्रतिबिंबु बिहान।—बिहारी।

क्रि० स० ढाकना। ऊपर से ओढ़ाना।

ढसक-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) ठन ठन शब्द जो सूखी खाँसी में गले से निकलता है। (२) सूखी खाँसी जिसमें गले से ठन ठन शब्द निकलता है।

ढार-संज्ञा स्त्री० [अनु०] रोने का घोर शब्द। आर्त्तनाद। चिल्लाकर रोने की ध्वनि।

मुहा०—ढार मारना या ढार मारकर रोना=चिल्ला चिल्लाकर रोना।

ढारना-क्रि० स० [सं० धार] (३) चारों ओर घुमाना। डुलाना। (चँवर के लिये) उ०—रचि बिवान सो साजि सँवारा। चहुँ दिसि चँवर करहिं सब ढारा।—जायसी।

ढाल-संज्ञा पुं० [सं०] (२) एक प्रकार का बड़ा झंडा जो बहुत नीचे तक लटकता रहता है और जो राजाओं की सवारी के साथ चलता है। उ०—बैरख ढाल गगन गा छाई। चला कटक धरा न समाई।—जायसी।

ढीलना-क्रि० स० [हिं० ढीलना] (५) संभोग करना। प्रसंग करना। (बाजारू)

ढुलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलना] (१) ढुलने की क्रिया। (२) ढोए जाने की क्रिया। जैसे,—आजकल सामान की ढुलाई हो रही है। (३) ढोने की मजदूरी।

ढूँढी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) किसी चीज का गोल पिंड या लोंदा। (२) भुने हुए आटे आदि का बड़ा गोल लड्डू जो प्रायः देहाती लोग खाते हैं।

ढेंटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] धव का पेड़।

ढेबरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे चौरी, मामरी और रूही भी कहते हैं। वि० दे० "रूही"।

ढेरा-वि० [देश०] जिसकी आँखें की पुतलियाँ देखने में बराबर न रहती हों। भेंगा। अंबर तक्कू।

ढोवा†-संज्ञा पुं० [हिं० ढोना] (१) ढोए जाने की क्रिया। ढोवाई।

(२) लूट। उ०—सूतहि सून सँवरि गढ़ रोवा। कस होइहि जौ होइहि ढोवा।—जायसी।

ढोवाई-संज्ञा स्त्री० दे० "ढुलाई"।

तकरारी-वि० [अ० तकरार] तकरार करनेवाला। झगड़ालू। लड़ाका।

तकोली†-संज्ञा पुं० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसे पस्सी भी कहते हैं। वि० दे० "पस्सी"।

तज्ज्ञात पुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] निपुण श्रमी। होशियार कारीगर।

ततঞ-वि० [सं० तत्] उस। जैसे,—ततखन=तत्क्षण।

ततखन*-क्रि० वि० दे० "तत्क्षण"। उ०—ततखन आइ बिवाँन पहूँचा। मन तें अधिक गगन तें ऊँचा।—जायसी।

ततछनঞ-क्रि० वि० दे० "तत्क्षण"।

तति-वि० [सं०] लंबा चौड़ा। विस्तृत। उ०—यज्ञोपवीत पुनीत विराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति।—तुलसी।

तन तनहा-क्रि० वि० [हिं० तन+फा० तनहा] बिलकुल अकेला। जिसके साथ और कोई न हो। जैसे,—वह तन तनहा दुश्मन की छावनी से चला गया।

तनुलाप-संज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ जो मंत्र मात्र से साध्य हो। (कौ०)

तपाঞ†-संज्ञा पुं० [सं० तप] तप करनेवाला। तपस्वी। उ०—मठ मंडप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे।—जायसी।

तफरका-संज्ञा पुं० [अ०] विरोध। वैमनस्य।

क्रि० प्र०—डालना।—रहना।

तबेला-संज्ञा पुं० [अ० तवेल:] वह स्थान जहाँ घोड़े बाँधे जाते और गाड़ी, एक्के आदि सवारियाँ रखी जाती हों। अस्तबल। घुड़साल।

तमन्ना-संज्ञा स्त्री० [अ०] आकांक्षा। इच्छा। ख्वाहिश।

तमान-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घेरदार पाजामा जिसकी मोहरी नीचे से तंग होती है।

तमालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काले खैर का वृक्ष। कृष्ण खदिर।

तरतराता-वि० [हिं० तर] घी में अच्छी तरह डूबा हुआ (पकवान)। जिसमें से घी निकलता या बहता हो। (खाद्य पदार्थ)

तरमिरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो प्रायः डेढ़ दो हाथ ऊँचा होता है और पश्चिमी भारत में जौ या चने के साथ बोया जाता है। इसके बीजों से तेल निकलता है जो प्रायः जलाने के काम में आता है। तिरा।

तरसौहाँঞ-वि० [हिं० तरसना+औहाँ (प्रत्य०)] तरसनेवाला। उ०—तिय तरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह। धर-परसौंहैं ह्वै रहे झर-बरसौंहैं मेह।—बिहारी।

तरात्यय-संज्ञा पुं० [सं०] बिना आज्ञा लिये नदी पार करने का जुरमाना। (कौ०)

तरासनाঞ-क्रि० स० [सं० त्रास+ना (प्रत्य०)] भय दिखलाना। डराना। त्रस्त करना। उ०—चमक बीजु घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीव गरासा।—जायसी।

तरेंदा-संज्ञा पुं० [हिं० तरना+एंदा (प्रत्य०)] तैरनेवाला काठ। बेड़ा। उ०—सिंघ तरेंदा जेहि गहा पार भये तेहि साथ। ते ते बूड़े बाउरे भेंड़-पूँछि जिन्ह हाथ।—जायसी।

तवेला-संज्ञा पुं० दे० "तबेला"।

तहनाঞ-क्रि० अ० [हिं० तेह+ना (प्रत्य०)] क्रोध से जलना। क्रुद्ध होना। उ०—सदा चतुरई फबती नाहीं अति ही निझरि तही हौ।—सूर।

ताजঞ-संज्ञा पुं० [फा० ताजियाना] घोड़े को मारने की चाबुक। उ०—तीख तुखार चाँड़ औ बाँके। सँचरहिं पौरि ताज बिनु हाँके।—जायसी।

ताजीरात-संज्ञा पुं० [अ०] अपराध और दंड संबंधी व्यवस्थाओं या कानूनों का संग्रह। दंडविधि। जैसे,—ताजीरात हिंद।

ताड़ू-वि० [हिं० ताड़ना] ताड़नेवाला। भाँपने या अनुमान करनेवाला।

तादात्विक (राजा)-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जिसका खजाना खाली रहता हो। जितना धन राज-कर आदि में मिले, उसको खर्च कर डालनेवाला। (कौ०)

विशेष—आजकल के राज्य बहुधा इसी प्रकार के होते हैं। ये प्रबंध में व्यय करने के लिये ही धन एकत्र करते हैं।

तानापाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० ताना+पाई=ताने का सूत फैलाने का ढाँचा] बार बार किसी स्थान पर आना जाना। उसी प्रकार लगातार फेरे लगाना जिस प्रकार जुलाहे ताने का सूत पाई पर फैलाने के लिये लगाते हैं।

तानी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० तानना] अँगरखे या चोली आदि की तनी। बंद। उ०—कंचुकि चूर, चूर भइ तानी। टूटे हार मोति छहरानी।—जायसी।

ताप-व्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] वे गुप्तचर या खुफिया पुलिस के आदमी जो तपस्वियों या साधुओं के वेश में रहते थे।

विशेष—कौटिल्य के समय में ये समाहर्त्ता के अधीन होते थे। ये किसानों, गोपों, व्यापारियों तथा भिन्न भिन्न अध्यक्षों के ऊपर दृष्टि रखते थे तथा शत्रु राजा के गुप्तचरों और चोर डाकुओं का पता भी लगाया करते थे।

तार*-संज्ञा पुं० [सं० ताड़] (२) ताड़ नामक वृक्ष। उ०—कीन्हेसि बनखँड औ जरि मूरी। कीन्हेसि तरिवार तार खजूरी।—जायसी।

संज्ञा पुं० [सं०] (२१) तौल। उ०—तुलसी नृपहि ऐसो कहि न बुझावै कोउ पन और कुँअर दोऊ प्रेम की तुला धौं तारु।—तुलसी।

तारना-क्रि० स० [सं० तारण] (३) पानी की धारा देना। तरेरा

देना। उ०—मनहुँ बिरह के सद्य घाव हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारनि।—तुलसी।

तारामंडल-संज्ञा पुं० [सं०] (३) एक प्रकार का कपड़ा।

तारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) ४८ हाथ लंबी, ५ हाथ चौड़ी, और ४⅘ हाथ ऊँची नाव।

तालमूल-संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की ढाल। (कौ०)

ति-वि० [सं० तद् या त] वह। उ०—ति न नगरि ना नागरी, प्रति पद हंस क हीन।—केशव।

तिपाह-संज्ञा पुं० [सं० त्रि + पक्ष] वह श्राद्ध जो किसी की मृत्यु के पैंतालीसवें दिन किया जाता है।

तिउहार†-संज्ञा पुं० दे० "त्यौहार"। उ०—सखि मानैं तिउहार सब, गाइ देवारी खेलि। हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि।—जायसी।

तिगून-संज्ञा पुं० [हिं० तिगुना] (१) तिगुना होने का भाव। (२) आरंभ में जितना समय किसी चीज के गाने या बजाने में लगाया जाय, आगे चलकर वह चीज उसके तिहाई समय में गाना। साधारण से तिगुना जल्दी गाना या बजाना। वि० दे० "चौगून"।

तितराल-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ औषध के काम में आती है।

तिनउर‡-संज्ञा पुं० [सं० तृण + उर (या और (प्रत्य०)] तिनकों का ढेर। तृण-समूह। उ०—तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भइ बरखा, दुख आगरि जरी।—जायसी।

तियाग*†-संज्ञा पुं० दे० "त्याग"।

तियागना*‡-क्रि० स० [सं० त्याग + ना (प्रत्य०)] त्याग करना। छोड़ना।

तियागी*‡-वि० [सं० त्यागी] (१) त्याग करनेवाला। छोड़नेवाला। उ०—बलि बिक्रम दानी बड़ कहे। हातिम करन तियागी अहे।—जायसी।

तिरोजनपद-संज्ञा पुं० [सं०] अन्य राष्ट्र का मनुष्य। विदेशी।(कौ०)

तिलफरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा सुंदर सदाबहार वृक्ष जो हिमालय में ५-६ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की और चमकीली होती हैं।

तिलिस्मात-संज्ञा पुं० [यू० टेलिस्मन] (१) अद्भुत या अलौकिक कार्य्य। चमत्कार। करामात। (२) जादू। इंद्रजाल।

तिलहारी†-संज्ञा स्त्री० [?] झालर की तरह का वह परदा जो घोड़ों के माथे पर उनकी आँखों को मक्खियों से बचाने के लिये बाँधा जाता है। तुकता।

तीय*‡-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री। औरत। उ०—तीयहि कँवल सुगंध सरीरू। समुद लहरि सोहै तन चीरू।—जायसी।

तुंगला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पश्चिमी हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। गढ़वाल में लोग इसकी पत्तियों का तमाकू या सुरती के स्थान पर व्यवहार करते हैं। इसके फल खट्टे होते हैं और इमली की तरह काम में लाए जाते हैं।

तुखार-संज्ञा पुं० [सं० ?] (४) घोड़ा। अश्व। उ०—आना काटर एक तुखारू। कहा सो फेरौ भा असवारू।—जायसी।

तुलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलाना] गाड़ी के पहियों को औंगाने या धुरी में चिकना दिलवाने की क्रिया।

तुलामानांतर-संज्ञा पुं० [सं०] तौल में अंतर डालना। कम तौल के बटखरे रखना। हलके बाट रखना।

विशेष—कौटिल्य ने इस अपराध के लिये २०० पण दंड लिखा है।

तुलाहीन—संज्ञा पुं० [सं०] कम तौलना। डाँडी मारना।

विशेष—चाणक्य ने तौल की कमी में कमी का चार गुना जुरमाना लिखा है।

तूतिया-संज्ञा पुं० [सं० तुत्थ] नीला थोथा।

तूरा-संज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही नाम का बाजा। उ०—निसि दिन बाजहिं मादर तूरा। रहस कूद सब भरे सेंदूरा।—जायसी।

तूल-संज्ञा पुं० [अ०] लंबेपन का विस्तार। लंबाई।

यौ०—तूल अर्ज=लंबाई और चौड़ाई।

मुहा०—तूल खींचना=किसी बात या कार्य्य का आवश्यकता से बहुत बढ़ना। जैसे,—(क) ब्याह का काम बहुत तूल खींच रहा है। (ख) उन लोगों का झगड़ा बहुत तूल खींच रहा है। तूल देना= किसी बात को आवश्यकता से बहुत बढ़ाना। जैसे,—हर एक बात को तूल देने की तुम्हारी आदत है। तूल पकड़ना=दे० "तूल खींचना"।

तूलम तूल-क्रि० वि० [सं० तुल्य या अ० तूल = लंबाई] आमने सामने। बराबरी पर। उ०—कंत पियारे भेंट देखौ तूलम तूल होइ। भए बयस दुइ हेंठ मुहमद निति सरवरि करै।—जायसी।

तूष्णी युद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जिसमें षड्यंत्र के द्वारा शत्रु के मुख्य मुख्य व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर लिया जाय। (कौ०)

तृणमणि-संज्ञा पुं० [सं०] तृण को आकर्षित करनेवाला मणि। कहरुबा।

तृणाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण जो औषध के काम में आता है। पर्वतृण।

तेंदुस-संज्ञा पुं० [सं० टिंडिश] डेंड़सी नाम की तरकारी।

तेल चढ़ाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल + चढ़ाना] देशी छींट की छपाई में मिंडाई नाम की क्रिया। वि० दे० "मिंडाई"।

तेवान*†-संज्ञा पुं० [देश०] सोच। चिंता। फिकर। उ०—

मन तेवान कै राघव झूरा। नाहिं उबार जीउ डर-पूरा।—जायसी।

तोरकी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बनस्पति जो भारत के गरम प्रदेशों और लंका में प्रायः घास के साथ होती है। पश्चिमी भारत में अकाल के दिनों में गरीब लोग इसके दानों आदि की रोटियाँ बनाकर खाते हैं।

तोरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

तोषपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें राज्य की ओर से जागीर मिलने का उल्लेख रहता है। बख्शिशनामा।

त्योंॐ-संज्ञा स्त्री० [सं० तन] ओर। तरफ। उ०—सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं। पूछति ग्रामबधू सिय सों कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं।—तुलसी।

त्रासमानॐ-वि० [सं० त्रास + मान (प्रत्य०)] डरा हुआ। भयभीत। उ०—जोगी जती आव जो कोई। सुनतहि त्रासमान भा सोई।—जायसी।

त्रिभुवननाथ-संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन + नाथ] जगदीश। परमेश्वर। उ०—त्यों अब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सह सुत।—केशव।

त्र्यवरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन सदस्यों की शासक-सभा। वि० दे० "दशावरा"।

विशेष—मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक ने तीन सभ्यों से ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी का तात्पर्य्य लिया है।

थलपति-संज्ञा पुं० [सं० स्थल + पति] राजा। उ०—स्रवन नयन मन लगे सब थलपति तायो।—तुलसी।

थाक-संज्ञा पुं० [सं० स्था] (३) सीमा। हद। उ०—मेरे कहाँ थाकु गोरस को नवनिधि मंदिर यामहिं।—तुलसी।

थाकना†-क्रि० अ० [हिं० थकना] (२) रुकना। ठहरना। उ०—जग जल बूड़ तहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी।—जायसी।

थालिका-संज्ञा स्त्री० [हिं० थाला] वृक्ष का थाला। आलबाल। उ०—पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवल धार भजन भवभार भक्ति कल्प थालिका।—तुलसी।

थियेटर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह मकान जहाँ नाटक का अभिनय दिखाया जाता है। नाट्यशाला। नाटक घर। (२) अभिनय। नाटक।

थियोसोफिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] थियोसोफी के सिद्धान्तों को माननेवाला।

थियोसोफी-संज्ञा स्त्री० [अं०] ईश्वरीय ज्ञान जो किसी दैवी शक्ति अथवा आत्मा के प्रकाश से हुआ हो। ब्रह्मविद्या।

थिरकौहाँ†-वि० [हिं० थिरकना + औहाँ (प्रत्य०)] थिरकनेवाला। थिरकता हुआ।

वि० [हिं० स्थिर] ठहरा हुआ। स्थिर। उ०—दृग थिरकौहैं अधखुलैं देह थकौहैं ढार। सुरत सुखित सी देखियति दुखित गरभ कै भार।—बिहारी।

थिरथानीॐ-संज्ञा पुं० [सं० स्थिर + स्थान] स्थिर स्थानवाले, लोकपाल आदि। उ०—सुकृत सुमन तिल-मोद बासि बिधि जतन जंत्र भरि कानी। सुख सनेह सब दियो दसरथहिं खरि खेलेल थिरथानी।—तुलसी।

थीथीॐ-संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] (१) स्थिरता। (२) धैर्य्य। धीरज। इतमीनान। उ०—पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती। टेकु पियास, बाँधु मन थीती।—जायसी।

थीरॐ-वि०[सं० स्थिर] स्थिर। ठहरा हुआ। उ०—उलथहि मानिक मोती हीरा। दरब देखि मन होइ न थीरा।—जायसी।

थूर-संज्ञा पुं० [सं० तुवरा] अरहर। तूर।

दंड-ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो सरकारी जुरमाना देने के लिये लिया गया हो।

दंडखेदी-संज्ञा पुं० [सं० दंडखेदिन्] वह मनुष्य जो राज्य से दंड पाने के कारण कष्ट में हो। दंड से दुखी व्यक्ति।

विशेष—प्राचीन काल में भिन्न भिन्न अपराधों के लिये हाथ पैर काटने, अंग जलाने आदि का दंड दिया जाता था जिसके कारण दंडित व्यक्ति बहुत दिनों तक कष्ट में रहते थे। कौटिल्य ने ऐसे व्यक्तियों के कष्ट का उपाय करने की व्यवस्था की थी।

दंडचारी-संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति। (कौ०)

दंडधारणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि या प्रदेश जहाँ प्रबंध और शासन के लिये सेना रखनी पड़े। (कौ०)

दंडमान-वि० [सं० दंड + मान (प्रत्य०)] दंड पाने योग्य। दंडनीय। उ०—अदंडमान दीन गर्व दंडमान भेदवै।—केशव।

दंडव्यूह- संज्ञा पुं० [सं०] (२) पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में सेना की समान स्थिति। (कौ०)

दंडसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो सेना या लड़ाई का सामान लेकर की जाय। (कौ०)

दंडस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह जनपद या राष्ट्र जिसका शासन सैन्य द्वारा होता हो। (कौ०)

दंडाकरनॐ-संज्ञा पुं० दे० "दंडकारण्य"। उ०—परे आइ बन परबत माहाँ। दंडाकरन बीझ-बन जाहाँ।—जायसी।

दंडित-वि० [सं०] (२) जिसका शासन किया गया हो। शासित। उ०-पंडित गण मंडित गुण दंडित मति देखिये।—केशव।

दंडोपनत-वि० [सं०] पराजित और अधीन (राजा)। (कौ०)

दइतॐ-संज्ञा पुं० दे० "दैत्य"। उ०-कीन्हेसि राकस भूत परीता। कीन्हेसि भोकस देव दईता।—जायसी।

दक्ष दिशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा।

दगना-क्रि० अ० [अ० दाग] (१) दागा जाना। अंकित होना। चिह्नित होना। (२) प्रसिद्ध होना। मशहूर होना। उ०—लोक बेद हूँ लौं दगौ नाम भले को पोच। धर्मराज जस गाज पवि कहत सकोच न सोच।—तुलसी।

दगला-संज्ञा पुं० दे० "दगला"। उ०—सौंर सुपेती मंदिर राती। दगल चीर पहिरहिं बहु भाँती।—जायसी।

दत्तस्यानपाकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] कोई चीज किसी को देकर फिर लौटाना। एक बार दान करके फिर वापस माँगना या लेना। (कौ०)

दमन॥-संज्ञा स्त्री० दे० "दमयंती"। उ०—दमनहिं नलहिं जो हंस मेरावा। तुम्ह हीरामन नावँ कहावा।—जायसी।

दरबंदी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) किसी चीज की दर या भाव निश्चित करने की क्रिया। (२) लगान आदि की निश्चित की हुई दर। (३) अलग अलग दर या विभाग आदि निश्चित करने की क्रिया।

दरसनी॥-संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] दर्पण। शीशा। आइना। उ०—नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी चक चाष। दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहि मन अभिलाष।—तुलसी।

दर्पमद्य क्रीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रसिकता या रँगीलेपन के खेल। नाच रंग आदि।

दर्शनप्रातिभाव्य ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो दर्शन-प्रतिभू की साख पर लिया गया हो।

दलकन-संज्ञा स्त्री० [हिं० दलकना] (१) दलकने की क्रिया या भाव। दलक। (२) झटका। आघात। उ०—मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय सुख झकझोरा रे।—तुलसी।

दलित-वि० [सं०] (५) जो दबा रखा गया हो। दबाया हुआ। जैसे,—भारत की दलित जातियाँ भी अब उठ रही हैं।

दवँगरा‡-संज्ञा पुं० [सं० दव + अंगार ?] वर्षा ऋतु के आरंभ में होनेवाली झड़ी। उ०—बिहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि-दवँगरा मेरवहु एका।—जायसी।

दशमूली संग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] वे दस चीज़ें जो आग से बचने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को घर में रखनी चाहिएँ।

विशेष—चंद्रगुप्त मौर्य के समय में निम्नलिखित दस चीजों को घर में रखने के लिये प्रत्येक व्यक्ति राजनियम के द्वारा बाध्य था। (१) पानी से भरे हुए पाँच घड़े, (२) पानी से भरा हुआ एक मटका, (३) सीढ़ी, (४) पानी से भरा हुआ बाँस का बरतन, (५) फरसा या कुल्हाड़ी, (६) सूप, (७) अंकुश, (८) खूँटा आदि उखाड़ने का औजार, (९) मशक और (१०) इत्यादि। इन दसों चीजों का नाम दशमूली संग्रह था। जो लोग इनके रखने में प्रमाद करते थे, उनको ¼ पण जुरमाना देना पड़ता था। (कौ०)

दशावरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दस सभ्यों की शासक-सभा। दस पंचों की राज-सभा।

विशेष—ऐसी सभा जो व्यवस्था दे, उसका पालन मनु ने आवश्यक लिखा है। गौतम ने दशावरा के दस सभ्यों का विभाग इस प्रकार बताया है कि चार तो भिन्न भिन्न वेदों के, तीन भिन्न भिन्न आश्रमों के और तीन भिन्न भिन्न धर्मों के प्रतिनिधि हों। बौद्धायन ने धर्मों के तीन ज्ञाताओं के स्थान पर मीमांसक, धर्मपाठक और ज्योतिषी रखे हैं।

दसन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पंजाब, सिंध, राजपूताने और मैसूर में पाई जाती है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है। दसरनी।

दसरनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी। वि० दे० "दसन"।

दहन-संज्ञा पुं० [देश०] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी। वि० दे० "कंजा"।

दाउँ॥-संज्ञा पुं० [हिं० दाँव] दाँवँ। दफा। बार। उ०—ऐस जो ठाकुर किय एक दाउँ। पहिले रचा मुहम्मद नाउँ।—जायसी।

दाख॥-वि० दे० "दक्ष"। उ०—ताकौं बिहित बखानहीं, जिनकी कविता दाख।—मतिराम।

दाख निरबिसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दाख + निर्विषी ?] हर जेवड़ी नाम की झाड़ी जिसकी पत्तियों और जड़ का औषध रूप में व्यवहार होता है। पुरही।

दान-प्रतिभू-संज्ञा पुं० [सं०] वह जामिन जो यह कहे कि "यदि इसने ब्याज सहित धन न लौटाया तो मैं ही धन दे दूँगा।"

दायोपगत दास-संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो वरासत में मिला हो।

दार-प्रत्य० [फा०] रखनेवाला। वाला। जैसे,—मालदार, दूकानदार।

दिआना‡-क्रि० स० दे० "दिलाना"। उ०—सब दिन राजा दान दिआवा। भइ निसि नागमती पहँ आवा।—जायसी।

दिखादिखी‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] देखादेखी। सामना। उ०—जे तब होत दिखादिखी भई अमी इक आँक। रहैं तिरीछी डीठि अब ह्वै बीछी को डाँक।—बिहारी।

दिगपाल-संज्ञा पुं० दे० "दिक्पाल"। उ०—(क) चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल पालि ऋषिराज के बचन परचण्ड को।—केशव। (ख) दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।—केशव।

दिठादिठी*-संज्ञा स्त्री० [हिं० दीठ] देखा देखी। सामना। उ०—लहि सूनैं घर करु गहत दिठादिठी की ईठि। गड़ी सुचित नाहीं करति करि ललचौंहीं डीठि।—बिहारी।

दिठाना†–क्रि० स० [हिं० दीठ + आना (प्रत्य०)] नजर लगाना । दृष्टि लगाना ।

क्रि० अ० नजर लगना ।

दिनअर@–संज्ञा पुं० [सं० दिनकर] सूर्य्य । उ०—गहन छूट दिनअर कर ससि सों भएउ मेराव । मँदिर सिंहासन साजा बाजा नगर बधाव ।—जायसी ।

दिनभृति–संज्ञा पुं० [सं०] रोज की मजदूरी पर काम करनेवाला मज़दूर ।

दिपाना†–क्रि० अ० दे० "दिपना" । उ०—कनक कलस मुखचन्द दिपाहीं । रहस केलि सन आवहिं जाहीं ।—जायसी ।

क्रि० स० [हिं० दिपना] दीप्त करना । चमकाना ।

दियना@–क्रि० अ० [सं० दीप्त] दीप्त होना । चमकना । उ०—बालकेलि बातबस झलकि झलमलत सोभा की दीयट मानों रूप दीप दियो है ।—तुलसी ।

दियरा–संज्ञा पुं० [हिं० दिया] (२) वह बड़ा सा लुक जो शिकारी हिरनों को आकर्षित करने के लिये जलाते हैं । उ०—सुभग सकल अंग अनुज बालक संग देखि नर नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे ।—तुलसी ।

दिवस-संजात–संज्ञा पुं० [सं०] दिन भर का काम ।

विशेष—मजदूर दिन भर में जितना काम करता था, उसी के अनुसार चंद्रगुप्त के समय में उसको रोजाना मजदूरी दी जाती थी ।

दिस्टि*‡–संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दृष्टि । नजर । उ०—जहँ जो ठाँव दिस्टि मँह आवा । दरपन भाव दरस देखरावा ।—जायसी ।

दिस्टि-बंध@–संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिबंधन] इंद्रजाल । जादू । उ०—राघव दिष्टिबंध कल्हि खेला । सभा माँझ चेटक अस मेला ।—जायसी ।

दीठवंत@–संज्ञा पुं० [हिं० दीठ + वंत (प्रत्य०)] (१) वह जिसे दिखाई देता हो । सुझाखा । (२) ज्ञानी । उ०—ना वह मिला न बेहरा ऐस रहा भरिपूर । दीठिवंत कहँ नीयरे अंध मूरुखहिं दूर ।—जायसी ।

दीर्घा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) ८८ हाथ लंबी, ४४ हाथ चौड़ी और ४४ हाथ ऊँची नाव ।

दीर्घिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] ३२ हाथ लंबी, ४ हाथ चौड़ी और ३$\frac{1}{5}$ हाथ ऊँची नाव । (युक्ति कल्पतरु)

दुऊ–वि० दे० "दोनों" । उ०—देखि दुऊ भये पायन लीने । —केशव ।

दुखदानि@–वि० [सं० दुःख + दान] दुःख देनेवाली । तकलीफ पहुँचानेवाली । उ०—यह सुनि गुरु बानी धनु गुन तानी जानी द्विज दुखदानि ।—केशव ।

दुखहाया†–वि० [हिं० दुख + हाया (प्रत्य०)] [स्त्री० दुखहाई] दुःख से भरा हुआ । दुःखित । उ०—दुखहाइनु चरचा नहीं आनन आनन आन । लगी फिरैं ढूका दिए कानन कानन कान ।—बिहारी ।

दुज्जन–वि० दे० "दुर्जन" । उ०—दुज्जन को दाह कर दसहू दिसान में ।—मतिराम ।

दुड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + ड़ी (प्रत्य०)] ताश का वह पत्ता जिसमें दो बूटियाँ होती हैं । दुक्की ।

दुभिख†–संज्ञा पुं० दे० "दुर्भिक्ष" ।

दुभुज–वि० दे० "द्विभुज" ।

दुर्गकोपक–संज्ञा पुं० [सं०] किले में बगावत फैलानेवाला विद्रोही ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में इसको कपड़े में लपेट कर जीता जला दिया जाता था ।

दुर्गतकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] वह काम जो अकाल पड़ने पर पीड़ितों की सहायता के लिये राज्य की ओर से खोला जाय । (कौ०)

दुर्गतसेतु कर्म–संज्ञा पुं० [सं०] टूटे हुए मकानों की मरम्मत का काम जो दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता के लिये राज्य की ओर से खोला जाय । (कौ०)

दुर्गति–संज्ञा स्त्री० [सं० दुः + गति] दुर्गम होने का भाव । दुर्गमता । उ०—दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में ।—केशव ।

दुर्गापाश्रया भूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसमें किले हों; अर्थात् जो सेना रखने के उपयोगी हो ।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि राज्य करने के लिये यदि एक ओर अच्छे किलेवाली जमीन हो और दूसरी ओर घनी आबादीवाली जमीन, तो घनी आबादीवाली जमीन को ही पसंद करना चाहिए; क्योंकि मनुष्यों पर ही राज्य होता है, न कि जमीन पर । जनशून्य भूमि से राज्य को आमदनी नहीं हो सकती । घनी आबादीवाली भूमि को चाणक्य ने पुरुषापाश्रया भूमि लिखा है ।

दुर्जय व्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें सेना चार पंक्तियों में खड़ी की जाय । (कौ०)

दुष्टपार्ष्णिग्राह–वि० [सं०] (सेना) जिसके पीछे की सेना दुष्ट हो ।

दुसंत@–संज्ञा पुं० दे० "दुष्यन्त" । उ०—जैस दुसंतहि साकुन्तला । मधवानलहि कामकंदला ।—जायसी ।

दुहत्था शासन–संज्ञा पुं० दे० "द्विदल शासन प्रणाली" ।

दुहूँ–वि० [हिं० दो + हूँ (प्रत्य०)] दोनों ही । उ०—दुहूँ भाँति असमंजसै, बाण चले सुखपाय ।—केशव ।

दुहेल†–संज्ञा पुं० [सं० दुर्हेला] दुःख । विपत्ति । मुसीबत उ०—पदमावति जगरूपमनि कहँ लगि कहौं दुहेल । तेहि समुद महँ खोएउँ हौं का जिऔं अकेल ।—जायसी ।

दूतावास–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो किसी दूसरे राज्य या देश में रहनेवाले किसी सरे राज्य या देश के राजदूत या

वाणिज्य दूत के अधिकारांतर्गत हो। राजदूत या वाणिज्य दूत का कार्यालय। राजदूत या वाणिज्यदूत का निवास-स्थान। कान्स्युलेट। जैसे—(क) शंघाई में रूसी दूतावास पर स्थानीय पुलिस ने चढ़ाई की और कितने ही आदमियों को गिरिफ्तार किया। (ख) महाराज जार्ज के पधारने पर रोमस्थित ब्रिटिश दूतावास में बड़ा आनन्द मनाया गया।

दूधफेनी-संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धफेनी] एक प्रकार का पौधा जो दवा के काम में आता है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + फेनी] फेनी नाम का पकवान जो मैदे का बना हुआ और सूत के लच्छों के रूप में होता है और जो दूध में भिगो कर खाया जाता है।

दूरपात-वि० [सं०] दूर से आने के कारण थकी। (सेना) वि० दे० "नवागत"।

दूषण-वि० [सं०] विनाशक। संहारक। मारनेवाला। उ०—लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न रीह दानव-दल दूषण।—केशव।

दूष्य महामात्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह न्यायाधीश या महामात्र नायक राजकर्मचारी जो भीतर भीतर राज्य का शत्रु हो या शत्रु का साथी हो।

दूष्ययुक्त-वि० [सं०] राजविद्रोहियों से युक्त (सेना)।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है लि दूष्ययुक्त तथा दुष्टपार्ष्णिग्राह (जिसके पीछे की सेना दुष्ट हो) सेना में दूष्ययुक्त सेना उत्तम है, क्योंकि आप्त पुरुषों के आधिपत्य में वह लड़ सकती है; पर पीछे के आक्रमण से घबराई हुई दुष्टपार्ष्णिग्राह सेना नहीं लड़ सकती। (कौ०)

दृढ़कव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें पक्ष तथा कक्ष कुछ कुछ पीछे हटे हों। (कौ०)

दृताग्रवेग-वि० [सं०] (सेना) जिसका अग्र भाग नष्ट हो गया हो। वि० दे० "प्रतिहत"।

देय धर्म-संज्ञा पु० [सं०] दान धर्म।

विशेष—शिलालेखों में इस शब्द का विशेष रूप से प्रयोग मिलता है।

देय विसर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] देने योग्य वस्तु किसी को दे देना। (कौ०)

देवकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें लपसी, शाक, दूध, दही, घी इनमें से क्रमशः एक एक वस्तु तीन तीन दिन तक खाते थे और उसके बाद तीन दिन तक वायु ही पर रहते थे।

देवतुष्टिपति-संज्ञा पु० [सं०] पुजारी। (शुक्रनीति)

देवदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (५) इन्द्र। उ०—तहँ राजा दशरथ लसैं देवदेव अनुरूप।—केशव।

देवपथ-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह मार्ग जो किसी देव-मंदिर की ओर जाता हो।

देवल-संज्ञा पुं० [सं देव ?] एक प्रकार का चावल। उ०—धनिया देवल और अजाना। कहँ लगि बरनत जावौं धाना।—जायसी।

देवारी‡-संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दीपावली। दीवाली। उ०—अबहूँ निठुर आउ एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।—जायसी।

देशचरित्र-संज्ञा पुं० [सं०] देश की प्रथा। रवाज। (कौ०)

देश-धर्म-संज्ञा पुं० [सं०] देश का आचार व्यवहार।

विशेष—मनु का मत है कि राजा देश के धर्म का आदर करे और उसी के अनुसार शासन करे।

देशपीड़न-संज्ञा पुं० [सं०] प्रजा पर अत्याचार। राष्ट्र को हानि पहुँचाना। (कौ०)

देशांतरित पण्य-संज्ञा पुं० [सं०] देसावरी माल। विदेशी माल। दूर देश का माल। (कौ०)

दैउ-*‡-संज्ञा पुं० दे० "दैव"। उ०—सुनि अस लिखा उठा जरि राजा। जानौ दैउ तड़पि घन गाजा।—जायसी।

दैनंदिन संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जो ब्रह्मा के पचास वर्ष बीतने पर होता है। मोहरात्रि।

दैव-संज्ञा पुं० [सं०] (४) योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें योगी उन्मत्तों की तरह आँखें बंद करके चारों ओर देखता है। (मार्कंडेय पु०)

दैवकृत दुर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो प्राकृतिक रूप में ही दुर्ग के समान दृढ़ और चारों ओर से रक्षित हो। (कौ०)

दैवत-संयोग-ख्यापन-संज्ञा पुं० [सं०] किसी देवी देवता के साथ संबंध प्रसिद्ध करना। यह बात फैलाना कि हमें अमुक देवता का इष्ट है या अमुक देवता ने हमें विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया है, या युद्ध में अमुक देवता हमारी सहायता पर है।

विशेष—कौटिल्य ने अपने पक्ष की सेना को उत्साहित और शत्रु-सेना को उद्विग्न तथा हतोत्साह करने के लिये यह नीति या ढंग बताया है। उस ने कई प्रयोग कहे हैं। सुरंग के द्वारा देवमूर्त्ति के नीचे पहुँचकर कुछ बोलना, रात में सहसा प्रकाश दिखाना, पानी के ऊपर रात को रस्सी में बँधी कोई मूर्ति तैराकर फिर उसे गायब कर देना।

दैवप्रमाण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो भाग्य पर विश्वास रखकर हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे।

विशेष—चाणक्य के मत से ऐसे व्यक्तियों को उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए। निर्जन स्थान में पहुँचकर वे अपने आप कर्म करेंगे, अन्यथा कष्ट देंगे। (कौ०)

दो-अरबा-वि० [फा०] दो बार भभके में खींचा या चुआया

हुआ । दो-आतशा । जैसे,—दो-जरबा शराब । दो-जरबा अरक ।

दोहना*-क्रि० स० [सं० दोष+ना] (१) दोष लगाना । दूषित ठहराना । (२) तुच्छ ठहराना । उ०—बेनी नव-बाला की बनाय गुही बलभद्र कुसुम असन पाट मन मोहियत है । कारी सटकारी नीकी राजत नितंब नीचे पन्नग की नारिन की देह दोहियत है ।—बलभद्र ।

द्याना*†-क्रि० स० [हिं० दिलाना] देना का प्रेरणार्थक रूप । दिलवाना । दिलाना । उ०—फिरि सुधि दै सुधि द्याइयौ इहिं निरदई निरास । नई नई बहुर्यौ दई दई उसासि उसास ।—बिहारी ।

द्यूताध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजकीय अधिकारी जो जूए का निरीक्षण करता था और जुआरियों से राजकीय भाग ग्रहण करता था । स्थान स्थान पर बने हुए जूए के सरकारी अड्डे इसी के निरीक्षण में रहते थे । जो कोई किसी दूसरे स्थान पर जूआ खेलता था, उसको १२ पण जुरमाना देना पड़ता था । (कौ०)

द्यूताभियोग-संज्ञा पुं० [सं०] जूए संबंधी मुकदमा । (कौ०)

द्यूतावास-संज्ञा पुं० [सं०] जूआ खाना । (कौ०)

द्रम्म-संज्ञा पुं० [सं० मि० फा० दिरम] १६ पण के मूल्य का चाँदी का एक प्राचीन सिक्का ।

विशेष—मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व भारत में इसका व्यवहार विशेष रूप से था । लीलावती में प्रश्न आदि निकालने में इसी का प्रयोग किया गया है । उसमें लिखा है कि २० कौड़ी बराबर एक काकिणी के, ४ काकिणी बराबर १ पण के, १६ पण बराबर १ द्रम्म के तथा १६ द्रम्म बराबर १ निष्क के होता है ।

द्रव्यवन-संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ियों के लिये रक्षित वन । वह जंगल जहाँ से लकड़ी आती हो । (कौ०)

द्रव्यवन भोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह जागीर या उपनिवेश जिसमें लकड़ी तथा और जांगलिक पदार्थों की बहुतायत हो ।

विशेष—प्राचीन आचार्य्य ऐसे उपनिवेश को ही पसंद करते थे जिसमें जांगलिक पदार्थ बहुतायत से हों । परंतु चाणक्य का मत है कि लकड़ियाँ तथा जांगलिक पदार्थ सभी स्थानों में पैदा किए जा सकते हैं; इसलिये उत्तम उपनिवेश वही है जिसमें हाथीवाले जंगल हों ।

द्रव्यवनादीपिक-संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी आदि के लिये रक्षित जंगल में आग लगानेवाला । (कौ०)

द्रव्यसार-संज्ञा पुं० [सं०] बहुमूल्य पदार्थ । उपयोगी पदार्थ ।

द्रूणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) लकड़ी का धनुष । (कौ०)

द्रोणमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (२) चार सौ गाँवों के बीच का किला ।

द्वादसबानी-वि० दे० "बारहबानी" । उ०—वह पदमिनि चितउर जो आनी । काया कुंदन द्वादस-बानी ।—जायसी ।

द्वारादेय शुल्क-संज्ञा पुं० [सं०] द्वार पर देय कर । दरवाजे पर लिया जानेवाला महसूल । चुंगी । (कौ०)

द्विगूढ़-संज्ञा पुं० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक । वह गीत जिसमें सब पद सम और सुंदर हों, संधियाँ वर्त्तमान हों तथा रस और भाव सुसंपन्न हों । (नाट्य शास्त्र)

द्विदल शासन-प्रणाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की शासन प्रणाली या सरकार जिसमें शासन-अधिकार दो भिन्न व्यक्तियों के हाथ में रहता है । द्वैध शासन प्रणाली । दुहत्था शासन । वि० दे० "डायार्की" ।

द्विनेत्रभेदी-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जिसने किसी की दोनों आँखें फोड़ दी हों ।

विशेष—जो लोग यह अपराध करते थे, उनकी दोनों आँखें 'योगांजन' लगाकर फोड़ दी जाती थीं । ८०० पण देकर लोग इस दंड से बच सकते थे । (कौ०)

द्विपटवान-संज्ञा पुं० [सं०] दोहरे अर्ज का कपड़ा । ज्यादा अर्ज का कपड़ा । (कौ०)

द्विपादवध-संज्ञा पुं० [सं०] दोनों पैर काटने का दंड ।

विशेष—जो लोग मृत पुरुष की जायदाद, पशु या दासी आदि की चोरी करते थे, उनको यह दंड दिया जाता था । (कौ०)

द्वैधशासन प्रणाली-संज्ञा स्त्री० दे० "द्विदल शासन प्रणाली" ।

द्वैधीभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक से लड़ना तथा दूसरे के साथ संधि करना । (२) दोनों ओर मिलकर रहना ।

विशेष—कामंदक ने लिखा है कि जो राजा सबल न हो और जिसके इधर उधर बलवान राज्य हों, वह द्वैधीभाव से काम चलावे अर्थात् अपने आप को दोनों पक्षों का मित्र प्रकट करता रहे ।

द्वैराज्य संज्ञा पुं० [सं०] एक ही देश पर दो राजाओं का राज्य ।

विशेष—इसी को वैराज्य भी कहते थे । कौटिल्य ने इसे असंभव कहा है । परन्तु कहीं कहीं इस प्रकार के राज्य होने का प्रमाण मिलता है ।

द्यगबल विभाग-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसके पक्ष में सैनिक, पार्श्व में हाथी, पीछे रथ और आगे शत्रु के व्यूह के अनुसार व्यूह बना हो । (कौ०)

धँधार-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूआँ] ज्वाला । लपट । उ०—कंथा जरै आगि जनु लाई । विरह-धँधार जरत न बुझाइ ।—जायसी ।

धक्का पेल-संज्ञा स्त्री० [हिं० धक्का + पेलना] धक्कमधुक्का । भीड़भाड़ में होनेवाली धक्केबाजी ।

धनधारी-संज्ञा पुं० [सं० धन + धारी] (१) कुबेर । उ०—राम-निछावरि लेन को हठि होत भिखारी । बहुरियत तेहि देखिए मानहुँ धनधारी ।—तुलसी । (२) बहुत बड़ा अमीर । परम धनवान ।

धनुक-संज्ञा पुं० [सं० धनुष] इन्द्रधनुष । उ०—भौंहैं धनुक अनुक पै हारा । नैननिह साध बान-विष मारा ।—जायसी ।

धन्न॥†-वि० [सं० धन्य] धन्य । उ०—धनि पुरुष अस नवै न नाए । औ सु-पुरुख होइ देस पराए ।—जायसी ।

धमनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] तूर । तुरही बाजा । (कौ०)

धर-संज्ञा स्त्री० [सं० धरा] पृथ्वी । धरती । उ०—(क) मानहु शेष अशेषधर धरनहार बरिबंड ।—केशव । (ख) सरजू सरिता तट नगर बसै वर । अवध नाम यशधाम धर ।—केशव ।

धरक-संज्ञा पुं० [सं०] अनाज की मंडी में अनाज तोलने का काम करनेवाला । बया ।

धरधर-संज्ञा पुं० दे० "धरहर" ।

धरनहार-वि० [हिं० धारना + हार (प्रत्य०)] धारण करनेवाला । उ०—मानहु शेष अशेषधर धरनहार बरिबंड ।—केशव ।

धरनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धारना या सं० धारण] किसी बात पर दृढ़तापूर्वक अड़े रहना । टेक । उ०—तुलसी अब राम को दास कहाइ हिये धरु चातक की धरनी ।—तुलसी ।

धरमसार†-संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मशाला] (१) धर्मशाला । (२) सदावर्त्त । खैरात खाना । उ०—रानी धरमसार पुनि साजा । बंदि मोख जेहि पावहिं राजा ।—जायसी ।

धरहर-संज्ञा पुं० [सं० धैर्य्य ?] दृढ़ विश्वास । निश्चय । उ०—जम करि मुँह तरहरि परयौ इहिं धरहरि चित लाउ । विषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ ।—बिहारी ।

धर्म्मदापन (ऋण)-संज्ञा पुं० [सं०] (२) समझाने बुझाने से से या अपने आप जब ऋणी ऋण का धन लौटावे, तो उसको धर्म्मदापन कहते हैं ।

धर्म्मपरिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म्म सभा । न्याय करनेवाली सभा । न्यायाध्यक्षों का मंडल ।

धर्म्मराज-संज्ञा पुं० [सं०] (५) न्यायकर्ता । न्यायाधीश । उ०—सेनापति बुधजन, मंगल गुरु गण, धर्मराज मन बुद्धि घनी ।—केशव ।

धर्मविजयी-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो नम्रता या विनय ही से संतुष्ट हो जाय ।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार दुर्बल राजा को पहले धर्मविजयी राजा का सहारा लेना चाहिए ।

धर्म्मसभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) वह स्थान जहाँ धार्म्मिक विषयों की चर्चा या उपदेश हो ।

धर्मस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] धर्माध्यक्ष । न्यायाधीश ।

विशेष—भारतीय आर्य्यों में लोक को व्यवस्थित रखनेवाले नियम, जिनका पालन राज्य कराता था, धर्म ही कहलाते थे । कानून भी धर्म ही कहलाते थे । कानून धर्म से अलग नहीं माना जाता था ।

धर्मस्थीय-संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय ।

धर्मांशु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य । उ०—जयति धर्मांसु संदग्ध संपाति नवपच्छ लोचन दिव्य देह-दाता ।—तुलसी ।

धर्मावसथि, धर्मावस्थायी-संज्ञा पुं० [सं०] पुण्य विभाग का अधिकारी ।

विशेष—चाणक्य के समय में इसका कार्य, यात्रियों तथा वैरागियों को शहर में ठहरने के लिये स्थान देना था । कारीगर तथा शिल्पी अपनी जिम्मेवारी पर रिश्तेदारों, साधुओं, संन्यासियों तथा श्रोत्रियों को अपने मकान में बसाते थे । यही बात व्यापारियों को करनी पड़ती थी ।

धसक-संज्ञा स्त्री० [हिं० धसकना] (१) धसकने की क्रिया या भाव । (२) डर । भय । दहशत । जैसे,—उनके मन में कुछ धसक बैठ गई है ।

धसकन-संज्ञा स्त्री० दे० "धसक" ।

धसकना-क्रि० अ० [हिं० धँसना] मन में भय उत्पन्न होना । जी दहलना । उ०—गवनचार पद्मावति सुना । उठा धसकि जिउ औ सिर धुना ।—जायसी ।

धाकना॥-क्रि०अ० [हिं० धाक + ना (प्रत्य०)] धाक जमाना । रोब जमाना । उ०—दास तुलसी के बिरुद बरनत बिदुष बीर बिरुदैत बर बैरि धाके ।—तुलसी ।

धान्यभोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि या जागीर जिसमें अन्न बहुत होता हो ।

धान्यवाप-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जिसमें अन्न बहुतायत से पैदा होता हो । (कौ०)

धाम-संज्ञा पुं० [देश०] फालसे की जाति का एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो मध्य और दक्षिण भारत में पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ तीन से छः इंच तक लंबी और गोलाई लिए होती हैं ।

धामन-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की घास जो नरम और रेतीली भूमि में बहुत अधिकता से होती है । यह प्रायः वर्षा ऋतु में बहुत से होती है और पशुओं के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है ।

धामा-संज्ञा पुं० [सं० धाम] (२) अनाज आदि रखने का बड़ा टोकरा । (पश्चिम)

धारणिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऋणी । धरता । कर्जदार । (२) वह आदमी या कोठी जिसके पास धन जमा किया गया हो ।

धारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (६) १६० हाथ लंबी, २० हाथ चौड़ी और १६ हाथ ऊँची नाव । (युक्ति कल्पतरु)

धूकना॥†-क्रि० अ० [हिं० ढुकना] किसी ओर बढ़ना या झुकना । उ०—हस्ती घोड़ धाइ जो धूका । ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका ।—जायसी ।

धूप-संज्ञा पुं० [सं०] (४) चीड़ या धूप सरल नाम का वृक्ष जिससे गंधाबिरोजा निकलता है। वि० दे० "चीड़"।

धूपसरल-संज्ञा पुं० [सं० सरल] चीड़ का वृक्ष जिससे गंधाबिरोजा निकलता है। वि० दे० "चीड़"।

धृत-विक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] तौल कर कोई पदार्थ बेचना। (कौ०)

धृष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (२) साहित्य के अनुसार वह नायक जो बार बार अपराध करता है, अनेक प्रकार के अपमान सहता है, पर फिर भी किसी न किसी प्रकार बातें बनाकर नायिका के साथ लगा रहता है। उ०—लाज धरै मन मैं नहीं, नायक धृष्ट निदान।—मतिराम।

धेयना⊛-क्रि० अ० [सं० ध्यान] ध्यान करना। उ०—सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद प्रीति सुधारी। पाइ सुसाहिब राम सो भरि पेट बिगारी।—तुलसी।

धोवना⊛†-क्रि० स० [हिं० धोना] जल की सहायता से साफ करना। धोना। उ०—मुँह धोवति एड़ी घसति हँसति अनगवति तीर। धँसति न इंदीवर नयनि कालिंदी कै नीर।—बिहारी।

धोबिन-संज्ञा स्त्री० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारत के काम में आती है। इसकी लकड़ी परतदार होती है। अर्थात् इसमें एक मोटी तह सफेद लकड़ी की होती है और तब उस पर काले रंग की बहुत पतली एक और तह होती है। इसी तह पर से इस लकड़ी के तख्ते बहुत सहज में चीरे जा सकते हैं।

धौकरा-संज्ञा पुं० [सं० धव] बाकली की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो अवध, बुंदेलखंड और मध्य प्रदेश में पाया जाता है। इसकी लकड़ी खेती के सामान बनाने के काम में आती है।

धौरा-संज्ञा पुं० दे० "बाकली"।

धौरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धौरा] (२) एक प्रकार की चिड़िया। उ०—धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊँ। जौं चित रोख न दूसर ठाऊँ।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० दे० "बाकली।

ध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (८) हद-बंदी का निशान।

ध्वजमूल-संज्ञा पुं० [सं०] चुंगीघर की सीमा। (कौ०)

नंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आनंद देनेवाली। (२) शुभ। उत्तम। उ०—परिवा, छट्ठि, एकादसि नंदा। दुइज, सत्तमी द्वादसि मंदा।—जायसी।

नंस⊛-वि० [सं० नाश] जिसका नाश हुआ हो। नष्ट। उ०—कौतुक केलि करहिं दुख नंसा। खूँदहिं कुरलहिं जनु सर हंसा।—जायसी।

संज्ञा पुं० नाश। बरबादी।

नकवा†-संज्ञा पुं० [हिं० नाक या नाका] (१) सूई का वह छेद जिसमें तागा पिरोया जाता है। नाका। (२) नया निकला हुआ अंकुर। कल्ला। (३) तराजू की डंडी में का वह छेद जिसमें पलड़े की रस्सियाँ पिरोकर बाँधी जाती हैं।

नक्की†-वि० [हिं० एक] (१) ठीक। दुरुस्त। (२) पक्का। (३) पूरा। (४) चुकाया हुआ। चुकता। साफ। (हिसाब)

नखबान⊛-संज्ञा पुं० [सं० नख] नख। नाखून। उ०—सेज मिलत सामी कहँ लावै उर नखबान। जेहि गुन सबै सिंघ के सो संखिनि, सुलतान।—जायसी।

नखरेख*-संज्ञा स्त्री० [सं० नख + रेखा] शरीर में लगा हुआ नखों का चिह्न जो संभोग का चिह्न माना जाता है। नखरौट। उ०—मरकत भाजन सलिल गत इंदुकला कै बेख। झीन झगा मैं झलमले स्याम गात नखरेख।—बिहारी।

नग-फँग†-वि० [?] नटखट। शरीर। उ०—हौ भले नग-फँग परे गढ़ीबे अब ए गढ़न महरि मुख जोए।—तुलसी।

नगवास-संज्ञा पुं० [सं० नागपाश] शत्रु को बाँधने या फँसाने के लिये एक प्रकार का फंदा। नागपाश। उ०—जान पुछार जो भा बनबासी। रौंव रौंव परे फंद नगवासी।—जायसी।

नजरबाज-वि० [अ० नजर + फा० बाज (प्रत्य०)] आँखें लड़ानेवाला। प्रेम की दृष्टि से देखनेवाला।

नजरबाजी-संज्ञा स्त्री० [अ० नजर + फा० बाजी] (१) नजरबाज होने की क्रिया या भाव। (२) आँखें लड़ाना।

नटराज-संज्ञा पुं० [सं०] (२) निपुण नट। नटों में प्रधान या श्रेष्ठ नट। उ०—लरत कहूँ पायक सुभट कहुँ नर्तत नटराज।—केशव।

संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

नदीदुर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] नदी के बीच में या द्वीप में बना हुआ दुर्ग। ऐसा दुर्ग स्थलदुर्ग से उत्तम तथा पर्वत दुर्ग से निकृष्ट गया है। (कौ०)

नरहा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली वृक्ष। वि० दे० "चिल्ली"।

नर्त्तना⊛-क्रि० अ० [सं० नर्त्तन] नृत्य करना। नाचना। उ०—लरत कहूँ पायक सुभट कहुँ नर्त्तत नटराज।—केशव।

नर्मद्युति-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाट्य शास्त्र के अनुसार प्रतिमुख संधि के तेरह अंगों में से एक। वह परिहास जो किसी पहले परिहास से उत्पन्न आनंद तथा दोष छिपाने के लिये किया जाय। जैसे,—रत्नावली में सुसंगता के यह कहने पर कि "प्यारी सखी, तू बड़ी निठुर है। महाराज तेरी इतनी खातिर करते हैं, तो भी तू प्रसन्न नहीं होती।" सागरिका भौंह चढ़ाकर कहती है—"अब भी तू चुप नहीं रहती, सुसंगता।"

नलबाँस-संज्ञा पुं० [हिं० नल + बाँस] हिमालय की तराई में होने-

वाला एक प्रकार का बाँस जिसे खिपुली और देवबाँस भी कहते हैं। वि० दे० "देवबाँस"।

नवागत (सैन्य)–संज्ञा पुं० [सं०] नई भरती की हुई फौज। रंगरूटों की सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि नवागत तथा दूरयात (दूर से आने के कारण थके) सैन्य में से नवागत सैन्य दूसरे देश से आकर पुरानों के साथ मिलकर युद्ध कर सकता है। दूरयात सैन्य के संबंध में यह बात नहीं है; क्योंकि वह थकावट के कारण लड़ाई के अयोग्य होता है। (कौ०)

नसेनी†–संज्ञा स्त्री० [सं० श्रेणी] सीढ़ी। जीना।

नाँदना–क्रि० अ० [सं० नंदन] (२) दीपक का बुझने के पहले कुछ भभक कर जलना।

नाँहⓍ–संज्ञा पुं० [सं० नाथ] स्वामी। पति।

ना-कदर–वि० [फा० ना + अ० कद्र] (१) जिसकी कोई कदर न हो। जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो। (२) जो किसी की कदर करना न जानता हो। जिसमें गुण-ग्राहकता न हो।

ना-कदरी–संज्ञा स्त्री० [फा० ना + अ० कद्र] ना-कदर होने के क्रिया या भाव।

नाकनाⓍ†–क्रि० स० [सं० लंघन या हिं० नाका] (३) चारों ओर से घेरना।

ना-काम–वि० [फा०] जिसका अभीष्ट सिद्ध न हुआ हो। विफल मनोरथ।

नाकू–संज्ञा पुं० [सं० नक्र] घड़ियाल या मगर नामक जल-जंतु।

नागरक–संज्ञा पुं० [सं०] नगर का शासनकर्त्ता। (कौ०)

नागरिकता–संज्ञा स्त्री० [अं०] नागरिक होने का भाव। नागरिक के स्वत्व और अधिकारों से युक्त होने की अवस्था। नागरिक जीवन।

नागोदरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध में हाथ की रक्षा के लिये पहना जानेवाला दस्ताना। (कौ०)

नाचाकी–संज्ञा स्त्री० [फा० नाचाक] बिगाड़। अनबन। लड़ाई। वैमनस्य।

नाजिर–संज्ञा पुं० [अ०] (४) वह दलाल जो वेश्याओं को गाने बजाने के लिये ठीक करता और लाता हो।

नाजिरात–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाजिर + आत (प्रत्य०)] वह दलाली जो नाजिर को नाचने गानेवाली वेश्या आदि से मिलती है।

नाटकिया–संज्ञा पुं० [सं० नाटक + ईया (प्रत्य०)] (१) नाटक में अभिनय करनेवाला। (२) स्वाँग भरनेवाला। बहुरूपिया।

ना-ताकती–संज्ञा स्त्री० [फा० ना + अ० ताकत + ई (प्रत्य०)] नाताकत होने का भाव। दुर्बलता। कमजोरी।

नाथ–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाथना] (१) नाथने की क्रिया या भाव। (२) जानवरों की नाक की नकेल या रस्सी। उ०—रंग नाथ हौं जा कर हाथ ओहि के नाथ। गहे नाथ सो खींचै फेरे फिरै ना माथ।—जायसी।

नानकोआपरेशन–संज्ञा पुं० दे० "असहयोग" (२)।

नापास–वि० [हिं० ना + अं० पास] जो पास या मंजूर न हो। जो स्वीकृत न हो। नामंजूर। अस्वीकृत। जैसे,—कौन्सिल से उनका बिल नापास हुआ। (क्व०)

नापैद–वि० [फा० ना + पैदा] (१) जो पैदा न होता हो। (२) न मिलनेवाला। अप्राप्य।

नामकृत–संज्ञा पुं० [सं०] असली चीज का नाम छिपाना और उसका दूसरा नाम बताना। कल्पित नाम बतलाना। (कौ०)

नामिनेटेड–वि० [अं०] जो किसी पद के लिये चुना गया हो। जो किसी स्थान के लिये पसंद किया गया हो। मनोनीत। नामजद। जैसे,—नामिनेटेड मेंबर।

नामुराद–वि० [फा०] जिसका अभीष्ट सिद्ध न हुआ हो। विफल मनोरथ।

विशेष—पश्चिम में इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाली के रूप में होता है।

नामुवाफ़िक़–वि० [फा० ना + अ० मुवाफिक] जो मुवाफिक या अनुकूल न हो। प्रतिकूल। विरुद्ध।

नायक–संज्ञा पुं० [सं०] (९) दस सेनापतियों के ऊपर का अधिकारी। (१०) बीस हाथियों तथा घोड़ों का अध्यक्ष। (कौ०)

नायाब–वि० [फा०] जो न मिलता हो। अप्राप्य।

नारद–[सं०] (७) वह व्यक्ति जो लोगों में परस्पर झगड़ा लगाता हो। लड़ाई करनेवाला।

नार्थ–संज्ञा पुं० [अं०] उत्तर दिशा।

नालायकी–संज्ञा स्त्री० [फा० ना + अ० लायक] नालायक का भाव। अयोग्यता।

नावाज–संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह।

नावाजिब–वि० [फा० ना + अ० वाजिब] जो वाजिब या ठीक न हो। अनुचित।

नाशन–वि० [सं०] नाश करनेवाला। विध्वंस करनेवाला। नाशक। उ०—जानत है किधौं जानत नाहिन तू अपने मदनाशन को।—केशव।

नाष्टिक धन–संज्ञा पुं० [सं०] खोया हुआ धन। (स्मृति)

ना-हमवार–वि० [फा०] जो हमवार या समतल न हो। ऊबड़ खाबड़। ऊँचा नीचा।

निबकौरी–संज्ञा स्त्री० दे० "दिबकौरी"।

निंबर–संज्ञा पुं० दे० "अरिंज"।

निआथीⓍ–संज्ञा स्त्री० [सं० निः + अर्थ] धन-हीनता। दरिद्रता। गरीबी। उ०—साथी आथि निआथि जो सकै साथ निरबाहि। जो जिउ जोरे पिउ मिलै, भेंटु रे जिउ! जरि जाहि।—जायसी।

निआना‡-क्रि० वि० [हिं० न्यारा] न्यारा। अलग। उ०—अनुराजा सो जरै निआना। बादसाह कै सेव न माना।-जायसी।

निक्षेपक-संज्ञा पुं० [सं०] धरोहर में रखा हुआ पदार्थ। (कौ०)

निकर-संज्ञा पुं० [अं० निकरबाकर्ज] एक प्रकार का घुटने तक का खुला पायजामा।

निगरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ५५ मोतियों की लड़ी जो तौल में १२ रत्ती हो।

निगुन, निगुना⊛-वि० दे० "निर्गुण" उ०—मरै सोइ जो होइ निगूना। पीर न जानै बिरह बिहूना।—जायसी।

निग्राहक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो अपराधियों को अनुचित तथा अन्याय-युक्त दंड दे।

निघटना-क्रि० स० [हिं० नि + घटना] मिटाना। नष्ट करना। उ०—चलत पंथ पंथनि धरम श्रुति करम निघट्टन।—मतिराम।

निज़ामत-[अ०] (१) नाजिम का पद या कार्य्य। (२) वह कार्य्यालय जिसमें नाजिम और उसके सहायक कर्म्मचारी रहते हों।

नित्यमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जो निःस्वार्थ भाव से प्रीति या बढ़े हुए पुराने संबंधों की रक्षा करे।

नित्यामित्रा भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जहाँ के लोग सदा दुश्मनी करते हों या जिसमें शत्रु की प्रबलता हो। (कौ०)

निपात⊛-वि० [हिं० नि + पात = पत्ता] बिना पत्तों का। जिसमें पत्ते न हों। उ०—(क) जेहि पंखी के निअर होइ कहै बिरह कै बात। सोइ पंखी के निअर होइ कहै बिरह कै बात। सोई पंखी जाइ जरि, आखिर होइ निपात।—जायसी। (ख) साँठिहि रहै, साधि तन, निसँठहि आगरि भूख। बिनु गथ बिरिछ निपात जिमि ठाढ़ ठाढ़ पै सूख।-जायसी।

संज्ञा पुं० [सं०] नहाने का स्थान। (कौ०)

निबंध-संज्ञा पुं० [सं०] सरकारी आज्ञा। (कौ०)

निबह⊛-संज्ञा पुं० [?] समूह। झुंड। उ०—मनहु उड़गन निबह आए मिलत तम तजि द्वैपु।—तुलसी।

निबहुर†-संज्ञा पुं० [हिं० नि + बहुरना] वह स्थान जहाँ से जाकर कोई न लौटे। यमद्वार।

निबहुरा†-वि० [हिं नि + बहुरना] जो चला जाय और न लौटे। सदा के लिये चला जानेवाला। (गाली)

निमय-संज्ञा पुं० [सं०] वस्तु-विनिमय। पदार्थों का अदलबदल।

विशेष—गौतम धर्मसूत्र में लिखा है कि ब्राह्मण गौ, तिल, दूध, दही, फल, मूल, फूल, ओषधि, मधु, मांस, वस्त्र, सन, रेशम आदि पदार्थों का मुद्रा लेकर विक्रय न करें। यदि उनको ऐसा करने की जरूरत ही पड़े तो वे विनिमय कर लें। अन्नादि का अन्नादि से और पशुओं का पशुओं से ही बदला किया जाय। नमक तथा पकान्न के लिये यह नियम नहीं है। कच्चा पदार्थ देकर पक्वान्न लिया जाय। तिलों के क्रय विक्रय में धान्य के सदृश ही नियम हैं।

निमूँद⊛-वि० [हिं० मुँदना] मुँदा हुआ। मुद्रित। बंद। उ०—कौड़ा आँसू मूँदि, कसि साँकर बरुनी सजल। कीने बदन निमूँद, दृग-मलिंग डारे रहत।—बिहारी।

वि० [हिं० नि = नहीं + मुँदना] जो मुँदा न हो। खुला।

निमेट⊛†-वि० [हिं० नि + मिटना] न मिटनेवाला। बना रहनेवाला। उ०—काहु कहौं हौं ओहि सौं जेइ दुख कीन्ह निमेट। तेहि दिन आगि करै वह जेहि दिन होइ सो भेंट।—जायसी।

निम्नयोधी-वि० [सं० निम्नयोधिन्] किले के नीचे से या नीची जमीन पर से लड़नेवाला। वि० दे० "स्थलयोधी"।

निम्नारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ों की घाटी। (कौ०)

नियंत्रण-संज्ञा पुं० [सं०] नियम या इसी प्रकार के और किसी बंधन में बाँधना। कायदे का पाबंद करना। व्यवस्थित करना।

नियोग-संज्ञा पुं० [सं०] (७) वह आपत्ति जिसमें यह निश्चय हो कि इसी एक उपाय से यह आपत्ति दूर होगी, दूसरे से नहीं। (कौ०)

निरदोषी-वि० दे० "निर्दोष"। उ०—भृगुनंदन सुनिये मन महँ गुनिये रघुनंदन निरदोषी।—केशव।

निरनुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] 'अर्थ' का एक भेद। वह सिद्धि या सफलता जिससे अपना लाभ आवश्यक न हो। दंड या अनुग्रह द्वारा किसी उदासीन का अर्थ सिद्ध करना। (कौ०)

निरबाहना⊛-क्रि० स० [सं० निर्वाह] निर्वाह करना। निभाना। चलाए चलना। उ०—देह लग्यौ ढिग गेहपति तऊ नेह निरबाहि। नीची अँखियनु ही इतै गई कनखियनु चाहि।-बिहारी।

निरमर⊛-वि० दे० "निर्मल"। उ०-पदमिनि चाहि घाटि दुइ करा। और सबै गुन ओहि निरमरा।—जायसी।

निरुपकार आधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह थाती या धरोहर जो किसी आमदनीवाले काम में न लगी हो।

निरुपजीव्या भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिस पर किसी का गुजर न हो सकता हो। (कौ०)

निर्गत-संज्ञा पुं० दे० "निर्यात"। जैसे—निर्गत कर।

निर्गुण भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिस पर कुछ भी पैदा न होता हो। ऊसर जमीन। (कौ०)

निर्मान⊛-वि० [हिं० नि + मान] जिसका मान न हो। बेहद। अपार। उ०—नित्य निर्मय नित्य युक्त निर्मान हरि ज्ञान घन सच्चिदानंद मूलं।—तुलसी।

निर्यात-संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो बेचने के लिये

विदेश भेजा गया हो। आयात का उलटा। रफ्तनी। निर्गत। जैसे,—निर्यात कर। निर्यात व्यापार।

निर्वाचक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी प्रतिनिधिक संस्था के सदस्य या प्रतिनिधि निर्वाचन में वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो। वह जिसे किसी कार्यकर्त्ता या प्रतिनिधि को वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो। मताधिकार प्राप्त मनुष्य। निर्वाचन करनेवाला।

निर्वाचक संघ-संज्ञा पुं० [सं०] उन लोगों का समूह या समाज जिन्हें मताधिकार अर्थात् वोट देने का अधिकार प्राप्त हो। एलेक्टरेट।

निर्वाचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुतों में से एक या अधिक को चुनने या पसंद करने का काम। चुनाव। जैसे,—कविताओं का निर्वाचन सुंदर हुआ है। (२) किसी को किसी पद या स्थान के लिये, उसके पक्ष में 'वोट' देकर, हाथ उठाकर या चिट्ठी डाल कर, चुनने या पसंद करने का काम। जैसे,—व्यवस्थापिका सभा के इस बार के निर्वाचन में अच्छे आदमी निर्वाचित हुए हैं।

निर्वाचनी संस्था-संज्ञा स्त्री० दे० "निर्वाचक संघ"।

निर्वाचित-वि० [सं०] (१) निर्वाचन किया हुआ। चुना हुआ। जैसे,—इस पुस्तक में उनके निर्वाचित लेखों का संग्रह है। (२) जिसका (किसी स्थान या पद के लिये लोगों द्वारा) निर्वाचन हुआ हो। जो (किसी पद या स्थान के लिये लोगों द्वारा) चुना गया हो। जैसे,—वे बनारस डिवीजन से व्यवस्थापिका परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए हैं।

निर्वाहण-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे पदार्थों का नगर में ले जाना जिनके ले जाने का निषेध हो। (कौ०)

निर्वेश-संज्ञा पुं० [सं०] भृति।

निलहा-वि० [सं० नील + हा (प्रत्य०)] नील से संबंध रखनेवाला। नीलवाला।

यौ०—निलहा गोरा। निलहा साहब।

निविशमान-संज्ञा पुं० [सं०] वे लोग जिनसे उपनिवेश बसाए जायँ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में राज्य ऐसे लोगों को अन्न, पशु तथा संपत्ति से सहायता पहुँचाता था।

निविष्टपण्य-संज्ञा पुं० [सं०] बोरों में भरा हुआ माल। (कौ०)

निवृत्तवृद्धिक आधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धन जो बिना ब्याज पर किसी के यहाँ जमा हो।

निष्क्रय-संज्ञा पुं० [सं०] (७) वह धन जो छुटकारे के लिये दिया जाय। (कौ०)

निष्क्राम्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) माल का बाहर भेजा जाना। बाहर भेजी जानेवाली चलान। (२) रफ्तनी माल। (कौ०)

निष्क्राम्य शुल्क-संज्ञा पुं० [सं०] बाहर भेजे जानेवाले माल पर का महसूल।

निसँठॐ†-वि० [हिं० नि + सँठ = पूँजी] जिसके पास धन या पूँजी न हो। निर्धन। गरीब। उ०—साँठि होइ जेहि तेहि सब बोला। निसँठ जो पुरुष पात जिमि डोला।—जायसी।

निसंसॐ-वि० [हिं० नि + साँस] जिसे साँस न आता हो। मृतप्राय। मुरदा सा। उ०—निसँस ऊभि भरि लीन्हेसि साँसा। भा अधार जीवन कै आसा।—जायसी।

निसतारनाॐ-क्रि० स० [सं० निस्तार + ना (प्रत्य०)] निस्तार करना। छुटकारा देना।

निसयानाॐ†-वि० [हिं० नि + सयाना ?] जिसकी सुध-बुध खो गई हो। जिसके होश हवास ठिकाने न हों। उ०—जनहु मानि निसियानी बसी। अति बेसँभार फूलि जनु अरसी।—जायसी।

निसाँसा†-वि० [हिं० नि + साँस] जिसका श्वास न चलता हो। श्वास प्रश्वास रहित। उ०—अब हौं मरौं निसाँसी हिये न आवै साँस। रोगिया की को चालै बैदहि जहाँ उपास।—जायसी।

निसियरॐ-संज्ञा पुं० [सं० निशिकर] चंद्रमा। उ०—भनु धनि तू निसियर निसि माहाँ। हौं दिनिअर जेहि कै तू छाँहाँ।—जायसी।

निसुकाॐ†-वि० [सं० निस्वक] निर्धन। दरिद्र। गरीब। उ०—रहैं निगोड़े नैन डिगि गहैं न चेत अचेत। हौं कसु कै रिस के करौं ये निसुके हँसि देत।—बिहारी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग स्त्रियाँ प्रायः "निगोड़ा" शब्द की भाँति करती हैं।

निसृष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] दैनिक भृति। रोजाना दी जानेवाली मजदूरी। (कौ०)

निस्तर-संज्ञा पुं० [सं० निस्तार] छुटकारा। निस्तार। उ०—जरै देहु दुख जरौं अपारा। निस्तर पाइ जाउँ एक बारा।—जायसी।

नीवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (५) वह धन जिसके ब्याज आदि की आय किसी काम में खर्च की जाय और जो सदा रक्षित रहे। स्थायी कोश। (६) खर्च करने के बाद बची हुई पूँजी। (कौ०)

नीवी-ग्राहक-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जिसके पास चंदा या किसी दूसरे व्यक्ति का धन जमा हो और जो उस धन का प्रबंध करता हो। खजानची।

नुमाइंदा-संज्ञा पुं० [फा०] प्रतिनिधि।

नुसखा-संज्ञा पुं० [अ०] (३) रोगी के लिये लिखी हुई ओषधियाँ और उनकी सेवन विधि आदि।

नृदेवता-संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान।—केशव।

नेगेटिव-संज्ञा पुं० [अं०] फोटोग्राफी में वह शीशा जिस पर उस चीज की उलटी प्रतिकृति आ जाती है जिसका चित्र लिया

जाता है। इसी पर मसालेदार कागज रखकर छापा जाता है जो चित्र रूप में दिखाई देता है।

नेचर-संज्ञा पुं० [अं०] प्रकृति। कुदरत। जैसे,—वे नेचर को माननेवाले हैं।

नेचरिया-वि० [अं० नेचर + इया (प्रत्य०)] जो केवल प्रकृति को सृष्टि का कर्त्ता मानता हो। प्रकृतिवादी। नास्तिक।

नेजा-संज्ञा पुं० [फा०] (२) चिलगोजा नाम की सूखी फली या मेवा।

नेटिव-वि० [अं०] देश का। देशी। मुल्क का। मुल्की। जैसे,—नेटिव आदमी।

संज्ञा पुं० वह जो अपने देश में उत्पन्न हुआ हो और जो विदेशी या बाहर का न हो। आदिम निवासी।

नेत†-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की रेशमी चादर। उ०—(क) पुनि गजमत्त चढ़ावा नेत बिछाई खाट। बाजत गाजत राजा आइ बैठ सुख-पाट।—जायसी। (ख) पालँग पाँव कि आछै पाटा। नेत बिछाव चलै जो बाटा।—जायसी।

नेबुला-संज्ञा पुं० [अं०] आकाश में धूएँ या कुहरे की तरह फैला हुआ क्षीण प्रकाशपुंज। नीहारिका। वि० दे० "नीहारिका।"

नेवना※-क्रि० अ० [सं० नमन] नमन होना। झुकना।

नेवरना※-क्रि० अ० [सं० निवारण] (१) निवारण होना। दूर होना। उ०—मुनि जोगी कै अमर जो करनी। नेवरी बिथा बिरह कै मरनी।—जायसी। (२) समाप्त होना। खतम होना। (३) निपटना।

नेवाना※†-क्रि० स० [सं० नमन] नमन करना। झुकाना।

नेवारना※†-क्रि० स० [सं० निवारण] निवारण करना। दूर करना। हटाना।

नेवी-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक राष्ट्र या देश के समस्त लड़ाऊ जहाज। नौ-सेना। जलसेना।

नेशन-संज्ञा पुं० [अं०] लोक-समुदाय जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो। एक देश में रहने और सम-भाषा बोलनेवाला जन-समूह। राष्ट्र।

नैधानी सीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सीमा या हदबंदी जो भूसी, कोयले आदि से भरे घड़े गाड़ कर बनाई जाय।

विशेष—बृहस्पति ने इस प्रकार सीमा बनाने का विधान बताया है। पराशर ने कहा है कि ग्राम के वृद्ध लोगों का कर्त्तव्य है कि वे बच्चों को सीमा के चिह्नों से परिचित करते रहें।

नेशनल-वि० [अं०] राष्ट्र संबंधीय। राष्ट्र का। राष्ट्रीय। सार्वजनिक। जैसे,—नैशनल कांग्रेस।

नेशनलिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो राष्ट्र पक्ष का पक्षपाती हो। राष्ट्रवादी।

नैषेचनिक-संज्ञा पुं० [सं०] राज्याभिषेक के उत्सव पर दी हुई वस्तुओं का उपहार। (कौ०)

नौ-संज्ञा पुं० [सं०] पोत। जहाज।

नौकरशाही-संज्ञा स्त्री० [फा० नौकर + शाही] वह सरकार या शासन प्रणाली जिसमें राजसत्ता या शासन सूत्र उच्च राजकर्मचारियों या बड़े बड़े सरकारी अफसरों के हाथों में रहे। वि० दे० "ब्यूरोक्रेसी"।

नौकराना-संज्ञा पुं० [फा० नौकर + आना (प्रत्य०)] (१) वेतन के अतिरिक्त नौकर को दिया जानेवाला धन। नौकर का हक। (२) वह धन जो दूकानदार माल खरीदनेवाले के नौकर को देता है। दस्तूरी।

नौकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] जहाज की पतवार।

नौकर्म-संज्ञा पुं० [सं० नौकर्मन्] मल्लाह का पेशा या काम।

नौक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] नावों का पुल।

नौचर-संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह।

वि० जहाज पर जानेवाला।

नौजीवक-संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह। खलासी।

नौता※-वि० [सं० नव या नूतन] नया। हाल का। ताजा। उ०—करहिं जो किंगरी लेइ बैरागी। नौती होइ बिरह कै आगी।—जायसी।

नौनेता-संज्ञा पुं० [सं० नौनेतृ] जहाज की पतवार पकड़नेवाला। पतवरिया।

नौबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के सर्वोच्च शृंग का नाम। कहते हैं कि महाप्लावन के समय मनु ने इसी से अपना जहाज बाँधा था। (महाभारत)

नौयायी-वि० [सं० नौयायिन्] नाव पर जानेवाला (यात्री या माल)।

नौवाह-संज्ञा पुं० दे० "नौनेता"।

नौसेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना या फौज जो लड़ाऊ जहाजों पर चढ़ कर युद्ध करती है। लड़ाऊ जहाजों पर से युद्ध करनेवाली सेना या फौज। जलसेना।

नौसेनापति-संज्ञा पुं० [सं०] नौ सेना का प्रधान या अध्यक्ष। जल सेनाध्यक्ष।

न्याना+वि० [सं० अज्ञान] (१) जो कुछ न जानता हो। अनजान। निर्बोध। (२) छोटी उमर का। अल्प अवस्था का। अल्पवयस्क।

न्यूज-संज्ञा स्त्री० [अं०] समाचार। संवाद। वृत्तांत। वृत्त। खबर।

न्यूजपेपर-संज्ञा पुं० [अं०] समाचार पत्र। अखबार।

न्योजी+संज्ञा स्त्री० [हिं० लीची ?] (१) लीची नामक फल। उ०—कोइ नारँग कोइ झाड़ चिरौंजी। कोइ कटहर बड़हर कोइ न्योजी।—जायसी। (२) नेजा। चिलगोजा।

पंखीसेद़-संज्ञा पुं० [हिं० पंखी + अं० सेल] चौकोर पाल जो मस्तूल से तिरछे एक तिहाई निकला रहे ।

पंगई-संज्ञा स्त्री० [?] नाव खेने का छोटा डाँड़ा जिसका एक जोड़ा लेकर एक ही आदमी नाव चला सकता है । हाथ हलेसा । चमचा । बैठा । चप्पू । (लश०)

पँगरा-संज्ञा पुं० [देश०] (१) मझोले आकार का एक प्रकार का कँटीला वृक्ष जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है । शीत ऋतु में इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं । इसकी लकड़ी बहुत मुलायम, पर चिमड़ी होती है और तलवार की म्यान या तख्ते आदि बनाने के काम में आती है । डौलढाक । ढाक । मदार ।

पंचक-संज्ञा पुं० [सं०] (७) पाँच प्रतिनिधियों की सभा । पंचायत ।

पंचमंडली-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच भलेमानसों की सभा । पंचायत ।

विशेष—चंद्रगुप्त द्वितीय के साँचीवाले शिलालेख में यह शब्द आया है ।

पंचवान-संज्ञा पुं० [सं० पंचवाण ?] राजपूतों की एक जाति । उ०—पत्ती औ पँचवान, बघेले । अगर पार, चौहान, चँदेले ।—जायसी ।

पंचात्कोप-संज्ञा पुं० [सं०] राजा के विजय के लिये आगे बढ़ने पर राज्य में विद्रोह फैलाना । (कौ०)

पंचालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) नटी । नर्तकी । उ०—नाचति मंच पँचालिका कर संकलित अपार ।—केशव ।

पंडाल-संज्ञा पु० [अं०] किसी भारी समारोह के लिये बनाया हुआ विस्तृत मंडप । जैसे,—सम्मेलन का पंडाल । कांग्रेस का पंडाल ।

पंडुर+संज्ञा पुं० [देश०] पानी में रहनेवाला साँप । डेड़हा । उ०—ऐसे हरि सों जगत लरतु है । पंडुर कतहूँ गरुड़ धरतु है ।—कबीर ।

पँतीजना+क्रि० स० [सं० पिंजन = धुनकी] रूई से बिनौले निकाल कर अलग करना । रूई ओंटना । पींजना ।

पँतीजी-संज्ञा स्त्री० [सं० पिंजन = धुनकी] रूई धुनने की धुनकी । उ०—चरख पंतीजी चरख चढ़ि ज्यों ढाँकत जग सूत ।—वृंद ।

पँवर-संज्ञा पुं० [?] सामान । सामग्री । उ०—भसम गंग लोचन अहि डमरू, पंचतत्व सूचक अस भौंरू, हर के बस पाँचउ यह पँवरू, जिनसे पिंड उरेह ।—देवस्वामी ।

पकावन꣸-संज्ञा पुं०—दे० "पकवान" । उ०—रूती बहुत पकावन साधे । मोतिलाडू औ खेरौरा बाँधे ।—जायसी ।

पक्षिराज-संज्ञा पुं० [सं०] (२) जटायु । (३) एक प्रकार का धान ।

पखंडी-संज्ञा पुं० [हिं० पाखंडी] वह जो कठपुलियाँ नचाता हो । कठपुतली का नाच दिखानेवाला । उ०—कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा । कतहुँ पखंडी काठ नचावा ।—जायसी ।

पगारना-क्रि० स० [?] फैलाना ।

पगेरना-संज्ञा पुं० [देश०] कसेरों की एक प्रकार की छेनी जो बरतनों पर नक्काशी करने के काम में आती है ।

पचतोरिया-संज्ञा पुं० [सं० पंच + तार या सं० पट + तार] एक प्रकार का कपड़ा ।—उ०—पीरे पचतोरिया लसित अतलस लाल लाल रद छंद मुखचंद ज्यों शरद को ।—देव । (ख) सेत जरतारी की उज्यारी कंचुकी की कसि अनियारी डीठि प्यारी उठि पैन्ही पचतोरिया ।—देव ।

पच्चर-संज्ञा पुं० [हिं० पच्ची] (२) लकड़ी की बड़ी मेख या खूँटा । (लश०)

पच्छिराज-संज्ञा पुं० [सं० पक्षिराज] गरुड़ । उ०—पच्छिराज जच्छिराज प्रेतराज जातुधान—केशव ।

पछना-संज्ञा पुं० [हिं० पाछना] (७) वह अस्त्र आदि जिससे कोई चीज पाछी जाय । पाछने का औजार । (२) वह उस्तरा जो सिंगी लगाने से पहले शरीर में घाव करने के काम आता है । (३) शरीर में से रक्त निकालने की क्रिया । फसद ।

क्रि० अ० पाछा जाना । पाछने की क्रिया होना ।

पछलगा꣸-संज्ञा पुं० दे० "पिछलगा" । उ०—हौं पंडितन केर पछलगा । किछु कहि चला तबल देइ डगा ।—जायसी ।

पछाड़-संज्ञा पुं० [हिं० पछाड़ना] कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—जब शत्रु सामने रहता है, तब एक हाथ उसकी जाँघों के नीचे से निकाल कर पीछे की ओर से उसका लँगोट पकड़ते हैं, और दूसरा हाथ उसकी पीठ पर से घुमा कर उसकी बगल में अड़ाते हैं और इस प्रकार उसे उठाकर चित्त फेंक देते हैं । इसमें अधिक बल की आवश्यकता होती है ।

पछियावर꣸-संज्ञा स्त्री० [हिं० पीछे] (१) एक प्रकार का शिखरन या शरबत ।—उ०—पुनि जाउरी पछियाउरि आई । घिरित खाँड़ की बनी मिठाई ।—जायसी । (२) छाछ से बना हुआ एक प्रकार का पेय पदार्थ जो भोजनान्त में परोसा जाता है । इससे भोजन शीघ्र पचता है । उ०—मोद सों तारकनंद को मेद, पछयावरी पान सिरायो हियोरे ।—केशव ।

पटलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) पटल का काम । (२) अधिकता । उ०—अजहूँ लौं अबलोकिये, पुलक पटलता ताह ।—मतिराम ।

पटला-संज्ञा स्त्री० [सं०] भीमा के आकार की नौका । ६४ हाथ लंबी ३२ हाथ चौड़ी और ३२ हाथ ऊँची नाव । (युक्ति कल्पतरु)

पटवा-संज्ञा पुं० [सं० पाट] पटसन की जाति का एक प्रकार का पौधा जो बंगाल में अधिकता से बोया जाता है । यह कहीं

कहीं बागों में शोभा के लिये भी लगाया जाता है। इसमें एक प्रकार की कलियाँ लगती हैं जो खाई जाती हैं। इसके तनों से एक प्रकार का रेशा निकलता है और इसके फल तथा बीज कहीं कहीं ओषधि रूप में काम में आते हैं। लाल अंबारी।

पटिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० पटना + इया (प्रत्य०)] (३) चिपटे तले की बड़ी और ऊपर से पटी हुई नाव जो बन्दरगाहों में जहाज से बोझ उतारने और चढ़ाने के काम में आती है। (लश०)

पट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (२) लड़ाई का वह पहनावा या कवच जिससे केवल धड़ ढका रहे और दोनों बाँहें खुली रहें। (कौ०)

पठवना†-क्रि० स० [सं० प्रस्थान] भेजना। रवाना करना।

पठान-संज्ञा पुं० [?] (२) जहाज या नाव का पेंदा। (लश०)

पठावनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० पठाना = भेजना] (३) भेजने या पहुँचाने की मजदूरी। उ०—तेई पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै।—तुलसी।

पठ्य-वि० दे० "पाठ्य"।

पठ्यमान-वि० [सं० पाठ्य + मान (प्रत्य०)] पढ़ा जाने के योग्य। सुपाठ्य। उ०—अपठ्यमान पाप ग्रन्थ पठ्यमान वेद्यै।—केशव।

पड़वा-संज्ञा पुं० [देश०] घाट पर रहनेवाली वह नाव जो यात्रियों को इस पार से उस पार ले जाती है। घटहा। (लश०)

पड़ाव-संज्ञा पुं० [हिं० पड़ना + आव (प्रत्य०)] (३) चिपटे तले की बड़ी और खुली नाव जो जहाज से बोझ उतारने और चढ़ाने के काम में आती है। (बंबई) (लश०)

पढ़ुआ-संज्ञा पुं० [देश०] ऊख का खेत।

पढ़ंत-संज्ञा स्त्री० [हिं० पढ़ना] निरंतर पढ़ने की क्रिया। बराबर पढ़ना। जैसे—पढ़ंत कवि-सम्मेलन।

पढ़ंता-वि० [हिं० पढ़ना] पढ़नेवाला। पाठ करनेवाला। उ०—वेद पढ़ंता पाँड़े मारे पूजा करते स्वामी हो।—कबीर।

पणच्छेदन-संज्ञा पुं० [सं०] अँगूठा काटने का दंड।

विशेष—चन्द्रगुप्त के समय में दूसरी बार गाँठ कतरने के अपराध में जो राजकर्म्मचारी पकड़े जाते थे, उनका अँगूठा काट दिया जाता था।

पण-जित दास-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपने को जूए के दाँव पर रखकर हारा और दास हुआ हो।

पणबंध-संज्ञा पुं० [सं०] शर्तबंदी।

पणयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिक्के का चलाना। (कौटि०)

पणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पण। (कौटि०)

पण्यनिचय-संज्ञा पुं० [सं०] बिक्री का माल इकट्ठा करना।

विशेष—इसमें भी चन्द्रगुप्त के समय में धान्य के एकत्र करने के सदृश ही नियम प्रचलित था।

पण्य-निर्वाहण-संज्ञा पुं० [सं०] बिना चुंगी या महसूल दिए चोरी से माल निकाल ले जाना। (कौ०)

पण्यपत्तन-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के माल आकर बिकते हों। मंडी। (कौ०)

पण्यपत्तन चारित्र-संज्ञा पुं० [सं०] मंडी में प्रचलित नियम। (कौ०)

पण्यपत्तन चारित्रोपघातिका-वि० स्त्री० [सं०] (वह नाव) जिसने बन्दरगाह के नियमों का पालन न किया हो। (कौ०)

पण्य संस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] माल रखनेका गोदाम। (कौ०)

पण्य समवाय-संज्ञा पुं० [सं०] थोक बेचा जानेवाला माल।

पण्योपघात-संज्ञा पुं० [सं०] बिक्री के माल का नुकसान।

विशेष—व्यापारियों को चन्द्रगुप्त के राज्य से सहायता मिलती थी। जब उनके माल का नुकसान हो जाता था, तब उन्हें राज्य की ओर से सहायता मिलती थी। (कौ०)

पतंगसुत-संज्ञा पुं० [सं० पतंग = सूर्य्य + सुत] सूर्य्य के पुत्र अश्विनी कुमार।

पतनी-संज्ञा पुं० [देश०] वह आदमी जो घाट पर की नाव इस पार से उस पार ले जाता और उस पार से इस पर ले आता हो। घाट पर से पार उतारनेवाला या घटहा का माझी। (लश०)

पताका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (८) नाट्य शास्त्र के अनुसार प्रासंगिक कथावस्तु के दो भेद में से एक। वह कथावस्तु जो सानुबंध हो और बराबर चलती रहे। (प्रासंगिक कथावस्तु का दूसरा भेद "प्रकरी" है।)

पतिंग-संज्ञा पुं० [सं० पतंग] पतंग। फतिंगा। भुनगा। उ०—इहाँ देवता अस गए हारी। तुम्ह पतिंग को अहौ भिखारी।—जायसी।

पतियार†-वि० [हिं० पतियाना] विश्वास करने के योग्य। विश्वसनीय। उ०—तीन लोक भरि पूरि रहो है नाँही है पतियार।—कबीर।

संज्ञा पुं० दे० "पतियारा"।

पत्तनाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] बन्दरगाह का अध्यक्ष या प्रधान अधिकारी। (कौटि०)

पत्ता-संज्ञा पुं० [सं० पत्र] (५) नाव के डाँड़े का वह अगला भाग जिसमें तख्ती जड़ी रहती है और जिसकी सहायता से पानी काटा जाता है। फन। (लश०)

पत्तिप-संज्ञा पुं० [सं०] पत्तिपाल।

पत्तिपाल-संज्ञा पुं० [सं०] पाँच या छः सिपाहियों के ऊपर का अफसर।

विशेष—प्राचीन काल में सिपाहियों का पहरा बदलना इसी का काम होता था।

पत्तिव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें आगे कवचधारी सैनिक और पीछे धनुर्धर हों। (कौटि०)

पत्ती-संज्ञा पुं० [?] राजपूतों की एक जाति। उ०-पत्ती औ पँववान बघेले। अगरयार चौहान चँदेले।—जायसी।

पत्थरफोड़-संज्ञा पुं० [हिं० पत्थर + फोड़ना] बहुत छोटी जाति की एक प्रकार की वनस्पति जो प्रायः वर्षा ऋतु में दीवारों या पत्थर के जोड़ों के बीच से निकलती है। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं जो प्रायः फोड़ों को पकाने के लिये उन पर बाँधी जाती हैं। इसमें सफेद रंग के बहुत छोटे छोटे फूल भी लगते हैं।

पत्रकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी सार्वजनिक सामाचारपत्र या पत्रिका का संचालन करता हो। वह जो किसी अखबार को चलाता हो। पत्र संचालक। पत्रसंपादक। अखबार नवीस। एडीटर। जरनलिस्ट। (२) वह जो किसी समाचारपत्र या अखबार में नियमित रूप से लिखता हो। रिपोर्टर।

पत्रपुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ९६ हाथ लंबी, ४८ हाथ चौड़ी और ४८ हाथ ऊँची नाव। (युक्तिकल्पतरु)

पद्मिनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (५) लक्ष्मी। उ०—पद्मन ऊपर पद्मिनि मानहु। रूपन ऊपर दीपति जानहु।—केशव।

पद्र, पद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जो सारे समाज या समुदाय की हो। पंचायती जमीन।

विशेष—महानदी के किनारे राजीव नगर के राजा तिवरदेव के ताम्रपत्र में यह शब्द आया है। कोशों में पद्र का अर्थ ग्राम मिलता है। डा० बूलर ने इस शब्द से 'चरागाह' का अभिलिया है। विलसन ने अपने कोश में इसका अर्थ समाज या समुदाय दिया है।

पनडब्बा-संज्ञा पुं० [हिं० पान + डब्बा] वह डब्बा जिसमें पान और उसके लगाने का सामान चूना, सुपारी, कत्था आदि रहता हो। पानदान।

पनपथू†-संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी + पाथना] वह रोटी जो बिना पथन के केवल पानी लगाकर बेली जाती है।

पनिच※-संज्ञा स्त्री० [सं० पतंचिका] धनुष की ज्या। उ०-खैंचि पनिच भृकुटी धनुष बधिक समरु तजि कानि। हनत तरुन मृग तिलक-सर सुरक भाल भरि तानि।—बिहारी।

पनिहा†-संज्ञा पुं० [सं० प्रणिधा] वह जो चोरी आदि का पता लगाता हो। जासूस। भेदिया। उ०—लालन लहि पाएँ दुरै चोरी सौंह करै न। सीस-चढ़े पनिहा प्रगट कहैं पुकारैं नैन।—बिहारी।

पनुआँ-वि० [हिं० पानी] जिसमें अधिक पानी मिल गया हो। फीका। उ० पनुवाँ रंगन मेजि निचौरै। गाढ़ो रंग अछत जिमि चोरै। रंग देइ तुरतै न निचोरै। रस रसरी पर डाँग दरेरै।—देवस्वामी।

पन्नगपति-संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग। उ०—पन्नग प्रचंड पति प्रभु की पनच पीन पर्वतारि पर्वत प्रभा न मान पावई।—केशव।

पपड़ा-संज्ञा पुं० [सं० पर्पट] (३) एक प्रकार का पकवान जो मीठा और नमकीन दोनों होता है। मीठा पपड़ा मैदे को शरबत में घोलकर और नमकीन पपड़ा बेसन को पानी में घोलकर घी या तेल में तलकर बनाते हैं।

पब्लिक प्रासिक्यूटर-संज्ञा पुं० [अं०] पुलिस का वह अफसर या वकील जो सरकार की ओर से फौजदारी मुकदमों की पैरवी करता है।

पब्लिशर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो पुस्तकादि छपवा कर प्रकट या प्रकाशित करे। प्रकट करनेवाला। (कोई चीज प्रकाशित करने के अभियोग पर प्रिंटर और पब्लिशर दोनों गिरिफ्तार किये जाते हैं।)

परकर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु की संपत्ति आदि लूटना।

परकारना†-क्रि० स० [हिं० परकार] (१) परकार से वृत्त आदि बनाना। (२) चारों ओर फेरना। आवेष्टित करना। उ०-दसहूँ दिसति गई परकारी। देख्यौ समै भयानक भारी।—छत्र प्रकाश।

परचाना※-क्रि० स० [सं० प्रज्वलन] प्रज्वलित करना। जलाना। उ०—चिनगि जोति करसी तें भागै। परम तंतु परचावै लागै।—जायसी।

परछालना※-क्रि० स० [सं० प्रक्षालन] जल से धोना। पखालना।

परजन-संज्ञा पुं० [देश०] डेढ़ दो हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जो राजपूताने, पंजाब और अफगानिस्तान की जोती बोई हुई भूमि में प्रायः पाया जाता है। इसमें पीले रंग के बहुत छोटे छोटे फूल लगते हैं।

परतंत्र-द्वैधी भाव-संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रबल और परस्पर विरोधी राज्यों के बीच में रह कर और किसी एक राज्य से कुछ धन या वार्षिक वृत्ति पाकर दोनों से मेल बनाए रखना। (कामंदक) जैसे,—युरोपीय महायुद्ध के पहले अफ़गानिस्तान की स्थिति परतंत्र-द्वैधी भाव की थी; पर युद्ध के पीछे अब स्वतंत्रद्वैधी भाव की स्थिति है।

परदूषण संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] संपूर्ण राज्य की उत्पत्ति तथा फल देने की प्रतिज्ञा कर संधि करना। (कामंदक)

परदेशापवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] विदेशियों को बुलाकर उपनिवेश बसाना। (कौटिल्य)

परमाल-संज्ञा पुं० [हिं० परनाला] जहाज में पेशाब करने की मोरी। (लश०)

परमट-संज्ञा पुं० [अं० परमिट] (२) वह कर या महसूल जो विदेश से आने जानेवाले माल पर लगता है। कर। महसूल। चुंगी।

परमट हाउस-संज्ञा पुं० दे० "कस्टम हाउस"।

परमदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] महा-सामंत की स्त्री की उपाधि।

विशेष—सतलज नदी तटस्थ निर्मन्द ग्राम में महासामंत शब्द तथा महाराज समुद्रसेन के लेख में महासामन्त की स्त्री के लिये परमदेवी शब्द का प्रयोग किया गया है।

परमनेंट-वि० [अं०] स्थायी। स्थिर। कायम। जैसे,—परमनेंट अंडर सेक्रेटरी।

परम भट्टारक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के महाराजाधिराजों की उपाधि।

परम भट्टारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की सम्राज्ञी की उपाधि।

परमित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भुक्ति या राज्य जिसमें मित्र और शत्रु दोनों समान रूप से हों। (कौटि०)

परवक्तव्य पण्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह माल जिसका सौदा दूसरे के साथ हो चुका हो।

विशेष—ऐसा सौदा किसी दूसरे ग्राहक के हाथ बेचनेवालों के लिये कौटिल्य और स्मृतिकारों ने दंड का विधान किया है।

परवान-संज्ञा पुं० [हिं० पाल, फा० बादबान] जहाज का पाल। बादबान।

परवानना⊛-क्रि० अ० [सं० प्रमाण] प्रमाण मानना। ठीक समझना। उ०—हमरे कहत न जो तुम्ह मानहु। जो वह कहै सोइ परवानहु।—जायसी।

परवास-संज्ञा पुं० दे० "प्रवास"।

संज्ञा पुं० [सं० वास] आच्छादन। उ०—कपड़सार सूची सहस बाँधि बचन परवास। किय दुराउ यह चातुरी सो सठ तुलसीदास।—तुलसी।

परवी † संज्ञा स्त्री० [सं० पर्विणी] पर्व काल। पुण्य काल। पर्विणी। उ०—परवी परै बरत वा होई। तेहि दिन मैथुन करै जो कोई।—विश्राम।

परस-पखान⊛-संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श + पाषाण] पारस पत्थर। स्पर्श-मणि। उ०—रूपवंत धनवंत सभागे। परस-पखान पौरि तिन्ह लागे।—जायसी।

परसौंहाँ⊛†-वि० [सं० स्पर्श, हिं० परस + औंहाँ (प्रत्य०)] स्पर्श करनेवाला। छूनेवाला। उ०—लिय तरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह। घर परसौंहैं ह्वै रहे झर बरसौंहैं मेह।—बिहारी।

परहरना⊛-क्रि० स० [सं० परि + हरण] परित्याग करना। छोड़ना। उ०—भक्ति छुड़ावैं निगुरा करई। कहे कहावे जो परहरई।—विश्राम।

पराँवा-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की कम चौड़ी और लंबी नाव। (ल०)

परावन-संज्ञा पुं० [सं० पर्व] पर्व। पुण्यकाल। उ०—पूरे पूरब पुण्यतें पर्यो परावन आज।—मतिराम।

परावा⊛-वि० दे० "पराया" उ०—बिरह बिबस व्याकुल महतारी। निजु पराव नहिं हृदय सम्हारी।—रामाश्वमेध।

परिक्रय संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो जंगली पदार्थ, धन या कोश का कुछ भाग या संपूर्ण कोश देकर की जाय। (कामंदक)

परिक्षिप्त-वि० [सं०] सब ओर से घिरी हुई (सेना)। वि दे० "उपरुद्ध"।

परिक्षीण-वि० [सं०] (२) दुर्बल और अशक्त। (सेना)

परिखन⊛-वि० [हिं० परखना] निगहबानी करनेवाला। देख रेख करनेवाला। अगोरिया। उ०—गरभ माहिं रक्षा करी जहाँ हितू नहिं कोइ। अब का परिखन पालिहैं बिपिन गए महँ सोइ।—विश्राम।

परिच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] प्रांत। प्रदेश।

विशेष—नागौद रियासत के खोह नामक गाँव में जो ताम्रपत्र मिला है, उस में इस शब्द का प्रयोग पाया गया है। वहाँ लिखा है—दक्षिणेन बलबर्मा परिच्छदः।

परिपणित काल-संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] "आप इतने समय तक लड़िये और मैं इतने समय तक लड़ूँगा" इस प्रकार की समय सम्बन्धी संधि।

परिपणित देश-संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] "आप इस देश पर चढ़ाई करिये और हम इस देश पर चढ़ाई करते हैं" इस ढंग की देश विषयक संधि।

परिपणित संधि-संज्ञा स्त्री० [सं] कुछ शर्तों के साथ की गई संधि। इसके तीन भेद हैं—(१) परिपणित देश संधि, (२) परिपणित काल संधि और (३) परिपणितार्थ संधि।

परिपणितार्थ संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] "आप इतना काम करें और मैं इतना काम करूँगा" ऐसी कार्य्य विषयक संधि।

परिपार⊛†-संज्ञा स्त्री० [सं० पालि या परिपाटी] मर्य्यादा। उ०—अरे परेखौ को करै तुँही बिलोकि बिचारि। किहिं नर किहिं सर राखियै खरैं बढ़ैं परिपारि।—बिहारी।

परिभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (नाटक में) कोई आश्चर्यजनक दृश्य देखकर कुतूहलपूर्ण बातें कहना।

परिवर्त्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (७) अनाज आदि देकर दूसरी वस्तुएँ बदले में लेना। विनिमय।

परिसून-संज्ञा पुं० [सं०] बूचड़खाने के बाहर मारा हुआ पशु। (कौ०)

परिसृप्त-वि० [सं०] लड़ाई से भागा हुआ (सैनिक)।

परिहँस†-संज्ञा पुं० [सं० परिहास ?] ईर्ष्या। डाह। जलन। उ०—(क) परिहँस पियर भए तेहि बसा।—जायसी। (ख) परिहँस मरसि कि कौनिउ लाजा। आपन जीउ देसि केहि काजा।—जायसी।

परिहा-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छंद। उ०—सुनत दूत के बचन चतुर चित में हँसे। लोहिताक्ष ढूँकरन बात में हम फँसे। बल ते सबै उपाय और तब कीजिये। नहिं देहौं भेंट कुठार प्राण को लीजिये।—हनुमन्नाटक।

परिहारक ग्राम-संज्ञा पुं० [सं०] राज-कर से मुक्त ग्राम। मुआफी गाँव। लाखिराज गाँव।

विशेष-समाहर्त्ता के रजिस्टर में ग्रामों या भूमि का जो वर्गीकरण है, उसमें 'परिहारक' भी है। (कौ०)

परिहारनाॐ-क्रि० स० [सं० प्रहार + ना (प्रत्य०)] (शस्त्र आदि) प्रहार करना। चलाना। उ०—पारथ देखि बाण परिहारा। पंख काटि पावक महँ डारा।—सबल।

परीछितॐ-वि० संज्ञा पुं० दे० "परीक्षित"।

क्रि० वि० [सं० परीक्षित] अवश्य ही। निश्चित रूप से। उ०-संकर कोप सों पाप को दास परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो।—तुलसी।

परीतॐ-संज्ञा पुं० दे० "प्रेत"। उ०-कीन्हेसि राकस भूत परीता। कीन्हेसि भोकस देव दईता।—जायसी।

परुआ†-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भूमि। (बुंदेलखंड)

परेरा-संज्ञा पुं० [हिं० फरहरा] छोटी झंडी जो किसी किसी जहाज के मस्तूल के सिरे पर लगी रहती है। फरेरा। फरहरा। (लश०)

परेह-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की कढ़ी जो बेसन को खूब पतला घोलकर और घी या तेल में पका कर बनाई जाती है।

परोक्त दोष-संज्ञा पुं० [सं०] अदालत के सामने ठीक रीति से बयान न करने का अपराध।

विशेष-जो प्रकरण में आई हुई बात छोड़कर दूसरी बात कहने लगे, पहले कुछ कहे पीछे कुछ, प्रश्न किए जाने पर उत्तर न दे या दूसरे से पूछने को कहे, प्रश्न कुछ किया जाय और उत्तर कुछ दे, पहले कोई बात कहकर फिर निकल जाय, साक्षियों के द्वारा कही बात स्वीकार न करे तथा अनुचित स्थान में साक्षियों के साथ कानाफूसी करे, वह इस अपराध का दोषी कहा गया है।

पर्णकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का व्रत जो गूलर, बेल, कुशा आदि के पत्ते खाकर या इनके काढ़े पीकर रहने से होता था।

पर्युपासन-संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिमुख संधि के तेरह अंगों में से एक। किसी को क्रुद्ध देखकर उसे प्रसन्न करने के लिये अनुनय विनय करना। (नाट्य शास्त्र)

पर्वत दुर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ी किला।

विशेष-चाणक्य के मत से पर्वत दुर्ग सब दुर्गों से उत्तम होता है। (कौ०)

पर्वतनंदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती। उ०—सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यौ पर्वतनंदिनी।—केशव।

पर्वतृण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण जो औषध के काम में आता है। तृणाढ्य।

पलंजी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास जो उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है। भूसा। गुलगुला। बड़ा गुरमुरा। वि० दे० "भूसा"।

पलटनिया-संज्ञा पुं० [हिं० पलटन + इया (प्रत्य०)] वह जो पलटन में काम करता हो। सेना का सिपाही। सैनिक। जैसे—नगर में गोरे पलटनियों का पहरा था।

वि० पलटन में काम करनेवाला। पलटन का। जैसे—१८९३ के पहले सुपरिंटेंडेंट और असिस्टेंट पलटनिये अफसर होते थे।

पला†-संज्ञा पुं० [सं० पटल] (३) पार्श्व। किनारा। उ०—नासिक पुल सरात पथ चला। तेहि कर भौंहें हैं दुइ पला।—जायसी।

पलाव-संज्ञा पुं० [हिं० पूला] पूला नामक वृक्ष जिसके रेशों से रस्से बनते हैं। वि० दे० "पूला"।

पलास-संज्ञा पुं० [?] कनवास नाम का मोटा कपड़ा। वि० दे० "कनवास"।

पलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] तेल निकालने की डाँड़ीदार बेलिया। पली।

विशेष—संवत् १००३ के सियादानी शिलालेख में यह शब्द आया है। वि० दे० "प्राणक"।

पवंगा-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छंद। उ०—दूजे दिन दरबार सुजान सुआइकै। देखत ही मनसूर महा सुख पाइकै। खिलवति करी नवाब जनाइ वकील सौं। मसलति बूझन काज सुजान सुसील सौं।—सूदन।

पवनॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "पावन"। उ०—सुवन सुख करनि भव-सरिता तरनि गावत तुलसिदास कीरति पवनि।—तुलसी।

पवारी-संज्ञा स्त्री० [?] नलिका नामक गंधद्रव्य।

पस्सी-संज्ञा पुं० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो प्रायः सारे उत्तरी भारत, नैपाल और आसाम में पाया जाता है। यह प्रायः सड़कों के किनारे लगाया जाता है। यह नीची और बलुई जमीन में बहुत जल्दी बढ़ता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। इसकी लकड़ी

बहुत बढ़िया होती है और शीशम की भाँति ही काम में आती है। बिथुआ। भकोली।

पहँ-अव्य० [सं० पार्श्व, प्रा० पाह] (१) निकट। समीप। उ०—राजा बंदि जेहि के सौंपना। गा गोरा तेहि पहँ अगमना।—जायसी। (२) से। उ०—दूतिन्ह बात न हिये समानी। पदमावति पहँ कहा सो आनी।—जायसी।

पहाड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० पहाड़ या सं० पर्पटी] एक प्रकार की ओषधि जिसे पर्पटी या जनी भी कहते हैं। वि० दे० "जनी"।

पहाड़ी इन्द्रायन-संज्ञा पुं० [हिं० पहाड़+इन्द्रायन] एक प्रकार का खीरा जिसे ऐरालू भी कहते हैं। वि० दे० "ऐरालू"।

पहाड़ुआ†-संज्ञा पुं० [देश०] बच्चों का एक प्रकार का खेल जिसे आनी पानी भी कहते हैं।

वि० [हिं० पहाड़] पहाड़ संबंधी। पहाड़ का। पहाड़ी।

पहारू†-संज्ञा पुं० [हिं० पहरा] पहरेदार। रक्षक। पाहरू। उ०—जेहि जिउ महँ होइ सत्त पहारू। परै पहार न बाँकै बारू।—जायसी।

पहुँची-संज्ञा स्त्री० [हिं० पहुँचा] (२) युद्ध-काल में कलाई पर, उसकी रक्षा के लिये, पहनने का लोहे का एक प्रकार का आवरण। उ०—सजे सनाहट पहुँची टोपा। लोहसार पहिरे सब ओपा।—जायसी।

पहुला†-संज्ञा पुं० [सं० प्रफुल्ल] कुमुदिनी। कोईं। उ०—पहुला हार हियैं लसै सन की बेंदी भाल। राखनि खेत खरे खरे उरोजनु बाल।—बिहारी।

पाँजरा-संज्ञा पुं० [?] वह मल्लाह जो मल्लाही में अनाड़ी हो। डंडी। कूली। (ऐसे अनाड़ियों को मल्लाह लोग पाँजरा कहते हैं।)

पाँड़-वि० स्त्री० [देश०] (१) (स्त्री) जिसके स्तन बिलकुल न हों या बहुत ही छोटे हों। (२) (स्त्री) जिसकी योनि बहुत छोटी हो और जो संभोग के योग्य न हो।

पाँसासारि†-संज्ञा पुं० [हिं० पाँसा] चौपड़। उ०—पाँसासारि कुँवर सब खेलहिं गीतन सुवन ओनाहिं। चैन चाव तस देखा जनु गढ़ छेंका नाहिं।—जायसी।

पांसुधावक-संज्ञा पुं० [सं०] धूल साफ करनेवाला। सड़क या गली झाड़नेवाला। (कौ०)

पाइंट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) पानी, दूध आदि द्रव पदार्थ नापने का एक अँगरेजी मान जो डेढ़ पाव का होता है। डेढ़ पाव का एक पैमाना। (२) आधी या छोटी बोतल जिसमें प्रायः डेढ़ पाव जल या मदिरा आती है। अद्धा।

पाकना⊛†-क्रि० अ० दे० "पकना"। उ०—कटहर डार पींड सन पाके। बड़हर सो अनूप अति ताके।—जायसी।

पाकसी-संज्ञा स्त्री० [अं० फॉक्स] लोमड़ी। (लश०)

पाका⊛†-वि० दे० "पक्का"।

पाकेट-संज्ञा पुं० [अं० पैकेट] (२) नियमित दिन को डाक, माल और यात्री लेकर रवाना होनेवाला जहाज। (लश०)

पाख†-संज्ञा पुं० [सं० पंख] पक्षी का पंख। डैना। पर।

पागर-संज्ञा पुं० [?] वह रस्सा जिससे मल्लाह नाव को खींच कर नदी के किनारे बाँधते हैं। गून। (लश०)

पाज-संज्ञा पुं० [?] पंक्ति। पाँती। कतार। (लश०)

पाट-संज्ञा पुं० [सं० पट] (१६) वस्त्र। कपड़ा।

पाटक संज्ञा पुं० [सं०] (१५) हल में का मछोतर जिसकी सहायता से हरिस में हल जुड़ा रहता है। यह मछली के आकार का होता है।

पाटा-संज्ञा पुं० [हिं० पाट] (३) वह हाथ डेढ़ हाथ ऊँची दीवार जो रसोई-घर में चौके के सामने और बगल में इसलिये बनाई जाती है कि बाहर बैठकर खानेवालों का पकानेवाली स्त्री से सामना न हो।

पाढ़त⊛-संज्ञा स्त्री० [हिं० पढ़ना] (३) पढ़ने की क्रिया या भाव।

पातर⊛†-वि० [हिं० पतला] [स्त्री० पातरी] जिसका शरीर दुर्बल हो। पतला। उ०—अंग अंग छबि की लपट उपटति जाति अछेह। खरी पातरीऊ तऊ लगै भरी सी देह।—बिहारी।

पादगोप-संज्ञा पुं० [सं०] पदाति, रथी, हस्ती तथा अश्वारोही सेना के संरक्षक। (कौ०)

पादपथ-संज्ञा पुं० [सं०] पगडंडी।

पादानुध्यात, पादानुध्यान-संज्ञा पुं० [सं०] छोटे की ओर से बड़े को पत्र लिखने में एक नम्रतासूचक शब्द जिसका व्यवहार लिखनेवाला अपने लिये करता था।

विशेष-प्रायः सामंत या जागीरदार महाराज को पत्र लिखने में इस शब्द का व्यवहार करते थे (गुप्तों के शिलालेख)। इसी प्रकार पुत्र पिता को पत्र लिखने में या कोई व्यक्ति अपने पूर्वज का उल्लेख करते समय अपने लिये इस शब्द का व्यवहार करता था।

पादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौथाई पण। (कौ०)

पानन-संज्ञा पुं० [देश०] साँदन नाम का मँझोले आकार का एक वृक्ष जिसकी लकड़ी से सजावट के सामान बनते हैं। वि० दे० "साँदन"।

पानीबेल-संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी+बेल] एक प्रकार की बड़ी लता जिसकी पत्तियाँ तीन से सात इंच तक लंबी होती हैं। गरमी के दिनों में इसमें ललाई लिए भूरे रंग के छोटे फूल लगते हैं और वर्षा ऋतु में यह फलती है। इसके फल खाए जाते हैं और जड़ का ओषधि के रूप में व्यवहार होता है। यह रूहेलखंड, अवध और ग्वालियर के आस पास और विशेषतः साल के जंगलों में पाई जाती है। मूसल।

पानूस⊛-संज्ञा पुं० दे० "फानूस"। उ०—बाल छबीली तियनु

में बैठी आपु छिपाइ। अरगट ही पानूस सी परगट होति लखाइ।—जायसी।

पापर-संज्ञा पुं० [अं० पॉपर] (१) मुफलिस आदमी। निर्धन व्यक्ति। (२) वह व्यक्ति जो मुफलिसी या निर्धनता के कारण दीवानी में बिना किसी प्रकार के अदालती रसूम या खर्च के किसी पर दावा दायर करने या मामला लड़ने की स्वीकृति पाता है।

विशेष-ऐसे व्यक्ति को पहले प्रमाणित करना पड़ता है कि मैं मुफलिस हूँ; दावा दायर करने या मामला लड़ने के लिये मेरे पास पैसा नहीं है। अदालत को विश्वास हो जाने पर वह उसे अदालती रसूम या खर्च से बरी कर देती है। पर हाँ, मामला जीतने पर उसे खर्च देना पड़ता है।

पायंटमैन-संज्ञा पुं० [अं० प्वायंट्समैन] वह आदमी जिसके जिम्मे रेलवे लाइन इधर से उधर करने या बदलने की कल रहती है।

पाय॥†-संज्ञा पुं० [सं० पाद] पैर। पाँव। उ०—बादल केरि जसोवै माया। आइ गहेसि बादल कर पाया।—जायसी।

पायतख्त-संज्ञा पुं० [फा० पायः तख्त] राजनगर। राजधानी।

पारई†-संज्ञा स्त्री० [सं०पार] मिट्टी का बड़ा कसोरा। परई। उ०—मनि भाजन मधु पारई पूरन अमी निहारि। का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु बिबेक बिचारि।—तुलसी।

पारतल्पिक-वि० [सं०] जो पराई स्त्री के साथ गमन करे। व्यभिचारी।

पारविषयिक-वि० [सं०] दूसरे राज्य का। विदेशी। (कौ०)

पारस-वि० [सं० स्पर्श] (२) जो किसी दूसरे को भी अपने ही समान कर ले। दूसरों को अपने जैसा बनानेवाला। उ०—पारस-जोनि लिलाटहि ओती। दिस्टि जो करै होइ तेहि जोती।—जायसी।

पारिपातिक रथ-संज्ञा पुं० [सं०] वह रथ जो इधर उधर सैर करने के काम का होता था।

पारिहीणिक-संज्ञा पुं० [सं०] क्षतिपूर्त्ति। नुकसानी। हरजाने की रकम।

पारी-संज्ञा स्त्री० [फा० पा० ?] जहाज के मस्तूल के नीचे का भाग। (लश०)

पार्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) नाटकांतर्गत कोई भूमिका या चरित्र जो किसी अभिनेता को अभिनय करने को दिया जाय। भूमिका। जैसे—उसने प्रतापसिंह का पार्ट बड़ी उत्तमता से किया। (२) हिस्सा। भाग। जैसे—आजकल वे सभा सोसाइटियों में पार्ट नहीं लेते। (३) (पुस्तक का) खंड। भाग। हिस्सा।

पार्टिशन संज्ञा पुं० [अं०] बाँटने या विभाग करने की क्रिया। किसी चीज के दो या अधिक भाग या हिस्से करना। विभाग। बँटवारा। जैसे—बङ्गाल पार्टिशन। पार्टिशन सूट।

पार्थिव आय-संज्ञा स्त्री० [सं०] जमीन की आमदनी। मालगुजारी। लगान।

पार्श्वकर-संज्ञा पुं० [सं०] बकाया मालगुजारी। पिछले साल की बाकी जमा।

पार्ष्णिग्राह-संज्ञा पुं० [सं०] सेना को पीछे से दबोचनेवाला (शत्रु) या सहायता पहुँचानेवाला (मित्र)।

पार्ष्णि प्रति-विधान-संज्ञा पुं० [सं०] सेना के पिछले भाग को कमजोर पड़ने पर पुष्ट करना।

पालंग†-संज्ञा पुं० दे० "पलंग"। उ०—पालँग पाँव कि आछै पाटा। नेत बिछाव चलै जौ बाटा।—जायसी।

पाल-संज्ञा पुं० [?] तोप, बंदूक या तमंचे की नाल का घेरा या चक्कर। (लश०)

संज्ञा पुं० [सं०] (५) गोपाल। ग्वाला।

पालक॥-संज्ञा पुं० [हिं० पलंग] पलंग। पर्यंक। उ०—को पालक पौढ़े को माढ़ी। सोवनहार परा बँदि गाढ़ी।—जायसी।

पालिटिक्स-संज्ञा पुं० [अं०] (१) नीति शास्त्र का वह अंग जिसमें राष्ट्र या राज्य की शांति, सुव्यवस्था और सुखसमृद्धि के लिये नियम, कायदे और शासन-विधियाँ हों। राजनीति शास्त्र। (२) वह सब बातें जिनका राजनीति से सम्बन्ध हो। (३) अधिकार प्राप्ति के लिये राजनीतिक दलों की प्रतिद्वंद्विता।

पालिसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (२) वह प्रमाण या प्रतिज्ञापत्र जो बीमा करनेवाली कंपनी की ओर से बीमा करानेवाले को मिलता है, जिसमें लिखा रहता है कि अमुक शर्तें पूरी होने या बीच में अमुक दुर्घटना संघटित होने पर बीमा करानेवाले या उसके उत्तराधिकारी को इतना रुपया मिलेगा। वि० दे० "बीमा"।

यौ०—पालिसी-होल्डर।

पालिसी-होल्डर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसके पास किसी बीमा कंपनी की पालिसी हो। बीमा करानेवाला।

पासंजर-संज्ञा पुं० [अं० पैसेंजर] यात्री। मुसाफिर। (लश०)

पासपोर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अधिकारपत्र या परवाना जो, एक देश से दूसरे देश को जाते समय, सरकार से प्राप्त करना पड़ता है और जिससे एक देश का मनुष्य दूसरे देश में संरक्षण प्राप्त कर सकता है। अधिकार-पत्र। छूट पत्र।

विशेष-अनेक देशों में ऐसा नियम है कि उन देशों की सरकारों से पासपोर्ट या अधिकारपत्र प्राप्त किए बिना कोई विदेश नहीं जाने पाता। पासपोर्ट देना या न देना सरकार की इच्छा पर निर्भर है। अवांछनीय व्यक्तियों या राजनीतिक संदिग्धों को पासपोर्ट नहीं मिलता; क्योंकि इनसे अधिकारियों को आशंका रहती है कि ये विदेशों में जाकर सर-

कार के विरुद्ध काम करेंगे। हिंदुस्थान से बाहर जानेवालों को भी पासपोर्ट लेना पड़ता है। (२) वह अधिकारपत्र या परवाना जो युद्ध के समय विरोधी देश के लोगों को अपने देश में निरापद पहुँचने के लिये दिया जाता है। (३) बिना नियमित कर या महसूल के विदेश से माल मँगाने या भेजने का प्रमाणपत्र या लाइसेंस।

पासबान-वि० [फा०] रक्षा करनेवाला। रक्षक।
संज्ञा स्त्री० रखेली स्त्री। रखनी। (राजपूता०)

पाहँ*-अव्य० [सं० पार्श्व] पास। समीप। निकट। उ०—मैं जानेउ तुम्ह मोही माहाँ। देखौं ताकि तौ हौ सब पाहाँ।—जायसी।

पिंडकर-संज्ञा पुं० [सं०] मुकर्रर मालगुजारी। स्थिर या नियत कर जैसा कि आजकल दवामी बंदोबस्तवाले प्रदेशों में है।

पिंडा-संज्ञा पुं० [देश०] करघे में पीछे की ओर लगी हुई एक खूँटी। वि० दे० "महतवान"।

पिअरवा†-संज्ञा स्त्री० [हिं० पिअरा = पीला] बरतन बनाने की पीले रंग की मिट्टी। (कुम्हार)

पिकेट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) पलटनियों का पहरा जो कहीं उपद्रव होने या उसकी आशंका होने पर उसे रोकने के लिये बैठाया जाता है। (२) किसी काम को रोकने के लिये दिया जानेवाला पहरा। धरना।

पिकेटिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी बात को रोकने के लिये पहरा देना। धरना। जैसे,—स्वयंसेवक विदेशी वस्त्र की दूकानों के सामने पिकेटिंग कर रहे थे; इससे कोई ग्राहक नहीं आया।

पिक्चर-संज्ञा स्त्री० [अं०] चित्र। तस्वीर।

पिच्छल-संज्ञा पुं० [हिं० पिछला] जहाज का पिछला भाग। (लश०)

पिट-संज्ञा पुं० [अं०] थियेटर में गैलरी के आगे की सीटें या आसन।

पिटपिटाना-क्रि० अ० [अनु०] असमर्थता आदि के कारण हाथ-पैर पटककर रह जाना। विवश होकर रह जाना।

पिटमान-संज्ञा पुं० [?] पाल। (लश०)

पिटौर†-संज्ञा पुं० [हिं० पीटना] वह डंडा या लाठी जिससे फसल की बालों आदि को पीटकर उसके दाने निकालते हैं। पिटना।

पिट्टन-संज्ञा स्त्री० [हिं० पीटना] रोने पीटने की क्रिया या भाव। पिट्टस।
क्रि० प्र०—पड़ना।

पिठमिल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० पीठ + मिलना] अँगरखे या कोट आदि का वह भाग जो पीठ पर रहता है। पीठ।

पिठौरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० पिट्ठी + औरी (प्रत्य०)] (२) गुँधे हुए आटे का वह छोटा पेड़ा जो पकती हुई दाल में छोड़ दिया जाता है और उसी में उबलकर पक जाता है।

पिड़िया-संज्ञा स्त्री० [सं० पिष्टक या हिं० पेड़ा] चावल का गुँधा हुआ आटा जो लंबोतरे पेड़े के आकार का बनाकर अदहन में छोड़ दिया जाता है और उबल जाने पर खाया जाता है।

पितिजिया-संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्रजीवक] इंगुदी की तरह का एक प्रकार का पेड़ जिसके पत्ते और फल भी इंगुदी के पत्तों और फलों से मिलते जुलते होते हैं। इसके बीजों की, रुद्राक्ष की तरह, माला बनती है। वैद्यक में इसे शीतल, वीर्य्यवर्द्धक, कफकारक, गर्भ और जीवदायक, नेत्रों को हितकारी, पित्त को शांत करनेवाला और दाह तथा तृषा को हरनेवाला कहा है। पितौंजिया। जियापोता।

पितौंजिया-संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्रजीवक] पुत्रजीवक नामक वृक्ष। वि० दे० "पितिजिया"।

पित्ती-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बेल जिसे रक्त वल्ली भी कहते हैं।

पिदारा†-संज्ञा पुं० [हिं० पिद्दा] पिद्दी पक्षी का नर। पिद्दा। उ०—चकई चकवा और पिदारे। नकटा लेदी सोन सलारे।—जायसी।

पिपास-संज्ञा स्त्री० दे० "पिपासा"। उ०—छूटै सब सबनि के सुख क्षुत्पिपास।—केशव।

पिपियाना-क्रि० अ० [हिं० पीप + इयाना (प्रत्य०)] पीप पड़ना। मवाद आना। जैसे,—फोड़े का पिपियाना।
क्रि० स० पीप उत्पन्न करना। मवाद पैदा करना। जैसे,—यह दवा फोड़े को पिपिया देगी।

पियामन-संज्ञा पुं० [देश०] राज-जामुन नामक वृक्ष। वि० दे० "राजजामुन"।

पियाव बड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मिठाई जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पहले चावल को पकाकर सिल पर पीसते हैं, फिर गुलाब का अतर और पाँचों मेवे मिलाकर बड़े की तरह बनाते हैं। अनंतर घी में तलकर चाशनी में डाल देते हैं।

पिल-संज्ञा स्त्री० [अं०] (दवा की) गोली। बटी। जैसे,—क्विनाइन पिल। टानिक पिल।

पीक संज्ञा पुं० [अं०] (३) कोना। (लश०)
वि० खड़ा। कायम। (लश०)

पीच-संज्ञा स्त्री० [अं० पिच] एक प्रकार की राल जो जहाज आदि में दरार भरने के काम में आती है। डामर। गीर। कील। (लश०)

पीठ-संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ] (२) रोटी का ऊपर का भाग। (३) जहाज का फर्श। (लश०)

पीठना†-क्रि० स० दे० "पीसना"। उ०—एक न आदी मरिच सों पीठा। दूसर दूध खाँड़ सों मीठा।—जायसी।

पीठिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) तामदान । डाँड़ी । (कौ०)

पीनल कोड-संज्ञा पुं० [अं० पेनल कोड] अपराध और दंड संबंधी व्यवस्थाओं या कानूनों का संग्रह । दंडविधि । ताजीरात । जैसे,—इंडियन पीनल कोड ।

पीयूषभानु-संज्ञा पुं० [सं० पीयूष + भानु] चंद्रमा । उ०—तीछन जुन्हाई भई ग्रीषम को धामु, भयो भीसम पीयूषभानु, भानु दुपहर को ।—मतिराम ।

पीलसोज-संज्ञा पुं० [फा० फतीलसोज] दीया जलाने की दीवट । चिरागदान । उ०—पीलसोज फानूस कुपी तिखटी सुमसालें ।—सूदन ।

पीव-संज्ञा पुं० [हिं० पिय] पिय । पति । स्वामी । उ०—हरि मोर पिव मैं राम की बहुरिया ।—कबीर ।

पीसगुड-संज्ञा पुं० [अं० पीसगुड्ज] (कपड़े का) थान । रेजा । जैसे,—पीस गुडज के व्यापारी ।

पुंदल-संज्ञा पुं० [?] जहाज के मस्तूल का पिछला भाग । (लश०)

पुखर-संज्ञा पुं० [सं० पुष्कर, प्रा० पुक्खर] तालाब । पोखरा । उ०—भरहिं पुखर औ ताल तलावा ।—जायसी ।

पुख्य संज्ञा पुं० दे० "पुष्य" ।

पुगना -क्रि० अ० दे० "पूगना" ।

पुट-संज्ञा पुं० [सं०] (१०) पोटली या पैकेट जिस पर मुहर की जाती थी । (कौ०)

पुठवार-क्रि० वि० [हिं० पुठठा] पीछे । बगल में । उ०—तुम सैन सजै पुठवार रहौ अब आयसु देहु न और सहौं । हम जाय जुरें पहले उन सौं तुम गौर करौ लखि लोह बहौं ।—सूदन ।

पुतला-संज्ञा पुं० [सं० पुत्तल] (२) जहाज के आगे का पुतला या तस्वीर । (लश०)

पुनी⊛-क्रि० वि० [सं० पुनः] पुनः । फिर । उ०—मानस बचन काय किए पाप सति भाय राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो ।—तुलसी ।

पुर-संज्ञा पुं० [देश०] कूएँ से पानी निकालने का चमड़े का डोल । चरसा ।

पुरस्ताल्लाभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ जो चढ़ाई करने पर प्राप्त हो । (कौ०)

पुरहा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की लता जिसकी पत्तियाँ गोलाकार और ५-६ इञ्च चौड़ी होती हैं । यह हिमालय में सब जगह ७००० फुट तक की ऊँचाई पर पाई जाती है । कहीं कहीं इसकी जड़ का व्यवहार ओषधि रूप में भी होता है ।

पुरही-संज्ञा स्त्री० [देश०] हरजेवड़ी नाम की झाड़ी जिसकी पत्तियाँ और जड़ औषध रूप में काम में आती हैं । वि०-निरबिसी ।

पुराण-चोर-व्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] वे गुप्तचर जो पुराने चोर-डाकुओं के वेष में रहते थे । (कौ०)

विशेष—ये लोग चोरों बदमाशों के अड्डों और शत्रु के पक्षवालों की मण्डली आदि का पता रखते थे और समाहर्त्ता के अधीन काम करते थे ।

पुराणपण्य-संज्ञा पुं० [सं०] पुराना माल । (कौ०)

पुराणभांड-संज्ञा पुं० [सं०] अंगड़ खंगड़ । पुराना माल असबाब । (कौ०)

पुरिषा-संज्ञा पुं० दे० "पुरखा" । उ०—(क) लक्ष्मण के पुरिषान कियो पुरुषारथ सो न कह्यौ परई ।—केशव । (ख) जिनके पुरिषा भुव गंगहि लाये । नगरी शुभ स्वर्ग सदेह सिधाये ।—केशव ।

पुरुष संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो शत्रु कुछ योग्य पुरुषों को अपनी सेवा के लिये लेकर करे ।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि यदि ऐसी अवस्था आ पड़े तो राजा शत्रु को इस प्रकार के लोग दे—राजद्रोही, जंगली, अपने यहाँ के अपमानित सामंत आदि । इससे राजा का इनसे पीछा भी छूट जायगा और ये शत्रु के यहाँ जाकर मौका पाकर उसकी हानि भी करेंगे ।

पुरुषांतर संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] इस शर्त पर की हुई संधि कि आपका सेनापति मेरा अमुक काम करे और मेरा सेनापति आपका अमुक काम कर देगा । (कामंदक)

पुरुषापाश्रया-संज्ञा स्त्री० [सं०] घनी आबादीवाली भूमि । वि० दे० "दुर्गापाश्रया" ।

पुरुषोपस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] अपने स्थान पर किसी दूसरे व्यक्ति को काम करने के लिये देना । एवज देना ।

पुरुष-प्रेक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मरदाना मेला तमाशा । वह खेल तमाशे जिनमें पुरुष ही जा सकते हों ।

पुरुषभोग-वि० [सं०] (वह राष्ट्र या राजा) जिसके पास सेना या आदमी बहुत हों ।

पुरुषायित बंध-संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का बंध या स्त्री-संभोग का एक प्रकार जिसमें पुरुष नीचे चित्त लेटता है और स्त्री उसके ऊपर पट लेट कर संभोग करती है । इसके कई भेद कहे गए हैं । साहित्य में इसी को विपरीत रति कहा है ।

पुरोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह (राष्ट्र या राजा) जो बिना किसी प्रकार की बाधा या शर्त के अपने पक्ष में आकर मिले । (कौ०)

पुल सरात-संज्ञा पुं० [फा० पुल + अ० सरात] मुसलमानों के अनुसार (हिन्दुओं की वैतरणी की भाँति) एक नदी का पुल जिसे मरने के उपरांत जीवों को पार करना पड़ता है । कहते हैं कि पापियों के लिये यह पुल बाल के समान पतला और पुण्यात्माओं के लिये खासी सड़क के समान चौड़ा हो

जाता है। उ०—नासिक पुल-सरात पथ चला। तेहि कर भौंहैं हैं दुइ पला।—जायसी।

पुलहना*—क्रि० अ० दे० "पलुहना"। उ०—तोहि देखे, पिउ! पलुहै कया। उमरा चित्त, बहुरि करु मया।—जायसी।

पुलांग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते फरेंदे के पत्ते की तरह और फल गोल होते हैं जिनमें से गिरी निकलती है। इससे तेल निकलता है। यह वृक्ष उड़ीसे में होता है।

पुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१२) नाटक में कोई ऐसी बात कहना जो विशेष रूप से प्रेम या अनुराग उत्पन्न करनेवाली हो। जैसे,—"यह साक्षात् लक्ष्मी है। इसकी हथेली पारिजात के नवदल हैं; नहीं तो पसीने के बहाने इसमें से अमृत कहाँ से टपकता।"

पुष्पगंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक। बाजे के साथ अनेक छंदों में स्त्रियों द्वारा पुरुषों का और पुरुषों द्वारा स्त्रियों का अभिनय और गान। (नाट्यशास्त्र)

पुहप*—संज्ञा पुं० [सं० पुष्प] पुष्प। फूल। उ०—सुरपुर सब हरषे, पुहपनि बरषे दुंदुभि दीह बजाये।—केशव।

पूँजीदार—संज्ञा पुं० दे० "पूँजीपति"।

पूँजीपति—संज्ञा पुं० [हिं पूँजी + सं० पति] वह मनुष्य जिसके पास धन हो। वह जिसके पास अधिक धन हो, जिसने उसे किसी काम में लगाया हो अथवा जिसे वह किसी काम में लगावे। पूँजीदार।

पूखन-संज्ञा पुं० दे० "पोषण" उ०—भजे न तूखन कोय छिनहिं दिन पूखन होइ।—सुधाकर।

पूग-संज्ञा पुं० [सं०] (९) किसी विशेष कार्य्य के लिये बना हुआ संघ। कंपनी।

विशेष—काशिका में कहा गया है कि भिन्न जातियों के लोग आर्थिक उद्देश्य से जिस संघ में काम करें, वह पूग कहलाता है। जैसे शिल्पियों या व्यापारियों का पूग। याज्ञवल्क्य ने इस शब्द को एक स्थान पर बसनेवाले भिन्न भिन्न जाति के लोगों की सभा के अर्थ में लिया है।

पूगना-क्रि० अ० [हिं० पूजना] पूरा होना। पूजना। जैसे,—मिती पूगना। उ०—संकट समाज असमंजस में रामराज काज जुग पूगनि को करतल पल भो।—तुलसी।

पूर—संज्ञा पुं० [हिं० पूला] (१) घास आदि का बँधा हुआ मुट्ठा। पूला। पूलक। (२) फसल की उपज की तीन बराबर बराबर राशियाँ जिनमें से एक जमींदार और दो तिहाई काश्तकार लेता है। तिकुर। तीकुर। (३) बैलगाड़ी के अगल बगल का रस्सा।

पूर्णकाल आधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जिसके रखने का समय पूरा हो गया हो।

पूला—संज्ञा पुं० [सं० पूलक] (२) एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो देहरादून और सहारनपुर के आस पास के जंगलों में पाया जाता है। वसंत ऋतु में इसकी सब पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इसकी छाल के भीतरी भाग के रेशों से रस्से बनाए जाते हैं। इसकी पत्तियों का व्यवहार ओषधि रूप में होता है और इसकी छाल से चीनी साफ की जाती है।

पूली—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूला] पूला नामक वृक्ष जिसके रेशों से रस्से बनते हैं। वि० दे० "पूला"।

पेंच का घाट—संज्ञा पुं० [हिं० पेंच + घाट] जहाजों के ठहरने का पक्का घाट। (लश०)

पेंटर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) चित्रकार। मुसव्विर। (२) रंग भरनेवाला। रंग-साज।

पेंटिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) चित्रकारी। मुसव्वरी। (२) रंग भरने का काम। रंगसाजी।

पेंडुलम-संज्ञा पुं० [अं०] दीवार में लगानेवाली घड़ी में हिलनेवाला टुकड़ा जो उसकी गति का नियंत्रण करता है। घड़ी का लटकन। लंगर।

पेंहटुला†—संज्ञा पुं० [हिं० पेठा] (१) कचरी या पेठा नामक लता। (२) इस लता का फल जो कुँदरू के आकार का होता है और जिसकी तरकारी तथा कचरी बनती है। वि० दे० "कचरी" (१)।

पे—संज्ञा स्त्री० [अं०] तनखाह। वेतन। महीना। जैसे,—इस महीने की पे तुम्हें मिल गई?

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।

पेग—संज्ञा पुं० [अं०] उतनी शराब जितनी एक बार में सोडा-वाटर डालकर पीते हैं। शराब का गिलास। शराब का प्याला। जैसे,—एक ओर साहब लोग बैठे हुए पेग पर पेग उड़ा रहे थे।

पेज—संज्ञा पुं० [अं०] (२) सेवक। अनुचर। विशेषकर बालक अनुचर जो किसी पद मर्य्यादावाले या ऐश्वर्यशाली व्यक्ति की सेवा में रहता है। जैसे,—दिल्ली दरबार के अवसर पर दो देशी नरेशों के पुत्रों को महाराज जार्ज के 'पेज' बनने का सम्मान प्रदान किया गया था जो महाराज का जामा पीछे से उठाए हुए चलते थे। (३) वह बालक या युवा व्यक्ति जो किसी व्यवस्थापिका परिषद् के अधिवेशन में सदस्यों और अधिकारियों की सेवा में रहता है।

पेट—संज्ञा पुं० [हिं० पेट] रोटी का वह पार्श्व जो पहले तवे पर डाला जाता है।

पेट्रन—संज्ञा पुं० [अं०] संरक्षक। पृष्ठ-पोषक। सरपरस्त। जैसे,—वे सभा के पेट्रन हैं।

पेनशनिया—संज्ञा पुं० [अं० पेन्शन] वह जिसे पेन्शन मिलती हो। पेन्शन पानेवाला। पेन्शनर।

पेन्स-संज्ञा पुं० [अं०] 'पेनी' का बहुवचन। वि० दे० "पेनी"।

पेपर-संज्ञा पुं० [अं०] (४) वह छपा हुआ पत्र या पर्चा जिसमें परीक्षार्थियों से एक या अधिक प्रश्न किए गए हों। प्रश्नपत्र। जैसे;—इस बार मैट्रिक्युलेशन का अँगरेजी का पेपर बहुत कठिन था। (५) प्रामेसरी नोट। सरकारी कागज। जैसे,—गवर्नमेंट पेपर। (६) लेख। निबंध। प्रबंध।

पेमा-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो ब्रह्मपुत्र, गंगा और इरावदी (बरमा) तथा बंबई के जलाशयों में पाई जाती है। इसकी लंबाई ८ इंच होती है।

पेमेंट-संज्ञा पुं० [अं०] मूल्य या देना चुकाना। बेबाकी। भुगतान। जैसे,—(क) तीन तारीख हो गई; अभी तक पेमेंट नहीं हुआ। (ख) बैंक ने पेमेंट बन्द कर दिया।

क्रि प्र०—करना।—होना।

पेश-संज्ञा पुं० [सं० पेशस्] वैदिक काल का लहँगे की तरह का एक प्रकार का पहनावा जो नाचने के समय पहना जाता था और जिसमें सुनहला काम बना होता था।

पैंत-संज्ञा स्त्री० [सं० पणकृत] (२) जूआ खेलने का पाँसा। उ०—प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु विधि बस सुढर ढरे हैं।—तुलसी।

पैंफ्लेट-संज्ञा पुं० [अं०] कुछ पन्नों की छोटी सी पुस्तक जिसमें किसी सामयिक विषय पर विचार किया गया हो। पुस्तिका। पर्चा।

पैक्ट-संज्ञा पुं० [अं०] दो पक्षों में किसी विषय पर होनेवाला कौल करार। प्रण। शर्त्त। जैसे,—बंगाल का हिंदू-मुसलिम पैक्ट।

पैगोडा-संज्ञा पुं० [बरमी] बौद्ध मंदिर।

पैड-संज्ञा पुं० [अं०] (१) सोखता या स्याही-सोख कागज की गद्दी। (२) छोटी मुलायम गद्दी। जैसे इंक पैड।

पैरा-संज्ञा पुं० [अं० पैराग्राफ] (२) टिप्पणी। छोटा नोट। जैसे,—संपादक ने इस विषय पर एक पैरा लिखा है।

पैराऊ॥-संज्ञा पुं० दे० "पैराव"। उ०—धरनी बरषे बादल भीजै भीट भया पैराऊ। हंस उड़ाने ताल सुखाने चहले बीधा पाऊ।—कबीर।

पोंट-संज्ञा पुं० [अं० प्वाइंट] अंतरीप। (लश०)

पोंटा-संज्ञा पुं० [अं० प्वाइंट] रस्से का सिरा या छोर। (लश०)

पोपो†-संज्ञा स्त्री० [अनु०] मलत्याग करने की इन्द्रिय। गुदा।

पोर-संज्ञा पुं० [?] जहाज की रखवाली या चौकसी करनेवाले कर्मचारी या मल्लाह। (लश०)

पोर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (२) समुद्र या नदी के किनारे वह स्थान जहाँ जहाज माल उतारने या लादने या मुसाफिर उतारने या चढ़ाने के लिये बराबर आकर ठहरते हैं। बन्दर। बंदरगाह। जैसे,—कलकत्ता पोर्ट। (३) समुद्र के किनारे, खाड़ी या नदी के मुहाने पर बना हुआ या प्राकृत स्थान जहाँ जहाज तूफान से अपनी रक्षा कर सकते हैं।

पोर्टर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो बोझ ढोता हो। विशेषकर रेलवे स्टेशन और जहाज के डक पर मुसाफिरों का माल असबाब ढोनेवाला। रेलवे कुली। डक-कुली। जैसे—उस दिन बम्बई के विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन के पोर्टरों में गहरी मारपीट हो गई।

पोल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) लकड़ी या लोहे आदि का बड़ा लट्ठा या खंभा। (२) जमीन की एक नाप जो ५॥ गज की होती है। (३) ५॥ गज की जरीब जिससे जमीन नापते हैं। (४) ध्रुव।

पोलिंग बूथ-संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ कौन्सिल आदि के निर्वाचन या चुनाव के अवसर पर वोट लिए जाते हैं।

पोलिंग स्टेशन-संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ कौन्सिल या म्युनिसिपल निर्वाचन के अवसर पर लोगों के वोट लिए और दर्ज किए जाते हैं।

पोवना-क्रि० स० दे० "पोना"। उ०—अरुने दृग कोरनि डोरनि में मन को मनुका मनु पोवतु है।—अनुरागबाग।

पोसपोन-वि० दे० "पोस्टपोन"।

पोस्टपोन-वि० [अं० पोस्टपोन्ड] जो कुछ समय के लिये रोक दिया गया हो। जिसका समय बढ़ा दिया गया हो। मुलतवी। स्थगित। जैसे—मामला पोस्टपोन हो गया।

पोस्टर-संज्ञा पुं० [अं०] छपी हुई बड़ी नोटिस या विज्ञापन जो दीवारों पर चिपकाया जाता है। प्लैकर्ड। जैसे,—सेवासमिति ने शहर भर में पोस्टर लगवा दिए थे जिसमें यात्रियों को धूर्त्तों से सावधान रहने को कहा गया था।

क्रि० प्र० चिपकना।—चिपकाना।—लगना।—लगाना।

पौतव-संज्ञा पुं० [सं०] बिक्री का माल तौलनेवाला। बया। डंडीदार। (कौ०)

पौतवाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] माल की तौल की निगरानी रखनेवाला अधिकारी। (कौ०)

पौतवापचार-संज्ञा पुं० [सं०] उचित से कम तौलना। डंडी मारना। (कौ०)

पौरी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० पैर] सीढ़ी। पैड़ी। उ०—का बरनौं अस ऊँच तुखारा। दुइ पौरी पहुँचे असवारा।—जायसी।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँवरि] खड़ाऊँ। उ०—पाँयन पहिरि लेहु सम पौरी। काँट धँसै न गड़ै अँकरौरी।—जायसी।

पौर्वापौरुषिक-वि० [सं०] वंशपरंपरागत। पुश्तैनी।

पौवा-संज्ञा पुं० [हिं० पाव] (३) २६¼ ढोली पान। (तंबोली)

पौसरा-संज्ञा पुं० [हिं० पन + शाला] वह स्थान जहाँ सर्व साधारण को धर्मार्थ जल पिलाया जाता है। प्याऊ। सबील।

प्याजी-संज्ञा पुं० [देश०] काले रंग का एक प्रकार का दाना जो

प्रायः गेहूँ के साथ उत्पन्न होता और उसी के दानों के साथ मिल जाता है। सुनसुना। वि० दे० "सुनसुना"।

प्युनिटिव पुलिस–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह अतिरिक्त पुलिस दल जो किसी नगर या गाँव में, वहाँवालों के दुष्ट आचरण अर्थात् नित्य उपद्रव आदि करने के कारण, निर्दिष्ट अवधि के लिये तैनात किया जाता है और जिसका खर्च गाँववालों से ही दंड स्वरूप लिया जाता है।

प्यौर॰–संज्ञा पुं० [हिं० प्रिय] (१) पति। स्वामी। (२) प्रियतम। उ०—हम हारी कै कै हहा पाइनु पार्‌यौ प्यौरु। लेहु कहा अजहूँ किए तेह तरेर्‌यौ त्यौरु।—बिहारी।

प्रकरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रासंगिक कथावस्तु के दो भेदों में से एक। वह कथावस्तु जो थोड़े काल तक चल कर रुक जाती या समाप्त हो जाती है। (प्रासंगिक कथावस्तु का दूसरा भेद "पताका" है।)

प्रकासना॰–क्रि० स० [सं० प्रकाश] प्रकाश करना। प्रकट करना। जाहिर करना। उ०—सुनि उद्धव सब बात प्रकासी। तुम बिन दुखित रहत ब्रजवासी।—विश्राम।

प्रकृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दंड और मित्र इन सात अंगों से युक्त राष्ट्र या राज्य।

विशेष—इसी को शुक्रनीति में 'सप्तांग राज्य' कहा है। उसमें राजा की सिर से, अमात्य की आँख से, मित्र की कान से, कोश की मुख से, दंड या सेना की भुजा से, दुर्ग की हाथ से और जनपद की पैर से उपमा दी गई है।

(५) राज्य के अधिकारी कार्यकर्त्ता जो आठ कहे गए हैं। वि० दे० "अष्ट-प्रकृति"।

प्रकोपक–संज्ञा पुं० [सं०] किसी भूमि या धन का धर्मात्मा के हाथ से अधर्मी के हाथ में जाना। अधर्मी का लाभ (जिससे जनता को खेद या रोष हो)।

प्रच्छ॰–वि० [सं० पृच्छक] पूछनेवाला। प्रश्नकर्त्ता। उ०—कल्प कलहंस कोकि क्षीरनिधि छबि प्रच्छ हिमगिरि प्रभा प्रभु प्रगट पुनीत है।—केशव।

प्रघात–संज्ञा पुं० [सं०] (३) पानी बहने का नल।

प्रचार कार्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] व्याख्यानों, उपदेशों, पुस्तिकाओं, और विज्ञापनों आदि के द्वारा किसी मत या सिद्धांत के प्रचार करने का ढंग या काम। प्रोपेगंडा। जैसे,—हिंदू महासभा की ओर से हरिहर क्षेत्र के मेले में बहुत अच्छा प्रचार कार्य हुआ।

प्रच्छालन॰–संज्ञा पुं० दे० "प्रक्षालन"।

प्रच्छेदक–संज्ञा पुं० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक। प्रियतम को अन्य नायिका में आसक्त जानकर प्रेम-विच्छेद के अनुताप से तप्त-हृदया नायिका का वीणा के साथ गाना। (नाट्यशास्त्र)

प्रजातंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह शासन-व्यवस्था जिसमें कोई राजा न होता हो, बल्कि राज्य-परिचालन के लिये कोई एक व्यक्ति चुन लिया जाता हो। ऐसी व्यवस्था में उस चुने हुए व्यक्ति को प्रायः राजा के समान अधिकार प्राप्त होते हैं, और वह प्रजा की चुनी हुई किसी सभा या समिति आदि की सहायता से कुछ निश्चित समय तक शासन का सब प्रबंध करता है। गणतंत्र।

प्रजासत्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शासन व्यवस्था जिसमें किसी देश के निवासियों या प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधि ही शासन और न्याय आदि का सारा प्रबंध करते हैं। प्रजा द्वारा संचालित राज्य-प्रबंध।

प्रज्ञापनपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो प्राचीन काल में राजा की ओर से याज्ञिकों या ऋत्विजों को बुलाने के लिये भेजा जाता था। (शुक्रनीति)

प्रतिपात–संज्ञा पुं० [सं०] किसी क्षति की पूर्ण पूर्ति। नुकसान का पूरा बदला या हरजाना। (कौ०)

प्रतिपादन मान–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक वेतन या जागीर आदि देकर प्रतिष्ठा बढ़ाना। (कौ०)

प्रतिबल–संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु सेना के भिन्न भिन्न अंगों का सामना करने की शक्ति या सामान।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि हस्तिसेना का मुकाबला करनेवाली हस्तियंत्र, शकट गर्भ, कुंज, प्रास, शल्य आदि से युक्त सेना है। जिस सेना में पाषाण, लकुट (लाठियाँ), कवच, कचग्रहणी आदि अधिक हों, वह रथ-सेना के मुकाबले के लिये ठीक है; इत्यादि।

प्रतिलोम–संज्ञा पुं० [सं०] (२) 'उपाय' में बताई हुई युक्तियों से उलटी युक्ति जिसके कौटिल्य ने १५ भेद बतलाए हैं। (कौ०)

प्रतिष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१६) वह उपहार जो वर का बड़ा भाई वधू को देता है।

प्रतिहत–वि० [सं०] (६) अपने शत्रु के द्वारा पीछे हटाया हुआ (सैन्य)।

विशेष—कौटिल्य ने प्रतिहत सेना को हतप्रवेग सेना से अच्छा कहा है; क्योंकि यह छिन्न भिन्न भाग को फिर से जोड़ कर युद्ध के योग्य हो सकती है।

प्रतिहारक–संज्ञा पुं० [सं०] (३) बुलावा देनेवाला या आमंत्रण करनेवाला राज्याधिकारी।

विशेष—शुक्रनीति में लिखा है कि जो मनुष्य शस्त्र-अस्त्र चलाने में कुशल हो, दृढ़ांग हो, आलसी न हो और जो नम्र होकर दूसरों को बुला सके, वह इस पद के योग्य होता है।

प्रतीकार संधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो उपकार के बदले में उपकार करने की शर्त करके की जाय; जैसी राम और सुग्रीव के बीच हुई थी। (कामन्दकीय)

प्रतोली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (६) किले के नीचे होकर जानेवाला रास्ता।

प्रत्यभियोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह अभियोग जो अभियुक्त अभियोग चलानेवाले पर चलावे। मुद्दालेह का मुद्दई पर भी दावा करना। (कौ०)

प्रत्ययाधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी या रेहन जो रुपया वसूल होने के इतमीनान या साख के लिये रखा जाय।

प्रत्यय प्रतिभू-संज्ञा पुं० [सं०] वह जमानतदार जो किसी को महाजन से यह कह कर कर्ज दिलावे कि "मैं इसे जानता हूँ; यह बड़ा ईमानदार, साधु और विश्वास करने के योग्य है"।

प्रत्यादेय-संज्ञा पुं० [सं०] 'आदेय' से उलटा लाभ। वह लाभ जो पीछे लौटाना पड़े।

विशेष-कौटिल्य ने इसे बुरा कहा है; केवल कुछ विशेष अवस्थाओं में ही ठीक बताया है।

प्रत्यादेया भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसको लौटा देना पड़े। (कौ०)

प्रत्युत्पन्नार्थ कृच्छ्र-वि० [सं०] (राज्य या राष्ट्र) जो अर्थ संकट में पड़ गया हो, अर्थात् जिसके शासन का खर्च आमदनी से न सधता हो।

प्रदिष्टाभय-वि० [सं०] जिसे राज्य की ओर से रक्षा का वचन मिला हो। राज्य द्वारा संरक्षित।

प्रदेष्टा-संज्ञा पुं० [सं०] प्रदेश विशेष के कर की वसूली का प्रबंध करनेवाला और चोर डाकुओं आदि को दंड देकर शांति रखनेवाला अधिकारी।

विशेष-इसका कार्य्य आजकल के कलक्टर के कार्य्य से मिलता जुलता होता था।

प्रभुशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोश और सेना का बल।

प्रभु-सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कार्य्य जो प्रभुशक्ति से सिद्ध हो।

प्रयोजक-संज्ञा पुं० [सं०] (४) वह जिसके सामने किसी के पास धन जमा किया जाय या जो अपने सामने किसी से किसी के यहाँ धन जमा करावे। (५) कार्य रूप में कर के दिखानेवाला। प्रदर्शन करनेवाला। (नाटक)

प्रवेश्य-संज्ञा पुं० [सं०] देश के भीतर आनेवाला माल। आयात। (कौ०)

प्रवेश्य शुल्क-संज्ञा पुं० [सं०] देश के भीतर आनेवाले माल का महसूल। आयात कर।

प्रवेसना*-क्रि० स० [सं० प्रवेश] प्रवेश करना। घुसना। पैठना। उ०—सो सिय मम हित लागि दिनेसा। घोर बननि महँ कीन्ह प्रवेसा।—रामाश्वमेध।

क्रि० स० प्रविष्ट करना। घुसाना।

प्रसंग यान-संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्थान पर चढ़ाई करने की बात प्रसिद्ध कर किसी दूसरे स्थान पर चढ़ाई कर देना। (कामंदक)

प्रसंगासन-संज्ञा पुं० [सं०] किसी दूसरे पर चढ़ाई करने के गुप्त उद्देश्य से प्राप्त शत्रु के साथ संधि करके चुपचाप बैठना। (कामंदकीय)

प्रसादक-संज्ञा पुं० [सं०] (४) देश या धन आदि का अधार्मिक के हाथ से निकल कर किसी धार्मिक के पास जाना। धार्मिक पुरुष का लाभ (जिससे जनता को प्रसन्नता होती है)। (कौ०)

प्रसार-संज्ञा पुं० [सं०] (६) युद्ध के समय वह सहायता जो जंगल आदि पड़ने से प्राप्त हो जाय। (कौ०)

प्रसुप्त-संज्ञा पुं० [सं०] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद या अवस्था जिसमें किसी क्लेश की चित्त में सूक्ष्म रूप से अवस्थिति तो रहती है, पर उसमें कोई कार्य करने की शक्ति नहीं रहती।

प्रस्तावक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी विषय को किसी सभा में सम्मति या स्वीकृति के लिये उपस्थित करे। प्रस्ताव उपस्थित करनेवाला। जैसे—प्रस्तावक ने ही अपना प्रस्ताव उठा लिया।

प्रस्रंसिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का योनि रोग जिसमें प्रसंग के समय रगड़ से योनि बाहर निकल आती है और गर्भ नहीं ठहरता।

प्राइम मिनिस्टर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी राज्य या देश का प्रधान मन्त्री। वजीर आजम।

प्राइमरी-वि० [अं०] प्रारंभिक। प्राथमिक। जैसे,—प्राइमरी एजुकेशन।

प्राइवेट-संज्ञा पुं० [अं०] पलटन का सिपाही। सैनिक। जैसे,—प्राइवेट जेम्स।

प्रातिनिधिक-वि० [सं० प्रतिनिधि] प्रतिनिधित्व से युक्त। जैसे,—प्रातिनिधिक संस्था।

प्रातिभाव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह धन जो प्रतिभू या जामिन को देना पड़े।

प्रातिभाव्य ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो किसी की जमानत पर लिया गया हो।

प्रादीपिक-संज्ञा पुं० [सं०] घर या खेत आदि में आग लगानेवाला।

विशेष-जो लोग इस अपराध में पकड़े जाते थे, उनको जीते जी जलाने का दंड दिया जाता था। (कौ०)

प्रानेस-* संज्ञा पुं० [सं० प्राणेश] पति। स्वामी। उ०—बामा भामा कामिनी कहि बोलौ प्रानेस। प्यारी कहत खिसात नहिं पावस चलत बिदेस।—बिहारी।

प्रासंगिक-संज्ञा पुं० [सं०] कथावस्तु के दो भेदों में से एक। गौण कथावस्तु जिससे आधिकारिक या मूल कथावस्तु का सौंदर्य्य बढ़ता है और मूल कार्य्य या व्यापार के विकास में

सहायता मिलती है। इसके दो भेद कहे गए हैं—पताका और प्रकरी।

प्रिंस-संज्ञा पुं० [अं०] (१) राजा। नरेश। (२) युवराज। राजकुमार। शाहजादा। (३) राज परिवार का कोई व्यक्ति। (४) सरदार। सामंत।

प्रिथिमीॐ†-संज्ञा स्त्री० [सं० पृथ्वी] पृथ्वी। जमीन। उ०—जो नहिं सीस पेम-पथ लावा। सो प्रिथिमी महँ काहे क आवा।—जायसी।

प्रिविलेज लीव-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह छुट्टी जो, सरकारी तथा किसी गैर-सरकारी संस्था या कंपनी के नौकर, कुछ निर्दिष्ट अवधि तक काम कर चुकने के बाद, पाने के अधिकारी या हकदार होते हैं।

प्रीमियम-संज्ञा पुं० [अं०] वह रकम जो जीवन या दुर्घटना आदि का बीमा कराने पर उस कंपनी को, जिसके यहाँ बीमा कराया गया हो, निश्चित समयों पर दी जाती है। वि० दे० "बीमा"।

प्रीमियर-संज्ञा पुं० [अं०] प्रधान मंत्री। वजीर आजम।

प्रेक्षागृह-संज्ञा पुं० [सं०] थियेटर या नाट्य मंदिर में वह स्थान जहाँ दर्शक लोग बैठ कर अभिनय देखते हैं। नाट्यशाला में दर्शकों के बैठने का स्थान।

प्रेक्षावेतन-संज्ञा पुं० [सं०] लैसंस लेने का महसूल या फीस। (कौ०)

प्रेरनाॐ†-क्रि० स० [सं० प्रेरणा] (१) प्रेरणा करना। चलाना। (२) भेजना। पठाना। उ०—(क) तब उस शुद्ध आचारवाले काकुत्स्थ ने दुष्टों का प्रेरा हुआ दूषण न सहा।—लक्ष्मणसिंह। (ख) भूतल जान प्रेरि रघुबीरा। बिरह बिबस भा सिथिल सरीरा।—रामाश्वमेध।

प्रेस कम्युनिक-संज्ञा पुं० [अं० प्रेस + फ्रेंच कम्युनिक] किसी विषय के सम्बन्ध में वह सरकारी विज्ञप्ति वा वक्तव्य जो अखबारों को छापने के लिये दिया जाता है। जैसे,—सरकार ने प्रेस कम्युनिक निकाला है कि लोग अफसरों को डालियाँ आदि नजर न करें।

प्रेस-रिपोर्टर-संज्ञा पुं० दे० "रिपोर्टर" (१)।

प्रेस्क्रिपशन-संज्ञा पुं० [अं०] डाक्टर की लिखी हुई रोगी के लिये औषध और उसकी सेवन-विधि। दवा का पुरजा। नुसखा। व्यवस्थापत्र।

प्रोक्लेमेशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) राजाज्ञा या सरकारी सूचनाओं का प्रचार। घोषणा। एलान। (२) ढिंढोरा। डुग्गी।

प्रोपैगैंडा-संज्ञा पुं० [अं०] (१) व्याख्यान, उपदेश, विज्ञापन, पुस्तिका, समाचारपत्र आदि के द्वारा किसी मत या सिद्धांत के प्रचार करने का ढंग या काम। प्रचार कार्य। जैसे,—(क) आजकल कांग्रेस की ओर से विदेशों में अच्छा प्रोपैगैंडा हो रहा है। (ख) आर्य समाजियों ने वहाँ मिशनरियों के विरुद्ध प्रोपैगैंडा किया।

प्रोसीडिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी सभा या समिति के अधिवेशन में संपन्न हुए कार्यों का लेखा या विवरण। कार्य विवरण। जैसे,—गत अधिवेशन की प्रोसीडिंग पढ़ी गई।

प्रोसीडिंग बुक-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह बही या किताब जिसमें किसी सभा या समिति के अधिवेशनों में संपन्न हुए कार्यों का विवरण लिखा जाता है। कार्यविवरण पुस्तक। जैसे,—प्रोसीडिंग बुक में यह बात लिखी जानी चाहिए।

प्रोसेशन-संज्ञा पुं० [अं०] धूमधाम की सवारी। जुलूस। शोभा-यात्रा। जैसे,—महासभा के प्रेसिडेंट का प्रोसेशन बड़ी धूम धाम से निकला।

प्लान-संज्ञा पुं० दे० "प्लैन"।

प्लाविनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] १४४ हाथ लंबी, १८ हाथ चौड़ी और १४⅖ हाथ ऊँची नाव या जहाज। (युक्ति कल्पतरु)

प्लेट-संज्ञा पुं० [अं०] वह आवेदनपत्र जो किसी दीवानी अदालत में किसी पर नालिश या दावा दायर करते समय दिया जाता है और जिसमें दावे के संबंध में अपना सब वक्तव्य रहता है। अर्जीदावा।

प्लैंटर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो विदेश में जमीन लेकर (चाय, गन्ने, नील आदि की) खेती करता हो। बड़े पैमाने में खेती करनेवाला।

विशेष—हिंदुस्थान में "प्लैंटर" शब्द से गोरे प्लैंटरों का ही बोध होता है; जैसे—टी प्लैंटर (चाय बगान का साहब), इण्डिगो प्लैंटर (निलहा गोरा या साहब) आदि।

प्लैकर्ड-संज्ञा पुं० [अं०] छपा हुआ बड़ा नोटिस या विज्ञापन जो प्रायः दीवारों आदि पर चिपकाया जाता है। पोस्टर। जैसे—दीवारों पर थियेटर, सिनेमा आदि के रंग बिरंगे प्लैकर्ड लगे हुए थे।

क्रि० प्र०—चिपकना।—चिपकाना।—लगना।—लगाना।

प्लैन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी बननेवाली इमारत का रेखा-चित्र। नक्शा। ढाँचा। खाका। जैसे—मकान का प्लैन म्युनिसिपैलिटी में दाखिल कर दिया है। मंजूरी मिलते ही काम में हाथ लग जायगा। (२) किसी काम को करने का विचार या आयोजन। बंदिश। मनसूबा। तजवीज। योजना। स्कीम। जैसे—तुमने यहाँ आकर मेरा सारा प्लैन बिगाड़ दिया।

प्लैनचट-संज्ञा पुं० दे० "प्लांचट"।

फँकनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँकना] वह दवा आदि जो फाँक कर खाई जाय। चूर्ण। फंकी।

क्रि० प्र०—फाँकना।

फँदैत†-संज्ञा पुं० [हिं० फंदा + ऐत (प्रत्य०)] वह सिखाया हुआ पशु या पक्षी जो किसी प्रकार अपनी जाति के अन्य पशुओं या पक्षियों आदि को मालिक के जाल या फंदे में फँसाता हो।

फँसौरी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँसना + औरी (प्रत्य०)] फंदा। पाश। उ०—नाच काँच लखि मन नाच सिखि जनु पाँचसर सु फँसौरि।—तुलसी।

फक्कड़-संज्ञा पुं० [सं० फक्किका] गाली गलौज। कुवाच्य।

क्रि० प्र०—बकना।

मुहा०—फक्कड़ तौलना = गाली गुफ्ता बकना। कुवाच्य कहना।

वि० (१) जो अपने पास कुछ भी न रखता हो, सब उड़ा डालता हो। (२) फकीर। भिखमंगा।

फटकरना- क्रि० अ० [हिं० फटकारना] फटकारा जाना।

क्रि० स० [हिं० फटकना] फटकना। उ०—खोट रतन सोई फटकरै। केहि धर रतन जो दारिद हरै।—जायसी।

फड़बाज-संज्ञा पुं० [हिं० फड़ + फा० बाज (प्रत्य०)] वह जिसके यहाँ जूए का फड़ बिछता हो। अपने यहाँ लोगों को जूआ खेलानेवाला व्यक्ति।

फड़बाजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० फड़बाज + ई (प्रत्य०)] (१) फड़बाज का भाव। (२) अपने यहाँ दूसरों को जूआ खेलाने की क्रिया।

फदफदाना-क्रि० अ० [अनु०] (१) शरीर में बहुत सी फुन्सियाँ या गरमी के दाने निकल आना। (२) वृक्षों में बहुत सी शाखाएँ निकलना।

फन-संज्ञा पुं० [सं० फण] (४) नाव के डाँड का वह अगला और चौड़ा भाग जिससे पानी काटा जाता है। पत्ता। (लश०)

फ़ना-संज्ञा स्त्री० [अ०] विनाश। नाश। बरबादी।

मुहा०—दम फना होना = मारे भय के जान सूखना। बहुत अधिक भयभीत होना। जैसे—तुम्हें देखते ही लड़के का दम फना हो जाता है।

फनिग-संज्ञा पुं० [हिं० फतिंगा] फतिंगा। फनगा। उ०—सबद एक उन्ह कहा अकेला। गुरु जस भिंग, फनिग जस चेला।—जायसी।

फप्फस-वि० [अनु०] जिसका शरीर बादी के कारण बहुत फूल गया हो। मोटा और भद्दा।

फफका†-संज्ञा पुं० [अनु०] फफोला। छाला।

फफसा-वि० [अनु०] (१) फूला हुआ और अंदर से पोला। (२) (फल) जिसका स्वाद बिगड़ गया हो। बुरे स्वादवाला।

फरफंदी-वि० [अनु० फर + हिं० फंदा] (१) फरफंद करनेवाला। छल कपट या दाँव पेंच करनेवाला। धूर्त। चालबाज (२) नखरेबाज।

फ़राश- संज्ञा पुं० [?] झाऊ की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो पंजाब, सिंध, अफगानिस्तान और फारस में अधिकता से पाया जाता है। यह गरमी के दिनों में फूलता है। खारी भूमि में यह अच्छी तरह बढ़ता है।

फ़रीकैन-संज्ञा पुं० [अ०] फरीक का बहुवचन। दोनों या सब फरीक या पक्ष। जैसे—उस मुकदमे में फरीकैन में सुलह हो गई।

फरेफ्ता-वि० [फा०] लुभाया हुआ। आसक्त। आशिक।

फरेबिया-वि० दे० "फरेबी"।

फरेबी-वि० [फा० फरेब] फरेब या छल कपट करनेवाला। धोखेबाज। कपटी।

फर्म-संज्ञा पुं० [अं०] (१) व्यापारी या महाजनी कोठी। साझे का कारबार। जैसे—कलकत्ते में व्यापारियों के कितने ही फर्म हैं। (२) वह नाम जिससे कोई कंपनी या कोठी कारबार करती है। जैसे—बलदेवदास युगुलकिशोर; ह्वाइटवे लेडला एंड कंपनी।

फर्शी-संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार का बड़ा हुक्का जिसमे तमाकू पीने के लिये बड़ी लचीली नली लगी होती है।

वि० फर्श संबंधी। फर्श का।

यौ०—फर्शी सलाम = बहुत झुक कर, या फर्श तक झुक कर, किया जानेवाला सलाम।

फर्स्ट-वि० [अं०] गिनती में सब से आरंभ में पड़नेवाला। पहला। अव्वल। जैसे—फर्स्ट क्लास का डब्बा। फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट।

फलड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० फल] (हथियार आदि के) फल का अल्पार्थक रूप। जैसे—चाकू का फलड़ा।

फलत†-संज्ञा स्त्री० [हिं० फलना] फलने की क्रिया या भाव। जैसे—इस साल सभी जगह आम की फलत बहुत अच्छी हुई है।

फलसा†-संज्ञा पुं० [देश०] (१) दरवाजा। द्वार। (२) गाँव की सीमा।

फसकना-क्रि० अ० [अनु०] (१) अंदर को बैठना। धँसना। (२) फटना। तड़कना। जैसे,—अधिक पूर देने के कारण पेंड़ा फसक गया।

फसली कौवा-संज्ञा पुं० [अ० फस्ल + हिं० कौवा] (१) पहाड़ी कौवा जो शीत ऋतु में पहाड़ से उतर कर मैदान मे चला आता है। (२) वह जो केवल अच्छे समय में अपना स्वार्थ साधन करने के लिये किसी के साथ रहे और उसकी विपत्ति के समय काम न आवे। स्वार्थी। मतलबी।

फसली बुखार-संज्ञा पुं० [अ० फस्ल + बुखार] (१) वह ज्वर जो किसी एक ऋतु की समाप्ति और दूसरी ऋतु के आरंभ के समय होता है। (२) जाड़ा देकर आनेवाला वह बुखार जो प्रायः बरसात में होता है। जूड़ी। मलेरिया।

फाइन-संज्ञा पुं० [अं०] जुर्माना। अर्थदंड। जैसे,—उस पर १००) फाइन हुआ।

फाइनल-वि० [अं०] आखिरी । अंतिम । जैसे,—फाइनल परीक्षा ।

फाइनांस-संज्ञा पुं० [अं०] सार्वजनिक राजस्व और उसके आय व्यय की पद्धति । अर्थ व्यवस्था ।

फाइनानशल-वि० [अं०] (१) सार्वजनिक राजस्व या अर्थ व्यवस्था संबंधी । मालगुजारी के मुताल्लिक । माली । जैसे,–फाइनानशल कमिश्नर । (२) आर्थिक । अर्थ सम्बन्धी । माली ।

फाइनानशल कमिश्नर-संज्ञा पुं० [अं०] वह सरकारी अफसर जिसके अधीन किसी प्रदेश का राजस्व विभाग या माल का महकमा हो ।

फाउंड्री-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कल या कारखाना जहाँ धातु की चीजें ढाली जाती हों । ढालने का कारखाना । जैसे,–टाइप फाउंड्री ।

फाजिल बाकी-संज्ञा स्त्री० [अ०] हिसाब की कमी या बेशी । हिसाब में का लेना या देना ।

क्रि० प्र०–निकालना ।

वि०–हिसाब में बाकी निकला हुआ । बचा हुआ । अवशिष्ट । जैसे,—तुम्हारे जिम्मे १००) फाजिल बाकी है ।

फादर-संज्ञा पुं० [अं०] पादरियों की सम्मानसूचक उपाधि । जैसे,—फादर जोन्स ।

फायर एंजिन-संज्ञा पुं० [अं०] आग बुझाने की दमकल । वि० दे० "दमकल" ।

फायर ब्रिगेड-संज्ञा पुं० [अं०] आग बुझानेवाले कर्मचारियों का दल ।

फारमूला-संज्ञा पुं० [अं०] (१) संकेत । सिद्धांत । सूत्र । (२) विधि । कायदा । (३) नुसखा ।

फारिग़-वि० [अ०] (१) काम से छुट्टी पाया हुआ । जो अपना काम कर चुका हो । जैसे,—अब वह शादी के काम से फारिग हो गए । (२) निश्चिन्त । बेफिक्र । (३) छूटा हुआ । मुक्त ।

फारिग़ उल् बाल-वि० [अ०] (१) जिसके पास निर्वाह के लिये यथेष्ट धन संपत्ति हो । संपन्न । (२) जो सब प्रकार से निश्चिंत हो । जिसे किसी बात की चिंता न हो । निश्चिन्त ।

फारिग-उल्-बाली-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) संपन्नता । अमीरी । (२) निश्चिन्तता । बेफिक्री ।

फारेन-वि० [अं०] दूसरे राष्ट्र या देश का । विदेश या पर-राष्ट्र संबंधी । वैदेशिक । पर-राष्ट्रीय । जैसे,—फारेन डिपार्टमेंट, फारेन सेक्रेटरी ।

फ़िक़रा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) शब्दों का सार्थक समूह । वाक्य । जुमला । (२) झाँसापट्टी । दमबुत्ता ।

यौ०–फिकरेबाज ।

मुहा०–फिकरा चलाना = धोखा देने के लिये कोई बात बनाकर कहना । जैसे,—आप भी बैठे बैठे फिकरा चलाया करते हैं । फिकरा चलना = धोखा देने के लिये कही हुई बात का अभीष्ट फल होना । जैसे,—अगर आप का फिकरा चल गया तो रुपये मिल ही जायँगे । फिकरा देना या बताना = झाँसा देना । दम बुत्ता देना । फ़िक़रा बनाना या तराशना = धोखा देने के लिये कोई बात गढ़कर कहना । फिकरे सुनाना, ढालना या कहना = व्यंग्यपूर्ण बात कहना । बोली बोलना । आवाजा कसना ।

फ़िक़रेबाज-संज्ञा पुं० [अ० फिकरा + फा० बाज] वह जो लोगों को धोखा देने के लिये बातें गढ़ गढ़ कर कहता हो । झाँसा पट्टी देनेवाला ।

फ़िक़रेबाजी-संज्ञा स्त्री० [अ० फिकरा + फा० बाजी] धोखा देने के लिये तरह तरह की बातें कहना । झाँसा पट्टी देना । दमबाजी ।

फिकैत-संज्ञा पुं० [हिं० फेंकना + ऐत (प्रत्य०)] वह जो फरी-गदका या पटा-बनेठी चलाना हो ।

फिकैती-संज्ञा स्त्री० [हिं० फिकैत + ई (प्रत्य०)] पटा बनेठी चलाने का काम या विद्या ।

फ़िट-वि० [अं० फिट] (१) उपयुक्त । ठीक । (२) जिसके कल पुरजे आदि ठीक हों । जैसे,—यह मशीन बिलकुल फिट है ।

मुहा०–फिट करना = मशीन के पुरजे आदि यथास्थान बैठा कर उसे चलने के योग्य बनाना ।

(३) जो अपने स्थान पर ठीक बैठता हो । जैसे,—(क) यह कोट बिलकुल फिट है । (ख) यह अलमारी यहाँ बिलकुल फिट है ।

संज्ञा पुं० मिरगी आदि रोगों का वह दौरा जिसमें आदमी बेहोश हो जाता है और उसके मुँह से झाग आदि निकलने लगती है ।

फिटसन-संज्ञा पुं० [देश०] कठमेमल नाम का छोटा वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं । वि० दे० "कठमेमल" ।

फिरंगिस्तान-संज्ञा पुं० [अं० फ्रांक + फा० स्तान] फिरंगियों के रहने का देश । गोरों का देश । युरोप । फिरंग । वि० दे० "फिरंग" (१) ।

फ़िरनी-संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार का खाद्य पदार्थ जो चावलों को पीस कर और दूध में पका कर तैयार किया जाता है । इसका व्यवहार प्रायः पश्चिम में और विशेषतः मुसलमानों में होता है ।

फिराऊ-वि० [हिं० फिरना] (१) फिरता हुआ । वापस लौटता हुआ । (२) (माल) जो फेरा जा सके । जाकड़ ।

फिरारी-संज्ञा स्त्री० [देश०] ताश के खेल में उतनी जीत जितनी एक हाथ चलने में होती है । एक बाजी की जीत ।

फिरोही–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह धन जो दूकानदार माल खरीदने-वाले के नौकर को देता है। दस्तूरी। नौकराना।

फिलासफी–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) दर्शन शास्त्र। (२) सिद्धांत या तत्व की बात। गूढ़ बात। जैसे,—कहने सुनने को तो यह साधारण सी बात है, पर इसमें बड़ी भारी फिलासफी है।

फील्ड एम्बुलेन्स–संज्ञा पुं० दे० "एम्बुलेन्स" (१)।

फीवर–संज्ञा पुं० [अं०] ज्वर। बुखार।

फुँदना–संज्ञा पुं० [देश०] सूत आदि का बँधा हुआ गुच्छा या फूल जो शोभा के लिये डोरियों आदि में लटकता रहता है। झब्बा।

फुँदिया†–संज्ञा स्त्री० [हिं० फुंदना] झब्बा। फूलरा। फुंदना। वि० दे० "फुँदना"। उ०—फुँदिया और कसनिया राती। छायल बँद लाए गुजराती।—जायसी।

फुँदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० बिंदी] बिंदी। टीका। उ०—सारी लटकति पाट की, बिलसति फुँदी लिलाट।—मतिराम।

फुरकत–संज्ञा स्त्री० [अ०] बिछुड़ने का भाव। वियोग।

फुलंगो–संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल ?] पहाड़ों में होनेवाली जंगली भाँग का वह पौधा जिसमें बीज बिलकुल नहीं लगते। कलंगो का उलटा।

फुलकारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + कारी (प्रत्य०)] एक प्रकार का कपड़ा जिसमें मामूली मलमल आदि पर रंगीन रेशम से बूटियाँ आदि काढ़ी हुई होती हैं।

फुलवार*†–वि० [सं० फुल्ल] प्रफुल्ल। प्रसन्न। उ०—जानहुँ जरत आगि जल परा। होइ फुलवार रहस हिय भरा।—जायसी।

फुलायल*–संज्ञा पुं० दे० "फुलेल"। उ०—(क) मुहमद बाजी पेम कै ज्यों भावै त्यों खेल। तिल फूलहिं के संग ज्यों होइ फुलायल तेल।—जायसी। (ख) छोरहु जटा, फुलायल लेहू। झारहु केस, मकुट सिर देहू।—जायसी।

फुल्ला†–संज्ञा पुं० [हिं० फूलना] (१) मक्के या चावल आदि की भुनी हुई खील। लावा। (२) दे० "फूली" (१)।

फुसकी–संज्ञा स्त्री० [फुस से अनु०] अपान वायु। पाद। गोज।

फूल–संज्ञा पुं० [सं० फुल्ल] (१८) मथानी के आगे का हिस्सा जो फूल के आकार का होता है।

फूल-पान–वि० [हिं० फूल + पान] (फूल या पान के समान) बहुत ही कोमल। नाजुक।

फूल भाँग–संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + भाँग] हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की भाँग का नर पेड़ जिसकी टहनियों से रेशे निकाले जाते हैं।

फेल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे बेपार भी कहते हैं। वि० दे० "बेपार"।

फैकल्टी–संज्ञा स्त्री० [अं०] विश्वविद्यालय के अंतर्गत किसी विद्या या शास्त्र के पंडितों और आचार्यों का समाज या मंडल। विद्वत्समिति। विद्वन्मंडल। जैसे,—फैकल्टी आफ लॉ, फैकल्टी आफ मेडिसिन, फैकल्टी आफ सायन्स।

फैन–संज्ञा पुं० [अं०] पंखा। जैसे,—इलेक्ट्रिक फैन।

फैयाज़–वि० [अ०] खुले दिल का। उदार।

फैयाज़ी–संज्ञा स्त्री० [अ० फैयाज़] फैयाज़ का काम या भाव। उदारता।

फोर्ट–संज्ञा पुं० [अं०] किला। दुर्ग।

फ़ौती–वि० [अ० फौत] (१) मृत्यु संबंधी। मृत्यु का। जैसे,—फौती रजिस्टर। (२) मरा हुआ। मृत।

संज्ञा स्त्री० (१) मरने की क्रिया। मृत्यु। (२) किसी के मरने की सूचना जो म्युनिसिपैल्टी आदि की चौकी पर लिखाई जाती है।

फौतीनामा–संज्ञा पुं० [अ० फौत + फा० नामा] (१) मृत व्यक्तियों के नाम और पते की सूची जो म्युनिसिपैलिटियों आदि की चौकी पर तैयार की जाती है और म्युनिसिपैल्टी के प्रधान कार्यालय में भेजी जाती है। (२) मृत सिपाही की मृत्यु की वह सूचना जो सेना विभाग की ओर से उसके घर के लोगों के पास भेजी जाती है।

फ्युडेटरी चीफ–संज्ञा पुं० [अं०] वह राजा जो किसी बड़े राजा या राज्य के अधीन हो और उसे कर देता हो। करद राजा। सामंत राजा। मांडलिक।

फ्युडेटरी स्टेट–संज्ञा पुं० [अं०] वह छोटा राज्य जो किसी बड़े राज्य के अधीन हो और उसे कर देता हो। करद राज्य।

फ्रांक–संज्ञा पुं० [अं०] फ्रांस का एक चाँदी का सिक्का जो प्रायः अँगरेजी ९॥ पेनी मूल्य का होता है। (एक पेनी प्रायः तीन पैसों के बराबर मूल्य की होती है।)

फ्रांटियर–संज्ञा पुं० [अं०] सरहद। सीमांत। जैसे,—फ्रांटियर प्राविन्स।

फ्लैग–संज्ञा पुं० [अं०] झंडा। पताका।

बंगाला–संज्ञा पुं० [सं० वंग] बंगाल देश।

संज्ञा स्त्री० बंगालिका नाम की रागिनी। उ०–परभाती होइ उठै बँगाला। आसावरी राग गुलमाला।—जायसी।

बँचुई–संज्ञा स्त्री० [देश०] सालपान नाम की झाड़ी जो भारत के प्रायः सभी गरम देशों में होती है। यह वर्षा ऋतु में फूलती है।

बँटवारा–संज्ञा पुं० [हिं० बाँटना] बाँटने या भाग करने की क्रिया। किसी वस्तु के दो या अधिक भाग या हिस्से करना। विभाग। तकसीम।

बंद–संज्ञा पुं० [फा०] (८) चौसर में के वे घर जिनमें पहुँचने पर गोटियाँ मारी नहीं जातीं।

बंदा-संज्ञा पुं० [सं० बंदी] बंदी। कैदी। बँधुवा। उ०—छंदहि छंद भएउ सो बंदा। छन एक माँहि हँसी रोवँदा। —जायसी।

बंदी-संज्ञा स्त्री० [सं० बंदी = कैदी] बंदी होने की दशा। कैद। उ०—आजु परे पंडव बँदि माँहाँ। आजु दुसासन उतरी बाहाँ।—जायसी।

बँदेराॐ-संज्ञा पुं० [सं० बंदी] [स्त्री० बँदेरी] बंदी। कैदी। बँधुआ। उ०—परा हाथ दसकंदर बैरी। सो कित छाँड़ि कै भई बँदेरी।—जायसी।

बंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१३) गिरवी रखा हुआ धन।

बंधक-संज्ञा पुं० [सं० बंध] कामशास्त्र के अनुसार स्त्री-संभोग का कोई आसन। बंध। उ०—चौरासी आसन पर जोगी। खट रस बंधक चतुर सो भोगी।—जायसी।

बंधकिपोषक-संज्ञा पुं० [सं०] रंडियों का दलाल।

विशेष—चाणक्य के समय में इन पर भी भिन्न भिन्न कर लगते थे।

बइठनाॐ†-क्रि० अ० दे० "बैठना"। उ०—सखी सरेखी साथ बइठी। तपै सूर ससि आव न दीठी।—जायसी।

बकबक-संज्ञा स्त्री० [हिं० बकना] बकने की क्रिया या भाव। व्यर्थ की बहुत अधिक बातें। जैसे—तुम जहाँ बैठते हो, वहीं बक बक करते हो।

बकली-संज्ञा स्त्री० [देश०] अधौरी नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी से हल और नावें बनती हैं। वि० दे० "अधौरी"।

बकावरॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "गुल बकावली"। उ०—तुम जो बकावरि तुम्ह सों भर ना। बकुचन गहै चहै जो करना। —जायसी।

बकुचन-संज्ञा स्त्री० [सं० विकुंचन या हिं० बकुचा] (१) हाथ जोड़ने की अवस्था। बद्धांजलि। उ०—बकुचन बिनवौं रोस न मोही। सुनु बकाउ तजि चाहु न जूही।—जायसी। (२) हाथ या मुट्ठी से पकड़ने की क्रिया। उ०—तुम्ह जो बकावरि तुम्ह सों भर ना। बकुचन गहै चहै जो करना। —जायसी। (३) गुच्छा।

बकौरी-संज्ञा स्त्री० दे० "गुल बकावली"। उ०—सुरँग गुलाल कदम औ कूजा। सुगँध बकौरी गंध्रब पूजा।—जायसी।

बक्स-संज्ञा पुं० [अं०] (२) थियेटर, सिनेमा आदि में सब से आगे अलग घिरा हुआ स्थान जिसमें तीन चार व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था रहती है।

बखारी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की रागिनी जिसे कुछ लोग मालकोस राग की रागिनी मानते हैं।

बगरूरा-संज्ञा पुं० [हिं० बाउ + गोला] बवंडर। बगूला। उ०—चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माहिं, शंबर छड़ाइ लई कामिनी कै काम की।—केशव।

बचका-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का पकवान जो किसी प्रकार के साग या पत्तों आदि को बेसन में लपेट कर और घी या तेल में छान कर बनाया जाता है। (२) एक प्रकार का पकवान जो बेसन और मैदे को एक में मिलाकर और जलेबी की तरह टपका कर घी में छाना जाता है और तब दूध में भिगोकर खाया जाता है। उ०—खँडरा बचका औ डुभकौरी। बरी एकोतर सौ कोंहड़ौरी।—जायसी।

बचीता-संज्ञा पुं० [देश०] दो तीन हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी जिसके तने और टहनियों पर बहुत अधिक रोएँ होते हैं। यह गरम प्रदेशों की पड़ती भूमि में अधिकता से पाई जाती है। इसमें चमकीले पीले रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं जो बीच में काले होते हैं। इसके तने से एक प्रकार का मजबूत रेशा निकलता है।

बजंत्री-संज्ञा पुं० [हिं० बाजा] (२) मुसलमानी राज्यकाल का एक प्रकार का कर जो गाने बजाने का पेशा करनेवालों से लिया जाता था।

बजरागि, बजरागी-संज्ञा स्त्री० [सं० वज्राग्नि] वज्र की अग्नि, बिजली। उ०—पानी माँझ उठै बजरागी। कहाँ से लौकि बीजु भुइँ लागी।—जायसी।

बजुज़-अव्य० [फा०] सिवा। अतिरिक्त। जैसे,—बजुज आपके और कोई वहाँ न जा सकेगा।

बटाऊ-संज्ञा पुं० [हिं० बाँटना] बँटानेवाला। भाग लेनेवाला। हिस्सा लेनेवाला।

बटालियन-संज्ञा स्त्री० [अं०] पैदल सेना का एक दल जिसमें १००० जवान होते हैं।

बटुआ†-वि० [हिं० बटना] बटा हुआ। जैसे—बटुआ सूत, बटुआ रस्सा।

वि० [हिं० बाँटना] सिल आदि पर पीसा हुआ। उ०—कटुआ बटुआ मिला सुबासू। सीका अनबन भाँति गरासू। —जायसी।

बड़कंघी-संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ी + कंघी ?] दो तीन हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है। इसकी टहनियों पर सफेद रंग के लंबे रोएँ होते हैं। इसके पौधे में से कड़ी दुर्गंध आती है। इसके तने से एक प्रकार का रेशा निकलता है और जड़, पत्तियाँ तथा बीज ओषधि रूप में काम में आते हैं।

बड़बेरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ी + बेरी] जंगली बेर। झड़ बेरी। उ०—जो कटहर बड़हर बड़बेरी। तोहि अस नाहीं कोका बेरी।—जायसी।

बड़लाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० राई] राई नाम का पौधा या उसके बीज।

बड़वागि-संज्ञा स्त्री० दे० "बड़वाग्नि"। उ०—वै ठाढ़े उमदाहु

उत, जलन बुझै बड़वागि। जाही सौं लाग्यौ हियौ ताही कैं हिय लागि।—बिहारी।

बड़हन–संज्ञा पुं० [हिं० बड़ + धान] एक प्रकार का धान। उ०—कोरहन बड़हन जड़हन मिला। औ संसार-तिलक खँड-विला।—जायसी।

बणि†–संज्ञा स्त्री० [?] रूई का झाड़। कपास।

बतौरी–संज्ञा स्त्री० [सं० वात + औरी (प्रत्य०)] एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर के ऊपर गोलाकार उभार हो आता है। इस रोग में प्रायः चमड़े के नीचे एक गाँठ सी हो आती है जिसमें प्रायः मज्जा भरी रहती है। यह गाँठ बढ़ती रहती है, पर इसमें पीड़ा नहीं होती।

बदलवाई–संज्ञा स्त्री० दे० "बदलाई"।

बदा–संज्ञा पुं० [हिं० बदना] वह जो कुछ भाग्य में लिखा हो। नियत। विपाक। जैसे,—वह तो अपना अपना बदा है।

बन-कपास–संज्ञा स्त्री० [हिं० बन + कपास] पटसन की जाति का एक प्रकार का लंबा पौधा जिसमें बहुत अधिक टहनियाँ होती हैं। कहीं कहीं इसमें काँटे भी पाए जाते हैं। यह बुंदेलखंड, अवध और राजपूताने में अधिकता से होता है। इससे सफेद रंग का मजबूत रेशा निकलता है।

बनकपासी–संज्ञा स्त्री० [हिं० बन + कपास] एक प्रकार का पौधा जो साल के जंगलों में अधिकता से पाया जाता है। इसके रेशों से लकड़ी के गट्ठे बाँधने की रस्सियाँ बनती हैं।

बन नींबू–संज्ञा पुं० [हिं० बन + नींबू] एक प्रकार का सदा बहार क्षुप जो प्रायः सारे भारत में और हिमालय में ७००० फुट तक की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी टहनियाँ दतुअन के काम में आती हैं और इसके फल खाए जाते हैं।

बनमूँग–संज्ञा पुं० [हिं० बन + मूँग, सं० मुद्ग] मुँगवन या मोठ नाम का कदन्न।

बनर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अस्त्र। उ०—तिमि विभूति अरु बनर कह्यौ युग तैसहि बन करबीरा। कामरूप मोहन आवरणहु लहैं काम रुचि बीरा।—रघुराज।

बन-रखना–संज्ञा पुं० [हिं० बन + रखना] बन का रक्षक। बनरखा।

बनवध–संज्ञा पुं० [हिं० बनना] एक प्रांत जिसमें जौनपुर, आजमगढ़, बनारस और अवध का पश्चिमी भाग सम्मिलित था। कुछ लोग इसका विस्तार बैसवाड़े से विजयपुर तक और गोरखपुर से भोजपुर तक भी मानते हैं। इस प्रांत के बारह राजाओं अर्थात् (१) विजयपुर के गहरवार, (२) बछगोती के खानजादे, (३) बैसवाड़े के बिसेन, (४) गोरखपुर के श्रीनेत, (५) हरदी के हैहय वंशी, (६) डुमराँव के उजैनी, (७) त्योरी भगवानपुर के राजकुमार, (८) अँगोरी के चँदेल, (९) सरुवार के कलहंस, (१०) नगर के गौतम, (११) कुड़वार के हिंदू बछगोती और (१२) मझौली के बिसेन ने मिलकर एक संघ बनाया था और निश्चय किया था कि हम लोग सदा परस्पर सहायता करते रहेंगे। ये लोग "बारहो बनवध" कहलाते थे।

बनावन–संज्ञा पुं० दे० "बनवध"।

बनावलि–*संज्ञा स्त्री० [सं० बाणावलि] बाणों की अवली। तीरों की पंक्ति।

बनौधा–संज्ञा पुं० दे० "बनवध"।

बपुख–संज्ञा पुं० [सं० वपुस्] शरीर। देह। उ०—दूरि कै कलंक अंक-सीस ससि सम राखत है केशौदास दास के बपुख को।—केशव।

बफर स्टेट–संज्ञा पुं० [अं०] वह मध्यवर्ती छोटा राज्य जो दो बड़े राज्यों को एक दूसरे पर आक्रमण करने से रोकने का काम करे। संघर्ष-निवारक राज्य। अंतर्धि।

विशेष–दो बड़े राज्यों के एक दूसरे पर आक्रमण करने के मार्ग में जो छोटा सा राज्य होता है, उसे "बफर स्टेट" कहते हैं; जैसे,—हिंदुस्थान और रूस के बीच में अफगानिस्तान और फ्रांस तथा जर्मनी के बीच में बेलजियम है। यदि ये छोटे राज्य तटस्थ या निरपेक्ष रहें, तो इनमें से होकर कोई राज्य दूसरे राज्य पर आक्रमण नहीं कर सकता। इस प्रकार ये संघर्ष रोकने का कारण होते हैं। ऐसे छोटे राज्यों का बड़ा महत्व है। संधि न होने की अवस्था में इधर उधर के प्रतिद्वंद्वी राज्य इनसे सदा सशंक रहते हैं कि न जाने ये कब किसके पक्ष में हो जायँ और उसके आक्रमण का मार्ग प्रशस्त कर दें। गत महासमर में जर्मनी ने बेलजियम की तटस्थता भंग कर उसमें से होकर फ्रांस पर चढ़ाई की थी। साथ ही यह भी होता है जब कि दो प्रतिद्वंद्वी राज्य बफर स्टेट की तटस्थता भंग करके भिड़ जाते हैं, तब बफर स्टेट की, बीच में होने के कारण, भीषण हानि होती है।

बफुली–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का सदाबहार छोटा पौधा जो प्रायः सभी गरम देशों और विशेषतः रेतीली जमीनों में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ ऊँटों के चारे के काम में आती हैं।

बमकना† क्रि० अ० [अनु०] आवेश में आकर लंबी चौड़ी बातें करना। शेखी बघारना। डींग हाँकना।

बमकाना–क्रि० स० [हिं० बमकना] किसी को बमकने में प्रवृत्त करना। बढ़ बढ़ कर बोलने के लिये आवेश दिलाना।

बमपुलिस–संज्ञा पुं० [अं० बम = धड़ाका + प्लेस = स्थान] राह-चलतों और मुसाफिरों के लिये बस्ती से दूर बना हुआ पायखाना।

विशेष—इस शब्द के प्रचार के संबंध में एक मनोरंजक बात सुनने में आई है। कहते हैं, हिंदुस्थान में पलटन के अशिक्षित गोरे पायखाने को "बम-प्लेस" अर्थात् धड़ाका करने का

स्थान कहा करते थे। इसी 'बमप्लेस' से बिगड़कर 'बमपुलिस' बन गया।

बमोलन-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जो उत्तर भारत में पंजाब से आसाम तक और दक्षिण में लंका तक पाई जाती है। यह गरमी के दिनों में फूलती और बरसात में फलती है। इसके फल खाए जाते हैं। मकोह।

बयोंग†-संज्ञा पुं० [?] झूला।

बर⊛-संज्ञा पुं० दे० "बल"। उ०—देख्यौ मैं राजकुमारन के बर। —केशव।

संज्ञा पुं० [फा०] फल।

यौ०—बरे अंबा=आम की फसल की आय या मालगुजारी।

संज्ञा पुं० [हिं० बल=सिकुड़न] रेखा। लकीर।

मुहा०—बर खाँचना या खींचना=(१) किसी बात के सम्बन्ध में दृढ़ता सूचित करने के लिये लकीर खींचना। (प्रायः लोग दृढ़ता दिखाने के लिये कहते हैं कि मैं बर (लकीर) खींचकर यह बात कहता हूँ।) उ०—तेहि ऊपर राघव बर खाँचा। दुइज आजु तौ पंडित साँचा।—जायसी। (२) हठ दिखलाना। अड़ना। जिद करना। उ०—हिन्दू देव काह बर खाँचा। सरगहु अब न सूर सौं बाँचा।—जायसी। बर बाँधना= प्रतिज्ञा करना। उ०—लँधउर धरा देव जस आदी। और को बर बाँधै, को बादी?—जायसी।

बरणना-क्रि० स० दे० "बरनना"। उ०—अजर अमर अज अंगी औरु अनंगी सब बरणि सुनावैं ऐसे कौने गुण पाए हैं।—केशव।

बरतराई†-संज्ञा स्त्री० [फा० बरतर ?] वह कर जो जमींदार की ओर से बाजार में बैठनेवाले बनियों और दूकानदारों आदि से लिया जाता है। बैठकी।

बरतुल‡-संज्ञा पुं० [?] वह खेत जिसमें पहले धान बोया गया हो और फिर जोत कर ईख बोई जाय।

बरदिया†-संज्ञा पुं० दे० "बलदिया"।

बरदी†-संज्ञा स्त्री० दे० "बलदी"।

बरन-संज्ञा पुं० दे० "वर्ण"। उ०—सुबरन बरन सुबास जुत, सरस दलनि सुकुमारि।—मतिराम।

बरना⊛†क्रि० स० [सं० वारण] मना करना। रोकना। (लश०)

संज्ञा पुं० [सं० वरुण] एक प्रकार का वृक्ष।

बरबट⊛†-क्रि० वि० [सं० बलवत्] (१) बलपूर्वक। जबरदस्ती। बरबस। उ०—बेधक अनियारे नयन बेधत करि न निषेधु। बरबट बेधतु मो हियौ तो नासा को बेधु।—बिहारी। (२) दे० "बरबस"। उ०—नैन मीन ऐ नागरनि, बरबट बाँधत आइ।—मतिराम।

बरमा-संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मदेश] (२) एक प्रकार का धान जो बहुत दिनों तक रखा जा सकता है।

बरखंड-संज्ञा पुं० दे० "ब्रह्मांड"। उ०—कीन्हेसि सस मही बरखंडा। कीन्हेसि भुवन चौदहो खंडा।—जायसी।

बरह्म-संज्ञा पुं० दे० "ब्रह्म"।

बरह्मावना⊛-क्रि० स० [सं० ब्रह्म+भावना (प्रत्य०)] आशीर्वाद देना। असीस देना। उ०—जाति भाँट कित औगुन लावसि। बायें हाथ राज बरह्मावसि।—जायसी।

बरसौंहा†-वि० [हिं० बरसना+औहाँ (प्रत्य०)] बरसनेवाला। उ०—तिय तरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह। घर-परसौंहैं ह्वै रहे झर-बरसौंहैं मेह।—बिहारी।

बरहन-संज्ञा पुं० दे० "बड़हन"।

बरहा†-संज्ञा पुं० [सं० बर्हि] मयूर। मोर। उ०—तहँ बरहा निरतत बचन मुख दुति अलि चकोर बिहंग। बलि भार सहित गोपाल झूलत राधिका अरधंग।—सूर।

बराट-संज्ञा स्त्री० [सं० वराटिका] कौड़ी। कपर्दिका। उ०—भयो करतार बड़े कूर को कृपालु पायो नाम प्रेम पारस हौं लालची बराट को।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [सं० बराटी] एक प्रकार की रागिनी जिसके गाने का समय दिन में २५ से २८ दंड तक है। हनुमत के मत से यह भैरव राग की रागिनी मानी गई है।

बराड़-संज्ञा स्त्री० दे० "बराट"।

बरिबंड- वि० दे० "बरबंड"। उ०—क्रोध उपजाय भृगुनंद बरिबंड को।—केशव।

बरिया⊛†-वि० [सं० बलिन्] बलवान। ताकतवर। उ०—तुलसिदास को प्रभु कोमलपति सब प्रकार बरियो।—तुलसी।

बरियाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बरियार] (१) बलवान होने का भाव। बलशालिता। ताकतवरी। (२) बल-प्रयोग। जबरदस्ती।

बरीसना⊛-क्रि० अ० दे० "बरसना"। उ०—सघन मेघ होइ साम बरीसहिं।—जायसी।

बरु-संज्ञा पुं० दे० "वर"। उ०—लिख लाई सिय को बरु ऐसो। राजकुमारहि देखिय जैसो।—केशव।

बरोक†-क्रि० वि० [सं० बलौकः] बलपूर्वक। जबरदस्ती। उ०—धावन तहाँ पठावहु देहिं लाख दस रोक। होइ सो बेलि जेहि बारी आनहिं सबै बरोक।—जायसी।

बलकट-संज्ञा पुं० [हिं० बाल+काटना] पौधे की बाल को बिना काटे तोड़ लेना।

वि० [?] पेशगी। अगाऊ। अगौढ़ी।

बलकटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० बलकट] मुसलमानी राज्य-काल की एक प्रकार की किस्त जो फसल कटने के समय वसूल की जाती थी।

बलदिया-संज्ञा पुं० [हिं० बलद=बैल] गौओं, भैंसों आदि का चरवाहा।

बलदिहाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बलद=बैल] वह कर जो गौओं, भैंसों

आदि को चराने के बदले में दिया या लिया जाय। चराई।

बलदी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बलद = बैल] बैलों का झुंड या समूह।

बलात्कार दायन-संज्ञा पुं० [सं०] ऋणी को मार पीट कर रुपया चुकता कराना। (स्मृति)

बलाह-संज्ञा पुं० [सं० वोल्लाह] वह घोड़ा जिसकी गरदन और दुम के बाल पीले हों। बुलाह।

बलाहक-संज्ञा पुं० [सं०] (९) एक प्रकार का बगला।

बलाहर†-संज्ञा पुं० [हिं० बुलाना] गाँव में होनेवाले वह कर्म्मचारी जो दूसरे गाँवों में सँदेसा ले जाता, गाँव में आए हुए लोगों की सेवा शुश्रूषा करता और उन्हें मार्ग दिखलाता हुआ दूसरे गाँवों तक ले जाता है।

बलिया†-वि० [हिं० बल + इया (प्रत्य०)] बलवान्। ताकतवर। जैसे,—किस्मत के बलिया। पकाई खीर, हो गया दलिया। (कहा०)

बलु®-अव्य० दे० "बरु"। उ०—प्यास न एक बुझाइ बुझै त्रैताप बलु।—केशव।

बल्ब-संज्ञा पुं० [अं०] (१) एक प्रकार की वनस्पति जिसमें बहुत सी पत्तियों के योग से प्रायः कमल के आकार की बहुत बड़ी कली या गुट्टी सी बन जाती है। इसके नीचे के भाग से जड़ें निकलती हैं जो जमीन के अंदर फैलती हैं और ऊपरी मध्य भाग में से पतला तना निकल कर ऊपर की ओर बढ़ता है जिसमें सुंदर सुगंधित फूल लगाते हैं। इसके कई भेद होते हैं। गुट्टी। (२) शीशे का वह खोखला लट्टू जो प्रायः कमल के आकार का होता है और जिसके अंदर बिजली की रोशनी के तार लगे रहते हैं।

बलंटियर-संज्ञा पुं० [अं० वालंटीयर] (१) वह मनुष्य जो बिना वेतन के स्वेच्छा से फौज में सिपाही या अफसर का काम करे। स्वेच्छा सैनिक। वालंटीयर। (२) अपनी इच्छा से सार्वजनिक सेवा का कोई काम करनेवाला। स्वयंसेवक।

बसंत-संज्ञा पुं० [सं० वसंत] दो हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जो प्रायः सारे भारत में और हिमालय में सात हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी, पर गोलाकार होती हैं। फूल के विचार से इसके कई भेद होते हैं।

बसना-संज्ञा पुं० [देश०] जयंती की जाति का एक प्रकार का मझोला वृक्ष जो देखने में बहुत सुंदर होता है और प्रायः शोभा के लिये बागों में लगाया जाता है। इसके पत्ते एक बालिश्त लंबे होते हैं। प्रायः पान के भीटों में भी यह लगाया जाता है। इसकी पत्तियों, कलियों और फूलों की तरकारी बनती है और ओषधि रूप में भी उनका उपयोग होता है।

बसवार†-संज्ञा पुं० [हिं० वास = सुगंध + वार (प्रत्य०)] छौंक। बघार।

वि० सोंधा। सुगंधित। उ०—करुए तेल कीन्ह बसवारू। मेथी कर तब दीन्ह बघारू।—जायसी।

बसाना-क्रि० अ० [हिं० बास] (२) दुर्गंध देना। बदबू करना। उ०—मद जस मंद बसाइ पसेऊ। औ बिसवासि छरै सब केऊ।—जायसी।

बस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] किसी व्यक्ति की ऐसी मूर्त्ति या चित्र जिसमें केवल धड़ और सिर हो।

बस्साना-क्रि० अ० [हिं० बास = गंध] दुर्गंध देना। बदबू करना।

बहकावट-संज्ञा स्त्री० [हिं० बहकाना + आवट (प्रत्य०)] बहकाने की क्रिया या भाव।

बहन-संज्ञा पुं० [सं० वहन] बहने की क्रिया या भाव। उ०—वायु को बहन दिन दावा को दहन, बड़ी बड़वा अनल ज्वाल जाल में रह्यौ परे।—केशव।

बहना-क्रि०अ० [सं० वहन] (१९) निर्वाह करना। निबाहना। उ०—गाढ़े भली उखारे अनुचित बनि आए बहिबेही।—तुलसी।

बहनेली-संज्ञा स्त्री० [हिं० बहन + एली (प्रत्यय०)] वह जिसके साथ बहनापा या बहन का संबंध स्थापित किया गया हो। मुँहबोली बहन। (स्त्रियाँ)

बहबूदी-संज्ञा स्त्री० [फा०] लाभ। भलाई। फायदा।

बहुलानुरक्त (सैन्य)-वि० [सं०] प्रजा से प्रेम रखनेवाली (सेना)। सर्वप्रिय। (कौ०)

बाँगड़-संज्ञा पुं० [देश०] हिसार, रोहतक और करनाल का प्रांत।

बाँगड़ू-संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँगड़ (प्रदेश)] हिसार, रोहतक और करनाल के जाटों की बोली जिसे जाटू या हरियानी भी कहते हैं।

बाँधना®-क्रि० स० [?] रखना। उ०—लोक कहै राम को गुलाम हौं कहावौं। एतो बड़ो अपराध भो न मन बाँधौं।—तुलसी।

बाँवली-संज्ञा स्त्री० [हिं० बबूल] बबूल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो सिंध, पंजाब और मारवाड़ में सूखे तालों के तलों में होता है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है और इसमें से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं।

बाइप्लेन-संज्ञा पुं० [अं०] एरोप्लेन या वायुयान का एक भेद।

बाउंटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सहायता या मदद जो व्यापार या उद्योग धंधे को उत्तेजन देने के लिये दी जाय। सहायता। मदद।

बाकल®-संज्ञा पुं० दे० "वल्कल"। उ०—सिरसि जटा बाकल बपु धारी।—केशव।

बाक्सो-क्रि० वि० [?] पृष्ठ भाग में। पीछे। (लश०)

बाखर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो रुहेलखंड में अधिकता से होती है।

बाजीदार-संज्ञा पुं० [हिं० बाजी=बाल+फा० दार] वह हलवाहा जिसे वेतन के स्थान में उपज का अंश मिलता हो। बालीदार।

बाड़वानल-संज्ञा पुं० दे० "बड़वानल"। उ०—मम बाड़वानल कोप। अब कियो चाहत लोप।—केशव।

बाडी-संज्ञा स्त्री० [अं० बाडिस] एक प्रकार की अँगिया या कुरती जो मेमें पहनती हैं (और आज कल बहुतेरी भारतीय स्त्रियाँ भी पहनने लगी हैं)।

बाण-संज्ञा पुं० [सं०] (१२) स्वर्ग। (१३) निर्वाण। मोक्ष।

बाणिजक-संज्ञा पुं० [सं०] वाणिज्य करनेवाला। व्यापारी।

बात-संज्ञा पुं० [सं० वात] वायु। हवा। उ०—दिग्देव दहे बहु बात बहे।—केशव।

बाथ%-संज्ञा पुं० [?] गोद। अंक। अँकवार। उ०—हग मिहचत मृगलोचनी भर्यो उलटि भुज बाथ। जानि गई तिय नाथ के हाथ परस हीं हाथ।—बिहारी।

बान-संज्ञा पुं० [सं० बाण] (५) बाना नाम का हथियार जो फेंक कर मारा जाता है। उ०—गोली बान सुमंत्र सर समुझि उलटि मन देखु। उत्तम मध्यम नीच प्रभु बचन बिचारि बिसेखु।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [?] गोला। उ०—तिलक पलीता माथे दमन बज्र के बान। जेहि हेरहिं तेहि मारहिं चुरकुस करहिं निदान।—जायसी।

बानरेंद्र-संज्ञा पुं० [सं० वानर+इन्द्र] (१) सुग्रीव। उ०—बानरेंद्र तब ही हँसि बोल्यो।—केशव। (२) हनुमान।

बानी%-संज्ञा स्त्री० दे० "वाणिज्य"। उ०—अपने चलन सो कीन्ह कुबानी। लाभ न देख मूर भइ हानी।—जायसी।

बामकी-संज्ञा स्त्री० [सं० वामकी] एक देवी जिसकी पूजा प्रायः जादूगर आदि करते हैं।

बाय-संज्ञा पुं० [अं०] (१) एक प्रकार का लोहे का पीपा जो समुद्र में या उन नदियों में जिनमें जहाज चलते हैं, स्थान स्थान पर लंगर द्वारा बाँध दिए जाते हैं और सिगनल का काम देते हैं। तरिंदा। (२) दे० "लाइफ बाय"।

बाय स्काउट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) विद्यार्थियों का एक प्रकार का सैनिक ढंग से संघटन जिसका प्रधान उद्देश्य विविध प्रकार से समाज की सेवा करना है। जैसे,—कहीं आग लगने पर तुरन्त वहाँ पहुँच कर आग बुझाना, मेले ठेले और पर्वों पर यात्रियों को आराम पहुँचाना, चोर उचक्कों को गिरिफ्तार करना, आहत या अनाथ रोगियों को यथास्थान पहुँचाना, उनके दवा-दारू और सेवा शुश्रूषा की समुचित व्यवस्था करना आदि। बालचर-चमू। (२) उक्त चमू या सेना का सदस्य।

बारदाना-संज्ञा पुं० [फा०] (४) वह अस्तर जो बँधी हुई पगड़ी के नीचे लगा रहता है।

बारना-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके फलों का गूदा इमारत की लेई में मिलाया जाता है। वि० दे० "विलासी"।

बारहा-क्रि० वि० [फा० बार+हा (प्रत्य०)] अनेक बार। कई बार। अक्सर। जैसे,—मैं बारहा उनके यहाँ गया, पर वे नहीं मिले।

बारूद-संज्ञा पुं० [तु० बारूत=बारूद] एक प्रकार का धान।

बारोठा†-संज्ञा पुं० [सं० द्वार+स्थ (प्रत्य०)] वह रस्म जो विवाह के समय वर के द्वार पर आने के समय की जाती है। उ०—बारोठे को चार करि कहि केशव अनुरूप। द्विज दूलह पहिराइयो पहिराए सब भूप।—केशव। (२) द्वार। दरवाजा।

बार्डर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी चीज के किनारों पर बना हुआ बेल बूटा। हाशिया।

बालकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बालक का भाव। लड़कपन। उ०—अति कोमल केशव बालकता।—केशव।

बालचर-संज्ञा पुं० दे० "बाय स्काउट"।

बालतोड़-संज्ञा पुं० [हिं० बाल+तोड़ना] एक प्रकार का फोड़ा जो शरीर में का कोई बाल झटके के साथ टूट जाने के कारण उस स्थान पर हो जाता है। इसमें बहुत पीड़ा होती है, और यह कभी कभी पक भी जाता है।

बालम खीरा-संज्ञा पुं० [हिं० बालम+खीरा] एक प्रकार का बहुत बड़ा खीरा। इसकी तरकारी बनती है और बीज यूनानी दवा के काम में आते हैं। उ०—नारँग दारिउँ तुरंज जँभीरा। औ हिंदवाना बालमखीरा।—जायसी।

बालमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेणी, पेणी, कुक्कुर, रक्तसारी, प्रभूता, स्वरिता और रजनी नाम की सात मातृकाएँ जिनके विषय में प्रसिद्ध है कि ये बालकों को पकड़ती और उन्हें रोगी बनाती हैं।

बाल साँगड़ा-संज्ञा पुं० [?] कुश्ती में एक प्रकार का पेंच या दाँव। इसमें विपक्षी की कमर पर पहुँच कर उसकी एक टाँग उठाई जाती है और उस पर अपना एक पैर रख कर और अपनी जाँघों में से खींचते और मरोड़ते हुए उसे जमीन पर गिरा देते हैं।

बाली-संज्ञा स्त्री० [हिं० बाल] (२) वह अन्न जो हलवाहों आदि को उनके परिश्रम के बदले में, धन की जगह, दिया जाता है।

यौ०—बालीदार।

बालीदार-संज्ञा पुं० [हिं० बाली=अन्न+फा० दार] वह हलवाहा जो नगद पारिश्रमिक न लेकर उपज का कुछ भाग ले। बाजीदार।

बावरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बारहमासी घास जो उत्तरी भारत के रेतीले और पथरीले मैदानों में पाई जाती

और पशुओं के चारे के लिये अच्छी समझी जाती है। सरदाला।

बास-संज्ञा पुं० [सं० वसन] छोटा वस्त्र। उ०—दासि दास बासि बास रोम पाट को कियो। दाय जो विदेहराज भाँति भाँति को कियो।—केशव।

बासा-संज्ञा पुं० [सं० वास] (३) वह स्थान जहाँ मूल्य लेकर भोजन का प्रबंध हो। भोजनालय।

विशेष—कलकत्ते, बंबई आदि बड़े बड़े व्यापार-प्रधान नगरों में भिन्न भिन्न जातियों के ऐसे बासे हैं, जहाँ वे लोग जो बिना गृहस्थी के होते हैं, भोजन करते हैं।

बाह्यकोप-संज्ञा पुं० [सं०] राष्ट्र के मुखियों, अंतपाल (सीमा-रक्षक), आटविक (जंगलों के अफसर) और दंडोपनत (पराजित राजा) का विद्रोह। (कौ०)

बिंबू-संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी।

बिकार॥†-वि० [सं० विकार या विकराल] (१) जिसकी दशा विकृत हो। (२) विकराल। विकट। भीषण। उ०—तुम जाहु बालक छाँड़ि जमुना स्याम मेरो जागिहै। अंग कारो मुख बिकारो दृष्टि पर तोहिं लागिहैं।—सूर।

बिगासना॥-क्रि० स० [सं० विकास] विकसित करना। खिलाना। उ०—अमी अधर अस राजा सब जग आस करेइ। केहि कहँ कँवल बिगासा को मधुकर रस लेइ।—जायसी।

बिगुर॥-वि० [सं० वि + गुरु] जिसने किसी गुरु से शिक्षा या दीक्षा न ली हो। निगुरा। उ०—हरि बिनु मर्म बिगुर बिन फंदा। जहँ जहँ गये अपन पौ खोये तेहि फंदे बहु फंदा।—कबीर।

बिचहुत॥†-संज्ञा पुं० [हिं० बीच=अंतर] (१) अंतर। फरक। (२) दुबधा। संदेह। उ०—अब हँसि के शशि सूरहिं भेंटा। अहा जो शीत बिचहुत मेटा।—जायसी।

बिचारमान-वि० [सं० विचारवान्] (१) विचार करनेवाला। बुद्धिमान्। (२) विचारने के योग्य। विचारणीय। उ०—बिचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिये।—केशव।

बिछुआ-संज्ञा पुं० [हिं० बिच्छू] (५) कमर में पहनने का एक गहना। एक प्रकार की करधनी।

बिजई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बीज] बीज का अवशिष्ट अन्न जो नीच जाति के लोग खेतों से लाते हैं। बिजवार।

बिजन-संज्ञा पुं० [सं० विजन] निर्जन स्थान। सुनसान जगह। क्रि० वि० जिसके साथ कोई न हो। अकेला। उ०—कैसे वह बाल लाल बाहिर बिजन आवै, बिजन बयारि लागैं लचकत लंक है।—मतिराम।

बिजरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] अलसी या तीसी का पौधा। (बुंदेल०)

बिजवार†-संज्ञा पुं० दे० "बिजई"।

बिट-संज्ञा पुं० [सं० विट] नीच। खल। उ०—बीर-करि-केसरी कुठार पानि मानी हारि तेरी कहा चली बिट तो सो गनै फालि को।—तुलसी।

बिडारना-क्रि० अ० [सं० विट्] (३) नष्ट होना। बरबाद होना।

बिडारना-क्रि० अ० [हिं० बिडरना का स० रूप] (२) नष्ट करना। बरबाद करना। न रहने देना। उ०—सेतु बंध जेइ धनुष बिडारा। उहौ धनुष भौंहन्ह सो हारा।—जायसी।

बित्ती-संज्ञा स्त्री० [सं० वृत्ति] वह धन जो दूकानदार लोग गोशाला या और किसी धर्म्म कार्य्य के लिये, माल का दाम चुकाने के समय, काट कर अलग रखते हैं।

बिथुआ†-संज्ञा पुं० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसे पस्सी भी कहते हैं। वि० दे० "पस्सी"।

बिनवट-संज्ञा स्त्री० [हिं० बनेठी] बनेठी चलाने की क्रिया या विद्या।

बिनानी॥-संज्ञा पुं० [सं० विज्ञान] विज्ञानी। उ०—तहाँ पवन न चालइ पानी। तहाँ आपई एक बिनानी।—दादू।

बिबाक†-वि० दे० "बेबाक"। उ०—स्वारथ रहित परमारथी कहावत हैं भे सनेह बिबस बिदेहता बिबाके हैं।—तुलसी।

बिबुधेश-संज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र। उ०—जयति बिबुधेश धनदादि दुर्लभ महाराज सम्राज सुखप्रद बिरागी।—तुलसी

बिमानी-वि० [सं० वि० + मान] मान रहित। निरभिमान। उ०—विधि के समान हैं बिमानी-कृत राज हंस विविध बिबुध युत मेरु सो अचल है।—केशव।

बिमोहना-क्रि० अ० [सं० विमोहन] मोहित होना। आसक्त होना। उ०—सरबर रूप बिमोहा हिये हिलोरहि लेइ। पाँव छुवै मनु पावौं एहि मिसि लहरहि देइ।—जायसी।

बियत॥-संज्ञा पुं० [सं० वियत्] आकाश। उ०—जहँ जहँ जेहि जोनि जनम महि पताल बियत।—तुलसी।

बिरमाना॥-क्रि० अ० [सं० विराम] विराम करना। सुस्ताना। उ०—चुवत स्वेत मकरंद कन तरु तरु तर बिरमाइ। आवत दच्छिन देस तें थक्यौ बटोही बाइ।—बिहारी।

बिरसना॥†-क्रि० अ० [सं० विलास] विलास करना। भोगना। उ०—नीर घटे पुनि पूछ न कोई। बिरसि जो लीज हाथ रह सोई।—जायसी।

बिरहा-संज्ञा पुं० [सं० विरह] एक प्रकार का गीत जो प्रायः अहीर लोग गाते हैं। इसका अंतिम शब्द प्रायः बहुत खींच कर कहा जाता है। उ०—बैद हकीम बुलाओ कोइ गोइयाँ कोई लेओ री खबरिया मोर। खिरकी से खिरकी ज्यों फिरकी फिरति दुओ पिरकी उठल बड़ जोर।—बलबीर।

मुहा०—**बार बिरहा गाना**= बढ़ बढ़ कर ऐसी बातें करना जो प्रायः कार्य्य रूप में परिणत न हो सकती हों।

बिरासी॥-संज्ञा पुं० [सं० विलासिन्] वह जो विलास करता हो। विलासी। उ०—जौ लगि कालिंदि होहि बिरासी। पुनि सुरसरि होइ समुद परासी।—जायसी।

बिलंजा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ साग के रूप में खाई जाती हैं और ओषधि रूप में भी उनका व्यवहार होता है।

बिलंद-वि० [फा० बुलंद] (१) ऊँचा। उच्च। उ० (क)—मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे।—तुलसी। (ख)—प्रबल बिलंद वर बारनि के दंतनि सौं, बैरनि के बाँके बाँके तुरग बिदारे हैं।—केशव। (२) विफल। नाकामयाब। जैसे,—अगर अच्छी तरह न पढ़ोगे तो इस बार इम्तहान में बिलंद हो जाओगे।

बिलगर-संज्ञा पुं० [देश०] गिरगिट्टी नामक वृक्ष जो प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। वि० दे० "गिरगिट्टी"।

बिलगाना-क्रि० अ० [हिं० बिलग + आना (प्रत्य०)] (२) पृथक या स्पष्ट रूप से दिखाई देना।

बिलल्ला-वि० [देश०] [स्त्री० बिलल्ली] जिसे किसी बात का कुछ भी शऊर या ढंग न हो। गावदी। मूर्ख।

बिलावलঞ-संज्ञा स्त्री० [सं० वल्लभा] (१) प्रेमिका। प्रियतमा। (२) स्त्री। पत्नी। जैसे,—राज-बिलावल।

बिलासी-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का वृक्ष जो मलाबार और कनाड़ा में आप से आप होता और दूसरे स्थानों में लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ अंडाकार और ३ से ६ इंच तक लंबी होती हैं। इसकी छाल और पत्तियों का ओषधि के रूप में व्यवहार होता है; और इसके फल का गूदा राज लोग इमारत की लेई में मिलाते हैं जिससे उसकी जुड़ाई बहुत मजबूत हो जाती है। बारना।

वि० [सं० विलासिन्] विलास करनेवाला। भोग करनेवाला। उ०—देखि फिरौं तब हीं तब रावण सातो रसातल के गे बिलासी।—केशव।

बिलूरगात-संज्ञा पुं० [तिब्बती] तिब्बत के एक पर्वत का नाम।

विशेष—यह शब्द जैनियों के वैताढ्य (पर्वत) का अपभ्रंश जान पड़ता है।

बिलोगी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

बिलोना†-संज्ञा पुं० [हिं० बिलोना] वह वस्तु जो बिलोकर निकाली जाय। नवनीत। मक्खन। उ०—सत के बिलोना बिलोय मोर माई। ऐसा बिलोय जामें तत्त न जाई।—कबीर।

बिलौरा-संज्ञा पुं० [हिं० बिल्ली या बिलाई + औरा (प्रत्य०)] बिल्ली का बच्चा।

बिवाई-संज्ञा स्त्री० [सं० विपादिका] पैर में होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें पैर की उँगलियों के बीच का भाग या तलुए का चमड़ा फट जाता है। उ०—जाके पैर न फटी बिवाई। सो का जानै पीर पराई।—कहावत।

क्रि० प्र०—फटना।

बिवाय†-संज्ञा स्त्री० दे० "बिवाई"।

संज्ञा पुं० [?] विघ्न। बाधा (डिं०)

बिसमौ†-संज्ञा पुं० [सं० विस्मय ?] विषाद। दुःख। रंज। (अवध) उ०—नाग-फाँस उन्ह मेला गीवा। हरष न बिसमौ एकौ जीवा।—जायसी।

क्रि० वि० [सं० वि + समय] बिना समय के। असमय या कुसमय। उ०—बिरह अगस्त जो बिसमौ उएऊ। सरवर हरष सूखि सब गयऊ।—जायसी।

बिसरामीঞ-वि० [सं० विश्राम] विश्राम देनेवाला। सुख देनेवाला। सुखद। उ०—सुआ सो राजा कर बिसरामी। मारि न जाइ चहै जेहि स्वामी।—जायसी।

बिसवल†-संज्ञा पुं० [देश०] बबूल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जिसे उँदरू भी कहते हैं। वि० दे० "उँदरू"।

बिसा†-संज्ञा पुं० दे० "बिस्वा"। उ०—बीस बिसे व्रत भंग भयो सु कहौ अब केशव को धनु ताने।—केशव।

बिसायँध-संज्ञा स्त्री० [सं० विष + गंध] (१) दुर्गंध। बदबू। (२) मांस की दुर्गंध। गोश्त की बदबू। उ०—मोटि माँसु रुचि भोजन तासू। औ मुख आव बिसायँध बासू।—जायसी।

बिसैंधा†-वि० [हिं० बिसायँध] (१) जिसमें दुर्गंध आती हो। बदबूदार। (२) मांस, मछली आदि की गंधवाला। उ०—तजि नागेसर फूल सोहावा। कवँल बिसैंधहि सौं मन लावा।—जायसी।

बिहबलঞ-वि० [सं० विह्वल] (२) शिथिल। उ०—ह्वै गई बिहबल अंग पृथु फिरि सजे सकल सिंगार जू।—केशव।

बिहारी-वि० [सं० विहार] विहार करनेवाला। उ०—एक इहाँ दुख देखत केशव होत उहाँ सुरलोक बिहारी।—केशव।

संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण का एक नाम।

बींदनाঞ†-क्रि० अ० [?] अनुमान करना। अंदाज से जानना। उ०—झुकि झुकि झपकौं हैं पलनु फिरि फिरि जुरि जमुहाइ। बींदि पियागम नींद मिसि दीं सब अली उठाइ।—बिहारी।

बीचि-संज्ञा स्त्री० [सं० वीचि] लहर। तरंग। उ०—बीचिन के सोर सौं जनावत पुकार कै।—मतिराम।

बीझा†-वि० [सं० विजन ?] (२) सघन। घना। (जंगल)

बीना-संज्ञा स्त्री० दे० "बीन"। उ०—कहूँ सुंदरी बेनु बीना बजावैं।—केशव।

बीरन-संज्ञा स्त्री० दे० "गाँडर" (१)।

बीरो-संज्ञा पुं० [हिं० बिरवा] वृक्ष। पेड़। उ०—आपुहि खोइ ओहि जो पावा। सो बीरौ मनु लाइ जमावा।—जायसी।

बीस-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो गोरखपुर और बरमा के जंगलों तथा कोंकण देश में पाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है और प्रायः बंदूक के कुंदे बनाने के काम में आती है।

बुकसेलर-संज्ञा पुं० [अं०] पुस्तकें बेचनेवाला। पुस्तक-विक्रेता।

बुताम-संज्ञा पुं० [अं० बटन] पहनने के कपड़ों में लगाई जानेवाली कड़ी चिपटी घुंडी। बटन।

बुत्ता-संज्ञा पुं० [देश०] (१) धोखा। झाँसा। पट्टी।

मुहा०—बुत्ता देना = झाँसा देना। दम देना।

यौ०—दम बुत्ता।

(२) बहाना। हीला।

मुहा०—बुत्ता बताना = बहाना करना। हीला करना।

बुद्ध द्रव्य-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध भगवान् की अस्थि, केश, नख, आदि स्मृति-चिह्न जो किसी स्तूप के नीचे संरक्षित हों।

बुल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० बुलबुला] पानी का बुलबुला। बुदबुदा। उ०—पानी महँ जस बुल्ला तस यह जग उतराइ। एकहि आवत देखिए एक है जात बिलाइ।—जायसी।

बूचा-वि० [सं० बुस=विभाग करना] (३) जिसके साथ कोई सौंदर्य्य बढ़ानेवाला उपकरण न हो। नंगा। खाली।

बुलेटिन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी सार्वजनिक विषय पर सरकारी या किसी अधिकारी व्यक्ति का वक्तव्य या विवरण। जैसे,—सत्याग्रह कमिटी के प्रचार मंत्री ने एक बुलेटिन निकाला है जिसमें लोगों से कहा गया है कि वे ऐसे समाचारों पर विश्वास न करें। (२) किसी राजा, महाराज, राजपुरुष या देश के प्रमुख नेता के स्वास्थ्य के संबंध में सरकारी या किसी अधिकारी व्यक्ति की रिपोर्ट या विवरण। जैसे,—राज्य के प्रधान डाक्टर के हस्ताक्षर से सबेरे ७ बजे एक बुलेटिन निकला जिसमें लिखा था कि महाराज का स्वास्थ्य सुधर रहा है।

बेंच-संज्ञा स्त्री० [अं०] (३) वह आसन जिस पर न्यायकर्त्ता बैठता हो। न्यायासन। (४) न्यायालय। अदालत।

बेंवत-संज्ञा स्त्री० दे० "ब्योंत"।

बेक़द्रा-वि० [फा० बे + क़द्र] (१) जिसकी कोई क़द्र न हो। अप्रतिष्ठित। (२) जो क़द्र करना न जानता हो।

बेकसूर-वि० [फा० बे + अ० कसूर] जिसका कोई कसूर न हो। निरपराध।

बेखतर-वि० [फा० बे + अ० खतर] जिसे किसी प्रकार का खतर या भय न हो। निर्भय। निडर। जैसे,—आप बेखतर वहाँ चले जायँ।

बेगर-संज्ञा पुं० [?] उड़द या मूँग का कुछ मोटा और रवेदार आटा जिससे प्रायः मगदल या बड़ा आदि बनाते हैं। यह कच्चा और पक्का दो प्रकार का होता है। कच्चा वह कहलाता है जो कच्चे मूँग या उड़द को पीस कर बनाया जाता है; और पक्का वह कहलाता है जो भुने हुए मूंग या उड़द को पीसने से बनता है।

बेझनाঞ्‡-क्रि० स० [सं० वेध + ना (प्रत्य०)] निशाना लगाना। बेधना।

बेट-संज्ञा पुं० [अं०] बाजी। दाँव। शर्त। बदान। जैसे—बतलाओ, कुछ बेट लगाते हो ?

क्रि० प्र०—लगाना।

बेधिया‡-संज्ञा पुं० [हिं० बेधना] अंकुश। आँकुस। उ०—केहरि लंक कुंभस्थल हिया। गीउ मयूर अलक बेधिया।—जायसी।

बेनसीब-वि० [हिं० बे + अ० नसीब] जिसका नसीब अच्छा न हो। अभागा। बदक़िस्मत। जैसे—बा अदब बानसीब। बेअदब बेनसीब।

बेनियन-संज्ञा पुं० [हिं० बनिया] वह व्यापारी या महाजन जो युरोपियन कोठीवालों (हाउसवालों) को आवश्यकतानुसार रुपए की सहायता देता है।

विशेष—"बेनियन" धनी बंगाली और मारवाड़ी होते हैं। हाउसवालों से इनकी लिखा पढ़ी रहती है कि जब जितने रुपए की आवश्यकता होगी, देना पड़ेगा। एक हाउस या कोठी का एक ही बेनियन होता है। लाभ होने पर बेनियन को भी हिस्सा मिलता है और घाटा होने पर उसे हानि भी सहनी पड़ती है।

बेपरदगी-संज्ञा स्त्री० [फा०] परदे का अभाव। परदा न होना।

बेफिकरा-वि० [हिं० बे + फा० फ़िक्र] जिसे किसी बात की फ़िक्र या परवाह न हो। निश्चिन्त।

बेमज़ा-वि० [फा०] जिसमें कोई मज़ा न हो। जिसमें कोई आनंद न हो।

बेमौसिम-वि० [फा० बे + अ० मौसिम] उपयुक्त मौसिम या ऋतु न होने पर भी होनेवाला। जैसे,—जाड़े में पानी बरसना या आम मिलना बेमौसिम होता है।

बेलकुन-संज्ञा पुं० [देश०] नक-छिकनी की जाति की एक प्रकार की लता जो पंजाब की पहाड़ियों और पश्चिमी हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। यह लंका और मलाया द्वीप में भी होती है। वर्षा ऋतु के अंत में इसमें पीलापन लिये सफ़ेद रंग के बहुत छोटे छोटे फूल लगते हैं।

बेलिफ-संज्ञा पुं० [अं०] दीवानी अदालत का वह कर्मचारी जिसका काम अदालत में हाजिर न होनेवालों को गिरिफ्तार करना और माल कुर्क करना आदि है।

बेली-संज्ञा पुं० [सं० बल] साथी। संगी। जैसे,—गरीबों का अल्लाह बेली है। (कहा०) उ०—सोरह सै सँग चलीं सहेली। कँवल न रहा और को बेली।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा कँटीला वृक्ष जो हिमालय में ४००० फुट तक की ऊँचाई पर और दक्षिण भारत में भी पाया जाता है। यह गरमी के दिनों में फूलता

और जाड़े में फलता है। इसके भिन्न भिन्न अंगों का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। इसकी लकड़ी पीले रंग की और बहुत कड़ी होती है। जावा में इसके फल कपड़ा धोने के काम में आते हैं।

बेवसाय†-संज्ञा पुं० [सं० व्यवसाय] व्यवसाय। काम। उ०—बिरिध बैस जो बाँधे पाऊ। कहाँ सो जोबन किस बेवसाऊ।—जायसी।

बेसर†-संज्ञा पुं० [?] खच्चर। उ०—हस्ति घोड़ औ बर पुरुष जावत बेसरा ऊँट। जहँ तहँ लीन्ह पलानै कटक सरह अस छूट।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० नाक में पहनने की छोटी नथ।

बेसाहनी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बेसाहना] मोले लेने की क्रिया। उ०—कोई करै बेसाहनी काहू केर बिकाइ। कोई चलै लाभ सन कोई मूर गँवाइ।—जायसी।

बेहराना†-क्रि० अ० [हिं० बेहर] फटना। विदीर्ण होना। उ०—उठा फूलि हिरदय न समाना। कंथा टूक टूक बेहराना।—जायसी।

क्रि० स० फाड़ना। विदीर्ण करना।

बेहुनर-वि० [फा०] जिसे कोई हुनर न आता हो। जिसमें कोई कला या गुण न हो।

बैंकर-संज्ञा पुं० [अं०] महाजन। साहूकार। कोठीवाल।

बैट-संज्ञा पुं० [अं०] क्रिकेट के खेल में गेंद मारने का डंडा जो आगे की ओर चौड़ा और चिपटा होता है। बल्ला।

बैठकी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बैठना] वह कर जो जमींदार की ओर से बाजार में बैठनेवाले बनियों और दूकानदारों आदि पर लगाया जाता है। बर-तराई।

बैतड़ा†-वि० [हिं० बैतला] (१) जो व्यर्थ इधर उधर घूमता रहता हो। आवारा। (२) लुच्चा। शोहदा।

बैतला-वि० [अं० बैतउल्ला] (१) (माल) जिसका कोई मालिक न हो। लावारिस।

संज्ञा पुं० चोरी का माल। (जुआरी)

बैरन-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० बैरोनेस] इंगलैंड के सामंतों तथा बड़े बड़े भूम्यधिकारियों को वंश परंपरा के लिये दी जानेवाली उपाधि जिसका दर्जा "वाइकौंट" के नीचे है। वि० दे० "ड्यूक"।

बैरोमीटर-संज्ञा पुं० [अं०] मौसिम की सरदी-गरमी नापने का यंत्र जो थर्मामीटर की तरह का, पर उससे बड़ा होता है।

बैसाना*†-क्रि० स० [हिं० बैसना] स्थित करना। बैठाना। उ०—सिधि गुटका जो दिस्टि समाई। पारहि मेल रूप बैसाई।—जायसी।

बोदार-संज्ञा पुं० दे० "बाकली"।

बोदुला-संज्ञा पुं० [देश०] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो अवध, बुंदेलखंड और बंगाल में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ टहनियों के सिरों पर गुच्छों के रूप में होती हैं और पशुओं के चारे के काम में आती हैं। इसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है।

बोनस-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह धन या रकम जो किसी को उसके प्राप्य के अतिरिक्त दी जाय। (२) वह धन जो किसी कर्मचारी को उसके पारिश्रमिक या वेतन के अतिरिक्त दिया जाय। पुरस्कार। पारितोषिक। बखशिश। (३) वह अतिरिक्त लाभ या मुनाफा जो सम्मिलित पूँजी से चलनेवाली कंपनी के शेयर-होल्डरों या हिस्सेदारों को दिया जाय।

बोमा-संज्ञा पुं० [सं० बुह्म] एक प्रकार की वनस्पति। वि० दे० "धूसरच्छदा"।

बोबला†-संज्ञा पुं० [देश०] (१) बाजरे का भूसा। (२) रेत। बालू।

बोर्डर-संज्ञा पुं० [अं०] वह विद्यार्थी जो बोर्डिंग हाउस में रहता हो।

बोलनहारा†-संज्ञा पुं० [हिं० बोलना + हारा = वाला (प्रत्य०)] शुद्ध आत्मा। बोलता। उ०—पराधीन देव दीन हौं स्वाधीन गुसाईं। बोलनिहारे सो करै बलि बिनय कि झाईं।—तुलसी।

बोलसर-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—किरमिज नुकरा जरदे भले। रूपकरान बोलसर चले।—जायसी।

बोलाचाली-संज्ञा स्त्री० [हिं० बोलना + अनु० चालना] बातचीत या आलाप का व्यवहार। जैसे,—तुम्हारी उनकी बोलाचाली क्यों बन्द हो गई?

बौंडी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० दमड़ी] दमड़ी। छदाम। उ०—जाँचे को नरेस देस देस को कलेस करै देहै तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंडिये।—तुलसी।

बौलसिरी-संज्ञा स्त्री० [सं० बकुलश्री] बकुल। मौलसिरी। उ०—अपनैं कर गुहि आपु हठि पहिराई गर लाल। नौल सिरी औरै चढ़ी बौलसिरी की माल।—बिहारी।

ब्याजू-वि० [हिं० ब्याज] ब्याज पर दिया या लगाया हुआ (धन)। जैसे,—हमारे पास १००) थे, सो हमने ब्याजू दे दिए।

ब्याहुला†-वि० [हिं० ब्याह + उला (प्रत्य०)] विवाह संबंधी। विवाह का। जैसे,—ब्याहुले गीत।

ब्योरन†-संज्ञा स्त्री० [सं० विवरण, हिं० ब्योरा] बालों को सँवारने की क्रिया या ढंग। उ०—वेई कर ब्यौरनि वहै ब्यौरौ कौन बिचार। जिनहीं उरझ्यौ मो हियो तिनहीं सुरझे बार।—बिहारी।

ब्योरा-संज्ञा पुं० [सं० विवरण] (४) अंतर। भेद। फरक। उ०—वेई कर ब्यौरनि वहै ब्यौरौ कौन बिचार। जिनहीं उरझ्यौ मो हियौ तिनहीं सुरझे बार।—बिहारी।

ब्रह्मंड-संज्ञा पुं० दे० "ब्रह्मांड"। उ०—धनु भंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मण्ड को।—केशव।

ब्रह्मदेय-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण को दान में दी हुई वस्तु। (शिलालेख)

ब्रह्मभट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदों का ज्ञाता। (२) ब्रह्म या ईश्वर को जाननेवाला। ब्रह्मविद्। (३) सृष्टि के आदि में ब्रह्मयज्ञ से उत्पन्न कवि नामक ऋषि की उपाधि। (४) एक प्रकार के ब्राह्मणों की उपाधि।

ब्रिज-संज्ञा पुं० [अं०] पुल। सेतु। जैसे,—सोन ब्रिज। हवड़ा ब्रिज।

ब्रिटेन-संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड और वेल्स।

ब्रोकर-संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जो दूसरे के लिये सौदा खरीदता और बेचता है और जिसे सौदे पर सैंकड़े पीछे कुछ बँधी हुई दलाली मिलती है। दलाल। जैसे,—शेयर ब्रोकर। पीस गुड्स ब्रोकर।

भंकार-संज्ञा पुं० [अनु० भं + कार (प्रत्य०)] विकट शब्द। भीषण नाद। उ०—कहूँ भीम भंकार कर्नाल साजें।—केशव।

भँड़तिल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० भाँड़ + तिल्ला] (१) भँड़ताल नाम का गाना। (२) कोई ऐसा गाना जो व्यवस्थित रूप से या साज सामान के साथ न हो।

भँडेर-संज्ञा पुं० [देश०] घूँट नाम का झाड़ या वृक्ष जिसकी छाल चमड़ा रँगने के काम में आती है। वि० दे० "घूँट"।

भँवनछ्ठ†-संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमण] भ्रमण। घूमना। फिरना। उ०—देखत खग निकट मृग खननिह जुत थकित बिसारि जहाँ तहाँ की भँवनि।—तुलसी।

भगन-वि० दे० "भग्न"। उ०—भगन कियो भव धनुष, साल तुमको अब सालौं।—केशव।

भगा-संज्ञा पुं० [हिं० भागना] लड़ाई से भागा हुआ पशु या पक्षी।

भग्गी-संज्ञा स्त्री० [हिं० भागना] बहुत से लोगों के साथ मिलकर भागने की क्रिया। भागड़।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

भग्नोत्सृष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] वे गोप जो साझीदार के समान अनुपयोगी गायों का पालन करते थे।

विशेष—कौटिल्य के समय में ऐसे लोगों के अधीन बीमार, लँगड़ी, लूली, दूध दुहने में बहुत तंग करनेवाली या किसी विशेष आदमी के हाथ से ही लगनेवाली और बछड़े को मार डालनेवाली गौएँ रखी जाती थीं।

भड़साईं-संज्ञा स्त्री० [हिं० भाड़] भड़भूँजों की भट्ठी जिसमें वे अनाज भूनते हैं। वि० दे० "भाड़"।

मुहा०—भड़साईं चिकना = कारबार का खूब चलना। अच्छी आय होना। (व्यंग्य)

भड़ास-संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] मन में बैठा हुआ दुःख या सोच।

मुहा०—भड़ास निकालना = कुछ कह सुन कर या और किसी प्रकार मन में बैठा हुआ दुःख दूर करना। जैसे—तुम भी बक झक कर अपने मन की भड़ास निकाल लो।

भद्र अवज्ञा-संज्ञा स्त्री० दे० "सविनय कानून भंग।"

भया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) ६२ हाथ लम्बी, ५६ हाथ चौड़ी और ३६ हाथ ऊँची नाव। (युक्ति कल्पतरु)

भरत-संज्ञा पुं० [सं०] (११) जैनों के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र का नाम।

भरना-क्रि० अ० [सं० भरण] भेंटना। मिलना। उ०—भरी सखी सब भेंटत फेरा। अंत कंत सौं भएउ गुरेरा।—जायसी।

भरनी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] (१) खेतों में बीज आदि बोने की क्रिया। (२) खेतों में पानी देने की क्रिया। सिंचाई।

भरभराहट-संज्ञा स्त्री० [अनु०] सूजन। वरम।

भरा महीना-संज्ञा पुं० [हिं० भरना + महीना] बरसात के दिन जिनमें खेतों में बीज बोए जाते हैं। उ०—लेइ किछु स्वाद जागि नहिं पावा। भरा मास तेइ सोइ गँवावा।—जायसी।

भरुआना†-क्रि० अ० [हिं० भारी + आना (प्रत्य०)] भारी होना। उ०—भावकु उभरौंहौं भयौ कछुक पर्यौ भरुआइ। सीप-हरा कैं मिसि हियौ निसि दिन हेरत जाइ।—बिहारी।

भरोटा†-संज्ञा पुं० [हिं० भार + ओटा (प्रत्य०)] घास या लकड़ियों आदि का गट्ठा। बोझ।

भर्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] भरण पोषण का व्यय। खर्चा। गुजारा।

विशेष—विशेष अवस्थाओं में राज्य की ओर से पत्नी को पति से 'भर्म्य' दिलाया जाता था। (कौ०)

भर्रा-संज्ञा पुं० [भर से अनु०] (३) झाँसा। पट्टी। दम। चकमा। जैसे—एक ही भर्रे में तो वह सारा रुपया चुका देंगे।

क्रि० प्र०—देना।

भवनवासी-संज्ञा पुं० [सं० भवनवासिन्] जैनों के अनुसार आत्माओं के चार भेदों में से एक।

भवाँछ्ठ†-संज्ञा पुं० [सं० भ्रमण] फेरा। चक्कर। उ०—राते कँवल करहिं अलि भवाँ। घूमहिं मानि चहहिं अपसवाँ।—जायसी।

भविछ्ठ-वि० दे० "भव्य"। उ०—केशव की भवि भूषण की भवि भूषण भू-तन में तनया उपजाई।—केशव।

भसाकू-संज्ञा पुं० [हिं० तमाकू का अनु०] पीने का वह तमाकू जो बहुत कड़ुआ या कड़ा न हो। हलका और मीठा तमाकू।

भस्सड़-वि० [अनु० भस्स] बहुत मोटा और भद्दा (विशेषतः आदमी)।

भाँड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० भाँड़] (१) भाँड़पन। (२) भाँड़ का काम। उ०—कहूँ भाँड़ भाँड्यो करैं मान पावैं।—केशव।

भाँति-संज्ञा स्त्री० [सं० भेद] मर्य्यादा। चाल। उ०—रटत रटत लट्यो जाति पाँति भाँति घट्यो जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो हौं।—तुलसी।

भाँपू-संज्ञा पुं० [हिं० भाँपना] भाँपने या ताड़नेवाला। दूर से ही देखकर अनुमान कर लेनेवाला।

भागानुप्रविष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] गायों की रक्षा करनेवाला वह कर्मचारी जो गाय के मालिकों से दूध आदि की आमदनी का दसवाँ भाग लेता था। (कौ०)

भाग्य-लेख्य पत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बँटवारे का कागज। वह कागज जिसमें किसी जायदाद के हिस्सेदारों के हिस्से लिखे हों। (शुक्र-नीति)

भार-संज्ञा पुं० [सं०] (८) प्राचीन काल का सोने का एक मान जो २० तुला या २००० पल के बराबर होता था।

भारत-संज्ञा पुं० [सं०] (७) घोर युद्ध। घमासान लड़ाई। उ०—परी एक भारत भा भा असवारन्ह मेल। जूझि कुँवर सब निबटे गोरा रहा अकेल।—जायसी।

भारतीकरण-संज्ञा पुं० [सं० भारतीय + करण] किसी वस्तु या संस्था को भारतीय बनाना अर्थात् उसमें भारतीय तत्वों या भारतवासियों का आधिक्य करना। जैसे—सेना का भारतीकरण।

भार्गवेश-संज्ञा पुं० [सं० भार्गव + ईश] परशुराम। उ०—अमेय तेज भर्ग भक्त भार्गवेश देखिये।—केशव।

भाव निक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार किसी पदार्थ का वह नाम जो उसके केवल वर्त्तमान स्वरूप को देख कर रखा गया हो।

भावप्राण-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार आत्मा की चेतना शक्ति।

भावबंध-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार भावना या विचार जिनके द्वारा कर्म्म तत्व से आत्मा बंधन में पड़ता है।

भावलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] काम-वासना के संबंध में होनेवाली मानसिक क्रिया। संभोग संबंधी भाव या विचार। (जैन)

भावलेश्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार आत्मा पर रहनेवाला भावों का आवरण। विचारों की रंगत जो आत्मा पर चढ़ी रहती है।

भावसंवर-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वह शक्ति या क्रिया जिससे मन में नए भावों का ग्रहण रुक जाता है।

भावाभाव॥†-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार भाव का अभाव में अथवा वर्त्तमान का भूत में होनेवाला परिवर्त्तन।

भावै†-अव्य० [हिं० भाना] चाहे। उ०—भावै चारिहु जुग मतिपूरी। भावै आगि बाउ जल धूरी।—जायसी।

भाषापत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (११) वह पत्र जिसमें कष्टों का निवेदन किया गया हो। (शुक्र-नीति)

भिच्छु॥-संज्ञा पुं० दे० "भिक्षु"। उ०—भिच्छु जानि जानकी सु भीख को बुलाइयो।—केशव।

भिनभिनाहट-संज्ञा स्त्री० [अनु० भिनभिनाना + आहट (प्रत्य०)] भिनभिनाने की क्रिया या भाव।

भिन्नकूट-(सैन्य) वि० [सं०] बिना सेनापति की (सेना)।

विशेष—कौटिल्य ने भिन्नकूट और अंध (अशिक्षित) सेनाओं में से भिन्नकूट को अच्छा कहा है, क्योंकि वह सेनापति का प्रबंध हो जाने पर लड़ सकती है।

भिन्नगर्भ-(सैन्य) वि० [सं०] तितर बितर की हुई (सेना)।

भिन्न मनुष्या-वि० स्त्री० [सं०] (भूमि) जिसमें भिन्न भिन्न जातियों, स्वभावों और पेशों के लोग बसते हों।

विशेष—कौटिल्य ने प्रचलित राज-शासन की रक्षा के विचार से ऐसे देश को अच्छा कहा है, क्योंकि उसमें जनता शासन को नष्ट करने के लिये एक नहीं हो सकती।

भिन्न-मुद्र-वि० [सं०] जिसकी मुद्रा या मोहर टूट गई हो।

भीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (५) ४० हाथ लंबी, २० हाथ चौड़ी और २० हाथ ऊँची नाव। (युक्ति-कल्पतरु)

भुँइचाल†-संज्ञा पुं० [हिं० भुइँ=भूमि + चाल=चलना, हिलना] भूकंप। भूडोल। उ०—जनु भुँइचाल चलत महि परा। टूटी कमठ-पीठि हिय डरा।—जायसी।

भुइँहरा†-संज्ञा पुं० [हिं भूमि + हरा (प्रत्य०)] जमीन के नीचे बना हुआ कमरा आदि। तहखाना। (बुंदेल०)

भुकड़ी-संज्ञा स्त्री० [?] सफेद रंग की एक प्रकार की वनस्पति जो प्रायः बरसात के दिनों में अनाज, फल या अचार आदि पर उसके सड़ जाने के कारण उत्पन्न होती है।

क्रि० प्र०—लगना।

भुकराँद-संज्ञा स्त्री० दे० "भुकरायँध"।

भुकराँदा-वि० [हिं० भुकरायँध] जिसमें से भुकरायँध आवे। सड़ी हुई दुर्गंधवाला। (विशेषतः अनाज)

भुकरायँध-संज्ञा स्त्री० [हिं० भुकड़ी + गंध] वह दुर्गंध जो किसी पदार्थ के सड़ जाने और उसमें भुकड़ी लग जाने के कारण उत्पन्न होती है।

भुक्तकांस्य-संज्ञा पुं० [सं०] फूल या काँसे का बरतन जिसमें खाद्य पदार्थ रख कर खाया जाता हो। (कौ०)

भुखमुआ-वि० दे० "भुखमरा"।

भुग्गा-वि० [देश०] मूर्ख। बेवकूफ।

संज्ञा पुं० तिल आदि का एक प्रकार का तैयार किया हुआ मीठा चूरा।

क्रि० प्र०—कूटना।

भुजइल†-संज्ञा पुं० [सं० भुजंग] भुजंगा नामक पक्षी।

भुजिया-संज्ञा पुं० [हिं० भूँजना=भूनना] (३) वह तरकारी जो सूखी ही भूनकर बनाई जाती है और जिसमें रसा या शोरबा नहीं होता। सूखी तरकारी। जैसे,—आलू का भुजिया। परवल का भुजिया।

भुनवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० भुनवाना] (१) भुनवाने की क्रिया या

भाव। (२) वह धन जो भुनवाने के बदले में दिया जाय। भुनाई। भौंज।

भुनाई-संज्ञा स्त्री० दे० "भुनवाई"।

भुन्नास-संज्ञा पुं० [देश०] पुरुष की इंद्रिय। लिंग। (बाजारू)

भुन्नासी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा देशी ताला जो प्रायः दूकानों आदि में बंद किया जाता है।

भुरभुरा-संज्ञा पुं० [देश०] उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार की बरसाती घास जिसे गौएँ, बैल और घोड़े बहुत पसंद करते हैं। इसका मेल देने से कड़े चारे नरम हो जाते हैं। पलंजी। भूसा। गलगला।

भुरभुराहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० भुरभुरा + आहट (प्रत्य०)] भुरभुरा होने की क्रिया या भाव। भुरभुरापन।

भुर्रा-वि० [हिं० भूरा या भँवरा ?] बहुत अधिक काला। घोर कृष्ण। जैसे,—बिलकुल काला भुर्रा सा आदमी तुम्हें ढूँढ़ने आया था।

भुलक्कड़-वि० [हिं० भूलना + अक्कड़ (प्रत्य०)] जिसका स्वभाव भूलने का हो। बातों को भूल जानेवाला।

भुवपति-संज्ञा पुं० [सं०] भूपति। राजा। उ०—भूपर भाऊ भुवप्पति को मन सो कर औ कर सो मन ऊँचो।—मतिराम।

भूँई†-संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] भूमि। पृथ्वी।

भूआ-संज्ञा स्त्री० दे० "बूआ"।

भूई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० घूआ या भूआ] रूई के समान मुलायम वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा। उ०—तुहूँ पै मरहि होइ जरि भूई। अबहुँ उघेलु कान कै रूई।—जायसी।

भूजी-संज्ञा स्त्री० दे० "भुजिया"।

भूमि-भोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र या राजा जिसके पास भूमि बहुत हो।

विशेष—पुराने आचार्य्य भूमिभोग की अपेक्षा हिरण्य-भोग (जिसके पास सोना या धन बहुत हो) को अच्छा मानते थे, क्योंकि उसे प्रबंध का व्यय भी कम उठाना पड़ता है और व्यय के लिये धन भी उसके पास पर्याप्त रहता है। पर कौटिल्य ने भूमि को ही सब प्रकार के धन का आधार मानकर भूमिभोग को ही अच्छा बताया है।

भूमि-संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह संधि जो परस्पर मिलकर कोई भूमि प्राप्त करने के लिये की जाय। (२) शत्रु के साथ वह संधि जो कुछ भूमि देकर की जाय।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि इस संधि में शत्रु को ऐसी ही भूमि देनी चाहिए जो प्रत्यादेया हो या जिस पर शत्रु या असमर्थ और असक्त बसे हों अथवा जिसके सँभालने में धन जन का व्यय अधिक होता हो।

भृगु-मुख्य-संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम। उ०—पंचमुख छमुख भृगुमुख्य भट असुर सुर सर्व सरि समर समरत्थ सूरो।—तुलसी।

भृतक बल-संज्ञा पुं० [सं०] तनखाह लेकर लड़नेवाली सेना। नौकर फौज।

भेंगा-वि० [देश०] जिसकी आँखों की दोनों पुतलियाँ देखने में बराबर न रहती हों, टेढ़ी तिरछी रहती हों। ढेरा। अंबर-तक्कू।

भेष-संज्ञा पुं० [सं० वेष] किसी विशिष्ट संप्रदाय का साधु या संत। (साधुओं की परि०)

भैंसवाली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ पाँच से आठ इंच तक लम्बी होती हैं। यह उत्तरी और दक्षिणी भारत में पाई जाती है। यह वर्षा ऋतु में फूलती और जाड़े में फलती है।

भैंसिया गूगल-संज्ञा पुं० [हिं० भैंसिया + गूगल] एक प्रकार का गूगल जिसका व्यवहार ओषधि के रूप में होता है।

भैंसिया लहसुन-संज्ञा पुं० [हिं० भैंसिया + लहसुन] एक प्रकार का लाल दाग या निशान जो प्रायः गाल या गरदन आदि पर होता है। लच्छन।

भैक्ष्य-शुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] भिक्षा संबंधी शुद्धि। भिक्षा माँगने और ग्रहण करने के संबंध की शुद्धि। (जैन)

भैरव झोली-संज्ञा स्त्री० [सं० भैरव + झोली] एक प्रकार की लंबी झोली जो प्रायः साधुओं आदि के पास रहती है।

भोकस-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार के राक्षस। उ०—कीन्हेसि राकस भूत परीता। कीन्हेसि भोकस देव दइता।—जायसी।

भोग-संज्ञा पुं० [सं०] (२१) आय। आमदनी। (कौ०) (२२) भूमि या संपत्ति का व्यवहार।

भोगपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो राजा को डाली या उपहार भेजने के संबंध में लिखा जाय। (शुक्रनीति)

भोग-भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार वह लोक जिसमें किसी प्रकार का कर्म्म नहीं करना पड़ता, और सब प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्त्ति केवल कल्पवृक्ष के द्वारा हो जाती है।

भोगलाभ-संज्ञा पुं० [सं०] दिए हुए अन्न के बदले में ब्याज के रूप में कुछ अधिक अन्न जो फसल तैयार होने पर लिया जाय।

भोगवेतन-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जो किसी धरोहर रखी हुई वस्तु के व्यवहार के बदले में स्वामी को दिया जाय।

भोग-व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें सैनिक एक दूसरे के पीछे खड़े किए गए हों। (कौ०)

भोग्याधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] धरोहर की वह रकम या वस्तु जो कागज पर लिख ली गई हो।

भोथार-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—मुश्की औ हिरमिजी एराकी। तुरकी कहे भोथार बलाकी।—जायसी।

भौंर-संज्ञा पुं० [?] मुश्की घोड़ा। उ०—लील समंद चाल जग जाने। हाँसल भौंर गियाह बखाने।—जायसी।

भ्रम–संज्ञा पुं० [सं० सम्भ्रम] मान। प्रतिष्ठा। इज्जत। उ०—जस अति संकट पंडवन्ह भएउ भींव बँदि छोर। तस परबस पिउ काढ़हु राखि लेहु भ्रम मोर।—जायसी।
संज्ञा पुं० [सं०] (९) योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें योगी सब प्रकार के आचार आदि का परित्याग कर देता है और उसका मन निरवलंब की भाँति इधर उधर भटकता रहता है। (मार्कंडेय पु०)

मंग–संज्ञा स्त्री० दे० "माँग"। उ०—कुसुम फूल जस मरदै निरँग देख सब अँग। चंपावति भइ बारी, चूम केस औ मंग।—जायसी।
संज्ञा पुं० [देश०] आठ की संख्या। (दलाल)

मंगल कलश–संज्ञा पुं० [सं०] जल से भरा हुआ वह घड़ा या कलश जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर पूजा के लिये रखा जाता है।

मंगल घट–संज्ञा पुं० दे० "मंगल कलश"। उ०—परिपूरण सिंदूर पूर कैधौं मंगल घट।—केशव।

मँगलाय–संज्ञा पुं० [दलाली मंग = आठ + आय (प्रत्य०)] अठारह की संख्या। (दलाल)

मंजन–संज्ञा पुं० [सं० मज्जन] (१) वह चूर्ण जिसकी सहायता से मल कर दाँत साफ किए जाते हैं। (२) स्नान। नहाना। उ०—अंजन दे निकसै नित नैनन मंजन कै अति अंग सँवारे।—मतिराम।

मँजना–क्रि० अ० [सं० मज्जन] (१) रगड़ कर साफ किया जाना। माँजा जाना। (२) किसी कार्य को ठीक तरह से करने की योग्यता या शक्ति आना। अभ्यास होना। मश्क होना। जैसे,—लिखने में हाथ मँजना।

मँजाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० माँजना] (१) माँजने की क्रिया या भाव। (२) माँजने की मजदूरी।

मँजाना–क्रि० स० [हिं० माँजना का प्रेर०] माँजने का काम दूसरे से कराना। किसी को माँजने में प्रवृत्त करना।
* क्रि० स० माँजना। मल कर साफ करना। उ०—सूत सूत सी कया मँजाई। सीझा काय बिनत सिधि पाई।—जायसी।

मंजार†–संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जार] बिल्ली। बिड़ाल। उ०—कहति न देवर की कुबत कुल-तिय कलह डराति। पंजर-गत मंजार ढिग सुक ज्यौं सूकति जाति।—बिहारी।

मँजावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० मँजना] (१) माँजने या मँजने का भाव। (२) माँजने या मँजने की क्रिया। (३) किसी काम में हाथ का मँजना। हाथ की सफाई।

मंजिल–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) यात्रा के मार्ग में ठहरने का स्थान। पड़ाव। (२) वह स्थान जहाँ तक पहुँचना हो। (३) मकान का खंड। मरातिब।

मंजूषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) पिंजड़ा। उ०—आजु नरायन फिरि जग खूँदा। आजु सो सिंह मँजूषा मूँदा।—जायसी।

मँझार†–क्रि० वि० [सं० मध्य] मध्य में। बीच में।

मँझियार*†–वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ] मध्य का। बीच का। उ०—नव द्वारा राखे मँझियारा। दसवें मूँदि कै दिएउ किवारा।—जायसी।

मंडना–क्रि० स० [सं० मंडन] (३) परिपूरित करना। भरना। छाना। उ०—चंड कोदंड रह्यो मण्डि नवखंड को।—केशव।

मंडल–संज्ञा पुं० [सं०] (२) राजा के प्रधान कर्म्मचारियों का समूह। वि० दे० "अष्ट-प्रकृति"।

मंडल व्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें सैनिक चारों ओर एक घेरा सा बना कर खड़े किए जायँ। (कौ०)

मँडार†–संज्ञा पुं० [सं० मंडल] (२) झाबा। डलिया। उ०—सुअहिं को पूछ? पतंग-मँडारे। चल न देख आछे मन मारे।—जायसी।

मंत्र-भेदक–संज्ञा पुं० [सं०] सरकारी गुप्त सलाह को प्रकाशित करनेवाला। (चंद्रगुप्त के समय में इस अपराध में जीभ उखाड़ लेना दंड था।)

मंत्र युद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] केवल बात चीत या बहस के द्वारा शत्रु को वश में करने का प्रयत्न।
विशेष–कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इस विषय का एक अलग प्रकरण (१६३ वाँ) ही दिया है।

मंत्र शक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध में चतुराई या चालाकी। ज्ञानबल।

मंथरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) १२० हाथ लंबी, ६० हाथ चौड़ी और ३० हाथ ऊँची नाव। (युक्ति कल्पतरु)

मंशा–संज्ञा स्त्री० [अ०] कामना। इच्छा। इरादा। जैसे,—मेरी मंशा तो यही थी कि सब लोग वहाँ चलते।

मंसा–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो बहुत शीघ्रता से बढ़ती और पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है। मकड़ा। वि० दे० "मकड़ा"।

मक़बरा–संज्ञा पुं० [अ०] वह मकान जिसके अंदर कोई कब्र हो। कब्र के ऊपर बनी हुई इमारत। समाधि-मंदिर।

मकर-कुंडल–संज्ञा पुं० [सं० मकर + कुंडल] मकर के आकार का कुंडल। उ०—श्रवण मकर कुंडल लसत मुख सुखमा एकत्र।—केशव।

मकर तेंदुआ–संज्ञा पुं० [मकर ? + सं० तिंदुक] आबनूस। काकतिंदुक।

मकोह–संज्ञा स्त्री० दे० "बमोलन"।

मकड़-संज्ञा पुं० [हिं० मकड़ी] बड़ा मकड़ा। नर मकड़ी।

मखीर†-संज्ञा पुं० [हिं० मक्खी] शहद। मधु।

मखौल-संज्ञा पुं० [देश०] हँसी ठट्ठा। मजाक। परिहास।

मखौलिया-संज्ञा पुं० [हिं० मखौल + इया (प्रत्य०)] वह जो सदा मखौल करता हो। हँसी ठट्ठा करनेवाला। मसखरा। दिल्लगीबाज।

मुहा०—मखौल उड़ाना = किसी की हँसी उड़ाना। परिहास करना।

मगर-संज्ञा पुं० [सं० मग] अराकान प्रदेश जहाँ मग नाम की जाति बसती है। उ०—चला परबती लेइ कुमाऊँ। खसिया मगर जहाँ लगि नाऊँ।—जायसी।

मगरा†-वि० [अ० मगरूर] (१) अभिमानी। घमंडी। (२) सुस्त। अकर्म्मण्य। काहिल। (३) धृष्ट। ढीठ। (४) हठी। जिद्दी। (५) उद्दंड।

मगरी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] ढालुए छप्पर का बीच का या सब से ऊँचा भाग। जैसे,—ओलती का पानी मगरी चढ़ा है। (कहा०)

मघौना-संज्ञा पुं० [सं० मेघ + वर्ण] नीले रंग का कपड़ा। उ०—चिकवा चीर मघौना लोने। मोति लाग औ छापे सोने। —जायसी।

† संज्ञा पुं० दे० "मघवा"।

मचकाना-क्रि० स० [अनु०] मचकने में प्रवृत्त करना। झुकाना।

मचमचाना- क्रि० अ० [अनु०] काम के बहुत अधिक आवेश में होना। बहुत अधिक कामातुर होना।

मचमचाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० मचमचाना + आहट (प्रत्य०)] मचमचाने की क्रिया या भाव। बहुत अधिक काम का आवेश।

मचला-वि० [हिं० मचलना] (२) मचनेवाला। हठ करनेवाला। हठी। उ०—हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लगि अर्यो हौं। —तुलसी।

मचलापन-संज्ञा पुं० [हिं० मचला + पन (प्रत्य०)] मचला होने का भाव। कुछ जानते हुए भी चुप रहने का भाव।

मचाना†-क्रि० स० [?] मैला करना। गंदा करना।

मचुला-संज्ञा पुं० [देश०] गिरगिट्टी नामक वृक्ष जो प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। वि० दे० "गिरगिट्टी"

मछरंगा-संज्ञा पुं० [हिं० मच्छ = मछली] एक प्रकार का जल-पक्षी जो मछलियाँ पकड़ कर खाता है। राम-चिड़िया।

मजारी⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जार] बिल्ली। बिड़ाल। उ०—(क) बिरह मयूर नाग वह नारी। तू मजारि करु बेगि गोहारी। —जायसी। (ख) सग्रु सुआ के नाऊ बारी। सुनि धाए जस धाव मजारी।—जायसी।

मजीठी-वि० [हिं० मजीठ] मजीठ के रंग का। लाल। सुर्ख। उ०—ओहि के रँग भा हाथ मजीठी। मुकुता लेउँ तौ घुँघची दीठी।—जायसी।

मझ⊛-वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ] मध्य। उ०—लागीं केलि करै मझ नीरा। हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा।—जायसी।

मझका†-संज्ञा पुं० [हिं० माथा + झाँकना] विवाह के दूसरे या तीसरे दिन होनेवाली एक प्रकार की रस्म जिसमें वर-पक्ष के लोग कन्या के घर जाकर उसका मुख देखते और उसे कुछ नगद तथा आभूषण आदि देते हैं। मुँह-देखनी। (पूरब)।

मटिया फूस-वि० [हिं० मिट्टी + फूस] बहुत अधिक दुर्बल और वृद्ध। जर्जर।

मट्टर-संज्ञा पुं० [देश०] सुस्त। काहिल।

मठारना-क्रि० स० [हिं० मठरना] (१) बरतन में गोलाई या सुडौलपन लाने के लिये उसे "मठरना" नामक हथौड़े से धीरे धीरे पीटना। (२) गूँधे हुए आटे में लेस उत्पन्न करने के लिये उसे मुक्कियों से बार बार दबाना। मुक्की देना। (३) किसी बात को बहुत धीरे धीरे या बना बना कर कहना। बात को बहुत विस्तार देना।

मड़क-संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी बात के अंदर छिपा हुआ हेतु। भीतरी रहस्य। जैसे—तुम उसकी बात की मड़क नहीं समझते।

मड़ा†-संज्ञा पुं० [हिं० मढ़ी] बड़ी कोठरी। कमरा।

मढ़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० मठ] (६) नाथ संप्रदाय के संन्यासी की समाधि जहाँ प्रायः कुछ साधु लोग रहते हैं।

मणि सोपानक-संज्ञा पुं० [सं०] सोने के तार में पिरोए हुए मोतियों की माला जिसके बीच में कोई रत्न हो। (कौ०)

मतली-संज्ञा स्त्री० [हिं० मिचली] जी मिचलाने की क्रिया या भाव। कै होने की इच्छा।

मताधिकार-संज्ञा पुं० [सं०] वोट या मत देने का अधिकार जो राजा या सरकार से प्राप्त हो। व्यवस्थापिका परिषद्, व्यवस्थापिका सभा आदि प्रतिनिधिक कहलानेवाली संस्थाओं के सदस्य या प्रतिनिधि निर्वाचित करने में वोट या मत देने का अधिकार।

मति⊛-अव्य० [सं० मत् या वत्] सदृश। समान। उ०—धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की। —तुलसी।

मतिन†-अव्य० [सं० मत् या वत् ?] सदृश। समान। (पूरब)

मतिमाह⊛-वि० [सं० मतिमत्] मतिमान्। बुद्धिमान्। समझदार। उ०—पुनि सलार कादिम मतिमाहाँ। खाँडे दान उभै निति बाँहा।—जायसी।

मरिस्यनी सीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दो गाँवों के बीच में पड़नेवाली नदी जो सीमा के रूप में हो। (स्मृति)

मददगार-संज्ञा पुं० [अ० मदद + फा० गार (प्रत्य०)] मदद करनेवाला। सहायता करनेवाला। सहायक।

मदन-कदन-संज्ञा पुं० [सं० मदन + कदन] शिव। महादेव। उ०—अब ही यह कहि देख्यो मदन-कदन को दंड।—केशव।

मदन-मल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) मल्लिका छंद का एक नाम। उ०—अष्ट वरण शुभ सहित क्रम गुरु लघु केशवदास। मदन-मल्लिका नाम यह कीजै छंद प्रकास।—केशव।

मदफन-संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ मुरदे गाड़े जाते हैं। कब्रिस्तान।

मदमत्त-वि० [सं०] (१) (हाथी) जो मद बहने के कारण मस्त हो। उ०—जिन हाथन हठि हरषि हनत हरिणी-रिपु नंदन। तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयंदन।—केशव। (२) मस्त। मतवाला।

मदानि†-वि० [?] कल्याण करनेवाला। मंगलकारक। उ०—तुलसी संगति पोच की सुजनहिं होति मदानि। ज्यों हरि रूप सुताहि तें कीन जुहारी आनि।—तुलसी।

मदिया-संज्ञा स्त्री० [फा० मादा] पशुओं में स्त्री जाति। स्त्री-जाति का जानवर। जैसे,—मदिया कबूतर। मदिया कौवा।

मधाना-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है। मकड़ा। मधाना। वि० दे० "मकड़ा"।

मधुप-संज्ञा पुं० [सं०] (३) उद्धव। उ०—पगी प्रेम नँदलाल के, हमैं न भावत जोग। मधुप राजपद पाय कै, भीख न माँगत लोग।—मतिराम।

मधुरान्न-संज्ञा पुं० [सं०] मिठाई। मिष्टान्न। उ०—खाय मधुरान्न, नहिं पाय पनही धरैं।—केशव।

मध्यम राजा-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो कई परस्पर विरुद्ध राजाओं के मध्य में हो।

विशेष—इसमें इतनी शक्ति का होना आवश्यक है कि शांति तथा युद्ध काल में दोनों पक्षों के निग्रह तथा अनुग्रह मे समर्थ हो।

मध्यमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) २४ हाथ लंबी, १२ हाथ चौड़ी और ८ हाथ ऊँची नाव। (युक्ति कल्पतरु)

मध्यलोक-संज्ञा पुं० [सं०] (२) जैनों के अनुसार वह मध्यवर्त्ती लोक जो मेरु पर्वत पर १०००४० योजन की ऊँचाई पर है।

मनभंग-संज्ञा पुं० [सं० मन + भंग] बद्रिकाश्रम के एक पर्वत का नाम।

मनरोचन-वि० [सं० मन + रोचन] मन को मुग्ध करनेवाला। सुंदर। उ०—तापर भौंर भलो मनरोचन लोक बिलोचन की सथिरी है।—केशव।

मनसा-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो बहुत शीघ्रता से बढ़ती और पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है। मकड़ा। मधाना। खमकरा। वि० दे० "मकड़ा"।

मनसाकर-वि० [हिं० मनसा + सं० कर (प्रत्य०)] मनोवांछित फल देनेवाला। मनोकामना पूर्ण करनेवाला। उ०—बहु शुभ मनसाकर करुणामय अरु शुभ तरंगिनी शोभ सनी।—केशव।

मनसा देवी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मनसा + देवी] एक देवी जो साँपों के कुल की अधिष्ठात्री मानी जाती है। प्रायः लोग साँप के काटने पर इसकी मन्नत मानते हैं।

मनीबैग-संज्ञा पुं० [अं०] चमड़े आदि का बना हुआ एक प्रकार का छोटा बटुआ जिसके अंदर कई खाने होते हैं जिनमें रुपए, रेजगी आदि रखते हैं।

मनुष्य-गणना-संज्ञा स्त्री० दे० "मर्दुम-शुमारी"।

मनुहार-संज्ञा स्त्री० [हिं० मन + हरना] शांति। तृप्ति। उ०—कुरला काम केरि मनुहारी। कुरला जेहिं नहिं सो न सुनारी।—जायसी।

मनोगत-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मनोवर्गणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार वे सूक्ष्म तत्त्व जिनसे मन की रचना हुई है।

ममोला-संज्ञा पुं० [देश०] (१) धोबिन नाम का छोटा पक्षी जिसके पेट पर काली धारियाँ होती हैं। (२) छोटा और प्यारा बच्चा।

मम्मा-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) स्तन। छाती। (२) जल। पानी। (बालक)

संज्ञा पुं० दे० "मामा"।

मयसुता-संज्ञा स्त्री० [सं० मय + सुता] मय दानव की कन्या, मन्दोदरी। उ०—मय की सुता धौं को है, मोहनी है मोह मन, आजु लौं न सुनी सु तौ नैनन निहारिये।—केशव।

मरकज़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वृत्त का मध्य बिंदु। (२) प्रधान या मध्य स्थान। केंद्र।

मरणाशंसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्र मरने की इच्छा। जल्दी मरने की कामना। (जैन)

मरियम-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह बालिका जिसका विवाह न हुआ हो। कुमारी। कन्या। (२) ईसा मसीह की माता का नाम। (कहते हैं कि इन्हें कौमार अवस्था में ही बिना किसी पुरुष के संयोग के, ईश्वरी माया से, गर्भ रह गया था जिससे महात्मा मसीह का जन्म हुआ था।) (३) पतिव्रता और साध्वी स्त्री।

मरियम का पंजा-संज्ञा पुं० [अ० मरियम + हिं० पंजा] एक प्रकार की सुगंधित वनस्पति जिसका आकार हाथ के पंजे का सा होता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि ईसा मसीह की माता मरियम ने प्रसव के समय इस वनस्पति पर हाथ

रखा था, जिससे इसका आकार पंजे का सा हो गया। इसी कारण इसके संबंध में यह भी प्रसिद्ध हो गया है कि प्रसव पीड़ा के समय गर्भवती स्त्री के सामने इसे रख देने से पीड़ा शांत हो जाती है और सहज में तथा शीघ्र प्रसव हो जाता है।

मरियल-वि० [हिं० मरना + इयल (प्रत्य०)] बहुत दुर्बल। दुबला और कमजोर।

यौ०—मरियल टट्टू = बहुत सुस्त या कमजोर आदमी।

मर्चेंट-संज्ञा पुं० [अं०] व्यापार वाणिज्य करनेवाला। व्यापारी। सौदागर।

मर्दल-संज्ञा पुं० [सं०] पखावज के ढंग का एक प्रकार का बाजा जिसका व्यवहार प्रायः बंगाल में कीर्त्तन आदि के समय होता है। मादल।

मलका-संज्ञा स्त्री० [अ० मलिकः] बादशाह या महाराज की पटरानी। महारानी।

मलकुल् मौत-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों के अनुसार वह फरिश्ता जो अंत समय में प्राण लेने के लिये आता है।

मलता-वि० [हिं० मलना] मला या घिसा हुआ (सिक्का)। जैसे—मलता पैसा, मलती अठन्नी।

मलमलाना-क्रि० अ० [अनु०] पश्चात्ताप करना। अफसोस करना। पछताना।

मलमलाहट-संज्ञा स्त्री० [अनु०] मलमलाने की क्रिया या भाव। पश्चात्ताप। अफसोस।

मलयुग-संज्ञा पुं० दे० "कलियुग"। उ०—नाम ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो। अब गरीब जन पोषिए पायबो न हेरो।—तुलसी।

मलेपंज-संज्ञा पुं० [देश०] अधिक अवस्था का घोड़ा। बुड्ढा घोड़ा।

मल्हा बेल-संज्ञा स्त्री० [देश०] मौला नाम की बेल जो प्रायः वृक्षों पर चढ़कर उन्हें बहुत अधिक हानि पहुँचाती है। वि० दे० "मौला"।

मसानिया-संज्ञा पुं० [हिं० मसान (श्मशान) + इया (प्रत्य०)] (१) श्मशान पर रहनेवाला डोम। (२) वह जो श्मशान पर रह कर किसी प्रकार की साधना करता हो। (३) वह जो झाड़ फूँक कर भूत-प्रेत आदि उतारता हो। सयाना। ओझा।

मसियर-%† संज्ञा स्त्री० दे० "मशाल"। उ०—चहुँ दिसि मसियर नखत तहाईं। सूरुज चढ़ा चाँद के ताईं।—जायसी।

मसियार†-%संज्ञा स्त्री० दे० "मशाल"।

मसियारा-%संज्ञा पुं० दे० "मशालची"।

मसीना-संज्ञा पुं० [देश०] मोटा अन्न। कदन्न।

मसीहा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) ईसाई धर्म्म के प्रवर्त्तक ईसा मसीह। (२) वह जो मृतकों को जीवित करता हो।

विशेष—प्रायः उर्दू और फारसी काव्यों में प्रेमी या प्रेमिका के लिये इस शब्द का व्यवहार होता है।

मसीहाई-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) मसीहा का भाव। मसीहापन। (२) मृतक को जीवित करने की शक्ति। मरे हुए को जिलाने की ताकत।

मसेवरा-†संज्ञा पुं० [हिं० मांस + वरा (प्रत्य०)] मांस की बनी चीज़ें। जैसे,—कोफता, कबाब आदि। उ०—कीन्ह मसेवरा सीझि रसोईं। जो किछु सबै माँसु सौं होई।—जायसी।

मसोसा-संज्ञा पुं० [हिं० मसोसना] (१) मानसिक दुःख। मन में होनेवाला रंज। (२) पश्चात्ताप। पछतावा।

महता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महत्तत्व। विज्ञान शक्ति। (२) महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

महना†- क्रि० स० [सं० मन्थन] (२) किसी बात या विषय का आवश्यकता से बहुत अधिक विवेचन करना। बहुत पिष्ट-पेषण करना।

यौ०—महना मत्थन = व्यर्थ का बहुत अधिक वाद-विवाद करना।

महरा-संज्ञा पुं० [हिं० महता] (३) सरदार। नायक। उ०—दसवँ दाँव कै गा जो दसहरा। पलटा सोइ नाव लेइ महरा।—जायसी।

महसूली-वि० [अ०] जिस पर किसी प्रकार का महसूल हो या लग सकता हो। महसूल के योग्य।

महा†-संज्ञा पुं० [हिं० महना] मट्ठा। छाछ। उ०—रीझि बूझी सब की प्रतीति प्रीति एही द्वार दूध को जस्यो पियत फूँकि फूँकि मह्यो हौं।—तुलसी।

महात्यय-व्यय-निवेश-संज्ञा पुं० [सं०] वह उपनिवेश या भूमि जिसके रखने में धन का बहुत खर्च हो।

विशेष—कौटिल्य का मत है कि ऐसे प्रदेश को या तो बेच देना चाहिए अथवा उसमें अपराधियों, राजद्रोहियों, प्रमादियों आदि को भेज देना चाहिए।

महानसावलेही-संज्ञा पुं० [सं०] चौका खराब करनेवाला। (चंद्रगुप्त मौर्य के समय में जो लोग ब्राह्मण के चौके को छू कर अथवा और किसी प्रकार खराब कर देते थे, उनकी जीभ उखाड़ ली जाती थी।)

महापद्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१०) जैनों के अनुसार महा हिमवान् पर्वत पर के जलाशय का नाम।

महापुंडरीक-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार रुक्मि पर्वत पर के बड़े जलाशय या झील का नाम।

महाप्रतिहार-संज्ञा पुं० [सं०] (२) नगर में शांति रखनेवाला अधिकारी। कोतवाल।

महाभरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलंजन। पान की जड़।

महामंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब से बड़ा मंत्र जिसकी

सहायता से किसी काम का होना निश्चित हो। (२) उत्कृष्ट मंत्र। अच्छी और बढ़िया सलाह। उ०—राजा राजपुरोहितादि सुहृदो मंत्री महामंत्र-दा।—केशव।

महामत्स्य-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वह बहुत बड़ी मछली जो स्वयंभूरमण सागर में थी।

महाशुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार दसवें स्वर्ग का नाम।

महासत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार वह विश्व-व्यापिनी सत्ता जिसमें विश्व के समस्त जीवों और पदार्थों की सत्ता अंतर्भुक्त है। सबसे बड़ी और प्रधान सत्ता जो सब प्रकार की सत्ताओं का मूल आधार है।

महा हिमवान्-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार दूसरा पर्वत जो हैमवत और हरि नाम के दो खंडों में विभक्त है।

महियाउर†-संज्ञा पुं० [हिं० मही = मठा + चाउर = चावल] मठे में पका हुआ चावल। उ० माठा महिं महियाउर नावा। भीज बरा नैनू जनु खावा।—जायसी।

महेरा-संज्ञा पुं० [हिं० मही + एरा (प्रत्य०)] मही। मठा। उ०—जस विउ होइ जराइ कै तस जिउ निरमल होइ। महै महेरा दूरि करि भोग करै सुख सोइ।—जायसी।

महेसी-संज्ञा स्त्री० [सं० महेश्वरी] महेश्वरी। पार्वती। उ०—हिय महेस जौं कहैं महेसी। कित सिर नावहिं ए परदेसी।—जायसी।

महेसुर&-संज्ञा पुं० [सं० महेश्वर] (१) महेश्वर। (२) माहेश्वर नामक शैव संप्रदाय। उ०—कोइ सु महेसुर जंगम जती। कोइ एक परखै देवी सती।—जायसी।

महोछा†-संज्ञा पुं० [सं० महोत्सव] खत्रियों में होनेवाला उनके एक प्रसिद्ध महात्मा (बाबा लालू जसराय) का पूजन जो श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में होता है।

महोली-संज्ञा स्त्री० [देश०] पापड़ी नामक वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती और इमारत के काम में आती है। वि० दे० "पापड़ी"।

माँज-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) दलदली भूमि। (२) तराई। कछार। (३) वह भूमि जो किसी नदी के पीछे हट जाने के कारण निकल आती है। गंगबरार।

माँ-जाया-संज्ञा पुं० [हिं० माँ + जाया = जात] [स्त्री० माँजाई] माँ से उत्पन्न, सगा भाई।

माइका-संज्ञा पुं० [अं०] अबरक। अभ्रक।

माइन-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) खान। (२) बारूद की सुरंग।

माइनारिटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) अल्प संख्या। आधे से कम संख्या। (२) वह पार्टी या दल जिसके वोट कम हों।

माई-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल माजू से मिलता जुलता होता है और जिसका व्यवहार प्रायः हकीम लोग ओषधि के रूप में करते हैं।

माई लार्ड-संज्ञा पुं० [अं०] लाटों तथा हाइकोर्ट के जजों को संबोधन करने का शब्द। जैसे,-माई लार्ड, आपको इस बात का बड़ा अभिमान है कि अँगरेजों में आपकी भाँति भारतवर्ष के वषय में शासन-नीति समझनेवाला और शासन करनेवाला नहीं है।—बालमुकुंद गुप्त।

माउंट पुलिस-संज्ञा स्त्री० [अं० माउंटेड पुलिस] घुड़-सवार पुलिस।

माकल-संज्ञा स्त्री० [देश०] इंद्रायन नाम की लता।

माखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मक्खी] शहद की मक्खी। (पश्चिम) संज्ञा स्त्री० [हिं० मुख ?] लोगों में फैलनेवाली चर्चा। जनरव।

माट-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की वनस्पति जिसका व्यवहार तरकारी के रूप में होता है।

माटू-संज्ञा पुं० [देश०] (१) बंदर। वानर। (२) मूर्ख। (पश्चिम)

माड़ा-वि० [सं० मंद] (१) खराब। निकम्मा। (२) दुबला। दुर्बल। (पश्चिम) (३) बीमार। रोगी। (पश्चिम)

माढ़ी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मँढ़ी] मञ्च। मचिया। उ०—को पालक पौढ़ै को माढ़ी। सोवनहार परा बँद गाढ़ी।—जायसी।

माणव विद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जादू टोना। जंत्र मन्त्र की विद्या। (कौ०)

माथना&-क्रि० स० दे० "मथना"। उ०—नीर होइ तर ऊपर सोई। माथे रंग समुद जस होई।—जायसी।

मादर-संज्ञा पुं० दे० "मादल"। उ०—तुम्ह पिउ साहस बाँधा मैं पिय माँग सेंदूर। दोउ सँभारे होइ सँग बाजै मादर तूर।—जायसी।

मादरी-वि० [फा०] माता संबंधी। माता का।

यौ०-मादरी ज़बान = मातृभाषा।

मादल-संज्ञा पुं० [सं० मर्दल] पखावज के ढंग का एक प्रकार का बाजा जो प्रायः बंगाल में कीर्तन आदि के समय बजाया जाता है।

मानवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो अपने पति या प्रेमी से मान करती हो। मानिनी। उ०—करै इरषा सों जु तिय मन-भावन सों मान। मानवती तासों कहत, कवि मतिराम सुजान।—मतिराम।

मानवदेव-संज्ञा पुं० [सं० मानव + देव] राजा। उ०—बलि मिस देखे देवता कर मिस मानव देव। मुए मार सुविचार हत स्वारथ साधन एव।—तुलसी।

मानाथ-संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति, विष्णु। उ०—मदन मर्दन मयातीत माया रहित मंजु मानाथ पाथोज पानी।—तुलसी।

मानिटर-संज्ञा पुं० [अं०] स्कूल की किसी कक्षा का वह प्रधान विद्यार्थी जो अपने अन्य सहपाठियों की पढ़ने-लिखने आदि के संबंध में देख भाल रखता हो।

मानुषोत्तर-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार एक पर्वत का नाम जो पुष्कर द्वीप को दो समान भागों में विभक्त करता है।

मापक-संज्ञा पुं० [सं०] अन्न मापने का काम करनेवाला। बया।

विशेष—प्राचीन काल में भारत में अन्न तुला से नहीं तौला जाता था। भिन्न भिन्न तौलों के बरतन रहते थे; उन्हीं में अनाज भर भर कर बेचा जाता था। माप में भेद आने पर २०० पण जुरमाना किया जाता था। (कौ०)

मामूर-वि० [अ०] भरा हुआ। पूर्ण।

मायापति-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर। परमेश्वर।

मायापात्र-संज्ञा पुं० [सं० माया = धन + पात्र] वह जिसके पास बहुत धन हो। धनवान। अमीर।

मारकेश-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म-कुंडली में पड़नेवाले कुछ विशिष्ट ग्रहों का योग, जिसके परिणाम स्वरूप उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है अथवा वह मरणासन्न हो जाता है।

मार पीट-संज्ञा स्त्री० [हिं० मारना + पीटना] मारने और पीटने की क्रिया। ऐसी लड़ाई जिसमें आघात किया जाय।

मारफत-संज्ञा स्त्री० [अ०] ईश्वर संबंधी ज्ञान। ईश्वरीय ज्ञान। उ०—राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत मार बुड़की। —जायसी।

मार्क-संज्ञा पुं० [अं०] जर्मनी में चलनेवाला चाँदी का एक सिक्का जो प्रायः एक शिलिंग या बारह आने मूल्य का होता है।

मार्किस-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० मार्शोनेस] इंगलैंड के सामंतों और बड़े बड़े भूम्यधिकारियों को वंश परंपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि जिसका दर्जा ड्यूक के बाद है। वि० दे० "ड्यूक"।

मार्गनिरोध-संज्ञा पुं० [सं०] चलते रास्ते को खराब करना या रोकना।

विशेष—कौटिल्य के समय में इसके लिये भिन्न भिन्न दंड नियत थे।

मार्जारात्मक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न। (कौ०)

मार्बल-संज्ञा पुं० [अं०] संगमरमर।

मार्शल-संज्ञा पुं० [अं०] सेना का एक बहुत बड़ा अफसर जो प्रधान सेनापति या समर-सचिव के अधीन होता है।

मार्शल ला-संज्ञा पुं० [अं०] सैनिक व्यवस्था या शासन। फौजी कानून या हुकूमत।

विशेष—समर, विद्रोह या इसी प्रकार के आपत्काल में साधारण कानून या दंड-विधान से काम चलता न देख कर देश का शासनसूत्र सैनिक अधिकारियों के हाथ में दे दिया जाता है और इसकी घोषणा कर दी जाती है। सैनिक अधिकारी इस संकट-काल में, विद्रोह आदि दमन करने में, कठोर से कठोर उपायों का अवलंबन करते हैं।

मालू-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बेल जो बागों में शोभा के लिये लगाई जाती है और प्रायः सारे भारत में जंगली दशा में पाई जाती है। साल के जंगलों में यह बहुत अधिकता से होती है। यदि इसे छाँटा और रोका न जाय तो यह बहुत जल्दी बढ़ जाती और वृक्षों को बहुत हानि पहुँचाती है। इसकी शाखाएँ सैंकड़ों फुट तक पहुँचती हैं। इसकी छाल से रेशा निकाला जाता है और उससे रस्से आदि बनाए जाते हैं। इसकी पत्तियाँ और बीज औषध में काम आते हैं और बीज भून कर खाए भी जाते हैं। इसकी पत्तियों के छाते भी बनाए जाते हैं।

मालूम-संज्ञा पुं० [अ०] जहाज का अफसर। (लश०)

माशाअल्लाह-पद [अ०] एक प्रशंसासूचक पद। बहुत अच्छा है। क्या कहना है।

विशेष—इस पद का प्रयोग दो प्रकार से होता है। एक तो किसी अच्छी चीज को देखकर उसकी प्रशंसा करने के लिये; और दूसरे किसी अच्छी चीज का जिक्र करते हुए यह भाव प्रकट करने के लिये कि ईश्वर करे, इसे नजर न लगे।

मासभृत-संज्ञा पुं० [सं०] वह मजदूर जिसको मासिक वेतन मिलता हो।

मासिक धर्म्म-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों को प्रति मास होनेवाला स्राव। स्त्रियों का रजस्वला होना।

मासूम-वि० [अ०] जिसने कोई अपराध या दोष न किया हो। निरपराध। बेगुनाह। जैसे,—मासूम बच्चा।

माहू-संज्ञा पुं० [देश०] कन-सलाई नाम का बरसाती कीड़ा जो प्रायः कान में घुस जाता है। गिंजाई।

माहेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (५) जैनों के अनुसार चौथे स्वर्ग का नाम।

मित⊛†-संज्ञा पुं० दे० "मित्र"। उ०—(क) आली औरे मिंत को मेरो मिट्यो मिलाप।—मतिराम। (ख) तू हेरे भीतर सौं मिंता। सोइ करै जेहि लहै न चिंता।—जायसी।

मिक्सचर-संज्ञा पुं० [अं०] ऐसी तरल औषध जिसमें कई ओषधियाँ मिली हों। मिश्रित औषध। जैसे,—किनाइन मिक्सचर।

मिचली-संज्ञा स्त्री० [हिं० मिचलाना] जी मिचलाने की क्रिया या भाव। कै होने की इच्छा।

मिजवानी-संज्ञा स्त्री० दे० "मेजबानी"।

मिठाना-क्रि० अ० [हिं० मीठा + आना (प्रत्य०)] मीठा होना। मधुर होना। उ०—मार्यौ मनुहारिनु भरी, गार्यौ खरी मिठाहिं। वाकौ अति अनखाहटौ मुसुकाहट बिनु नाहिं। —बिहारी।

मिजाजी–वि० [अ० मिजाज + ई (प्रत्य०)] बहुत अधिक मिजाज करने या रखनेवाला। अभिमानी। घमंडी।
मितविक्रय–संज्ञा पुं० [सं०] माप कर पदार्थ बेचना। (कौ०)
मिती-काटा-संज्ञा पुं० [हिं० मिती + काटना] (१) वह हिसाब जिसके अनुसार सराफ लोग हुंडी की मुद्दत तथा ब्याज लेते हैं। (२) सूद लगाने का वह ढंग जिसमें प्रत्येक रकम का सूद उसकी अलग अलग मिती से जोड़ा जाता है।
मित्रप्रकृति–संज्ञा पुं० [सं०] विजेता के चारों ओर रहनेवाले मित्र राष्ट्र या राजा।
मित्र-विक्षिप्त–वि० [सं०] मित्र के देश में पड़ी हुई (सेना)।
मिनट–संज्ञा पुं० [अं०] एक घंटे का साठवाँ भाग। साठ सेकंड का समय।
मुहा०—मिनटों में = बात की बात में। जैसे,—वह यह काम मिनटों में कर डालेगा।
मिनिट बुक–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह बही या किताब जिसमें किसी सभा, समिति के अधिवेशनों में सम्पन्न हुए कार्यों का विवरण लिखा जाता है।
मिनिस्टर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) मन्त्री। सचिव। दीवान। वजीर। (२) राजदूत। एलची। (३) धर्मोपदेष्टा। धर्माचार्य। पादरी। (ईसाई)
मिरवना꣸†–क्रि० स० दे० "मिलाना"।
मिरियास†–संज्ञा स्त्री० [अ० मीरास] किसी के मरने पर उसके उत्तराधिकारी को मिलनेवाली संपत्ति। मीरास।
मिल–संज्ञा स्त्री० [अं० मिल्स] कपड़ा आदि बुनने की कल या कारखाना। पुतलीघर।
मिलवना꣸–क्रि० स० दे० "मिलाना" उ०—उन हटकी हँसि कै इतै इन सौंपी मुसकाइ। नैन मिलैं मन मिलि गए दोऊ मिलवत गाइ।—बिहारी।
मिलिंद-संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। भौंरा। उ०—मदरस मत्त मिलिंद गन, गान मुदित गननाथ।—मतिराम।
मिलिटरी–वि० [अं०] (१) सेना या सैनिक संबंधी। फौजी। जैसे,—मिलिटरी डिपार्टमेंट। (२) युद्ध संबंधी। सामरिक। जंगी। (३) लड़ाका। योद्धा। जैसे,—वह मिलिटरी आदमी है।
संज्ञा स्त्री० [अं०] सैन्यदल। पलटन। फौज। जैसे—दंगे के दिनों में नगर में मिलिटरी का पहरा था।
मिलिशा–संज्ञा स्त्री० [अं०] ऐसे जवानों का दल जिन्हें किसी सीमा या स्थान की रक्षा करने के लिये शिक्षा दी गई हो और जिनसे समय समय पर रक्षा का काम लिया जाता हो। खड़ी पलटन। (इसका संघटन स्थायी नहीं होता।) जैसे,–वजीरिस्तान मिलिशा।
मिलीशिया–संज्ञा स्त्री० दे० "मिलिशा"।

मिसहा–वि० [हिं० मिस = बहाना + हा (प्रत्य०)] बहाना करनेवाला। छल करनेवाला। उ०—मैं मिसहा सोयौ समुझि मुँहु चूम्यौ ढिग जाइ। हँस्यौ खिसानी गल गह्यौ रही गरैं लपटाइ।—बिहारी।
मिस्सा†–संज्ञा पुं० [देश०] किसी प्रकार की दाल को पीस कर तैयार किया हुआ मोटा आटा जिसकी रोटी बना कर गरीब लोग खाते हैं।
यौ०—मिस्सा कुस्सा = मोटा अन्न। कदन्न।
मिहचना†-क्रि० स० दे० "मीचना"। उ०—प्रीतम दग मिहचत प्रिया पानि-परस सुखु पाइ। जानि पिछानि अजान लौं नैकुँ न होति जनाइ।—बिहारी।
मिहीं–वि० दे० "महीन"। उ०—जैसे मिहीं पट मैं चटकीलो, चढ़े रँग तीसरी बार के बोरैं।—मतिराम।
मींजना†–क्रि० स० [हिं० मूँदना] मूँदना। बंद करना। (आँखों के लिये) उ०—दूध माँझ जस घीउ है समुद माँह जस मोति। नैन मींजि जो देखहु चमक उठै तस जोति।—जायसी।
मीच꣸–संज्ञा स्त्री० [सं० मृत्यु] मृत्यु। मौत। उ०—मीच गई जर बीच ही, बिरहानल की झार।—मतिराम।
मीत†–संज्ञा पुं० [सं० मित्र] मित्र। दोस्त। उ०—(क) मीत भै माँगा बेगि बिवानू। चला सूर सँवरा अस्थानू।—जायसी। (ख) हम हीं नर के मीत सदा साँचे हितकारी। इक हमहीं सँग जात तजत जब पितु सुत नारी।—भारतेन्दु।
मीन-मेख–संज्ञा पु० [सं० मीन + मेष] सोच विचार। आगा पीछा। असमंजस। उ०—भामिनि मेख नारि के लेखे। कम पिउ पीठि दीन्हि मोहिं देखे।—जायसी।
मुँगचन†–संज्ञा पुं० [सं० मुद्ग] मोठ या बनमूँग नाम का कदन्न।
मुँगौछी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० मूँग + औछी (प्रत्य०)] मूँग की बनी हुई बरी। मुँगौरी। उ०—भई मुँगौछी मिरचें परी। कीन्ह मुँगौरा औ बहु बरी।—जायसी।
मुँचना†–क्रि० स० [सं० मुक्त] मुक्त करना। छोड़ना।
मुँहचंग–संज्ञा पुं० दे० "मुरचंग"।
मुकतई꣸–संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्त] मुक्ति। छुटकारा। उ०—तूँ मति मानै मुकतई कियें कपट चित कोटि। जौ गुनही तौ राखियै आँखिनु माँझ अगोटि।—बिहारी।
मुकतालि–संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्तावली] मोतियों की लड़ी। मुक्तावली। उ०—हे कपूर मनिमय रही मिलि तन-दुति मुकतालि। छिन छिन खरी बिचच्छिनौ लखति छ्वाइ तिनु आलि।—बिहारी।
मुकरना꣸–क्रि० अ० [सं० मुक्त] मुक्त होना। छूटना।
मुकराना꣸–क्रि० स० [हिं० मुकरना] मुक्त कराना। छुड़ाना। उ०—प्रिय जेहि बंदि जोगिनि होइ धावौं। हौं बंदि लेउँ पियहि मुकरावौं।—जायसी।

मुकलाना॥-क्रि० स० [सं० मुक्त या मुकलित ?] खोलना। छोड़ना। उ०—सरवर तीर पदमिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई।—जायसी।

मुकाशा-संज्ञा पुं० [देश०] वह छोटा संदूक जिसमें सुरमा, मिस्सी, कंघी और शीशा आदि रख कर वधू को देते हैं। संदूक के आकार का छोटा सिंगारदान। (मुसल०)

मुकुता-संज्ञा पुं० दे० "मुक्ता"। उ०—बहुत बाहिनी संग मुकुता-माल बिशाल कर।—केशव।

मुक्क॥-संज्ञा पुं० दे० "मुक्ता"। उ०—हेम हीर हार मुक्क चीर चारु साजि के।—केशव।

मुक्तक ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जिसकी लिखापढ़ी न हुई हो। जबानी बात चीत पर दिया हुआ ऋण।

मुक्ताहल॥-संज्ञा पु० [सं० मुक्ता+फल] मुक्ताफल। मोती। उ०—सहजहिं जानहु मेंहदी रची। मुकताहल लीन्हें जनु घुँघची।—जायसी।

मुक्ति फौज-संज्ञा स्त्री० दे० "सैल्वेशन आर्मी"।

मुजमिल†-क्रि० वि० [अ० मिन् जुम्ला] सब मिलाकर। कुल मिलाकर।

संज्ञा पुं० दो या अधिक संख्याओं का योग। जोड़।

मुज़ाहिम-वि० [अ०] (१) रोकने या बाधा डालनेवाला। बाधक। (२) आपत्ति करनेवाला।

मुज़ाहिमत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) रोकने या बाधा देने की क्रिया या भाव। (२) आपत्ति करने की क्रिया या भाव।

मुतफरकात-संज्ञा स्त्री० [अ० मुतफ़र्रिक़ात] (१) भिन्न भिन्न पदार्थ। फुटकर चीजें। (२) फुटकर व्यय की मद। (३) जमीन के वे अलग अलग टुकड़े जो किसी एक ही गाँव के अंतर्गत हों।

मुतवज्जह-वि० [अ०] जिसने किसी ओर तवज्जह की हो। जिसने ध्यान दिया हो। प्रवृत्त।

मुतास-संज्ञा स्त्री० [हिं० मूतना+आस (प्रत्य०)] मूतने की इच्छा। पेशाब करने की ख्वाहिश।

मुत्ती-संज्ञा स्त्री० [सं० मूत्र] मूत्र। पेशाब। (बालक)

संज्ञा पुं० दे० "मोती"। उ०—चलत पाइ निगुनी गुनी धनु मनि मुत्तिय-माल। भेंट होत जयसाहि सौं भागु चाहियतु भाल।—बिहारी।

मुदर्रिसी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मुदर्रिस का काम। पढ़ाने का काम। अध्यापन। (२) मुदर्रिस का पद। जैसे,—बड़ी कठिनता से उन्हें म्युनिसिपल स्कूल में मुदर्रिसी मिली है।

मुद्गरांक-संज्ञा पुं० [सं०] मुद्गर (मुँगरे) का चिह्न जो धोबियों के वस्त्र पर पहचान के लिये चंद्रगुप्त के समय में रहता था।

विशेष—यदि धोबी इस प्रकार के चिह्न से रहित वस्त्र पहन कर निकलते थे तो उन पर ३ पण जुरमाना होता था।

मुद्दी-संज्ञा स्त्री० [देश०] रस्सी आदि की खिसकनेवाली गाँठ।

मुद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी छापेखाने में रह कर छापने का काम करता या देखता हो और जो छपनेवाली चीजों की छपाई का जिम्मेदार हो। छापनेवाला। मुद्रणकर्त्ता। जैसे,—"चंद्रोदय" के संपादक और मुद्रक राजविद्रोहात्मक लेख लिखने और छापने के अभियोग पर भारतीय दंडविधान की १२४ ए धारा के अनुसार गिरिफ्तार किए गए हैं।

मुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१५) कहीं जाने का परवाना या आज्ञापत्र। परवाना राहदारी।

मुद्राध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] कहीं जाने का परवाना देनेवाला अधिकारी। (कौ०)

मुनमुना-संज्ञा पुं० [देश०] खसखस की तरह का पर उससे बड़ा एक प्रकार का काला दाना जो गेहूँ के खेत में उत्पन्न होता और प्रायः उसके दानों के साथ मिला रहता है। इसके मिले रहने के कारण आटे का रंग कुछ काला पड़ जाता और स्वाद कुछ कड़वा हो जाता है। प्याजी।

वि० बहुत छोटा या थोड़ा।

मुनाल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत सुंदर पहाड़ी पक्षी जिसकी हरी गरदन पर सुंदर कंठा सा दिखाई देता है और जिसके सिर पर कलगी होती है। इसके पर बहुत अधिक मूल्य पर बिकते हैं।

मुबलिग़-वि० [अ०] (रुपए आदि की) संख्या। गिनती। जैसे,—मुबलिग दो सौ रुपए वसूल हुए।

मुमानियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] मना करने या होने का भाव। मनाही।

मुरमुरा-संज्ञा पुं० [अनु०] एक प्रकार का भुना हुआ चावल जो अंदर से पोला होता है। फरवी। लाई।

मुर्गबाज़-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो मुरगे लड़ाता हो। मुरगों का खेलाड़ी।

मुर्गबाज़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मुरगे लड़ाने का काम या भाव।

मुल‡-अव्य० [देश०] (१) मगर। लेकिन। पर। (पश्चिम) (२) तात्पर्य्य यह कि। मतलब यह कि।

मुलकित॥-वि० [सं० पुलकित ?] मन्द मन्द हँसता हुआ। मुस्कराता हुआ। उ०—ऊँचै चितै सराहियतु गिरह कबूतर लेतु। झलकति दृग मुलकित बदनु तनु पुलकित किहिं हेतु।—बिहारी।

मुल्लहद-संज्ञा पुं० [देश०] वह पक्षी जो पैर बाँध कर जाल में इसलिये छोड़ दिया जाता है कि उसे देखकर और पक्षी आकर जाल में फँसें। कुट्टा।

†-वि [देश०] बहुत अधिक सीधा सादा। बेवकूफ। मूर्ख।

मुवक्किल-संज्ञा पुं० [अ०] वह जो किसी को मुकदमा आदि

लड़ने के लिये अपना वकील नियुक्त करता हो। वकील करने या रखनेवाला।

मुश्तबहा-वि० [अ०] जिसमें किसी प्रकार का शुबहा हो। संदेह के योग्य। संदिग्ध।

मुश्तरका-वि० [अ०] जिसमें कई आदमी शरीक हों। जिसमें और लोग भी सम्मिलित हों। जैसे,—मुश्तरका जायदाद।

मुसुकाना-क्रि० अ० दे० "मुसकराना"। उ०—पान खात मुसुकात मृदु को यह केशवदास।—केशव।

मुहताजी-संज्ञा स्त्री० [अ० मुहताज + ई (प्रत्य०)] (१) मुहताज होने की क्रिया या भाव। (२) दरिद्रता। गरीबी। (३) परमुखापेक्षी होने का भाव। परवशता।

मूआ-संज्ञा पुं० [हिं० मरना] मृत। मरा हुआ। (इसका प्रयोग स्त्रियाँ प्रायः गाली के रूप में करती हैं।)

मूज़ी-वि० [फा०] कष्ट पहुँचाने या सतानेवाला। तकलीफ देने या दिक करनेवाला।

मूढ़-संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त तमोगुण के कारण निद्रायुक्त या स्तब्ध रहता है। कहा गया है कि यह अवस्था योग के लिये अनुकूल या उपयुक्त नहीं होती। वि० दे० "चित्तभूमि"।

मूढ़वाताहत-वि० [सं०] तूफान में पड़ा हुआ (जहाज या नाव)। (कौ०)

मूर-संज्ञा पुं० [सं० मूल] मूल नामक नक्षत्र। उ०—काहे चंद घटत है काहे सूरज पूर। काहे होइ अमावस काहे लागै मूर।—जायसी।

मूरी†-संज्ञा स्त्री० [सं० मूल] मूल। जड़। (विशेषतः किसी ओषधि की) उ०—कीन्हेसि बनखँड औ जरि मूरी। कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी।—जायसी।

मूर्त्तत्व-संज्ञा पुं० [सं०] मूर्त्त होने की क्रिया या भाव। मूर्त्तता।

मूलरक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] राजधानी या शासन के केंद्रस्थान की रक्षा।

मूलस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (६) राजधानी। शासन का मुख्य केंद्र। (कौ०)

मूलहर-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो फजूल खर्च हो। वह जिसने अपना संपूर्ण धन नष्ट कर दिया हो। (कौ०)

मूला-संज्ञा स्त्री० [देश०] मौला नाम की बेल जो वृक्षों पर चढ़ कर उन्हें बहुत हानि पहुँचाती है। वि० दे० "मौला"।

मूलाबाधक-संज्ञा पुं० [सं०] राष्ट्र-शक्ति के केंद्र को घेरनेवाला। (कौ०)

मूलोदय-संज्ञा पुं० [सं०] ब्याज का मूल धन के बराबर हो जाना।

मूवमेंट-संज्ञा पुं० [अं०] वह प्रयत्न या आंदोलन जो किसी उद्देश्य की सिद्धि या अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिये एक या अधिक व्यक्ति करते हैं। आंदोलन। जैसे,—स्वदेशी मूवमेंट। नानकोआपरेशन मूवमेंट।

मृगनैनी-वि० स्त्री० [सं० मृग + नयन] जिसकी आँखें हिरन की आँखों के समान सुंदर हों। बहुत सुंदर नेत्रोंवाली। उ०—वासों मृग अंक कहैं तो सों मृगनैनी सब, वह सुधाधर तुहूँ सुधाधर मानिये।—केशव।

मृगमद-संज्ञा पुं० [सं० मृग + मद] कस्तूरी। उ०—अवलोकने बिलोकिये मृगमदमय घनसार।—केशव।

मेंड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ का अनु० या सं० मंडल] (१) ऊँची उठी हुई तंग जमीन जो दूर तक लकीर के रूप में चली गई हो। (२) दो खेतों के बीच की कुछ ऊँची उठी हुई सँकरी जमीन जिस पर से लोग आते जाते हैं। डाँड़। पगडंडी।

यौ०—डाँड़ मेंड़ = कूल किनारा। वार पार। उ०—पवनहुँ ते मन चाँड़ मन तें आसु उतावला। कतहूँ मेंड़ न डाँड़ मुहमद बहु बिस्तार सो।—जायसी।

मेंडरा†-संज्ञा पुं० [सं० मंडल] (१) घेर कर बनाया हुआ कोई गोल चक्कर। (२) एँडुआ। गेंडुरी।

मेंडराना†-क्रि० अ० दे० "मँडराना"। उ०—राजपंखि तेहि पर मेंडराहीं। सहस कोस तिन्ह कै परछाहीं।—जायसी।

क्रि० स० घेर कर गोल चक्कर बनाना। मेंडरा बनाना।

मेजबानी-संज्ञा स्त्री० [फा० मेजबान] (१) मेजबान का भाव या धर्म्म। (२) वे खाद्य पदार्थ जो बरात आने पर पहले पहल कन्या-पक्ष से बरातियों के लिये भेजे जाते हैं।

मेजर-जनरल-संज्ञा पुं० [अं०] फौज का एक अफसर जिसका दर्जा लेफटेनेंट जनरल के बाद ही है।

मेजा†-संज्ञा पुं० दे० "मेंढक"। उ०—केवट हँसे सो सुनत गवेजा। समुद न जान कुवाँ कर मेजा।—जायसी।

मेजारिटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] बहु संख्या। आधे से अधिक पक्ष। अधिकांश। जैसे,—मेजारिटी रिपोर्ट।

मेट-संज्ञा पुं० [अं०] (२) जहाज का एक कर्मचारी जिसका काम जहाज के अफसर की सहायता करना है। (३) संगी। साथी। जैसे,—क्लास-मेट।

मेडिकल-वि० [अं०] पाश्चात्य औषध और चिकित्सा से संबंध रखनेवाला। डाक्टरी संबंधी। जैसे,—मेडिकल कालेज, मेडिकल डिपार्टमेंट।

मेडिसिन-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) औषध। दवा। जैसे,—डाक्टर ने बहुत तेज मेडिसिन दी है। (२) चिकित्सा विज्ञान।

मेद-संज्ञा स्त्री० [सं० मेदा] मेदा नामक सुगंधित जड़। उ०—रचि रचि साजे चंदन चौरा। पोतें अगर मेद औ गौरा।—जायसी।

मेदनी-संज्ञा स्त्री० [सं० मेदिनी ?] यात्रियों का गोल जो झंडा लेकर किसी तीर्थ स्थान या देवस्थान को जाय।

मेना†-क्रि० स० [हिं० मोयन] पकवान आदि में मोयन देना

मोयन डालना। उ०—लुचुई पोइ पोइ घिउ मेई। पाछे छानि खाँड रस भेई।—जायसी।

मेमोरेंडम-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह पत्र जिसमें कोई बात स्मरण दिलाने के लिये लिखी गई हो। याददाश्त। स्मरण-पत्रक। (२) वक्तव्य। अभिमत।

मेमोरेंडम आफ एसोसियेशन-संज्ञा पुं० [अं०] किसी ज्वाइंट स्टाक कंपनी या सम्मिलित पूँजी से खुलनेवाली कंपनी की उद्देश्य-पत्रिका जिसमें उस कंपनी का नाम और उद्देश्य आदि लिखे होते हैं और अंत में हिस्सेदारों के हस्ताक्षर होते हैं। सरकार में इसकी रजिस्टरी हो जाने पर कंपनी का कानूनी अस्तित्व हो जाता है। उद्देश्य-पत्रिका।

मेयना†-क्रि० स० [हिं० मेयन] पकवान आदि में मोयन डालना। मोयन देना।

मेयर-संज्ञा पुं० [अं०] म्युनिसिपल कारपोरेशन का प्रधान। जैसे,—कलकत्ता कारपोरेशन के मेयर।

विशेष—इंगलैंड में म्युनिसिपैलटियों के प्रधान मेयर कहलाते हैं। ये अपने नगरों की म्युनिसिपैलटियों के प्रधान होने के सिवा वहाँ के प्रधान मैजिस्ट्रेट भी होते हैं। लंडन तथा और कई नगरों की म्युनिसिपैलटियों के प्रधान लार्ड मेयर कहलाते हैं। हिंदुस्तान में केवल कलकत्ता कारपोरेशन के प्रधान मेयर कहलाते हैं। इनका केवल म्युनिसिपल प्रबंध से ही संबंध है। ईस्ट इंडिया कंपनी के समय सन् १७२६ ई० में भारत में, कलकत्ते, बंबई और मद्रास में विचारकार्य के लिये मेयर कोर्ट स्थापित किए गए थे।

मेरवनक्ष†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मेरवना] मिलाने की क्रिया या भाव। मिलान। उ०—सुंदर स्यामल अंग बसन पीत सुरंग कटि निषंग परिकर मेरवनि।—तुलसी।

मेरावाक्ष-क्रि० स० दे० "मिलाना"। उ०—सो बर्सीठ सरजा लेइ आवा। बादसाह कहँ आनि मेरावा।—जायसी।

मेल-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वे सब चिट्ठियाँ और पारसल आदि जो डाक से भेजी जायँ। (२) डाकगाड़ी। मेल ट्रेन।

यौ०-मेल ट्रेन

मेल ट्रेन-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह बहुत तेज चलनेवाली गाड़ी जो केवल बड़े बड़े स्टेशनों पर ठहरती है, छोटे स्टेशनों पर नहीं ठहरती और जिसके द्वारा दूर की डाक भेजी जाती है।

मेस-संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ मूल्य लेकर विद्यार्थियों के लिये भोजन का प्रबंध किया जाय। छात्र भोजनालय। विद्यार्थी-बासा।

मेस्मराइज़र-संज्ञा पुं० [अं० मेज्मराइज़र] वह जो किसी को अपनी इच्छाशक्ति से अचेत कर देता हो। मेस्मरिज्म करनेवाला। सम्मोहक।

मेस्मरिज्म-संज्ञा पुं० [अं० मेज्मरिज्म] (मेज्मर नामक जर्मन डाक्टर का निकाला हुआ) यह सिद्धांत कि मनुष्य किसी गुप्त शक्ति या केवल इच्छाशक्ति से दूसरे की इच्छाशक्ति को प्रभावान्वित या वशीभूत कर सकता है। वह विद्या या शक्ति जिससे कोई मनुष्य अचेत कर वश में किया और अपने इच्छानुसार परिचालित किया जा सके; अर्थात् उससे जो कुछ कहलाया जाय, वह करे या जो कुछ पूछा जाय, उसका उत्तर दे। सम्मोहिनी विद्या। सम्मोहन।

विशेष—जिस पर मेस्मरिज्म किया जाता है, वह अचेत सा हो जाता है; और उस अवस्था में उससे जो कुछ कहलाना होता है, वह कहता है या जो कुछ पूछा जाता है, उसका उत्तर देता है।

मेहल-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो हिमालय में काश्मीर से भूटान तक ८००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ पाँच छः अंगुल लंबी होती हैं और पुरानी होने पर काली हो जाती हैं। जाड़े में इसके फल पकते हैं जो खाए जाते हैं। इसकी लकड़ी की छड़ियाँ और हुक्के की निगालियाँ बनती हैं; और पत्तियाँ पशुओं के लिये चारे के काम में आती हैं।

मैगना कार्टा-संज्ञा पुं० [अं०] वह राजकीय आज्ञापत्र जिसमें राजा की ओर से प्रजाजनों को कोई स्वत्व या अधिकार देने की बात हो। शाही फरमान।

मैजिक-संज्ञा पुं० [अं०] वह अद्भुत खेल या कृत्य जो दर्शकों की दृष्टि और बुद्धि को धोखा देकर किया जाय। जादू का खेल।

मैजिक लालटैन-संज्ञा स्त्री० [अं० मैजिक लैन्टर्न] एक प्रकार की लालटेन जिसके आगे शीशे पर बने हुए चित्र इस प्रकार रखे जाते हैं कि उनकी परछाईं सामने के कपड़े पर पड़ती है; और वे चित्र दर्शकों को उस परदे पर दिखाई देते हैं।

मैटर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) कागज पर लिखा हुआ कोई विषय जो कंपोज करने के लिये दिया जाय। वह लिखी हुई कापी जो कंपोज करने के लिये दी जाय। जैसे,—पहले फर्मे के लिये एक कालम का मैटर और चाहिए। (कंपोजिटर) (२) कंपोज किए हुए टाइप या अक्षर जो छपने के लिये तैयार हों। जैसे,—प्रेस पर फर्मा कसते हुए एक पेज का मैटर टूट गया। (कंपोजिटर)

मैडम-संज्ञा स्त्री० [अं०] विवाहिता तथा वृद्धा स्त्री के नाम के आगे लगाया जानेवाला आदरसूचक शब्द। श्रीमती। महाशया। जैसे,—मैडम ब्लैवट्स्की।

मैन-आफ-वार-संज्ञा पुं० [अं०] लड़ाऊ जहाज। युद्ध पोत।

मैनकामिनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मैन=मदन+कामिनी] कामदेव की स्त्री, रति। उ०—मैन-कामिनी के मैनकाहू के न रूप रीझे, मैं न काहू के सिखायें आनों मन मान री।—मतिराम।

मैनडेट-संज्ञा पुं० [अं०] आदेश। हुक्म। जैसे,—कांग्रेस से ऐसा करने का मैनडेट मिला है।

मैनडेटरी-वि० [अं०] जिसमें आदेश हो। आदेशात्मक। जैसे,—कांग्रेस का वह प्रस्ताव मैनडेटरी है।

मैनमय-वि० [हिं० मैन = मदन + मय] कामातुर। कामेच्छा से युक्त। उ०-नैन सुख दैन, मन मैनमय लेखियो।—केशव।

मैनस्क्रिप्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह पुस्तक या कागज जो हाथ या कलम से लिखा हुआ हो, छपा हुआ न हो। हस्तलिखित प्रति।

मैनिफेस्टो-संज्ञा पुं० [अं०] किसी व्यक्ति, संस्था या सरकार का किसी सार्वजनिक विषय, नीति अथवा कार्य पर अभिमत, वक्तव्य या घोषणा। वक्तव्य। जैसे,—देश के कितने ही प्रमुख नेताओं ने एक मैनिफेस्टो निकाला है, जिसमें सरकार की वर्तमान दमन-नीति की निंदा की गई है और लोगों से कहा गया है कि वे इसके विरुद्ध जोरों का आन्दोलन करें।

मैरीन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह सैनिक जो लड़ाऊ जहाज पर काम करता हो। (२) किसी देश या राष्ट्र की समस्त नौ सेना। नौ सेना। जल सेना। जैसे,—रायल मैरीन। (३) किसी देश के समस्त जहाज।

वि० समुद्र संबंधी। जल संबंधी। नौ सेना संबंधी। जैसे,—मैरीन कोर्ट।

मैशिनरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) किसी यंत्र या कल के पुरजे। (२) यंत्र। कल। मशीन।

मोड़तोड़-संज्ञा पुं० [हिं० मोड़ + अनु० तोड़] मार्गों में पड़नेवाला घुमाव फिराव। चक्कर।

मोती लड्डू-संज्ञा पुं० [हिं० मोती = लड्डू] मोतीचूर का लड्डू। उ०—दूनौ बहुत पकावन साधे। मोतिलाड़ औ खेरौरा बाँधे।—जायसी।

मोनशेनयर-संज्ञा पुं० [फ्रे०] फ्रांस में प्रिंस, पादरी तथा प्रतिष्ठित लोगों के नाम के आगे लगनेवाला सम्मानसूचक शब्द। श्रीमान्।

मोनोप्लेन-संज्ञा पुं० [अं०] एरोप्लेन या वायुयान का एक भेद।

मोल्ड-संज्ञा पुं० [अं०] साँचा।

मोशिये-संज्ञा पुं० [फ्रें०] [संक्षिप्त रूप मोन्स, एम०] [हिंदी संक्षिप्त रूप मो०] फ्रांस में नाम के आगे लगाया जानेवाला आदरसूचक शब्द। अंगरेजी 'मिस्टर' शब्द का समानार्थवाची शब्द। महाशय। साहब। जैसे,—मोशिये ब्रायंद।

मौंगी†-वि० [सं० मौन] मौन। चुप। उ०—सुनि खग कहत अंब मौंगी रहि समुझि प्रेम-पथ न्यारो।—तुलसी।

मौजूँ-वि० [अ०] जो किसी स्थान पर ठीक बैठता या मालूम होता हो। उपयुक्त।

मौल-संज्ञा पुं० [सं०] (२) बड़ा जमींदार। तअल्लुकेदार। भूस्वामी।

विशेष—मनु ने लिखा है कि ग्राम के सीमा-संबंधी विवाद को सामन्त और यदि सामन्त न हों तो मौल निपटावें।

मौलबल-संज्ञा पुं० [सं०] बड़े जमींदारों की अथवा उनके द्वारा एकत्र की हुई सेना। (कौ०)

मौला-संज्ञा पुं० [देश०] उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ एक बालिश्त तक लंबी होती हैं। जाड़े के दिनों में इसमें आध इंच लंबे फूल लगते हैं। इसके तने से एक प्रकार का लाल रंग का गोंद निकलता है। यह बेल जिस वृक्ष पर चढ़ती है, उसे बहुत हानि पहुँचाती है। मूला। मलहा बेल।

यथाकामी वध-संज्ञा पुं० [सं०] किसी व्यक्ति को यह घोषित करके छोड़ देना कि इसे जो चाहे, मार डाले।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में जो राजकर्म्मचारी चार बार चोरी या गाँठ कतरने के अपराध में पकड़े जाते थे, उनको यह दंड दिया जाता था।

यद्यपि-अव्य० [सं०] अगरचे। हरचंद। बावजूदेकि। उ०—यद्यपि इंधन जरि गये अरिगण केशवदास। तदपि प्रतापानलन को पल पल बढ़त प्रकाश।—केशव।

याचितक-संज्ञा पुं० [सं०] किसी से कुछ दिन के लिये माँगी हुई वस्तु। मँगनी की चीज।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि माँगे हुए पदार्थ को जो न लौटावे, उस पर १२ पण जुरमाना किया जाय। (कौ०)

यातव्य-वि० [सं०] (२) जिस पर चढ़ाई की जानेवाली हो।

यात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) युद्धयात्रा। चढ़ाई। (कौ०)

यादगारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) वह पदार्थ जो किसी की स्मृति में हो। स्मृति चिह्न। (२) दे० "यादगार"।

यादृच्छिक आधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] गिरवी रखी हुई वह चीज जो बिना ऋण चुकाए न लौटाई जा सके।

यारबाश-वि० [फा०] यार दोस्तों में रहकर आनन्दपूर्वक समय बितानेवाला। रसिक।

यूनाइटेड किंगडम-संज्ञा पुं० [अं०] इङ्गलैंड, स्काटलैंड और आयरलैंड के संयुक्त राज्य।

यूनाइटेड स्टेट्स-संज्ञा पुं० [अं०] अनेक छोटे छोटे राज्यों का एक बड़ा संयुक्त राज्य। जैसे,—यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका।

यूनियन-संज्ञा पुं० [अं०] संघ। सभा। समाज। मण्डल। जैसे,—लेबर यूनियन। ट्रेड्स यूनियन।

यूनियन जैक-संज्ञा पुं० दे० "यूनियन फ्लैग"।

यूनियन फ्लैग-संज्ञा पुं० [अं०] ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड के संयुक्त राज्यों की राष्ट्रीय पताका।

यूनीफार्म-संज्ञा पुं० [अं०] एक ही प्रकार की पोशाक या पहनावा जो किसी विशेष विभाग के कर्मचारियों या नौकरों के लिये नियत हो। वरदी। जैसे,—पुलिस के पचास जवान जो यूनीफार्म में नहीं थे, वहाँ सबेरे से आ डटे थे।

योग-संज्ञा पुं० [सं०] (३८) शत्रु के लिये की जानेवाली यंत्र, मन्त्र, पूजा, छल, कपट आदि की युक्ति।

योगपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] मतलब निकालने के लिये साधा हुआ आदमी। (कौ०)

योगोपनिषद्-संज्ञा पुं० [सं०] (२) छल कपट तथा गुप्त रीति से शत्रु को मारने की युक्ति। (कौ०)

योजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (८) किसी बड़े काम को करने का विचार या आयोजन। भावी कार्यों के संबंध में व्यवस्थित विचार। स्कीम। जैसे,—म्युनिसिपैलिटी की नगर-सुधार की योजना सरकार ने स्वीकृत कर ली।

रँगराता-वि० [सं० रंग + रत] [स्त्री० रँगराती] (१) भोग विलास में लगा हुआ। ऐश आराम में मस्त। (२) प्रेमयुक्त। अनुरागपूर्ण। उ०-रँगराती रातें हियें प्रियतम लिखी बनाइ। पाती काती बिरह की छाती रही लगाइ।—बिहारी।

रंभन-संज्ञा पुं० [सं० रंभण] आलिंगन। परिरंभण।

रक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार ऐरावत खंड की एक नदी का नाम।

रक्षातिक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] नियम भंग। कायदा-कानून तोड़ना। (कौ०)

रखया-वि० स्त्री० [सं० रक्षा] रक्षा करनेवाली। उ०—तीज अष्टमी तेरस जया। चौथि चतुरदसि नवमी रखया।—जायसी।

रजिष्ट्रार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अफसर जिसका काम लोगों के लिखित प्रतिज्ञापत्रों या दस्तावेजों को कानून के मुताबिक रजिष्ट्री करना अर्थात् उन्हें सरकारी रजिस्टर में दर्ज करना हो। (२) वह उच्च कर्मचारी या अफसर जो किसी विश्वविद्यालय में मन्त्री का काम करता हो। जैसे,—हिंदू विश्वविद्यालय के रजिष्ट्रार।

रजोभक-संज्ञा पुं० [सं०] बुरी बात से रोकनेवाला। निषिद्ध कर्म करने पर सावधान करनेवाला। (स्मृति)

रज्जु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) जैनियों के अनुसार समस्त विश्व की ऊँचाई का $\frac{1}{14}$ वाँ भाग। राजू।

रतगिरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रत्ती] गुंजा। घुँघची।

रतनपुरुष-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो दिल्ली, आगरे, बुँदेलखंड और बंगाल में पाई जाती है। इसकी जड़ और पत्तियाँ ओषधि के रूप में काम में आती हैं।

रतवा-संज्ञा पुं० [देश०] खर नाम की घास जो घोड़ों के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है।

रती-संज्ञा स्त्री० [सं० रति] (५) तेज। कान्ति। उ०—बेद लोक सब साखी काहू की रति न राखी रावन की बंदि लागे अमर मरन।—तुलसी।

रत्नगृह-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के स्तूप के मध्य की कोठरी जिसमें धातु आदि रक्षित रहती थी।

रत्नावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) एक प्रकार का हार।

रथ-संज्ञा पुं० [सं०] (६) शतरंज का वह मोहरा जिसे आज कल ऊँट कहते हैं।—उ०—राज कील देइ शाह माँगा। शह देइ चाह भरे रथ खाँगा।—जायसी

विशेष-जब चतुरंग का पुराना खेल भारत से फारस और अरब गया, तब वहाँ रथ के स्थान पर ऊँट हो गया।

रथचर्य्यासंचार-संज्ञा पुं० [सं०] रथों के चलने की पक्की सड़क। (यह खजूर की लकड़ी या पत्थर की बनाई जाती थी। चन्द्रगुप्त के समय में इसका विशेष रूप से प्रचार था।)

रथ्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (६) सड़कों का एक भेद जिसकी चौड़ाई २० या २१ हाथ होती थी।

रयना-क्रि० प्र० [सं० रव] उच्चरित करना। रव करना। बोलना। उ०—आकाश विमान अमान छये। हा हा सब ही यह शब्द रये।—केशव।

रर-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह दीवार जो एक पर एक योंही बड़े बड़े पत्थर रख कर उठाई गई हो और जिसके पत्थर चूने गारे आदि से न जोड़े गए हों। (बुंदेल०)

रवक-संज्ञा पुं० [सं०] (२) तीस मोतियों का लच्छा जो तौल में बत्तीस रत्ती हो।

रवादक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जिसने गिरवी रखे हुए धन को हजम कर लिया हो।

रस-परित्याग-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार दूध, दही, चीनी, नमक या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ बिलकुल छोड़ देना और कभी ग्रहण न करना।

रसार&-संज्ञा पुं० दे० "रसाल"।

रसाल-वि० [सं०] (६) रसिक। रसिया। उ०—तासों मुखिया कहत हैं, कवि मतिराम रसाल।—मतिराम।

रसेस&-संज्ञा पुं० [सं० रसेश] नमक। लवण।—उ०—रुचिर रूप जलसों रसेस ह्वै मिलि न फिरन की बात चलाई।—तुलसी।

रसौल-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बड़ी कँटीली लता जो खीरी और बहराइच के जंगलों में बहुत अधिकता से होती है और दक्षिण भारत, बंगाल तथा बरमा में भी पाई जाती है। यह गरमी के दिनों में फूलती और जाड़े में फलती है। इसकी पत्तियाँ और कलियाँ ओषधि रूप में भी काम आती हैं और उनसे चमड़ा भी सिझाया जाता है। इसकी पत्तियाँ खट्टी होती हैं, इसलिये उनकी चटनी भी बनाई जाती है। ऐला।

रहस&-संज्ञा पुं० [सं० रहस् = क्रीड़ा] आनंद। आमोद-प्रमोद।

उ०—मिले रहस भा चाहिय दूना। किन रोइस जौं मिलै बिछूना।—जायसी।

रांकव-संज्ञा पुं० [सं०] (२) पशम। नरम ऊन।

राईॐ-संज्ञा पुं० [सं० राजा] (१) राजा। (२) वह जो सब में श्रेष्ठ हो। उ०—सुनु मुनिराई, जगसुखदाई। कहि अब सोई, जेहि यश होई।—केशव।

राउंड टेबुल कान्फरेंस-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सभा या सम्मेलन जिसमें एक गोल मेज के चारों ओर राजपक्ष तथा देश के भिन्न भिन्न मतों और दलों के लोग बिना किसी भेदभाव के बैठकर किसी महत्व के विषय पर विचार करें। गोल मेज कान्फरेंस।

राक्षसपति-संज्ञा पुं० [सं० राक्षस + पति] रावण। उ०—सिगरे नरनायक, असुर विनायक, राक्षसपति हिय हारि गये।—केशव।

रागविवाद-संज्ञा पुं० [सं०] गाली गलौज।

राजकरण-संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय। अदालत।

(२) राजनीति। जैसे—राजकरण की बहुत सी महत्वपूर्ण बातें परदे के अंदर हुआ करती हैं; और जबतक वे कार्य्य में परिणत नहीं होतीं, तब तक वे बड़े यत्न से दबा रखी जाती हैं।—श्रीकृष्णसंदेश।

राजकुल-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं का खानदान। राजवंश। उ०—मृगराज-राजकुल-कलस कहँ बालक वृद्ध न जानिये।—केशव।

राज-जामुन-संज्ञा पुं० [सं० राजा + हिं० जामुन] जामुन की जाति का एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष जो देहरादून, अवध और गोरखपुर के जंगलों में पाया जाता है। इसकी छाल पीलापन लिए भूरे रंग की और खुरदुरी होती है। यह गरमी में फूलता और बरसात में फलता है। इसकी पत्तियां का व्यवहार औषध में होता है और फल खाए जाते हैं। इसकी लकड़ी इमारत के सामान और खेती के औजार बनाने के काम में आती है। पियामन। ठूठी।

राजपंखी-संज्ञा पुं० [सं० राज + हिं० पंखी] राजहंस। उ०—पाँचवें नग सो तहाँ लागना। राजपंखि पेखा गरजना।—जायसी।

राजपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (५) राज्य की ओर से मिला हुआ एक पद या उपाधि। सरदार। नायक।

विशेष-गुप्तों के समय में यह पद घुड़सवारों के नायक को दिया जाता था। हिन्दी का 'रावत' या 'राउत' शब्द इसी से बना है।

राजवंत-वि० [सं० राज + वंत (प्रत्य०)] राजकर्म से संयुक्त। उ०—जन राजवंत, जग योगवंत। तिनको उदोत, केहि भाँति होत।—केशव।

राजवारॐ-संज्ञा पुं० [सं० राज + द्वार] राजद्वार। उ०—माँगत राजवार चलि आई। भीतर चेरिन्ह बात जनाई।—जायसी।

राजशब्दोपजीवी गण-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का गण या प्रजातंत्र।

विशेष-कौटिल्य ने लिखा है कि लिच्छवि, वज्जिक, मल्लक, कुरुपांचाल आदि गण राज-शब्दोपजीवी हैं। (कौटि०)

राजस्थानिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक उच्च राजकीय पद। हाकिम। वाइसराय।

विशेष-गुप्तों के समय में इस शब्द का विशेष प्रचार था।

राजस्थानीय-संज्ञा पुं० दे० "राजस्थानिक"।

राजस्व-संज्ञा पुं० [सं०] (२) किसी राजा या राज्य की वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी, इन्कम टैक्स, कस्टम्स, ड्यूटी आदि करों से होती हो। आमदेमुल्क। मालगुजारी।

राजाक्रोशक-संज्ञा पुं० [सं०] राजा को गाली देने या कोसनेवाला। राजा की अनुचित शब्दों में आलोचना करनेवाला।

विशेष-कौटिल्य ने इसके लिये जीभ उखाड़ने का दंड लिखा है।

राजू-संज्ञा स्त्री० दे० "रज्जु"।

राज्यसभा-संज्ञा स्त्री० [सं० राज्य + सभा] भारतीय व्यवस्थापक मंडल का वह भाग जिसमें प्रायः बड़े आदमियों के प्रतिनिधि होते हैं। स्टेट कौन्सिल। अपर चेंबर। अपर हाउस।

विशेष-जिस प्रकार ब्रिटिश पार्लमेंट के किंग (महाराज), लार्ड्स और कामन्स ये तीन भाग हैं, उसी प्रकार भारतीय व्यवस्थापक मंडल के गवर्नर-जनरल, व्यवस्थापिका परिषद् (लेजिस्लेटिव एसेंब्ली) और राज्य-सभा (स्टेट कौंसिल) ये तीन अंग हैं। राज्य-सभा और व्यवस्थापिका परिषद् दोनों इंगलैंड की लार्ड सभा और कामन्स सभा के ढंग पर बनाई गई हैं। राज्यसभा को अपर चेंबर या अपर हाउस और परिषद् को लोअर चेंबर या लोअर हाउस भी कहते हैं। यद्यपि सभासदों की संख्या की दृष्टि से परिषद् बड़ी सभा और राज्यसभा छोटी सभा है, पर सदस्यों और उनके निर्वाचकों की योग्यता, पद और मर्य्यादा की दृष्टि से राज्य-सभा बड़ी सभा और परिषद् छोटी सभा कहलाती है, क्योंकि उसके निर्वाचकों और सदस्यों की योग्यता इससे अधिक रखी गई है। कोई विषय या बिल दोनों सभाओं में स्वीकृत होना चाहिए। एक सभा से स्वीकृत होने पर कोई विषय या बिल स्वीकारार्थ दूसरी सभा में जाता है। वहाँ से स्वीकृत होने पर वह गवर्नर जनरल के पास स्वीकारार्थ जाता है। गवर्नर-जनरल को उसे स्वीकार करने या न करने का पूरा पूरा अधिकार है। यदि गवर्नर जनरल ने दोनों सभाओं से स्वीकृत बिल पर स्वीकृति दे दी तो वह कानून बन जाता है। राज्यसभा में ३३ निर्वाचित और

प्रेसिडेंट समेत २७ मनोनीत सदस्य होते हैं, जिनमें से प्रेसिडेंट को छोड़ कर १९ से अधिक सरकारी अफसर नहीं होते। (भारतीय शासन पद्धति।)

रात्रिदोष-संज्ञा पुं० [सं०] रात में होनेवाले अपराध। जैसे, चोरी। (कौटि०)

रात्रिभुक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार छठी प्रतिमा जो रात्रि के समय किसी प्रकार का भोजन आदि नहीं ग्रहण करती।

राधारमण-संज्ञा पुं० [सं०] राधा में रमण करनेवाले, श्रीकृष्ण। उ०—लीला राधारमन की, सुंदर जस अभिराम।—मतिराम।

राना‡-क्रि० अ० [हिं० राचना] अनुरक्त होना। उ०—कौन कली जो भौंर न राई। डार न टूट पुहुप गरुआई।—जायसी।

रामचना-संज्ञा पुं० [हिं० राम + चना] खटुआ बेल। अत्यम्लपर्णी।

रामचिड़िया-संज्ञा स्त्री० [हिं० राम + चिड़िया] एक प्रकार का जल-पक्षी जो मछलियाँ पकड़ कर खाता है। मछरंगा।

राष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह लोक समुदाय जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो। एक या सम भाषा-भाषी जन समूह। नेशन। जैसे, भारतीय राष्ट्र।

राष्ट्रपति-संज्ञा पुं० [सं०] (३) किसी मण्डल का शासक। हाकिम।

विशेष-गुप्तों के समय में एक प्रदेश (जैसे, कुरु पांचाल) के शासक राष्ट्रपति कहलाते थे।

रास-वि० [फा० रास्त = दाहिना] अनुकूल। ठीक। मुआफिक। उ०—कौंचे बारह परा जो पाँसा। पाके पैंत परी तनु रासा।—जायसी।

रिजर्विस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वे सैनिक जो आपत्काल के लिये रक्षित रखे जाते हैं। रक्षित सैनिक।

विशेष—रिजर्विस्ट सैनिक कम से कम तीन वर्ष तक लड़ाई पर रह चुकने पर छुट्टी पा जाते हैं। जिस पल्टन में ये भर्त्ती होते हैं, रिजर्विस्टों या रक्षित सैनिकों में नाम रहने पर भी ये उस पलटन के ही बने रहते हैं। केवल दो दो वर्ष पर इन्हें दो दो महीने के लिये सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के वास्ते अपनी पलटन में जाना पड़ता है। २५ वर्ष की सैनिक सेवा के बाद इन्हें पेंशन मिल जाती है।

रिजल्ट-संज्ञा पुं० [अं०] परीक्षा फल। इम्तहान का नतीजा। जैसे—इस बार बी० ए० का रिजल्ट बहुत अच्छा हुआ है।

क्रि० प्र०—निकलना। -होना।

मुहा०—रिजल्ट आउट होना = परीक्षा फल का प्रकाशित होना। इम्तहान का नतीजा निकलना।

रिटर्निंग अफसर-संज्ञा पुं० [अं०] वह अफसर जो निर्वाचन के समय वोटों या मतों को गिनता है और कौन अधिक वोट मिलने से नियमानुसार निर्वाचित हुआ, इसकी घोषणा करता है।

रिटायर-वि० [अं० रिटायर्ड] जिसने काम से अवसर ग्रहण कर लिया हो। जिसने पेन्शन ले ली हो। अवसर-प्राप्त।

रिपोर्टर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी समाचारपत्र के सम्पादकीय विभाग का वह कार्यकर्ता जिसका काम सब प्रकार के स्थानीय समाचारों और घटनाओं का संग्रह कर उन्हें लिख कर सम्पादक को देना और अपने पत्र के लिये सार्वजनिक सभा, समिति, उत्सव आदि का विवरण लिख कर लाना, स्थानान्तर में होनेवाली सभा, सम्मेलन, उत्सव, मेले आदि के अवसर पर जाकर वहाँ का ब्योरा लिख कर भेजना और प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिल कर महत्व के सार्वजनिक प्रश्नों पर उनका मत जानना होता है। (२) वह जो किसी सभा या समिति का विवरण और व्याख्यान लिखता हो। जैसे—कांग्रेस रिपोर्टर। (३) वह जो सरकार की ओर से अदालत या किसी सभा, समिति या कौन्सिल की काररवाई और व्याख्यान लिखता हो। जैसे—कौन्सिल रिपोर्टर, सी० आई० डी० रिपोर्टर।

रिफार्म-संज्ञा पुं० [अं०] दोषों या त्रुटियों का दूर किया जाना। किसी संस्था या विभाग में परिवर्त्तन किया जाना। सुधार। संस्कार। परिवर्तन।

रिफार्मर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक सुधार या उन्नति के लिये प्रयत्न या आन्दोलन करता हो। सुधारक। संस्कारक।

रिफार्मेटरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह संस्था या स्थान जहाँ बालक कैदी रखे जाते हैं और उन्हें औद्योगिक शिक्षा दी जाती है जिसमें वे वहाँ से बाहर निकल कर जीविका निर्वाह कर सकें और भलेमानस बन कर रहें। चरित्र-संशोधनालय।

रिफार्मेटरी स्कूल-संज्ञा पुं० दे० "रिफार्मेटरी"।

रिरना†-क्रि० अ० [अनु०] बहुत दीनता प्रकट करना। गिड़गिड़ाना।

रिरिहा†-संज्ञा पुं० [हिं० रिरना = गिड़गिड़ाना] वह जो गिड़गिड़ा कर और रट लगा कर कुछ माँगता हो। उ०—द्वार हौं भोर ही को आज। रटत रिरिहा आदि और न कौर ही ते काज।—तुलसी।

रिवाल्वर-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का तमंचा जिसमें एक साथ कई गोलियाँ भरने की जगह होती है और गोलियाँ लगातार एक के बाद दूसरी छोड़ी जा सकती हैं।

रिव्यू-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) किसी नवीन प्रकाशित पुस्तक की परीक्षा कर उसके गुण-दोषों को प्रकट करना। आलो

चना। समालोचना। जैसे—आपने अपने पत्र में अभी मेरी पुस्तक की रिव्यू नहीं की।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) वह लेख या निबंध जिसमें इस प्रकार किसी पुस्तक की आलोचना की गई हो। समालोचना। जैसे—'संदेश' में 'समाज' की जो रिव्यू निकली है, वह सद्भावपूर्ण नहीं कही जा सकती। (३) वे सामयिक पत्र पत्रिकाएँ जिनमें राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक आदि विषयों पर आलोचनात्मक लेखों का संग्रह रहने के साथ ही नवीन प्रकाशित पुस्तकों की भी आलोचना रहती हो। जैसे—"माडर्न रिव्यू","सैटरडे रिव्यू"। (४) किसी निर्णय या फैसले का पुनर्विचार। नजर सानी। जैसे—नीचे की अदालत का फैसला रिव्यू के लिये हाईकोर्ट भेजा गया है।

रिलीफ-संज्ञा पुं० [अं०] वह सहायता जो आर्त्त, पीड़ित या दीन दुःखी जनों को दी जाय। सहायता। साहाय्य। मदद। जैसे—मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी। रिलीफ वर्क।

रिस्क-संज्ञा स्त्री० [अं०] झोंका। जवाबदेही। भार। बोझ। जैसे—रेलवे रिस्क। उ०—(ख) यदि तुम गाँठ न उठाओगे तो वे तुम्हारी रिस्क पर बेच दी जायँगी।

क्रि० प्र०—उठाना।

रिस्ट वाच-संज्ञा स्त्री० [अं०] कलाई पर बाँधने की घड़ी।

रीजेंट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी राजा की नाबालिगी, अनुपस्थिति या अयोग्यता की अवस्था में राज्य का प्रबंध या शासन करता हो। राज-प्रतिनिधि। अस्थायी शासक। वली। जैसे—स्वर्गीय महाराज सरदारसिंह जी की नाबालिगी में ईडर के महाराज सर प्रतापसिंह कई वर्ष तक जोधपुर के रीजेंट रहे।

रीजेंसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] रीजेंट का शासन या अधिकार। जैसे—जोधपुर में कई वर्ष तक रीजेंसी रही।

रीडर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो पढ़े। पढ़नेवाला। पाठक। (२) कालेज या विश्व विद्यालय का अध्यापक या व्याख्याता। (३) वह जो लेख या पुस्तकों के प्रूफ पढ़ता या संशोधन करता है। संशोधक।

संज्ञा स्त्री० पाठ्य पुस्तक। जैसे,—पहली रीडर।

रीडिंग रूम-संज्ञा पुं० दे० "वाचनालय"।

रीहा-संज्ञा स्त्री० दे० "रीसा"।

रुक्मि-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार पाँचवें वर्ष का नाम जो रम्यक और हैरण्यवत वर्ष के मध्य में स्थित है।

रुठाना-क्रि० स० [हिं० रूठना का प्रे०] किसी को रूठने में प्रवृत्त करना। नाराज करना। उ०—मनु न मनावन कौं करै देत रुठाइ रुठाइ। कौतुक लाग्यौ प्यौ प्रिया-खिझहूँ रिझवति आय।—बिहारी।

रुद्र-कमल-संज्ञा पुं० [सं० रुद्र + कमल] रुद्राक्ष। उ०—पहुँची रुद्र-कवँल कै गटा। ससि माथे औ सुरसरि जटा।—जायसी।

रूपकरण-संज्ञा पुं० [सं० रूप + करण] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—किरमिज नुकरा जरदे भले। रूपकरन, बोलसर चले।—जायसी।

रूपघात-संज्ञा पुं० [सं०] सूरत बिगाड़ना। कुरूप करने का अपराध। (कौ०)

रूपदर्शक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का सिक्कों का निरीक्षण करनेवाला राज कर्मचारी। (२) सराफ। (कौ०)

रूप्यकूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार हैरण्यवत वर्ष की एक नदी का नाम।

रूबल-संज्ञा पुं० [रूसी रूबल] रूस का चाँदी का सिक्का जो प्रायः दो शिलिंग डेढ़ पेनी के बराबर मूल्य का होता है। (एक शिलिंग = प्रायः बारह आने। एक पेनी = प्रायः तीन पैसे)

रूरा-वि० [सं० रूढ] (२) बहुत बड़ा। उ०—चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माँहि शंबर छड़ाय लई कामिनी कै काम की।—केशव। (३) सुन्दर। मनोहर। ऊ०—मेघ मन्दाकिनी, चारुसौदामिनी, रूप रूरे लसैं देहधारी मनो।—केशव।

रेकार्ड-संज्ञा पु० [अं०] (१) किसी सरकारी या सार्वजनिक संस्था के कागज पत्र। (२) अदालत की मिसिल। (३) कुछ विशिष्ट मसालों से बना तवे के आकार का गोल टुकड़ा जिसमें वैज्ञानिक क्रिया से किसी का गाना बजाना या कही हुई बातें भरी रहती हैं। फोनोग्राफ के संदूक के बीच में निकली हुई कील पर इसे लगा कर कुंजी देने पर यह घूमने लगता है और इसमें से शब्द निकलने लगते हैं। चूड़ी।

विशेष—दे० "फोनोग्राफ"।

रेक्टर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी संस्था का, विशेष कर शिक्षा संस्था का प्रधान। जैसे—यूनिवर्सिटी का रेक्टर।

रेगुलेशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वे नियम या कायदे जो राजपुरुष अपने अधीन देश के सुशासन के लिये बनाते हैं। विधि। विधान। कानून। जैसे—बंगाल के तीसरे रेगुलेशन के अनुसार कितने ही युवक निर्वासित किए गए। (२) वे नियम या कायदे जो किसी विभाग या संस्था के सुसंचालन और नियन्त्रण के लिये बनाए जाते हैं। नियम। कायदे।

रेग्यूलेटर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी मशीन या कल का वह हिस्सा या पुर्जा जो उसकी गति का नियन्त्रण करता है। यंत्रनियामक।

रेज़ोल्यूशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह नियमित बाकायदा प्रस्ताव जो किसी व्यवस्थापिका सभा या अन्य किसी सभा संस्था के अधिवेशन में विचार और स्वीकृति के लिये उप-

स्थित किया जाय। प्रस्ताव। तजवीज। जैसे—वे परिषद् के आगामी अधिवेशन में राजनीतिक कैदियों को छोड़ देने के संबंध में एक रेजोल्यूशन उपस्थित करनेवाले हैं। (२) किसी व्यवस्थापिका सभा या अन्य किसी सभा-संस्था का किसी विषय पर निश्चय जो एकमत या बहुमत से हुआ हो। निर्णय। मन्तव्य। जैसे—इस संबंध में कांग्रेस और मुसलिम लीग के रेजोल्यूशनों में विरोध नहीं है। (ख) पुलिस की शासन रिपोर्ट पर जो सरकारी रेजोल्यूशन निकला है, उसमें पुलिस की प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि गत वर्ष जो राजनीतिक अपराध नहीं हुए, उसका कारण पुलिस की तत्परता और सावधानता है।

रेट-पेयर्स-संज्ञा पुं० [श्रं०] वह जो किसी म्युनिसिपैल्टिी को टैक्स या कर देता हो। करदाता। जैसे—रेट-पेयर्स एसोसिएशन।

रेफरी-संज्ञा पुं० [श्रं०] वह जिससे कोई झगड़ा निपटाने को कहा जाय। पंच। जैसे—इस बार फुटबाल मैच में कप्तान स्वीडन रेफरी थे।

रेफ्यूज-संज्ञा पुं० [श्रं०] वह संस्था जिसमें अनाथों और निराश्रयों को अस्थायी रूप से आश्रय मिलता है। जैसे—इण्डियन रेफ्यूज।

रेवरेंड-संज्ञा पुं० [श्रं०] पादरियों की सम्मानसूचक उपाधि। जैसे—रेवरेंड कोलमैन।

रेवेन्यू-संज्ञा पुं० [श्रं०] किसी राजा या राज्य की वार्षिक आय जो मालगुज़ारी, आबकारी, इन्कम टैक्स, कस्टम ड्युटी आदि करों से होती है। आमदे मुल्क। मालगुजारी। जैसे—रेवेन्यू मेम्बर, रेवेन्यू अफसर, रेवेन्यू बोर्ड।

रेवेन्यू बोर्ड-संज्ञा पुं० [श्रं०] कई बड़े बड़े अफसरों का वह बोर्ड या समिति जिसके अधीन किसी प्रदेश के राजस्व का प्रबंध और नियन्त्रण हो।

रेवोल्यूशन-संज्ञा पुं० [श्रं०] (१) समाज में ऐसा उलटफेर या परिवर्तन जिससे पुराने संस्कार, आचार विचार, राजनीति, रूढ़ियों आदि का अस्तित्व न रहे। आमूल परिवर्तन। फेरफार। उलट फेर। क्रांति। विप्लव। (२) देश या राज्य की शासन प्रणाली या सरकार में आकस्मिक और भीषण परिवर्तन। प्रचलित शासन प्रणाली या सरकार को उलट देना। राज्यक्रांति। राज्यविप्लव।

रेवोल्यूशनरी- वि० [श्रं०] राज्यक्रांतिकारी। विप्लवपंथी। जैसे,-रेवोल्यूशनरी लीग।

वि० रेवोल्यूशन संबंधी। जैसे,—रेवोल्यूशनरी साहित्य।

रेस-संज्ञा स्त्री० [श्रं०] (१) बाजी बद कर दौड़ना। दौड़ में प्रतियोगिता करना। (२) घुड़दौड़।

यौ०—रेस-कोर्स। रेस ग्राउंड।

रेस कोर्स-संज्ञा पुं० [श्रं०] दौड़ या घुड़दौड़ का रास्ता या मैदान।

रेस ग्राउंड-संज्ञा पुं० [श्रं०] दौड़ या घुड़दौड़ का मैदान।

रैक-संज्ञा पुं० [श्रं०] लकड़ी का खुला हुआ ढाँचा जिसमें पुस्तकें आदि रखने के लिये दर या खाने बने रहते हैं। यह आलमारी के ढंग का होता है, पर भेद इतना ही होता है कि आलमारी के चारों ओर तख्ते जड़े होते हैं और यह कम से कम आगे से खुला रहता है।

रैकेट-संज्ञा पुं० [श्रं०] टेनिस के खेल में गेंद मारने का डंडा जिसका अग्र भाग प्रायः वर्तुलाकार और ताँत से बुना हुआ होता है।

रैनिचर॥-संज्ञा पुं० [हिं० रैन + चर] निशाचर। राक्षस। उ०—हेम मृग होहिं नहिं रैनिचर जानियो।—केशव।

रोगदई|-संज्ञा स्त्री० [हिं० रोना ?] (१) अन्याय। (२) बेईमानी।

रोगदैया|-संज्ञा स्त्री० दे० "रोगदई"। उ०—खेलत खात परसपर डहकत छीनत कहत करत रोग-दैया।—तुलसी।

रोचन-वि० [सं०] (४) लाल। उ०—बारि भरित भये बारिद रोचन।—केशव।

रोचित-वि० [सं० रोचन] शोभित। उ०—तन रोचित रोचन लहै, रंचन कंचन गोतु।—केशव।

रोटा॥-वि० [हिं० रोटी] पिसा हुआ। चूर किया हुआ। उ०—औ जौं छुटहिं बज्र कर गोटा। बिसरहि भुगुति होइ सब रोटा।—जायसी।

रोड-संज्ञा स्त्री० [श्रं०] सड़क। रास्ता। राजपथ। जैसे,-हैरिसन रोड।

रोपना॥-क्रि० स० दे० "रोकना"। उ०—राजहिं तहाँ गएउ लेइ कालू। होइ सामुहँ रोपा देवपालू।—जायसी।

रोम-संज्ञा पुं० [सं० रोमन्] (४) ऊन। उ०—दासी दास बासि बास रोम पाट को कियो। दायजो विदेहराज भाँति भाँति को कियो।—केशव।

रोल-संज्ञा पुं० [श्रं०] नामों की तालिका या फेहरिस्त।

रोल नंबर-संज्ञा पुं० [श्रं०] नामों की तालिका या सूची का क्रम।

रोहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार हैमवत की एक नदी का नाम।

रोहितास्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार हैमवत की एक नदी का नाम।

रौंग-संज्ञा पुं० [देश०] सफेद कीकर।

लँगोचा-संज्ञा पुं० [देश०] जानवर की आँत जो मसालेदार कीमे से भर कर और तलकर खाई जाती है। कुलमा। गुलमा।

लंबू-वि० [हिं० लंबा] लंबा। (आदमी के लिये, व्यंग्य)

लंबोतरा-वि० [हिं० लंबा + ओतरा (प्रत्य०)] जो आकार में कुछ लंबा हो। लंबापन लिए हुए। जैसे,—आम के फल लंबोतरे होते हैं।

लंदराज-संज्ञा पुं० [अं० लांगक्लाथ] एक प्रकार की मोटी चादर।

लउटीꕤ-संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड] लकुटी। लकड़ी। उ०—बारे खेल तरुन वह सोवा। लउटी बूढ़ लेइ पुनि रोवा।—जायसी।

लक़ दक़-वि० [अ० लक़ दक़] (मैदान) जिसमें वृक्ष या वनस्पति आदि कुछ भी न हो।

लखनाꕤ-क्रि० स० [सं० लक्ष + ना (प्रत्य०)] लखना। देखना। उ०—पक्ष हू संधि संध्या संधी हैं मनोत लक्षिये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही देखिये।—केशव।

लखघर, लखाघरꕤ-संज्ञा पुं० [सं० लाक्षागृह] लाख का वह घर जो पांडवों को जलाने के लिये दुर्योधन ने बनवाया था। लाक्षागृह। उ०—जैसे जारत लाखाघर साहस कीन्हीं भीउ। जारत खंभ तस काढ़हु कै पुरुषारथ जीउ।—जायसी।

लखपेड़ा-वि० [हिं० लाख + पेड़] (बाग आदि) जिसमें बहुत अधिक वृक्ष हों।

लखलुटꕤ-वि० [हिं० लाख + लुटाना] जो लाखों रुपए लुटा दे। बहुत बड़ा अपव्ययी।

लखी-संज्ञा पुं० [हिं० लाखी] लाख के रंग का घोड़ा। लाखी। उ०—अबलक अरबी लखी सिराजी। चौघर चाल, समँद भल ताजी।—जायसी।

लगनवटꕤ†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लगन + वट (प्रत्य०)] लगन। प्रेम। मुहब्बत। उ०—पाही खेती लगनवट ऋन कुब्याज मग खेत। बैर बड़े सों आपने किये पाँच दुःख-हेत।—तुलसी।

लगना-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का जंगली मृग। उ०—हरिन रोझ लगना बन बसे। चीतर गोइन झाँख औ ससे।—जायसी।

लगनी-संज्ञा स्त्री० [फा० लगन = थाली] (१) छोटी थाली। रिकाबी। (२) पानदान में की वह तश्तरी जिसमें पान रखे जाते हैं। (३) परात।

लग्गू†-वि० [हिं० लगना = संभोग करना] (१) संभोग करनेवाला (२) उपपति। जार। यार। (बाजारू)

लघु-समुत्थ (राजा)-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा या राज्य जो लड़ाई के लिये जल्दी तैयार किया जा सके।

विशेष—गुरु-समुत्थ और लघु-समुत्थ इन दो प्रकार के मित्रों में कौटिल्य ने दूसरे को ही अच्छा कहा है; क्योंकि यद्यपि उसकी शक्ति बहुत नहीं होती, पर वह समय पर खड़ा तो हो सकता है। पर प्राचीन आचार्य्य गुरु-समुत्थ को ही अच्छा मानते थे; क्योंकि यद्यपि वह जल्दी नहीं उठ सकता, पर जब उठता है, तब कार्य्य पूरा करके ही छोड़ता है।

लच्छनाꕤ-क्रि० स० [सं० लक्ष्य] भली भाँति देखना। उ०—तिनके लच्छन-लच्छ अब, आछे कहे बखानि।—मतिराम।

लड़बड़ा†-वि० [अनु०] (१) (व्यंजन) जो न बहुत गाढ़ा हो और न बहुत पतला। लटपटा। (२) जिसमें पौरुष का अभाव हो। नपुंसक।

लड़बावला†-वि० [हिं० लड + बावला] मूर्ख। बेवकूफ।

लपटौआँ-संज्ञा पुं० [हिं० लपटना] एक प्रकार का जंगली तृण जिस की बाल कपड़े में लिपट या फँस जाती है और कठिनता से छूटती है।

वि० (१) लिपटनेवाला। चिमटनेवाला। (२) सटा या लिपटा हुआ।

लपना†-क्रि० अ० [अनु०] (४) हैरान होना। परेशान होना।

मुहा०—लपना झपना = हैरान होना। उ—पाठि बरस जो लपई झपई। छन एक गुपुत जाय जो जपई।—जायसी।

लब्धदास-संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो दूसरे से मिला हो।

लम-प्रत्य० [हिं० लंबा] लंबा का संक्षिप्त रूप जो प्रायः यौगिक शब्दों के आरंभ में लगाया जाता है। जैसे,—लमतड़ंग।

लमछुआ- वि० दे० "लंबोतरा"।

ललित कला-संज्ञा स्त्री० [सं० ललित + कला] वे कलाएँ या विद्याएँ जिनके व्यक्त करने में किसी प्रकार के सौन्दर्य की अपेक्षा हो। जैसे,—संगीत, चित्रकला, वास्तुकला, मूर्त्तिकला इत्यादि। वि० दे० "कला"।

लवंगलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) प्रायः समोसे के आकार की एक बँगला मिठाई जिसमें ऊपर से एक लौंग खोंसा हुआ होता है और जिसके अन्दर कुछ मेवे और मसाले आदि भरे होते हैं।

लवनी†-संज्ञा स्त्री० [सं० नवनीत] नवनीत। मक्खन।

लवाज़मात-संज्ञा पुं० [अ०] लवाजिम का बहुवचन। सामग्री। उपकरण।

लवारा†-संज्ञा पुं० [हिं० लवाई] गौ का बच्चा। बछड़ा।

लसरका†-संज्ञा पुं० [हिं० लगना या लसना] सम्बन्ध। लगाव। ताल्लुक। (लखनऊ)

लसलसाना-क्रि० अ० [अनु०] गोंद या लसदार चीज की तरह चिपकना। चिपचिपाना।

लस्सी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लस] (१) लस। चिपचिपाहट। वि० दे० 'लसी'। (२) छाछ। मठा। तक्र। (पच्छिम)

यौ०—कच्ची लस्सी=अधिक पानी मिला हुआ दूध।

लहक-संज्ञा स्त्री० [हिं० लहकना] (१) लहकने की क्रिया या भाव। (२) आग की लपट। (३) चमक। द्युति। (४) शोभा। छवि।

लहका†-संज्ञा पुं० [हिं० लहक] पतला गोटा। लचका।

लहकारना-क्रि० स० [हिं० ललकारना] (१) किसी के विरुद्ध कुछ करने के लिये बहकाना। ताव दिलाना। (२) उत्साहित करके आगे बढ़ाना। (३) कुत्ते को उत्साहित या क्रुद्ध करके किसी के पीछे लगाना।

लहन-संज्ञा पुं० [देश०] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी। वि० दे० "कंजा"।

लहबर-संज्ञा पुं० [हिं० लहर बहर ?] (१) एक प्रकार का बहुत लंबा और ढीला ढाला पहनावा। चोगा। लबादा। (२) एक प्रकार का तोता जिसकी गरदन बहुत लंबी होती है। (३) झंडा। निशान। पताका।

लहरपटोर-संज्ञा पुं० [हिं० लहर + पट] पुरानी चाल का एक प्रकार का रेशमी धारीदार कपड़ा। उ०—पुनि बहु चीर आनि सब छोरी। सारी कंचुकि लहर-पटोरी।—जायसी।

लहसुनी हींग-संज्ञा स्त्री० [हिं० लहसुन + हींग] एक प्रकार की कृत्रिम हींग जो लहसुन के योग से बनाई जाती है।

लांतव-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार सातवें स्वर्ग का नाम।

लॉ-संज्ञा पुं० [अं०] वे राजनियम या कानून जो देश या राज्य मे शांति या सुव्यवस्था स्थापित करने के लिये बनाए जायँ। (२) ऐसे राजनियमों या कानूनों का संग्रह। व्यवहार शास्त्र। धर्म शास्त्र। कानून। जैसे,—हिन्दू लॉ। महमडन लॉ।

लाइट-हाउस-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का स्तंभ या मीनार जिसके सिरे पर एक बहुत तेज रोशनी रहती है जिसमें जहाज चट्टान आदि से न टकरायँ, या और किसी प्रकार की दुर्घटना न हो। प्रकाशस्तंभ।

लाइन-संज्ञा स्त्री० [अं०] (६) व्यवसाय क्षेत्र। पेशा। जैसे,—डाक्टरी लाइन अच्छी है, उसमें दो पैसे मिलते हैं। (ख) अनेक नवयुवक पत्रकार का काम करना चाहते हैं। राष्ट्रीय विद्यापीठों और गुरुकुलों के कितने ही स्नातक इस लाइन में आना चाहते हैं।

लाइन क्लियर-संज्ञा पुं० [अं०] रेलवे में वह संकेत या पत्र जो किसी रेल-गाड़ी के ड्राइवर को यह सूचित करने के लिये दिया जाता है कि तुम्हारे आने या जाने के लिये रास्ता साफ है। बिना यह संकेत या पत्र पाए वह गाड़ी आगे नहीं बढ़ा सकता

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

लाइफ बॉय-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का यंत्र जो ऐसे ढंग से बना होता है कि पानी में डूबता नहीं, तैरता रहता है और डूबते हुए व्यक्ति के प्राण बचाने के काम में आता है। तरेंदा।

विशेष-यह कई प्रकार का होता है और प्रायः जहाजों पर रखा रहता है। यदि दैवात कोई मनुष्य पानी में गिर पड़े तो यह उस की सहायता के लिये फेंक दिया जाता है। इसे पकड़ लेने से मनुष्य डूबता नहीं।

लाइफ बोट-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की नाव जो समुद्र में लोगों के प्राण बचाने के काम में लाई जाती है।

विशेष-ये नावें विशेष प्रकार से बनी हुई होती हैं और जहाजों पर लटकती रहती हैं। जब तूफान या अन्य किसी दुर्घटना से जहाज के डूबने की आशंका होती है, तब ये नावें पानी में छोड़ दी जाती हैं। लोग इन पर चढ़ कर प्राण बचाते हैं। जीवन-रक्षक नौका।

लाइब्रेरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह स्थान जहाँ पढ़ने के लिये बहुत सी पुस्तकें रखी हों। पुस्तकालय। (२) वह कमरा या भवन जहाँ पुस्तकों का संग्रह हो। पुस्तकालय।

लाइसेंस-संज्ञा पुं० दे० "लैसंस"।

लाई-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। (२) एक प्रकार की ऊनी चादर। (३) शराब की तलछट।

लॉक-अप-संज्ञा पुं० [अं०] हवालात। जैसे,—अभियुक्त लॉक-अप में रखा गया है।

लॉकेट-संज्ञा पुं० [अं०] वह लटकन जो घड़ी की या और किसी प्रकार की पहनने की जंजीर में शोभा के लिये लगाया जाता है और नीचे की ओर लटकता रहता है।

लाखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाख] लाख के रंग का घोड़ा।

लाग॰-क्रि० वि० [हिं० लौं] पर्य्यंत। तक। उ०—मासेक लाग चलत तेहि बाटा। उतरे जाइ समुद के घाटा।—जायसी।

लागना॰-क्रि० अ० दे० "लगना"।

संज्ञा पुं० [हिं० लगना] (१) वह जो किसी की टोह में लगा रहता हो। (२) शिकार करनेवाला। अहेरी। उ०—पाँचवें नग सो तहँ लागना। राजपंखि पेखा गरजना।—जायसी।

लागि॰-क्रि० वि० [हिं० लग या लौं] तक। पर्य्यंत। उ०—घन अमराउ लाग चहुँ पासा। उठा भूमि हुत लागि अकासा।—जायसी।

लागि॰-अव्य० [हिं० लगना] (३) से। द्वारा। उ०—आहि जो मारै बिरह कै आगि उठै तेहि लागि। हंस जो रहा सरीर महँ पाँख जरा गा भागि।—जायसी।

लाजक-संज्ञा पुं० [सं० लाजा] धान का भूना हुआ लावा। लाई।

लॉटरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की योजना जिसका आयोजन विशेष कर किसी सार्वजनिक कार्य के लिये धन एकत्र करने के निमित्त किया जाता है और जिसमें लोगों को किस्मत आजमाने का मौका मिलता है।

विशेष-इसमें एक निश्चित रकम के टिकट बेचे जाते हैं और यह घोषणा की जाती है कि एकत्र धन में से इतना धन उन लोगों में बाँटा जायगा जिनके नाम की चिटें पहले निकलेंगी। टिकट लेनेवालों के नाम की चिटें किसी संदूक आदि में डाल दी जाती हैं और कुछ निर्वाचित विशिष्ट व्यक्तियों की उपस्थिति में वे चिटें निकाली जाती हैं। जिसके नाम की चिट सब से पहले निकलती है, उसे पहला पुरस्कार अर्थात् सब से बड़ी रकम दी जाती है। इस प्रकार पहले निकलनेवाले नामवालों में निश्चित धन यथाक्रम बाँट दिया जाता है। इसके लिये सरकार से अनुमति लेनी पड़ती है।

ला-दावा–वि० [अ०] जिसका कोई दावा न रह गया हो। जो अधिकार से रहित हो गया हो। जैसे,—उसने अपने लड़के को ला-दावा कर दिया है। (कानून)

मुहा०—ला-दावा लिखना = यह लिखना कि अमुक वस्तु पर अब हमारा कोई दावा या अधिकार नहीं रह गया। दस्तबरदारी लिखना।

लाभ-क्षायिक–संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वह अनन्त लाभ जो समस्त कर्मों का क्षय या नाश हो जाने पर आत्मा की शुद्धता के कारण प्राप्त होता है।

लायक⊛–संज्ञा पुं० [सं० लाजा] धान का भूना हुआ लावा। लाजक। उ०—बरषा फल फूलन लायक की। जनु है तरुनी रति-नायक की।—केशव।

लार्ड सभा–संज्ञा स्त्री० [अं० हाउस आफ लार्ड्स] ब्रिटिश पार्लमेंट की वह शाखा या सभा जिसमें बड़े बड़े तालुकेदारों और अमीरों के प्रतिनिधि होते हैं। इनकी संख्या लगभग ७०० है। हाउस आफ लार्ड्स्।

लाल अंबारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + अम्बर ?] पटसन की जाति का एक प्रकार का पौधा जिसे पटवा भी कहते हैं। वि० दे० "पटवा"।

लिक्विडेटर–संज्ञा पुं० [अं०] वह अफसर जो किसी कंपनी या फार्म का कार बार उठाने, उसकी ओर से मामला मुकदमा लड़ने या दूसरे आवश्यक कार्य करने के लिये नियुक्त किया जाता है।

लिक्विडेशन–संज्ञा पुं० [अं०] सम्मिलित पूँजी से चलनेवाली कंपनी या फर्म का कारबार बंद कर उसकी संपत्ति से लेहनदारों का देना निपटाना और बची हुई रकम को हिस्सेदारों में बाँट देना। जैसे,—वह कंपनी लिक्विडेशन में चली गई।

क्रि० प्र०—आना।

लिटरेचर–संज्ञा पुं० [अं०] साहित्य। वाङ्मय। जैसे,—इंगलिश लिटरेचर।

लिटरेरी–वि० [अं०] साहित्य संबंधी। साहित्यिक। जैसे–लिटरेरी कानफरेंस।

लिस्ट–संज्ञा स्त्री० [अं०] फेहरिस्त। तालिका। फर्द।

लिहित⊛–वि० [सं० लिह] चाटता हुआ। उ०—उन्नत कंध कटि खीन विशद भुज अंग अंग प्रति सुखदाई। सुभग कपोल नासिका, नैन छबि अलक लिहित घृत पाई।—सूर।

लीख–संज्ञा स्त्री० [सं० लिक्षा] (२) लिक्षा नामक परिमाण।

लीग–संज्ञा स्त्री० [अं०] संघ। सभा। समाज। जैसे,–मुसलिम लीग। लीग आफ़ नेशन्स।

लीगल रिमेंब्रेंसर–संज्ञा पुं० [अं०] वह अफसर जो सरकार के कानूनी कागज-पत्र रखता है।

विशेष–कलकत्ता, बंबई और युक्त प्रदेश में लीगल रिमेंब्रेंसर होते हैं जो प्रायः सिवीलियन होते हैं। इनका दर्जा एडवोकेट जनरल के बाद है। इनका काम सरकारी मामले मुकदमों के कागज पत्र रखना और तैयार करना है।

लीडर–संज्ञा पुं० [अं०] (२) किसी समाचार पत्र में संपादक का लिखा हुआ प्रधान या मुख्य लेख। संपादकीय अग्रलेख। जैसे,—सम्पादक महोदय ने इस विषय पर एक जोरदार लीडर लिखा है।

लीडर आफ़ दी हाउस–संज्ञा पुं० [अं०] पार्लमेंट या व्यवस्थापिका सभा का मुखिया जो प्रधान मन्त्री या मन्त्रिमण्डल का बड़ा सदस्य विशेष कर स्वराष्ट्र सदस्य होता है और जिसका काम विरोधी पक्ष का उत्तर देना और सरकारी कामों का समर्थन करना होता है।

लीडिंग आर्टिकल–संज्ञा पुं० [अं०] किसी समाचार पत्र में सम्पादक का लिखा हुआ प्रधान या मुख्य लेख। सम्पादकीय अग्रलेख। जैसे,—इस पत्र के लीडिंग आर्टिकल बहुत गवेषणापूर्ण होते हैं।

लीथोग्राफ–संज्ञा पुं० [अं०] पत्थर का छापा जिस पर हाथ से लिख कर या चित्र खींच कर छापा जाता है।

लीथोग्राफर–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो लीथोग्राफी का काम करता हो। लीथो का काम करनेवाला।

लीथोग्राफी–संज्ञा स्त्री० [अं०] लीथो की छपाई में एक विशेष प्रकार के पत्थर पर हाथ से अक्षर लिखने और खींचने की कला।

लीनो टाइप मैशीन–संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की कल जिसमें टाइप या अक्षर कम्पोज होने के समय ढलता है।

विशेष—आजकल हिन्दुस्तान में बड़े बड़े बड़े अँगरेजी अखबार इसी मैशीन में कंपोज होते हैं।

लीफ़लेट–संज्ञा पुं० [अं०] पुस्तिका। पर्चा।

लीव–संज्ञा स्त्री० [अं०] छुट्टी। अवकाश। जैसे—प्रिविलेज लीव। फरलो लीव।

लीवर–संज्ञा पुं० [अं०] यकृत। जिगर। वि० दे० "यकृत"।

लीस–संज्ञा पुं० [अं०] जमीन या दूसरी किसी स्थावर संपत्ति के भोग मात्र का अधिकार पत्र जो किसी को जीवन पर्यन्त या निश्चित काल के लिये दिया जाय। पट्टा। जैसे—(क) १९०३ में निजाम ने सदा के लिये अँगरेजी सरकार को बरार का लीस लिख दिया। (ख) वह अपना मकान लीस पर देनेवाला है।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—लिखना।

लुकटी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० लुक] वह लकड़ी जिसका एक सिरा जल रहा हो या जल चुका हो। लुआठा। लुआठी।

लुकाठा–संज्ञा पुं० दे० "लुआठ"।

लुखिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) धूर्त स्त्री। (२) पुंश्चली। छिनाल। (३) वेश्या। रण्डी।

लुबुधा%-वि० [सं० लुब्ध] (१) लोभी । लालची । (२) चाहनेवाला । इच्छुक । प्रेमी । उ०—घालि नैन ओहि राखिय, पल नहिं कीजिय ओट । पेम क लुबुधा पाव ओहि, काह सो बड़ का छोट ।—जायसी ।

लूँबरी†-संज्ञा स्त्री० दे० "लोमड़ी" ।

लूत-संज्ञा स्त्री० [सं० लूता] मकड़ी । ऊर्णनाभ । उ०—लागे लूत के जाल ए, लखो लसत इहि भौन ।—मतिराम ।

लेंडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लेज] छः हाथ लम्बी रस्सी जिसके एक सिरे पर मुद्धी और दूसरे सिरे पर घुण्डी होती है । यह घोड़े की दुम में चूतड़ों पर से लगाई जाती है । (घोड़े का साज)

लेंडौरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (चौपायों को) दाना या चारा खिलाने का बर्त्तन ।

लेंहड़-संज्ञा स्त्री० [देश०] भेंड़ों या दूसरे चौपायों का झुंड ।

लेक्चरर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो लेक्चर देता हो । व्याख्यान देनेवाला । व्याख्याता ।

लेख-संज्ञा स्त्री० [हिं० लीक] लकीर । पक्की बात । उ०—विश्वंभर श्रीपति त्रिभुवन-पति वेद-विदित यह लेख ।-तुलसी ।

लेख्यारूढ़-वि० [सं०] जिसके संबंध में लिखा पढ़ी हो गई हो। दस्तावेज़ी । जैसे—लेख्यारूढ़ आधि ।

लेजिस्लेटिव-वि० [अं०] व्यवस्था सम्बन्धी । कानून सम्बन्धी । जैसे—लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट ।

लेजिस्लेटिव एसेंब्ली-संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० "व्यवस्थापिका परिषद्" ।

लेजिस्लेटिव कौंसिल संज्ञा स्त्री० दे० "व्यवस्थापिका सभा" ।

लेट-वि० [अं०] जो निश्चित या ठीक समय के उपरान्त आवे, रहे या हो । जिसे देर हुई हो । जैसे—यह गाड़ी प्रायः लेट रहती है ।

यौ०—लेट फी ।

लेट फी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह फीस जो निश्चित समय के बाद डाकखाने में कोई चीज दाखिल करने पर देनी पड़ती हो ।

विशेष—डाकखाने में प्रायः सभी कामों के लिये समय निश्चित रहता है । उस निश्चित समय के उपरांत यदि कोई व्यक्ति कोई चीज रजिस्टरी कराना या चिट्ठी रवाना करना चाहे, तो उसे कुछ फीस देनी पड़ती है जो लेट फी कहलाती है ।

लेटर्स पेटेंट-संज्ञा पुं० [अं०] वह राजकीय आज्ञापत्र जिसमें किसी को कोई पद या स्वत्व आदि देने या कोई संस्था स्थापित करने की बात लिखी रहती है । राजकीय आज्ञापत्र । शाही फरमान । जैसे,—१८६१ में पार्लमेंट ने कानून बना कर महारानी को अधिकार दे दिया था कि अपने लेटर्स पेटेंट से कलकत्ते, बम्बई, मद्रास और आगरा प्रदेशों में हाईकोर्ट स्थापित करें ।

लेटा-संज्ञा पुं० [देश०] गल्ले का बाजार । मंडी ।

लेन†-संज्ञा स्त्री० [अं०] गली । कूचा । जैसे—प्यारीचरण सरकार लेन, कलकत्ता ।

लेनहार-वि० [हिं० लेना + हार (प्रत्य०)] लेनेवाला । लेनदार । लहनेदार । उ०—जनु लेनिहार न लेहिं जिउ हरहिं तरासहिं ताहि । एतनै बोल आय मुख करैं तराहि तराहि ।-जायसी ।

लेफ्टेनेंट-कर्नल-संज्ञा पुं० [अं०] सेना का एक अफसर जिसका दर्जा कर्नल के बाद ही है ।

लेफ्टेनेंट-जेनरल-संज्ञा पुं० [अं०] सेना का एक अफसर जिसका दर्जा जेनरल के बाद ही है । सहायक सैन्याध्यक्ष ।

लेबरर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो शारीरिक परिश्रम द्वारा जीविका निर्वाह करता हो । मेहनत मजूरी करके गुजर करनेवाला । श्रमजीवी । मजूर ।

लेला-संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० लेली] (१) बकरी या भेंड़ का बच्चा । (२) वह जो साथ लगा रहता हो । पिछलग्गू ।

लेवी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) एक प्रकार का दरबार जो विलायत में राजा लोग और हिंदुस्तान में वायसराय करते हैं । (२) उद्देश्य विशेष से खड़ी की हुई पलटन । जैसे,-मकरान लेवी कोर । वि० दे० "मिलिशा" ।

लेह-संज्ञा पु० [?] (१) लोध नामक वृक्ष । वि० दे० "लोध" ।

लैंसर-संज्ञा पुं० [अं०] रिसाले के सवारों के तीन भेदों में से एक जो भाला लिए रहते हैं और जिनके घोड़े भारी होते हैं ।

लोअर कोर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] नीचे की अदालत । निम्न विचारालय ।

लोकपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नरेश । राजा । नृपति । उ०—दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै ।—केशव ।

लोकल-वि० [अं०] किसी स्थान विशेष, जिले या प्रदेश का । स्थानीय । प्रादेशिक । जैसे,-लोकल बोर्ड । लोकल गवर्नमेंट ।

लोकहार-वि० [सं० लोक + हरण] लोक को हरण करनेवाला । संसार को नष्ट करनेवाला । उ०-वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये ।-केशव ।

लोकाकाश-संज्ञा पुं० [सं०] विश्व जिसमें सब प्रकार के जीव और तत्व रहते हैं । (जैन)

लोना-संज्ञा पुं० [हिं० अमलोनी] (६) अमलोनी नाम की घास जिसे रसायनी धातु सिद्ध करने के काम में लाते हैं । उ०—(क) कहाँ सो खोएहु बिरवा लोना । जेहि तें होइ रूप औ सोना ।-जायसी । (ख) जहँ लोना बिरवा कै जाती । कहि कै सँदेस आन को पाती ।-जायसी ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कल्पित स्त्री जो जाति की चमार और जादू टोने में बहुत प्रवीण कही जाती है । उ०—तू काँवरू परा बस टोना । भूला जोग छरा तोहि लोना ।-जायसी ।

लोनार†-संज्ञा पुं० [हिं० लून = नमक + आर (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ नमक बनता हो अथवा जहाँ से नमक आता हो। जैसे,—नमक की खान, झील या क्यारी।

लोबा†-संज्ञा स्त्री० [हिं लोमड़ी] लोमड़ी। उ०—कीन्हेसि लोबा इंदुर चाँटी। कीन्हेसि बहुत रहहिं खनि माटी।—जायसी।

लोभ-विजयी-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो असल में लड़ाई न करना चाहता हो, कुछ धन आदि चाहता हो।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि ऐसे को कुछ धन देकर मित्र बना लेना चाहिए।

लोला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (६) ६४ हाथ लंबी ८ हाथ चौड़ी और ६⅖ हाथ ऊँची नाव। (युक्तिकल्पतरु)

लोलिनी-वि० स्त्री० [सं० लोल] चंचल प्रकृतिवाली। उ०—कहूँ लोलिनी बेड़िनी गीत गावैं।—केशव।

लोहचालिका-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बकतर जिससे सारा शरीर ढका रहता था। (कौ०)

लोहसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फौलाद। (२) फौलाद की बनी जंजीर। उ०—लोहसार हस्ती पहिराए। मेघ साम जनु गरजत आए।—जायसी।

लौकना†-क्रि० अ० [हिं० लौ] दूर से दिखाई देना। उ०—मनि कुंडल झलकैं अति लोने। जन कौंधा लौकहि दुइ कोने।—जायसी।

लौकांतिक-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वे स्वर्गस्थ जीव जो पाँचवें स्वर्ग ब्रह्मलोक में रहते हैं। ऐसे जीवों का जो दूसरा अवतार होता है, वह अंतिम होता है और उसके उपरांत फिर उन्हें अवतार धारण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

लौट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लौटना] लौटने की क्रिया, भाव या ढंग। उ०—करु उठाइ घूँघुटु करत उझरत पट-गुझरौट। सुख मोटैं लूटीं ललन लखि ललना की लौट।—बिहारी।

ल्यावनाॐ-क्रि० स० दे० "लाना" उ०—पितहि भुव ल्यावते, जगत यश पावते।—केशव।

वकुश-संज्ञा पुं० [सं०] वह त्यागी यती या साधु जिसे अपने ग्रंथों, शरीर और भक्तों या शिष्यों की कुछ कुछ चिंता रहती हो। (जैन)

वत्-अव्य० [सं०] समान। तुल्य। सदृश। जैसे,—पुत्रवत्। मित्रवत्।

वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेद। (२) अनुकंपा। (३) संतोष। (४) विस्मय। (५) आमन्त्रण।

वर्किंग कमिटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] कार्यकारिणी समिति। जैसे,—कांग्रेस वर्किंग कमिटी।

वर्चःस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] पाखाना। (परा० स्मृति)

वज्रव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह असंहत व्यूह जिसमें सेना के पाँच भाग असंहत हों। (कौ०)

वर्णधातु-संज्ञा पुं० [सं०] गेरू, ईंगुर आदि रङ्ग के काम में आने-वाली धातु।

वर्ण संहार-संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिमुख सन्धि के तेरह अंगों में से एक। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णों के लोगों का एक स्थान पर सम्मेलन। पर अभिनय गुप्ताचार्य्य का मत है कि नाटक के भिन्न भिन्न पात्रों के एक स्थान पर सम्मेलन को वर्णसंहार कहना चाहिए। (नाट्यशास्त्र)

वर्मिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सड़क का महसूल। (कौ०)

वरकसाज़-संज्ञा पुं० [अ० वर्क + फा० साज़] वह जो चाँदी या सोने आदि को कूटकर उनके वरक बनाता हो। तबकगर। तबकिया।

वरजिश-संज्ञा स्त्री० [फा०] कसरत। व्यायाम।

वरे†-क्रि० वि० [हिं० परे] (१) उधर। उस ओर। (२) दूर। परे।

वलय-संज्ञा पुं० [सं०] (७) सैनिकों की दो दो पंक्तियों में स्थिति। (कौ०)

वलि-संज्ञा पुं० [सं०] (८) धार्मिक कर। धर्म्मकार्य्य के लिये लगाया हुआ कर। (कौ०)

वश्यमित्र (राष्ट्र या राजा)-संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जिसका बहुत प्रकार से उपयोग किया जा सके। यह तीन प्रकार का होता है—(१) एकतोभोगी, (२) उभयतोभोगी और (३) सर्वतो भोगी।

वर्षधर-संज्ञा पुं० [सं०] (३) जैनों के अनुसार वे पर्वत जो पृथ्वी के विभागों या वर्षों को विभक्त करते हैं।

वस्त्रप-संज्ञा पुं० [सं०] (२) रेशम, ऊन तथा सब प्रकार के वस्त्रों को पहचानने और उनके भाव आदि का पता रखनेवाला राजकर्मचारी। (शुक्रनीति)

वस्त्र-भवन-संज्ञा पुं० [सं० वस्त्र + भवन] कपड़े का बना हुआ घर। जैसे—रावटी, खेमा आदि। उ०—वस्त्र भौन त्यों वितान आसमे बिछावने दायजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो।—केशव।

वस्ल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) दो चीजों का आपस में मिलना। मिलन। (२) संयोग। मिलाप। विशेषतः प्रेमी और प्रेमिका का मिलाप।

वह्नि-संज्ञा पुं० [सं०] (९) जैनों के अनुसार लौकांतिक जीवों का तीसरा वर्ग।

वाइन-संज्ञा स्त्री० [अं०] शराब। मद्य। सुरा।

वहित्र-संज्ञा पुं० [सं० बोहित्थ] बड़ी नाव। जहाज। उ०—सोह राम कामादि-प्रिय अवधपति सर्वदा दास तुलसी त्रासनिधि वहित्र।—तुलसी।

वाइकौंट-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० वाइकौंटेस] इंगलैंड के सामंतों

और बड़े बड़े भूम्यधिकारियों को वंश परंपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि जिसका दर्जा 'अर्ल' के नीचे और 'बैरन' के ऊपर है। वि० दे० "ड्यूक"।

वाइस चेयरमैन-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसका दर्जा चेयरमैन या सभाध्यक्ष के बाद ही होता है और जो उसकी अनुपस्थिति में उसका काम करता है। उपाध्यक्ष। उपसभापति। जैसे—म्युनिसिपैलिटी के वाइस-चेयरमैन।

वाइस प्रसिडेंट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसका दर्जा प्रेसिडेंट या सभापति के बाद ही होता है और जो उसकी अनुपस्थिति में सभा का संचालन करता है। उपसभापति। जैसे,—कौन्सिल के वाइस प्रेसिडेंट।

वाउचर-संज्ञा पुं० [अं०] वह कागज या बही जिसमें किसी प्रकार के हिसाब का ब्योरा हो।

वाकफियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वाकिफ होने का भाव। जानकारी। (२) जान पहचान। परिचय।

वाच-संज्ञा स्त्री० दे० "वाच्"। उ०—काय मन वाच सब धर्म करिबो करैं।—केशव।

वाचनालय-संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा या भवन जहाँ पुस्तकें और समाचार पत्र आदि पढ़ने को मिलते हों। रीडिंग रूम।

वाणिज्य दूत-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो किसी स्वाधीन राज्य या देश के प्रतिनिधि रूप से दूसरे देश में रहता और अपने देश के व्यापारिक स्वार्थों की रक्षा करता हो। कान्सल।

वातजात-संज्ञा पुं० [सं० वात + जात] पवन-सुत। हनुमान। उ०—सहमि सुखात वातजात की सुरति करि लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के।—तुलसी।

वामकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी जिसकी पूजा प्रायः जादूगर आदि करते हैं।

वार-संज्ञा पुं० [अं०] युद्ध। समर। जंग। जैसे,—जर्मन वार।

वारनिश-संज्ञा स्त्री० [अं० वार्निश] एक प्रकार का यौगिक तरल पदार्थ जो लकड़ियों आदि पर उनमें चमक लाने के लिये लगाया जाता है।

वारबाण-संज्ञा पुं० [सं०] एड़ी तक लंबा अंगा। (कौ०)

वारशिप-संज्ञा पुं० [अं०] जंगी जहाज। लड़ाऊ जहाज। युद्ध पोत।

वारुणीवर-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार चौथे द्वीप और उसके समुद्र का नाम।

वारुण कृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसमें महीने भर तक पानी में घुला सत्तु खाकर रहते थे। (स्मृति)

वार्ताशस्त्रोपजीवी-संज्ञा पुं० [सं०] केवल वाणिज्य या युद्ध-व्यवसाय में लगे रहनेवाले।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि कांबोज और सौराष्ट्रवाले अधिकतर ऐसे ही हैं।

वार्धुषिक-संज्ञा पुं० [सं०] कम दाम पर वस्तु खरीद कर अधिक पर बेचने का व्यवसाय करनेवाला। खरीद फरोख्त का रोजगारी। बनिया। (स्मृति)

वास्कट-संज्ञा स्त्री० [अं० वेस्ट कोट] फतूही।

बाह्य आतिथ्य-संज्ञा पुं० [सं०] बाहर से आया हुआ विदेशी माल।

विकल्प आपत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आपत्ति जो दूसरे मार्ग के अवलंबन से बचाई जा सकती हो। (कौ०)

विक्रय प्रतिक्रोष्टा-संज्ञा पुं० [सं०] बोली बोलकर बेचनेवाला। नीलाम करनेवाला।

विक्षिप्त-संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त की वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त प्रायः अस्थिर रहता है, पर बीच बीच में कुछ स्थिर भी हो जाता है। कहा गया है कि ऐसी अवस्था योग की साधना के लिये अनुकूल या उपयुक्त नहीं होती। वि० दे० "चित्तभूमि"।

विगृह्य गमन-संज्ञा पुं० [सं०] चारों ओर से मित्रों तथा शत्रुओं से घिर कर पानी में से भागना। (कामंदक)

विगृह्यास-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु की शक्ति आदि की कुछ भी परवा न कर की आनेवाली अंधाधुंध चढ़ाई। (कामंदक)

विगृह्यासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुश्मन को छेड़कर या उसकी जमीन आदि छीनकर चुपचाप बैठना। (२) शत्रु-स्थित दुर्ग को जीतने में असमर्थ होकर घेरा डालकर बैठना।

विग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१४) दूसरे के प्रति हानिकारक उपायों का प्रत्यक्ष प्रयोग।

विच्छिन्न-संज्ञा पुं० [सं०] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों की वह अवस्था जिसमें बीच में उनका विच्छेद हो जाता है। वह बीच की अवस्था जिसमें कोई क्लेश वर्त्तमान नहीं रहता, पर जिससे कुछ पहले और कुछ बाद वह वर्त्तमान रहता है।

विंजन-संज्ञा पुं० दे० "व्यंजन"। उ०—भाँति भाँति के विंजन और पकवान थाल भर उसके रूबरू रखे।—लल्लू।

विजय-संज्ञा पुं० [सं०] (४) जैनों के अनुसार पाँच अनुत्तरों में से पहला अनुत्तर या सब से ऊपर का स्वर्ग। (५) विष्णु के एक पार्षद का नाम। (६) अर्जुन का एक नाम। (७) यम का नाम। (८) जैनियों के एक जिन देव का नाम। (९) कल्कि के एक पुत्र का नाम। (१०) कालिका पुराण के अनुसार भैरववंशी कल्पराज के पुत्र का नाम जो काशिराज नाम से प्रसिद्ध थे। (११) विमान। (१२) संजय के एक पुत्र का नाम। (१३) जयद्रथ के एक पुत्र का नाम। (१४) एक प्रकार का शुभ मुहूर्त्त।

बिजानना⊛-क्रि० स० [सं० उपसर्ग वि + हिं० जानना] जानना। भली भाँति जानना। विशेष रूप से जानना। उ०—आतम कवन अनातम को है। याको तत्व विजानत जो है :—पद्माकर।

विट-संज्ञा पुं० [सं०] (१०) विष्ठा। गुह। मल। उ०—(क) कवि भस्म विट परिनाम तन तेहि लागि जगु बैरी भयो।—तुलसी। (ख) पाछे तें शूकर सुत आवा। विट ऊपर मुख मारि गिरावा।—विश्राम।

वितत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृदंग या ढोल आदि आनद्ध बाजों से उत्पन्न होनेवाला शब्द।

विथक-संज्ञा पुं० [हिं० विथकना ?] पवन।

विदारण-संज्ञा पुं० [सं०] (७) जैनों के अनुसार दूसरों के पापों या दोषों की घोषणा करना।

विदिश-संज्ञा स्त्री० दे० "विदिश"। उ०—धायो धर शर शैल विदिश दिशि तहाँ चकहूँ चाहि लयो।—सूर।

विदेह-वि० [सं०] ज्ञानशून्य। संज्ञा रहित। बेसुध। अचेत। उ०—(क) मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ विदेहु विदेहु बिसेखी।—तुलसी। (ख) देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू।—तुलसी। (ग) कौन ले आई कौने चरन चलाई, कौने बहियाँ गही सोधों कोही री। सूरदास प्रभु देखे सुधि रही नहिं, अति विदेह भई अब मैं बूझनि तोही री।—सूर।

विदेह-कुमारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (राजा जनक की पुत्री) जानकी। सीता। उ०—कहौ धौं तात क्यों जीति सकल नृप वरी है विदेहकुमारी।—तुलसी।

बिदेही-संज्ञा पुं० [सं० विदेहिन्] ब्रह्म। उ०—कुल मर्यादा खोइकै खोजिनि पदनिर्वान। अंकुर बीज नसाइ कै भये विदेही थान।—कबीर।

विद्ध व्रण-संज्ञा पुं० [सं०] वह सूजन जो शरीर के किसी अंग में काँटे की नोक के चुभने या टूटकर रह जाने से होती है।

विद्याधर-संज्ञा पुं० [सं०] (४) एक प्रकार का अस्त्र। उ०—(क) वर विद्याधर अस्त्र नाम नंदन जो ऐसौ। मोहन स्त्रापन सयन सौम्य कर्षन पुनि तैसौ।—पद्माकर। (ख) महा अस्त्र विद्याधर लीजै पुनि नंदन जेहि नाऊँ।—रघुराज। (५) विद्वान्। पंडित। उ०—कविदल विद्याधर सकल कलाधर राज राज वर वेश बने।—केशव।

विद्यामार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] वह मार्ग जो मनुष्य को मोक्ष की ओर ले जाय। श्रेयः मार्ग। (कठवल्ली उपनिषद्)

विद्यावान-संज्ञा पुं० [सं० विद्वान्] पंडित। विद्वान्। उ०—जीवत जग में काहि पिछानी। विद्यावान होइ जो प्रानी।—विश्राम।

विपरीत रति-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के अनुसार संभोग का एक प्रकार जिसमें पुरुष नीचे की ओर चित लेटा रहता है और स्त्री उसके ऊपर पट लेट कर संभोग करती है। काम शास्त्र में इसे पुरुषायित बंध कहा है। इसके कई भेद कहे गए हैं।)

विप्रमोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष। मुक्ति। (जैन)

विभंग-वि० [सं०] उपल। उ०—बिमल विपुल बहसि वारि सीतल भय ताप हारि भँवर वर विभंगतर तरंग-मालिका।—तुलसी।

विमर्श संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक। वि० दे० "अवमर्श संधि"।

विमलापति-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। उ०—जानत हौं जिय सोदर दोऊ। कै कमला विमलापति कोऊ।—केशव।

विमोचिताचास-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार ऐसे स्थान में निवास करना जिसे किसी ने रहने के अयोग्य समझकर छोड़ दिया हो।

विलायती मेंहदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० विलायती + मेंहदी] मेंहदी की जाति का एक प्रकार का पौधा जो प्रायः बाढ़ के रूप में लगाया जाता है। यह भारत, बलोचिस्तान, अफगानिस्तान, अरब, अफ्रिका आदि सभी स्थानों में होता है। यह वर्षा और शीत काल में फूलता है। इसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है और इस पर खुदाई का काम बहुत अच्छा होता है। सनट्टा।

विलोपभृत-संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जो केवल लूटमार का लालच देकर इकट्ठी की गई हो। (कौ०)

विलोभन-संज्ञा पुं० [सं०] मुख-संधि के बारह अंगों में से एक। नायक का मन नायिका की ओर अथवा नायिका का मन नायक की ओर आकृष्ट करने के लिये उसके गुणों का कथन। जैसे,—रत्नावली में वैतालिक का सागरिका को लुभाने के लिये राजा उदयन के गुणों का वर्णन। (नाट्यशास्त्र)

विविक्त शय्यासन-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वह आचार जिसमें त्यागी सदा किसी एकांत स्थान में रहता और सोता है।

विवीताध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] चरागाहों का निरीक्षक कर्मचारी। (कौ०)

विवेक-संज्ञा पुं० [सं०] (७) बहुत ही प्रिय पदार्थों का त्याग। (जैन)

विशिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य की वह बड़ी सड़क जिस पर बड़े बड़े जौहरियों तथा सुनारों की दुकानें हों। (कौ०)

बिशेषना⊛-क्रि० अ० [सं० विशेष + ना (प्रत्य०)] (१) निश्चित करना। निर्णय करना। उ०—अनंत गुण गावै, विशेषहि न पावै।—केशव। (२) विशेष रूप देना। उ०—ताहि पूछत बोलि कै। तदपि भाँति भाँति विशेष कै।—केशव।

विश्वरूप-संज्ञा पुं० [सं०] (६) देवता। उ०—भूपन को रूप धरि विश्वरूप आए हैं।—केशव।

विषदंड-संज्ञा पुं० [सं० विष = कमल की नाल] कमल की नाल। उ०—केशव कोदंड विषदंड ऐसो खंडैं अब मेरे भुजदंडन की बड़ी है विडंबना।—केशव।

विषम व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] समव्यूह का उलटा व्यूह। वि० दे० "समव्यूह"।

विषम संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जिसमें शक्ति के अनुसार तत्काल सहायता न दी जाय। सम संधि का उलटा। 'तुम आगे से हमारे मित्र रहोगे' इस प्रकार की संधि।

विषय-संज्ञा पुं० [सं०] वह बड़ा प्रदेश जिस पर कोई शासन-व्यवस्था हो।

विशेष—ग्राम से बड़ा राष्ट्र और राष्ट्र से बड़ा विषय माना जाता था। कितने बड़े भू-भाग को विषय कह सकते थे, इसका कोई निर्दिष्ट मान नहीं था।

विषय-निर्द्धारिणी समिति-संज्ञा स्त्री० दे० "विषय निर्वाचनी समिति"।

विषय-निर्वाचनी समिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुछ विशिष्ट सदस्यों की वह सभा जो किसी महासभा या सम्मेलन में उपस्थित किए जानेवाले विषय या प्रस्ताव आदि निश्चित या प्रस्तुत करती है। सबजेक्ट कमिटी।

विस†-सर्व० दे० "उस"।

विसाल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) संयोग। मिलाप। (२) आत्मा का ईश्वर में मिलना। मृत्यु। मौत। (३) प्रेमी और प्रेमिका का मिलाप।

विहायगति-संज्ञा स्त्री० [सं] आकाश में चलने की क्रिया या शक्ति। (जैन)

वीटो-संज्ञा पुं० [अं०] किसी व्यवस्थापिका सभा के स्वीकृत प्रस्ताव या मंतव्य को अस्वीकृत करने का अधिकार। वह अधिकार जिससे व्यवस्थापक मंडल की एक शाखा दूसरी शाखा के स्वीकृत प्रस्ताव या मंतव्य को अस्वीकृत कर सकती है। अस्वीकृति। नामंजूरी। मनाही। रोक।

वृथादान-(ऋण) संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो चालबाज, धूर्त आदि लोगों को दिया गया हो।

वृद्धयुदय-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी प्राप्ति से लाभ ही लाभ हो।

वे-सर्व० [हिं० वह] वह का बहुवचन या सम्मानवाचक रूप। जैसे,—(क) वे लोग चले गए। (ख) वे आज न आवेंगे।

वेगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] १७६ हाथ लंबी, २२ हाथ ऊँची और १७$\frac{३}{५}$ हाथ चौड़ी नाव। (युक्ति कल्पतरु)

वेटेरिनरी-वि० [अं०] बैल, घोड़े आदि पालतू पशुओं की चिकित्सा संबंधी। शालिहोत्र संबंधी। जैसे, वेटेरिनरी अस्पताल।

वेटेरिनरी अस्पताल-संज्ञा पुं० [अं० वेटेरिनरी हॉस्पिटल] वह स्थान या चिकित्सालय जहाँ घोड़े आदि पालतू पशुओं की चिकित्सा की जाती है। पशु चिकित्सालय।

वेणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नरसल का बना बेड़ा। (कौ०)

वेतन कल्पना-संज्ञा स्त्री० [सं०] तनखाह नियत करना।

वेतनकालातिपातन-संज्ञा पुं० [सं०] तनखाह देने में देर करना।

वेतन नाश-संज्ञा पुं० [सं०] तनख़ाह या मज़दूरी ज़ब्त हो जाना।

विशेष—चाणक्य के समय में यह राज-नियम था कि जो कारीगर ठीक ढंग से काम नहीं करते थे या कहा कुछ जाय और करते कुछ थे, उनका वेतन ज़ब्त हो जाता था।

वेदत्रयी-संज्ञा स्त्री०[सं०] ऋक्, यजु तथा साम ये तीनों वेद। उ०—वेदत्रयी अरु राज-सिरी परिपूरणता शुभ योग मयी है।—केशव।

वेरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बेंत आदि से बुन कर बना हुआ पहनावा या बकतर। (कौ०)

वेश्म-पुरोधक-संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे के मकान को तोड़ कर या उसमें सेंध लगाकर चोरी करनेवाला। (कौ०)

वेश्मादीपिक-संज्ञा पुं० [सं०] मकान में आग देनेवाला। (कौ०)

वेस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] पश्चिम दिशा।

वेस्ट कोट-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की अँगरेजी कुरती या फतुही जिसमें बाँहें नहीं होतीं और जो कमीज के ऊपर तथा कोट के नीचे पहनी जाती है।

वै※-अव्य०[?] निश्चयसूचक चिह्न। उ०—अदंडमान दीन, गर्व दंडमान भेद वै।—केशव।

वैगनेट-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की हल्की बग्गी या घोड़ा गाड़ी जिसमें पीछे की ओर दाहिने बाएँ बैठने की लंबी जगह होती है।

वैजयंत-संज्ञा पुं० [सं०] (५) जैनों के अनुसार एक लोक जो सातो स्वर्गों से भी ऊपर है।

वैदेश्यसार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] विदेशी माल। (कौ०)

वैदेहक व्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारी के वेश में गुप्तचर। (कौ०)

विशेष—ये समाहर्ता के अधीन काम करते थे और व्यापारियों में मिलकर उनकी कार्रवाइयों की सूचना दिया करते थे।

वैयावृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] फुटकर। थोक का उलटा। जैसे,—वैयावृत्य विक्रय।

वैनयिक रथ-संज्ञा पुं० [सं०] (४) लड़ाई सिखाने के लिये बने हुए रथ।

वैमानिक-संज्ञा पुं० [सं०] (४) जैनों के अनुसार वे जीव जो स्वर्ग लोक में रहते हैं।

वैयावृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] यतियों और साधुओं आदि की सेवा। (जैन)

वैराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (३) विदेशियों का राज्य। विदेशियों का शासन।

विशेष—वैराज्य और द्वैराज्य के गुण दोष का विचार करते हुए कहा गया है कि द्वैराज्य में अशांति रहती है और वैराज्य में देश का धन धान्य निचोड़ लिया जाता है। दूसरी बात यह कही गई है कि विदेशी राजा अपनी अधिकृत भूमि कभी कभी बेच भी देता है और आपत्ति के समय असहाय अवस्था में छोड़ भी देता है।

वैसा—क्रि० वि० [हिं वह + ऐसा] उस प्रकार का। उस तरह का। जैसे,—जैसा दुपट्टा तुमने पहले भेजा था, वैसा ही एक और भेज दो।

वोट आफ सेंशर-संज्ञा पुं० [अं०] निंदा का प्रस्ताव। निंदात्मक प्रस्ताव। जैसे, परिषद् ने बहुमत से सरकार के विरुद्ध वोट आफ सेंशर पास किया।

व्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] (११) गुप्तचर या गुप्तचरों का मंडल।

व्यपदेश-संज्ञा पुं० [सं०] (२) व्याख्या। विवरण। (जैन)

व्यपरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] (५) आघात पहुँचाना। पीड़ा पहुँचाना। (जैन)

व्यलीक-संज्ञा पुं० [सं०] (७) कपट। छल। उ०—भोर भयो जागहु रघुनन्दन। गत व्यलीक भगतनि उर चंदन। —तुलसी।

व्यवस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] (५) कानून। जैसे,—भारत सरकार के व्यवस्था सदस्य।

व्यवस्थापक मंडल-संज्ञा पुं० [सं०] वह समाज या समूह जिसे कानून कायदे बनाने और रद्द करने का अधिकार प्राप्त हो।

व्यवस्थापिका परिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सभा या परिषद् जिसमें देश के लिये कानून क़ायदे आदि बनते हैं। देश के लिये कानून कायदे बनानेवाली सभा। बड़ी व्यवस्थापिका सभा। लेजिस्लेटिव एसेंबली। लोअर चेंबर। लोअर हाउस।

विशेष-ब्रिटिश भारत भर के लिये कानून कायदे बनानेवाली सभा व्यवस्थापिका परिषद् या लेजिस्लेटिव ऐसेंबली कहलाती है। आजकल इसके सदस्यों की संख्या १४३ है जिनमें से १०३ लोक-निर्वाचित और ४० सरकार द्वारा मनोनीत (२५ सरकारी और १५ गैरसरकारी) सदस्य हैं।

व्यवस्थापिका सभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सभा जिसमें किसी प्रदेश विशेष के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं। कानून कायदे बनानेवाली सभा। लेजिस्लेटिव कौंसिल।

व्यवहारस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] लेन देन, इकरारनामे आदि के सम्बन्ध में यह निर्णय कि वे उचित रूप में हुए हैं या नहीं। (कौ०)

विशेष-चंद्रगुप्त के समय में तीन धर्मस्थ और तीन अमात्य व्यवहारों की निगरानी करते थे।

व्याजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिक्री में माप या तौल के ऊपर कुछ थोड़ा सा और देना। बाल। घलुवा।

व्यामिश्र व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] मिला जुला व्यूह। वह व्यूह जिसमें पैदल के अतिरिक्त हाथी, घोड़े और रथ भी सम्मिलित हों।

विशेष-कौटिल्य ने इसके दो भेद कहे हैं—मध्यभेदी और अंतभेदी। मध्यभेदी वह है जिसके अंत में हाथी, इधर उधर घोड़े, मुख्य भाग या केंद्र में रथ तथा उरस्य में हाथी और रथ हों। इससे भिन्न अंतभेदी है।

व्यामिश्रासिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रु और मित्र दोनों की स्थिति का अपने अनुकूल होना। (कौ०)

व्यायाम-संज्ञा पुं० [सं०] (५) युद्ध की तैयारी। (६) सेना की कवायद आदि।

व्यायाम युद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] आमने सामने की लड़ाई।

विशेष—चाणक्य का मत है कि व्यायाम युद्ध अर्थात् आमने सामने की लड़ाई में दोनों ही पक्षों को बहुत हानि पहुँचती है। जो राजा जीत भी जाता है, वह भी इतना कमजोर हो जाता है कि उसको एक प्रकार से पराजित ही समझना चाहिए। (कौ०)

व्याल-सूदन-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़। उ०—जयति भीमार्जुन व्यालसूदन गर्बहर धनंजय रक्षमानकेतू।—तुलसी।

व्यावहारिक ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो किसी कार-बार के संबंध में लिया गया हो।

व्युत्सर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार शरीर के मोह या चिन्ता का परित्याग।

व्रज-संज्ञा पुं० [सं०] (४) अहीरों का टोला या बाड़ा। उ०—नयनि को फल लेति निरखि खग मृग सुरभी व्रजबधू अहीर। —तुलसी।

व्रजपर्य्यग्र-संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं की गणना।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में अध्यक्ष को राजकीय पशुओं की पूरे निशान आदि के साथ बही में गिनती रखनी पड़ती थी।

व्रात-संज्ञा पुं० [सं०] (४) वह जिसकी कोई निश्चित वृत्ति न हो या जो चोरी डाके से निर्वाह करता हो। जरायम पेशा। दुर्जीवी।

शकटव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह भोग व्यूह जिसके अंदर उरस्थ में दोहरी पंक्तियाँ हों और पक्ष स्थिर हो। (कौ०)

शंकर शैल-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत। उ०—शंकर शैल चढ़ी मन मोहति। सिद्धन की तनया जनु सोहति।—केशव।

शक्त्यपेक्ष दायन-संज्ञा पुं० [सं०] ऋणी की सामर्थ्य के अनुसार ऋण थोड़ा थोड़ा करके चुकता कराना।

शतानीक-संज्ञा पुं० [सं०] (८) सौ सिपाहियों का नायक।

शत्रुसाल-वि० [सं० शत्रु + हिं० सालना] शत्रु के हृदय में शूल उत्पन्न करनेवाला। उ०—नृप शत्रुसाल नंदन नवल भावसिंह भूपालमनि।—मतिराम।

शमिता–संज्ञा पुं० [सं० शमितृ] वह जो यज्ञ में पशु का बलिदान करता हो।

शरापना–क्रि० स० [सं० शाप + ना (प्रत्य०)] किसी को शाप देना। सरापना।

शाद्वल–संज्ञा पुं० [सं०] (३) रेगिस्तान के बीच की वह थोड़ी सी हरियाली जहाँ कुछ हलकी बस्ती भी हो।

शासक–संज्ञा पुं० [सं०] (३) जहाज़ का कप्तान। (कौ०)

शासनपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (२) राजाज्ञा का वह पत्र जिस पर राजा का हस्ताक्षर हो। फ़रमान। (शुक्रनीति)

शास्ता–संज्ञा पुं० [सं० शास्तृ] (४) वह मनुष्य जिसे कोई काम करने का पूरा अधिकार हो। प्रधान नेता या पथ-प्रदर्शक। डिक्टेटर। (५) वह मनुष्य जिसे शासन की अबाधित सत्ता प्राप्त हो। निरंकुश शासक। वि० दे० "डिक्टेटर"।

शिखावृद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) वह ब्याज जो रोजाने के हिसाब से नित्य वसूल किया जाता हो। रोजही। (परा० स्मृति)

शिफा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (११) कोड़ा। बेंत।

यौ०—शिफादंड = कोड़े मारने का दंड।

शिला प्रमोक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई में पत्थर फेंकना या लुढ़काना। (कौ०)

शिलिंग–संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड में चलनेवाला चाँदी का एक सिक्का जो प्रायः बारह आने मूल्य का होता है।

शिल्प समाह्वय–संज्ञा पुं० [सं०] कारीगरी का मुकाबला।

शुद्ध व्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें उरस्य में हाथी, मध्य में तेज़ घोड़े और पक्ष में व्याल (मतवाले हाथी) हों। (कौ०)

शुद्धहार–संज्ञा पुं० [सं०] वह हार जिसमें एक शीर्षक मोती का हो। (कौ०)

शुद्धिपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह व्यवस्थापत्र जो प्रायश्चित्त के पीछे शुद्धि के प्रमाण में पंडितों की ओर से दिया जाता था। (शुक्रनीति)

शुभ्र–वि० [सं०] श्वेत। सफ़ेद उ०—शोभजति दंतरुचि शुभ्र उर मानिये।—केशव।

शुल्काध्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] चुंगी का अध्यक्ष। (कौ०)

शून्यमूल–वि० [सं०] (सेना) जिसका वह केंद्र नष्ट हो गया हो जहाँ से सिपाही आते रहे हों। (कौ०)

शेज–संज्ञा पुं० [देश०] अघौरी नामक वृक्ष। (बुंदेल०)

शेयर होल्डर–संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसके पास सम्मिलित मूल धन या पूँजी से चलनेवाले किसी कारबार या कंपनी के 'शेयर' या हिस्से हों। हिस्सेदार। अंशी। जैसे—बैंक के शेयर होल्डर, कंपनी के शेयर होल्डर।

श्येनव्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] वह दंडव्यूह जिसमें पक्ष और कक्ष को स्थिर रख कर उरस्य को आगे बढ़ाया जाय। (कौ०)

श्रावण–संज्ञा पुं० [सं०] (६) योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें योगी हजार योजन तक के शब्द ग्रहण करके उनके अर्थ हृदयंगम करता है। (मार्कण्डेय पुराण)

श्रीकृच्छ्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसमें केवल श्रीफल (बेल) खाकर रहते हैं।

श्रीफल–संज्ञा पुं० [सं०] (६) द्रव्य। धन। उ०—श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुल के जी में।—केशव।

श्रीमुख–संज्ञा पुं० [सं०] (४) सूर्य। उ०—व्योम में मुनि देखिये अति लाल श्रीमुख साजहीं।—केशव।

श्रुवा–संज्ञा पुं० दे० "स्रुवा"। उ०—कुश मुद्रिका समिधैं श्रुवा कुश औ कमंडल को लिये।—केशव।

श्रेणीपाद–संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र या जनपद जिसमें श्रेणियों या पंचायतों की प्रधानता हो। (कौ०)

श्रेणी प्रमाण–संज्ञा पुं० [सं०] वह शिल्पी या व्यापारी जो किसी श्रेणी के अन्तर्गत हो और उसके मंतव्यों के अनुसार काम करता हो। (कौ०)

षट्मुख–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय। उ०—गिरि बेध षट्मुख जीति तारकनंद को जब ज्यों हन्यो।—केशव।

संकाश–संज्ञा पुं० [?] प्रकाश। चमक। उ०—स्वर्न-सैल-संकास कोटि रवि तरुन तेज घन। उर बिसाल भुजदंड चंड नख वज्र वज्रतन।—तुलसी।

संख्येय–वि० [सं०] जिसकी संख्या की जा सके। गिना जाने के योग्य। गण्य।

संगत संधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छे के साथ संधि जो अच्छे और बुरे दिनों में एक सी बनी रहती है। कांचन संधि। (कामंदक)

संग्रहण–संज्ञा पुं० [सं०] (७) स्त्री के स्तन, कपोल, केश, जंघा आदि वर्ज्य स्थानों का स्पर्श।

विशेष—स्मृतियों में इस अपराध के लिये कठोर दंड लिखा गया है।

संघट–संज्ञा पुं० [सं० संघटन] (३) समूह। राशि। ढेर। उ०—सुभट मर्कट भालु कटक संघट सजत नमत पद रावणानुज निवाजा।—तुलसी।

संघती†–संज्ञा पुं० [सं० संघ, हिं० संग] साथी। सहचर। उ०—तुम्ह अस हित संघती पियारी। जियत जीउ नहिं करौं निनारी।—जायसी।

संघरनाॐ–क्रि० स० [सं० संहार + ना (प्रत्य०)] (१) संहार करना। नाश करना। (२) मार डालना। उ०—गरगज चूर चूर होइ परहीं। हस्ति घोर मानुष संघरहीं।—जायसी।

संचारनाॐ–क्रि० स० [सं० संचार + ना (प्रत्य०)] (३) उत्पन्न

करना। जन्म देना। उ०—नूर मुहम्मद देखि तौ भा हुलास मन सोइ। पुनि इबलीस सँचारेउ डरत रहै सब कोइ।—जायसी।

संजुत※—वि० [सं० संयुक्त] संयुक्त। मिश्रित। मिला हुआ। उ०—उहईं कीन्हेउ पिंड उरेहा। भई सँजुत आदम कै देहा।—जायसी।

सँजोऊ※—संज्ञा पुं० [हिं० सँजोना] (१) तैयारी। उपक्रम। उ०—अबहीं बेगिहि करौ सँजोऊ। तस मारहु हत्या नहिं होऊ।—जायसी। (२) साज सामान। सामग्री। (३) संयोग। उ०—ओहि आगे थिर रहा न कोऊ। दहुँ का कहँ अस जुरै सँजोऊ।—जायसी।

संज्ञी—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें संज्ञा हो। जीव। चेतन। (जैन)

संत—संज्ञा पुं० [सं० सत्] वह संप्रदाय-भुक्त साधु या संत जो विवाह करके गृहस्त बन गया हो। (साधुओं की परि०)

संतान-संधि संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो अपना लड़का या लड़की देकर की जाय। (कामंदक)

संती※†—अव्य० [प्रा० सुन्तो] से। द्वारा। उ०—सो न डोल देखा गजपती। राजा सत्तदत्त दुहुँ संती।—जायसी।

संदिग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] (३) वह जिस पर किसी अपराध का संदेह किया जाय। जैसे—राजनीतिक संदिग्ध।

सँदेसी†—संज्ञा पुं० [हिं० सँदेसा + ई (प्रत्य०)] वह जो सँदेसा ले जाता हो। बसीठ। उ०—राजा जाइ तहाँ बहि लागा। जहाँ न कोइ सँदेसी कागा।—जायसी।

संधना※—क्रि० अ० [सं० संधि] संयुक्त होना। मिलना। उ०—पक्ष दू संधि संध्या सँधी है मनो।—केशव।

संधापगमन—संज्ञा पुं० [सं०] समीपवर्ती शत्रु से संधि कर दूसरे शत्रु पर चढ़ाई करना। (कामंदक)

संधिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] संधि करना। सुलह करना।

विशेष—संधि के मुख्य दो भेद हैं—चालसंधि और स्थावर संधि। चालसंधि वह है जिसे दोनों पक्ष शपथ करके करते हैं; और स्थावर संधि वह है जो कुछ दे लेकर की जाती है। कौटिल्य ने चालसंधि को बहुत ही स्थायी कहा है, क्योंकि शपथ खाकर की हुई संधि राजा लोग कभी नहीं तोड़ते थे। कामंदक ने १६ प्रकार की संधियाँ कही हैं।

संधि मोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पुरानी संधि तोड़ना। संधिभंग। वि० दे० "समाधि मोक्ष"।

संधि-विग्रहिक—संज्ञा पुं० [सं०] पर राष्ट्रों के साथ युद्ध या संधि का निर्णय करनेवाला मंत्री या अधिकारी।

संधि-विग्रही—संज्ञा पुं० दे० "संधि-विग्रहिक"।

संभूयासन—संज्ञा पुं० [सं०] आपस में लड़कर शत्रुओं का कमजोर होकर बैठ जाना। (कामंदक)

संनिधाता—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेणी या संघ के धन को रखनेवाला। खज़ानची। (कौटि०)

संपति—संज्ञा स्त्री० दे० "संपत्ति"। उ०—(क) जगत विदित बूँदी नगर सुख संपति को धाम।—मतिराम। (ख) तहीं कियो भगवंत बिन संपति शोभा साज।—केशव।

संभाराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजकीय पदार्थों का अध्यक्ष। तोशा-खाने का अफसर। (शुक्रनीति)

संभूयकारी—संज्ञा पुं० [सं०] संघ में मिलकर व्यापार करनेवाला। कंपनी का हिस्सेदार। (स्मृति)

विशेष—बृहस्पति के अनुसार यदि संघ को दैवी कारण से या राजा के कारण हानि पहुँचे तो उसके भागी सब हिस्सेदार हैं; पर यदि किसी हिस्सेदार की भूल या ग़लती से हानि पहुँचे तो उसका जिम्मेदार अकेला वही है।

संभूयक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] थोक माल बेचना या खरीदना। (कौ०)

संभूयगमन—संज्ञा पुं० [सं०] पूरी चढ़ाई जिसमें सामंत और मौल (तअल्लुकेदार) सब अपने दलबल के साथ हों। (कामंदक)

संभूयसमुत्थायन—संज्ञा पुं० [सं०] कंपनी खोलना।

संभूयासन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु से मेल करके और उसे उदासीन समझ कर चुपचाप बैठ जाना। (कामंदक)

संयोग संधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो किसी उद्देश्य से चढ़ाई करने के उपरांत उसके संबंध में कुछ तै हो जाने पर की जाय। (कामंदक)

संवनन—संज्ञा पुं० [सं०] (२) यंत्र मंत्र आदि के द्वारा स्त्रियों को फँसाना।

सँवर※†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्मरण] (१) याद। स्मृति। (२) खबर। हाल।

सँवार ※†—संज्ञा स्त्री० [सं० संवाद या स्मरण] हाल। समाचार। उ०—पुनि रे सँवार कहेसि अरु दूजी। जो बलि दीन्ह देवतन्ह दूजी—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सँवारना] (१) सँवारने की क्रिया या भाव। (२) एक प्रकार का शाप या गाली।

विशेष—कभी कभी लोग यह न कह कर कि "तुम पर खुदा की मार या फिटकार" प्रायः "तुम पर खुदा की सँवार" कह दिया करते हैं।

संवित्पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें दो ग्रामों या प्रदेशों के बीच किसी बात के लिये मेल की प्रतिज्ञा या शर्तें लिखी हों। (शुक्रनीति)

संसक्त सामंत—संज्ञा पुं० [सं०] वह सामंत जिसकी थोड़ी बहुत ज़मीन चारो ओर हो और कहीं पूरे गाँव भी हों। (परा० स्मृति)

संसरण—संज्ञा पुं० [सं०] (८) वह मार्ग जिससे हो कर बहुत दिनों से लोग या पशु आते जाते हों।

विशेष—बृहस्पति ने लिखा है कि ऐसे मार्ग पर चलने से कोई (जमींदार भी) किसी को नहीं रोक सकता।

संस्थाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] व्यापार का निरीक्षक। व्यापाराध्यक्ष।

विशेष—इसका मुख्य काम गिरवी रखे जानेवाले माल का तथा पुरानी चीजों का विक्रय करवाना था। तौल माप का निरीक्षण भी यही करता था। चन्द्रगुप्त के समय में तुला द्वारा तौलने में यदि दो तोले का भी फरक पड़ जाता तो बनिए पर ६ पण जुर्माना किया जाता था। क्रय विक्रय सम्बन्धी राज-नियमों को जो लोग तोड़ते थे, उनको भी दण्ड यही देता था। भिन्न भिन्न पदार्थों पर कितनी चुंगी लगे, कौन कौन सा माल बिना चुंगी दिए शहर में जाय, इन सम्पूर्ण बातों का प्रबन्ध भी यही करता था। पदार्थों की कीमतें भी यही नियत करता था और सरकारी पदार्थों का विक्रय भी यही करवाता था। उनके विक्रय के लिये नौकर भी रखता था, इत्यादि।

संहत बल-संज्ञा पुं० [सं०] संघटित सेना। (कौटि०)

संहरनाॐ-क्रि० अ० [सं० संहार] नष्ट होना। संहार होना। उ०—हैहय मारो नृपजन सँहरे। सो यश लै किन युग युग जीजै।—केशव।

क्रि० स० [सं० संहरण] संहार करना। ध्वंस करना। उ०—सुरनायक सो संहरी परम पापिनी बाम।—केशव।

सईॐ-संज्ञा स्त्री० [?] वृद्धि। बरकत। उ०—खग मृग सबर निसाचर सब की पूँजी बिनु बाढ़ी सई।—तुलसी।

सकॐ-संज्ञा पुं० [सं० शाका] साका। धाक।

मुहा०—सक बाँधना = (१) धाक बाँधना। उ०—हौं सो रतनसेन सक-बँधी। राहु बेधि जीता सैरंधी।—जायसी। (२) मर्य्यादा स्थापित करना।

सकत*-क्रि० वि० [सं० शक्ति] जहाँ तक हो सके। भरसक। उ०—का तोहिं जीव मरावौं सकत आन के दोस। जो नहिं बुझै समुद-जल सो बुझाइ कित ओस।—जायसी।

सकपकाना-क्रि० अ० [अनु०] (५) हिलना डोलना। लहराना। उ०—सकपकाहिं विष भरे पसारे। लहरि भरे लहकनि अति कारे।—जायसी।

सकुचाना-क्रि० अ० [सं० संकोच, हिं० सकुच + आना (प्रत्य०)] संकोच करना। जैसे,—वह आपके पास आने में सकुचाता है।

क्रि० स० [सं० संकुचन] सिकोड़ना। उ०—श्रवण शरण ध्वनि सुनत लियो प्रभु तनु सकुचाई।—सूर।

क्रि० स० [हिं० सकुचना का प्रे०] किसी को संकोच करने में प्रवृत्त करना। लज्जित करना। उ०—निज करनी सकुचेहिं कत सकुचावत इहिं चाल। मोहूँ से नित विमुख त्यौं सनमुख रहि गोपाल।—बिहारी।

सकुचौहाँॐ-वि० [सं० संकोच + औहाँ (प्रत्य०)] संकोच करनेवाला। लजीला। उ०—गह्यो अबोलो बोलि प्यौ आपुहिं पठै बसीठि। दीठि चुराई दुहुन की लखि सकुचौहीं दीठि।—बिहारी।

सकोचनाॐ-क्रि० स० [सं० संकोच + ना (प्रत्य०)] संकुचित करना। उ०—सोच पोच मोचि कै सकोच भीम वेग को।—केशव।

सक्र चक्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र जो चारो ओर शक्तिशाली राष्ट्रों से घिरा हो। राष्ट्र चक्र।

सक्र सामंत-संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम समूह का जमींदार जो उसका सामंत होता था।

विशेष—किसी ग्राम के पास का जो ताल्लुकेदार होता था, वही उस ग्राम का सक्र सामंत होता था। सीमा संबंधी झगड़ों में सबसे पहले इसी की गवाही ली जाती थी। (परा० स्मृति)

सचना-क्रि० स० [हिं० सजना] (२) सम्पादित करना। पूरा करना। उ०—बहु कुंड शोनित सों भरे पितु तर्पणादि क्रिया सची।—केशव।

सच्छतॐ-वि० [सं० स + क्षत] जिसे क्षत लगा हो। घायल। जख्मी। उ०—जिनको जग अच्छत सीस धरै। तिन को जग सच्छत कौन करै।—केशव।

सजना-क्रि० अ० [सं० सज्जा] (३) शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होना। रण के लिये तैयार होना। उ०—हमहीं चलिहैं ऋषि संग अबै। सजि सैन चलै चतुरंग सबै।—केशव।

सजवनाॐ†-संज्ञा पुं० [हिं० सजना] सजने की क्रिया या भाव। तैयारी। उ०—बहुतन्ह अस गढ़ कीन्ह सजवना। अंत भई लंका जस रवना।—जायसी।

सतर्पनाॐ-क्रि० स० [सं० संतर्पण] भली भाँति तृप्त करना। संतुष्ट करना।

सतार-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार ग्यारहवें स्वर्ग का नाम।

सत्याग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] सत्य के लिये आग्रह या हठ। सत्य या न्याय पक्ष पर प्रतिज्ञापूर्वक अड़ना और उसकी सिद्धि के उद्योग में मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों और कष्टों को धीरतापूर्वक सहना और किसी प्रकार का उपद्रव या बल प्रयोग न करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सत्र-संज्ञा पुं० [सं०] विकट स्थान या समय।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि रेगिस्तान, संकटमय स्थान, दलदल, पहाड़, नदी, घाटी, ऊँची नीची भूमि, नाव, गौ, शकट, व्यूह, धुंध तथा रात ये सब सत्र कहे जाते हैं। (कौ०)

सदईॐ-अव्य० [सं० सदैव] सदैव । सदा । उ०—उथपे थपन उजार बसावन गई बहोर बिरद सदई है ।—तुलसी ।

सदर-संज्ञा पुं०[देश०] सज नाम का वृक्ष । वि० दे० "सज"। (बुन्देल०) ।

सदूरॐ-संज्ञा पुं० [सं० शार्दूल] शार्दूल । सिंह । उ०—बिरह हस्ति तन सालै घाय करै चित चूर । बेगि आइ पिउ बाजहु गाजहु होइ सदूर ।—जायसी ।

सदेह-क्रि० वि० [सं०] (२) मूर्तिमान । सशरीर । उ०—सब शृङ्गार सदेह मनोरति मन्मथ मोहै ।—केशव ।

सनट्टा-संज्ञा पुं० [देश०] विलायती मेंहदी नाम का पौधा जो बागों में बाढ़ के रूप में लगाया जाता है। वि० दे० "विलायती मेंहदी" ।

सनत्कुमार-संज्ञा पुं० [सं०] (३) जैनों के अनुसार तीसरे स्वर्ग का नाम ।

सन्मी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सन] सन की जाति का एक प्रकार का छोटा पौधा जो प्रायः सारे भारत और बरमा में पाया जाता है । इसके डंठलों से भी एक प्रकार का मजबूत रेशा निकलता है; पर लोग उसका व्यवहार कम करते हैं । यह देखने में बहुत सुन्दर होता है; अतः कहीं कहीं लोग इसे बागों में शोभा के लिये भी लगाते हैं ।

सप्लाई-संज्ञा स्त्री० [अं०] (व्यवहार या उपयोग के लिये कोई वस्तु) उपस्थित करना। पहुँचाना । मुहैया करना । जैसे—वे ७ नं० घुड़सवार पलटन के घोड़ों के लिये घास दाना सप्लाई किया करते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

सप्लायर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी को चीजें पहुँचाने का काम करता है । कोई वस्तु या माल पहुँचाने या मुहैया करनेवाला ।

सप्लीमेंट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह पत्र जो किसी समाचार पत्र में अधिक विषय देने के लिये अतिरिक्त रूप से लगाया जाय । अतिरिक्त पत्र । क्रोड़पत्र । (२) किसी वस्तु का अतिरिक्त अंश ।

सब-जज-संज्ञा पुं० [अं०] छोटा जज । सदराला ।

सब-डिविजनल-वि० [अं०] सब-डिवीजन का । उस भू-भाग का जिसके अन्तर्गत बहुत से गाँव और कसबे हों । सब-डिवीजन संबंधी । जैसे—सब-डिविजनल अफसर ।

सब-डिवीजन-संज्ञा पुं० [अं०] किसी जिले का वह छोटा भू-भाग जिसके अंतर्गत बहुत से गाँव और कसबे हों । परगना । जैसे—चाँदपुर सब-डिवीजन ।

विशेष—कई सब-डिवीजनों का एक जिला होता है अर्थात् हर जिला कई सब-डिवीजनों में बँटा हुआ होता है ।

सबदॐ†-संज्ञा पुं० [सं० शब्द] (१) शब्द । आवाज । उ०—हुता जो सुन्नम-सुन्न नाँव ठाँव ना सुर सबद । तहाँ पाप नहिं पुन्न महमद आपुहि आपु महँ ।—जायसी ।

(२) किसी महात्मा की वाणी या भजन आदि । जैसे—कबीर जी के सबद, दादू दयाल के सबद ।

सब-मरीन-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छोटा बोट जो जल के अंदर चलता है और युद्ध के समय शत्रु के जहाजों को नष्ट करने के काम में आता है । यह घंटों जल के अंदर रह सकता है और ऊपर से दिखाई नहीं देता । हवा पानी लेने लिये इसे ऊपर आना पड़ता है। यह "टारपीडो" नामक भीषण विस्फोटक वज्र साथ लिए रहता है और घात लगते ही शत्रु के जहाज पर टारपीडो चलाता है । यदि टारपीडो ठिकाने पर लगा तो जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है । गोताखोर ।

सबसिडियरी जेल-संज्ञा स्त्री० [अं०] हवालात ।

सबार†-क्रि० वि० [हिं० सवेरा] जल्दी । शीघ्र । उ०—होइ भगीरथ कर तहँ फेरा । जाहि सबार मरन कै बेरा ।—जायसी ।

सबार्डिनेट जज-संज्ञा पुं० [अं०] दीवानी अदालत का वह हाकिम जो जज के नीचे हो । छोटा जज । सदराला ।

सबजेक्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) प्रजा । रैयत । जैसे—ब्रिटिश सबजेक्ट । (२) विषय । मजमून ।

सबजेक्ट कमिटी-संज्ञा स्त्री० दे० "विषयनिर्वाचनी समिति" ।

सभागा-वि० [सं० स + भाग्य] [स्त्री० सभागी] (१) भाग्यवान् । खुश किस्मत । तकदीरवर । उ०—ओहि छुइ पवन बिरिछ जेहि लागा । सोइ मलयगिरि भएउ सभागा ।—जायसी ।

(२) सुंदर । रूपवान् । उ०—आए गुपुत होइ देखन लागी । वह मूरति कस सती सभागी ।—जायसी ।

समंद-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह बादामी रंग का घोड़ा जिसकी अयाल, दुम और पुट्ठे काले हों । उ०—ठील समंद चाल जग जाने । हाँसल भौंर गियाह बखाने ।—जायसी ।

(२) घोड़ा । अश्व ।

समचर-वि० [सं०] समान आचरण करनेवाला । एक सा व्यवहार करनेवाला । उ०—नाम निठुर समचर सिखी सलिल सनेह न दूर । ससि सरोग दिनकर बड़े पयद प्रेमपथ क्रूर । —तुलसी ।

समझ-संज्ञा स्त्री० [सं० सज्ञान] (१) समझने की शक्ति । बुद्धि । अक्ल । जैसे;—तुम्हारी समझ की बलिहारी है ।

मुहा०—समझ पर पत्थर पड़ना = बुद्धि नष्ट होना । अक्ल का मारा जाना । जैसे—उसकी समझ पर तो पत्थर पड़ गये हैं, वह हिताहित ज्ञान-शून्य हो गया है । (२) खयाल । ध्यान । जैसे,—(क) मेरी समझ में उसने ऐसा कोई काम नहीं किया कि जिसके लिये उसकी निन्दा की जाय ।

(ख) मेरी समझ में उन्होंने तुमको जो उत्तर दिया, वह बहुत ठीक था।

समझदार-वि० [हिं० समझ + फा० दार] बुद्धिमान। अक्लमन्द।

समझना-क्रि० अ० [सं० सम्यक् ज्ञान] किसी बात को अच्छी तरह जान लेना। अच्छी तरह मन में बैठाना। भली भाँति हृदयङ्गम करना। अच्छी तरह ध्यान में लाना। ज्ञान प्राप्त करना। बोध होना। बूझना। जैसे,—मैंने जो कुछ कहा, वह तुम समझ गए होगे। (२) खयाल में आना। ध्यान में आना। विचार में आना। जैसे-(क) मैं समझता हूँ कि अब तुम्हारी समझ में यह बात आ गई होगी। (ख) तुम समझे न हो तो फिर समझ लो।

सं० क्रि०—जाना।—पड़ना।—रखना।—लेना।

मुहा०—समझ बूझकर = अच्छी तरह जान कर। ज्ञानपूर्वक। जैसे—तुमने बहुत समझ बूझ कर यह काम किया है। समझ रखना = अच्छी तरह जान रखना। भली भाँति हृदयंगम करना। जैसे—तुम समझ रखो कि अपने किए का फल तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। समझ लेना=(१) बदला लेना। प्रतिशोध लेना। जैसे—कल तुम चौक में आना; तुमसे समझ लेंगे। (२) समझौता करना। निपटारा। जैसे,—आप रुपए दे दीजिए; हम दोनों आपस में समझ लेंगे।

समझाना-क्रि० स० [हिं० समझना का स०] कोई बात अच्छी तरह किसी के मन में बैठाना। हृदयंगम कराना। ज्ञान प्राप्त कराना। ध्यान में जमाना। बोध कराना।

यौ०—समझाना बुझाना।

समझौता-संज्ञा पुं० [हिं० समझना] आपस का वह निपटारा जिसमें दोनों पक्षों को कुछ न कुछ दबना या स्वार्थ त्याग करना पड़े। राजी-नामा।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—होना।

समदन॰-संज्ञा स्त्री० [?] भेंट। उपहार। नजर। उ०—आपन देस खाहु सब औ चँदेरी लेहु। समुद जो समदन कीन्ह तोहि ते पाँचौ नग देहु।—जायसी।

समदना*-क्रि० अ० [?] प्रेमपूर्वक मिलना। भेंटना। उ०—समदि लोग पुनि चढ़ी बिवाना। जेहि दिन डरी सो आइ तुलाना।—जायसी।

क्रि० स०—(१) भेंट करना। उपहार देना। नजर करना। (२) विवाह करना। उ०—दुहिता समदौ सुख पाय अबै।—केशव।

समधियाना-संज्ञा पुं० [हिं० समधी + इयाना (प्रत्य०)] वह घर जहाँ अपनी कन्या या पुत्र का विवाह हुआ हो। समधी का घर।

समधी-संज्ञा पुं० [सं० सम्बन्धी] [स्त्री० समधिन] पुत्र या पुत्री का ससुर। वह जिसकी कन्या से अपने पुत्र का अथवा जिसके पुत्र से अपनी कन्या का विवाह हुआ हो।

समय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वक्त। काल। जैसे—समय परिवर्त्तनशील है।

मुहा० समय पर = ठीक वक्त पर।

(२) अवसर। मौका। जैसे,—समय चूकि पुनि का पछिताने। (३) अवकाश। फुरसत। जैसे—तुम्हें इस काम के लिये थोड़ा सा समय निकालना चाहिए।

क्रि० प्र०—निकालना।

(४) अंतिम काल। जैसे—उनका समय आ गया था; उन्हें बचाने का सब प्रयत्न व्यर्थ गया।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

(५) शपथ। प्रतिज्ञा। (६) आकार। (७) सिद्धांत। (८) संविद्। (९) निर्देश। (१०) भाषा। (११) संकेत। (१२) व्यवहार। (१३) संपद्। (१४) कर्त्तव्य पालन। (१५) व्याख्यान। प्रचार। घोषणा। (१६) उपदेश। (१७) दुःख का अवसान। (१८) नियम। (१९) धर्म। (२०) संन्यासियों, वैदिकों, व्यापारियों आदि के संघों में प्रचलित नियम। (स्मृति)

समय क्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिल्पियों या व्यापारियों का परस्पर व्यवहार के लिये नियम स्थिर करना। (बृहस्पति)

समरत्थ॰-वि० दे० "समर्थ"। उ० (क) लोकन की रचना रुचिर रचिबे को समरत्थ।—केशव। (ख) तुलसी या जग आइ कै कौन भयो समरत्थ।—तुलसी।

समरथ-वि० दे० "समर्थ" उ०—(क) सब बिधि समरथ राजै राजा दशरथ भगीरथ पथगामी गंगा कैसो जल है।—केशव। (ख) समरथ कै नहिं दोस गुसाईं।—तुलसी।

समवर्णोपधान-संज्ञा पुं० [सं०] बढ़िया और कीमती माल में घटिया माल मिलाना।

विशेष—चन्द्रगुप्त के समय में धान्य, घी, क्षार, नमक, औषध आदि में इस प्रकार की मिलावट करने पर १२ पण जुरमाना होता था। (कौ०)

समवेत-संज्ञा पुं० दे० "संभूयकारी" (२)।

समव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसमें २२५ सवार, ६७५ सिपाही तथा इतने ही घोड़े और रथ आदि के पादगोप हों।

समसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जिसमें संधि करनेवाला राजा या राष्ट्र अपनी पूरी शक्ति के साथ सहायता करने को तैयार हो। (कौ०)

समादान-संज्ञा पुं० [सं०] (२) ग्रहण किए हुए व्रतों या आचारों की उपेक्षा। (जैन)

समाधि-संज्ञा स्त्री० दे० "समाधान"। (क्व०) उ०-व्याधि भूतजनित उपाधि काहू खल की समाधि कीजै तुलसी को जानि जन फुर कै।—तुलसी।

समाधि मोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] पुरानी संधि तोड़ना। संधिभंग। (कौ०)

विशेष—चाणक्य ने इसके अनेक नियम दिए हैं। संधि के समय किसी पक्ष को दूसरे पक्ष से जो वस्तुएँ मिली हों, उन्हें किस प्रकार लौटाना चाहिए, किस प्रकार सूचना देनी चाहिए आदि बातों का उसने पूर्ण वर्णन किया है।

समानतोऽर्थापद्-संज्ञा पुं० [सं०] एक साथ ही चारो ओर से अर्थ-सिद्धि। (कौ०)

समाना-क्रि० अ० [सं० समाविष्ट] अंदर आना। भरना। अटना। जैसे-यह समाचार सुनते ही सब के हृदय में आनन्द समा गया। क्रि० स० किसी के अन्दर रखना। भरना। अटाना। जैसे-ये सब चीजें इसी बक्स के अन्दर समा दो।

समानिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसमें रगण, जगण और एक गुरु होता है। समानी। उ०—देखि देखि कै सभा। विप्र मोहियो प्रभा। राज मंडली लसै। देव लोक को हँसै।—केशव।

समानी-संज्ञा स्त्री० दे० "समानिका"।

समाप्त सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जो एक ही ढंग की लड़ाई करना जानती हो। वि० दे० "उपनिविष्ट"।

समाहर्ता-संज्ञा पुं० [सं०] (४) प्राचीन काल का राज-कर एकत्र करनेवाला प्रधान कर्म्मचारी। (कौ०)

विशेष—चन्द्रगुप्त के समय में इसका मासिक वेतन २००० पण था। यह जनपद को चार भागों में विभक्त करके और ग्रामों का ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ के नाम से विभाग करके करों के रजिस्टर में निम्नलिखित वर्गीकरण करता था—परिहारक, आयुधिक, धान्यकर, पशुकर, हिरण्यकर, कुप्यकर, विष्टिकर, और प्रतिकर। इनमें से प्रत्येक के लिये वह 'गोप' नियुक्त करता था जिनके अधिकार में पाँच से दस गाँवों तक रहते थे। इन गोपों के ऊपर स्थानिक होते थे।

समाहर्तृपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] समाहर्ता का कारिंदा। (कौ०)

समाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] पशु पक्षियों (तीतर, बटेर, हाथी, शेर, भैंसे आदि) को लड़ाने और बाज़ी लगाने का खेल।

विशेष—इसके संबंध में अर्थशास्त्र तथा स्मृतियों में अनेक नियम हैं।

समिधा, समिधि-संज्ञा स्त्री० [सं० समिध] लकड़ी, विशेषतः यज्ञकुंड में जलाने की लकड़ी। उ०—प्रेम वारि तर्पन भलो घृत सहज सनेह। संसय समिधि अगिनि छमा समता बलि देह।—तुलसी।

समीति&-संज्ञा स्त्री० दे० "समिति" उ०—राग दोष इरषा बिमोह बस रुची न साधु समीति।—तुलसी।

समीर-संज्ञा पु० [सं०] (३) प्राणवायु जिसे योगी वश में रखते हैं। उ०—कछु न साधन सिधि जानौं न निगम बिधि नहिं जप तप बस मन न समीर।—तुलसी।

समुंदर-फल-संज्ञा पुं० [हिं० समुंदर + फल] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो रुहेलखंड और अवध के जंगलों में झरनों के किनारे और नम ज़मीन पर होता है। बंगाल में भी यह अधिकता से होता है और दक्षिण भारत में लंका तक पाया जाता है। कहीं कहीं लोग इसे शोभा के लिये बागों में भी लगाते हैं। इसकी लकड़ी से प्रायः नावें बनती हैं। औषध में भी इसकी पत्तियों और छाल आदि का व्यवहार होता है। इंजर।

समुच्चय-संज्ञा पुं० [सं०] (४) वह आपत्ति जिसमें यह निश्चय हो कि इस उपाय के अतिरिक्त और उपायों से भी काम हो सकता है। (कौ०)

समुत्परिवर्त्तिम-संज्ञा पुं० [सं०] बेचे हुए पदार्थों में चालाकी से दूसरा पदार्थ मिला देना। (कौ०)

समुदाव&-संज्ञा पुं० दे० "समुदाय"। उ०—रच्यौ एक सब गुनिन को, बर बिरंचि समुदाव।—केशव।

समुहा†-वि० [सं० सम्मुख, पु० हिं० सामुहें] (१) सामने का। आगे का। (२) सामना। सीधा।

क्रि० वि०—सामने। आगे। उ०—मरिबे कौ साहसु करै बढ़े बिरह की पीर। दौरति ह्वै समुही ससी सरसिज सुरभि समीर।—बिहारी।

समुहाना†-क्रि० अ० [सं० सम्मुख, पु० हिं० सामुहें] सामने आना। सम्मुख होना। उ०—सबही त्यौं समुहाति छिनु चलति सबनु दै पीठि। वाही त्यौं ठहराति यह कबिल-नबी लौं दीठि।—बिहारी।

समूह-हितवादी-संज्ञा पुं० [सं०] जनता के हित साधन में तत्पर रहनेवाला। जनता का प्रतिनिधि। (स्मृति)

विशेष—याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि किसी स्थान का शासन धर्मज्ञ, निर्लोभ और पवित्र समूह-हितवादियों के हाथ में देना चाहिए।

समौरिया†-वि० [हिं० सम + उमरिया] बराबर उम्रवाला। समवयस्क।

सम्मन-संज्ञा पुं० [अं० समन्ज] अदालत का वह सूचनापत्र या आदेशपत्र जिसमें किसी को निर्दिष्ट समय पर अदालत में उपस्थित या हाजिर होने की सूचना या आदेश लिखा रहता है। तलबीनामा। इत्तिलानामा। आह्वानपत्र।

क्रि० प्र०-आना।—देना।—निकलना।—निकलवाना।—जारी कराना।—जारी होना।—तामील होना।—तामील कराना।

सयन&-संज्ञा पुं० [सं० शयन] शयन करने का आसन। बिस्तर।

उ०—निज कर राजीवनयन पल्लव-दल रचित सयन प्यास परसपर पियूष प्रेम-पानकी।—तुलसी।

सयान-संज्ञा पुं० दे० "सयानपन"। उ०—आई गौने कालि ही, सीखी कहा सयान। अब ही तैं रूसन लगी, अबही तैं पछितान।—मतिराम।

सयानपत-संज्ञा स्त्री० [हिं० सयाना+पत (प्रत्य०)] चालाकी। धूर्त्तता।

सयानपन-संज्ञा पुं० [हिं० सयान+पन (प्रत्य०)] (१) सयाना होने का भाव। (२) चतुरता। बुद्धिमानी। होशियारी। (३) चालाकी। धूर्त्तता।

सयाना-वि० [सं० सज्ञान] (१) अधिक अवस्थावाला। वयस्क। जैसे,—अब तुम लड़के नहीं हो; सयाने हुए। (२) बुद्धिमान्। चतुर। होशियार। (३) चालाक। धूर्त्त।

संज्ञा पुं० (१) बड़ा बूढ़ा। वृद्ध पुरुष। (२) वह जो झाड़ फूँक करता हो। जंतर मंतर करनेवाला। ओझा। (३) चिकित्सक। हकीम। (४) गाँव का मुखिया। नंबरदार।

सयानाचारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सयाना+चार (प्रत्य०)] वह रसूम जो गाँव के मुखिया को मिलता है।

सयोनीवपथ-संज्ञा पुं० [सं०] खेतों में जानेवाला मार्ग।

सरंडर-वि० [अं० सरंडर्ड] जिसने अपने को दूसरे के हवाले किया हो। जिसने दूसरे के सम्मुख आत्मसमर्पण किया हो। उपस्थित। हाजिर। जैसे,—उन पर गिरिफ्तारी का वारंट था; सोमवार को वे अदालत में सरंडर हो गए।

क्रि० प्र०—होना।

सर-संज्ञा स्त्री० [सं० शर] चिता। उ०—पाएउँ नहिं होइ जोगी जती। अब सर चढ़ौं जरौं जस सती।—जायसी।

सरक-संज्ञा पुं० [?] (६) शराब का खुमार। उ०—बय अनुहरत बिभूपन विचित्र अंग जोहे जिय अति सनेह की सरक सी—तुलसी।

सरख़त-संज्ञा पुं० [फा०] (३) आज्ञापत्र। परवाना। उ०—आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सबै तुलसी निहाल कै कै दियो सरखतु हैं।—तुलसी।

सरग☸†-संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग"। उ०—मूल पताल सरग ओहि साखा। अमर बेलि को पाय को चाखा।—जायसी।

सर-घर-संज्ञा पुं० [सं० शर+हिं० घर] वह खाना जिसमें तीर रखे जाते हैं। तरकश। तूणीर। उ०—लोने लोने धनुष विशिष कर छयलनि लोने मुनिपट कटि लोने सर-घर हैं।—तुलसी।

सरजना☸-क्रि० स० [सं० सृजन] (१) सृष्टि करना। (२) रचना। बनाना।

सरदार-तंत्र-संज्ञा पुं० [फा० सरदार+सं० तंत्र] एक प्रकार की सरकार जिसमें राजसत्ता या शासनसूत्र सरदारों, बड़े बड़े ताल्लुकेदारों या ऐश्वर्यशाली नागरिकों के हाथ में रहता है। कुलीनतंत्र। अभिजाततंत्र। कुलतंत्र। वि० दे० "एरिस्टोक्रैसी"।

सरवाला-संज्ञा स्त्री० [देश०] उत्तरी भारत की रेतीली भूमि में होनेवाली एक प्रकार की बारहमासी घास जो चारे के लिये अच्छी समझी जाती है। बादरी।

सरफोंकी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो प्रायः रेतीली भूमि में होता है। यह वर्षा और शरद ऋतु में फूलता है। इसका व्यवहार ओषधि के रूप में होता है।

सरनदीप-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्ण द्वीप या सिंहल द्वीप] लंका का एक प्राचीन नाम जो अरबवालों में प्रसिद्ध था। उ०—दिया दीप नहिं तम उँजियारा। सरनदीप सरि होइ न पारा।—जायसी।

सरवान†-संज्ञा पुं० [?] तंबू। खेमा। उ०—उठि सरवान गगन लगि छाए। जानहु राते मेघ देखाए।—जायसी।

सरवाला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की लता जिसे घोड़ाबेल भी कहते हैं। बिलाई कंद इसी की जड़ होती है। वि० दे० "घोड़ा बेल"।

सरस-वि० [सं०] (९) बढ़ कर। उत्तम। उ०—ब्रह्मानंद हृदय दरस सुख लोचननि अनुभए उभय सरस राम जागे हैं।—तुलसी।

सरसौंहाँ†-वि० [हिं० सरस+औहाँ (प्रत्य०)] रस युक्त किया हुआ। सरस बनाया हुआ। उ०—तिय-तरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह। घर-परसौंहैं ह्वै रहे झर बरसौंहैं मेह।—बिहारी।

सराई†-संज्ञा स्त्री० [?] पाजामा।

सरार-संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ा-बेल नाम की लता जिसकी जड़ बिलाई-कंद कहलाती है। वि० दे० "घोड़ा बेल"।

सरित-संज्ञा स्त्री० [सं० सरित्] सरिता। नदी। उ०—दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में।—केशव।

सरुहाना☸-क्रि० स० [?] चंगा करना। अच्छा करना। उ०—समुझि रहनि सुनि कहनि बिरह व्रत अनघ अमिय औषध सरुहाए।—तुलसी।

सरोजना☸-क्रि० स० [?] पाना। उ०—हम सालोक्य स्वरूप सरोज्यो रहत समीप सहाई। सो तजि कहत और की औरै तुम अलि बड़े अदाई।—सूर।

सर्किल-संज्ञा पुं० [अं०] कई महल्लों, गाँवों या कसबों आदि का समूह जो किसी काम के लिये नियत हो। हलका जैसे,—सर्किल अफसर, सर्किल इन्सपेक्टर।

सक्युँट हाउस-संज्ञा पुं० [अं०] जिले के प्रधान नगर में वह

सरकारी मकान या कोठी जहाँ, दौरा करते हुए उच्च राज-कर्मचारी या बड़े अफसर लोग ठहरते हैं। सरकारी कोठी।

सर्क्युलर-संज्ञा पुं० [अं०] वह पत्र, विज्ञप्ति या सूचना जो बहुत से व्यक्तियों के नाम भेजी जाय। गश्ती चिट्ठी।

सर्च-लाइट-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की बहुत तेज बिजली की रोशनी जिसका प्रकाश रिफ्लेक्टर या प्रकाश-परावर्त्तक के द्वारा लंबाई में बहुत दूर तक जाता है। प्रकाश इतना तेज होता है कि आँखें सामने नहीं ठहरतीं और दूर तक की चीजें साफ दिखाई देती हैं। दुर्घटना के बचाव के लिये पहले प्रायः जहाजों पर ही इसका उपयोग होता था; पर आजकल मेल, एक्सप्रेस आदि ट्रेनों के एंजिनों के आगे भी यह लगी रहती है। अन्वेषक प्रकाश। प्रकाश-प्रक्षेपक।

सर्पसारी व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह भोगव्यूह जिसमें पक्ष, कक्ष तथा उरस्य विषम हों। (कौ०)

सर्वतोभोगी-संज्ञा पुं० [सं०] वह वश्य मित्र जो अमित्रों, आसारों (संगी साथियों) पड़ोसियों तथा जांगलिकों से रक्षा करे। (कौ०)

सर्वदण्ड नायक-संज्ञा पुं० [सं०] सेना या पुलिस का एक ऊँचा अधिकारी।

सर्वभोग-संज्ञा पु० [सं०] वह वश्य मित्र जो सेना, कोश तथा भूमि से सहायता करे। (कौ०)

सर्वभोग सह-संज्ञा पुं० [सं०] सब प्रकार से उपयोगी। सब प्रकार के कामों में समर्थ। (कौ०)

सर्वस्व संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्वस्व देकर शत्रु से की हुई संधि।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि शत्रु के साथ यदि ऐसी संधि करनी पड़े तो राजधानी को छोड़ कर शेष सब उसको सपुर्द कर देना चाहिए।

सर्वहित कर्म-संज्ञा पुं० [सं०] सामाजिक समारोह, उत्सव या जलसा आदि।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि जो नाटक आदि सामाजिक जलसों में योग न दे, उसे उसमें सम्मिलित होने या उसे देखने का अधिकार नहीं है; उसे हटा देना चाहिए। यदि न हटे तो वह दण्ड का भागी हो।

सर्वार्थसिद्धि-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार सब से ऊपर का अनुत्तर या स्वर्गों के ऊपर का लोक।

सर्वेयर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो सर्वे अर्थात् जमीन की नाप जोख करता हो। पैमाइश करनेवाला। अमीन।

सलपन-संज्ञा पुं० [देश०] दो तीन हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी जिसकी टहनियों पर सफेद रोएँ होते हैं। यह प्रायः सारे भारत, लंका, बरमा, चीन और मलाया में पाई जाती है। यह वर्षा ऋतु में फूलती है। इसका व्यवहार ओषधि रूप में होता है।

सलाक*-संज्ञा स्त्री० [फा० सलाख] बाण। तीर। उ०—शुद्ध सलाक समान लसी अति रोषमयी दृग दीठि तिहारी।—केशव।

सलार†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया। उ०—चकई चकवा और पिदारे। नकटा लेदी सोन सलारे।—जायसी।

सलाही-संज्ञा पुं० [अ० सलाह] सलाहकार। परामर्शदाता। जैसे,—कानूनी सलाही। (भारतीय शासन पद्धति।) (क्व०)

सविनय कानून भंग-संज्ञा पुं० [सं० सविनय + फा० कानून + सं० भंग] नम्रता या भद्रतापूर्वक राज्य की किसी ऐसी व्यवस्था या कानून अथवा आज्ञा को न मानना जो अपमान-जनक और अन्यायमूलक प्रतीत हो और ऐसी अवस्था में राज्य की ओर से होनेवाले पीड़न तथा कारादंड आदि को धीरता-पूर्वक सहन करना। भद्र अवज्ञा। सिविल डिस-ओबीडिएंस।

सस*-संज्ञा पुं० [सं० शस्य] (१) खेती बारी। उ०—सपने के सौतुख सुख सस सुर सींचत देत बिराइ के।—तुलसी।

ससहर*-संज्ञा पुं० [सं० शशिधर] चंद्रमा। उ०—सोइ सूर तुम ससहर आनि मिलावौं सोइ। तस दुख महँ सुख उपजै रैनि माँह दिन होइ।—जायसी।

ससुरा-संज्ञा पुं० [सं० श्वसुर] (१) श्वसुर। ससुर। (२) एक प्रकार की गाली। जैसे,—वह ससुरा हमारा क्या कर सकता है। (३) दे० "ससुराल"। उ०—कित यह रहसि जो आउब करना। ससुरेइ अंत जनम दुख भरना।—जायसी।

सस्पेंड-वि० [अं०] जो किसी काम से, किसी अभियोग के संबंध में, जाँच पूरी न होने तक, अलग कर दिया गया हो। जो किसी काम से किसी अपराध पर, कुछ समय के लिये छुड़ा दिया गया हो। मुअत्तल। जैसे,—उस पर घूस लेने का अभियोग है; इसलिये वह सस्पेंड कर दिया गया है।

क्रि० प्र०—करना।

सह-संज्ञा पुं० [सं०] (६) प्राचीन काल की एक प्रकार की वनस्पति या बूटी जिसका व्यवहार यज्ञों आदि में होता था।

सहगवन* संज्ञा पुं० दे० "सहगमन"।

सहजअरि प्रकृति-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो विजेता का पड़ोसी और स्वभावतः शत्रुता रखनेवाला हो।

सहजमित्र प्रकृति-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो विजेता का पड़ोसी, कुलीन तथा स्वभाव से ही मित्र हो।

सहयोगवाद-संज्ञा पुं० [सं०] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से

सहयोग अर्थात् उसके साथ मिल कर काम करने का सिद्धांत।

सहयोगवादी-संज्ञा पुं० [सं० सहयोग + वादिन्] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से सहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिल कर काम करने के सिद्धांत को माननेवाला।

सहस्रार-संज्ञा पुं० [सं०] (२) जैनों के अनुसार बारहवें स्वर्ग का नाम।

सहुँ⊛†-अव्य० [सं० सन्मुख] (१) सन्मुख। सामने। (२) ओर। तरफ। उ०—जा सहुँ हेर जाइ सो मारा। गिरिवर टरहिं भौंह जो टारा।—जायसी।

सहेट-संज्ञा पुं० दे० "सहेत"। उ०—भौन तें निकसि बृषभानु की कुमारी देख्यो ता समै सहेट को निकुंज गिर्यो तीर को।—मतिराम।

साँकर-संज्ञा पुं० [सं० संकीर्ण] कष्ट। संकट। उ०—(क) साँकरे की साँकरन सनमुख हो न तोरै।—केशव। (ख) मुकती साँठि गाँठि जो करै। साँकर परे सोइ उपकरै।—जायसी।

साँटिया†-संज्ञा पुं० [हिं० साँटी] डौंडी पीटनेवाला। डुग्गीवाला। उ०—चहुँ दिसि आन साँटिया फेरी। भै कटकाई राजा केरी।—जायसी।

साँठ गाँठ-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ + अनु० साँठ] (१) मेल मिलाप। (२) छिपा और दूषित संबंध। गुप्त संबंध या लगाव। जैसे,—उस स्त्री से उसकी साँठ गाँठ थी। (३) षड्यंत्र। साजिश। जैसे,—उन दोनों ने साँठ गाँठ कर उसे वहाँ से निकलवा दिया।

साँठना⊛-क्रि० स० [हिं० साँठ] पकड़े रहना। उ०—नाथ सुनी ! भृगुनाथ कथा बलि बालि गए चलि बात के साँठे।—तुलसी।

साँभर⊛†-संज्ञा पुं० [सं० संवल या संभार] मार्ग के लिये साथ में लिया हुआ जलपान या भोजन। संवल। पाथेय। उ०—जावत अहहिं सकल अरकाना। साँभर लेहु दूरि है जाना।—जायसी।

साँवन-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसका तना प्रायः झुका हुआ होता है। इसकी छाल पतली और भूरे रंग की होती है। यह देहरादून, अवध, बुंदेलखंड और हिमालय में ४००० फुट तक की ऊँचाई पर पाया जाता है। फागुन-चैत में पुरानी पत्तियों के झड़ने और नई पत्तियों के निकलने पर इसमें फूल लगते हैं। इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो ओषधि रूप में काम आता और मछलियों के लिये विष होता है। इसके हीर की लकड़ी मजबूत और कड़ी होती है और सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। पशु इसकी पत्तियाँ बड़े चाव से खाते हैं।

सांव्यावहारिक-संज्ञा पुं० [सं०] कंपनी के हिस्सेदार होकर काम या व्यापार करनेवाला व्यापारी।

साउथ-संज्ञा पुं० [अं०] दक्षिण दिशा।

साका-संज्ञा पुं० [सं० शाका] (७) समय। अवसर। मौका। उ०—जो हम मरन-दिवस मन ताका। आजु आइ पूजी वह साका।—जायसी।

साक्षिमान् आधि-संज्ञा पुं० [सं०] साक्षियों के सामने गिरवी रखा हुआ धन जिसकी लिखा पढ़ी न की गई हो।

साखी⊛-संज्ञा पुं० [सं० शाखिन्] (शाखाओं वाला) वृक्ष। पेड़। उ०—(क) तुलसीदल रूँध्यो चहैं सठ साखि सिहारे।—तुलसी। (ख) अरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी।—जायसी।

सात्त्विक-संज्ञा पुं० [सं०] (५) चार प्रकार के अभिनयों में से एक। सात्त्विक भावों को प्रदर्शित करके, हँसने, रोने, स्तंभ और रोमांच आदि के द्वारा अभिनय करना।

साध-वि० [सं० साधु] उत्तम। अच्छा। उ०—अशेष शास्त्र विचार कै जिन जानियो मत साध।—केशव।

साधना-क्रि० स० [सं०] (९) अपनी ओर मिलाना या काबू में करना। वश में करना। उ०—गाधिराज को पुत्र साधि सब मित्र शत्रु बल।—केशव।

साम⊛-संज्ञा पुं० दे० "सामान"। उ०—बालमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो।—तुलसी।

सामक-संज्ञा पुं० [सं०] (४) समान धन।

सामयिक पत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह इकरारनामा या दस्तावेज जिसमें बहुत से लोग अपना अपना धन लगा कर किसी मुकदमे की पैरवी करने के लिये लिखा पढ़ी करते हैं। (शुक्रनीति) (२) समाचार-पत्र। अखबार। सामयिक पत्र।

सामरिकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] समर या समर संबंधी कार्यों में लिप्त रहना। युद्ध। लड़ाई भिड़ाई।

सामरिक वाद-संज्ञा पुं० [सं० सामरिक + वाद] वह सिद्धान्त जिसके अनुसार राष्ट्र सामरिक कार्यों—सेना बढ़ाने, नित्य नए नए भयंकर और घातक युद्धोपकरण बनवाने आदि की ओर अधिकाधिक ध्यान दे। विराट् सेना रखने का सिद्धान्त।

सामवायिक राज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वे राज्य जो किसी युद्ध के निमित्त मिल गए हों।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि सामवायिक शत्रु राज्यों से कभी अकेला न लड़े।

साम्राज्य वाद-संज्ञा पुं० [सं० साम्राज्य + वाद] साम्राज्य के देशों की रक्षा और वृद्धि या विस्तार का सिद्धान्त।

साम्राज्यवादी-संज्ञा पुं० [सं० साम्राज्य + वादिन्] वह जो साम्रा-

ज्य शासन-प्रणाली का पक्षपाती और अनुरागी हो। वह जो साम्राज्य की स्थापना और उसकी विस्तार-वृद्धि का पक्षपाती हो।

सार-संज्ञा स्त्री० [हिं० सारना] (३) खबरदारी। सँभाल। हिफाजत। उ०—भरन सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे।—तुलसी।

सारना-क्रि० स० [हिं० सरना का सक० रूप] (६) (अस्त्र आदि) चलाना। संचालित करना। उ०—ससि पर करवत सारा राहू। नखतन्ह भरा दीन्ह बड़ दाहू।—जायसी।

सारभांड-संज्ञा पुं० [सं०] (४) चोखा माल। असली माल।

सार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (४) व्यापारी माल। (कौ०) (५) कारबार करनेवाला। व्यापारी। रोजगारी।

सार्थातिवाह्य-संज्ञा पुं० [सं०] माल की चलान। (कौ०)

सार्वराष्ट्रीय-वि० [सं०] जिसका दो या अधिक राष्ट्रों से संबंध हो। भिन्न भिन्न राष्ट्र संबंधी। जैसे, सार्वराष्ट्रीय प्रश्न। सार्वराष्ट्रीय राजनीति।

सालपान-संज्ञा पुं० [सं० शालिपर्णी ?] एक प्रकार का क्षुप जो देहरादून, अवध और गोरखपुर की नम भूमि में पाया जाता है। यह वर्षा ऋतु के अंत में फूलता है। इसकी जड़ का ओषधि के रूप में व्यवहार होता है। कसरवा। चाँचर।

सालिसिटर-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का वकील जो कलकत्ते और बंबई के हाइकोर्टों में होनेवाले मुकदमे लेता और उनके कागज पत्र तैयार करके बैरिस्टर को देता है। एटर्नी। एडवोकेट।

विशेष—ये हाइकोर्टों में बहस नहीं कर सकते, पर अन्य अदालतों में इन्हें बहस करने का पूरा अधिकार है। इनका दर्जा एडवोकेट के समान ही है।

सावज†-संज्ञा पुं० [?] जंगली जानवर जिनका शिकार किया जाता है।

सावत॥-संज्ञा पुं० [हिं० सौत] (१) सौतों में होनेवाला पारस्परिक द्वेष। सौतिया डाह। (२) ईर्ष्या। डाह। उ०—तहँ गए मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटति न सावत।—तुलसी।

सावधि आधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जो इस शर्त पर रखी जाय कि इतने दिनों के अंदर अवश्य छुड़ा ली जायगी।

सासन-संज्ञा पुं० दे० "शासन"। उ०—पुत्र श्री दशरथ के बनराज सासन आइयो।—केशव।

सासना॥-संज्ञा स्त्री० दे० "शासन"। उ०—सासना न मानई जो कोटि जन्म नर्क जाय।—केशव।

साहजिक धन-संज्ञा पुं० [सं०] पारितोषिक, वेतन, विजय आदि में मिला हुआ धन। (शुक्रनीति)

साहित्यिक-वि० [सं० साहित्य] साहित्य संबंधी। जैसे,—साहित्यिक चर्चा।

संज्ञा पुं० वह जो साहित्य सेवा में संलग्न हो। साहित्यसेवी। जैसे,—वहाँ कितने ही प्रसिद्ध साहित्यिक उपस्थित थे।

सिंगार हाट-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिंगार + हाट = बाजार वेश्याओं] के रहने का स्थान। चकला।

सिंघेला†-संज्ञा पुं० [सं० सिंह + एला (प्रत्य०)] शेर का बच्चा। उ०—तौ लगि गाज न गाज सिंघेला। सौंह साह सौं जुरौं अकेला।—जायसी।

सिंडिकेट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) सिनेट या विश्वविद्यालय की प्रबंध-सभा के सदस्यों या प्रतिनिधियों की समिति। (२) धनी, व्यापारियों या जानकार लोगों की ऐसी मंडली जो किसी कार्य्य को, विशेष कर अर्थ संबंधी उद्योग या योजना को अग्रसर करने के लिये बनी हो।

सिंह-संज्ञा पुं० [सं०] (१२) दिगंबर जैन साधुओं के चार भेदों में से एक।

सिखंड-संज्ञा पुं० [सं० शिखंड] मोर की पूँछ। मयूरपक्ष। उ०—सिरनि सिखंड सुमन दल मंडन बाल सुभाय बनाए।—तुलसी।

सिद्धि गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गुटिका जिसकी सहायता से रसायन बनाया या इसी प्रकार की और कोई सिद्धि की जाती हो। उ०—सिधि गुटिका अब मो सँग कहा। भएउँ राँग सन हिय न रहा।—जायसी।

सिनेमा-संज्ञा पुं० [अं०] वह मकान जहाँ बायस्कोप दिखाया जाता है।

यौ०—सिनेमा हाउस।

सिराजी-संज्ञा पुं० [फा० शीराज (नगर)] शीराज का घोड़ा। उ०—अबलक अरबी लखी सिराजी। चौधर चाल समँद भल ताजी।—जायसी।

सिलेक्ट कमिटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कमिटी जिसमें कुछ चुने हुए मेंबर या सदस्य होते हैं और जो किसी महत्व के विषय पर विचार कर अपना निर्णय साधारण सभा में उपस्थित करती है।

सिविल डिस-ओबीडिएंस-संज्ञा पुं० दे० "सविनय कानून भङ्ग"।

सिविल प्रोसीजर कोड-संज्ञा पुं० [अं०] न्याय-विधान। जाब्ता दीवानी।

सिविल वार-संज्ञा पुं० दे० "गृहयुद्ध"।

सी० आई० डी०-संज्ञा पुं० दे० "क्रिमिनल इनवेस्टिगेशन डिपार्ट-

मेंट"। जैसे,--सी० आई० डी० ने संदेह पर एक आदमी को गिरिफ्तार किया।

सीक्रेट-वि० [अं०] छिपा हुआ। गुप्त। पोशीदा। जैसे,—सीक्रेट पुलिस। सीक्रेट कमिटी।

संज्ञा पुं० गुप्त बात। जैसे,—गवर्नमेंट-सीक्रेट बिल।

सीझना-क्रि० अ० [सं० सिद्ध] (८) मिलने के योग्य होना। प्राप्तव्य होना। जैसे,--(क) बयाना हुआ और तुम्हारी दलाली सीझी। (ख) यह मकान रेहन रख लोगे तो १) सैकड़े का ब्याज सीझेगा।

सीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१०) सीताध्यक्ष के द्वारा एकत्र किया हुआ अनाज। (११) जैनों के अनुसार विदेह की एक नदी का नाम।

सीतात्यय-संज्ञा पुं० [सं०] किसानों पर होनेवाला जुरमाना। खेती के संबंध का जुरमाना। (कौ०)

सीतोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार विदेह की एक नदी का नाम।

सीपति*-संज्ञा पुं० (सं० श्रीपति] विष्णु।

सीमाकर्षक-संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम की सीमा पर हल जोतने या खेती करनेवाला। (परा० स्मृति)

सीमावरोध-संज्ञा पुं० [सं०] सीमा स्थिर होना। हदबंदी। (कौ०)

सीरियल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह लंबी कहानी या दूसरा लेख जो कई बार और कई हिस्सों में निकले। (२) वह कहानी या किस्सा जो बायस्कोप में कई बार और हिस्सों में दिखाया जाय।

सीरीज़-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक ही वस्तु का लगातार क्रम। सिलसिला। श्रेणी। लड़ी। माला। जैसे,--बाल साहित्य सीरीज की पुस्तकें अच्छी होती हैं।

सीस्मोग्राफ-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का यंत्र जिससे भूकंप होने का पता लगता है। (इस यंत्र से यह मालूम हो जाता है कि भूकंप किस दिशा में, कितनी दूर पर हुआ है, और उसका वेग हलका था या जोर का।)

सुआउ*-वि० [सं० सु + आयु] जिसकी आयु बड़ी हो। दीर्घायु। उ०—सुधन न सुमन सुआउ सो।—तुलसी।

सुआसिनी*-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुहागिन] (२) वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सौभाग्यवती स्त्री।

सुख-वि० [सं०] (१) स्वाभाविक। सहज। उ०—जाके सुख मुखबास ते बासित होत दिगंत।—केशव। (२) सुख देनेवाला। सुखद।

क्रि० वि० (१) स्वाभाविक रीति से। साधारण रीति से। उ०—कहुँ द्विज गण मिलि सुख श्रुति पढ़हीं।—केशव। (२) सुखपूर्वक। आराम से।

सुखदगीत-वि० [सं० सुखद + गीत] जिसकी बहुत अधिक प्रशंसा हो। प्रशंसनीय। उ०—जनक सुखदगीता पुत्रिका पाया सीता।—केशव।

सुखसार-संज्ञा पुं० [सं० सुख + सार] मुक्ति। मोक्ष। उ०—केशव तिनसों यों कह्यौ क्यों पाऊँ सुखसारु।—केशव।

सुचा†-संज्ञा स्त्री० [सं० सूचना] ज्ञान। चेतना। सुध। उ०—रही जो मुइ नागिनि जसि तुचा। जिउ पाएँ तन कै भइ सुचा।—जायसी।

सुटुकना†-क्रि० अ० [अनु०] चुपके या धीरे से भाग जाना। सरकना।

सुठि*†-अव्य० [सं० सुष्ठु] पूरा पूरा। बिलकुल। उ०—हिये जो आखर तुम लिखे ते सुठि लीन्ह परान।—जायसी।

सुतंत्र-क्रि० वि० [सं० स्वतंत्र] स्वतंत्रतापूर्वक। स्वच्छंदतापूर्वक। (कौ०) उ०—बिधि लिख्यो शोधि सुतंत्र। जनु जपाजप के मंत्र।—केशव।

सुधागेह*-संज्ञा पुं० [सं० सुधा + गेह = घर] चंद्रमा। उ०—देह सुधागेह ताहि मृगहु मलीन कियो ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है।—तुलसी।

सुपरवाइज़र-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी काम की देख भाल या निगरानी करता हो। निरीक्षण करनेवाला। निगरानी करनेवाला।

सुबाहु-संज्ञा स्त्री० [सं० सु + बाहु] सेना। फौज। उ०—रैयत राज समाज कर तन धन धरम सुबाहु। शांत सुसचिवन सौंपि सुख बिलसहि नित नरनाहु—तुलसी।

सुमंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (४) आय-व्यय का प्रबंध करनेवाला मंत्री। अर्थ-सचिव।

विशेष—सुमन्त्र का कर्तव्य यह बतलाया गया है कि वह राजा को सूचित करे कि इस वर्ष इतना द्रव्य संचित हुआ है, इतना व्यय हुआ है, इतना शेष है, इतनी स्थावर सम्पत्ति है और इतनी जंगम सम्पत्ति है।

सुरंग-वि० [सं०] (४) लाल रंग का। रक्त वर्ण। उ०—पहिरे बसन सुरंग पावक युत स्वाहा मनो।—केशव। (५) निर्मल। स्वच्छ। साफ। उ०—अति वदन शोभ सरसी सुरंग। तहँ कमल नयन नासा तरंग।—केशव।

सुरता*-वि० [हिं० सुरत] समझदार। होशियार। सयाना। चालाक।

सुरपति-संज्ञा पुं० [सं०] (२) विष्णु का एक नाम। उ०—सुरपति गति मानी, सासन मानी, भृगुपति को सुख भारी।—केशव।

सुरपालक- संज्ञा पुं०[सं०] इन्द्र । उ०—आनंद के कन्द, सुरपालक के बालक ये ।—केशव ।

सुराय॥-संज्ञा पुं० [सं० सु + राय = राजा] श्रेष्ठ नृपति । अच्छा राजा । उ०—बहु भाँति पूजि सुराय । कर जोरि कै परि पाय ।—केशव ।

सुराल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की लता जिसकी जड़ बिलाई कंद कहलाती है । वि० दे० "घोड़ा-बेल" ।

सुलग-अव्य० [हिं० सु + लगना] पास । समीप । निकट । उ०—मुनि वेष धरे धनु सायक सुलग हैं । तुलसी हिये लसत लोने लोने डग हैं ।—तुलसी ।

सुषिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१०) वंशी आदि मुँह से फूँक कर बजाए जानेवाले बाजों में से निकलनेवाली ध्वनि ।

सुस्ताई॥-संज्ञा स्त्री० दे० "सुस्ती" । उ०—पंथी कहाँ कहाँ सुस्ताई । पंथ चलै तब पंथ सेराई ।—जायसी ।

सुहेल-संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रसिद्ध चमकीला सितारा जो फारसी तथा अरबी के कवियों के अनुसार यमन देश में उगता है । कहते हैं कि इसके उदय होने पर सब कीड़े मकोड़े मर जाते हैं और चमड़े में सुगंध उत्पन्न हो जाती है । यह शुभ और सौभाग्य का सूचक माना जाता है । उ०—बिछुरंता जब भेंटै सो जानै जेहि नेह । सुक्ख सुहेला उग्गवै दुःख झरे जिमि मेह ।—जायसी ।

सूक॥-संज्ञा पुं० [सं० शुक्र] शुक्र नक्षत्र । उ०—जग सूझा एकै नयनाहाँ । उआ सूक जस नखतन्ह माहाँ ।—जायसी ।

सूचीव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें सैनिक एक दूसरे के पीछे खड़े किए गए हों । (कौ०)

सूट-संज्ञा पुं० [अं०] दावा । नालिश । जैसे,—उसने हाईकोर्ट में तुम पर सूट दायर किया है ।

सूत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (३) लोहे के तारों का बना हुआ कवच । (कौ०)

सूत्रवान कर्मांत-संज्ञा पुं० [सं०] कपड़ा बुनने का कारखाना ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में राज्य अपनी ओर से इस ढंग के कारखाने खड़े करता था और लोगों को मजदूरी देकर उनसे काम लेता था ।

सूत्रशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूत कातने या इकट्ठा करने का कारखाना ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में नियम था कि जो स्त्रियाँ बड़े तड़के अपना काता हुआ सूत सूत्रशाला में ले जाती थीं, उनको उसी समय उसका मूल्य मिल जाता था । इस प्रकार स्त्रियों की जीविका का उपयुक्त प्रबन्ध हो जाता था ।

सूत्राध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] कपड़ों के व्यापार का अध्यक्ष ।

सूदना॥-क्रि० स० [सं० सूदन] नाश करना । उ०—मुदित मन बर बदन सोभा उदित अधिक उछाहु । मनहुँ दूरि कलंक करि ससि समर सूधो राहु ।—तुलसी ।

सूरज-संज्ञा पुं० (सं० शूर + ज (प्रत्य०)) शूर या वीर का पुत्र । बहादुर का लड़का । उ०—डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भजहीं ।—केशव ।

सेंट्रल-वि० [अं०] जो केंद्र या मध्य में हो । केंद्रीय । प्रधान । मुख्य । जैसे,—सेंट्रल गवर्नमेंट । सेंट्रल कमेटी । सेंट्रल जेल ।

सेंशर-संज्ञा पुं० [अं०] दोष । इलजाम । निंदा । तिरस्कार । भर्त्सना ।

सेंसर-संज्ञा पुं० [अं०] वह सरकारी अफसर जिसे पुस्तक पुस्तिकाएँ विशेष कर समाचार पत्र छपने या प्रकाशित होने, नाटक खेले जाने, फिल्म दिखाए जाने या तार कहीं भेजे जाने के पूर्व देखने या जाँचने का अधिकार होता है । यह जाँच इसलिये होती है कि कहीं उनमें कोई आपत्तिजनक या भड़कानेवाली बात तो नहीं है ।

विशेष—बायस्कोप के फिल्मों या नाटकों की जाँच और काट छाँट करने के लिये तो सेंसर बराबर रहता है, पर समाचार-पत्रों और तार-घरों में उसी समय सेंसर बैठाए जाते हैं जब देश में विद्रोह या किसी प्रकार की उत्तेजना फैली होती है अथवा किसी देश से युद्ध छिड़ा होता है । सेंसर ऐसी बातों को प्रकाशित नहीं होने देता जिनसे देश में और भी उत्तेजना फैल सकती हो अथवा शत्रु या विरोधी को किसी प्रकार का लाभ पहुँचता हो ।

सेंसस-संज्ञा पुं० दे० "मर्दुमशुमारी" ।

सेटिल-वि० [अं० सेटिल्ड] जो निपट गया हो । जो ते हो गया हो । जैसे,—इन दोनों का मामला आपस में सेटिल हो गया ।

सेटिलमेंट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) खेती के लिये भूमि को नाप कर उसका राज-कर निर्द्धारित करने का काम । जमीन नाप कर उसका लगान नियत करने का काम । बंदोबस्त । (२) एक देश के लोगों की दूसरे देश में बसी हुई बस्ती । उपनिवेश ।

सेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१२) वह मकान जिसमें धरनें छत के साथ लोहे की कीलों से जड़ी हों ।

सेतुपथ-संज्ञा पुं० (सं०) दुर्गम स्थानों में जानेवाली सड़क । ऊँची नीची पहाड़ी घाटियों में जानेवाली सड़क ।

सेतुबंध-संज्ञा पुं० (सं०) (३) नहर ।

विशेष—कौटिल्य ने नहरें दो प्रकार की कही हैं—आहार्य्योदक और सहोदक । आहार्योदक वह है जिसमें पानी नदी, ताल आदि से खींच कर लाया जाता है । सहोदक में झरने से

पानी आता रहता है। इनमें से दूसरे प्रकार की नहर अच्छी कही गई है।

सेन-संज्ञा पुं० [सं०] (६) दिगम्बर जैन साधुओं के चार भेदों में से एक।

सेनयार-संज्ञा पुं० [इटा०] (स्त्री० सेनयोरा) इटली में नाम के आगे लगाया जानेवाला आदरसूचक शब्द। अंग्रेजी 'सर' या 'मिस्टर' शब्द का समानार्थवाची शब्द। महाशय। महोदय।

सेनाभक्त-संज्ञा पुं० (सं०) सेना के लिये रसद और बेगार।

सेनेटर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) सेनेट या देश की प्रधान व्यवस्थापिका सभा का सदस्य। (२) जज या मैजिस्ट्रेट।

विशेष—अमेरिका, फ्रांस, इटली आदि देशों की बड़ी व्यवस्थापिका सभाएँ 'सेनेट' कहलाती हैं और उनके सदस्य 'सेनेटर' कहलाते हैं।

सेनेट हाउस-संज्ञा पुं० [अं०] वह मकान जिसमें सेनेट का अधिवेशन होता है।

सेमिनरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] शिक्षालय। स्कूल। विद्यालय। मदरसा।

सेवाधारी-संज्ञा पुं० [सं० सेवा + धारी] वह जो किसी मन्दिर में ठाकुर या मूर्त्ति की पूजा-सेवा करता हो। पुजारी। (साधुओं की परि०)

सेस-संज्ञा पुं० [अं०] कर। टैक्स। जैसे,—रोड-सेस।

सैन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगला।

सैनिकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेना या सैनिक का कार्य। सैनिक जीवन। (२) युद्ध। लड़ाई भिड़ाई।

सैनिकवाद-संज्ञा पुं० दे० "सामरिकवाद"।

सैनिटरी-वि० [अं०] सार्वजनिक स्वास्थ्य रक्षा और उन्नति से सम्बन्ध रखनेवाला। जैसे०—सैनिटरी डिपार्टमेंट। सैनिटरी कमिश्नर।

सैनिटेरियम-संज्ञा पुं० दे० "सैनेटोरियम"।

सैनेटोरियम-संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ लोग स्वास्थ्य-सुधार के लिये जाकर रहते हैं। स्वास्थ्य-निवास।

सैलवेशन आर्मी-संज्ञा स्त्री० [अं०] युरोपियन समाज-सेवकों का एक संघटन जिसका उद्देश्य जनता की धार्मिक और सामाजिक उन्नति करना है। इसके कार्यकर्त्ता फौज के ढंग पर जेनरल, मेजर, कप्तान आदि कहलाते हैं। ये लोग गेरुआ साफा, गेरुआ धोती और लाल रंग का कोट पहनते हैं। ईसाई होने के कारण ये लोग ईसाई मजहब का ही प्रचार करते हैं। इनका प्रधान कार्यालय इङ्गलैंड में है और शाखाएँ प्रायः समस्त संसार भर में फैली हुई हैं। मुक्ति फौज।

सोच-संज्ञा पुं० [हिं० सोचना] (१) सोचने की क्रिया या भाव। (२) चिंता। फिक्र। उ०—नारि तजी सुत सोच तज्यो तब।—केशव।

सोंभा† वि० [सं० सम्मुख] (२) ठीक सामने की ओर गया हुआ। सीधा। उ०—सोझ बान जस आवहिं राजा। बासुकि डरै सीस जनु बाजा।—जायसी।

सोत्तरपण व्यवहार-संज्ञा पुं० [सं०] इस प्रकार की शर्त कि वादविवाद में जो जीते, वह हारनेवाले से इतना धन ले। (पारा० स्मृति)

सोदय-संज्ञा पुं० [सं०] ब्याज सहित मूल धन। असल मै सूद।

सोधना-क्रि० स० [सं० शोधन] (१) शुद्ध करना। (२) ठीक करना। दुरुस्त करना। (३) ढूँढना। खोजना। तलाश करना। उ०—(क) वेष वेष वाहिनी असेष वस्तु सोधियो। दायजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो।—केशव। (ख) उबरे जु छत्रिय पुत्र भूतल सोधि सोधि सँहारिहौं।—केशव।

सोधाना-क्रि० स० [हिं० सोधना का प्रेर०] (३) ढुँढवाना। तलाश कराना।

सोनवाना†-वि० [हिं० सोना + वाना (प्रत्य०)] सोने का। सुनहला। उ०—राखा आनि पाट सोनवानी। विरह बियोगिनि बैठी रानी।—जायसी।

सोनहार-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का समुद्री पक्षी। उ०—औ सोनहार सोन कै डाँड़ी। सारदूल रूपे के काँड़ी।—जायसी।

सोपकार-संज्ञा पुं० [सं०] ब्याज सहित मूल धन। असल मै सूद।

सोपकार आधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धरोहर जो किसी फायदे के काम में (जैसे, रुपए का सूद पर दे दिया जाना) लगा दी गई हो।

सोपधि प्रदान-संज्ञा पुं० [सं०] ऋण लेनेवाले या धरोहर रखनेवाले से किसी बहाने से ऋण की रकम बिना दिए गिरवी की वस्तु वापस ले लेना।

सोपानक-संज्ञा पुं० [सं०] सोने के तार में पिरोई हुई मोतियों की माला।

सोला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ऊँचा झाड़ जो प्रायः सारे भारत की दलदली भूमि में पाया जाता है। यह वर्षा ऋतु में फूलता है। इसकी डालियाँ बहुत सीधी और मजबूत होती हैं। सोला हैट नाम की अँगरेजी ढंग की टोपी इन्हीं डालियों के छिलकों से बनती है।

सोहाग-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का सदाबहार वृक्ष जिसके पत्ते बहुत लंबे लंबे होते हैं। यह आसाम,

बंगाल, दक्षिणी भारत और लंका में पाया जाता है। इसके बीजों से एक प्रकार का तेल निकलता है जो जलाया और ओषधि के रूप में काम में लाया जाता है। इसे हरिन हर्रा भी कहते हैं।

सौंधा†-वि० [सं० सुगंध] (२) रुचिकर। अच्छा। उ०—जौं चितवन सौंधी लगै चितइए सबेरे।—तुलसी।

सौजनाꣳ†-क्रि० अ० [हिं० सजना] शोभा देना। भला जान पड़ना। उ०—बरुनि बान अस ओपहँ बेधे रन बन ढाँख। सौजाहिं तन सब रोवाँ पँखिहि तन सब पाँख।—जायसी।

सौजा†संज्ञा पुं० [हिं० सावज] वह पशु या पक्षी जिसका शिकार किया जाय। उ०—आपुहि बन और आपु पखेरू। आपुहि सौजा आपु अहेरू।—जायसी।

सौम्यकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] (२) एक व्रत जिसमें एक रात दिन खली, मट्ठा, पानी और सत्तू खाकर रहते हैं।

सौर ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो मद्य पीने के लिये लिया जाय।

स्कंधपथ-संज्ञा पुं० [सं०] एक मनुष्य के चलने लायक तंग रास्ता। पगडंडी।

स्कंधोपनेयसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जिसके अनुसार नियत या निश्चित फल थोड़ा थोड़ा करके प्राप्त किया जाय। (कामंदक)

स्काउट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) चर। भेदिया। (२) निरीक्षण करनेवालों का दल।

स्काड्रन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) रिसाले का मुख्य भाग जिसमें १०० से २०० जवान तक होते हैं। (२) लड़ाऊ जहाजों के बेड़े का एक भाग। लड़ाऊ जहाजों का एक दल।

स्क्वेयर-संज्ञा पुं० [अं०] चतुष्कोण या चौकोर स्थान जिसके चारों ओर मकान हों। जैसे,—कालेज स्क्वेयर।

स्टाफ-संज्ञा पुं० [अं०] (१) उन लोगों का समूह जो किसी संस्था या विभाग में काम करते हों और एक ही वर्ग के समझे जाते हों। किसी संस्था या विभाग में काम करनेवालों का समूह। कर्मचारी मण्डल। मण्डल। मण्डली। समाज। जैसे,—संपादकीय स्टाफ। स्कूल स्टाफ। आफिस स्टाफ। (२) फौजी अफसरों का समूह।

स्टाफ अफसर-संज्ञा पुं० [अं० स्टाफ आफिसर] वह अफसर जिसके अधीन किसी सेना या सैन्यदल का स्टाफ (अफसर समूह) हो।

स्टाल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) प्रदर्शिनी, मेले आदि में वह छोटी दूकान या टेबल जिस पर बेचने के लिये चीजें सजाई रहती हैं। (२) वह स्थान जहाँ घोड़े रखे जाते हैं। अस्तबल। (३) थिएटर में पिट के आगे की बैठक या आसन।

स्टुडेंट-संज्ञा पुं० [अं०] विद्यार्थी। छात्र। शिक्षार्थी।

स्टैंडर्ड-संज्ञा पुं० [अं०] (१) शुद्धता या श्रेष्ठता के विचार से निश्चित गुण की उच्च मात्रा या स्वरूप जो प्रायः आदर्श माना जाता है और जिससे उस वर्ग के अन्यान्य पदार्थों की तुलना की जाती है। आदर्श। जैसे,—(क) उनके पद त्याग करते ही पत्र का स्टैंडर्ड गिर गया। (ख) हिंदी में आजकल कितने ही ऐसे पत्र निकलते हैं जिनके लेख ऊँचे स्टैंडर्ड के होते हैं। (२) दर्जा। श्रेणी।

स्टैंडिंग कमिटी-संज्ञा स्त्री० दे० "स्थायी समिति"।

स्टैंडिंग कौन्सल-संज्ञा पुं० [अं०] वह बैरिस्टर या एडवोकेट जो सरकार की ओर से मामला चलाने में एडवोकेट जनरल की सहायता करता है।

स्टैच्यू-संज्ञा पुं० [अं०] किसी प्रसिद्ध या विशिष्ट व्यक्ति की पत्थर, काँसे आदि की पूरे कद की मूर्त्ति या पुतला जो प्रायः स्मारक स्वरूप किसी सार्वजनिक स्थान पर स्थापित किया जाता है।

स्ट्राइक-संज्ञा स्त्री० [अं०] हड़ताल। जैसे,—रेलवे स्ट्राइक।

स्ट्राइकर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो हड़ताल करता हो। हड़ताल करनेवाला। हड़तालिया।

स्ट्रीट-संज्ञा पुं० [अं०] रास्ता। सड़क। जैसे,—क्लाइव स्ट्रीट।

स्तोक-संज्ञा पुं० [सं०] (३) जैनों के काल विभाग में उतना समय जितने में मनुष्य सात बार श्वास लेता है।

स्त्रीप्रेक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह खेल तमाशा जिसमें स्त्रियाँ ही जा सकती हों।

स्थल-संज्ञा पुं० [सं०] (८) निर्जन और मरु भूमि जिसमें जल बहुत कम हो। थर।

विशेष—सिंध और कच्छ प्रदेश में ऐसे स्थानों को "थर" कहते हैं।

स्थल दुर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] मैदान का किला।

स्थलपथ भोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह उपनिवेश या राष्ट्र जिसमें अच्छी अच्छी सड़कें मौजूद हों। (कौ०)

स्थलयोधी-संज्ञा पुं० [सं०] जमीन पर लड़ाई करनेवाला योद्धा।

स्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (२३) आसन (युद्ध-यात्रा न कर चुप चाप बैठे रहना) का एक भेद। किसी एक उद्देश्य से उदासीन होकर बैठ जाना।

स्थानिक-संज्ञा पुं० [सं०] (३) राज-कर वसूल करनेवाला एक कर्मचारी।

विशेष—जनपद के चौथे भाग की मालगुजारी इनके जिम्मे रहती थी। ये समाहर्त्ता के अधीन होते थे और इनके अधीन गोप होते थे।

स्थानीय-संज्ञा पुं० [सं०] आठ सौ गाँवों के बीच में बना हुआ किला।

स्थायी समिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी सभा सम्मेलन के कुछ निर्वाचित सदस्यों की वह समिति जिसका काम उस सभा या सम्मेलन के दो महाधिवेशनों के बीच की अवधि में उपस्थित होनेवाले कामों की व्यवस्था करना है।

स्थाली-पुलाक न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] जिस प्रकार हाँड़ी के एक चावल को देखकर शेष सब चावलों के कच्चे होने या पक जाने का अनुमान होता है, उसी प्रकार किसी एक बात को देखकर उसके सम्बन्ध की और सब बातों का अनुमान होना।

स्थाल्य-संज्ञा पुं० [सं०] सूखी जमीन में होनेवाले अनाज, ओषधि आदि। (कौ०)

स्थित-पाठ्य-संज्ञा पुं० [सं०] नाट्य शास्त्र के अनुसार लास्य के दस अंगों में से एक। काम से संतप्त नायिका का बैठकर स्वाभाविक पाठ करना। कुछ लोगों के मत से क्रुद्ध या भ्रांत स्त्री-पुरुषों का प्राकृत पाठ भी यही है।

स्पाई-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो छिपकर किसी का भेद ले। भेदिया। गुप्तचर। गोयंदा। जैसे,—पुलिस-स्पाई। (२) वह दूत जो शत्रु की छावनी या राज्य में भेद लेने के लिये भेजा जाय। गुप्त दूत। भेदिया। जैसे,—पेशावर के पास कई बोलशेविक स्पाई पकड़े गए हैं।

स्पिरिट-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) किसी वस्तु का सार। अर्क। (२) मदिरा का सार। सुरासार। (३) उत्साह। जोश। तत्परता। जैसे,—इस नगर के नवयुवकों में स्पिरिट नहीं है। (४) स्वभाव। मिजाज। (५) प्रेतात्मा। रूह।

स्पिलेचा-संज्ञा पुं० [?] हिमालय की एक झाड़ी जिसकी टहनियों से बोझ बाँधते और टोकरे आदि बनाते हैं।

स्पीकर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो सभा समिति या सर्व साधारण में खड़े होकर किसी विषय पर धड़ल्ले से बोलता या भाषण करता है। वक्ता। व्याख्यानदाता। जैसे,—वे बड़े अच्छे स्पीकर हैं; लोगों पर उनके व्याख्यान का खूब प्रभाव पड़ता है। (२) ब्रिटिश पार्लमेंट की कामन्स सभा, अमेरिका के संयुक्त राज्यों की प्रतिनिधि सभा तथा व्यवस्थापिका सभाओं के अध्यक्ष। सभापति। (३) ब्रिटिश हाउस आफ लार्डस् या लार्ड सभा के अध्यक्ष जो लार्ड चान्सेलर हुआ करते हैं।

विशेष—ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स या कामन्स सभा का स्पीकर या अध्यक्ष पार्लमेंट के सदस्यों में से ही, बिना किसी राजनीतिक भेदभाव के, चुना जाता है। इसका काम सभा में शांति बनाए रखना और नियमानुसार कार्य संचालन करना है। किसी विषय पर सभा के दो समान भागों में विभक्त होने पर (अर्थात् आधे सदस्य एक पक्ष में और आधे दूसरे पक्ष में होने पर) यह अपना कास्टिंग वोट या निर्णायक मत किसी के पक्ष में दे सकता है। अमेरिका की प्रतिनिधि सभा या व्यवस्थापिका सभाओं के स्पीकर या अध्यक्ष साधारणतः उस पक्ष के नेता या मुखिया होते हैं जिसका सभा में बहुमत होता है। ब्रिटिश पार्लमेंट के स्पीकर के समान इन्हें भी सभा संचालन और नियंत्रण का अधिकार तो है ही, इसके सिवा ये महत्व के अवसरों पर दूसरे को अध्यक्ष के आसन पर बैठाकर सदस्य की हैसियत से साधारण सभा में भी बहस कर सकते हैं और वोट दे सकते हैं।

स्पेशलिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो। वह जो किसी विषय में पारंगत हो। विशेषज्ञ। जैसे,—वे आँख के इलाज के स्पेशलिस्ट हैं।

स्मरणपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पत्र जो किसी को किसी विषय का स्मरण दिलाने के लिये लिखा या भेजा जाय। (२) वह पत्र जिसमें कोई बात याद रखने के लिये लिखी जाय। याददाश्त।

स्माल काज कोर्ट-संज्ञा पुं० [अं० स्माल काजेज़ कोर्ट] वह दीवानी अदालत जहाँ छोटे छोटे मामले होते हैं। छोटी अदालत। अदालत ख़फ़ीफ़ा।

विशेष—हिंदुस्तान में कलकत्ता, बंबई आदि बड़े शहरों में स्माल काज कोर्ट हैं।

स्याह काँटा-संज्ञा पुं० [फा० स्याह + हिं० काँटा] किंगरई नाम का कँटीला पौधा। भाल। वि० दे० "किंगरई"।

स्यो*-अव्य० [सं० सह] (२) पास। समीप। उ०—बिनती करै आइ हौं दिल्ली। चितवर कै मोहिं स्यो है किल्ली।—जायसी।

स्लिप-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) परचा। चिट। (२) कागज का लंबा टुकड़ा जिस पर कंपोज करने के लिये कुछ लिखा जाय। जैसे,—उनकी तीन स्लिपों में एक पेज का मैटर निकलता है। (कंपोज़िटर)

स्वकरण-संज्ञा पुं० [सं०] अपना स्वत्व जताना। दावा करना। (कौ०)

स्वकरण भाव-संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु पर बिना अपना स्वत्व सिद्ध किए अधिकार करना। बिना हक़ साबित किए कब्ज़ा करना।

स्वकरण विशुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिस पर किसी व्यक्ति का स्वत्व न हो।

स्वचित्रकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह शिल्पी जो किसी श्रेणी के

अन्तर्गत होते हुए भी स्वतंत्र रूप से काम करता हो। स्वतंत्र कारीगर। (कौ०)

स्वतंत्रद्वैधी भाव-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्वतंत्र रूप से अपना हित समझकर दो शत्रुओं से मेलजोल रखता हो।

स्वदेशाभिष्यंदव-संज्ञा पुं० [सं०] स्वराष्ट्र में जहाँ आबादी बहुत अधिक हो गई हो, वहाँ से कुछ जनता को दूसरे प्रदेश में बसाना। (कौ०)

स्वयंग्राह दान-संज्ञा पुं० [सं०] सेना आदि के द्वारा आप से आप सहायता पहुँचाना। (कौ०)

स्वयंभूरमण-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार अंतिम महाद्वीप और समुद्र का नाम।

स्वयंवादिदोष-संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय में झूठ बात को बार बार दुहराने का अपराध।

स्वयंवादी-संज्ञा पुं० [सं०] मुकदमे में जिरह के समय किसी झूठ बात को बार बार दुहरानेवाला।

स्वयंमुपगत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपनी इच्छा से किसी का दास हो गया हो।

स्वराजिस्ट-संज्ञा पुं० दे० "स्वराजी"।

स्वराजी-संज्ञा पुं० [सं० स्वराज्य] वह मनुष्य जो "स्वराज्य" नामक राजनीतिक पक्ष या दल का हो। स्वराज्य-प्राप्ति के लिये आन्दोलन करनेवाले राजनीतिक दल का मनुष्य।

स्वराष्ट्र मंत्री-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

स्वराष्ट्र सचिव-संज्ञा पुं० [सं०] किसी देश की सरकार या मंत्रिमंडल का वह सदस्य जिसके अधीन पुलिस, जेलखाने, फौजदारी शासन प्रबन्ध आदि हों। होम मेंबर। होम मिनिस्टर। होम सेक्रेटरी।

स्वराष्ट्र सदस्य-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

स्वरूपासिद्ध-वि० [सं०] जो स्वयं अपने स्वरूप से ही असिद्ध जान पड़ता हो। कभी सिद्ध न हो सकनेवाला।

स्वर्णमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) ६४ हाथ लम्बी, ३२ हाथ ऊँची और ३२ हाथ चौड़ी नाव।

स्वल्प-व्यक्ति तंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह सरकार जिसमें राजसत्ता इने गिने लोगों के हाथों में हो। कुछ लोगों का राज्य या शासन। वि० दे० "ओलिगार्की"।

स्वविक्षिप्त सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] अपने ही देश में विद्यमान सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि स्वविक्षिप्त और मित्र विक्षिप्त (मित्र के देश में स्थित) सेना में स्वविक्षिप्त उत्तम है, क्योंकि समय पड़ने पर वह तुरंत काम दे सकती है।

स्वसमुत्थ-वि० [सं०] अपने ही देश में उत्पन्न, स्थित या एकत्र होनेवाला। जैसे,—स्वसमुत्थ कोश। स्वसमुत्थ बल या दंड।

स्वापतेय-संज्ञा पुं० [सं०] स्वकीय संपत्ति। निज की वस्तु। (कौ०)

स्वार्थाभिप्रयात-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जिसे अपना अर्थ साधने के लिये कोई दूसरा लाया हो। आवुर्दा। (कौ०)

स्वीकारोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कथन या बयान जिसमें अपना अपराध स्वीकार किया जाय। अपराध की स्वीकृति। इकरारे जुर्म। जैसे,—अभियुक्तों में से दो ने मैजिस्ट्रेट के सामने स्वीकारोक्ति की।

स्वीकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक व्रत जिसमें तीन तीन दिन तक क्रमशः गोमूत्र, गोबर तथा जौ की लप्सी खा कर रहते थे।

स्वेच्छासैनिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो बिना वेतन के अपनी इच्छा से फौज में सिपाही या अफसर का काम करे। वालंटीयर। बलमटेर।

विशेष—हिंदुस्तान में स्वेच्छा-सैनिक या वालंटीयर अधिकतर युरोपियन और युरेशियन होते हैं। इनसे संकट काल में बंदरों, रेलों, छावनियों और नगरों की रक्षा करने का काम लिया जाता है।

हँकारी†-संज्ञा पुं० [हिं० हँकार + ई (प्रत्य०)] (१) वह जो लोगों को बुलाकर लाने के काम पर नियुक्त हो। (२) प्रतिहारी। सेवक।

हँड़कुलिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० हँडिया + कुलिया] बच्चों के खेलने के लिये रसोई के बहुत छोटे बरतनों का समूह।

हँड़ना-क्रि० अ० [सं० अभ्यटन] (४) (वस्त्र आदि का) व्यवहार में आना। पहना या ओढ़ा जाना।

हंडर-संज्ञा पुं० दे० "हंडरवेट"।

हंडरवेट-संज्ञा पुं० [अं०] एक अंगरेजी तौल जो ११२ पाउंड या प्रायः १ मन १४॥ सेर की होती है।

हँड़ाना-क्रि० स० [सं० अभ्यटन] (१) घुमाना। फिराना। (२) व्यवहार में लाना। काम में लाना।

हक बक-वि० [अनु०] हक्का बक्का। स्तंभित। चकित।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

हकलापन-संज्ञा पुं० [हिं० हकला + पन (प्रत्य०)] हकला होने की क्रिया या भाव। हकलाने का भाव।

हुका-संज्ञा पुं० [देश०] लकड़ी का एक प्रकार का आघात या प्रहार। (लखनऊ)

हटवा†-संज्ञा पुं० [हिं० हाट] वह जो हाट पर बैठकर सौदा बेचता हो। हाटवाला। दूकानदार।

हट्टी-संज्ञा स्त्री० [सं० हट्ट] चीजों के बिकने की जगह । दूकान । (पश्चिम)

हड़कंप-संज्ञा पुं० [देश०] भारी हलचल या उथल पुथल । तहलका । जैसे,—शत्रु की सेना के पहुँचते ही किले में हड़कंप मच गया ।

क्रि० प्र०—मचना ।

हुड़काया-वि० [हिं० हड़क] [स्त्री० हड़काई] पागल । (कुत्ता)

हथरस-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + रस ?] हस्त-मैथुन । हस्तक्रिया ।

हथेव†-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ] हथौड़ा । घन । उ०—हनि हथेव हिय दरपन साजै । छोलनी जाप लिहे तन माँजै ।—जायसी ।

हनिवँत*-संज्ञा पुं० दे० "हनुमान" । उ०—नहिं सो राम, हनिवँत बड़ि दूरी । को लेइ आव सजीवन मूरी ।—जायसी ।

हनुवँ-संज्ञा पुं० दे० "हनुमान्" । उ०—जनहुँ लंक सब लूटी हनुवँ बिधंसी बारि । जागि उठिउँ अस देखत, सखि ! कहु सपन बिचारि ।—जायसी ।

हबड़ा-वि० [देश०] (१) जिसके बहुत बड़े बड़े दाँत हों । बड़दंता । (२) भद्दा । कुरूप । बद-शकल ।

हमउम्र-वि० [फा० उम्र + अ० उम्र] अवस्था में समान । बराबर उम्र का ।

हमक़ौम-वि० [फा० हम + अ० क़ौम] एक ही जाति के । सजातीय ।

हमपेशा-वि० [फा०] एक ही तरह का पेशा करनेवाले । जो व्यवसाय एक करता हो, वही व्यवसाय करनेवाला दूसरा । सह-व्यवसायी ।

हमबिस्तर-वि० [फा०] एक ही बिछौने पर साथ में सोया हुआ।

क्रि० प्र०—होना ।

हमबिस्तरी-संज्ञा स्त्री० [फा०] एक ही बिछौने पर साथ में सोने की क्रिया । संभोग । प्रसंग ।

हममज़हब-वि० [फा० हम + अ० मज़हब] समान धर्म्म के अनुयायी । एक ही मज़हब को माननेवाले । सह-धर्म्मी ।

हर-संज्ञा पु० [जरमन] अंगरेजी 'मिस्टर' शब्द का जर्मन समानार्थ-वाची शब्द । महाशय । जैसे,—हर स्ट्रेसमैन ।

हरजेवड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो प्रायः सारे भारत और सभी गरम प्रदेशों में पाई जाती है । इसकी डालियों और पत्तियों पर बहुत से रोएँ होते हैं । इसकी जड़ और पत्तियों का व्यवहार ओपधि के रूप में होता है । दाल निरबिसी । पुरही ।

हरतारॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "हरताल" । उ०—का हरतार पार नहिं पावा । गंधक काहे कुरकुटा खावा ।—जायसी ।

हरद्वान-संज्ञा पुं० [?] एक स्थान का नाम जहाँ की तलवार प्रसिद्ध थी । उ०—हाथन्ह गहे खड्ग हरद्वानी । चमकहिं सेल बीजु कै बानी ।—जायसी ।

हरद्वानी-वि० [हिं० हरद्वान] हरद्वान का बना हुआ । उ०—हाथन्ह गहे खड्ग हरद्वानी । चमकहिं सेल बीजु कै बानी ।—जायसी ।

हरनौटा-संज्ञा पुं० [हिं० हिरन + औटा (प्रत्य०)] हिरन का बच्चा । छोटा हिरन ।

हरबोंग-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) उपद्रव । उत्पात । (२) अव्यवस्था । बद-अमली । गड़बड़ी ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

हरमल-संज्ञा पुं० [देश०] डेढ़ दो हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी जो सिंध, पंजाब, काश्मीर और दक्षिण भारत में पाई जाती है । इसकी पत्तियाँ ओषधि के रूप में काम आती हैं और इसके बीजों से एक प्रकार का लाल रंग निकलता है ।

हरा-संज्ञा पुं० [सं० हरित] हरे रंग का घोड़ा । सब्जा । उ०—हरे कुरंग महुअ बहु भाँती । गरर कोकाह बुलाह सुपाँती ।—जायसी ।

हरिॐ-अव्य० [हिं० हरुए] धीरे । आहिस्ते । उ०—सूखा हिया हार भा भारी । हरि हरि प्रान तजहिं सब नारी ।—जायसी ।

हरित्-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार हरिक्षेत्र की एक नदी का नाम ।

हरिन हर्रा-संज्ञा पुं० [देश०] सोहाग नामक बड़ा सदाबहार वृक्ष जिसके बीजों से जलाने का तेल निकलता है । वि० दे० "सोहाग" ।

हरियानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हरियाना प्रांत] हिसार, रोहतक और करनाल प्रांत की बोली जिसे जाटू या बाँगड़ू भी कहते हैं ।

हरियाली-संज्ञा स्त्री० दे० "दूब" ।

हरी-चुग†-संज्ञा पुं० [हिं० हरी (हरियाली) + चुगना] वह जो केवल अच्छे समय में साथ दे । संपन्न अवस्था में साथ देनेवाला ।

हलकम-संज्ञा पुं० दे० "हड़कंप" ।

हलबलाना-क्रि० अ० [अनु०] भय या शीघ्रता आदि के कारण घबराना ।

क्रि० स० दूसरे को घबराने में प्रवृत्त करना ।

हलबलाहट-संज्ञा स्त्री० [अनु०] हलबलाने की क्रिया या भाव । खलबली । घबराहट ।

हलाचली-संज्ञा स्त्री० दे० "हलचल" ।

हलूक-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) उतना पदार्थ जितना एक बार वमन में मुँह से निकले । (२) वमन । कै । जैसे,—दो हलूकों में उसकी जान निकल गई ।

हुसार-संज्ञा पुं० [अं० हुजर] रिसाले के सवारों के तीन भेदों में

से एक जो हलके होते हैं और जिनके अस्त्र तथा घोड़े भी हलके होते हैं। (अन्य दो भेद लैंसर और ड्रैगून हैं।)

हस्तदोष-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ से डाँड़ी मारने या नाप में फ़र्क डालने का अपराध। (कौ०)

हस्तविषमकारी-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की सफाई से बाज़ी जीतनेवाला।

हस्तिकरणक-संज्ञा पुं० [सं०] हथियारों का वार रोकने का एक प्रकार का पटल या ढाल। (कौ०)

हस्ति-व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों का वह व्यूह जिसमें आक्रमण करनेवाले हाथी उरस्य में, तेज भागनेवाले (अपवाह्य) मध्य में और व्याल (मतवाले) पक्ष में हों। (कौ०)

हाइड्रोसील-संज्ञा पुं० [अं०] अंडकोश या फोते में शरीर के विकृत जल का जमा होना। अंडवृद्धि। फोते का बढ़ना।

हाउस आफ कामन्स-संज्ञा पुं० दे० "कामन सभा"।

हाउस आफ लार्ड्स-संज्ञा पुं० दे० "लार्ड सभा"।

हाटक-संज्ञा पुं० [सं०] (५) भाड़ा। किराया। जैसे,—नौका हाटक।

हाड़ी-संज्ञा पुं० [पं० हाड़=असाढ़ ?] एक प्रकार का पहाड़ी राग।

हाबुस-संज्ञा पुं० [सं० हविष्य] जौ की कच्ची बाल जो प्रायः भून-कर और नमक मिर्च मिलाकर खाई जाती है।

हाबूड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी जाति जिसका काम लूट मार और चोरी आदि करना है।

हामी-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह जो हिमायत करता हो। (२) सहायता करनेवाला। मददगार।

हारबर-संज्ञा पुं० [अं०] समुद्र के किनारे, नदी के मुहाने या खाड़ी में बना हुआ वह स्थान जहाँ जहाज आकर ठहरते हैं। बंदर। बंदरगाह। जैसे,—डायमण्ड हारबर। बंबई हारबर।

हाव हाव-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाय] किसी पदार्थ को प्राप्त करने की बहुत अधिक और अनुचित इच्छा। हाय हाय। जैसे,—तुम्हें तो हर दम रुपयों की हाव हाव पड़ी रहती है।

हाहा हूहू-संज्ञा पुं० [अनु०] हा हा करके हँसने की क्रिया। हँसी ठट्ठा। विनोद। हा हा ठीठी।

हाही-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाय] किसी वस्तु को प्राप्त करने की अनुचित और बहुत अधिक विकलता। कुछ पाने के लिये 'हाय हाय' करते रहना। जैसे,—(क) तुम्हें तो सदा रुपयों की हाही पड़ी रहती है। (ख) इतनी हाही क्यों करते हो? जब सब को मिलेगा, तब तुम्हें भी मिल जायगा।

हिंस्त्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुश्मनों या डाकुओं की नाव।

हिज़ ऑनर-संज्ञा पुं० [अं०] छोटे लाट आदि के पद के आगे लगनेवाला सम्मानसूचक शब्द। जैसे,—हिज आनर लेफ्टेनेंट गवर्नर।

हिज एक्सेलेंसी-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० हर एक्सेलेंसी] वाइस-राय, प्रधान सेनापति, गवर्नर, स्वतंत्र देशों के मन्त्री आदि कुछ विशिष्ट उच्च अधिकारियों के नाम के आगे लगनेवाली प्रतिष्ठासूचक उपाधि। श्रीमान्। जैसे,—हिज एक्सेलेंसी वाइसराय, हिज एक्सेलेंसी कमांडर-इन-चीफ़, हिज एक्सेलेंसी प्राइम मिनिस्टर नैपाल।

हिज मैजेस्टी-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० हर मैजेस्टी] सम्राट् और स्वाधीन देशों के राजाओं के नाम के आगे लगनेवाली गौरव-सूचक उपाधि। महामहिमान्वित। मलिक मोअज्जम। जैसे,—हिज मैजेस्टी किंग जार्ज। हिज मैजेस्टी अमानुल्ला।

हिज रायल हाइनेस-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० हर रायल हाइनेस] स्वाधीन राज्यों या देशों के युवराजों तथा राजपरिवारों के व्यक्तियों के नाम के आगे लगनेवाली गौरवसूचक उपाधि। जैसे,—हिज रायल हाइनेस प्रिंस आफ़ वेल्स।

हिजली बदाम-संज्ञा पुं० [हिजली ?+हिं०बादाम] काटू नामक वृक्ष के फल जो प्रायः बादाम के समान होते हैं और जिनसे एक प्रकार का तेल निकलता है जो प्रायः बादाम के तेल के समान होता है। यह फल भून कर खाया जाता है और इसका मुरब्बा भी पड़ता है। वि० दे० "काटू"।

हिज हाइनेस-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० हर हाइनेस] राजा महा-राजाओं के नाम के आगे लगनेवाली गौरवसूचक उपाधि। जैसे—हिज हाइनेस महाराज सर सयाजी राव गायकवाड़।

हिज होलीनेस-संज्ञा पुं० [अं०] पोप तथा ईसाई मत के प्रधान आचार्यों के नाम के आगे लगनेवाली उपाधि।

विशेष—भारत में भी लोग धर्माचार्यों के नाम के आगे यह उपाधि लगाने लग गए हैं। जैसे,—हिज होलीनेस स्वामी शंकराचार्य।

हिपोक्रिट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) कपटी। मक्कार। (२) पाखंडी।

हिपोक्रिसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) छल। कपट। फरेब। मकर। (२) पाखंड।

हिमवान-संज्ञा पुं० [सं० हिमवत्] (३) चंद्रमा। उ०—पावक पवन पानी भानु हिमवान जम, काल लोकपाल मेरे डर डावाँडोल हैं।—तुलसी।

हिरकना†-क्रि० अ० [सं० हिरुक्] (३) (बच्चों या पशुओं आदि का) परचना।

हिरिस-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो अवध, राजपूताने, पंजाब और सिंध में पाया जाता है। इसकी छाल भूरे रंग की होती है। इसकी पत्तियाँ पाँच छः अंगुल लंबी और जड़ की ओर गोलाकार होती हैं। यह फागुन चैत में

फलता है। इसके फल खट-मीठे होते हैं और कहीं कहीं खाए जाते हैं।

हिल्ला-संज्ञा पुं० दे० "हीला"।

हिवंचल-संज्ञा पुं० [सं० हिम] हिम। पाला। बरफ़। उ०—बरखा रुदन गरज अति कोहू। बिजुरी हँसी हिवंचल छोहू।—जायसी।

संज्ञा पुं० दे० "हिमाचल"। उ०—को ओहि लागि हिवंचल सीझा। का कहँ लिखी ऐस को रीझा।—जायसी।

हिस्टीरिया-संज्ञा पुं० [अं०] मूर्छा रोग जो प्रधानतः स्त्रियों को होता है।

विशेष—इस रोग के प्रधान लक्षण ये हैं—आक्षेप या मूर्छा के पहले ऐसा मालूम होना मानों पेट में कोई गोला ऊपर को जा रहा है, रोना, चिल्लाना, बकना, हाथ पैर ठंढे होना, बार बार प्यास लगना आदि।

हीन-संज्ञा पुं० [सं०] (८) दीन। नम्र। उ०—रहै जो पिय कै आयसु बरतै होइ हीन। सोइ चांद अस निरमल जनम न होइ मलीन।—जायसी।

हीनच्छिद्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह संघ या श्रेणी जो कुल, मान-मर्यादा, शक्ति आदि में बहुत घटकर हो। (कौ०)

हीनापहीन-संज्ञा पुं० [सं०] जुरमाने के साथ हरजाना। अर्थ-दंड सहित हानि की पूर्ति।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में यदि राजकीय कारखाने में जुलाहे कम सूत या कपड़े बनाते थे तो उन्हें 'हीनापहीन' देना पड़ता था। (कौ०)

हीर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की लता जो प्रायः सारे भारत में पाई जाती है और जिसकी टहनियों और पत्तियों पर भूरे रंग के रोएँ होते हैं। यह चैत वैशाख में फूलती है। इसकी जड़ और पत्तियों का व्यवहार ओषधि रूप में होता है। इसके पके फलों के रस से बैंगनी रंग की स्याही बनती है जो बहुत टिकाऊ होती है।

हीरा-संज्ञा पुं० [सं० हीरक] (५) रुद्राक्ष या इसी प्रकार का और कोई एक अकेला मनका जो प्रायः साधु लोग गले में पहनते हैं। (साधुओं की परि०)

हीस-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जो प्रायः सारे भारत में बहुत बड़े बड़े पेड़ों पर चढ़ी हुई पाई जाती है। यह गरमी में फूलती और बरसात में फलती है। इसकी पत्तियाँ और टहनियाँ हाथी बड़े चाव से खाते हैं।

हीही-संज्ञा स्त्री० [अनु०] ही ही शब्द करके हँसने की क्रिया। तुच्छतापूर्वक हँसना।

यौ०—ही ही ठी ठी करना = (१) व्यर्थ और तुच्छतापूर्वक हंसना। (२) हँसी मजाक करना।

हुज्जती-वि० [अ० हुज्जत + ई (प्रत्य०)] बात बात में लड़नेवाला। हुज्जत करनेवाला। झगड़ालू।

हुड़का-संज्ञा पुं० [देश०] वह जो घोर मानसिक व्यथा, विशेषतः बच्चों को होनेवाली मानसिक व्यथा जो प्रायः अचानक किसी प्रिय व्यक्ति का वियोग हो जाने पर उत्पन्न होती है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

हुड़काना-क्रि० स० [हिं० हुड़क + आना (प्रत्य०)] (१) बहुत अधिक भयभीत और दुःखी करना। (२) तरसाना। ललचाना।

हुनरमंदी-संज्ञा स्त्री० [फा०] हुनरमंद होने की क्रिया या भाव। कला-कुशलता। निपुणता।

हुमकना- क्रि० अ० [अनु०] (५) दबाने या इसी प्रकार का और कोई काम करने के लिये जोर लगाना। उ०—मारेसि साँग पेट महँ धँसी। काढ़ेसि हुमकि आँति भुँइ खसी।—जायसी।

हुलहुला-संज्ञा पुं० [देश०] (१) विलक्षण बात। अद्भुत बात। (२) उपद्रव। उत्पात। (३) शोक। उमंग। (४) मिथ्या अभियोग।

हुश्कारना-क्रि० स० [हुश से अनु०] हुश हुश शब्द करके कुत्ते को किसी की ओर काटने आदि के लिये बढ़ाना।

हूला-संज्ञा पुं० [हिं० हूलना] शस्त्र आदि हूलने की क्रिया या भाव।

हेड क्वार्टर-संज्ञा पुं० [अं० हेडक्वार्टर्ज] (१) वह स्थान या मुकाम जहाँ सेना का प्रधान रहता हो। जैसे,—सेना का हेड क्वार्टर शिमले में है। (२) किसी सरकार या अधिकारी का प्रधान स्थान। जैसे,—जाड़े में भारत सरकार का हेड क्वार्टर दिल्ली में रहता है। (३) वह स्थान जहाँ कोई मुख्यतः रहता या कारोबार करता हो। सदर। सदर मुकाम। केंद्र। जैसे,—वे अभी हेड क्वार्टर से लौटे नहीं हैं।

हेडिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह शब्द या वाक्य जो विषय के परिचय के लिये किसी समाचार, लेख या प्रबन्ध के ऊपर दिया जाय। शीर्षक। जैसे,—अखबारों में महत्व के समाचार बड़ी बड़ी हेडिंगें देकर छापे जाते हैं।

हेल्थ-संज्ञा पुं० [अं०] स्वास्थ्य। तंदुरुस्ती। जैसे,—हेल्थ अफसर। हेल्थ डिपार्टमेंट।

हैंड बिल-संज्ञा पुं० [अं०] छपा हुआ कागज़ का टुकड़ा जिसमें किसी चीज का विज्ञापन या नाच तमाशे, सभा समिति आदि की सूचना दी जाती है। जैसे,—अभी एक हैंड बिल से मुझे मालूम हुआ कि टाउन हाल के मैदान में एक सार्वजनिक सभा होनेवाली है।

हैवा-संज्ञा पुं० दे० "हौआ"।

हैरण्यवत-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार जंबू द्वीप के छठे खंड का नाम।

हैहयाधिराज-संज्ञा पुं० [सं०] सहस्रार्जुन। उ०-प्रचंड हैहयाधिराज दण्डमान जानिये।—केशव।

होम डिपार्टमेंट-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र विभाग"।

होम मिनिस्टर-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

होम मेंबर-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

होम सेक्रेटरी-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

होरहा*-संज्ञा पुं० [सं० होलक] चने का छोटा पौधा जो प्रायः जड़ से उखाड़ कर बाजारों में बेचा जाता है और जिसमें से चने के भुने हुए ताजे दाने निकलते हैं।

होलू*-संज्ञा पुं० [हिं० होला] भुने या उबाले हुए चने। (खोंचेवाला)

होस्टेल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) स्कूल या कालेज से संबद्ध छात्रों के रहने का स्थान। छात्रावास। (२) रहने का स्थान।

हौल जौल-संज्ञा स्त्री० [अ० हौल + जौल (अनु०)] (१) जल्दी। शीघ्रता। (२) जल्दी के कारण होनेवाली घबराहट।

क्रि० प्र०—मचाना।

हौला जौली-संज्ञा स्त्री० दे० "हौल जौल"।

हौलू*-वि० [हिं० हौल] जिसके मन में जल्दी हौल होता हो। शीघ्र भयभीत होने या घबरानेवाला।

ह्रस्वकाल-संज्ञा पुं० [सं०] आक्रमण करते ही प्राप्त होनेवाला लाभ। (कौ०)

ह्रस्व-प्रवासी-संज्ञा पुं० [सं०] थोड़े समय के लिये बाहर गया हुआ मनुष्य। वह जो कुछ ही काल के लिये परदेश गया हो। (कौ०)

विशेष—ऐसे प्रवासियों की स्त्रियों के लिये कुछ अवधि नियत थी कि वे कितने दिनों तक पति की प्रतीक्षा करें। उस काल के पहले वे दूसरा विवाह नहीं कर सकती थीं।

ह्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) जैनों के अनुसार महापद्म नामक सरोवर की देवी का नाम।

ह्विप-संज्ञा पुं० [अं०] (१) पार्लमेंट या व्यवस्थापिका सभा का वह सदस्य जो अपनी पार्टी या दल के सदस्यों को किसी महत्व के प्रश्न पर वोट या मत लिए जाने के समय, सभा में अधिकाधिक संख्या में उपस्थित कराता है। दलदूत। जैसे,—इस बार परिषद् के स्वराजी दल के ह्विप के उद्योग से दल के समस्त सदस्य १२ ता० के अधिवेशन में उपस्थित हुए थे।

विशेष—ह्विप का काम है अपने दल के प्रत्येक सदस्य को सूचित करना कि अमुक समय पर अमुक महत्व के विषय पर वोट या मत लिए जायँगे, और इस बात का ध्यान रखना कि वोट लिए जाने के पहले सभा से दल का कोई सदस्य बाहर न जाने पावे (अर्थात् उन सब को सभा में रोक रखना), अपने दल के सदस्यों को बताना कि किस प्रकार वोट देना चाहिए, वोट लिए जाने के समय प्रत्येक दल के सदस्यों की गणना करना, अपने दल के सदस्यों से मिलते जुलते रहना और किसी विषय पर उनका क्या निश्चित मत है, यह अपने दल के नेता को विदित करना जिसमें वह निश्चय कर सके कि कहाँ तक हमें इस विषय में अपने दल का सहारा मिलेगा। सारांश यह कि ह्विप का काम अपने दल के स्वार्थ या हित को देखना है।

(२) चाबुक। (३) कोचवान।